कृष्ण गोपाल ग्रन्थ माला का

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड



कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन

(धर्मार्थ ट्रस्ट)

पो. कालेडा कृष्णगोपाल (अजमेर)

ओ३म्

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाका प्रथमरत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

१

प्रथमखंड

प्रकाशक

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन,

कालेडा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

प्रथम संस्करण जुलाई १९३२ ई०
द्वितीय संस्करण जुलाई १९३८ ई०
तृतीय संस्करण अप्रेल १९४२ ई०
चतुर्थ संस्करण मार्च १९४५ ई०
पञ्चम संस्करण जनवरी १९४७ ई०
षष्ठम संस्करण जनवरी १९४९ ई०
सप्तम संस्करण सितम्बर १९५१ ई०
अष्ठम संस्करण अगस्त १९५६ ई०
नवम संस्करण मई १९६१ ई०
दशम संस्करण दिसम्बर १९६३ ई०
एकादश संस्करण नवम्बर १९७३ ई०
द्वादश संस्करण दिसम्बर १९८७ ई०
तेरहवां संस्करण मार्च १९९१ ई०

द्वादश संस्करणों की ८०७५० प्रति
तथा तेरहवां संस्करण की ८००० प्रति
मिलकर ४८७५० प्रति प्रकाशित।

तेरहवां संस्करण प्रति ८०००
सन् १९९१ ई०

मूल्य- Rs 80 = 00

प्रकाशक
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ-ट्रस्ट)
पो० कालेड़ा–कृष्णगोपाल (जि० अजमेर)

मुद्रक—
कृष्णगोपाल मुद्रणालय, कालेड़ा कृष्णगोपाल (अजमेर)

* श्री *

तेरहवां संस्करण की विज्ञप्ति

श्री परब्रह्म परमात्मा की परमकृपामयी अनुकम्पासे यह "रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड" का संस्करण हमारे कृपालु सज्जन, गुणग्राही ग्राहकों तथा विद्वान वैद्योंके करकमलोंमें समर्पित है।

इस लोकप्रिय व सर्वजन हितैषी ग्रन्थके मूल रचयिता स्वर्गीय स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज ने **"नात्मार्थं नापि कामार्थं मथ भूतदयां प्रति"** न स्वयंके लिये, न सकाम भावनाओंसे किन्तु मानव मात्रपर दया (सेवा) के एक मात्र लक्ष्यसे कड़े परिश्रम व त्याग द्वारा प्रकाशित करवा कर जनता जनार्दनकी सेवाका परम लाभ लिया है।

उन्हीं महात्माकी परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखने तथा प्रकाशन-प्रवाह को चालू रखनेकी दृष्टिसे इस संक्रमण कालमें कागजकी उपलब्धिमें विलम्ब महार्घता व कठिनाइयां होते हुए भी यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थकी उपयोगिताके विषयमें कुछ भी लिखना अपर्याप्त होगा। इसके १३ संस्करणोंमें ४८७५० प्रतियां अभी तक निकल चुकी हैं। साथ ही इसके दो गुजराती संस्करण भी निकल चुके हैं। इन परिस्थितियोंमें यह ग्रन्थ-पुष्प न केवल औषध-निर्माण तथा चिकित्साके आदर्श की पूर्ति करता है, वरन् जन कल्याण की भावनाओं व कामनाओं की पूर्ति भी करता है।

मुद्रणोपयोगी कागजकी महार्घता हो जानेपर भी उदारमना धर्मपरायण श्री प्रन्यास मण्डलने इस ग्रन्थका मूल्य स्वल्प बढ़ाकर प्रायः लागत मात्र मूल्य रखनेका निर्णय लेकर सर्व सुलभ बना दिया है।

इसके प्रति संस्करणमें संशोधनादि होते रहनेसे इसका कलेवर अधिक बढ़कर इस मँहगे युगमें इतनी भारी कीमत न हो जाये कि सामान्यजन इसे खरीदकर लाभ न उठा सकें, अतः संस्थाने संकलन करके "क्वाथ संग्रह" "चूर्णसंग्रह" व "नित्योपयोगी गुटिका संग्रह" आदि लघु पुस्तिकायें अलग प्रकाशित की है-वे इसी ग्रन्थ पुष्पके अङ्ग हैं। इन्हें तथा इस ग्रन्थको पाठक ग्राहक पृथक्-पृथक् कम मूल्यमें ही खरीद सकते हैं।

इस संस्करणमें पूर्व संस्करणोंकी त्रुटियोंको निकालकर और परिशिष्ट के नवीन योगोंको प्रकरणानुसार यथा स्थान देकर संशोधन और परिवर्धन कर दिया है।

इस ग्रन्थमें औषध निर्माण व मात्रा आदिमें पुराने तोल, मानोंका ही उपयोग समयाभावसे किया गया है, इसका हमें खेद है, किन्तु प्रयोग

कर्त्ताओंकी सुविधा हेतु पुराने व नये मानोंकी तालिका भी ग्रन्थमें दे दी है । तदनुसार परिवर्तन करके लाभ उठानेका कष्ट करेंगे ।

संभावना है कि इतने प्रयासपर भी वर्ण संयोजक दोष जो दृष्टि दोष तथा प्रमादवश रह गए हों, उन्हें सज्जन वृन्द, विद्वान वैद्य सुधारकर हमें अवगत करानेकी कृपा करेंगे । जिससे अग्रिम संस्करणोंमें सुधारनेका प्रयास किया जाये।

।। इत्यलम् ।।

❋ निवेदन ❋

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।।

कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयका मूल आधारस्तम्भ रस-तंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह यह ग्रन्थ है । पूज्य स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराजने अपना सर्वस्व सार अनुभव व ज्ञान, इस ग्रन्थके द्वारा जनता जनार्दनके समक्ष एवं आयुर्वेद जगत्के सामने रखा है। यह ग्रन्थ २ खण्डोंमें विभक्त है, इसमेंसे प्रथम खण्डका यह तेरहवां संस्करण है। बारहवें संस्करण तक प्रथम खण्डकी ४०७५० प्रतियां प्रकाशित हो चुकी हैं । इस संस्करणकी ८००० प्रतियां हम प्रकाशित कर रहे हैं । हर संस्करणके साथ जैसा-जैसा संस्थाका अनुभव ज्ञान बढा है, वैसा-वैसा प्रत्येक संस्करणमें संशोधन एवं परिवर्द्धत किया गया है ।

आयुर्वेद विषयक संस्कृत एवं देशी भाषाओंमें अनेक ग्रन्थ हैं किन्तु "रस तन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" यह ग्रन्थ अपने ढंगका अनोखा है । इसकी भाषाशैली सरल एवं सहज समझमें आने लायक है। इसमें आयुर्वेदके प्रचलित करीब करीब.सभी योग दिये गये हैं । औषधियोंकी बनावट इस ढङ्गसे दी है कि आयुर्वेदका ज्ञान रखने वाला कोई भी सामान्य चिकित्सक औषध बना सकता है । औषध उपयोग भी इतना विस्तृत रूपसे दिया हुआ है जिस रोग निदान, चिकित्सा एवं औषध उपचार सरलतासे किया जा सकता है । यह कृष्णगोपालका पुष्प आज समस्त भारतवर्षमें चिकित्सक वैद्य, आयुर्वेदके विद्यार्थी और आयुर्वेदके प्रेमी सज्जन, इन सभीके हाथोंमें है । हमने यह अनुभव किया है कि इसकी मांग और भी बढ़ती जा रही है, उसे पूरी करनेके लिये हम प्रयत्नशील हैं और हमें उम्मीद है कि समस्त आयुर्वेद परिवार उत्तरोत्तर इससे अधिक लाभ उठावेगा ।इस ग्रन्थमें नूतन पद्धतिके अनुसार औषध क्रिया विज्ञान (फार्मोकोलोजी) की शैलीसे गुण-वर्णन किया गया है । इसी ग्रन्थके आधारसे हम यहां रसायनशालामें औषध

निर्माण करते हैं । उत्तरोत्तर बढती हुई औषधियोंकी मांगसे एवं औषधियों के सेवनसे होने वाले लाभ द्वारा यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थमें दिये हुए प्रयोग प्रमाणिक एवं आशु फलदायी हैं ।

यह ग्रन्थ आयुर्वेदके पाठ्यक्रम ग्रन्थोंमेंसे एक है, केन्द्रीय एवं अन्य राज्योंके फार्माकोपियामें इस ग्रन्थमें उल्लिखित अनेक योगोंको मान्यता दी है । अभी तक आयुर्वेद महाविद्यालयोंमें इसका जितना उपयोग होना चाहिये था उतना नहीं हो पाया है । आज घरेलू वैद्यकी तरह इसने कई घरोंमें प्रवेश पाया है, अब हमें आशा है कि अनेक विद्यालयोंमें भी इस ग्रन्थका उपयोग होने लगेगा जिससे आयुर्वेद शिक्षाको प्राप्त करने वाले विद्यार्थी भी इससे विशेष लाभ उठा सके । हमारे कई उपयुक्त ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं । उनमें यह ग्रन्थ प्रथम स्थान रखता है। अन्य ग्रन्थोंका परिचय अन्यत्र दिया गया है।

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवनकी प्रतिष्ठा सत्य एवं सेवापर आधारित है । संस्थाने आयुर्वेद जगत्में यह पहला कदम उठाया है कि अपना कोई भी प्रयोग गुप्त न रखा जाय । इसी मूल बुनियादके आधारपर हम हमारे सभी योग प्रकट करते आ रहे हैं जो इस ग्रन्थमें एवं इसके दूसरे खण्डमें आपके समक्ष हैं ।

आज भारतमें हमारी प्राचीन चिकित्सापद्धति आयुर्वेदका गौरव पुनः बढ़ने लगा है । राज्य सरकारें भी इस ओर आकर्षित हो रही है । खास तौर पर राजस्थान सरकारने इस दिशामें काफी आगे कदम उठाये हैं । राजस्थानके अङ्गभूत होनेके नाते हम भी आयुर्वेदके उत्थानमें सहायक होना अपना कर्तव्य समझते हैं । हमें पूरी आशा है कि हमारे अनुभवोंका हमारी प्रादेशिक राज्य सरकार एवं भारतके अन्य राज्य लाभ उठायेंगे । इस दिशामें अगर कुछ अंश तक भी हम सहायक बन सके तो अपने आपको कृत्य-कृत्य मानेंगे । सेवा-परायणवृत्ति धारण करनेसे हम हमारा यह प्रमुख कर्त्तव्य भी मानते हैं ।

इस ग्रन्थकी प्रथमावृत्तिसे लगाकर दशम आवृत्ति तक पूज्य स्वामी जी महाराजने प्रत्येक संस्करणमें संशोधन एवं परिवर्द्धन किया है। आपके आदेशानुसार तथा रसायनशालामें प्रत्यक्ष क्रियानुभव द्वारा प्राप्त नूतन प्रयोग कूपीपक्व रसायन अद्वितीय योग शतगुण गन्धक जारित, अभ्रमाक्षिक सत्व ग्रासित सुवर्ण चन्द्रोदयका चमत्कारिक प्रयोग भी वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री द्वारा बढाये है ।

इस ग्रन्थ लेखनमें मराठी ग्रन्थ "आयुर्वेदीय औषध गुणधर्म शास्त्र" ले. स्व. गंगाधर शास्त्री गुणेसे काफी मदद मिली है, इस लिये हम ग्रन्थ लेखक और प्रकाशक, संस्थाके आभारी हैं । इसके अतिरिक्त कई प्राचीन शास्त्र, "आयुर्वेद निबंध माला" (गुजराती) "रसायनसार संग्रह" (गुजराती) "वैद्यकसार संग्रह" (मराठी) और अर्वाचीन आयुर्वेद यूनानी ग्रन्थों और कई मासिकपत्रों तथा परिचित अनुभवी वैद्योंसे भी योग मिले हैं, उन सबके

हम हृदयषे आभारी हैं ।

आभार प्रदर्शनके समय कविराज प्रतापसिंहजीका संस्मरण हो आता है। आपकी इस संस्थापर असीम कृपा रही थी। आपने सातवें संस्करणका संशोधन कर देनेकी कृपा भी की थी। कितने ही अनुभूत विचार और प्रयोग स्व० आचार्य पं. सुखरामदासजी टी. ओझासे मिले थे, जो इस ग्रन्थमें यथा स्थान सम्मिलित किये गये हैं। एवं कतिपय नूतन विचार वै० बापालालजी शाह आयुर्वेद मार्त्तण्ड सूरतके लेखसे भी मिले हैं, जिनका उपयोग भी हुआ है। इन सब कृपालु सहायकों का हम हृदयपूर्वक आभार मानते हैं।

छपाई एवं अन्य कार्योंमें जो भूलें हुई हों उनके लिये पाठक क्षमा प्रदान कर हमें सूचित करें ताकि अगले संस्करणमें सुधार हो सके।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥

कालेड़ा-कृष्णगोपाल
मार्च १९९१

व्यवस्थापक—
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (ध. ट्र.)

❀ तोल तालिका ❀

इस 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' प्रथम भागमें भी पूर्व संस्करणों की भांति औषधियोंके वजन यथा पूर्व होनेसे उनकी वर्तमान प्रचलित मेट्रीक वजन पद्धति से संतुलन एवं परिवर्तन तालिका नीचे दी जा रही है।

१ रत्ती	=	·१२१ मिली ग्राम		
६ रत्ती	=	·७२९ मिली ग्राम		
८ रत्ती	=	१ माशा	=	·९७२ मिली ग्राम
१½ माशा	=	⅛ तोला	=	१·४५८ ग्राम
३ माशा	=	¼ तोला	=	२·९१६ ग्राम
६ माशा	=	½ तोला	=	५·८३२ ग्राम
१२ माशा	=	१ तोला	=	११·६६४ ग्राम
८० तोला	=	१ सेर	=	९३३·१ ग्राम
४० सेर	=	१ मण	=	३७-३२४ किलो ग्राम

अवोरड्यू पाइस वजन पद्धति						मेट्रीक
१ ग्रेन	=					·०६४७९८९ ग्राम
२७·३४ ग्रेन	=	१ ड्राम	=	१·७७२		,,
४३७·५ ग्रेन	=	१६ ड्राम	=	१ औंस	=	२८·३५० ग्राम
७००० ग्रेन	=	१६ औंस	=	१ पौंड	=	४५३·५९२ ग्राम
		२८ पौंड	=	१ क्वार्टर	=	१२·७० किलोग्राम
		११२ पौंड या ४ क्वार्टर	=	१ हेडरवेट	=	५०·८०२ ,,

भूमिका



यह बात निर्विवाद है कि सत्य किसीसे छिपाये नहीं छिप सकता। अन्तिम निर्णय भी वही होता है, जो सत्य रहता है। सारांश-सत्यकी सदा विजय होती है। "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" इस उक्तिके अनुसार सत्यको कहीं किसी प्रकारका भय भी नहीं रहता। यही उक्ति हमारे आयुर्वेदके लिये चरितार्थ हो रही है। चाहे कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करें, अन्तमें उसे मानना ही पड़ेगा कि आयुर्वेद सिद्धान्त ध्रुव एवं सत्य है, यूरोप आदि शीत कटिबन्ध निवासियोंके आहार विहारकी ओर दृष्टि रखकर अद्यावधि जितनी एलोपैथिक आदि औषधियाँ बनी हैं, वे उनके लिये चाहे हितकारी हों, परन्तु हमारे महर्षियोंका यह कथन पूर्ण सत्य है कि :—

"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।"

अर्थात् जो प्राणी जहाँ जन्मा है, उसके लिये उसी देशके औषधि एवं आहार-विहार हितकारी होते हैं। अर्थात् भारतीय आर्योंके लिये भारतीय औषधि अन्न और विहार ही हितकारी हैं। यही युक्ति सिद्धान्त सूत्रके तात्पर्यार्थ है। इसी सिद्धान्तके अनुसार भगवान् स्वयंभूने आर्योंके कल्याणार्थ वेदोंके अनेक सूक्तोंमें आयुर्वेदोपदेशका विवेचन किया है कि, "किस प्रकार प्राणिमात्र नाना महौषधियोंसे आयु और आरोग्यका रक्षणकर दीर्घायु प्राप्त कर सकता है, एवं यक्ष्मादि भयंकर रोगोंसे छुटकारा पा सकता है।" किन्तु वेद या वेदवाणी, सब ही के लिये सुलभ नहीं है। सूत्ररूपसे कहे हुए इन गूढ़ सूत्रों तथा मंत्रोंके गम्भीर अर्थको यथावत् जान लेना भावी अल्पज्ञ सन्तानोंके लिये टेडी खीर है, इस भावनासे प्रेरित हो, सम्पूर्ण जगत्के कल्याणेच्छुक आत्रेय, भारद्वाज, काश्यप, पाराशर, सुश्रुतादि महर्षियोंने इन वेद सूक्तोंके विस्तृत व्याख्यान रूप आयुर्वेदिक संहिताग्रन्थोंकी रचनाकी थी। इनमेंसे कतिपय कालवशात् लुप्तप्रायः हो गये हैं। वर्तमान कालमें केवल अत्रिसंहिता, भेलसंहिता, काश्यप संहिता, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहितादि थोड़ेसे संहिता ग्रन्थ विद्यमान हैं।

वेदोंकी तरह इन संहिताओंके भी अर्थगाम्भीर्य एवं मनुष्योंके उत्तरोत्तर वलबुद्धिके ह्रासका अनुभवकर वाग्भट्ट, वृन्द, वंगसेन, चक्रपाणि, गयदास, शार्ङ्गधर, विजयरक्षित, श्री कण्ठदत्त, हेमाद्रि, चन्द्रनन्दन, अरुणदत्त, डल्हण भावमिश्रादि अनेक आचार्योंने इन संहिताओंपर व्याख्याये व स्वतन्त्र ग्रन्थ रचनाएं की हैं। इन धान्वन्तर आत्रेय साम्प्रदायिक संहिता ग्रन्थोंके साथ-साथ भगवान् शंकरके सिद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थोंका भी अवतार हुआ। धान्वन्तरात्रेय साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें केवल वनौषधियों द्वारा जैसे चिकित्सा

वर्णन है, वैसे ही सिद्धरसार्णव, काकचण्डीश्वर; रसरत्नाकरादि सिद्धसाम्प्रदायिक ग्रन्थोंकी चिकित्सामें पारदादि, रसोपरस स्वर्णादि धातुपधातु हीरकादि मणि आदिका महत्व विशेष है। सारांश यह है कि उपर्युक्त सभी ग्रन्थ संस्कृतमें अपने-अपने विषयोंका वर्णन करने वाले हैं। धान्वन्तर साम्प्रदायिक शल्यचिकित्सा (Surgery) आत्रेय साम्प्रदायिक कायचिकित्सा (Medicines) और सिद्ध साम्प्रदायिक रसायन शास्त्र(Chemistry) के पथप्रदर्शक रहते हुए भी वे महात्मागण पारस्परिक हस्तक्षेप करने वाले नहीं थे और न वर्तमानकी तरह वे एक दूसरेको देख कुढ़ने चिढ़ने वाले ही थे, अपितु सबका परस्परमें बड़ा आदर भाव था। अपने शास्त्रके अधिकार की बात न रहनेपर वे स्पष्ट कहते थे; कि यह इस शास्त्रका विषय नहीं किन्तु अमुक शास्त्रका विषय है। उदाहरणार्थ-शस्त्रक्रिया साध्य विषयका पूरा वर्णन करनेके बाद औषधि विषयके प्रारम्भमें ही महर्षि सुश्रुताचार्य कहते हैं, कि:-"पराधिकारे न विस्तरोक्ति अर्थात् यह कायचिकित्सा शास्त्र का विषय है, अतः मैं यहां विस्तार नहीं करना चाहता। इसी प्रकार चरकाचार्यने भी अपने संहिता ग्रन्थमें केवल औषधि साध्य बातको ही कहा है। शस्त्रक्रियासाध्य रोगके विषयमें स्पष्ट कह दिया है कि; "अत्र धान्वन्तराणामेवाधिकारः" अर्थात् इस शस्त्रक्रियाके विषयमें धन्वन्तरि संहिताके अनुयायियोंका ही अधिकार है। यह इस शास्त्रका विषय नहीं है।

किन्तु आगे चलकर इन तीनों सम्प्रदायोंकी चमत्कारिक चिकित्सा प्रणालियोंकी उपयुक्तताके अनुभव करने वाले कतिपय दीर्घदर्शी आचार्योंने सबका समन्वय एक ही ग्रन्थमें रहना अच्छा समझा और वैसा ही कर भी डाला। उदाहरणार्थ चक्रदत्त, वंगसेन, शार्ङ्गधर संहिता, भावप्रकाश, योगचिन्तामणि, योगरत्नाकर आदि ऐसे समन्वयात्मक अनेक ग्रन्थ आज हम सब के समक्ष विद्यमान हैं। इसी प्रकार अल्प संस्कृतज्ञों एवं केवल हिन्दी जानने वालोंके लिये इन सब ग्रन्थोंकी भाषाटीकाएं भी बनी और छपी हैं। इतना ही नहीं कतिपय आधुनिक वैद्य महाशयोंने केवल सरल हिन्दीमें संग्रह तैयार किये हैं, जो छपकर बिक रहे हैं। उदाहरणार्थ चिकित्सा चन्द्रोदय, रस हजारा, आयुर्वेद प्रकाश आदि। "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी संग्रह कोटिमें आता है तथापि यह उपर्युक्त सब ही संग्रह ग्रन्थोंमें अपनी कुछ विशेषता रखता है। अतः इस विषयमें कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।

आज तक कई छोटे बड़े संग्रह मेरे देखनेमें आये हैं। वैद्यक विषयकी कई बातें ऐसी हैं, जिनका एक ही ग्रन्थमें संगृहीत रहना नितान्त आवश्यक है। परन्तु ऐसा देखनेमें नहीं आया। आवश्यक बातें दो चार एकमें हैं तो एक दो दूसरेमें ओर इसी प्रकार कुछ बातें किसी और संग्रहमें है। ऐसी अवस्थामें

साधकको एक ही जगह सभी बातें न मिलनेसे कई संग्रहोंको देखनेकी झंझट रहती है। कई बड़े-बड़े संग्रह होनेपर भी उनमें उक्त आवश्यक बातों का नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्थामें ऐसे संग्रह ग्रन्थकी नितान्त आवश्यकता थी, जो न बहुत बड़ा हो और न नितान्त छोटा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी न हो जिसमें वैद्यक विषयकी महत्वकी बात छूट जाय। यदि सच कहा जाय तो इस बड़ी भारी कमी की पूर्ति कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा (अजमेर) द्वारा प्रकाशित सरल हिन्दी के "रस-तन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" ने की है। यह वस्तुतः परम्परा प्राप्त दीर्घ-काल तक अनुभव की हुई वैद्यक विद्याका निचोड़ है। सारांश यह है कि इसके विद्वान् अनुभवी लेखक ने—

(१) आयुर्वेदीय प्रयोग विधानमें चिकित्सोपयोगी सभी महत्वकी बातें सरल भाषामें स्पष्ट समझाई हैं।

(२) आवश्यक सूचना प्रकरण बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि रोगी, रोग औषधि और आहार-विहारादि विषयक सभी उपयुक्त सूचनाएं एक ही स्थानमें दे दी गई है।

(३) परिभाषा—प्रकरणमें औषधियोंके बनानेकी विधि, तोल, नाप, पुटविधि, यन्त्रोंका वर्णन और उनके चित्र इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई है।

(४) शोधन-प्रकरणमें धातु-उपधातु विष आदिकी शोधन विधि वही दी है जो सरल और अनुभूत है।

(५) भस्म प्रकरणमें कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की रसायनशालामें जिस विधिसे भस्में बनाई जाती हैं, जिससे मनुष्योंका निश्चित उपकार हो रहा है, रोगी रोग मुक्त होते हैं, जो शतशोऽनुभूत हैं, उन्हें दिल खोलकर सरल भाषामें लिख दिया गया है। इतना ही नहीं, उनका गुण विवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा है।

(३) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज-चन्द्रोदयादि बनानेकी सरल अनुभूत विधियां जैसी इस संग्रहमें है, वैसी किसी भी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषा ग्रन्थोंमें नहीं है।

(७) पर्पटी, खरलीय रसायन अर्थात् सभी प्रकारके अनुभूत एवं प्रभूत रस, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव-अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, अञ्जन, लेप, मलहम आदि सभी प्रकरणोंके आदिमें महत्वकी सूचना और औषधि विधि आदि का वर्णन किया गया है। विशेषता यह है कि, व्यर्थ आडम्बर न कर वे ही प्रयोग दिये हैं जो अपने अनुभूत है। प्रत्येक प्रयोगके साथ मूल ग्रन्थ जिससे प्रयोग लिखा गया है या जिस सज्जनका अनुभूत है, उसका नाम तक लिख दिया है।

(८) अनुक्रमणिका भी दो प्रकारसे दी है यथा–रोगानुसार और औषधों के नामानुसार। रोगानुसार औषध सूचीमें विशेषता यह है कि उपद्रव भेद और वातादि दोषभेदसे औषधि भेद दिखाया गया है।

इस ग्रन्थका प्रथम संस्करण छप चुका है और अपनी अतीव उपयुक्तता के कारण हाथों-हाथ बिक भी चुका है। यह ग्रन्थ छोटा होनेपर भी इसमें जितने विषयोंका समावेश किया गया है उन सभीको वैद्यक व्यवसायियोंने नितान्त उपयुक्त समझा और उनसे लाभ भी उठाया है। मैंने भी इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करणके कई फलदायी प्रयोगोंको बनाकर अनुभव किया तो मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ और मेरी इच्छा हुई कि यदि इसी प्रकारका विवेचन कर जिन-जिन विषयोंका समावेश इसमें नहीं हुआ है उन्हें भी स्थान दिया जाय, तो सोनेमें सुगन्धि जो जाय। मैंने यह सूचना इस ग्रन्थके मूल लेखक श्रद्धेय स्वामीजो महाराज श्री कृष्णानन्दजी को दी। मेरी सूचनाका आदर करते हुए स्वामीजीने लिखा कि अगले संस्करणके समयमें इसका ध्यान अवश्य रखूंगा। सौभाग्यकी बात बात है कि शुभावसर शीघ्र ही प्राप्त हो गया।

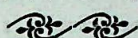
प्रस्तुत ग्रन्थ "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" का संशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण है। अनेक अवशिष्ट बातोंके सांगोपांग विवेचनका समावेश किये जानेसे अब यह ग्रन्थ प्रथमावृत्तिसे लगभग चौगुना हो गया है। सरल हिन्दी भाषामें प्रायः सभी बातें भली भांति समझाकर लिख दी गई है। इतना होनेपर भी मूल्यमें विशेष वृद्धि नहीं की गई। इस एक ही पुस्तकके पास रहनेसे वैद्योंको इधर-उधर भटकने या अनेक पुस्तकोंको रखने का झंझट नहीं करना पड़ेगा। यह ग्रन्थ घर प्रवासमें लाभ देने वाला हो गया है। इस एक ही ग्रन्थके सहारेसे वैद्य अपना काम भली-भांतिकर सकता है। सारांश, चिकित्सोपयोगी ऐसी कोई बात नहीं छूटी जो इस ग्रन्थमें संग्रहीत न हुई हो। प्रत्येक वैद्यको चाहिये कि, वे इस ग्रन्थका समुचित आदर करे और लाभ उठावे। इतना ही नहीं, सर्व साधारणके लिये भी यह ग्रन्थ बड़े कामकी चीज है, इसलिये मैं तो कहूँगा कि इसकी एक-एक प्रति प्रत्येक घरमें रहनी चाहिये।

लेखकके निवेदनमें स्पष्ट है कि इस ग्रन्थके प्रकाशक–कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा सब काम केवल प्राणि मात्रपर दयाकी दृष्टिसे हो रहे हैं। उनकी चिकित्सा दीन दुखियोंके लिये सदैव धर्मार्थ रहती रही है। मैं आशा करता हूँ कि सभी सज्जन इस भवनके प्रत्येक कार्यमें तन, मन और धनसे सदैव सहायक रहेंगे।

नागपुर
१-६-१९३८ ई.

श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी

❋ कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला ❋



कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाके ३१ पुष्प आज तक प्रकाशित हुए हैं। कुछ मुख्य ग्रन्थोंका परिचय भी अलगसे दिया हुआ है। इस "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" ग्रन्थकी विशेषताएं निम्न प्रकार हैं—

१—पुरातन आयुर्वेदीय योग, बनावट (निर्माण) एवं उपयोगोंको सरलतासे अपने अनुभवके आधार पर प्रकट करना।

२—चिकित्साक्षेत्रमें आधुनिक पाश्चिमात्य विज्ञानके साथ-साथ भारतीय पुरातन चिकित्सा विज्ञानको समन्वयपूर्वक प्रत्यक्ष सामने रखना।

३—'रोगकी तहमें जाकर खोज करना तथा औषधिके बलाबलका विचार इस ढंगसे सामने रखना कि सामान्यज्ञान रखने वाला मनुष्य भी उसे समझ सके एवं उपयोगमें ला सके।

४—गत ९ वर्षोंमें संस्थाने रसशास्त्र अन्वेषण विषयक कार्य भी शुरू किया है। संस्कारितपारदयुक्त औषधियां भी बनाई हैं, उनका दिग्दर्शन यहाँ से निकलने वाले "स्वास्थ्य" मासिकमें आता ही है। उसका विशेष विवरण "रसतत्व विवेचन" नामक पुस्तकमें हुआ है। इसके पहिले रसशास्त्र विषयक पुस्तकें यहांसे प्रकाशित हुई है। उनके नाम-(१)रसहृदयतन्त्र (२) रसोपनिषद् (प्रथम खण्ड) तथा (३) रसशास्त्र प्रवेशिका है।

५—रोग निदान व चिकित्सान्तर्गत सिद्ध परीक्षा पद्धति (प्रथम खण्ड) में रोग निदानका बड़े विस्तारसे प्रश्न परीक्षा, रोगकी सामान्यदशा तथा प्रकृतिका भी सुन्दर वर्णन किया है, साथ-साथ शारीरिक संस्थानोंके अनुसार विविध परीक्षाएं नूतन शैलीसे सरल भाषामें लिखी गई हैं। "चिकित्सातत्व प्रदीप" २ खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है, इसी ग्रन्थमालाके "नेत्ररोग विज्ञान" नामक ग्रन्थमें नेत्र रोग व चिकित्साका पहिली बार हिन्दी भाषामें इतना सुविशाल परिचय दिया गया है जो प्रत्येक क्षेत्रके चिकित्सकके लिये पठनीय व मननीय है। "औषधगुणधर्मविवेचन" नामक ग्रन्थ हिन्दी पाठकोंके लिये अत्युपयोगी है। इसके साथ-साथ वनौषधिज्ञान सम्बन्धी 'गांवोमें औषधरत्न' तीन भागोंमें प्रकाशित किया गया है, जिनमें ३५६ वनौषधियोंके पांचों ही अङ्गोंका सुविस्तृत मेटेरिया मेडिकात्मक नूतन शैलीसे विवेचन किया गया है। विविध भाषाओंमें पर्याय शब्द भी दिये गये है।

भारतके हर क्षेत्रमें ज्ञानका अगाध भण्डार भरा है, उसमेंसे कुछ हिस्सा लेकर अगर हम अपने अनुभव प्रत्यक्ष प्रकट करें तो बहुत कार्य हो सकता है। ज्ञान वही उपयुक्त है जो अनुभवमें लाया जाये, औषधि वही श्रेष्ठ है कि जो रोगका निवारण कर सके "तदेव युक्त भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।"

आधुनिक आयुर्वेद मनीषी एवं विद्वज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे अपने अनु-

भव ज्ञानके द्वारा हमारे कार्यमें सहयोग करें। यह जरुरी है कि जहां पाश्चिमात्य विज्ञान अत्युच्च शिखरपर स्थिर है, वहां आयुर्वेदको उसके मुकाबलेमें उठकर खड़ा होना है। कारण वे पूर्त्तियां आयुर्वेदसे ही हल हो सकती हैं।

न त्वहं कामये राज्यं स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥

आधार ग्रन्थोंकी संकेत सूची

संस्कृत ग्रन्थ—

		र० का०	रसकामधेनु।
अनु० त०	अनुपानतरंगिणी	र० चं०	रसचण्डांशु।
अ० हृ०	अष्टाङ्गहृदय।	र० चि०	रसचिन्तामणि।
आ० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	र० त०	रसतरङ्गिणी।
ग० नि०	गदनिग्रह	र०यो०सा०	रसयोगसागर।
च० सं०	चरकसंहिता।	र० र०	रसरत्नाकर।
च० द०	चक्रदत्त।	र० र० स०	रसरत्नसमुच्चय।
नि० र०	निघण्टूरत्नाकर	र० रा० सु०	रस राजसुन्दर।
बृ० नि० र०	बृहद् ,, ,,	र० सा०	रसायनसार।
व० रा०	वसवराजीयम्।	र०सा० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह।
बृ० यो० त०	बृहद् योगतरङ्गिणी।	वृ० मा०	वृन्दमाधव।
बं० से०	वंगसेन।	वै० जी०	वै०जीवनम्।
भा० प्र०	भाव प्रकाश।	शा० सं०	शार्ङ्गधर संहिता।
भा०भैं०र०	भारत भैषज्यरत्नाकर।	सि०भे०म०	सिद्धभेषजमणिमाला।
मा० नि०	माधवनिदान	सि०भै०मं०	सिद्धभैषज्यमञ्जूषा।
भैं० र०	भैषज्यरत्नावली।	सु० सं०	सुश्रुतसंहिता।
यो० र०	योग रत्नाकर।	हा० सं०	हारीतसंहिता।

हिन्दी ग्रन्थ—

		चा० चि०	चारु चिकित्सा।
अ०यो०मा०	अनुभूत योगमाला।	चि० चं०	चिकित्सा चन्द्रोदय।
इ० गु०	इलाजुलगुर्बा।	ति० अ०	तिब्बे अकबर।
खू० चि०	खूबचन्द चिकित्सा	धन्वन्तरि	धन्वन्तरि (मासिक)
बा० चि०	बालचिकित्सा	स्वा० र०	स्वास्थ्य रक्षा।

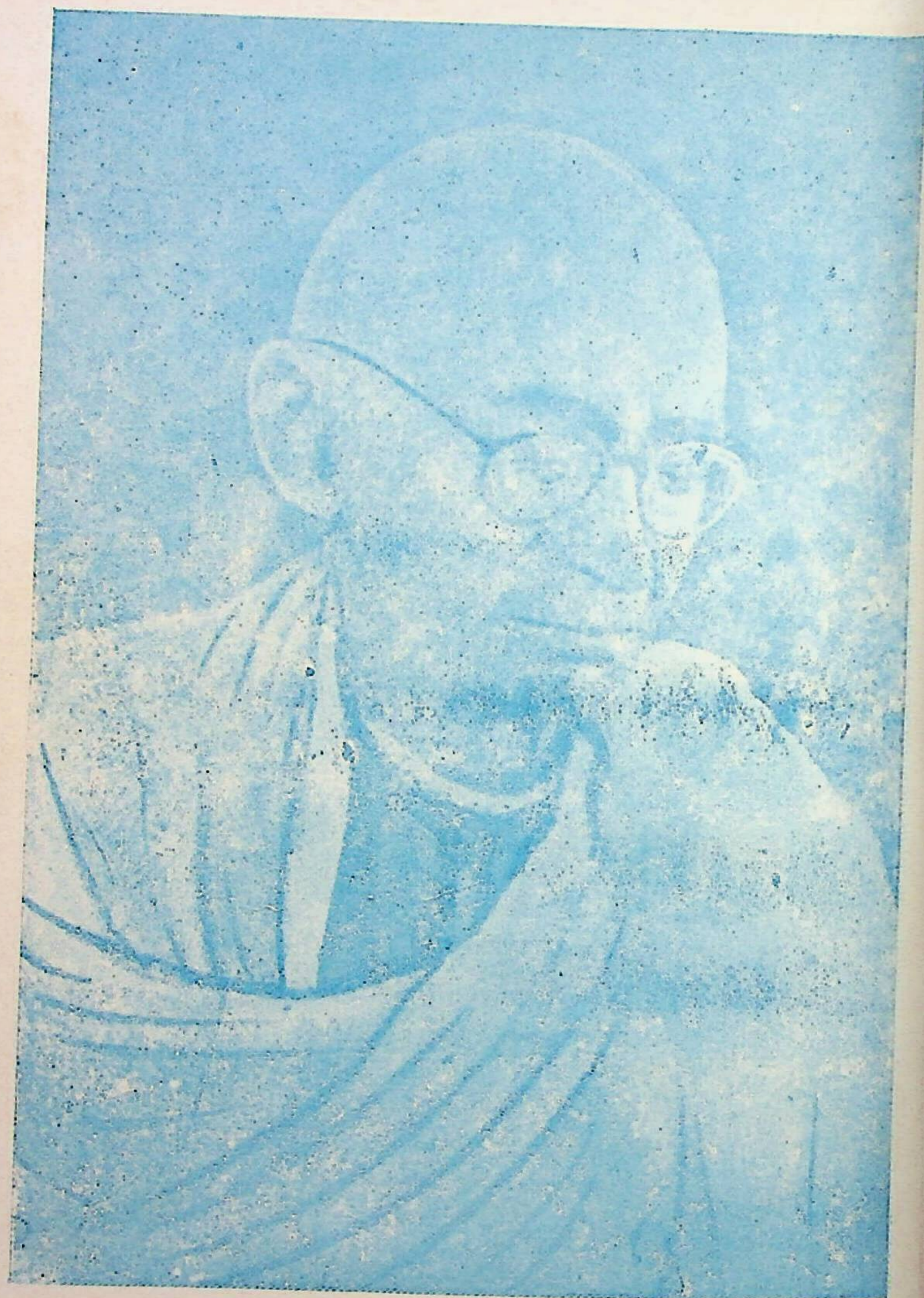
गुजराती ग्रन्थ —

अ० प्र०	अनुभूत प्रयोगावली।	रसा०सा०सं	रसायन सार संग्रह।
आ० औ०	आर्य-औषध	र० तं०	रसोद्धारतन्त्र।
आ० भि०	आर्यभिषक्।	वै० चि० सा०	वैद्यक चिकित्सासार।
आ०नि०मा०	आयुर्वेदनिबन्धमाला	वै० स० वि०	वैद्यक सम्बन्धी विचारो

मराठी ग्रन्थ —

		आ० क०	आयुर्वेदकलानिधि।
औ०गु०ध०शा०	औषधगुणधर्म	वै० सा० सं०	वैद्यक सार संग्रह।

स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज, तपः पूतः, ब्रह्मनिष्ठ आयुर्वेद साहित्योद्धारक—
संस्थापक—कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, कालेड़ा-कृष्णगोपाल



जन्म—दि० २ जुलाई १८८९ भगवत्लीन—दि० ३०-१२-१९७४

कृ. गो. आयु. ध. औष. के संस्थापनार्थं प्रमुख प्रेरक एवं आश्रयदाता, आयुर्वेद रुग्णसेवा-परायण,
प्रातः स्मरणीय आदर्श पुरुष स्वर्गीय ठाकुर श्री नाथूसिंहजी साहिब



जन्म—मार्गशीर्ष १५ सं. १९५२ स्वर्गवास—ज्येष्ठ शुक्ल १२ सं. २०१७

अनुक्रमणिका

आवश्यक सूचना

आयुर्वेदीय परिभाषा

द्रव्य शोधन प्रकरण

भस्म प्रकरण

कूपीपक्व प्रकरण

पर्पटी प्रकरण

खरलीय रसायन

चूर्ण प्रकरण

कषाय प्रकरण

आसवादि प्रकरण

अर्क प्रकरण

घृत तैल प्रकरण

अञ्जन प्रकरण

लेप-मलहम-प्रकरण

❊ अंगीभूत प्रकाशन ❊

नोट—उक्त तीनों संग्रहोंके योग इसी ग्रन्थ 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के ही अंग हैं जो पृथक् पृथक् छोटी पुस्तकों के रूपमें पाठकों की सुविधा के लिये छापे गये हैं।





❋ श्री धन्वन्तरये नमः ❋

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

(प्रथम खण्ड)

आयुर्वेदीय-प्रयोग-विधान ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वंतरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

शास्त्राचार्योंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे हैं । इन सबका मुख्य साधन शरीर है । इसलिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये । इसी हेतुसे धन्वन्तरि, भरद्वाज, अत्रि इत्यादि परोपकारी मुनियों द्वारा अथर्ववेदके उपवेदरूप आयुर्वेदका आविर्भाव हुआ है । आयुर्वेदकी व्याख्या प्राचीन आचार्योंने निम्न वचनसे की है-–

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः आयुर्वेदः स उच्यते ॥

जिसमें आयुके हित (पथ्य आहार-विहार) अहित (हानिकर आहार विहार), रोगका निदान और व्याधियोंकी चिकित्सा आदिका वर्णन है, उसे विद्वान् मनुष्य आयुर्वेद कहते हैं ।

इस आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्यका रक्षण करना और गौण प्रयोजन रोगाक्रान्त रोगीका रोग दूर करके आरोग्य प्रदान करना है । रोग दूर करनेके लिये तीन प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता है— (१) हेतु ज्ञान (रोगके भिन्न-भिन्न कारणोंका ज्ञान) । (२) लिंगज्ञान (रोगका लक्षण) । (३) चिकित्सा ज्ञान । इनमेंसे पहिले और दूसरे विभागको इस ग्रन्थमें स्थान नहीं दिया । चिकित्सामें उपयोगी सिद्ध प्रयोग, पारद प्रयोग, धातुओं की भस्म विधि आदि विषय यहां विस्तारपूर्वक लिखे हैं ।

चिकित्साके तीन प्रकार हैं—मंत्र-चिकित्सा, औषधि-चिकित्सा, और शस्त्र-चिकित्सा । मंत्र-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा इस ग्रन्थका विषय नहीं है । यहाँ केवल औषधि-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ विचार किया है । शास्त्राचार्योंने इन औषधियोंके मुख्य दो विभाग किये हैं - (१) सेन्द्रिय (प्राणिजन्य और वनौषधि) (२) निरिन्द्रिय (खनिज औषधि) । पुनः इसका वर्गीकरण करके कर्पूरादिवर्ग, वटादिवर्ग, गुडूच्यादिवर्ग ऐसे अनेक विभाग किये हैं । इन औषधियोंके स्वरूपज्ञान और रस, वीर्य, विपाक,

प्रभाव आदि गुणधर्म ज्ञानको जाननेके लिये आयुर्वेदके प्रकरणरूप अनेक निघण्टु बने हैं।

दूसरी रीतिसे औषधि उपयोगके दो विभाग किये हैं-(१) सिद्ध औषधि (अनेक औषधियाँ मिला करके अथवा एक ही औषधि अमुक संस्कारसे सिद्ध की गई हो, वह), (२) असिद्ध औषधि (अलग-अलग अपक्व औषधि) इनमेंसे सिद्ध औषधियोंके कृति और जाति भेदसे निम्न अनुसार चार विभाग होते हैं। इनका विवेचन पृथक्-पृथक् ४ शास्त्रोंमें किया है—

(१) कल्प शास्त्र—एक अथवा अनेक औषधियोंका मिश्रण निश्चित विधिसे तैयार करके सेवन करानेसे अमुक विशेष फलकी प्राप्ति होती है। यह कल्प शास्त्रके ग्रन्थोंमें दिखाया है।

(२) वनस्पति शास्त्र—इन ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न वानस्पत्यादि औषधियोंका विवेचन किया है।

(३) रस शास्त्र—पारद आदि खनिज औषधियोंको अन्य औषधियोंके संस्कार देनेसे वे शरीरमें नाना प्रकारके गुण उत्पन्न करती हैं। यह वर्णन इन ग्रन्थोंमें किया है।

(४) रसायन शास्त्र—दो अथवा अधिक औषधि मिलाकर, मूल वस्तु से भिन्न गुण अथवा अधिक गुण वाली औषधि तैयार होती है। जैसे पारा, गन्धक और सोना मिलकर अधिक गुण वाला पूर्णचन्दोदय रस एवं पारा और अन्य क्षार मिलकर भिन्न गुणवाला रसकपूर तैयार होता है। यह सब रसायन शास्त्रके विषय हैं।

इनमेंसे वनौषधि, रस और रसायनशास्त्रके प्रयोगोंमेंसे अनेक महत्वके प्रयोग, जिनका अनुभव कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयमें और इतर परिचित चिकित्सकोंद्वारा अनेक वर्षोंसे हो रहा है, उन प्रयोगोंको इस ग्रन्थमें स्थान दिया है। अतः यह एक सिद्ध प्रयोग संग्रह ग्रन्थ है।

सिद्ध प्रयोग देना यह इस ग्रन्थका मुख्य विषय है। अनेक धातु-उपधातुओंकी भस्म, विविध पारद कल्प, विविध वनौषधियोंके मिश्रणसे बनाई हुई गुटिका आदि औषधियां, क्षार, घृत-तैलादि द्रव्योंको नाना प्रकारसे औषधोंके संस्कार देकर सिद्ध की हुई औषधियां इत्यादि सिद्ध प्रयोग है। इन प्रयोगोंमेंसे अनेकोंको अनेक औषधियोंके मिश्रणसे तैयार किया जाता है। इन औषधि-द्रव्योंमें अनेक प्रकारके गुणोंके परमाणु मिश्रित रहते हैं। भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें भिन्न-भिन्न गुणका प्राधान्य रहता है। इस हेतुसे कौन-कौन द्रव्य परस्पर सहायक हैं और कौन-कौन विरोधी हैं, यह बिना शास्त्राभ्यासके नहीं जाना जाता। विरोधी औषधियोंका मिश्रण बनानेपर किसी समय तुरन्त और किसी समय भविष्यमें हानि पहुँचती है।

विरोधी औषधियों(एण्टागोनिस्ट्स-Antagonists) की क्रिया परस्पर

एक दूसरेके विपरीत होती है। इनमें कितनी ही वीर्यविरोधी और कितनी ही संयोग विरोधी हैं। उदाहरणार्थ दूध और दही, शराब और कुचिला, अफीम और सूचीबूटी, कुचिला और कपूर, इनका वीर्य परस्पर विरुद्ध होनेसे इनका मिश्रण नहीं कराया जाता है। इस तरह अफीम और सूचीबूटी (Atropa Belladonna), गारीकून (Polyporus Officinalis) और सूचीबूटी इनकी क्रिया परस्पर विरुद्ध होनेसे अफीम और गारीकूनके विष-प्रकोपमें सूचीबूटी तथा सूचीबूटीके विष-प्रकोपमें अफीम हितावह होती है। इस तरह धतूरा और पद्मकाष्ठकी क्रिया विरुद्ध है। धतूरेका धूम्रपान करनेपर उबाक होती है और कफ गिरता है, इसके विपरीत नये पद्मकाष्ठका फाण्ट या चूर्ण लेनेपर उबाक और वमन बन्द हो जाती है। अतः ये सब परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकारकी विरोधी औषधियोंके मिश्रणसे लाभके स्थानपर हानि पहुँच जानेकी संभावना रहती है। अतः मन घड़न्त रीतिसे औषधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार नहीं किये जाते।

नूतन प्रयोग निर्माण विधि—नये प्रयोग तैयार करनेके लिये निम्न प्रकारकी औषधियोंको मिलाना चाहिये—

१—रोगनाशक एक अथवा अधिक मुख्य औषधियां।
२—रोगके उपद्रवोंको शमन करने वाली औषधियां।
३—मुख्य औषधिको सहायता पहुँचाने वाली औषधियां।
४—मुख्य और सहायक औषधियोंके दोषको शांत करने वाली औषधियां।

जैसे ज्वर उतारनेके लिये ज्वरकेसरी वटी दी जाती है। इस ज्वरकेसरीमें पारद, गन्धक, बच्छनाभ, त्रिकटु, त्रिफला और जमालगोटा है। इन सब औषधियोंको यथा विधि मिलाकर, फिर भांगरेके रसकी भावना देकर तैयार किया जाता है। इनमें उष्णता कम करके ज्वरको दूर करने वाली मुख्य औषधि बच्छनाभ है। बच्छनाभसे पसीना आता है, मूत्र साफ होता है, नाड़ी और हृदयकी बढी हुई गति मन्द हो जाती है, वेदना शांत होती है और ज्वरकी निवृत्ति होती है।

किन्तु एक मात्र बच्छनाभका ही उपयोग किया जाय तो व्याधिसे मुक्ति नहीं मिल सकती। कारण, ज्वर होनेमें मुख्य हेतु सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति है। जब तक सेन्द्रिय विषको नष्ट न किया जाय और सेन्द्रिय विष जिस कारणसे उत्पन्न हुआ है, उस परम्परा कारणको भी दूर नहीं हटाया जाय, तब तक सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती रहेगी। फिर सेन्द्रिय विषको दूर करनेके लिये रक्तमें उष्णता बढ़कर ज्वरका वेग उत्पन्न होता ही रहेगा। अतः इस मूल कारणको भी साथ-साथ नष्टकर देना चाहिये। इस सेन्द्रिय विषका उत्पादक कारण क्या है? इस बातका शास्त्रानुरूप विचार करनेपर अवगत होता है कि आमाशय रस दूषित होकर (आम बनकर) के नाड़ियों

में प्रविष्ट होजाता है। जिससे प्रस्वेद द्वारा विषका निकलना रुक जाता है। यह विष रक्तमें रहे हुये अनेक रक्ताणुओंको दूषित बना देता है, और इसी हेतुसे हानिकर सूक्ष्म कीटाणुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्त्र मलसे पूर्ण हो जाते हैं, अतः वे अपना कार्य करनेमें असमर्थ होते हैं फिर कोष्ठाग्नि स्वस्थानसे बाहर निकल, दोषोंको जलानेके लिये रक्तमें उष्णता उत्पन्न करती है।

ज्वरको शमन करनेके लिये इन सब कारणोंको (जन्तु-दूषित आम और मलावरोधको) दूर करना चाहिये। किन्तु ये सब कार्य एक मात्र बच्छनाभ से हो नहीं हो सकते। इसलिये बच्छनाभके साथ साथ सहायक औषधियां मिलाई हैं। बच्छनाभको सहायता पहुँचाना, जन्तुओंका नाश करना और रक्तके दूषित अणुओंको शुद्ध करना, इन कार्योंके लिये पारद मिलाया जाता है। पारद जन्तुघ्न, कोष्ठस्थ दोषनाशक और योगवाही (गुणवर्द्धक) है। परन्तु, बिना गन्धक मिलाये अन्य औषधियोंके साथ पारद नहीं मिल सकता अतः गन्धक भी मिलाया है। गन्धक पारदको मूर्छित बनाकर पारदकी चंचलता दूर करता है। गन्धकमें दुर्गन्धनाशक, रक्तशोधक जन्तुघ्न और पाचन गुण भी हैं। अतः नाड़ियोंमें रहे हुए दोषका संशोधन, कीटाणुओंका नाश और पाचन-क्रियाको सबल बनाना, इन कार्योमें सहायता मिलती है। तदपि बच्छनाभ और पारद गन्धककी कज्जली मिलानेसे भी मलावरोध दूर नहीं होता।

अनेक प्रकारके ज्वर बहुधा मलावरोध होनेपर ही होते हैं और वे कब्ज दूर होनेसे दूर हो जाते हैं। अतः जमाल गोटेका मिश्रण किया। जमाल गोटा मलावरोधनाशक है। परन्तु इसमें वमन करानेका और आँतोंमें दाह उत्पन्न करनेका दोष है। इस हेतुसे भांगरेके रसकी भावना दी है और त्रिफला मिलाया है। भांगरेसे दाह और उबाकका शमन होता है तथा वातवाहिनियोंका क्षोभ दूर होता है एवं त्रिफलासे जमालगोटेकी तेजी कम होती है और दोषोंका पचन होता है।

इनके अतिरिक्त बच्छनाभ उष्णता कम करता है। परन्तु साथ-साथ हृदयकी गतिको कुछ शिथिल बनाता है। इस दोषको दबानेके लिये शास्त्राचार्योंने इस औषधिमें कज्जली और त्रिकटुकी योजना की है। पारद-गन्धक की कज्जली हृद्य है, और त्रिकटु भी हृद्य, उष्ण, किंचित् पसीना लाने वाला और दीपन-पाचन है।

इस तरह बने हुए प्रयोगमें बच्छनाभ मुख्य रोगनाशक औषधि है। जमालगोटा मल दोषको दूर करने वाली दूसरे नम्बरमें कही हुई उपद्रवनाशक औषधि है। पारद और गन्धक रक्तशोधक और गुणवर्द्धक (योगवाही) होनेसे दूसरे और तीसरे प्रकारकी सहायक औषधियां है। त्रिकटु, हृद्य दोषशामक और अग्निदीपक होनेसे उपद्रवनाशक और दोष नाशक

औषधि है। ज्वरमें बहुधा अग्निमान्द्य हो जाता है। उसे दूर करने का काम त्रिकटु करता है और बल्य होनेसे बच्छनाभके दोष भी शमन करता है। अतः यह दूसरे और चौथे प्रकारके लिखे हुए कार्योंको करने वाली औषधि है। भांगरेका रस और त्रिफला, दोष शामक चतुर्थ विभागकी औषधियां हैं।

इस उदाहरणके अनुसार चाहे जितने नये प्रयोग बना सकते हैं। शास्त्र में ६४-६४ औषधियोंके क्वाथ आदिका विधान किया है, उन सबमें यही नियम वर्तमान है। यद्यपि कई बार रोगनाशक अनेक मुख्य और गौण औषधियों एवं उपद्रव-शामक अनेक औषधियोंको ही मिलाया जाता है, चतुर्थ विभागकी औषधि मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती, तथापि मूल नियमका परिवर्तन नहीं होता।

शास्त्रमें रोग, उपद्रव, ऋतु, दूष्य, देश, काल, औषधि बल, अनल, प्रकृति आदिका पूर्ण विचार करके ही प्रयोग लिखे हैं, एवं अर्वाचीन विद्वान् भी इसी तरह प्रयोग तैयार करते हैं, परन्तु साधारण बोधवाले चिकित्सकों के लिये नूतन प्रयोगकी योजना करनेमें कठिनता रहती है। इस प्रतिबन्ध को दूर करनेके लिए यहां मुख्य नियम संक्षेपमें दर्शाये हैं।

जिन सिद्ध औषधियोंके प्रयोगको प्राचीन आचार्यों और विद्वानोंने शास्त्रविधि अनुसार तैयार किया है, वे सब निर्भयतापूर्वक उपयोगमें आ सकते हैं। तथापि किसी-किसी समय देश काल और रोगी-परिस्थितिके अनुसार तुरन्त लाभ होनेके लिये मात्रा और मिश्रणमें थोड़ा अन्तर किया जाता है। कदाच अन्तर न किया जाय तो भी नुकसानका भय नहीं है। किन्तु शास्त्रविधिको त्यागकर मन घडन्त रीतिसे अनेक औषधियोंका मिश्रण करके उपयोग किया जाय, तो विशेष जवाबदारी रहती है। क्वचित् ऐसी मनोकल्पित औषधिसे किसीको लाभ हो जाय, तो भी अनेकोंको हानि पहुँचायगी।

विशुद्ध औषधि परिचय—श्री वाग्भटाचार्यने लिखा है कि--

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।

नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् (अ. हृ. सू. स्था अ. १३-१६)

औषधि उसे कहना चाहिए जो व्याधिका शमन करे। एक रोगका शमन करके दूसरा रोग उत्पन्न करे, उसे अशुद्ध (अनुपयोगी) जाननी चाहिये। जो रोगका शमन करे और कुछ भी विकृति न करे, उसीको शुद्ध लाभदायक औषधि समझनी चाहिये।

इसी तरह औषधि प्रयोग तैयार करनेमें नवीन चिकित्सकोंको आपत्ति आती है। वह इन परीक्षित प्रयोगोंसे बहुत अंशमें दूर हो सकेगा ऐसी मेरी धारणा है। इसी हेतुसे अनुभूत संग्रहको प्रकाशित किया है। यदि अधिकारी वर्ग इस ग्रन्थसे कुछ लाभ उठावेंगे, तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूंगा।

आवश्यक सूचना

(औषधि सम्बन्धी सूचना)

(१) वनौषधि वर्षाकाल पीछे अथवा एक वर्ष हो जानेपर न्यून गुण युक्त हो जाती है। साधारण चूर्ण प्रायः दो मास पीछे और लवण, हींग और पारद युक्त छै मास अथवा अधिक समय पीछे न्यून गुणवाले हो जाते हैं, परन्तु कांचकी शीशीमें मजबूत बन्द रहनेसे गुण कुछ विशेष समय तक रह सकते हैं।

(२) गोली, अवलेह, शर्बत आदि एक वर्ष पश्चात् न्यून गुण वाले होते हैं। पाक एक माससे अधिक समय तक अच्छा नहीं रहता। सिद्ध तैल चार मास (बोतलोंमें रहे तो १ वर्ष) पश्चात् न्यून गुण वाला हो जाता है। सिद्ध घृत तैलकी अपेक्षा पुराना होनेपर भी (सम्हालपूर्वक) रखा जाय तो गुणयुक्त रहता है।

(३) आसव, अरिष्ट, कूपीपक्व रसायन और धातुओंकी भस्में जितनी पुरानी होती हैं, उतनी ही विशेष सौम्य होती हैं।

(४) गूगलवाली गुटिका दो, तीन वर्ष तक अच्छी रह सकती हैं, तदन्तर गुणका ह्रास होने लगता है।

(५) पीपल, धनियां और बायबिडंग एक वर्षका पुराना लेवें।

(६) नेत्र रोगकी औषधिमें घी पुराना और खानेके लिए नया लें, तथा बाहर लेप करनेके लिये घृतको धोकरके उपयोगमें लें।

(७) कफनाशक औषधिके साथ अनुपानरूपसे शहद पुराना और धातु पौष्टिक औषधिमें नया लें।

(८) गिलोय, कूड़ेकी छाल, अडूसा शतावरी, असगन्ध, पीयाबांसा सौंफ, काशीफल, प्रसारणी ये नव औषधियां ताजा लें। ताजा न मिले तो सूखी औषधि समान वजनसे लें।

(९) उपर्युक्त नव औषधियोंके अतिरिक्त अन्य औषधियोंको सूखीके बदले ताजी लेनी हो तो दुगुनी लेनी चाहिये।

(१०) बड़े वृक्षोंके मूल लेनेको लिखा हो, वहांपर वृक्षकी अन्तर छाल लें, परन्तु छोटे-छोटे वृक्षोंके मूल ही लें। सिर्फ लघु पंचमूलके बदलेमें पंचांग लेनेका रिवाज है।

(११) जहां कड़वे पटोल लिखे हों, वहांपर मात्र उसके पत्ते ही लिये जाते हैं।

(१२) यदि कोई औषधि समयपर न मिल सके, तो प्रतिनिधि रूपसे

समान गुणवाली दूसरी औषधि लेनी चाहिए। परन्तु प्रयोगमें जो मुख्य वस्तु हो, उसके बदलेमें प्रतिनिधि न लें। केवल गौण औषधिके स्थानमें प्रतिनिधि लें। जैसे आकके दूधके अभावमें आकके पत्तोंका रस, अजवायन न मिलनेपर अजमोद आदि। प्रतिनिधि विषयक विशेष वर्णन आगे परिभाषा प्रकरणमें लिखा जायगा।

(१३) क्वाथके लिये बरतन मिट्टीका लें और मुँह खुला रखकर क्वाथ करें, यह प्रचलित रीति है। मुँह ढककर मन्दाग्निसे क्वाथ किया जाय तो विशेष लाभ होता है। ऐसा नव्य विचारकोंका मत है। पात्र मिट्टीका न मिले तो पीतलका कलई किया हुआ लें।

(१४) तैल पकानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ ४-६ गुना बड़ा पात्र लेवें अन्यथा उफान आकर तैल बाहर निकल जायेगा। लोहेकी कढ़ाई में पकानेसे तैल काला हो जाता है।

(१५) एल्युमिनियमका बरतन कदापि औषधि-कार्यके लिये उपयोगमें न लें, वैसे ही खाने पीनेमें भी एल्युमिनियमका पात्र लेना अनुपयुक्त माना गया है। एल्युमिनियमके बरतनमें बने हुए भोजन और औषधिमें जहर मिश्रित हो जाता है। उसके सेवनसे पाचन क्रिया बिगड़ती है और रक्त विकृत होता है। एल्युमिनियमके पात्रमें यदि जल ४-८ घण्टे भरा रहे, तो वह भी दूषित हो जाता है।

(१६) जायफल, जावित्री, लोंग, सौंफ आदि सुगन्धित तैलीय द्रव्योंका चूर्ण आवश्यकतापर करें। पहिलेसे विशेष परिमाणमें कूटकर तैयार न रखें। तैलीय द्रव्य मिश्रित औषधियोंके चूर्णको कांचकी मजबूत डाटवाली शीशीमें रखना चाहिये। डाट रहित शीशीमेंसे अथवा टीनके डिब्बेमेंसे चूर्णका तैलांश थोड़े ही दिनोंमें निकल जाता है।

(१७) नमक और क्षार (नौसादर, सोरा आदि) मिश्रित औषधियां वर्षा ऋतुमें शीतल वायु लगनेसे गुणहीन हो जाती हैं। इसलिये ऐसे समय पर शीशीमेंसे आवश्यकता हो उतने परिमाणमें औषधिको सम्हालपूर्वक निकाल, शीशीको सत्वर बन्द कर देना चाहिये। टीनके डिब्बे आदि धातु-पात्रमें रखनेसे लवण और धातुका संयोग होकर औषधि दूषित हो जाती है।

(१८) घृत और तैलको कांच या चीनी मिट्टीके अमृतवानमें रखना चाहिये। टीनके डिब्बेमें जल्दी खराब हो जाते हैं। अमृतबानमेंसे भी घृतको अंगुलीयोंसे न निकालें। कलछी या चम्मचसे निकालना चाहिये। अन्यथा घृतमें दुर्गन्ध हो जाती है।

(१९) औषधिका उपयोग करनेसे पहिले रोगके निदान, औषधिके गुण, देश, काल (ऋतु) और प्रकृतिका विचार करना चाहिये। जैसे ताजा

गोदुग्ध पथ्य, तेजोवर्धक और तुरन्त बल बढ़ानेवाला है; ता भी ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, कफवाली खांसी, कृमि, विद्रधि, नवीन सुजाक और कुष्ठ आदि रोगोंमें हानिकर है। कफ प्रकृतिवालेके लिये हितकर औषधियां पित्त प्रकृतिवालेको समान रोग होनेपर भी हानि पहुँचाती हैं। एवं देश और काल भेदसे भी औषधि-योजनामें परिवर्तन किया जाता है। यदि उपरोक्त रोगोंमें दुग्ध देना आवश्यक हो, तो दूध गरम करते वक्त थोड़ा सोंठका चूर्ण डाल दें।

(२०) संखिया, हरताल, रसकपूर, दालचिकना, मैनसिल, बच्छनाभ, कुचिला और कनेर आदि जहरी औषधियोंकी तीक्ष्णता और मल दोषको दूर करके उपयोगमें लिया जाता है। ऐसी औषधियोंके शोधन करनेकी विधि शोधन प्रकरणमें लिखी है। और धातु, उपधातुएँ प्रायः भस्म करके ही प्रयोगमें ली जाती हैं।

(२१) हींगको घीमें भून करके उपयोगमें लेनी चाहिये।

(२२) फिटकरी और सोहागेको खानेकी औषधिमें मिलानेके लिये प्रायः फूला बना करके उपयोगमें लिया जाता है। क्वचित् दादकी औषधिमें सोहागा कच्चा भी मिलाते हैं, और पूयप्रमेहकी औषधिमें फिटकरी कच्ची ही मिलाई जाती है।

(२३) बच्छनाभ प्रधान औषधि बहुधा शीतांग ज्वर, मुद्दती ताप, विशूचिका और हृदयकी धड़कनमें नहीं देनी चाहिये। यदि आवश्यक हो, तो सम्हालपूर्वक बहुत कम मात्रामें दें। कारण, बच्छनाभ शरीरकी उष्णताको शीघ्र मूत्र और पसीना लाकर कम करता है और हृदयको कुछ शिथिल बनाता है। जहां ताप बढ़ा हुआ हो और ताप कम करना आवश्यक हो, वहांपर वत्सनाभयुक्त औषधि देनेसे स्वेद आकर ताप शनैः शनैः कम हो जाता है।

(२४) कुचिला नये तीक्ष्ण वातप्रकोपके समय हानि पहुँचाता है और पुरानी वातव्याधिमें अति हितकर है। मात्रा अधिक होनेपर वातवाहिनियां खिंचने लगती हैं।

(२५) पारद-मिश्रित औषधि सगर्भा स्त्री, दुर्बल, वृक्कशोथयुक्त पाण्डु और कण्ठमालके रोगीको कम अनुकूल रहती है। स्त्रियोंके गर्भाशय और योनिके रोगोंमें हितकर है। एवं बालकोंको पारद मिश्रित औषधियां तो अति ही अनुकूल रहती हैं।

(२६) सोमलवाली औषधियां घी या दूध पिलाकर देनी चाहिये। परन्तु न्युमोनिया, सन्निपात आदि रोगोंमें घृत दूध पिलाये बिना रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कितने ही विद्वानोंने शुक्रक्षयमें सोमल वाली औषधि हितकर

नहीं मानी। एवं सन्निपातमें पित्तप्रकोपसे प्रलाप होता हो, नेत्रलाल हो और बेहोशी आदि उपद्रवोंकी प्रतीति होती हो तो सोमल वाली औषधि न देवें।

न्यूमोनिया आदि कफप्रधान रोगोंमें सोमलयुक्त औषधि मल्लचन्द्रोदय, समीर-पन्नग आदि सत्वर लाभ पहुँचाते हैं। कफ-प्रधान रोगोंमें जहां सोमलभस्म व पुष्प देनेका निषेध है, वहांपर मल्लचन्द्रोदय या समीर-पन्नग वासास्वरस या चूर्णके साथ प्रायः दिया जाता है। शीतांग सन्निपातमें सोमलयुक्त औषध सत्वर फलप्रद है। जो ज्वर बार-बार स्वेद आकर उतर जाता है, वहां शारीरिक उष्णताका अति ह्रास न होनेके लिये मल्लमिश्रित औषध दी जाती है।

(२७) हरताल भस्म और हरताल मिश्रित औषधि ये सब उग्र होनेसे पित्त प्रधान कुष्ठ और पित्त प्रधान वातरक्तमें हानिकर हैं।

(२८) ताम्र भस्म मूत्रपिंडके शोथसे उत्पन्न हुए उदर रोगमें हानिकर है। कारण ताम्र भस्म उष्ण और पित्त विरेचक होनेसे मूत्रपिंडके कार्यमें प्रतिबन्ध करती है। जिससे मूत्रमें पित्त मिल जाता है और मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम हो जाती है। फिर उदरमें जलसंचय अधिक होने लगता है और शोथ बढ़ता जाता है।

(२९) सुवर्ण माक्षिकभस्म क्विनाइनके विषको दूर करनेमें अति हितकर है; परन्तु नये तीव्र ज्वरमें नहीं देनी चाहिये।

(३०) शृङ्ग-भस्म वातजन्य शुष्क कासमें हानिकर है तथा कफ प्रधान कास, श्वास और न्यूमोनिया आदि रोगोंमें हितकर है।

(३१) जसद-भस्म उपदंशजन्य कण्ठ रोगमें हितकर नहीं है।

(३२) वराटिका भस्म आमयुक्त जीर्ण संग्रहणीमें लाभदायक है। परन्तु नूतन आम संग्रहणीमें हितकर नहीं है।

(३३) लोहभस्म रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भमें हानिकर है। परन्तु वातार्श और पित्तार्शमें अधिक शक्तिपात हुआ हो, तो भी लाभदायक है। रक्त वृद्धि और पुष्टिके लिये लोहभस्म भोजनके वाद देना, यह विशेष हितकर है।

(३४) सुवर्ण भस्म संखियासे मारणकी हो, तो क्षय रोगकी प्रथमावस्थामें न दें, अन्यथा शुष्क कास बढ़ जायगा। पारद, गन्धक या वनौषधिसे मारित यह भस्म क्षय रोगमें विशेष हितकर है।

सुवर्ण पर्पटी पुरानी संग्रहणीमें ज्वर होनेपर, अथवा मानसिक विकृति होनेपर नहीं देनी चाहिए। सुवर्ण पर्पटीके सेवनकालमें दुग्धाहार विशेष लाभदायक है।

सुवर्ण मिश्रित औषधि ज्यादा परिमाणमें क्षय रोगीको नहीं देनी चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर क्षयके जन्तु (Tuberculosis) एक साथ

अधिक संख्यामें मरते हैं, जिससे विषवृद्धि होकर ज्वर बढ़ जाता है। अतः शुद्ध सुवर्णकी मात्रा एक समयमें १/१०० से १/५० रत्ती तक और सुवर्ण भस्मकी मात्रा १/३२ रत्ती तक देना चाहिये।

जब क्षय रोगमें ज्वर ९९° से अधिक हो, तब सुवर्ण-मिश्रित औषधि न दें। अन्य औषधिसे ज्वरको कम करनेके बाद सुवर्ण-मिश्रित औषधि दें। मंथर ज्वरके विषका ह्रास कराने तथा स्थावर जंगम विषके शमनार्थ स्वर्ण-प्रधान औषधि प्रयुक्त होती है।

(३५) एलुवा वाली औषधियां विशेषतः रात्रिको सोनेके समय दी जाती हैं। परन्तु सगर्भा स्त्रीको नहीं देनी चाहिये।

(३६) कस्तूरी औषधियोंमें मिलानी हो, इसके पहिले उसके भीतरसे बालोंको अच्छी तरह देखकर निकाल डालना चाहिये। एवं कस्तूरी मिलाने के पश्चात् औषधियोंको हो सके उतना जल्दी मिलाकर छोटी-छोटी गोलियां बनाकर छायामें सुखा देनी चाहिये अथवा सूखा चूर्ण करके बोतलोंमें भर लेना चाहिये।

(३७) केशरको औषधिमें मिलानेसे पहले एक थालमें रखें। फिर एक कटोरीको गरमकर केशरके ऊपरढक देवें। जिससे केशरमेंसे नमी निकल जायगी फिर उसे बारीक पीसकर मिला लेवें।

(३८) अफीम वाली औषधि बालकोंको अधिक मात्रामें सहन नहीं होती। यदि आवश्यकता हो तो सम्हालपूर्वक दें। रक्तार्श और रक्तातिसारमें दूषित रक्त और कच्चे आम गिरते हों, तब तक अफीम औषधि न दें।

सगर्भा स्त्रीको अफीम वाली औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये। कमजोर आंत वाले मधुमेहके रोगीको अफीम वाली औषधि सम्हालपूर्वक देनी चाहिये।

नेत्रमें अञ्जन और लेपके लिये अफीम जितनी पुरानी मिले उतनी ही हितकर है। अफीम आदि कतिपय औषधियाँ स्वस्थावस्थामें जिस तरह परिणाम दर्शाती हैं; वे कतिपय विकारमें वैसा परिणाम नहीं दर्शाती। जैसे निद्रा लानेमें अफीम उत्तम औषधि है, फिर भी किसी किसी व्यक्तिको तीव्र ज्वर होनेपर निद्रा नहीं ला सकती। प्रत्युत उत्तेजना देती है, जिससे. प्रलाप बढ़ जाता है।

(३९) मादक औषधिकी क्रिया शीतल देशकी अपेक्षा उष्ण देशमें अधिकतर प्रकाशित होती है और प्रातःकाल सेवन की हुई औषधि इतर समयकी अपेक्षा अधिक गुण दर्शाती है।

(४०) किसी-किसी व्यक्तिको लोहभस्म, सोमल, हींग, अफीम, क्विनाइन या इतर कोई-कोई औषधि अनुकूल नहीं होती। ऐसे मनुष्योंके लिये उस औषधिका प्रयोग (रोगनाशक होनेपर भी) नहीं करना चाहिये।

एक रोगिणीको दूध अनुकूल नहीं रहता था दूध पिलानेपर थूकमें रक्त आने लगता था। जिससे दूध अहितकर समझकर हमें छुड़ा देना पड़ा था।

(४१) जिन-जिन औषधियोंके रसायनिक संयोगद्वारा गुणमें परिवर्त्तन हो जाता हो, ऐसे परस्पर विरोधी द्रव्योंका मिश्रण नहीं करना चाहिये। जैसे दूध और दही, दूध और नींबूका रस, दूध और लहसुन आदि। परन्तु क्वचित् अतिसारके रोगियोंको रोगकी महिमानुसार दूधमें नींबू का रस निचोड़ कर तुरन्त पिलाते हैं। मस्तिष्क-गत वातविकारमें रोगीको दूधमें लहसुन मिला खीर बनाकर सेवन कराते हैं। इस तरह अन्य रासायनिक संयोगविरोधी द्रव्योंका प्रयोग भी हो सकता है।

(४२) शोथहर औषधियोंके प्रयोगकालमें यदि नमक, शराब या मांसाहारका सेवन किया जायगा तो औषधिसे योग्य लाभ नहीं हो सकेगा।

(४३) मेदोहर औषधियोंके प्रयोगकालमें यदि घृत, मधुर पदार्थ, दही चावलादि मेदवर्द्धक आहारका सेवन अधिक होगा तो औषधिसे योग्य लाभ नहीं पहुँचेगा।

(४४) शुक्रवर्द्धक औषधियोंके सेवन कालमें आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन होगा तो ही लाभ मिल सकेगा।

(४५) शराब, तमाखू, अफीम आदिका व्यसन कराना हानिकर है। फिर भी इतर मार्ग न होनेपर व्यसन कराया जाता है। जैसे मधुमेह दूर न होनेपर अफीमका व्यसन, मानसिक आघात शमनार्थ शराबका व्यसन, निर्बल व्यक्तिकी मानसिक थकावटको दूर करानेके लिये चायका व्यसन आदि। इस तरह विविध व्यसनों द्वारा रोगका दमन कराया जाता है।

(४६) मुखद्वारा सेवनकी हुई औषधि जितने परिणाममें और जितने समयमें फल प्रदर्शित करती है, इसकी अपेक्षा अन्तःक्षेपणकी हुई औषधि कम परिमाणमें ही सत्वर लाभ पहुँचाती है। कारण, आमाशय और अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कलाद्वारा औषधिसत्वका शोषण मृदुतापूर्वक और विलम्बसे होता है। शोषण हो जानेपर भी वह सत्व यकृत्‌में जाता है और उसमें पित्तमिश्रित होकर रक्तमें गमन करता है, जिससे यकृत्‌में भी औषधिका कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

परन्तु अन्तःक्षेपण द्वारा औषधि द्रव्य सत्वर शोषित हो जाता है। और उसके सत्वका इतर यन्त्रों द्वारा क्षय नहीं होता। इस हेतुसे कम मात्रा होने पर भी सत्वर लाभ पहुँचता है।

भीतर प्रवेश किये हुये औषध सत्वका शोषण रसत्वचा (Serousmembrane) द्वारा अति सत्वर होता है। संयोजक कला (Intercellular-tissue) द्वारा अपेक्षाकृत कम शोषण और श्लैष्मिक कला द्वारा सबकी अपेक्षा कम शोषण होता है।

(४७) कितनी ही औषधियां प्रतिदिन सेवन करनेपर देहमें शनैः शनैः संचित होती रहती हैं। जैसे पारद, सोमल, कुचिला आदि। इन संगृहीत औषधियोंका असर अर्थात् संग्राहक क्रिया (Cumulative action) कभी कभी सहसा उपस्थित हो जाता है। अतः इन औषधियोंका सेवन दीर्घकाल तक करना हो तो बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े दिन तक इनको छोड़ देना चाहिये।

(४८) चूर्ण और गुटिका आदि औषध्रियोंकी अपेक्षा आसव-अरिष्ट, अर्क, क्वाथ आदि औषधियां सत्वर शोषित होकर अपना फल दर्शाती है। अतः तीव्र विकार शमनार्थ औषधिका द्रव प्रवाही रूपसे उपयोग करना विशेष हितावह माना जाता है।

(४९) आमाशयमें आहार होनेकी अपेक्षा आमाशय खाली होनेपर औषधि सत्वर शोषित हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगभेद, रोगभेद, स्त्री-पुरुषभेद, आयुभेद, ऋतुभेद, देशभेद, अभ्यासभेद, शारीरिक उत्तापभेद आदि कारणोंसे औषधिसत्वकी शोषण क्रियामें तारतम्य हो जाता है।

(५०) अफीम, सोमल, शराब, गांजा, कुचिला आदि औषधियां व्यसन अभ्यास (Idiosyncrasy) के हेतुसे अधिक मात्रामें सेवन करनेपर भी विषक्रिया उत्पन्न नहीं करा सकती। अतः ऐसी औषधियां सेवन करानेके पहिले इस बातको भी सोच लेना चाहिये।

(५१) प्रस्वेद लाने वाली औषधि देनेपर रोगीको भलीभांति वस्त्र औढ़ाकर बैठाना या सुलाना चाहिये।

(५२) नित्य उपयोगके दन्तमंजनमें तेज नमक मिलाना हानिकर है। तेज नमकसे दांतोंकी सफेदी और मसूड़ोंको हानि पहुचती है, दांतोंकी संधि घिस जाती है, और दांत अलग-अलग हो जाते हैं। परन्तु जिनके दांतोंमें कृमि हो, पीप आता हो उनको सैंधानमक और सरसोंका तैल मिला दन्त-मंजन विशेष लाभदायक है।

(५३) किसी भी चूर्ण में ईसवगोल मिलाना हो तो बिना कूटा ही मिलाना चाहिये। कूटा हुआ ईसबगोल हानिकर है।

(५४) अनुपान रूपसे घृत और तैल लेनेपर १ घण्टा तक ठण्डा जल न पीवें। यदि अति व्याकुलता उपस्थित हो तो निवाया जल थोड़े परि-माणमें ले सकते हैं।

(५५) भिलावे वाली दवाईके साथ अनुपान रूपसे चाय, कॉफी या गरम गरम जल आदि नहीं लेना चाहिये। मट्ठा, नींबूका रस, नारियलका जल और शीतल जल आदि सहायक होते हैं।

प्रयोगोंमें मिलाने योग्य औषधियोंकी शुद्धि

(५६) चित्रकमूल, भारंगी मूल, अर्क मूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी आदि औषधियोंको बाजारसे लाते ही नहीं कूट लेना चाहिये । उनके धूल, कीटाणु दूषित द्रव्य लगा हो, दूषित वायुमें बन्द रही हो या मकड़ी आदिके अण्डे अथवा जाले लगे हो तो इन सबको दूर करना चाहिये और निरुपयोगी छाल आदि हो उसे छीलकर दूर करना चाहिये ।

१. मूल शाखा और फनर सुगन्ध रहित आदिको शुद्ध करनेके लिये उबलते हुये जलमें उनको डाल १-१ मिनट रख जलको निकाल फिर धूपमें सुखा लेना चाहिये ।
२. मृदु फल जिनको जलमें डालनेपर तुरन्त सत्व निकल जाता हो ऐसे द्रव्योंको गरम जलसे भिगोये हुये कपड़ेसे पोंछ एक आध घण्टे तक धूपमें फैला देना चाहिये ।
३. ऊपरकी छालकी जितनी तह हीन वीर्य हो गई हो या दूषित हुई हो तो उसको छीलकर दूर कर देनी चाहिये ।
४. सूखे पुष्प और पानोंसे गर्दा निकाल पोंछ, धूपमें फैलाकर शुद्ध कर लेना चाहिए ।
५. नमकको तांबे या पीतलके बरतनमें ३ गुना अधिक जलमें डाले ऊपर आये हुये कचरेको झरसे निकाल देवें । फिर अच्छी तरह नितर जानेपर तांबे या पीतलकी कड़ाहीमें निकाल लेवें । पेंदेमें बैठे हुये कचरेको फेंक देवें जलको उबाल कर सुखा देनेपर कली चूना जैसा स्वच्छ सफेद नमक हो जाय तो उसे अमृतबानमें भर लेवें और आवश्यकतापर काममें लेवें ।

(रोग विषयक सूचना)

(५७) नूतन ज्वरमें तेज वायुका सेवन, दिनमें अधिक समय तक शयन, स्नान, अभ्यङ्ग, मैथुन, क्रोध और परिश्रम हानिकर है ।

(५८) चढ़ते बुखारमें ज्वर हर औषधि देनेसे ज्वर विशेष कुपित होता है

(५९) जब तक नूतन ज्वर शरीरमें रहे, तब तक खानेको कुछ भी नहीं देना चाहिये । आचार्योंने कहा है कि :—

शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् ।
वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥

(६०) ज्वर रोगमें जल गरम करके ठण्डा किया हुआ थोड़ा-थोड़ा आवश्यकता अनुसार देते रहना चाहिये ।

(६१) पुराने ज्वरमें रोगीको घी और दूध अवश्य देना चाहिये । दूध को 'सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम्' इस वचनसे उत्तम भेषज

माना है। जीर्णज्वर जो कि क्वाथ, वमन लङ्घन और लघु भोजनसे शमन न हुआ हो, उसपर शास्त्रोक्त घृतपान हितावह माना गया है। इसके रोगी को कदापि उपवास न करावें। यदि अपथ्य सेवनसे दोष प्रकुपित हुए हों, तो सम्हाल पूर्वक लङ्घन करावें।

(६२) मुद्दती ज्वरमें ज्वरशामक औषधि न देवें। विकारको पचन, करने वाली पाचन और शोधन औषधि देनी चाहिए।

(६३) चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) वाले रोगीको ज्वर दूर होनेके पश्चात् भी दो-चार मास तक गुड़ वाला पदार्थ खानेको नहीं देना चाहिये, अन्यथा ज्वर पुनः आ जाता है।

(६४) शीतलाके ज्वरमें पीनेको ठण्डा जल दिया जाता है।

(६५) तरुण ज्वरमें द्विदल धान्य आदि भोजन, मांस, स्त्री-सेवन और पतली कांजी पीना अति हानिकर है।

(६६) त्रिदोष ज्वरमें घृत कदापि नहीं देना चाहिए एवं मांस या भात देना भी हानिकारक है।

(६७) सन्निपातमें दाह हो तो भी शीतल जल नहीं पिलाना चाहिये। यदि प्रस्वेद आता हो तो सत्वर बन्द करनेकी चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा रोगी शीतमें आ जाता है।

(६८) यदि सन्निपातमें तन्द्रा है, तो तीक्ष्ण नस्य आदि औषधि द्वारा तुरन्त चेतना लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

(६९) यदि सन्निपातमें कर्णशोथ हो जाय तो जोंक आदि उपचारोंसे तुरन्त सूजनको दूर करना चाहिए।

(७०) सन्निपातमें पहिले वात-कफका शमन करें, तदनन्तर वातपित्त को दूर करना चाहिये।

(७१) ज्वर चले जानेके पश्चात् जब तक शरीरमें शक्ति न आवे, तब तक मैथुन, व्यायाम, मार्गगमन, देरसे पचने वाले भोजन, सूर्यके ताप या वायुका अति सेवन और ठण्डे जलसे स्नान करना हानिकर है।

(७२) ज्वर रोकने वाली औषधि एक दिनमें ३ समय दें। पारीके बुखार आनेके ६ घण्टे पहिलेसे २-२ घण्टेपर ३ बार औषधि दें तथा सन्निपातमें रोग काबूमें आये, तब तक २-२ घण्टेपर ३-४ या अधिक बार औषधि देते रहना चाहिये।

(७३) सन्निपात, मुद्दती ज्वर, प्लेग और क्षय रोगमें जुलाब देना अति हानिकर है। परन्तु मलावरोध हो, तो मृदु विरेचन देकर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। दूधमें अमलतास डालकर देनेसे कोष्ठशुद्धि हो जाती है।

(७४) अतिसारके रोगीको कच्चा दूध और पतला अन्न (कांजी आदि

पिलाना), हानिकर है, किन्तु चावलकी-लाजाकी यवागूका निषेध नहीं है। अतिसारमें उपवास अति लाभदायक है। औषधि थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिन में ३-४ वार देना हितकर है। एक साथमें ज्यादा औषधि देनेसे लाभके बदले हानि होती है। कच्चा आंव पड़ता हो तब तक अफीम या अन्य स्तम्भक औषधि नहीं देनी चाहिए। अतिसार शांत होनेके पश्चात् भी १५ दिन तक अधिक भोजन, पक्वान्न, कच्चा अनाज और देरसे पचने वाले पदार्थोंका त्याग करना चाहिए।

(७५) विसूचिका (कालेरा) में रोगीको पीनेके लिए बार-बार एक एक तोला बर्फका जल दें। अथवा गरम करके शीतल किये हुए जलको सौंफके अर्कमें मिलाकर एक-एक चम्मच देते रहें। एक साथमें ज्यादा जल नहीं पीलाना चाहिये। अफीमवाली औषधि हो सके, तब तक न दें। पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रक्खें और पेडूपर केसूला तथा कलमी शोराकी लुगदी बांधे। यदि दस्त बन्द हो जानेपर वमन बन्द न होती हो तो जलके बदलेमें तिलका तैल अथवा घृत पिलाना अति हितकर है।

(७६) रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भमें जब तक दूषित रक्त गिरता हो तब तक लोह भस्म आदि स्तंभक औषधि न दें। अफीमसे भी तुरन्त दूषित रक्तका स्तम्भन न करें। अर्शके रोगीको कच्चा दूध और मलावरोधकारक भोजन नहीं देना चाहिये।

(७७) जीर्णमलावरोधकके रोगीको बार-बार विरेचन देना हानिकर है। आवश्यकतापर बस्तिसे आंतोंको साफ कर लेना, यह लाभदायक है। परन्तु बस्तिका उपयोग भी बार-बार नहीं करना चाहिये।

(७८) अम्लपित्त रोगमें भोजनके बीचमें या भोजन करके तुरन्त ज्यादा जल पीना, शाक ज्यादा खाना, खट्टे पदार्थ खाना, गरम गरम भोजन, चाय आदि लेना ये सब हानिकर हैं।

(७९) दाहयुक्त अम्लपित्त रोगमें वमन, विरेचनसे शोधन किये बिना औषधि देना लाभदायक नहीं है।

(८०) रक्तपित्तके रोगीको धूम्रपान आदि व्यसन और पित्तवर्द्धक आहार विहारोंका त्याग करना चाहिये।

(८१) सब प्रकारके उदर रोगोंमें मट्ठा और गोमूत्रका सेवन अति लाभदायक है।

(८२) कृमिरोगमें अधिक मधुर पदार्थ, गुड़, अति दूध और कच्चा दूध हानिकारक तथा तैल हितकर है।।

(८३) भगन्दरमें हींग, वेसन और मधुर पदार्थ हानिकर हैं।

(८४) रक्तगुल्मकी चिकित्सा शास्त्रमर्यादाके अनुसार १० मासके बाद

करनी चाहिये । किन्तु नव्य मतके अनुसार यदि रोग निर्णित हो जाय तो तुरन्त की जाती है ।

(८५) कफप्रधान गुल्म रोगमें वमन कराना हानिकर है ।

(८६) शूलरोगमें द्विदल धान्य (चना, मसूर, मटर, मूंग आदि) का सेवन अति हानिकर है । वमन, लङ्घन, स्वेदन, और पाचन औषधियां लाभदायक है । प्रथम स्वेदन देना विशेष हितकर है ।

(८७) वात-जन्य शूलमें रेचक औषधि और निरूह बस्ति, पित्त-जन्य शूलमें मधुर औषधियोंसे सिद्ध किया हुवा दुग्ध और कफ जन्य शूलमें कड़वी और चरपरी औषधियां तथा वमन हितकर है ।

(८८) परिणाम शूलमें लंघन, वमन, विरेचन और तलयुक्त बस्ति ये सब लाभ पहुँचाते हैं ।

(८९) अन्न द्रव शूलमें पित्त शमनार्थ तथा कफ नाशार्थ विरेचन और अम्लपित्त हर औषधि देना निम्न वचनमें कहा है ।

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम् ।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ।।

(९०) आमजन्यतीव्र उदरशूलमें नमक मिले निवाये जलसे वमन कराना हितकर है । उस समय तीव्र शूलघ्न औषधि देना हानिकर है ।

(९१) जलोदर रोगमें संचित जलको यन्त्रसे निकालना हो, तो एक ही समयमें सब जल नहीं निकालना चाहिये ।

(९२) अजीर्ण रोगमें तीव्र पीड़ा होती हो, तब शूलान्तक औषधि न दें । अन्यथा अग्नि आमदोषसे आच्छादित होनेसे प्रकुपित होती है ।

(९३) शुष्क वातिक कास और पित्तप्रधान सूखी खांसीके रोगीको खट्टा पदार्थ, चरपरा पदार्थ, अजीर्ण होवे उतने अधिक परिमाणमें भोजन और हींग हानिकर हैं । इस तरह सिंगरफ, अभ्रक, संखिया कुचिला और भिलावा आदि उत्तेजक औषधि भी नहीं देना चाहिये ।

(९४) क्षय रोगमें विरेचन और स्त्री सेवन हानिकर हैं । क्षयके कीटाणुओंको नाश करनेवाली औषधि स्वर्ण है, परन्तु जब ज्वर अधिक हो तब स्वर्ण वाली औषधि नहीं देनी चाहिये । पतले दस्त लगते हों, तो जल्दी बांधनेका प्रबन्ध करना चाहिये, परन्तु अफीमसे दस्त न रोकें । सोमलवाली औषधि शुष्क कास होनेपर नहीं देनी चाहिये । यदि क्षय रोगीको देवदारु या बांसके जंगलमें या बकरियोंके साथ रखा जाय तो सत्वर लाभ होनेकी सम्भावना है ।

भोजनमें बकरीका दूध-और घी, बकरेके मस्तकको उबालकर बनाया हुआ यूष और लहसुन ये सब अति हितकर हैं, तथा उपवास, परिश्रम, मानसिक चिन्ता और तेज वायु अति हानिकर है ।

क्षय रोगीके कफको जमीनमें गहरा खड्डा करके दबा दें तथा वस्त्र ओर जगहको साफ रखें। क्षयरोगीके थूकनेके बरतनमें फिनायल, मिट्टीका तैल अथवा राख रखें, जिससे मक्खी उसपर न बैठे। एवं हो सके तो थूकनेके पात्रको ढक कर रखें।

(९५) कृमिजन्य हृद्‌रोगमें वमन करानेका निषेध है, विरेचन देना हितावह है।

(९६) शस्त्र लगनेसे शरीरका कोई भाग कट जानेपर उसको ऊँचा रखनेसे रक्त निकलना बन्द होता है।

(९७) उरुस्तम्भ (आढ्यवात) में वमन विरेचन, वस्ति, तैलमर्दन, शिरावेध और स्निग्धपदार्थोंका सेवन हानिकारक है। लेप, ईंट तपाकर सेकना, स्वेदन, उपवास तथा आम, मेद और कफके नाशक रूक्ष पदार्थोंका सेवन हितकर है। जलाशयमें तैरना भी लाभदायक है। इस रोगमें पहिले कफनाशक उपचार और फिर वातनाशक औषधि देवें।

(९८) अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) के रोगीको लंघन नहीं कराना चाहिये एवं वमन, अनुवासन और आस्थापन बस्ति ये कर्म भी नहीं कराना चाहिये।

(९९) अपतन्त्रक पीड़ितको वातश्लेष्म विकृति होनेपर अथवा श्वासावरोध होनेपर तीक्ष्ण नस्य देना चाहिये।

(१००) कम्पवातमें तैलकी मालिश, पौष्टिक भोजन तथा अफीम, कुचिला और गूगलका सेवन ये सब अति लाभदायक हैं।

(१०१) अर्दित वात (मुखके पक्षाघात) में तैलकी मालिश और स्निग्ध भोजन लाभदायक है।

(१०२) मन्यास्तम्भमें रूक्ष स्वेद और नस्यसे सत्वर लाभ होता है।

(१०३) जीर्ण आमवातमें लंघन, स्वेदन, स्नेहपान, विरेचन, बस्ति तथा कड़वी, चरपरी और अग्नि प्रदीपक औषधियोंका उपचार करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(१०४) वातरोगकी सूजनपर रात्रिको लेप न करें और दिनमें सूखने पर लेपको बार-बार हटाते रहना चाहिये।

(१०५) गाँठ, फोड़े आदिपर बैठानेका लेप गाढ़ा किया हो तो उसे रहने दें, बार-बार न हटावें। एवं पकानेकी गांठपर भी रात्रिको नया लेप करना चाहिये।

(१०६) अस्थिभङ्गका लेप २-३ दिन या अधिक दिनके बाद ही खोलकर बदलें, जल्दी नहीं खोलना चाहिये।

(१०७) विद्रधि (फोडे) को पकानेके लिये बांधी हुई पुल्टिसको यदि २-३ घण्टेपर बार-बार बदलते रहें तो पाक जल्दी हो जाता है। पुल्टिस

को ज्यादा समय तक रहने देना, यह लाभदायक नहीं है।

(१०८) विद्रधिको शस्त्रसे चीरना हो, तो खड़ा चीरा लगावें। जिससे रक्तवाहिनियां थोड़ी कटती हैं और रक्त भी थोड़ा निकलता है। प्रमाद-वश आड़ा चीरा लगाया जायगा तो रक्तवाहिनियां ज्यादा कट जायेंगीं और रक्त ज्यादा निकलेगा।

(१०९) पित्तप्रधान उन्मादके रोगीको धारोष्ण दूध अथवा गोघृत पिलाना और पौष्टिक आहार देना, ये सब हितकर हैं। सूर्यके ताप और अग्निका सेवन, मैथुन, शोक, क्रोध आदि हानिकर हैं। ठंडे जलमें बैठना अति हितकर है।

(११०) कुष्ठ रोगमें मांस, दूध, दही और इनसे बनी हुई वस्तुओंका सेवन हानिकर है। चनेके पदार्थ और घी अति हितकर हैं। वमन, विरे-चन, स्वेदन और बस्ति प्रयोग लाभदायक हैं।

(१११) विसर्प रोगमें घृत और तैल वाले पदार्थ हानिकर हैं।

(११२) श्लीपदरोगमें तैलकी मालिश हानिकर है। किन्तु जब रक्त निकलता हो तब तैल मर्दन और स्वेदन कर सकते हैं।

(११३) कर्णशोथपर तैल और घृत वाले मलहम प्रायः लाभ नहीं पहुँचाते हैं। जोकोंसे दूषित रक्त निकलवाकर शोथको तुरन्त कम करने वाला लेप लगाना चाहिये।

(११४) नाड़ी व्रण (नासूर) का मुंह छोटा होवे तो पहिले चूना, सधानमक या अन्य क्षार युक्त लेप करके मुंहको बड़ा बनावें। पश्चात् सिद्ध-घृत अथवा तैलकी पिचकारी द्वारा प्रवेश करानेसे रोगकी निवृत्ति होती है।

(११५) पागल कुत्ता काटनेके पश्चात् १ वर्ष पर्यन्त वातप्रकोपक पदार्थोंका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(११६) सांप काटनेके पश्चात् एक आध मास तक नित्य रोगीको शक्ति अनुसार सुबह भोजनके ३ घण्टे पहिले २ से ४ तोले तक घी पिलानेसे नेत्रज्योति नहीं बिगड़ती।

(११७) चूहेके विष-प्रकोपमें शीतल वायु, शीतल जल, शीतल गुण वाला भोजन, दिनमें शयन आदि हानिकर हैं।

(११८) बहुमूत्र रोग, जिसमें थोड़ा-थोड़ा मूत्र बार-बार होता है, किसी को मूत्रदाह भी होता है, उसमें अधिक घी, खटाई, नये चावल, अधिक परिणाममें मधुर पदार्थका सेवन, अजीर्णमें भोजन, भोजन पचन होनेसे पहले पुनः भोजन और भोजनके साथ अधिक जलपान ये सब हानिकर हैं तथा भोजनके एक घण्टे पीछे जल पीना, भोजन सादा और कम करना, खुली वायुमें घूमना ये सब हितकर हैं।

(११९) स्वप्नदोषमें रात्रिको मधुर पदार्थका सेवन, रात्रिको भात खाना अजीर्णमें भोजन, वातल पदार्थोंका अति सेवन, खट्टा पदार्थ खाना, तमाखू चाय आदि हानिकर हैं। एवं अफीम, सोमल और हरताल मिश्रित औषधि भी प्रायः हितकर नहीं हैं। सायंकालको खुली वायुमें घूमना, सात्विक भोजन, ईश्वरस्मरण, रात्रिको भोजनके बदले केवल दूध पीना, ये सब लाभदायक हैं।

(१२०) पूयमेह (सुजाक) के रोगीका रक्तशोधन न करने और अपथ्य सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पेशाबमें रक्तस्राव, बद, वृषणवृद्धि, नेत्राभिष्यन्द, मंदाग्नि, सन्धिवात और प्रमेह पिटिका आदिमेंसे कोई न कोई उपद्रव हो जानेकी संभावना रहती है।

(१२१) सुजाक और उपदंश रोगमें अपथ्य सेवनसे रोगका मूल ऐसा दृढ़ हो जाता है कि जीवन पर्यन्त बार-बार अनेक उपद्रव होते रहते हैं। बद विद्रधि, नेत्रव्याधि, नख बिगड़ना, रक्तविकार, संधिवात, मन्दाग्नि, मलावरोध आदिकी संप्राप्ति हो जाती है।

(१२२) दांतके रोग, नेत्ररोग, शिरदर्द और प्रतिश्याय आदिमें आवश्यकतापर पेट साफ करने वाली औषधिका सेवन करते रहना चाहिये।

(१२३) साधारण हिलते हुए ऊपरके दांत और दाढ़ोंको शस्त्रसे नहीं निकलवाना चाहिये। अन्यथा नसोंमें आघात होकर अधिक रक्त गिरना, शिरदर्द, नेत्रकी निर्बलता आदि भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं। यदि दाढ़को निकलवाना हो तो दन्त विशेषज्ञोंसे मसूढ़ेकी जड़को शिथिल करने वाली औषधिको लगाकर निकलवाना चाहिये।

(१२४) तीक्ष्ण नेत्ररोगमें नेत्रोंको ठंडे जलसे नहीं धोना चाहिये और ठण्डी वायुसे बचाना चाहिये। नेत्रोंको धोनेके लिये निवाये जलका उपयोग करना चाहिये। नेत्ररोगमें गुड़, मिर्च, तैल, शुष्क अन्न, कब्जकारक पदार्थ ओर रात्रि जागरण, इन सबका त्याग करना चाहिये।

(१२५) थका हुआ, रुन्दन किया हुआ, भयभीत, मदिरा पिया हुआ, नवीन ज्वरवाला, अजीर्ण रोगी, मल-मूत्रका वेग जिसने रोका हो, इन सब के नेत्रोंमें अञ्जन नहीं कराना चाहिये।

(१२६) फूले आदि रोगोंमें जहां लेखन औषधिको प्रयोजित करना हो उस लेखन (तीक्ष्ण) औषधिके साथ मिश्री अथवा अन्य मधुर औषधि न मिलावें। केवल शहद मिला सकते हैं।

(१२७) फूला, मोतियाबिन्दु आदि रोगोंमें अंजन करनेके लिये तांबेकी सलाई विशेष हितकर है।

(१२८) मोतियाबिन्दुके रोगीके नेत्रोंमें ज्यादा अश्रुपात हो, ऐसी औषधिका उपचार नहीं करना चाहिये।

(१२९) पित्तज अभिष्यन्दमें कदापि स्वेदन नहीं देना चाहिये। पित्तज और वातज नेत्ररोगका आमावस्थाके समय कच्चा दोष हो तब तक नेत्रमें औषधि न डालें। किन्तु कफजनित नेत्ररोगकी आमावस्थामें तीक्ष्ण औषधि डालना चाहिये।

(१३०) नेत्र, हृदय और वृषण कोमल होनेसे इन स्थानोंपर स्वेदन न दें। अति आवश्यकता होनेपर सौम्य स्वेदन दें।

(१३१) मूत्ररोगमें मूत्रविरेचन देना हो तो सुबहके समय देना चाहिये।

(१३२) कफवृद्धि दूर करनेके लिए वमन कराना हो, तो प्रातः कांजी पिलाकर वामक औषधि देवें।

(१३३) मलावरोध और इतर रोगोंमें विरेचनके लिये औषधि प्रातः दें। परन्तु मृदु विरेचन देना हो, तो रात्रिको देना चाहिये।

(१३४) अग्निमांद्य और अजीर्णको दूर करने वाली औषधि भोजनके साथ लेनी चाहिये। अजीर्णनाशक औषधि रात्रिको भी दी जाती है।

(१३५) तृषा, हिचकी, श्वास और विषप्रकोपमें बार-बार औषधिका सेवन करना चाहिये।

(१३६) मानसिक चिन्ता या इतर रोगोंसे निद्रानाश होनेपर मादक औषधि रात्रिको सोनेके दो घण्टे पहिले देनी चाहिये।

(१३७) रक्तविकार, कफप्रकोप, जीर्ण विषपीड़ा और इतर रोगोंमें रात्रिको स्वेदल औषधि देनी हो तो सोनेके दो घण्टे पहिले दें।

(१३८) अग्निसे जले हुए भागपर शीतलजल लगाना हानिकर है और तुरन्त सेक करना हितकर है।

(१३९) कानके रोगमें रस आदि औषधि प्रातः और तैल आदि औषधि सूर्यास्तके पश्चात् डालनी चाहिये।

(१४०) दाहसह शिरदर्द रोगमें तैलकी मालिश नहीं करनी चाहिये। क्योंकि तैलसे रोमकूप बन्द हो जाते हैं, जिससे प्रस्वेदद्वारा विष बाहर नहीं निकल सकता। फिर मस्तिष्कमें उष्णताकी वृद्धि होकर दाह, उत्ताप और व्याकुलता बढ़ जाते हैं।

(१४१) जब असाध्य रोग निवारण न हो सके तब तीव्र पीड़ा आदि लक्षणोंको कम करानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु ऐसी क्रियासे रोग शान्त हो जायगा, ऐसे मिथ्याभ्रममें रोगी या रोगीके सम्बन्धियोंको नहीं डालना चाहिये।

(१४२) मूत्राशयग्रन्थि (पौरुषग्रन्थि) की वृद्धि हो जानेपर शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये, नियमित पथ्य भोजन करना चाहिए, नियमित समयपर उदरशुद्धि हो ऐसा स्वभाव बनावें। अधिक परिश्रम या मार्ग-गमन न करें। मूत्रावरोधक द्रव्य या मूत्रकी उत्पत्तिका ह्रास करने वाले

भोजन या औषध (मल्ल, क्विनाइन, बंगभस्म, कुचिला, हींग, तैल, भिलावा आदि) न लेवें ।

(१४३) बालाक्षेप—वालकोंको धनुर्वात आनेपर रोगीके वस्त्र दूर करना चाहिये । मुखमण्डलपर जल छिड़कें, वायु डालें और पैरोंको गरम जलमें रखावें ।

(१४४) प्रसूताको आक्षेप आनेपर गर्भाशयमें उत्तरबस्ति देकर दोषको बाहर निकालें. पैरोंपर गर्म जलकी थैलीसे सेक करें ।

(१४५) यकृद्विकार और कामला होनेपर यकृत्के पित्तसे पचन होने वाले पदार्थ घृत,तैलादिका सेवन नहीं करना चाहिये या कम करना चाहिये ।

(१४६) यकृत्में रक्तसंग्रहसे पीड़ित रोगीको शराबका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये । व्यायाम, लंघन, विरेचन, यकृत्पर सेक और रक्तस्राव कराना ये सब हितकारक है ।

(१४७) रक्तदवाव वृद्धि, चर्मरोग (कण्डू, दद्रु, व्यूची, ददौरे), कुष्ठ, रक्तविकार, वृक्कशूल, मूत्रावरोध और शोथरोग, इन रोगोंमें हो सके तो नमकका सेवन बिल्कुल बन्द करें । न हो सके तो अति कम मात्रामें सैंधा-नमक लेवें । मलावरोध न रहने देवें । गरम-गरम चाय, तमाखू , सिगरेट, शराब,मिर्च आदि व्यसन हो तो छोड़ देवें । एवं मानसिक चिन्ता भी कम करें।

(१४८) निद्रानाश (निद्रा न आने) में नियमित उदरशुद्धि हो ऐसा स्वभाव डालें । निद्रानाशका हेतु मानसिक आघात होनेपर शामको द्राक्षा-सव या खुरासानी अजवायन देना चाहिये । मनको ईश्वरमें लगाकर प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करें । रक्तदवाववृद्धि हेतु हो,तो विरेचन देवें । उष्ण आहार या पेयका अधिक सेवन हो, तो भोजन सम शीतोष्ण कराना चाहिये ।

(१४९) गर्भपात होनेपर गर्भाशयमें रहे हुए गर्भके अङ्ग उपाङ्गोंको निकालकर गर्भाशयको शुद्ध बना लेना चाहिये ।

(१५०) कर्णशूल, पूयपाक होनेपर होता हो, तो कानको उष्ण रखना चाहिये शीतल वायु और शीतल जलसे रक्षा करनी चाहिये ।

(१५१) उरस्तोय पीड़ित रोगीके फुफ्फुसोंको शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये और रोगीको शय्यापर पूर्ण आराम कराना चाहिये ।

(१५२) विष प्रकोप यदि किसी अम्ल (Acid) या दाहक पदार्थके सेवनसे हुआ हो, तो उसके विरोधी प्रतिविषका सेवन करानेसे विष शमन हो जाता है ।

अफीम, जमालगोटा, कुचिला, शीशा (नाग), मुर्दासंग, सिन्दूर, जसद, बच्छनाभ, ताम्रादिका सेवन होनेपर वमन करायी जाती है । यदि स्वाभा-विक वमन होकर विष निकल गया हो, तो फिर वमन करानेकी आव-श्यकता नहीं है । पारद, रसकपूरादिके विषप्रकोपमें वमन नहीं करायी

जाती. बल्कि दूध और घीका सेवन कराया जाता है।

(१५३) सर्पविष और अहिफेन विष इन दोनोंके विषसे पीड़ित रोगीको निद्रा न आ जाय, यह सम्हालना चाहिये। तीक्ष्ण अञ्जनादि प्रयोग करें और हृदयके संरक्षणार्थ हृद्य औषधिका सेवन करावें।

(१५४) अलर्क अर्थात् पागल कुत्तेके विषसे पीड़ित रोगीको कुत्ता काटनेके लगभग १५ दिन होनेपर धतूरा या इतर औषधिके सेवन द्वारा अपक्व विषको प्रकुपित कराकर जला देना चाहिये।

(१५५) सोमलका सेवन विष-मात्रामें हो गया हो, तो हो सके उतना जल्दी वमन करा देना चाहिये। यदि विषका प्रवेश रक्त और अन्त्रमें हो गया हो, तो दूधमें घी या जलमें एरण्ड तैल मिलाकर पिला देना चाहिये।

(१५६) नासारक्तस्राव यदि मस्तिष्कमें रक्तवृद्धि होनेपर हुआ हो. तो उसे नहीं रोकना चाहिये। अन्यथा भयंकर आपत्ति उपस्थित हो जायगी पक्षाघात, नेत्रादि मार्गसे रक्तस्राव या कोई बड़ी शिरा टूटकर मृत्यु अथवा अन्य विकारकी प्राप्ति हो जायगी।

(१५७) शारीरिक उष्णता–शीत कटिबन्ध प्रदेशमें स्वस्थ सबल मनुष्यकी शारीरिक उष्णता सामान्यतः ९८·४° मानी गई है। भारतमें प्रान्त भेदसें उष्णता भिन्न-भिन्न रहती है। कतिपय निर्बल मनुष्योंको ९६·५° से ९७·५° तक उष्णता रहती है। उनको ९९° होनेपर सामान्यतः १॥ डिग्री ज्वर माना जायगा।

प्रायः सुबह उठनेके समय अधिकतम और रात्रिको सोनेके २-३ घण्टे बाद न्यूनतम उष्णता रहती है। शीत लगने और क्रोध करनेपर उष्णतामें वृद्धि हो जाती है। स्वस्थ मनुष्यको कभी १००° तक हो जाती है। उसे ज्वर नहीं मानना चाहिए।

ज्वरावस्थामें उष्णता १०५° से १०८° तक ४-६ घण्टे रहनेपर स्थिति भयप्रद मानी जाती है, इससे अधिक बढ़नेपर रोगीका जीवन अधिक समय तक नहीं रह सकेगा, ऐसा अनुमान होता है।

आशुकारी आमवातिक ज्वरमें १०४° से अधिक उष्णता रहनेपर हृदयको हानि पहुँचनेका भय रहता है। एवं क्षयरोगमें भी जितनी उष्णता बढ़ती है, उतना ही अधिक कीटाणु विष रक्तमें मिल जानेका अनुमान होता है और उतना ही अधिक मांसक्षय होता है।

कामला रोग रक्तमें पित्त मिल जानेपर होता है, यदि साथ-साथ शारीरिक उष्णता भी बढ़ जाती है तो रोग बल अधिक माना जाता है।

आन्त्रिक ज्वर (मधुरा रोग) में सामान्यतः सुबहकी अपेक्षा शामको २ डिग्री उष्णता अधिक रहती है। पहले सप्ताहमें उष्णता क्रमशः बढ़ती है, सप्ताहके अन्तमें सुबह १०२° हो तो रात्रिको १०४° रहता है, दूसरे सप्ताह

में यह परिमाण कायम रहता है, तीसरे सप्ताहमें उष्णता क्रमशः घटने लगती है ।

बड़ी आयु वाले मनुष्यको ज्वर बढ़नेपर प्रलाप होने लगता है, किन्तु छोटे बच्चेको ऐसी अवस्थामें आक्षेप होता है । बालकोंको ज्वरवृद्धि शीघ्र होती है और ह्रास भी शीघ्र होता है ।

उदरमें मल, आम या विष संगृहीत होनेपर ज्वरावस्था अधिक समय तक रहती है एवं कम होनेके पश्चात् थोड़े ही समयमें उष्णता बढ़ जाती है ।

(१५८) नाड़ीकी गति—सामान्यतः पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी नाड़ी गति अधिक रहती है । भोजनके परिपाक कालमें परिश्रम करनेपर और मानसिक उत्तेजना होनेपर नाड़ीकी गति बढ़ जाती है । भय लगनेपर गति मन्द हो जाती है, हृदय निर्बल होनेपर नाड़ीकी गति निर्बल और अधिक वेगवती बन जाती है ।

शारीरिक उत्ताप (Temperature) और नाड़ी (Pulse) का सम्बन्ध स्वस्थावस्थामें प्रति मिनट निम्नानुसार रहता है ।

उत्ताप	नाड़ीस्पन्दन	उत्ताप	नाड़ी स्पन्दन
९८°	६०	१०३°	११०
१००°	८०	१०४°	१२०
१०१°	९०	१०५°	१३०
१०२°	१००	१०६°	१४०

सामान्यतः १ डिग्री उत्ताप बढ़नेपर नाड़ी स्पन्दन ८ से १० प्रति मिनट बढ़ जाते हैं ।

सगर्भावस्थामें ३ मासके पश्चात् नाड़ीकी गति सामान्यतः शिथिल होने लगती है और श्वासोच्छ्वासकी संख्यामें वृद्धि होती है । नाड़ी स्पन्दन सामान्यतः प्रति मिनट स्वस्थावस्थामें निम्नानुसार होता है ।

गर्भस्थ शिशु	१४० से १५०	३ से ७ वर्ष	९० से १००
जन्मके समय	१३० से १४०	७ से १४ वर्ष	७५ से ९५
प्रथम वर्ष	११५ से १३०	१४ से २५ वर्ष	७५ से ८५
द्वितीय वर्ष	१०० से ११५	२५ से ६० वर्ष	६५ से ७५
तृतीय वर्ष	९५ से १०५	६० से अधिक	७५ से ८५

सामान्यतः आयु और बलवृद्धिके साथ-साथ नाड़ी स्पन्दन कम होते जाते हैं । पुनः वृद्धावस्थामें हृदय निर्बल बननेपर स्पन्दन संख्या बढ़ जाती है ।

स्वस्थावस्थामें शारीरिक उष्णता नाड़ीगति और श्वसन संख्या नियमित और परस्पर सम्बन्धवाली रहती है । सामान्यतः नाड़ीस्पन्दन और श्वसनका अनुपात ४ = १ रहता है । यह नियम फुफ्फुसप्रदाहादि रोगोंमें टूट जाता है ।

(१५९) श्वसन क्रिया—आयुवृद्धिके लिये जैसे जैसे फुफ्फुस सबल बनते जाते हैं, वैसे-वैसे श्वसन संख्या कम होती जाती है। पुरुषोंकी अपेक्षा समान आयु वाली स्त्रीकी श्वास संख्या कुछ अधिक होती है। एवं गर्भावस्थामें और वृद्धि होती है। सामान्यतः श्वसनसंख्या प्रति मिनट आयुकी दृष्टिसे निम्नानुसार होती है।

२ माससे २ वर्षतक	३० से ३५	१० वर्षसे १५ वर्षतक	१८ से २२
२ वर्ष से ५ वर्षतक	२५ से ३०	१५ वर्षसे ४० वर्षतक	१८ से २०
५ वर्षसे १० वर्षतक	२२ से २५	उत्तर वयमें	२० से २५

निमोनिया, कास, श्वासादि, फुफ्फुस रोगोंमें प्रायः श्वास गहरा नहीं चल सकता जिससे श्वसन संख्यामें वृद्धि हो जाती है। इसी तरह ज्वर, हृदयविकार अथवा अन्य कारणसे निर्बलता आनेपर श्वसन क्रिया जल्दी जल्दी होने लगती है। जिससे संख्यामें वृद्धि होती है।

(१६०) रक्तदबाव—स्वस्थावस्थामें हृदय, धमनी, शिरा और रक्ताभिसरण सहायक अवयव सबल होनेपर रक्तदबाव सामान्यतः नियमित रहता है। किन्तु गरम गरम भोजन, गरम पेय, शराब आदि उत्तेजक औषधियां व्यायाम, विरेचन, उपवास, रक्तस्राव, शीत लगना और क्रोध, चिन्तादि मनोवृत्तियोंके कारण न्यूनाधिक हो जाता है। शराब और उपदंशादि रोगोंके कारणसे धमनियोंकी दीवार कठोर बननेपर बहुधा रक्तदबाव बढ़ जाता है। पाण्डुरोग, देहमें रक्तकी न्यूनता और अति हृदय शामक औषधि लेनेपर रक्तका दबाव कम हो जाता है। रक्तदबाववृद्धि और रक्तदबाव ह्रास, इन में जो स्थिति उत्पन्न हुई हो उसे लक्ष्यमें रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

सामान्यतः रक्तदबाव आयु अनुसार निम्नानुसार होता है।

रक्त दबाव दर्शक चार्ट

आयुवर्ष	आकुंचन रक्तभार	प्रसारण रक्तभार	नाड़ी दबाव
२ से ५	८१	४५	३६
५ से १०	९०	५३	३७
१० से १५	१००	६२	३८
१५ से २०	११०	७१	३९
२० से ३०	१२०	८०	४०
३० से ३५	१२४	८२	४२
३५ से ४०	१२६	८३	४३
४० से ५०	१२८	८४	४४
५० से ६०	१३२	८६	४६
६० से ६५	१३६	८८	४८
६५ से ७०	१४०	९०	५०
८० से अधिक	१४५	९२	५३

(१६१) अङ्ग मर्दन—मांसपेशियोंको सबल बनाने और थकावट दूर करनेके लिये चंपी अति सहायक क्रिया है। चंपी करनेमें मांसपेशियोंकी मोटाईके अनुरूप उनपर दबाव देना चाहिये। एवं एक सिरेसे दूसरे सिरे तक मांसपेशीपर घर्षण करना चाहिये। इस क्रियामें दबाव सर्वथा रक्तकी गति हो उस ओर डाला जाता है। विरुद्ध दिशामें दबाव नहीं देना चाहिये। जिस तरह रक्ताभिसरण क्रियामें सरलता हो, उस तरह चम्पी करना चाहिये।

चंपी करनेके पहिले त्वचाको स्निग्ध बनानेके लिये तैल मर्दन कर लेना चाहिये। विशेष रुग्ण स्थानमें मलहमकी मालिश भी की जाती है। फिर चंपी करनेपर त्वचा उत्तेजित होती है और मांसपेशियां सबल बनती हैं और शांत निद्रा आनेसे रोग निवारण या थकावट दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

(१६२) औषध मात्रा—आयु और बलके अनुरूप औषधियोंकी मात्रा में न्यूनाधिकता होती है। जैसे बड़ी आयु वाले सबल मनुष्यको कोई औषधि २४ रत्ती दी जाती है, तो वही औषधि कम आयु वाले या निर्बल को सामान्यतः निम्नानुसार न्यून देनी चाहिये।

आयु	रत्ती	आयु	रत्ती
२१ से ५० वर्ष	२४	५ से ८ वर्ष	८
१८ से २० वर्ष	२०	३ में ५ वर्ष	५
१६ से १८ वर्ष	१६	२ से ३ वर्ष	३
१२ से १६ वर्ष	१२	१ से २ वर्ष	२
८ से १२ वर्ष	१०	१ वर्ष से कम	१

पुरुषकी अपेक्षा नाजुक प्रकृति वाली स्त्रियोंको मात्रा कुछ कम देनी चाहिये। जल्दी लाभ पहुँचानेकी भावनासे अधिक मात्रा नहीं देना चाहिये। अन्यथा लाभदायक औषधिसे भी हानि पहुँच जायगी।

शहरवासी मनुष्योंकी अपेक्षा ग्रामोंकी शुद्ध वायुमें रहने वाले मनुष्योंको मात्रा प्रायः अधिक देनी चाहिये।

विरेचन औषधिकी मात्रा आयुभेदकी अपेक्षा शरीरबल, रोगबल, मलसंग्रह और समयपर विशेष अवलम्बित है।

मादक और निद्राप्रद औषधिकी मात्रा व्यसन, स्वभाव और प्रकृतिके आधारपर न्यूनाधिक होती है।

रोगी विषयक सूचना

(१६३) सगर्भा स्त्रीको अफीम, जमालगोटा और एलुवा वाली अथवा तीक्ष्ण औषधियाँ नहीं देनी चाहिये।

(१६४) सूतिका ज्वरसे पीड़ित रोगिणी और सन्निपातके रोगीको घी खिलाना अति हानिकर है।

(१६५) यकृत्‌की शिथिलतासे उत्पन्न मन्दाग्नि और बहुमूत्रके रोगीको घी ज्यादा नहीं देना चाहिये । मन्दाग्नि होनेपर घीका पचन योग्य समयमें नहीं होता, और बहुमूत्र होनेसे मूत्रोत्पत्तिमें अधिक कष्ट पहुँचता है और पेशाबके साथ घृतका कुछ अंश भी निकलता है ।

(१६६) दूध पीने वाले बच्चोंको औषधि देनेके समय उसकी माताको भी औषधि देनी चाहिये । बालकोंको अफीम वाली औषधि देनेकी आवश्यकता हो, तो सम्हालपूर्वक दें ।

(१६७) जलमें डूबा हुआ मनुष्य जब तक तैर कर ऊपर न आया हो, तब तक उसके जीवनकी आशा रह सकती है, जलके पैंदेमेंसे निकाला गया हो, तो कृत्रिम श्वासोच्छ्वास चलानेके लिये बार-बार नाकमें फूंक देवें । हाथ हिलाते रहें और सीधा अथवा उल्टा सुलाकर पेटमें रहे हुए जलको निकाल डालें । यदि छोटा बच्चा हो, तो चक्र (गाड़ीके चाक) पर बांधें फिर चक्रको फिराकर पेटमें भरे हुए जलको निकाल डालें, जिह्वाको बाहर खेंचे, हाथ पैर दबावें, सेक करें, गर्म वस्त्र पहिनावें और निर्वात प्रकाश वाले स्थानमें रखें । ये सब उपाय करनेपर मनुष्य पुनः होशमें आ जाता है ।

(१६८) शरीरमें रोग हो तब तक पौष्टिक औषधिसे लाभ नहीं होता । रोग दूर होनेके पश्चात् ही पौष्टिक औषधि देना चाहिये ।

(१६९) किसी भी रोगीका रोग शमन होने लगे, उस समय उसके औषधि व्यवस्था द्वारा, स्वाभाविक क्रिया या अभ्यासमें व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिये । स्वाभावके अनुकूल औषधि-व्यवस्था और पथ्य आदि की योजना करनी चाहिये ।

(१७०) स्त्रियोंके शारीरिक विधानमें कोमलता और स्वभावमें मृदुता होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा औषधिकी मात्रा कम देनी चाहिये ।

(१७१) शास्त्रोंमें लिखे हुए रोगोंके समस्त लक्षण त्रिदोषज ज्वर आदि रोगोंमें हों तो रोग दूर नहीं हो सकेगा, अर्थात् रोगीकी मृत्यु हो जानेकी सम्भावना है ।

आहार-विहार सम्बन्धी सूचना

(१७२) शीतल जलपान—मूर्च्छा, पित्त, गर्मी, दाह, विषविकार, रक्तविकार मदात्यय, श्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्व रक्तपित्त आदि रोगोंमें अन्नपाचन होनेपर ठण्डा जल पिलाना लाभदायक है । रक्तपित्त, मूर्च्छा, रक्तविकार और पित्तप्रधान रोगोंमें उष्ण जलका उपयोग हानिकर है ।

(१७३) उष्ण जलपान—पार्श्वशूल, प्रमेह, बवासीर, पाण्डु, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, मलावरोध, विरेचन, नवीन ज्वर, गुल्म, क्षय, मन्दाग्नि, अरुचि, नेत्ररोग, संग्रहणी, कफप्रधान रोग, श्वास, कास, फोड़ा,

फुन्सी और हिचकी इन रोगोंमें गरम तथा गर्म ठण्डा किया हुआ जल पिलाना हितकर है। दिनमें उबाला हुआ जल शाम तक और रात्रिको उबाला हुआ सुबह तक उपयोगमें लेवें।

(१७४) अल्प जलपान—अरुचि, जुकाम, मदाग्नि, शोथ, क्षय, मुंहमें जल आना, उदररोग, कुष्ठ, तीक्ष्ण नेत्ररोग, नूतन ज्वर, व्रण और मधुमेह में थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकतापर पिलाते रहें। विसूचिका (हैजे) में सौंफका उबाला हुआ (परन्तु ठण्डा किया हुआ) जल या बर्फका जल एक-एक चम्मच पिलाते रहें। एक साथमें अधिक जल पिलानेसे वमनका वेग नहीं रुकता।

(१७५) शीतल जल निषेध—घृत-पान या तैल-पानके बाद प्यास हो, तो निवाया जल पिलावें। तुरन्त ठण्डा जल पिलाना हानिकर है। एवं सन्निपातके रोगीको ठण्डा जल पिलाना या स्नान कराना, मृत्युको बुलाना है।

(१७६) अधिक जलपान—एक समयमें अधिक जल पीनेसे आम बढ़ता है। फिर धीरे-धीरे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

(१७७) मधुर जलपान—शक्कर मिलाकर जल पीनेसे कफ बढ़ता है और वायु घटता है। मिश्रीयुक्त जल दोष नाशक और शुक्रल है। गुड़ वाला जल मूत्रकृच्छ्रघ्न पित्तकर तथा कफवर्धक है। किन्तु पुराना गुड़युक्त जल पित्त नाशक और पथ्य है।

(१७८) जलपान निषेध—शौच जानेके पश्चात्, सूर्यके तापमें घूमकर बिना विश्रान्ति लिये और व्यायाम या शारीरिक परिश्रम करनेपर तुरन्त एवं भोजनके प्रारम्भमें जल-पान नहीं करना चाहिये।

(१७९) उषःपान—रात्रिके अन्तमें उठनेपर शौच जानेसे पहले जल-पान करना हितकर है। किन्तु कफप्रकोप, मन्दाग्नि और नूतन ज्वर आदि रोगोंमें उषःपान नहीं करना चाहिये। विशेष विचार "चिकित्सा-तत्व-प्रदीप" प्रथम खण्डमें किया है।

(१८०) दुग्ध निषेध—तीव्र आम प्रकोपसह नूतन ज्वर, मन्दाग्नि, आमवृद्धि, कुष्ठ, उदरशूल, कफवृद्धि और कृमि, इन रोगोंमें दुग्ध हानिकर है। अर्शके रोगीके लिए कच्चा दुग्ध हानि पहुँचाता है। नया उपदंश, सुजाक और व्रणमेंसे पूयस्राव होता हो तब अधिक दुग्ध पीना या भैंसका दुग्ध पीना हितकर नहीं है।

(१८१) दुग्धके प्रतिकूल पदार्थ—सेंधानमकको छोड़कर अन्य क्षार, लवण, आँवलेको छोड़कर अन्य खटाई, गुड़, मूंग, मूली, मद्य, मत्स्य आदि भोजन इनमेंसे किसीके साथ दुग्धका सेवन नहीं करना चाहिये।

(१८२) तक्र निषेध—उपदंश, सुजाक, प्रमेह, मूत्रमें जलन, क्षत, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा, रक्तपित्त और अम्लपित्त आदि रोग वालोंको, दुर्बल मनुष्य

को एवं गरमीके समय (ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें) तक्र नहीं पिलाना चाहिये।

(१८३) दही निषेध—रक्तपित्त, अम्लपित्त, कफवृद्धि, क्षय, सूजन, आगन्तुक क्षतरोग, अस्थिभंग, पीनस, उपदंश, सुजाक, नेत्रदाह, नेत्रलाली, पित्तजमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि मूत्ररोग, मदात्यय, कुष्ठ, वातरक्त, अन्तर विद्रधि और मूत्ररोग जनित संधिवात, इन व्याधियोंसे पीड़ितोंको दही नहीं देना चाहिये। शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें दही प्रतिकूल रहता है, एवं रात्रिके समयमें भी दहीका सेवन निषिद्ध है। दिन में यदि सेवन करना हो तो नमक, जल, घृत, मिश्री, शहद, मूंगका यूष, अथवा आंवलेका चूर्ण, इनमेंसे किसी अनुकूल वस्तुका मिश्रण प्रकृति और समयानुसार करना चाहिये। अन्यथा कुष्ठ, रक्तविकार, कामला, सूजन, भ्रम, पित्तप्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, फोड़ा फुन्सी और संधियोंमें पीड़ा आदि विकार हो जानेकी सम्भावना है।

(१८४) घृत निषेध—ज्वर सहित राजयक्ष्मा रोगी, दूध पीने वाला बालक, वृद्ध रोगी, कफवृद्धि, मलावरोधके रोगी, आमरक्त रोगी, जीर्णज्वरी, मन्दाग्नि वाले बहुमूत्र रोगी, प्रमेह रोगी और अजीर्ण जनित निर्जन्तुक विसूचिका रोगी इन सबको घी थोड़े-थोडे परिमाणमें दें, अधिक न दें। सन्निपात और नूतन ज्वरमें बिलकुल न दें। क्षयमें अजा घृत तथा सिद्ध घृत अन्य घृतकी अपेक्षा विशेष लाभप्रद है।

(१८५) अदरकका निषेध—कुष्ठ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, रक्तपित्त, व्रण, शुष्क कास, दाह, निद्रानाश इन रोगोंमें ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें तथा पित्त प्रधान प्रकृति वालोंको अदरकका सेवन हानिकर है।

(१८६) शहदका उपयोग—शहद रोगनाशक औषधिके साथ पुराना और रसायन गुणके लिये नया लेना हितकर है। अनुपानमें शहदके साथ घृत मिलाना हो तो गोघृत लेना चाहिए, वातश्लेष्म प्रधान प्रकृति वालोंको शहद दुगुना और पित्त प्रधान प्रकृति वालोंको घृत दुगुना लेना चाहिये। दोनोंको समभाग नहीं मिलाना चाहिये।

यूनानीमें शहदकी चाशनीकर मैलको निकालकर उपयोगमें लेनेका विधान है, तथापि आयुर्वेदकी दृष्टिसे गर्म किया हुआ शहद एक प्रकारका विष है। विष अग्निपर गरम करनेसे कुपित होता है। इसलिये आयुर्वेदमें शहदको गरम करनेका निषेध किया है। शहदको बोतल, अमृतबान या मिट्टीके बर्तनमें रखना चाहिये। टीनके पीपेमें ६-८ मास तक रहनेपर शहद काला हो जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है।

शहदमें सामान्यतः शीतवीर्य, लघु, ईषत् कषाययुक्त, मधुर रस, रूक्ष, ग्राही, लेखन, चक्षुके लिये हितकर, अग्निप्रदीपक, स्वरवर्द्धक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, कोमलता-सम्पादक, सूक्ष्म स्रोतोगामी, स्रोतस्समूहका विशोधक,

आह्लादजनक, प्रसादक, वर्णकारक, मेधाजनक, कामोत्तेजक, विशद गुण-युक्त, रुचिकर, योगवाही और किंचित् वातकारक गुण हैं। शहद कुष्ठ, अर्श, कास, रक्तपित्त, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, पिपासा, वमन, श्वास, हिक्का, अतिसार, कोष्ठबद्धता, दाह, क्षत और क्षय रोगमें हितकारक है।

शहदमें जो बड़ी मक्खीका शहद (भ्रामर) है, वह गाढा अति मधुर, भारी और रक्तपित्तनाशक है। छोटी मक्खियोंका शहद (माक्षिक) अति हल्का, रूक्ष और श्रेष्ठ है। इस शहदको भगवान् धन्वन्तरि और महर्षि आत्रेयने सर्वश्रेष्ठ और श्वास आदि रोगोंमें विशेष हितकर माना है।

नया शहद बृंहण, पौष्टिक, सर, अभिष्यन्दी, स्निग्ध, अनुलोमक और श्लेष्महर है। पुराना शहद रूक्ष, मेद और कफका नाशक, ग्राही और अति लेखन (देहको कृश बनाने वाला) है।

छत्ता परिपक्व होनेपर शहद निकाला हो, तो वह त्रिदोषनाशक तथा छत्ता पूरा पका न हो, तो शहद खट्टा और त्रिदोषकृत् होता है।

नव्य मत (Chemistry) के अनुसार शहदकी परीक्षा करनेपर विविध शर्करा (अन्न शर्करा, द्राक्ष शर्करा और फलशर्करा (Dextrose, Glucose and Fructose) मिलती है। इस हेतुसे अनेक रोगियोंके बलकी रक्षाके लिये शहदकी योजना की जाती है। शहदमें यह विशेषता है कि वह आमाशयमें ही शोषित हो जाता है। उसे अन्त्रमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। इस हेतुसे मधुमेहके रोगीको भी शहद दिया जाता है। जिनको शक्कर अनुकूल न हो, वे प्रतिदिन २-४ तोले शहद भोजनके साथ सेवन करते रहें, तो हृदय सबल बनता है।

(१८७) मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल (Acidic Reaction) हो, तो घृत आदि स्नेहयुक्त भोजन अधिकांशमें नहीं करना चाहिये।

(१८८) प्रातःकालके भोजनके पश्चात् वामकुक्षी (बांई करवटसे लगभग आध घण्टे तक आराम) करना और सायंकालके भोजनके बाद थोड़ा घूमना लाभदायक है। इस विषयमें अंग्रेजी कहावत है कि:—After dinner rest a while, after supper walk a mile

(१८९) दिनके भोजनके अन्तमें तक्र सेवन और रात्रिके भोजनके बाद दुग्ध पान करना हितकारक है। रात्रिको दहीका सेवन और भोजनोपरान्त तुरन्त अधिक जलपान निषिद्ध है।

(१९०) भोजनके पश्चात्, मूत्रके वेगके समय और दिनमें स्त्री प्रसंग करना हानिकर है। भोजनके पश्चात् और अपचनमें स्नान करना भी हानिकर है।

(१९१) ताम्बूल सेवन—आलस्य, व्रण, विद्रधि, दन्तरोग, तालुरोग, उपजिह्वाके विकार, अर्बुदरोग, गलगण्ड, अपची, तालुशोष और कफप्रकोप

में ताम्बूल हितकर है।

(१९२) ताम्बूल निषेध—नेत्रप्रकोप, रक्तपित्त, क्षत, दाह, विषप्रकोप, शोष (राजयक्ष्मा), मदात्यय, मोह, मूर्च्छा, श्वास आदि रोग पीड़ितोंके लिये नागरबेलका पान हानिकर है।

शौच जानेके पश्चात्, भोजनके पहिले, नूतन प्रतिश्यायमें, दृष्टिविकार, कानके बलका क्षय, दांतोंमें पीप निकलना, मसूड़ोंकी शिथिलता और परिश्रम करनेसे प्रस्वेद आनेपर पान नहीं खाना चाहिये। राजयक्ष्मा रोगीको भी पान नहीं देना चाहिये।

(१९३) ताम्बूलका अतियोग—पानका अति सेवन करनेपर विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। दांत, कान, नेत्र आदिका बलक्षय, शोष, रक्तपित्त, दाह और वातरक्त आदि रोग हो जाते हैं।

(१९४) अचक्षुष्य—शिरपर गरम जलसे स्नान करनेसे नेत्रोंको हानि पहुँचती है और बलि पलितकी उत्पत्ति होती है। मन्द प्रकाश या प्रचण्ड प्रकाशमें लिखना-पढ़ना या इतर सूक्ष्म कार्य करना, सोते-सोते और चलती गाड़ीमें पुस्तक पढ़ना, गरम वस्तुका अधिक सेवन, सिनेमा देखना, नेत्रको अधिक परिश्रम पहुँचे ऐसा सूक्ष्म काम करना, मिर्च आदि उग्र वस्तु कूटना धूएँमें बैठना, अग्निको फूंक मारना, अधिक स्त्री सहवास, अधिक तमाखू सेवन, अग्निके पास अधिक बैठना, सूर्यके तापमें घूमना और सूर्यपर त्राटक करना आदि नेत्रके लिये हानिकर है।

(१९५) दन्तविघातक—पत्थरके कोयले, रेती या अन्य कठोर वस्तुसे दांत साफ करनेसे दांतके ऊपरकी सफेदी खराब हो जाती है। एवं सिगरेट बीड़ी, सुर्ती, तमाखू, शराब, सिरका, तेज खटाई, मधुर पदार्थ और नागरबेलका पान इनका अधिक सेवन कराते रहनेसे दांतोंमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और हानि होती है।

(१९६) सोनेके समय शिरपर कपड़ा बाँधने एवं पैरपर मौजे या अन्य चिपके हुए वस्त्र या जूते पहिननेसे रक्ताभिसरण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है। जिससे उस अवयवकी शक्ति न्यून होती जाती है।

(१९७) दिनमें निद्रा लेनेके अधिकारी—व्यायाम या श्रमसे थका हुआ, जिसने मैथुन किया हो, रोज मार्गगमन करने वाला, अतिसार, उदरशूल, रसाजीर्ण, श्वास, तृषा, हिक्का और निराम वातके रोगी, कफक्षय हुआ हो बालक, मद्य पीकर नशेमें आया हो, वृद्ध, रात्रि जागरण वाले इन सबको दिनमें भोजनके पहिले सोना हितावह है।

(१९८) उपवासके अनधिकारी—वातरोगी, तृषातुर, बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, क्षयरोगी, जीर्ण ज्वरी, अनेक रोगोंसे पीड़ित, थका हुआ और क्षुधातुर मनुष्यको उपवास न करावें, तथा उपवास करानेसे जिसकी हड्डीमें

पीड़ा, मनमें भ्रम, नेत्रपर अंधेरा, हृदयमें अवरोध और शरीरमें अति अशक्ति आती हो, उसे भी अधिक उपवास नहीं कराना चाहिये।

(१९९) नूतन रोगमें—यदि वात, पित्त, कफ धातुएँ बलवान हों, तो औषधिकी मात्रा पूरी दी जाती है। परन्तु जीर्ण रोगमें वात आदि धातु निर्बल हो जानेके कारण जितना रोग जीर्ण हो उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये और औषधि ज्यादा दिनों तक देनी चाहिये। जैसे हृद् रोगसे पीड़ित को लोह भस्म, सुवर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवाल पिष्टी या इतर हृदय पौष्टिक औषधि यदि पूर्ण मात्रामें दी जाय तो हानि पहुँचाती है और १६वां हिस्सा जितनी सूक्ष्म मात्रा देनेसे वह पचन होकर शनैः शनैः लाभ पहुँचाती है।

(२००) आहारादिका विरोध—औषधि सेवनमें आहार-विहार, देश कालादि विरोध न हो, इस बातको समझानेके लिये नव प्रकारके विरोधों का उदाहरण अष्टांग संग्रहकारने निम्न श्लोकमें लिखा है। ऐसी विरोधी वस्तुओंका सेवन नहीं करना चाहिए—

क्षीरं कुलत्थैः पनसेन मत्स्यैस्तप्तं दधि क्षौद्रघृते समांशे।
वार्यूषरे रात्रिषु सक्तवश्च तोयान्तरास्ते यवकास्तथैव॥

(अ) दूध और कुलथी दोनोंके विपाक और वीर्यमें विरोध है। इसमें दूध मधुर विपाकयुक्त और शीतवीर्य तथा कुलथी अम्लविपाकयुक्त और उष्णवीर्य है। यह विरुद्ध गुण विपाकका उदाहरण है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

(आ) दूधका कटहलसे विरोध है। इन दोनोंके रस, वीर्य विपाकमें समानता होते हुए भी ये परस्पर महाविरोधी हैं। यह सदृश गुण-विरोधी उदाहरण है।

(इ) दूधका चिलिचिम जातिके मत्स्य और इतर प्रकारके सब मत्स्यों के साथ विरोध है। दूध और मत्स्य दोनोंमें मधुर गुण होनेसे एक अंशमें समानता है। दूधमें शीतवीर्य और मत्स्यमें उष्णवीर्य होनेसे एक अंशमें विरोध है। इन दोनोंका एक साथ सेवन करना निषिद्ध है। यह एक देश विरोधी उदाहरण है।

(ई) दही तपाकर खाना यह विरुद्ध होनेसे हानि पहुँचाता है। यह विरुद्ध संस्कारका उदाहरण है।

(उ) शहद और घी दोनों समभागमें मिलाकर सेवन करना, यह हानि-कर है। यह मात्रा विरोधी उदाहरण है।

(ऊ) ऊषर भूमिस्थित जल विरुद्ध स्वभाव वाला है, यह विरोधी देश का उदाहरण है।

(ए) रात्रिमें सत्तू का उपयोग करना कालविरोधी है।

(ऐ) बिना जल मिलाये सत्तू का सेवन करना, संयोगादि दोषदर्शक है।

(ओ) केवल जौका सेवन करना और इतर अन्नका सेवन बिल्कुल न करना यह स्वभाव विरुद्ध नियमका उदाहरण है।

आयुर्वेदीय परिभाषा



पुट यन्त्र आदि विधि

(१) गजपुट—एक गज चौड़ा और एक गज गहरा (लगभग २७ इंच) खड्डाकर, उसमें गोबरी भर, बीचमें औषधके संपुटको रखकर अग्नि देनेसे गजपुट अग्नि कही जाती है। गजपुटके लिये २।। हाथका गोल खड्डा बनवाकर पक्का ईंटोंसे बंधवा लेनेसे २७ इंच लगभगका खड्डा तैयार हो जायगा। खड्डेकी गोलाई जितनी नीचे हो, उससे ऊपरके भागमें ३-४ इंच कम रहना चाहिये। इस रीतिसे खड्डा तैयार होनेपर अग्नि प्रमाणसे लगती है। ईंटोंसे बांधें बिना अग्निका तेज जमीनमें बहुत चला जाता है। संपुटके ऊपर १-२ कण्डोंकी तह रख इस तरह संपुट बीचमें रखना चाहिये। संपुट स्वांग शीतल होनेपर ही गजपुटमेंसे निकालना चाहिये।

(२) वराह पुट—उपरोक्त विधिसे एक हाथ (१८ इंच) का खड्डा तैयार करा उसमें अग्नि देनेसे वराह पुट कहा जाता है।

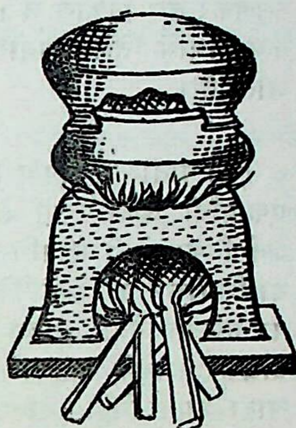
(३) कुक्कुट पुट—उपरोक्त विधिसे ९ इंचका खड्डा बना उसमें अग्नि, देनेसे कुक्कुट पुट कहलाता है।

(४) सरावसंपुट—दो मिट्टीके सराव, समान नाप वाले लेवें। इनमेंसे एकमें औषध रखें, फिर दूसरेको ऊपर ओंधा रखें तथा संधिपर चारों ओर चिकनी मिट्टीमें भिगोया कपड़ा लपेट देवें। ऊपर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लगाकर सुखा देवें।

सूचना—सराव संपुट करनेके पहिले सरावोंकी धारायें पत्थरपर जल, डाल, घिसकर चिकनी बना लेवें दोनों सरावोंकी किनारी समान ही होनी चाहिये। एवं सराव फूटे हुये या कच्चे न हो यह भी देख लेना चाहिये।

(५) डमरूयन्त्र—दो हांडियां ऐसी लें कि जिनमें नीचेकी हांडीसे ऊपर की हांडी बड़ी हो। परन्तु मुंह दोनोंके बराबर हों। इन हांडियोंके भीतर चूना अथवा चाक मिट्टीका लेप अच्छी तरहसे करके सुखा लें फिर दोनों हांडियोंके मुंहको पत्थरपर जल डालकर घिसें और संधि बराबर मिल जाय ऐसी किनार बना लें जिससे संधिमेंसे पारा बाहर न निकल जाय। इस तरह हांडी तैयार होनेपर छोटी हांडीमें सिंगरफ, जो तीन घण्टे या अधिक समय तक नींबूके रसमें पीसकर सुखाया हो, वह भरें। पश्चात् बड़ी

हांडीको छोटी हांडीके ऊपर ओंधी रखकर दोनोंकी संधि वज्र मुद्रासे बन्द करें। अथवा एक भाग चूना और दो भाग गेहूँके आटेको जलसे मिलाकर सन्धि वन्द करें या लोहेके तारसे बांधकर संधिपर कपड़-मिट्टी करें। मजबूत बन्द न होनेसे संधिको तोड़कर पारा निकल जाता है।



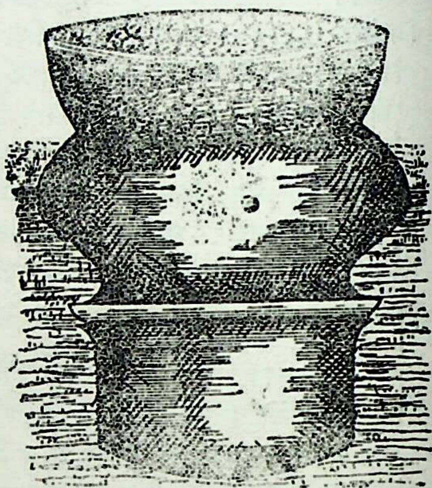
यन्त्र सूखनेसे चूल्हेपर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि देकर पारा उड़ा लें। ऊपरकी हांडीपर ४-८ घंटे कपडेकी तह,जलसे भिगोकर रखें। कपड़ेको वार-बार गरम होनेपर ठण्डे जलसे भिगो लें। इतना सम्हाल रखें कि नीचेकी हाँडीपर जलकी बूंदें न गिर जायें अन्यथा हाँडी फूट जायगी। १२ घण्टे बाद यन्त्र स्वांग शीतल होनेपर ऊपरकी हाँडीमें लगे हुए पारेको कपड़ेसे पोंछ; निकालकर वस्त्रसे छान लें। कदाचित पारा पूरा न निकला हो और सिंगरफमें रह गया हो तो पुनः इस यन्त्रद्वारा निकाल लें।

(६) नलिका डमरू यन्त्र—उपरोक्त विधिसे डमरूयन्त्रको (दो हांडियोंको) कलईसे पुतवा लें। फिर ऊपरकी हांडीके बराबर मध्यभागमें छेद करें। छेदमें ४-६ अंगुल लम्बी चाक मिट्टीकी अथवा चिकनी मिट्टीकी नली बनवाकर लगा दें। नलीके भीतर मटर जा सके उतना बड़ा छिद्र रखें। इस नलीको हाँडीके छिद्रमें घुसा चारों ओर मिट्टी लगाकर सन्धि मजबूत बन्द करें। इस विधिसे ऊपरकी हाँडी तैयार होनेपर, नीचेकी हाँडीमें औषधि भरें। फिर डमरू यन्त्र तैयार कर चूल्हेपर चढ़ावें। धूआँ नलीमेंसे निकलता रहे। पश्चात् इस नलीके चारों ओर रससिंदूर आदि औषधि जम जायगी; और नीचेकी हाँडीके पैंदेमें कज्जलीके साथमें डाली हुई धातुकी भस्म हो जायगी। इस तरह इस यन्त्रद्वारा एक साथ दो कार्य होते हैं।

(७) तैल पातन यन्त्र—चीनी अथवा पीतलके एक बरतनपर स्वच्छ कपड़ेका टुकड़ा फैलाकर बरतनके किनारेपर मजबूत बांधें। फिर कपड़ेके ऊपर बीचमें तैल निकालनेकी औषधिका चूर्ण रखें और उसपर अभ्रकका टुकड़ा इस तरह रखें कि औषधि और कपड़ा बराबर ढक जाय बादमें अभ्रकके ऊपर पूरे अंगारोंसे भरे हुए लोहेके तवेको रखें, जिससे एक आध घण्टेमें तेल नीचे टपक जाय।

सूचना—कपड़ेको तवा न लग जाय, इस बातकी सम्हाल रखें अन्यथा कपड़ा जल जाता है और सब औषधि नीचे बर्तनमें गिर जाती है। तवेपर सतत पंखेसे वायु करते रहें जिससे अग्नि सतेज रहे। एक आध घण्टे बाद तवे और अभ्रकको दूर करके देख लें। तेल टपक गया हो तो कपड़ेको खोलकर तेल निकाल लें। इस विधिसे तैल कम निकलता है। अतः जब कम मात्रामें तेल उपयोगमें लेना हो तब यह तैल पातनयन्त्र काममें आता है।

(८) पातालयन्त्र पहली विधि एक हाँडी लेकर उसमें तेल या अर्क निकालनेकी औषधि कूटकर या भिगोकर भरें। हांडीके मुंह-पर मजबूत नया अच्छा कपड़ा बाँधकर कपड़ेके बाहरकी बाजूमें आटा अथवा मिट्टी लगा दें। फिर हांडीके मुंहके बराबर एक कलई किया हुआ भगोना रख, सन्धिको कपड़मिट्टी लगाकर बन्द करें। जरूरत हो तो लोहेके तारसे भी बांध लें। पश्चात् जमीनमें खड्डा-कर, उसमें इस यन्त्रको रखें। भगोना नीचे और हांडी ऊपर हांडीका पौना भाग जमीनमें रहे इतना बड़ा खड्डा बनावें। खड्डे यन्त्रके चारों और मिट्टी अच्छी तरहसे दबाकर भर दें, ताकि नीचे वाले भगोनेको अग्निकी उष्णता न पहुँचे। हांडीके ऊपरके भागमें अग्नि तीनसे १२ घण्टे तक औषधिके परिमाण अनुसार निश्चित समय तक जलावें। अति खुले भागमें जहां तेज वायु चलती हो, वहांपर अग्नि न दें। क्योंकि ऊपरके बर्तनको अग्नि कम लगती है, और नीचेके बर्तनको उष्णता पहुँचेगी। फिर अर्क कम और जला हुआ निकलेगा।

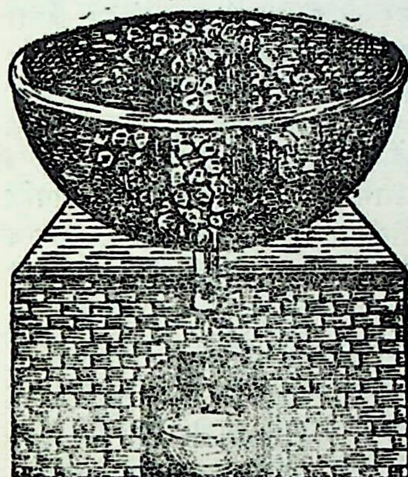


दूसरी विधि—चूल्हेपर एक मिट्टीकी नांद रखें और उस (नांद) पर लोहेकी या मिट्टीकी परात रखें। परात और नांदके बीच एक सीधमें छिद्र बना दें। नांदमें छिद्र इतना बड़ा बनाया जावे कि बोतलके गलेका भाग ४ अंगुल बाहर निकला रह सके, बोतलका यह गले वाला भाग नांदके छिद्रसे होता हुआ चूल्हेके पोले भागकी और रहेगा। और परात जो नांदपर रखी गई है उसका छिद्र इतना बड़ा बनावें कि उसमेंसे बोतलका पेंदा बाहर हो

सके ताकि बोतल नीचेकी नांद और ऊपरकी परातके सहारे सीधी और स्थिर रह सके ।

अथवा एक ही परात रख उसमें छिद्रकर शीशीको लोहेका कड़ा (Ring) या तारके आधारसे सम्हाल पूर्वक रख लें ।

शीशीपर ५-७ कपड़ मिट्टी करें । कपड़ मिट्टीकी विधि आगे कूपीपक्व रसायन प्रकरणमें लिखी है ।



जिस औषधिका तैल निकालना हो, उसे शीशीमें भर, शीशीके मुंह में लोहेके तारोंकी गोली डाल मुख बन्द कर दें । जिससे औषधि बाहर न गिर जाय और तैल बराबर झरता रहे । फिर इस शीशीको परातमें रख कर दोंनोंकी सन्धिको मिट्टीसे बन्द करें, और चूल्हेके भीतर शीशीके नीचे एक कांचका गिलास रखें, जिसमें तैल गिरता रहे । शीशी और गिलास दोनों एक नलीके भीतर रहें ऐसी लोहेके पतरेकी नली बनाकर रखें, जिससे तैल भापके साथ उड़ न जाय और बराबर गिलासमें टपकता रहे । इस तरह योजना होनेपर ऊपर वाली परातमें अग्नि देते रहें, जिसमें तैल टपकता रहे ६-८ घण्टे तक अथवा जहां तक तैल निकलता रहे तब तक अग्नि दें । तैल निकलना बन्द होनेपर अग्नि देना बन्द करें, चूल्हेपर नांद रखकर यन्त्र तैयार करनेसे बाहरसे तैल टपकता देखनेमें आ सकता है ।

सूचना—सोंठ, लौंग, आदि शुष्क वस्तुओंका तैल निकालना हो तो उन्हें कूटकर, रात्रिको जलमें भिगो दूसरे दिन एक घण्टा धूपमें रखकर तैल निकाल लें ।

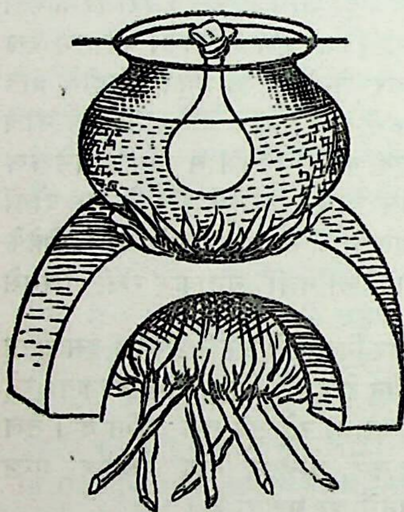
(९) बालुका गर्भपाताल यन्त्र—दूसरी विधिसे पाताल यन्त्र बना शीशी के चारों और परातमें तीन-तीन अंगुल जगह खाली रहे; और शीशीसे ४ अंगुल ऊंचा रहे, ऐसी लोहेकी एक नली बनाकर शीशीके चारों और परात में रख दें । फिर नलीके भीतर शीशीके चारों और रेत भरें और नलीके बाहर परातके भीतर गोबरी जलावें । इस विधिसे अथवा अर्क निकालने के यन्त्रको बालुका गर्भ-पाताल यन्त्र कहते हैं ।

(१०) बालुका यन्त्र—इस यंत्रकी विधि "कूपीपक्व रसायन" में लिखी जायगी।

(११) लवणयन्त्र—मिट्टीकी हाँडीमें नमकके भीतर औषधिके संपुट को दबाकर चूल्हेपर चढ़ावें। फिर निश्चित समय तक अग्नि देकर औषधि को सिद्ध करें। इस तरह तैयार किए हुए यन्त्रको लवण यन्त्र कहते हैं।

लवणयन्त्र और बालुकायन्त्र, दोनोंकी कृतिमें समानता है। लवणयंत्र का विधान होनेपर हाँडीमें नमक भरकर औषधिके संपुटको दबाया जाता है और बालुका यन्त्रमें रेतके भीतर संपुट अथवा बोतलको रखा जाता है। अग्नि देनेकी विधि दोनोंमें समान है।

(१२) दोलायन्त्र—कपड़ेकी ४ तहें करके एक छोटी थैली बना लें। उसमें ३ भोजपत्रोंमें लपेटकर औषधि मिश्रित पारेका गोला अथवा अन्य स्वेदन देनेकी औषधिको रखें। थैली के ऊपरके भागको दृढ़ डोरीसे बांधकर हाँडीमें लटकावें। हाँडीके ऊपर लोहेकी शलाका रखें, जिसपर पारे वाली थैलीकी डोरी बांध देनेसे हाँडी में थैली झूलेकी तरह लटकती रहेगी। थैली हाँडीके पेंदेसे एक अंगुल ऊंची रहनी चाहिये। थैलीका कोई भाग हाँडीको नहीं लगना चाहिये, अन्यथा हाँडीके तलेमें लगनेसे कपड़ा जल जायगा, फिर थैलीमेंसे औषधि हाँडी में गिरकर नष्ट हो जायगी।



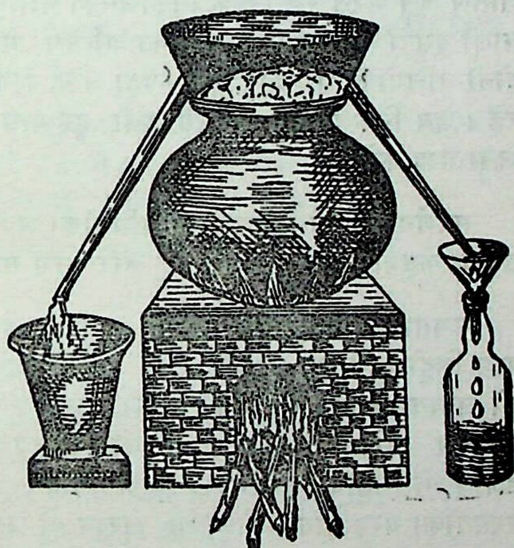
हाँडीमें काँजी, गोमूत्र, दूध, तक्र, तैल अथवा अन्य शोधनीय-द्रव्य इतना भरें कि थैलीमें भरी हुई औषधि अथवा पारदका गोला द्रवमें डूबा रहे। गोमूत्र दूध आदि उफान आकर बाहर न गिर जाय, इसलिए पहिलेसे हाँडी बड़ी लें। अग्नि मन्द-मन्द नियत समय तक दें। कांजी, गोमूत्र, आदि द्रव कदाचित् समयसे कुछ पहिले सूख जाय तो पुनः ऊपरसे डालें। क्योंकि, द्रव्य बिल्कुल सूख जानेपर ऊपरसे कांजी आदि पदार्थ डालनेसे हाँडी फूट जायगी।

(१३) वाष्प यन्त्र—एक भगोने या हाँडीमें जल अथवा काँजी भरें और बरतनके ऊपर लोहेकी शलाका रखें। फिर बादाम, पिस्ता अथवा

अन्य तैल निकालनेकी औषधिको कूट, पोटलीमें बांधकर इसे डोरेसे उस शलाकापर बांधकर लटका दें। जलसे पोटली ऊँची रहे ताकि उसे भाप लगती रहे, इस तरह यन्त्र तैयारकर चूल्हेपर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें फिर ओषधि पसीजनेपर पोटलीको निकालकर तैल निचोड़ लें।

(१४) स्वरसयन्त्र—बिल्वपत्र, अड्रूसा, पियाबाँसा आदि खुष्क द्रव्योंका स्वरस निकालनेके लिए पहले इनको इमामदस्तेमें कूटे। फिर एक कटोरदानमें भरकर ढक्कन मजबूत ढक दें। पश्चात् चूल्हेपर कड़ाहीको चढ़ा कड़ाहीमें ईटके ३ टुकड़े रखकर उनपर कटोरदान रखें उसपर एक पत्थर रखें, फिर कटोरदानके चारों ओर जल इतना भरें कि कटोरदानके भीतर प्रवेश न करे। इस तरह यन्त्र बननेपर नीचे अग्नि जलावें। लगभग आध घण्टेमें औषधि नरम होनेपर बाहर निकाल निचोड़ लें।

(१५) नलिकायन्त्र – (अर्क निकालनेका भभका) भीतरसे कलई की हुई तांबे की डेगची या मिट्टी की डेगची जैसी हांडी लें ऊपर ताँबेकी बाल्टी जैसा बरतन बनवाकर रखें। जिसकी ४ अंगुल किनारी नीचे वाली डेगचीमें चली जाय। फिर सन्धिको अच्छी तरह बन्द करें। ताकि अर्क भाप होकर बाहर न निकल जाय। ऊपरकी बाल्टीके पैंदेमें एक औंधा कटोरा



कड़ाहीके आकारका जड़वालें। उस कटोरेमें ही कलई करवा लें। बाल्टीमें कटोरेके नीचेके भागमें एक नली लगा दें। जिसमेंसे अर्क बाहर निकलता रहे। नली इस तरह लगानी चाहिये कि बाल्टी डेगचीपर रखनेके समय नली डेगचीसे ऊपर रहे। जिससे भाप बाल्टीमें लगे हुए औंधे कटोरेमें इकट्ठी होकर नलीद्वारा बाहर निकलती रहे। बाल्टीके नीचेका भाग ज़ो यन्त्र बन्द करनेके समय नीचे डेगचीमें रहता है, उस जगहपर आध इन्चकी मुड़ी हुई किनारी वाली तांबेकी पट्टी नलीके समान ऊँचाईपर जड़वा लें। इसलिये कि नीचेकी डेगचीमेंसे भाप उत्पन्न होकर ऊपरकी बाल्टीके नीचे

औंधे जड़े हुए कटोरेमें लगे, और वह भाप अर्क रूप होकर तांबेकी मुड़ी हुई पट्टीपरसे नलीमें चली जाय। बाल्टीमें कटोरेके ऊपर एक दूसरी नली लगावें जिससे जल उष्ण होनेपर बार-बार निकाल सकें।

इस तरह यंत्र तैयार होनेपर जिस औषधिका अर्क निकालना हो, उसे ४ गुने पानीमें २४ घण्टे भिगोकर भरें। कोई-कोई औषधि जल मिलाये बिना भी भरी जाती है। डेगचीका १ हिस्सा खाली रखें और ३ हिस्सेमें औषधि युक्त जल रखें। पश्चात् ऊपरके बरतनको बैठा, सन्धिमें कपड़मिट्टी लगा, सुदृढ़ करें। कपड़मिट्टी अच्छी नहीं लगी होगी तो भाप बाहर निकलती रहेगी, जिससे अर्क कम निकलेगा।

यन्त्र तैयार होनेसे चूल्हेपर चढ़ाकर अग्नि जलाना आरम्भ करें। ऊपर के बरतनमें जल भरें। जल उष्ण होनेपर बार-बार निकालते जांय, और शीतल जल भरते रहें। अर्क निकालनेकी नलीके ऊपरमें एक मुड़े हुए सिरेवाली दूसरी नली लगा दें। उसका अन्तिम भाग बोतलमें रखें। फिर इन दोनों नलियोंकी सन्धिपर एक कपड़ा लपेट दें, जिससे अर्क बोतलमें गिरता रहे। जब निकलते हुए अर्कमेंसे जली हुई गन्ध आने लगे तब अर्क निकालना बन्द करें।

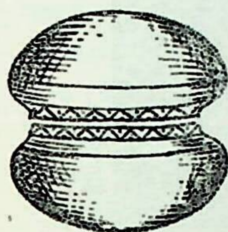
सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी औषधियोका अर्क इस यन्त्र द्वारा निकालनेसे उनका कड़वापन दूर हो जाता है और लाभ सत्वर होता है।

सूचना—यदि हरताल, गन्धक आदिका तैल निकालना हो तो दोनों पात्र मिट्टीके ही लेने चाहिये, और ऊपरके ढक्कनमें बाँसकी मुड़ी हुई नली को लगाना चाहिये। बाँसकी नलीका सम्बन्ध कांचकी नलीसे रखकर अर्क बोतलमें गिरे, ऐसी योजना करनी चाहिये। इस तरह शंखद्राव आदि तेजाब भी मिट्टीके बरतनोंका यन्त्र बनाकर निकालना चाहिये। धातुके बरतनोंका यन्त्र होगा तो बर्तन खराब हो जायेंगे और अर्क (तेजाब) भी दोष वाला बन जायगा।

(१६) आकाशपातन यन्त्र—एक मिट्टीकी खुले मुँह वाली हांडी लें। उसके पेंदेमें मिट्टीका लेप करके उसपर ईंट अथवा केलूका टुकड़ा (Tile) जमावें। ईंटके चारों और औषधि डालें और ईंटपर एक चीनी मिट्टीका गिलास रखें। फिर हाँडीपर एक तांबेकी ऐसी डेगची रखें, जिसके बाहर कलईकी हो। उस हाँड़ी और डेगचीकी संधिपर, गेहूँका आटा या मिट्टी लगा दें जिससे भाप बाहर न निकल जाय। इस तरह यन्त्र तैयार होनेपर उसे चूल्हेपर चढ़ावें। इसके बाद डेगचीमें जल भर दें। उस जलके उष्ण

हो जानेपर उसको बार-बार निकालकर शीतल जल भरते रहें, जिससे अर्क डेगचीके पेंदेमें लगकर भीतरके गिलासमें टपकता रहे। इस रीतिसे ३ घण्टे अथवा कुछ अधिक समय तक आँच लगनेसे अर्क निकल जाता है। यन्त्र स्वयं शीतल होनेपर सम्हाल पूर्वक खोले और अर्कको निकालकर फिल्टर पेपरसे बोतलमें छान लें।

(१७) भूधर यन्त्र—एक हांडीमें आधे हिस्से तक जल भरें और दूसरी हाँडीमें पारा मिली हुई औषधिका लेपकर देवें। फिर उस हाँडीको पहिली हाँडीके ऊपर औंधी रख सन्धि स्थानपर कपड़-मिट्टी लगा अच्छी रीतिसे बन्द करें और जमीनमें गड्ढा करके यन्त्रको दबा दें। ऊपरकी हाँडीके पेंदेका भाग बाहर दीखता रहे, उस तरह योजना करें। पश्चात् ऊपर वाली हाँडीके ऊपर गोबरी जलावें। लगभग १०-१२ घण्टे तक अग्नि देनेसे पारद नीचे वाली जलसे भरी हुई हाँडी में चला जायगा। पारेका अधःपातन करनेके लिये इस यन्त्रका उपयोग किया जाता है।



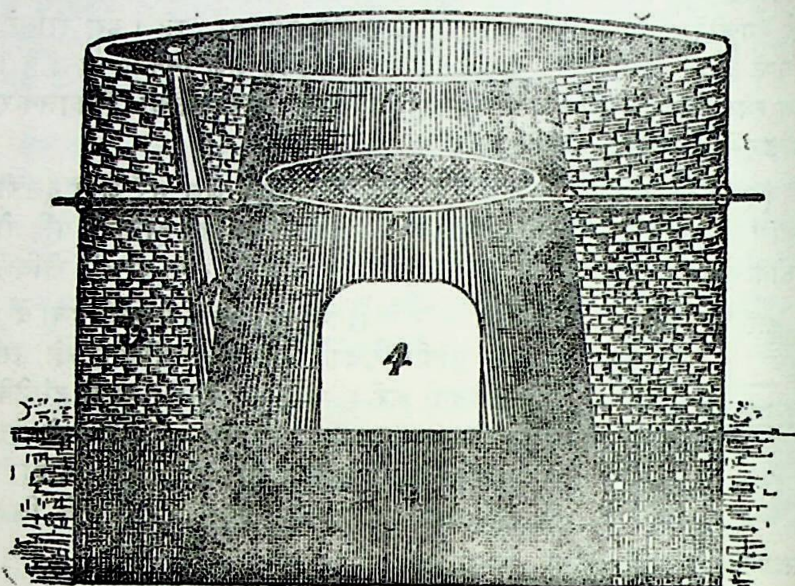
द्वितीय विधि—जमीनमें १। हाथका चौकोर खड्डाकर उसके बींचमें भी एक बालिश्त चौकोर खड्डा करें। इसमें शराब रख ऊपर २-३ अंगुल मिट्टी दबा दें। फिर गड्डेमें गोबरी भरकर अग्नि देनी चाहिये।

(१८) तिर्यक् पातन यन्त्र—इस यन्त्रकी विधि कपूीपक्व रसायन प्रकरणमें लिखी है।

(१९) वज्रमुद्रा—पीपलकी लाख, लोहचूर (लुहारकी भट्टीके पास जो लोहेका मैल विखरकर पड़ा रहता है), रुई और सैंधानमक प्रत्येक १-१ तोला रेत २ तोले और चिकनी मिट्टी ४ तोले लेकर सबको मिला लें फिर थोड़ा-थोड़ा जल डालकर घनपर हथौड़ेसे खूब कूटें। कूटते कूटते जब चिकना कल्क हो जाय, तब उसे डमरू यन्त्रकी सन्धिपर लगावें। (रूई १ तोला अधिक हो जाती है अतः २.३ माशे मिलावें)।

(२०) साधारण मुद्रा—चिकनी मिट्टी एक दिन जलमें भिगोकर छान लें। फिर उसमें चौथा हिस्सा गोबर और चौथा हिस्सा घोड़ेकी लीदको मिलाकर भस्म और इतर औषधियोंके सम्पुटपर लेप करें। यदि डमरू यन्त्रकी सन्धि बन्द करना है तो एक भाग चूनेको दो भाग गेहूँके आटेमें मिला जलमें सानकर लगावें।

(२१) सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री—जमीनमें एक बालिश्त गहरा और एक गज (३६ इंच) गोलाई वाला खड्डा खुदवाकर उसमें चारों ओर ईटोंकी दीवार बनावें।



१-२—जमीनके भीतर दीवार ६ इंचकी चारों ओर गोल ।

३—भस्मका संपुट रखनेके लिये तथा गोबरी और लकड़ी भरनेके लिये जमीनके भीतर खाली हिस्सा २४ इंच चौड़ाई । ऊँचाई जमीनके ऊपरके भाग तक ९ इंच ।

४—भट्टीका मुंह ९×९ इंचका ।

५-६—दीवार । जमीनके ऊपरके लोहेके डंडों तक ऊँचाई ३३।। इंच ।

७-८—लोहेके डण्डे ४ हैं भट्टीके भीतर ४।। इंच, दीवारमें दबा हुआ ८।।। इंच । शेष भाग भट्टीसे बाहर है । बाहरका हिस्सा ज्यादा होनेपर भी चित्रमें जगह कम दिखाया गया है ।

९—लोहेके डण्डेके पास भीतरका खाली भाग गोलाई १८।। इंच ।

१०—लोहेकी जाली । चारों ओर २-२ इंच जगह खाली है ।

११-१२—ऊपरकी दीवार । चौड़ाई ९ इंच ।

१३—ऊपरके भागमें भट्टीके भीतरकी खाली जगह । चौड़ाई १७।। इंच।

१४—लोहेकी नलीके नीचेका भाग । चौड़ाई १० इंच ।

१५—लोहेकी नलीके ऊपरका सिरा । चौड़ाई २। इंच । दीवारके मध्य भागमें हैं । जब दीवार १३।। इंच (१८ अंगुल) ऊंची बन जाय तब पैरके अंगूठे जितनी मोटी और एक एक हाथ लम्बी लोहेकी सांट दीवारमें आ जाय, ऐसे ४ छेद चारों ओर समान दूरीपर रख लें, जिससे सांटोंको जब चाहें तब इच्छानुसार रख और निकाल सकें । सांटे भट्टीके भीतर छः छः

अंगुल रहेंगी और शेष हिस्सा दीवारमें तथा भट्टीके बाहर रहेगा । इन सांटों के ऊपर औषधिका संपुट रखनेके लिये लोहेकी जाली रखी जायगी । सांटों के छिद्रके ऊपर १० अंगुल दीवार बनावें, जिससे सब मिलकर २८ अंगुल ऊंची दीवार बनेगी । दीवार भीतरसे इस तरह संकड़ी करते जायें कि, लोहेकी जाली २२ अंगुल गोलाई वाली, उन सांटोंपर रह सके । दो दिशाओंमें बराबर सामने आंच देनेके लिये दो मुंह एक एक बालिश्त लम्बे चौडे बनावें, और भट्टीमें तीसरी ओर एक हाथ लम्बी, नीचे मुठ्ठी चली जाय, ऐसी गोल १० इंचकी चौड़ाई वाली और ऊपरमें २। इंच (३ अंगुल) छेद वाली लोहेकी नली ऊपरको उठी हुई तिरछी लगावें । इस नलीके भीतर का भाग जमीनके ऊपरसे दीवारमें शुरू हो जायगा और नलीका ऊपरका भाग (दीवारमें) तिरछा होकर ऊपर निकलेगा । नीचे रखे हुए दो मुंहोंके मध्य भागमें (दीवारमें) तीसरी ओर नली रखें जिससे नलीके नीचेके मुंह से धूआं और अग्निकी लपटें घुसेंगी और ऊपरके मुंहमेंसे बाहर निकलेंगी । बराबर तीव्राग्नि देना हो तो, संपुटके चारों ओर लकड़ी जलानी पड़ेगी और उस नलीके मुंहको ईंटकी डाट लगाकर बिलकुल बन्द करना पड़ेगा । मन्द अथवा मध्यमें अग्नि देना हो, तो इस नलीमेंसे डाट निकाल डालें । दो मुंह बनाये हैं, इनके मध्यम भागमें चौथी दिशाकी दीवारमें थोड़ा ऊँचा एक बालिश्त लम्बा चौड़ा तीसरा मुंह बना लें, जिसमेंसे कलछे को धातुओंका रस करनेके समय डाल सकें । भट्टी तैयार हो जानेपर बाहर और भीतर अच्छी रीतिसे प्लास्टर कर लें, ताकि भट्टी वर्षों पर्यन्त काम दे सके । गजपुट देनेके समय लोहेकी जाली निकाल लें, केवल लोहेकी सांट रहने दें । एवं तीनों मुंहोंको ईंटोंसे बन्द करें तथा मध्य भागमें सम्पुटको रखकर ऊपर और नीचे अग्नि दें । वराह पुट देना हो, तो भट्टीमें लोहेकी जाली रखें और भट्टीके ऊपर लोहेका चूल्हा रखें । पश्चात् नीचे और ऊपर गोबरी भर, बीचमें सम्पुट रखकर अग्नि दें । इस तरह एक ही भट्टीसे अनेक कार्य एक साथमें होते हैं । काम करने वालोंको धूआं अथवा गर्मीसे विशेष त्रास नहीं होता और थोड़ी लकड़ीसे कार्य भी विशेष होता है ।

(रसायनसारके आधारसे)

(२२) सिद्ध भ्राष्ट्री—इस भट्टीका उपयोग हम अनेक वर्षोंसे कर रहे हैं । इसके बनानेकी विधि कूपीपक्व रसायन प्रकरणमें दी जायगी ।

(२) औषधनिर्माण परिभाषा

(१) कषाय—इसके ५ भेद हैं । स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट । इन सबको बनानेकी विधि कषाय प्रकरणके प्रारम्भमें दी गई है ।

(२) अर्क निकालनेकी विधि—गीली अथवा सूखी औषधिका अर्क नलिकायन्त्रद्वारा निकल सकता है । सूखी औषधिको २४ घण्टे पहिले ८ गुने

जलमें भिगो दें और दूसरे दिन अर्कको निकाल लें। पलाशकी जड़को निकाल, छोटे-छोटे टुकड़ेकर उसी दिन अर्क निकालना पड़ता है, अन्यथा जड़ सूख जानेपर अर्क बहुत कम निकलता है। सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी औषधियोंको एक दिन पहिले भिगोकर अर्क निकालनेसे अच्छा काम देता है, और कड़वापन चला जानेसे सबके उपयोगमें भी आ सकता है।

(३) पुटपाक विधि—औषधियोंका कल्ककर उसके ऊपर गंभारी, बड़ अथवा जामुन आदिके पत्तोंको अच्छी प्रकारसे लपेट दें, फिर उसपर दो अंगुल मिट्टीका लेपकर अग्निमें रखें। जब दहकते अंगारेके सदृश वर्णवाला हो जाय तब; सम्पुटको निकाल लेवें पश्चात् मिट्टी और पत्तोंको दूरकर कल्कके रसकी निचोड़ लेवें।

(४) अवलेह बनानेकी विधि—क्वाथ आदिको पुन: पकानेसे जो गाढ़ा हो जाता है उसे रस क्रिया अवलेह और लेह कहते हैं। अवलेहमें चीनी डालनी हो, तो चूर्णसे चौगुनी; गुड़ डालना हो, तो चूर्णसे दूना और द्रव पदार्थ मिलाना हो तो, चूर्णसे चौगुना डालें। अवलेहमें जब चाशनीके सदृश तार निकलने लगे पानीमें डालनेसे डूब जाय, चाशनी कड़ी हो जाय, अंगुलीके दबानेसे अंगुलीकी रेखा उठ आवे और गंध तथा रस अपूर्व हो जाय तब, अवलेहको भली भांति पका हुआ जानें।

(५) घृत और तैल बनानेकी विधि—पहिले औषधियोंका कल्क करें। पश्चात् उससे चौगुना घृत अथवा तैल और तैलसे चौगुने द्रव पदार्थ लें। सबको कलईकी हुई पीतलकी कड़ाईमें भर कर पकावें। द्रव-पदार्थके जल जानेपर घृत अथवा तैल शेष रहे, तब कड़ाईको चूल्हेपरसे, नीचे उतार लेवें और घृत या तैलको ऊपरसे सम्हालपूर्वक निकाल लेवें।

अथवा औषधियोंके कल्क या चूर्णमें उससे चौगुना पानी डालकर पकावें, जब चौथा भाग शेष रहे तब, उसमें घृत अथवा तैल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जाने तक पकावें। यहां चौगुना पानी डालनेको कहा है वह गिलोय आदि कोमल पदार्थोंके लिये है; सोंठ आदि सूखे पदार्थोंके लिये अठगुना और देवदारु आदि कठिन सूखे पदार्थोंके लिये सोलह गुना जल डालें।

सूचना—घृत, तैल और गुड़पाकको एक ही दिनमें सिद्ध नहीं करना चाहिये।

घृत सिद्ध हो जानेके समय झाग बन्द हो जाते हैं तब; सुगन्ध आने लगती है। परन्तु तैल सिद्ध होनेके पहिले झाग उत्पन्न होते हैं तैल साफ दिखाई देने लगता है और सुवास आती है।

घृत और तैल पाककी परीक्षा-कल्कको अंगुलीसे दबाकर मसलें। बत्ती की तरह हो जाय और अग्निमें डालनेसे शब्द न होवे तो पाक सिद्ध समझें। विशेष विचार घृत तैल प्रकरणके आरम्भमें दिया है।

(६) कांजी बनानेकी विधि—१ सेर चावलोंको १६ गुने जलमें उबालें

पक जानेपर ऊपरका माँड ले लें। फिर एक सेर कुलथीका क्वाथकर, छान कर मिला लें। पश्चात् माँड और क्वाथको एक मिट्टीकी हाँडीमें सरसोंका तैल चुपड़कर डालें। फिर उसमें राई, जीरा, सैंधानमक, हींग, सोंठ और हल्दीका चूर्ण, पाँच-पाँच तोले तथा थोड़े बांसके पत्ते और आधा सेर उड़द के बड़े डाल, मुंह बाँधकर तीन दिन रख दें। चौथे दिन जब खट्टी वास आने लगे, तब, काँजी छानकर उपयोगमें लेवें।

द्वितीय विधि—१ सेर चावल या ज्वारको १६ गुने पानीमें उबालें। चतुर्थांश पानी जल जाय और ३ भाग शेष रहे तब उतारकर ३-४ दिन रहने दें। खट्टी गन्ध आनेपर छान लें।

पीनेके लिये उपयोगमें लेना हो तो, प्रथम विधिमें लिखे अनुसार मसाला मिलाकर तैयार करें, अथवा प्रकृतिके अनुकूल मसाला मिलावें। औषधियों के शोधनके लिये सैंधानमकको छोड़कर अन्य मसाला मिलानेका आग्रह नहीं है।

(७) चावलके धोवनकी विधि—दो तोले चावलोंको मोटा-मोटा कूटें। फिर जलसे धोकर ८ गुने जलमें भिगों दें। एक घण्टे बाद मसलकर छान लें।

(८) लोहबानके फूल तैयार करनेकी विधि—दस तोले लोबानको तवेपर रखकर मन्दाग्नि दें। जब लोबान पतला हो जाय तब, ऊपर कांचका प्याला उल्टा रखें और अग्नि थोड़ी तेज करें, जिससे थोड़े समयमें लोबानका फूल भाप-रूप होकर प्यालेके नीचे लग जायगा। किन्तु भीमसेन कर्पूर बनाने की विधिके अनुसार पहिलेसे ही सन्धि बन्दकर लेना विशेष लाभदायक है।

(९) भीमसेनी कर्पूर बनानेकी विधि—कपूर २ तोले, छोटी इलायची के बीज ६ माशे, समुद्रफेन, निर्मली, नागरमोथा, रसोंत और अगर ३-३ माशे, केशर १॥ माशा और कस्तूरी ६ रत्ती लें। सबको खरलमें डाल गुलाब जलमें घोटकर एक टिकिया बनालें। पश्चात् टिकियाको काँसीके कटोरे में रखें और ऊपर कांसीका दूसरा कटोरा औंधा रखकर दोनोंकी सन्धिको पानीसे साने हुए उड़दके आटेसे बन्द करें, बादमें संपुटको छोटेसे चूल्हेपर रखकर नीचे तिल्लीके तैलकी मोटी बत्तीका दीपक जलावें, कटोरे के ऊपर खादीकी आठ दस तहकर पानीमें तर करके रखें। पाँच पाँच मिनट बाद कपड़ा बदलते जाय, इस रीतिसे ३ घण्टे तक अग्नि दें। फिर ठण्डा होनेपर यन्त्रको खोल ऊपर कटोरेमें लगे हुए पुष्पको निकाल लेवें। (र. सा.)

सूचना—अग्नि तीन घण्टेसे अधिक समय तक देनेसे ऊपर लगे हुए पुष्प नीचे गिरने लगते हैं। अतः अग्नि ३ घण्टे देकर बन्द करें। यदि टिकियामें कपूर रह जाय तो, दूसरे समय अग्नि देकर उड़ालें।

सूचना (नं० २)—जब तक सच्चा भीमसेनी कपूर (सुमात्रा और बोर्नियाके वृक्षकी छालमेंसे निकाला हुआ कपूर) मिल सके तब तक इस

प्रकारसे कृत्रिम बनाये हुये कपूरका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) यवक्षार बनानेकी विधि—जौके पंचांगकी गजपुटके खड्डे में जला कर श्वेत राख करें, फिर १६ गुने जलमें रात्रिको भिगो दें। सुबह ऊपर ऊपरसे जल सम्हालकर नितार लेवें और नीचेकी राखको फेंक देवें। इस जलको छान कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवें। पानी जल करके क्षार बन जायगा। कदाचित् क्षार काला हो जाय तो और थोड़ा जल मिलाकर छान लेवें। फिर उसी समय कड़ाहीमें डालकर क्षार बना लेवें, इसकी मात्रा २ रत्तीसे ८ रत्ती तक है।

सूचना—जौके पंचांगको खड्डे में जलनेसे विशेष परिणाममें राख मिलती है। बाहर जमीनपर जलानेसे वायुमें राख बहुत उड़ जाती है। राखके साथ काले कोयले रहे हों, उनको अलग निकाल डालें। सिर्फ सफेद राख का ही क्षार बनानेमें उपयोग करें।

उपयोग—अनेक समय केवल जवाखार ही खानेके लिये दिया जाता है। जवाखारसे मूत्र साफ आता है और अजीर्ण दूर होता है। क्षार विशेष करके घृतमें मिलाकर चटाया जाता है।

सूचना—कोई भी क्षार अधिक दिनों तक सेवन करनेसे वीर्य और हड्डी सन्धियोंको नुकसान पहुँचाता है। अतः आवश्यकतापर क्षारका कुछ दिनों तक सेवनकर फिर छोड़ देना चाहिये।

(११) अपामार्ग (आंधीझाड़ा) केलेका खम्भा, तिल (पञ्चांग) पीपल, पलाश, आक, इमलीकी छाल आदिका क्षार बनानेकी विधि—जवाखारके अनुसार जिस द्रव्यका क्षार बनाना हो, उसे जलाकर राख करें, फिर क्षार बना लें। पलाश पुष्पका क्षार मूत्र रोग, उदर रोग, मलेरिया आदिमें लाभ दायक है। केलेका क्षार अश्मरी और नेत्र रोगमें उपयोगी है।

(१२) स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) बनानेकी विधि—कच्छ आदि देशों में सौवर्चल (लाखा-लूणखी) नामक पौधेको काटकर सुखा देते हैं। फिर खड्डे में भरकर जलाते हैं, बारबार ऊपरसे और सूखे पौधेको डालते हैं। जब खड्डा राखसे भर जाता है, तब उसे मिट्टीसे बन्द कर देते हैं। १०-१५ दिनों में क्षारका ढेला जम जानेपर निकाल लेते हैं।

यदि वनौषधियोंसे बनाये हुए क्षारोंका रासायनिक दृष्टिसे पृथक्करण किया जाय तो, उनमें विवध वायवीय द्रव्य, धातवीय द्रव्य और अधात-वीय द्रव्य भिन्न-भिन्न मात्रामें प्रतीत होते हैं। सब क्षारोमें किसी न किसी अंशमें दूसरोंसे भेद रहा है। देश काल-भेदसे एक ही औषधके क्षारके द्रव्य परिमाणमें भी भेद हो जाता है। अतः प्राचीन आचार्योंने ऊसर भूमि, दीमक वाली भूमि, शुष्क भूमि आदि स्थानोंसे वनौषधियाँ लानेका निषेध किया है। एवं कौन कौन औषधि वसन्त ऋतु, शरद ऋतु आदिमें लानी चाहिये,

इस बातका भी विचार किया है।

सूचना—क्षार बनानेके लिये भस्मको मिट्टी, पत्थर या चीनी-मिट्टीके पात्रमें भिगोगा चाहिये। लोहा, पीतल आदि धातुओंके पात्र न लें।

भस्मको ८-१० गुने गरम जलके साथ मिला २-२ घण्टोंके अन्तरपर ४-६ बार डण्डेसे चला देना चाहिये। फिर २४ घण्टोंके पश्चात् ऊपर ऊपरसे स्वच्छ जल नितार, दूसरे मिट्टीके घडेमें छानकर एक दिन रख दें। पश्चात् सम्हालपूर्वक ऊपर-ऊपर साफ जलको नितार, मिट्टीके पात्रमें डाल, चूल्हेपर चढ़ा कर क्षार बना लेवें।

यदि क्षारको विशेष शुद्ध बनाना हो, तो आधा जल कम हो जानेपर उसमें एक-दो लोटे शीतल जल डालकर पात्रको नीचे उतार लेना चाहिये। ऐसा करनेसे मैल तलभागमें बैठ जाता है। फिर २-३ घण्टे पश्चात् स्वच्छ जलको ऊपर ऊपरसे दूसरे पात्रमें नितार चूल्हेपर चढ़ाकर क्षार बना लेना चाहिये। जब क्षारके रवे बंधने लगें, तब कुछ समय तक मन्द अग्नि देकर घोलको गाढ़ा होने देवें रवड़ी सदृश होनेपर कड़ाहीको उतार दूसरे मिट्टी या चीनी मिट्टीके पात्रमें डाल देवें। ताकि एक दो दिनमें सूर्यके तापसे सूखकर क्षार रवोंके रूपमें जम जाय।

यदि क्षारको सौम्य और विशुद्ध बनाना हो, तो उक्त क्षारमें जल डालकर जल्दी धो डालें। धोनेसे कुछ अंश क्षारका निकल भी जाता है, परन्तु विशेष अंश लवणका ही जलके साथ निकल जाता है। फिर उसे मन्द अग्नि पर सम्हालपूर्वक चलाते रहें, जल न जाय यह सम्हालें। यदि अग्नि तेज लग जायगी या कड़ाही अधिक समय तक अग्निपर रह जायगी, तो क्षारका रंग बदलने लगेगा। ऐसा हो तो तुरन्त नीचे उतार लेना चाहिये। इस सौम्य क्षारका सेवन जलके साथ भी हो सकता है। इतर क्षारोंके समान घृतके साथ लेनेकी आवश्यकता नहीं।

वर्त्तमान पाश्चात्य देशोंमें सज्जीक्षार (Soda Bicarb) विशेषत: नमक गंधकका तेजाब और चूनेके योगसे बनाया जाता हैं। इसी तरह यवक्षार (Potas Bicarb) का निर्माण भी खनिज द्रव्योंसे किया जाता है। इनके गुण भौतिक रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे तो लगभग वानस्पतिक क्षारके सदृश हैं, जीवनरसायन शास्त्रकी दृष्टिसे विभिन्नता या न्यूनता हो, तो इसका निर्णय दोनों प्रकारके क्षारों (वानस्पति और खनिज) का रोगियोंपर प्रयोग करनेपर ही हो सकेगा।

गुणधर्म—खनिज स्वर्जिकाक्षारके सेवनसे यकृत्, अग्न्याशय आदिके रसोंका स्राव बढ़ जाता है। तथा आमाशयिक रसकी तीक्ष्णता और अम्लता कम हो जाती है इस हेतुसे ऊबाक, वमन, अपचन, दाह, विष्टब्धता, उदरके कृमिरोग, मूत्रमें अम्लता, संधि स्थानोंमें पीड़ा आदि विकार शमन हो जाते

हैं। वानस्पतिक स्वर्जिकाक्षारका परिणाम समान ही है, या जीवनीय शक्ति पर अधिक लाभ पहुँचता है? इसका निर्णय अभी नहीं हुआ।

इस स्वर्जिका-क्षारकी उत्पत्ति सोडियम (Sodium of natr) उदजन (Hydrogen) और कार्बन (Carbon) के एक एक परमाणु और औक्सीजन (Oxygen) के ३ परमाणुओंके संयोगसे होती है। इसका रासायनिक संकेत "$NAHCO^3$" है।

खनिज यवक्षारके गुण स्वर्जिकाक्षारके अनुरूप किन्तु कुछ भेद वाले हैं। यह क्षार रक्त या मूत्रमें अम्लता बढ़नेपर विशेष हितकर है। यह अम्लतावृद्धिजन्य सन्धिपीड़ा, संधिशोथ, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्राश्मरी आदिको दूर करता है। फुफ्फुस और श्वासवाहिनियोंमें जब उष्णताकी वृद्धि होकर श्लेष्मा सूख जाता है, शुष्क कास चलने लगती है, या बंधा हुआ कफ निकलने लगता है, तब इस क्षारका सेवन लाभदायक है।

इसकी उत्पत्ति रसायन शास्त्र की दृष्टिसे पौटाशियम (Potassium Kalium), उदजन और कार्बनके १-१ अणु और ओक्सिजनके ३ परमाणुओंके संयोगसे होती है। इसका संकेत "$KHCO^3$" है।

यद्यपि सब क्षारोंके गुण कुछ-कुछ भेदवाले हैं, तथापि प्राचीन आचार्योंने सब क्षारोंके सामान्य रूपसे अग्नि सदृश, तीक्ष्ण, पाचन, भेदक, लघु, दृष्टिनाशक, वीर्यको हानिकर और रक्तपित्तकारक माना है। सब क्षार सामान्य रूपसे विबंध, आनाह, पीनस, यकृत्विकार, प्लीहावृद्धि, आमवृद्धि, कफप्रकोप, गुल्म, ग्रहणी और कृमि आदि रोगोंके नाशक हैं।

(१३) सौवर्चल नमक विधि—सज्जी खार (सोडा बाई कार्ब) को दूने जलमें मिलावें। फिर उसमें जितना सेंधानमक द्रव होकर गल जाय उतना मिलावें। उस पात्रको चूल्हेपर चढ़ाकर अग्नि देवें। जल सूखकर नमक अच्छी तरह गरम हो जाय, तब पात्रको नीचे उतार लेवें। शीतल होनेपर नमकको निकाल लेवें। (र. तं.)

गुणधर्म—सौवर्चल नमक उष्ण, चरपरा और लघु है। आमप्रकोप, उदरशूल, ऊर्ध्व वात गुल्म, मलावरोध, अफारा और अरुचि आदिको दूर करता है। इतर नमकोंकी अपेक्षा यह अधिकतर उष्ण वीर्य है।

(१४) ६४ प्रहरी पिप्पली बनानेकी विधि—छोटी अच्छी जातिकी नयी पीपलोंको कूट कपड़छान चूर्ण करें। फिर खरलमें डाल ८ दिन तक अहोरात्र मर्दन करानेसे ६४ प्रहरी पीपल तैयार होती है। अनेक चिकित्सकोंके मतानुसार खरलमें और बट्टेपर सुवर्णका पतरा लगाकर खरल करना चाहिये, जिससे सुवर्णका अंश भी पीपलमें मिल जाय। यह सुवर्णयुक्त विधि राजा-महाराजाओंके लिये है। सामान्य चिकित्सक, धर्मार्थ औषधालय और फार्मसी वालोंके लिये संभाव्य नहीं है।

मात्रा—२ से ६ रत्ती शहदके साथ या इतर भस्म और शहदके साथ दिनमें २ बार।

उपयोग—पीपलमें चरपरा, कड़वा, मधुर और स्निग्ध रस है; तथा लघु, अग्निप्रदीपक, मृदुविरेचक मधुर विपाकयुक्त, अनुष्णवीर्य वृष्य और रसायन गुण है। यह वातविकार, श्लेष्मप्रकोप, श्वास, कास, ज्वर, कृमि, गुल्म, अर्श, उदररोग, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहा, शूल आमवृद्धि आदिको दूर करती है; तथा स्तन्य (दूध) की वृद्धि करती है। ६४ प्रहर तक खरल करानेपर यह तत्काल गुण दर्शाती है।

प्राचीन आचार्योंने पीपलका उपयोग कफज-कास, जीर्णज्वर, प्लीहा-वृद्धि, अग्निमान्द्य, अरुचि, वातश्लेष्म ज्वर, अम्लपित्त, रक्तपित्त, कामला, हिक्का, मेदोवृद्धि, गृध्रसी, परिणामशूल, वातरक्त, कृमि, अर्श, प्रवाहिका, कफोदर और शोथ रोग आदिपर किया है। बालकोंके मसूड़ोंपर शहद पीपल घिसते रहनेसे विना कष्ट दांत बाहर निकल आते हैं।

आचार्योंने ताजी (कच्ची) पीपलको कफकर, स्निग्ध, शीतवीर्य, मधुर रसयुक्त, गुरुपाकी और पित्तनाशक कहा है। सूखी पीपलमें आमाशयके पित्त (Hydrochloric Acid) को नाश करनेका गुण कुछ कम हो जाता है।

पीपलको शहदके साथ सेवन करनेपर मेदोवृद्धि, कफ, श्वास, कास और ज्वर नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्द्धक, वृष्य, मेधाजनक और रसायन है। द्विगुण गुड़ मिलाकर सेवन करनेपर जीर्ण ज्वर, अग्निमान्द्य, कास, अजीर्ण, अरुचि, पाण्डु और कृमिरोग दूर होते हैं।

पीपलमें डाक्टरीके दृष्टि अनुसार हृदयोत्तेजक, यकृत्-उत्तेजक, सारक और रक्त-शोधक गुण अवस्थित हैं। इनमेंसे ६४ प्रहरी पीपलमें उत्तेजक गुण बढ़ जाता है। हृदयकी शिथिलता आजानेपर इस पीपलके चूर्णको शहद के साथ देनेसे हृदय अपना कार्य बलपूर्वक करने लगता है। तन्द्रा और मूर्च्छा आजाने पर पीपलका नस्य करानेसे रोगी तत्काल सचेत हो जाता है।

(१५) गिलोयका घन बनानेकी विधि—ताजी परिपक्व गिलोयको कूटकर चार गुने जलमें ६ घण्टे तक भिगोवें, पश्चात् खूब मसलकर गिलोय को निकाल देवें, फिर जलको छान, चूल्हेपर चढ़ाकर मन्दाग्नि देवें। अव-लेहके समान गाढ़ा होनेपर उतार लेवें।

सूचना—गिलोयमें सत्व रहा हो, तो फिर दूसरी बार जल मिलाकर उपरोक्त विधिसे घन बना लेवें।

(१६) गिलोयका सत्व निकालनेकी विधि—ताजी पक्की गिलोयको कूटकर चारगुने जलमें ३ घण्टे तक भिगो देवें। फिर अच्छी रीतिसे मसल कर जलको निकाल लें पुनः दूसरी बार जल मिला, एक घण्टे तक मसल-कर जल निकाल लें और इसी तरह तीसरी बार भी करें। बादमें सब जल

को छानकर एक बरतनमें रख लेवें। जैसे-जैसे जल नितरता जाय, वैसे-वैसे सम्हालपूर्वक कटोरीसे ऊपरका जल निकालते जाँय अन्तमें नीचेसे गिलोय का सत्व मिल जायगा। यदि सत्व मैला और कड़वा हो, तो और थोड़ा जल मिलाकर रख दें। फिर धीरे-धीरे नितरे जलको निकाल देवें। इस तरह करनेसे गिलोयका सत्व स्वच्छ हो जायगा।

उपयोग—गिलोय सत्व अनुपान रूपसे अथवा अकेला शहद या दूधके साथ सेवन कराया जाता है। यह शीतवीर्य है। जीर्ण-ज्वर, निर्बलता, दाह तृषा, प्रमेह, शिरदर्द, अरुचि, पित्तविकार, धातुकी उष्णता, मूत्रका पीलापन आदिको दूर करता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती, दिनमें दो या तीन समय, शहदके साथ।

सूचना—अधिक समय तक गिलोयको भिगोनेसे लेसदार हो जाती है, जिससे सत्वका रंग मैला हो जाता है। गिलोयके ऊपरका जो जल निकले उसका घन बनाकर उपयोगमें लेवें।

(१७) लाक्षारस विधि—लाक्षादि तैल बनानेके समय लाक्षा (लाख) का रस बनाना पड़ता है। लाखको ४ गुने जलमें मिला दसवां हिस्सा लोध दसवां हिस्सा सज्जीखार और थोडेसे बेरके पत्ते, जल गरम होनेपर डालनेसे लाखका रस हो जाता है। फिर उसे कपड़ेसे छान तैलमें मिलाकर तैलको सिद्ध करें। इस तरह सोहागेका चूर्ण मिलानेसे लाखका रस हो जाता है।

(१८) लौबानके तैल बनानेकी विधि—लोबान और सफेद राल समभाग मिलाकर बोतलमें भरे। फिर बोतलके मुखपर लोहेके तारकी गोली लगाकर पाताल-यन्त्रसे तैल निकाल लेवें। अथवा एक छटांक लोबानको करोंदेके रसमें खरलकर पांच तोले गोघृत मिलाकर शीशीमें भरें। फिर पाताल यन्त्रसे तैल निकाल लेवें। इस तैलका उपयोग शिरदर्दमें कपालपर लगाने और नपुंसकता दूर करनेके लिये इन्द्रियपर मालिश करनेमें होता है।

(१९) लोबानकी सत्वपातन विधि—लोबान १६ तोले, बच्छनाभ ४ तोले और सफेद सोमल ४ तोले लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर थूहर के एक बालिश्त लंबे और इतने ही मोटे डंडेके बीचमें खड्डाकर चूर्ण भरें; और उसे एक मिट्टीकी हाँडीमें सम्हालकर रखें। पश्चात् हाँडीके मुंहपर दूसरी हाँडीको रख, सन्धि बन्दकर डमरू यन्त्र बना लेवें फिर चूल्हेपर रख कर नीचे दीपाग्नि ४ पहर देकर सत्व उड़ा लेवें। ऊपरकी हाँडीपर गीला कपड़ा रखें। कपड़ा सूखनेपर कपड़ेको बार-बार बदलते रहें। ४ पहर पीछे यन्त्र स्वांग शीतल होनेपर ऊपर लगा हुआ सत्व निकाल लेवें।

वर्त्तमानमें ऊर्ध्वपातन यन्त्रद्वारा लोहबानका पुष्प उड़ा लेते हैं, उसे लोहबान पुष्प (Benzoic Acid) कहते हैं। इसका उपयोग डाक्टरीमें अधिक होता है। मात्रा २॥ से ८ रत्ती। यह उत्तेजक है। इसकी क्रिया समस्त

श्लैष्मिककलापर होती है, तथा श्वास प्रणालिका और मूत्र यन्त्रकी श्लैष्मिक कलापर विशेष होती है, जिससे कफ निःसारण और मूत्रजनन कार्यके लिये इसका व्यवहार होता है। सेवन करनेपर यह शोषित होकर फिर पेशाबमें हिप्युरिक एसिड रूपसे कुछ-कुछ निकलता रहता है।

स्थानिक प्रयोगसे वह उग्रता साधक है, इसके धूम्रपानसे श्वासनलिका और नासिकामें उग्रता उत्पन्न होकर जुकाम और कास रोगोंमे विलक्षण लाभ होता है। इसमें ज्वरघ्न गुण भी रहता है। एवं यह कीटाणुनाशक शोधक और रोपक होनेसे इसे शतधौत घृतमें मिला मलहम बनाकर दुष्ट व्रणपर उपयोगमें लिया जाता है।

(२०) सिंगरफमेंसे पारा निकलनेकी विधि—सिंगरफको नीमके पत्तोंके रस या नींबूके रसमें ३ घण्टे खरलकर कपरौटीकी हुई हाँडीमें भरें। फिर डमरूयन्त्रमें लिखे अनुसार पारद निकालकर कपड़ेसे अच्छी रीतिसे छान लें। नीचे जो गंधककी राख रह जायगी कदाचित् उसमें पारद रह जाय तो, पुनः संपुट करके निकाल लेवें। एक सेर सिंगरफमेंसे प्रायः तीन पाव पारद निकलता है।

डमरू यन्त्रके बदलेमें जैसी एक मिट्टीकी हाँडी डमरू यन्त्रकी विधिमें लिखी है वैसी घिसी हुई लेवें, और मिट्टीके दो तवे हाँडीके मुँहसे थोडे बड़े लेवें, जो हाँडीके ऊपर अच्छी तरह रह सकें और हाँडीकी संधिपर बराबर मिल जायें। पश्चात् नींबूके रसकी भावना दिया हुआ सिंगरफका चूर्ण भरकर हांडीको चूल्हेपर चढ़ावें और हांडीपर एक तवेको ढ़क दें। किसी स्थानमें सन्धि खुली न रही हो, यह देख लेवें, १५-२० मिनटपर तथा थोडा गरम होनेपर, नीचे उतारकर किसी मिट्टीके बरतनमें औंधा रख दें और तत्काल दूसरे तवेको ढक दें। नीचे उतारे हुए तवेमें लगे हुए पारदको ५ मिनिट पश्चात् कपडेसे सम्हालपूर्वक पोंछ लें, फिर दूसरा तवा गरम होनेपर उसे उतार लें और पहिले उतारे हुए तवेको ढ़क दें, इस रीतिसे लगभग १५-१५ मिनटपर तवे बदलते जायं। बार-बार तवेको हाँडीपर रखनेके समय जलमें भिगोये हुए कपड़ेसे पोंछ करके रखें।

सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी वालोंकी कही हुई इस विधिसे पारद सुगमतासे निकलता है। डमरू यन्त्र बनानेमें जो त्रास पहुँचता है, वह इसमें नहीं है। इसके अतिरिक्त डमरू यन्त्रमें सब पारद चढ़ गया या नहीं, इस बातका बोध समीचीन रूपसे नहीं होता। अनुमान मात्रसे अग्नि देनी पड़ती है। इस विधिसे पारद निकालनेमें यह शंका नहीं रहती। जब तक तवेपर पारद लगता रहे तब तक अग्नि देवें ओर पारद निकलना बन्द होनेपर कार्यको समाप्त करें। कदाचित् हाँडीमें सिंगरफ जम जाय और पारद ऊपर न उड़

सके, तो इस विधिमें कोई भी समय लोहशलाका चलाकर सिंगरफको बिखेर सकते हैं। ये सब डमरू यन्त्रकी अपेक्षा इसमें विशेषताएँ हैं। इस विधिसे निकालनेमें पारद पूर्ण परिमाणमें निकल आता है।

पारद निकालनेके समय सिंगरफमें शुद्ध लोहेका चूर्ण मिला लें, तो पारद जल्दी निकल जाता है और साथ-साथ लोह भस्म भी होने लगती है। इस तरह रौप्य या ताम्र भी मिला सकते हैं।

इनके अतिरिक्त सिंगरफके चूर्णको कपड़ेकी पट्टियोंमें या पुरानी रुईकी तहमें रख कन्दुक या बण्डल बना अग्नि देकर पारद निकालते हैं। कन्दुक अग्नि निर्वात स्थानमें देते हैं। ऊपर एक बड़ा घड़ा इस तरह रखा जाता है कि पारद उड़कर घड़ेमें लगता रहे। पारद न उड़ जाय, ऐसे चौड़े मुँह का घड़ा कन्दुकके ऊपर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। घड़ेको रखनेके समय उसके मुँहका कुछ भाग जमीनपर लगा रहे। एक ओर केलू या पत्थरका टुकड़ा रखें, जिससे वायु कन्दुकको मिलती रहे। और कन्दुककी अग्नि बुझ न जाय। इस तरह पारद निकालनेपर एक सेर सिंगरफमेंसे ७० तोले पारद मिलता है। जो पारद ऊपर उड़ता है, वह पारद डमरू यन्त्रके समान शुद्ध होता है। किन्तु जो पारद नीचे राखमें मिल जाता है, उसे फिरसे उड़ा लेना चाहिये, क्योंकि उसमें अशुद्ध द्रव्य रह जानेका संदेह रहता है। इस क्रियामें घड़ा छोटा होगा, तो पारद बहुत चला जायगा। कितने ही चिकित्सक घड़ेको आड़ा रखते हैं। फिर मुँहपर गीला निचोड़ा हुआ कपड़ा डालते रहते हैं। बार-बार १-१ घण्टेपर कपड़ा बदलते हैं। इस प्रकारसे पारद घड़ेके पेटमें एक ओरलगता रहता है। घड़ा ओंधा रखनेमें पारा ऊपरमें चारों ओर लग जाता है।

(२१) कज्जली बनानेकी विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक समभाग लेकर सम्यक् खरल करें। दोनों मिलाकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारद की चमक बिल्कुल जाती रहे, तब कज्जली तैयार हुई जानें। औषध विशेषमें जहां गंधक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है, वहाँ पारदसे गन्धक दूना मिलावें।

उपयोग—भिन्न-भिन्न औषधियोंके स्वरसकी भावना देनेसे कज्जलीमें रोग शामक शक्ति बढ़ जाती है। बिना भावनासे भी कज्जली अकेली अनेक विकारोंको दूर करती है। कज्जली स्वभावतः जन्तुघ्न, वृष्य, अँतड़ीके सेन्द्रिय विषको दूर करने वाली रसायन (सप्त धातुओंको व्यवस्थित करके शरीरको पुष्ट बनानेवाली) है। गलेकी गाँठ (Tonsils) पर सूजन आना, प्रतिश्याय, कास, गलेमें रही हुई घण्टिका शिथिल होना, फुफ्फुसोंमें पीड़ा होना, कफ और बुदबुदे सहित वमन, बालकोंका अपचन, अतिसार, विसर्प, स्त्रियोंके प्रदररोग इत्यादिको दूर करती है। घृतमें मिला मलहम बनाकर

खाज, दाद, मस्तकके फोड़े-फुन्सी इत्यादिपर लगानेमें उपयोगी है।

बरनाके क्वाथकी ७ भावना देकर तैयारकी हुई कज्जली अन्तर्विद्रधिका प्रसादन (माँसको बिखेर देना) करती है। नागरबेलके पानके रस और अदरकके रसकी भावना दी हुई कज्जली उत्तेजक होती है। आँवलेकी भावना युक्त कज्जली मिश्रीके साथ देनेसे जीर्ण मदात्यय रोग (Chronic Alcoholism) को दूर करती है। द्विगुण गन्धककी कज्जली गोघृतके साथ २१ दिन तक उपदंश रोगीको देनेसे उपदंश विकारका शमन होता है। भोजनमें गेहूँ और घृत दें। नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

मात्रा—१ से २ रत्ती खानेके लिये। मलहमके लिये ६ माशे कज्जली को १० तोले शतधौत घृतमें मिला लेना चाहिये।

(२२) कलईके मैलमेंसे कलई निकालनेकी विधि—शोधन करनेपर कलईका मैल निकलता है। उसके साथ थोड़ा-थोड़ा नौसादर और गुड़ मिला कढ़ाईमें गरम करनेसे कलई अलग निकल आती है।

इसी तरह शीशेके मैलमेंसे शीशा और जसदके मैलमेंसे जसद निकाल लिया जाता है।

(२३) अभ्रक निश्चन्द्रीकरण विधि—शुद्ध धान्याभ्रकका चूर्ण १ सेर तथा कलमीशोरा और गुड़ आध-आध सेर लेकर मिला लेवें। पश्चात् हाँड़ी में भर तेज अग्निपर रखकर १२ घण्टे अग्नि देनेसे अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। शीतल होनेपर अभ्रक निकाल, कूटकर जलमें भिगो दें। ४-६ घण्टे पीछे सम्हालकर जल निकाल देवें, फिर मिलाकर मल लेवें। जल स्थिर होनेसे ऊपर निकाल दें। इस रीतिसे ३-४ बार धोनेसे क्षार निकलकर अभ्रक मात्र शेष रह जाता है।

इस अभ्रकसे भस्म बहुत जल्दी तैयार होती है। यद्यपि धान्याभ्रकसे बनाई हुई भस्म अधिक लाभदायक है, तथापि अच्छे अभ्रकके अभावमें समयपर इससे काम चल सकता है।

सूचना-अग्नि लगनेसे शोरा बड़ी आवाजके साथ उड़ता रहता है, इससे भय न मानें और हांड़ीमें ऊपर थोड़ी अभ्रक कच्ची रह जाय, तो अलग निकाल लेवें। उसे दूसरे समय निश्चन्द्रकर लेवें। हांड़ीपर ढक्कन ऐसा लगावें कि जिसमें अंगुली आ जाय। बिल्कुल बन्द होगा तो बरतन फूट जायगा।

(२४) सत्यानाशीका तैल निकालनेकी विधि—सत्यानाशीके पक्के, सूखे बीजको कूटकर उबलते हुए जलमें डालकर ढ़क दें। जल उतना लेवें कि बीज अच्छी तरह डूब जाये। जल शीतल होनेपर बीजोंको दबाकर निचोड़ लेनेसे जल और तैल निकल आता है। तैल जलपर तैरता है। उसे सम्हाल पूर्वक रूईके फोहेसे निकाल लेवें। यह तैल उपदंश और त्वचा रोगमें खाने और लगानेके लिये उपयोगी है।

अधिक परिमाणमें तैल निकालना हो तो पातालयन्त्रसे अथवा तिल, सरसों आदिके समान कोल्हूसे निकाल लेवें।

(२५) रसांजन बनानेकी विधि—दारुहल्दीका कूटकर २४ घंटे तक १६ गुने जलमें भिगो देवें पश्चात् क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवें। बादमें समभाग बकरीका दुग्ध मिलाकर कड़ाहीमें डालकर दुग्धके मावेकी तरह बना लें। तुरन्त उपयोगके लिये यह रसांजन विशेष उपयोगी है। दुग्ध मिला हुआ होनेसे रसांजन एक माससे अधिक समय तक नहीं रह सकता। जन्तु हो जाते हैं, इसलिये थोड़े परिमाणमें तैयार करें। दीर्घकाल तक रखनेके लिए रसांजन बनाना हो, तो दुग्ध न मिलावें केवल क्वाथका ही घन बना लेवें। यदि ताजी दारुहल्दीके मूलमेंसे रसांजन बनाया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता है। आयुर्वेद-प्रकाशमें दुग्ध चौथा हिस्सा मिलानेको लिखा है।

रसांजन उष्ण, कड़वा, चरपरा, रसायन और छेदन गुणवाला है। कफ, विष, नेत्रविकार और व्रण दोषको दूर करता है।

(२६) एरण्ड तैल निकालनेकी विधि—लगभग १० सेर या अधिक छिलके निकले हुए अरंडीके बीजोंको कड़ाहीमें भून, कूटकर मैदा जैसा चूर्ण करें। फिर एक हांडीमें भर, १५ गुना जल मिलाकर उबालें। अच्छी तरह उबलनेपर नीचे उतारकर हांड़ीको ठण्डी होने दें। बादमें ऊपरसे नितरे तैलको सम्हाल पूर्वक निकाल लें। पुन: हाँडीको चूल्हेपर चढा, जलको उबालकर तैल निकाल लें। पहिले समय निकाला हुआ तैल औषधिके लिये उपयोगी है। दूसरे समयका तैल दीपक जलाने लायक होता है।

(३) अभाव वर्ग

एक औषधिके अभावके समय, समान गुणवाली दूसरी औषधि उपयोगमें लेना, उसे प्रतिनिधि कहते हैं। प्रतिनिधि उपयोगके विषयमें शास्त्रकारोंने नियम बनाया है उस नियमानुसार ही प्रतिनिधि औषधि ली जाती है। अनेक औषधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार करनेमें प्राय: मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग होते हैं। मुख्य औषधि वह कही जाती है, जिसके बिना औषधि प्रयोग तैयार न हो सके; अथवा इच्छित लाभ न दे सके। गौण औषधियाँ वे हैं, जिनके अभावमें समान गुण वाली औषधि मिलानेपर प्रयोग द्वारा इच्छित लाभकी प्राप्ति हो सके। अत: रोगको दूरकर स्वास्थ्य प्रदान करना अथवा शारीरिक और मानसिक निर्बलता दूरकर बलकी वृद्धि करना, यह मुख्य औषधिका कार्य है; और मुख्य औषधिके दोष अथवा उग्रताका शमन करना, उपद्रवोंको दूर करना, गुण वृद्धि और शीघ्र लाभ पहुँचानेमें सहायता करना ये गौण औषधियोंके कार्य हैं।

जैसे हिंग्वष्टक चूर्णमें हिंगु मुख्य औषधि है, शेष ७ औषधियाँ गौण सहा-

यक हैं। जैसे हिंगु न हो, तो हिंग्वष्टक चूर्ण तैयार नहीं हो सकेगा और कोई गौण औषधि न होवे, तो उसके स्थानमें प्रतिनिधिकी योजना हो सकती है। किसी किसी प्रयोगमें एकसे अधिक औषधियाँ भी मुख्य रहती है। कूपीपक्व रसायन; पर्पटी, खरलीय रसायन और इतर अनेक प्रयोगोंमें एकसे अधिक औषधियाँ मुख्य हैं। जैसे-मल्लचन्द्रोदय रस, पंचामृत पर्पटी, अश्वकंचुकी रस,अमृतसंजीवनी वटी,त्रिफला-पिप्पली चूर्ण,दशमूलाद्यरिष्ट,चन्दनबलालाक्षादि तैल, इत्यादि औषधियोंमें एकाधिक मुख्य औषधियाँ है।

जहाँ अनेक औषधियोंमें संयोगजन्य गुण उत्पन्न होता है,वहाँपर उनमेंसे किसीको भी गौण नहीं कह सकते। जैसे रसायन चूर्णमें गिलोय, गोखरू और आँवलेके संयोगसे रसायनके समान गुण उत्पन्न होता है,ऐसे स्थानमें किसीके अभावमें प्रतिनिधि नहीं लिया जायगा। एवं त्रिफला,त्रिकटु,चातुर्जात,पंचलवण दशमूल आदि औषधियोंमें प्राय: सब समान प्रभाव वाली अर्थात् मुख्य औषधियाँ मानी जाती है। ऐसी निश्चित औषधियोंके मिश्रणसे निश्चित गुणकी उत्पत्ति होती है। अत: उनके स्थानमें प्रतिनिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

शास्त्रमें प्राय: प्रयोग नाममें मुख्य औषधिका सम्बन्ध रखा है, जिससे मुख्य औषधि कौनसी है, इस बातका सहजमें बोध हो सकता है। जैसे कस्तूरी भैरव रस, द्राक्षारिष्ट, खदिरारिष्ट, वासाद्य घृत, अमृताद्य तैल, हिंग्वादि चूर्ण, कुटजादि वटी, इन सबमें क्रमश: कस्तूरी, द्राक्षा, खदिर, वासापत्र, अमृता, हिंगु, कुटज ये सब मुख्य हैं।

परन्तु आयुर्वेदीय वाङ्मयमें इस नियमका सर्वांशमें पालन नहीं हुआ। कतिपय प्रयोगोंमें मुख्य औषधिका सम्बन्ध नामके साथ नहीं रखा। जैसे बच्छनाभ प्रधान अनेक औषधियाँ ज्वरांकुश ज्वरकेशरी वटी आदि एवं श्वासकुठाररस, कृमिमुद्गररस, चन्द्रप्रभा वटी, आरोग्यवर्धिनी, अमरसुन्दरी वटी, लक्ष्मीनारायण रस, अग्नि रस इत्यादिमें रोग सम्बन्ध, गुण सम्बन्ध, और सामान्य संज्ञा की प्रतीति होती है। कतिपय प्रयोगोंमें औषधिका सम्बन्ध नाममें रखा गया है। जैसे चन्द्रप्रभा वटीमें चन्द्रप्रभा संज्ञा औषधि दर्शक मानें; गुणदर्शक न मानें। चन्दप्रभा (कपूर, कचूर, शतावरी या वायविडंग) औषधि गौण है। मुख्य औषधि शिलाजीत और गूगल है। एवं हारीत संहितामें चन्दनाद्यवलेह, भैषज्य रत्नावलीका शुक्रमेह और प्रदरपर चन्दनादि चूर्ण, निघण्टु रत्नाकरका ग्रहणी रोगपर चन्दनादि चूर्ण, इन सबमें चन्दन आद्य होनेपर भी सामान्य औषधि है, इन प्रयोगोंमें चन्दनमें स्थानपर गौण औषधि मिला दी जाय, तो भी प्रयोगमें विशेष क्षति नहीं पहुँचेगी। इस तरह योगरत्नाकरके तालीसादि चूर्णमें तालीसपत्र गौण है। मुख्य भांग या हरड़ है। उपर्युक्त बातोंको समझकर जिस प्रयोगमें जिनको गौण सहायक औषधियाँ मानी जाय, केवल उनके ही अभावमें समान गुण (रसवीर्य-विपाक आदि) युक्त अन्य प्रतिनिधि औषधि मिलाई जाती है।

द्रव्य शोधन प्रकरण

आयुर्वेद शास्त्रके नियमानुसार द्रव्योंका शोधन करना अर्थात् निर्दोष-कर गुण वर्द्धन करना, अनावश्यक, बाधक अंश, विजातीय द्रव्य, अथवा मलको दूर करना या उसमें स्थित दोषको घटाकर गुणकी वृद्धि करना आदि हेतुओंमेंसे किसी एक या अनेक हेतुओंकी सिद्धिके लिये औषध द्रव्य-पर जो संस्कार किया जाता है, उसे शोधन कहते है।

बच्छनाभमें हृदयको अवसाद करनेका धर्म उपस्थित है, उस धर्मको नियमित करनेके लिये बच्छनाभका शोधन गोमूत्रमें किया जाता है-अर्थात् बच्छनाभमें गोमूत्रका प्रवेश कराया जाता है। शिलाजीत, खरिया मिट्टी आदिका शोधन पत्थर आदि विजातीय द्रव्योंको दूर करनेके लिये होता है। पारदका शोधन विविध प्रकारके मल, धातु मिश्रणको दूर करने और गुण वृद्धिके हेतुसे होता है। सुवर्ण आदि धातुका विजातीय द्रव्य और मल दूर करने तथा सुगमतासे मारण योग्य बनानेके लिये होता है।

धातु (Metals) और उपधातुओं (Alloys) का शोधन करनेसे वे अन्य द्रव्योंके मिश्रण रूप दोषसे मुक्त हो जाती हैं,एवं उनकी भस्म भी अन्य परिश्रमसे तैयार होती है यदि धातुओंके शोधनमें परिश्रम कम करें तो, भस्म बनानेमें अधिक श्रम पहुँचता है; और भस्म भी सदोष वनती है। जितना शोधन अच्छा होता है; भस्में उतनी ही अधिक गुणयुक्त होती है। ऐसे ही रत्नोपरत्नका शोधन करनेसे उसकी भस्म जल्दी बनती है और विशेष लाभ दायक होती है।

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, बंग आदि जिन धातुओंका शोधन और मारण करना हो, वे धातु दूसरे धातुके मिश्रणसे रहित लेनी चाहिये। दूसरी धातु का मिश्रण होनेसे नाना प्रकारके विकार होनेकी सम्भावना रहती है।

रसेन्द्र चिन्तामणिमें लिखा है कि—

मुक्तादिष्वविशुद्धेषु न दोषः स्याच्च वस्तुतः।
तथाऽपि गुणवृद्धिः स्याच्छोधनेन विशेषतः॥

अर्थात् मुक्ता और रत्न आदि सबका शोधन दोष निवारणार्थ नहीं किया जाता। शोधन करनेपर गुणवृद्धि होती है इसलिए आचार्योंने शोधन दर्शाया है।

विष और उपविष शोधन, उनकी उग्रता या मारकताको दूर करनेके हेतुसे किया जाता है। परिपक्व हुए बिना रस रक्त आदि धातुओंमें फैलना विषका स्वभाव है। पर शोधित विषोंकी उग्रता बहुत कम हो जानेसे वे (शुद्ध विष) मानव प्रकृतिको हानि नहीं पहुँचा सकते।

कच्चा सोहागा और फिटकरी पित्तोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करते हैं। पित्तोत्पत्ति बन्द होनेपर पाचन क्रियाका कार्य रुक जाता है; इस दोषको दूर करनेके लिये फूला बनाया जाता है। इसे ही शोधन कहा है। कच्ची हींग उग्र होनेसे गलेमें हानि पहुँचाती है, वमन लाती है। अतः हींगको भूनकर प्रयोगमें लेनेका विधान किया है।

इस रीतिसे महर्षियोंने मानव-शरीर और शक्तिका विचारकर द्रव्योंको शुद्ध करके ही उपयोगमें लेनेका नियम बनाया है। इस ग्रन्थमें औषधियों की जो शोधन और मारण विधि लिखी है, वह किस-किस ग्रन्थके आधारसे लिखी गई है, यह भी सूचित कर दिया है। धातुओंकी शोधन और मारण विधि प्राचीन ग्रन्थोंमें नाना प्रकारकी लिखी है, उनमेंसे हमने जिनका अनुभव किया है मात्र उन्हींको इस ग्रन्थमें स्थान दिया गया है। अतः नये अनभिज्ञ चिकित्सक भी निर्भय रूपसे यहां लिखी विधियोंको प्रयोगमें ला सकते हैं।

(१) सुवर्ण और रौप्य शोधन—शुद्ध सोना और चाँदीके पतरे अग्निमें तपा-तपाकर तैल, छाछ, काँजी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होते हैं। (र० र० स०)

(२) लोह शोधन–लोहेके सूक्ष्म चूर्णको तपा-तपाकर तैल, गोमूत्र, छाछ, कांजी और कुलथीके क्वाथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होता है। (र.र.स.)

पुरानी रेती या सुनारकी जन्त्रीको अग्निमें तपा वायुमें रखकर ठण्डी करें (जलसे न बुझावें)। फिर काट रेतीसे घिसकर चूर्ण करें, अथवा लोहे के कारखानेमें लोहेका चूर्ण तैयार मिल जाता है, उसे उपयोगमें लें।

(३) ताम्र शोधन—तांबे (बारीक बिजलीके तार) को अग्निमें गरम करके तैल, छाछ, कांजी, गोमूत्र, कुलथीके क्वाथ, अनारदानेके रस तथा आकके पत्तोंके रसमें ७-७ बार बुझावें। फिर इमामदस्तेमें कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् एक हाँडीमें गोमूत्र भर, उसमें इमली और नमक डाल, उसके साथ इस चूर्णको १२ घण्टे तक उबालें। शीतल होनेपर चूर्णको निकालकर जलसे धो लेनेसे ताम्र भस्म करने लायक शुद्ध हो जाता है। बिजलीके तारका तांबा शुद्ध होता है। पर जो ताँबेके पतरे आते हैं, वे शुद्ध नहीं होते बिजलीका तार न मिले, तो नीलेथोथेमेंसे ताँबा निकाल लेवें।

नीलेथोथेमेंसे ताँबा निकालनेको विधि ताम्र भस्मके साथमें लिखी है।

(४) बङ्ग शोधन—कलईको कढ़ाईमें डाल, तेज आँच द्वारा गलाकर रस करें। फिर लोहेकी कलछीसे थोड़ा-थोड़ा (२ से ४ तोले) निकालकर एकाध मिनट हवा लगनेपर बुझाते जाँय। प्रथम तैलमें तीन बार बुझावें। तैलमें बुझानेके समय कलईके सब रसको एक ही बार डाल दिया जाय, तो भी हरज नहीं। किन्तु छाछ, काँजी आदिमें एक साथ न डालें। तैलके पीछे छाछ, काँजी गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें क्रमशः तीन-तीन बार बुझावें। छाछ आदि पदार्थोंमें बहुत सम्हालकर बुझावें। कारण, कलई, उछलकर शरीरपर लग जाती है। इसीलिये कलछी हाथमें पकड़ दूरसे ऊँचा हाथ रखकर बाहरकी वायु लगनेपर बुझाते जाँय। यदि कड़ाहीमें रही हुई कलईके रसमें जल, छाछ अथवा गोमूत्रकी एक बूंद भी गिर जायगी, तो एक दम कलई उछलकर बाहर आ जायगी। इसलिए सम्हाल रक्खें। शोधन हो जानेपर कड़ाहीमें कलईका रसकर थोड़ा तैल डालकर एक गोल चक्की बना लेवें, उसमेंसे कागज जैसे पतले पतरे बनाकर चौथाई-चौथाई इंचके छोटे-छोटे टुकड़े करा लेवें।

भस्म बनानेके लिए पाटकी कलई लें। बरतनोंको लगानेकी कलईमें शीशा, जसद आदि धातुओंका मिश्रण रहता है। पाटकी कलई शुद्ध होती है।

सूचना—शोधनके समय मैलको अलग निकालते जायं; जब मैल ज्यादा इकठ्ठा हो जाय, तब उसमें नौसादर और गुड़ मिला, रसकर, शुद्ध कलई निकाल लें।

जिनको ज्यादा कलई शोधन करनी हो, वे तक्र आदिमें बुझानेके समय गड्ढेमें रखे हुए पात्रपर चक्कीके ऊपरका पाट रखें। फिर उसके छेदमेंसे रस डालें जिससे कलईके ऊड़नेका भय बिल्कुल न रहे। अथवा ४ फीट (लगभग २।। हाथ) बाँस या लोहेकी नली बनाकर दीवारकी तरह बांधें। ऊपरका भाग जमीनसे २ हाथ ऊँचा रहे और नीचेका भाग लगभग १। हाथ ऊँचा रहे, इस तरह नलीको बाँधें। पश्चात् नीचेके भागमें छाछ, गोमूत्र आदिसे भरा पात्र रखें। जब कलईका रस हो जब उसे दूसरी कड़ाहीमें निकालकर, नलीके ऊपरमें डालनेसे सब कलई नली द्वारा नीचेके बरतनमें चली जायगी। इस तरह शोधन करनेमें उछलनेका भय बिल्कुल नहीं रहता। कभी-कभी बाँस फट जाता है। इसलिये दो नली और तैयार रखें और रस डालनेके समय नलीके नीचे हाथ अथवा पैर न आजाय, यह सम्हालें।

(५) शीशा शोधन—शीशेका शोधन कलईके समान करें।

सूचना—शोधनमें भूल होनेपर शीशा बन्दूककी गोलीकी तरह ऊँचा

उछलता है। कड़ाहीमें पानीकी बूँद न गिर जाय, इसका ध्यान रखें।

(६) जसद शोधन—जसदको कड़ाहीमें डालकर तेज अग्निपर रस करें। रस होनेपर दुग्धमें बुझावें। इस तरह २१ बार गोदुग्धमें बुझानेसे जसद शुद्ध हो जाता है। जसदके बुझानेमें कलई या शीशेके समान उछलनेका भय नहीं है जसदमेंसे मैल बहुत निकलता है। मैलकी अलग भस्म करें। यह नेत्राञ्जनमें उपयोगी है। शुद्ध जसदमेंसे खानेके लिये भस्म बना लें।

(७) जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतल शोधन—जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतलको तपा-तपाकर तैल, छाछ, गोमूत्र, काँजी और कुलथीके क्वाथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होते हैं। इस तरह शोधन होनेपर भी फिर इमली नमक मिले हुए गोमूत्रमें तीन घण्टे तक दोलायंत्र विधिसे उबाल लेनेसे विशेष शुद्ध होते हैं। जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतलमें रहे हुए ताम्रके दोष शमनार्थ शोधन जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक लाभदायक भस्म बनेगी।

काँसी और पीतलका शोधन और मारण ताम्रके समान होता है और गुण भी ताम्रके समान ही हैं, ऐसा शास्त्रकारोंका कथन है।

(८) मिश्र धातुयें तथा उनका शोधन—ताम्र, कलई, शीशा, पीतल और काँसी, इन पांच धातुओंके मिश्रणसे जर्मन सिल्वर बनता है। ताम्रमें चतुर्थांश कलई मिलानेसे काँसी बनती है, तथा ६६ भाग ताम्रके साथ ३४ भाग जसद मिलानेपर पीतल बनती है। दो धातु मिश्रित होनेपर दोनोंके मूलगुण रहते हैं और संयोगजन्य नया गुण भी उत्पन्न होता है।

वर्तमानमें ताम्र ९ भाग और कलई १ भाग मिलाकर काँसी बनाते हैं। ताम्र और निकल मिलाकर जर्मन सिल्वर बनाते हैं। जो जर्मन सिल्वर चाँदी सदृश उज्ज्वल श्वेत वर्णका है वही उत्तम माना जाता है। ताम्र ९ भागमें स्फटिक सत्व १ भाग मिलाकर कृत्रिम सुवर्ण बनाते हैं। इन सबका शोधन भी पीतल शोधनके समान होता है।

(९) मंडूर शोधन—सौ वर्ष पुराने मंडूरको अग्निपर तपा-तपाकर ७ बार गोमूत्रमें बुझानेसे उसकी शुद्धि होती है। मंडूर शोधनके लिये बहेड़े की लकड़ी जलानी चाहिये। यदि बहेड़ेकी लकड़ी न मिले, तो बंबूलकी लकड़ी लेवें। (र० र० स०)

सूचना—नया लोहकीट, मण्डूर भस्म बनानेके लिये काममें नहीं लेना चाहिये। नये लोहकीटमें शास्त्रकारोंने दोष दिखाये हैं।

(१०) सुवर्णमाक्षिक (Chalco Pyrite) शोधन— सोनामाखी का चूर्ण ३ भाग, सैंधानमक १ भाग और नींबूका रस ५ भाग मिलाकर एक

कड़ाहीमें डालकर, तेज अग्निपर लोहेकी कलछीसे चलाते रहें। नींबूका रस सूखनेके पश्चात् जब कड़ाही खूब लाल हो जाय, तब अग्नि देना बन्द करें। कड़ाही शीतल होनेपर सोनामाखीमें जल मिला, मल-मलकर धोवे। ४-६ बार धोनेसे सैंधानमक निकल जायगा। फिर सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे सुवर्णमाक्षिक शुद्ध हो जाती है। जल सम्हालपूर्वक निकालें अन्यथा सुवर्ण-माक्षिक भी जलमें चली जायगी।

औषधिके लिये अति तेजस्वी सोनेके समान चमकवाली सुवर्णमाक्षिकको उपयोगमें लें। जो निस्तेज हो, उसमें गुण बहुत कम होता है। कसौटीपर रगड़नेसे जिसकी स्वर्ण समान रेखायें हो और टुकड़ा तोड़नेपर भीतर सुवर्ण समान तेजस्वी हो, उसे अच्छी मानी है। किन्तु वैसी अभी नहीं मिलती। अमेरिकासे यह अच्छी आती है।

(११) मनःशिला (Realgar Red arsenic) शोधन— मैनसिलके चूर्णको मोटे कपड़ेकी थैलीमें भरकर, बकरीके मूत्रके साथ दोलायन्त्रमें ३ अहोरात्र तक मन्द-मन्द आँच दें। फिर बकरीके पित्तकी ७ भावना देवें अथवा तीन घण्टे तक हल्दीके क्वाथमें दोलायन्त्रसे उबालें। पश्चात् अदरकके रसमें तीन घण्टे खरल करके धूपमें सुखा लेवें।

(१२) सुरमा शोधन—सफेद या काले सुरमेके सूक्ष्म चूर्णको नींबूके रस केलेके खम्भेके रस, भाँगरेके रस (या त्रिफलाके काढ़े) में ७-७ बार ३-३ घण्टे खरल करके सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

(१३) नौसादर शोधन—नौसादरके चूर्णको जलमें मिला, कपड़ेसे पीतल की कड़ाहीमें छान, मंदाग्निसे जलको सुखा लेनेसे उसकी शुद्ध होती है।

सूचना—यदि लोहेकी कड़ाहीमें नौसादर पकाया जायगा, तो उसमें लोहेका रंग मिल जानेसे नौसादर दूषित हो जायगा।

(१४) तुत्थ शोधन—२० से ४० तोले तूतियाको बडे नींबूके रसमें खरल कर लघुपुटमें पकावें फिर तीन दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे शुद्धि होती है।

नीलाथोथा दो प्रकारका होता है—खानमेंसे निकलने वाला और कृत्रिम। खान वाला उत्तम है। उसीको औषधिके लिये उपयोगमें लेना चाहिए।

(१५) मल्ल (White Arsenic) शोधन—सफेद संखियाके चने समान टुकड़ेकर, बकरेके मूत्र या चौलाईके रसमें १ दिन मंदाग्निपर दोलायन्त्रसे उबालकर धो लेनेसे शुद्ध होता है।

संखिया ४ प्रकारका होता है—सफेद, काला, लाल और पीला। औषधि के लिये विशेष करके सफेद संखिया ही व्यवहारमें आता है। सफेदकी अपेक्षा अन्य विशेष जहरी है। सफेद संखियेमें जो बिल्लोरी काचके समान चम-

कीला हो, उसे अच्छा माना है। संखिया पुराना होनेपर चमक और गुण कम हो जाते हैं।

(१६) हरताल (Yellow arsenic. King's yellow) शोधन—तपकीया हरतालको जौकूटकर दोलायन्त्रकी विधिसे कांजी, पेठेके रस, तिल्लीके तैल और त्रिफलाके क्वाथमें तीन-तीन घण्टे तक उबालें। फिर कपडेमें बांधकर १२ घण्टे तक चूनेके पानीपर मन्दाग्निसे भाप देनेसे हरताल शुद्ध होती है।

दूसरी विधि—हरतालके चूर्णको १६ गुने चूनेके जलमें ७ दिन खरल कराने या तिलोंके क्षारके जलमें ३ घण्टे दोलायन्त्रसे स्वेदन करानेपर शुद्ध हो जाती है। इस प्रकारसे शोधन करनेपर मारणके समय हरतालमें रहे हुए गन्धक और सोमलके उड़नेपर अंकुश आता है।

औषधि रूपसे उपयोग करनेके लिये सुवर्णके समान तेजस्वी वरकी हरताल लेनी चाहिये। पीली निस्तेज पिण्ड हरताल अथवा थोड़ी चमक वाली हरतालसे इच्छित लाभ नही मिलता। अच्छी हरतालमें संखिया विशेष परिमाणमें होनेसे उसमें गुण भी विशेष होता है।

(१७) हिंगुल (Cinnabar) शोधन—रूमी सिंगरफको १२ घण्टे नींबूके रसमें खरल करें। रस बिल्कुल सूख जानेपर भेड़ अथवा भैंसके दुग्ध में १२ घण्टे खरल कर सुखा लेनेसे हिंगुल शुद्ध होता है।

स्व० पं० श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार हिंगुलको पहले ३ घण्टे गोदुग्धमें खरल करें। फिर नींबूके रसकी ७ भावनायें दें। इस तरह शोधन करना विशेष लाभदायक माना जायगा।

अनेक प्रत्यक्ष क्रिया-अनुभवियोंके मतानुसार हिंगुलको भेड़ या भैंसके दूधके साथ ७ दिन तक मर्दन करानेके पश्चात् ७ दिन तक रहने देवें। फिर धोकर नीमके पानोंके स्वरस या निम्बूके रसके साथ ७ दिन तक मर्दन करा, फिर औषध रूपसे प्रयोजित करें। यह हिंगुल द्विगुण गंधक जारितके समान लाभ पहुँचाता है।

शास्त्रमें सिंगरफको ७-७ दिन तक नींबूके रस ओर भेड़के दुग्धमें खरल करनेको लिखा है। जितना अधिक खरल हो उतना ही हितकर माना जाता है। नींबूके रससे सिंगरफमें रहा हुआ पारद दोष मुक्त होकर प्रदीप्त बनता है दुग्धसे पुष्ट बनता है। तथा सिंगरफसे पारा सरलतापूर्वक छूटकर निकलता है।

ऊपर चढ़ा हुआ सिंगरफ रससिंदूर सदृश होनेसे थोडे ही शोधनमें दोष-मुक्त होकर शुद्ध बन जाता है। इसलिये हमने स्वल्प शोधनको ही लिखा है।

भूतकालमें खनिज सिंगरफको विशेश उपयोगमें लाया जाता था। परन्तु वर्त्तमानमें अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक या गन्धकके तिजाब (Sulphuric acid) के संयोगसे बने हुए कृत्रिम सिंगरफका उपयोग होता है। कृत्रिम सिंगरफमें भी रूमी सिंगरफ हितकर है; और जो सिंगरफ, कम पारद और अधिक गन्धक मिलाकर तैयार किया जाता है; और जो सख्त व मैले रंग वाला होता है, उसे खानेकी औषधिमें नहीं मिलाना चाहिये।

हिंगुल कडुवा, कसैला और चरपरा होता है। नेत्ररोग, कफपित्त विकार उबाक, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहावृद्धि, आमवात और सेन्द्रिय विष आदि विकारोंको नष्ट करता है। सामान्यत: कज्जलीको शीतल, शामक और हिंगुलको उष्ण, उत्तेजक माना है। इस हेतुसे शुष्क कासकी औषधिमें हिंगुलकी योजना नहींकी जाती। शुद्ध हिंगुलमें रससिन्दूरके समान किन्तु न्यून गुण हैं। कभी कभी अकेले हिंगुलको ही रससिंदूरके स्थानमें विभिन्न अनुपानोंके साथ दिया जाता है। मात्रा ½ से २ रत्ती।

(१८) गन्धक शोधन—आंवलासार गन्धक और घृत समान भाग लेकर लोहेकी कड़ाहीमें गरम करें। रस होनेपर तुरन्त उतारकर चारगुने दुग्ध में डाल दें। गन्धक डालनेके पहिले दुग्धके बरतनके ऊपर एक कपड़ा बाँधें। फिर उसपर पिघला हुआ गन्धक डालें। दुग्धके अभावमें मठ्ठा अथवा त्रिफला का काढ़ा लिया जाता है। एकाध घण्टेके बाद जब गन्धक पैंदेमें बैठ जाय, तब ऊपरसे सम्हालकर घृत और दुग्ध निकाल लें। पश्चात् गन्धकको निकाल छोटे छोटे टुकडेकर अच्छी रीतिसे गरम जलसे धोकर धूपमें सुखा लेनेसे गन्धक शुद्ध होता है। अथवा शोधित गन्धकके चूर्णको कड़ाहीमें डाल, ऊपरसे जल भर दें। पश्चात् चूल्हेपर चढ़ाकर गन्धक मिले जलको गरम करें। जल उबलने लगे, तब जल ऊपर-ऊपरसे कलछीसे निकालते जायें और शीतलजल डालते जायें। घृतका अंश बिल्कुल निकल जाय, तब तक जलको निकालते जायें। बादमें कड़ाहीको उतार, गन्धकको सुखा लेनेसे शुद्ध हो जाता है।

गन्धकके शोधनमें जो घृत लिया जाय; उसे सम्हालकर निकाल लें और फिर उसे चूल्हेपर चढ़ाकर दुग्ध अथवा छाछका अंश जला डालें। केवल घृत शेष रहनेपर उतारकर छान लें। यह घृत मालिश करनेमें उपयोगी है। कितने ही आचार्योंने गन्धकको ऊपर लिखे अनुसार ७ बार शोधन करनेको लिखा है। अधिक बार शोधन करनेके लिये बार-बार घृत और दुग्ध नया लेना चाहिये। शुद्ध गन्धक अनेक रोगोंमें खिलाने और लगानेके लिये उपयोगमें आता है।

सूचना—यदि गन्धकका रस होनेके बाद ज्यादा समय तक कड़ाही चूल्हे

पर रहेगी, तो गन्धक लाल होकर बिगड़ जायगा। इसलिए रस होनेपर तुरन्त कड़ाहीको उतार लेना चाहिये। तमाम गन्धक एक साथ पिघल जाय इसके लिये उसको कूटकर समान टुकड़े करलें। यदि प्रमादवश गन्धक लाल हो जाय, तो उसका उपयोग पर्पटी बनानेमें हो सकता है।

अनुपान—रक्तशोधनार्थ गन्धक और मिश्री समभाग मिलाकर बारीक खरल करें। इसमेंसे ३-३ माशे लेकर ऊपर दूध पीवें। इस तरह दिनमें २ समय १५ दिन तक सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर खाज खुजली, फोड़ा, फुन्सी आदि विकार शान्त हो जाते हैं। केवल ३ या ७ दिन तक गन्धक सेवन करना हो, तो ४-६ माशे गन्धक भी ले सकते हैं। अधिक मात्रासे किसीको पेचिश जैसा असर होवे, तो गन्धक २-४ दिन बन्दकर, फिर कम मात्रामें पुनः लेना आरम्भ करें।

नेत्ररोग और दृष्टिकी कमजोरी दूर करनेके लिये शुद्ध गन्धक, त्रिफला घृत और शहद मिलाकर सेवन करें और भोजनमें केवल दूध भात लें।

मलावरोध दूर करनेके लिये ६ माशे गन्धकको २॥ तोले गुलकन्दके साथ लेवें और ऊपर थोड़ा दूध या गुनगुना जल पीवें।

प्रमेह रोगमें शुद्ध गन्धक १ से २ माशे तकको गुड़के साथ दिनमें २ बार एकाध मास तक सेवन करें।

इस प्रकार और रोगोंमें भी उचित अनुपानकी योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग—रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी, खाज, खुजली, कुष्ठ, वातविकार, कफदोष, ज्वर, आम, मलावरोध, मन्दाग्नि, अरुचि, उदरशूल, उदररोग, अजीर्ण, प्रमेह आदि रोगोंको दूर करता है। गन्धक उष्णवीर्य, अग्नि-प्रदीपक तथा वीर्य वर्द्धक है।

गन्धक सेवन करते समय, नमक, खटाई, तैल, मिर्च, शराब, द्विदल, (चना, उड़द, अरहर आदि) धान्य और अपथ्य आहारका त्याग करें। दाहयुक्त रोगीको गन्धक विशेष अनुकूल रहता है।

नव्य मतानुसार गन्धक अल्प मात्रामें रसायन, स्वेदजनक, कफ निःसारक, पित्तनिःसारक और अधिक मात्रामें विरेचक है। गन्धक उत्तम सेन्द्रिय विषघ्न और कीटाणुनाशक है। गन्धक मुखके उत्पन्न रसमें द्रवीभूत नहीं होता। सेवन करनेपर इसका आमाशयमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। यह आमाशयकी श्लैष्मिक कलापर कुछ भी असर नहीं पहुँचाता। अन्त्रमें जानेपर उसकी श्लैष्मिक कला और मांसपेशियाँ उत्तेजित होती हैं और अन्त्रकी परिचालन क्रिया बढ़ती है, जिससे वह मृदु विरेचन क्रिया दर्शाता है। साथमें वायु उत्पन्न होती है, जिससे पाचन-कालमें आवाज और मन्द मन्द उदरपीड़ा होती है। दस्त ढीला और बिना वेदनाके साफ आजाता है। अधिक कालतक इसका सेवन करते रहनेसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें

भी प्रतिश्याय सदृश अवस्था उत्पन्न हो जाती है; फिर पचन-क्रिया विगड़ती है। कितनेही चिकित्सकोंके मतानुसार यह हृदयकी गतिको बढ़ाता एवं प्रस्वेद लाता है। गन्धक सेवन करनेपर शोषण होकर स्वेद, निःश्वास, स्तन्य-मूत्र और मलके साथ बाहर निकलता रहता है। यदि शरीरपर चांदीका जेवर हो, तो यह गन्धकके योगसे काला हो जाता है।

गन्धकका उपयोग नव्य मतानुसार बद्धकोष्ठ, प्रवाहिका, अर्श, गुदनलिकानिर्गमन, गुदद्वार, विदारण गुदद्वारकी कण्डू तथा गुदनलिका संकोच (Stricture of the Rectum) रोगमें मृदु विरेचन देनेके लिये होता है, एवं वह छोटे बालक और वयोवृद्धके अर्शकी तीव्रावस्थामें उदरशुद्धिके लिये विशेष उपकारक है।

इनके अतिरिक्त विसूचिका रोगमें कीटाणुनाशार्थ जीर्ण उपदंश, जीर्ण सुजाक, रक्तविकार आदिपर रक्तशोधनार्थ, एवं मासिक धर्ममें प्रतिवन्ध होनेपर वातवाहिनियोंके उत्तेजनार्थ व्यवहृत होता है। इसमें विद्रधि, तारुण्यपिटिका, दद्रु, ब्यूची, पामा आदि रोगोंमें उदर सेवन और बाह्य स्थानिक प्रयोग भी होता है। बाह्य प्रयोगमें लेप, मलहम और धावनके रूपसे उपयोग होता है।

शीशा धातु-जनित विषसे विषाक्त होनेपर इसके उपयोगसे अच्छा लाभ करता है। पारद विकारसे मुख आने और पक्षाघात होनेपर इसका विरेचन दिया जाता है। एवं संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये कमरेमें इसका धूआँ भी किया जाता है।

(१९) पारद शोधन—इसका शोधन कूपीपक्व रसायनमें लिखा है। सिंगरफमेंसे निकला हुआ पारद शुद्ध होता है, इसलिए औषधि बनानेके उपयोगमें लिया जाता है। सिंगरफमेंसे पारद निकालनेकी विधि "आयुर्वेदीय परिभाषा" प्रकरणमें लिखी है।

(२०) रसकर्पूर शोधन—रसकर्पूर दोलायन्त्रसे १२ घण्टे तक १६ गुने घृतमें मन्दाग्निपर उबाल लेनेसे शुद्ध होता है।

(२१) अभ्रक शोधन—अभ्रकको कड़ाहीमें डाल तेज अग्निपर तपा करके दूध, कांजी, त्रिफलाके क्वाथ अथवा गोमूत्रमें ७ बार बुझानेसे शुद्ध होता हैं। इन सबमें गोदुग्ध विशेष गुणकारक है। फिर खरलमें सूक्ष्म चूर्ण करके, चौथा हिस्सा धान्य मिला, एक कम्बलमें बांध, एक बरतनमें खूब जल अथवा कांजी डालकर तीन दिन तक भिगो दें। चौथे रोज हाथसे अथवा पैरसे मल-मलकर अभ्रकको कम्बलमेंसे छानकर निकाल लेवें। मसलनेके समय कम्बल वाली पोटलीको जलमें ही रखनी चाहिये। बार-बार जल निकालते रहें और नया जल डालते जायँ ताकि सब अभ्रक जलमें छन जाय। फिर थोड़े समय तक जल स्थिर रहनेसे अभ्रक पेंदेमें बैठ जाती है, उसे

सम्हालकर ले लेवें। ऊपरका पानी सम्हालकर निकालना चाहिये, जिससे अभ्रक निकल न जाय। अन्तमें अभ्रकको धूपमें सुखा लेवें। यह शुद्ध धान्याभ्रक कहलाती है। (र० र० स०)

अभ्रक ४ प्रकारका होता है—सफेद, लाल, पीला और काला। वर्तमानमें इनके अतिरिक्त हरा अभ्रक भी अनेक खानोंमेंसे निकलता है। काले अभ्रकमें भी चार उपजाति हैं। नाग, पिनाक, दर्दुर और वज्र। इनमेंसे वज्राभ्रक मात्र लेनेकी शास्त्रकारोंकी आज्ञा है। अन्य अभ्रकके पतरे बड़े होते हैं। किन्तु वज्राभ्रकके पतरे बहुत छोटे होते हैं। अग्निमें डालनेपर किसी भी प्रकारका शब्द नहीं करते एवं इसके पतरे बिखरते भी नहीं हैं।

(२२) चाकमिट्टी शोधन—खड़िया मिट्टीके चूर्णको २४ घण्टे जलमें भिगोकर कपडेसे छान लें। बार बार जल मिलाते जाय और छानते जाय। जिससे सब मिट्टी जलमें छन जायगी और कपड़ेपर पत्थरका अंश शेष रह जायगा। जब ४-६ घण्टे बाद मिट्टी नीचे बैठ जाय, तव सम्हाल पूर्वक ऊपरसे जल निकाल डालें और उसे सुखा लेवें।

(२३) गेरूशोधन—सोनागेरू (Kidney iron ore) को गायके घृतमें भून लेनेसे शुद्ध होता हैं। (यो० र०)

जो सुनारके काममें आता है वह सुवर्ण गैरिक (सोनागेरू) ही औषधि कार्यके उपयोगमें आता है। अन्य गेरू विशेष लाभदायक नहीं है।

सोनागेरू आवश्यकतापर अकेला ही उपयोगमें लिया जाता है। सोनागेरू शीतल, नेत्रके लिये हितकर, कसैला और रक्तपित्तनाशक है। विषविकार, हिचकी, वमन और रक्तकी उष्णताको दूर करता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शहद या दुग्धके साथ।

(२४) अग्नि तापी शिलाजीत शोधन Black (Bitumen) आधा सेर त्रिफलाको कूटकर ३२ सेर पानीमें औटावें और चौथाई जल रहनेपर उतार कर छान लें। इस छने हुए जलमें तीन पाव शिलाजीत डाल देवें, और २४ घण्टे भीगने दें। फिर पानीको उबाल ऊपर-ऊपरसे शिलाजीत युक्त साफ जलको नितार लें। जल कड़ाहीमें औटानेसे रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय, तब कड़ाईको चूल्हेपरसे नीचे उतार लें। अगर शिलाजीत पत्थरोंके साथ रह गई हो तो पुनः उपरोक्त विधिसे जलमें मिला उबालकर निकाल लें।

हरिद्वारसे बदरीनाथपुरीके रास्तेमें शुद्धशिलाजीत बेचने वाले व्यौपारियों की सैकड़ों दुकानें देखनेमें आती हैं। उनमेंसे २-४ व्यौपारी कदाचित् शास्त्रोक्त विधिसे कुछ सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करते होंगे। शेष सब मन घड़न्त रीतिसे तैयारकी हुई अग्नितापीको ही सूर्यतापीके स्थानमें देकर ठगते हैं। कितने ही स्वार्थी लोग शिलाजीतमें गोमूत्र मिलाकर उबाल लेते हैं। कोई गोमूत्रमें बाँझ वृक्षका गोंद और गुड़ मिलाकर कृत्रिम शिलाजीत

तैयार करते हैं। सूक्ष्म रीतिसे जाँच करनेपर गुड़ आदिकी मिलावटसे रहित शास्त्रोक्त विधिसे तैयारकी हुई शिलाजीत बहुत थोड़ी निर्माणशालाओंमें मिलती होगी। ऋषिकेशसे बदरीनाथके रास्तेमें बहुत थोडे दिन धूपमें तेजी रहती है। ठण्डा और वर्षा वाले दिन विशेष रहते हैं। इस हेतुसे वे सूर्यतापी शिलाजीत बहुत थोड़ी तैयार करा सकते हैं। २-४ बड़े बड़े व्यौपारी यात्रा के दिनोंमें सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करानेके लिये मई और जूनमें (१-१॥ मास मात्र) सूर्यके तापमें यात्रियोंकी श्रद्धाको दृढ़ करानेके लिये यन्त्र को रखवाते हैं। जो व्यौपारी प्रतिवर्ष मनोंके हिसाबसे शिलाजीत बिक्री करते हैं, वे कदाचित् २-४ सेर भी सूर्यतापी शिलाजीत कर लें तो क्या?

सूर्यतापी शिलाजीत शोधन विधि—पहले शिलाजीतको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार त्रिफलाके १६ गुना गरम जलमें मिलाकर २४ घण्टे भिगो देवें। बादमें कड़ाईको चूल्हेपर चढ़ाकर २-३ उफान आने तक उबालें, तत्पश्चात् नीचे उतार लेवें। शीतल होनेपर जब जल नितर जाय तब ऊपरसे साफ नितरे हुए जलको एक कलई किये हुए भगोनेमें छानकर भर लेवें उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे रोज शामको या दूसरे दिन सुबह, ऊपरके भागमें दूधकी मलाईके समान शिलाजीतकी मलाई आ जाती है। उस मलाईको खुरपे या कलछीसे अलग बरतनमें निकालकर सुखा लेनेसे शिलाजीत शुद्ध बन जाती है। शिलाजीतका भगोना, जिसमें रोज मलाई उतारी जाती है उसमें यदि मलाई आती हो और तेज धूपके कारणसे जल सूख जाय या कम हो जाय, तो पहलेके समान जितने त्रिफलाके क्वाथकी आवश्यकता हो, उतना मिला लें। जब शिलाजीत जलके ऊपर न आवे, तब शेष कचरेको फेंक दें।

तीसरी विधि—(सूर्यतापी) विशेषतः शिलाजीत शोधनार्थ कुछ चिकित्सक शार्ङ्गधर संहिताके पाठके अनुसार त्रिफला-क्वाथके स्थानपर केवल गरम जल ही लेते हैं। शिलाजीतके पत्थरोंको जलमें एक प्रहर रख देते हैं। फिर पत्थरोंको फेंक देते हैं। और जलको छानकर रूई या कपड़ेकी बत्ती द्वारा दूसरे पात्रमें नितार लेते हैं। एक एक बूंद करके जल टपकता रहता है। उसमें शिलाजीत शुद्ध निकल जाता है और धूल, पत्थर आदि कचरा तलस्थ रह जाता है। फिर नितरे हुए जलको सूर्यके तापमें सुखा लेनेपर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। इस तरह तैयारकी हुई शिलाजीत त्रिफला-क्वाथसे शोधनकी हुई शिलाजीतकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है, क्योंकि त्रिफलासे शोधनकी हुई शिलाजीतमें त्रिफलाका अंश मिल जानेसे बहुत वजन बढ़ जाता है। परन्तु जलसे शुद्धकी हुई शिलाजीतमें किसीका भी मिश्रण नहीं रहता।

सूचना—मच्छर, मक्षिका, धूल वृक्षोंके पत्ते आदि गिरनेसे बचानेके लिये शिलाजीतके पात्रपर पतला वस्त्र बाँध देना चाहिये।

शिलाजीतके गुण—शिलाजीतमें स्नेह और लवण गुण होनेसे वातघ्न, सर गुण होनेसे पित्तघ्न, तीक्ष्ण गुण होनेसे श्लेष्मघ्न और मेदोघ्न, चरपरी और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे दीपन, कड़वा रस होनेसे रक्त विकार नाशक तथा चरपरा तीक्ष्ण और उष्ण गुण होनेसे कृमिघ्न है। शिलाजीत स्निग्ध होनेसे पौष्टिक, बल्य आयुवर्द्धक, वृष्य विषनाशक मंगल (रसायन) और अमृत रूप (सत्ववर्धक) गुणोंकी प्राप्ति कराती है। शुद्ध शिलाजीत स्रोतस, धातु इन्द्रिय और बुद्धिकी शोधक और वर्णकर गुणयुक्त और वृष्य होनेसे मेध्य भी होती है।

भगवान् आत्रेयके मतानुसार शिलाजतु अनम्ल (खट्टी नहीं है) कसैली तथा विपाकमें चरपरी है, अति उष्ण या अति शीतल नहीं है। यह रसायन, वृष्य और सम्पूर्ण रोगोंकी नाशक है। रोग शमनार्थ आवश्यकतानुसार वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न, द्विदोषघ्न या त्रिदोषघ्न औषधियोंके क्वाथकी भावना देनेसे परम वीर्योत्कर्षको पाती है। महर्षि आत्रेय कहते हैं कि—

न सोऽस्ति रोगों भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यन्न जयेत् प्रसह्य।

अथा संसारमें रसादि धातुकी विकृति जनित ऐसा एक भी रोग नहीं है, जो शिलाजीतके विधिपूर्वक सेवनसे नष्ट न हो सके।*

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं, कि सब प्रकारकी शिलाजीत कड़वी, चरपरी, कुछ कषाय रसयुक्त, सर (वात और मल-प्रवर्तक या सर्वत्र पहुँच जाने वाली), विपाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, कफ और मेदका शोषण करने और मलका छेदन करने वाली है। शिलाजीतके सेवनसे प्रमेह, कुष्ठ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, कृत्रिम विष, शोष (क्षय), शोथ, अर्श, गुल्म, पाण्डु और विषमज्वर आदि रोग थोड़े ही समयमें दूर हो जाते हैं। ऐसा कोई

---

* रोग २ प्रकारके होते हैं–रस रक्त आदि धातुओंमें विकृति होकर पैदा होने वाले और यकृत् वृक्क आदि यन्त्रोंके भीतर स्थित उपाङ्गोंकी रचना दूषित होकर उत्पन्न होने वाले आहार विहारकी नियमितताका भङ्ग, उनमें प्रतिकूलता, दूषित वायु मण्डल वाले स्थानोंमें निवास या जनपद ध्वंसक वायुमण्डल बन जानेसे उत्पन्न रोगोंकी जीर्णावस्था व चिरकारी अवस्था (Chronic stage) वाले रोगोंपर शिलाजीत सफलतापूर्वक कार्य करता है।

शस्त्र आदि की नोकसे या अश्मरी आदिमें किये गये अस्त्राघातसे, तीव्रमारक विष प्रयोगसे यन्त्रस्थ सूक्ष्मनाड़ियाँ अथवा अवयवोंके भेद और शराब गांजा आदिके अत्यधिक परिमाणमें सेवन या जीर्ण व्यसनसे ओज (Cerobro-spiral fluid) की रचना विकृति हो जानेपर उत्पन्न रोगोंपर शिलाजीत, पारद, स्वर्ण आदिके उपचारसे रोगका दमन होता है किन्तु शमन नहीं होता।

रोग नहीं है, जिसे शिलाजीत हनन न कर सके। बहुत कालसे मूत्रमें आने वाली शर्करा(कंकड़ी)और पथरीका भेदन करके उसे बाहर निकाल देती है।

रसरत्न समुच्चयकारने लिखा है कि, शुद्ध शिलाजीतके सेवनसे ज्वर, पाण्डु, शोथ, मधुमेह, सब प्रकारके प्रमेह, अग्निमान्द्य, मेदवृद्धि, राजयक्ष्मा, अर्शरोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, सब प्रकारके उदररोग, हृदयशूल और सब प्रकारके त्वचाके रोग, ये सब निश्चयपूर्वक जड़मूलसे नष्ट हो जाते हैं। अधिक कहां तक कहें, देहको नीरोग और सुदृढ़ बनानेके लिये शिलाजीत सर्वोत्तम रसायन है। अभ्रकादि महारस, गन्धक आदि उपरस, सूतेन्द्र (पारद) माणिक्य आदि रत्न और सुवर्ण आदि धातुओमें जरा, मृत्यु रोग समुदाय को जीतनेके गुण है, वे सब गुण शिलाजीतमें भी होनेका निम्न श्लोकमें कहा है—

रसोपरस-सूतेन्द्र रत्न-लोहेषु ये गुणाः ।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरा-मृत्यु-जिगीषया ॥

सब प्रकारके जीर्ण दुःखदायी रोग, मेदोवृद्धि और मधुमेहके लिये शिलाजीतको अति हितकर माना है। इनके अतिरिक्त चोट लगनेपर, शिलाजीतका लेप भी किया जाता है। शिलाजीतके सेवनसे अकालमृत्युका भय दूर होता है और आयुकी वृद्धि होती है। यह बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सगर्भा, प्रसूता सबके लिये लाभदायक है।

आधुनिक विज्ञानके विचारसे शिलाजतु पेराफीन जातीय द्रव्य है जिससे पेट्रोल भी निकलता है। अभ्रकादि खनिज विज्ञान देखें।

विविध भावना—शिलाजीतको जिन द्रव्योंकी भावनायें दी जायें; उनके अनुसार गुणकी वृद्धि होती है, अतः शास्त्रमें औषधियोंके क्वाथ या स्वरसकी भावना देनेका निम्नानुसार विधान किया है—

वातरोग शमनार्थ—रास्ना, दशमूल, खरैंटी, पुनर्नवा, एरण्ड, सोंठ और मुलहठी आदि औषधियोंके क्वाथकी भावना दें।

पित्तरोग शमनार्थ—मुनक्का, शतावरी या मल्लिका पुष्प, परवल, त्रायमाणा, गिलोय और जीवनीयगणकी औषधियोंकी भावना दें।

कफरोग नाशार्थ—त्रिफला, बच, वायबिडंग, करंज, नागरमोथा और बृहत् पंचमूल आदि औषधियोंकी भावना दें।

वातपित्त शमनार्थ—लघुपंचमूल, सोंठ, द्राक्षा, गम्भारी और अश्वगन्धाकी भावना देनी चाहिये। इस तरह गिलोय और खरैंटीके स्वरसकी भावना दी जाती है।

वातकफ शमनार्थ—नागरमोथा, कूठ, बच, त्रिफला, देवदारू, बायबिडंग, पंचकोल, हल्दी, कालीमिर्च और अतीसकी भावना दें।

पित्तकफ शमनार्थ—पाठा, परवल, निम्ब, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ,

सप्तपर्ण, त्रायमाण, गिलोय, अतीस आदि औषधियोंकी भावना दें।

इस तरह भिन्न भिन्न रोग शमनार्थ रोगनाशक औषधियोंकी भावना दी जाती है या रोगनाशक अनुपानके साथ शिलाजीत सेवन करायी जाती है।

मात्रा—१ रत्तीसे १ माशा तक, दिनमें १ अथवा २ बार, रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। मेदोवृद्धि, शोथ, मधुमेह, क्षय, अश्मरी, मूत्राघात आदि जीर्ण रोगोंमें मात्रा १ माशा तक शनैः शनैः प्रकृति और अग्निबलका विचार करके बढ़ानी चाहिये।

अनुपान—

१—ज्वर शमनार्थ—नागरमोथा और पित्तपापड़ेका क्वाथ।
२—शोष रोगमें—मयूर मांसका रस।
३—रक्तपित्तपर—मुलहटीका क्वाथ।
४—कार्श्य रोगमें—दुग्ध।
५—मेदोवृद्धिपर—जल मिश्रित शहद।
६—वुद्धिवृद्धिके लिये—गो दुग्ध।
७—असाध्य शोथमें—गोमूत्र।
८—पाण्डुसह उदर-रोगपर—भैंसका मूत्र।
९—अश्मरीपर—वीरतर्वादिगणका क्वाथ।
१०—कुष्ठपर—खदिर क्वाथ।
११—विषहरणार्थ—सोंठ, मिर्च, पीपल और स्वर्णमाक्षिक भस्म।
१२—धातुक्षीणतामें—केशर और मिश्री मिला दूध।
१३—पांडुरोगपर—लोहभस्म और त्रिफला।
१४—मूत्ररोगमें—छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण।
१५—मूत्राघात—वीरतर्वादिगणका क्वाथ।

१६—मधुमेहपर—शिलाजीतको सालसारादिगणके क्वाथकी ७ भावनायें देवें। फिर इसे अग्नि बलके अनुसार सालसारादिगणके क्वाथके साथ या गोमूत्रके साथ देवें।

१७—प्रमेहपर—शिलाजीत और बंगभस्म समभाग मिला दूधके साथ सेवन करावें।

१८—शुक्रमेहपर—(अ) शिलाजीत २ तोले, बंगभस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और अभ्रक भस्म ६ माशे मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। एक-एक गोली प्रातः सायं दूध या प्रकृतिके अनुकूल अनुपानके साथ देते रहनेसे शुक्रमेह और स्वप्न दोष दूर होते हैं।

(आ) शिलाजीत २॥ तोले, लोहभस्म १ तोला, केशर ६ माशे, कस्तूरी ३ माशे और अम्बर ३ माशे मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें। सुबह शाम दूध या चन्दनके शर्बतके साथ सेवन करनेसे शुक्रमेह और स्वप्न-

दोष दूर होते हैं तथा पाचनशक्ति, स्फूर्ति और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है।

१९—बहुमूत्रपर—शिलाजीत, बंगभस्म, छोटी इलायचीके दाने और वंशलोचन, इन चारको समभाग मिलाकर शहदके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। प्रातः सायं २-२ गोली धारोष्ण दूध या शीतल-मिर्च और बड़े गोखरूके क्वाथके साथ सेवन करानेसे * बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, प्रमेह और धातुविकार दूर होकर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

२०—मूत्रजठरपर—शुद्ध शिलाजीत, मिश्री और कपूरके साथ देनेसे मूत्राघात (मूत्र जठर और मूत्रातीत) रोग दूर होता है।

२१—क्षयपर— (अ) त्रिफला, गिलोय, दशमूल, स्थिरादि कषाय (वयः स्थापन कषाय) और काकोल्यादिगणके क्वाथोंकी भावना वाली शिलाजीत २ से ४ रत्ती बकरीके दूधमें दिनमें दो बार दें।

(आ) शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, त्रिकटु, और शहदको मिलाकर चटायें। ऊपरसे बकरीका दूध पिलावें।

२२—त्रिदोषज शोथपर—शिलाजीत आधासे १ माशा तक त्रिफला क्वाथके साथ देवें।

२३—कुम्भकामलापर—गोमूत्रके साथ सेवन करावें।

२४—उरुस्तंभपर—शिलाजीतको गूगल, पीपल और सोंठके साथ मिला दशमूल क्वाथ या गोमूत्रके साथ सेवन करावें।

२५—आयुवृद्धिके लिए—मिश्री मिले हुए गोदुग्धके साथ एक वर्ष या अधिक समय तक सेवन करावें। १ रत्तीसे आरम्भ करके शनैः शनैः मात्रा १ माशे तक बढ़ावें।

२६—रक्त दबाव वृद्धिपर—रक्तदबाव अति बढ़जानेपर शिलाजीतका उपयोग होता है। २-२ रत्ती शिलाजीतको काली सारिवा ६ माशे और मुलहठी १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें २ बार देवें तथा रात्रिको स्वादिष्ट विरेचन या पंचसकार अन्य सामान्य रेचक-चूर्ण ४-६ माशे जलके साथ देते रहनेसे रक्तदबाव एक सप्ताहमें कम हो जाता है।

२७—अर्दितपर—शुद्ध शिलाजीत १-१ रत्ती और सारिवा २-२ रत्ती मिला सुबह और दोपहरको देवें। और कब्जको दूर करानेके लिए रात्रिको सैंधानमक मिली हुई हरड़का चूर्ण २ माशे देते रहें। लगभग १ मास देनेपर अर्दित वात दूर होता है।

---

* थोड़ा थोड़ा मूत्र दिनमें कई बार उतरते रहना और एक साथ अत्यधिक परिमाण से मूत्र त्याग होना। इनमें थोड़े-थोड़े मूत्र त्याग होनेपर यह प्रयोग कार्य-कारी होता है।

२८—शिरदर्दपर—बृहदन्त्र, कमर, नितम्ब आदिके वात प्रकोपसे ज्वर सहित शिरदर्द उत्पन्न हो जाता हो और उसका बार-बार दौरा होता हो, तो शिलाजीत ½ रत्ती, अमृतासत्व १ रत्ती, मजीठ २ रत्ती मिलाकर, दिनमें ४ बार आमके मुरब्बेके साथ देते रहें।

अपथ्य—शिलाजीतके सेवनकालमें स्त्रीप्रसंग लालमिर्च, विदाही तथा भारी भोजन, तैल, खटाई, गुड़, कुलथी, मलावरोध करने वाले पदार्थ, अधिक नमक, सूर्यके तापका अधिक सेवन, रात्रिमें जागरण, दिनमें शयन, मल-मूत्रादिके वेगको रोकना, मांस, मछली, शराब, व्यायाम, तेज वायुका सेवन न करें। इसमें कुलथी मकोय और कपोतके मांसका सेवन सदाके लिये त्याग देना चाहिये।

सूचना—जिनके नेत्रोंमें लाली और उष्णता रहती हों; ऐसे पित्तप्रधान प्रकृति वालेको शिलाजीत सेवन नहीं करानी चाहिए।

(२४) खर्पर (खपरिया) शोधन—खपरिया, कारवेल्लक अथवा दर्दुर (दूसरे प्रकारका खपरिया) का ७ दिन तक दोलायंत्रसे गोमूत्रमें उबाल लेने और केलेमेना प्रिप्रेटा (Calamina Prcparata-तीसरे प्रकारका खपरिया) को गोमूत्रमें ६-६ घण्टे तक खरलकर ७ दिन तक धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। केलेमेना प्रिप्रेटा लघुमालिनीवसन्तमें अच्छा काम देता है। नेत्ररोगमें उपयोगी है या नहीं; यह अनिश्चित है।

अनेक वर्षों पर्यन्त वैद्यसमाजमें खर्परके उपयोगमें मतभेद रहा है। सुवर्णमालिनीवसन्तमें संदिग्धताके हेतुसे खर्परके स्थानमें जसदभस्मका उपयोग होता था। कराची वैद्य सम्मेलनके समयपर अध्यक्ष कविराज प्रतापसिंहजीने, कारवेल्लकको सच्चा खर्पर सिद्ध किया। तबसे कारवेल्लकका विशेष उपयोग हो रहा है। सुवर्णमालिनीवसन्त और नेत्ररोगकी औषधिमें जहां खर्पर आता है; वहां कारवेल्लकका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है। फिर भी कारवेल्लकको सच्चा खर्पर माननेमें सन्देह है। कारण, रसरत्नसमुच्चयकार लिखते हैं—

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशय॥

जो रस (पारद) और रसक (खर्पर), इन दोनोंको अग्निमें स्थिर कर सकता है, उसके पास देहसिद्धि (अजरामरत्व) और स्वर्ण बनानेकी सिद्धि निःसन्देह दासी बनकर रहती है। इस वचनमें कहा हुआ अग्निसे उड़ जाना यह गुण वर्त्तमानमें प्रचलित, कारवेल्लक और अन्य खर्परमें नहीं है। श्री कविराज प्रतापसिंहजी आदि विद्वानोंकी मान्यता है कि, जसद खर्परमेंसे निकलता है।

(२५) गोदन्ती शोधन—गोदन्तीको दोलायंत्रसे नींबू, भांगरा या द्रोण पुष्पीके रसमें ३ घण्टे तक उबाल लेनेसे शुद्ध होती है।

(२६) मृद्दारशृङ्ग शोधन—बिजौरा और अदरकके रसकी ३-३ भावनायें देनेसे मुर्दासंग शुद्ध होता है।

मुर्दासंग शीशेकी उपधातु है। कफ, उपदंश और गुह्येन्द्रियके अन्य रोगों को दूर करती है। छोटे बच्चेको मिट्टी खानेसे उपद्रव हुआ हो; उसे मुर्दासङ्गका जुलाब देनेसे विरेचन होकर मिट्टी निकल जाती हैं। मुर्दासंग सेवन से सफेद बाल काले हो जाते हैं। पारद बन्धनमें इसका उपयोग होता हैं तथा घाव सुखानेके लिये मलहममें भी मिलाया जाता है। इसकी दूसरे प्रकारकी शोधनविधि प्रदरान्तक रसकी टिप्पणीमें दी गई है।

(२७) काशीश शोधन—काशीशको भांगरेके रसमें ३ घण्टे तक खरल करके धूपमें सुखानेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

काशीश श्वेत और नीली दो जातिकी आती है। इनमेंसे भस्म बनानेके लिये नीली काशीश विशेष लाभदायक है। किन्तु विलायती सल्फेट ऑफ आयरन (Sulphate of Iron) की भस्म बनाई जाय, तो वह सत्वर गुण दिखाती है। हम उसीको उपयोगमें लेते हैं।

(२८) वज्र (Diamond) शोधन—हीरा-कटेलीके कन्दमें बन्दकर कुलथी और कोदोंके धान्यके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायन्त्र विधिसे उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (आ० प्र०)

(२९) माणिक्य (Ruby) शोधन—नींबूके रसमें २४ घण्टे तक दोलायंत्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

(३०) गोमेदमणि (Agate) शोधन—गोमेदमणिको जयन्तीके रसमें ३ दिन तक दोलायंत्रसे उबालें। पश्चात् तपा-तपाकर आंवलेके स्वरसमें २१ बार बुझानेसे शुद्ध हो जाती है। (शा० सं०)

(३१) पन्ना (Emerald) शोधन—पन्नाको कुलथी अथवा कोदों (कोद्रव धान्य) के क्वाथमें दोलायन्त्रसे १२ घण्टे तक उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३२) वैडूर्य (Cat's eye) शोधन—लहसुनिया-त्रिफलाके क्वाथमें २४ घण्टे तक दोलायन्त्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० ग०)

(३३) पुखराज (Topaz) शोधन—कुलथीका क्वाथ और कांजी समभाग मिलाकर उसके साथ पुखराजको दोलायन्त्रमें ३ अहोरात्र उबालनेसे शुद्धि होती है। (र० र० स०)

(३४) नीलम (Sapphire) शोधन—नीलम-नीलके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायन्त्रमें उबालनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३५) राजावर्त (Lapis Lazuli) शोधन—गोमूत्र, नींबूका रस,

जवाखार और पापड़खार मिलाकर, उसमें दोलायन्त्रसे ६ घण्टे तक उबालनेसे राजावर्तकी शुद्धि होती है। (र० च०)

राजावर्तमें २ प्रकार हैं—एक जातिमें सुवर्ण समान छीटे और दूसरी जातिपर रौप्य समान छींटे रहते हैं। सुवर्ण समान वाला उत्तम है।

(३६) वैक्रान्त (Tourmaline) शोधन—हीरा शोधन विधिके अनुसार कुलथीके क्वाथमें दौलायन्त्रसे शोधन करना चाहिये। फिर वैक्रांतको तपा-तपाकर २१ बार घोड़ेके मूत्रमें बुझानेसे शुद्ध होता है। वैक्रांत श्वेत, रक्त, पीत आदि भेदसे आठ प्रकारके होते हैं। विशेषत: यह सिलोनसे आते हैं। उनमेंसे रसरत्नसमुच्चयकार और अन्य ग्रन्थकारोंने काले रंगवालेको उत्तम माना है; आयुर्वेद प्रकाशमें भी षट्कोण या अष्टकोण और काले रंग वालेको श्रेष्ठ दर्शाया है; और उसके नीचे लिखे श्लोकके दोष वाले हीरेको (तोरमल्लीको) ही वैक्रांत कहा है—

"विकृता वज्रखण्डा ये वैक्रांताख्यां भजन्ति ते।
जातय: शोधनं हिंसा गुणास्तेषां तु वज्रवत्।।" अ० ५। १५९।

अन्य ग्रन्थकारने कृष्णको अति श्रेष्ठ, पीतको सुवर्णादि करणमें तथा श्वेतको रौप्यादि करणमें उपयोगी, रक्तकोसर्वार्थ सिद्धिप्रद तथा अन्य जातियोंको निष्फल दर्शाया है।

ज्योतिष शास्त्रने रत्नोंको धारण करने मात्रसे ग्रहोंकी कुदृष्टिसे उत्पन्न विविध रोगोंका निवारण माना है। एवं आयुर्वेदने रत्नोंकी पिष्टी और भस्मके सेवनका उल्लेख किया है। ज्योतिष शास्त्रमें भिन्न-भिन्न ग्रहोंके लिये निम्नानुसार रत्नोंकी योजनाकी है।

माणिक्य मुक्ताफल विद्रुमाणि ताक्ष्र्यं च पुष्पं भिदुरं च नीलम्।
गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम्।। (र०र०म०)

ग्रह	रत्न		रंग
सूर्य	माणिक्य	(Ruby)	रक्त, उज्वल, पारदर्शक या गुलाबी; बैंजनी आभा।
चन्द्र	मोती	(Pearl)	श्वेत, पीली, नीली, प्रभा।
मंगल	प्रवाल	(Coral)	मदलाल, सादा, अपारदर्शक।
बुद्ध	पन्ना	(Emerald)	गहरा हरा पारदर्शक।
गुरु	पुखराज	(Topaz)	सफेद, पीला।
शुक्र	हीरा	(Diamond)	सफेद तेजस्वी।
शनि	नीलम	(Sapphire)	गहरा नीला।
राहु	गोमेद	(Agate)	गोमूत्र सदृश।
केतु	वैडूर्य (लहसुनिया)	(Cat'eye)	बिल्ली और बाघकी आँखों जैसा।

ग्रह	रत्न	रग
राहुकेतु	राजावर्त (Lapis lazuli)	नीला-लाल । सुनहरी अथवा सफेद छींटे ।

आचार्योंने जाति और स्वभाव विशिष्ट हीरेका सामर्थ्य भिन्न-भिन्न दर्शाया है। हीरेमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाति है। उत्तम जातिका हीरा क्षयराग नाशक, जरानाशक, रसायन और आयुवर्द्धक माना है। वह औषधिरूपसे अधिक व्यवहृत होता है।

हीरोंकी खानमें उत्पन्न विकारयुक्त हीरोंके टुकडे ही वैक्रान्त कहलाते हैं। यथार्थमें वे कनिष्ट हीरे होनेसे उनके शोधन, मारण और गुण हीरेके समान ही हैं। इस वैक्रान्तको भाषामें तोरमल्ली तुरमरी कहते हैं। यह तुरमरी शब्द नुर्मेलीन (Tourmaline) शब्दका अपभ्रंश है।

वर्त्तमानमें अनेक चिकित्सकोंने अभ्रककी खानमेंसे निकलने वाले एक जातिके पत्थरोंको वैक्रांत माना है। अन्य स्फटिकको वैक्रान्त कहते हैं।

(३७) मौक्तिक शोधन—जयन्तीके रसमें ३ घण्टे तक दोलायन्त्रसे मोती उबाल लेनेसे शुद्ध होते हैं। (शा० सं०)

वर्त्तमानमें जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशोंसे बनावटी मोती बहुत आते हैं वे औषधिके कामके नहीं है। वसरासे आने वाले मोती अच्छे हैं। औषधिमें प्रायः अनबिंधे मोती और बड़े मोतीके चूरेका उपयोग होता है। बिंधनेके समय जो चूर्ण जलमें गिरता है। यह चूरा काम देता है।

बाजारमें मोतीके जो छिलके मिलते हैं वे शुक्तिके तेजस्वी अंशमेसे निकाले हुए हैं। उन्हें खरीद करना हो तो शुक्तिके तेजस्वी अंशकी पिष्टी बना लेना ही अच्छा हैं। जिससे धनकी व्यर्थ हानि न हो।

धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु, भावप्रकाश और चक्रपाणिदत्तके मत में जयन्ती जातीको कहते हैं। अमरकोषकारने अरणीको जयन्ती कहा है। इन दोनोंमेंसे विषनाशक गुण जाती (चमेली) में अधिक है। अतः मौक्तिक शोधनमें अरणीकी अपेक्षा जाती विशेष हितकर मानी जायगी।

दूसरी विधि—पक्के ताजे नींबूके रसमें ४ गुना जल मिला; उसमें १२ घण्टे मोतीको भिगोकर धो लेनेसे शुद्ध हो जाते हैं। नींबूके जलमेंसे मोती को सम्भालकर निकालें। कारण मोतीमेंसे कुछ चूर्ण होकर नींबूके रसमें मिल जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

तीसरी विधि—तपा-तपाकर सात-सात बार घी कुंवारके रस, चन्दलोई के रस और स्तन्य (स्त्री दूध) में बुझानेसे मोतीकी शुद्धि होती है। यदि इस तरह शुद्धि करनी हो, तो तपानेके समय बरतनपर ढक्कन ढक देवें। अन्यथा मोती उछलकर पात्रसे बाहर निकल जाते हैं। किसी-किसी समय तो अग्नि

मैं भी गिर जाते हैं। इसीलिये बहुत सम्हालकर शोधन करना चाहिये।
(शा० सं०)

(३८) शंख और शुक्ति शोधन —शंख और सीपको मठ्ठेमें ३ दिन तक भिगोवें। पात्रको दिनमें १२ घण्टे धूपमें तथा रातको १२ घण्टे खुला रखना चाहिये। मठ्ठेको रोज बदल देवें। ३ दिन बाद उसे मठ्ठेमेंसे निकाल, जलसे धो लेनेपर शंख और शुक्तिकी शुद्धि होती है।

शंख समुद्रमेंसे निकले हुए बड़े, सफेद रंगके, मजबूत देखकर उपयोगमें लेवें। मैले रंगके जल्दी टूटने वाले और नदीके छोटे शंखोंको उपयोगमें न लें।

मोती जिसमेंसे निकाल लिये हों, ऐसी बड़ी सीपोंको उपयोगमें लेना चाहिए। शोधन करनेके समय सीपके पीछे जो काला भाग होता है, उसे चाकूसे दूर करें। केवल सफेद तेजस्वी भागको ही लें। नदीमें उत्पन्न होने वाली छोटी-छोटी सीपोंमें गुण बहुत कम होता है। अतः उनको न लें।

शुक्तिको गरम कर लेनेसे उसके पीछेका काला भाग आसानीसे अलग किया जा सकता है।

(३९) प्रवाल (Coral) शोधन—जयन्तीके रसमें दोलायंत्रसे ३ घण्टे तक स्वेदन करें। फिर गरम जलसे धो लेनेसे प्रवालकी शुद्धि होती है।
(शा० सं०)

अथवा प्रवालको मठ्ठा, जो अधिक खट्टा न हो, उसमें ३ घण्टे भिगोकर गरम जलसे धो लेनेपर भी शुद्धि हो जाती है। श्वेत वर्णयुक्त और निस्तेज प्रवालकी शाखाओंको निकाल डालें।

(४०) वराटिका शोधन—कौड़ियोंको मठ्ठा, चूनेका रस अथवा नींबूके रसमें भिगो दें। जब कौड़ियोंका रंग श्वेत हो जाय, तब निकालकर धो लें। लगभग ७-८ दिन तक भिगोना पड़ता है।

औषध कार्यमें पीली कौड़ीका ही उपयोग होता है। वजनकी दृष्टिसे आधा तोले वजन वाली उत्तम, १ तोले वजनकी मध्यम और ३ माशे वजन की कौड़ियां कनिष्ठ मानी गई है।

(४१) अकीक (Agate) शोधन—अकीकको तपा-तपाकर गुलाबजल या अर्क वेदमुश्क अथवा दूधमें २१ बार बुझानेसे शुद्धि होती है।

(४१) जहरमोहरा (Serpentine) शोधन—जहरमोहराको तपा-तपा कर २१ बार गोदुग्ध या आंवलोंके रसमें बुझानेसे शुद्धि होती है।

(४३) भस्मांग (Turquoise) शोधन—पिरोजाको अग्निमें तपा-तपा कर गाय या बकरीके दूधमें ३ बार बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४४) संगयसव शोधन—संगयसवको तपा-तपाकर २१ बार अर्क गाउजवां या गुलाबजलमें बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४५) संगयहूद हजरुलयहूद शोधन—संगयहूदको तपा-तपाकर ७ बार कुलथीके क्वाथमें बुझानेसे शुद्ध होता है।

(४६) उपपन्ना शोधन—पन्नाकी खानमेंसे निकलने वाले तेजस्वी, नीले रंगके पत्थरोंको तपा-तपाकर कुलथीके क्वाथ, गुलाबजल और केवड़ेके अर्क में ७-७ बार बुझानेसे उनकी शुद्धि होती है।

(४७) बारहसिंगा शोधन—बारहसिंगेके छोटे-छोटे टुकडेकर मठ्ठेमें डालें। फिर धूप लगती रहे, ऐसे स्थानपर ३ दिन तक बरतनको रखें। पश्चात् जलसे धोकर तेज धूपमें सुखा लेनेसे इसकी शुद्धि होती है।

(४८) फिटकरी और सोहागा शोधन—इनका लोहेकी कड़ाहीमें डाल कर फूला बना लेनेसे शुद्धि होती है।

(४९) जयपाल शोधन—जमालगोटेके बीजोंको २४ घण्टे जलमें भिगो दें। फिर ऊपरके छिलके उतारकर गिरी निकाल लें। जयपाल वाला हाथ नेत्रोंको न लग जाय, यह सम्हालें। कदाचित् भूलसे हाथ लग भी जाय तो घी लगा लें। पश्चात् गिरीको १६ गुने दूधमें दौलायन्त्रसे उबालकर जलसे धो लेवें और बीचमेंसे जीभी निकालकर सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे जयपाल शुद्ध होता है।

सूचना—जयपालके विरेचन और वमन-धर्म उसमें अवस्थित तैलके हेतु से प्रकाशित होते हैं। यदि तैल अत्यधिक कम कर दिया जायगा तो वह जयपाल मिश्रित औषधि योग्य मात्रामें इच्छित कार्य नहीं कर सकेगी।

(५०) बच्छनाभ शोधन—सफेद या काले बच्छनाभके छोटे-छोटे टुकड़े कर ४ गुने बकरीके दूधमें ३ घण्टे उबाल, धोकर छायामें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० र०)

बाजारमें गोमूत्रकी गंधवाला काले रंगका बच्छनाभ आता है। वह श्वेत रंगके बच्छनाभको गोमूत्रमें उबालकर बनाया हुआ है। बच्छनाभ गौमूत्रमें एक समय उबल जानेके हेतुसे प्रायः शुद्ध है। फिर भी अधिक शोधन करना हो, तो उसके छोटे-छोटे टुकड़ेकर गोमूत्रमें एक दिन भिगो-कर धो लेवें। गोमूत्रमें उबालनेके समय बच्छनाभसे सुई डालकर परीक्षा करें। यदि सुई पार निकल जाय, तो शुद्ध समझें। कसर हो तो आधे घण्टे तक और अग्नि देनी चाहिये।

(५१) धत्तूर शोधन—काले धतूरेके पक्के बीजोंको गोमूत्रमें १२ घण्टे भिगोकर सुखा दें। फिर लकड़ीके डण्डेसे कूट या शिलापर पीस, फटककर छिलकोंको दूर करनेसे बीजोंकी शुद्धि होती है। (यो० र०)

काले धतूरेके पक्के बीज विशेष लाभदायक हैं। कालेके अभावमें श्वेत धतूरेके बीज लेवें।

(५२) कुचिला शोधन—कुचिलेको ७ दिन तक गोमूत्रमें भिगोवें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहें। फिर छिलका नरम होनेपर या कुचिलामें सुई लगानेपर पार निकल जाय, तब छिलकोंको उतार देवें और भीतरसे जोभीको भी निकाल डालें। पश्चात् कुचिलाको १६ गुने दुग्धमें दोलायन्त्रमें उबालें। दुग्ध, रबड़ी जैसा हो जानेपर उतारकर धो लेवें। अथवा समभाग घृतमें भून लेनेसे भी कुचिला शुद्ध हो जाता है।

यदि ७ दिन भिगोनेपर भी छिलके नरम न हों, तो २-३ रोज ज्यादा भिगोवें। किन्तु छिलके नरम होनेपर अधिक दिन गोमूत्रमें न रखें। अन्यथा गुण कम हो जाता है।

कुचिला शोधन करनेपर शेष रहे दुग्धका मावा बनाकर अफीम छुड़ाने के लिये हमने उपयोगमें लिया है। मात्रा अफीमके बराबर देते हैं। अथवा कुचिलेका शेष घृत अफीमके आधे परिमाणमें देते हैं। इन दोनों प्रयोगोंसे अफीमका व्यसन ५-७ दिनमें ही छूट जाता है।

दूसरी विधि—१ सेर कुचिलाको कड़ाहीमें डाल २॥ से पांच तोले तक एरण्ड तैल मिला, मसलकर मन्दाग्निसे भूनते हैं। बार-बार खुरपेसे चलाते रहते हैं। कुचिले फूल जाय, तब कड़ाहीको उतार लें। कदाचित् एकाध कुचिला उछलकर बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे सम्हालपूर्वक भूनें। कुचिलेको बाहर पत्थरपर रख मुठ्ठीसे तोड़नेपर टूट जाता है, तब पक्का माना जाता है। इस कुचिलेका उपयोग शुद्ध कुचिलेके स्थानपर किया जाता है। छिलके और जिह्वा न निकालनेपर भीं बाधा नहीं पहुँचती। कदाचित् कोई कुचिला कच्चा रह गया हो, तो उसे निकाल डालना चाहिये।

कोई-कोई वैद्य बिना शोधन किये और बिना जीभी निकाले बढ़ईसे यन्त्रद्वारा कागज जैसे टुकड़े करा, कूटकर उपयोगमें लेते हैं। किन्तु ऐसे अशुद्ध कुचिलेको प्रयोगमें लाना, यह शास्त्र मर्यादाके विरुद्ध है।

(५३) रसाञ्जन शोधन—बाजारसे ली हुई रसोंतको कूटकर जलमें २४ घण्टे भिगो देवें, फिर अच्छी तरह मसलकर कपड़ेसे छान लेवें। और जल मिलानेकी जरूरत पड़े तो और जल मिला लेवें। छाने हुए जलको सम्हालकर ऊपरसे एक कड़ाहीमें निकाल लेवें। नीचेकी मिट्टीको रसोंतके साथ न आने दें। फिर जलका उबालकर गाढ़ा करें। ऊपरके भागमें रसोंत लग जाय उसे बार बार खोलते रहें; नीचे भी न लग जाय इस प्रकार सम्हाल पूर्वक चलाते रहें। अग्नि मन्द देवें। जब रसोंत अवलेहके समान हो जाय या जलने लगे तब कड़ाहीको नीचे उतारकर सूर्यके तापमें सुखा लेनेकी अपेक्षा

'औषधिकृति' में लिखे अनुसार तैयार कर लेना विशेष हितकर है।

(५४) गुग्गुलु शोधन विधि—एक पाव त्रिफला और आध पाव गिलोय को जौकूटकर ३-४ सेर पानीमें रातको भिगो देवें। सुबह काढ़ा करके आधा पानी रह जाय; तब उतारकर छान लेवें। फिर छने हुए काढ़ेको कड़ाहीमें रखकर चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द-मन्द अग्नि दें। कड़ाहीके दोनों कुन्दोंमें एक लम्बी लकड़ी आड़ी पिरो देवें। पश्चात् एक साफ कपड़ेमें एक पाव भैंसा गूगल बांध, पोटली सी बना, उसी लकड़ीमें बाँधकर, कड़ाहीमें लटका देवें। पोटलीका मुँह खुला रक्खें और उसी कड़ाहीमेंसे कलछीसे काढ़ा भर-भर कर गूगल थैलीमें डालते रहें। साथ-साथ गूगलको चलाते भी रहें। दस-बारह बार काढ़ा डालनेपर सारा गूगल कड़ाहीमें छन जायगा। जब कपड़ा खाली हो जाय, तब कपडेको निकाल लेवें। उसमें गूगलका मैल रहे, उसे फेंक देवें। कड़ाहीमें जो गूगल मिला काढ़ा है, उसे धीरे-धीरे धार बांधकर निकाल लेनेसे पेंदेमें मैल रह जायगा। उसे भी दूर करें। केवल नितारे हुए काढ़ेको मन्दी आँचपर पकावें। गाढ़ा हो जाय, तब उतार लेवें। शीतल होनेपर हाथोंमें घी लगा गूगलकी गोलियाँ बनाकर सुखा लेवें और कड़ाहीको गोबरसे साफकर लेवें।

टिप्पणी—कितने ही चिकित्सक गूगलका शोधन गिलोय और दशमूल-क्वाथके साथ करते हैं। आम शोधक कार्य गूगलसे लेना हो, तब त्रिफला विशेष हितावह माना जायगा। आम संचय अधिक न हो ऐसे वात रोगियों के लिए गिलोय और दशमूल क्वाथ लाभदायक रहेगा।

(५५) भांग शोधन—भांगकी पत्तीको जलमें उबाल, निचोड़कर, सुखा लेवें फिर कड़ाहीमें डालकर सेक लेनेसे शुद्ध होती है।

(५६) लाङ्गली शोधन—कलिहारीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको २४ घण्टे गोमूत्रमें भिगो, छायामें सुखा लेनेसे शुद्ध होते हैं। (र० चं०)

(५७) कनेर मूनका शोधन—कनेरकी जड़के छोटे-छोटे टुकड़ेकर पोटलीमें बाँधकर २ घण्टे तक गोदुग्धमें दौलायन्त्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होते हैं। (र० चं०)

(५८) गुञ्जा शोधन—सफेद चिरमिटीको दौलायन्त्रमें रख काँजीमें १ प्रहर उबाल लेनेसे शुद्ध होती है।

(५९) भल्लातक शोधन—पक्के भिलावे जो पानीमें डालनेसे डूब जायँ वे ईंटके चूर्णसे घिसनेसे शुद्ध होते हैं। जब भिलावेका क्वाथ करके पाक आदिमें उपयोग करना हो, तब इस तरह शुद्ध कर लें।

दूसरी विधि—भिलावोंको एक कपड़ेकी पोटलीमें बाँधकर भैंसके गोबर में चौगुना जल मिलाकर दौलायन्त्रमें मन्दाग्निसे १२ घण्टे तक उबालें।

पश्चात् ४-४ प्रहर गोमूत्र और गोदुग्धमें उबालें । बादमें भिलावोंको गरम जलसे धोकर सबके ऊपरसे टोपीको संभालकर दूर करें । फिर भिलावोंको नारियलके जलमें १२ घण्टे उबाल लेनेसे भिलावे चूर्णमें मिलाने लायक शुद्ध हो जाते हैं ।

टिप्पणी—हम सिर्फ गोमूत्रमें उबालकर शोधन करते हैं ।

(६०) अहिफेन शोधन—अफीमको पानीमें घोलकर कपड़ेकी दो तहोंमें छान लेनेसे वह पानीमें चली जाती है । फिर आगपर औटाकर पानीको गाढ़ाकर लेनेसे अफीम शुद्ध होती हैं । ४ तोले अफीमका शोधन करनेपर २ तोले रह जाती है । इस तरह शुद्धकी हुई अफीमको नेत्ररोगकी औषधिमें मिलानी चाहिये ।

नेत्रोंकी औषधिमें अफीम ५-१० वर्षकी पुरानी विशेष हितकर है और नशेके लिये नवीन अफीम अच्छी होती हैं ।

दूसरी विधि—अफीमको अदरकके रसकी २१ भावनायें देनेसे खानेकी औषधिमें मिलाने योग्य शुद्ध होती है । (यो० र०)

(६१) लहशुन शोधन—लहशुनके छिलकोंको निकाल, कुचलकर २ दिन छाछमें भिगोवें । रोज छाछ बदल देवें । पश्चात् साफ जलसे धोकर छायामें सुखा लेनेसे लहशुन दुर्गन्धरहित शुद्ध होता है ।

(६२) एरण्डबीजका शोधन—अंरडके फलोंके ऊपर से छिलके और भीतरसे जीभी निकाल दें । पश्चात् ४ गुने नारियलके जलमें दोलायन्त्रसे मन्दाग्निपर ३ घण्टे उबालनेसे शुद्ध होते हैं ।

(६३) हींग शोधन—हींग घीमें भून लेनेसे चूर्णमें मिलानेके लायक शुद्ध होती है किन्तु, रसायन पारदयुक्त औषधियोंमें मिलानेके लिये हींगको सूर्यके तापमें कमलके पत्तोंके रस में ६ घण्टे तक घोटनेसे शुद्ध होती है । (यो. र.)

(६४) उसारे रेवन्द शोधन—उसारे रेवन्दको अदरकके रस या सोंठके क्वाथकी ३ भावनायें देनेसे शुद्ध होती है ।

(६५) समुद्रफेन शोधन—समुद्रफेनको नींबूके रसमें ३ घण्टे खरलकर धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है ।

(६६) सर्पविष शोधन—काले सर्पके विषको पहिले चीनी मिट्टी की प्यालीमें डाल, सरसोंके तैलमें मिलाकर सूर्यके तापमें १२ घण्टे रखें । पश्चात् नागरबेलके पानके रस, अगस्त पत्रके रस और कूठके क्वाथकी ३-३ भावनायें देनेसे शुद्धि होती है ।

द्वितीय विधि—सर्पविषको गोमूत्रमें डालकर तीन दिन सूर्यके तापमें रखें । फिर सुखा लेनेपर वह शुद्ध हो जाता है । (र० च०)

सर्पविष निकालने वाले साँपको पकड़, मुँहको खोल, ऊपरके भागसे नीचे

का भाग थोड़ा टेढ़ाकर मुँहको उल्टा कर देते हैं। फिर विषकी थैलीपर अंगुष्ठको दबाकर विष निकाल लेते हैं। जीवित सर्पमेंसे २-३ मासपर बार-बार विष निकालते रहते हैं। मरे हुए सर्पमें विष नहीं निकलता। अनेक सपेरे थैली को चीरकर विष निकालते हैं। परन्तु उस विषमें रक्त मिल जाता है। ऊपर कही हुई विधिसे दबाकर विष निकालनेपर शुद्ध विष सहजमें ही मिल जाता है।

सर्पका विष सर्पको क्रोधितकर निकालनेसे उत्तम पीत वर्णका विष निकलता है। इसके लिये होशियार सपेरा विषधर सर्पको पहिले पूँगी नाद पर मस्त करता है। फिर काचके प्यालेपर रबरका आवरण लगा, युक्तिसे उसे कटाता है। इससे १०-१५ बिन्दु या इससे भी न्यून विष प्राप्त होता है सपेरा, सर्पके मुँह और पूँछको पकड़कर उसके मुँह को अंगुष्ठ और तर्जनीके दबावसे खोल कर रबरके ढक्कन वाला प्याला मुंहमें घुसाकर दबाव शिथिल करता है। दबावके शिथिल होते ही सर्प बड़े वेगसे दांतोंसे रबरके आवरणमें छेद करता है और विष चू जाता है। इस प्रकार अनेक बार थोड़े-थोडे दिनोंके अन्तरालसे विष संग्रह करना चाहिये।

बम्बईके हाफकिन्स इन्स्टीट्यूट और पार्क डेविसके कोबरा फील्डमें यह क्रिया देखकर अनुभव प्राप्त करें। वहां शिक्षित सेवक यह कार्य बड़ी खूबीसे करते हैं।

सर्प विष थूकके समान निकलता है। फिर थोड़े ही समयमें सूखकर गोंदकी छोटी-छोटी डलीके समान सफेद रंगका हो जाता है।

सर्पविषकी परीक्षा—तुरन्त मारे हुए किसी पशुके शरीरकी बड़ी रक्त वाहिनीको काट दें। फिर बहते हुए रक्तप्रवाहमें नीचेकी ओर एक सरसों समान विषकण रखनेसे वह रक्तप्रवाहमें तेजीके साथ ऊपरको चढ़ने लग जाता है।

(६७) पित्त शुद्धि—पित्तको कड़वे नीमके पत्तोंके स्वरसकी ३ भावनायें देकर जलसे धो लेनेपर उसकी शुद्धि होती है। (र० चं०)

(६८) गंधाविरोजा शोधन—शोधन विधि मूत्रकृच्छ्रान्तक रसकी दूसरी विधिके साथमें दी गई है।

(६९) अंड़ेके छिलकोंका शोधन—अण्डेके छिलकोंको सिरका या नमक नौसादर मिलाये जलमें भिगो दें। ४-६ दिनमें कोमल होनेपर भीतरकी झिल्लीको सम्हालकर निकाल देनेसे शुद्ध हो जाते हैं।

नमक और नौसादर मिलाना हो, तो छिलकोंकी अपेक्षा आठवाँ हिस्सा लेवें। झिल्ली निकालनेके पश्चात् शुद्ध जलसे धोकर सूर्यके तापमें सुखा लेना चाहिये।

भस्म प्रकरण

स्वर्णताराऽऽरताम्राणि नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम् ।
धातवःसप्त विज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेद्बुधः ॥१॥ शा.सं-म, ख. ११

स्वर्ण, रौप्य पीतल, नाग, बंग, ताम्र और लोह ये सात धातुएँ जाननी चाहिये । विद्वान् वैद्य इनका शोधन करें ।

वक्तव्य—पीतलको मूल धातु कई आचार्योंने माना है किन्तु यह भ्रमवश हुआ है पीतल मिश्र धातु है । पीतलके स्थानपर जसदको मूल धातुमें लेना चाहिये ।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलाञ्जन शिलालकाः ।
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥५३॥ शा.सं.म,ख, ११

माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक-रौप्यमाक्षिक) तुत्थ, अभ्रक, नीलाञ्जन, मनःशिला हरताल, खर्पर ये सात उपधातुएँ जाननी चाहिये ।

धातु उपधातुओंको भस्म बनाने या मारण करनेका अर्थ उनके सूक्ष्म परमाणुओंको अत्यन्त सूक्ष्म, निरुत्थ और सेन्द्रिय घटक युक्त बनाना है, ताकि सेवन करनेपर वे उपकारक हों, देहमें शल्य रूपसे अपकारक न हों । धातु उपधातुओंके निरिन्द्रिय परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम हो जाय और उनके साथ दी हुई भावना द्रव्योंके गुणवर्द्धक सेन्द्रिय परमाणु मिश्रित हो जाय; ऐसे सूक्ष्मतम सेन्द्रिय स्वरूपकी प्राप्ति करना ही भस्म करने या मारण करनेका उद्देश्य है । अथवा जड़ द्रव्योंकी जड़ताको दूर कर, उनमें शरीरके उपयोगी लघुत्व गुणको उत्पन्न करना मात्र, भस्म बनानेका उद्देश्य है ।

धातु उपधातुओंकी भस्म बनाने अथवा मारण करनेका अर्थ इनके धातुत्वको बिल्कुल नष्टकर देना, ऐसा नहीं है, और न यह कदापि संभव ही है । भस्म चाहे जितनी सूक्ष्म बनाई जाय । और कदाच पाश्चात्य रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे इनका धातुत्व बिल्कुल नष्ट हो जाय । फिर भी वह अपना मूल स्वभाव (गुणविशिष्टत्व) का त्याग नहीं कर सकती, यह प्रयोगसिद्ध है ।

भस्मका अर्थ राख नहीं है । भस्म तथा राखमें महत्वपूर्ण अन्तर है । भस्म अति तेजस्वी, वीर्यवान् अति गतिवान् होनेसे सत्वर फलदायक होती है । भस्म बनानेमें सेन्द्रिय-क्षारका संयोजन धातुके साथ इस प्रकार कराया जाता है जिससे भस्म सेन्द्रिय बन जाती है । एलोपैथिक विधि अनुसार बनाई हुई लोह भस्म और आयुर्वेदिक लोह भस्ममें यही अन्तर है, विलायती भस्म निरिन्द्रिय है । जब कि, आयुर्वेदिक सेन्द्रिय है । इसी बातको अब समझकर डाक्टरीमें सोमलके सेन्द्रिय कल्प बनाये गये हैं । जसदके पुष्प,

जसदकी राख है, अतः इसे जसदकी भस्म कहना बड़ी भारी भूल है। इसका उपयोग भस्मरूपसे नहीं किया जा सकता। राख और भस्मके वजनमें एवं धात्वीय परमाणुओंमें वैसे ही इनके गुणोंमें भी अन्तर रहता है।

"धातुओं उपधातुओंमेंसे अनेकोंकी गुण वृद्धि अधिक पुट देनेसे होती है" ऐसा अनुभव करके शास्त्रकारोंने नियम बनाये हैं। उदाहरणार्थ—

१ पुटी, १० पुटी, १०० पुटी, ५०० पुटी, १,००० पुटी अभ्रक भस्मोंमें से सभीका उपयोग रोगशमनार्थ या रोगदमनार्थ होकर इनमें प्रायः समान गुण या स्वल्पगुणान्तर होता है। किन्तु उनमें रक्तादि धातुओं और ओज आदिमें स्थिरता लाने और देहपोषक सत्व निर्माण करानेमें अन्तर पड़ता है। इसी हेतुसे सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्मादिको विशेष मान्यता दी गई हैं।

धातु-उपधातु, ये सब खनिज कहलाते हैं। इनमें सबके गुण धर्म पृथक्-पृथक् हैं। इस सम्बन्धमें आचार्योंने संक्षेपमें निम्न वचनोंसे स्पष्टीकरण किया है।

सुवर्ण :—स्वर्ण स्निग्ध-कषाय-तिक्त-मधुरं दोषत्रयध्वंसनम्।
शीतं स्वादु रसायनं च रुचिकृच्चक्षुष्यमायुष्प्रदम्॥ (आ.प्र.)
तुवरं स्वादु तिक्तं च पाके तु स्वादु पिच्छिलम्॥ (आ.प्र.)
मधुरं कटुकं पाके सुवर्णं वीर्यशीतलम्।
सर्वदोष प्रशमनं विषघ्नं गरनाशनम्॥ (रसे० चि०)

रौप्य :—विपाकमधुरं तुवराम्लसारं शीतं सरं परमलेखनकं च रुच्यम्।
(र० र० स०)

रजतका विपाक आचार्योंने मधुर दर्शाया है किन्तु युगपरिवर्तन और आहार आदिके भेदसे वर्तमानमें अनुभव अम्ल विपाकका होता है। अम्लपित्तके रोगियोंको रौप्य या काशीश भस्म देनेपर वातनाड़ियोंपर अम्लत्व वृद्धि सदृश असर विदित हुआ।

ताम्र —ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च॥
(आ० प्र०)

जशदः—जशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्।
इसका विपाक मधुर होता है।

वङ्गः—इसका विपाक भी मधुर होता है।

नागः—उष्णःसरो रजतरञ्जनकृद् व्रणार्शों गुल्म ग्रहण्यतिसृतिक्षणदाँशुमाली॥

लोह—इसका विपाक मधुर होता है।

सुवर्णमाक्षिक—इसका विपाक मधुर होता है।
सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम्। (आ० प्र०)

तुत्थ :—तुत्थं तु कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।। (आ० प्र०)
इसका विपाक ताम्रके समान कटु होता है ।

कांस्य :— कांस्यं कषायतिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् ।। (आ० प्र०)

शिलाजतु :—शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाके रसायनम् ।
इसका विपाक आचार्योंने कटु दर्शाया है ।

कासीस :—कासीसं द्वयमम्लोष्णं तिक्तं च तुवरँ तथा ।
इसका विपाक अम्ल होता है ।

खर्पर :—खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।। (आ० प्र०)

(ताम्र भेद मानकर ये गुण दर्शाये हैं) इसका विपाक कटु क्षारीय है ।

धातु-उपधातु, रत्न-उपरत्न आदिकी भस्म बनानेके पहिले, शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार उनको शुद्ध कर लेवें । जितना शोधन अच्छा होगा, उतनी ही भस्म अधिक सौम्य होती है । धातु-उपधातुओंकी भस्म बनानेके लिये अनेक प्रकारकी औषधियोंकी भावनायें दी जाती है, जिससे भावना द्रव्योंके रसके क्षार अनुरूप उनके गुणोंमें वृद्धि हो जाती है ।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, बंग, जसद, शीशा, मण्डूर, मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल, अभ्रक और अन्य रत्नोपरत्न स्वभावसे सौम्य हैं, तथा ताम्र, संखिया, हरताल आदि उग्र है । परन्तु भावना रूप संस्कारसे गुणोंमें कुछ परिवर्तन हो सकता है । मूल स्वभाव पूर्ण रूपसे नहीं बदलता । अतः भस्म तैयार करने के पहिले किन किन औषधियोंकी भावना अनुकूल है; इस बातको सम्यक् प्रकारसे जान लेना चाहिये । जैसे रसायन गुणके लिये अभ्रक भस्मको विरेचन और लेखन औषधियोंके पुट न्यून परिमाणमें और बृंहण औषधियोंके पुट विशेष परिमाणमें देना चाहिये । किन्तु किसी रोगको दूर करनेका उद्देश्य हो, तो उस रोगको शमन करने वाली औषधियोंकी ही भावना ज्यादा देनी चाहिये । उष्ण, सारक, वातश्लेष्मघ्न, कोष्ठविकारघ्न आदि गुणोंके लिये अभ्रक भस्मको अर्कदुग्ध या अर्कपत्रके रसकी भावना देना लाभदायक है; ऐसे गुणोंके लिये यदि शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक और कफ क्षयनाशक अडूसेके पानके स्वरसकी भावना दी जायगी तो लाभ कम होगा । मधुमेहपर लोह भस्मका उपयोग करना हो तो, जामुन वृक्षकी छाल के क्वाथसे ४-६ या अधिक पुट देवें । एवं कफनाशके लिये अभ्रकको कटेली आदि कफघ्न औषधियोंके पुट देवें । इसी तरह अन्य रोगशामक औषधियों के लिये विचारपूर्वक योजना करें ।

वनौषधिद्वारा तैयार की हुई वंगभस्म सौम्य होनेसे शुक्र स्थानको पुष्ट बनानेमें विशेष लाभदायक हैं । और हरताल-मारित वंगभस्म उग्र होनेसे

दूषित रस रक्त आदि धातुओंको शुद्ध करने, जन्तुओंका नाश करने, उपदंशके रोगीके बिगड़े हुए शुक्रको शुद्ध करनेके लिये और उपदंशजनित चर्मरोगमें विशेष हितकारक मानी गई है। अत: भावना विषयक विचार करके भस्मका उपयोग करना चाहिये। धातु-उपधातुकी भस्म निम्न पांच प्रकारसे तैयार होती है—

(१) पारद, गन्धक अथवा सिंगरफके योगसे।
(२) वनौषधियोंके स्वरसकी भावना द्वारा।
(३) सोमल, हरताल, मैंनसिल आदि उग्र द्रव्योंके योगसे।
(४) गन्धक, सज्जीखार, शोरा या अन्य क्षारसे।
(५) धातुओंके अन्य विरोधी धातुसे मारण द्वारा।

इनमें पहिले दो प्रकार श्रेष्ठ और निर्दोष है। तीसरे प्रकारकी विधिसे भस्म उग्र बनती है, तथा चौथी और पांचवी विधिसे बनाई हुई भस्म न्यून गुण युक्त होती है; रसरत्नसमुच्चय और आयुर्वेद प्रकाशमें लिखा है कि—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहु: कनिष्ठं गन्धकादिभि: ॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्।

सुवर्ण आदि धातुओंका पारद योगसे मारण श्रेष्ठ, वनौषधियोंसे मारण मध्यम गुणयुक्त, गन्धक और अन्य क्षार आदिसे मारण कनिष्ठ, तथा विरोधी धातुओंसे मारण करना हानिकारक है। अन्य आचार्योंने भी लिखा है :—

लोहं सूतयुतं दोषान्स्त्यजेत्सूतस्तु लोहयुक्।
अत: स्वर्णादिलोहानि विनासूतं न मारयेत् ॥

सुवर्णादि धातु पारद संयोगसे दोषोंको त्याग देती है और पारद भी सुवर्णादिके योगसे दोष मुक्त होता है। अत: बिना पारद, धातुका मारण न करें।

अन्य प्राचीन आचार्योंने अपने अनुभव अनुसार लिखा है कि—

न रसेन विना लोहं न लोहं चाभ्रकं विना।
एकत्वेन शरीरस्य बंधो भवति देहिन: ॥
चपलेन विना लोहं य: करोति पुमानिह।
उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नात्र संशय: ॥

कोई भी लोह (सुवर्ण आदि की भस्म) बिना पारद मिलाये नहीं देनी चाहिए। एवं लोहके साथ अभ्रक भी मिलाना चाहिए। जब ये ऐक्यभाव को प्राप्त होंगे, तब देहीके देहको दृढ़ बनाते हैं। देहमें दीर्घकाल पर्यन्त स्थिर रहते हैं।

जो बिना पारदयोग सुवर्ण आदि भस्मका सेवन करते हैं, उनके उदरमें

निःसन्देह किट्ट संग्रह हो जाता हैं।

भस्मके साथ पारद मिलनेपर पारद और भस्म दोनोंके गुण मिल जाते हैं। दोनों द्रव्य दीर्घकालपर्यन्त रक्त आदि धातुमें स्थिर रह जाते हैं। एवं युवावस्था, शारीरिक बल और मनोबलकी रक्षा करते हैं।

जब तक भस्म निरुत्थ न बन जाय, तब तक उपयोगमें नहीं लेना चाहिये इस शास्त्रज्ञाका वर्तमान समयमें पूर्णरूपसे पालन नहीं होता। यूनानी हकीम तो कच्चे वंग और शीशेको मिश्रीके साथ खरल करके ही उपयोगमें लाते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार कच्ची धातुके उपयोगमें कुछ भी हानि नहीं है। अपनी शक्ति अनुसार लाभ ही पहुँचाती हैं। फिर भी अधिक पुट दिये जाय, तो विशेष लाभदायक बनती हैं।

अभ्रक, लोह, मण्डूर, वंग और माक्षिककी भस्में जब तक कच्ची हों, तब तक उनको अग्नि तेज देनी चाहिये। भस्म पक्व हो जानेपर विशेष पुट देना हो, तब अग्नि देनी चाहिये। यदि अन्तके पुटोंमें अग्नि तेज होगी तो, भस्म कठोर हो जायगी। मृदु नहीं बनेगी इसके विपरीत नाग, रौप्य और सुवर्ण जब तक कच्चे हों तब तक अग्नि कम देनी चाहिये। अधिक अग्नि देनेपर ये फिरसे जीवित हो जाते हैं, इनकी भस्म जैसे-जैसे बनती जाय वैसे वैसे अग्नि बढ़ाते जायं। भस्मोंके वर्णका भी ध्यान रखना आवश्यक है। उत्तम सुन्दर वर्ण पैदा होना चाहिये। भस्मके वर्ण योग रत्नाकारमें लिखे हैं।

भस्म बनानेके लिये धातु, उपधातु आदि औषधियोंकी टिकिया अथवा गोलेका संपुट मजबूत करना चाहिये। जिससे अग्निकी उष्णता, जो संपुट के भीतर प्रवेश करती है, वह शीघ्र नहीं निकल सकती। इस हेतुसे भस्म थोड़े ही पुटमें विशेष मुलायम हो जाती है।

भस्मका संपुट विशेषतः हाँडियोंमें करते हैं। यदि भस्मकी टिकियाओं को बड़े गोल तवेपर रखकर संपुट किया जाय, तो गजपुटमें अग्नि विशेष लगती है। गजपुट आदिमें अग्नि देनेके बाद जब तक संपुट स्वांग शीतल न हों, तब तक खड्डेमेंसे न निकालें। अन्यथा भस्मकी गरम टिकियाओंको बाहरकी शीतल वायु लगनेपर भस्म दूषित (कठोर) हो जाती है।

रत्नोंकी भस्म बनानेके बदले पिष्टी बनाई जाय, तो विशेष लाभ करती है। परन्तु किसी-किसी समय पिष्टी अनुकूल नहीं रहती, तब भस्म दी जाती है। अतः भस्म तथा पिष्टी दोनोंके ही बनानेकी विधि दी गई है। ४-५ प्रकारके यूनानी पत्थरोंकी भस्म और पिष्टी विशेष उपयोगी होनेसे उनकी विधि भी साथ-साथ दी गई है।

सुवर्ण, रौप्य आदि धातुएँ अन्य धातुके मिश्रणसे रहित शुद्ध ही लें। दूषित धातुकी भस्मसे बल वीर्यका नाश और अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती

है। इन धातुओंका परिचय योगरत्नाकरमें निम्न वचनोंसे दर्शाया है—

स्वर्णं चम्पकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयोः।
कांस्यं धूसरवर्णंस्यान्नागः पारावत प्रभः ॥१॥
वङ्गं शुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णं जम्बूफलोपमम्।
अभ्रकं चेष्टिकाभं स्याद्धातूनां वर्णनिर्णयः ॥३॥

औषधि कार्यमें मंडूर १०० वर्षसे ज्यादा पुराना ही लेना चाहिये। नये मंडूरकी भस्मके सेवनसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। काशीश भस्म बनानेके लिये विलायती काशीश लिया जाय, तो लाभ अधिक होता है।

भस्मकी टिकिया सुखानेके लिये कलईकी हुई थाली, एनेमल (लोहेपर सफेदी लगी हुई) की थाली, चीनी मिट्टीके पात्र अथवा पत्थर पात्रोंका उपयोग करना चाहिये। पत्थर अथवा धातुपात्र होनेसे टिकियां जल्दी सूख जाती हैं। यदि ताँबा या पीतलका पात्र लेना हो, तो कलई किया हुआ ही लेना चाहिये, बिना कलईके पात्रमें टिकिया सुखानेसे पात्रमें रखा हुआ नीलाथोथा टिकियोंको लगकर भस्मको दूषित बना देता है।

टिकिया बांधनेके पश्चात्, खरल, बत्तीको और टिकिया जिस थालीमें सुखाई हों उस थालीको भी भावना देनेके स्वरससे धोकर रसको सुखा लेवें, या दूसरी भावना देनेके समय उस रसको मिला लें, जिससे भस्म कम न हो।

जब तक भस्म मुलायम न बने, कच्ची धातुका अंश प्रतीत हो, तब तक लोहेके खरलका उपयोग करें। पत्थरकी खरलमें कच्ची धातुओंको खरल करनेसे खरल और भस्म दोनों खराब होते हैं। पत्थर घिसकर भस्ममें कुछ अंश मिल जाता है। एवं नींबूका रस, लोह विरोधी अन्य स्वरस अथवा नौसादर आदि क्षार युक्त औषध लोह खरलमें घोटनेसे लोहका जंग बनता है, जो औषधिको दूषित बनाता है। इसलिये विचारपूर्वक खरलका उपयोग करना चाहिये।

रत्नोंके नाम

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः॥
गुरुडोद्‌गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी।
पुष्परागो पद्मरागो गोमेदश्च प्रवालकम्॥
वैडूर्यञ्च तथा नीलं एतेऽपि मणयो मतः।
यत्नतः संगृहीतव्या रसबन्धस्य कारणात्।

रत्नोंके नाम—वैक्रान्त, सूर्यकान्त हीरा, मोती, मणि, चन्द्रकान्त, राजावर्त मरकत (पन्ना) ये आठ रत्न हैं और पुखराज, पद्मराग, (माणिक्य), गोमेद प्रवाल, वैडूर्य और नीलम ये भी मणि या रत्न हैं। ये रत्न पारदका बन्धन करते हैं, इसलिए इन्हें सावधानीसे इकठ्ठा करना चाहिए।

हीरा, माणिक्य, मोती, पन्ना, नीलम आदि रत्नोंकी पिष्टी चीनी-मिट्टी के खरल ※ (Mortar With Pestle) या सिमाक पत्थरकी खरलमें घोटनी चाहिये। भस्म और रस आदि औषधियोंके लिये टोली, तामड़ालोहिया आदि पत्थरोंके खरल आते हैं, वे सब रत्नोंके घोटनेसे खराब हो जाते हैं।

आयुर्वेद प्रकाशकारने रसपद्धतिके वचनोंका प्रमाण देकर लिखा है कि, "रौप्य भस्म, नागभस्म और उपधातुओंकी भस्मोंमेंसे किसी एक अकेलीका उपयोग करना विशेष हितकर नहीं है। रससिंदूर या अभ्रक आदि अन्य भस्मके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये।"

भस्मोंके भीतर मूल धातुके साथ विविध वनौषधियोंके क्षारका मिश्रण होता है। एवं शहद, दूध या क्वाथ आदि विविध, रोगनाशक अनुपान मिलाये जाते हैं। इन क्षार और अनुपान सह भस्म आमाशयमेंसे ही सूक्ष्म रसायनियों द्वारा शोणित होकर रक्तमें प्रवेश कर जाती है। फिर क्षार और अनुपानके गुणधर्म अनुरूप तत्काल प्रभाव दर्शाती है। इस हेतुसे शास्त्र में विविध अनुपानोंकी योजनाकी है। तथा भस्म और रसायनोंको योगवाहि कहा है।

महाराष्ट्रमें आयुर्वेद सेवा संघने आयुर्वेदीय औषधि संशोधन कार्य प्रारम्भ किया है। उसनें भस्मोंका विश्लेषण किया है। उसका विवरण निम्नानुसार हैं।

सुधा (कैंल्शियम) दर्शक कोष्ठक:—

भस्म	सुधाप्रतिशत	भस्म	सुधाप्रतिशत
कान्तलोह	१.७८	मधुमण्डूर	२.३२
तीक्ष्णलोह	६.७२	मण्डूर	८,३१
,,	८.३१	मण्डूर	१६,१५
,,	१७.८	शृंग	१२.६८
नाग	३.६८	मुण्डलोह	१.६
बालमण्डूर	१.६८	स्वयमग्निलोह	३.८२
भौममण्डूर	२.१६	सुवर्णमाक्षिक	१.८४

※ वर्तमानमें भारतमें जो चीनी मिट्टीकी खरलें बनती हैं वे सब कच्ची हैं। बहुत घिसती है अतः इनका उपयोग नहीं करना चाहिए। पक्के रत्नोंको पिष्टीयां पत्थर व लोहेके खरलमें बनाना उचित नहीं। कारण कि वे घिस जाते हैं। क्रोमियम लगे खरलों और स्टीलके खरलोंका सम्हालपूर्वक उपयोग करें।

भूतकालमें यह सुविधा न होनेसे प्राचीन आचार्य पिष्टी न बनाकर भस्म ही विशेषतर बनाते रहे हैं। भस्म भी अनेक पुट देकर जब अंजन जैसी मुलायम हो जाये तब ही इच्छित फलदायी होती है।

अभ्रक भस्म विश्लेषण

अभ्रक	फुटसिलिकेट्स	अल्युमिनियम ऑक्साइड	आयरन ऑक्साइड	केल्शियम ऑक्साइड	मेग्निशियम ऑक्साइड	वाटर सोल्युबल
कच्चा	५०.६	१२.६	१८.८	४.३४	९.४५	
१००	२७.५	१२.१	३८.०	३.८८	१.८४	१६.२
५००	२६.६	३१.८	१२.१	७.१५	०.५७	
१०००	३१.८७	१७.५	३१.६	१३.४५	५.६	
,,	२४.८	४१.७	५.०	९.५	१.३	१८.०

मुक्ताप्रवालादि सुधा विश्लेषण

भस्म	सिलिकेट्स	केल्शियम ऑक्साइड	केल्शियम कार्बोनेट	मेग्नेशियम ऑक्साइड	अल्युमिनियम ऑक्साइड
मुक्ता			९५.५		०.९२
प्रवाल	२.१२	३.८६	९१.१	३.०	
शुक्ति	०.४५		९५.२	०.४९	
शंख	०.७५	१.९६	९६.७	१.२१	
वराटिका		०.९७	९९.५	स्वल्प	

भस्म तैयार करनेमें जो भावना द्रव्य लिया जाता है, वह अनिश्चित होनेपर, अग्निप्रमाण अनिर्णित होनेपर और मूल द्रव्योंके भेदसे सुधा आदि के परिमाणमें न्यूनाधिकता हो जाती है। अतः मूलद्रव्य भावना द्रव्य, अग्नि आदिके विशेष विधानकी आवश्यकता उत्पन्न हुई है। ताकि औषधि गुण निश्चित दर्शा सके।

भस्मोंकी कसौटीके लिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, धूम, चन्द्रिका, पुनर्भव, लघुत्व, स्थिरत्व सूक्ष्मत्व, और विद्रवता ये १२ प्रकार हैं। इस सब परीक्षाओंके अतिरिक्त आधुनिक परीक्षण पद्धति है। आयुर्वेदके महारथियों को चाहिये कि, जैसा इन सबका निर्णय हो वैसा विधि-विधान तैयार करें।

रौप्य, नाग, ताम्र शतपुटी बनानेपर शास्त्र दर्शित पूरा पूरा लाभ पहुँचाता है। एवं अभ्रक लोह सहस्त्र पुटी बनानेपर उससे दिव्य गुणकी प्राप्ति होती है एवं सुधा प्रधान भस्म मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, शङ्ख, कपर्दिका, कुक्कुटाण्डत्वक्, शृङ्ग आदि सौम्य होनेसे मर्यादित पुट ही सहनकर सकते हैं।

प्राचीन आचार्योंने उस युगके मानव शरीर, आहार-विहार तथा वायुमंडल आदिको लक्ष्यमें रखकर औषधियोंके गुणधर्म दर्शाये हैं। जैसे—

महाभारतके समय भीष्मपितामहकी आयु १७५ वर्ष, गुरु द्रोणाचार्यकी १२५ श्री कृष्ण भगवानकी ८९, अर्जुनकी ८७ और भीमसेनकी ९१ वर्षकी थी; श्रीकृष्ण भगवान् युवा थे इसी हेतुसे पितामहने कहा था कि मैं युवा

अर्जुनकी समानता कैसे करु ? इत्यादि ।

वर्त्तमानमें मानव शरीर शक्ति, आहार विहार तथा वायुमंडलमें अपेक्षाकृत बहुत अन्तर आगया है । अतः औषधियोंकी मात्रा, गुण-धर्मादिमें भी काफी अन्तर आगया है ।

(१) सुवर्ण भस्म

प्रथम विधि—विशुद्ध पारदमेंसे चन्द्रोदय बनानेके समय शीशेके तल भागमें गन्धक मिली हुई सुवर्णकी काली भस्म रह जाती है । उसमें जल मिलाकर चीनीके बरतनमें दो-तीन घण्टे रख देवें । फिर सम्हालपूर्वक जल को निकाल डालें । पुनः जल मिलावें और दो-तीन घण्टे बाद फेंक देवें । इस तरह ३-४ समय धोनेसे पानी साफ निकलेगा और सुवर्णकी भस्म मात्र शेष रहेगी । उस स्वर्ण रज (पाउडर) को तुलसी, बनतुलसी (नगदबावची), सत्यनाशी अथवा कुकरौंधाके २० तोले रसमें खरल करें । जब भस्म गाढ़ी होवे, तब एक काचकी प्लेट (तश्तरी) में फैलाकर धूपमें सुखावें । फिर सुवर्णकी फैली हुई पपड़ीको खोल संपुट कर १६ इन्च खड्डेमें अग्नि देवें । पुनः तुलसी अथवा कुकरौंधाके रसमें घोट संपुट करके फूंक दें । इस तरह ८ पुट देनेसे मुलायम, हलके वजन वाली और श्यामप्रभायुक्त लाल रंगकी भस्म तैयार हो जाती है ।

मात्रा—१/४ से १ रत्ती तक, दिनमें २ समय, शहद, पीपल और शहद, मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्व और शहद, च्यवनप्राशावलेह अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें । शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न रोगोंके लिये नीचे लिखे अनुपानोंकी योजनाकी है ।

१—रसायन गुणके लिये—(अ) कमलगट्टा (जिभी निकाला हुआ), धान की खील और प्रियंगुके चूर्ण और शहदके साथ सुवर्ण भस्म देवें, ऊपर गोदुग्ध पिलावें ।

(आ) काले तिलोंके चूर्णके साथ देवें । ऊपरसे नीलकमलके क्वाथसे पकाया हुआ गोदुग्ध पिलावें ।

(इ) आँवलेके चूर्ण और शहदके साथ देवें ।

(ई) शतावरी घृत ६ माशे और शहद ३ माशेके साथ ।

(उ) भाँगरेके रसके साथ दें ।

२—उन्मादपर—ब्राह्मीका स्वरस ३ माशे बच ३ रत्ती, कूठ और शंखपुष्पी ३-३ माशे और मिश्री ६ माशेके साथ देवें या धमासेके अर्कके साथ देवें ।

३—बुद्धि वृद्धिके लिए—वचके चूर्ण ३ रत्तीके साथ ।

४—कान्तिवृद्धिके लिये—पद्मकेसरके चूर्णके साथ ।

५—तारुण्य प्राप्तिके लिये—शंखपुष्पीके चूर्णके साथ ।

६—वाजीकरणके लिये—विदारीकन्दके चूर्णके साथ ।

७—राजयक्ष्मापर—मक्खन, मिश्री और शहदसे दें या सुवर्ण भस्म आधा रत्ती, शुद्ध सोनागेरु ३ रत्ती, मोतीपिष्टी १ रत्ती मिलाकर शहदके साथ देनेसे क्षयमें वमन, अतिसार, कृमि, कास, रक्तपित्त, अरुचि, उबाक आदि लक्षण दूर होते हैं ।

८—क्षयमें अतिसारपर—दाड़िमावलेहके साथ ।

९—दाह शमनके लिये—मिश्रीके साथ ।

१०—नेत्रोंकी निर्बलतामें—पुनर्नवाके चूर्णके साथ ।

११—जीर्ण नेत्रदाहमें—मुक्तापिष्टी और गिलोय-सत्वके साथ ।

१२—श्वासमें—त्रिकटु और घृतके साथ ।

१३—भयंकर प्रदरमें—चौलाईकी जड़के अर्कके साथ ।

१४ खाँसीमें—हल्दी, पीपलका चूर्ण और शहदके साथ ।

१५—जीर्णकासपर—द्राक्षासवके साथ ।

१६—सुजाक और मूत्रकृच्छ्रमें छोटी इलायची कर्पूर और मिश्री चूर्णके साथ ।

१७—रजोधर्म शुद्ध करनेके लिये-मकोयके अर्कके साथ ।

गुणधर्म—रसेन्द्रचिन्तामणिमें लिखा है कि—

मधुरं कटुकं पाके सुवर्णं वीर्य शीतलम् ।
सर्वदोष प्रशमनं विषघ्नं गरनाशनम् ।।
अलक्ष्मीकलिपापानां प्रयोग स्तस्य नाशनः ।
आयुर्मेधा स्मृतिकरः पुष्टिकान्ति विवर्धनः ।।
सर्वौषधि प्रयोगैर्ये व्याधयो न विनिर्जिताः ।
कर्मभिः पञ्चभिश्चापि सुवर्ण तेषु योजयेत् ।।

सुवर्ण रसमें मधुर, कटु विपाकी, शीतवीर्य, वात, पित्त, कफ, तीनों दोषों को शाँत करने वाला, विषघ्न, कृत्रिम विषहर तथा दूषित प्रयोगोंके फलको दूर करने वाला है । आयु, मेधा और स्मृतिवर्द्धक पुष्टिदाता और कान्तिवर्द्धक है एवं जो राजयक्ष्मादि रोग पञ्चकर्म और विभिन्न औषधियोंके सेवनसे भी न गया हो, उसपर सुवर्णकी योजनाकी जाती है ।

संक्षेपमें भस्मोंके गुणधर्म—रस कामधेनुके लोहविधानके पहले अधिकार में दर्शाये है कि—

आरोग्यं भास्करादिच्छेत् सोमाद्धातु समृद्धिताम् ।
रोगप्रशान्तये सेव्यो देवदेवेश्वरः सदा ।।
नागेशो नागबलदो यमाद्यम भयं न हि ।
शु (श) क्राच्छुक्रसमृद्धिः स्यात् ब्रवीदेवं हि धुंजटिः ।।

भास्कर (ताम्र) सेवन अग्निमांद्य आदि दूरकर आरोग्य प्रदान करता है। सोम (रजत) रस, रक्तादि धातुओंको सुदृढ़ बनाता है। रोगोंको (क्षय आदि रोगोंको) दूर करनेके लिए देवदेवेश्वर (सुवर्ण) का सर्वदा सेवन करना चाहिए। हाथी सदृश बल बढ़ानेके लिए नागेश (शीशे) का सेवन हितावह है। आयु बढ़ानेके लिए यम (लोह) भस्म उपकारक है। शुक्र धातुकी वृद्धि शुक्र (वङ्ग) भस्म कराती है।

उपयोग—यह भस्म क्षय, धातुक्षीणता, जीर्णज्वर, त्रिदोष वातवाहिनियोंकी निर्बलता, पुराना श्वास, कास, दाह, नेत्रजलन, पित्तरोग, पित्तज उन्माद, भूतबाधा, विषविकार, पित्तप्रधान प्रमेह, और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करती है। इसमें स्निग्ध, मधुर, कषाय, किंचित् तिक्त, शीतवीर्य और रसायन गुण है। यह प्रज्ञा, वीर्य, बल, स्मृति और कांतिको बढ़ाने वाली, वृष्य पाककालमें मधुर, बृंहण, हृद्य तथा वाणीको स्थिर व शुद्ध करने वाली है। सर्व धातुओंमें सुवर्ण अधिकतर स्थिर गुणयुक्त निर्मल और प्रसन्नता उत्पादक है।

सुवर्ण भस्मके सेवनसे हृदयको शक्ति मिलती हैं। यह सुवर्णका हृद्य गुण कुचिलाके समान सत्वर वातवाहिनी नाड़ियोंको उत्तेजना देने वाला, कर्पूरके समान रक्तवाहिनियोंको विकसित करने वाला या पर्णबीज, अर्जुन आदि औषधियोंके समान रक्तवाहिनियोंको संकुचित करने वाला भी नहीं है किन्तु इसका कार्य रक्तको निर्विष बना रक्तका प्रसादनकर हृदयको पुष्ट बनाना तथा रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियोंको शक्ति देना है। सुवर्णका यह हृद्य गुण अन्य औषधियोंसे विशेष है। इस गुणके लिये अदरकके रसके साथ सेवन करना चाहिये।

विष, उपविष शरीरमें उत्पन्न होने वाला सेन्द्रिय विष, और इसको उत्पन्न करने वाले कीटाणु, इन सबसे शरीरपर होने वाले दुष्परिणामको दूर करनेका अद्‌भुत गुण सुवर्णमें है। जब विषकी तीव्रावस्था शमन हो जाती है; और सूक्ष्मावस्था शेष रह जाती है, तब सुवर्णका उपयोग करनेसे शरीर पूर्ण रूपसे निर्विष हो जाता है। ऐसे प्रसंगपर स्वल्प मात्रामें स्वर्ण बार-बार दिया जाता है। ऐसे ही कृत्रिम विषका तीव्र वेग दूर होनेपर शेष विकृतिकी शांतिके लिये सुवर्णका उपयोग करना चाहिये। कारण सुवर्ण भस्ममें जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक (विषघ्न) गुण रहते हैं। इस गुणकी प्राप्तिके लिये सुवर्णभस्मका उपयोग कम मात्रामें दिनमें ३-४ बार करना चाहिये।

जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक गुणके कारण सुवर्ण, क्षयमें बहुत लाभ पहुँचाता है। इस हेतुसे आयुर्वेदने सुवर्णके प्रयोगका क्षयरोगमें स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। सुवर्ण-मिश्रित औषधिका प्रयोग क्षयकी सब अव-

स्थाओंमें होता है। आयुर्वेदने अवस्था दोष, दूष्य, स्थान आदिका विचार करके सुवर्णके अनेक प्रयोग निर्माण किये हैं। प्रथमा और द्वितीया अवस्था में उनका अच्छा उपयोग होता है। तीसरी अवस्था मात्रमें जब बड़े-बड़े उरःक्षत, बल मांसका क्षय और भयंकर शक्तिपात आदि लक्षण हो जाते हैं; तब सुवर्ण या अन्य किसी भी औषधिसे लाभ नहीं हो सकता। रोग निरोधक शक्तिका अधिक क्षय न हुआ हो, तभी तक उस सुवर्णका अच्छा उपयोग होता है।

क्षय रोगमें जब ज्वरका वेग तीव्र हो; उस समय सुवर्ण नहीं देना चाहिये एवं सुवर्णकी मात्रा रोगीकी शक्तिसे ज्यादा होनेसे क्षयके कीटाणुओं का अधिक नाश होता है, फिर उन मृत कीटाणुओंसे सेन्द्रिय विष विशेषांश में उत्पन्न होकर तुरन्त ज्वर बढ़ने लगता है और वह मर्यादासे बाहर हो जाता है। अतः सुवर्णकी मात्रा रोगावस्था और प्रकृति भेदका विचार करके देनी चाहिये। अनेक समय तो सुवर्ण भस्मका प्रयोग इतनी कम मात्रामें किया जाता है कि १/५० रत्ती तक देनी पड़ती है।

बार-बार शुष्क कास, सारे शरीरमें व्यथा, सायंकालमें नित्य प्रति सम्हाल रखते हुए भी ज्वर आ जाना और उतनेमें ही भयंकर शक्तिपात होना, मन अस्वस्थ, उदासीन और क्रोधी बनना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्ण भस्म, शृङ्ग भस्म, प्रवाल पिष्टी और गिलोयसत्वको मिलाकर दूध-मिश्रीके साथ देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें प्रकृति सुधरने लगती है। शुष्क कासमें शृङ्ग भस्मकी मात्रा कम दें।

सहन हो सके उतने अंशमें ताप, हाथ पैरमें जलन, स्वरभेद, स्कन्ध, और पार्श्व भागका संकोच, दिनमें ३-४ बार पतले-पतले दस्त, अत्यन्त शुष्क कास श्वास, कण्ठमें पीड़ा, कफके साथ रक्त गिरना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्ण भस्मका उपयोग प्रवाल पिष्टी, शृङ्ग भस्म और दाड़िमावलेहके साथ करना लाभदायक है।

उरःक्षतमें सुवर्णका उत्तम उपयोग होता है। ज्यादा रक्तस्राव होता हो तो रक्तपित्त चिकित्साके साथ-साथ थोडे परिमाणमें सुवर्ण भस्म देते रहने से ज्यादा अशक्ति नहीं आती; रक्तमें रहे हुए मधुरत्व, स्निग्धत्व, प्रसन्नत्व, आदि गुणोंकी न्यूनताकी पूर्ति सुवर्णद्वारा हो जानेसे शक्तिपात नहीं होता और रोग सत्वर काबूमें आ जाता है।

निर्जन्तुक क्षयकी सब अवस्थाओंमें शरीरके घटकोंके क्षयको रोकनेके लिये सुवर्णका प्रयोग लाभदायक है। रस, रक्त आदि धातुओंके अनुलोम क्षय (रस क्षय Sprue) और प्रतिलोम क्षय, इन दोनोंमें सुवर्ण भस्मका उपयोग जीवनीयगणकी औषधिके साथ करनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

उन्माद रोगमें पैत्तिक और श्लैष्मिक लक्षण अधिक होनेपर सुवर्ण भस्म

का उपयोग भली भाँति होता है। अर्थात् सर्वाङ्गमें दाह, असहिष्णुता, बालकका रोना या सामान्य आवाज भी सहन न होना; प्रकाश, उष्णता और उष्ण पदार्थके स्पर्शसे दुःखका भान होना; हाथ-पैर पटकते रहना, अति व्याकुलता, मुख, नेत्र, कपोल, अंगुलियों आदिपर शोथ, जोर-जोरसे चिल्लाना दूसरोंको मारनेके लिये दौड़ना, नग्न रहना, वीभत्स चेष्टा करना इत्यादि पैत्तिक लक्षण हों या मनकी विलक्षण, चंचलता, बार-बार दिङ्मूढ़ हो जाना, जड़ता, अन्नपर अरुचि, स्त्री-सम्बन्धी बातोंपर प्रेम, एकान्तमें रहनेकी इच्छा, जीवनसे उपरामता इत्यादि श्लैष्मिक लक्षण प्रतीत होते हों तो, सुवर्ण भस्मको धमासाके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे लाभ होता है।

अनेक मासकी पुरानी खाँसी और श्वासमें जब पित्तकी प्रधानता या वात पित्तकी प्रधानता हो, तब सुवर्ण भस्म, द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासवके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

राजयक्ष्मा रोगमें सेन्द्रिय विष—दोष-दुष्टीका परिणाम लघु अन्त्र और बृहदन्त्रपर होनेसे फिर वे दुष्ट हो जाते हैं। बार बार बुदबुदे वाले पतले दस्त होते रहते हैं। क्वचित् दस्तके साथ रक्त भी जाता है। कितने ही रोगियोंके सारे उदरमें दोष दुष्टीका प्रकोप हो जानेसे बहुत दस्त लगते हैं और भयंकर अशक्ति आ जाती है। इस अवस्थामें सुवर्ण भस्म दाड़िमावलेह के साथ देनी चाहिये।

सुवर्णके योगसे रक्तप्रसादन कार्य अच्छा होता हैं। त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है। त्वचागत पित्तविकार अच्छी तरहसे शमन हो जाता है। मुखमण्डलपर कांति बढ़ जाती है, क्षुद्र कुष्ठ या त्वचाके रोग नष्ट हो जाते हैं, एवं महाकुष्ठके उत्पादक कीटाणुओंका सुवर्णके सेवनसे विनाश होता है। इस प्रकार कुष्ठ रोगोंमें भी सुवर्णका उपयोग लाभदायक होता है।

पैत्तिक प्रमेह रोगमें सुवर्ण भस्मका उपयोग अच्छा होता है।

आंत्रिक ज्वर आदि मुद्दती बुखारोंमें औषधिकी दो प्रकारकी योजना की जाती हैं। पहला कार्य रक्तमें रहे हुए ज्वरोत्पादक कीटाणुओंका नाश कर सेन्द्रिय विषको जलाकर रक्तको निर्विष करनेका है। दूसरा कार्य हृदय आदि इन्द्रियोंको भलीभाँति कार्यक्षम बनानेका है। ये दोनों कार्य सुवर्ण भस्मके योगसे सहज हो जाते हैं।

सुवर्णमें उत्तम वृष्य गुण है। अतः इस भस्मके सेवनसे अण्डकोषकी ग्रन्थियाँ बलवान बनती हैं और नपुंसकता दूर होती है।

सुवर्णका उपयोग नेत्रके पुराने जिद्दी रोगोंमें बहुत अच्छा होता है। विशेषतः भापणीके नीचे बाजरीके समान दाने हो जाना, नेत्र लाल रहना, नेत्र, हृदय, हाथ पैर आदिमें दाह और व्याकुलता आदि पित्त प्रधान लक्षण अधिक होनेपर सुवर्ण भस्मका सेवन मुक्तापिष्टी और गिलोय सत्वके साथ

करना हितकर है।

सुवर्णका उपयोग वात, पित्तदोष और रस, रक्त, माँस, शुद्ध ये दूष्य, तथा हृदय, वातवाहिनियाँ, रक्तवाहिनियाँ नेत्र, श्वसनेन्द्रिय, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, अण्डकोष और मनोदेश इत्यादि स्थानोंपर अधिकांशमें होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

गुरु भोजन और अति भोजन करने वालोंकी अन्त्रमें विष संगृहीत होता है। अत्यधिक बढ़ जानेपर जब अत्यधिक भोजन किया जाता है, तब वह प्रकुपित होकर समग्र भोजनको विष रूप बना देता है। फिर वमन, विरेचन, हिक्का उदर पीड़ा, देहमें स्थान-स्थानपर शीतपित्तके ददोरे अति ज्वर, घबराहट आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे समयपर पहिले शोधन (वमन विरेचन) देकर सुवर्ण भस्म १/१६ रत्ती चौलाईकी जड़ १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें दो बार देनेसे शेष उपद्रव वमन हिक्का, निद्रानाश आदि दूर हो जाते हैं। भोजनमें मुनक्काका फाण्ट देनेसे सत्वर लाभ होता है।

सूचना—राजयक्ष्मा रोगमें सुवर्ण भस्मकी मात्रा १/३२ से १/१६ रत्ती तक देनी चाहिये। यदि इतनेसे भी ज्वर बढ़ जाय तो मात्रा इससे भी कम करें। अधिक मात्रा देनेसे क्षयके कीटाणु अधिक परिमाणमें एक साथ मरकर ज्वर को बढ़ा देते हैं। जब क्षय रोगमें ज्वर तीव्र (९९° डिग्रीसे अधिक) हो तब स्वर्णका उपयोग नहीं करना चाहिये।

अमृतीकरण—सुवर्ण भस्मका अमृतीकरण करनेपर हल्के वजन वाली मुलायम तथा लाल रंगकी सुन्दर बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

दूसरी विधि—सुवर्णको शुद्ध करके १ तोला वर्क तैयार करें। पश्चात् सत्यानाशीके रसमें २४ घण्टे खरलकर टिकिया बाँधकर धूपमें सुखा लेवें। बादमें सम्पुट कर ३० आरण्यकण्डोंमें फूंक देवें। स्वांग शीतल होनेपर पुनः निकालकर सत्यानाशीके रसमें खरलकर टिकिया बाँधकर फूंक देवें। इस विधिसे ४ से ६ पुट देनेसे काले रंगकी मुलायम स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है। फिर तुलसीके रसके ८-१० पुट देनेपर लाल रंगकी मुलायम भस्म बन लाती है। (पं० गंगादत्तजी पंत काशीपुर)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

भावना दृष्टिसे जिन औषधियोंकी भावना दी जाय; उनके गुण शामिल होते हैं। इस भस्मको लाल बनाना हो तो ४-६ पुट चौलाईके रसके देने चाहिए।

(२) रौप्य भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध चाँदीके कंटकवेधी पतरे और शुद्ध पारद दोनों २०-२० तोले लेकर नींबूके रसमें खरल करें। पारा मिल जानेपर २० तोले शुद्ध

गंधक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् २० तोले शुद्ध हरताल मिला नींबूके रसमें खरलकर गोला बनावें। सूखनेपर २० तोले गन्धकको नींबूके रसमें खरलकर गोलेके ऊपर लेप करे। लेप सूखनेपर कपरौटीकी हुई छोटी हांडी में मजबूत बन्दकर २ सेर कण्डोंकी आँच दें। प्रारम्भमें अधिक कण्डोंकी अग्नि नहीं देनी चाहिये। हाँडी स्वांग शीतल होनेपर चाँदीको निकाल पुनः २ तोला हरताल मिला, नींबूके रसमें खरलकर गोला बनावें। फिर गोलेको सुखा, हाँडीमें बन्दकर २ सेर कण्डोंके चूरेकी आँच दें। इस तरह दसवां हिस्सा हरताल मिला-मिलाकर २०-३० पुट देवें। हल्का गुलाबी रंग आने पर अन्तमें घीकुंवारके रसमें खरल करके एक बड़ा गजपुट दें।

सूचना—५-७ पुट होनेपर कण्डेका चूरा बढ़ाना चाहिए। २० पुट होने से ५ सेर कण्डेको अग्नि सहन हो सकती है।

अनेक ग्रन्थकारोंने मात्र ३ पुटमें हीं भस्म हो जानेका लिखा है परन्तु ३ पुटमें निरुत्थ भस्म नहीं बन सकती।

मात्रा—½ से १ रत्ती तक, दिनमें २ बार शहद, मलाई-मिश्री, गोदुग्ध, सितोपलादि चूर्ण, नागकेशर और मक्खन, आंवलेका मुरब्बा, त्रिफला अथवा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दें। रौप्यभस्मके साथमें अभ्रक, लोह या अन्य अनुकूल भस्मको मिलाकर उपयोग करना विशेष लाभदायक है।

अनुपान—१—प्रमेहपर–रौप्यभस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, अदरकका रस २ माशे और शहद ४ माशेके साथ।

२—पित्तप्रधान प्रमेहपर—हरताल मारित रजतभस्म १ रत्ती, दालचीनी, इलायची और तेजपातके चूर्णके साथ।

३—क्षयमें ज्वर–हरताल मारित रौप्यभस्मको त्रिकटु और शहदके साथ।

४—तिमिरमें—रौप्यभस्म और लौहभस्म १-१ रत्ती, पीपल २ रत्ती और ६ माशा शहद मिलाकर देवें।

५—वातशमनार्थ—अभ्रकभस्म, इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व और शहदके साथ रौप्यभस्म देवें।

६—पित्तविकारपर—आंवलेके मुरब्बेके साथ।

७—वातपित्त विकारपर–त्रिफलाके चूर्णके साथ।

८—उन्माद, शिरोरोग, पित्तप्रमेह, ज्वर ओर दाहपर—इलायची, घृत और मिश्रीके साथ।

९—२० प्रमेहोंपर—१ तोला ईसबगोलकी भूसीको आधसेर गोदुग्धमें खीर बनाकर उसमें एक छटांक मिश्री मिलावें। फिर इसे खीरके साथ देवें या शहद, मलाई या मक्खनके साथ देकर ऊपरसे खीर खिलायें। २२ दिनमें प्रमेह दूर होता है। क्षुधा लगनेपर भोजन करें; चाहे प्रातःकाल भोजन

छोड़ दें। मात्र शामको ही भोजन करें। अथवा रौप्य भस्म और शिलाजीत के साथ शहद मिलाकर देवें ऊपर आंवलेका स्वरस या हिम पिलावें।

गुणधर्म – यह भस्म नेत्ररोग, क्षय, गुदाके रोग, पित्त-प्रधान कास, जीर्ण प्रमेह, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि धातुक्षीणता, अपस्मार, हिस्टीरिया और वातपित्तप्रधान विकारोंको दूर करती है। मूत्रपिण्डोंका शोधन कर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है। उपदंश अथवा सुजाक हो जानेके पश्चात् अंडकोश और वातवाहिनी नाड़ियों अथवा अन्य स्रोतस् संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्यभस्म उत्तम औषध है, यह भस्म वात का शमन करती है। माँसपेशियों और रक्तवाहिनियोंको बृंहण करती है। एवं आयु, वीर्य, बुद्धि और कांतिको बढ़ाती है।

उपयोग— रौप्य भस्म मधुर विपाकवाली, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक, लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध है। बृंहण गुण युक्त होनेसे वात प्रकोपका शमन करती है। यह शमन कार्य कलायखञ्ज और पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें अत्यन्त उत्तम प्रकारका देखनेमें आता है। रक्तवाहिनीगत वात प्रकोप होनेपर शूल, रक्तवाहिनियोंका संकोच, रक्त वाहिनी मोटी-सी होना तथा अन्तरायाम, वहिरायाम, खल्ली, कौब्ज आदि वातरोग उत्पन्न होते हैं। इस वातप्रकोपका शमन रौप्य भस्मके सेवनसे उत्तम होता है। केवल वातप्रकोप हो तो रौप्य भस्मसे लाभ होता है। किन्तु वातप्रकोपके साथ यदि आमानुबन्ध हो तो रौप्य भस्मकी अपेक्षा योगराज गूगलका उपयोग विशेष हितकर है। यह अन्तर आयुर्वेदकी दृष्टिसे अति महत्वका है।

जैसे ताम्रका प्रभाव यकृत, प्लीहा आदि इन्द्रियोंमें रहे हुए दोष और धातुपर स्पष्ट दीखता है, वैसे ही रौप्य भस्म मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनियों और वातदोषपर शामक प्रभाव दर्शाती है।

अतिश्रम, अतिवाचन, अतिजागरण, मनन, शोक, भय, आदिका अति योग होनेसे वातवृद्धि होती है तथा मस्तिष्ककी शक्ति भी क्षीण होती है। इन हेतुओंसे थकावट, बेहोशी समान भासना, चक्कर आना इत्यादि लक्षण होते हों तो रौप्य भस्मका अच्छा उपयोग होता है, इन कारणोंसे उत्पन्न शिर दर्द और मस्तिष्कमें शूल चलनेपर भी रौप्यभस्म लाभदायक है। वेदना कुछ काल तक तीव्र और कुछ कालतक मर्यादामें हो उसपर रोप्यका उपयोग होता है। परन्तु यदि उक्त स्थितिमें पित्ताधिक्य हो, पित्त प्रकुपित हुआ हो, तो मुक्तापिष्टीका उपयोग करना चाहिये। अर्थात् वाताधिक्य उपद्रवोंमें रौप्य और पित्ताधिक्यमें मुक्ता देना चाहिये। एवं ये लक्षण अस्राभिनोदन (रक्तके दबाव) की वृद्धि होनेसे हुए हो, तो शिलाजीतका ही उपयोग विशेष हितकर है। शिलाजीतके साथ आरग्वधादि क्वाथके समान सौम्य विरेचन औषधि भी देनी चाहिये।

रौप्यके उपयोगसे वातवाहिनियोंके क्षोभका शमन होता है, जिससे अपस्मार, उन्माद और विशेषतः आक्षेपककी तीव्रावस्थामें रौप्य लाभदायक है। स्त्रियोंके भूतोन्मादमें यदि वातप्रधान लक्षण ज्यादा हों, तो रौप्य भस्म उसे भी शमन करती है।

वातप्रधान और वात-पित्तप्रधान नेत्ररोगमें रौप्य भस्मका सेवन गुणदायक है। शोक, क्रोध, श्रम या सूर्यके तापका अतियोग होनेसे दृष्टिकी विकृति हुई हो तो ऐसे रोगियोंके लिये मात्र रौप्य भस्म ही एक औषधि है। नेत्ररोगमें हरतालमारित रौप्यभस्मकी अपेक्षा सुवर्णमाक्षिक और गन्धकके मिश्रणसे या वनौषधिसे बनी हुई रौप्य भस्म विशेष लाभदायक है।

क्षयज विशेषतः शुक्रक्षयज व्याधिमें वंगभस्म और रौप्यभस्म ये दो औषधियाँ उपयोगी है। यदि शुक्रक्षयसे वातप्रकोप होकर कमर, पिण्डी आदि स्थानोंमें खिचाव या शूल अथवा सामान्य वेदना, मूत्रमार्गमें और शुक्रमार्गमें अतिदाह और व्यथा आदि लक्षण हों, तो रौप्यभस्मका सेवन कराया जाता है। परन्तु शिथिलता, शक्तिपात आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो वंगभस्म उपकारक होती है।

कीटाणुजन्य क्षयमें सुवर्ण भस्म सर्वोत्तम औषधि है। तथापि सर्वाङ्गमें दाह, विशेषतः नेत्र और मूत्रपिण्डमें जलन आदि लक्षण हों, तो प्रथम रौप्य भस्म दाहशमनार्थ दी जाती है। पश्चात् सुवर्ण भस्म देना हितकर है, अथवा दोनोंका मिश्रण दिया जाता है।

पित्तज, वातज और वातपित्तज अर्शरोगमें रौप्यभस्मका उपयोग किया जाता है। रक्त गिरनेपर भी अर्शमें रौप्यसे अच्छा लाभ पहुँचता है। यदि अर्शके मस्से बहुत बडे हो गये हों, तो पहिले उनको निकलवा देना चाहिये। फिर रौप्यभस्म देवें। रक्तार्शमें यदि शूल, वेदना या तीव्र पीड़ा होती हो, तो रौप्यभस्मके सेवनसे इनका शमन हो जाता है। यदि दाह बहुत ज्यादा हो और त्वचा भी श्याम, निस्तेज और कठोर हो गई हों, तो गन्धक रसायन सेवन कराना चाहिये।

पित्तज उदर रोगमें ज्वर, बार-बार मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, मुंहमें जलनका भास, चक्कर, अतिसार त्वचा और उदरकी शिरायें हरी, लाल, पीली होजाना, ज्यादा प्रस्वेद आना, साथमें त्वचामें दाह और कण्ठमेंसे धूंआ निकलनेका भास होना, उदरमें जल्दी जल भर जाना या जलोदर हो जाना इत्यादि लक्षणोंके साथ वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियोंमें एक प्रकारकी विलक्षण व्यथा बनी रहती हो तो रौप्यभस्मका उपयोग करना चाहिये।

अम्लपित्त व्याधिमें रौप्यभस्मका उपयोग अच्छा होता है। वातज अम्लपित्तमें मुख्यतः उदर या आमाशयकी वातवाहिनियोंमें क्षोभ उत्पन्न हुआ

हो, तो रौप्य भस्मका सेवन कराना चाहिये। इस अम्लपित्त व्याधिमें थोडे दिन तक प्रकृति बिल्कुल स्वस्थ रहती हैं और थोड़े दिनोंमें पुनः विकार बलपूर्वक उत्पन्न होता है। ऐसे अम्लपित्त रोगमें रौप्यभस्मका सेवन लाभदायक है। इसके अतिरिक्त आमाशयकी वृद्धि होकर अम्लपित्त रोग हुआ हो और उसमें वेदना तीव्र रहती हो, तो वह भी रौप्यभस्मके सेवनसे शमन होती है। परन्तु शिथिलता और इन्द्रियोंकी अशक्ति अधिक होती हो, तो वंगभस्मका सेवन करना चाहिये।

वातप्रधान शुष्ककासमें रौप्यभस्म लाभ पहुँचाती है। जब शुष्ककासमें पीड़ा, रुक्षता, कण्ठके भीतरके भागमें भी रुक्ष त्वचा, कण्ठ और उपजिह्वा (घण्टिका) में भी रुक्षता तथा कण्ठ मार्गमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ या शोथ-सा हो गया हो, तो रौप्यभस्मका सेवन हितकर है।

पाण्डुरोगमें रक्तके भीतर रक्तकणोंकी न्यूनता हो जाती है। रक्तकणोंके न्यून होनेमें मनपर आघात या मानसिक चिन्ता आदि कारण हों, अथवा वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों, तो ऐसे पाण्डुरोगियों को रौप्यभस्मका सेवन अति हितकर है।

मानसिक चिंता, शोक या अन्य वातप्रकोपक कारणोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो, तो रौप्य भस्मका सेवन गुणदायक है। वातप्रकोपके कारणसे जठराग्नि मन्द होनेपर वातके कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिये एवं जठराग्नि की मन्दता दूर करनेके लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

शरीरके घटक धीरे-धीरे गलते जाते हों, दूषित होनेवाले अवयवोंमें दाह और शूल होता हो, उस स्थानकी त्वचा काली हो गई हो, क्वचित् ज्वर भी रहता हो या विकार सुजाक, प्रमेह या मधुमेहके उपद्रव रूप हो या अन्य रोगोंके उपद्रव रूप हो और वातज या पित्तवातज दुष्टि हो, तो इस कोथ रोग (Gangrene) में रौप्यभस्मका सेवन हितकर है। छोटी इलायची, आँवले, वंशलोचन, अमृतासत्व और शहदसे देवें अथवा चोपचीन्यादि चूर्ण के साथ देवें।

यदि फिरंग (उपदंश) और पूयमेह (सुजाक हो जानेके पश्चात् अंडकोष और उसके समीपमें रही हुई वातवाहिनियाँ या अन्य स्रोतसे संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्य भस्मके सेवनसे वातवाहिनियोंका संकोच दूर होकर अंडकोषमें रक्त आदि धातु आवश्यक परिमाणमें पहुँच जाती है और नपुंसकता दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म बल्य गुणके लिये भी उपयोगमें आती है। जब स्रोतसोंका संकोच हो जानेसे रक्त आदि धातुओंका परिभ्रमण व्यवस्थित रूपसे न होता हो, इन्द्रियोंको और बाह्य अवयवों को थोड़े-थोडे श्रमसे थकावट आ जाती हो, शक्ति क्षीण हो जाती हो, तब निर्बलताको दूर करनेके लिये

रौप्य भस्म प्रकारसे कार्य करती है ।

रौप्य भस्म मेध्य (बुद्धिवर्द्धक) है । बुद्धिका कार्य साधक नामक पित्त के योगसे सम्यक् होता है । इस पित्तके विकृत होनेसे बुद्धिके कार्यमें अव्यवस्था होती है । ऐसे समयपर साधक पित्तके कार्यको सुव्यवस्थित बनानेके लिये रौप्य भस्म उपयोगी है ।

रौप्य भस्मका उपयोग सूतिका ज्वरमें बहुत अंशोंमें होता है । यदि ज्वर मर्यादामें हो; परन्तु सारे शरीरमें वेदना, भ्रम, प्रलाप आदि लक्षण ज्यादा परिमाणमें हों तो रौप्य भस्म देना हितकर है ।

रौप्य भस्म वात और वातपित्त मिश्रित दोष; रस, मांस और अस्थि दूष्य; तथा मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनी नाड़ियाँ, नेत्र, मांसपेशियाँ, कफस्थान, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मनोदेश और बुद्धि, इन सबपर विशेष रूपसे लाभ पहुँचाती है । (औ० गु० ध० शा०)

वात प्रकोप होकर मस्तिष्कमें दोष आ जानेपर चक्कर आना, नेत्रमें दाह और पुतली भीतर खिंच जायगी या ऐसी भयंकर पीड़ा होना और मस्तिष्क शूल उपस्थित होना, नेत्रके ऊपर हाथोंसे दबानेपर अच्छा लगना, बद्धकोष्ठ और अन्त्रवृद्धि न हो, तो शतावर, आँवले, नागरमोथा और गिलोय सत्वके मिश्रणके साथ रौप्य भस्म देनी चाहिये । विशेषतः यह मिश्रण भोजनके प्रारम्भमें घी और शहदसे देना विशेष हितावह है ।

मधुराके दूसरे सप्ताहमें अन्त्रमें प्रदाह विशेष होनेपर पतले दस्त होने लगते हैं किसी किसीको मधुरा दूर होनेपर भी अतिसार रह जाता है । फिर आहार विहारमें भी विशेष नहीं सम्हालें तो अधिक भोजन करने और ज्यादा फिरते रहनेपर मल-मूत्र ओर शुक्रको धारण करनेकी शक्ति शिथिल हो जाती है । दिनमें ५-७ बार पतले दस्त लगते हैं और बार-बार पेशाब करना पड़ता है । शुक्र भी पतला होकर मूत्रके साथ जाता रहता है । इस विकारपर रौप्य भस्म रससिंदूर मिलाकर शतावरी घृतके साथ भोजनके प्रारम्भमें दिनमें २ बार देनेसे विकृति दूर हो जाती है ।

कभी प्रसूताके बालककी प्रकृति अस्वस्थ हो जानेपर माताको भी मानसिक आघात पहुँचकर उन्मादका असर हो जाता है । प्रलाप, रुदन, भय लगना, हाथ-पैरोंमें कम्प, निस्तेज मुखमण्डल, उदासीनता, अनिमेष दृष्टि, भोजनकी इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । उसपर रौप्य भस्म ¼ रत्ती मात्रामें दिनमें ३ बार ब्राह्मी शर्बत या आँवलेके मुरब्बे के साथ देते रहनेसे विकारका शमन हो जाता है ।

दूसरी विधि—शुद्ध चांदीके वर्क ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक २० तोला और शुद्ध हरताल ५ तोले मिलाकर कज्जली करें । फिर

आतशी शीशीमें भर बालुकायंत्रमें रखकर तीन दिन तक अग्नि देनेसे पेंदेमें चाँदीकी भस्म और गलेमें तालसिन्दूर बन जाता है। नीचेसे मिली हुई चाँदीकी भस्मको जलसे धोकर गुलाबके फूलोंके रसमें खरलकर १६ इंचके खड्डेमें फूँक दें। इस तरह गुलाबके अर्कके ४ से ६ (५० पुट तक) देनेसे उत्तम गुलाबी रंगकी भस्म बन जायगी। (रसा० सा०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(३) ताम्र भस्म

विधि—शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार अच्छी रीतिसे शुद्ध किये हुए ताँबेको कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर चौथा हिस्सा शुद्ध पारद मिलाकर तीन घण्टे नींबूके रसमें खरल करें। पश्चात् ताँबेके वजनसे दुगुनी शुद्ध गन्धककी नींबूके रसमें घुटाई करें। उसमें इस पारदयुक्त ताँबेके चूर्णको मिलाकर गोला बनावें। पश्चात् मीनाक्षी (मछेछी), खट्टा चूका (चांगेरी) अथवा साँठीको पीसकर चटनी बनावें। इस चटनीका तांबेके गोलेपर दो-दो अंगुल मोटा लेप करें। फिर गोलेको हाँडीमें रख, ऊपर रेत भर, मुंहपर ढक्कन ढककर राख और नमकसे संधि बन्द करें। तत्पश्चात् चूल्हेपर चढ़ाकर बारह घण्टे तक आँच दें। पहले मन्द पीछे कुछ तेज अन्तमें खूब तेज करें। १२ घण्टे बाद स्वांग शीतल होनेपर हांड़ीको खोल, सम्हालकर रेत और कल्ककी राखको दूरकर, ताँबेकी भस्मके गोलेको निकालें। फिर ६ घण्टे जमीकन्दके रसमें खरलकर गोला बना सूरणके भीतर रख, कपड़मिट्टीकर गजपुटमें आंच देनेसे उत्तम प्रकारकी मोरके कण्ठके रंग जैसी, नीली ताम्र भस्म बन जाती है। जमीकन्दके अभावमें नींबूके रसमें गोला बनाकर फूंक देवें। (भा० प्रकाश)

वक्तव्य—अनुभवसे विदित हुआ है कि इस ताम्र भस्मको दहीके साथ खरलकर २० पुट तथा जमीकन्दके रस और सफेद पुनर्नवाके ४०-४० पुट देकर १०० पुटी ताम्रभस्म बनानेसे तत्काल गुण दर्शाती है।

ताम्रमें स्वभाव सिद्ध विष (वामक धर्म) रहा है। इस हेतुसे ताम्रभस्म शतपुटी होनेपर भी इसके उग्र स्वभावका शमन नहीं होता। अतः इसका सूक्ष्म कल्प सेवन कराया जाय, तो सुपाच्य होकर प्रकृतिको अधिक अनुकूल होती है। सूक्ष्म कल्प बनानेके लिए १ तोला शतपुटी ताम्रभस्मके साथ ९ तोले दुग्ध शर्करा(१ तोले सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म)मिलाकर ७ दिन खरल करें। फिर उसमेंसे १ तोला निकाल अन्य दुग्ध शर्करा ९ तोले डालकर ३ दिन खरल करें। पुनः तीसरी बार द्वितीय बार खरल हुई औषधिमेंसे एक तोलेको ९ तोले दुग्ध शर्कराके साथ घोटें। इस तरह ६ बार करनेपर दश लक्षांश (७×) मात्राका सूक्ष्म कल्प बनता है। इसका उपयोग २-२ रत्ती

मात्रामें दिनमें ३ बार करें। यह इस तरह निर्दोष और निर्भय आशुफलप्रद सूक्ष्म कल्प बनता है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती दिनमें २ बार शहद, पीपल-शहद, पुनर्नवा क्वाथ, अनारदानेका स्वरस, नींबूका रस, दही, कुमार्यासव, शिलाजीत या रोगानुसार अनुपानसे देवें।

अनुपान १—कफप्रधान सन्निपातपर-अदरकके रस और मिर्चके साथ।

२—हिचकीपर—नींबूका रस या १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ मिलाकर शहदमें दें।

३—आमसंग्रहणीपर—सोंठके चूर्ण और घृतके साथ।

४—आमातिसारपर—आंवलेका चूर्ण २ माशे और पीपल ३ रत्तीके साथ या सोंठके चूर्ण और मट्ठे के साथ।

५—कफ-प्रमेहपर—गूलरके फलके चूर्णके साथ।

६—यकृत् दाहपर—मीठे अनारके रसके साथ।

७—अग्निमान्द्यपर—पीपल और शहद या हल्दीके साथ खिलाकर ऊपर अदरकका रस पिलावें।

८—जलोदरमें—शहदके साथ चटाकर ऊपर चित्रकमूलका क्वाथ, कांजी या हल्दीका क्वाथ पिलावें।

९—गुल्मपर—अदरक या नागरबेलके पानका रस अथवा कुमार्यासव के साथ दें।

१०—गुल्म, वातजशूल और विसूचिकामें—त्रिकटु और पञ्चलवणके साथ, अथवा $\frac{१}{१६}$ रत्ती शुद्ध बच्छनाभ और ४ रत्ती त्रिकटुके साथ।

११—औदुम्बर कुष्ठपर—ताम्रभस्म अपामार्गका क्षार, सज्जीखार और जवाखार चारोंको समभाग मिलाकर २-२ रत्ती, दिनमें ३ बार; शीतल जलके साथ ४९ दिन तक दें। कुष्ठरोगी उड़द, मछली और दूध, दाह करने वाली वस्तुएं, तथा पक्के भोजनका त्याग करें।

१२—विषमज्वर (एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक) पर ताम्र भस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती और शुद्ध बच्छनाभ १ चावल भर मिलाकर शहदके साथ या ताम्र भस्म कालीमिर्च और तुलसीके रसके साथ।

१३—शूलपर—ताम्रभस्म और रससिंदूरको अदरकके रस और शहदमें दें। कृमिजन्य शूल हो तो, ऊपरसे शक्कर मिला तुलसीका क्वाथ पिलावें।

१४—मलावरोधपर—शहदमें मिलाकर चटावें और ऊपरसे जौ या गेहूँकी भूसीका क्वाथ पिला दें।

१५—त्रिदोषज भगंदर और व्रणपर—घृत और शहदके साथ।

१६—अम्लपित्तमें—शक्कर या शहदके साथ देकर मुनक्का और हरड़ १-१ तोलेका क्वाथ पिलावें, जिससे २-३ दस्त आ जाय।

१७—सब प्रकारके कुष्ठ, शीतपित्त, उदर्द, खाज, तीक्ष्ण पीड़ासहित कफप्रधान शोथ और कुष्ठ (त्वचापर काले धब्बे) पर-बाबचीके चूर्ण और शहदके साथ ।

१८—मूर्च्छारोगमें—खस और केशरके साथ देकर शीतल जल पिलावें अथवा घृतके साथ दिनमें तीन बार देकर जवासाका क्वाथ पिलावें ।

१९—मूत्रकृच्छ्रमें—इलायची, भाँग और शहदके साथ ।

२०—तीव्र वातजशूल, गुल्म और अपचनपर--भुनी-हींग, त्रिकटु, मुलहठी, काला नमक और इमलीका क्षार, सब एक एक रत्ती मिला, चूर्ण करके उसके साथ मिलाकर निवाये जलसे देवें अथवा बच्छनाभ चौथाई रत्ती त्रिकटु दो रत्ती मिला नींबूके रस और जलके साथ देवें ।

२१—वातज प्रमेहपर—गिलोयसत्व, मिश्री और शहदसे ।

२२—प्लीहोदर, यकृतोदर, पित्त-शोथ और परिणामशूलपर—कुमार्यासव, शहद-पीपल या पुनर्नवादि क्वाथसे ।

२३—सब प्रकारके शूलपर—ताम्रभस्म ½ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ रत्ती और इमलीका क्षार १ माशा मिला, गोघृतके साथ चटाकर ऊपरसे निवाया जल पिलावें ।

२४—पित्ताश्मरीपर—करेलेके पत्तोंके रसके साथ दें ।

२५—हृदय, यकृत् और मूत्रपिण्डकी क्रिया विकृतिपर—पुनर्नवादि क्वाथके साथ ।

गुणधर्म—ताम्रभस्म रसमें कषाय, मधुर, तिक्त और अम्ल, विपाकमें कटु (चरपरी), सारक, पित्तहर, श्लेष्मनाशक, शीतवीर्य, लघु और लेखन है । एवं उदररोग, प्रमेह, अजीर्ण ज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृद्-विकार, परिणामशूल, दाह, हिचकी, अफारा, विबन्ध, उदरशूल, अम्लपित्त, उदरकृमि, गुल्म, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु, पीनस, मांसार्बुद (कर्कस्फोट-Cancers and tumours) इत्यादि रोगोंको ताम्र भस्म नष्ट करती है ।

उपयोग—ताम्र भस्मका मुख्य कार्य शरीरके अनेक प्रकारके पिण्डोंकी वृद्धि होनेपर उनको कमकर पिण्डोंको सुदृढ बनानेका है । इनमें भी विशेषतः यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है । इसके सेवनसे बढ़े हुए घटक झरने लगते हैं; और मृतप्राय घटकोंके सजीव घटकों से पृथक् होनेपर यह सहायता पहुँचाती है । इनके सेवन करनेपर इसे यकृत् और इसके अन्य अवयवोंमें जाना पड़ता है । यकृत्में विशेषतः पित्ताशयपर इसका उपयोग होता हें । पित्ताशय संकुचित हुआ हो या पित्त अधिक गाढ़ा हो गया हो, या पित्ताशयके भीतरके भागमें विकृति हुई हो, इनमेंसे किसी कारणसे उदरमें व्यथा होती हो, तो इसका सेवन कराना अति लाभदायक है । ताम्रभस्मके योगसे यकृत् पित्तका स्राव होकर उसमें नियमितता आ

जाती है। यदि पित्ताशयमें यकृत् पित्तके कण या अश्मरी जम जानेसे उदर में व्यथा होती हो तो, वह इस भस्मके सेवनसे दूर होती है। इस भस्मका सेवन करेलेके पत्तोंके रसके साथ करनेसे पित्तके जमे हुए कंकड़ (पित्ताश्मरी) धीरे-धीरे टूटने लगते हैं और उदर-व्यथा शमन होती है। यकृत्के अनेक विकारोंमें विशेषत: यकृत्के घटकोंकी वृद्धि होनेपर इस भस्मका उपयोग करना चाहिये।

प्लीहा वृद्धिमें ताम्रका सेवन अति लाभदायक है। गुल्म तथा अष्ठीला आदि विकारोंमें गाँठका क्षरण करनेके लिये ताम्र भस्मका उपयोग होता है। गुल्मपर ताम्रका उपयोग कुमार्यासव या अन्य सारक या सूक्ष्म-रेचक औषधिके साथ करना लाभदायक है। एवं आमाशयमें उत्पन्न हुए कर्कस्फोट में भी यह हितकर है। मांसार्बुदमें यदि वात-प्रधान अथवा कफ-प्रधान दोष हो तो, ताम्र भस्म देनी चाहिये और यदि पितप्रधान दोष ग्रन्थिमें लीन हुआ हो तो वंगभस्म देनी चाहिये। ताम्र भस्म देनेसे दोषका स्राव होता है किन्तु रक्तस्राव होता हो तो, ताम्र भस्म नहीं देनी चाहिये। (ऐसे समयपर वंग भस्म ही दी जाती है)।

साधारणत: उदर रोगकी उत्पत्ति हृदय, यकृत् और मूत्रपिण्ड (गुरदा) इन तीन स्थानोंमें विकृति होनेपर होती है। इन स्थानोंकी कफ-प्रधान या कफवात प्रधान विकृतिको दूर करनेके लिये ताम्रभस्म दी जाती है। ताम्र में स्वाभावत: मूत्रल गुण नहीं है, अर्थात् जलोदर जैसे रोगमें सञ्चित जल को शरीरके बाहर निकालनेमें इसका स्वतंत्र उपयोग नहीं होता, इसलिये यह पुनर्नवा या अन्य मूत्रल औषधके साथ दी जाती है। विशेषत: ताम्र-भस्मके साथ शामक (Sedative), मूत्रल एवं विरेचक औषधि देकर सञ्चित जलको बाहर निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। कभी-कभी पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको ताम्र भस्मसे ही विरेचन हो जाता है। यदि इससे विरेचन होते हों तो, पित्त-वृद्धि होकर या पित्तमें तीक्ष्णता आदि गुण बढ़ करके होते हैं। अत: पित्त अच्छी रीतिसे निकालने और पतले जल जैसे विरेचन होनेके लिये अमलतासकी फलीका गूदा या कुटकी समान विरेचन औषधिका अनुपान देना चाहिये।

ताम्रभस्मके सेवनसे रक्तका दबाव बढता है; जिससे अनेकोंके कंठ या नाकमेंसे रक्त गिरने लगता है। इसी हेतुसे मूत्रपिण्ड विकृतिसे होने वाले जलोदरमें ताम्र भस्मसे मूत्रपिण्डका शोथ बढ़ने लगता है, मूत्रोसर्ग क्रिया कम होती है, फिर उदरमें जलका संचय अधिक होता है। इसलिये ऐसे समयपर इस भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। केवल मूत्रपिण्डके पूय-वृक्क (गुरदेमेंसे पीप निकलना) विकारमें ताम्रभस्मके उपयोगसे पूयकी कमी होती है और शनैः शनैः मूत्रपिण्ड पूर्वस्थितिमे आजाता है। अत: इस

रोगमें रस भस्मका प्रयोग बहुत कम मात्रामें करना चाहिये। हो सके, तब तक वृक्कके रोगोंमें इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जाता है। उदर रोगोंमें यकृतोदर, कफोदर, प्लीहोदर इत्यादिमें कफप्रधान या कफ-वातप्रधान दुष्टि हो, तो ताम्र भस्मका उपयोग अच्छी रीतिसे हो सकता है।

विसूचिकामें अनेक दस्त हो जानेपर हाथ पैरकी नाड़ियोंमें अति खिचाव होने लगता है ओर पिण्डियोंमें भयंकर पीड़ा होती है। वह ताम्रके सेवनसे तुरन्त दूर होती है ऐसे समयपर $\frac{1}{2}$ रत्ती ताम्रभस्मका प्रयोग आध-आध घण्टेपर करना चाहिये। यदि साथ-साथ वमन, शूल, भ्रम, ये लक्षण हों तो, वे भी इस योगसे कम हो जाते हैं। नाड़ियोंका खिचाव दूर होनेपर सुवर्णमाक्षिक भस्म, शंख भस्म, कामदुधा रस आदि वमन निवारक औषधियाँ देनी चाहिये।

ताम्र भस्मका उपयोग अम्लपित्त व्याधिमें होता है। बिल्कुल थोड़े परिमाणमें अतिशय गरम जलती हुई पित्तकी वमन मात्र होती हो, चक्कर, उदरपीड़ा ये उपद्रव अति बलिष्ठ और अति त्रासदायक हो, तो ताम्र भस्म का उपयोग हितकर है। यदि अम्लपित्तमें बड़ी-बड़ी वमन, अकस्मात् होती हो, तो सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। वमन कड़वी, खट्टी और मीठी हो, एवं पित्तका संचय अधिक हुआ हो तो, सुवर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। ताम्र भस्मका सेवन करानेमें अम्लपित्तके पित्तका स्राव कम, परन्तु पित्तकी तीव्रता तीक्ष्णता और उग्रता अत्यधिक होनी चाहिये। स्मरण रहे कि, पित्तस्राव करानेके लिये ही ताम्र भस्म दी जाती है। यह एक प्रकारकी पित्तस्राव कराने वाली विरेचक औषधि है। इसका उपयाग सम्हालकर करना चाहिये और इसके साथ घृत आदि स्नेह देना चाहिये। यकृत्पित्त का स्राव कम होनेपर एक प्रकारका अतिसार (श्वेत वर्णका मल) हो जाता है, उसमें ताम्र भस्मका सेवन हितकारक है।

मदोत्पादक (Deliriant) विष या कृत्रिम विष (गर) जो मदोत्पादक हो या सेन्द्रिय विष उदरमें आ जाय तो उसका संशोधन करनेके लिये ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। सेन्द्रिय विषसे यदि मद उत्पन्न होता हो तो भी ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। कफप्रधान दोषोंमें ताम्र भस्मसे आमाशय और पक्वाशयका संशोधन उत्तम प्रकारसे हो जाता है। इसलिये कफप्रधान विकृतिमें शोधन आवश्यक होनेपर ताम्र भस्मका उपयोग करना चाहिये।

अन्नद्रवशूल किंवा अन्य कोष्ठशूलमें अष्ठीला आदि उदरगत ग्रन्थि बढ़ी हो या, उदरगत ग्रन्थि शूलका कारण हो तो, ताम्रभस्म देनी चाहिये। इसके सेवनसे कठिन और उन्नत ग्रन्थि शनैः शनैः छोटी हो जाती है।

पाण्डुरोगमें प्लीहा और यकृत्, इन दोनोंकी अवस्था इन दोनोंमेंसे एक की वृद्धि होनेपर ताम्रभस्मकी योजना करनी चाहिये। पाण्डुवर्णकी अपेक्षा

निस्तेजता अधिक हो, त्वचा चिकनीसी भासती हो, मुँहपर शोथका अभास होता हो, और मुखका वर्ण श्वेत हो गया हो, समस्त शरीरमें थोड़ा थोड़ा शोथ, इनमें भी यकृत् प्लीहा वृक्कति कारण हो, तथा पित्त क्षीण हो और कफ वृद्धि हो, तो ताम्रभस्म देनी चाहिये।

कफज गुल्म अथवा अष्ठीलाकी वृद्धि बहुत जल्दी हो गई हो, तो ताम्रभस्मका उपयोग करना चाहिये।

मांस खानेवालोंको होनेवाले प्रमेह रोगमें अन्य औषधियोंकी अपेक्षा ताम्रभस्म विशेष हितकर है। ताम्रभस्मके योगसे मांस घटकोंकी पचानेके लिये उपयोगी पित्तकी उत्पत्ति होती है। इस तरह ताम्रभस्मका उपयोग प्रमेह रोगमें भी होता है।

ग्रहणी विकारमें पित्तकी उत्पत्ति कम होती है और जो पित्त उत्पन्न होता है, उसमें भी तीक्ष्णत्व कम होनेसे निर्बल होता है। ऐसी अवस्थामें जलमें मिले हुए बाजरीके आटेके समान सफेद, मैले रंगका और लेसदार दस्त होता है, दस्तमें दुर्गन्ध आती है। उबाक आती है, कभी वमन होती है, वह भी लेसदार, फीकी और दुर्गन्धवाली, ऐसे विकारमें ताम्रभस्मका प्रयोग बहुत अच्छा होता है।

लौकिक व्यवहारमें ताम्रभस्म नपुंसकता नाशक मानी गई है, परन्तु ऐसा गुण अनुभवमें नहीं आया।

ताम्रभस्मका कार्य—ताम्रभस्म कफ दोष, रस, रक्त, मांस ये दूष्य, तथा यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र और कोष्ठग्रन्थिपर लाभ पहुँचाती है। इसके सेवनसे पित्तस्राव अधिक होता है। पित्तमें तीक्ष्ण और उष्ण गुण बढ़ते हैं। रक्ताभिसरण क्रिया जोरसे होने लगती है। रक्तस्राव ज्यादा होता है। यह कफ दोषपर अधिक उपयुक्त कार्य करती है।

(औ. गु. ध. शा)

किसी कारणवश रक्तमें विकार होकर मांसग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये ग्रन्थियाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हाथ, पैर, मस्तिष्क, उदर आदिपर होजाती हैं। ये दुःखती नहीं किन्तु धीरे-धीरे बढ़ती जाती और नयी-नयी उत्पन्न होती रहती हैं। इन ग्रन्थियोंके नाश और नयी उत्पत्तिको रोकनेके लिये ताम्रभस्म अर्कक्षीर चूर्ण (आकके दुग्धको सुखाकर किये हुए चूर्ण) ४-४ रत्तीके साथ दिनमें ३ बार शहदमें मिलाकर देते रहने और बाहर बच्छनाभ ३ माशे बच और राई १-१ माशे और कपूर ५ रत्तीके चूर्णको गोंदके जलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे १-२ मासमें ग्रन्थि नष्ट हो जाती है।

सूचना—ताम्रभस्म, अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है। अतः इसका प्रयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। क्वचित् इसके सेवनसे पित्तस्राव अधिक होकर अतिसार हो जाय, तो भय मानकर उसे बन्द न

करें। जिस रोगीको शुष्क कास, दाह या वृक्कप्रदाह और जिसे शांत निद्रा न आती हो उसे यह भस्म नहीं देनी चाहिये।

ताम्रभस्म निरुत्थ ही उपयोगमें लेनी चाहिये। कच्ची भस्मका उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये। कच्ची भस्मके सेवनसे भ्रम, प्रलाप, वमन, क्वचित् ज्वर, अतिसार, शूल और रक्तस्राव आदि विकार उत्पन्न होते हैं। यदि उग्रतादि दोषोंके हेतुसे उत्पन्न विकारोंको शमन करनेकी आवश्यकता हो तो, मुक्तापिष्टी अति लाभदायक है।

ताम्रभस्म सेवनकालमें मिर्च आदि चरपरी वस्तुएं, तैल, खटाई, सम्पूर्ण पित्तवर्द्धक वस्तुए, अग्निसेवन, सूर्यके तापमें घूमना और रोग विरुद्ध अपथ्य भोजन, इत्यादिका त्याग करें एवं बालक, वृद्ध, क्षयरोगी, सूतिका, गर्भिणी, रक्तार्शके रोगी और मूत्रपिण्डके सूजनयुक्त उदर रोगीको ताम्रभस्म न दें।

ताम्रभस्मकी परीक्षा-थोडेसे दहीमें ताम्रभस्म मिलाकर काचकी शीशी में १२ घण्टे रहने दें। फिर दहीके रंगमें नीलापन दीखे, तो भस्मको दोष वाली समझकर सूरण अथवा अन्य औषधके रसमें खरल करके पुनः गजपुट में फूंक देनी चाहिये।

ताम्रभस्म सूर्यकी किरणोंद्वारा देखनेसे चन्द्रिका रहित मालूम होनेपर पूर्णपक्व जानें। चन्द्रिका हों, तो ओर २-३ पुट देवें। सदोष भस्मसे वमन, रक्तविकार, कुष्ट आदि विविध विकार उत्पन्न होते हैं।

दूसरी विधि—नीलाथोथा एक सेर लें। बारीक पीसकर एक लोहेकी कड़ाहीमें डालें। फिर उसे बथुवेके रसमें भिगो देवें २४ घण्टे बाद रसको निकाल ताम्र खुरचकर निकाल लेवें। फिर नीलाथोथा और जो रस निकला है उसे पुनः कड़ाहीमें डाल साथमें बथुवेका और रस मिला देवें, २४ घण्टे बाद फिर निकालें। इस तरह ३-४ बार करें। प्रायः एक सेर नीलाथोथामें से आध पाव ताम्र निकलता है फिर ताम्रको खरलमें नींबूके रसके साथ ३ घण्टे तक घोटकर धो लेवें। पश्चात् आकके दूधमें खरलकर टिकिया बनाकर सुखा लें। फिर उन टिकियाओंको थूहरके डण्डमें रख, कपड़मिट्टीकर गजपुट फूंक दें। पश्चात् भस्मको निकाल, वनगोभीके रसमें खरलकर टिकिया बनावें, फिर उसकी लुगदी रख, कपड़-मिट्टीकर गजपुटमें फूंक देनेसे ताम्र भस्म मैले सफेद रङ्गकी हो जाती है।

या बथुवेके समान नीलेथोथेको ४ गुने त्रिफलाके साथ १६ गुने जलमें भिगोकर ४० दिन तक तेज सूर्यके तापमें रख देवें। जल घट जानेपर पुनः मिलावें। पश्चात् जलको स्याही रूपसे या व्रण प्रक्षालनके कार्यमें लेवें, और कड़ाहीमें लगे हुए ताम्रकी भस्म बना लेवें।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—शुद्ध ताम्रचूर्ण, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक, तीनों २०

२० तोले, शुद्ध हरताल १० तोले और शुद्ध मैनसिल ५ तोले लें। पहिले ताम्र और पारदको नींबूके रसके साथ खरल करें। ताम्र चूर्णके श्वेत बनने पर जलसे धो गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् हरताल और मैनसिल को मिलाकर खरल करें। फिर सरावमें भरकर मजबूत कपड़ मिट्टी करें। इस संपुटको धूपमें सुखा बालुका यन्त्रमें रख, मुंहको अच्छी तरह बन्दकर चूल्हेपर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर यन्त्रमेंसे संपुट को निकालें। पश्चात् सम्हालकर भस्मके गोलेको निकालकर खरल कर लें। इस भस्मको "सोमनाथी ताम्रभस्म" कहते हैं। (र० र० स०)

वक्तव्य—इस सोमनाथी ताम्रभस्मको जमीकन्द, दही और सफेद पुनर्नवाके क्रमशः १०-१० पुट दे देनेसे अधिकतर लाभ देने वाली निर्दोष भस्म बनती है।

मात्रा- ½ से १ रत्ती दिनमें २ बार शहद-पीपल जवाखार और घृत अथवा अदरकके रसके साथ दें।

गुण—यह भस्म परिणामशूल, कास, श्वास, मन्दाग्नि, गुदाके रोग, अनेक प्रकारके पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उरःक्षत, मलमूत्रावरोध, उदर-रोग, वात रक्त और कफ-प्रधान रोगोंको नष्ट करती है। शेष गुण प्रथम विधि के अनुसार है।

सूचना—इस भस्मका उपयोग परीक्षा करनेपर करें। सदोष हो, तो फिरसे पकावें।

(४) लोह भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध लोह चूर्ण (या १० पुटी लोह भस्म) २० तोले, सफेद सङ्खिया, तबकिया हरताल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, प्रत्येक ४-४ तोले और शुद्ध कर्पूर २ तोले लें। पहिले लोह चूर्ण या लोहभस्मके साथ सोमल १ तोले और कर्पूर १।। माशे मिला घी कुँवारके रसमें ३ घण्टे खरलकर, २-२ तोलेकी टिकिया बाँधकर तेज धूपमें सुखावें। पश्चात् मिट्टी के कूँजेमें बन्दकर ५ सेर कण्डोंकी आँच दें। दूसरी बार उसी लोहमें हरताल १ तोला और कर्पूर १।। माशा मिला घीकुंवारके रसमें ३ घण्टे तक खरलकर ५ सेर कण्डोंमें फूंक देवें। तीसरी बार गन्धक १ तोला और कर्पूर १।। माशा मिला, घी कुँवारके रसमें खरलकर टिकिया बाँधकर उपरोक्त प्रकारसे आँच दें। चौथी बार पारद १ तोला और कर्पूर १।। माशा मिलाकर उपरोक्त रीतिसे खरल करके आंच दें। इसी क्रमसे १६ बार आँच दें। फिर भस्मको लोहेकी कड़ाहीमें डाल, समभाग वीरबहुँटी, मिलाकर नीचे मन्द-मन्द आँच दें और हिलाते रहें। जब वीरबहुँटी जल जायं, तब भस्मको तवेसे ढक दें और तीन घण्टे तक तीव्र अग्नि दें। स्वांग

शीतल होनेपर निकाल लें। यह लोहभस्म अति मुलायम खील हो जाती है। इस भस्मको अनेक चिकित्सकोंने वाजीकरण लोहस्भ भी नाम दिया है। (अ० यो०)

सूचना—१६ पुटोंके स्थानमें ६४ पुट दिये जायँ तो भस्म विशेष लाभ दायक बनती है। वीरबहुँटीमें कंकड़, मिट्टी या अभ्रक मिला हो तो निकाल देना चाहिये। अन्यथा भस्म दूषित हो जायगी।

भूतकालमें लोहा बनता था, उसकी भस्म विशेषतः वारितर हो जाती थी। वर्तमानमें विदेशसे विशेष शुद्ध लोहा आता है। उसकी भस्म वारितर नहीं बनती। अतः वारितर न होनेपर सदोष नहीं माननी चाहिए।

मात्रा ४ चांवलसे एक रत्ती तक। रोज सुबह ४० दिन तक, मक्खन अथवा मलाईमें लपेटकर खावें, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। अथवा लोह-भस्म पूर्णचन्द्रोदय रस (या रससिंदूर) और वृद्धदण्ड चूर्ण मिलाकर मिश्री मिले दूधके साथ दिनमें दो बार देवें। या लोह भस्म, शुद्ध कुचिलाके चूर्ण १ रत्ती और अश्वगन्धादि चूर्ण २ माशेके साथ मिलाकर दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह लोहभस्म नपुंसकता, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, मूत्रदोष, पाण्डु और शारीरिक निर्बलताको दूर करनेमें अक्सीर है। इसके अतिरिक्त यकृत्वृद्धि प्लीहावृद्धि आमाशय वृद्धिको भी दूर करती है।

लोहभस्मका प्रभाव रक्तपर सत्वर पहुँचता है, जिससे पाण्डु रोगादि अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती है। परन्तु इस भस्ममें भावना ऐसे उग्र द्रव्यों को दी गई है, कि यह भस्म रक्ताभिसरण क्रियामें शिथिलताजन्य या शुक्रो-त्पादक कोषोंकी निर्बलताके हेतुसे नपुंसकता आई हो, तो यह विशेष लाभ-दायक होती है। यह भस्म अण्डकोष, वीर्यस्थान, शुक्रवाहिनियों और अन्य नसोंको कुछ उत्तेजना देती है।

लोहभस्मके गुणोंका विशेष विवेचन दूसरी विधिके साथ किया गया है। वह इस भस्मके लिये भी समझ लेना चाहिये।

शास्त्रकारोंने लोह भस्मके विवेचनमें लिखा है :—

आयुः प्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता।
अयः समानं न हि किंचिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्॥

लोहभस्म आयुवर्द्धक, बल और वीर्यको बढ़ाने वाली, रोगोंका नाश करने वाली और कामोत्तेजक गुण वाली है। इस लोहभस्मके समान उत्तम रसायन रूप अन्य एक भी औषधि मनुष्योंके लिये नहीं है।

अपथ्य—लोहभस्म अथवा लोहभस्म मिश्रित औषधि सेवनकालमें तिल का तैल, उरदके बने हुए पदार्थ, राई, शराब, खट्टे पदार्थ, अनूप देशके जीवोंका मांस, ककारपूर्वक द्रव्य (कूष्माण्ड, ककड़ी, कलिंग अर्थात् तरबूज, करौंदा कशेरू, करीर, ककोड़ा कर्कन्धु अर्थात् छोटे बेर, कांजी, कुलथी, कड़वा तैल

करेला, कैथ, कासल शाक अर्थात् नाड़ीशाक, कुक्कुट अर्थात् मुर्गेका मांस और कंगनी आदि) सूर्यके तापमें भ्रमण, मैथुन, धुम्रपान, विदाही पदार्थ, तेज मिर्च, लहशुन, प्रकृति-विरुद्ध, देशविरुद्ध कालविरुद्ध, संयोगके विरुद्ध या रोगमें अपथ्य हो, ऐसे आहार विहारोंका त्याग करना चाहिये ।

सूचना—६४ पुटी लोह भस्मके उग्र होनेसे इसका उपयोग उष्णकालमें और अति तेज पित्तवालोंके लिये नहीं करना चाहिये । या सम्हालकर करना चाहिये । इस भस्मके सेवन करने वालोंको दूध घृत आदि पौष्टिक पदार्थ ज्यादा मात्रामें लेने चाहिये ।

दूसरी विधि—शुद्ध लोहेका बारीक चूर्ण ४८ तोला और बारहवां भाग सिंगरफ मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे घुटाईकर, २-२ तोलेकी टिकयां बाँधकर तेज धूपमें सूखावें । फिर सरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँक दें । इस तरह १२ बार गजपुट दें । बराबर सिंगरफ मिलाते जायें । यदि लोह चूर्ण मोटा हो, तो पहले त्रिफला, गोमूत्र और केले अथवा घीकुंवारके रसके ४-६ पुट देना चाहिये । फिर सिंगरफके पुट देवें । अन्तमें जामुनकी छालके क्वाथके ३ पुट देनेसे नीले रङ्गकी उत्तम लोह भस्म बनती है ।

मात्रा—१ रत्तीसे २ रत्ती तक दिनमें २ बार, पीपल और शहद, मक्खन मिश्री, त्रिफला, घृत-मिश्री मलाई या च्यवनप्राशावलेहमें मिला चाटकर ऊपरसे मिश्री मिला हुआ दूध पीवें; अथवा रोगानुसार अन्य अनुपानके साथ लें । लोहभस्ममें संग्राही गुण होनेसे मलावरोध हो, तो च्यवनप्राशा-वलेह या त्रिफलाके साथ देना चाहिये ।

अनुपान १. प्रमेहपर—हरड़ और गोखरू २-२ माशे, तालमखाने ४ माशे तथा मिश्री ६ माशेके साथ दें । ऊपर शीतल जल पिलावें या ३ माशे त्रिफलाके चूर्णके साथ मिला शहदके साथ देकर गिलोयका स्वरस पिलावें ।

२. दारुण अश्मरीपर—शहदके साथ देवें ऊपरसे ४ तोले गोखरूका क्वाथ पिलावें ।

३. कफयुक्त श्वास—रससिंदूर मिश्री या त्रिकटु शहदसे ।

४. जीर्णज्वरमें—शहद और पीपलके साथ ।

५. वातवृद्धि—लहसुन और घृतके साथ ।

६. पित्तज्वरमें—शहदके साथ ।

७. कफपित्तज्वरमें—अदरखके रसके साथ ।

८. पाण्डुपर—लोहभस्मको ७ दिन तक गोमूत्रमें खरलकर ३-३ रत्ती, दिनमें २ बार दूधके साथ देनी चाहिये ।

९. मण्डल कुष्ठ, पामा और खुजलीपर—आँवला, शक्कर और नीम पञ्चाङ्गके साथ, २१ दिन ३-३ रत्ती दिनमें २ बार ।

१०. उदावर्तमें—शक्करके साथ ।

११. सर्वाङ्गशूलमें—शम्बूकभस्म और शक्कर साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावें ।

१२. श्वास और हिक्कापर—कचूर, पुष्करमूल और आँवलोंका चूर्ण २ माशे, लोहभस्म २ रत्ती और शहद ६ माशे दें ।

१३. उदरशूलपर—गोमूत्रमें पकाई हुई छोटी हरड़का चूर्ण गुड़के साथ दें । ऊपर निवाया जल पिलावें ।

१४. ८० प्रकारके वातपर—निर्गुण्डीके रसके साथ ।

१५. कफवृद्धिमें—शहद, पीपल या कज्जली और शहदके साथ ।

१६. पित्तरोगमें—दालचीनी, इलायची और तेजपातके साथ ।

१७. रक्तपित्तपर—चातुर्जात और मिश्रीके साथ या आँवला, पीपल और मिश्रीके साथ मिलाकर अदरकके रसमें दें ।

१८. पाण्डु और हलीमकपर पुनर्नवाके रसमें या नागरमोथाके चूर्णके साथ देकर खैरकी छालका क्वाथ पिलावें ।

१९. २० प्रकारके प्रमेहोंपर—हल्दी, पीपल और शहदके साथ ।

२०. मूत्रकृच्छ्रपर—शिलाजीतके साथ ।

२१ मन्दाग्निमें—नागरबेलके पानके साथ ।

२२. रसायनके लिए—त्रिफला और शहदके साथ ।

२३. धातुदोषपर—त्रिकटु, भारङ्गी और शहदके साथ ।

२४. बलवृद्धिके लिये—पुनर्नवाके चूर्ण और गोदुग्धके साथ ।

२५. कासपर—वासा स्वरस, पीपल, मुनक्का और शहदके साथ ।

२६. त्रिदोषज शूलपर—त्रिफला चूर्ण, घृत और शहदके साथ ।

गुणधर्म—लोह भस्म रसमें कषाय, विपाकमें मधुर, बल्य, रूक्ष, लेखन, गुरु, सारक, रक्त मांस पौष्टिक, चक्षुष्य, वृष्य, आयुवर्द्धक तथा योगवाही होनेसे उष्ण-शीत वीर्य है । एवं यकृत् प्लीहावृद्धि, पाण्डु, पित्तविकार, पित्तज और कफज प्रमेह, उन्माद, धातु निर्बलता, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेद-वृद्धि, कृमिरोग, कुष्ठ, उदररोग, उदरशूल, आमविकार, क्षय, विष, हृद्रोग, श्वास-कास, अर्श नेत्रकी उष्णता, रक्तपित्त आदि रोगोंको नष्ट करती है ।

उपयोग—लोह सेवनसे रक्तमें रक्त-कण बढ़ते हैं । रक्तकी निस्तेजता दूर होती है । इसलिये लोह भस्मका उपयोग पाण्डुरोगमें होता है । पाण्डु रोगीके लिये लोहभस्म प्रशस्त और प्रसिद्ध औषधि है ।

पाण्डु रोगमें भी विशेषतः पित्तज पाण्डु और हलीमकपर लोहभस्मका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है । कृमिजन्य पाण्डु रोगमें अन्य कृमिघ्न औषधिके साथ लोहभस्म देनेसे लाभ होता है । आँतोंमें उत्पन्न होने वाले कितने ही प्रकारके कीटाणुओंसे पाण्डु रोगकी उत्पत्ति होती है । ऐसे पाण्ड

रोगमें लोहभस्मको बायविडंग और अजवायनके फूलों (थाईमोल) के साथ देनेसे अच्छा कार्य करती है।

वातवाहिनियों, मांसपेशियों या स्नायुओंके संकोच अथवा वातविकार के कारण तीव्र वेदना उत्पन्न होती हो, उसका शमन करनेके लिये वाजीकरण लोहभस्म और सिंगरफसे मारणकी हुई लोहभस्म अति उपयोगी है। परिमाणसे अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्तवाहिनियों, मस्तिष्क अथवा अन्य अवयवोंमें शून्यता आ जाने तथा घबराहट, निर्बलता, चक्कर आदि लक्षण प्रतीत होनेपर इसका सेवन अति हितकर है। यदि ये उपद्रव रक्तपित्तमें हुए हों, तो लोहभस्म रक्तचन्दनादि क्वाथके साथ दें; अथवा चरकोक्त लोहासवका सेवन करावें।

पित्तप्रकोप होना, जिसमें नेत्र लाल लाल हो जाना, मुँह और हाथ-पैरोंपर तुरन्त प्रस्वेद आ जाना, शरीर लाल हो जाना, थोड़े समय बाद घबराहट होकर शरीर निस्तेज और गरम हो जाना, सारे शरीर तथा रक्तवाहिनियोंमें अति वेगसे रक्तप्रवाह बढ़ना, हृदयकी गति और नाड़ीके वेगमें वृद्धि हो जाना, मानसिक बेचैनी होना और त्वचा उष्ण हो जाना इत्यादि पित्तप्रकोपके लक्षण होनेपर, लोहभस्म उत्तम प्रकारसे सत्वर कार्य करती है।

पित्ताशयको आवश्यक रक्त न मिलने अथवा पित्तके परिमाणमें कमी हो जानेसे अपचन, आफरा, बार-बार खट्टी और खराब डकार आना तथा चिकनी पित्त-कफमिश्रित थोड़ी-थोड़ी वमन होना इत्यादि लक्षण होनेपर लोहभस्म अति उपयोगी हैं।

अतिसार अथवा ग्रहणी रोगमें ग्रहणी और पक्वाशय अशक्त हो जानेसे बार-बार बड़े-बड़े दुर्गन्धयुक्त श्वेत या मैले रंगके दस्त अनायास ही होते रहते हैं। ऐसे अतिसारमें लोहभस्मका शक्तिवर्धक औषध रूपसे उपयोग होता है। संग्रहणीमें यदि अत्यन्त अशक्तता और बल मांस विहीनत्व आ गये हों, तो लोहभस्मका उपयोग करनेसे बलकी वृद्धि होकर निर्बलता दूर हो जाती है।

रक्तार्शके रक्त गिरनेके प्रारम्भमें लोहभस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। फिर भी पित्तार्श अथवा वातार्शके प्रारम्भमें विशेषतः जब अधिक क्षीणता आ गई हो; तब लोहभस्मका उत्तम रीतिसे उपयोग होता है। एवं रक्तार्शमें रक्त बहुत बह जानेके बाद हृदय-व्यथा, शोथ, पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर लोहभस्म (दूसरी विधि वाली) का उपयोग अति हितकर माना गया है।

लोहभस्ममें कषाय गुण होनेसे कफनाशक है, परन्तु उसके साथ पाण्डुता रूप लक्षण होना चाहिये। हृदय व्यथा होनेपर यदि श्वास हो, तो लोह

भस्मका अच्छा उपयोग होता है। एवं पित्तप्रधान तमक श्वासमें भी इस भस्मसे अच्छा लाभ होता है। जब कि छातीमें खूब श्वास भरा हुआ मालूम देता हो; साथमें निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी तेज हो; ऐसी परिस्थितिमें लोहका सेवन अत्यन्त हितकारक है।

विषम ज्वर अथवा ठण्ड लगकर आने वाले ज्वर अधिक दिन तक रहनें या अधिक ज्वर होनेपर भोजन करते रहनेसे प्लीहावृद्धि हो जाती है; एवं क्विनाइन युक्त औषधिको ज्यादा परिमाणमें सेवन करनेसे घबराहट, श्वास, मुँहपर शोथ-सा हो जाना; मुखमण्डल श्वेद और निस्तेज होना, कानमें बधिरता आना आदि लक्षण होते हैं। इसपर लोह भस्मके सेवनसे उत्तम लाभ होता है। परन्तु जिनसे लोहभस्म सहन न हो सके, उनको स्वर्ण-माक्षिक भस्म दी जाती है। प्लीहावृद्धिमें पाण्डुता अधिक होनेपर लोह भस्मका सेवन विशेष लाभदायक है।

लोहभस्म सर्वाङ्ग शोथ विकारमें अत्यन्त उपयोगी औषधि है। सर्वाङ्ग में शोथ, त्वचाके नीचेके भागमें लसीकाका संचय हो जाना, यहाँ तक कि शोथपर अंगुली दबानेसे गहरा गड्ढा हो जाता है, फिर भरनेमें समय लगता है, तथा अत्यन्त पाण्डुता, अतिशय घबराहट, मुँहपर अधिक शुष्कता, सारे शरीरकी शिराएं उड़ती हों ऐसा आभास होना, रोगीसे पूरा बोला भी न जाय, मूत्र सामान्य रीतिसे ठीक रहता हो, परन्तु मूत्राशय अशक्त होनेसे पेशाब अनेक समय करना पड़ता हो, ऐसे प्रकारके शोथ रोगमें यदि यकृत् प्लीहावृद्धिका अनुबन्ध हो, तो ताम्र भस्म और लोहभस्म मिलाकर देना अति प्रशस्त है।

पचन शक्तिकी निर्बलता या सर्वत्र धातु परिपोषण क्रम (Meta bolism) की अशक्तिके कारण शरीरमें सेन्द्रिय विषका संचय होता है। यह विष लोहभस्मके सेवनसे नष्ट हो जाता है।

पैत्तिक और श्लैष्मिक प्रमेहमें लोह भस्मका उपयोग होता है। इसके सेवनसे प्रमेह रोगमें आई हुई निर्बलता दूर होती है। जिस रोगीको मूत्र बार-बार न होता हो, परन्तु कम समय और प्रत्येक समय अधिक परिमाण में होता हो, तथा त्वचा निस्तेज हो; उसे लोह भस्मका सेवन हितकर है। परन्तु बार-बार पेशाब थोड़ा-थोड़ा होता हो, अन्तरमें दाह हो और त्वचा चिकनी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृत्वृद्धिमें रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुता आई हो, तो लोह या मण्डूर भस्मकी योजना करनी चाहिये।

किसी भी महा व्याधिसे मुक्त होनेके पश्चात् रोगीका बल कम होजाता है। रक्तके रक्ताणु निर्बल हो जाते हैं। एवं बड़े रोगमें दोष प्रकोपसे लड़ाई और धातुसाम्य प्रस्थापित करते रहनेसे सब इन्द्रिय समूह बिल्कुल थक जाते हैं; तथा बलमाँस-क्षीणत्वकी प्राप्ति होती है। यह क्षीणता लोहभस्मके

सेवनसे सत्वर कम होजाती है विशेषतः रक्तकी अशक्तताके कारण निर्बलता आई हो, तो निःसन्देह लोह भस्मका उपयोग कराना चाहिये। इस दृष्टिसे लोह भस्म बलकर है।

पित्तप्रधान कुष्ठ रोगमें दोषोंके कारणसे रक्त और त्वचा दुष्ट हुए हों तो लोह भस्म सेवन कराना अति हितकर है। पित्तप्रधान कुष्ठमें दाह, लाली तथा त्वचा, अंगुली, फाले या व्रणोंमेंसे जलके समान पतला स्राव, थोड़ा घाव होनेपर पक जाना, फूटना, उसमें दुर्गन्धयुक्त चिकना पीप निकलना, कभी-कभी अंगुलियोंकी त्वचा निकल जाना, टूट जाना आदि लक्षण होते हैं। इस रोगमें यदि त्वचापर व्रण लाल, काला-सा हो, उसमें छोटी-छोटी फुन्सियां हों, खाज चलती हो और दाह आदि लक्षण हों, तो लोहभस्म और त्रिफला चूर्ण या अन्य कुष्ठघ्न औषधि देनी चाहिये। अथवा आरोग्यवर्धिनी देनी चाहिये। कुष्ठ रोगमें पहले प्रधान लक्षणात्मक दोषकी योजना करनेके पश्चात् अन्य जिस दोषका अनुबंध हो अथवा अनुबंध वाला दोष शेष रहा हो, उसकी योजनाकी जाती है। इस न्यायसे पित्तदोषकी चिकित्सा करनेसे कुष्ठ रोगका शमन होना शक्य है।

लोहभस्म रसायन है अर्थात् इसके सेवनसे रस आदि सब धातुओंकी प्रशस्त उत्पत्ति होती है, जिससे सब इन्द्रियाँ और घटक उत्तम प्रकारसे पुष्ठ होते हैं। यह भस्म रसायन विधानसे अर्थात् चढ़ते उतरते क्रमसे सेवन करनी चाहिए। अथवा शिलाजीत, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, त्रिफला इनमेंसे किसीके साथ सेवन करनी चाहिये।

इस शरीरमें सब धातुओंको योग्य परिमाणमें आवश्यक द्रव्य यथा समय पहुँचाने वाली धातु रक्त है। रक्त धातुके रक्तकण और घटक शरीर-पोषण के लिए विशेष उपयोगी हैं। ये सब लोह भस्मके सेवनसे सुदृढ़ होते हैं। इस तरह अन्य पाञ्चभौतिक द्रव्य भी शरीर पोषणके लिये आवश्यक है। वह भी इसके सेवनसे शुद्ध और सुदृढ़ होता है। इस दृष्टिसे विचार करें, तो लोह भस्मके सेवनसे देह अतिदृढ़ होती है। इससे देह सिद्धि होती है, यह कथन बिल्कुल सत्य है।

मनुष्यके लिये लोहभस्म और छोटे बच्चोंके लिए मंडूर भस्म हितकर है। निरोगी मनुष्यको बिना हेतु निर्बलताका भास होता है, तो लोह भस्मका सेवन कराना चाहिए। इस दृष्टिसे शास्त्रकारोंने लोहभस्मको मन और शरीर से निरोगी मनुष्यके लिये दीर्घायु प्राप्त कराने वाली उत्तम रसायन औषधि कहा है वह युक्त ही है। आयुको नदीके ओघ सदृश मान लें, जब तक उसे आवश्यक अनुकूलता मिलती रहेगी, तब तक जीवित ओघ चलता ही रहेगा। यह सुविधा इसके सेवनसे पूर्ण होती रहती है। अतएव लोह

भस्म को दीर्घ जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है । यह शास्त्र-वचन युक्ति-युक्त ही है ।

यदि वातवाहिनियों या रक्तवाहिनियोंके संकोचसे शूल उत्पन्न हुआ हो तो लोह भस्मके सेवनसे रक्ताभिसरण-क्रियाकी वृद्धि होकर शूलका शमन हो जाता है । यदि शूल आमवात अथवा वातरक्त जन्य हो, तो महायोगराज गूगल, आक्षेपक समान हो, तो महावातविध्वंसनरस, वातपित्तप्रधान आक्षेप रहित शूल हो, तो सूतशेखर, और पित प्रधान हो, तो ताप्यादि लोह देना चाहिए ।

लोहभस्म अंडकोशोंको शक्ति देती है । इस हेतुसे अंडकोशकी निर्बलता से उत्पन्न नपुन्सकता और हीनवीर्यता इसके सेवनसे दूर होती है । अलावा सब धातुयें पुष्ट और शुद्ध होनेसे शरीरकी कान्ति बढ़ती है, तथा सब अवयव बलवान बनते हैं । विशेषत: उदर उत्तम बलवान होनेपर अर्थात् कोष्ठ के अवयव प्रतिकारक्षम होनेपर, सेन्द्रिय विषका प्रभाव अधिक नहीं पड़ता । इस दृष्टिसे लोह भस्म विषहर है ।

यदि लोहभस्म सामान्य मुण्ड लोहमेंसे बनाई जाय तो मृदु बनती है, जिससे कोमल प्रकृतिके सुकुमार रोगियोंको देनेमें अच्छी उपयोगी होती है । कोष्ठगतशूल, आमजन्यशूल और अर्शके कारणसे ज्यादा रक्त बह जानेके पश्चात् शूलपर मुण्डलोहभस्म अच्छा लाभ पहुँचाती हैं । एवं प्रमेह रोगमें जिनसे लोह भस्म सहन नहीं होती, उनके लिये मुण्डलोहभस्मका सेवन हितकर होता है ।

कामला विकारमें पित्त, पित्ताशयमेंसे कोष्ठमें नहीं जाता, किन्तु रक्तमें मिल जाता है । ऐसे समयपर पित्ताशय प्राय: निर्बल होता है । त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले होते हैं । इस विकारमें यदि निर्बलता अधिक है, तो मुण्ड-लोहभस्मका सेवन विशेष हितकर है ।

आमवातका विकार अच्छा हो जानेपर इस रोगके कारण उत्पन्न हुई निर्बलता नष्ट करनेके लिए आमविकारके मूल कारण आमकी उत्पत्तिको रोकना चाहिए । इस आमकी उत्पत्ति अग्निकी मन्दताके हेतुसे होती है । जब पाचक अग्नि (पाचक पित्त) सबल और कार्यक्षम हो जाय, तब नया आम नहीं बनता । पित्तको कार्यक्षम बनानेका यह कार्य मुण्डलोहभस्मसे होता है । ऐसे ही पाचकपित्तकी अशक्तिके कारण कोष्ठशूल, मन्दाग्नि आदि विकार उत्पन्न हुए हों, तो वे भी मुण्ड लोहसे दूर होते हैं ।

मुण्डलोह भस्मकी विशेषता—अन्य लोह भस्ममें ग्राही गुण अधिक है, जिससे शौच शुद्धि बराबर नहीं होती । अतः जिनको मलावरोध रहता हो,

उनको कान्त लोह भस्म मलावरोधमें वृद्धि करती है, किन्तु मुण्ड लोहभस्म में ग्राही गुण या विरेचक गुण नहीं है। फिर भी कोष्ठशोधक है, अर्थात् कोष्ठ की शक्ति और क्रियाको बढ़ाकर उसमेंसे मलको उत्तम प्रकारसे निःसरण कराती है। इसलिए ऐसे बद्धकोष्ठके पाण्डु रोगियों अथवा अशक्त व्यक्तियों को मुण्ड लोह भस्मका सेवन हितकर है।

लोहभस्म पित्त और वात दोष, रक्त, मांस विशेषतः, और सामान्यतः सब धातु, इन दूष्यों, और हृदय, यकृत् पचनेन्द्रिय तथा बृहदन्त्र, इन स्थानों में विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—रक्तार्शके रक्त गिरनेके आरम्भमें लोहभस्म नहीं देनी चाहिए। लोह भस्म अति मुलायम होनेपर रस रक्त आदिके साथ शीघ्र मिल सकती है। अतः लोह भस्म मुलायम हो जाय; तब तक गजपुट देते रहना चाहिए। अपक्व लोह भस्म आंवलोंपर मसलनेसे आँवलेका रंग काला हो जाता है ऐसी लोह भस्म सेवन नहीं करना चाहिये।

तीसरी विधि—शुद्ध लोहेका सूक्ष्म चूर्ण ३० तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लें। पहिले पारद और लोहके चूर्णको मिला घी कुंवारके रसमें ६ घण्टे खरलकर जलसे धो लें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें, और १२ घण्टे घीकुंवारके रसमें खरलकर गोला बांधे। पश्चात् एरण्डके पत्तोंमें लपेट ऊपर सूत बाँधकर तांबेके डिब्बेमें रखें। सन्धि पर मिट्टीका मजबूत लेप करके सूर्यके तापमें ६ घण्टे सुखावें। फिर अनाजके कोठेके भीतर ४० दिन तक दबा देनेसे भस्म तैयार हो जाती हैं। ४१ वें रोज भस्मको निकाल कपडेसे छानकर खरलकर लें। यह भस्म काले रंग की वारितर और मुलायम हो जाती है। इस भस्मका नाम शास्त्रकारोंने "सोमामृत लोह भस्म" रखा है। (र० र०)

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

चौथी विधि—शुद्ध सूक्ष्म लोह चूर्णको कुकरौंधेके रसमें १२ घण्टे तक खरल करके गजपुट दें। इस तरह पुनः पुनः खरलकर १० पुट देनेसे लाल नीले रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है। इस तरह जामुनकी छालके क्वाथ, बबूलकी फलीके रस, हस्तीशुण्डीके रस, अपक्व आंवलोंके रस और गोमूत्र आदि औषधियोंके पुटोंसे भी लोह भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

(५) वङ्ग भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध कलईके कागज जैसे पतले पतरे बनाकर नखके मुताबिक बारीक-बारीक टुकड़े करें फिर गोबरी लगभग २॥ सेर वजन वाली

लेवें। जिसमें चारों और एक-एक इञ्च भागको छोड़कर बीचमें गहरा एक इञ्चका खड्डा करें। पश्चात् उसमें इमलीकी छालका चूर्ण और तिल मिलाकर तैयार किया हुआ चूर्ण लगभग १० तोले डालें। फिर कलईके छोटे-छोटे टुकड़ोंको एक-एक करके चारों और बिछा दें। पुनः ऊपरसे इमलीकी छाल वाला चूर्ण लगभग १० तोले डालकर उसपर कलईके टुकड़ोंको बिछावें। इस तरह ३ से ४ तह करें। गोबरीकी जोड़ीमें लगभग १०-१२ तोले कलई बन्द करनी चाहिये, तथा सब मिलकर इमलीका चूर्ण तिल मिला हुआ लगभग ४०-५० तोले डालना चाहिये। ऊपर और नीचे इमली वाला चूर्ण ही रखें। इस तरह चूर्ण और कलईके पतरे रखकर समान गोलाई वाली भीतरसे खड्डाकी हुई दूसरी गोबरी ऊपर ढककर गोबरसे दोनोंकी संधि बन्द करें। सूख जानेपर एक कढाई या परातमें नीचे ऊपर लगभग १ सेर गोंबरी रखकर निर्वात स्थानमें अग्नि देवें। ठण्डा होनेपर सम्हालकर कलईकी भस्मके एक एक फूलको चुन लेवें। फिर भस्मको लोहेकी खरलमें खरलकर कपड़ेसे छान लें। जो भस्म कच्ची रही होगी, वह कपड़ेके ऊपर रह जायगी, उसे अलग कर दें। पक्की भस्म, जो छनकर नीचे जाती है, वह चूनेके समान सफेद रंगकी मुलायम और बहुत हल्की होती है।

इमली-तिलके बदलेमें भांग मिलानेसे भी भस्म उत्तम बनती है। गोबरीके बदलेमें टाटमें लपेट करके अग्नि देनेसे भी भस्म हो सकती है। टाटमें लपेट कर भस्म करना हो, तो टाटका दृढ़ गोला बना चारों और ५ सेर गोबरी रख, निर्वात् स्थानमें अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। टाटके गोलेकी ऊँचाई ८-९ इञ्चसे अधिक नहीं रखनी चाहिये १०-१२ तोले कलईकी एक बार भस्म करें। ज्यादा मात्रामें कलई लेनेसे कच्चा भाग विशेष रह जाता है। जो कच्ची भस्म शेष रह जाय, उसकी भस्म तीसरी विधिके अनुसार बनाई जाती है। (आ० प्र०)

सूचना—कच्ची भस्मको लोहेकी खरलमें खरल करनी चाहिये। पत्थर की खरलमें घोटनेसे खरल खराब होती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक, दिनमें २ समय, मलाई-मिश्री, बादामकी खीर, ईसबगोलकी भूसी-मिश्री, मक्खन मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

अनुपान—१. प्रमेहमें शहदके साथ देकर शुद्ध गन्धक पुराना गुड़ मिला कर खिलावें, या मोचरस और हल्दीका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ, अथवा अभ्रकभस्म और शिलाजीतके साथ या गिलोयसत्व और शहदके साथ।

२. मूत्राघातमें—वंगभस्म, शिलाजीत, गिलोय-सत्व, सब ३-३ रत्ती और मिश्री ९ रत्ती मिलाकर शहदके साथ।

३. मुख, दुर्गन्ध नाशके लिये—कपूरके साथ ।

४. कान्तिवृद्धि और पुष्टिके लिये—जायफल और गोदुग्ध या शहदके साथ कुछ दिनों तक सेवन करानी चाहिये ।

५. कफप्रधान प्रमेहमें—तुलसीके पत्तोंके साथ या मिश्री और शहदके साथ देनी चाहिये ।

६. गुल्म—सोहागेके फूलेके साथ सेवन करनी चाहिये ।

७. रक्तपित्त और ऊर्ध्वश्वासपर—हल्दीके चूर्ण और शहदके साथ दिन में २ या ३ बार कुछ दिनों तक देते रहें ।

८. पित्तशमनके लिये—मिश्रीके साथ ।

९. वीर्यस्तम्भनके लिये—नागरवेलके पानमें या भाँग अथवा कस्तूरीके साथ प्रातः सायं दिनमें दो बार देनी चाहिये ।

अथवा वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने, मुलतानी मिट्टी, तीनों १-१ तोला तथा वंगभस्म ६ माशे मिलाकर खरल करें । फिर उसमेंसे १।। से ३ माशे तक दिनमें २ बार आँवलेके जलके साथ देवें । रात्रिको आँवला १ तोला १० तोले जलमें भिगो सुबह मसलकर छान लेवें । एवं सुबह भिगोकर शामको उपयोगमें लेवें । इस तरह ७ दिन तक वंगभस्मका सेवन करानेसे घोर वीर्यस्रावमें आशातीत लाभ पहुँचता है । यह प्रयोग ग्रीष्म आदि ऋतुओं में निर्भयता पूर्वक किया जाता है । शीतकालमें देना हो, तो आँवलेके जल को निवाया करके उपयोगमें लें ।

१०. मन्दाग्निमें—पीपलके साथ ।
११. दाहपर—नींबूके रसके साथ ।
१२. अजीर्णपर—आँवला अथवा सुपारीके साथ ।
१३. अस्थिगत ज्वरपर—सितोपलादि चूर्ण, मक्खन और शहद, या गिलोय सत्व और शहदके साथ ।
१४. कुष्ठपर—निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ ।
१५. वातरोगमें—अजवायन अथवा असगन्धके साथ ।
१६. उदरव्यथामें—छोटी हरड़के साथ ।
१७. वातगुल्ममें—मठ्ठाके साथ ।
१८. श्वासमें—जायफल, लोंग और शहदके साथ ।
१९. स्वप्नदोषमें—१ तोला ईसबगोलकी भूसीके साथ ।
२०. बहुमूत्रमें—सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ ।
२१. सुजाकपर—वंगभस्म, मोतीपिष्टी, चांदीका वर्क, इलायची और वंशलोचनको मिलाकर शहदके साथ ।
२२. नासूरमें—नागबलाके साथ ।

२३. जीर्णज्वरपर—पीपल और शहदके साथ।

२४. चर्मरोगमें—खदिर छाल क्वाथके साथ।

२५. उपदंशजनित शुक्रदोषपर—हरतालमारित वंगभस्म २-२ रत्ती चोपचीन्यादि चूर्णके साथ एक दो मास तक देवें।

२६. कृमिपर—शहदके साथ चटाकर ऊपर पूति करंजका रस अथवा पीपलामूलको दहीके तोड़में मिलाकर पिलावें।

गुणधर्म—वंगभस्म, लघु, सर, रूक्ष, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, रुचिकर वर्णकारक, कफघ्न, किंचित् वातप्रकोप और किंचित् पित्तकारक गुणवाली है। सब प्रकारके प्रमेह, कफ, कृमि, मन्दाग्नि, वमन, क्षय, पाण्डु, श्वास और नेत्र रोगोंको दूर करती है शरीरके बलको बढ़ाती है। कलईमें तीक्ष्ण और उष्ण गुण रहता है, इस हेतुसे वंगभस्म वातघ्न है। परन्तु इसका रूक्षत्व आदि गुणोंका परिणाम क्वचित् वात प्रकोपकारक भी होता है, तथा यह भस्म गुरु (जड़) होनेसे अनेक कफप्रधान प्रकृतिवालोंकी पचन-क्रियापर ज्यादा लाभ प्रतीत नहीं होता।

वंगभस्मके मुख्य गुणधर्मके वर्णनमें शास्त्रकारोंने कहा है—

"वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः।" ※

उपयोग—वंगभस्मके गुणधर्मका उक्त वर्णन बिल्कुल यथार्थ है। इसे अधिकरण सूत्र कहो तो भी कह सकते हैं। कारण, वंगके गुणोंकी मालिका इस केन्द्रके चारों ओर गूंथी हुई है। शुक्र और शुक्र-स्थानकी अशक्तता प्राप्त होनेमें जो अनेक कारण हैं, उनपर वंग भस्मका उत्तम उपयोग होता है। यह मुख्यतः शुक्रस्थानको शक्ति प्राप्त करानेवाली होनेसे उस स्थानकी निर्बलताको दूर करती है। इस शिथिलतामें भी अनेक प्रकार हैं। फिर भी सब प्रकारके शैथिल्यके मूलमें प्रायः वातवाहिनियोंका शैथिल्य होता है। यह शैथिल्य वातवाहिनियों या मांसपेशियोंको प्राप्त होनेका कारण विशेषतः अति स्त्री सेवन अथवा अन्य रीतिसे वीर्यका दुरुपयोग होता है। इस तरह बार-बार वातवाहिनियों और स्नायुओंका उपयोग होते रहनेसे वे बिल्कुल शक्तिहीन बन जाते हैं। किसी-किसी समय तो परिणाम यहां तक आ जाता है कि मनमें स्त्रीकी भावना मात्र हुई या स्त्रीका दर्शन हुआ या शृंगार चेष्टा मात्र मनमें आई, बस तुरन्त शुक्रस्खलन हो जाता है। स्वप्नावस्थामें ग्राम्य

※ यह कथन २४ वर्षकी आयु तक ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, नीरोग गृहस्थीके लिये है। वर्तमानमें जन्मसे दुर्बल, कृश और रुग्ण देह वाले विभिन्न व्यसन रखने वाले, चटपटे आहार विहार करने वालोंके लिये नहीं है। और न उनको शास्त्र कथित पूरा लाभ ही मिल सकता है।

धर्मका चित्र मनमें आया, बस तत्काल किंचित् क्षोभ होकर वीर्यस्राव हो जाता है ऐसे विकारोंमें वंगभस्मका उपयोग अच्छा होता है ।

कितने ही मनुष्योंका तो शुक्रस्खलन नियमित रोज रात्रिको होता ही रहता है । इसका दुष्परिणाम उतने दूरपर पहुँच जाता है कि, कितने ही बिल्कुल पागल हो जाते हैं । कितनों ही को अर्द्ध पागलावस्था प्राप्त हो जाती है । कितने ही नपुंसक. कितने ही शुष्क मुरदार, कितने ही जन्म रोगी. तथा अनेक दीन, हीन और अपने जीवनसे बिल्कुल उपराम हुए हों, ऐसे बन जाते हैं । अनेकोंको झटके आते रहते हैं । किसी सुन्दरीका दर्शन होनेके साथ मनमें विकृति होने लगती है। यहां तक कि झटके आकर मुँह में झाग आने लगते हैं और जब शुक्रस्राव हो जाता है; तब इन विकारोंका शमन होता है । इन सब प्रकारके विकारोंमें वंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है । स्वप्नावस्थाके समान पेशाबके साथ शुक्रस्राव होता हो, तो भी वंगभस्मके सेवनसे लाभ हो जाता है ।

वंगभस्मके गुणके लिये शास्त्रमें लिखा है कि—

"सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम्"

अर्थात् जैसे सिंह हाथियोंके समुदायका नाश करता है; वैसे ही वंग-भस्म समस्त प्रमेह वर्गका दमन करती है । यथार्थसे विचार किया जाय तो वंग भस्म समस्त प्रमेहोंपर पूर्ण रूपसे लाभ नहीं पहुँचा सकती । विशेषतः वातज प्रमेहोंपर इसका उपयोग न करना, यही अच्छा मालूम होता है । सान्द्र, अच्छ, इक्षु, हस्ति आदि प्रमेहोंपर इसका उपयोग ज्यादा होता है । विशेषतः प्रारम्भसे दुष्ट मित्रोंके सहवाससे बार-बार शुक्रपात करानेकी आदत होनेसे निस्तेज निर्बल और शुष्क रोगियोंको होने वाले सब जातिके प्रमेहोंपर वंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है; अर्थात् शुक्रपात अथवा यह प्रमेहका निमित्त कारण होवे, तो ऐसे रोगियोंके शुक्रस्थानको शक्ति देनेके लिये वंगभस्म उत्तम औषधि है ।

वृद्धावस्थामें प्रमेहका विकार होनेपर बार-बार मूत्रोत्सर्ग ज्यादा परिमाणमें होने लगता है । वृद्धावस्थाके कारण मूत्रपिण्ड, मूत्रवहस्रोतसे और मूत्राशय सब अवयव निर्बल होकर थक जाते हैं, जिसमें बार-बार पेशाब करना पड़ता है । इस विकारमें वंगका अच्छा उपयोग होता है । यदि तरुणावस्थामें शुक्रस्रावका अतियोग इस विकारका कारण हो, एवं वृद्धावस्थामें वातप्रधान लक्षण ज्यादा हों, तो वंगभस्मके साथ वात शामक औषधिकी योजना करनी चाहिए ।

बस्ति (मूत्राशय) के मुखके पिण्ड (पौरुषग्रन्थि) की विकृति होनेसे मूत्रकृच्छ्रमें बस्तिके मुखके पास मूत्र आनेपर जलन होने लगती है । उसमें

एक प्रकारकी सांद्रता होती है। इस विकारपर वंगभस्मका अच्छा उपयोग होता है। यदि यह रोग बहुत बढ़ गया हो, और जीर्ण हो गया हो, तो शस्त्रकर्म (आपरेशन) ही कराना पड़ता है।

यह उपद्रव बहुधा प्रमेहके पश्चात् उत्पन्न होता है। वंगभस्ममें मेह-नाशकत्व गुण होनेसे वंगका उपयोग विकारपर भी होता है। प्रमेहके विकारमें सब दोष और मेद, मांस आदि सब शरीरके घटकोंमें विकृति हो जाती है। फिर उस हेतुसे धातु परिपोषण क्रम बिगड़ता है; जिससे मल भाग शरीरमें संचित होता रहता है। उसे बाहर निकालनेके लिये बार-बार मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग होते हैं। वंग भस्मके सेवनसे यह शारीरिक घटकोंको ह्रास सदृश विकृति कम होती है; तथा मूत्रोत्पत्ति और मूत्रो-त्सर्गकी अधिकता दूर होती है। यदि मधुमेहके रोगमें यह विकृति है, तो वंगभस्मकी अपेक्षा नाग भस्मका उपयोग विशेष लाभदायक है। परन्तु मधुमेहमें भी शुक्रपात रूप कारणकी प्रधानता हो, तो वंगभस्म या वंग-नाग मिश्रणका सेवन हितकर है अनुपान रूपसे गुड़मार अर्क देवें।

यदि मैथुनके अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके हेतुसे क्षयरोग उत्पन्न हुआ हो. तो उसकी बढी हुई अवस्थामें भी वङ्गभस्म लाभ पहुँचाती है। यदि यह कारण न होनेपर भी छाती बिल्कुल (पोकल) निर्बल हो गई हो; छातीका संकोच हो जानेका आभास होता हो; एवं अति कष्टसे सफेद. पीला, दुर्गन्ध युक्त कफ गिरना आदि लक्षण हों, तो भी उनपर वंग-भस्मके अच्छे उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थानमें वंगमें रहा हुआ विशिष्ट धर्म अर्थात् क्षयनाशक धर्मका उपयोग होता है। वङ्ग भस्मके साथ शृङ्गभस्म और रससिंदूर मिश्रित करके अथवा पृथक्-पृथक् भी दिये जाते हैं।

वंग कृमिघ्न होनेसे कृमिजन्य ज्वर, कृमिज हृद्रोग, अथवा कृमि जन्य अन्य रोगपर इसका अच्छा उपयोग होता है। कृमिजन्य ज्वरके लक्षण प्रायः विषमज्वरके समान होते हैं। अनेक समय कृमिजन्य ज्वर और सतत आदि विषमज्वरके निदानमें कठिनता हो जाती हैं, परन्तु कृमिके विशिष्ट लक्षणों से इस ज्वरका परिचय हो जाता है। कृमिजन्य ज्वरमें उदरपीड़ा; बार-बार उबासी आना, उबाक और वमन होना आदि लक्षण ज्यादा होते हैं। यह ज्वर अनेक समय तो ४०-४२ दिन तक रहता है। ऐसे विकारमें बड़े उदर कृमि नहीं होते। बारीक, गोल, चपटे अथवा धान्यके अंकुर सदृश छोटे होते है। वंग भस्मका उपयोग इन सब छोटे कृमियोंपर होते हैं। वंग भस्मके सेवनसे कृमि मूर्च्छित हो जाते हैं या परिपोषक द्रव्यके अभावसे मर जाते हैं; परन्तु वे गिरते नहीं हैं। इसलिये वङ्गभस्मके साथ आरग्वधादि क्वाथ या सनायका क्वाथ देवें, जिससे कृमि बाहर निकल जाय।

शुक्रपातके भयंकर दुष्ट स्वभावके कारण अनेक नवयुवकोंकी पाण्डु रोगीके समान स्थिति हो जाती है। कोई भी कार्य करनेका उत्साह नहीं होता। शरीर निस्तेज, पीला-सा, शुष्क और कृश हो जाता है। पाचन-शक्ति मन्द हो जाती है। इस पाण्डुतामें रक्तकणोंकी साक्षात् न्यूनता नहीं होती; परन्तु यह पाण्डुता शुक्रधातुकी निर्बलताके कारणसे होती है; अर्थात् शुक्रोत्पत्ति करनेके लिये जो आवश्यक रक्तकी और वातवाहिनियोंका प्रेरक है, उस आवश्यक प्राणवायुकी अनुकूलता चाहिये। इन सबका पहिले अति-योग हुआ है। फलतः वे सब क्षीण होनेसे रक्त बलहीन हो जाता है। इसी कारणसे त्वचा और सब अंगोंमें पाण्डुता आ जाती है। ऐसी स्थितिमें लोहभस्म, नागभस्म और जसदभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मका उपयोग विशेष लाभदायक है। इसपर वंगभस्म, प्रवालभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण अथवा वंग, शिलाजीत और लोहभस्मका मिश्रण देना चाहिए। यदि केवल मानसिक निर्बलता ही हो और पाण्डुता न हो, तो वंगभस्म और अभ्रक भस्मका मिश्रण ब्राह्मीके अवलेह या अर्कके साथ देना चाहिये।

मैथुनातियोग किंवा अधिक शुक्रपातके कारण कास रोग उत्पन्न होता है, वह शुष्क और त्रासदायक होता है। अनेक समय खाँसते-खाँसते चक्कर आ जाता है। इस रोगमें अत्यन्त निर्बलता होती है। इनमें भी यदि पहिले उपदंश रोग हो गया हो और कासके साथ श्वास रोग भी हो, तो हरताल-मारित वंगभस्मका अच्छा उपयोग होता है। उपदंशके विषपर वंगका साक्षात् कार्य यदि न होता हो, तो भी उसका शुक्रस्थानपर जो परिणाम हुआ है उसपर इसका कार्य होता है।

वंगभस्म मन्दाग्निनाशक और दीपन-पाचन है। यह दीपनत्व शंख या वराटिकाके समान या हींग, अजवायन, चित्रक आदिके समान अथवा नींबू, इमली आदिके समान नहीं हैं। इन सब द्रव्योंका कार्य साक्षात् पाचक पित्तके गुणोंको बढ़ाकर होता है। वंगका कार्य भी पाचक पित्तके गुण बढ़ा करके होता है। फिर भी यह गुणवृद्धि साक्षात् पित्तपर कार्य करके नहीं होती। वंगभस्म पित्तज है, परन्तु साक्षात् कार्य नहीं होता। वंगका कार्य प्रारम्भमें शुक्रस्थानपर होता है। शुक्र स्थानके बलवान होनेसे देहके समस्त अवयवोंको बलकी प्राप्ति होती है। इस तरह परम्परागत पचनेन्द्रिय संस्थान सशक्त बनता है; और मन्दाग्नि दूर होती है।

शुक्रकी निर्बलता-जनित अग्निमांद्य रोग अन्य प्रकारके अग्निमांद्य रोगों की अपेक्षा अति भयंकर त्रासदायक होता है। इस प्रकार अन्नपर ज्यादा अरुचि हो जाती है। अनेकोंको अन्नकी वास भी सहन नहीं होती। ऐसी परिस्थितिमें वंगभस्म अच्छा काम करती है। इस प्रकार और उसके परि-

णाम स्वरूप वमन रोगमें वंगका अच्छा उपयोग होता है ।

उदरमें कर्कस्फोट (Cancer) उत्पन्न होनेसे यदि वमन होती रहती हो तो उसमें वंगभस्म लाभदायक है । वंगसे कर्कस्फोटके विषप्रकोपका शमन होता है । इस रोगमें आयुर्वेदीय औषधि उपयोगी है—वंग और ताम्र । इनमें ताम्र उग्र होनेसे कफ प्रधान अथवा वातकफप्रधान दोषमें लाभदायक है । वंग इनसे अन्य दोषप्रकोपमें देनी चाहिये । कर्कस्फोटकी रक्तवाहिनियोंकी विकृति वंगभस्मके सेवनसे दूर होती है । इस विकृतिपर नागभस्मका भी उपयोग होता है ।

हस्तमैथुन आदिके व्यसनका अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके पश्चात् शक्तिपात होता है, उसे वंगभस्म दूर करती है । इसके सेवनसे इन्द्रिय समूहको शक्ति प्राप्त होनेपर दुष्ट लालसा भी स्वयमेव न्यून हो जाती है ।

वंगभस्म उत्तेजक औषधि नहीं है । फिर भी शक्तिवर्द्धक है, और इसी गुणके हेतुसे वह वृष्य मानी गई है । शुक्रपातके अतियोगसे नपुंसकता आई हो, तो उसे यह दूर करती है । कितने ही मनुष्योंमें पुरुषत्व होनेपर भी मनकी भावना रतिके प्रतिकूल होती है, अर्थात् रति करनेमें प्रेम नहीं है; और अनेकोंको अण्डकोष आदि इन्द्रियोंकी वृद्धि योग्य परिमाणमें न होनेसे पुरुषत्वमें कुछ न्यूनता रहती है । इन सब प्रकारोंमें वंगभस्म अच्छा काम करती है ।

वंगभस्म शुक्रस्थान और शुक्रपात, दोनोंको शक्ति और पुष्टि देने वाली है । अतः इसके सेवनसे शुक्रस्थान सशक्त बनता है, और शुक्रधातु सम और यथा योग्य उत्पन्न होने लगती है । परिणाममें सब धातुयें पुष्ट हो जाती है। समस्त देहको पुष्टिकी प्राप्ति होती है । शुक्र धातुका कार्य, बल और बुद्धि उत्पन्न करनेका है । इन कार्योंकी सिद्धिसे सारा शरीर और सब इन्द्रियां प्रबल हो जाती है । सब धातुएँ और इन्द्रियें सबल और दृढ़ होनेसे देहका वर्ण सुन्दर हो जाता है । शरीर तेजस्वी, स्फूर्तिवान् और बलवान् प्रतीत होता है; बुद्धि तेजस्वी बनती है, और स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है ।

वंगभस्मका कार्य पूय उत्पन्न करने वाले जन्तुओंपर जन्तुघ्न है । व्रणमें से पूय गाढ़ा पीले रंगका निकलता हो, ऐसे रोगियोंकी व्रण रोपणार्थ अन्य क्रिया करनेके साथ वंगभस्मका सेवन करानेसे सत्वर ज्यादा लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं ।

शुक्रधातुके २ कार्य है—गर्भसंजनन और बुद्धिवर्धन । गर्भसंजननके लिये उपयोग न होनेपर जो वीर्य संचित रूपसे रहता है, उससे बुद्धि और स्मरण शक्तिको लाभ पहुँचता है । इस दृष्टिसे वंगभस्मको बुद्धि और प्रज्ञा बढ़ाने वाली कहा है, यह योग्य ही है ।

स्त्रियोंके जननेन्द्रिय-सम्बन्धी विकारोंपर वंगभस्मका अच्छा उपयोग

होता है । अंडकोष (बीजाधार) की फलवाहिनियोंकी अशक्तिसे स्त्री जननेन्द्रिय निर्बल रहती हो, और इसी कारणसे मासिकधर्म न आता हो, तो वंगभस्म और लोहभस्म एलुआके साथ मिला, गोली करके देनी चाहिये । अथवा वंगभस्मका सेवन कन्यालोहादि वटीके साथ कराना चाहिये ।

वन्ध्यापन दूर करनेके लिए वंगभस्मका उपयोग होता है । वंध्यत्व अनेक कारणोंसे होता है । उनमेंसे यदि स्त्रियोंके बीज-कोषोंमें उत्पन्न होने वाला स्त्री बीज-डिम्ब (Ova) निर्बल हो, या बीजाधार अशक्त होनेसे बलवान स्त्री-बीजोंकी उत्पत्ति न हो सकती हो, अथवा स्त्रियोंकी मनोवृत्ति विकृत होनेसे वंध्यत्व रहता हो, प्रदरका विकार अतिशय बढ़ जानेसे निर्बलता रहती हो, पूयमेह (सुजाक) के हेतुसे अत्यन्त अशक्ति आकार वन्ध्यत्व आया हो, अथवा फिरंग (उपदंश) के संसर्गसे अन्तरेन्द्रियकी शिथिलता, व्रण या अन्य विकृति हो जानेके पश्चात् वन्ध्यत्व आया हो, तो इन सब दोषोंपर वंग भस्मके उपयोगसे अच्छा लाभ पहुँचता है । गर्भाशय और बीजाधार सुदृढ़ होते हैं, रज शुद्ध होता है, बीज सबल होते हैं, निर्बलता दूर होती है मन बलवान बनता है और गर्भ धारण हो जाता है ।

अनेक स्त्रियोंको रजोदर्शनकालमें बस्ति भाग (गर्भाशय) में भयंकर शूल चलता है। इसके अनेक कारण हैं। इनमें बीजाधारोंकी शिथिलता, रजस्राव रुक-रुक कर होना या रजस्रावका बिल्कुल मार्गसे बाहर न होना, भीतर ही संचित होते रहना, इन कारणोंसे बस्ति भागमें पीड़ा होती हो, तो वंगभस्म के सेवनसे लाभ हो जाता है । विशेष करके क्रोधी, दुराग्रही, निर्बल मन वाली, कोमल प्रकृति और कोमल स्वभाव वाली अशक्त स्त्रियोको वंगभस्म विशेष हितकर है ।

वंगभस्म जीर्ण त्वचाके रोगोंपर भी अच्छा प्रभाव दिखाती है । हरताल मारित वंगभस्मका उपयोग उपदंशजनित त्वग्रोगमें अधिक होता है त्वचा के रोगोंमें भी पुराना ब्युची रोग (Eczema) जिसमें बहुत खाज आती रहती है, त्वचा काली और शुष्क हो जाती है, या छोटी-छोटी फुन्सियाँ और पीले पीले फोड़े होकर पतला, पीले रंगका जल जैसा स्राव या पूय जैसा गाढ़ा स्राव होता रहता है । इस रोगपर बाह्य उपचारके साथ वंगभस्मका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है । विकार जितना जीर्ण हो, उतना ही वंगभस्मका कार्य अधिक स्पष्ट होता हैं । मात्रा ३/८०० रत्ती जितनी सूक्ष्म देना चाहिये । (औ. गु. ध. शा. के आधारसे)

वंगभस्म कफ और पित्त दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र दूष्य, एवं आमाशय, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, त्वचा, वातवाहिनियाँ, दृक्स्थान, मूत्राशय, गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, शुक्रस्थान, व्रषण, हृदय, फुफ्फुस, मनोदेश और बुद्धि, इन स्थानोंपर प्रभाव दिखाती है । इनमें शुक्रस्थानपर अपना विशेष

प्रभाव पहुँचाती है ।

देहका योग्य विकास होनेके पहिले लड़कियोंका पुरुष समागम होता है, तब स्थानिक शिथिलता उत्पन्न होती है । उस हेतुसे प्रदर रोग उत्पन्न हुआ हो, पतला स्राव होता रहता हो, तो वंगभस्म, फिटकरीके फूले, माजूफल और बबूलकी कच्ची फलीके चूर्णको मिला वर्त्ति बनाकर योनिमें रखनेसे शिथिलता दूर होकर प्रदर रोग निवृत्त हो जाता है साथमें वंगभस्म, रस सिंदूर और बबूलकी फलीके चूर्णका सेवन कराया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता हैं ।

यदि वात पित्त प्रकोप सह प्रदर उत्पन्न हुआ हो, स्राव पतला, उष्ण झागयुक्त हो, देहमें स्थान-स्थानपर वातज पीड़ा होती रहती हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गई हो, तो वंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, गोदन्ती भस्म तथा असगंध, शतावर और गोखरूके चूर्णको मिलाकर प्रातः सायं दूधके साथ देते रहनेसे कुछ दिनोंमें रोग शमन हो जाता है ।

कीटाणुजन्य कर्णपाक होनेपर कानमेंसे पूय निकलकर जहाँ लग जाता है, वहाँपर ही फोडे हो जाते हैं । एवं वाह्य उपचार करनेपर दीर्घकाल तक अच्छा नहीं होता । एक स्थानके फोडे नष्ट होते है, उतनेमें दूसरे स्थानमें फोड़े तैयार हो जाते हैं । धीरे-धीरे विष अधिकाधिक स्थानमें फैलता जाता है । ऐसे विकारपर बाह्य उपचार (दशांगलेप आदि) के साथ अन्तरोपचार के लिये वंग भस्मका सेवन कराना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है ।

कभी कर्णपाक शमन हो जानेपर कानके पीछे कफमेदज ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती हैं, उसका उपचार न करनेपर वह बहुत बढ़ जाती है । उसपर वंगभस्म १ रत्ती और ताम्रभस्म ¼ रत्ती मिला उसमेंसे ३ भाग कर ४-४ घण्टेपर दिनमें ३ बार शहदके साथ देते रहने और ग्रन्थिपर निवाये सरसों के तैलका मर्दन दिनमें दो बार करते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें ग्रन्थि बैठ जाती है ।

वातवृद्धिसे उत्पन्न वाताक्षेपपर वंग भस्म १-२ रत्ती और लोंग, जायफल दालचीनी, इन तीनोंकी काली राख ४ रत्ती मिलाकर २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे चमत्कारिक लाभ हो जाता है ।

दूसरी विधि—शुद्ध कलईको एक कढ़ाहीमें डालकर चूल्हेपर चढ़ावें । कलईका रस होनेपर उसमें पलास-पुष्प (केसूला) का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जायं और लोहेकी कलछीसे हिलाते रहें । चलानेके लिए कलछीपर लकड़ीका दस्ता लगवा लेनेसे हाथ नहीं जलेगा । ६ घण्टे तक तेज अग्नि देने से भस्म सफेद हो जाती है । फिर अग्नि देना बन्द करें, और भस्मको कढ़ाही में एक थाल रखकर ढक देवें । ठण्डा होनेपर कपड़ेसे छानकर कच्ची भस्म को अलग करें । पक्की भस्मको घीकुंवारके रसमें ६ घण्टे खरलकर दो-दो

तोले की टिकिया बनावें। प्रत्येक टिकियाको आकके पत्तोंमें लपेटकर ऊपर डोरा बांधें। फिर हाँडीमें बन्दकर गजपुट देनेसे एक ही पुटमें भस्म सफेद हो जाती है। इस भस्मको अधिक मुलायम और विशेष गुणप्रद बनानेके लिए १० पुट देना चाहिए। (वै० चि० सा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, दिनमें २ समय, मलाई और मिश्रीके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म प्रमेह, प्रदर, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करती है। स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, अत्यार्तव और कष्टार्तवमें भी लाभदायक, वातनाशक ओर शुक्रवर्द्धक है। विशेष वर्णन प्रथम विधिमें लिखा है।

तीसरी विधि—१ सेर शुद्ध कलईको कड़ाहीमें डालकर रस करें। फिर हल्दी, अजवायन, जीरा, इमलीकी छाल और पीपल (अश्वत्थवृक्ष) की छालका अलग-अलग चूर्ण एक-एक सेर लेवें। पहिले थोड़ा-थोड़ा हल्दी का चूर्ण डालते जायँ और बड़े कलछेसे चलाते रहें, अग्नि तेज देवें। हल्दी के चूर्णके समाप्त हो जानेपर अजवायनका चूर्ण डालते जायँ, पश्चात् जीरा, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अनुक्रमसे डाले। इस तरह सब चूर्ण समाप्त होनेपर कलईकी भस्म हो जाती है। फिर कड़ाहीमें भस्मको इकट्ठी कर ऊपरसे मिट्टीका सराव ढक देवें और लगभग ६ घण्टे तक तेज अग्नि देनेसे भस्म सफेद रंगकी हो जाती है। पश्चात् कड़ाही ठंडी होनेपर भस्मको कपड़ेसे छान लेवें। सेर भर कलईमेंसे किसी-किसी समय १-१ तोले जितनी छोटी-छोटी कच्ची कलईकी गोलियां रह जाती हैं, उनको अलग करें। भस्मका रङ्ग लगभग खड़िया मिट्टी जैसा सफेद होता है। (र०च०)

वक्तव्य—इस भस्मको घीकुँवारके रसमें खरलकर दूसरी विधिमें लिखे अनुसार १० गजपुट दें, तो मुलायम और तत्काल फलप्रद बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार।

चौथी विधि—दूसरी या तीसरी विधिकी वंगभस्मके साथ १२ वाँ हिस्सा हरताल मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे तक खरलकर, टिकिया बना, सरावसम्पुट करके गजपुटकी अग्नि दें। स्वाँग शीतल होनेपर पुनः हरताल मिला घीकुंवारके रसमें खरल करके गजपुट दें। इस रीतिसे ७ गजपुट देनेसे काले रंगकी मुलायम उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा—½ से १ रत्ती रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म हरतालके योगसे तैयार होनेसे उग्र स्वभाववाली है जिसका शुक्र उपदंश आदि रोगसे दूषित हो गया हो; उसके लिये यह अति हितकर है। सब प्रकारके प्रमेह, पुराना रक्तदोष, त्वचादोष, कृमिविकार,

मांसार्बुद, पुराना ब्यूचीरोग, सूक्ष्म ज्वर, जीर्णज्वर, पूयमेह (सुजाक), मन्दाग्नि आदि रोगोंको दूर करनेमें अन्य प्रकारकी वंगभस्मकी अपेक्षा यह अधिक हितकर है। शेष गुण प्रथम विधिमें लिखे हैं।

(६) त्रिवंग भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाहीमें डालकर तेज अग्निपर रस करें। फिर घीकुंवारके मूल के डंडेसे घोटते रहें। जब तीनों धातुओंका चूर्ण हो जाय; तब हल्दीका चूर्ण २। सेर लेकर, थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ और डंडेसे चलाते रहें। फिर भस्म को तवेसे ढककर १२ घण्टे तेज अग्नि देवें। स्वाँग शीतल होनेपर भस्मको छानकर हल्दीके क्वाथ और घीकुँवारके रसकी १४-१४ भावना देवे। बार बार १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बांधें। फिर सूर्यके ताप में सुखा सम्पुटकर गजपुट देवें। इस तरह २८ पुट देनेसे मुलायम, सुन्दर, पीले रंगकी उत्तम भस्म बनती है। (औ० गु० ध० शा०)

वक्तव्य—२८ पुटी भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है। तथापि इसे १०० पुटी बनायी जाय, तो अधिकतर गुणप्रद बन जाती है।

मात्रा--१ से २ रत्ती शहद, शर्बत बनप्सा, शर्बत नीलोफर, आंवलेका मुरब्बा, दूध, घृत या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

गुणधर्म—त्रिवङ्ग भस्म प्रमेह, बहुमूत्र, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, मासिक-धर्म विकृति, नपुंसकता, बीजाशयकी निर्बलता, मधुमेह और प्रमेह पिटिका आदिको नष्ट करती है।

उपयोग—त्रिवंगभस्म शक्तिदायक होनेसे नपुंसक, मांसपेशियां और रक्तवाहिनियाँगत वातपर उत्तम लाभदायक है। यह भस्म प्रमेहोंमें इक्षुमेह हरिद्रामेह और लालामेहपर अधिक गुण पहुँचाती है। इसके सेवनसे बार-बार मूत्रोत्सर्गकी शंका होना, मूत्रकी उत्पत्ति ज्यादा होना; ये विकार दूर होते हैं। मूत्रोत्सर्ग क्रियापर इसका मुख्य उपयोग होता है। इसी हेतुसे मधु-मेहमें भी इसका उपयोग किया जाता है; परन्तु अकेली नागभस्मके सेवन से मधुमेहमें प्राय: अधिक लाभ होता हैं। मधुमेह सन्धिवातके पश्चात् उत्पन्न हुआ हो; या मधुमेही रोगीको बहुत समय पहिले सन्धिवात हुआ हो, अथवा शिरदर्द, उदर पीड़ा, या अन्य जीर्णरोग पहिलेसे रहा हो और पश्चात् मधु-मेहकी उत्पत्ति हुई हो, तो नागकी अपेक्षा त्रिवंग अधिकतर हितकारक है। मधुमेहकी अत्यन्तावस्था प्राप्त हो गई हो और उसमें प्रमेह पिटिका (अदीठ फोड़ा आदि) हो गई हो तो त्रिवंग और नागकी अपेक्षा अकेले शिलाजीत का ही उत्तम उपयोग होता है।

त्रिवंग उत्तम वाजीकरण है । नपुंसकताको दूर करनेमें अच्छी उपयोगी है । अति वीर्यपात या अति स्त्री सेवनसे मांसपेशियां शिथिल होकर नपुंसकता हुई हो, बार-बार स्वप्नावस्था होनेसे नपुंसकता आई हो, या कामेच्छा तृप्त करनेकी बढ़ी हुई लालसासे नपुंसकता आई हो, आदि कारण होनेपर त्रिवंगका उपयोग उत्कृष्ट है ।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक होनेसे जननेन्द्रियकी मांसपेशियोंको शक्ति प्रदान करती है । इस कारण नपुंसकत्व न होनेपर भी स्वप्नावस्था या अन्य कारणोंसे स्वतः शुक्रस्राव होता हो, उस विकारपर त्रिवंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है । नपुंसकत्वका एक प्रकार ऐसा है कि, पहिले पुरुषार्थ प्रतीत होता है, परन्तु स्त्री दृष्टिगोचर होनेपर तुरन्त नष्ट हो जाता है । भीति, घबराहट, लज्जा और चिन्ता अधिक होना आदि लक्षण होते हैं । इस विकारपर यह लाभदायक है ।

स्त्रियोंके वंध्यत्वमें त्रिवंगका उपयोग होता है । गर्भाशय या योनिमार्ग में शारीरिक प्रतिवन्ध आनेसे वंध्यत्व आया हो, तो उस प्रतिवन्धको बाह्य क्रिया या शस्त्रसे दूर करना ही अच्छा है । ऐसा प्रतिबन्ध न हो, बीजाधारों (Ovaries) की अशक्ति या संकोच अथवा फलवाहिनियों (Oviducts) की अशक्ति या संकोच हो, किंवा इन अवयवोंका पूरा विकास न होनेसे वंध्यत्व आया हो, तो इसके सेवनसे लाभ हो जाता है । जब बीजकोषोंका विकास नहीं होता, तब शरीर सुन्दर नहीं दीखता, नितम्ब भाग पूर्ण भरा हुआ नहीं भासता, बिल्कुल शुष्क बैठा हुआ होता है । ऐसे ही छाती भी योग्य परिमाणमें उठी हुई नहीं दीखती; संकुचित होती है । मासिक धर्म प्रारम्भ हो जानेपर भी चेहरेपर योग्य स्त्रीभाव नहीं आता, इन लक्षणोंसे अन्तर अवयव पूर्ण विकसित नहीं है ऐसा जानकर त्रिवंगका सेवन कराना चाहिये ।

यह भस्म स्त्रियोंकी प्रजनेन्द्रियको उत्तम शक्तिदायक है । ज्यादा संतति थोडे-थोडे समयमें संतानोत्पत्ति होने और बार-बार गर्भपात होनेका स्वभाव हो जानेसे स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रियमें निर्बलता आ जाती है, इस कारण बाह्य अवयव और शरीर भी कमजोर हो जाते हैं, ऐसे समयपर त्रिवंग भस्मका उत्तम उपयोग होता है ।

बाल अवस्थामें असमयपर मासिक धर्म प्रारम्भ होने या किशोरावस्था में अधिक पुरुष-समागम होनेसे स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रिय पीड़ित और निर्बल हो जाती हैं । इस कारणसे गर्भ नहीं रहता और कदाचित् रह जाय, तो भी गर्भ की वृद्धि योग्य परिमाणमें न होकर गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है । प्रसव पूर्ण समयपर नहीं होता । यदि पूर्ण समयपर प्रसव हुआ हो, तो भी संतान

बिलकुल कृश और टेढ़ी-बाँकी जन्मती हैं। ऐसी स्त्रियोंकी अंतरेन्द्रियोंकी शक्ति देने और कार्यक्षम बनानेके लिए त्रिवंग भस्मका सेवन लाभदायक माना हैं।

कामेच्छा मर्यादा बाहर होनेसे या अधिक समय पुरुष-समागम होनेसे स्त्रियोंके योनिमुखमें, सफेद चिपचिपा या पतला स्राव (श्वेतप्रदर) होता है; यह स्राव कतिपय समय इतना अधिक होता है, कि इस स्रावके कारण स्त्री लाचार हो जाती है, इनमेंसे अनेकोंके मनमें उपभोग चित्र आनेपर तत्काल अतिस्राव हो जाता है; एवं आनुषंगिक कृत्य देखने, सुनने या स्मरण आ जानेपर भी स्राव हो जाता है। इस रोगमें त्रिवंगगका अच्छा उपयोग होता है।

छोटी लड़कियोंक खराबी आदतके कारण या ऋतुस्नाता होनेके पहिले पुरुष समागम होनेसे अंतरेन्द्रिय निर्बल हो जाती है, जिससे थोड़े-थोड़े श्रम से थक जाती है। योनिमुखमेंसे जल जैसा पतला स्राव सारे दिन होता रहता है। यह स्राव त्रिवंग भस्मके सेवनसे बन्द हो जाता है, और शरीरमें बल भी आ जाता है। अनुपान रूपसे गिलोय सत्व, शीतल मिर्च और गोखरूका चूर्ण देवें। ऊपरसे दिनमें दो बार दूध पिलावें।

मांसपेशियों और रक्तवाहिनियोंकी विकृतिसे सर्वाङ्गमें विशेषत: मस्तिष्कमें शूल चलता रहता है। भीतरसे रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है, और शूल भी चलता है। क्वचित् ऊपरसे रक्तवाहिनी मोटी बनकर अशक्त हो जाती है। एवं जीवनीय शक्तिका इन रक्तवाहिनियोंके ऊपरका अधिकार नष्ट होनेसे हाथ-पैर उठाना या अन्य क्रिया करना अशक्यप्राय: हो जाता है। हाथ-पैरकी शक्ति नष्ट होनेसे हाथ-पैरोंमें कम्प होता है, और शरीर कुब्ज बन जाता है। इस विकारपर त्रिवंग भस्मका अच्छा उपयोग होता हैं।

त्रिवंग भस्म वात और वातपित्त दोष, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र ये दूष्य तथा मगज, वातवाहिनियां, वातवहमण्डल, शुक्र स्थान, गर्भाशय, अण्ड कोष और स्त्री बीजकोष, इन स्थानोंमें विशेष लाभ पहुँचाती है।

(औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाहीमें तेज अग्निपर रस करें। रस होनेपर हल्दी, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अलग-अलग ६०-६० तोले लेकर क्रमश: थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालते जायँ और बड़के डण्डेसे चलाते जायँ। एक प्रकार का चूर्ण समाप्त होनेपर दूसरा और तीसरा चूर्ण डालें। फिर भस्मको तवे से ढक १२ घण्टे तक तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर भस्मको छान बड़की जटाके क्वाथके ७ और घीकुंवारके रसके ७ पुट देनेसे उत्तम पीले रंगकी १४ पुटी मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(७) जसद भस्म

विधि—शुद्ध जसद १ सेर कड़ाहीमें डाल, चूल्हेपर चढ़ाकर तेज आँच देवें; और लोहेके कलछेसे चलाते रहें। आगकी लपटें उठनेपर नीमके पत्तों का स्वरस २० तोले डालें। फिर आगकी लपटें उठें, तब पुनः २० तोले रस डालें। इस तरह ४ समयमें एक सेर स्वरस डालें। पश्चात् कड़ाहीमें मिट्टी अथवा लोहेका ढक्कन ढककर ३ घण्टे तेज अग्नि देनेसे भस्म हो जाती है। कड़ाही ठंडी होनेपर भस्मको कपड़ेसे छान ६ घण्टे घीकुँवारके रसमें खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बनावें। पश्चात् सूर्यके तापमें सुखा सराव-सम्पुट में रखकर गजपुट दें। इस तरह ३० गजपुट देनेसे भस्म मुलायम और गुण-कारी बनती है।

सूचना—स्वरस निकालनेके पहिले पत्तोंको जलसे धो लेवें। फिर कूट, स्वरस-यन्त्रसे बन्दकर वाष्पपर पकाकर यथाविधि स्वरस निकाल लेवें।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ समय, मक्खन-मिश्री, दूध-घृत, मिश्री या मलाईके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानसे। नेत्ररोगमें अंजनार्थ २ रत्ती जसद भस्म १ तोला गायके मक्खनमें मिलाकर लेवें।

गुणधर्म—जसद भस्म कषाय और अति शीतल गुणवाली है। रसवा-हिनी और रसवहापिण्डकी विकृतिमें यह भस्म उत्तम औषधि मानी गई है, और कफ-पित्त शामक है। जसद भस्म नेत्ररोग, दाह, प्रदर, पित्तप्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर, आदि रोगोंको दूर करती है। नेत्रोंको अत्यन्त हितकर है। इस भस्मके सेवनसे प्रमेह, पाण्डु और श्वासके रोग दूर होते हैं।

उपयोग—ज्वर रोग जिसमें सारे शरीरमें दाह और व्याकुलता हो और क्षयकी प्रथमावस्थामें सूक्ष्म ज्वर रहता हो, इन दोनोंपर जसदभस्मका अच्छा उपयोग होता है। कण्ठरोग, गंडमाला, अपची, अन्तरेन्द्रियमें शोथ, इन सब व्याधियोंमें इस भस्मके सेवनसे लाभ होता है।

आंतोंमें शोथ होनेपर एक प्रकारका अतिसार होता है, साथमें वमन भी होती है। इस अन्त्रशोथके हेतुसे ज्वर भी आता है। उदरमें भयंकर शूल चलता है। इस रोगमें जीभ फटी हुई या धुले और रंगे हुए चमड़ेके समान मुलायम रहती है। आवाज बिल्कुल क्षीण हो जाती है। रोगी बिल्कुल कृश हो जाता है। हाथ उठानेकी भी शक्ति नहीं रहती। ऐसी भयंकर स्थितिमें भी जसदभस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें जसदभस्म १ रत्तीको ६ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर ६ भाग करें और २-२ घण्टेपर एक-एक पुड़ियाको छाछ या दूधके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ होने लगता है। छाछ या दूध सहन न कर सकें, ऐसे रोगीको, जौका यूष या चावलकी खीलोंका यूष देनेसे लाभ पहुँच सकता है। इसके साथ तालमखानेका जल

देते रहनेसे अन्त्रको अच्छी सहायता मिलती है। (किसीको आँतोंमें शोथ आनेपर उस स्थानमें स्पर्श भी सहन नहीं होता; ज्वर १०१°-१०२° रहता है। बार-बार वमन होना, अति तृषा, पतले दस्त लगते रहना, निद्रानाश और अति अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, उनपर यह जसद भस्म मिश्रीके साथ दी जाती है। (तथा उदरपर दशाँग लेप लगाया जाता है।)

कंठमें रही हुई गांठोंका जीर्ण शोथ और पुराने कंठरोगमें तो जसदभस्म अच्छी लाभदायक है। वलय, वृन्द और वलास इन कंठरोगोंमें तो जसद भस्मका उपयोग नहीं होता; परन्तु स्वरघ्न, विदारिका, गिलायु; अधिजिह्व, उपजिह्व, इन विकारोंपर जसद भस्मका उपयोग होता है इनके अतिरिक्त स्वरसाद और स्वरभंग, इन विकारोंमें जसद भस्मका अच्छा उपयोग होता है यदि ये विकार उपदंशजनित हों, तो जसद भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये क्षयजन्य या कफजन्य अथवा रसवहापिण्ड(लसिका ग्रन्थियों) की विकृतिमें उपद्रवस्वरूप उत्पन्न हुए हों, तो जसद भस्मके सेवनसे लाभ हो जाता है।

जन्मकालमें बालकोंकी शरीर रचनामें न्यूनता रह जानेपर किसीको स्तन, पीठ, मस्तिष्क आदि प्रदेशपर ग्रन्थि हो जाती है। फिर उसमेंसे रस निकलता है या रस न निकलते हुए भी ग्रन्थि रसौलीके सदृश बढ़ती जाती है। उसपर जसद भस्म, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व शहदके साथ देवें और ग्रन्थिभेदन (लेप) दन्तीमूल, चित्रकमूलकी छाल, सेहुड़का दूध, आकका दूध, गुड़, गोडंबी कासीस ओर सैंधानमकका लेप करनेसे गांठ बिखर जाती है।

पोथकी, अभिष्यंद, वर्त्म, शुण्डिका आदि नेत्र रोगोंपर जसदभस्मका उत्तम उपयोग होता है। इन रोगोंमें अंजनके लिये १ रत्ती जसदभस्मको आधे तोले शतधौत गोघृत या मक्खनमें मिलाकर दिनमें दो बार प्रातःसायं अंजन करना चाहिये। इस अंजनसे कनीनिका या वरुनीके पास पड़ा हुआ व्रण भी भर जाता है।

नाड़ीव्रण, भगन्दर, दुष्टव्रण आदि विकारोंमें बाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन करानेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

जसद भस्मका उपयोग क्षयकी विशिष्ट अवस्थामें होता है जब उरःक्षत होकर फुफ्फुसका कुछ भाग नष्ट हुआ-सा भासता है, सारे शरीरमें विष फैल रक्त दूषित होकर तीव्र ज्वर आता है; प्रातःकालके ममय प्रस्वेद आता है; अंग गल जाता है, बलमांसका क्षय हो जाता है, ऐसे समयपर शिलाजतुके साथ इस भस्मका सेवन कराना लाभदायक है। इस औषधिके योगसे क्षयमें नया विष बनानेकी क्रिया कम हो जाती है और रोगीको शांति मिलती है।

जसद भस्म प्रमेहमें उपयोगी है। मेहके अन्य प्रकार और मधुमेह, इनमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे अन्तर है। इस भस्मका उपयोग प्रमेह और मधुमेह दोनों में होता है, विशेषत: पित्तभूयिष्ठ लक्षण होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये। अङ्ग टूटना, हाथ पैरोंमें दाह, सारा शरीर गरम रहना, अधिक तृषा, परन्तु उसका थोडे जलपानसे शमन हो जाना, शरीरमें स्थान-स्थानपर सुई चुभाने के समान पीड़ा होना, जिह्वा कठोर और शुष्क हो जाना, कंठमें रही हुई गांठोंपर शोथ सा हो जाना, भयंकर थकावट, थोड़ा-सा काम करनेपर थक जाना, मूत्रमें मधु (शर्करा) को परिमाण मर्यादामें होनेपर भी थकावट अधिक आना मस्तिष्कसे अस्वस्थता विस्मृति, विचार शक्तिका ह्रास, थोड़ा सा विचार करनेपर मन उपराम हो जाना, मस्तिष्क गरम-सा हो जाना, अनेक समय विचार करते-करते मन शून्य हो जाना इत्यादि लक्षण पित्त-जन्य क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त, मांजिष्ठ, इन ६ जातिके प्रमेहोंमे होते हैं। इन सबपर इसका उत्तम उपयोग होता है।

मधुमेहकी आधुनिक उत्पत्ति अनुसार इन्सूलिन (Insuline) नामक मधुपिण्ड़ोंमेंसे निकाला हुआ द्रव्य मधुमेहमें उपयोगी है। इन्सूलिनकी पूर्ति कम हो जानेपर रक्तमें शक्कर (मधु) अधिक हो जाती है। पश्चात् वह रक्त में से मूत्र द्वारा बाहर निकलती है। इस हेतुसे इन्सूलिन शरीरमें बाहरसे डालनेपर नि:सर्गत कभी हुए या उत्पन्न न हुए जो इन्सूलिन द्रव्य, वह बाहर से मिल जानेपर उसका शर्करा (मधु) नियमनका कार्य अच्छी रीतिसे हो सकता है। मधुमेहमें मूत्रमें मिलने वाली या रक्तमें संचित होने वाली शर्करा अग्न्याशय (Pancreas) से उत्पन्न अन्तस्राव (Internal Secretion) अर्थात् इन्सूलिन द्रव्यके अभावका परिणाम है। यह आधुनिक मान्यता है।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर अन्य उपाय भी मधुमेहमें करनेकी आवश्यकता हैं। अर्थात् अग्न्याशयमें मधुद्रावक द्रव्यका अभाव क्यों हुआ? इस बातका निर्णय दोष-दूष्यके विचारसे अधिक स्पष्ट हो सकता है। जब दोष-दूष्योंके वैषम्यके कारणसे ही यह उत्पन्न हुआ है तब दोष-दूष्योंकी विषमता दूर करना ही इसके नाशका अन्तिम और श्रेष्ठ उपाय हैं। इस उपायके लिये जसद भस्म उपयोगी औषध है।

जसद भस्म शीतपित्त नया और पुराना रोग, दोनोंपर दी जाती है। रोग चाहे जितना उग्र हो, या धातुओंमें लीन हो गया हो, जसद भस्मके सेवनसे थोड़े ही समयमें दूर हो जाता है। शीतपित्त पीड़ितोंको चाहिए कि कच्चा दूध अति गरम दूध-चाय तथा अधिक मिर्चका सेवन न करें। साधारण गरम दूध और मर्यादित मात्रामें निवायी चाय ले सकते हैं।

पाण्डुरोगमें हाथ पैरका टूटना, रसवाहिनी और रसवहपिण्डोंकी विकृति अधिक हो और पित्त दोषकी प्रधानता हो, तो जसद भस्मका उपयोग करना चाहिये ।

गलेकी गांठ या उदरग्रन्थि बढ़नेपर श्वासका दौरा होता हो, या श्वास रोग और इन गांठोंका साहचर्य हो, तो जसद भस्मका सेवन कराना चाहिए । अनुपान शहद-पीपल या सितोपलादि अवलेह ।

जसद भस्म कफ और पित्त दोष, रस और मांस दूष्य, तथा रसवाहिनी, रसवहाग्रन्थियां, आँत, कण्ठ, नेत्र, वृक्क, अग्न्याशय, यकृत् और उदरपर लाभ पहुँचाती है ।   (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—जसद भस्म जलपर तैरने लगे और नींबूके रसमें डालनेसे बुद-बुदे न उठें, उसे निरुत्थ समझना चाहिये ।

दूसरी विधि—पहिली विधि अनुसार कड़ाहीमें तैयारकर कपड़ेसे छानी हुई जसद भस्मको नींबूका रस, हल्दीका क्वाथ और घीकुंवारका रस, इन ३ औषधियोंकी क्रमशः ३-३ भावना देकर बार-बार गजपुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म तैयार होती है ।

वक्तव्य—इस भस्मको कतिपय चिकित्सक ९ पुटके स्थानमें ४२ और १०० पुट देते हैं । कमसे कम २१ पुट देनेसे भी अधिक गुणवाली होती है ।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार । प्रथम विधिकी अपेक्षा यह भस्म अधिक गुणदायक होती है ।

(७) नाग भस्म

प्रथम विधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ाकर तेज अग्नि दें । रस होनेपर शुद्ध मैनशिल थोड़ा थोड़ा डालते जाय, और ताजे अडूसेके मोटे डंडेसे चलाते रहें इस रीतिसे धीरे-धीरे समान मैनशिल डाल देनेसे धूल जैसी सूक्ष्म भस्म हो जाती है । पश्चात् लोहेके तवेसे भस्मको ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें । फिर कड़ाही ठण्डी होनेपर उतार, छानकर कच्ची भस्मको अलग निकाल देवें । पश्चात् छनी हुई शीशा भस्ममें १ सेर शुद्ध गन्धक मिलाकर ६ घण्टे नींबूके रसमें खरलकर शिवलिङ्गके सदृश लम्बा गोला बनाकर सूर्य तापमें सुखावें । फिर सराव संपुटमें रखकर १० सेर गोबरीके चूरेकी अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है । फिर इस भस्ममें अष्टमांश मैनशिल मिला-मिलाकर अडूसेके पत्तोंके रसके साथ १२ घण्टे तक खरलकर २१ गजपुट देनेपर आशु फलप्रद बनती है ।

मात्रा—½ से १ रत्ती, दिनमें २ समय, शहद, दूध, मक्खन, मिश्री, सितोपलादि चूर्ण और घृत, हल्दी, आँवला और शहद या रोगानुसार अनु-पानके साथ दें ।

अनुपान—१–घोर प्रदरपर वंशलोचन, जीरा, इलायची और मिश्री ।
२–आमातिसारमें—सोंठ और सौंफका चूर्ण ।
३–गुल्ममें—सोंठ और कालानमक ।
४–कफ, वायु और जलोदरपर–अजवायन, पीपल और शहद
५–उपदंशपर—शीतलचीनी और इलायचीका चूर्ण ।
६–धातुक्षीणतापर—मक्खन और मिश्री ।
७–मधुमेहमें—शिलाजीत ।

गुणधर्म—नागभस्म तिक्तमधुर, उष्ण वीर्य, रूक्ष, विपाकमें कटु, लघु, वृष्य, चक्षुष्य, कफ वातहर है। तथा उदर कृमि, प्रमेह, नेत्ररोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, प्रदर, अतिसार, ज्वर, रक्तगुल्म, आमाशय वृद्धिसे होने वाला अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गण्डमाला, धातुक्षय, श्वासनलिकाकी सूजनसे होने वाली खांसी, आमवात, निर्बलता, शिरदर्द, यकृत् दोष, श्वास रोग, सब प्रकारके मूत्ररोग, धनुर्वात आदि वातरोग, पाण्डु ये सब रोग दूर होते हैं, इस नागभस्मके सेवनसे रस धातुसे लेकर शुक्र धातु तक, सब धातु-क्रमसे पुष्ट होकर उत्तम शक्ति आती है। सब अवयव पुष्ट होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

उपयोग—जब आमाशयका आकार बढ़नेसे अम्लपित्त हो जाता है तब प्रायः दाह, अतिशय तृषा, तुरन्त वमन करनेकी इच्छा होना. इत्यादि लक्षण होते हैं। ये विकार अन्त, परिमार्जनसे कम हो जाते हैं। इसलिये एक समय अन्तः परिमार्जन (वमन आदि शोधन) करके नागभस्म देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। नागभस्मके योगसे आमाशयके आकुंचन होनेमें सहायता मिलती है। उदरमें व्रण होकर अम्लपित्तके समान उत्पन्न हुआ विकार भी नागभस्मके सेवनसे दूर हो जाता है। इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। यदि रोग जीर्ण हो गया हो तो नागभस्मका उपयोग अवश्य करना चाहिए।

अपची और गण्डमाला रोगमें गांठ सूज जाती है, उतने ही दोषोंकी दुष्टि नहीं है, परन्तु यह विकार प्राकृतिक है, अर्थात् सारे शरीरमें दोष-दुष्टि फैलने पर होता है इस विकारमें ऐसी अवस्था आती है कि, सब धातुयें शुष्क और त्वचा भी शुष्क हो जाती है। अस्थिपर त्वचा लपेटी हुई हो, ऐसी बाह्य अवयवोंकी अवस्था भासती है। कण्ठमाला-अपचीकी गांठ कठोर या सूजी हुई और ऊपर अधिक उठी हुई भासती हो तो, उस-पर अन्य औषधियोंकी अपेक्षा इस भस्मका उपयोग अच्छा होता है। इसके सेवनका आरम्भ होनेपर थाड़े ही दिनोंमें गांठोंकी कठोरताका ह्लास होता है। सब धातुएँ शनैः शनैः पुष्ट होने लगती है। इस तरह यह गण्डमालाके उत्पादक विकारको कम करानेके लिये भी उपयोगी है। नागभस्म प्राकृतिक रोगकी उत्तम औषधि है। प्राकृतिक रोगके दो प्रकार है। पहले

प्रकार रोग अति दृढ़ जड़ वाला, दीर्घकाल पर्यन्त रहने वाला, त्रास देने वाला, एवं एक समय मिट जानेपर पुनः पुनः उठने वाला होता है। क्वचित् कुछ काल तक बिल्कुल नष्ट हो जानेका भास होता है परन्तु थोड़ा सा कारण मिलनेपर पुनः दर्शन देता है।

दूसरे प्रकारका रोग न्यूनाधिक परिमाणमें एक-सा बना रहता है। पहले प्रकारकी व्याधियां उन्माद, अपस्मार आदि है। दूसरे प्रकारके रोग मधुमेह गण्डमाला, क्षय आदि हैं। इसमें नित्य टिकने वाले दूसरे प्रकारके रोगोंपर नागभस्मका अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रथम प्रकारके रोगोंमें अभ्रकभस्म तथा द्वितीय प्रकारके रोगोंमें नागभस्म लाभदायक है।

नागभस्मका उपयोग मधुमेहमें उत्तम होता है। मधुमेह विकार सारे शरीरमें व्यापक दोष और सब धातुओंकी विकृति होनेपर उत्पन्न होता है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे मधुमेहमें वात, पित्त, कफ, तीनों दोष और रस, रक्त, मांस, मेद, वसा, लसिका, मज्जा, शुक्र और ओज ये सब धातुएं दुष्ट हो जाती है। इन सबकी क्रिया परस्पर एक दूसरेपर होनेके पश्चात् मधुमेह उत्पन्न होता है। इस सिद्धान्तके अनुरोधसे चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् त्रिदोष अथवा चैतन्याणुभवनक्रियामें जो विकार हुआ हो, उसे दूर करना प्रथम कर्त्तव्य है। इस तरह जब त्रिदोषमें उत्पन्न हुई विकृति दूर होती है, तभी उस-उस अणुकी बनी हुई पृथक्-पृथक् धातुओंमेंसे दुष्टी दूर होती है त्रिदोषमें इस रीतिकी दुष्टीके दो प्रकार हैं। एक अब्धातु उत्पादक, दूसरी अब्धातु शोषक। मधुमेहमें पहले प्रकारकी दुष्टी होती है। नागभस्म का उपयोग इस प्रथम प्रकारकी दुष्टीके शमनार्थ होता है। इसका सेवन करनेपर प्रथम तृषा कम होती है। द्वितीय कार्य मधु (शर्करा) कम करने का है, वह भी सत्वर होने लगता है। यह कार्य इस भस्ममें शक्तिवर्द्धक गुण होनेसे सत्वर प्रतीत होता है। ऐसे समयपर गोदुग्ध मात्रका पथ्य रखनेसे अति शीघ्रतासे अच्छा लाभ पहुँचाता है। मधुमेहमें अन्य (कोथ आदि) उपद्रवोंके शमनके लिए इस भस्मके साथ शिलाजीत देनेसे ही विशेष फायदा होता है।

मधुमेहके अनेक रोगी स्थूल और अनेक कृश होते हैं। स्थूल रोगोंमें मेदकी दुष्टी अधिक होती है। ऐसे रोगियोंका शरीरके परिमाणकी अपेक्षा बल भी कम होता है। मेदस्वी मधुमेही रोगियोंके लिए नागभस्मका उपयोग ज्यादा हितकर है और कृश रोगियोंको दाह आदि लक्षण अधिक परिमाणमें होनेपर जसद भस्म लाभदायक है।

नागभस्म कोष्ठशूलपर उपयोगी है। यह शूल एक विशिष्ट प्रकारका होना चाहिए। इसमें अंत्र और सब कोष्ठगत अवयव बिल्कुल अशक्त हो जाते हैं और उनका व्यापार शिथिल हो जाता है। यह शूल वातप्रधान या वातपित्तानुबन्धी होता है। इस रोगमें थोड़ी-थोड़ी वमन अधिक त्राससे होती

है और वमनका वेग मन्द होता है। ऐसे समयपर नागभस्मका अच्छा उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त रङ्गके कारखानोंमें काम करने वालोंको जो उदरशूल उत्पन्न होता है, उसमें भी नागभस्म लाभदायक है।

बद्धकोष्ठके हेतु शौचशुद्धि नहीं होती। यह विशेषतः आंतोंकी निर्बलता के कारणसे होता है। इसका हेतु अनेक समय शुक्रक्षीण होनेसे बद्धकोष्ठ होता है। एवं अन्य धातुओंमें क्षीणता हो जानेसे भी कोष्ठबद्धता होती है। इसमें शौचका वेग निर्बल हो जाता हैं। वेग उत्पन्न होनेपर भी अन्त्रकी बहिर्निःसरण शक्ति न्यून हो जानेसे मल प्रवृत्ति नहीं होती, ऐसे प्रकारके बद्धकोष्ठमें नागभस्म उत्तम कार्य करती है, आंतोंको शनैः शनैः सबल बनाकर नियमित मलत्याग कराती है। ※

अस्थिगत व्रणमें इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। अस्थि-धातुकी पुष्टिके लिये पार्थिव आदि घटकोंकी यह पूर्ति करती है।

मज्जागत दोषोंके योगसे अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढ़ी-बांकी हो जाती है तथा मज्जा भी दुष्ट हो जाती है। अस्थियोंके संधिस्थानमें हड्डी बड़ीसी या दबीसी भासती है। कभी-कभी इस विकारके प्रारम्भमें और पश्चात् में भी भयङ्कर वेदना होती है अस्थि और संधि स्थानोंमें तीव्र शूल उत्पन्न होता है। ज्वर, वमन, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा प्रसूतावस्था और सगर्भावस्थामें भी हो जाती है। यह विकार अस्थिमज्जागत वातप्रकोप से होता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धान्त है। इसपर नागभस्मका अच्छा उपयोग होता है।

अनुपान—आँवले, गोखरू और मिश्रीका चूर्ण देवें।

अशक्तिसे मलावरोध होकर अर्शरोग उत्पन्न हुआ हो, तो वह नागभस्म के सेवनसे दूर होता है। इस रोगमें शोथ होकर भीतरका हिस्सा बाहर निकलता है। वह कितनी खटखट करनेपर भीतर नहीं जाता, बाहर ही रहता है। अर्शके मस्से बिल्कुल मुलायम और निर्बल होते हैं। शौचके समय मल को बाहर निकालनेकी भी शक्ति नहीं रहती कृत्रिम उपायोंसे शौच शुद्धि करनी

※ नागभस्म अन्त्रको बल देती है, किन्तु इसके सेवन करनेपर तुरन्त लाभ नहीं पहुँचत सकता। अति कम मात्रामे अन्त्रको सबल बनाने वाली अन्य औषधि (अभ्रक भस्म और कुचिला) के साथ मिला लेनी चाहिये और पथ्यपालन सह शान्तिपूर्वक सेवन करानी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो रात्रिको मलको आगे सरकाने वाली इसबगोलकी भूसी या अन्य औषधि भी देते रहना चाहिये।

कम पुट वाली नागभस्म अधिक मात्रामें अधिक दिनों तक नहीं दी जाती, अन्यथा प्रतिक्रिया होकर रक्ताणुओंको हानि पहुँच जाती है। वृद्धोंको बिना नागालम्बे समय तक देनेपर पाण्डुता आ जाती है। स्व ठा० नाथूसिंह जी

पड़ती है । ऐसे विकारमें स्नायुओंका शैथिल्य हो तो नागभस्म देनी चाहिये । परन्तु शुक्रके अति दुरुपयोगके कारण अशक्ति, मलावरोध और अर्श हुए हों, तो नागभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मका उपयोग विशेष हितकर है ।

पित्तज गुल्म और रक्तज गुल्म, इन विकारोंपर नागभस्मका शक्तिवर्द्धक रूपसे उपयोग होता है । पित्तगुल्मके प्रारम्भ-कालमें ही नागभस्मका सेवन कराया जाय तो अधिक वृद्धि नहीं होती । रक्तगुल्मके प्रारम्भमें तो किसी भी प्रकारकी योजना नहीं की जाती । रक्तगुल्म जीर्ण होनेपर (१० मास हो जाने पर) ही उसका साध्यत्व होता है—("रक्तगुल्मपुराणत्वं सुख-साध्यस्य लक्षणम्") ।

ग्रहणी और अतिसार, इन व्याधियोंमें शरीर बल क्षीण हुआ हो, तो रोग को दूर करनेके लिये जो प्रतिकार होना चाहिये, वैसा रोग निवारक शक्ति से नहीं होता जिससे रोग दीर्घकाल-पर्यन्त बढ़ता जाता है । रोगी दिन-प्रति दिन अधिकाधिक क्षीण होता जाता है । ऐसे समयपर यदि ज्वर आदि लक्षण न हो तो नागभस्म दी जाती है ।

नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, और सुवर्णभस्म, ये सब औषधियां जीवनीय (जीवनके लिये उपकारक) हैं । ये सब भस्में शरीरके घटकोंमें नया जीवन उत्पन्न करती है, और घटकोंको अन्नादिकोंमेंसे मूल अंशको उत्तम प्रकारके शोषण करनेको शक्ति प्रदान करती है । यह इन औषधियों में विशेष गुण है । इनमें नागभस्म माँसपेशी आदिके लिये जीवनीय है । अतः इनकी शक्ति क्षीण होनेपर नागभस्मका उपयोग करना चाहिये ।

नागभस्म वृष्यत्व (नपुंसकत्व नाशक) गुण जन्मषण्ढोंके लिये तो प्रतीति में नहीं आता । परन्तु मधुमेहके समान क्षीणता उत्पन्न करने वाले रोगोंमें यदि षण्ढता आई हो, तो नागभस्मके सेवनसे दूर होती है । यदि यह नपुंसकत्व स्नायुओंकी निर्बलताके कारण आया हो तो भी नागभस्मका उपयोग होता है । एवं अंडकोषकी ग्रन्थियोंकी निर्बलतासे यह रोग उत्पन्न हुआ हो, तो इसके साथ शिलाजतु और स्वर्णभस्म आदि औषधका उपयोग करना चाहिये । पुष्पधन्वा रसमें नागभस्म है, यह रस नपुंसकत्व दूर करने में उत्तम है ।

यदि वातवाहिनी या मानसिक क्षीणता आदि कारणोंसे पाण्डुरोग उत्पन्न हुआ हो, तो अभ्रकभस्मका सेवन अधिक लाभदायक है । रक्तस्राव या रज स्रावकी अधिकतासे या मिट्टी खानेसे या कृमि आदि कारणोंसे रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुरोग उत्पन्न हुआ हो, तो लोहभस्म उपयोगी है परन्तु अणु-भवन क्रिया या धातुपरिपोषण क्रिया, हृदय आदि सब इन्द्रियां निर्बल होजानेसे पाण्डुरोग हुआ हो, तो नागभस्म उत्तम कार्य करती है । इस भस्म को लोह भस्म और अभ्रकभस्मके साथ मिलाकर भी दे सकते हैं ।

जीर्ण पक्षाघातके रोगमें अधिक अवलत्व, विशेष करके शाखाश्रित रक्त-वाहिनियां, स्नायु, कण्डरा, सबमें ज्यादा निर्बलता आई हो और इसी कारणसे हाथ-पैरों और अंगुलियोंकी शक्ति क्षीण हो गई हो, तो नाग-भस्म देनी चाहिये।

मधुमेह, अन्य मेह और क्षीणता उत्पन्न करने वाली अन्य व्याधियोंके अन्तमें भ्रम-सा होना, यह लक्षण होता है। मनमें निकम्मे-निकम्मे विचार आकर मन शून्य-सा हो जाता है। यह स्थिति ज्ञानेन्द्रियां अशक्त होने अथवा रक्तकी पूर्ति न होने या निर्बल हो जानेसे होती है। कितने ही रोगी विचारोंमें लीन हो जाते हैं, कितने ही अनैच्छिक कर्म ही भूल जाते हैं, व्यवस्थापूर्वक नहीं कर सकते जैसे पेशाब करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है, फिर भी उठनेकी अनिच्छा या इसके लिये मिनटों या घण्टों तक विचार करते रहना; इस रीतिसे मूत्रको रोकनेसे शून्य-सी अवस्था हो जाती है। परन्तु उतना होनेपर भी मूत्रोत्सर्गकी सुध नहीं। ऐसे प्रकारके रोगियोंपर नाग-भस्मका इतना अच्छा उपयोग होता है कि, अनेक समय एकाध दिनमें ही मनुष्यके विचारोंमें मग्न हो जानेवाली स्थिति दूर होकर मन और इन्द्रियां कार्यक्षम हो जाते हैं। मधुमेहकी अंतिम अवस्थामें संन्यास (मूर्च्छा) रूप उपद्रवकी प्राप्ति हो जाती है। इसमें नागभस्म अनेक औषधियोंमेंसे एक उत्तम औषधि है। अनेक समय इसके सेवनसे संन्यासके अति त्वरित होनेके उदाहरण देखनेमें आये हैं।

हृदय और फुफ्फुस अशक्त होनेसे एक प्रकारकी शुष्क त्रासदायक कास, जिसमें आवाज गहरी हो जानेके समान खांसना होता है। इस कास रोगमें कफ बिल्कुल नहीं गिरता। बार-बार खांसीका वेग उठता रहता है। ऐसे रोगमें नागभस्म अच्छा काम देती है। चिकित्सकोंकी कर्कस्फोट (Cancer) में नागभस्मका उपयोग करके देखना चाहिये। वातप्रधान कर्कस्फोट होने पर विशेष उपयोग हो सकेगा। वेदना अधिक हो, तो नागभस्म अच्छा कार्य करती है।

नागभस्म वात-विशेषतः व्यानवायु दोष; रससे लेकर शुक्रपर्यन्त सातों धातु, ये दूष्य और मस्तिष्क, वातवाहिनियाँ (संज्ञावाहिनी और आज्ञावा-हिनी), स्नायु, आमाशय और अन्तःस्रावक पिण्ड; इन स्थानोंपर विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

नागभस्मके लिए शास्त्रमें लिखा है, कि—

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति
व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति
मृत्युं च नाशयति सन्ततसेविनः सः॥

नागभस्मका सतत सेवन करनेसे सौ हाथीके समान बलकी प्राप्ति होती है; सब रोगोंका विनाश होता है; आयुकी वृद्धि होती है; जठराग्नि प्रदीप्त होती है, कामोत्तेजना होती है; एवं मृत्युका भी नाश होता है।

सूचना—किसी-किसी समय नागभस्मसे कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ऐसे समयपर थोड़े दिनोंके लिये भस्म बन्दकर देनी चाहिये।

यह भस्म अच्छी निरूत्थ न हुई हो, तो उपयोगमें नहीं लेनी चाहिये। कच्ची भस्मसे उदरशूल होनेकी विशेष संभावना है।

दूसरी विधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ा, तेज अग्नि देकर रस करें। फिर आकके फूल थोडे-थोड़े डालते जायँ और आक की जड़ोंके डण्डेसे चलाते रहे। ४ सेर आकके फूल लगभग ४ घण्टेमें डालनेसे भस्म हो जाती है। पश्चात् कड़ाहीपर ढक्कन ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर कड़ाही उतारकर भस्मको कपड़ेसे छान लेवें। कच्चे भागको अलग निकाल डालें और छनी हुई भस्ममें बारहवां हिस्सा मैनशिल मिलाकर अडूसेके पत्तोंके रसमें ६ घण्टे खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा, गजपुटमें देवें। इस तरह १० गजपुट देनेसे पीले रंगकी उत्तम नागभस्म तैयार होती है। (वै. चि. सा.)

वक्तव्य—श्री वैद्यराज सुखरामदासजी टी, ओझा इस प्रकारकी भस्म बनाते थे। वे मिट्टीके कपालमें अर्कमूलके डण्डेसे शीशेको घोटते थे। भस्म होनेपर घी कुंवारके रसमें ३ घण्टे खरल करा पेड़ेके समान एक टिकिया बाँधते थे। उसे मिट्टीके तवेके बीचमें ५ सेर गोबरीकी निर्धूम कुटी हुई अग्नि के भीतर रख बाटी सदृश पका लेते थे। इस तरह ४०-५० और १०० पुट देकर भस्म बनाते थे। अधिक पुट देनेपर यह भस्म अधिक लाभप्रद बनती है।

मात्रा—½ रत्तीसे १ रत्ती तक दिनमें दो समय देवें।

अनुपान—सुजाकमें बिहीदानेके लुआबके साथ अथवा गिलोयके रस और शहदके साथ। रक्तार्श (बवासीर) में अनारके रसके साथ। इस तरह और अनुपानोंकी योजना करें। विशेष उपयोग पहली विधिमें लिखे अनुसार करना चाहिये।

सूचना—इस भस्मके सेवन-कालमें खटाईको बिल्कुल छोड़ दें।

तीसरी विधि—लोहेकी कड़ाहीमें शुद्ध शीशेका रसकर पलास मूलके डण्डेसे ४ प्रहर घोटते रहें अग्नि तेज देते रहनेसे लाल रंगकी भस्म तैयार होती है। (र० चं०)

मात्रा अनुपान और उपयोग—पहली विधिमें लिखे अनुसार।

वक्तव्य—श्री वैद्यराज सुखरामदास टी, ओझा इस प्रकारकी अनेक भस्म वर्षो तक बनाते रहते थे। वे कड़ाहीमें पलास या बड़के डंडेसे शीशेको

घोटकर बनाते थे। फिर घीकुंवारके रसमें खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बांधते थे। उनको सुखा सराव सम्पुटकर गजपुट देते थे। गजपुट देनेपर शीशा सजीव होता है। और कुछ नीचे राखमें चला जाता है। यदि कड़ाहीमें तवेसे ढककर ६ घण्टे अग्नि देवें तो शीशा सब कड़ाहीमें ही रह सकेगा। पुनः डण्डेसे घोट भस्मकर ऊपरकी विधि अनुसार गजपुट देवें। इस तरह ४० पुट तक शीशा सजीव होता रहता है। शीशा मृत होनेपर ६० पुट और दे देनेसे मुलायम शीशा भस्म बन जाती है।

यह भस्म मधुमेहमें आधसे १ रत्ती मक्खनके साथ १० दिन तक देनेसे मूत्रके साथ शक्करका जाना बन्द हो जाता है। फिर १० दिन छोड़कर पुनः १० दिन तक दें। मधुमेहके कई रोगियोंको यह भस्म दी है और परिणाम में अच्छा लाभ यहाँ पहुँचानेका अनुभव हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रदररोग, नेत्ररोग और कफज मेहपर भी सफलतासह प्रयोजित होती है।

(९) पारद भस्म

विधि—शुद्ध पारद एक तोलेको कपरौटी की हुई अँग्रेजी पक्की आतशी शीशी (Flask) में डालकर ऊपरसे ५ तोले एसिड सलफ्युरिक (गन्धकका तिजाब) डालें। शीशीको खुले मैदानमें सिलगते हुए कोयलोंकी अंगीठीपर धर दें। आधे घण्टे बाद शीशीके मुँहसे धुँआ निकलना बन्द होनेपर उठा लें, और ठण्डी होनेपर शीशीसे श्वेत रंगकी पारद भस्म निकाल लें। भस्म का वजन २ माशे बढ़ जाता है। (खू० चि०)

डाक्टरीमें इस भस्मको परसलफेट आफ मर्करी (Persulphate of mercury) कहते हैं। इसकी बनानेकी विधि रस कर्पूरमें देखें।

मात्रा—एक से चार चावल तक मुनक्कामें रखकर निगल जायँ। अथवा फीके दलिये (मिश्री अथवा नमक रहित) में रखकर निगल जायँ। दांतको भस्म लगेगी तो दांत निर्बल हो जायगा।

उपयोग—यह भस्म उपदंश (Syphilis) और कुष्ठको दूर करनेमें अति उपयोगी है। उपदंशमें ३ से ७ दिन और कुष्ठरोगमें १५ से २० दिन देनी पड़ती है। उपदंश दूर हो जानेके बाद भविष्यमें पारदका विकार कभी देखनेमें नहीं आया। उपदंशमें १ समय और कुष्ठके रोगीको दिनमें २ समय देनी चाहिए।

सूचना—(१) किसीको वमन, विरेचन हो, तो भय न मानें।

(२) जिनको मसूढे या दांतोंमेंसे पूय निकलता हो, उनको यह भस्म न दें, अन्यथा दाँत गिर जायगा।

(३) तिजाब शुद्ध लें। जल या तैल मिला हुआ न लेवें।

(४) दूध दहीसे बने हुए पेड़ा, बर्फी, कलाकन्द आदि पदार्थ उपयोगमें

न लें। घृतका सेवन खूब करें। फीका दलिया मात्र (थूली) और मूंगकी दाल खावें। नमक, मिर्च, खटाई न लें।

(५) यह भस्म अन्य धातुओंकी भस्मके साथ मिलानेमें उपयोगी नहीं है। कारण खटाई लगनेसे पारा पुनः मूल रूपमें आ जाता है। उपदंशके हजारों रोगियोको हमने दी है; किसीको हानि नहीं हुई।

(६) इस भस्मको चीनी मिट्टीके प्यालेमें डाल ऊपर जल भर दें। ३ घण्टे बाद जलको निकाल देवें। फिर ८-१० बार जल मिलामिलाकर धोवें, जिससे गन्धकके तिजाबकी अम्लता निकल जायगी। फिर भस्मको सुखा लेनेसे पीले रंगकी बन जाती है। इस पीत भस्मको ४ गुने मक्खनमें मिला कर मलहम बना लेवें। इसमेंसे रात्रिको सोनेके समय काचकी सलाईसे अञ्जन करनेसे नेत्रमें जल स्राव होना और रोहें कटने, दोनों विकार दूर हो जाते हैं।

पारद भस्म द्वितीय विधि—कूपीपक्व प्रकरणमें वर्णित पारद बुभुक्षित सरल विधि द्वारा बुभुक्षित किया हुआ एवं पूर्णचन्द्रोदय (शत गुण गंधक जारित) प्रकरणमें उल्लिखित अभ्रक सत्व ग्रासित पारद १० तोले लेकर कठगूलरके दूधमें घुटाई करें। ३ दिन घुटाई करनेके बाद उसका गोला बनालें पश्चात् १ मिट्टीके सम्पुटमें दोनों भागोंमें कठगूलरके दूधमें पिसी हुई असली हींगका मोटा लेप करके सुखा लें। पश्चात् सम्पुटके नीचेके पात्रमें २ तोला सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म बिछादें। इसपर ऊपर वाली पारद गोली रख दें। पुनः उसपर २ तोले सुवर्णमाक्षिक सत्वकी भस्म रखकर सम्पुट बन्दकर, कपड़मिट्टी कर दें। सपुटको सुखाकर ३० कण्डोंकी आंच द्वारा पुट लगादें। इससे भस्म हो जाती है। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

सूचना–यदि पारद वास्तवमें अग्निस्थाई व पक्षच्छिन्न होगया हुआ लिया है तो पुट देनेसे भस्म पूर्ण मात्रामें मिलेगी। ४ तोला वजन सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्मका भी शामिल रहेगा। अन्यथा पारद अधिकांशमें उड़ कर मात्र माक्षिकसत्व भस्म ही शेष रहेगी। वह पारद भस्म नहीं मानी जायगी। पूरे वजन वाली पारद भस्म मानी जायेगी।

मात्रा—१ चावलसे ½ रत्ती तक, मक्खन, मलाई, बादामके हलवेके साथ।

उपयोग—यह भस्म उत्तम रसायन वाजीकरण तथा वयःस्थापक तथा अनेक दुस्साध्य व्याधियोंको नष्ट करनेमें चमत्कारी गुणप्रद होती है।

(१०) सुवर्णमाक्षिक भस्म

विधि—शुद्ध सोना माखीको कुलथीके काढ़ेमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बांध, सूर्यके तापमें सुखावें। पश्चात् सरावसंपुट करके गजपुटमें फूंक दें। इस तरह अरण्डीके तैल, मठ्ठे और बकरेके मूत्रमें क्रमशः खरलकर एक-एक गजपुट देनेसे भी भस्म तैयार होती है। फिर भी बकरेके मूत्रके

३ पुट ज्यादा देनेपर भस्म विशेष लाभदायक बनती है ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार दूध, शहद, गुलकन्द, गिलोय सत्व त्रिफला, कुटकी, मक्खन मिश्री, या रोगानुसार अनुपानसे दें ।

अनुपान—१. मसूरिकापर कचनारकी छालके क्वाथके साथ देनेसे अन्तर्गत विष बाहर निकालता है ।
२. पाण्डु, हलीमक, कामलापर—शहद-पीपल या मूलीके रससे
३. स्वप्नदोष, जीर्णज्वर, मस्तकशूल पित्तप्रमेह और मूत्रकृच्छ्रपर मक्खन-मिश्री या शहद मिश्रीके साथ ।
४. वमनपर—जीरा, मिश्री और शहदके साथ ।
५. निद्रानाशमें—सोंठ और आंवलोंके मुरब्बेके साथ ।
६. वृद्धावस्थाकी निर्बलता, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु और क्षयपर गोदुग्धके साथ ।

गुणधर्म—यह भस्म पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार, नेत्रजलन, नेत्रकी लाली, वमन, उबाक, व्रण दोष, पित्त प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, शीर्षशूल, विषविकार, अर्श, उदर रोग, कण्डु, कुष्ठ, कृमि और अश्मरी आदि रोगोंको दूर करती है । कफपित्तविकृतिमें यह भस्म विशेष लाभदायक है ।

उपयोग—सुवर्णमाक्षिक, यह लोह ताम्रका सौम्य कल्प है । * सुवर्णमाक्षिक भस्म स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्द्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्तप्रसादक है । इसके योगसे रक्तप्रसादन होनेसे रक्ताणु सुदृढ़ होते और रक्त धातु सशक्त बनती है । लोहके अन्य कल्पोंमें जो उष्णता और तीव्रता आदि गुण हैं, वे इस भस्ममें नहीं है । यह कल्प अति सौम्य होनेसे कोमल प्रकृति, सुकुमार और अशक्त स्त्री-पुरुषोंके लिये निर्भय रूपसे उपयोगमें आता है ।

केवल पित्तविकृति अथवा कफपित्त संसर्गज विकृतिमें माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है । इसलिये इस भस्मका पित्तज शीर्षशूल, पित्तज अम्लपित्त

---

* सुवर्णमाक्षिकमें २ प्रकार है । १ ताम्र प्रधान; २ लोह प्रधान । ताम्र प्रधानको Copper Pyrites और लोह प्रधानको Iron Pyrites कहते हैं । लोह प्रधानसे ताम्र प्रधानका मूल्य चारगुना अधिक रहता है । ताम्रप्रधानको सौम्य ताम्र कल्प और लोहप्रधानको सौम्य लोह कल्प कह सकते हैं ।

ताम्रप्रधान सुवर्णमाक्षिक यकृत्, प्लीहा, वृक्क, तीनोंके लिये विशेष उपकारक है । उसके भीतर लौह तत्व भी सूक्ष्मांशमें मिला हुआ है ।

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन की कल्याण रसायन शालामें ताम्रप्रधान सुवर्णमाक्षिकका ही भस्म बनानेमें उपयोग होता है ।

पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुल्म, इन व्याधियोंपर अवस्था-भेद और अनुपान भेदसे उपयोग होता है ।

पित्तज शीर्षशूलमें सूतशेखरका भी उपयोग होता है, परन्तु सूतशेखर देनेमें मुख्य लक्षण भ्रम (चक्कर) होना चाहिये । सूतशेखर वातपित्तात्मक विकारोंमें उपयोगी होता है । परन्तु जिस शीर्षशूलमें उबाक, मुंहमें कड़वा-पन, कोई भी अच्छा प्रिय पदार्थ खानेमें रुचि न हो और वमन होनेपर शीर्षशूल कम हो जाना आदि लक्षण हों उसपर सुवर्णमाक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है । जीर्ण शीर्षशूलमें भी अच्छा इलाज हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं ।

बार-बार चक्कर आना, विचार करते-करते मन गुम हो जाना और चक्कर आना एवं सूर्यके तापमें फिरने, किसी भी उष्णवीर्य पदार्थके सेवन, जागरण, मगजके थोडे श्रम, शक्तिसे थोड़ा ज्यादा विचार होने आदि थोड़ी-थोड़ी बातोंसे चक्कर आ जाना, इन सब प्रकारके चक्करपर सुवर्णमाक्षिक भस्म देनी चाहिये । अनुपान रूपसे अनारका रस, मोसम्बीका रस, या अनार शर्बत आदिका उपयोग करें ।

नेत्रशोथ, लाली, नेत्रदाह ये सब अधिक परन्तु परिमाणमें वेदना कम, अथवा नेत्रके और दोष कम होनेपर भी भयंकर दाह होना, यहाँ तक कि रोगीको ऐसी इच्छा हो कि, नेत्रपर बर्फ बाँध दूं या शीतल जल छिड़कता ही रहूँ; इन सब लक्षणोंका कारण पित्तदोष ही है । वात अथवा कफकी प्रधानता नहीं है । ऐसे पित्ताभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द रोगमें सुवर्ण-माक्षिक भस्मका सेवन लाभदायक है । खाने और अंजन करने, दोनों रीतिसे उपयोगी है । इस तरह उपयोग करनेसे भली भांति रक्त-प्रसादन होता है । पित्तप्रधान जीर्ण नेत्ररोग (मोतियाबिन्दु, लिंगनाश और भांपणीके नीचे बड़ी-बड़ी फुन्सियाँ हो जाना और माँस बढ़ना, इन विकारों) को छोड़कर शेष नेत्ररोगोंमें माक्षिक भस्मका सेवन कराया जाता है । माक्षिक भस्मके साथ प्रवाल पिष्टी मिलाकर दिनमें दो बार देते रहने और रात्रिको सोते समय त्रिफला चूर्ण १-१ माशा शहदके साथ देते रहनेसे नेत्र-लाली और अन्य जीर्ण दोष शमन हो जाते हैं ।

आगन्तुक कारण क्रोध आदि, अति जागरण और अति गरम पदार्थके सेवनसे पित्तवृद्धि होकर रोगीके वेगकी वृद्धि हो जाती है । थोड़ी हलचल करनेपर घबराहट हो जाती हैं । इस पर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है ।

पित्त दोष दुष्टी होनेके पश्चात् उसका आश्रय, रक्त, रक्तवाहिनियाँ और हृदय, स्थान दुष्ट होते हैं । इन दोष. दूष्य और स्थान दुष्टीके कारण अनेक प्रकारके भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं । फिर जब ये रोग जीर्ण होते हैं;

तब हाथ पैर और मुँहपर शोथ आता है। यह माक्षिकके योगसे अच्छा हो जाता है। सुवर्णमाक्षिक हृद्य, स्तम्भन और रक्त-प्रसादन होनेसे, इन विकारों पर अच्छा कार्य करती है। यह पर्णबीजकी जातिकी औषधि है, परन्तु पर्णबीजमें बैचेनी लानेका गुण होनेसे, वह लेनेपर अनेकोंका मन खराब होजाता है और वमन हो जाती है। माक्षिक ऐसी न होनेसे वह शरीरमें ठहरती है, पचन हो जाती है और अपना हृदयकार्य अच्छी रीतिसे करती है।

रक्तमें विदग्ध पित्तमिश्रित होनेसे पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और द्रवत्व गुण बढ़ जाते हैं। इस हेतुसे रक्तवाहिनियोंकी त्वचा पतली हो जाती है। इस तरह रक्तपित्त जब रक्तमें उष्णता आदि गुण बढ़कर और रक्तवाहिनियों की अन्तस्त्वचा पतली होकर रुधिरवाहिनियां फूटती है, और उनमेंसे रक्त स्राव शुरू हो जाता है, तब वह आयुर्वेदके मतानुसार रक्तपित्त रोग कहलाता है। यह व्याधि अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग, दोनों ओरसे प्रवृत्त होती है। इस पर माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। इसके साथ प्रवाल पिष्टी, हल्दी और सोनागेरू मिश्रित करके देनेसे अति शीघ्र और अच्छा लाभ होता है, इस रोगमें केवल माक्षिकके सेवनसे अच्छी चिकित्सा होनेके भी अनेक उदाहरण मिले हैं। भोजनमें केवल दुग्धाशन कराना चाहिये विशेषतः बकरीका दूध अधिक हितकर है। माक्षिक अधो रक्तपित्तकी अपेक्षा उर्ध्व रक्तपित्तमें ज्यादा उपयोगी है।

आमाशय बढ़ने (आमाशय की अन्तस्त्वचा विकृत होने) एवं उदरमें व्रण होनेसे अम्लपित्त रोग हो जाता है। आयुर्वेदमें इन सबका अन्तर्भाव अम्लपित्तमें (मतान्तरमें उदरशूलमें) किया है। इन अम्लपित्तोंमें कर्कट ग्रन्थि और उदरव्रण, इन दोनोंको कम करके शेष अम्लपित्तमें माक्षिक भस्म उत्तम कार्य करती है। उदरकी आकृति बढ़नेसे होने वाले अम्लपित्तमें अपना स्तम्भक शामक और स्वादुगुण पहुँचाकर पित्तका नियमन करती है, और साम्यावस्थाको स्थापित करती है। अन्तर पिच्छल त्वचा विकृत होनेसे होने वाले अम्लपित्तमें माक्षिकके लवणत्व अंशका उपयोग होता है। उदरमें पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्डकी विकृति होनेसे उत्पन्न रोगमें माक्षिक भस्ममें रहे हुए लोह अंश और बल्यत्व गुणके कारणसे आकुञ्चन होकर तथा बलकी प्राप्ति होकर कार्य होता है। इनके अतिरिक्त अम्लपित्त ज्यादा बढ़ने, अथवा पित्तकी तीव्रता ज्यादा बढ़नेसे होनेवाली उदरपीड़ा अथवा शिरदर्द, जो वमन होनेपर कम हो जाता हो, उसपर सुवर्णमाक्षिक लाभदायक है। यदि वान्ति होनेपर भी अच्छा न लगना, और शूल अधिक होना, ये लक्षण हों, अर्थात् वातपित्तसंसर्गज दुष्टि हो, तो इसकी अपेक्षा सूतशेखर विशेष लाभदायक है।

अम्लपित्तमें कोई भी चिकित्सा चालू होनेके पहले अन्त: परिमार्जन (वमन आदि संशोधन) करना अच्छा है । यह अपनी प्राचीन पद्धति अनुसार या नूतन पद्धति अनुसार किया जाय, तो भी चल सकता है । अम्लपित्त अत्यन्त ज्यादा परिमाणमें बढ़ गया हो; और उसीसे उदरमें व्रण होकर रक्तवाहिनियां टूटकर वमन होने लगती हो, वमनमें रक्त आता हो, तो इस विकारमें सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी, गिलोय सत्व और सोनागेरू मिलाकर देना लाभदायक है ।

सुवर्णमाक्षिकको सर्वसामान्य रूपसे शक्तिवर्द्धक मानकरके भी उपयोग होता है । इसमें लोहका अंश होने और यह लोह सौम्य होनेसे माक्षिकमें शीतल शक्तिवर्द्धक गुण आया है । इस हेतु नाकमेंसे रक्त गिरने और रक्त गिरकर चक्कर आनेपर सुवर्णमाक्षिक अनन्तमूल, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ठके कषायके साथ दी जाती है ।

निर्बलता, ज्यादा विचार या मनोव्याघात, इनमेंसे किसी भी कारणसे भ्रम होता हो और चक्कर आता हो, इनमेंसे कभी कभी तो भ्रम अत्यन्तावस्था तक चला गया हो, इतने तक कि यह मनुष्य तो पागल हो गया है, ऐसा दूसरोंको भासता हो, ऐसे बढ़े हुए लक्षणोंमें भी सुवर्णमाक्षिक कूष्माण्ड के रसके साथ देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है ।

पैत्तिक-उन्माद रोगमें जब-तक रोग नहीं बढ़ा है, तब तक सुवर्णमाक्षिक का अच्छा उपयोग हुआ है, और उसे जटामांसी, नेत्रबाला और रक्तचन्दन कषायके साथ देनी चाहिए ।

शराबके अतियोग होनेसे मदात्यय व्याधि होकर चक्कर आने लगते है । वमन होना, वमनमें रक्त आना, नेत्रलाल हो जाना, दृष्टि मन्द होना, मंदाग्नि, निद्रानाश, मुँह और सारा शरीर निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं । इस स्थितिमें माक्षिक भस्म कुटकी, पुनर्नवा और गिलोय के क्वाथके साथ देनेसे लाभ होता है ।

रक्तार्श या पित्तार्शमें रक्त बहुत चले जानेसे सम्पूर्ण शरीरकी रक्तवाहिनियां तड़तड़ उड़ने लगती है; शरीर निस्तेज हो जाता है; कितनों ही को शोथ आ जाता है; ऐसे समयपर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है । इस भस्मके सेवनसे रक्तकी उष्णता और पतलापन कम हो जाता है । अनुपानमें मिश्री, नागकेशर, तेजपात और इलायची देवें ।

अपचन-जनित विसूचिकामें वमन वन्द करनेके लिये माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है । परन्तु माक्षिकका उपयोग विसूचिकाकी विषघ्न औषधिके साथ करना चाहिये । सुवर्णमाक्षिक भस्म और सूतशेखरका मिश्रण बार-बार अदरकके रसके साथ चटाया जाता है ।

विसूचिका रोग शमन हो जानेपर जो निर्बलता रह जाती है तथा अवशिष्ट लक्षणोंमें विशेषत: चक्कर, बार-बार वमन होना, कभी-कभी पतले दस्त हो जाना आदि लक्षण रहनेपर माक्षिक भस्म और शंख भस्म मिश्रित कर आमके या आँवलेके मुरब्बेके साथ देनी चाहिये ।

सुवर्णमाक्षिक स्वादु, रसोत्पादक, तिक्त और बल्य है। इस बल्यत्व गुण के कारणसे रस आदि धातुओंकी योग्य परिमाणमें उत्पत्ति कराती है । इस हेतुसे यह रसायन भी है ।

बस्तिके नियामक स्नायुओंकी अशक्तिसे बस्ति (मूत्राशय) में जितना चाहिये उतने परिमाणमें मूत्र भरा नहीं रह सकता; बूंद-बूंद टपकता रहता है । इस विकारमें माक्षिक और शिलाजतु मिलाकर उपयोग होता है । पेठा, अश्वगंधा और मंजिष्ठाके साथ देना चाहिये ।

वातज या वातपित्तज हृद्रोगमें हृदयेन्द्रियकी चंचलता, बार-बार घबराहट उबासी आना, प्रस्वेद, दाह, सर्वाङ्गमें कम्प आदि लक्षण होनेपर सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये । यह भस्म हृदयपर शक्तिदायक होनेसे जीर्ण हृद्रोगमें भी लाभदायक है । हृद्रोगोंमें हृदयके परदों (Valves) की विकृति मात्रमें यह कुछ भी उपयोगी नहीं है । शेष सब वातज और वातपित्तात्मक रोगोंमें हितकर है ।

कंठशालूक (गलेकी गाँठ Tonsils)-लालापिण्ड(Salivary Glands) कण्ठ इत्यादि भागोंमें विकार होनेपर वेदना, शोथ, लाली, दाह आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो माक्षिक भस्म दी जाती है यदि तीव्र ज्वर हो, तो माक्षिक भस्म नहीं देनी चाहिये, अन्यथा हानि होती है ।

शीतज्वरमें अनेक दिनों तक क्विनाइनका सेवन किया हो, क्विनाइन सेवन करनेपर प्लीहावृद्धि हुई हो; फिर प्लीहावृद्धिसे उदर बढ़ गया हो; शरीरमें शोथ, घबराहट, वमन आदि लक्षण भी उपस्थित हुए हों; तो ऐसी स्थितिमें सुवर्णमाक्षिकका अच्छा उपयोग होता है । क्विनाइनके दुष्ट परिणामको शमन करनेके लिये यह उत्तम औषधि है । क्विनाइनके अति योग या क्विनाइन सहन न होनेसे उत्पन्न होने वाले निद्रानाश, बधिरता, नेत्रदाह; मस्तिष्ककी निर्बलता, यकृद् विकार, मूत्रमें पीलापन, मूत्रमें दाह आदि लक्षणोंको शमन करनेमें इसका बहुत अच्छा उपयोग होता हैं । यह कार्य औषधि प्रभावसे होता है ।

हृदयेन्द्रियकी व्याधिसे उत्पन्न शोथ या शीतज्वरके पश्चात् फीकापन होकर आई हुई पाण्डुता और पाण्डुतासे उत्पन्न शोथ या अन्य कारणसे पाण्डुता आकर आई हुई सूजन, साथ-साथ घबराहट, चक्कर, भ्रम, शीर्षशूल आदि लक्षण होनेपर माक्षिक अच्छी उपयोगी है ।

पित्तोत्पादक, तीव्र, दाहकारक, गर (अन्तरोत्पन्न विष) के कारण या विरुद्ध अन्नपानके कारण पित्तप्रकोप अधिक होनेपर माक्षिकका बहुत अच्छा उपयोग होता है; परन्तु गरघ्न चिकित्सा (संशोधन) करनेके पश्चात् माक्षिक देनी चाहिये।

सर्वाङ्गमें बारीक बारीक फुन्सियाँ होना, खाज चलना, सर्वाङ्ग, नाखून, त्वचा, ओष्ठ आदि निस्तेज होजाना, इस तरह अनेक समय रक्तस्रावके पश्चात् या अतिसारके पश्चात् ज्यादा अशक्ति आकर त्वचापर छोटी-छोटी फुन्सियां होना; त्वचा रूक्ष और कठोर होकर उसमें खाज चलना आदि विकारोंपर सुवर्णमाक्षिकका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान अनन्तमूलका क्वाथ दें। इस चर्मरोगमें ताप्यादि लोहका भी उपयोग होता है।

मूत्रातिसार (मधुमेहका पूर्व लक्षण विशेषरूपमें न होनेपर उत्पन्न हुआ मेह समान विकार) जिसमें मूत्र पीला, त्वचा पीली और फीके नाखून आदि लक्षण होते हैं; साथ-साथ दिन रात ज्यादा परिमाणमें और अधिक बार पेशाब होता है। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमाक्षिक भस्म अति लाभदायक है। जामुनके रसके साथ देनी चाहिये और पित्तज प्रमेहोंपर अनुपान रूपसे गिलोय सत्व देना चाहिये।

शुक्रक्षय या रजःक्षयके विकारमें वंगभस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता हैं। त्रासदायक प्रदर विकारमें भी माक्षिक मधुकाद्यवलेह या शर्बत बनफशाके साथ देनेसे उत्तम कार्य होता है। यदि रुग्णा अति कृश होगई हो, तो गोदन्ती भस्म भी साथमें मिला देनी चाहिये।

त्वचापर कालापन आकर उसपर छोटी छोटी फुन्सियाँ होजाना, हाथ पैरकी अँगुलियाँ मोटी होकर शून्य-सी हो जाना; उनका स्पर्शज्ञान नष्ट हो जाना शरीरपर लाल-काले चकते उठना; ऐसे विकारमें सुवर्णमाक्षिकभस्म गंधक रसायनके साथ मिश्रित करके देनी चाहिये। अथवा सुवर्णमाक्षिक मात्र तुलसीके रसमें देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तज कामला रोगमें उत्तम कार्य करनेवाली औषधि है। सब प्रकारके कामला रोगोंपर इस औषधिका उत्तम उपयोग होता है। प्रवाल भस्म, शुक्तिभस्म और सुमर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रणकर मूलीके रसके साथ देनेसे अति उत्तम कार्य होता है।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पाचक और रंजक पित्त, ये दोष, रस, रक्त, मज्जा और शुक्र, ये दूष्य; शिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत्, अन्त्र, बस्ति, अन्तःस्रावक पिण्ड (Ductless Glands), त्वचा, अंडकोश और मनोदेश, ये स्थान, इन सबपर लाभ पहुँचाती है। (औ. गु. ध. शा.)

आक्षेपक वातके झटके बार-बार आते हों, उनके साथ वमन भी होती

हो जो आक्षेप दूर होनेपर भी रह जाती है। उसपर सुवर्णमाक्षिक और सितोपलादि मिलाकर आमके मुरब्बाके साथ दिनमें ४ बार ३-३ घण्टेपर देनेसे वमनकी सत्वर निवृत्ति होती है।

अधिक धूम्रपान, उष्ण आहार अथवा अधिक नेत्र श्रमके हेतुसे नेत्रकी वातनाड़ियां दूषित होती है। फिर दृष्टि मन्द हो जाती है। किसीको नेत्रमें दाह होने लगता है, किसीको एक वस्तु ही दो वस्तुएँ भासती है। इस विविध दृष्टिविकृतिपर सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण १ माशा, घी २ माशा और शहद ३ माशे मिलाकर प्रातःकाल और रात्रिको सेवन करानेसे थोडे ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

सूचना—इस भस्ममें चमक नहीं रहनी चाहिये। सूर्यके तापमें देखनेपर चमक दीखे, तो कच्ची समझकर पुनः १-२ पुट दें।

नूतन और तीव्र ज्वरमें इस भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। इस भस्मके सेवन करने वालोंको अम्ल विपाक वाले पदार्थ, कबूतरका माँस, कुलथी, नये चांवल और खट्टे पदार्थोंका त्याग करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध सुवर्णमाक्षिक, बकरेका मूत्र, मट्ठा, गोघृत और बिजौरेका रस १-१ सेर लेवें। सुवर्णमाक्षिकको कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ाकर तेज अग्नि देवें। और क्रमशः बकरेके मूत्र आदिको मिलाकर जला डालें। फिर भस्मको ढककर ६ घण्टे तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर भस्मको निकाल अरण्डीके तैलके ३ पुट देनेसे भस्म सुन्दर और मुलायम बन जाती है।

मात्रा और उपयोग— पहिली विधिके अनुसार।

(११) मण्डूर भस्म।

विधि—शुद्ध मण्डूरको चौगुने त्रिफलाके क्वाथके साथ कड़ाहीमें मिला कर पकावें। त्रिफलाका क्वाथ सूख जानेपर भस्म हो जाती है। जब मण्डूर और कड़ाही दोनोंका रंग लाल हो जाय तब आग देना बन्द करें। स्वांग शीतल होनेपर भस्मको निकाल, गोमूत्र और घीकुंवारके रसके ३-३ पुट देनेसे विशेष गुणकारी और मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें दो बार पीपल-शहद, आमका मुरब्बा, कुमार्यासव या अन्य अनुपानके साथ। बालकोंको माताके दूधमें।

शोथरोगमें—मूत्रल औषधिके साथ।

त्रिदोषज शूलपर—त्रिफलाका चूर्ण, घृत और शहदके साथ।

गुणधर्म—मण्डूर भस्म कसैली और शीतवीर्य है। पाण्डु, शोथ, प्रमेह, संग्रहणी, हलीमक, कामला और कुम्भकामलाका नाश करती है।

उपयोग—मण्डूर भस्म बालक और कमजोर शरीर वालेको लोहभस्म

की अपेक्षा विशेष हितकारी है। छोटे बालकोंकी निर्बलता, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मिट्टी खानेसे होने वाला पाण्डु, स्त्रियोंके गर्भाशय और बीजकोषोंकी निर्बलता, युवावस्था होनेपर भी मासिकधर्म न आना आदि विकृतियाँ इसके सेवनसे नष्ट होती हैं। एवं यह हलीमक, कामला और कुम्भकामलाको भी दूर करती है।

मण्डूर शीतल, सौम्य और कषाय गुणवाला है। जो गुण लोहमें हैं, वे ही गुण मण्डूरके भीतर न्यून अंशमें रहे हैं। मण्डूरभस्म लोहभस्मकी अपेक्षा शरीरमें सत्वर पचन होती है और सम्मिलित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मण्डूर (लोह किट्ट) का किट्टत्व अनेक वर्षों पर्यन्त रह जानेसे इसका रक्तपर विशेषतः रक्ताणुपर सत्वर अच्छा परिणाम होता है। यह भस्म छोटे-छोटे बच्चोंके लिये अधिक उपयोगी है; यह इसका विशेष गुण है।

मण्डूरके योगसे रक्तमें रक्ताणु ज्यादा उत्पन्न होते हैं। अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंसे रक्तके रक्ताणु कम होनेपर जब रक्त फीका बन जाता है और त्वचाका वर्ण पाण्डु हो जाता है तब पाण्डु रोग कहलाता है। इस रोगमें रक्ताणुओंकी न्यूनता हो जानेसे हृदयके वेगकी वृद्धि हो जाती है। इस कारणसे नाड़ी तेज हो जाती है। नाड़ीके ठोके ज्यादा होते हैं। कारण जितने रक्ताणु रक्तमें होंगे, उतने ही सारे शरीरमें शीघ्र-शीघ्र फैलते रहेंगे। शारीरिक इन्द्रियों और घटकोंको इन रक्ताणुओंका सान्निध्य प्राप्त होता रहे और उसके द्वारा प्राणतत्वकी पूर्ति होती रहे, इसी कारणसे पाण्डु रोग में नाड़ी तेज हो जाती है। इसलिये रक्ताणुओंकी वृद्धि करके इस विकृति को दूर करना चाहिये। यह कार्य आयुर्वेदके मतानुसार लोहभस्म अथवा मण्डूरके योगसे रंजक पित्त सम्यक् बनकर होता है। किन्तु आधुनिक शास्त्री कहते हैं कि, मज्जा धातु भी रक्ताणुओंको बढ़ानेके लिये उत्तजित होनी चाहिये। उससे भी रक्ताणु उत्पन्न होते हैं। कुछ भी हो; मण्डूर रक्ताणुओंको बढ़ाता है, यह कथन बिल्कुल सत्य है। पैत्तिक पाण्डु रोगमें इस भस्मका विशेष उपयोग होता है। इसके कषायत्व गुणके कारण नाड़ी का वेग भी मर्यादामें आ जाता है और पाण्डुता कम हो जाती है। पाण्डु रोगपर कोई भी औषधि लें, उसमें न्यूनाधिक परिमाणमें लोह अथवा विशेषतः मण्डूर भस्म अवश्य होती है।

कामला विकारमें पित्त लक्षण ज्यादा होनेपर मण्डूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है। हाथ, पैर, नेत्र और मूत्रमें पीलापन, मूत्रेन्द्रियके चारों ओरकी त्वचा काली-सी होना, मल सफेद मैले रंगका होना इत्यादि लक्षण हों तो, मण्डूर भस्म अवश्य देनी चाहिये। अनुपान कुमार्यासव या मूलीका रस और मिश्री। इस भस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिला देनेसे और भी अच्छा कार्य होता है।

पाण्डुरोग जीर्ण होने अथवा बढ़ने पर एवं कुम्भ कामला अधिक दिन रहनेपर सर्वांग शोथ उत्पन्न होता है। त्वचाके नीचे जलका संचय होता है। इसमें रक्ताणुओंकी न्यूनता ही कारण है। यह शोथ नेत्र, उदर, गाल और हाथ-पैरके ऊपरके भागमें होता है। शोथपर जोरसे अंगुली दबानेसे खड्डा होजाता है। वह बहुत समय तक नहीं भरता। ऐसे रोगमें पाण्डु रोगके लक्षण होनेपर अथवा पाण्डुता कारण होनेपर मंडूरभस्म अति उत्तम कार्य करती है। मंडूरके सेवनसे रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। रक्ताणु बढ़नेपर हृदयकी गति नियमित और बलवान् बनती है, जिससे रक्तका पतलापन कम होकर त्वचाके नीचे संचित हुआ जल रक्तमें शोषित हो जाता है और शोथका शमन होजाता है। यह शोथ कामलाके पश्चात् भी हो सकता है। कामला जब ज्यादा दिन तक रह जाता है तब पाण्डुरोगके समान शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्थामें मंडूर भस्मके साथ पुनर्नवा और शिला-जीतका उपयोग अति हितकर है।

कामला रोग अधिक दिन टिकनेपर सारे शरीरमें शुष्कता आ जाती है, त्वचा कठोर काली-सी हो जाती है, हाथ पैरोंमें स्थान-स्थानपर त्वचा फट जाती है, उसे कुम्भकामला कहते हैं। उसपर भी मण्डूरका उत्तम उपयोग होता है। यकृत्के अनेक विकारोंमें कामला उत्पन्न हो जाता है। यकृत्के माँसार्बुदसे कुम्भकामला हुआ हो तो मण्डूरकी अपेक्षा ताप्यादि लोह, ताम्र-भस्म और वंगभस्मका ज्यादा उपयोग होता है। यथार्थमें तो यह प्रकार साध्य होना अति दुष्कर है।

पाण्डु रोगके लाघरक, आलस, पालिक, कुम्भस आदि अनेक प्रकार हैं। इन सबपर न्यूनाधिक लक्षणोंके उपस्थित होनेपर मंडूर भस्मका उपयोग होता है। पाण्डुरोगमें जब त्वचाका वर्ण हरा, श्याम, पीला, काला होकर बल उत्साह नष्ट हो जाता है, आलस्य, मन्दाग्नि, अरुचि, क्वचित्, दुर्गन्ध युक्त वमन, दाह, तृषा, भ्रम, चक्कर, नेत्रपर बोझ-सा लगना, सूक्ष्म ज्वर, पौरुष कम हो जाना, अंग टूटना, आदि लक्षण हो जाते हैं, तब हलीमक कहलाता है। इस रोगमें भी मंडूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

तरुण स्त्रियोंके हारिद्रक (पाण्डु) रोगमें मण्डूरका उत्तम उपयोग होता है। यदि यह विकार मानसिक कारणोंसे हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये। अन्य कारणोंसे हो तो लोहभस्म अथवा मण्डूर भस्म योग्यतानुसार देना चाहिये।

छोटे बच्चोंको यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि रोग होनेपर उस रोगकी नाशक योजनाके साथ शक्तिवर्द्धक और रक्तवर्द्धक रूपसे मंडूर भस्मका उपयोग करना चाहिये। मंडूर भस्म मात्र देनेकी अपेक्षा लघुमालिनी वसंतके साथ देना विशेष हितकर है। फुफ्फुसावरणके जीर्ण विकारमें पाण्डुता विशेष

होनेपर भी लघुमालिनी और मंडूरमिश्रण विशेष लाभदायक होता है।

बालकोंके अस्थिवक्रता रोगमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व के साथ मण्डूर भस्म देना विशेष लाभदायक है। इस मिश्रणका २-२ मासके बच्चोंके लिये भी उपयोग हुआ है।

बालकों और स्त्रियोंको मिट्टी खानेसे होनेवाले पाण्डुरोगकी उत्पति मिट्टी आँतोंमें संचित हो जानेसे होती है। इस विकारमें मंडूर भस्म लाभदायक है। पहिले मिट्टीका विरेचन करानेके पश्चात् मण्डूर भस्म देनी चाहिये। पित्तात्मक और कफात्मक दोनों प्रकारके रोगोंपर इसका उपयोग होता है।

कितनी ही लड़कियोंकी आयु बड़ी होनेपर अङ्ग नहीं भरता, और न रजोदर्शन होता है, चेहरा और सर्वाङ्ग निस्तेज रहता है, गाल कुछ सूजेसे रहते हैं और सूक्ष्म ज्वर आता रहता है इत्यादि लक्षण किसी एक रोगके कारणसे नहीं होते। इसके अनेक कारण हैं।

(१) कन्याको बाल्यावस्थामें अति कमजोर रहना।
(२) मृद्धस्थि या देहको निर्बल बनाने वाला प्राकृतिक रोग।
(३) अतिसार, संग्रहणी आदिमेंसे अन्त्रकी कोई चिरव्याधि।
(४) यकृत्-प्लीहाके रोग।

इत्यादि कारणोंसे रोग हो जानेपर उनका अधिक त्रास या प्रादुर्भाव उस कालमें न हुआ हो, प्रथम व्याधिमात्र हो जानेसे धातुक्रिया एक समय अशक्त और विकृत् हुई हो, जिसके परिणामस्वरूप निर्बलता एक समान टिकी हों, संक्षेपमें पूर्व विकारके परिणामके हेतुओंसे रक्त जितना सुदृढ़ चाहिये उतना न हुआ हो, इनमेंसे एक या अनेक हेतुओंसे लड़कीका अंग पुष्ट नहीं बनता एवं स्त्री-बीजकोषों और गर्भाशय आदि अवयवोंका योग्य विकास न होनेसे रजोदर्शन नहीं होता। इस वस्तु स्थितिके लिये अन्य भी कारण हो सकते हैं। यदि उपरोक्त कारण हों, तो मण्डूरको त्रिफला और घृतमें मिला पश्चात् शहद मिलाकर देनी चाहिये।

शीतसह ज्वर अथवा विषमज्वर या अन्य प्रकारका ज्वर अनेक दिनों तक आता रहनेसे पाण्डुता उत्पन्न हुई हों, उसपर मंडूरका उत्तम उपयोग होता है।

तीव्र पाण्डु रोगका प्रारम्भ प्रायः ज्वर आकर होता है। क्वचित् साथ-साथ ज्वर भी बहुधा एक समान रहता है, वमन होती है, अनेकोंको एक समान पतले-पतले दस्त होते रहते हैं, तथा चेहरा निस्तेज, श्वेत फीके रंग का हो जाता है। इस विकारमें मंडूरका उपयोग होता है। इस अवस्थामें मण्डूरके साथ प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व या अमृतारिष्ट देना चाहिये।

ज्यादा रक्तस्राव होनेपर आई हुई पाण्डतामें मंडूर भस्मका उपयोग माक्षिक भस्मके साथ किया जाता है। रक्तस्रावके समान ज्यादा रजःस्राव

हो जाने या प्रसूतावस्थामें अधिक रक्तस्राव हो जानेसे पाण्डुता आई हो, तो भी मंडूरका उपयोग करना चाहिये; विशेषतः पाण्डुता और शोथ एक साथ होनेसे मंडूरका अच्छा उपयोग होता है ।

कृमिजन्य पाण्डुरोगमें पहले अजवायनका फूल (थाईमल) और कर्पूर के समान कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये, पश्चात् मंडूर भस्म अकेली या त्रिफलाके साथ देनी चाहिये ।

रक्तका परिणाम न्यून हो जाने या रक्तमें रक्ताणुओंका ह्रास हो जाने से अनेकोंकी मानसिक स्थिति विलक्षण हो जाती है । वे अधिक विचार नहीं कर सकते स्वभाव क्रोधी और संशयी बन जाता हैं । थोड़ा-सा भी इच्छाविरुद्ध कार्य होनेपर सहन नहीं होता । मस्तिष्क और नेत्रोंमें निर्बलता आ जाती है । बेहोशो या जड़ता रहती है । ऐसी स्थितिमें मंडूर भस्म देने से उत्तम कार्य होता है ।

मंडूर भस्म रञ्जक पित्तदोष, रक्त, मांस, मज्जा, ये दूष्य; तथा यकृत्; प्लीहा, फुफ्फुस, हृदय और अग्न्याशय ये स्थान; इन सबपर विशेष लाभ पहुँचाती है । (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध मंडूर ३२ तोले लेकर १२८ तोले गोमूत्रमें पचन करें । सूखा चूर्ण हो जानेपर ६४ तोले गोदुग्ध मिलाकर पचन करें । फिर कड़ाहीमें मंडूरको मिट्टीके तवेसे ढककर ६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनेसे मंडूर भस्म तैयार होती है । इस भस्मको "क्षीरमण्डूर" भी कहते हैं ।(वृ०मा०)

मात्रा और उपयोग—उपर लिखे अनुसार । यह भस्म परिणाम शूलके लिये विशेष उपकारक है ।

सूचना—मण्डूरसे किसीको उबाक या वमन हो जाय, तो सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ मिलाकर देनेसे दोष शमन होकर गुणकी वृद्धि होती है ।

तीसरी विधि—उपरोक्त मंडूर भस्मको त्रिफलेके क्वाथकी ३, गोमूत्र की ३, घीकुंवारके रसकी ४ और पंचामृत औषध (गिलोय, मूसली, सोंठ, गोखरू और शतावरी) के क्वाथकी ७ भावना देवें । प्रत्येक भावनाके अन्त में गजपुट देवें । इस तरह १७ भावना देनेसे उत्तम प्रकारकी मंडूर भस्म तैयार होती है ।

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक, शहद और पीपलके साथ ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे पाण्डु, गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, आमवृद्धि, सूतिकारोग, कृमिरोग, अरुचि, श्वास, कास, रक्तकी निर्बलता, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, कुम्भकामला, सूजन, आँतोंकी निर्बलता, धातुक्षीणंता और हृदय रोग दूर होते हैं । इसे स्त्रियों और बालकोंको निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं । विशेष विवेचन प्रथम विधिके साथ । यह प्रथम विधिकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है ।

(१२) मण्डूरमाक्षिक भस्म

विधि—शुद्ध मंडूर और शुद्ध सुवर्णमाक्षिक २०-२० तोले मिला गोमूत्र में १२ घण्टे खरलकर टिकियाएं बांधकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर सराव संपुट करके गजपुट देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल पुनः गोमूत्रमें खरल करके गजपुट देवें। इस तरह ३ गजपुट देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है। इस भस्मको अनेक वैद्य "भौम मण्डूर" भी कहते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद, दूध-मिश्री या अनारके शर्बतके साथ।

उपयोग—यह भस्म सगर्भा स्त्रियोंका पीलापन, पित्ताधिक संग्रहणी, पांडु, कामला, परिणाम शूल, शिरदर्द आदिको दूर करती है। जिनको मंडूर मात्र अनुकूल रहता हो उनके लिये और सगर्भा स्त्रियोंके लिये यह भस्म विशेष उपयोगी है। इस भस्ममें सुवर्णमाक्षिक और मण्डूर दोनोंके गुण मिश्रित अवस्थित हैं।

(१३) अभ्रक भस्म

प्रथम विधि (सहस्रपुटी अभ्रकभस्म)—शुद्ध धान्याभ्रकको निम्न ७२ औषधियोंमेंसे जो-जो मिल जायें, उनकी १६-१६ भावनायें देकर १००० पुट पूरे करें। प्रत्येक भावनाके अन्तमें छोटी-छोटी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा संपुट करके गजपुट दें। इस औषधियोंके अतिरिक्त किसी रोग विशेषको शमन करने वाली औषधियोंकी भावना देनी हो, तो भी हो सकता है। यदि रसायन गुणके लिये अभ्रकभस्म तैयार करना हो, तो भावना देने की औषधियोंमें तीक्ष्ण और लेखन गुणवाली औषधियोंको कम लें और विरेचक औषधियोंकी भावना भी अधिक नहीं देनी चाहिये।

आकका दूध, थूहरका दूध, बड़की जटाका क्वाथ, घी कुंवारका रस, एरंडीके पत्तोंका रस, नागरमोथाका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, छोटी कटेलीका क्वाथ, बड़ी कटेलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, भांगका क्वाथ, कुकरोंधाका स्वरस, सहदेईका रस, नागबलाका क्वाथ, अतिबलाका क्वाथ, खिरैंटीका क्वाथ, तुलसीका रस, शालपर्णीका क्वाथ, पृश्निपर्णीका क्वाथ, कसोंदीके पत्तोंका स्वरस, अरणीकी छालका क्वाथ; बेलके पत्तोंका क्वाथ, देवदारूका क्वाथ, कालीमिर्चका क्वाथ, अदरकका स्वरस, पीपलका क्वाथ, चित्रकमूल का क्वाथ, इन्द्रायणकी जड़का क्वाथ, लोधका क्वाथ, कुटकीका क्वाथ, जामुनकी छालका क्वाथ, आंवलेका स्वरस, हरड़का क्वाथ, बहेड़ोंका क्वाथ, अड़ूसेका स्वरस, तेंदूकी छालका क्वाथ, सतवनकी छालका क्वाथ, धतूरेके पत्तोंका स्वरस, सफेद सरसोंका क्वाथ, अपामार्गका क्वाथ, मौलसरीकी छाल का क्वाथ, भांगरेका स्वरस, गोदुग्ध, अगस्त्यके पत्तोंका रस, बड़ी तोरईका रस, गोमूत्र, पाढ़लका क्वाथ, तालीस पत्रका क्वाथ, केलेके खम्भेका रस.

बकरेका रक्त, मूसलीका क्वाथ, असगन्धका क्वाथ, दूर्वाका क्वाथ, देवदाली पंचाँगका क्वाथ, मछेछी (मत्स्याक्षी) का रस, मकोयका रस, पुनर्नवाका रस, शंखपुष्पीका रस, नागरबेलके पानोंका रस, खैरकी छालका क्वाथ, ब्राह्मीका रस, जटामांसीका क्वाथ, धमाशेका क्वाथ, अमलतासकी फली का क्वाथ, आकाश बेलका क्वाथ, चमेलीके पत्तोंका क्वाथ, काले जीरेका क्वाथ, गोरखमुण्डीका क्वाथ, मूषाकर्णीके पत्तोंका स्वरस, भारंगीका क्वाथ, शतावरीका रस, विदारीकन्दका रस, इन ७२ औषधियोंमेंसे जो-जो मिल जायं, इनके पुट १००० पर्यन्त दें। इन औषधियोंके अतिरिक्त अन्य रोग-नाशक औषधियोंका भी पुट दे सकते हैं, प्रतिकूल औषधियोंका पुट नहीं देना चाहिये।

सूचना—गजपुटमें गोबरी कम डाली जायगी, तो २००-४०० पुट तक भी अभ्रककी चमक नहीं जाती और अग्नि अच्छी तरह देनेपर केवल ७ पुटोंमें ही अभ्रककी भस्म निश्चन्द्र हो जाती है।

१—मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ समय।

अनुपान—१-प्रदरमें सोनागेरु २ रत्ती और गिलोयसत्व ४ रत्तीके साथ ऊपर चांवलोंका धोवन पिलावें।

२-पित्तप्रकोपमें—सोनागेरू, गिलोयसत्व और शक्करके साथ देकर मिश्री मिला हुआ दूध पिलावें। या प्रवाल पिष्टी और गिलोयसत्वके साथ दें।

३-पित्तप्रधान प्रमेहोंपर—सोनागेरू, गिलोय सत्व, पीपल और शहदके साथ या गिलोय स्वरस और मिश्रीके साथ।

४-नेत्रोंकी निर्बलतामें—त्रिफलाका चूर्ण और शहदके साथ।

५-श्वास, कास, कफवृद्धि, जीर्णज्वर, भ्रम, प्रमेह, संग्रहणी, पाण्डु, क्षय, विषविकार, कामला और गुल्ममें—पीपल, शहदके साथ।

६-क्षय, पाण्डु संग्रहणी, शूल, आम, कुष्ठ, श्वास, प्रमेह, कास, मन्दाग्नि और उदर व्यथापर—बायविडङ्ग और त्रिकटुके साथ।

७-२० प्रमेहोंपर—शिलाजीत और शहद, पीपल अथवा हल्दी, पीपल और शहदके साथ।

८-क्षयपर—आध रत्ती सुवर्णके वर्क और सितोपलादि चूर्ण या च्यवन-प्राशावलेह अथवा सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ।

९-धातुवृद्धिके लिये—सुवर्णके वर्क या चांदीके वर्क और आँवलोंके मुरब्बेके साथ या लौंग और शहदके साथ।

१०-रक्तपित्तपर—हरड़ और शक्कर, या इलायची और मिश्रीके साथ।

११-क्षय, पाण्डु और अर्शपर—त्रिकटु, त्रिफला, चातुर्जात, मिश्री और शहदके साथ।

१२-प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र—इलायची, गोखरू, भूमि आंवला और मिश्रीके साथ देकर ऊपर गोदुग्ध पिलावें।

१३–जीर्णज्वरमें—गिलोय सत्व और मिश्री अथवा शहद-पीपल ।
१४–अर्शपर–नागरबेलके पानमें भिलावा और अभ्रकभस्म डालकर खिलावें।
१५–वातरोगमें—सोंठ, पुष्करमूल, भारंगमूल और असगन्धके चूर्ण तथा शहदके साथ ।
१६–पित्तरोगमें—गोदुग्ध और मिश्री या चातुर्जात और मिश्रीके साथ ।
१७–कफरोगमें—कायफल, पीपल और शहदके साथ ।
१८–शुक्रस्तम्भनके लिये—भांगके साथ ।
१९–रक्त, मांस और अन्य धातुओंकी निर्बलतामें—लोहभस्म और शहद पीपलके साथ ।
२०–संग्रहणीमें—अनार शर्बत या कुटजादि अवलेहके साथ ।
२१–कफज्वर और कासपर—अभ्रकभस्म, शृङ्गभस्म, मुलहठी और सितोपलादि मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ बार ।
२२–नूतन कफकासपर—अभ्रकभस्म,शृङ्गभस्म और लवंगादि चूर्णके साथ।

गुणधर्म—अभ्रकभस्म कषाय, मधुर, शीतल योगवाही, आयुवर्द्धक और धातुवर्द्धक होनेसे त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, उदरग्रन्थि, विष और कृमि आदि रोगोंको दूर करती है, शरीरको दृढ़ बनाती है और वीर्यकी वृद्धि करती है। इसके सेवनसे युवावस्थाकी प्राप्ति होती है; और सौ स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसके सेवन करने वालोंके पुत्र दीर्घायु और इन्द्र सदृश पराक्रमी होते हैं; तथा अकाल मृत्यु की भीति भी दूर होती है।

इनके अतिरिक्त यह क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, शूल, आम, श्वास, अरुचि, दुर्धर कास, मन्दाग्नि, उदर व्यथा, कामला, ज्वर, गुल्म, अर्श आदि रोगों को अनुपान भेदसे दूर करती है।

उपयोग—अभ्रक भस्म वातवाहिनी नाड़ियोंमें क्षोभ या निर्बलता, श्वास, उरःक्षत, क्षय (Phthisis) की प्रथमावस्था, मानसिक दुर्बलता, अपस्मार, उन्माद, हृद्रोग (Heart Disease) पुरानी खाँसी, प्रसूति रोग, पाण्डु रोग धातुक्षीणता, संग्रहणी और ज्वर आदि सब रोगोंमें सफलतापूर्वक लाभ पहुँचाती है।

आनन्दकन्द सप्तमोल्लासके अन्तमें अभ्रकके गुणधर्मके सम्बन्धमें लिखा है कि :—

षड्रसस्सर्वरोगघ्नस्त्रिदोषशमनः परः ।
वीर्यायुष्यबलप्रज्ञाकान्तिरूपविवर्धनः ।।
वपुर्दार्ढ्यं स्थैर्ययुक्तो वलीपलितमृत्युहा ।
रुच्यो वृष्यो लघुश्शीतो मेध्यस्निग्धो रसायनम् ।।
अभ्रकं दीपनं ग्राहि श्रेष्ठं पारदबन्धनम् ।
पक्षजित्सूतराजस्य भस्मीभूताभ्रसत्वकः ।।

अभ्रस्य पत्रं रोगघ्नं तच्च सत्वं दृढङ्करम् ।
मृदुसत्वं हरेन्मृत्युन्द्रु तिस्तांश्च दरिद्रताम ।।

अभ्रक षड्रसयुक्त होनेसे सर्व रोगोंकी नाशक, तीनों दोषोंकी शामक श्रेष्ठ औषधि है। यह वीर्य, आयु, बल, प्रज्ञा, कान्ति और रूपको बढाने वाली है। यह देहको दृढ़ और सुस्थिर अवस्थायुक्त बनाती है एवं बली-पलित और मृत्युका नाश करती है।

अभ्रक रुचिवर्द्धक, वृष्य, लघु, शीतवीर्य, मेधाप्रद, स्निग्ध, रसायन, दीपन, ग्राही और श्रेष्ठ पारदबन्धक है। अभ्रक सत्वकी भस्म पारदका पक्षच्छेदन करती है अर्थात् तीव्राग्निपर रखा हुआ पारद भी उड़ नहीं सकता।

अभ्रपत्रकी भस्म रोगहर है और सत्वकी भस्म देहको दृढ़ बनाने वाली है। जो सत्वकी मृदु भस्म बनी हो, तो मृत्युको दूर भगाती है। एवं धातु-वादार्थ अभ्रकसत्वकी द्रुति बनायी हो तो (कनिष्ठ धातुओंका सुवर्ण बनाकर) दरिद्रताका नाश करती है।

सगर्भा स्त्रीको प्रवाल और सितोपलादि चूर्णके साथ अभ्रक भस्म ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ बलवान और नीरोगी बनता है। क्षयरोगी, जो बिलकुल हाड़पिंजर हो गये हों, जिनके जीवनकी आशा भी न रही हो, डाक्टर और हकीमोंने जिनको जवाब दे दिया हो, वैसे रोगी भी सहस्र पुटी अभ्रक, सुवर्णभस्म और च्यवनप्राशावलेहके योगसे बिलकुल तन्दुरुस्त होगये है।

अभ्रकभस्म मस्तिक, वातवह मंडल, वातवाहिनियां, फुफ्फुस, हृदय और शरीरके सब भागोंमें मांस-ग्रन्थियोंके लिये बल्य, जीवनीय और शामक गुण दर्शाती है। कफस्थान (उर:) के लिये बल्य है। अभ्रक कफ और वात दोष और रस, रक्त, माँस, अस्थि, इन दूष्योंके विकारोंमें लाभदायक है। अभ्रक भस्मको सेवन करनेके समय शहदमें पाव-आध घण्टे तक खरल करके उपयोगमें लिया जाय, तो धातुपरिपोषण क्रम और अन्त:स्राव पर त्वरित लाभ होता है।

अभ्रकभस्मके मुख्य कार्य—चित्परमाणुओंको तरल और तरलतर बनानें में सहायता करना, संचालक इन्द्रियोंको शक्ति देना, और इनके पोषक द्रव्योंकी पूर्ति करना, वातवाहिनी नसोंके क्षोभको दूर करना, तथा स्नायु शैथिल्य, इन्द्रियोंकी दुर्बलता, और वातवाहिनियोंकी क्षीणता दूरकर शरीर संचालक प्राणोंको उत्तेजना देना, और सब इन्द्रिय समुहको कार्यक्षम बनाना आदि कार्य हैं।

अभ्रक भस्म उत्तम रसायन, वृष्य, मेघाजनक और योगवाही है। रसायन गुणयुक्त होनेसे रस आदि धातुओंको सुदृढ़ बनानेमें बहुत सहायक है। यद्यपि अभ्रकका वृष्यत्व प्रत्यक्ष नहीं है तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे सब धातुओं

की समता होनेपर वृष्यत्व उत्पन्न होता है। यह वृष्यत्व विशेषकाल स्थायी और श्रेष्ठ प्रकारका है।

अभ्रक भस्म योगवाही है; अर्थात् (१) अन्य औषधियोंके गुणोंको बढ़ाती है (२) अन्य औषधियोंके गुणोंमें बाधा न पहुँचाते हुए सम्मिलित औषधिके दोषको दूर करती है; (३) और दोष दूर करते हुए गुणमें वृद्धि करती है। इन तीन गुणोंके हेतुसे अभ्रकका उपयोग अत्यन्त विरुद्ध प्रकारके भिन्न-भिन्न योगोंमें किया जाता है, और परिणामसे अभ्रक-मिश्रित सब प्रयोग वीर्यवान् बनते हैं।

अभ्रकका मुख्य कार्य तरल और तरलतर परमाणु बनानेका है। अतः संचालक इन्द्रियोंके भीतर जो तरल परमाणुओंकी न्यूनता हुई हो, उसे यह दूर करती है। किसी भी रोगमें शारीरिक घटक और परमाणु शनैः-शनैः क्षीण होते जाते हों, इन्द्रियोंकी शक्तिका शोषण होता रहता हो और इनकी कार्यक्षमताका ह्रास होता हो, ऐसे शोषरोगमें अभ्रकका उत्तम उपयोग हुआ है। अनेक बार घटक निर्बल होकर क्षीण हो जाते हैं और अनेकबार सड़-कर मृतवत् हो जाते हैं। इनमेंसे जहाँ घटक क्षीण हुए हों, वहांपर यह उप-योगी है; सड़े हुए घटकोंपर इसका कार्य उतना अधिक नहीं हो सकता।

अनेक व्यक्तियोंको ऐसा सन्देह हो जाता है कि, मुझे क्षय हो गया है। फिर बार बार उदासीनसे रहते हैं, किसी कार्यमें उत्साहित नहीं होते, आनन्दके प्रसंगोंमें भी वे चिन्तातुर और व्याकुल रहते हैं। ऐसे मनुष्योंको थोड़े ही दिनों तक अभ्रकका सेवन करानेपर उनके मन और इन्द्रियां सबल बन जाती हैं तथा वे स्वस्थ हो जाते हैं।

मस्तिष्ककी निर्बलता जब अत्यधिक हो जाती है; कार्य करनेका उत्साह नष्ट हो जाता है; बार-बार चक्कर आता है, कपालपर प्रस्वेद आता रहता है; मन अस्थिर रहता है; रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त, क्रोधी स्वभाव वाला और शुष्क हो जाता, तब अभ्रकभस्मका सेवन करनेसे थोडे ही दिनोंमें प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। मुखमण्डलपर पाण्डुता प्रतीत होती हो और धमनियां कूदती हों, तो लोह भस्म देनी चाहिये तथा मानसिक निरुत्साह हो तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये।

अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, बुद्धिविभ्रम इन सबमें मानसिक यन्त्र निर्बल हो जाते हैं। रस आदि धातुओंमेंसे आवश्यक पोषक पदार्थ इन इन्द्रिय समूहोंसे ग्रहण नहीं हो सकता। इस हेतुसे ऐसी परिस्थिति उपस्थित होती है। इन विकारोंमें मानस यंत्रको पोषण पूर्णरूपसे मिल जाय तो ये सब रोग शमन हो जाय। परन्तु वर्तमानमें चिकित्सा इस तत्वके अनुसार नहीं करते। केवल रोगशामक औषधिसे वातवाहिनियोंका क्षोभ निवृत्त करते हैं। इस हेतुसे चिकित्सा फलप्रद नहीं होती। उपरोक्त तत्वको लक्ष्यमें रखकर चिकित्सा करें तो अच्छा लाभ पहुँचाता है; ऐसा अनुभव हुआ है।

जब किसी इन्द्रियके घटकोंको योग्य पोषण नहीं मिलता, तब वह क्षीण होती है। सामान्यत: घटकोंके लिये आवश्यक द्रव्य रक्तमेंसे शोषणकर उसे अपना बना लेनेका शारीरिक परमाणुओंका प्रयत्न सतत चालू रहता है, उसका अभाव होनेपर इन्द्रिय क्षीण होती जाती है। इस वैगुण्यका निवारण अत्यन्त वीर्यवान् तथा रस-रक्त आदि सब धातुओंको ओज और तेज सम्पर्क औषधद्वारा हो सकता है, ऐसी औषधि अभ्रक भस्म है।

अभ्रक भस्मके सेवनसे थोडे ही दिनोंमें शारीरिक परमाणुओंको ओजकी प्राप्ति हो जानेसे वे सुदृढ़ बन जाते हैं। ऐसे समयपर स्मृतिकेन्द्रकी क्षीणता नष्ट कर उसे पूर्व स्थितिकी प्राप्ति कराना, यही सच्ची चिकित्सा कहलाती है।

अभ्रक भस्मसे मलका तरल अंश शनैः शनैः सबल हो जाता है। फिर संज्ञावाहिनियों और आज्ञावाहिनियोंकी क्षीणता कम होने लगती है। तत्पश्चात् अपस्मार आदिकी क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

अपस्मार और उन्मादकी जीर्णावस्थामें जब रोगी निस्तेज, डरपोक, निर्बल और चिन्तातुर हो गया हो, स्मरण शक्ति नष्ट हो गई हो, तब अभ्रक भस्म एक आध- मास तक सेवन करानेसे रोगीकी इन्द्रियाँ बलवान् बन जाती है, रोग शमन हो जाता है।

अर्धाङ्ग वातकी जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनियोंकी विकृति और मानसिक क्षोभ होते हैं, तब रोगशामक औषधिके साथ अभ्रक भस्मका उपयोग करने से सत्वर लाभ होता है।

छोटे बालकोंकी बुद्धिका विकास, आयुके परिमाणसे यदि न हुआ हो, या मूढ़ता बढ़ती जाती हो, शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज रहता हो, शुद्ध बोल भी न सकता हो या अच्छी रीतिसे न चल सकता हो तथा मुँहमें लार गिरती रहती हो, तब अभ्रक भस्मसे लाभ हो जाता है। यदि माता पिता को उपदंश रोग होनेके पश्चात् बालकका जन्म हुआ हो, तो अभ्रक भस्मके साथ गन्धक रसायन (प्रथम विधि वाली) देना चाहिये। बार-बार वमन होती हो, तो प्रवाल पिष्टी और गिलोय सत्वको मिला देना चाहिये। कफ विकृति अधिक हो, तो शृङ्गभस्म और रक्तकी कमीमें मण्डूर भस्म मिश्रित करनी चाहिये।

मस्तिष्कके किसी एक भागका उचित विकास न होनेसे बाल्यावस्थामें वैगुण्य उपस्थित होता है। इस हेतुसे बालक मस्तिष्कको सीधा नहीं रख सकता। उसका हाथ पैरपर अधिकार न होनेसे वह चल नहीं सकता। एवं अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता ऐसी स्थितिमें अकेली अभ्रक भस्म या अन्य सहायक औषधिके मिश्रण सहित सेवन करानेसे बालक स्वस्थ हो जाता है।

अभ्रकमें रसायन गुण होनेसे धातु-परिपोषण क्रमको सुव्यवस्थित करती

है। इसी कारणसे पाण्डु रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय आदि तीव्र और जीर्ण व्याधियोंमें इसके सेवनसे लाभ होता है।

रक्तमें रक्ताणुओंकी न्यूनता और मानसिक चिंता के कारण नवयुवती स्त्रीको हारिद्रकरोग हुआ हो, ज्वर रहता हो, शरीर पीला, शुष्क, निस्तेज हो, तथा कभी-कभी वमन आदि लक्षण होते हों, तो अभ्रक और लोह मिलाकर देनेसे रोग थोडे ही दिनोंमें चला जाता है।

पाण्डु रोगमें मानसिक चिंताका कारण हो, अथवा अर्शमें बार-बार रक्त जानेसे पाण्डुता आई हो, तो इसका उपयोग लाभदायक है। ऐसे ही अन्त्रमें निर्बलता आनेपर गुद त्रिवलीपर बोझा आकर शोथ आगया हो। फिर शौचमें रक्तस्राव होकर निर्बलता आई हो तो अभ्रकका उपयोग करनेसे अन्त्र बलवान होकर रोगका शमन होता है। किन्तु यकृत्के समीप रुधिराभिसरण के दबावमें वृद्धि होनेसे इस स्थितिकी प्राप्ति हुईहो, तो अभ्रक भस्मके सेवन से यथोचित लाभ नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थितिमें विरेचन या रक्तके दबावकी शामक औषधकी योजना करनी चाहिए।

अनेक बार रक्तार्श उत्पन्न होकर पुराना हो जाता है। फिर बार-बार रक्त गिरता रहता है। इस रक्त गिरनेके अभ्यासको नष्ट करनेके लिये अभ्रक भस्म घटित औषधिका उपयोग किया जाता है। अभ्रकसे अर्शके मस्से तो नष्ट नहीं होते परन्तु रक्त गिरना कम हो जाता है और शरीरमें निर्बलता नहीं आती।

अर्शके मस्सेका आपरेशन करानेके पश्चात् अनेक समय भगन्दर या नाड़ी व्रण हो जाता है। ऐसे समयपर व्रणको भरनेके लिये अभ्रकका सेवन सहायक होता है। ऐसे ही जीर्ण व्रण रोगमें शारीरिक शक्तिको स्थिर रखने वाली और व्रणको सत्वर भरनेमें सहायता पहुँचाने वाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम औषधि है।

यदि फुफ्फुसोंकी अशक्तिसे कफ विकार हुआ हो, एवं आघात, मानसिक चिंता, ज्वर ज्यादा समय तक रहने या अन्य कारणसे हृदय निर्बल हो गया हो, तो फुफ्फुस और हृदयको शक्ति देने वाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म, सब से उत्तम है। इस तरह किसी भी रोगमें रोगीकी बोलनेकी शक्ति क्षीण हो गई हो, तो अभ्रक भस्मसे लाभ पहुँचता है। यदि अशक्तताकी अपेक्षा, अनिच्छा हेतुकी प्रधानता हो, तो ऐसे स्वरभेदमें जसद भस्म देनी चाहिए।

आयुर्वेदमें कहे हुए निर्जन्तुक, अनुलोम और प्रतिलोम क्षयमें अभ्रक भस्म को शृंग भस्म और गिलोय सत्वके साथ देते रहनेसे रोग शमन हो जाता है, अर्थात् अभ्रककी अणुभवन क्रिया सुधरकर घटकोंका ह्रास नष्ट हो जाता है। परन्तु आधुनिक युगमें फैले हुए कीटाणुजन्य क्षयकी सब अवस्थाओंमें अभ्रक भस्म का उपयोग होता ही है, ऐसा नहीं कह सकेंगे।

प्रथमावस्थामें ज्वर बिल्कुल कम रहता हो; उस समय तो अभ्रक भस्मका उपयोग निःसंदेह होता है। इस प्राथमिक अवस्थामें फुफ्फुस और अन्य शारीरिक घटकोंको सफल बना देनेसे क्षयके विषकी प्रगतिका अवरोध होजाता है।

जीर्ण कफप्रकोप, जीर्ण कास, कफात्मक और कफ-वातात्मक जीर्णश्वास जिसमें श्वास-वाहिनियाँ विकृत होगई हों, और उनमें व्रण हो गये हों; अति खांसनेपर सफेद चिकना कफ निकलता हो; थोड़े श्रममें प्रस्वेद आता हो, रोगी अत्यन्त अशक्त हो गया हो, तो ऐसे समयपर कफघ्न अनुपानके साथ या शहद पीपलके साथ अभ्रक भस्म देनेसे रोग निर्मूल होजाता है।

हृदयकी निर्बलतासे एवं वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्योंको वर्षाऋतुमें या शीतकालमें बादल होनेपर श्वास रोग होजाता है; कितनों ही को बैठनेसे श्वास शमन हो जाता है, और थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता है, उन सब के लिये अभ्रक अति लाभदायक है।

पाण्डु-रोगिणी स्त्रियोंको श्वास वाहिनियोंके संकोच होनेसे अतिशय घबराहट और श्वास रोग हो जाता है। पंखेसे हवा करनेपर अच्छा लगता है; अन्यथा दिन रात बेचैनी रहती है। शीतल या उष्ण औषधि सहन नहीं होती ऐसे समयपर श्वासवाहिनियोंको विकशित करने वाली और पित्तको शमन करने वाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम है। ऐसे प्रसंगपर कार्यकर औषधियाँ अभ्रक भस्म रुद्रवन्ती, शिलाजीत, चन्द्रप्रभा और आरोग्यवर्धिनी हैं। उनमें मानसिक क्षोभ दूर करनेके लिये अभ्रक है, विष मूत्रद्वारा बाहर निकालने और विकारका शोषण करनेके लिये रुद्रवन्ती, शिलाजीत और चन्द्रप्रभा है; एवं मलशुद्धिकी आवश्यकता हो, तो आरोग्यवर्धिनीका उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगोंमें जीर्ण दोष या स्वभावको नष्ट करनेके लिये बार-बार शहदके साथ अभ्रकका सेवन कराना चाहिए।

हृदयकी अशक्तिके कारणसे बार-बार थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता हो, नाड़ी क्षीण, मन्द और बार-बार अनियमित रहती हो, तो अभ्रकके सेवनसे प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। यदि रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली हो गई हो फिर उन स्थानोंमें रक्त संगृहीत हो गया हो, तो इस विकारमें एवं इससे उत्पन्न रक्तपित्तमें भी यह हितकर है। प्रवाल पिष्टी और गिलोय सत्व मिलाना अधिकतर लाभदायक है। यदि इस रोगकी उत्पत्ति उपदंश से हुई हो, तो अनुपान अनन्तमूलका अवलेह अथवा रक्तशोधक अरिष्ट या रक्तशोधक क्वाथ दें।

अभ्रक भस्म निमोनिया रोगमें दालचीनीके साथ देनेसे रोगके कारण भूत कीटाणुओंको नष्ट करती है। लोहभस्मके साथ देनेसे रक्ताणुओंको बढ़ाती है। इस कारण पाण्डुरोगमें अभ्रक भस्म, लोहभस्म, त्रिफला और शहद मिलाकर दिया जाता है।

अभ्रक भस्म हृदयोत्तेजक है। फिर भी कुचिला अथवा कपूरके समान हृदय उत्तेजक नहीं है। अभ्रक भस्म तो हृदयके स्नायुमय घटकोंको शक्ति देकर हृदयको उत्तेजना देती है। इस कारण हृदय-विकारसे होनेवाले शोथ रोगमें इसके सेवनसे लाभ होता है।

उदरकी अशक्ति और पित्तोत्पादक पिण्डकी अशक्तिके कारणसे पित्तकी उत्पत्ति सम्यक् न होती हो; फिर इसीसे अपचन और मन्दाग्नि रोग हुआ हो, तो पित्तोत्पादक पिण्ड और उदरके अवयवोंको शक्ति देकर रोगको दूर करनेका काम अभ्रक करती है।

अरुचि अर्थात् जिसमें भोजन करनेमें प्रीति न हो; स्वादिष्ट वस्तु भी बेस्वादु लगती हो; यह विकार उदर विकृति और अशक्ति होनेके पश्चात् या अरुचि रूप उपद्रव क्षय, पाण्डु, कामला, ज्वर आदि रोगोंके पश्चात् हुआ हो, तो इस भस्मका उपयोग लाभदायक है।

जीर्ण अम्लपित्त रोगमें यदि सूतशेखर आदि औषधसे लाभ न होता हो सर्वदा उबाक बनी रहती हो, उदरमें पीड़ा रहती हो और वमनके साथ रक्त निकलता हो; परन्तु उदरमें कर्कस्फोट न हो तो अभ्रकभस्मका उपयोग करना हितकर है। एवं पेटकी आकृति बड़ी हो गई हो; और भोजनके पश्चात् वमन हो जाती हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग वंग भस्मके साथ करना लाभदायक है।

क्षय रोगके अतिसारमें अन्य जन्तुघ्न औषधिके साथ अभ्रकके उपयोगसे लाभ होता है। उस समय अभ्रक भस्म, मुक्ता-पिष्टी, शंख भस्म और वराटिका भस्मका मिश्रण घृतके साथ दिया जाता है। ऐसे ही आंत्रकी निर्बलता के कारणसे बहुत दिनोंके पुराने त्रासदायक अतिसारमें बार-बार झाग सहित थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हों; अन्त्रकी साधारणशक्ति क्षीण हो गई हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग वराटिका भस्म, सोंठका चूर्ण और घृत (या शहद) के साथ करना हितकारक है। ग्रहणीकी अशक्तताके कारणसे जीर्ण ग्रहणी रोगमें यदि अंत्रमें स्थान-स्थानपर व्रण हो गये हों, बार-बार रक्त गिरता हो तो अभ्रक भस्मका उपयोग पर्पटीके साथ करना चाहिये।

उदरमें रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्डकी विकृति अथवा रसवहन कार्यमें प्रतिबन्ध होनेमें उदर-ग्रन्थियाँ बढ़ गई हों, साथ-साथ मन्द-मन्द शूल घन्टो तक बार-बार चलता रहता हो; रोग अशक्त हो जाता हो; मन्द ज्वर मलावरोध और अपचन भी रहते हों तो अभ्रक भस्मका उपयोग हितकारक माना गया है।

छोटी आँत और बड़ी आँतकी निर्बलताके कारण मलावरोध रहता हो; फिर रोग जीर्ण होनेपर मलमें दुर्गन्ध, रक्तविकार, फोड़े-फुन्सियाँ छोटे

छोटे दूषित रक्तके मण्डल आदि भीषण स्वरूपकी प्राप्ति हुई हो तो इस भस्मका सेवन रक्तशोधक अनुपानके साथ हितकर है।

मूत्राशयकी अशक्तिके कारण बूंद-बूंद मूत्र होता रहता हो और बार-बार पेशाब करना पड़ता हो अथवा मूत्रमें रक्त भी जाता हो एवं मूत्रकृच्छ्र का रोग जीर्ण हुआ हो, तो इस भस्मके सेवनसे मूत्राशय बलवान बन जाता है। मधुमेहमें अभ्रकको शिलाजीत और जामुनके बीजकी गिरीके साथ देते रहनेसे शक्ति क्षीण नहीं होती और व्याधि-बल भी धीरे-धीरे न्यून होकर अनेकांशमें रोग दब जाता है।

वातवाहिनियोंकी निर्बलताके कारण या मानसिक आघात पहुँचनेसे नपुंसकता आई हो, वह अभ्रक भस्मके सेवनसे दूर होती है। अभ्रक भस्म जननेन्दियके स्नायु, जननेन्द्रियके घटक, जननेन्द्रियको उत्तेजना देने वाली, वातवहानाड़ियोंके केन्द्र और वातवाहिनियाँ इन सबको शक्ति देकर नपुंसकताको दूर करती है।

योगवाही होनेसे अभ्रक भस्मका कार्य मिश्रित द्रव्य अनुसार त्वरित और मन्द वेगवाला हो जाता है। लक्ष्मीविलास रस (सन्निपात नाशक और हृदयपौष्टिक रसायन) में कर्पूरादि औषधिका संयोग होनेसे यह तीव्र और शीघ्र गुण करती है। आरोग्यवर्द्धिनीमें ताम्र आदि औषधि संयुक्त होनेसे गुण शनैः शनैः दर्शाती है। लक्ष्मीविलासमें उत्तेजक कार्य और आरोग्यवर्द्धिनीमें निर्बल बने हुए घटकोंको दूर कर नये सबल घटकोंको तैयार करनेका कार्य अभ्रक भस्मके संयोगसे होता है। इस तरह संयोग-जन्य न्यूनाधिक परिमाणमें और पृथक्-पृथक् रूपमें होता है।

अभ्रकभस्मका उपयोग कफकासपर उत्तम होता है। किन्तु शुष्क कास में व्यवहृत नहीं होती। फुफ्फुस प्रणालिकाएं और वायुकोष निर्बल बननेपर उनमें कफ संग्रहीत हो जाता है। उसके साथ कण्ठमें शुष्कता हो, तो शुष्क कास चलती रहती है और सरलतासे कफ नहीं निकलता। रोगी अति बेचैन हो जाता है, प्रस्वेद आ जाता है, कण्ठ सूखता है, फिर थोड़ा कफ गिरता है। ऐसी अवस्थामें अभ्रकभस्म, शृङ्ग भस्म, छोटी इलायचीके दाने और प्रवाल पिष्टी १-१रत्ती, गिलोय सत्व और वंशलोचन २-२ रत्ती मिला, उसकी ४ मात्रायें बनाकर दिनमें ४ बार आमके मुरब्बेके साथ सेवन करानेपर पहिले ही दिनसे आराम होने लगता है। *

---

* अभ्रकमें गुणाधिक्य होनेका कारण उसके प्राकृतिक संगठनमें वज्रलोह (Metellic Iron) है। इसलिए सूक्ष्मकण वाले ढेलेदार अभ्रककी भस्म बेचें।

—संशोधक

सूचना—अभ्रक भस्म किसीको भी हानि नहीं पहुँचाती; फिर भी किसी-किसीको इसकी मात्रा ज्यादा लेनेसे नाड़ीका वेग बढ़ जाता है और रक्ताभिसरण क्रिया भी ज्यादा वेगसे होने लगती है। ऐसे समयपर अभ्रक भस्म थोड़े दिनोंके लिये बन्द कर देनी चाहिये। पश्चात् थोड़े परिमाणमें सेवन करानी चाहिये और मुक्ता या प्रवालपिष्टी साथमें मिला लेनी चाहिये।

अभ्रक भस्मको १० से १००० गज पुट तक देनेका शास्त्रविधान है। जितने अधिक पुट देनेमें आवें उतने परिमाणमें गुणकी वृद्धि होती है। अभ्रकके सेवन करने वाले अकाल मृत्युसे बच जाते हैं। अनुपान भेदसे यह सब रोगोंपर उपयोगी है। इसलिये इसे मनुष्य लोकका अमृत माना है।

श्वेत अभ्रकको अंग्रेजीमें माइका (Muscovite) और कृष्ण अभ्रकको बायोटाइट (Biotite) कहते हैं। रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक डबल सिलिकेट आफ् एल्युमिना एण्ड पोटाश-सोडियम (Double Silicate of Alumina and Potash Sodium) है। कतिपय जातिमें लोहका अंश मिलता है और कितने ही प्रकारके अभ्रकमें मैगनेशिया प्राप्त होता है।

विविध अभ्रकका रासायनिक विश्लेषण—

श्वेताभ्र—$K_2O, 3AL_2O_3$ 4510_2 (२ पोटासियम ऑक्साईड, ३ एल्युमिनियम, ऑक्साईड, ४ सिलिकन ऑक्साईड)।

कृष्णाभ्र—वज्राभ्र—$3Mgo, Al_2 O_2 3SiO_2$ (३ मेगनेशियम ऑक्साइड एल्युमिनियम आँक्साइड और ३ सिलिकन ऑक्साईड) कृष्णाभ्र में लोहका अंश रहता ही है।

श्वेताभ्र—Muscovite (मस्कोवाईट) Potash Mica.

कृष्णाभ्र—Biotite (बायोटाइट) Ferromagnesian Mica.

रासायनिक पृथक्करण—(१) सिलिका, (२) लोह, (३) एल्युमिनियम, (४) पोटाशियम, (५) मैगनेशियम ये तत्व पाये जाते हैं।

(औ. गु. ध. शा.)

शास्त्रविधिके अनुसार अभ्रकमेंसे सत्वपातन कराया जाता है। उस सत्वमें एल्युमिनियम व सिलिकाकी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। कुछ लोह होता है। अतः रसाचार्योंने विशुद्ध पारदका पक्षच्छेदन करानेके लिये विधिवत् ग्रासमान, गर्भ-द्रुति व जारणक्रिया हेतु अभ्रकसत्वको प्रमुखता दी है। यथा—

मुक्त्वैकमभ्रसत्वं नान्यः पक्षापकर्तनसमर्थः ॥

हमने इस प्रकार जो अनुभव किया है उसे चन्द्रोदयके प्रकरणमें दर्शाया है।

दूसरी विधि-(१०० पुटी)—शुद्ध धान्याभ्रकको आकका दूध, थूहरका दूध, धतूरेके पत्तोंका रस, केलेके खम्भेका रस, चित्रकमूलका क्वाथ,

नागरमोथाका क्वाथ, शतावरीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ, गिलोयका स्वरस नागरबेलके पानोंका रस, गोदुग्ध, गोमूत्र घीकुंवारका रस और बड़के अंकुरोंका क्वाथ, इनके रस या क्वाथके साथ १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी छोटी टिकिया बांधें। पश्चात् सूर्यकी तेज धूपमें सुखा, संपुट करके गजपुट दें। इस रीतिसे इन सबके क्रमशः ७-७ पुट देनेसे १०५ पुटी भस्म तैयार होती है। सहस्रपुटीके अभावमें यह भस्म उपयोगमें आती है।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—(५० पुटी अभ्रक भस्म) शुद्ध धान्याभ्रकको नागरमोथेका क्वाथ, पुनर्नवाका रस, कसोंदीके पत्तोंका रस, नागरवेलके पानों का स्वरस, आकका दूध, गोमूत्र, लोधका क्वाथ, सफेद मूसलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ,केलेके खम्भेका रस,तालमखानोंका क्वाथ, घीकुंवारका रस और बड़की जटाका क्वाथ, इन १४ औषधियोंकी क्रमशः ४-४ भावनायें देवें। बार-बार टिकिया बांध सूर्यके तापमें सुखा संपुट करके गजपुट दें। इस रीतिसे प्रत्येक भावनाके पश्चात् गजपुट देनेसे ५६ पुटी अभ्रकभस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार।

चौथी विधि—(२० पुटी) धान्याभ्रको कुकरोंधाके स्वरसमें खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँध तेज धूपमें सुखा; एक हांडीमें बन्द करके गजपुटकी अग्नि दें। इस प्रकारके १० गजपुट देनेके बाद आकके पत्तोंके रसके ७ और बड़के अंकुरोंके क्वाथके ३ गजपुट देनेसे अति मुलायम २० पुटी अभ्रक भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

पाँचवी विधि—"औषधिकृति" में कहे अनुसार अभ्रकको निश्चन्द्र बना आकके दूध (अभावमें पत्तोंके रस) में १२ घण्टे खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँधे। सूर्यकी तेज धूपमें सुखा सम्पुटकर मात्र एक गज पुट देनेसे ही लाल रङ्गकी निर्दोष भस्म बन जाती है।

सूचना—जब तक अभ्रकका चमकीला अणु नष्ट न हो जाय तब तक उस भस्मको व्यवहारमें नहीं लेना चाहिये। अन्यथा हानि करती है।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

उत्तम अभ्रक भस्मके लक्षण—जो भस्म निश्चन्द्र, अरुण वर्ण, मृदु, सूक्ष्म तथा चुंबक द्वारा ग्राह्य होती है।

(१४) कासीस भस्म

विधि—हरे रंगके विलायती कासीस (Ferri Sulph) को भांगरेके रसमें १२ घण्टे तक खरलकर टिकियां बांधकर, सूर्यके तापमें सुखायें। फिर सम्पुट करके गोबरीके चूरेका लघुपुट देवें। इस तरह ३ पुट देनेसे लाल रङ्गकी मुलायम भस्म बन जाती है। अन्य कासीसकी भस्म ऐसी मुलायम और लाल नहीं बनती है। विलायती कासीस ४० तोलेमेंसे भस्म केवल १० तोले बनती है। क्योंकि कासीसके भीतर रहे हुए ऑक्सिजनका काफी अंश उड़ जाता है और अपना गुण भस्मको दे देता है। कासीस लोह एवं गंधकका योगिक है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय।

अनुपान—नष्टार्त्तवमें एलवा और हींगके साथ।
गुल्म, शूल और पाण्डुमें—त्रिफला और घृतके साथ।
कफ, आम, उदररोग प्लीहामें—शहद पीपलके साथ।
मधुमेहमें—जामुनकी गुटलीके चूर्णके साथ।
संग्रहणीमें—नागकेशर और मिश्रीके साथ।
गर्भाशय और बीजाशयके दोषमें—शर्बत बनप्साके साथ।
नेत्र रोगमें—त्रिफला और घृत या त्रिफला और शहदके साथ।

गुणधर्म—यह भस्म पांडु, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, यकृत्, वृद्धि प्लीहोदर, नेत्ररोग, उदरवात युक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, आम विकार, कफ प्रकोप, अर्शशूल, वातजगुल्म और स्त्रियोंके गर्भाशय दोषको दूर करनेमें उपयोगी है। किसी रोगके हेतुसे या चिन्तासे अकालमें आई हुई निर्बलताको भी दूर करके शरीरको सुदृढ और कांतिवान् बनाती है।

लोह कासीस मिश्रगुण—

कासीस भस्म कान्तस्य चोभयं भागतः समम्।
वरा विडङ्गसंयुक्तं घृतक्षौद्रप्लुतं प्रगे।
भक्षितं हन्ति वेगेन पाण्डुयक्ष्माणमेव च॥
प्लीहगुल्मे गुदे शूलं मूत्रकृच्छ्राण्यशेषतः।
सेवितं सर्वरोगघ्नं रसायनविधानतः॥
अग्निसंधुक्षणं कुर्याद् बलीपलितनाशनम्।
आमाजीर्णभवान् रोगान् निहन्त्येव न संशय॥

उपयोग—कासीस भस्म किंचित् उष्ण, कषाय तथा अम्ल गुणयुक्त है। नेत्रोंके लिये हितकर है। आमसंशोषक और कफनाशक होनेसे मन्दाग्निको

दूर करके अग्नि प्रदीप्त करती है, तथा रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंकी वृद्धि करती है। शतधौत घृतके साथ मिलाकर अभिष्यंद (नेत्रकी लाली), पूयाभिष्यंद, नेत्रव्रण, नेत्रकी पुतलीपर व्रण आदि रोगोंमें अंजन करनेमें उपयोगी है। इस भस्ममें कषाय गुण होनेसे यह रक्तप्रसादन कार्य करके नेत्रविकार को शमन करती है। यह कार्य केवल मृदु त्वचापर और सुकुमार इन्द्रियोंपर बहुत अच्छी प्रकारसे होता है।

कासीस भस्म आमसंशोषक होनेसे अग्निको प्रदीप्त करती है। यह कार्य रसायन विधानसे घृत और शहदके साथ लेनेसे प्रतीत होता है। कासीसभस्म मात्रके सेवनसे आमका पाचन होता है। पचनेन्द्रिय अथवा पचनेन्द्रिय की सन्निधिके भागके रक्त धातुमें विकृति अथवा रक्तकी प्राप्ति उस उस इन्द्रियके लिये न्यून होना, यह मन्दाग्नि और आम संजननके अनेक कारणोंमें से एक कारण हो सकता है। पित्तका आश्रय या आधार रक्त है और पित्त आश्रयी अथवा आधेय है। इस कारण रक्तका परिमाण न्यून होनेपर पित्त धातु से उत्पन्न होने वाले पाचक द्रव्य की उत्पत्ति भी न्यून होजाती है। रक्तकी यह न्यूनता इस भस्मके सेवनसे दूर होती है।

कासीस भस्म अग्निप्रदीपक है, अर्थात् पाचक रसका पाचकत्व कम होनेपर पचनेन्द्रियको उत्तेजना देकर पाचक-रसकी तीव्रता प्रस्थापित कराने वाली औषधि है। पाचन-क्रिया पचनेन्द्रियके भिन्न-भिन्न रसोंके परिमाणके ऊपर और उसके घटकोंपर अवलम्बित है। यह कार्य पित्त धातुके योगसे होता है और कासीसभस्मका कार्य पित्तधातुमें साम्य लानेका है। अतः इसके सेवनसे पचनेन्द्रिय और पाचक रस व्यवस्थित होता है।

अन्त्रमें रहे हुए आमपर इस भस्मका कार्य होता है। इसलिए आमजन्य अजीर्ण या जीर्ण; अजीर्ण रोग और उनसे होनेवाले विकारपर यह उपयोगी है।

शरीर अकालमें निर्बल और निस्तेज हो जानेपर इस भस्मका सेवन कराया जाता है। यदि अकालमें बाल पककर सफेद हो जाते हैं और वृद्धावस्थाके समान कमजोरीकी प्राप्ति होती है, तो कासीस भस्म, लोहभस्म और त्रिफला, तीनोंको मिलाकर परिस्थिति अनुसार योग्य परिमाणमें घृत और शहदके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है। यह योग पाण्डुरोगकी प्रथमवस्थामें भी दिया जाता है। बार-बार अजीर्ण होनेकी आदत हो और पाण्डुता आई हो तो इस योगका अवश्य प्रयोग करना चाहिये।

धातुगत पचन अर्थात् रस और रक्तमें आवश्यक अंशको लेकर उसमेंसे अपने अंशको बढ़ानेकी प्रत्येक धातुकी प्रवृत्ति नियमित रीतिसे हो रही है। उसमें शिथिलता हो जाय तो प्रत्येक धातु क्षीण होने लगती है। ऐसी परि-

स्थितिमें रोगीके शरीरमें क्षयके कीटाणु होने ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं है। इस विकारपर इस भस्मका उपयोग करना चाहिये। उपरोक्त योग इसमें अति प्रशस्त है।

वातज गुल्म और शूलपर कासीसभस्मका उपयोग होता है। यह अग्नि-प्रदीपन करके गुल्म और शूलको नष्ट करती है।

बृहदन्त्रमें सेन्द्रिय विषका रूपान्तरित करने वाली औषधियोंमें कासीस भस्मकी गणना होती है। इस स्थानपर दो प्रकारकी औषधियां उपयोगी हैं-आरोग्यवर्द्धिनी, वराटिका भस्म, ताम्रभस्म आदि उष्ण, तीक्ष्ण और रसायन गुणयुक्त औषधियां और दूसरी कासीस भस्मके समान कषाय रसात्मक और शामक रसायन औषधियां इनमेंसे कासीस भस्मका उपयोग विशेषत: सेन्द्रिय विषके योगसे दाह होनेपर अच्छा होता है। दाहके साथ उदरमें वात भी उत्पन्न होता है। दुष्ट अपानवायु बराबर निकलता हो। और उदरमें गुड़-गुड़ाहट आदि लक्षण हों तो कासीस भस्मका उपयोग किया जाता है।

जीर्ण व्रणोंमें कासीस भस्मका उपयोग होता है। यदि व्रण रक्त और मांस धातुगत हो; उसमें पित्त-दुष्टीके लक्षण हों तो इस भस्मका सेवन कराना चाहिये। दाह, लाल व्रण, किनारीपर शोथ, भीतरसे स्राव कम होना, बार-बार रक्त आते रहना इत्यादि लक्षण होनेपर बाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन लाभदायक है।

कासीस भस्म वात और कफ; दोष रस और रक्त दूष्य तथा यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र स्थान, इन सबपर लाभ पहुँचाती है। इसके सेवनसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। यह इसका विशेष धर्म है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—कासीस भस्मसे किसी-किसीको वमन होती है और चक्कर आता है। ऐसा होनेपर मात्रा कम करें और सुवर्णमाक्षिक मिलाकर देवें।

कासीसमें गन्धकाम्लके रूपमें गन्धकांश रहता है; इसलिये भस्म होने पर लिटिमिस पेपरसे परीक्षाकर अम्लनाश होने तक पुट देते रहना चाहिये। निरम्ल भस्मसे वमनादिक नहीं होते। (संशोधक)

(१५) कासीस-गोदन्ती भस्म।

विधि—विलायती हरा कासीस और गोदन्ती १०-१० तोले मिला घी कुँवारके रसमें ६ घण्टे घोटकर छोटी-छोटी टिकियाँ बांधें। फिर टिकियोंको सुखा, संपुट करके गजपुटमें फूंक देवें। इस रीतिसे दो-तीन पुट देने से सिंदूर जैसी लाल भस्म हो जाती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। मिश्री और दूध या शहदके साथ दें। विषम ज्वर में अदरकके रस और शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म आमप्रकोपसे उत्पन्न नवीनज्वर, मलेरिया (विषम ज्वर), जीर्णज्वर, पांडु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आमवृद्धिको दूर करके शरीरमें रक्तकी वृद्धि करती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियों और बालकोंके लिए भी हितकारी है। मलेरिया आनेके ४ घण्टे पहले एक मात्रा और दूसरी मात्रा दो घण्टे पहिले देनेसे ज्वर रुक जाता है।

कासीस भस्मके विवेचनमें दर्शाये गुणोंसे विशेष गुण इस भस्ममें रहते है। क्योंकि गोदन्तीका संमिश्रण हो जानेसे कतिपय नूतन गुणोंकी उत्पत्ति होतीं है। कितने ही नाजुक प्रकृतिके रोगी, पित्तप्रधान प्रकृतिवाले, बालक, प्रसूता और सगर्भा स्त्री आदिको विषमज्वर आनेपर तीव्र औषधि नहीं दें सकते, उनके लिये कासीस गोदन्ती भस्म अदरकके रस और शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार देनेसे लाभ पहुँच जाता है।

विषमज्वर प्रकुपित होनेपर उसका विष मांस आदि धातुओंमें लीन हो जाता है। फिर तीव्र दवा देनेपर रोगीको व्याकुलता बढ़ती है और अनेकों को कान, आँख और वृक्क आदि अवयवोंपर बुरा असर पड़ता है। एवं रक्त-दबाव भी बढ़ जाता है। ऐसे रोगियोंको कासीस गोदन्ती भस्म देते रहनेसे कुछ दिनोंमें दूषित तीव्र औषधियोंका विष और रोगविष जल जाता है फिर ज्वर शमन होकर शरीर सबल हो जाता है।

विषमज्वर जीर्ण होनेपर सुवर्ण वसन्त और लघुवसन्त आदि औषधियां उत्तम कार्य करती है, किन्तु आम प्रकोपसे पीड़ित रोगियोंको वसन्तकी अपेक्षा कासीस गोदन्ती भस्म विशेष हितावह होती है। यदि धातुओंकी क्षीणता अधिक हो तो सुवर्णवसन्तके साथ, कासीस गोदन्ती भस्म मिला देनेसे सत्वर लाभ होता है।

विषमज्वर अधिक दिनमें रहनेपर प्लीहा बढ़ जाती है और मंद-मंद ज्वर बना रहता है। थोड़ा-सा अपथ्य या आहार विहारमें भूल होनेपर ज्वर बढ़ जाता है। उन रोगियोंको पथ्य पालनसह कासीस गोदन्ती भस्म ४ से ६ रत्ती मात्रामें अमृतारिष्टके साथ थोड़े दिनों तक देते रहने पर प्लीहागत कीटाणु और विष नष्ट होकर स्वाथ्यकी प्राप्ति हो जाती है। *

---

* प्लीहा अत्यधिक बढ़ गई हो, नाभि तक पहुँच गई हो, उसपर एक अनुभवी महात्मा कासीस ६-६ माशे १०-१० तोले दहीके साथ देते रहते हैं। स्थूल दृष्टिसे मात्रा अत्यधिक भासती है। किन्तु इस प्रयोगसे डाक्टरोंसे आपरेशन करानेकी अनुमति दिये हुए अनेक रोगी भी मात्र ४ दिनके प्रयोगसे स्वस्थ हो जानेके उदाहरण मिले हैं।

मसूड़ोंमें पूय (Pyorrhoea) होनेपर भोजन के साथ पूय आमाशयमें जाता है। फिर आमाशय और लघु अन्त्र आदि भाग दूषित हो जाते हैं। पश्चात् अग्निमांद्य, उदरशूल, बेचैनी, पाण्डुता, शिरमें भारीपन और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा शांत निद्रा भी नहीं मिलती। ऐसे रोगियोंको चाहिये कि दूषित दाँत निकलवा देवें अथवा दाँतोंका स्थानिक योग्य उपचार करावें। इसके साथ कासीस गोदन्ती भस्मका उदर सेवन करानेपर सब उपद्रव दूर होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

आमाशय, अन्त्र, वृक्क अथवा अन्य स्थानमें क्षत होजानेपर रक्तमें पूय प्रवेश होता है। फिर हृल्लास, उदरमें वेदना, पाण्डुता, शारीरिक कृशता, अग्निमांद्य और मन्द मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं और निर्बलता शनैः शनैः बढ़ती जाती है। यदि पूयका प्रवेश अधिक मात्रामें होता है, तो पूयज्वर (Pyaemia) की संप्राप्ति होती है। फिर दिनमें २-३ बार शीत लगती है, ज्वर बढ़ जाता है और स्वेद आकर ज्वर कम होजाता है, किन्तु शरीर निर्बल हो जाता है। इस विकारमें कासीस गोदन्ती भस्म सफलतापूर्वक प्रयुक्त होती है।

मासिकधर्ममें विकृति होनेपर अनेक युवतियोंको बाहर निकलने योग्य दूषित रजका स्राव योग्य प्रमाणमें नहीं होता। कुछ न कुछ अंशमें रक्तमें शोषित हो जाता है। फिर गर्भाशय शोथ या बीजाशय शोथ श्वेतप्रदर, पाण्डुता, दृष्टिमांद्य, शिरदर्द, कटिवेदना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस रोगमें कासीस गोदन्ती भस्मको अशोकारिष्ट या कुमार्यासवके साथ देते रहनेपर २-३ मासमें मासिकधर्मकी शुद्धि होती है और नियमित बन जाता है।

अधिक धुम्रपानसे पाचनक्रिया विकृति होनेसे रसोत्पत्ति होकर अथवा कीटाणुओंका आक्रमण होनेपर गलग्रन्थियाँ बढ़ जाती है और वात प्रकोपसे बार-बार आक्षेप आने लग जाते हैं। इस विकारपर कासीस गोदन्ती भस्म को जसद भस्म या वसंतमालतीके साथ मिलाकर देनेसे थोड़े ही दिनोंमें विकार दूर हो जाता है।

(१६) गोदन्ती भस्म

विधि—४० तोले गोदन्ती (Gypsum) के टूकड़ोंको शृङ्गभस्मके प्रकरणमें लिखे अनुसार आकके पत्तोंकी लुगदी या गंवारपाठेके गूदेमें संपुटकर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा—२ से ८ रत्ती, सुदर्शन चूर्णके क्वाथ, मिश्री या शहदके साथ दें। बालकोंको एक रत्ती भस्म माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग–इस खनिजमें प्रचुर मात्रामें केल्शियम तथा गंधकाँश गंधकाम्ल के रूपमें रहता है। इसकी भस्म पित्तज्वर, आमज्वर, शिरदर्द, जीर्णज्वर, विषमज्वर, स्त्रियोके श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, रक्तस्राव और सूखी खांसीमें अति लाभदायक है। दाह, तृषा, रक्तदबाव (H. B. P.) वृद्धिजन्य शिरदर्द, निद्रानाश व्याकुलता आदि लक्षणोंको तुरन्त शमनकर देती है।

मस्तिष्कको शांत और हृदयको प्रवल बनाती है। बालकोंके ज्वर, कास श्वास, हड्डियोंकी निर्बलता, अग्निमाँद्य, दूध फैंकना, कब्ज और अजीर्ण आदि पर निर्भयतापूर्वक बहुत उपयोगमें आती है। बढ़े हुए विषमज्वरमें सुदर्शन चूर्णके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे तुरन्त लाभप्रद होती है। सन्निपातमें तुलसीके स्वरस और शहदके साथ २-२ घण्टेपर देते रहनेसे चेतना आजाती है। और त्रिदोषज लक्षण शान्त हो जाते हैं।

रक्तप्रदरपर गोदन्ती भस्म दिनमें तीन बार आंवले और ईसबगोल तथा श्वेतप्रदरमें संगजराहत भस्म, जीरा और माजूफलके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार दी जाती है। शिरःशूल, सूर्यावर्त, आधाशीशी और मस्तिष्कमें उष्णता रहनेपर १-१ माशा भस्म १ तोला घी और १ तोला शक्करके साथ मिलाकर दिनमें २ या ३ वार देनेसे लाभ हो जाता है। किन्तु शिरःशूलके रोगीको कफकी अधिकता रहती हो तो, गोदन्तीके साथ आध-आध रत्ती समीरपन्नग रस मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

गोदन्ती भस्ममें जीर्णज्वर, विषमज्वर, पित्तप्रकोप और प्रदरको दूर करनेका गुण अमृतासत्वके सदृश होनेसे आजकल कुछ चिकित्सक अमृतासत्व के स्थानपर (प्रतिनिधि रूपसे) गोदन्ती भस्मका उपयोग करते हैं। यह सगर्भा और बालकोंके लिये अति निर्भयतासे प्रयोगकी जा सकती है। यदि जीर्णज्वरमें पित्तप्रकोप अधिक हो, शुष्क कास भी रहती हो, तो प्रवालपिष्टी मिला लेवें और अनुपान स्वरूप शर्बत बनप्शा मिलाकर दिनमें २-३ बार देवें।

गोदन्ती भस्म यह निर्भय औषधि है। विषमज्वरमें भी उपयोगी है और बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सबको इसे दे सकते हैं। अनुपान रूपसे महासुदर्शन चूर्णका फाण्ट ४-८ रत्ती सोडावाईकार्ब मिलाकर पिलाना विशेष हितावह रहता है। क्वचित् रोग निरोधक शक्ति निर्बल होने या विषप्रकोप अधिक होनेपर अकेली गोदन्ती भस्म काम नहीं देती। उस समय संजीवनी वटी साथ मिलाकर उक्त सुदर्शन फाण्टके अनुपानसे देना चाहिये।

मलेरिया दिनों तक रहा हो या बार बार सताता हो। ऐसे रोगियोंको गोदन्तीके स्थानपर हरताल गोदन्ती भस्मका प्रयोग आशुफलप्रद सिद्ध हुआ है। श्वासका दौरा होनेपर गोदन्तीसे कोई लाभ नहीं पहुँचता। किन्तु मन शिला मिश्रित गोदन्ती श्वास दमनचूर्णका प्रयोग करनेके एक घण्टेके भीतर श्वास कष्टका दमन हो जाता है।

वक्तव्य—भस्म बनानेके लिये गोदन्ती उज्ज्वल, पारदर्शक अच्छी देख कर उपयोगमें लेनी चाहिये। मैले रंगवाली कच्ची गोदन्ती हानिकारक हैं अच्छी गोदन्तीकी बनाई हुई भस्म बालक, सगर्भा स्त्री, प्रसूता, वृद्धा आदि सबके लिये लाभदायक है। इन सबमें बालकोंके लिये यह उत्तम औषधि है। स्तन्यदोषसे जिन बच्चोंका शरीर कृश हो गया हो, उनको यह भस्म थोड़े दिनों तक देते रहनेसे शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

गोदन्ती यह गन्धकका यौगिक होनेपर भी हरतालके समान लाभ पहुँचाती है। इसलिये गोदन्तीको गोदन्ती हरताल भी कहते हैं। गोदन्तीका उपयोग अधिक मात्रामें बार बार करते रहनेसे यकृत्को हानि पहुँचती है। इसलिये मात्रा कम देनी चाहिये।

रत्नोंके सम्बन्धमें विशेष परिचय

रत्नोंका उपयोग आयुर्वेदने औषधरूपसे किया है और ज्योतिष शास्त्रमें धारण करनेकी विधिपर प्रकाश डाला है। कई नास्तिक जन इस बातको स्वीकार नहीं करते। किन्तु विश्वके विभिन्न देशोंके इतिहासमें रत्नोंका अनुचित व्यवहार करनेपर हानि होनेके कई उदाहरण अङ्कित हैं।

सूचना—ज्योतिष शास्त्रने रत्नोंको धारण करनेके नियम बनाये हैं। उस नियमको समझकरके रत्नोंको धारण किया जाता है बिना समझे रत्नका धारण करनेपर हानि पहुँच जाती है। जैसे कि जन्म पत्रिकामें रवि ऊँचे स्थानमें हो और माणिक्यको धारण किया जायगा, तो परिणाममें हानि पहुँचेगी। इस तरह अन्य रत्नोंके लिए भी समझ लेना चाहिए।

नव्य रत्न चिकित्सकोंके मतानुसार रत्नोंका वीर्य और गुणधर्म संक्षेपमें निम्नानुसार है।

जीवनीय व शक्तिप्रद	उष्ण	शीतल
हीरा	माणिक्य	मोती
श्वेत पुखराज	प्रवाल	पन्ना
नीलम		

कुछ विद्वानोंने रत्नोंका चिकित्सामें प्रयोग होमियोपैथीकी विधिसे किया है। इन परीक्षकोंमें डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य M. A. Ph. D. राजरत्न ज्ञानज्योति, ओरीएण्टल इन्स्टीटयूट (बरोड़ा) के भूतपूर्व अध्यक्ष विशेष अनुभवी थे। उनने जीवनका अधिक काल इन औषधियोंसे निर्मित सत्वों द्वारा सेवा कार्यमें व्यतीत किया है। उनके मतानुसार अन्य औषधियोंकी अपेक्षा रत्नोंके सत्वार्कका प्रयोग विशेष सफलताप्रद हैं। यहाँपर उनके अनुभव अनुसार गुणदर्शन कराया जाता है।

रत्न	प्रवर्तित किरण, वर्ण	किरणवीर्य,	किरण परी-क्षणफल	त्रिदोष,	त्रिभूत,	रोगोपकारक गुण
हीरा	नीला	शीतल	धनात्मक (Positive)	कफ	जल	कफ-प्रधान ज्वर, प्रवाहिका, संग्रहणी, दृष्टिमांद्यादि नेत्र-रोग, वातविकार, पक्षवध, उन्माद, निद्रानाश, हिस्टीरिया, बालकोंका धनुर्वात, आक्षेप, वातप्रधान सन्निपात बधिरता, आशुकारी कास, नाड़ीव्रण, प्रदर, रजोरोध, नासारक्तस्राव, दन्तशूल।
माणिक्य	रक्त	उष्ण	ऋणात्मक (Negative)	पित्त	अग्नि	पाण्डु, निर्बलता, अन्त्रावरण, बालकोंका पक्षवध, श्वेताणुवृद्धि विकार, चित्तक्षोभ (Melancholia), नक्तान्ध्य, शक्तिक्षय, तिल, जतुमणि, न्यच्छ, व्यंग।
पन्ना	हरित्	शीतल	धनात्मक	कफ	जल	श्वास, रक्तदबाव (H. B. P,) विकार, हृदयरोग, विद्रधि, कर्कस्फोट (Cancer) वातनाड़ी-क्रिया-विकृति, वातनाड़ीशूल, सूर्यावर्त, वातप्रकोप, शीर्षशूल, शीतपित्त, अम्लपित्त, चक्कर आना, इन्फ्लुएञ्जा।
नीलम	बैंजनी	समशीतोष्ण (वातहर)	उदासीन (Neutral)	वायु	वायु	चर्मरोग, चिरकारी प्रदर, गृध्रसी, अपस्मार, मस्तिष्क-कलाप्रदाह, मूत्रयन्त्रकी निर्बलता, वातनाड़ी वेदना, आम-वातज शूल, क्षत, श्वेतकुष्ठ रक्ताभिसरण ह्रास (L. B. P.) संधिवात (सांधे जकड़ना), प्रवाहिका, मांसपेशियोंमें खिचाव, वातज शीर्षशूल, रक्तपित्त, अपतानक, अर्बुद।

रत्न	प्रवर्तित किरण, वर्ण	किरणवीर्य,	किरण परीक्षणफल,	त्रिदोष,	त्रिभूत	रोगोपकारक गुण
मोती	पीताभ	शीतल	धनात्मक	कफ	जल	उष्णता (दाह), चिरकारी श्वास, कीटाणुज्वर, कफ-प्रधान कास, चिरकारी आमवात, मूत्राशय प्रदाह, पित्ताशयाश्मरी मानसिक संकल्प ह्रास, विसूचिका, युवकोंका उन्माद, रक्तस्राव, रक्तपित्त, मासिकधर्म विकृति, राजयक्ष्मा गुदभ्रंश।
प्रवाल	पीत	उष्ण	ऋणात्मक	पित्त	अग्नि	आमवात, शुष्कार्श, वातार्श, मलावरोध, स्फूर्तिह्रास, वधिरता, मधुमेह, अजीर्ण, आध्मान, महाकुष्ठ, यकृद्-विकार, वातनाड़ी-क्रियाह्रास, चर्मरोग, आमाशय-विकृति मज्जाक्षय, ब्यूची, मानसिक शक्तिक्षय।
श्वेत पोखराज और स्फटिकमणि	आसमानी (हल्कानीला)	शामक (विषघ्न)	उदासीन	वायु	वायु.	स्वरयन्त्रप्रदाह, कण्ठविकार, गलग्रन्थिप्रदाह, (Tonsi-llitis), गलगण्ड (Goitre), तृषारोग, मोतीझरा, रक्तज्वर, वान्ति, अपचन (विदग्धाजीर्ण), अतिसार प्रवाहिका, विसूचिका, अर्श, कामला, नेत्राभिष्यन्द, वातनाड़ीविकृति, दन्तशूल, आर्तवशूल, निद्रानाश, मानसक्षोभ, शीतला, संन्यास, कुक्कुरकास।

रत्न चिकित्सा (Gem Therapy) के लेखकके मतानुसार—

ज्योतिष शास्त्रमें विभिन्न ग्रहोंके स्वाद पृथक् पृथक् दर्शाये हैं, ग्रहोंका स्वाद ही ग्रहरत्नोंका स्वाद माना जाता है। ज्योतिष शास्त्रमें माणिक्य कटु मोती कषाय, प्रवाल तिक्त, श्वेत पुखराज मधुर, हीरा अम्ल, नीलम लवण और पन्ना सर्व स्वादयुक्त माने गये हैं।

आयुर्वेदके शास्त्रके मतानुसार—

मधुर, अम्ल और लवण रस वायु शामक हैं।

मधुर, तिक्त और कषाय रस पित्त शामक होते हैं।

कटु, तिक्त और कषाय रस कफ शामक हैं।

आयुर्वेद शास्त्रानुरूप गुण—माणिक्य कटु होने से कफशामक, मोती कषाय रसात्मक होनेसे पित्त और कफ दोनोंको शान्त करता है। प्रवाल तिक्त होनेसे पित्त और कफ दोनोंका शमन करता है। पन्नामें छः हों स्वाद मिश्रित होनेसे वात, पित्त, कफ तीनोंका शामक, श्वेत पुखराज मधुर है, इसलिए वात और पित्तको शान्त करता है। हीरा अम्ल होनेसे और नीलम लक्षण रसात्मक होनेसे वातशामक माने हैं।

रत्नोंकी किरणोंके गुणधर्म—ज्योतिष शास्त्रके अनुसार वातनाड़ियाँ और वातनाड़ो संस्थान (Nervous System) का अधिपति शनैश्चर है। वहीनाड़ियोंकी क्रियाको अधिकारमें रखता है, तथा मज्जा धातुका अधिपति मंगल है वह पित्त और ऋणात्मक शक्तियुक्त है ज्योतिष शास्त्रके मतमें रस और रक्त स्थानमें विभेद नहीं माना गया है। उन दोनोंके ऊपर चन्द्रका अधिकार है जो धनात्मक शक्तियुक्त और शीतल गुण धर्म युक्त है।

विविध रंग प्रधान रत्न-किरणोंका देहके भीतर अवस्थित रक्त, मांस आदि संस्थानोंपर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता हैं। जैसे कि—

१. रस-रक्त संस्थान नारंगी रंगके अधिकारमें है।
२. माँस संस्थानपर हरे रंगकी किरणोंका अधिकार है।
३. मेद संस्थान और सब ग्रन्थियोंपर आसमानी रंग प्रधान किरणोंका है।
४. अस्थिसंस्थानपर रक्त वर्णकी किरणोंका आधिपत्य है।
५. मज्जा पीतवर्णकी किरणोंसे तथा वातसंस्थान बैंजनी किरणोसे पुष्ट होते हैं।
६. शुक्रसंस्थान नीलवर्णकी किरणोंद्वारा सबल बनती है।

इस विवेचनसे विभिन्न संस्थानोंके रोगोंका निवारण करने और उन को संपुष्ट बनानेके लिए किन किन रत्नोंका उपयोग किया जाये तथा प्रबल आपत्ति कालमें कौन सी किरणोंकी योजनाकी जाय।

१. बैंजनी वर्णकाह्रास होनेपर वातनाड़ियां पीड़ित होती है।

२. नीलवर्णकी न्यूनता होनेसे शुक्र विकृत होता है।
३. आसमानी वर्णकी कमी होनेसे ग्रन्थियाँ शिथिल हो जाती हैं।
४. हरे रंगकी न्यूनता होनेसे माँस संस्थान प्रभावित होता है।
५. पीतवर्णकी न्यूनता हो जानेपर मज्जा धातु दूषित होती है।
६. नारंगी रंग कम होनेपर रक्तमें विकृति आती है।
७. रक्तवर्णके ह्राससे अस्थिसंस्थानमें विकार उत्पन्न हो जाता है।

सूर्यके ताप, विविध भोजन, पेय, विशुद्ध वायु आदिसे जीवोंको नियमित वर्ण प्राप्त होते हैं। किन्तु जब नैसर्गिक रोग-निरोधक शक्ति (Natural Immunity) निर्बल हो जाय या कीटाणु या विषका देहमें प्रवेश होजाय, तब जीवोंकी उन वर्णोंकी किरणोंकी ग्रहण शक्ति शिथिल बन जाती है। ऐसी परिस्थितिमें रत्न अथवा अन्य औषधि द्रव्य या रोगशामक विशुद्ध वायुमण्डल और आहार विहारद्वारा रोग निवारण और स्वास्थ्य संरक्षणकर लेना चाहिए।

आयुर्वेद और यूनानीमें रत्नोंका उपयोग पिष्टी और भस्म रूपसे होता है। उससे रत्नोंका नाश होता है। ज्योतिष शास्त्रमें रत्नोंके धारणसे रोग निवारण और स्वास्थ्य रक्षा होनेका दर्शाया है। उससे रत्न नष्ट नहीं होते, किन्तु लाभ सत्वर नहीं मिलता। इस तरह दोनों प्रकारोंके प्रयोगोंमें भेद है।

श्री डा० वि० भट्टाचार्यने होमियोपेथीकी विधि अनुसार तीसरे मार्गका अवलम्बन लिया है। जिसमें रत्न नष्ट नहीं होते एवं लाभ भी शीघ्र मिलता है। यह विधि निम्नानुसार है—

१ ड्राम विशुद्ध सुरासार (अलकोहल Absolute Alcohol)या विशुद्ध मद्य सार (Rectifed Spirit) को भली प्रकारसे साफकी हुई एक बोतल में भरें। उसके भीतर हीरा, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, मुक्ता, प्रवाल या स्फटिक इनमेंसे कोई भी एक, आधसे १ रत्ती ($\frac{१}{९६}$ तोला) डालें। मोती डालें तब १ मोती डालें। इस तरह प्रवाल शाखाका १ टुकड़ा डालें। फिर नया डाट लगा शीशीको बन्दकर पेटीके भीतर १ सप्ताह रख देवें। फिर बाहर निकालकर शीशीको कुछ समय तक हिलावें। पश्चात् रत्नको बाहर निकाल लेवें। फिर उसमें होमियोपेथीकी विधिसे बनी हुई नं० २० की दुग्ध-शर्कराकी गोलियाँ डालकर ऊपर नीचे धुमाकर गोलियोंको भिगो देवें। कुछ घण्टोंके पश्चात् इन गोलियोंको स्वच्छ श्वेत कागजपर सुखा देवें उन्हें शीशीमें भरकर लेबल लगा लेवें।

इस प्रकारसे गोलियां वर्ण प्रधान रत्नके अनुरूप गुणधर्म दर्शक बन जाती हैं। रत्न जैसाका वैसा मिल जाता है।

क्वचित् एकाधिक वर्णका ह्रास होनेपर रत्न-मिश्रणका प्रयोग किया

जाता है। इसलिए नीलम, हीरा, श्वेत पुखराज और पन्ना चारोंको मिलाकर सुरासार तैयार किया जाता है। इसी तरह उक्त सातों रत्न मिलाकर सुरासार बना लिया जाता है।

नीलम, हीरा, श्वेत पुखराज और पन्ना प्रधान वर्ण द्रव्यमें उन सबका गुण आता है जो जीर्ण मुद्दतीज्वर और विविध प्रकारके नूतन तीव्रज्वरमें अपना चमत्कार दर्शाता है। इस तरह सप्त रत्नोंके गुणधर्म आकर्षित कराये सुरासार युक्त गोलियां अति जीर्ण और घातक रोगोंमें व्यवहृत होती हैं। इन सब रत्न मिश्रित सुरासारोंसे निर्मित गोलियोंका उपयोग एक एक दिनके अन्तरपर किया जाता है।

मात्रा—सामान्यत: एक समयमें ४ गोली है। दिनसे ३ बार दी जाती है। फिर चिकित्सक रोग, रोगी, ऋतु, शक्ति आदिका विचार करके मात्रा और समय निर्णय करें, उसे विशेष अच्छा मानेंगे।

यह विवेचन (Gem Therapy) और उसका हिन्दी अनुवाद रत्न चिकित्साके आधारसे लिखा है। विशेष देखना हो, वे मूल ग्रन्थ देखें।

(१७) वज्र (हीरा) भस्म

प्रथम विधि—हीरा (Diamond) यह शुद्ध कोकिल (Carbon) जातिका खनिज है। इसकी कठोरताको १० संख्यासे व्यक्त करते हैं। अब तकके ज्ञात द्रव्योंमें यह सबसे कठोर द्रव्य है। इसकी भस्म बनाना सहज नहीं है। शास्त्रोंमें भस्म बनानेके अनेक विधान लिखे हैं सिद्धि एक या दो योगोंसे मिलती है।

प्रथम हीरा शोधन—नीचे लिखा विधान शास्त्र परम्परासे अनेक बार का अनुभूत है। हीरेकी रज+(Diamond Dust) को सुनारकी सोना पिघलानेकी एक मूषामें रख खूब तेज आंचपर लालकर शुद्ध पारद भरे हुए चीनीके कटोरेमें बुझावें। मलमलके कपडेसे छानकर हीरक रज प्राप्त करें। इस प्रकार सो बार करनेसे हीरा शुद्ध होकर भस्मके योग्य बन जाता है। हीरेकी रज न मिले तो कण भी इस विधिसे भस्म योग्य हो जाते हैं। हीरेका बारीक चूर्ण बेलजियमसे आता है। संसारमें सबसे अधिक हीरेको व्यवस्थित आकार देनेके लिये घिसाईका कार्य बेलजियममें होता है। भारत वर्षमें पन्नास्टेट (बुन्देल खण्ड) और दक्षिण हैद्राबादमें भी यह कार्य अल्प मात्रामें होता है।

+हीरेकी रज दो प्रकारको आती है। एक औषधोपयोगी, दूसरी रासायनिक कार्योपयोगी। जिसपर (Only for chemical use) लिखा हो। उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। यह बहुधा कृत्रिम होती है।

हीरा भस्म विधान—शुद्ध हीरकको शुद्ध ताल (हरिताल), शुद्ध गन्धक शुद्ध हिंगुल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, समान भागमें मिलाकर सीमाककी खरल में बडे बेर (राजकोल) और पिप्पली छालके क्वाथकी ७-७ भावना देवें। प्रत्येक बार सुखाकर गजपुट दें। इस तरह भस्म होने तक १४ या अधिक गजपुट देते रहें।

वक्तव्य—सुवर्णमाक्षिकभस्म केवल एक ही बार मिलावें। शेष द्रव्य अन्य पुटोंमें बराबर देते रहें।

यह भस्म अत्यन्त उग्र होती है। अतः अति सम्हालपूर्वक उपयोगमें लेनी चाहिये। (स्व० वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी)

वक्तव्य—हम हीराके मूल्यवान् कणोंकी भस्म बनाते हैं। इन कणोंका शोधन मृदुता आने तक किया जाता है। अन्यथा पुट देनेके लिए लोहे या पत्थरकी खरलमें घोटा नहीं जायगा। हीरेको शिला, ताल, हिंगुल आदिके साथ मिला औषध रस डालकर एक जीव करें, फिर टिकिया बना (या बिना टिकिया बनाये) सम्पुटकर अग्नि देवें।

सम्पुटके लिए दृढ़ मुद्रा करें जिससे कि भीतरका पारद और मल्ल बाहर न निकल जाय।

हीरेके साथ ताल, हिंगुल, शिला आदि मारक रूपसे जो मिलाये जाते हैं, वे सब प्रभावित हो जाते हैं। जिससे ताल, हिंगुल आदिका उड्डयनशील धर्म दब जाता है।

दूसरी शोधन विधि—शुद्ध किये हुए हीरेके कणोंको अभ्रकके पतरेपर रख, अग्निमें तपा-तपाकर मेंढकके मूत्रमें लगभग २५ बार बुझाते जायँ। तथा गदहे या घोड़ेके मूत्रमें करीब २०० बार बुझानेसे हीरेका रंग बदल जाता है। चमक मिट जाने तक तपा-तपाकर बुझाते रहें। अभ्रकके पतरे सहित हीरेके कणोंको मेंडकके मूत्रमें डुबानेसे हीरेके कणोंको एक पतरेसे दूसरे पतरेपर रखनेमें आसानी रहती है। इन कणोंको चीमटेसे उठाना चाहिये। हाथ न लगावें अन्यथा हीरेका जहर अँगुलियोंमें प्रवेश कर जाता है। फिर वहांपर कुष्ठके समान सफेद दाग हो जाते हैं। बार-बार अभ्रक का पतरा बदल देना चाहिये।

मूत्र लेनेके लिये एक बड़े मेंढकके चारों पैर बाँधकर काँसीकी थालीमें चित रखकर थालीको अंगारोपर टेढी रखें। मेंढककी पीठको उष्णता लगनेपर वह मूत्रकर देता है। बादमें मेंढकको खोल दें। एक ही बड़े मेंढक के मूत्रसे हीरा निस्तेज हो जाता है।

द्वितीय विधि (धातुवादोपयोगी भस्म)—उपरोक्त विधिसे ४-६ माशे हीरेके कणोंको निस्तेजकर सुनारकी सोहागा मिली हुई मिट्टीकी छोटी कटोरीमें नीमका आधा पत्ता रख, उसपर हीरेके कणोंको रखें। बादमें

नीमका आधा पत्ता ऊपर रखकर दूसरी समान नापवाली कटोरी ढककर मजबूत कपड़ मिट्टीकर सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर एक मिट्टीके घड़ेमें चारों ओर अनेक छिद्र कर २।। सेर वबूलके कोयले भरें। उसके बीचमें संपुट रखकर अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। स्वांग शीतल होनेपर संपुट मेंसे सम्हालकर भस्म निकाल लेवें। इस भस्मको हींग और सेंधानमक मिलाये हुए कुलथीके क्वाथमें खरलकर टिकिया बनावें। पश्चात् सरावसंपुट करके २-३ गोवरीकी अग्नि देवें। इस तरह करीब २३ पुट देनेसे हीरेकी भस्म बन जायगी। (श्री० पण्डित नन्ने मिश्र)

तीसरी शोधन विधि—हीरेके कण १ तोलेको लोहेकी कटोरी या कलछो में रखकर गरम करें*। फिर गुलाबजलमें बुझावें। पुनः विना हाथ लगाये निकाल गरम करके बुझावें। इस तरह १०८ बार बुझानेसे हीरेके कणोंका सरलतासे चूर्ण हो सकता है। उसका चूर्ण करनेपर चूर्ण काला चमकीला चंद्रिकायुक्तसा होता है। इसे गुलाब जलमें खरलकर टिकिया बना संपुटकर २ सेर गोबरीकी अग्नि देवें। फिर निकाल उसी तरह खरलकर अग्नि देवें। इस तरह १४ पुट देवें। फिर घीकुंवारके रसके १४ पुट देवें। कमी हो तो घीकुँवारके २१ पुटतक देने पड़ते हैं। इस तरह २८ से ३५ पुट देनेपर चन्द्रिका रहित मुलायम और मैले लाल रङ्गकी भस्म तैयार हो जाती है। (र० यो० सा०)

मात्रा—१/१०० से १/२० रत्ती, दुग्ध शर्कराके साथ या अन्य औषधियोंके साथ मिलाकर देवें।

हीरेके गुण—आयुष्प्रदं झटिति सद्‌गुणदं च वृष्यं
दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम्।
सूतेन्द्रवंधवधसतगुणकृत् प्रदीप्तं
मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम्॥ (र० र० सा०)

हीरा आयुको बढाता है; तत्काल विभिन्न प्रकारके गुणोंको पहुँचाता है, एवं वृष्य, तीनों दोषोंका शामक तथा समग्र रोगोंका नाशक है। इसके अतिरिक्त पारदको बांधता है, भस्म बनाता है और उसके रसायनादि गुणों को बढ़ाता है। हीरा अग्नि प्रदीपक है। मृत्युको नष्ट करता है। संक्षेपमें हीरा अमृत सदृश उपकारक है।

हीरा भस्म देहके भीतर होने वाले पूयक्षत, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer) गुल्म आदिपर सफलतामह कार्य करती है।

---

* उत्तम जातिके कण होनेपर पहले १०० बार मेंडक मूत्रमें, फिर १०० बार गर्दभ मूत्रमें बुझावें। तत्पश्चात् १०० बार गुलाबजलमें बुझावें। अन्यथा हीरा मृदु-नहीं होता, एव भस्म भी सत्वर नहीं बनती।

हीरा भस्म १ रत्तीके साथ सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी और अभ्रक भस्म २-२ माशे मिलाकर ४८ पुड़ी बनालें। प्रतिदिन सुबह १ पुड़ी मलाई-मिश्री के साथ देनेसे कर्कस्फोट आदि ग्रन्थियां गलकर नष्ट हो जाती हैं।

रसकामधेनुमें रसमार्तण्डके उद्धरण अनुसार रत्नोंके मुख्य गुण संक्षिप्तमें निम्न शब्दोंमें दर्शाये हैं।

वज्रं तु सर्वामयपर्वतेषु वज्रोपमं मौक्तिकमग्निवृद्धिम्।
श्रीपद्मरगोऽङ्गिषु पद्मरागसङ्गं तनोत्येव विशेषतस्तु ॥
सुशक्रनीलो रसवन्धनेष्टः ससेवितो नेत्र विकार-हारी।
गारुत्मतं सर्वविषे प्रशस्तं मिष्टं च सर्वेषु रसायनेषु ॥
पातालसिद्धिं गगने चरत्वं करोति सूतोऽश्र तरक्षुयुक्तः।
वैदूर्यरत्नाद् वरशुक्रवृद्धि बलवृद्धि जठरानलस्य ॥
सकृत्रिमस्थावरजङ्गमानि श्रीपुष्परागश्च विषाणि हन्यात्।
गोमेदयोगाद् बलरूपवृद्धि सुवीर्य वृद्धि बलविक्रमौ च ॥
पुष्टि कान्ति बल वीर्य वर्द्धनं विद्रुमं तु कफवातपित्तजित्।
रक्तरोगहरणं क्षतक्षयाक्ष्यामयघ्न मुदितं कषायकम् ॥
सर्वाणि रत्नानि च दीपनानि रसेन्द्रयुक्तान्यमृतोपमानि।
यो यस्य वर्णःखलु दृश्यते हि तादृग् विधं तस्य वपुर्विधत्ते ॥

वज्र (हीरा) सब रोगरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेमें वज्रके समान कार्य करता है।

मुक्ता अग्निको प्रदीप्त करता है।

पद्मराग (माणिक्य) देहको माणिक्यके रङ्गके समान तेजस्वी बना देता है।

शक्रनील (नीलम) रस बन्धक है। नेत्र रोगोंको दूरकर दृष्टिको तेज बनाता है।

गारुत्मत् (पन्ना) सब प्रकारके विषोंको नष्ट करता है एवं सब रोगोंमें रसायन गुण दर्शाता है। इनके अतिरिक्त पन्ना-जारित पारद पाताल-सिद्धि (पृथ्वीके अन्तर्गत रहे हुए पदार्थोंको देखनेकी शक्ति) और आकाशमें गमन करनेकी शक्ति (समाधि सिद्धि) प्रदान करता है।

वैडूर्य (लशुनिया) शुक्रवर्द्धक और अग्नि प्रदीपक है। पुष्पराग कृत्रिम विष सह स्थावर और जंगल विषको भी दूर करता है।

गोमेद कान्तिप्रद, बल और साहस शक्तिप्रद है। विद्रुम (प्रवाल) पुष्टि, कान्ति, बल और वीर्यवृद्धिकर है तथा कफ, वात और पित्त तीनोंको जीतने वाला है। इस तरह रक्त-विकार, क्षत-क्षय और नेत्र रोग आदिका नाशक और कषाय (रक्तस्रावस्तम्भक) आदि गुणप्रद है।

सब रत्न अग्निप्रदीपक हैं एवं पारद युक्त (या रत्न जारित पारद)

होनेपर अमृत तुल्य फलप्रद हैं ।

उपयोग—वज्र भस्म सब प्रकारके वातरोग, पित्तप्रकोप, कफवृद्धि, त्रिदोष शोष, क्षय, भ्रम, भगंदर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग, नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करती है । क्षयकी दूसरी अवस्थामें तो लाभ पहुँचाता ही है, परन्तु तीसरी अवस्थामें भी वज्रभस्मवाला रसायन त्वरित लाभ पहुँचाता है । विविध रोगोंके कीटाणुओंको नष्ट करता है; वातवाहिनियों और उनके केन्द्र स्थानको दृढ़ बनाता है और जीवनीय शक्तिको सबल बनाता है । इन कारणोंसे वज्रभस्म मिश्रित प्रयोग अनेक रोगोंमें उपकार दर्शाते हैं । संक्षेपमें वज्र भस्म शारीरिक और मानसिक निर्बलताको दूर कर शरीरको वज्र समान बलवान और कान्तिवान् बनाती है तथा आयुकी वृद्धि करती है ।

हीराभस्म उत्तम हृद्य, उत्तेजक और शूलहर होनेसे हृच्छूल (Angina Pectoris) जिसमें छातीमें तीक्ष्ण शूल चलकर मूर्च्छा आजाती है तथा मिथ्या हृच्छूल (Angina Pectoris Vasomotoria) जो हृदययन्त्रके बाहर चलता है, दोनोंपर तत्काल गुण दर्शाती है । धमनीमें यदि रक्तसंग्रह हो गया हो या अवरोध होता हो, तो उसे भी यह दूर करती है एवं वात नाड़ियोंको बल देकर रोगको निवृत्त करती है ।

(१८) माणिक्य भस्म (कुश्ता याकूत)

प्रथम विधि—शुद्ध माणिक्य (Ruby) को दृढ़ लोह खरलमें पीस, सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें सम-भाग गन्धक, मैनसिल और हरतालको मिला, कटहलके रसमें १२ घण्टे घोट, टिकिया बाँधकर सूर्यके तापमें सुखावें । फिर सराव संपुटकर २ सेर उपलोंकी अग्नि दें, इस रीतिसे १० बार अग्नि देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है । सुनार जिस सरावको सोहागा और मिट्टी मिलाकर बनाते हैं उसका उपयोग करना चाहिये ।

वक्तव्य—माणिक्य, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि रत्न जिसकी भस्म या पिष्टी बनानी हो, उत्तम जातिके पक्के दाने लेना चाहिए । जो बाजारमें खरड़के नामसे बिकते हैं, वे सब कच्चे हैं । उनसे रत्नोंके यथोचित गुण नहीं मिल सकेंगे । वैद्यराज पं० श्री सुखरामदास टी० ओझा माणिक्यादि रत्नों की भस्म कई बार बनाते थे । वे माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, वैक्रान्त गौमेदमणि, राजावर्त और वैडूर्यमेंसे जिसकी भस्म बनानी हो, उसे ४० तोले लेकर सुवर्ण गलानेकी मूसके भीतर भरते थे । फिर तीव्राग्निमें रखकर खूब तपाकर गुलाबजलमें बुझाते थे । उसे निकाल पुनः मूसमें भर, तीव्राग्निमें

रखकर खूब तपाकर गुलाबजलमें बुझाते थे। इस तरह गुलाबजल या केवड़ेके अर्कमें ५० से १०० बार तक बुझाकर गुलाबजलमें एक सप्ताह खरलकर छोटी छोटी टिकिया बना सम्पुटकर १० सेर गोबरीकी अग्नि देते। इस तरह ७ पुट देनेपर उत्तम भस्म होती है। यह विधि उत्तम है। इस प्रकारसे बनाई हुई भस्म तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

विशेष—माणिक्यका रङ्ग लाल होता है। जो माणिक्य लाल रङ्गका होनेपर भी बैंजनी आभावाला हो उत्तम माना है। गुलाबी रङ्गवालेको न्यून माना है। यह रत्न कठोर है। इसकी कठौरता हीरेसे कुछ कम है। इस रत्नके टुकडे गोल, त्रिकोण, चौकोण, अष्टकोण, आदि होते हैं। भस्म बनानेके लिये छोटे कणोंका उपयोग होता है।

मात्रा—अनुपान और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

दूसरी विधि—शुद्ध माणिक्यको तपा तपाकर १०० बार बुझाकर फिर चूर्ण करके गुलाबजलमें १५ दिनतक खरल करनेसे पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्मके स्थानपर उपयोगमें आती है। अनेक यूनानी हकीम केवड़ा, चन्दन और गुलाबको साथमें मिलाकर अर्क निकालते हैं। फिर माणिक्यकी खरड़को उसमें १०-२० समय बुझा, उसी अर्कमें खरल करके पिष्टी बना लेते हैं। (रसा० सा० सं०)

मात्रा—आधीसे १ रत्ती तक; मलाईके साथ दिनमें एकसे दो बार अथवा सुवर्णके वर्क और शहद या खमीरे गांवजवांसे या एलादि मन्थके साथ।

आचार्योंने निम्न वचनसे माणिक्य आदि रत्नोंकी पिष्टीको भस्मकी अपेक्षा अधिक गुणप्रद माना है।

रत्नानां शोधनं श्रेष्ठं मारणं न गुणप्रदम्।
भस्मना वीर्यहानिः स्यात्तस्मात्तानि विशोधयेत्॥

अर्थात् रत्न मणियोंकी भस्म बनानेपर वीयह्रास होता है, पिष्टी बनानेमें नहीं।

गुणधर्म—माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्।
भूतवेतालपापघ्नं कर्मजव्याधिनाशनम्॥ (र. र. स.)

माणिक्य शीतवीर्य, दीपन, वृष्य, कफघ्न, वातहर, राजयक्ष्मानाशक, भूतोन्मादका नाशक एवं पापकर्मसे उत्पन्न व्याधियोंको दूर करता है एवं सूर्यग्रहकी पीड़ाको शान्त करता है।

उपयोग—माणिक्य वातनाड़ी पौष्टिक होनेसे भूतोन्माद, वातविकार, स्मृतिह्रास, निद्रानाश और मस्तिष्ककी उष्णताको दूर करनेमें सहायता पहुँचाता है। यह पिष्टी राजयक्ष्मा और अन्य कीटाणु प्रधान घातक रोगोंके कीटाणुओंका नाश करके शक्ति प्रदान करती हैं। संक्षेपमें यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंकी विकृतिको दूरकर रसादि सब धातुओंको सबल बनाती है।

मधुमेह जनित निर्बलतापर मुक्तापिष्टी और गुड़मारके अर्कके साथ

माणिक्य पिष्टी देते रहनेसे निर्बलता दूर होती है; मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं तथा रक्तमेंसे विष कम हो जाता है।

जो माणिक्य भस्म उत्तम जातिके मूल्यवान् कठोर कणोंसे बनाई जाती है, उसीमें उपरोक्त गुण पाये जाते है। खरड़से बनी भस्मसे बहुत कम लाभ मिलता है।

(१९) गोमेदमणि भस्म।

प्रथम विधि—मैनसिल, हरताल और गन्धकको समभाग लें और सबके बराबर शुद्ध गोमेदमणि (Onyx) का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर कटहलके रसमें १२ घण्टे खरलकर २ सेर आरण्य कण्डोंकी आंच देवें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म बन जाती है। (रसेन्द्र चिन्तामणि) (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, मलाई, एलादि मन्थ या शहदके साथ देवें।

गुणधर्म—गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम्॥ (र० र० स०)

गोमेदमणि कफपित्तघ्न, क्षय और पाण्डु रोगका नाशक, दीपन, पाचन, रुचिकर, त्वचा पौष्टिक, मुखमण्डलपर तेजी लाने वाला और बुद्धिवर्द्धक है। यह बल्य, वीर्यवर्द्धक, आयुवर्द्धक और राहुग्रहकी पीड़ाका शामक है।

उपयोग—गोमेदमणि शीतवीर्य, मस्तिष्क बलवर्द्धक और हृदय पौष्टिक है। अपस्मार, चित्तविभ्रम (मानसिक उदासीनता), उन्माद, पक्षाघात, अर्दित और निद्रानाशमें अपना प्रभाव विशेष रूपसे दर्शाती है। हृदयकी निर्बलता और धड़कनको दूर करती है। मस्तिष्कमें उग्रता बढ़नेपर यह कस्तूरी, केशर और शहदके साथ दी जाती है।

दूसरी विधि—माणिक्यमें कही गई रीतिसे चन्दन, गुलाबके फूल और केवड़ेको मिला अर्क निकाल, उसमें घोटकर पिष्टी बना लेवें।

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार। भस्मकी अपेक्षा पिष्टी विशेष सौम्य होती है।

(२०) तार्क्ष्य (पन्ना) भस्म (कुश्ता जमुर्रद)

प्रथम विधि—मैनफलके रसमें अलसी और सोंठको पीसकर कल्क बनावें। इस कल्कके बीचमें शुद्ध पन्नाको रख. संपुट कर २ सेर गोबरीमें फूंक दें। इस रीतिसे २० पुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म बनती है। पन्ना बिखर जाय तब मैनफलके रसमें टिकिया बांध, संपुट करके गजपुट देना चाहिये। (रसा० सा० सं०)

दूसरी विधि—शुद्ध पन्नाके बारीक चूर्णमें समभाग मैनसिल, हरताल और गन्धक मिला कटहलके रसमें खरलकर, टिकिया बांध, सूर्यके तापमें सुखाकर २ सेर आरण्य कण्डोंकी अग्नि दें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म बनती है। (र० र० स०)

यूनानी हकीम पन्नेको घीकुंवारके रसमें खरलकर टिकिया बांध, १० सेर आरण्य कण्डोंमें केवल एक ही समय फूंककर भस्मको उपयोग में लेते हैं।

तीसरी विधि—माणिक्य पिष्टीके समान पिष्टी बना लेवें।

मात्रा—आध से १ रत्ती, शहद और पीपलके साथ देवें।

ज्वरच्छर्दि - श्वास - सन्निपाताग्निमांद्यनुत्।
दुर्नाम - पाण्डु शोफघ्नं तार्क्ष्यभोजोविवर्द्धनम् ॥(र०र०सा०)

उपयोग—यह भस्म ओजवर्द्धक है। ज्वर, सन्निपात, वमन, तृषा, विष-विकार, अम्लपित्त, श्वास, कास, पाण्डु, मलावरोध अर्श और शोथ आदिको दूर करती है तथा अग्निप्रदीप्त करके ओजको बढ़ाती है, यह शीतल गुण-वाली है। इसलिए उष्ण प्रकृति वालेके लिये अति हितकर है,आमाशय और हृदयकी निर्बलताको दूर करती है, क्षय, बहुमूत्र और मधुमेहमें लाभदायक है, आयु और स्मरणशक्तिकी वृद्धि करती है, भूतबाधा और बुधग्रही पीड़ाको शांत करती है। इस भस्मको सर्प विषकी उत्तम औषधि माना है।

(२१) वैडूर्य भस्म।

बनावट—वैडूर्य (लसुनिया) की माणिक्यमें लिखी विधि अनुसार भस्म अथवा पिष्टी बना लेवें।

यह रत्न अन्य रत्नोंकी अपेक्षा न्यून महत्व वाला है। यह रत्न हरे-पीले, सफेद, सोना सदृश, काले नीले, आदि अनेक रंगके मिलते है। इस रत्नको वस्त्र आदिपर घिसनेसे विद्युत् उत्पन्न होती है।

मात्रा—आधी से १ रत्ती, घृत-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ।

वैडूर्यं रक्त पित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्द्धनम्।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलगोचनम् ॥

उपयोग—यह भस्म पित्त विकार और रक्तपित्तमें गिरने वाले रक्तको शांत कर अग्निको प्रदीप्त करती है और आयुको बढ़ाती है। क्षय और संग्रहणीमें अति लाभदायक है। केतुग्रहकी पीड़ाको दूर करती है।

(२२) पुष्पराग (पुखराज) भस्म।

विधि—शुद्ध पुखराजके सूक्ष्म चूर्णमें समभाग गन्धक, हरताल और मैनसिलको मिलाकर पक्के कटहलके रसमें १२ घण्टे खरलकर, टिकिया बाँध सूर्यके तापमें सुखा संपुटकर ५ सेर गोबरीकी अग्नि देवें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म हो जाती है। अथवा माणिक्यमें लिखी रीतिसे पिष्टी बना लेवें। (र० र० स०)

मात्रा—आध से १ रत्ती, शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ।

गुणधर्म—पुष्परागं विषच्छर्दि-कफ-वाताग्निमान्द्यनुत्।
दाहकुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ (र० र० स०)

उपयोग—यह भस्म हरताल और मनःशिलाके योगसे बननेपर उग्र बनती है। यह भस्म कीटाणु नाशक, पित्तवर्द्धक और बल्य है। पिष्टी बनानेपर सौम्य होती है। पुखराज विषविकार, वमन, वातप्रकोप, कफ-विकार, दाह, रक्तविकार, अर्श, कुष्ठ और मन्दाग्निको दूर करता है तथा अग्निको प्रदीप्त करता है। क्षय और धातुशोषमें अति हितकर है। स्थावर जंगम विष और कृत्रिम विष जो धातुओंमें लीन हो गया हो, उसे यह दूर करता है। पुखराजसे गुरुग्रहकी बाधा दूर होती है।

(२३) नीलमणि (नीलम) भस्म

विधि—पुष्परागमें लिखी रीतिसे भस्म या पिष्टी बना लेवें। यह रत्न माणिक्यकी खानमेंसे मिलता है। इसके विविध आकारके स्फटिक निकलते हैं। यह काश्मीर, पटियाला, ब्रह्मदेश, लङ्का, (सीलोन) और श्याम देशमें मिलता है। इसकी कठोरता हीरेसे कम और माणिक्यके करीव समान होती है।

मात्रा—½ से १ रत्ती, दिनमें २ बार, शहद और पीपलके साथ अथवा मक्खन मिश्रीके साथ।

गुणधर्म—श्वास-कासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम्।
विषमज्वर दुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम्॥

उपयोग—यह भस्म वृष्य, आयुवर्द्धक, वल्य, पाचक और त्रिदोषघ्न है। उन्माद, वातरोग, श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर और अर्श आदि रोगोंको दूर करती है, अग्नि प्रदीप्त करती है और सर्व धातुओंको पुष्ट बनाती है। नीलम धारण या सेवनसे शनिग्रहकी बाधा दूर होकर आयु और कांति बढ़ती है।

(२४) राजावर्त भस्म

प्रथम विधि—शुद्ध राजावर्तको इमामदस्तेमें कूट, समभाग गन्धक मिला बिजौरेके रसमें १२ घण्टे खरलकर, टिकिया बनाकर सूर्यके तापमें सुखायें। फिर संपुटकर गजपुटमें फूकें। इस रीतिसे ७ पुट देनेसे उत्तम मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म बन जाती है। (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती। दिनमें २ से ३ बार, मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

गुणधर्म—प्रमेह क्षय-दुर्नाम-पाण्डु श्लेष्मानिलापहः।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः॥ (र० र० स०)

उपयोग—राजावर्त शीतल, गुरु, दीपन, पाचन, वृष्य और रसायन है। इस हेतुसे यह भस्म पित्तप्रकोप, अतिसार, अर्श, क्षय, पाण्डु, कफदोष, वात-विकार और पित्त-प्रधान प्रमेह आदि रोगोंको दूर करती है और पाचन-शक्ति बढ़ाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध राजावर्तको कूट, सूक्ष्म चूर्णकर सेवके स्वरसके साथ १४ दिन तक खरल करें। फिर खरलमें सेवका स्वरस पिष्टीके ऊपर एक अंगुल रहे उतना भर देवें और सम्हाल कर ३-३ घण्टे तक ३ दिन घोंटते रहें। बादमें स्वच्छ स्वरस ऊपर-ऊपरसे निकल सके, उतना निकाल लेवें। फिर खरल करके पिष्टी बना लेवें। (पं० नन्नै मिश्र)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक, दिनमें २-३ वार, शहद, खमीरा गावजवां, गुलकन्द अथवा आंवलोंके मुरब्बेके साथ देवें।

उपयोग—यह पिष्टी क्षयरोगमें कफ, दाह और पित्तवृद्धि होकर होने वाले अतिसार; अर्श पाण्डु, पित्तप्रमेह और शारीरिक निर्बलताको दूर कर शरीरको बलवान् बनाती है, तथा मदात्यय रोगमें निद्रा न आना, अरुचि, नेत्रलाली, दाह, बेचैनी आदि लक्षणोंका शमन करती है। उन्माद, चित्त-विभ्रम, चक्कर आना आदिको भी दूर करती है।

(२५) वैक्रान्त भस्म।

विधि—शुद्ध वैक्रान्तको सावधानीसे कूट या खरलकर बारीक चूर्ण करें। फिर समभाग गन्धक मिला, खट्टे नींबूके रसमें राजावर्तके समान खरलकर गजपुट दें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे मुलायम, मैले लाल रंगकी भस्म तैयार होती है। मुलायम न हो तो दो पुट अधिक देने चाहिये : (आ. प्र.)

मात्रा—½ से ¼ रत्ती तक, रोगानुसार अनुपानके साथ।

गुणधर्म-वैक्रान्त (तोरमल्ली) के गुणवर्णनमें आचार्योंने लिखा है कि:-

भस्मत्वं समुपागतो विक्रतको हेम्ना मृतेनान्वितः,
पादांशेन कणाऽऽज्यवेल्लसहितो गुञ्जामितः सेवितः ॥
यक्ष्माणं जरणञ्च पाण्डुगुदजं श्वासञ्च कासामयं,
दुष्टाञ्च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद् देहकृत् ॥ (र. र. स.)

वैक्रान्त भस्मके साथ सुवर्ण भस्म चतुर्थांश मिलावें। फिर आध आध रत्तीको पीपल और वायविडङ्गके चूर्णके साथ मिला, थोडे घी के साथ सेवन करें।

यह वैक्रान्त यक्ष्मा, वृद्धावस्थाकी निर्बलता, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, दुष्ट ग्रहणी, उरःक्षत और मुखरोग आदिको दूर करता है एवं देहको सबल बनाता है।

उपयोग—वैक्रान्तको उत्तम गुणके हेतुसे हीरेका उपरत्न माना जाता है। इसकी भस्म त्रिदोषघ्न, षड्रस युक्त और रसायन गुणवाली है। सब धातुओंकी निर्बलता, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, श्वास, कास, धातुविकार, क्षय, प्रमेह, वात, पित्त और कफ प्रकोपको दूरकर आयुकी वृद्धि करती है। हीराभस्मके अभावमें वैक्रान्त भस्म ली जाती है।

(२६) मुक्ता भस्म

प्रथम विधि—२ तोले शुद्ध मोतीको सीमाककी खरलमें घोटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें १२ घण्टे घी कुंवारके रसमें घोट टिकिया बनाकर धूपमें सुखावें। पश्चात् सराव संपुटकर २ सेर गोबरीकी आंच देवें। दूसरी बार गायके दूधमें खरल कर, टिकिया बाँध, सराव सम्पुट करके २ सेर आरण्यकण्डोंकी अग्नि देनेसे श्वेत मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा—आधसे १ रत्ती तक, दिनमें २ बार, दूध-मिश्री, मलाई, मक्खन गुलकन्द, आँवलोंका मुरब्बा, च्यवनप्राशावलेह या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुणधर्म—मुक्ताफलं लघु हिमं मधुरं च कान्ति-
दृष्ट्यग्निपुष्टिकरणं विषहारि भेदि।
वीर्यप्रदं जलनिधेर्जनिता.............. (र. र. स.)

उपयोग—मुक्ताभस्म कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य दाह, उन्माद, वातरोग, नपुंसकता आदि रोगोंको दूरकर शरीरको पुष्ट बनाती है और आयुकी वृद्धि करती है।

अग्निपुटी मुक्ताभस्मकी अपेक्षा मोतीपिष्टी बनाना विशेष हितकर है। अग्नि पुटी भस्मका उपयोग शंख, वराटिका, शुक्तिकी अपेक्षा तो अधिक लाभप्रद होता है, परन्तु अत्यधिक अन्तर नहीं है। अतः गुलाबजलमें खरल कर मुक्ता पिष्टी तैयार करनेकी पद्धति अच्छी है। पिष्टीमें सच्चे मुक्ताके गुण दीखते हैं।

दूसरी विधि—मोतीको पहले सीमाककी खरलमें सूक्ष्म चूर्णकर सीमाक के या चीनी मिट्टीकी खरलमें गुलाबजलके साथ २१ दिन तक खरल करनेसे पिष्टी तैयार हो जाती है।

मात्रा—आधीसे १ रत्ती। दूध, गुलकन्द, चन्दनका शर्बत, गुलाबका शर्बत या सितोपलादि चूर्ण, चाँदीके वर्क और शहदके साथ।

उपयोग—यह पिष्टी नेत्ररोग, धातुक्षीणता, क्षय, उरःक्षत, हृदयकी निर्बलता, खाँसी, जीर्णज्वर, हिक्का, भ्रम, नाकमेंसे रक्तगिरना, मस्तिष्ककी निर्बलता, नेत्रदाह, शिरदर्द, पित्तवृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि दोषोंको दूर करती है। मोतीके सेवनसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता कम होती है तथा नेत्र ज्योति बढ़ती है। यह पिष्टी शीतवीर्य और मूत्रल है। मूत्रमार्ग और सर्वाङ्गका दाह और पित्त वृद्धिका शमन करती है। निद्रा-नाशके समय किसी भीरोगमें मुक्तापिष्टीसे निद्रालानेमें सहायता भी मिलतीहै।

अत्यन्त त्रास, अत्यन्त क्रोध, अति जागरण, अति अभ्यास, अति मान-

सिक श्रम, अति उष्ण पदार्थ सेवन, सूर्यके तापका सेवन इन कारणोंसे मस्तिष्कको त्रास होता है । यह शिथिलता और मामूली कारणसे क्रोध करना, विचारहीनता, ऊँचा शब्द, कठोर स्पर्श, तीव्र बास, थोड़ा बेस्वादु भोजन, विचित्र या भयानक रूप, बड़ी आवाज, स्पर्श, आदि विषयोंका असहनत्व, थोडे विचारमें ही मस्तिष्क फिर जाना, सर्वाङ्ग और मस्तिष्कमें दाह, निद्रानाश इत्यादि अधिक बढ़े हुए विकारोंपर मुक्तापिष्टीका उपयोग बहुत अच्छा होता है ।

बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुँचने या शराब, गाँजा, धतूरा आदि तीक्ष्णवीर्य, उष्ण और विकाशी पदार्थोंके अति सेवनसे मस्तिष्ककी विकृति होकर उन्मादका विकार (विशेषत: पित्तज उन्माद) होनेसे मुक्तापिष्टीका बहुत अच्छा उपयोग होता है । इस विकारमें मुक्तापिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म अथवा मोती और प्रवाल पिष्टीका मिश्रण कुष्माण्ड पाक, ब्राह्मीलेह अथवा घृतके साथ देना चाहिये । ऐसे ही भूतोन्मादमें भी अति त्रास देने वाले, क्रोधी और लड़ाकू रोगियोंके लिये भी मुक्ता उत्तम औषध है ।

मुक्ताके उत्तम शीतवीर्य धर्मका गर्मीके दिनोंमें होने वाले दाहपर अच्छा उपयोग होता है । कितने ही श्रीमन्त लोग गर्मीके दिनोंमें बहुत व्याकुल हो जाते हैं । अर्थात् शरीरकी बाह्य उष्णताके साथ समधर्म होनेकी पात्रता कम होकर समस्त शरीर विशेषत: संज्ञावाहिनियोंकी बाह्य शिरायें (अन्तर्मार्ग) बिल्कुल मृदु हो जाती हैं । इस स्थितिमें दाह शामक अन्य औषधियों की अपेक्षा मुक्ताका उत्तम उपयोग होता है । कारण यह पिष्टी वातवाहिनियोंके लिये भी शामक गुण दर्शाती है ।

गर्मीके दिनोंमें तेज धूप, अग्निके पास ज्यादा समय काम करने, धूपमें ज्यादा समय फिरने, अधिक जागरण करने या अपथ्य आहारसे, नाक, मुँह गुदा, मूत्र या अन्य मार्गसे रक्त गिरने लगता है । साथ-साथ हाथ पैर और सर्वाङ्गमें दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं, तब रक्तस्राव बन्दकर मस्तिष्कको शान्ति देनेके लिये इस पिष्टीका उत्तम उपयोग होता है ।

उपदंश या सुजाक होनेके पश्चात् पित्तप्रकोप होकर मूत्रमार्गका दाह होने या अन्य कारणोंसे पित्त बढ़कर मूत्रका दाह होने अथवा मूत्रकी तीव्रता, तीक्ष्णता आदि बढ़नेके हेतुसे मूत्रमार्गमें दाह होनेपर मुक्ताका सेवन अति हितकारक है ।

रक्त ज्यादा जानेसे उत्पन्न अन्तर्दाह अथवा अन्य कारणोंसे उत्पन्न अन्तर्दाहमें मुक्ता लाभदायक है । परन्तु स्त्रियोंके योनिस्रावमें अथवा इसके पश्चात् उत्पन्न अन्तर्दाहमें मोतीकी अपेक्षा वंगभस्मका विशेष उपयोग होता है । प्रतमक श्वास रोगमें अन्तर्दाह होता हो, तो मोती पिष्टीका उपयोग हितकर है ।

बार-बार नेत्र दुखनेकी आदत, उसमें भी नेत्र खूब लाल होना, नेत्रोंमें से गरम-गरम भाप निकलना और गरम-गरम अश्रु गिरते रहना इत्यादि लक्षण होनेपर मोतीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

पित्तज और कफ-पित्तज कास-विकारमें यदि दाह आदि लक्षण हों, तो मुक्तापिष्टी देनी चाहिए।

क्षय रोगमें दाह, व्याकुलता, अधिक ज्वर, अधिक तृषा आदि लक्षण हों, तो मोती पिष्टी देनी चाहिये। क्षयकी बिलकुल प्रथमावस्थामें ही जिस तरह प्रवाल पिष्टीका उपयोग होता है, उस तरह मोतीका उपयोग दाह-विशिष्ट अथवा पित्त प्रधान लक्षण होनेपर किया जाता है।

मोती शीतवीर्य (शामक) और हृदय पौष्टिक है। अतः जब हृदय अतिशय निर्बल हो जानेसे हृदययेन्द्रियका वेपन होता रहता है। तब मुक्ता का उपयोग बहुधा नहीं होता है या सम्हालपूर्वक कम मात्रामें होता है।

श्वासके कितने ही मेदो वृद्धि युक्त रोगियोंको मौक्तिक पिष्टी ज्यादा लाभ पहुँचाती है। घबराहट, उदरमें आग, सारे शरीरमें दाह इसमें भी हाथ पैरमें अधिक जलन, भयंकर शोष, तृषावमन आदि लक्षण हों और पंखे से वायु करनेसे अच्छा मालूम होता हो तो अन्य औषधियोंकी अपेक्षा इससे श्वास रोगका दमन त्वरित होता है।

पित्तज अम्लपित्तके कारण कण्ठमें दाह, मिर्च लगनेके समान गलेमें दाह होना, गरम, खट्टी और कडवी वमन, वमनके साथ नेत्रोंमें जलन हो जाना और भयंकर त्रास होना, मुंहमें छाले हो जाना आदि विकृतिमें मुक्तापिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। यदि अम्लपित्तमें मन्दाग्नि और दाह हो तो इसका अवश्य ही उपयोग करना चाहिये।

दाहयुक्त अतिसारमें पीले रंगके गरम जल जेसे बड़े-बड़े दस्त होना, इस हेतुसे उदर, लघुअन्त्र बृहदन्त्र और गुदामार्गमें दाह होता हो तो मुक्ता के उपयोगसे पित्तकी विषमता दूर होकर साम्यावस्था प्रस्थापित होती है और अतिसार बन्द हो जाता है।

अतिसारके समान रक्तार्शमें जलन, वेदना, गरम-गरम रक्त गिरना, पश्चात् भयंकर जलन होना आदि लक्षण होते हैं। क्वचित् इस जलनके कारणसे रोगी मूर्छित भी हो जाता है। ऐसे समयपर मोतीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघातमें मूत्रके साथ रक्त जाता हो और जलन होती हो तो मोतीपिष्टीका बहुत अच्छाउपयोग होता है। अनुपानमें कुकरोंधेका रस विशेष अनुकूल रहता है।

अत्यार्त्तव या योनिमार्गमें रक्तपित्त रोगके कारण रक्त गिरना, दाह, खाज और भयंकर त्रास होना आदि विकारोंमें मोती पिष्टीको धारोष्ण

दूध या गुलकन्दके साथ देनी चाहिये और योनिमें शतधौत घृतका पिचु रखना चाहिए ।

यदि योनि मार्गमें अन्य समयमें दाह, पुरुष समागमके समय भयंकर वेदना और जलन, क्वचित् दाहके कारणसे स्त्रीके साथ समागम करना ही अशक्य हो जाना इत्यादि लक्षण हों तो भी मोतीका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं ।

अनुलोम क्षय (रसक्षय संग्रहणी Sprue) में रसादि धातुसे आरम्भ होकर उत्तरोत्तर रक्त आदि सब धातुएँ क्षीण हो जाती है । इस कारणसे शरीर कृश और अशक्त हो जाता है, साथ-साथ अतिसार बड़े-बड़े गरम जल जैसे दस्त वार-बार होते हैं । मुंहमें छाले और सारे शरीरमें दाह होते हैं । ऐसे लक्षण होनेपर मुक्तापिष्टीका उत्तम उपयोग होता है । इस रस क्षयमें मुक्ताके सेवनसे दाह कम होता है । साथ-साथ रस आदि सव धातुएं पुष्ट होकर धातु-परिपोषण क्रम उत्तम प्रकारसे सुधर जाता है; शरीर पुष्ट बनता है; शक्ति आती है और शरीरका वर्ण उत्तम बनता है ।

मुक्ता रसायन शास्त्रकी स्थूल दृष्टिसे चूनेका कल्प है । परन्तु जीवन रसायनकी दृष्टिसे चूना, मोती, प्रवाल, शंख, कौड़ी, सीँप ये सव भिन्न-भिन्न गुण करने वाली स्वतन्त्र औषधियां है ।

मुक्ता पित्तदोष (विशेषत: उष्ण, तीक्ष्ण और अम्ल गुणकी वृद्धिमें), रस, रक्त, मांस, अस्थि ये दूष्य, त्वचा, हृदय, क्लोम (प्यासके लिये स्थान), यकृत्, प्लीहा, अन्त:स्रावक ग्रन्थियाँ और अन्य ग्रन्थियाँ इन सवपर लाभ पहुँचाती है । (औ० गु० ध० शा०)

(२७) प्रवाल भस्म

प्रथम विधि—१६ तोले प्रवाल शाखा लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर ४ तोले कज्जली मिला घीकुंवारके रसमें १२ गण्टे घुटाई करके छोटी-छोटी टिकिया बनावें । फिर धूपमें सुखा संपुटमें बन्द कर गजपुटमें फूंक देनेसे गुलावी झांई वाली सफेद भस्म बन जाती है । (चि० च०)

मात्रा—१ से २ रत्ती । दिनमें दो समय, सितोपलादि चूर्ण और शहद, गिलोयका सत्व और शहद, गुलकन्द, मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

१. शुष्क कासमें—शक्करके साथ ।
२. कफज कासमें—कफको बाहर निकालनेके लिये शक्करके साथ; कफ सुखानेके लिये शहदके साथ ।
३. जीर्ण ज्वरपर—सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ ।
४. जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, हिक्का और उदरवातपर—हरड़ और शहद के साथ ।

५. नवीन ज्वरमें—(पित्तज्वर) सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ।
६. धातुक्षयमें—पक्के केलेके साथ।
७. कृशतापर—नागरवेलके पानके साथ।
८. हारिद्रमेहपर—चावलके धोवन और मिश्रीके साथ।
९. प्रदपर—धारोष्ण गोदुग्ध या आंवलेके रसके साथ।
१०. वातरोगपर—तुलसीके रस, मिश्री और शहदके साथ।
११. पित्तज कासमें—अनारके रस और मिश्रीके साथ।
१२. अस्थिभङ्गमें—शहदके साथ।
१३. पित्तप्रकोप और भ्रमपर–प्रवाल पिष्टी, आंवलोंका मुरब्बा, घृत और मिश्री सबको मिलाकर देवें।
१४. उरःक्षतपर—सितोपलादि चूर्ण, घी और शहदके साथ।
१५. मूत्रकृच्छ्रपर—चावलके धोवनके साथ।
१६. नेत्रजलन और खुजलीपर—घृत और शक्करके साथ या मिश्री मिले धारोष्ण दुग्धके साथ।
१७. मस्तकशूलपर—बादामकी खीरके साथ।
१८. पित्तोद्भव पाण्डुपर—घी शक्करके साथ।
१९. रक्तपित्तपर—आंवलेके मुरब्बेमें।
२०. मस्तिष्ककी निर्बलतापर—बादामकी खीरमें।
२१. धातुक्षीणतामें—मलाईके साथ देवें।

प्रवालके गुधणर्म—रस कामधेनुकारने निम्न शब्दोंमें दर्शाया है।

पुष्टिकान्तिबलवीर्यवर्धनं विद्रु मं तु कफवातपित्तजित्।
रक्तरोगहरणं क्षतक्षयाक्ष्यामयघ्न मुदितं कषायकम्॥

उपयोग—प्रवाल भस्म क्षय रक्तपित्त, कास, धातुदोष, मूत्रविकार, विषविकार, भूतबाधा, शिरोरोग, नेत्रदाह, रक्तार्श, कामला, यकृद् विकार यकृद्दोषजनित वमन आदि रोगोंको दूर करती है।

मुक्ता, प्रवाल, वराटिका शुक्ति, शंख ये सब सेन्द्रिय चूनेके कल्प हैं। इनमें प्रवाल चूनेका कल्प होनेपर भी अति सौम्य और शीतवीर्य है। किन्तु अग्निपुटी प्रवालमें प्रवालपिष्टकी अपेक्षा सौम्यत्व गुण कम है और दीपनत्व गुण ज्यादा है।

प्रवाल भस्म या प्रवालपिष्टी नींबूके रसके साथ देनेसे उत्तम पाचन होता है। अग्निमाँद्य या अग्निसाद, अरोचक ये विकारपित्त-दुष्टि और कफ-दुष्टीसे भी होते हैं। पित्तदुष्टीसे हों तो प्रवाल भस्म, कामदुधारस, या प्रवालपञ्चामृत रस देना चाहिये। कफदुष्टीसे हो, तो अग्निकुमार, हिंग्वादि चूर्ण इत्यादि औषधि उपयोगी होती है। विशेषतः मुंहमें बेस्वादुपना, मुंहमें विलक्षण गन्ध, कण्ठमें विदाह, मुंहमें फोडे आदि लक्षण होनेपर प्रवाल भस्म देनी

चाहिये। इसके योगसे पाचक पित्तका उत्तम और व्यवस्थित स्राव होकर पचन-क्रियाकी वृद्धि होती है और अग्निमांद्य दूर होता है।

अनेक समय अग्निमांद्य आदि रोगोंके परिणाम स्वरूप रसाजीर्ण हो जाता है। उसमें अन्न सामने आया कि, उसपर अरुचि आने लगती है, अनेकोंको अन्नकी बास भी सहन नहीं होती, अनेक भोजनका नाम लेनेपर रोने लगते हैं, उबाक सदाके लिये बनी रहती है, उदर जड़ समान होजाता हैं, इनपर अग्निपुटी प्रवाल सत्वर लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल भस्म उत्तम दीपन औषधि हैं। इसके योगसे उदरमें पाचक रस का उत्तम कार्य होता है। पित्त-दुष्टीसे अग्निसाद उत्पन्न होनेसे प्रवाल भस्म का अच्छा उपयोग होता है। इस भस्मके योगसे पित्तधातु (आमाशयिक रस Gastric Juice) की दुष्टी दूर होकर साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह दीपन कार्य भी इस औषधिसे होता है। (पित्त प्रकारका विवेचन, औषध गुणधर्म विवेचनमें किया है)।

आमाशय अथवा पक्वाशयमें शूल, दाह, अपचन आदि हेतुसे पतले दस्त होते हैं। ऐसे लक्षण होनेपर प्रवाल भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

ज्वर जीर्ण होनेपर निर्बलता अधिक आ जाती है एवं ज्वर धातुमें लीन हो जाता है। जब मज्जागत ज्वर बनता है, तब चक्कर आना, मन्द मन्द ज्वर बना रहना, सांधा-सांधाओंमें दर्द-सा होना, हाथ पैरों की नाड़ियाँ खिचना, अरुचि, खानेपर वान्ति हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर प्रवाल भस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती, आँवले, गिलोय और नागर-मोथा ४-४ रत्ती शहदके साथ देवें। इस तरह दिनमें २ या ३ बार शहदमें देनेसे ज्वर निवृत्त हो जाता है।

दूसरी विधि—२० तोले प्रवाल, २० तोले सूखी मेंहदीके पत्ते, १० तोले मिश्री, तीनोंको मिला हांडीमें संपुट करके गजपुट दें। दूसरे दिन हांडीको निकालकर प्रवालको चुन लें। फिर भैंसका दूध मिला, ३ घण्टे तक घुटाई-कर, छोटी-छोटी टिकिया बना, धूपसे सुखाकर संपुट करें। हाँड़ी बड़ी लेनी चाहिये, कारण, टिकिया गजपुट देनेसे फूल जाती हैं। यह भस्म चूना जैसी मुलायम बन जाती है। (ब्र० स्वा० सदानन्द गिरीजी)

मात्रा और उपयोग—पहिली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—प्रवालका सूक्ष्म चूर्ण कर गुलाबजलसे २१ दिन तक १२-१२ घण्टे घुटाई करें। इसे चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी कहते हैं। कितने ही चिकित्सक केवल ७ दिन तक खरल करते हैं, परन्तु जितनी ज्यादा खरल होती है, उतना ही गुण अधिक होता है। पिष्टी अच्छी प्रकारसे खरल होनेपर वारितर हो जाती है और सत्वर लाभ पहुँचाती है।

सूचना—शुद्ध प्रवालको पहिले इमामदस्तेमें कूटकर एक लोहेके खरलमें खरल करें। पश्चात् २१ दिन तक गुलाबजलमें चीनी मिट्टीके खरलमें घोटना चाहिए। सामान्य पत्थरके खरलमें घोटनेसे खरल घिसकर पत्थरके अणु पिष्टमें मिल जानेसे पिष्टी दूषित हो जाती है।

मात्रा और अनुपान—पहिली विधिके अनुसार।

उपयोग—प्रवालपिष्टी क्षय, पित्तविकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, विष, भूतबाधा, उन्माद, नेत्ररोग, इन सबको दूर करती है। प्रवाल मधुर, अम्ल, कफपित्तादि दोषोंकी नाशक, शुक्र और कांतिकी वर्द्धक है। यह पिष्टी भस्म की अपेक्षा विशेष पित्तशामक, पित्तविकारघ्न और सौम्य होनेसे पित्तयुक्त शुष्क, कास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, नेत्रदाह, वमन, आदि विकारोंमें विशेष हितकर है तथा यह मधुर और अम्ल होनेपर भी दीपन पाचन है। प्रवाल मधुर है अर्थात् मिश्री समान मधुर नहीं परन्तु प्रवालका परिणाम मधुर रसके अनुसार शामक, बृंहण प्रसादन आदि होता है। प्रवालके शामक शीतवीर्य और प्रसादन गुणका उपयोग भिन्न-भिन्न रोगोंमें उत्तम प्रकारसे होता है।

ज्वरके आरम्भमें सामावस्था हो तो लंघन करना चाहिये। लंघनके पश्चात् पाचन औषधि रूपसे प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग होता है। ज्वरादि पाचक कषायके स्थानमें प्रवालपिष्टी दे सकते हैं। ज्वरका वेग तीव्र होनेपर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है। पित्तप्रधान ज्वरसे दाह, तृषा, प्रस्वेद, शीर्षशूल, निद्रानाश, प्रलाप, चक्कर, वमन आदि लक्षण हों तो यह बहुत अच्छा कार्य करती है। ऐसे समयपर इसे गिलोय सत्वके साथ देना चहिये। अन्य संक्रामक ज्वर या विषम ज्वरमें पित्त-प्रधान लक्षण अधिक होनेपर (ज्वरवेग तीव्र होनेपर) अर्थात् १०३°-१०६° तक होनेपर प्रवालपिष्टीका ही उपयोग करना चाहिये। उतना अधिक पित्तज्वर होनेपर त्रिभुवनकीर्ति समान तीव्र और स्वेदल औषधि न देना ही अच्छा माना जायगा। यदि देना हो तो सम्हालपूर्वक दें। और उसके साथ या स्वतन्त्र रूपसे प्रवालपिष्टी दें। पित्तप्रधान सन्निपात ज्वरमें सन्निपात-दोषघ्न औषधि देनेके साथ पित्त दोष कम होने और ज्वरवेगको मर्यादामें लानेके लिये प्रवाल पिष्टीकी योजना अवश्य करनी चाहिये।

शीतला, छोटी माता रोमांतिका अन्य संक्रामक ज्वर या कीटाणुजन्य दूषितज्वर या आगन्तुक ज्वरमें रोगीको भयंकर दाह, व्याकुलता और तीव्र ज्वर हो तो प्रवालकी योजना करनी चाहिये एवं सेन्द्रिय विषकी तीव्रतासे उत्पन्न ज्वरमें भी प्रवाल दी जाती है। प्रवालके सेवनसे विषप्रकोप और ज्वर, दोनों शांत हो जाते हैं। संक्षेपमें जब-जब ज्वरमें पित्तकी प्रधानता हो; तब-तब इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है।

क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थासे लेकर तीसरी अवस्था तक प्रवालपिष्टीका उपयोग होता है। क्षयके प्रारम्भमें बहुधा सारे शरीरमें नाड़ियाँ खिचना, शुष्क कास, और मन्द ज्वर आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थाकी शंका होनेके साथ प्रवालपिष्टी देना आरम्भ कर देनेसे सब अरिष्ट टल जाते हैं। परन्तु यह अवस्था विशेषतः अनेकोंके लक्ष्यमें नहीं आती। जब एक समान ज्वर ओर कास बढ़ने लगते हैं; और रोगी क्षीण होता जाता है; तब इस राजयक्ष्माका संशय होने लगता है। इस अवस्थामें ज्वर ज्यादा, शुष्कता, शुष्क कास, फुफ्फुस दूषित होनेके भरपूर लक्षण अर्थात् श्वास, कास, फुफ्फुसों में व्यथा आदि चिह्न जिन रोगियोंमें दीखने लगे उनको प्रवालपिष्टी देना लाभदायक है। ऐसे समयपर प्रवालको शृङ्गभस्म और गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। क्षयकी तीसरी अवस्थामें भी यह मिश्रण देना हितकर है। जब ज्वर अधिक त्रासदायक, भयंकर कास, उरःक्षत होकर उसमेंसे रक्त गिरना, पीला-हरा और दुर्गन्धयुक्त कफ, सर्वाङ्गमें विशेषतः कपालपर स्वेद आना, बहुधा प्रातःकाल प्रस्वेद आना, बेचनी और तृषा अधिक, रोगीकी मुख-काँति निस्तेज और त्रस्त तथा भयंकर क्षीणता आदि लक्षण हो गये हों तो भी प्रवालको सुवर्ण भस्म और अमृतासत्वके साथ उपयोगमें लेना लाभदायक है। इतना लक्ष्यमें रखें कि तीसरी अवस्थामें किसी भी औषधिका निश्चित रूपसे उपयोग नहीं होता। फिर भी प्रवालसे वेदनामें न्यूनता होती है।

चन्द्रपुटी प्रवाल रक्तपित्तमें बहुत उपयोगी होनेवाली औषधि है। रक्त-पित्त विकार पित्तप्रकोपसे उत्पन्न होता है। पहले पित्तदोषका विदाह होता है, फिर पित्तके आश्रय रक्तका भी विदाह होता है....(पित्तं विदग्धं स्वगुणै-र्विदहत्याशु शोणितम्)। रक्तका विदाह होनेसे रक्त दुष्ट होकर उसमें पित्तका उष्णत्व गुण बढ़ जाता है, जिससे रक्तवाहिनियां दुष्ट होकर पतली हो जाती हैं और उनका स्थितिस्थापकत्व गुण न्यून हो जाता है। पश्चात् इनमेंसे फूटकर रक्त बाहर आने लगता है। यह रक्त मुँह, नाक, गुदा, योनि या रोम-रोममेंसे निकलने लगता है। कितनों ही को स्राव चालू ही रहता है ओर कितनों ही को थोड़े समय रुक-रुककर स्राव होता रहता है। इस रोगमें भिन्न-भिन्न प्रकृतिमें भिन्न-भिन्न दोषोंके अनुषगके अनुरोधसे अन्य औषधि दे सकते हैं। इसमें विशेष दोषके अनुषंगके अनुरोधसे अन्य ओषधि दे सकते हैं। परन्तु इसके मूलमें रहा हुआ विदग्ध, पित्त, प्रवालपिष्टीके योग मात्रसे ही नियमित होता है। इस पिष्टीके योगसे पित्तकी उष्णता आदि गुण शमन होकर उसमें साम्यावस्था उत्पन्न होती है एवं रक्तका प्रसादन भी हो ही जाता है। इस रोगमें प्रवालको सुवर्ण माक्षिक भस्म और हल्दीके साथ देना चाहिये। हल्दीमें स्तम्भ गुण है; इस कारणसे रक्तपित्तके बिल्कुल

प्रारम्भमें हल्दिको न देना यह अच्छा है। रक्तपित्त संकर अर्थात् उपद्रव रूपसे रक्तस्राव होता हो, (आंत्रिक सन्निपात आदि रोगोंमें) तो प्रवाल अच्छा कार्य करती है।

रक्तपित्तमें एक प्राकृतिक भेद हिमोफाइलिया (Haemophilia) है। वह यह है कि कितने ही लोगोंकी प्रकृति ऐसी होती है कि जरा कहीं लगा, घाव हुआ या गरमीके दिनोंमें नाकमेंसे रक्तस्राव हुआ तो रक्तप्रवाह जल्द बन्द नहीं होता। रक्तका जो मुख्य धर्म रक्ताशयमेंसे बाहर निकलनेके साथ तुरन्त जम जाना, और दृढ़ हो जाना, वह नष्ट हो जाता है, जिससे घावोंमेंसे रक्त निकलता ही रहता है। यह विकार या ऐसी प्रकृति स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषोंमें ज्यादा दृष्टिगोचर होती है। यदि स्त्रियोंकी यह प्रकृति हो, तो उनको मासिक धर्मके समय रजःस्राव अधिक होता है, और अधिक दिन तक रहता है। इस हेतुसे उनको अति त्रास होता है। ऐसी प्रकृति वाले रोगी और निरोगी मनुष्योंको प्रवाल अति उपयोगी होती है। प्रवालको सुवर्णमाक्षिकभस्मके साथ दीर्घकाल तक देनेसे अमृत सदृश लाभ होजाता है।

रक्तपित्तके तीव्र विकारमें प्रवाल बहुत परिणाममें बार-बार देना चाहिये। परन्तु जीर्ण विकार और प्राकृतिक भेदमें प्रवाल बहुत कम मात्रामें देनेसे अच्छा उपयोग होता है। अनुपान भिन्न-भिन्न अनुषंगोंमें भिन्नभिन्न देना चाहिये।

अनेक व्यक्तियोंको प्रकृति-भेदसे बार-बार नाकमेंसे रक्त गिरता रहता है, इनमें बहुतोंके तो यह केवल गरमीके दिनोंमें ही ज्यादा जाता है। बहुत सी स्त्रियोंके मासिकधर्मके समय नाकमेंसे रक्त गिरने लगता है और बहुत सी स्त्रियोंके सगर्भावस्थामें रक्त गिरता है। इन सब प्रकारकी विकृतिमें प्रवाल पिष्टी अमृत रूपमें है। ज्यादा समय तक लेनेसे यह जीर्ण विकृति दूर हो जाती है।

प्रवाल विशेषतः पित्तजन्य कासमें अच्छी लाभदायक है। उदरमें विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुंहमें शुष्कता और कड़वापन, भयंकर तृषा, व्याकुलता, पीली, खट्टी और गरम वमन, विशेषतः खाँस-खाँसकर ऐसी वमन होना, निस्तेजता, सर्वाङ्गमें विशेषतः हाथ पैरोंमें भयकर जलन, कितने ही समय तो जलन यहां तक बढ़ जाती है कि व्याकुल हो जाना, हाथ-पैरोंपर मिर्च लगनेके समान वेदना होना; तब त्वचा शुष्क हो जाना आदि लक्षण-युक्त पैत्तिक कासमें प्रवाल-पिष्टी मीठे अनारके रस अथवा मिश्रीके साथ देनी चाहिए।

अधिजिह्वा, उपजिह्वा या गलशुण्डिकाइन विकारोंसे कण्ठमें जलन होती है, शुष्क त्रासदायक खांसी आती है, तथा खांसते-खांसते गरम और कड़वी वमन हो जाती है। इनपर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है।

छोटे बच्चोंकी काली खांसीमें प्रवाल पिष्टी बहुत उत्तम औषधि है।

विशेषत: खांसी बहुत जोरकी हो; खाँसीके कारण नाक, मुँह और कानसे रक्त गिरता हो; साथ साथ बच्चेका मुँह लाल हो जाता हो, चेहरा फूला हुआ मथवा सूजा हो, ऐसे लक्षण प्रतीत होनेपर इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। कारण इसके योग कण्ठ और सप्तपथ (Pharynx)का क्षोभ त्वरित उपशम हो जाता है। काली खांसीपर प्रवालपिष्टी, शृङ्गभस्म, वंशलोचन, इलायचीके दाने और अमृताशत्त्वका मिश्रण विशेष गुणदायक है।

उर:क्षतजन्य कासमें प्रवाल उत्तम लाभदायक है। उर:क्षतमें शुष्क कास विदाह, रक्त गिरना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपिष्टी अवश्य देनी चाहिये। जिससे क्षतरोपणमें भी सहायता मिले। कतिपय समय इसके साथ लाजा अथवा उसका रस देना पड़ता है। तब कितने ही समय प्रवाल मात्रसे कार्य हो जाता।

सगर्भा स्त्रियोंको होने वाली कास और उसके साथ वमन, प्रवालपिष्टी के योगसे शमन हो जाती है। सगर्भावस्थामें स्त्रीको अपने शारीरिक घटकोंमेंसे बालकके अस्थिपोषणार्थ अस्थि उत्पन्न करने वाला द्रव्य देना पड़ता है। उसका परिणाम स्त्रीके रक्त, पचनेन्द्रिय और अस्थिपर होता है, जिससे वह स्त्री निस्तेज हो जाती है। चलनेसे उसके पैर दुखने लगते हैं। घुटनोंपर शोथ आ जाता है। थोड़ा खाया हुआ भी सुखसे नहीं पचता। पेट फूल जाता है और वमन होती है। ऐसी अवस्थामें या ऐसी जिनकी प्रकृति हो उनपर यह बहुत अच्छा कार्य करती है। जिस स्त्रीके बालक जन्मसे बार-बार रोने वाले, निर्बल, निस्तेज और दुर्बल होते हैं और जिनकी त्वचामें स्थान-स्थानपर सल पड़ते हों, वे थोड़े ही समयमें जीवन त्याग देते हैं। ऐसी स्त्रियोंको गर्भावस्थाके प्रारम्भसे अन्त तक गिलोय सत्व और प्रवालपिष्टी सितोपलादि चूर्णके साथ देनेसे बहुत अच्छा लाभ होता है। माताकी ऐसी निर्बल स्थितिमें सन्तानके अस्थि, मांस और रक्त के अंशको योग्य परिमाणमें पोषण नहीं मिलता। यह विकार प्रवालके सेवन से दूर होता है। गर्भपाल रसका कार्य इसकी अपेक्षा अलग जातिका है।

रसक्षय (अनुलोमक्षय) में प्रवालपिष्टी अति हितावह है। इसके योगसे रस आदि धातुमें पचनकी वृद्धि होकर सब धातुऐं उत्तम प्रकारसे बनती हैं।

पित्ताभिष्यन्द विकारमें नेत्रोंमें लाली, जलन, वेदना, नेत्र फूलनेके समान ऊपर आ जाना और रात्रि दिनमें दाहके कारण निद्रा न आना, आदि लक्षण होते हैं। इसपर प्रवालपिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। इस रोगमें प्रवाल और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिलाकर मिश्री और घृत या दुग्धके साथ देना चाहिए।

नेत्र, हाथ, पैर, मूत्र इन सबमें दाह (पूययुक्त या पूयप्रमेहका दाह छोड़कर) मूत्रका वर्ण लाल अथवा बहुत पीला, सर्वाङ्ग और त्वचामें भी दाह

हो, विशेषत: गर्मीके दिनोंमें उष्ण पदार्थोंके सेवनसे या जागरणसे इन विकारोंकी उत्पत्ति हुई हो तो प्रवालपिष्टीका उपयोग करना चाहिये। इस अवस्थामें मुक्तापिष्टी भी उपयोगी होती है। परन्तु यह अति शीतवीर्य होने में अत्यन्त तीव्र दाहमें उपयोगी है।

प्रवालका उपयोग पित्तोन्माद और भूतोन्मादपर भी होता है। उन्माद का कारण प्रथम मानसिक और पश्चात् शारीरिक होता है। अथवा प्रथम शारीरिक कारण उपस्थित होकर पश्चात् वह मनोदेशको दूषित करता है; परिणाममें उन्माद उत्पन्न होता है। पर विष तीव्र, शराब, गांजा आदिके सेवनसे घोर शारीरिक दोष उत्पन्न होकर उन्माद हो जाता है। यह दूसरे प्रकारके उन्मादका उदाहरण है। केवल मानसिक आघात शोक और मनो-व्याघातसे असह्य मानसिक क्लेश होकर उन्माद होता है। उसे पहले प्रकार का उन्माद कहेंगे। जो दूसरे प्रकारका उन्माद है जिसमें पित्तदुष्टी हेतु है; तीव्र शराब या तीव्र विषके सेवनसे पित्तदुष्टी होती है; यह प्रवालपिष्टीके सेवनसे दूर होती है। इसी रीतिसे उन्मादपर प्रवाल अन्य शामक औषधके साथ लाभदायक है।

कोष्ठगत सेन्द्रिय विष (गर) के योगसे विशेषत: उसमें पित्तदुष्टी होनेपर उन्माद होता है। कितने ही रोगी बिल्कुल पागल हो जाते हैं, ऐसे विकारमें प्रवालपिष्टीके साथ आरोग्यवर्द्धिनी, चन्द्रप्रभा या शिलाजीत देना चाहिये।

भूतोन्मादमें पित्तका अनुषंग हो, तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये। विशेषत: क्रोधी, लड़ाकू, साहसी और दूसरोंको संताप देनेवाली स्त्रियोंको यह औषधि बहुत उपयोगी होती है। उन्मादके झटके के साथ नाकमेंसे रक्त गिरना, चेहरा बिल्कुल लाल हो जाना, शिरायें खिंच जाना आदि लक्षण होनेपर प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग हुआ है।

बालकोंके अस्थिमृदुता रोग (Rickets) पर प्रवालपिष्टी अति उपयुक्त हैं। बिल्कुल छोटे ३-४ मासके बच्चोंसे लेकर बड़े बच्चों तक सबके लिये यह उपयोगी है। इस रोगमें बालकोंके नितम्ब (चूतड़) आदि स्थानोंपर सल (सिकुड़न) पड़ जाना, पैर और हाथकी, इनमें भी विशेषत: पैरकी हड्डी मुड़ जाना, बार-बार थोडे-थोड़े दस्त होना, ज्वर भी रहना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वको मिलाकर देना चाहिये। यदि खांसी हो तो शृङ्ग भस्म भी मिला देवें। प्रवालपिष्टी चूनेका सेन्द्रिय सौम्य कल्प होनेसे अस्थि-मार्दव रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। रोगमें चूने की न्यूनता मूल कारण है। जिस-जिस द्रव्यकी इस विकारमें न्यूनता हुई है, उसी उसी द्रव्यकी प्रवालपिष्टीके संयोगके कारणसे प्राप्ति हो जाती है। इस रोगकी प्रथमावस्थासे लेकर अन्तिमावस्था पर्यन्त प्रवालका उत्तम उपयोग होता है।

पारिगर्भिक रोगमें बालक अति अशक्त हो जाते हैं। वमन, कभी-कभी अतिसार, अत्यन्त कृशता, ज्वर रहना, सारे दिन रोते रहना, आदि लक्षण होते हैं। इसपर प्रवाल अति उपयोगी है। यदि अपचन और अतिसार हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिए।

बालकोंके दाँत आनेके समय होने वाले विकारोंमें प्रवाल अति उपयुक्त है। विशेषतः यह रोग ज्यादा दिन तक रहा हो, ज्वर, वमन, पीले पतले दुर्गन्धयुक्त दस्त आदि लक्षण हों, तो प्रवाल देनी चाहिये। जिन बच्चोंके दांत अति कठोर हों, उनके लिये भी प्रवाल अति उपयोगी है। यदि दन्तोद्भव. विकारमें वातप्रधान लक्षण और दस्तका रंग हरा, दधिकणयुक्त पतला हो तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

बालकके स्तनपानके कारण अनेक सुकुमार स्त्रियोंका शरीर ज्यादा कृश निस्तेज और निर्बल हो जाता है। हाथ पैरोंकी संधियोंमें पीड़ा होने लगती है। कितनी ही स्त्रियोंकी संतानें एक पीछे एक, मृद्वस्थि रोगसे मरती हैं। ऐसे दोषोंमें प्रवालका सेवन अधिक प्रशस्त हैं।

पित्तदोषको दुष्टीको दूर करके उसमें साम्यावस्था प्रस्थापित करनेका धर्म प्रवालका अति महत्वका है; जिससे पित्तजन्य विशेषतः पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुण बढ़नेसे उत्पन्न हुए अनेक विकारोंमें इस पिष्टीका अति उत्तम उपयोग होता है। पैत्तिक शीर्षशूल, वमन, दाह आदि पित्तप्रधान लक्षण हों तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें बार-बार अन्यन्त कड़वी, पीली, दाहयुक्त वमन, चक्कर, व्याकुलता, शिरदर्द आदि लक्षण हों तो प्रवाल देवें।

प्रवालपिष्टीसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता दूर होकर दाह शमन हो जाता हैं। अर्थात् प्रवालके योगसे माधुर्य उत्पन्न होता है। कामदुधा रससे भी यह कार्य होता है; परन्तु वह मल स्तम्भक है।

प्रवालपिष्टी शुक्रस्थानकी विकृतिमें भी उपयोगी है। शुक्रदोष कहनेकी अपेक्षा, शुक्रस्थानके दोषमें उपयोगी है, ऐसा कहना अधिक उपयुक्त होगा। ग्रन्थिशुक्र या पूयशुक्र आदिपर इसका लाभ बहुत थोड़ा होता है। परन्तु थोड़ी धूप लगी, अग्निके पास बैठे, थोड़ा सा जागरण किया, किञ्चित् उत्तेजक पदार्थ, गरम मसाला या खटाई खाई तो रात्रिको स्वप्नावस्थामें शुक्रस्राव होता है। इसपर अच्छा उपयोग होता है।

खराब आदतोंके कारण शुक्रस्थान इतने निर्बल हो जाते हैं कि मनको थोड़ा सा आघात भी सहन नहीं होता। स्त्री विषयक बात मन मात्रमें आई कि तुरन्त शुक्रस्राव होने लगता है। वस्तुतः ऐसे लोगोंको सच्ची कामेच्छा का बोध ही नहीं है। इन्द्रियोंकी लालसा मात्र होती है। यह इन्द्रिय लालसा

या मनकी खराब स्थिति यहां तक बढ़ जाती है कि कुछ कह नहीं सकते। स्त्री जातिमेंसे चाहे बहन बेटी क्यों न हों, कोई दृष्टि गोचर हुई कि तुरन्त इच्छा न होनेपर भी मनमें विकृति होकर शुक्रस्राव होजाता है। स्त्रियोंके जेवरोंकी आवाज सुनी कि शुक्रस्राव हुआ। किसी सुन्दरीका दर्शन हुआ कि मन विकृति होकर शुक्रस्राव हो जाता है। यह स्थिति विशेषतः मानसिक स्थिति प्रवाल पिष्टीके योगसे अति उत्तम प्रकारसे सुधर जाती है। वंगभस्म शुक्रस्थानको शक्तिदायक है और प्रवाल शामक है। इस कारण अनेक समय इन दोनोंको मिश्रित करके देनेकी आवश्यकता रहती है।

जीर्ण सुजाक और उपदंश रोगका परिणाम मूत्र मार्गपर होनेसे बारबार मूत्र दाह होता है। मूत्रका रंग पीला-लाल हो जाता है। मूत्र बहुत गरम हो जाता है। साथ-साथ सारे शरीरमें विशेषतः हाथ पैर और नेत्रोंमें अधिक दाह, दाँतोंसे रक्त गिरना, बार-बार मसूड़े फूलना आदि लक्षण होते है। इस प्रकारमें प्रवाल-पिष्टी अनन्तमूलके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। यदि स्त्रियोंको भी अति पुरुष प्रसंग, जीर्ण सुजाक या उपदंशके विकार के पश्चात् मूत्रमार्गका ऐसा ही विकार हुआ हो तो उनको भी प्रवाल देनी चाहिए।

सुजाक उपदंश या अन्य कारणोंसे स्त्रियोंके अपत्यमार्गपर दाह होकर स्फोट उत्पन्न हो जाते हैं। फिर गर्भाशयमें दाह होता है। इस कारणसे गर्भाशयका कार्य भी यथोचित रूपमें न होकर गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। या समयके पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे लक्षण होनेपर प्रवाल पिष्टी का अति उत्तम उपयोग होता है।

स्त्रियोंके गर्भाशय और योनिमार्गमें अनेक प्रकारकी विकृतियां होनेसे प्रदर रोगकी उत्पत्ति होती है। भीतरकी रक्त वाहिनियां फूट जानेसे रक्त प्रदर होता है। श्वेत प्रदर रोगमें स्राव रक्तवाहिनियोंमेंसे न होकर श्लैष्मिक कलामेंसे होता है। इसकी चिकित्सा करनेके समय भीतरमें क्या विकृति हुई है। यह अच्छी रीतिसे जान करके उपचार करना चाहिये। उपचार दो रीतिसे किया जाता है।—(१) उत्तम बस्तिद्वारा योनि मार्गको शुद्ध और स्वच्छ बनाना तथा (२) पेटमें औषध देकर। प्रदरमें जल समान बिल्कुल पतला दुर्गन्ध युक्त भयंकर, गरम दाहयुक्त स्राव होना, जहां प्रदरका जल लगे वहां पर फुन्सियाँ हो जाना या त्वचा फटकर उसमें पीडा होना, खुजली चलना, दाह होना (क्वचित जलन यहाँ तक बढ़ जाती है कि संसार कर्म अशक्य हो जाता है।) और भयंकर त्रास होना, इत्यादि लक्षण हो तो उसपर प्रवाल पिष्टी देनी चाहिए। प्रवालको उशीरासवके साथ देनेसे उत्तम लाभ हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस तरह उपरोक्त लक्षण वाले रक्त-प्रदर ओर अत्यार्तवमें भी इसके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। रक्तप्रदर

पर प्रवाल पिष्टी,, सुवर्णमाक्षिक भस्म और वङ्गभस्म मिलाकर दाड़िमावलेहके साथ दी जाती है।

रक्तार्श और पित्तार्श, दोनों प्रकारके अर्शमें पित्त लक्षण अधिक होनेपर प्रवालपिष्टीका उपयोग करना चाहिये। इन दोनों प्रकारोंके लिये प्रवाल, गिलोय सत्व और नागकेशरको मिलाकर मक्खन मिश्री अथवा बकरीके दूधके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है।

विष शमन हो जानेके पश्चात् विषका परिणाम (लेश) शेष रह जाता है। यह अनेकोंको आजन्म त्रास देता है, विशेषत: सोमल रसकपूर आदि तीक्ष्ण और तीव्र विषका परिणाम अति त्रासदायक होता है। विषका लक्षण तीव्र नहीं होता, परन्तु व्याकुलता बनी रहती है, लघुशंका खूब गरम होती हैं, उदर छाती, पीठ, किंबहुना सर्वांगमें दाह, हाथ-पैरोंमें ज्यादा जलन, नाकमेंसे बार-बार रक्त गिरना और मस्तिष्क फिरना, ऐसे लक्षण होते हैं। इसपर प्रवाल अति लाभदायक है। (अनुपान रूपसे धमासा और गोखरू १-१ तोले और मिश्री दो तोले मिला अष्टमांश क्वाथ कर १-१ तोला गोघृत मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहें) प्रवाल पित्तदोषके तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, अम्लत्व आदि गुणोंकी वृद्धिको शमन करनेमें उपयोगी है। अस्थि, मज्जा, शुक्र, रक्त, मांस ये दूष्य और आमाशय, पचनेन्द्रिय वातवह मंडल, मनोदेश इन सब स्थानोंपर असर पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

यकृत् पित्त (पित्ताशयमेंसे निकलने वाला पित्त) तीव्र हो जाने और अधिक मात्रामें निकलनेपर पैत्तिक शूल उत्पन्न होता है। यह शूल भोजनके पहिले रहता है। भोजनकर लेनेपर ठहर जाता है। नलिकाकी श्लैष्मिक कलामें व्रण हो जानेसे या छिल जानेसे बाहरसे दबानेपर दर्द होता है। उस विकारपर प्रवालपिष्टी, अमृतासत्वके साथ मिला आंवलोंके रसमें भोजनके १ घण्टे पहिले दिनमें दो बार देनेसे शूल शमन हो जाता है। साथमें पित्त नलिकाकी श्लैष्मिक कलाकी विकृतिको दूर करनेके लिये रोज रात्रिको भोजन करनेके प्रारम्भमें १-१ तोला त्रिफला घृत लेते रहना चाहिये।

(२८) शुक्ति भस्म।

विधि—शुद्ध मोतीकी सीपके ऊपर लगे हुए उज्ज्वल भागको हाँडीमें घीकुंवारका गूदा ऊपर नीचे रख सम्पुटकर गजपुट दें। स्वाँग शीतल होने पर निकाल पुन: नींबूके रसमें ६ घण्टे खरलकर टिकिया बाँध संपुटकर गजपुट देनेसे मुलायम सफेद रंगकी उत्तम भस्म बन जाती है। २० तोले सीप हो तो ८० तोले घीकुंवारका गूदा लेवें।

मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती, दिनमें २ बार, मक्खन मिश्री अथवा शहद या पानमें अथवा सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद मिलाकर देवें।

गुणधर्म—शुक्ति भस्म अग्नि प्रदीपक तथा पंक्तिशूलहर है। शेष गुण मुक्ताके समान शीतल, मस्तिष्क पौष्टिक और हृद्य है, किन्तु कुछ कम परिमाणमें है।

उपयोग—यह भस्म क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर, नेत्रदाह, उदरवात, पित्तज गुल्म, श्वास, हृद्रोग (पित्तप्रकोपज), पित्तप्रधान अरुचि पित्तज परिणाम शूल, यकृत्शूल, पित्तज वमन, पित्तातिसार, अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण उद्गार (डकार आना), रक्तप्रदर और निर्बलताको दूर करती है। शुक्तिमें मुक्ताकी अपेक्षा न्यून गुण हैं।

शुक्ति भस्ममें शंखभस्मकी अपेक्षा तीव्रता कम है। वस्तुतः शुक्ति, शंख, वराटिका तीनों भस्में स्थूल रसायनशास्त्रकी दृष्टिसे एक ही प्रकारकी हैं। तीनों ही चूनेके सेन्द्रिय कल्प हैं। परन्तु जीवनरसायन शास्त्र या गुधणर्म शास्त्रकी दृष्टिसे तीनोंमें कुछ-कुछ अन्तर है। शंख और वराटिकामें अधिक साधर्म्य है एवं शुक्ति और मुक्तामें भी विशेष साधर्म्य हैं। इस हेतुसे सीप यदि मोती पिष्टीके अनुसार केवल शीत भावनापुट विधिसेकी हो तो उसका धर्म मुक्तासे किञ्चित् न्यून देखनेमें आवेगा। परन्तु उस रीतिसे शुक्तिपिष्टी बनानेका रिवाज नहीं है। शुक्तिकी भस्म गजपुट विधिसे तैयार करते हैं। यह कुछ उग्र बनती है। फिर भी वराटिका और शंख भस्मसे उग्रता न्यून ही है। इसी हेतुसे शुक्ति भस्म छोटे बच्चों, सुकुमार तथा नाजुक प्रकृतिके स्त्री पुरुषोंको दी जाती है।

शुक्तिके सेवनसे स्वादुता उत्पन्न होती है, जिससे अम्लपित्त, पित्तजशूल परिणाम शूल, और अन्नद्रवशूलमें पित्तकी तीव्रता कम होती है।

अम्लपित्तमें शुक्ति और माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। विदग्धाजीर्णमें दूषित डकारें बहुत आती हों और कण्ठमें दाह होता हो, तो शंखकी अपेक्षा शुक्ति विशेष हितकर है। रसाजीर्णकी तीव्र और जीर्ण अवस्थामें नाजुक मनुष्योंको शुक्तिसे ज्यादा लाभ होता है।

पित्तातिसारमें बार-बार दस्त होते हों, दस्तका रंग पीला, नीला अथवा लाल-नीला हों, साथमें विलक्षण तृषा, बार-बार चक्कर आना, मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, गुदाके बाहरके अंशमें त्वचाका फटना, छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाना आदि लक्षण हों तो शुक्ति भस्म देनी चाहिये। अनुपान दाडिमावलेह, आमका मुरब्बा, मक्खन या अनार शर्बत।

पित्तजन्य वमनमें शुक्तिका उपयोग होता है। अत्यन्त गरम गरम कड़वी पीली, नीली वमन, कण्ठमें जलन, उदरमें दाह, नेत्रके समक्ष अन्धकार चक्कर आना आदि लक्षण हों तो यह हितावह है।

पित्तगुल्ममें यह भस्म हितकर है। मुंह, नेत्र और सारा शरीर लाल हो

जाना, ज्वर, तृषा, अन्नका पाचन होनेपर कोष्ठमें भयंकर शूल, व्रणके समान गुल्मपर हाथ या अन्य वस्तुका स्पर्श सहन न होना आदि लक्षणोंसे युक्त आदिकी वृद्धि होकर नहीं होता।

रक्तगुल्ममें शुक्तिका उपयोग होता है। केवल उसमें अन्य दोषकी अपेक्षा पित्ताधिक्य होना चाहिये। पित्तज शीर्षशूलमें भी इसका उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ्र, दांत या अन्य मार्गसे रक्तस्राव होनेकी प्रकृति हो, तो शंख या वराटिका भस्म दी जाती है। परन्तु कोमल प्रकृति वालोंके लिए इस भस्म का उपयोग करना चाहिये।

शुक्तिसे कोष्ठगत वातका शमन होता है। कोष्टगत वातके साथ श्वास हो तो भी इसका उपयोग लाभदायक है। हृदयमें वातकी रुकावट होना हृदयमें वातके योगसे बोझा-सा मालूम होना, पीड़ा होना, शूल चलना, कोष्ठमें जलन होनेके समान भासना, हाथ-पैर शून्यसे होकर भनभनाहट होना, हाथ पैरमें शीतलताका भास होना इत्यादि लक्षण होते हैं डकार आनेपर व्यथा कम हो जाती है या बिल्कुल शमन हो जाती है। ऐसी स्थितिमें शंख तथा वराटिकाकी अपेक्षा शुक्तिका अधिक उपयोग होता है।

अरुचिमें, विशेषत: पित्तप्रधान अरुचिमें, शुक्तिका उपयोग किया जाता है। इस भस्मके सेवनसे मुंहकी बेस्वादुता, मुंहमेंसे दुर्गन्ध आना मुँह कड़वा, खट्टा, खारा या चरपरा हो जाना, मुंहमेंसे गरम-गरम भाप निकलना ये सब लक्षण दूर होते हैं।

शुक्ति भस्म पित्त और किञ्चित् कफ दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि ये दूष्य, और आमाशय, यकृत्, प्लीहा और ग्रहणी इन सबपर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

द्वितीय विधि (मुक्ताशुक्तिपिष्टी)-शुद्ध शुक्तिके उज्वल भागको इमामदस्तेमें कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर २१ दिन तक गुलाबजलमें खरलकर पिष्टी बना लेवें। यह प्रयोग श्री पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्यने वैद्य समूहको दिया है।

मात्रा—१ से २ रत्ती, मक्खन मिश्री या सितोपलादि और शहदके साथ

सूचना—मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख इनकी भस्मोंमें क्षार-रूप होनेसे सूखी औषधियोंके साथ सेवन करनेपर किसी-किसीके मुखमें छाले हो जाते हैं। अत: घी मिलाकर सेवन करें या गिलोय सत्व और शहदको अच्छी तरह मिला लें। अथवा मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी सेवन करें।

(२९) वराटिका (कपर्दिका) भस्म।

विधि—शोधनकी हुई पीले रंगकी ४० तोले कौड़ियोंको निर्धूम तेज अग्निमें लाल हो जायें। तब तक रखें। अच्छी रीतिसे फूल जानेपर सम्हाल

पूर्वक उठा घीकुंवार या नींबूके रसमें डुबो दें। पश्चात् उसी रसमें खरल-कर दो-दो तोलेकी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा संपुटकर गजपुट अग्नि देनेसे वराटिका भस्म तैयार हो जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती, दिनमें दो से तीन समय, घृत-मिश्री, तक्र, निवाये जल, नींबूका रस, शहद, नागरबेलके पान या अन्य अनुकूल अनुपान के साथ देवें। कान पकनेपर भस्म डाल ऊपर नींबूका रस डालें।

गुणधर्म:—रसे रसायने प्रोक्ता परिणामादिशूलनुत्।
ग्रहणी क्षयरोगघ्नी वीर्योष्णा दीपनी मता॥
वृष्या दोषहरा नेत्र्या कफवातविनाशिनी।
रसेन्द्रजारणे शस्ता विडमध्ये सदा हिता॥
स्थूली वराटिका प्रोक्ता गुरुश्च श्लेष्मपित्तला॥
(र० रा० सु०)

उपयोग—यह भस्म परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, रसाजीर्ण, अम्लपित्त, रसक्षय, आफरा, श्वास, गुल्म, उदरवात, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, नेत्ररोग और कानसे पीप निकलना आदि रोगोंको दूर करती है। इस भस्ममें पित्त की अम्लताको कम करनेका मुख्य गुण होनेसे इसके सेवनसे नेत्रकी उष्णता भी शांत होती है।

कपर्दिका भस्म चूनेका सेन्द्रिय कल्प है। इसमें सेन्द्रियत्व होनेसे अन्य निरिन्द्रिय कल्पकी अपेक्षा सत्वर और सुखपूर्वक शरीरमें शोषण हो जाती है। कपर्दिका भस्म उदरमें स्वादुता उत्पन्न करती है। शंख और शुक्तिकी अपेक्षा वराटिकामें यह गुण विशेष रूपसे रहा है। इस हेतुसे कोष्ठगत वात-वृद्धि होकर आफरा आना, पेट दुखना, पेटमें शूल चलना, भोजन जहाँका तहाँ स्थिर-सा रह जाना, बार-बार शुष्क डकार या दुर्गन्धयुक्त भोजनकी बास वाली डकार आना, व्याकुलता, विशेषत: वातल, जड़ और तले हुए पदार्थोंके सेवनसे अजीर्ण हो जाना आदि लक्षणयुक्त अपचनमें वराटिका भस्मका उपयोग हितकर है। यदि इस स्थितिमें ज्यादा वमन भी होती हो और वमनके साथ आफरा बढ़ता हो और शूल ज्यादा चलता हो तो इसे अनारके रस या दाड़िमावलेहके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्ण होनेकी जिनकी प्रकृति हो उनको भी यह भस्म देना हितकर है।

परिणामशूल—विशेषत: पित्तज, वातज, अथवा वातपित्तज होनेपर इस भस्मका सेवन कराना चाहिये। परिणामशूलमें बहुत करके ग्रहणी स्थानमें ज्यादा विकृति होती है। वराटिकासे यह दुष्टि दूर होती है। इस रीतिसे मुद्रिका द्वारपर व्रण हो और वह बहुत न बढ़ा हो तो व्रणरोपण रूप महत्वका कार्य इससे हो जाता है।

अन्नद्रवशूलमें यह भस्म हितकारक है। अन्नद्रवशूलमें वातप्रकोपके

कारणसे आफरा होता हो तो कपर्दिका भस्म और शङ्ख भस्मको मिलाकर देना चाहिए।

अम्लपित्तके प्रारम्भ कालमें झागयुक्त खट्टी वमन होती हो तो वराटिका भस्म दी जाती है। साथमें स्वर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता है।

ग्रहणी रोगके बिल्कुल प्रारम्भकालमें और आमातिसारमें आमपाचनके लिये कपर्दिका भस्मका उपयोग होता है। प्रारम्भमें एक दो उपवास करा कपर्दिका अथवा जिसमें यह भस्म मिली हो ऐसी जातिफलादि वटी ग्रहणी-कपाट रस या अन्य औषधि देनी चाहिए। जातिफलादि और ग्रहणी कपाट में अफीम मिलाई जाती है जिससे वे तीव्र स्तम्भक हैं। इसलिये इनका उपयोग बहुत सम्हालपूर्वक करें। आमातिसार और ग्रहणीमें तीव्रशूल अर्थात् आमजन्यशूल हो तो कपर्दिकासे अति उत्तम कार्य होता है; किन्तु ग्रहणी रोग की जीर्णावस्थामें इसका उपयोग अच्छा नहीं होता। विशेषत: रक्तमिश्रित आम गिरते हों तो इस औषधिका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। नूतन रोगमें भी रक्तमिश्रित आमपर कपर्दिका नहीं देनी चाहिये। यदि देनी हो तो अन्य स्तम्भक और रक्तप्रसादक औषधके साथ देनी चाहिये।

रसक्षयके प्रारम्भमें जब थोड़ा भोजन करनेपर भी पचन न होता हो, मीठी, खट्टी और खाये हुये भोजनकी विकृत डकार बार-बार आती हो; मलावरोध भी रहता हो; तब इस भस्मसे लाभ हो जाता है।

रक्तपित्त और क्षतक्षयपर वराटिका, प्रवाल और सोनागेरू मिलाकर देना चाहिये। इनमें चूना और माधुर्य उत्पादक धर्म होनेसे, रक्त और रक्तवाहिनियोंका स्तम्भन होकर रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

जीर्ण अग्निमांद्यमें वराटिका भस्म घृत या अन्य पाचक औषधिके साथ देनी चाहिये। जीर्णज्वर और प्लीहावृद्धिमें मन्दाग्नि हो तो भी इसका उपयोग हितकर है।

चिपचिपा, स्फोटयुक्त, तीव्र कर्णस्राव हो तो वराटिकाका उपयोग करना चाहिये। कानमें थोड़ी वराटिका भस्म डालें, फिर गरमकर शीतल किया हुआ तैल, बिल्वादि तैल या क्षार तैल डालना चाहिये और वराटिका भस्म दूधके साथ सेवन करानी चाहिये।

अग्निदग्ध त्वचापर वराटिका भस्मका उत्कृष्ट उपयोग होता है। वराटिका भस्म, मुर्दासंग, सोनागेरू, गिलोय सत्व, श्वेत चन्दन और वंशलोचन सबको समभाग मिला अरंडीके तैलमें खरलकर मृदु ब्रुश या रूईके फोहेसे जले हुए स्थानपर मोटा-मोटा लेप करें। जैसे-जैसे लेप लगाते जायँगे; वैसे वैसे शीतलता होती जायगी; फोडे नहीं उठेगें और त्वचा उत्तम प्रकारसे अच्छी हो जाती है।

वराटिका भस्म पित्तशामक, विशेषत: पित्तकी अम्लता शामक,कोष्टस्थ

वातहर, शूलघ्न और पाचक है। इसका कार्य यकृत् प्लीहा, आमाशय और ग्रहणीपर होता है। पित्तदोष तथा रस और क्वचित् रक्त, इन दूष्योंपर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—वराटिका भस्मके सेवनसे जिह्वा फट जाती है। इस हेतुसे घृत या गिलोयसत्व और शहद या अन्य औषधिके साथ मिलाकर लेनी चाहिए।

(३०) शंख भस्म

विधि—शुद्ध शंखके टुकड़ोंको कोयलोंकी तेज अग्निपर अच्छी तरह तपाकर नींबूके रसमें बूझा देनेपर भस्म हो जाती है। फिर उसे खरलकर बोतलोंमें भर लेवें। ※

यदि इस भस्मका उदररोग अथवा नारु रोगपर उपयोग करना हो, तो आकके पीले पानोंके रसमें ६ घण्टे खरलकर टिकिया बना संपुट करके गजपुट देना चाहिये।

मात्रा—१ से ४ रत्ती, दिनमें दो समय अजीर्णपर नींबूके रस और मिश्री अथवा गरम जलके साथ या १ रत्ती हींग और ६ माशे घृतके साथ दें। अतिसार और संग्रहणीमें बेलके मुरब्बेके साथ। नेत्रके फूलेपर दिनमें २ समय अंजन करें। हिक्कामें १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ १-१ घण्टेपर ३-४ बार दें। त्रिदोषज शूलपर कालानमक भुनी हींग और त्रिकटुके साथ मिलाकर निवाये जलके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म उदरवात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार, अजीर्ण, अफारा, शूल, संग्रहणी और नेत्रके फूले आदि रोगोंमें अति उपयोगी है। स्नायु (नारु) निकला होवे तब १-१ माशे भस्म दिनमें २ समय चार दिन तक देते रहनेसे रक्तमें रहे हुए (किन्तु बाहर निकले हुए) नारु जल जाते हैं।

शंख भस्म एक प्रकारका क्षार है। क्षारके गुणधर्म बहुत अंशोंमें इस भस्ममें प्रतीत होते हैं। शंख और वराटिकामें गुण-साद्दश्य अधिक है। कारण, दोनों चूनेके सेन्द्रिय कल्प हैं। तथापि शंखमें कुछ पृथक् गुण भी हैं। उन्हींको यहांपर दिखाया है। शंखभस्ममें ग्राही अर्थात् स्तम्भक गुण है; जिससे अतिसारमें, विशेषतः पक्वातिसारमें अच्छी उपयोगी है। पक्वातिसारमें शंखभस्म, सोहागेका फूला, अफीम और जायफलको योग्य परिमाणमें मिश्रण करके देना अति हितकर है। इस योगको शंखोदर कहते हैं। ग्रहणीके विकारमें शङ्खभस्मका उपयोग होता है। विशेषतः ग्रहणीमें बार-बार पतले विरेचन होते हों, कोष्ठशूल हों और शूलके वेगके साथ पतले

※ शुद्ध शंखके टुकड़ोंको ७॥ सेर गोबरीके भीतर अग्नि देनेसे श्वेत मुलायम भस्म बन जाती है।

थोड़े-थोड़े दस्त होते हों तो शंखभस्मका अच्छा उपयोग होता है।

पैत्तिक कोष्ठशूल, पित्तज अतिसार और कफपित्तज कोष्ठशूलमें शंखभस्म का उपयोग योग्य अनुपानके साथ होता है। उदरमें वात उत्पन्न होकर आफरा-सा हो जाना, शूल निकलना, कोष्ठकी क्रिया स्तम्भित-सी होकर अन्न जहांका तहाँ स्थिर हो जाना, मीठी या जली हुई अथवा अन्नकी दूषित स्वाद वाली डकार आना आदि लक्षण होनेपर शंखभस्मके उपयोगसे उदरवातका शमन होकर अन्न पचन होने लगता है और आफरा तत्काल दूर होता है।

अन्न पचन ठीक न होनेसे आमाशय या पक्वाशयमें शूल उत्पन्न होनेपर शंखभस्म घृत या नींबूके रसके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्णके पुराने रोगियोंके लिए भी शंखभस्म अति लाभदायक है। किन्तु उष्ण प्रकृति वाले रोगीको यह भस्म नहीं देनी चाहिए।

शंख भस्मका उपयोग यकृत् और प्लीहाकी क्रिया मन्द होनेसे उत्पन्न होने वाले विकारोंमें अच्छा होता है। यकृत् और प्लीहावृद्धिमें क्षारका अच्छा उपयोग होता है। किन्तु मलावरोध हो तो इसके साथ एलुवा या अन्य विरेचक औषधिका उपयोग करना चाहिये। अथवा अन्य क्षार देना चाहिये। उदरस्थ गुल्म और अष्ठीला रोगपर शंखभस्म अति उपयोगी है। अपामार्ग क्षार जवाखार और अन्य क्षारोंकी अपेक्षा इस भस्ममें तीव्रता न्यून है।

कालज (ऋतु परिवर्तनसे होनेवाला) अतिसार, अपचनजनित और कीटाणु जनित विसूचिका (कालेरा) में तीव्र वेग कम होनेपर इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। कालेराकी सुधारवाली अवस्थामें (जुलाब, वमन आदि लक्षण कम होनेपर) थोड़े-थोड़े परिमाणमें दस्त होने और निर्बलता शेष रहनेपर शङ्खभस्म और सुवर्णमाक्षिकभस्मका उत्तम उपयोग हुआ है।

नेत्रके फूलेमें शंखभस्म उपयोगी है। इसके अंजनसे फूले नष्ट होते हैं। इस स्थानमें इसके रोपण धर्मका उपयोग हुआ है।

तरुण स्त्री-पुरुषोंके मुखदूषिका (तारुण्यपिटिका-मुंहपर फुन्सियां हो जाना) में शंखभस्म खिलानेसे उत्तम उपयोग होता है।

शंखभस्म पित्तदोष, रस रक्त और अस्थि ये दूष्य, एवं यकृत् प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र, कोष्ठग्रन्थि, पचनेन्द्रिय, नेत्र और मुख ये स्थान, इन सबपर असर पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

अम्लपित्त रोगमें अपचन, उदरमें भारीपन खट्टी वान्ति और कण्ठमें दाह रहता हो, तब शंखभस्मके साथ नारिकेल क्षार और नौसादर मिला कर भोजन कर लेनेपर घी या नींबूके रसके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। किन्तु जिनको भोजनके बाद दाह बढ़ जाता हो, मुखपाक भी रहता हो,

हो, उनको भोजनके पश्चात् ३-३ घण्टेपर शंखभस्म, शुक्तिभस्म, और अमृतासत्व मिलाकर अनारके शर्बतके साथ देवें।

हिक्का रोगमें वेग बढ़ गया हो, शिरदर्द, दाह और वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों तो शंखभस्म १-१ घण्टेपर देते रहने और सोंठका कपड़छान चूर्ण सुंघाते रहनेसे हिक्का रोग एक ही दिनमें शमन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वह भस्म पित्तविदग्धज उदावर्त रोगमें लाभदायक है इस रोगमें शूल, अफारा, दाह, पतले दस्त, व्याकुलता, शिरदर्द, आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इनपर इस भस्मका सेवन पुराने गुड़के साथ करानेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग दूर हो जाता है।

(३१) अकीक भस्म

प्रथम विधि—रत्नरूप पक्के उपयोगी अकीकको इमामदस्तेमें कूटकर चूर्ण करें। फिर सिरकेसे जब तक लोहांशकी कालिमा नष्ट न हो, तब तक धोना चाहिये। फिर गुलाबजल या घी कुँवारके रसमें खरलकर टिकिया बांध सम्पुटकर गजपुट देनेसे भस्म हो जाती है। फिर दूधमें खरलकर टिकिया बाँधकर गजपुट देवें। दूधकी भावनाके बाद गजपुटमें रखनेसे सम्पुटमें भस्म फूलती है। इसलिए सम्पुट थोड़ा खाली रहे, ऐसा बड़ा सराव लेना चाहिये। इस तरह ३ पुट देनेसे भस्म मुलायम बन जाती है। कितने ही चिकित्सक इसे चौथा पुट दूधका भी देते हैं।

अकीक पिष्टी—शुद्ध अकीकको गुलाबजलमें ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा-१ से ३ रत्ती, दिनमें २ समय शहद या मक्खन या मलाईके साथ।

उपयोग—यह भस्म शीतवीर्य है। हृदयकी सब प्रकारकी निर्बलता उष्णता, हृदयरोग, मस्तिष्ककी उष्णता, नेत्ररोग, रक्तप्रदर आदिको दूरकर शरीरको बलवान् बनाती है। उरःक्षत अर्थात् चक्कर आना, थूंकमें रक्त आता हो तो उसे बन्द करती है तथा फुफ्फुसोंके व्रणोंका रोपण करती है, एवं मस्तिष्कको शांत और सबल बनाती है। इसलिए चित्त विभ्रम होकर उत्पन्न उदासीनता (Melancholia) और हिस्टीरियामें दी जाती है। रक्तस्रावके रोधके लिए अकीक पिष्टी, तृणकान्तमणि पिष्टी, अभ्रक भस्म और अमृतासत्व मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाती है। हृदयकी निर्बलता में अकीक पिष्टी, जहरमोहरा पिष्टी, मोती पिष्टी तथा अभ्रक १००० पुटी भस्म तथा अर्जुनछालके चूर्णका सेवन लाभप्रद होता है।

(३२) जहर मोहरा भस्म

विधि—हलके वजनवाले जहरमोहराको इमामदस्तेमें कूट, कपड़छन चूर्ण तैयार करें। फिर दूधमें ६ घण्टे खरलकर टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें

सुखा सम्पुटकर गजपुट देनेसे भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती। दिनमें ३ समय शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म शीतल पचन-संस्थानके लिए बल्य और हृदय-पौष्टिक है। बालकोंके हरे पीले दस्त, अपचन जनित विसूचिका, वमन, अतिसार आदिको दूर करती है। वातवाहिनियों तथा हृदयको बलवान बनाती है। कॉलेरामें आध-आध घण्टेपर देते रहें। बालकोंको आध-आध रत्ती माताके दूधके साथ देवें।

स्त्रियोंके अति रजःस्राव और निर्बलतामें जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, अमृतासत्व और कासीस गोदन्ती भस्म मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार देते रहनेसे रोग निर्मूल हो जाता है।

रक्तदबाववृद्धिसे शिरमें भारीपन, नेत्रमें लाली, घबराहट आदि लक्षण प्रकट हों तो जहरमोहरा पिष्टी, सोडाबाई कार्ब और गुलकन्दके साथ दिनमें ३ या ४ बार देनेसे दबाव कम हो जाता है। कीटाणुजनित तीव्र वान्ति होती हो, बार-बार वमन होती रहे तथा द्रव्य दुर्गन्धयुक्त हो तो मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरा पिष्टी २-२ रत्ती मिला पोदीनेके अर्कके साथ आध-आध घण्टेपर देते रहना चाहिए। कीटाणुओंको नष्ट करके वान्तिके वेगको शमन करने और आमाशयको निर्दोष तथा सबल बनानेके लिये यह उत्तम औषध है।

(३३) तृणकांतमणि (कहरवा) पिष्टी

विधि—कहरवाका बारीक चूर्णकर गुलाबजलमें ४-६ दिन खरल करनेसे पिष्टी हो जाती है। (सि० भै० म० मा०)

मात्रा—२ से ६ रत्ती, जलके साथ दिनमें ३ समय दें।

उपयोग—यह पिष्टी पित्तविकार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अन्त्रके रोग, अर्श और रक्तपित्त आदि रोगोंमें रक्तका प्रवाह बन्द करनेके लिये उत्तम और निर्भय है। मस्तिष्कमें कीड़े पड़ जानेके कारण निरन्तर शिरमें दर्द बना रहना, नाकमेंसे रक्त गिरना, नाकमेंसे दुर्गन्ध आना मन्द-मन्द ज्वर रहना, अरुचि दाह, प्रस्वेद, चक्कर आना, आदि लक्षण होनेपर तृणकान्त मणि पिष्टी दी जाती है। इससे नाकसे कीडे गिरने लगते हैं और थोडे ही दिनोंमें दर्द शान्त हो जाता है।

अर्शका रक्तस्राव बन्द करनेके लिये इस पिष्टीके साथ लाल बोलकी पर्पटी मिला द्राक्षावलेहके साथ देना विशेष हितकारक होता है। यदि निर्बलता अधिक हो और कब्ज न रहता हो तो इस पिष्टीके साथ अभ्रकभस्म, अमृतासत्व और नागकेसरका चूर्ण मिश्रित कर देना चाहिये।

यूनानी हकीम कहरवा २ से ४ रत्ती तक देते हैं। कहरवा मस्तिष्कके लिये हानिकारक मानते हैं। अधिक मात्रामें लेनेसे शिरदर्द हो जाता है।

पित्तवृद्धिसे हृदयके वेगकी वृद्धि हुई हो तो तृणकान्तमणि पिष्टी लेनेसे शमन हो जाती है। सगर्भा स्त्रीके गलेमें कहरवाकी माला पहनानेसे हृदयकी निर्बलता दूर होती है और गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता। इस पिष्टीको घावपर भुरकानेसे रक्तप्रवाह बन्द होकर घाव भर जाता है।

सूचना—तृणकान्तमणि अधिक मात्रामें लेनेसे मस्तिष्कमें पीड़ा हुई हो तो शर्बत बनप्सा पिलावें।

(३४) पिरोजा भस्म

विधि—४० तोले पिरोजेको इमामदस्तेमें चूराकर सिरकेसे धोकर लोहांश निकाल दें। फिर सावधानीसे सीमाककी खरलमें गिलोय स्वरसके साथ १२ घण्टे खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बनावें। उनको सूर्यके ताप में सुखाकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना सुखाकर गजपुट देनेसे मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है।

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक। गायके मक्खन अथवा घी और कालीमिर्चके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें २-३ समय दें।

गुणधर्म—पिरोजा कसैला, मधुर, दीपन और सारक है। इसकी बनी हुई भस्म रक्तशोधक, विषघ्न, चर्मरोगनाशक और रक्तदबाव शामक होती है। यह उन्माद, अपस्मार, जीर्ण वातरोग, विस्फोटक, व्रण, विद्रधि और विष विकारको दूर करता है।

उपयोग—पिरोजाके सेवनसे विस्फोटकके फोड़े और विभिन्न चर्मरोग शीघ्र शान्त होते हैं। विष-विकारमें भी यह उपयोगी है। एवं स्थावर-जंगम विष और संयोगजन्य विषविकारको भी दूर करके शरीरको निरोगी बनाता है। रक्तदबाव बढ़ा हो, तब अन्य शामक औषधिके साथ इसे मिला देनेसे रक्तदबावका सत्वर ह्रास होता है।

(३५) हरताल भस्म

प्रथम विधि—क्षार जलसे शुद्ध की हुई तपकिया हरताल ५ तोलेको आकके दूधमें ७ दिन तक खरलकर पूरी जैसी चौड़ी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखावें। फिर एक हांडीमें छानी हुई पीपल या ढाककी राख भर ऊपर हरतालकी पूरीके चारों ओर शहद लगाकर रख देवें। फिर उसपर ४-५ अंगुल अपामार्ग पंचांगकी राख दबा देवें। इस हाँडीको चूल्हेपर रख बेरकी लकड़ीकी २४ घण्टे क्रमशः मंद, मध्य, तीव्र अग्नि देवें और देखते रहें कि हरतालका धुआं राखमें से तो नहीं निकलता। यदि धूआं निकले तो तुरन्त और थोड़ी अग्नि मन्द करें। फिर स्वांग शीतल होनेपर ऊपरमें लगी हुई राखको सम्हालपूर्वक हटाकर अर्ध पक्व हरताल भस्मको निकाल

लेवें। फिर पुनर्नवाके जलमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें उसे सुखा सराव सम्पुटकर २ सेर गोबरीके चूर्णकी अग्निमें फूंक देनेसे मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

तालभस्म परीक्षा—तालं मृतं तदा ज्ञेयं वन्हिस्थं धूमवर्जितम्।
सधूमं नमृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः ।।

यह भस्म शास्त्र मर्यादासे निषिद्ध प्रकारसे मारित हो अथवा अर्धपक्व रही हो तो उपयोग नहीं करना चाहिए। परिपक्व भस्मको ही उपयोगमें लेवें। अन्यथा निम्न विकारोंकी उत्पत्ति कराता है—

हरति च हरितालं चारुतां देहजातां
सृजति च बहुशोषानङ्गसंकोचपीड़ाम्।
वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्या-
दिदमशितमशुद्धं मारितं चाऽप्यसम्यक् ।।

भावार्थ—अपक्व हरताल भस्मके सेवन से रक्तविकार, शोष, नपुंसकता, कफवातरोग व कुष्ठ रोग होते हैं।

मात्रा—१ से २ चावल तक। प्रातः सायं या आवश्यकतापर देवें।

अनुपान—१. विषमज्वर और कफवात-प्रधान ज्वरपर-अदरकका रस।
२. कुष्ठमें—बावचीके चूर्ण अथवा मंजिष्ठादि अर्कके साथ।
३. तमक श्वासमें—शहद और पीपलके चूर्णके साथ।
४. ज्वर, क्षय और पाण्डुपर—शक्करके साथ।
५. प्रसूताके शूल और वातरोगपर—अदरकके रसमें।
६. शैत्यपर केशर और जावित्रीके साथ।
७. संधिवातमें—चोपचीन्यादि चूर्ण और शहदके साथ।
८. रक्तविकृतिमें—आमाहल्दीके साथ।
९. कुष्ठ और वातरक्तपर—गिलोयके क्वाथके साथ।
१०. वातरोगमें—शक्करके साथ।

हरताल गुणधर्म— हरितालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कण्डुकुष्ठार्शरोगासृक्कफ पित्तमरुद्‌गदान् ।।
शोधितं हरितालं तु कान्तिवीर्यं विवर्द्धनम्।
कुष्ठादिपापरोगघ्नं जरामृत्युहरं परम् ।।
वातश्लेष्महरं रक्तभूतत्नुत्पुष्पहृत्स्त्रियाः।
सुस्निग्धमुष्णं कटुकं दीपनं कुष्ठहारि च ।। (र० रा० सु०)

यह भस्म विविध उपद्रवोंसह वातरक्त, सब प्रकारके कुष्ठ, फिरंग जनित कुष्ठ, विसर्प, कण्डू, पामा, विस्फोटक, ८० प्रकारके वातरोग, कफरोग, प्रमेह और गुदाके रोगोंको दूर करती है। इस भस्मके सेवन कालमें नमक और खटाईको त्याग देना चाहिये।

उपयोग—यह भस्म गलत्कुष्ठ (Nodular Leprosy), सप्तकुष्ठ (Nervous Leprosy), ब्यूची, उपदंश (Syphilis), उलट उलटकर बार-बार आनेवाला ज्वर (Relapsing Fever), शीताँग सन्निपात; श्वास कफप्रकोप आदिपर अति हितावह है।

हरताल भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठघ्न हैं। यह एक उत्कृष्ट रसायन होनेसे रसायन विधानके अनुसार सेवन करनेपर जरावस्थाकी निर्बलताको नष्ट करती है; कान्ति बढ़ाती है तथा अकाल मृत्युको दूर करके आयुकी वृद्धि करती है।

वातरक्तपर यह भस्म अच्छी उपयोगी है। विशेषत: वातप्रधान वातरक्त और कफप्रधान वातरक्तपर यह अधिक लाभदायक है। वातरक्तका प्रारम्भ पैर अथवा हाथके अंगुष्ठके पाससे होता है। पहले अंगूठे सूजते हैं, उनमें पीड़ा होती है, पश्चात् धीरे धीरे सारे शरीरमें वातरक्तका प्रादुर्भाव होता है। वातरक्त और कुष्ठ दोनों रोग भिन्न हैं। दोनोंके दोष-दूष्यमें महदन्तर है। वातरक्त होनेपर सर्वाङ्गमें, संधियों, धमनियों और अंगुलियोंमें बार-बार अति त्रासदायक शूल, हाड़ हाड़ टूटनेके समान पीड़ा, शोथ, शोथ में भी त्वचा फटीसी हो जाना, त्वचाका रंग मैला, काला या काला-सफेद हो जाना, हाथ या पैरकी वातवाहिनियोंका संकोच होना, हाथ या पैरोंकी अंगुलियां टेढ़ी होना, हाथ-पैरका सन्धि बन्धन भीतरसे खिंचना (जिससे चलनादि क्रिया यथोचित न होना), सारा अंग अकड़ जाना, कम्प आना, शोथ वाला भाग शून्य-सा हो जाना, स्पर्शका वोध न होना, शीतल जल, शीतल वायु, शीतल भोजन आदिपर रुचि न होना, शीत-स्पर्श आदिसे रोग को वृद्धि होना, इन लक्षणोंयुक्त वातप्रधान वातरक्तपर घीके साथ तालभस्म सेवन करानी चाहिये।

यदि वातरक्त रोगमें शोथवाले भागमें व सारे शरीरमें जड़ता, शीतलता, शक्ति नाश और शून्यता, हाथ पैरपर अग्नि स्पर्श आदिके असरका भी भान न होना, हाथ पैरोंकी त्वचा स्निग्ध सी भासना, सारे शरीरमें खुजली चलना शरीर शीतल और वेदना कम, ये कफप्रधान लक्षण हों, तो हरताल भस्मको काँटेवाले करंजके पत्तोंके रसमें घी या मिश्री मिलाकर देनी चाहिये।

पित्तप्रधान वातरक्तमें हरतालका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रोगका त्रास बढ़ता है और पित्तप्रकोप होकर रक्तपित्त हो जाता है।

वातरक्तके समान वातरक्तके उपद्रवोंमें भी हरताल उपयोगी है। अनिद्रा, अरुचि, श्वास, वातजन्य मांसकोथ (पित्तजकोथ हो तो ताप्यादि लोह), मस्तिष्ककी शिरा खिंचना, बार-बार मूर्च्छा, बेहोशी दृष्टिमांद्य, शूल ज्यादा निकलना तृषा, ज्वर, विचारोंमें लीन-सा हो जाना. सारे शरीरमें थरथर-

कम्प, हिक्का, पंगुता, विसर्प, शोथ पककर फूटना, शोथस्थानमें सुई चुभनेके समान पीड़ा, चक्कर आना, थकावट, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाना, शरीरपर फोड़े, फुन्सीयाँ हो जाना, शिरदर्द, शिराओं का संकोच, इन सब त्रासदायक उपद्रवोंको भी ताल भस्म दूर करती है । इन उपद्रवोंमें बार-बार बेहोशी या मूर्च्छा हो जाना अति कष्ट-प्रद है । इसे असाध्य कहें तो भी बाधा नहीं ।

वातरक्तका विकार अति त्रासदायक और दीर्घकाल टिकने वाला है । कुछ दिन तक अच्छा हो गया, ऐसा भासता है, परन्तु थोड़ा सा कारण मिलनेपर पुनः बलपूर्वक उभर आता है । सारे लक्षण विलक्षण वेगसह उपस्थित होते हैं । कितने ही रोगियोंको वातरक्त शमन होकर विसर्प, व्यूची, फोड़े-फुन्सियाँ खाज सारे शरीरमें सूखी खुजली, स्थान-स्थानपर रक्त दूषित होकर चकत्ते हो जाना, गांठें हो जाना, सारा शरीर काला होजाना इत्यादि लक्षण होते हैं । इन सबपर ताल भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है । अनुपान रूपसे अनन्तमूल, चोपचीनी आदि रक्तशोधक औषध देनी चाहिये ।

तालभस्मका उपयोग वातरक्तके समान कुष्ठ रोगमें भी होता है । आयुर्वेदने अनेक त्वचाके रोगोंका कुष्ठमें अन्तर्भाव किया है । इसमें पामा, कच्छू, दद्रु आदि उपकुष्ठ (त्वचाके रोगों) में हरतालकी अपेक्षा गन्धक रसायनका ही उपयोग करना अच्छा है । यदि इनमें भी कोई रोग जीर्ण, दृढ़ मूलवाला और अति त्रासदायक हो, तो उसपर हरतालका उपयोग मंजिष्ठादि अर्कके साथ किया जाता है । शेष महाकुष्ठोंमें दोष-दूष्यों को देखकर हरतालका उपयोग करना चाहिये । तालभस्म कुष्ठ रोगोंमें अति प्रशस्त औषधि है । मात्र पित्तप्रधान दुष्टि या केवल रक्तविशिष्ट दुष्टि होनेपर ताल भस्मका चाहिए वैसा उपयोग नहीं होता । शेष वात-कफ, इन दो दोष प्रधान दुष्टि और त्वचा, मांस लसीका, ये दूष्य होनेपर कुष्ठ रोगमें तालभस्म अमृत रूप है । योग्य परिणाम और योग्य अवस्थामें तालभस्मकी योजनाकी जाय, तो कुष्ठ रोग निःसन्देह दूर होते हैं ।

त्वचा काली या लाल-काली, शुष्क, कठोर, स्थानपर फटीसी और अत्यन्त वेदनायुक्त हो ऐसे कुष्ठको वात-प्रधान दोष-दुष्टिसे उत्पन्न हुआ समझकर उसपर ताल भस्मका उपयोग करना चाहिये । कपाल, उदुम्बर, मंडल, सिध्म, काकण, पुंडरीक, ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ हैं । इनमें उदुम्बर कुष्ठमे दाह, लाली, खाज, अत्यन्त वेदना और रोंगटे मुर्झाये हुये मलिन-से होते हैं, तथा कुष्ठका भाग पके गूलरके फलके समान लाल ऊपर उठा हुआ होता है । मात्र इस कुष्ठपर ताल भस्म नहीं दी जाती । शेष महाकुष्ठोंपर दोष दूष्योंका विचार करके देनी चाहिये ।

जिस कुष्ठका रंग श्वेत या लाल हो, स्थान गाढ़ा और प्रस्वेद आता ही रहता हो तथा उपर उठा हुआ और तेजस्वी मण्डल समान जो भासता हो,

वह मण्डल कुष्ठ है। इस कुष्ठको कष्टसाध्य माना है। तथापि इसपर भी तालभस्मका उपयोग होता है।

जिस कुष्ठकी त्वचा फटी-सी, किनारी लाल वर्णकी भीतरका भाग काला, अति वेदना वाला और लम्बा मण्डल हो वह ऋष्यजिह्व है। जिस कुष्ठका भाग श्वेत सा लाल वर्णका, किनारी लाल और कमलके पत्तेके समान सर्वाङ्गपर फैला हुआ और ऊपर उठा हुआ हो, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहा है। जिस कुष्ठका वर्ण बिल्कुल गुञ्जाके समान लाल और भयंकर वेदना वाला हो, वह काकण कुष्ठ है। इन सबपर ताल भस्मका सेवन हितकर है।

फिरंग रोगकी तीव्र और जीर्ण, दोनों अवस्थाओंमें हरतालका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगकी प्रथमावस्थामें चट्टा कहीं भी न हो ऐसी स्थितिमें तो पारद भस्म, रसकपूर और अमीर रस इन सबका ही उपयोग अच्छा होता है। परन्तु तमाम उपद्रवोंका प्रादुर्भाव हुआ हो अथवा होनेकी सम्भावना हो तो ताल भस्मका उपयोग करना चाहिये। यदि उपदंशका विष दोष दूष्योंमें अधिक गहरा न गया हो; तब तक तो पारद कल्पका उपयोग हितकर है। परन्तु जब विष गहराईमें जाकर त्वचा, मांस आदि दूष्योंको दूषितकर देता है; तब तालभस्मका उपयोग अच्छा होता है। तीव्र विकारमें पारद तथा जीर्णावस्थामें तालभस्म और मल्ल कल्पकी औषधियाँ अवस्थाक्रमसे उपयोगमें ली जाती हैं। विकारमें दोष-दूष्यादिके तारतम्यको देखकर औषधि योजना की जाती है। अर्थात् पित्तदोष और रक्त दूष्य (इनकी प्रधानता) होनेपर पित्तशामक और रक्तप्रसादन करने वाली औषधि (अनुपान) के साथ हरताल देनी चाहिये।

उपदंशके भी अनेक उपद्रव होते हैं—उपद्रव अर्थात् व्याधिके पश्चात् उत्पन्न होने वाले अन्य स्पष्ट रोग। ऐसे उपदंशके अनेक उपद्रवोंमें गलत्कुष्ट और गुदशूक (मांसकीलक-Condyloma), इन दोनोंपर हरतालका विशेष अच्छा प्रभाव पड़ता है। अन्य उपद्रवोंपर हरतालका उपयोग नहीं होता, ऐसा नहीं। परन्तु अन्य विकारोंपर भी हरताल हितावह ही है। हरताल अन्य कुष्ठकी अपेक्षा उपदंशजन्य कुष्ठपर सत्वर अच्छा लाभ पहुँचाती है। उपदंशज कुष्ठ और अन्य कुष्ठ, इनमें बहुत अन्तर है। यह कुष्ठ उपदंशके पश्चात् होता है। अन्य कुष्ठके समान-इसमें अपने दोष-दूष्य नहीं होते। कुष्ठके अवस्थाभेद अथवा जाति और लक्षणके अनुरोधसे भेद नहीं होते। केवल एक ही प्रकारके लक्षण होकर और बढ़कर अन्तमें गलत्कुष्ठकी प्राप्ति हो जाती है। प्रथमतः कानकी पाली, नाकके अग्रभाग और गालपर लाल चकत्ते हो जाते हैं। पश्चात् सारे शरीरपर वैसे चकत्ते होने लगते हैं। हाथ पैरोंकी अँगुलियाँ सूज जाती हैं। हाथ पैरोंकी समवेदना-शक्ति कम होती

जाती है; अर्थात् चुटकी भरने या अग्नि स्पर्शका भी पूरा बोध नहीं होता। संज्ञावाहिनियाँ बधिर हो जाती है। पश्चात् शोथ फूटने लगते हैं। उनमेंसे पूय निकलता रहता है। सारा शरीर सूज जाता है। सम्पूर्ण चेहरा और अङ्ग आदि भयानक विचित्र दीखने लगते हैं। इस अवस्थामें भी हरतालका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु गलत्कुष्ठमें जब तक शोथ फूटकर उसमेंसे पूय मात्र निकलता रहता है तब तक ही औषधि या अन्य उपचार होसकता है। एक समय अवयव जीर्ण होकर खण्डशः टूटकर गिरने लगें; तब जैसा चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। यही मार्ग आनुवंशिक कुष्ठको भी लागू होता है।

वातादिक दोषोंके दुष्ट होनेसे होनेवाला कुष्ठ निज और उपदंशज कुष्ट दोनोंमें अनेक समय रोग बढ़नेपर वातवाहिनियाँ दुष्ट होकर स्पर्शासहत्व होता है अर्थात् थोड़ा-सा आघात होनेपर भी भयंकर पीड़ा होने लगती है, थोड़ा-सा धक्का भी सहन नहीं होता, सहनशक्ति नष्ट होनेसे सारे शरीरसे झनझनाहट होती रहती है, अनेक समय तो रोगी रोने लगता है या कतिपयोंकी वातवाहिनियाँ आकुंचित हो जाती है; जिससे स्नायु और मांसका भी संकोच हो जाता है। जिस भागमें दुष्टी हुई होगी; वह भाग सूखनेके समान हो जाता है। इस प्रकारके लक्षणोंमें हरताल भस्मका उपयोग अच्छा होता है। एवं उपदंशक उपद्रव रूप उत्पन्न हुये प्रमेह और अर्श रोग भी तालभस्म सेवनसे अच्छे हो जानेके अनेक उदाहरण है।

उलट-उलटकर बार-बार आने वाले ज्वर (परिवर्तित ज्वर) पर हरतालका विशेष उपयोग होता है। एवं साधारण शीतपूर्वक ज्वर (विषमज्वर और कफ-प्रधानज्वर) पर भी यह दी जाती है।

सन्निपातमें कफ और वातप्रकोप दूर करनेके लिये इसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे शीत और बेहोशी जल्दी शमन होती है; वातवाहिनियां सशक्त बनती है और रोगी सचेत हो जाता है। सन्निपातमें अदरकके रसके साथ देनी चाहिये।

यह भस्म वात और कफ दोष, रस, रक्त, मांस ये दूष्य तथा त्वचा, शाखा (हाथ-पैर), यकृत्, इन स्थानोंपर अधिक लाभ पहुँचाती है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान कुष्ठ और पित्तप्रधान वातरक्तमें हरताल नहीं देनी चाहिये। हरताल भस्मके सेवन कालमें सूर्यका ताप, नमक, खटाई, मिर्च, तैल आदि हानिकर वस्तुओंका त्यागकर देना चाहिये। आवश्यकतापर भोजनमें थोड़ा सैंधानमक और कालीमिर्च मिला लें।

बद्धकोष्ठ या मूत्रावरोध रहनेपर हरताल विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकती। अतः पहले कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये।

जीर्ण विकारमें मात्रा कम देनी चाहिये एवं बार-बार १०-१५ दिनके पश्चात् ३-३ रोज सेवन बन्द करना चाहिये; जिससे औषधि सत्व रस, रक्त आदिमें अच्छी रीतिसे मिल जाय।

दूसरी विधि—क्षार जलसे शोधित तपकिया हरताल २ तोले और शुक्ति भस्म २ तोलेको ३ घण्टे घीकुंवारके रसमें खरलकर पूरी जैसी टिकिया बनाकर धूपमें सुखावें। फिर सरावमें संपुटकर २ सेर कण्डोंकी अग्नि देवें। शीतल होनेपर निकाल लेवें। इसमेंसे हरताल कुछ उड़ जाती है तो भी काम अच्छा देती है। (र० त०)

मात्रा—½ से २ रत्ती। दिनमें २ समय।

उपयोग—यह भस्म कुष्ठ, नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरको दूर करती है। विषमज्वर आनेके ३ घण्टे पहले ३ माशे मिश्रीके साथ देवें। पुनः दो घण्टे बाद देवें। इसे कुष्ठ रोगपर विशेष हितावह माना है।

(३६) मल्ल भस्म

प्रथम विधि—१६ तोले शोरेको वर्षाके जलमें खरल करके पोली नली बनावें। फिर उसमें उतना ही हाथी दांतका बुरादाभर हँडियामें रखकर चूल्हेपर चढ़ावें। नीचे अग्नि देनेसे दोनों मिश्रित होकर निर्धूम भस्म बन जायेगी। फिर नीचे उतार पीसकर भस्मको बोतलमें भरें। इस भस्ममेंसे २ तोले भस्मको सरावमें रख ऊपर १ तोला मल्लका टुकड़ा रखें। पुनः ऊपर २ तोले भस्म डाल सराव संपुटकर लावक पुट देवें। अर्थात् ९ इञ्च ऊँचाई वाली तुषोंकी या गोबरीके चूर्णकी अग्निमें फूंक देनेसे सफेद मुलायम भस्म बन जाती है। (र० त०)

वक्तव्य--(अ) यह मल्ल भस्म, तेजस्वी सफेद रंगकी बन जाती है, कुछ क्षार मिल जानेसे वजन बढ़ जाता है। परन्तु काम अच्छा देती है। मल्ल भस्मके बाहर क्षारमिश्रित मलिन सफेद रंगवाली भस्म लगी रहती है जो सरलतासे बिखर जाती है। उसे हटा देनी चाहिये।

(आ) जिस भस्ममेंसे मल्ल पूरा-पूरा उड़ जाय, वह निर्धूम बन जाती है। मल्ल जिसमें पूर्णांशमें रहा हो, वह निर्धूम नहीं बनती। उसका निर्णय, रोगियोंको कितना लाभ हुआ है? उस परसे करना चाहिये।

मात्रा—आधे चावलसे एक चावल तक। मुनक्कामें रखकर निगल जायँ। ऊपर दूधमें घी मिलाकर पीवें। अथवा पहिले घी पिलाकर औषधि देवें। अन्य रोगोंमें रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे कास, श्वास, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, उपदंश, चर्मरोग, आमवात, शीतज्वर, कोढ़, पक्षाघात और नामर्दी आदि रोग नष्ट होते हैं।

सामान्यत: सोमल तीक्ष्ण और उष्ण-वीर्य होनेसे कफ और आमका शमन करता है; पित्तकी वृद्धि करता है तथा रक्ताभिसरण क्रियाको बढ़ाता है। कीटाणुनाशक होनेसे रक्त, मांस, अस्थि और मज्जामें रहे हुए विषम ज्वर, उपदंश और कुष्ठ आदिके कीटाणुओंको नष्ट करता है तथा उपदंशसे उत्पन्न उपद्रव, गुदशूक (Condyloma), नासाव्रण, तालुव्रण, पक्ष्मव्रण, नेत्रव्रण, नाड़ीव्रण अतिसार, अन्त्रविकार, पक्षाघात आदिको भी दूर करता है। फुफ्फुस हृदय और वातवाहिनीको उत्तेजना देता है। यदि कफ प्रधान सन्निपातमें आरम्भसे ही सोमलका उपयोग किया जाय, तो रोगका बल नहीं बढ़ सकता। बेहोशी, गलेमें कफका बोलना, नाड़ी मन्द, शरीर शीतल और भ्रम आदि लक्षण हों, कफको बाहर फेंकनेकी वातवाहिनियोंमें शक्ति न रही हो, ऐसे समयपर सोमल अपना प्रभाव तत्काल दिखाता है। किन्तु यदि ज्वर १०१ डिग्रीसे ज्यादा हो, नेत्र लाल हों, पित्त-प्रधान अन्य लक्षण भी प्रतीत होते हो, तो ऐसी स्थितिमें सोमलका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिसरण क्रियाके वेगकी वृद्धि होकर मस्तकपर रक्त अधिक चढ़ता है जिससे व्याकुलता बढ़ जाती है।

सूचना—कास श्वासादि रोगोंमें अधिक कफवृद्धि होनेपर सोमलकी मात्रा कम देनी चाहिये। अन्यथा कफप्रकोप, हृदयावरोध, नेत्रदाह, उदर-पीड़ा, शिरदर्द, संधिस्थानोंमें पीड़ा, वृक्कस्थानमें उष्णता इत्यादि विकृतियाँ होने लगती हैं एवं पेशाब थोड़ा और पीला होकर ज्वर होजाता है। कदाच ऐसा हो तो मोती और शिलाजीत देकर उपद्रवको शमन करें। तत्पश्चात् ३ दिनके बाद आवश्यकता हो तो पुन: स्वल्प मात्रामें सोमल देना आरम्भ करें।

द्वितीय विधि—संखिया, कलमीशोरा, चूना, सीप भस्म, सोहागाका फूला हर एक दो-दो तोले और नौसादर सलाई वाला १६ तोले लेवें। सबको महीन पीस आठ तोले आकके दूधमें खरलकर दो-दो तोलेकी टिकियाँ बना सराव सम्पुटमें रख कपड़ मिट्टी करें। सूखनेपर २।। सेर कंडोंकी अग्नि देनेसे काले रंगकी भस्म बन जाती है। भस्म वजनमें कम उतरती है पर लाभ अच्छा करती है। (धन्वन्तरि)

मात्रा—आधी रत्तीसे एक रत्ती तक, अदरकके रस या दूध मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म वातव्याधि, अर्द्धाङ्गवायु, गठिया, जीर्णज्वर, नया वातज्वर कफज्वर, सन्निपात आदिको मिटाती है। निमोनिया रोगमें खूब फायदा करती है; स्वेद लाकर ज्वरको घटाती है एवं गलगण्ड और बवा-सीरमें भी लाभदायक है।

तृतीय विधि—सफेद संखिया १ तोला और शुक्तिभस्म दो तोले लेकर आकके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोटकर टिकिया बांधें। फिर सुखा संपुटकर

दो सेर गोबरीकी अग्निमें फूंक देवें ।

मात्रा—आध-आध रत्ती । दिनमें दो बार, शहदके साथ देवें ।

उपयोग—यह भस्म कफपित्तात्मक श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग रक्तविकार, नारू और चर्मरोगमें लाभदायक है । अत्यधिक शराब पीनेपर होनेवाली उबाक, वमन, आमाशय-दाह और बेचैनी आदिको दूर करती है।

सूचना—श्वासके रोगीको सुबह १ से २ तोले घी पिलाकर भस्म देवें । शामको घी पिलानेकी जरूरत नहीं है । अथवा घीके बदले शहद और पीपलके साथ देकर ऊपर दूध पिलावें ।

(३७) शृङ्ग भस्म

विधि—बारहसिंगेके सींगोंके शुद्ध सूखे टूकड़ोंके वजनसे ४ गुने आकके पत्तोंको कूटकर लुगदी बनावें । इसमेंसे आधी लुगदी कपडेपर बिछा ऊपर बारहसिंगेके सींगोंके टुकड़े रख, शेष आधी लुगदीको ऊपर रख पोटली बाँधकर मजबूत, कपड़मिट्टी करें । पोटलीसे सींगोंके टुकड़े एक दूसरेसे न मिल जायँ यह सम्हालें । कपड़मिट्टी सूखनेपर गजपुट देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म हो जाती है । कदाचित् भस्ममेंसे कोई टुकड़ा काला या कच्चा रह जाय तो उसे आकके रसमें ३ घण्टे खरलकर टिकिया बना संपुट करें दूसरी बार गजपुट देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है ।

(ब्र० स्वा० सदानन्दगिरिजी)

उपर्युक्त विधिसे घी कुंवारके गर्भको बिछा उसमें सींगोंके टुकड़े रख कर भी भस्म बनाई जाती है किन्तु यह भस्म अपेक्षाकृत न्यून गुण वाली होती है ।

सूचना—शुष्क कासमें शृङ्ग भस्म नहीं देनी चाहिये । आकके पत्तोंकी लुगदीकी अपेक्षा घीकुंवारके गर्भमें संपुट करके बनाई हुई भस्म सौम्य होती है । यद्यपि तीक्ष्ण रोगोंमें उग्र भस्म लाभदायक है तथापि कोमल प्रकृति वालोंके लिये सौम्य भस्म हितकर है ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती । दिनमें २ समय कफको बाहर निकालनेके लिये मिश्रीके साथ । पतले कफके शोषणके लिये शहद या नागर बेलके पानके साथ शूलपर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ । क्षयके तापमें प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्वके साथ । मृद्वस्थि रोगमें प्रवालपिष्टी या गोदन्तीके साथ । श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) पर शृङ्गभस्म, मोरकी चन्द्रिकाकी भस्म और १-१ तोला अष्टांगावलेहके साथ देकर ऊपर सोंठ मिली हुई चाय पिलावें ।

उपयोग—शृङ्ग भस्म श्वास, खांसी, पार्श्वशूल, फुफ्फुस सन्निपात नियोनिया (Pneumonia fever), बालकोंका पसली रोग (Broncho pneumonia), नया फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय Pleurssy), वात-श्लेष्मज्वर (Influenza), जीर्णज्वर, निद्रानाश, सेन्द्रियविष जनित

अस्थिविकार, राजयक्ष्मामें ज्वर, जुकाम, हृदयशूल, मन्दाग्नि, वृक्कव्रण, दांतमेंसे पूय निकलना (Pyorrhoea) और वालकोंके अस्थिवक्रता रोग (Rickets) आदिका शमन करती है ।

शृङ्ग भस्मका मुख्य गुण ज्वरघ्न, शक्तिवर्द्धक कफस्रावका नियमन करना, फुफ्फुसोंमें रहे हुए कफ दोषकी साम्यावस्था स्थापित करके फुफ्फुस कोषोंको शक्ति देना, हृदयको शक्ति देना, क्षयकी प्रथमावस्थामें क्षयके कीटाणुओंका नियमनकर क्षयको बढ़ने न देना इत्यादि है । इसमेंसे अन्तिम कार्य शृङ्ग भस्मके योगसे फुफ्फुसके अथवा अन्य स्थानके शारीरिक घटक सुदृढ़ होकर क्षयके कीटाणु या क्षयजन्य विष नष्ट होनेपर होता है । शृङ्ग भस्मसे क्षयका विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है; ऐसा नहीं । क्षयजन्य विष को निर्विष करने वाली अथवा क्षयज कीटाणुओंको मारने वाली कीटाणु-नाशक औषधि सुवर्णभस्म है । परन्तु शृङ्गभस्मका उपयोग ऊपर लिखे अनुसार (कीटाणुओंकी वृद्धिको रोक देना) होनेसे क्षय हो जानेका सन्देह होनेपर तुरन्त शृङ्गभस्म और प्रवाल भस्मको मिलाकर देते रहनेसे क्षय नहीं होता और रोगी क्षय रोगसे बच जाता है । ऐसे समयपर इस भस्मको १ रत्तीसे प्रारम्भ कर क्रमशः ६ रत्ती तक बढ़ानी चाहिये ।

श्वासनलिकामेंसे कफका परिमाणसे अधिक स्राव होता हो तो उसे शृङ्ग भस्म नियमित कर कफविकारको दूर करती है । वासा (अडूसा) श्वासवाहिनियोंमेंसे कफस्राव ज्यादा कराने वाला हैं । मुलहठी श्वास-वाहिनियोंके उपतापका शमन करती है । अर्थात् यह मधुर चिपचिपा, पतला और कोमल रस उत्पन्न करने वाली होनेसे उपताप कम हो जाता है । जब कण्ठदाह, कण्ठशोथ, फुन्सियां और उपजिह्वा आदिके दोषसे खांसी आती है तब बहेड़ेमें स्तम्भक गुण होनेसे यह उपयोगी होता है । इस रीति से खांसीके पृथक्-पृथक् कारणोंके अनुरोधसे भिन्न-भिन्न औषधि उपयोगमें ली जाती है ।

शृङ्गभस्म वातजन्य शुष्क कासमें नहीं देनी चाहिए अन्यथा श्वास-वाहिनियाँ शुष्क होकर खांसी बढ़ जायगी । परन्तु बालकोंकी काली खांसी (Whooping cough) और उसके समान संक्रामक कासमें शृङ्गभस्मका अच्छा उपयोग होता है । फुफ्फुसों या श्वासवाहिनियोंके प्रदाहके पश्चात् उत्पन्न होने वाली खांसीमें एवं कफ संचयजनित कासमें शृङ्गभस्म उत्तम लाभदायक है । साँभरके सींगोंकी अपेक्षा छोटे बच्चोंके लिये हरिणके सींगों की भस्म विशेष उपयोगी है । हरिणके सींगोंकी भस्म साँभर सींगोंके समान की जाती है ।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया Pneumonia) के पश्चात् प्रायः उरस्थ कफ संचय ज्यादा होता है । यह संचय अनेक समय कई दिनों तक त्रास

पहुँचाता रहता है। कफ दुर्गन्धयुक्त चिपचिपा, पीले रंगका निकलता है। ऐसे कफको सत्वर निकाल देना चाहिये, तथा फिरसे नयी दूषित कफकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये भीतरके अवयवोंको निर्दोष और बलवान बनाना चाहिये। इन सब कार्योंके लिये उत्तम औषधकी योजना करें, तो श्रृंगभस्म और रससिन्दूरको मिला अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्रीके क्वाथके साथ दिनमें ३ बार देना चाहिये तथा पञ्चगुण तैल और नारायण तैलको गुनगुना कर; छातीपर मालिश करने ओर गरम जलसे सेक करनेपर सत्वर लाभ होता है।

कतिपय समय इस प्रकारका कफस्राव-न्यून होनेपर या कफकी दुर्गन्ध न्यून होनेपर भी अन्तरमें कोई एकाध भाग दुष्ट बना हुआ शेष रह जाता है; जिससे कुछ कालके पश्चात् उस भागमें दोष संचयकी वृद्धि होती है और दोषदुष्टि बढ़कर ज्वर आने लगता है। इस प्रकारके ज्वरमें त्रास ज्यादा नहीं होता, तथापि रोगीकी शक्ति क्षीण होती जाती है ऐसी परिस्थितिमें अन्य ज्वरघ्न औषधिकी अपेक्षा श्रृंगभस्म विशेष हितकर है। उसके साथ रससिन्दूर स्वल्प परिमाणमें मिलाकर देनेसे फुफ्फुसोंमेंसे मल-द्रव्य और दोष-दुष्टी नष्ट होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। यह दुष्टी दूर होनेपर सूक्ष्म ज्वर स्वयमेव शमन हो जाता है।

श्रृंगभस्म हृदयपौष्टिक है। हृदयके शूलका विकार जीर्ण होनेपर हृदयमें विशेष विकृति न हो; हृदयेन्द्रिय मात्रकी सामान्य निर्बलता ही कारण हो और स्नायु निर्बल हुए हो, तो ऐसी स्थितिमें श्रृंगभस्मको घीके साथ अवश्य देनी चाहिये। अनेक दिवसोके उपवासों या मार्ग चलनेके कारण या मस्तिष्कका श्रम अतिशय होनेसे हृदयमें निर्बलता आई हो तो भी श्रृंग-भस्म हितकर है। ऐसी अशक्तिके समय थोड़ा-सा कारण मिलनेपर उत्पन्न होने वाली घबराहट, हृदयके वेगकी वृद्धि, कानमें आवाज और नाड़ियाँ उड़ती हों, ऐसा रोगीको भास होता हो, तो श्रृंगभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण देना लाभदायक है। हृदयकी निर्बलतासे उत्पन्न कास, रक्तमें आई हुई निर्बलता, मुँह और सारे शरीरपर आया हुआ कफजन्य शोथ अथवा शोथ समान मुँह फूला हुआ-सा भासना आदि विकृतिमें यह हितकारक है।

श्रृंगभस्मका उपयोग करके निर्जन्तुक क्षय एवं जन्तुजन्य क्षय दोनोंपर अनेक समय अनुभव किया है। इसके योगसे क्षय रोगके ज्वर और कास दोनों जल्दी दूर होते हैं। इतना ही नहीं, क्षयके कीटाणुओंका नियमन, वृद्धि न होने देना, ऐसा राजयक्ष्माके कीटाणुओंपर भी परिणाम होता है। इस भस्मका सेवन आरम्भ होनेपर उसी समयसे क्षयके कीटाणुओंका आगे बढ़ने वाला पैर पीछे पड़ता है। राजयक्ष्मामें रोगी बिल्कुल घबरा न गया

हो, बलमांस विहीनत्व स्थिति न हुई हो, तो श्रृंगभस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें इस भस्मका उपयोग करने लगे तो रोगी बहुत करके अच्छा हो ही जाता है। इस कारणसे क्षय रोगमें श्रृंगभस्म अनेक औषधियोंमेंसे एक उत्तम औषधि है, ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है। क्षय रोगमें अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म और श्रृंगभस्म तीनों एकत्र करके देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। तद्वत् शरीरमें रहे हुए सूक्ष्म ज्वरपर भी इसका उपयोग अच्छा होता है।

बालकोंकी बालशोष व्याधि जिससे अस्थि बहुत कमजोर, हाथ-पैर शुष्क और पेट घड़ेके समान हो जाता है; इसपर श्रृंगभस्म और प्रवाल-पिष्टीके मिश्रणका अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रपिण्डके विकार पूयवृक्क और वृक्कव्रणमें वंगभस्म या अन्य औषधि के साथश्रृङ्ग देनेसे पूय सत्वर सूखने लगता है। रोगीको अधिक त्रास होता हो, तो वह कम होकर रोग शीघ्र काबूमें आ जाता है।

श्रृङ्ग भस्म विशेषत: कफदोष; रस, रक्त, अस्थि, मज्जा इन दूष्यों और श्वसनेन्द्रिय, हृदय, वृक्क (मूत्रपिण्ड) इन, स्थानोंपर लाभ पहुँचाती हैं।

(औ० गु० ध० शा०)

श्रृङ्ग भस्म १ रत्ती और शुद्ध नौसादर ४ रत्ती गुनगुने जलके साथ देनेसे नूतन प्रतिश्यायमें कफस्राव जल्दी होकर थोड़े ही समयमें प्रतिश्याय और शिरदर्द दूर हो जाता है।

कास रोगके साथ कितनों ही को श्वासरोग भी होता है। रोग जीर्ण होनेपर बार-बार कास चलती रहती है और १०-२० बार खांसनेपर कफ गिरता है, कभी-कभी झागदार वान्ति हो जाती है; बोलनेमें श्वास भर जाता है; और शीतकालमें बैठे-बैठे रात्रि काटनी पड़ती है। गर्मीके दिनों में त्रास कम रहता है। इस विकारपर श्रृङ्गभस्म २ रत्तीके साथ रससिंदूर १ रत्ती मिला तुलसीके रस और शहदके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे शनैः-शनैः छाती सबल होकर कास औरश्वास दोनों रोग निवृत्त होजाते हैं।

यदि श्वास रोगमें कफ संगृहीत हो जानेसे अति त्रास होता हो, तो श्रृङ्गभस्मके साथ मल्लसिंदूर (दूसरी विधि) और त्रिकटु मिलाकर ४-४ घण्टेपर शहदके साथ देते रहें और ऊपर चाय पिलाते रहें तो एक दिनमें घबराहट दूर हो जाती है। किन्तु जितना कफ अधिक गाढ़ा हो उनको मल्ल-सिंदूर न देकर श्रृङ्ग, अभ्रक; समीरपन्नग और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर ४-४ घण्टेपर देना चाहिये। समीरपन्नग मिलानेसे कफ सरलतासे बाहर निकल आता है।

सेन्द्रिय विष या कीटाणुओंके रक्तमें प्रवेश होनेपर नखोंकी रचना अव्यवस्थित और विकृत होने लगती है। बहुधा फिरङ्ग रोगके विषसे ऐसा

होता ही है एवं उदरमें सूक्ष्म कृमि दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेपर भी नख बैठे हुए विकृत और अनियमित मोटे-से बन जाते हैं। उसपर यह भस्म दोपहरके भोजनके समय अमृतासत्व, नागरमोथा और आँवलेके चूर्णके साथ सेवन करा ऊपर भृंगराज तैल ६ माशे पिलाया जाता है। इस तरह सेवन करने पर १-२ मासमें नखविकृति दूर हो जाती है।

निद्रानाश—उत्तेजक भोजन, चाय, कॉफी आदि उत्तेजक पेय, या अति उग्र औषधि सेवनपर निद्रा नहीं आती। कईयोंको बिल्कुल शान्ति नहीं मिलती। एवं कईयोंको अशान्त निद्रा मिलती है। इस निद्रानाशपर शृंगभस्म ४-४ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ दी जाती है। यदि रोग अम्लपित्त, दाह, आदिसे पीड़ित भी हो, तो सूतशेखर और कामदुधा भी मिला लिया जाता है।

(३८) संगेयशब भस्म

विधि—शुद्ध संगेयशबको गावजवांके क्वाथमें ६ घण्टे खरल कर २-२ तोलेकी टिकियां बना सूर्यके तापमें सुखा, सरावमें ऊपर नीचे गावजवांका कल्क रख, सम्पुट करके सुखा लेवें। बादमें गजपुट अग्नि देवें। इस रीतिसे ६ समय गजपुट देनेसे भस्म मुलायम हो जाती है।

(वैद्यराज पं० श्री० गंगादत्तजी पन्त)

दूसरी विधि—(संगेयशब पिष्टी) शुद्ध संगेयशबको गावजवांके क्वाथमें १४ समय बुझा, अर्क गावजवां या केवड़ाके साथ ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। दिनमें २ समय, शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म हृदयकी धड़कन और उष्णताको दूर करके हृदयको बलवान् बनाती है। निद्रानाश, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, वातवाहिनियाँकी निर्बलता, मस्तिष्ककी उष्णता स्वेदाधिक्य, आमाशयकी अशक्ति और धातुकी निर्बलताको दूर करती है तथा स्मरणशक्तिको बढ़ाती है।

हृदय निर्बल हो जानेपर हृदय स्पन्दन बढ़ जाता है। मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है। पचन क्रिया मन्द बन जाती है। थोड़ा-सा परिश्रम करनेसे श्वास भर जाता है। अनेकोंको शिरमें भारीपन हो जाता है। कितनों ही को कफवृद्धि होती है। उसके लिये संगेयशब भस्म, जहरमोहरा पिष्टी, रससिंदूर और लवंगादि चूर्णका मिश्रणकर मक्खन मिश्रीके साथ देना हितकर है।

संगेयशबको जलमें पीस, दूध-मिश्री मिलाकर भी पिलाया जाता है। अनेक मुसलमान संगेयशबका ताबीज बनाकर हृदयके रक्षणके लिये बालकोंके गलेमें बाँधते हैं।

(३९) संगजराहत भस्म

विधि—गावजवाँ क्वाथमें १४ समय बुझाये हुए गोदन्तीके समान उज्वल

संगजराहतके टुकड़े ४० तोलेको ऊपर नीचे हांड़ीमें २ सेर घीकुंवारके गूदे के बीचमें रख संपुटकर, गजपुट देवें। स्वाँग शीतल होनेपर भस्म निकाल कर पीस लेवें।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक दिनमें दो समय देवें।

अनुपान—पूयमेह मक्खनके साथ सुबह २१ दिन तक। प्रदरमें चावल के धोवनके साथ। अंतड़ीमें क्षत और शोथ होकर रक्त और पूय सहित अतिसार हुआ हो तो गिलोयके सत्व और शहद या मठ्ठे अथवा बकरीके दूधके साथ। उरःक्षत, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और रक्तसह कफकासमें मलाई-मिश्री अथवा समान सोनागेरू मिलाकर अनार शर्बतके साथ। छुरी आदि लगनेसे होने वाले रक्तस्रावको बन्द करानेके लिये घावके ऊपर इस भस्म को दबा देनी चाहिये।

उपयोग—यह भस्म पूयमेह (सुजाक), श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, धातुदौर्बल्य उरःक्षत, अतिसार, मुंहके छाले, दाह, रक्तपित्त आदिको दूर करती है। दंतमंजनमें मिलानेसे दांतोंको सफेद बनाती है और पूयको बन्द करती है। कर्णस्रावमें इस भस्मको कानमें डाल ऊपर नींबूका रस २-२ बूंद डालते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम हो जाता है।

(४०) संगेयहूद (हिजरलयहूद) भस्म

विधि—शुद्ध संगेयहूदको धमासेकी लुगदीमें रखकर संपुट करें। २० तोले संगेयहूदके लिये ८० तोले धमासेकी लुगदी लेवें। संपुट सूखनेपर गज-पुटमें फूंक देवें। स्वांग शीतल होनेपर संपुटमेंसे संगेयहूदको निकाल, मूली के पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोट, छोटी-छोटी टिकियाँ बाँध, सूर्यके तापसे सुखा लेवें। फिर सराव-संपुटकर, गजपुट देनेसे मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती, शर्बत-बजूरी या शक्करके जलके साथ, १-१ घण्टे बाद २-३ बार दें।

उपयोग—अश्मरी, शर्करा, मूत्रावरोध आदिको दूर करती है। मूत्रा-शयकी पथरीको तोड़कर मूत्रके साथ बाहर निकाल देती है। अश्मरी बहुत बड़ी हो तो इसे अधिक मात्रामें ८-१० दिन तक रोज सुबह देते रहनेसे बिना आपरेशन पथरी कटकर रोग शमन हो जाता है।

द्वितीय विधि—बड़े बिच्छू ५ नग लेकर उनको कूटकर मध्यमें एक तोला हिजरल्यहूद रखकर २ मिट्टीके प्यालोंमें बन्द करके कपरोटी करके ५ सेर जंगली उपलोंकी आंच दें, शीतल होनेपर निकाल लें, और बिच्छुकी राख समेत पीस लें।

मात्रा—१ रत्ती, शीरा तुख्म खरपजा, शीरा तुख्म खयारैन, शीरा गोखरू प्रत्येक ३ माशा, शरबत बजूरी दो तोलाके साथ प्रयोग करें।

गुण—वृक्क तथा मूत्राशयकी पथरीमें अत्यन्त उपयोगी है। वृक्कशूल तथा मूत्रावरोधमें भी लाभकारी हैं।

वक्तव्य—अनेक हकीम संगेयहूदको जलके साथ घिस करके उपयोगमें लेते हैं। ऐसे ही पिष्टी बनाकर भी प्रयुक्त करते हैं।

(४१) पीतल भस्म

विधि—२० तोले शुद्ध पीतलके पतरेके छोटे-छोटे टुकड़े करें। फिर मैनसिल और गन्धक २०-२० तोलेको नींबूके रसमें खरलकर टुकड़ोंपर लेपकर सुखा लेवें। यदि पीतलका बुरादा कर लिया हो तो मैनसिल और गंधक मिलाकर नींबूके रसमें खरल कर गोला बाँधें। फिर सूर्यके तापमें सुखा गोलेको या उन लेप किये हुये टुकड़ोंको सराव संपुटकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल, पुनः उपरोक्त विधि अनुसार मैनसिल; गन्धकके साथ मिला नींबूके रससे खरलकर, गोला-बाँध गजपुट देवें। इस तरह ८ गजपुट देवें। पश्चात् १ पुट बडे नींबूके रसका देनेसे भस्म निर्दोष और विशेष लाभदायक बनती है। (र० र० स०)

वक्तव्य—मात्र गन्धक दूनी ली जाय तो भस्म जल्दी बनती है और अधिक मुलायम बनती है। नींबूके रसके १ पुटके स्थानपर कम से कम सात पुट देना चाहिए या दहीके पुट देना चाहिये, तभी इच्छित लाभ पहुँचा सकती हैं।

मात्रा—½ से १ रत्ती शहद, मीठे अनारदानोंके रस या रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

गुणधर्म—पीतलभस्म उष्णवीर्य और शीतल है। रूक्ष, लवण रसवाली तिक्त (कड़वी) और दीपन-पाचन है। रक्तपित्त, श्वेत कुष्ठ, यकृत्के दोष, प्लीहावृद्धि, दाह, तृषा, रक्तविकार, प्रमेह, अर्श, संग्रहणी, शूल, पाण्डु और कृमिरोगोंका नाश करती है। विशेषतः कफपित्त जनित रोगोंमें यह व्यवहृत होती है।

उपयोग—इस भस्मका व्यवहार चिकित्सकवर्ग बहुत कम करते हैं। इस भस्ममें ताम्र और जसद भस्मके मिश्रित गुण हैं; यह भस्म ताम्र समान उग्र या जसद समान शीतल भी नहीं है। जिन रोगियोंसे उदर रोगमें ताम्र सहन नहीं होती एवं रसायनियोंको विकृतिमें तथा शूल, संग्रहणी आदिमें जसदभस्म लाभ नहीं पहुँचा सकती, उन रोगियोंके लिये पीतल भस्म लाभदायक है।

(४२) कांस्य भस्म

विधि—शुद्ध कांसीके २० तोले बुरादेके साथ समान गन्धक और चौथा हिस्सा हरताल मिला, नींबूके रसमें खरलकर गोला बना, सूर्यके तापमें सुखा मजबूत संपुट करके ५ सेर आरण्य कण्डोकी अग्नि देवें। स्वांग शीतल

होनेपर निकाल पुनः पुनः उपरोक्त विधिसे ५-५ सेर आरण्य कण्डोंकी अग्नि देवें। इस रीतिसे ५ पुट देनेके पश्चात् ४ गजपुट देनेसे उत्तम मुलायम भस्म तैयार होनी है। (र० र० स०)

वक्तव्य—गुणवृद्धिके लिये ९ पुट देनेके पश्चात् समान भाग दहीमें खरलकर गजपुट देवें। इस तरह और ३ पुट देनेपर भस्म निर्दोष और तत्काल फलप्रद बनती है।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। दिनमें दो समय। शहद, गुलकन्द अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—काँसी भस्म लघु तिक्त (कड़वी), उष्ण, लेखन, दृष्टि शुद्ध करने वाली, दीपन, हितकर और विशेषतः वातपित्तजनित रोगोंकी नाशक है। कृमि, कुष्ठ और रक्त विकार आदि रोगोंका दमन करती है। कांस्य भस्मसे त्वचा मुलायम बनती है। बहुमूत्र प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और मूत्र रोगोंमें लाभदायक और नेत्रके लिये हितकर है।

इस भस्ममें ताम्र और वंगके गुण सम्मिलित हैं। यह नेत्रोंके लिये अति हितकर है। रक्तस्रावयुक्त रोग-रक्तपित्त, अर्श, रक्तातिसार, रक्तवमन, कफमें रक्त आना, मूत्रमें रक्त जाना आदिपर प्रयुक्त होती है। आमका शोषण करती है, आँतमें संचित सेन्द्रिय विष ओर कीटाणुओंको नष्ट करती है। अन्तरविद्रधिके पूयको सुखाती है, तथा पक्वाशय, मूत्राशय आदिकी श्लैष्मिककलाको मुलायम करती है।

सूचना—कांस्य भस्म प्रातः लेनेके ३ घण्टे बाद भोजन करें। सायंकालको भी ३ घण्टेका अन्तर रखें। काँस्य भस्मके सेवन करनेपर ३ घण्टे तक घी वाला पदार्थ न खायें। रोगके कारण दूध अपथ्य न हो, तो अधिक मात्रामें सेवन करें। नींबू और तिल तैलका सेवन; रोगमें अपथ्य न हो, तो कर सकते हैं।

(४३) वर्तलोह भस्म

विधि—शुद्ध वर्तलोह (जर्मन सिल्वर) को कांस्य भस्ममें लिखी विधिसे गंधक ओर हरताल मिला-मिलाकर नींबूके रस या अर्क दुग्धके साथ खरलकर ५ गजपुट देनेसे भस्म बन जाती है। (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती; शहद, शहद-पीपल, घृत, गिलोय-सत्व या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—काँसी, ताँबा, पीतल, कलई और शीशा इन ५ धातुओंके मिश्रणसे भरत बनती है, जिससे इस भस्ममें पांचोंके मिश्रित गुण और संयोग जन्य गुण रहते हैं। इस भस्मको शास्त्रकारोंने शीतल, अम्ल, चरपरी रूक्ष, कफपित्तनाशक, रुचिकर, त्वचाके, रोगोंको नाश करनेवाली, कृमिघ्न,

नेत्रोंके लिये हितकारक तथा योगवाही माना है। अनुपान भेदसे अनेक रोगोंका शमन कर सकती है। फिर भी इस भस्मका उपयोग बहुत कम अंशमें होता है।

सूचना—इस भस्मके सेवनकालमें खट्टे पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

(४४) तुत्थ भस्म

विधि—नीले थोथेकी ३-४ तोले वजनकी १ डली और २० तोले अरीठा लें। अरीठोंके ऊपरके छिलकेका सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर समान नापवाले दो सरावोंमेंसे एकमें आधा चूर्ण नीचे, आधा ऊपर रख बीचमें नीलाथोथा रखें। पश्चात् दूसरा सराव ऊपर ढककर कपड़मिट्टी करें। सराव संपुटमें खाली जगह न रहनी चाहिये। संपुट सूखनेपर १॥ सेर गोबरीकी आँच देनेसे भस्म हो जाती है। (श्री० पं० रामनाथजी त्रिवेदी)

मात्रा—३ से ६ रत्ती, रोटी अथवा बाटीके गर्भमें रखकर निगल जायँ, ऊपरले ५ से १० तोले घी पीवें। लगभग दो घण्टे पीछे एक दस्त होनेपर पुनः ५ तोले घी पीवें। दूसरी बार दस्त होनेपर फिर पांच तोले घी पीवें। इस रीतिसे उदर शुद्धि हो, विष विकार शमन हो, वमन बेचैनी दूर हो, इसलिए सहन हो सके उतनी मात्रामें बार बार घृतपान करते रहें। जब अच्छा विरेचन लगकर दस्तमें केवल घी निकले, तब चावल-मूंगकी खिचड़ी खावें।

घी किसी किसीको १०-१२ समय पिलाना पड़ता हैं। जल व खिचड़ी के सिवाय दूसरी चीज न देवें। दूसरे दिन भी केवल खिचड़ी खिलावें फिर प्रकृतिके अनुकूल भोजन करें।

गुणधर्म—तुत्थ भस्म लेखन, भेदन कण्डूनाशक, ज्वरघ्न, रक्तविकार हर, कुष्ठघ्न और अर्शोहर हैं।

उपयोग—तुत्थ भस्म उपदंश, सुजाक, कुष्ठ, रक्तविकार, चर्मरोग, व्रण, विद्रधि विषम ज्वर, सर्पदंश और और जंगम विषको दूर करती है। अंजन करनेपर नेत्रके शुक्र, बेल, मांसवृद्धि आदिको नष्ट करती है। सुजाकके क्षत को भरनेके लिए २ रत्ती तुत्थभस्मको ६ औंस उबाले हुए जलमें मिलाकर पिचकारी लगायी जाती है। विषमज्वरके वेगको दूर करनेके लिए ज्वर आनेके ४ घण्टे पहले १ रत्ती भस्म ५ माशे शक्करके साथ ले लेवें। फिर २ घण्टे बाद दूसरी मात्रा लेनेसे ज्वर रुक जाता है।

तुत्थभस्मके सेवनसे उपदंश रोग एक ही दिनमें चला जाता है। अशुद्ध रस कपूर वाली औषधिके सेवन करनेसे, नाना प्रकारके उपद्रव उत्पन्न हो गये हों, उनके लिए यह औषधि लाभदायक है।

उपदंश रोगमें मांस तक दूषित हो गये हों, पित्तप्रकोप विशेष परिमाण

में हो ऐसे समयपर तुत्थभस्म अति उपयोगी है। एवं विषविकार, दूषी विषप्रकोप, हृदयदाह, हृदयशूल, कुष्ठ, चित्रकुष्ठ, अम्लपित्त, मलावरोध और अर्श आदिको वमन और विरेचन करा, दूर करती है और शरीरको शुद्ध करती है।

सर्प विषपर नेत्रमें अंजन करनेसे बेहोशी और निद्रा नहीं आने देती। जल मिश्रित करके सुँघानेसे मस्तकमें गया हुआ जहर नाकमेंसे टपक-टपक कर दूर हो जाता है। खिलानेसे वमन विरेचन होकर दूर होता है और दंशस्थानमें नौसादरका चूर्ण डालते रहे जिससे जहर दूषित रक्तके साथ बाहर निकलता रहे। दंशस्थानके ऊपरकी ओर बन्धन बंधा हो, वहाँ तक नौसादर मिले जलमें कपड़ा भिगो-भिगोकर बार-बार पोंछते रहें; जिससे जहर वाला रक्त साफ होता रहे।

कितने ही चिकित्सक तुत्थ भस्मके साथ और औषधियाँ मिलाकर उपदंशकुठार वटी बना लेते हैं. जो बहुत अच्छा लाभ पहुँचाती है। वैद्यराज श्रीरामसिंहजी चौहान (शेगांव) नीलेथोथेको ४ गुने आमके अचारके साथ खरलकर टिकियाँ बांधते हैं। फिर लघु गजपुट देकर भस्म बना लेते हैं जो लाल काली भस्म बनती है। फिर वह भस्म कत्था और छोटी हरड़ ५-५ तोले तथा समुद्रफेन २।। तोले मिला ६० नींबूके रसके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनाते हैं। इन गोलियोंमेंसे एक-एक या दो दो रोग और रोगीकी शक्ति अनुसार प्रातःकाल १ समम अथवा प्रातः सायं दिनमें दो समय अचारके आधे नींबूके साथ देते हैं। ऊपरसे २० तोले दही पिलाते हैं। फिर ५-७ उड़दके वड़े तैलमें तले हुए खिलाते हैं। इस तरह उपयोग करनेपर विविध उपद्रवोंसह असाध्य उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। नया उपदंश, जीर्ण उपदंश, कोथसह उपदंश जिसमें मूत्रेन्द्रियका मांस गल गया हो, उपदंशजनित कुष्ठ, विद्रधि, नाड़ीव्रण, मस्से आदि उपद्रव इन गोलियोंके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। नया विकार ५-७ दिनमें दूर हो जाता है। तथा बढ़े हुए जीर्ण विकारके लिये १४ दिन औषधि देनी पड़ती है।

यदि कचा रसकर्पूर या हिंगुलका धूम्रपान करने या अपथ्य सेवन करनेपर रसायन फूट निकला हो या भयंकर दाह होता हो; तो उन रसायन सेवियोंको पहले जुलाब देकर उदर शोधन करें। फिर एक दिन रोटी या भातके साथ गोजिह्वा (जंगली गावजवाँ) का शाक खिलावें। तत्पश्चात् इन गोलियोंका सेवन करानेसे रसायनकालीन विष और उपदंशज विकृति दोनों दूर होते हैं। वैद्यराज श्रीरामसिंहजी ने इस औषधिका हजारों रोगियोंपर उपयोग किया है। किसीको हानि नहीं पहुची। यह अति निरापद और उत्तम औषधि है।

सूचना—इन गोलियोंके सेवन करनेपर १ मास तक दूध नहीं लेना चाहिये। शक्कर, गुड़, मांस और मैथुनका दो मास तक त्याग करना चाहियें तथा आम और चनेके पदार्थोंको एक वर्ष तक छोड़ देना चाहिये।

यदि किसीने इस औषध-सेवन कालमें आहार-विहारके नियमोंको भंग किया तो सांधों-सांधोंमें दर्द हो जाता है; एवं कितने ही की संधियोंपर शोथ भी हो जाता है। यह उपद्रव सोंठ और नमकके सेवनसे ४-६ दिनमें शान्त हो जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक और सोहागेका फूला, तीनों २-२ तोले मिला, लकुच (कटहर-Artoearpus Lakoocha) के पक्के फलके रसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें। सूर्यके तापमें सुखा, सराव सम्पुटकर कुक्कुट पुट देनेसे भस्म हो जाती है। (र० र० स०)

मात्रा—४ से ८ रत्ती दही, जीरा-मिश्री या गुलकन्दके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। वमन-विरेचनके लिये १ माशा भस्मको गुनगुने जलके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—यह भस्म सब प्रकारके दोष, विषविकार, हृद्रोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त, मलकी गांठ बंध जाना इत्यादिको दूर करती है; वमन और विरेचन कराती है, तथा चित्रो (सफेद कुष्ठ) और दूषी विषको नष्ट करती है।

सूचना—नीलाथोथा सहन न होनेसे कुछ विकार हो जाय, तो ३ दिन नींबूका रस या चावलकी खीलों (लाजा) का क्वाथ लेवें।

(४५) हरताल गोदन्ती मिश्रित भस्म

विधि—५ तोले उत्तम बरकी हरतालके एक टुकड़ेको पीले फूल वाली हुल हुल (कागलाका खेत) के १ सेर स्वरसमें डालकर एक मिट्टीकी हाँडी में भरें। हाँडीको छोटे चूल्हेपर चढ़ाकर १२ घण्टे तक बहुत मन्द आँच देवें। कदाज बीचमें रस समाप्त हो जाय तो और डालें। पश्चात् एक सरावमें गोदन्ती भस्म २५ तोलेके बीच हरतालको रख ऊपर दूसरा सराव ढककर, मजबूत कपड़मिट्टी करें। उसे सूर्यके तापमें सुखाकर ५ सेर आरण्य कण्डोंकी आँच दें। स्वाँग शीतल होनेपर निकाल घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरलकर गोला बाँध सुखा, संपुटकर ५ सेर कण्डोंकी अग्नि दें। इस रीतिसे ३ बार गजपुट देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। टिकिया कठोर प्रतीत होती है, परन्तु पीसनेसे भस्म मुलायम हो जाती है।

(श्री पं० नन्हें मिश्र)

मात्रा—½ से ४ रत्ती तक, दिनमें ३ बार देवें।

अनुपान—सन्निपातमें अदरकका रस और शहद मिलाकर चटावें। एक ही बार देना हो, तो ४ से ८ रत्ती तक देवें। अधिक समय देनेके लिये

२-२ रत्ती २-२ घण्टेपर देते रहें। बालकोंकी काली खाँसीमें डंडा थूहरके पत्तोंको गरमकर निकाले हुए रसके साथ आधी आधी रत्ती दिनमें २ समय देते रहनेसे ३-४ दिनमें खांसी शांत हो जाती है। विषमज्वरमें तुलसी, सहदेई या द्रोणपुष्पीके रसके साथ देवें। इस तरह अन्य रोगोंके लिए रोगानुकूल अनुपानकी योजना करें।

उपयोग—यह भस्म नूतनज्वर, शीतज्वर (Malaria), श्वसनक (Pneumonia), प्रलापक सन्निपात (Typhus), मोतीझरा (Typhoid Fever) उलट-उलटकर आने वाला ज्वर (Relapsing Fever), कुष्ठ, रक्तविकार, विस्फोटक, उपदंश, वातरक्त, श्वास, कास, बालकोंकी काली खांसी आदि रोगोंको दूर करती है। सन्निपातमें तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है। हरतालकी उग्रताका गोदन्तीके संयोगसे शमन हो जानेसे इस भस्मका उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है।

(४५) शम्बूक (घोंघा) भस्म

विधि—शम्बूक (छोटे शंखों) का शोधन (शंख शोधनमें लिखी विधि से) करें। फिर कूट सूक्ष्म चूर्णकर पित्तपापड़ाके क्वाथमें ३ दिन खरलकर टिकिया बांध, सूर्यके तापमें सुखावें। सूखनेपर सराव सम्पुट कर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रङ्गकी मुलायम भस्म बन जाती है। इस तरह नदीमें उत्पन्न छोटी-छोटी सीपोंकी भस्म भी शम्बूक भस्मके समान की जाती है।

सूचना–मीठे जलमें उत्पन्न छोटे शंखोंकी भस्म अधिक गुणप्रद नहीं होती।

मात्रा—१ से ६ रत्ती, दिनमें २ समय दें।

अनुपान—१. परिणामशूलपर—गुनगुने जलके साथ।
२. विषमज्वरमें—तुलसीके रसके साथ।
३. संग्रहणी और रक्तातिसारमें—बेलके मुरब्बेके साथ।
४. मन्दाग्निपर—घृत या शहदके साथ।
५. अजीर्णमें—नींबूके रसके साथ।
६. गुल्मपर—जवाखार या अपामार्ग क्षारके साथ।

उपयोग—यह भस्म कफज्वर, ठण्ड सहित विषमज्वर (मलेरिया), अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, कफपित्तात्मक परिणामशूल, मन्दाग्नि, शीतपित्त, विस्फोटक आदिको दूर करती है। शम्बूक भस्मके सेवनसे अन्त्रके क्षतोंका रोपण सत्वर होता है। इस हेतुसे प्रवाहिका प्रधान संग्रहणीमें विशेष उपयोगी है। अंजन करनेसे नेत्ररोग और फूलेका नाश होता है। यह भस्म शीतल, नेत्रपीड़ानाशक तीक्ष्ण ग्राही, दीपन और पाचन है। फोडेपर लगानेमें भी उपयोगी है। विशेष गुण शंखभस्मके समान किन्तु न्यून है।

इसको १ माशा सैंधानमक मिला ६ माशे शहदके साथ लेनेसे दु:सह संग्रहणी नष्ट होती है।

सूचना—परिणामशूलमें मद्यपान, मैथुन, व्यायाम, ईर्ष्या, भारी भोजन तथा मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण, सबका त्याग करावें।

(४७) कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म

विधि—५ तोले अण्डोंके शुद्ध छिलकोंको कूट चूर्णकर एक सरावमें डाल भींग जाय इतना चाँगेरीका रस मिला देवें। पश्चात् दूसरा सराव ढक सन्धि लेपकर ५ सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक दें। स्वांग शीतल होनेपर संपुटको खोलकर मुलायम श्वेत भस्म निकाल लेवें। अग्नि कम लगनेपर रंग श्याम हो जाता है। ऐसा होनेपर पुन: चांगेरीके रसमें खरलकर टिकिया बना अग्निमें फूँक देनेसे उत्तम, श्वेत रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। इस भस्मके साथ १।। तोले सिंगरफ मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना, सूर्यके तापमें सुखा, संपुटकर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह पुन: पुन: १।।-१।। तोले सिंगरफ मिला, खरलकर आँच देनेसे ४ पुटमें अत्यन्त मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है। इस भस्मको श्वेत भस्म और श्वेताण्ड भस्म भी कहते हैं। (धन्वन्तरि)

यदि सब पुटोंमें हिंगुल मिलाते हैं, तो भस्मका रंग कुछ श्याम हो जाता है। मात्र पहले पुटमें ही हिंगुल मिलाते हैं तो रंग सफेद बनता है। हम हिंगुलके स्थानमें अग्निस्थायी पारद पिष्टीको मिलाकर भस्म बनाते हैं, वह अधिक गुणदायक बनती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती, मक्खन-मिश्री, मलाई, दूध, च्यवनप्रशावलेह, आँवलोंके रस या अनारके रसके साथ।

उपयोग—यह भस्म उत्तम सुधाकल्प, हृदयपौष्टिक रसायन, रससंस्थान के लिए बल्य, मांसवर्द्धक और वाजीकरण है। अनेक भाँतिके शुक्रविकारको दूर करती है। प्रमेहोंमें गुणदायक है। कफप्रकोप, वातविकार, शुक्र की निर्बलता और पतलापन, स्वप्नदोष, हृदय और मस्तिष्ककी निर्बलता तथा नपुंसकताको दूर करती है।

स्त्रियोंके रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, बहुमूत्र और सोमरोगको नष्ट करती है। स्त्रियोंको प्रसवके पश्चात् कुछ दिनों तक सेवन करानेसे वे सुदृढ़, सुरूपवान, बलवान् और कुमारी सदृश बन जाती है।

छोटी आयु होनेपर भी अनेक संतानोंको जन्म देनेसे देह निर्बल बना हो वैसी माताओंको कुक्कुटाण्डत्वक् भस्मका सेवन आशीर्वाद रूप होता है।

इस भस्मका २१ दिन तक पथ्य-पालन (ब्रह्मचर्य) सह सेवन करनेसे निस्तेज और वृद्ध मनुष्य तेजस्वी तथा सबल बन जाता है। रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है, पाचन शक्ति प्रबल हो जाती है, और मानसिक प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। बहुधा यह भस्म सब प्रकृति व आयुवालोंको लाभ पहुँचाती है।

जिन माताओंकी आयु छोटी होनेपर भी अनेक संतानोंकी माता बन चुकी हो और योग्य पोषण न मिलनेसे शरीर निर्बल हो गया हो, ऐसी माताओंको कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर सेवन करानेसे एक दो मासमें ही शरीर सबल बन जाता है।

(४८) शुभ्रा भस्म

विधि—१० तोले श्वेत फिटकरीको ३ घण्टे भेड़के मूत्रमें खरल कर टिकिया बना, सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर ६० तोले या अधिक जल रह सके, उतने बड़े मिट्टीके सरावमें रख संपुटकर गजपुटमें फूंक दें। स्वांग शीतल होनेपर मुलायम श्वेत वर्णकी भस्म बन जाती है। ध्यान रहे संपुट का पात्र छोटा होगा, तो फूट जायगा। अधिक मात्रामें बनानी हो तो कड़ाही में डालकर तीव्राग्निपर चढ़ाकर बनाना चाहिये।

मात्रा—१ से ४ रत्ती, शक्कर, शहद, शरबत बनफ्शा या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २-३ बार देते रहना चाहिये।

उपयोग—यह भस्म पार्श्वशूल, न्यूमोनियामें शूल, कटिशूल, जीर्णकाली खाँसी, राजयक्ष्मामें वमन, रक्तवमन, कफके साथ रक्तका आना, वेगपूर्वक खाँसीका चलना, अधिक खाँसीके हेतुसे पार्श्वपीड़ा होना, सुजाक, मासिक-धर्ममें अधिक रक्त जाना, रक्तप्रदर, श्वित्र (कुष्ठ), विसर्प, योनिशिथिलता आदि विकारोंको दूर करती है। आन्त्रिक ज्वर, नागविषजन्यशूल, जीर्ण-अतिसार आदिमें हितकर हैं।

यह भस्म उत्तम प्रभावशाली है। इसके प्रधान गुण स्रोतसंकोचक और रक्त स्तम्भक हैं। यह रक्तवाहिनियोंकी परिधिको संकुचित करती है और नाड़ियोंके भीतर रहे हुए दोषको बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाती है, बढ़े हुए श्वास और कासके वेगको सत्वर घटाती है। सेवन करनेके साथ ही अनेक बार आवेगका दमन हो जाता है। न्यूमोनियाकी द्वितीयावस्थामें फुफ्फुसकोष लसीका स्रावसे भर जाते हैं, फुफ्फुस पत्थर-सा कुठार बन जाता है, प्रारम्भमें कफ पतला निकलता है, फिर चिकने पीले रङ्गका निकलने लगता है, किसी-किसीको रक्त भी आता है और शूल भी चलता है, इन दोनों अवस्थाओंमें कफका संशोधन होकर अनेक उपद्रव इस भस्मके सेवन से शमन हो जाते हैं।

अनेकोंको जीर्णकास रोगमें कफ चिकना; पीला आता है, सरलतासे बाहर नहीं निकलता; उनको यह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कतिपय रोगियोंको राजयक्ष्मा रोगमें खाँसीके प्रकोपसे दुर्दम वान्ति होती रहती है; उसे यह भस्म सत्वर बन्दकर देती है।

काली खाँसी चिरकारी दु:खदायी व्याधि है। इस विकारसे बालक अति निर्बल बन जाता है। भोजन करनेपर तुरन्त खाँसी चलकर वमन हो जाती है। और बालक अति व्याकुल हो जाता है। इस तरह बार-बार खाँसीका वेग प्रबल होकर बच्चोंको व बडे मनुष्योंको भी वमन होती हो तो उनको भी यह भस्म देनेसे वमन बन्द हो जाती है और कीटाणुओंका नाश होकर थोड़े ही दिनोंमें खाँसीकी निवृत्ति हो जाती है।

मधुरा रोगमें अन्त्रस्थ श्लैष्मिककला शिथिल बन जाती है, उसमें क्षत हो जाते हैं। क्वचित् दस्तमें रक्त भी आने लगता है। ऐसे समयपर यह भस्म १-१ रत्ती शक्करके साथ दिनमें ४ या अधिक समय देनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है, क्षत दूर होता है, श्लैष्मिककला सबल होती हैं और अन्त्र विकारका भी शोधन हो जाता है।

नाग (सीसा) धातुजन्य उदरशूल होनेपर इस भस्मका उपयोग अफीम और कर्पूरके साथ ३-३ घण्टेके अन्तरपर किया जाता है। फिर रात्रिको या सुबह मृदु विरेचन देकर कोष्ठको शुद्ध कर लिया जाता है। नाग विष-जन्यशूलमें अन्य औषधियाँ भी दी जाती हैं; परन्तु यह शुभ्राभस्म महौषध मानी गई है।

चिरकारी अतिसार दिनों तक रहनेपर अन्त्र शिथिल हो जाते हैं, तब दाड़िमावलेह, लघुगंगाधर या अन्य ग्राही अनुपानके साथ शुभ्रा देनेसे अन्त्र-मार्ग संकुचित होकर नियमित कार्य करने लगता है।

पूयमेहमें यह भस्म छोटी इलायची, शीतलमिर्च और मिश्रीके साथ देने एवं पिचकारी द्वारा फिटकरीके जलसे मूत्रप्रसेक नलिकाको धोते रहनेसे ३-४ दिनमें ही तीव्र व्यथा शमन हो जाती है। इस तरह नूतन, तीव्र श्वेत प्रदर रोगमें भी यह भस्म १ माशा जवाखार और घीके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार देनेसे तीव्रता और दाह शमन हो जाता है।

मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्राव होनेपर इस भस्मका दिनमें तीन बार मोलसरीकी छालके चूर्णके साथ प्रयोग करने और फिटकरीके जलकी गर्भाशयमें उत्तर बस्ति देनेसे सत्वर लाभ होजाता है।

सूचना—इस भस्मका अधिक मात्रामें अधिक दिनों तक उपयोग नहीं करना चाहिये। अतियोग होनेपर आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिककलामें

उग्रता और प्रदाहकी प्राप्ति होती है।

लाल फिटकरीकी भस्म—श्वेत फिटकरीके समान ही लाल फिटकरी की भस्म की जाती हैं। यह आन्त्रिक ज्वरमें हितकर है। इसके अतिरिक्त लाल फिटकरी २ तोलेमें १ तोला सिंगरफ मिला १ दिन घीकुंवारके रसमें खरल कर टिकिया बाँधें। फिर दृढ़ सराव संपुटकर २॥ सेर गोबरीमें फूंक कर भस्म तैयार करें। वह आन्त्रिक ज्वर, ज्वरके पीछेकी निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, कास, रक्तस्राव प्रमेह और शुक्रकी निर्बलता, आदिपर विशेष हितकारक है। सिंगरफ मिला रक्तस्फटिकाकी भस्मके उपयोगसे हमने अनेक बार लाभ उठाया है।

फिटकरीका फूला—यदि फिटकरीका फूला बनाकर उपयोगमें लिया जाय, तो नेत्रपुष्पपर अंजन रूपसे प्रयोजित होता है। नेत्रस्राव होनेपर ४ रत्ती फूलोंको २। तोला गुलाब जलमें मिलाकर प्रातः सायं नेत्रमें २-२ बूंदें डालते रहनेसे नेत्रस्राव बन्द हो जाता है एवं कर्णपाकमें फूलेके सूक्ष्म चूर्ण को प्रातः सायं कानमें डालने और सम्हालपूर्वक साफ करते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग निवृत्त होता है।

कच्ची फिटकरी—कच्ची फिटकरीकी मात्रा १ से २ रत्ती तक आवश्यकतापर १-१ घण्टेपर दी जाती है। कच्ची फिटकरीमें ग्राही, रक्तरोधक, वमनकारक और क्षत आदिका दाहक गुण अधिक है। शरीरके किसी स्थान पर लगानेसे उस स्थानको आकुंचित करती है। उस स्थानकी शिरा आदि की परिधिका ह्रास कराती है। वह स्थान कठिन और पाण्डुवर्णका हो जाता है; एवं उस स्थानसे रसस्राव आदि क्रिया बन्द हो जाती है। मुख और कण्ठमें यह स्थानिक संकोचक क्रिया दर्शाती है। मुँहमें डालनेपर स्वाद अतिशय कसैला लगता है, और कण्ठनलिका शुष्क हो जाती है। खाने पर आमाशयमें रक्त-रस (Plasma) को संयत और श्लेष्मिक कलाका आकुंचन करती है। एवं आमाशय और अन्त्रके श्लेष्मिक स्रावका ह्रास कराती है। रसस्राव होता हो; तो उसका रोध होता है। परन्तु इस निग्रहक्रियाकी अपेक्षा स्थानिक संकोचन क्रिया अति प्रबल होती है। अन्त्रमेंसे फिटकरीका देहमें शोषण नहीं होता। फिर वमन करानेका प्रयत्न करती है। शीशा गलानेके कारखानों, टाईप ढालनेकी फाउंड्रियों तथा प्रिंटिंग प्रेसोंमें काम करनेवाले कम्पोजिटरोंको असावधानीसे अंगुलियोंके मुँहमें लग जाने या श्वास द्वारा नाग विष मुँहमें चला जाता है तब शूल होता है।

यह नागविषज शूलकी महौषध है। ५-५ रत्ती मात्रामें २-२ घण्टेपर ३-४ समय देनेसे नागविषज शूलकी निवृत्ति होती है। इस तरह जीर्ण प्रवाहिका और जीर्ण अतिसारमें २ से ५ रत्ती तक बीजा बोलके चूर्णमें

मिलाकर दिनमें ३ समय दी जाती है। अर्शके रक्तस्रावको वन्द करनेके लिए इसके जलकी पिचकारी देते हैं। कण्ठरोहिणीमें प्रतिश्यायके शमनार्थ फिटकरीका स्थानिक प्रयोग होता है। चूर्ण लगाया जाता है, या कुल्ले कराये जाते हैं। तीव्र विकार हो, तो फिटकरीके चूर्णको कण्ठमें फूंक देना चाहिये। चिरकारी विकारमें कुल्ले ही कराने चाहिये।

उपजिह्वाका प्रदाह (Uvulitis), कण्ठशालूक (Tonsillitis), पर और रक्तज्वरमें गलेके भीतर क्षत होनेपर फिटकरीके चूर्णको शहदमें मिला कर लगाते हैं।

पारद-जनित मसूढ़ोंकी शिथिलता, मुखसे विष-ढार गिरने; क्षत और रक्तस्राव होनेपर फिटकरीके जलसे कुल्ले कराये जाते हैं।

जुकाम (चिरकारी प्रतिश्याय) में फिटकरीके फूलेका नस्य रूपसे प्रयोग करनेसे श्लेष्मस्राव बन्द हो जाता है।

मूत्राशयमेंसे रक्तस्राव, गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव, श्वेतप्रदर और पूयमेहमें फिटकरीके धावनकी पिचकारी लगानेसे रक्त, दूषित रस और पूयका स्राव कम हो जाता है।

योनिकण्डू रोगमें फिटकरीके गाढ़े द्रवसे धोनेपर खुजलीकी निवृत्ति हो जाती है। योनिदाह होनेपर फिटकरीको जलमें मिला, पिचकारी लगा-कर धोनेसे दाहका शमन होता है।

योनिमेंसे कमल बाहर निकल आनेपर १ तोला फिटकरी और ४ तोले माजूफलके चूर्णको मिला छोटी-छोटी पोटली बांध योनिमें धारण करनेपर कमलका निकलना बन्द हो जाता है। पोटलीको लम्बे डोरेसे बांधनी चाहिये, जिससे डोरा लटका रहे। नया रोग होनेपर यह प्रयोग हितकर है। जीर्णविकारमें इस औषधि प्रयोगसे लाभ नहीं होता।

विविध चक्षुप्रदाहमें फिटकरी महोपकारक है। २ रत्ती कच्ची फिटकरी या ४ रत्ती फूलेको २॥ तोले गुलाबजलमें मिलाकर प्रातः सायं २-२ बूंदें डालते रहनेसे नेत्रप्रदाह शमन हो जाता है। बालकोंके पूययुक्त चक्षुप्रदाहमें फिटकरीके जलकी बूंदें डाली जाती है। इस तरह फिटकरी नेत्ररोगमें बाहरके लेपके लिये भी प्रयोजित होती है। फिटकरीको कड़ाहीमें अग्निपर रखें; रस होनेपर जम्बीरी नींबूका रस थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ; जिससे काले रंगका कीचड़ बन जायगा। फिर गुनगुना रहनेपर नेत्रके चारों ओर लेप कर देनेसे, एवं इसकी पुल्टिस नेत्रपर बांध देनेसे रक्त संग्रहका जल्दी निवारण होकर विकार नष्ट हो जाता है।

राजयक्ष्माकी दुर्दमन वमनमें भस्मके अभावमें फिटकरीका चूर्ण २ से ५ रत्ती मिश्रीमें मिलाकर देनेसे वमन बन्द होती है।

ब्यूची रोगमें फिटकरी और अफीमको जलमें मिलाकर लेप करनेसे ब्यूचीके कीटाणु नष्ट होते हैं, और रक्तस्राव बन्द होता है।

ताजा चोटके रक्तस्रावपर फिटकरी चूर्ण डाल पट्टी बांध देनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और घाव भी नहीं पकता।

दंतवेष्टज शोथपर फिटकरीको गुनगुने जलमें मिलाकर कुल्ले करनेसे शोथकी निवृति होती है। रक्तस्राव बन्द होता है, तथा दाँत और दाढ़ दृढ़ होते हैं।

गुदभ्रंशमें फिटकरीको गुनगुने जलमें मिलाकर आबदस्त लेनेसे गुदभ्रंश दूर होता है।

क्षौर करानेपर फिटकरीके गोले (जो घिसकर चिकना किया हो) को मुखमण्डलपर फिरा लेनेसे उस्तरेकी तेजी या कीटाणु आदिसे उत्पन्न विकृति नष्ट हो जाती है। इस हेतुसे फुन्सियां या अन्य विकारकी उत्पत्ति नहीं होती।

पित्तप्रकोपमें फिटकरी ६ माशे जलमें मिलाकर पिला देनेसे वमन होकर विषकी निवृत्ति हो जाती है।

वर्षाका जल या कभी प्रवासमें मलिन जल मिलनेपर जलमें किञ्चित् फिटकरी डाल देनेसे दोष तलेमें बैठ जाता है; या ऊपर आ जाता है; छान लेनेसे जल स्वच्छ हो जाता है।

फिटकरीके चूर्णमें अर्कदुग्ध मिला ३ घण्टे खरलकर सुखा बारीक चूर्ण बना लेवें। फिर दन्तमञ्जन रूपसे उपयोग करनेसे दांत और दाढ़का दर्द शमन होता है और मसूड़े दृढ़ होते हैं।

सूचना—फिटकरीकी आभ्यान्तरिक अधिक मात्रा देनेपर आभ्यन्तरिक; और स्थानिक अधिक मात्रासे स्थानिक, उग्रता उत्पन्न होती है। स्थानिक लेपको अधिक समय तक रखा जाय, तो प्रदाहकी उत्पत्ति होती है। यह प्रदाह बाह्य त्वचापर नहीं होता; श्लैष्मिककला या क्षत स्थान पर होता है।

नेत्रकी श्लैष्मकलाके तीव्र प्रदाहमें कच्ची फिटकरीका उपयोग नहीं करना चाहिये।

४ माशे या इससे अधिक मात्रामें सेवन करनेपर उबाक, वमन, आमाशयमें संकोच जन्य वेदना और विरेचनकी उत्पत्ति होती है।

कुछ दिनों तक प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करते रहनेसे आमाशयमें भारीपन और वेदना प्रतीत होती है; तथा आमाशयका रक्तस्राव कम हो जानेसे जठराग्नि मन्द हो जाती है।

(४९) स्फटिकमणि भस्म

विधि—राजावर्तकी विधिसे शुद्ध किये हुए स्फटिकमणिको इमामदस्तेमें

कूट; समभाग गन्धक मिला १२ घण्टे नींबूके रसमें खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया बनाकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर सम्पुटकर गजपुट देवें। इस तरह ७ पुट देनेसे मुलायम, मैले, लाल रंगकी भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ बार, मक्खन-मिश्री, मलाई या वासावलेहके साथ सेवन करावें।

उपयोग—स्फटिकमणि भस्म रसमें मधुर, विपाक मधुर, शीतवीर्य, बल्य चक्षुष्य, हृद्य, ज्वरघ्न, उरःक्षतहर और दाह शामक हैं। ज्वर, दाह, रक्तपित्त उरःक्षत, रक्तवमन, विषप्रकोप और रक्तस्रावको रोकनेके लिये सहायक औषधि रूपसे इसका प्रयोग होता है।

(५०) नीलाञ्जन भस्म

विधि—४० तोले शुद्ध नीले सुरमेको रीठेके रस या क्वाथमें ३ दिन खरल कर पेड़ा बना लें। फिर ८० तोले रीठेकी लुगदीके भीतर रख संपुट कर गजपुट अग्नि देनेपर १ पुटमें ही भस्म बन जाती है। इस भस्मको अधिक गुणप्रद बनानेको हम पुनः घीकुंवारके रसके ३ पुट और देते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती, पीपलका चूर्ण और शहदके साथ देकर ऊपर मुलहठी १।-२ माशेका फाण्ट अथवा निवाया जल पिलावें।

गुणधर्म—नीलाञ्जन भस्म शीतल, श्रेष्ठ वामक और कफनिःसारक है। श्वास, कास, कफप्रकोप, पार्श्वमें जल संचय (Pleurisy), पार्श्वशूल आदि को दूर करती है। एवं वह अंजन करनेपर दृष्टिमांद्य, अर्म (बेल), शुक्र मांसवृद्धि, नेत्रदाह आदिका नाश करती है।

उपयोग—नीलाञ्जनका उपयोग उदर सेवन रूपसे आचार्योंने बहुत कम किया है। सामान्यतः स्वप्न दोषपर कोई-कोई चिकित्सक इसकी योजना करते हैं, एवं श्वास, कासपर कफ निःसारक रूपसे प्रयोजित करते हैं। यह श्वास रोगका दौरा होनेपर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है। कफ निःसारण करा संगृहीत कफको दूरकर वेगका दमन कराता है। फिर छाती, फुफ्फुस कोष और श्वास नलिका आदि कफसे मुक्त हो जाते हैं तथा हृदयकी बढ़ी हुई गति भी मर्यादित हो जाती है।

(५१) कर्कट भस्म

विधि—सुखाये हुए स्वच्छ केंकड़ोंको हंडियाके भीतर ४ गुने घीकुंवार के गूदे या धमासेकी लुगदीमें रख संपुटकर, गजपुटमें देनेसे एक पुटमें ही भस्म बन जाती है।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक, शर्बत बनप्सा वासावलेह अथवा एलादिमंथ के साथ दिनमें २ या ३ बार।

उपयोग—यह कर्कट भस्म शीतल, अस्थिपौष्टिक, कीटाणुनाशक, रोपण और रक्तरोधक है। राजयक्ष्मा रोगमें होने वाले फुफ्फुस क्षतका रोपण कराने तथा रक्तवमन अथवा रक्तष्ठीवन होता हो, तो उसे रोकने, स्वर-यन्त्र और श्वासनलिकाके मार्गको साफ करने एवं शुष्क कासका दमन करानेके लिए यह व्यवहृत होती है।

इस भस्मका उपयोग शृङ्ग भस्म, प्रवाल पिष्टी और सितोपलादि चूर्णके साथ करनेपर विशेष लाभ पहुँचाता है। रक्तस्रावको दूर करानेके लिए शुभ्रा भस्म मिलायी जाती है।

(५२) कान्तलोह भस्म

विधि—सर्व प्रथम कान्त लोहका सूक्ष्म चूर्ण करके तपा-तपाकर क्रमशः तैल, गौमूत्र, छाछ, काँजी, कुलथीमें सात-सात बार बुझाकर शुद्ध कर लें। इसके बाद ७ पुट घृत कुमारीके तथा ७ पुट जामुणकी छालके देनेपर कान्त लोह भस्म तैयार हो जाती है।

अगर भस्ममें कुछ विकृति हो तो अधिक पुट भी दिए जा सकते हैं।

कान्तलोह एक प्रकारका पत्थर है जिसकी यहाँ भस्म तैयार की जाती है।

गुण—कान्तलोह भस्म धातुक्षीणता शोथ संग्रहणी, रक्तक्षय और तज्जन्य पाण्डु रोगपर गुणकारी है।

मात्रा–१ रत्ती शहद पीपलके साथ या च्यवनप्राशावलेहके साथ दें।

(५३) कूर्मास्थि भस्म

निर्माण विधि—कूर्मास्थिको मट्ठे (छाछ) में १२ घण्टे रखकर स्वच्छ जलसे साफ करके सुखा देते हैं इसके पश्चात् समान घृत कुमारीका गूदा लेकर गजपुटमें फूंक देते हैं जिससे श्वेत कूर्मास्थि भस्म तैयार हो जाती है।

गुण दोष—यह भस्म हड्डियोंको बल प्रदान करती है, बालक सगर्भा प्रसूता क्षय पीड़ित रोगी जिनकी अस्थियाँ कोमल बन जाती हैं या पीड़ित हो जाती हैं उनको इस भस्मके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है। अपस्मार वालोंको भी हितकर है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती दिनमें २ या ३ बार शहद और गिलोयसत्वके साथ।

(५४) मधुमण्डूर भस्म १७ पुटी

निर्माण विधि—रसतन्त्रसार प्र० भागके पृष्ठ १४९ पर तीसरी विधि में वर्णित है इसीका नाम मधुमण्डूर है। इसमें १७ पुट लगते हैं।

कूपीपक्व रसायनाधिकार

रसायन शास्त्रमें रस पारदका नाम है, और अयन मार्गको कहते हैं। इसलिये जिन-जिन औषधियोंमें पारद है वे सब रसायन कहलाती हैं। एवं जिस औषधिसे जरा और व्याधिका नाश होकर बल, ओज, मेधा आदिकी वृद्धि होकर शरीर सुदृढ़ बने और आयु स्थिर हो, उसे रसायन कहते हैं। ये सब गुण पारदमें विद्यमान होनेसे पारद-मिश्रित औषधियोंको रसायन कहा है। शुद्ध पारद अतिशय चंचल और अक्षय वीर्यवान् है। पारद अति सूक्ष्म परमाणु रूप बनकर शरीरके सब स्थानोंमें अति शीघ्र पहुँचकर इच्छित लाभ की प्राप्ति कराता है। पारदयुक्त औषधियोंकी मात्रा स्वल्प है; वे अरुचि भी नहीं करती और असाध्य रोगोंको भी सत्वर शमन करती है। इसलिये शास्त्रकारोंने रसयोगोंको अन्य औषधियोसे श्रेष्ठ माना है।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधिभ्योऽधिको रसः ॥
(र० र० स०)

भूतकालमें महर्षियोंने अति परिश्रम करके पारदको अनेक प्रकारसे प्रयुक्त किया है। उन्होंने अनेक प्रकारकी शरीर स्वास्थ्यकर औषधियोंकी योजना, सुवर्ण बनानेकी विधि, आयुष्य-वृद्धि और नाना प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करनेकी रीति निर्माणकी है। उनमेंसे साधारण औषधि बनानेकी कुछ विधियाँ वर्त्तमान समाजमें प्रचलित हैं; और अन्य दिव्य क्रियायें भारत सन्तानोंके दुर्भाग्यवश प्रायः लुप्त होगई हैं। प्राचीन आचार्योंने पारदके अनेक प्रकारके दिव्य गुणोंका अनुभव करके संस्कृत भाषामें गुणोंके अनुसार अनेक नाम रखे हैं। उन नामोंका उल्लेख कोश ग्रन्थोंमें मिलता है; किन्तु उनके अलौकिक गुणोंकी प्राप्ति करनेकी विधिका लोप होगया है।

प्राचीन ग्रन्थोंके अनुरूप खनिज पारदके चार प्रकार होनेका भास होता है। लाल, पीला, काला और सफेद। लाल पारा निर्बलता दूर करके शरीरको पुष्ट बनाता है। पीला सुवर्ण आदि धातुओंमें उपयोगी है। काला सिद्धिकी प्राप्ति कराता है और श्वेत सब रोगोंका नाश करता है। इन चार जातिके पारदमेंसे साम्प्रत तो श्वेत पारदको काममें लाते हैं। शेष ३ प्रकारके वर्णयुक्त पारद, रसवैद्य जारण आदि क्रिया करके बना लेते हैं।

मूर्च्छित (कज्जली किया हुआ) पारा सब प्रकारके रोगोंका नाश करता है। जारित पारद (पूर्णचन्द्रोदय रस आदि) वृद्धावस्थाको दूर कर शरीरको तेजस्वी बनाता है। बद्ध पारा (पारदकी आणविक गोली) आकाश गमन आदिकी सिद्धि देता है। मारा हुआ पारद (पारद भस्म) अजर-अमर

बनाता है, और क्रामित तथा रंजित (क्रामक एवं रंजन संस्कार किया हुआ) पारद पराभक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति कराता है। मनुष्य और पशुओं के असाध्य रोग जो दूसरी औषधिसे दूर न हो सकें, वे भी सब पारदसे नष्ट होते हैं। इसी हेतुसे पारदको अन्य औषधियोंसे श्रेष्ठ कहा है।

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिभिः।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतःश्रेष्ठ उच्यते ।।

भूमिमेंसे निकले हुए पारदमें मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता दोष स्वभाव सिद्ध रहते हैं। कलई और शीशेके सम्बन्धसे दो प्रकारके संयोगजन्य आगन्तुक दोष भी मिले हुए हैं। इन ७ दोषोंमेंसे मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें दाह (संताप), गिरिदोषसे जड़ता, चपलतासे वीर्यनाश, कलईके योगसे कुष्ठ, रक्तविकार और शीशेके सम्बन्धसे नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। इसलिए पारदको शुद्ध करके उपयोगमें लेना चाहिए। साधारण रोग दूर करने वाली औषधियोंमें सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारद मिलाया जाता है। गन्धक पारदके दोषको खा जाता है। इसलिए सिंगरफसे निकले पारदको शुद्ध माना है। किन्तु रसायन या दिव्य गुणोंकी प्राप्तिकी चाह हो; असाध्य रोग दूर करना हो; तो पारदके आठ संस्कार कर बुभुक्षित और पक्षच्छिन्न करना चाहिए।

पारदका शोधन ३ उद्देश्योंसे होता है। १. शारीरिक रोग निवारणार्थं उसके लिए ८ संस्कार करनेपर चल सकता है, अथवा साधारण शोधन करने या हिंगुलसे पारद उड़ा लेनेपर भी निर्भय रूपसे उपयोगमें आता है। किन्तु अष्ट संस्कारित पारदकी अपेक्षा हिंगुलोत्थ पारदसे गुण प्राप्ति न्यूनाँश में होती है।

२. रसायन रूपसे शोधन और वृद्धिके लिए आचार्योंने १८ संस्कार करनेकी आज्ञा की है। अशुद्धि शेष रहने या गुणाधान कम होनेपर पारद रसायन गुण अर्थात् वृद्धावस्थाकी निर्बलता या रोगसे जर्जरित बनी हुई शारीरिक दुरवस्थाको दूर करके युवावस्था सदृश बलकी प्राप्ति नहीं करा सकेगा।

रसायन रूपसे पारद भस्मका प्रयोग अधिकतर होता हैं। वह भस्म गन्धक जारण करके अभ्रक सुवर्णके ग्रास देकर पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित बनाये हुए पारदकी ही बनायी जाती है। अन्यथा निरुत्थ नहीं बन सकगी।

३. धातुवादके लिये पारद शोधनमें भी अधिक कष्ट दर्शाया है। किन्तु नाग, वङ्गका योग करा देनेपर सुविधा भी बहुत मिल जाती है। धातुवाद में जो बीज निर्माण कराया जाता है, उसके शोधनमें तो अत्यन्त सम्हालने का आदेश दिया है। बाह्यद्रुति क्रिया सिद्ध कर लेनेपर धातुवादको सिद्धि सहज मिल जाती है।

धातुवाद इस ग्रन्थका विषय नहीं है। इसके लिए विशेष जानना हो तो इस संस्थासे प्रकाशित रसहृदयतन्त्र, रसशास्त्र प्रवेशिका, रसोपनिषत्, रस तत्व विवेचन आदि ग्रन्थ देखें।

रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्तिता।
रसायनस्य या शुद्धिः सैव कष्टतरा मता॥

अष्टादश संस्कार वाली शुद्धि जो रसायनके लिये कही है, वह कठिनतर है। वही सब व्याधियोंमें हितकारक है।

शुद्ध पारदके संयोगसे दो प्रकारके रसायन तैयार किये जाते हैं – (१) अग्नि संस्कार द्वारा; (२) अग्नि संस्कार रहित (गन्धक आदि औषधियों के साथ खरल करके)। पहिले प्रकारमें दो भेद हैं—कूपीपक्व और पर्पटी। इनमेंसे कूपीपक्व रसायनका इस प्रकरणमें विवेचन करेंगे। अग्नि संस्कार रहितको खरलीय रसायन कहते हैं। उसका विवेचन पृथक् प्रकरणमें आगे किया जायगा।

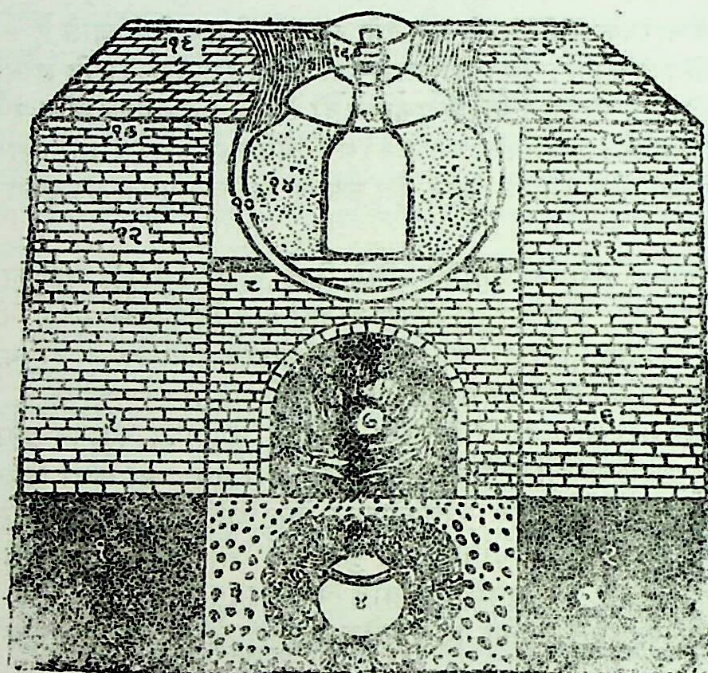
कूपीपक्व रसायन बनानेके लिये सिद्ध भ्राष्ट्री (भट्टी), बालुकायन्त्र, अग्नि देना, डाट बन्द करना, बोतल तोडना इत्यादि कार्योंके लिये निश्चित् विधिका उपयोग होता है। यदि मनगढन्त रीतिसे कार्य किया जायगा, तो कूपीपक्व रसायन नहीं बन सकेगा। भट्टी जैसी वर्तमानमें प्रचलित है, वैसी भूतकालमें नहीं थी। पहिले सामान्य चूल्हेपर कूपीपक्व रसायन बना लेते थे परन्तु उसमें लकड़ीका खर्च अधिक होता था एवं कभी कभी अकस्मात् बोतल फटनेसे कार्य करने वालेको चोट लग जाती थी या पारद मिश्रित गन्धकका जहरी धूआँ श्वासके साथ फुफ्फुसमें प्रवेशकर हानि पहुँचा देता था। इस कारण वर्त्तमानमें विद्वानोंने विशेष अनुकूल भट्टीका प्रबन्ध किया है। इसमें बोतल न फूटनेके लिये अनेक अनुकूल साधनोंकी योजनाकी है।

पारद मिश्रित अनेक औषधियां बालुकायन्त्र द्वारा काचकी शीशीमें तैयारकी जाती हैं, उनको कूपीपक्व रसायन कहते हैं। उन कूपीपक्व रसायनोंको कृति अन्य सब प्रकारकी औषधि-कृतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और शीघ्र फलप्रद माना है। कूपीपक्व रसायनमें पारद और गन्धक मुख्य द्रव्य हैं। इनको तैयार करने के लिए पारद, गन्धक और अन्य औषधियाँ विशुद्ध मिलानी चाहिये। दूषित औषधियोंके उपयोगसे लाभके बदले हानि होने की संभावना है।

सुवर्ण वंगको छोड़कर शेष कूपीपक्व रसायन प्रायः वात और कफ प्रकृति वालोंको विशेष अनुकूल तथा पित्त प्रकृति वालोंको कम अनुकूल है। पित्त प्रकृति वालोंको पित्तवर्द्धक ऋतुमें या पित्त प्रकोपमें देनेकी आवश्यकता हो तो दूसरी शीतल औषधि मुक्ता, प्रवाल वंशलोचन आदि मिश्रित

करके दें; और थोड़े दिन देकर ४-६ रोज बन्द करें; फिर पुनः देवें।

सिद्ध भ्राष्ट्री—कूपीपक्व रसायनके लिये भट्टी बाहरसे चौकोन और भीतरसे गोल बननी चाहिये। नीचे गोलाई कुछ कम रखें जिससे अग्निकी लपटें पात्रको अच्छी तरहसे लगें। पहले २८ इञ्च चौकोन जमीनमें ८ इञ्चका गहरा गड्ढा खोदकर गोवर मिट्टीसे अच्छी तरह पोत लेवें। बीचमें गोल भाग रहे इस तरह सम्हालकर दीवार बनावें। नीचे चौकोन



२८ इञ्च और ऊपर २५ इंच रक्खें, इसलिये जमीन परसे दीवार भीतर की ओर कुछ मुड़ती हुई भी बनानी पडेगी। जमीनके बराबर दीवार हो,

१—२ जमीनके भीतर दीवार। नींवमें चौड़ाई ७।। इंच। जमीन तक ऊंचाई ८ इंच।

३—जमीनमें कोयला गिरने और सम्पुट रखनेका स्थान। १३ इंच गोलाई।

४—भस्मका सम्पुट।

५—६ दीवार। जमीन तक चौड़ाई ७ इंच। लोहेकी छड़ी तक ऊंचाई १० इंच।

७—भट्टीका मुँह। चौड़ाई ७ इंच ऊंचाई ८ इंच।

८—९ लोहेके डण्डे (Iron Bars) दीवारमें ६ इंच। भट्टीमें २ इंच। तीसरा डण्डा पिछली दीवारमें नहीं दीखता।

पर बराबर बीचमें एक मुंह लकड़ी डालनेके लिये ७ इञ्च चौड़ा और आठ इञ्च ऊंचा रखें। मुंहके ऊपर भी दीवार बनानी पड़ेगी। उसकी ऊँचाई गड्ढ़ेमेंसे २४ इञ्च और जमीनसे १६ इञ्च रहेगी। मुटाई ६ इञ्च ऊपरके भागमें रहे ऐसी सावधानी रखकर बनावें। नीचेकी मुटाई ७॥ इञ्च रहेगी, ऊपरके भागकी दीवार चारों ओर ६-६ इञ्च मोटी रहनेसे बीचमें १२ इञ्च गोलाकार जगह बालुकायन्त्र रखनेके लिये खाली रहेगी।

मुंहवाली दीवार छोड़कर शेष तीनों दीवारोंमें जमीनसे १० इञ्च ऊंचाई पर पैरोंके अँगूठे-जैसे मोटी ९-९ इञ्च लम्बी लोहेकी छड़ें रख देनी चाहिये। इन छड़ोंका ३-३ इञ्च जितना भाग मिट्टीके भीतर रहेगा और ६-६ इञ्च दीवारमें दब जायगा। जो ३-३ छड़ें भट्टीके भीतर दीखती हैं उन्हींपर बालुका यन्त्र रहेगा। छड़ोंके ऊपर दीवार ६ इञ्च है, जिससे बालुकायन्त्रकी थोड़ी किनारी बाहर दीखती रहेगी।

इस भट्टीके भीतर और बाहर मिट्टीका लेप (पलस्तर) कर देनेसे भट्टी कई वर्षों तक अच्छी रहती है। २४ औंसकी काली बोतलके लिये ऊपर वाली भट्टीकी लम्बाई-चौड़ाई लिखी है। बड़ी बोतल अथवा विलायती आतशी शीश (Flask) के लिये भट्टी बनानी हो, तो इसी विधिके अनुसार बड़ी बनावें।

जमीनमें जो ८ इञ्च गहरा गड्ढा रखा है, उसमें लोह अथवा अभ्रकका संपुट थोड़ी गोबरीके बीचमें रखा जाता है। गोबरी जल जानेके पीछे लकड़ी के कोयलोंसे संपुट पकता रहता है। ३ गजपुट जितनी आंच एक समयमें लग जाती है। कदाचित बीचके समयमें संपुट निकालना हो तो दूसरी दीवारमें एक मुँह बना लेना चाहिये।

इस भट्टीमें ३ दिन आँच लगनेपर भी कोयला अधिक संगृहीत न होजाने

१०–११ बालुका यन्त्रके चारों ओर आध-आध इञ्च खाली जगह वह अग्निको लपटें और धूआँ बाहर निकलनेके लिये रखी है।

१२–१३ लोहेकी साँटीके ऊपर बनी हुई दीवार। ऊंचाई ६ इञ्च। ऊपरके भागमें चौड़ाई ६ इञ्च।

१४–बालुकायन्त्र, जिसमें अभ्रकके पतरोंके ऊपर शीशी रखी है।

१५–शीशीके कण्ठका भाग, जो यन्त्रसे बाहर प्रतीत होता है।

१६–शीशीके ऊपर मिट्टीके घड़ेके नीचेका आधा हिस्सा पहिनाया है। यह औषधि उफान आकर बाहर न निकलने और अग्निकी लपटोंसे कण्ठसे लगी हुई औषधिकी रक्षाके लिए रखा है।

१७–१८-भट्टीके ऊपरकी दीवार। चौड़ाई २५ इञ्च।

१९–२०-पिछली दिवार, जो भाग आगेसे दिख सकता है।

से काम करने वालोंको विशेष त्रास नहीं होता। एक साथमें दो कार्य (भस्म और कूपीपक्व रसायन) हो जाते हैं एवं अकस्मात शीशी फूट जाय तो भी यन्त्र भट्टीके भीतर रहनेसे काम करने वालोंको हानि नहीं पहुँच सकती। इस भ्राष्ट्रीका उपयोग हमारी रसायनशालामें अनेक वर्षोंसे होता है।

सूचना—(१) भट्टी बनानेके लिये मकान अधिक खिड़की और दरवाजे वाला तथा ऊंचा होना चाहिए, जिससे धूआँ और अग्निकी उष्णतासे काम करने वालोंको विशेष बाधा न पहुँचे एवं अकस्मात् किसी समय शीशी फूट जाय, तो भी काम करने वाले अपना रक्षण कर सके।

(२) आवश्यकतापर शीशीको उठानेमें उपयोगी हो ऐसी एक मोटी सँडासी, एक चीमटा और एक लोहेकी शलाका तैयार रखनी चाहिये। लोहेकी शलाका छातेकी ताड़ीकी या छातेकी ताड़ीसे दुगनी मोटी १॥ हाथ लम्बी और ऊपरके भागमें लकड़ीका दस्ता लगी होनी चाहिये, एवं शलाका के नीचेके भागको थोड़ा पतला बनवा लेना चाहिये।

(३) मिट्टीकी एक खेलड़ी (घडेके नीचेका आधा भाग) पैंदेमें छेद वाली जिस छेदमें शीशीका मुख बराबर आजाय-ऐसी बालुकायन्त्रपर रखनी चाहिये, जिससे कभी उफान आजाय तो भी औषधि रक्षण होजाय, अन्यथा रेतमें गिरकर औषधि निकम्मी हो जाती है। साथ ही खेलड़ी होने से बोतलके ऊपरके भागमें अग्निकी लपटसे नुकसान भी नहीं पहुँचता।

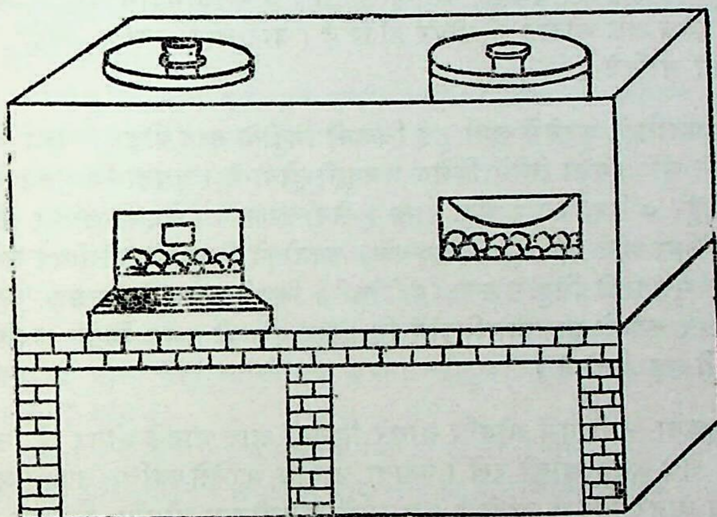
(४) भट्टी विल्कुल खुले भागमें नहीं बनानी चाहिये, अन्यथा वर्षा ऋतुमें वर्षाका भय और गरमीके दिनोंमें धूपका त्रास भोगना पड़ेगा तथा खुले भागमें किसी-किसी समय विषम वायु लगनेसे अग्नि भी बराबर नहीं लगेगी।

(५) लोहेकी छड़ें जो दीवारमें रखनेकी हैं, वे पतली होंगी, तो बालुका यन्त्रके बोझ और अग्निकी लपटें लगनेसे मुड़ जायेंगी।

बालुकायन्त्र—मिट्टी अथवा लोहेकी हांड़ी भट्टीके भीतर आजाय और चारों ओर एक-एक अंगुल जगह खाली रहे ऐसी लेनी चाहिये। १-१ अंगुल जगह होनेसे अग्निकी लपटे चारों और समान लगती रहती हैं और धूआं निकलता रहता है। हांडी लगभग १२ इञ्च ऊँची और चौढ़ाई शीशीको भीतर रखनेपर चारों ओर लगभग २ इञ्च जगह खाली रहे, वैसी लेनी चाहिये। कितने ही मिट्टीके बरतन तेज आँचके समय गल जाते हैं और लोहे के बरतनमें मन्दाग्निके समय भी आँच तेज लग जानेकी सम्भावना है। इस लिये समयानुकूल लोह-पात्र अथवा मिट्टीकी पक्की हांडी लेवें। यदि लोह-पात्र या मिट्टीकी पक्की हांडी हो तो उसपर दो तीन कपड़मिट्टी कर लें और मिट्टीके बरतनके मुँहपर लोहेका तार बांधे, जिससे फूटनेका भय न

रहे। लोहेके बर्तनमें अथवा मिट्टीकी हाँडीके पैंदेमें बराबर बीचमें एक पैसा आजाय उतना बड़ा छेद करालें और छेद करके अन्दर ३ इञ्च गोल कटा हुआ अभ्रक अथवा केलु (Tile) का पतला टुकड़ा रखकर चारों और थोड़ी मिट्टी (शीशी स्थिर रहने और रक्षणके लिये) लगादें। मिट्टी सूखने पर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी अभ्रकके टुकडे पर सीधी रख कर, चारों और थोड़ी मिट्टी लगादें। पश्चात् यन्त्रमें शीशीके इर्द गिर्द रेत भरें। कितने ही चिकित्सक २ इञ्च चौड़ा छेद करते हैं। एवं अभ्रकका पतरा भी नहीं रखते। उस विधिसे योजना करनेपर रसायन जल्दी पकती है। किन्तु इससे यंत्रसे बालुका निकल जानेका तथा शीशीको हानि होनेका भय रहता है।

परिष्कृत भ्राष्ट्री चित्र



बालुरेत नदीमेंसे मंगाकर बहुत मोटी और बहुत बारीक निकाल, मध्यम परिमाणकी उपयोगमें लें। समुद्रके किनारेकी खारी रेतको न लेवें। रेत भट्टीमें ३-४ समय काम देती है। किसी समय अकस्मात् बालुकायन्त्र टूट जाय, तो भी रेतके लिये दौड़ना न पडे, इसलिये एक दो पीपा अधिक भर-कर तैयार रखें। यन्त्रमें शीशी रखनेके बाद पैंदेकी मिट्टी सूखनेपर रेत शीशीके गले तक भरें। शीशीके गलेके ऊपरका भाग खाली रखें। रेत भरने के समय शीशीके मुँहपर डाट लगा दें ताकि शीशीमें रेत न गिरे। कज्जली भरनेके समय काचकी कीप (Funnel) या कागजके चोंगाको शीशी पर रख करके भरें, ताकि कज्जली रेतमें न गिरे।

आतशी शीशी—कूपीपक्व रसायन बनानेके लिये शीशी समतल वाली

अथवा नीचेसे फूली हुई लेनी चाहिए। तलेमें खड्डे वाली शीशी न लें। विलायती शराबकी पक्की शीशी चल सकती है। विलायती पक्की आतशी शीशी (Flask) के फूटनेका डर बहुत कम रहता है। किन्तु अग्नि तेज लगानेपर वह मुड़ जाती है। यदि उसे लेना हो तो १ सेर जल रहे उतनी बड़ी लें। एक साथमें ज्यादा गन्धक मिलाकर कूपीपक्व रसायन बनाना हो तो विलायती अथवा देशी बड़ी शीशीमेंसे अनुकूल रहे उसको उपयोगमें लेवें।

शीशीके ऊपरमें एक एक बालिश्तके छोटे-छोटे कपडेके टुकड़ोंको मिट्टीमें भिगोकर कपड़मिट्टी करें। ७ कपड़मिट्टी करके शीशीको उपयोगमें लेवें। पतली आतशी शीशी हो, तो ३ कपड़मिट्टी ज्यादा करें। एक कपड़मिट्टी सूखे तब दूसरी करें। एक साथ ७ या १० कपड़मिट्टी नहीं करनी चाहिये। कारण क्वचित् पतली शीशी मिट्टीके बोझसे टूट जाती है। एवं एक साथ की हुई, कपड़मिट्टी मजबूत भी नहीं होती। ७ कपड़मिट्टीमें लगभग आधेसे पौन इञ्च तक मोटाई शीशीपर होती है। बार-बार ज्यादा मिट्टी नहीं लगानी चाहिये।

कपड़मिट्टी करनेमें छनी हुई चिकनी मिट्टीके साथ थोड़ा गोबर और घोडेकी लीद मिला लेनेसे विशेष मजबूती होती है। अथवा भिगोकर छानी हुई मिट्टी ८ सेर, रेत २ सेर, राख १ सेर, नमक ऽ।। सेर मिलाकर कीचड़ करें। फिर छोटे छोटे (८-९ इञ्चके) कपड़ोंको भिगोकर शीशीपर लपेटें। अथवा मुलतानी मिट्टीसे कपड़मिट्टी करें। कितने ही चिकित्सक कपडेके स्थानपर रूईको मुल्तानी-मिट्टीमें मिलाकर एक ही कपड़ मिट्टी करते हैं, वह भी दृढ़ होती है।

सूचना—शीशीमें औषधि तीसरे हिस्सेसे आधे भागके भीतर रहे, उतनी भरें। शेष जगह खाली रखें। ज्यादा औषधि भरनेसे क्वचित् उफान आकर औषध बाहर निकल जाती है। शीशीमें कज्जलीयुक्त औषधि बिल्कुल सूखी डालें। गीली औषधिसे शीशी फूटनेका भय रहता है।

अग्नि देनेकी विधि—अग्नि देनेके लिये बबूलकी सूखी लकड़ी हाथसे कांडे जैसी मोटी लें। पहले लकड़ी इकट्ठी करके रखें, जिससे रात्रिके समय एकाएक लकड़ी लानेके लिए दौड़ना न पडे। तीन अग्नि देनेके लिए लगभग ५ मन लकड़ी लगेगी। पहले दिन लगभग १ मन, दूसरे दिन १।। मन और तीसरे दिन २।। मन लकड़ीका साधारण अनुमान है। यदि चूल्हा ठीक नहीं होगा, तो लकड़ी ज्यादा जलेगी। अन्तमें तेज अग्नि दी जाती है वह नियमसे कम लगेगी, तो औषधि कच्ची रह जायगी और अति तेज हो जायगी तो शीशी गल जायगी या औषधि जलकर उड़ जायगी इसलिये मर्यादा

नुसार अग्नि दें। इस बातको लक्ष्यमें रखें कि विलायती पतली शीशीको अग्नि थोड़ी मन्द देनी पड़ती है, अग्नि तेज होनेपर उसके गलनेका भय है; सादी काली शीशीको तेज अग्नि ज्यादा परिमाणमें देनी पड़ती है। लाल रंगकी पक्की शीशी अधिक तेज अग्नि सहन कर लेती है।

अग्नि प्रथम मन्द, फिर मध्य और अन्तमें तेज दें। अग्नि देनेके दो तीन घण्टेके बाद यन्त्र गरम होकर शीशीमेंसे गन्धकका धूआं निकलना शुरू होता है। ६ घण्टे बाद गन्धक पिघल जाती है; तब अग्नि थोड़ी तेज करें। यदि अग्नि ज्यादा तेज हो जायगी तो शीशीमें उफान आकर कज्जली बाहर निकल जायगी। कभी ऐसा होकर कज्जली बाहर निकलने लगे तो भट्टीमें की लकड़ी बाहर खींच लें और तुरन्त लोहेकी शलाकाको शीशीमें चलावें जिससे उफान तुरन्त बैठ जाय। जो भूल हो जायगी और १५-२० मिनट निकल जायेंगे तो ऊपर छप्परमें शीशी उछलकर घर जला देगी और काम करने वालोंको भी बाधायें पहुँचेगीं अथवा कज्जली रेतमें गिरकर निकम्मी हो जायगी।

लगभग १२ घण्टे पीछे जब धूआँ ज्यादा परिमाणमें जोरसे निकलता दीखे; तब लोहेकी सलाकाको अग्निमें तपा, शीशीके मुँहमें डालकर परीक्षा करें। बराबर रस हो जानेपर मुँहपर गन्धककी बत्ती जलती रहेगी अन्यथा बत्ती तुरन्त बुझ जायगी। बत्ती चालू रहे तो ताप और थोड़ा तेज करें। बत्ती जलनेकी शुरुआत हो जानेके बाद लगभग १२ घण्टे तक बत्ती जलती रहती है। पहले बत्ती मुँहपर दीखती है, वह कुछ समय पीछे गलेके भीतर चली जाती है। जिस तरह औषधि पकती जाय और धुआँ कम होता जाय, उस तरह अग्नि थोड़ी-थोड़ी तेज करनी चाहिये; जिससे समयपर औषधि तैयार हो जाय।

जब सब गन्धक जलकर बत्ती बन्द हो जाती है और धूआं थोड़ा-थोड़ा निकलता हुआ देखनेमें आता है, तब लोहेकी शलाकाको तपाकर बार-बार आध-आध घण्टेपर शीशीमें डालकर गलेको साफ करते रहें। यदि औषधि में क्षार मिलाया हो तो गन्धकमेसे क्षार निकलकर बार-बार गलेमें लगता रहता है। कदाच इस क्षारसे मुँह बन्द हो जाय तो शीशीके फट जाने या उछल जानेका भय रहता है। इसलिए सावधानीसे लोहेकी तप्त शलाकासे गलेमें लगे हुए क्षारको गिराते रहें। इस तरह बार-बार मुँहको साफ किया जायगा, तो औषधिमें क्षारका मिश्रण कम होगा; और औषधि भी जल्द पकेगी।

इस बातको भी स्मरणमें रखें कि शलाकासे बार-बार तलस्थ औषधिका चालन नहीं करना चाहिये। केवल गलेको साफ करें। तप्त शलाकासे

तलस्थ औषधिका बार-बार चालन न करनेसे औषधिके पाकमें थोड़ा अधिक समय लगता है तथापि औषधि बननेमें जितना समय अधिक लगता है उतना ही गुण अधिक होता है।

औषधि पाकका निश्चय करनेके लिए तप्त शलाकाको चला बाहर निकाल कर तुरन्त सूंघें। यदि गन्धककी गन्ध बिल्कुल न आती हो तो समझ लें कि औषधिका पाक हो गया। पाक तैयार होने लगे तब बोतलके भीतर शलाका को न चलावें। कारण आसन्न पाकके समय बार-बार शलाकासे औषधि चालन करते रहनेसे तैयार हुई औषधिमेंसे पारदका अंश उड़ने लगता है।

सूचना—(१) यदि औषधिमें नौसादर या कोई क्षार मिलाया हो तो धूआं निकलनेकी शुरूआतसे ही शीशीके मुंहको साफ करते रहें। कारण, नीचे रहा हुआ क्षार धूआं निकलनेके प्रारम्भसे ही ऊपर चढ़ने लगता है।

(२) यदि अग्नि कम लगेगी तो पेंदेमें कच्चा द्रव्य रह जायगा और ऊपर नलीमें लगी हुई औषधिको भी खोलनेमें कठिनता होगी।

(३) बार-बार बोतलके भीतर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये, अन्यथा नेत्र ज्योतिको हानि पहुँचती है तथा श्वासनलिकामें विकार हो फुफ्फुस दुर्बल हो जाते हैं।

डाट लगानेकी विधि—सब गन्धक जलकर और धूआं बन्द होकर जब औषध ऊपरसे लाल दीखती है; तब चूना शहद मिला उसमें कपड़ेका टुकड़ा भिगो, ईंट या चाकके डाटके ऊपर लपेटकर शीशीपर लगा दें। कदाचित् थोड़ा धूआँ रह जानेके कारण किसी समय जोरसे डाट उड़ जाय तो घबराना नहीं चाहिये। आधा घण्टा बाद पुनः डाट लगा दें। डाट लगानेके बाद मुंह पर एक कपड़ेकी पट्टी चूना और शहदमें डुबोकर लगा दें; जिससे सन्धि अच्छी तरहसे बन्द हो जाय। शीशीपर लगानेके पहिले १।-१॥ इञ्च लम्बा डाट चाक अथवा ईंटके टुकड़ेको घिसकर पहलेसे तैयार कर लें। १ इञ्च डाट शीशीके भीतर जाय; शेष भाग बाहर रहे; वैसा डाट होना चाहिए।

परीक्षाके लिये शीशीके भीतर तप्त लोह शलाका डालनेसे औषधि पक गई हो तो एक दम लाल अग्निकी लपट उठती है। गन्धक रहनेपर लपटमें नीला रङ्ग भासता है। यदि सोमल, हरताल या मैनसिल मिश्रित औषधि होगी तो लाल बत्ती नहीं बनेगी, सफेद बनेगी। इस तरह परीक्षा करके लाल या सफेद बत्ती दीखनेपर डाट लगा दें। यदि डाट समयपर नहीं लगाया जायेगा तो चन्द्रोदय आदि औषधिमेंसे बहुत भाग उड़ जायेगा।

अनेक बड़े-बड़े कविराज शीशीपर डाट नहीं लगाते केवल आंच कम-कर देते हैं। विशेष करके पत्थरके कोयलोंकी अग्नि देते हैं, जिससे औषधि जल्दी (केवल १०-१२ घण्टेमें) तैयार हो जाती है। डाट न लगानेकी जो विधि है उसमें औषधि कुछ कम निकलती है वे लोग लोह शलाकासे

औषधि चालन नहीं करते और पाक-कालमें ६ माशे शोरा डालते हैं; जिससे गलेमें सत्वर औषधि लग, मुँह बन्द होकर ऊपरमें औषधि पकती है, फिर ऊपरमें औषधि शुष्क होनेसे वे लोग अग्नि बन्द कर देते हैं। इस तरह तैयार की हुई औषधि न्यून गुणयुक्त होती है।

अनेक नव विज्ञानवादी वैद्य विद्युत (Electtic) की भट्टियोंपर भी कूपीपक्व रसायन तैयार करते हैं जो कि अति शीघ्र बन जाते हैं किन्तु वे रस गुण प्रभावके विषयमें अपेक्षाकृत न्यून माने जाते हैं।

शीशीके मुंहपर डाट लगानेके समय नवीन वैद्योंको चाहिये कि धुआँ न दीखे तब ऐसा ही एक समय डाट लगा देवें। आधे घण्टे पीछे डाट निकाल कर देखनेसे, धूआं रहा होगा तो एक दम निकल जायगा। धूआं नहीं होगा तो डाटके मुंहपर थोड़ीसी पारा वाली औषधि लग जायगी। ऐसा निश्चय कर तुरन्त डाट लगा देना चाहिये। मुंहपर डाट लगानेके पीछे एकाध घण्टा अग्नि मन्द करें। पश्चात् धीरे-धीरे तेज करते जायें। अन्तमें तेज अग्नि १२ से ३६ घण्टे तक देनेसे औषधि तैयार हो जाती है।

औषधि निकालनेकी विधि—अग्नि बन्द करनेके दो दिन बाद यन्त्र स्वांग शीतल होनेपर नीचे उतारकर शीशी निकालें। ऊपरकी कपड़मिट्टी साफकर शीशीको तोड़ें। तोड़नेके लिये एक सुतलीका टुकड़ा मिट्टीके तेल में भिगोकर शीशीका पेट बांधकर जलावें। जब अग्नि बुझने लगे; तब सुतलीकी जगहपर थोड़ा बूंद-बूंद जल टपकावें, जिससे शीशीके दो टुकडे हो जायेंगे। छोटे-छोटे टुकड़े होकर औषधिमें काच न मिल जाय; इस बातकी सम्हाल रखें। यदि काचका टुकड़ा औषधिके साथ रहकर खानेमें आजाय, तो अन्तड़ीमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। शीशी तोड़नेके समय साफ जमीनपर एक बड़ी थालीमें शीशीको रखकर तोड़ें। शीशीमेंसे धूआं निकलकर, श्वासोच्छ्वासमें न चला जाय, यह भी सम्हालें, अन्यथा कास श्वास रोग होजाता है।

शीशीके मुखपर जो तैयार औषधिकी नली बनती है; उसे सम्हालकर निकालें। यदि नलीपर थोड़ा मैलवाला भाग हो, तो उसे चाकूसे खोलकर अलग रख। उसे दूसरी बार जब उस प्रकारकी औषधि तैयार करनी हो तब कज्जलीमें मिलालें। जो नीचे पेंदेमें थोड़ी गन्धककी काली राख शेष रह जाती है; यह निकम्मी है। वजनदार राख हो, तो उसमें पारदका अंश रहता है। अग्नि कम लगनेसे नीचे पेंदेमें वजनदार नीली, काली भस्म या गड्डा शेष रह जाय, तो उसे दूसरे समय कज्जलीमें मिलाकर औषधि बना लेनी चाहिये।

यदि सोना कज्जलीमें मिलाया हो तो उसकी काली भस्म बनकर पेंदेमें रह जाती है। उसे ३-४ समय सुवर्ण भस्ममें कही विधिसे जल द्वारा धोकर

भस्म बनालें। या एसिडके योगसे शोधनकर शुद्ध सुवर्ण बनालें।

औषध-परीक्षा जो कूपीपक्व रसायन बोतलमेंसे सरलतापूर्वक खुल जाय, वह पक्का माना जाता है जिस रसायनको खोलनेमें अधिक परिश्रम पड़ें, एक साथ विशेषांशमें न खुले; अति कठिनतासे थोड़ा-थोड़ा खुले, वह अपक्व माना जाता है। यदि भली भांतिसे परिपक्व न हुआ हो, ऐसे रसायनका सेवन किया जायगा तो मुँहमें थूँकका प्रवाह बढ़ना, मसूढ़ेमें शोथ आना और दाँत हिलना आदि विकार उत्पन्न हो जायेंगे।

जो रसायन कच्चा रह गया हो उसे दूसरी बार समभाग गन्धक मिला आतशी शीशीमें भर २४ घण्टे अग्नि देकर तैयार कर लेना चाहिये।

पारद शोधन विधि—शास्त्रमें पारद शोधनके १८ संस्कार कहे हैं। उनमें ८ संस्कार औषध कार्यके हेतुसे कहे है। शेष संस्कार गुणाधान करानेके लिए कहे हैं। अतः स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन. उत्थापन, पातन (अधः पातन, ऊर्ध्वपातन और तिर्यक्पातन). बोधन, नियमन और सन्दीपन इन आठ संस्कारोंका यहां वर्णन किया है।

(१) स्वेदन विधि—चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधानमक, राई, मूली और अदरक, सबको समभाग मिलाकर ४० तोले लें। फिर पारद ८ तोलेमें मिलाकर कांजीके साथ ३ दिन खरल करके गोला बाँधें। पश्चात् भूर्ज़पत्र अथवा केले या कमलके पत्तोंमें अच्छी रीतिसे लपेट ऊपर सूत बांधकर, चौगुने मजबूत कपडेकी थैलीमें रखें और कांजीसे इञ्च ऊपर रहे, उस तरह लटकावें। कांजी पारदको न लगे केवल बाष्प लगता रहे उस तरह दोलायन्त्र विधिसे तीन अहोरात्र स्वेदन करें। बार-बार कांजी डालते जायें। लगभग १ मन काँजी लगेगी। इसलिए पहिलेसे कांजी आवश्यकतानुसार तैयार करा लेनी चाहिये। फिर पारदको निकाल डमरूयन्त्रमें डालकर ५-७ तोले उडालें। शेष पारद हाँडी शीतल होनेपर स्वयमेव काष्ठादि ओषधियोंकी राखसे अलग हो जायगा। कदाचित् राखमें कुछ अंश शेष रह जाय तो डमरूयन्त्र द्वारा पुनः उड़ा लें। इस तरह पारदको स्वेदित कर लेनेपर प्रथम संस्कार पूर्ण होता है।

(२) मर्दन विधि—लाल ईंटका चूर्ण हल्दी, रसोईघरका धुआँ, कंबल या ऊनकी काली राख और कड़वी तूम्बीके बीज सबको पारदसे १६ वाँ १६ वाँ हिस्सा लें, पारदके साथ मिला, नीबूका रस डाल डालकर ३ दिन तक खरल करें। पश्चात् डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारद शीशेके दोषसे मुक्त होजाता है।

पश्चात् उस पारदमें इन्द्रायणके मूलका चूर्ण और अङ्कोलके मूलका चूर्ण १५ वाँ १६ वाँ हिस्सा मिला कांजीके साथ १ दिन खरलकर, डमरूयन्त्र-द्वारा उड़ा लेनेसे पारद वंगदोषसे भी मुक्त होजाता है।

(३) मूर्च्छन विधि--पारदको घीकुंवारके रस, त्रिफलाके क्वाथ और चित्रकमूल क्वाथमें ७-७ दिन तक अनुक्रमसे मर्दन करें। घीकुंवारसे मल का नाश, त्रिफलासे दाहनाश और चित्रकमूलसे विषदोष दूर होता है। इस रीतिसे २१ दिन तक खरल करनेसे पारा मूर्च्छित होता है। कई आचार्यों ने १-१ दिन मर्दन करनेका विधान किया है।

(४) उत्थापन विधि—मूर्च्छित पारदको पहले कांजी डाल दोलायन्त्र से ३ दिन स्वेदन करें। पश्चात् १२ घण्टे नींबूके रसके साथ सूर्यके तापमें खरल करें। फिर डमरूयन्त्रद्वारा तीव्राग्नि देकर पारदको उड़ा लेवें।

(५) पातन संस्कार—ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् भेदसे त्रिविध है।

ऊर्ध्वपातन विधि—पारदमें $\frac{1}{3}$ भाग तांबेका चूर्ण मिला लोहेके खरलमें नींबूके रसके साथ ताँम्बेमें मिल जाय, तब तक अर्थात् ६ घण्टे खरलकर गोला बनावें। डमरूयन्त्रद्वारा पारदको उड़ा लें।

अधः पातन विधि—हरड़, बेहड़े, आंवले, चित्रकमूल, नमक, राई और सहिजनेकी छाल सबको समभाग मिलाकर पारदसे आधा लें। फिर इन औषधियों और पारदको घीकुंवारके रसके साथ मिलाकर खरल करें। जब पारदका कण देखनेमें न आवे तब मिट्टीके घड़ेमें लेपकर डमरूयन्त्र बनालें। लेप वाले घड़ेको ऊपर रखें। नीचेका घड़ा जमीनमें दबा दें। ऊपरके घडेका केवल चतुर्थांश भाग ही जमीनसे ऊपर रखें। नीचेका घड़ा जलमें डूबा रहे और ठंडा जल बार बार बरतनके चारों ओर जा सके, इसलिये एक बांस की नली दो हाथ लम्बी जमीनमें दबावें। जिसका १ मुँह नीचेके घड़ेके साथ लगा रहें, और दूसरा जमीनके ऊपर घड़ेसे १-१॥ हाथ दूर रहे। इस नली को जलसे भरी रखें नली खाली होती जाय, वैसे-वैसे जल डालते जायँ। इस तरह योजना करके ऊपरके घड़ेपर गोबरी जलावें। १२ घण्टे मध्यमाग्नि देनें से पारद नीचे आजाता है, अथवा भूधर यन्त्रद्वारा पारदका अधः पातन करें।

तिर्यक् पातन विधि—पारदको चतुर्थांश धान्याभ्रकमें मिला, कांजीके साथ १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् (सुराहीके आकारके फूले हुए पेट वाले और लम्बी गर्दन वाले) मिट्टीके दो घड़े लेवें। इसमेंसे एक घड़ेके भीतर लेपकर, दूसरा समान मुँहवाला घड़ा मिलाकर, डमरूयन्त्र बनावें अर्थात् दोनोंके मुहको मिलाकर मजबूत कपड़ मिट्टीसे बन्द करें। पारेवाला घड़ा चूल्हेपर रखें और दूसरा खाली घड़ा जलसे भरी हुई कड़ाही या बाल्टीमें रखें। कड़ाहीको भी थोड़ी ऊँची रखें। बार-बार उसपर जल छिड़कते रहें अथवा गीला कपड़ा फेरते रहें या खाली घड़ेमें आधे भाग तक जल भरे पारद वाले घड़ेके ऊपर कपड़मिट्टी करें और भीतर सोहागा और लाखका रस चारों तरफ इस तरह लगाले कि, पारद वाले घड़ेपर जल वाला कपड़ा

फिरानेसे भी वह न फूटे ऐसी योजना नहीं होगी तो पारद बहुतसा उड़ जायगा। अथवा चौड़े मुंहवाले २ घड़े और बाँस नलिकाकी योजना करके तिर्यक् पातन यन्त्र बनालें।

वर्तमान विदेशसे लम्बी मुड़ी हुई गर्दन वाली शीशी (Retort) आती है, उसके मुँहके साथ अन्य शीशी (Receiver) को जोड़ उसमें पारद भर स्पिरिट लैम्पपर तिर्यक्पातन कर लेनेसे पारदकी हानि नहीं होती और सरलतासे शोधन क्रिया हो जाती है। ऐसा आधुनिक आचार्यने लिखा है। हमारे द्वारा अनुभव करनेपर यह वृथा परिश्रम हुआ। पारद ऊपर उड़ उड़कर बार बार गिरता रहता है।

(६) बोधन (रोधन) विधि—अमृतबानके भीतर सैंधानमक ४० तोले के साथ पारद १६० तोले मिलावें। उसमें जल २०० तोले डालें। फिर अमृतबानपर मुखमुद्राकर जमीनमें १ सप्ताह दबा देनेपर या पृथक् रख देने पर पहलेके संस्कारोंद्वारा जो षंडता या कदर्थता आई हो, वह दूर होजाती है। एवं पारद वीर्यवान् बन जाता है १ सप्ताह बाद पारदको अलग निकाल लें।

(७) नियमन विधि—गन्धनाकुली (सर्पाक्षी अभावमें रास्नामूल) का कन्द कच्ची खट्टी इमली, बांझ कटाली (बाँझ ककोड़ी) का कन्द, भांगरा, नागरमोथा और धतूरेके बीज समभाग लेकर क्वाथ करें। इस क्वाथमें १२ घण्टे तक दोलायन्त्र विधिसे पारदको स्वेदन देनेसे पारदकी चञ्चलता दूर होकर स्थिर हो जाता है। फिर निकालकर निवायी कांजीसे धो लेवें।

(८) संदीपन विधि—सैंधानमक, समुद्रनमक, छिलका दूरकी हुई राई, छिला लहसुन, कच्चा सोहागा, फिटकरी, कासीस, सहिजनेकी छाल, कालीमिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, और चित्रकमूल सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। पारदके वजनसे चूर्ण दुगुना मिला नींबूके रसमें ७ दिन खरलकर गोला बनावें। ऊपर भोजपत्र लपेटकर सूत बांधे। फिर मजबूत कपड़ेकी थैलीमें रखकर दोलायन्त्र विधिसे तीन दिन खट्टी कांजीके साथ स्वेदन करें कांजी बार-बार डालते जाय। पश्चात् गरम कांजीसे धोकर एक दिन नींबू के रसमें कांचके प्यालेमें १२ घण्टे सूर्यके तापमें रखें। दूसरे दिन गरम जल से धो लेनेसे पारद सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। यह उज्वल एवं ग्रासार्थी बन जाता हैं।

सूचना—धोनेके समय कुछ पारद जलमें मिल जाता है, उसे जल स्थिर होनेपर तलेसे निकाल लेना चाहिये। जो पारद काँजी आदिमें मिल गया हो, उस मिश्रणको उबाल गाढ़ाकर फिर पारदको उड़ा लेना चाहिये।

पारदपर ८ संस्कार करनेमें अधिक समय और श्रमकी आवश्यकता है, तथा पारदमेंसे बहुत भाग उड़ भी जाता हैं। तथापि ८ संस्कार किये पारद से बहुत लाभ प्राप्त होता है। इस अष्ट संस्कारित पारदमेंसे पूर्णचन्द्रोदय आदि

रसायन तैयार करनेसे शास्त्रमें लिखे अनुसार फलकी प्राप्ति हो सकती है।

पारद बुभुक्षित सरल विधि—अष्ट संस्कारित पारदको आकका दूध, थूहरका दूध, धतूरेके पत्तोंका रस, कलिहारीके मूलका क्वाथ, कनेरके मूल का क्वाथ, सफेद गुञ्जाफलका क्वाथ और अफीमका रस (अफीमसे १६ गुना जल मिलाकर तैयार किया हुआ जल) इन७ उपविषोंमें अनुक्रमसे ७-७ दिन तक खरल करें, बार-बार एक एक विषमें खरलकर पारदको डमरू-यन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। पश्चात् दूसरे विषमें खरल करें। फिर चतुर्थांश बीरबहुटी और सोलहवां हिस्सा सेंधानमक मिला नींबूके रसमें ७ दिन खरलकर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। फिर अन्तर्धूम विधिसे १६ गुणा गन्धक जारण करके विधिपूर्वक सुवर्ण आदिका ग्रास देनेपर पारदको सुवर्ण आदि धातुओंके भक्षण योग्य मुखकी प्राप्ति होती है।

अन्तर्धूम विधिसे षोडश गुण गन्धक जारण।

विधि—संस्कारित पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ८० तोले लें। प्रथम ५ तोले पारदमें ५ तोले गन्धक मिलाकर कज्जली बना लें। इसको ७ कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भर डाट लगाकर बालुकायन्त्रमें चढ़ा-कर मन्द मध्य व तीव्र क्रमसे अग्नि देकर जारण करें स्वांग शीतल होने-पर शीशीको उतार कपड़मिट्टी हटाकर गलेमें लगे सिन्दूरको एकत्रकर, खरलमें डालकर बारीक चूर्ण बनाकर समान भाग (५ तोले) गन्धक पुनः मिलाकर कज्जली बना लें तथा इसी उक्त विधिसे बालुकायन्त्रमें पका लें। इस प्रकार शेष १४ गुना गन्धक १४ बारमें जारण करा लें। डाट बन्द शीशीमें जारण करानेसे अन्तर्धूम जारण कहलाता है।

अनेक रसवैद्य बिना छिद्र वाले डमरूयन्त्रमें ५ तोले पारद व ८० तोले गन्धकको एक साथ डालकर मन्दाग्निसे गन्धकका जारण करा लेते हैं।

अनेक वैद्य भूधरयन्त्रमें, कोई गौरीयन्त्रमें कोई कच्छपयन्त्रद्वारा षड्गुण या षोडश गुण गन्धकका जारण कराते हैं, वह भी अन्तर्धूम कहलाता है।

बहिर्धूम गन्धक जारणकी अपेक्षा अन्तर्धूम विधिसे जारण किये गये पारदमें गुण वैशिष्ट्य होता है।

सुवर्ण ग्रास—अष्ट संस्कारित पारद जिसे सप्त उपविषोंके साथ संदीपन विधिसे क्षुधित तथा गन्धक जीर्ण कराया है, उसके साथ सेंधानमक, सज्जी-खार, नवसादर आठवां आठवां हिस्सा तथा सुवर्ण भस्म १८ वां हिस्सा मिलावें फिर नींबूके रसमें ३ दिन खरल करें। फिर दोलायन्त्रमें भरकर काञ्जी या नींबू रस डाल-डालकर १२ घण्टे स्वेदित करें। पश्चात् सुवर्ण-माक्षिक सत्व भस्म चौथा हिस्सा और सुवर्ण भस्म ८ वाँ हिस्सा तथा सेंधा-नमक, सज्जीखार, नौसादर ८-८ वां हिस्सा डालकर तप्त खरलमें ७ दिन तक खरल करें। फिर चनेका क्षार और नींबू रस आवश्यकतानुसार बार-

बार डालते रहें।

पश्चात् थैलीमें भर, गरम कांजीके भगोनेमें डुबा-डुबाकर धो लेवें। जिससे मल, क्षार आदि जलमें निकल जायगा। फिर पारदको कपड़ेसे पोंछ साधारण गरम मिट्टीके पात्रमें डाल, मर्दन करके सुखा लेवें। फिर वजन करनेपर पारदका वजन होगा, उतना पारद मिलेगा। सुवर्णको पारद पचन कर लेगा।

फिर अधिक ग्रास देना हो तो इसी विधिसे देवें। इस प्रकार सुवर्ण ग्रास युक्त पारदके साथ पुनः सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म और अभ्रक सत्व भस्मके ६ ग्रास दिये जायँ तो चन्द्रोदय तलस्थ ही बनता है। अभ्रकका ग्रास न देनेपर पूर्णचन्द्रोदय कण्ठस्थ बनता है।

श्रीभगवान् गोविन्दपादाचार्यजी और उनके अनुयायी सब आचार्योंने पहले अभ्रक सत्व भस्मका ग्रास देनेका विधान किया है, उससे पारद पक्षच्छिन्न होता है। जिससे अग्नि देनेपर अन्य पारदके समान उड़ नहीं सकता। फिर सुवर्ण ग्रास देनेकी आज्ञा की है। यथार्थमें वह मार्ग अधिक हितावह माना जायगा।

सुवर्ण ग्रास देने या अभ्रक सुवर्ण ग्रास देनेके पश्चात् पूर्णचन्द्रोदय (विशेष) बनाना हो, तो ११ गुणे से १०० गुणे तक गन्धकका जारण करना चाहिए।

जो पारद डमरूयन्त्रसे दो समय उड़ाया हुआ जर्मनीसे आता है वह शुद्ध होनेसे सामान्य मलहम आदिमें एवं साधारण कूपीपक्व रसायन बनानेमें विना शोधन किये उपयोगमें लेना चाहें तो भी चल सकता है। हम चालू औषधियोंके लिए कल्याण रसायनशालामें पारद अष्ट संस्कारितका उपयोग करते हैं एवं विशेष औषधियोंके लिए गन्धकजारित बुभुक्षित और पक्षच्छिन्न किया हुआ मिलाते हैं।

रसायन (पारद-मिश्रित औषधि) सेवनमें पथ्य—घृत, सेंधानमक, धनियां, जीरा और अदरक आदि मसालोंके द्वारा संस्कार किये हुए पदार्थ चौलाई, परवल, रामतोरई आदि शाक, गेहूँ, पुराने शालि चांवल, दूध, दही हंसोदक (धूप और चांदनीमें रखा हुआ जल) और मूंगका यूष ये सब पदार्थ सेवन करने चाहिये। (र० र० अ०)

पारद सेवन करने वालोंके लिये अपथ्य—बड़ी कटेली, बेल, पेठा, बेत के अंकुर, करेला, उड़द, मसूर, मटर, कुलथी, सरसों, तिल तथा लंघन, उद्वर्त्तन (उबटन), स्नान, मुर्गेका मांस, मद्य आसव, अनूप देशोंके जीवोंका मांस, काँजी, केलेके पत्ते और कांसीके बर्तनमें भोजन करना, गुरुपाकी (भारी), विष्टम्भकारक, अत्यन्त तीक्ष्ण और अत्यन्त गरम भोजन, ये सब पदार्थ और क्रियाएँ पारद सेवन करने वाले मनुष्योंको त्याग देनी चाहिये।

ककारादि गण—कटेरीके फल, काँजो, सालई वृक्षका शाक या कछुए का माँस, तेल, राई, नींबू, निर्मली, तरबूज, पेठा, ककड़ी, मोर और मुर्गेका मांस, करेला, बाँझककोड़ा, वेंगन और कैथ इन पदार्थोंके समूहको ककारादि गण कहते हैं। इस गणका देवीशास्त्रमें वर्णन किया गया है।

कांगनी, कन्दूरी, बेर, मुर्गा, मोर और सूअरका मांस, कुलथी, कटेरी फल, सरसोंका तेल, काली गलक नामक मछली, कछुएका मांस, मटर, पीपल, पेठा, करेला, निर्मलीके फल, बांझककोड़ा, ककड़ी, अरहर और कांजी यह ककारादिगण श्रीकृष्णदेव नामक आचार्यने कहा है।

जिस रसमें ककारादि गणके पदार्थोंके सेवनका निषेध किया गया हो, उस रसपर इनके ककारादि गणके पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये और अन्यान्य गुणहीन पदार्थोंको भी त्याग देना चाहिये। (र० र० स०)

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्।
जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनीदर्पनाशकः॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थसिद्धिदः।
भवेत् पञ्चगुणे सिद्धःषड्गुणे मृत्युजिद् भवेत्॥

गन्धक जारित पारदके गुण—अन्तर्धूम विधिसे समान गन्धक जारण करनेसे पारदका गुण कई गुना बढ़ता है और सर्व साधारण रोगोंका नाश करता है। दुगुना गन्धक जारण करनेपर कफ, क्षय और कुष्ठको दूर करता है। तिगुना गन्धक जारण करनेसे नपुन्सकता और दुर्बलता दूर करता है। चार गुने गन्धक जारण करनेसे वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूर कर शरीर को तेजस्वी बनाता है। पांच गुना गन्धक जारण करनेसे क्षयका नाश करता है और संकल्पसिद्ध बनाता है। छःगुना गन्धक जारण करनेसे इस पारदके समक्ष कोई भी रोग नहीं टिक सकता। यह सम्पूर्ण रोगोंका नाशक है एवं मनुष्यको मृत्युजित् बनाता है। अर्थात् अकाल मृत्युनाशक होता है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार पारद-मिश्रित औषधि खाने (प्रे आइल आदिके इञ्जेक्शन करने) और मलहम लेप आदि बाह्यप्रयोग करनेपर पारद रक्तमें मिलकर रक्तशोधन करता है; रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ाता है, और रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि कराता है। रक्ताणुओंकी वृद्धिके लिये अति न्यून मात्रामें कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिये। किन्तु यदि दूषित पारदका सेवन किया जाय या शुद्ध पारदका अत्यधिक कालतक निरन्तर व्यवहार किया जाय अथवा मात्रा अधिक ली जाय तो रक्ताणुओंका नाश होता है; मांस तन्तु (Fibrin) न्यून हो जाता है तथा कितने ही विपरीत लक्षण भी प्रकाशित होते हैं) यथा मुँहमें छाले, मुंहका स्वाद पित्त-प्रकोप-सूचक होना, दांतोंकी जड़में शिथिलता और वेदना होना, लाला स्रावमें वृद्धि और

मुँहसे दुर्गन्ध निकलना, नाकसे उष्ण निःश्वास निकलना, कण्ठमें लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि, पारद शोषित हो जानेपर शरीरकी समस्त ग्रन्थियोंके स्रावकी वृद्धि होना; अति प्रस्वेद आना, किसी-किसीको दस्त पतला होना, किसीको वृक्क स्थानमें पीड़ा, चलते समय हाथ पैरका कम्प, देहमें शुष्कता और निस्तेजता आ जाना आदि प्रकट होते हैं।

क्वचित् वात संस्थान आक्रान्त होनेपर हाथ पैर और मस्तिष्ककी मांस-पेशियोंसे स्पन्दन होना या पक्षाघात प्रारम्भिक लक्षण या मन्द वेदना होती है। किसीको प्रलाप होता है। अतः पारदका व्यवहार दीर्घकाल तक करना हो तो बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े दिन बन्द करते रहना चाहिये। डाक्टरी पारद कृतिमें जितना हानिका भय है, उतना आयुर्वेदिक कृतिमें नहीं है। फिर भी सम्हालते रहना, यह लाभदायक है।

बड़े मनुष्यकी अपेक्षा बालक-बालिकाओंको पारद विशेष सहन होता है। बाल्यावस्थामें पारद मिश्रित औषधि सेवन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें शरीर मोटा बन जाता है।

सूचना—आयुर्वेदिक विधिसे शोधित पारद और शुद्ध पारद प्रधान औषधिसे किसीको हानि नहीं पहुँचती हैं फिर भी पारद सेवन कालमें १०-१० दिनपर मसूडोंको देख लें कि, मसूडोंपर नील-वर्णकी रेखाएँ तो नहीं है? एवं लाला निःसरण वृद्धि तो नहीं हुई है? ऐसा कदाच प्रतीत हो तो तत्काल औषधि बन्द कर देनी चाहिये। एवं इसके विपरीत प्रवाल, मुक्ता, सुवर्ण-माक्षिक, अमृतासत्व, सितोपलादि, च्यवनप्राश आदि प्रकोपशामक औषधि का सेवन करना चाहिये। आवश्यकतापर पहिले विरेचन ले लेना चाहिये।

हिंगुलोत्थ पारदकी अपेक्षा विशेष शोधित पारद मिलानेसे रसायन गुण में वृद्धि होती है, आशुफलप्रद होता है। इसकी अपेक्षा भी बुभुक्षित पारद मिलानेपर रसायन अत्यधिक गुणप्रदान करता है। जिस तरह सब प्राचीन आचार्य बुभुक्षित पारद प्रधान कूपीपक्व पर्पटी और खरलीय रसायन बना कर उपयोग करते थे, उसी तरह वर्तमानमें भी बुभुक्षित पारदका ही उप-योग किया जाय तो शास्त्र कथित पूरा-पूरा लाभ प्राप्त हो सकेगा।

शतगुण गन्धक जारित, माक्षिकाभ्रसत्व सुवर्ण ग्रासित

(१) पूर्णचन्द्रोदय रस (विशेष) तलस्थ

प्रथम विधि—अष्ट संस्कारित विशुद्ध पारद २० तोले, शुद्ध गंधक २००० तोले, सुवर्ण भस्म २॥ तोले, अभ्रक सत्व ५ तोले, सुवर्णमाक्षिक सत्व ५ तोले लें। (वैद्य—बद्रीनारायण शास्त्री)

सर्वप्रथम—अष्टसंस्कारित २० तोले पारदको इसी प्रकरणमें लिखित

सरल बुभुक्षा विधिसे बुभुक्षित करलें। पश्चात् पारदको पक्की, पत्थर की खरलमें डालकर अष्टमाँश विड व नींबूका रस मिलाकर १ दिन भर घोटें दूसरे दिन पारदसे १/६४ भाग अभ्रक सत्व थोड़ा नींबूका रस डालकर घोटें। फिर इसमें १/६४ भाग सुवर्णमाक्षिक सत्व थोड़ा शहद व नींबूका रस डालकर घोटें तथा गोला बनालें। इसे सैंधानमक व जवाखार १।।-१।। तोलेको नींबूके रससे घुटे हुये लेपसे लिप्त चौलड़ कपड़ेपर गोलेको रखकर पोटली बना, मजबूत मिट्टीकी हांडीमें काँजी भरकर दोलायन्त्र विधिसे १ दिन भर स्वेदित करें। फिर यन्त्र ठण्डा होनेपर गर्म पानीसे धोकर पारदको निकाल लें। इसी प्रकार शेष ग्रास भी दोलायंत्र विधिसे दें।

इसी विधिसे उक्त पारदमें १/३२, १/१६, व १/८ भाग अभ्रकसत्व तथा सुवर्ण-माक्षिक सत्व ५-५ तोलेका जारण करनेसे पारद शक्तिशाली व निश्चल बनता है। पश्चात् इसी विधिसे २।। तोले सुवर्णका जारण करलें यह पारद अति दिव्य गुणप्रद बन जाता है।

यथाहि रसशास्त्रेषु—

गगनं जारयेदादौ सर्वसत्वमतः परम्।
ततो माक्षिकसत्वं च सुवर्णं तदनन्तरम्।। (रसार्णव)

वर्त्तमान समयमें अभी तक समगुणसे लेकर २६ गुना गंधक जारित पारद द्वारा पूर्णचन्द्रोदय बनता रहता है। कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन,, कालेड़ाको ही सर्व प्रथम यह अनुभव करनेका श्रेय प्राप्त हुआ है कि शतगुण गंधक जारित, अभ्रक, सुवर्ण, माक्षिक ग्रासित पारदद्वारा पूर्णचन्द्रोदय रस तैयार करवाकर अपने अनुभवको लेख बद्धकर वैद्यवरों व जन-समाजकी सेवामें समर्पित किया है। वैसे इस नूतन कार्यको अभूतपूर्व प्रयास इसलिये नहीं कहा जा सकता कि शास्त्रोंमें शतगुण तक गंधक जारण करनेका विधान आया है। यथाहि—

तप्तं तप्तं शतधा पलाण्डु रसे निषिक्तमन्ते च पञ्चबाजले।
दुग्धे निषिक्तं गन्धकमष्टगुणं शतगुणं वा जारयेत्।।

उक्त विधिसे निष्पन्न दिव्य पारदको डमरूयन्त्रकी नीचेकी हांडीमें डालकर ऊपर ४० तोले शुद्ध गंधक डालें तथा इस हांडीपर, पैंदेके बीचमें १ इञ्च व्यासके गोल छिद्र वाली हाँडी रख, मुंहसे मुंह मिलाकर सन्धिपर कपड़ मिट्टीकर सुखाकर चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँच देना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे गन्धक जलनेपर धूंआ निकलता रहेगा, इसका ध्यान रखें। गंधक जारण होकर धूंआ निकलना कम होजानेपर ऊपरकी हांडीके छेदमेंसे २० तोला गन्धक और डाल दें। इस प्रकार क्रमशः ५०० तोले गन्धकका जारण हो जानेपर इस पारद मिश्रणको दोलायंत्र वाली नीचेकी हाँडीमेंसे निकालकर इसे ७ कपड़मिट्टीकी हुई आतशी शीशीमें भरें, बालुकायंत्रमें चढ़ाकर

चन्द्रोदय विधिसे पकालें । यन्त्र स्वांग शीतल होनेपर उतारकर शीशीमेंसे चन्द्रोदयको निकाल लें । यह २५ गुना गन्धक जारित चन्द्रोदय बना है ।

२. तदुपरांत इस चन्द्रोदयको पुनः दूसरे डमरूयन्त्रमें ४० तोले शुद्ध गंधक सह भरकर चूल्हेपर चढ़ाकर मन्दाग्निसे जारण करें । इस प्रकार ५०० तोले गंधक और जारण करें । गन्धक जारण होजानेपर मिश्रणको निकाल कर चन्द्रोदय विधिसे बालुका यन्त्रमें चढ़ाकर चन्द्रोदय बनालें । यह ५० गुना गन्धक जारित चन्द्रोदय बना है ।

३. पुनरपि इस चन्द्रोदयको डमरुयंत्रमें ४० तोले गन्धकसह चढाकर उक्त विधिसे ५०० तोले गन्धकका और जारण करें तथा इसे बालुकायंत्र में रखकर चन्द्रोदय विधिसे पकाकर चन्द्रोदय बनालें । यह ७५ गुना गंधक जारित चन्द्रोदय बना है ।

४. फिर इस चन्द्रोदयको डमरुकायंत्रमें ४० तोले गंधकसह चढ़ाकर उक्त विधिसे ५०० तोले गन्धकका क्रमशः जारण करलें । इस प्रकार ४ बारमें २००० तोले गन्धकका जारण पूरा होजाता है । अब इस मिश्रणको निकाल कर कूपीपक्व रसायन निर्माण विधिसे पाक करके चन्द्रोदय बनालें । हमारे अनुभव व शास्त्रोंके आदेशसे यह सिद्ध है कि पारदमें १०० गुना गन्धक जारण करने पर वह उत्तरोत्तर अधिक गुणवान् व शक्ति शाली बन जाता है ।

यथाहि—यथास्याद् जारणा वह्नी तथा स्याद् गुणदो रसः ।

सूचना— १. गन्धक जारणहित अपने अपने अनुभवोंके अनुसार इष्टिका यन्त्र, गौरीयन्त्र, कच्छपयन्त्र, वालुकायन्त्र, भूधर यन्त्र, खर्परयन्त्र अथवा मूषायन्त्रोंका विभिन्न उपयोग किया जा सकता है ।

२. वालुकायन्त्र द्वारा १-१ बारमें १-१ गुना गन्धक १०० बार जारण करनेसे अति व्यय, परिश्रम, समय आदिका खर्च अत्यधिक होता है ।

बार-बार शीशियाँ बदलना, कपड़मिट्टी करना तथा लंबे समय तक पाक क्रिया करना होता है । इस क्रियामें ३ वर्षसे कम समय नहीं लगेगा जब कि हमें लगभग २ वर्षका समय लगा है ।

३. डमरूयन्त्रमें जारण करते समय मन्दाग्नि देना चाहिये जिससे जारण क्रिया ठीक व योग्य होती है ।

इस पूर्ण चन्द्रोदयका अष्टसंस्कार युक्त, बुभुक्षित, माक्षिकसत्व, अभ्रकसत्व तथा सुवर्णके ग्रास देकर १०० गुना गन्धक जारण करके बनाया गया है । अतः यह शास्त्रोक्त गुण प्रदर्शक बनता है ।

मात्रा—¼ रत्तीसे १ रत्ती तक, दिनमें २ बार दूध या मलाईके साथ । सेवन विधि—शतगुण गन्धक जारित पूर्णचन्द्रोदय ३ माशे, कस्तूरी ३ माशे, अभ्रक १००० पुटी ३ माशे, शुद्धकपूर १ तोला, केशर १ तोला, अकर

करा १ तोला, समुद्रशोष १ तोला, हरी छोटी पीपल १ तोला लें। इनको क्रमशः खरलकर बारीक चूर्ण बना स्वच्छ शीशीमें भर लें। अथवा नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालें।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक, दिनमें २ बार, दूध मक्खन या मलाईसे लें अथवा रोगानुसार अनुपानसे सेवन करें।

उपयोग—यह पूर्णचन्द्रोदय रस हृदयपौष्टिक, वाजीकरण, रसायन, बल्य, रक्तप्रसादक, जन्तुघ्न, सेन्द्रिय, विषशामक और योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफप्रकोपजन्य व्याधियों और शुक्रकी निर्बलताके नाश करनेमें अत्यन्त लाभदायक है। वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, मानसिक निर्बलता, नपुंसकता, हृदयकी निर्बलता, जीर्णज्वर, क्षय, श्वास, प्रमेह, विषविकार, मन्दाग्नि, अपस्मार आदिको दूर करके बलवीर्यकी वृद्धि करता और आयुको बढ़ाता है।

इस चन्द्रोदयका सेवन यदि रतिकालमें या रतिके अन्तमें किया जाय, तो सौ मदोन्मत्त स्त्रियोंके गर्वका हरण करने योग्य बल देता है। इस रसायनके सेवनकालमें घी, औटाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, मांस, मांसरस, उड़दके पदार्थ और अन्य आनन्दवर्द्धक आहार विहार पथ्य है। इस रसायनका एक वर्ष पर्यन्त सेवन करनेपर कृत्रिम, स्थावर या जंगम किसी भी प्रकारका विष बाधा नहीं पहुँचा सकता। जिस तरह मृत्युञ्जय क्रिया या मन्त्रके अभ्याससे मृत्युका निवारण होता है, उसी तरह मनुष्योंको इस रसायनके नित्य सेवनसे जरा और मृत्युका भय नहीं सता सकता।

सुवर्ण ओर सुवर्ण मिश्रित औषधियाँ हृदयको शक्ति देती और रक्तको निर्विष बनाती हैं। सुवर्ण योगवाही होनेसे हेमगर्भ पोटली रस आदि उत्तेजक औषधियोंके संयोगसे हृदयपर उत्तेजक गुण और शामक असर दर्शाता है। पूर्णचन्द्रोदय रसमें भी उत्तेजक गुण रहता है। सुवर्णके योगसे इस रसायनका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें होता है। राजयक्ष्माकी द्वितीयावस्थामें अनेक समय उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस रसायनका क्षयके कीटाणुओंपर साक्षात परिणाम होता है। अतः क्षयकी तीव्र अवस्थाओंमें यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

केवल राजयक्ष्माका संशय उत्पन्न होनेपर ही पूर्ण चन्द्रोदय रसका सेवन प्रारम्भ किया जाय, तो उत्तेजक होनेसे कुछ समय तक रक्तवाहिनियों, स्रोतों और रक्त आदि धातुओंपर उत्तेजकता दर्शाता है, जिससे कभी-कभी लक्षण बढ़ जानेका भास होता है। परन्तु जैसे-जैसे सुवर्णक्षारका रक्तमें मिश्रण होता जाता है, वैसे-वैसे रक्त सबल बनता जाता है और शनैः शनैः क्षय कीटाणु नष्ट होते जाते हैं। क्वचित् पूर्णचन्द्रोदयके सेवनसे ज्वर बढ़ जाता है, ऐसा होनेपर पूर्णचन्द्रोदयकी मात्रा कम कर देनी चाहिये।

यह कल्प शारीरिक घटकों (Tissues) का नाश नहीं करता, केवल शरीरको हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओंका नाश करता है। इस दृष्टिसे कीटाणु नाशक औषधियोंमें पूर्ण चन्द्रोदय रस उत्तम औषधि है। यह रसायन जीर्ण उरःक्षतमें रक्त गिरनेकी अवस्थामें रक्तको शक्ति देकर रक्तवाहिनियोंको सुदृढ़ बनाता है एवं व्रण-रोपण रूप महत्वका कार्य भी करता है। क्षयकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें उत्पन्न होनेवाले उरःक्षतमेंसे अनेकमें इस कल्पका उपयोग होता है।

कीटाणुजन्य अन्य व्याधियोंमें रक्तमें मिले हुए कीटाणुओंको नष्टकर रक्तको सबल बनानेका इस रसायनमें मुख्य धर्म है। इस हेतुसे आन्त्रिक सन्निपात, फुप्फुस सन्निपात, फुप्फुसावरण शोथ (उरस्तोय) और इस तरह के अन्य संक्रामक ज्वरोंमें जब जब हृदयक्रिया कीटाणुओंके विषके हेतुसे विकृत, मन्द या क्षीण होती है, तब तब अन्य किसी भी औषधिकी अपेक्षा पूर्ण चन्द्रोदय रस देना विशेष हितकारक है। जब आयु-वृद्धिके साथ शरीरकी वृद्धि नहीं होती, तब शरीर नाटा या ठिंगना प्रतीत होता है, मुखमण्डल निस्तेज और सूजा सा भासता है; त्वचा, नाखून आदि शुष्क प्रतीत होते हैं; जननेन्द्रिय और नितम्ब भागकी वृद्धि न होनेसे आयु वृद्धि होनेपर भी युवा स्त्री सामान्य छोटी लड़की सदृश दीखती है; अर्थात् इन इन्द्रियोंका व्यवहार आयु अनुसार नहीं होता और इसी तरह स्तन आदि इन्द्रियोंका विकास भी नहीं होता। पुरुषोंके अण्डकोषोंका यथोचित विकास न होनेसे योग्य शुक्रोत्पत्ति क्रिया नहीं होती, शरीरपर तेज नहीं भासता, समस्त अवयवोंकी योग्य वृद्धि न होनेसे अवयव संकुचित जैसे भासते हैं; स्फूर्ति नहीं रहती, नेत्रपर निस्तेजता भासती है और नाड़ी मन्दगतिसे चलती है। इस स्थितिमें दो आयुर्वेदिक औषधियां उत्तम कार्य करती हैं एक पूर्ण चन्द्रोदय रस, दूसरी आरोग्य वर्द्धिनी। वातप्रधान विकार वालोंको आरोग्य वर्द्धिनी और कफप्रधान विकृतिवालोंको पूर्ण चन्द्रोदय रस उपयोगी है।

किसी भी कारणसे आई हुई इन्द्रिय-शिथिलताको यह रसायन दूर करता है। यहांपर इन्द्रियका अर्थ ज्ञानग्रहण-सामर्थ्य और आज्ञा प्रदान सामर्थ्य क्रिया है। शरीर अवयव इन्द्रियोंके अधीन हैं। जैसे नेत्र नेत्रेन्द्रियके अधीन है, जिह्वा रसनेन्द्रियके और त्वचा त्वगिन्द्रियके अधिकारमें रहती है। इन ज्ञानेन्द्रियोंके सामर्थ्यसे मनुष्यको शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुणका बोध होता है। इनकी शिथिलता होनेपर नेत्रमें दर्शन-क्रिया और कर्णसे श्रवण क्रिया यथोचित नहीं होती। यह शिथिलता वात और पित्त धातुओंकी विकृतिके हेतुसे होती है। धातुओंका कार्य जिस तरह शरीर-अवयव और शरीर-घटकोंपर होता है, उस तरह बुद्धि, मन, मनोदेश और

ज्ञानेन्द्रियपर भी होता है। फिर धातु-साम्य प्रस्थापित होकर इन्द्रियोंकी शिथिलता दूर होती है और शरीर अवयव व्यवस्थित रूपसे काम करने लग जाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियके समान अन्य अवयवोंमें रही हुई इन्द्रिय (शक्ति) का पराभव हो जाता है; वह भी इससे उत्तेजित हो जाती हैं। इस हेतुसे नपुंसकता प्राप्त होनेपर पूर्णचन्द्रादयसे लाभ होता है। इसके सेवनसे इन्द्रिय-शैथिल्यका नाश होता है और मन स्फूर्तिकी प्राप्ति होती है।

इस रसमें कर्पूर अत्यधिक मात्रामें मिलाया है। एवं जायफल, समुद्रशोष आदि अन्य औषधियोंके संयोगसे वृष्यत्व गुण अत्यधिक परिमाणमें बढ़ जाता है। योग्य विचार किया जाय, तो यह गुण नहीं किन्तु दोष माना जायगा। कारण इस गुणकी प्राप्ति होनेपर पुरुषको कामवासनाके अतिरिक्त अन्य विचार ही नहीं आता। रति लालसाकी तृप्ति नहीं होती। इस हेतुसे अत्यन्त कामोत्तेजक औषधिका उपयोग करना हो तो सम्हाल-पूर्वक ही करना चाहिये।

कृत्रिम विष (गर), शरीरमें उत्पन्न विष या स्थावर, जंगमात्मक विष इनकी तीव्रता होनेपर विषघ्न चिकित्सा करनेके पश्चात् उसके लीन अंश का प्रकोप दीर्घकाल तक न रहनेके लिये पूर्णचन्द्रोदयका सेवन हितकर है। इस रसायनसे रक्तका प्रसादन होकर शरीर निर्विष बनता है।

(औ० गु० ध० शा०)

सन्निपातमें कफप्रकोप होनेपर पूर्णचन्द्रोदय रसका अच्छा उपयोग होता है। कफ दूषित और सग्रहीत हो जानेपर रोगीके कमरेमें जानेके साथ दुर्गन्धिका भास होता है, कण्ठमें घर-घर आवाज, नेत्रमें लाली, कोष्ठ-बद्धता, कफ और दस्तमें रक्तस्राव, निद्रानाश जिह्वा काली और कांटेदार, चित्तविभ्रम, प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते है। क्वचित् किसीको मस्तिष्कावरणका प्रदाह होता है, उस स्थितिमें कण्ठ हिलाना, बरुनीके भीतर शोथ और अधिक उन्माद जैसे वर्ताव आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसी अवस्थामें पूर्णचन्द्रोदय, शृंगभस्म, प्रवालपिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर शहदके साथ दिनमे ३ बार थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त मुलहठी, बहेड़ा, मुनक्का, अडूसा और मिश्रीका अष्टमांश क्वाथ करके देते रहनेसे कफ शुद्धि सत्वर होनेमें सहायता मिल जाती है। (इस विकारमें उदर शुद्धिके लिये तीव्र विरेचन कदापि नहीं देना चाहिये।)

सूचना—पूर्णचन्द्रोदय रसके सेवन-समयमें यकृत् सबल है, तो घृतयुक्त मधुर पदार्थ विशेष रूपसे लेनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। जिसकी नाड़ी और हृदय गति मन्द हो और कफप्रधान प्रकृति हो उसके लिये यह रसा-

यन विशेष अनुकूल रहता है। पित्त-प्रधान प्रकृति वाले, जिनकी नाड़ी और हृदयकी गतिमें विशेष तेजी रहती हो, अन्तरमें उष्णता रहती हो, उनको यह रसायन नहीं देना चाहिये।

पूर्णचन्द्रोदय रस [सामान्य]

दूसरी विधि—पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित किया हुआ पारद १६ तोले, सुवर्णके वर्क २ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले लेवें। पहले पारद और सुवर्ण वर्कोंको मिलाकर ३ दिन तक नीबूके रसमें खरल करें। रोज प्रातः एक-एक तोला सेंधानमक साथमें मिला लेवें। चौथे रोज पारदको ३-४ समय जलसे धोकर क्षार दूर करें। पश्चात् गन्धक मिला, कज्जली कर लाल कपासके फूलोंके रस (फूलोंका रस स्वरस यन्त्रसे निकालें) और घी कुँवारके रसकी ३ दिन तक भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भरकर ६० घण्टे तक आंच देवें। लगभग ३६ घण्टेमें डाट लगाना पडेगा। फिर २४ घण्टे तीव्र अग्नि देनेसे औषधि पक जाती है। पारद बुभुक्षित नहीं होगा, तो तल भागमें सुवर्णकी काली भस्म शेष रह जायगी और चन्द्रोदय कण्ठ-स्थ हो जायगा। पक्षच्छिन्न होनेपर चन्द्रोदय तलस्थ बनेगा। (रस०चि०)

कपासका वृक्ष जो अनेकों वर्षों तक जीवित रहता है, उसके लाल फूलों का स्वरस लेना चाहिये। वर्षायु कपासके फूलोंका रस उपयोगी नहीं है।

पारदको अष्ट संस्कारसे विशुद्ध करनेकी विधि, सत्वपातन विधि, ग्रास देनेकी विधि, कांजी निर्माण विधि तथा चन्द्रोदयकी अनुभूत विधि विस्तार से समझाकर पृथक् रसतत्व विवेचन पुस्तिका द्वारा दी गई है। अतः यहाँ संक्षेपमें ही वणन किया है।

सेवन विधि—चन्द्रोदय और कर्पूर ४-४ तोले खरल करके मिला लेवें। बादमें जायफल, समुद्रशोष (वृद्धदारु) के बीज, लौंग ४-४ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिला खरल करके बोतलमें भर लेवें।

बाजारमें कपूर, मिक्सचर्ड केम्फर, प्योर केम्फर, रिफाइण्ड केम्फर, तीन जातिका मिलता है। इनमेंसे रिफाइण्ड केम्फर या भीमसेनी कपूर (वृक्षमें ही परिपक्व होता है) उसे उपयोगमें लेना चाहिये। यह भीमसेनी कपूर विशेष लाभदायक है।

(२) चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म, शुद्ध कपूर, केशर, अकलकरा, समुद्रशोष, छोटी पीपल प्रत्येक १-१ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिलाकर खरलकर शीशीमें भर लेवें अथवा नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

चन्द्रोदय मिश्रणकी मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें १ या २ वार शहद या नागरवेलके पानके साथ लेवें। अथवा गोली खाकर ऊपरसे दूध पीवें।

ज्वरादि रोगोंमें हृदयपौष्टिक रूपसे देना हो, तो दिनमें २ या ३ समय आधे से १ रत्ती चन्द्रोदयको शहद पीपलके साथ मिलाकर दें ।

उपयोग एवं अनुपान—प्रथमविधिके अनुसार ।

तीसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले, शुद्ध गन्धक ३२ तोले तथा सुवर्ण रज (या सुवर्ण वर्क) २ तोले, लेवें । पतले पारद-गन्धककी कज्जली करके स्वर्ण मिलावें फिर ३ दिन निम्बूके रसमें खरलकर कपड़मिट्टीकी हुई शीशी में भरें इसे बालुका यन्त्रमें रख २४ घण्टे अग्नि देकर पूर्णचन्द्रोदय बना लेवें । यह कण्ठस्थ ही बनेगा ।

मात्रा, उपयोग, अनुपान—द्वितीय विधिके अनुसार ।

(२) रससिन्दूर (षड्गुण)

प्रथम विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ९६ तोले मिलाकर कज्जली करें । फिर घीकुंवारके रसकी भावना दें, सुखा आतशी शीशीमें भरकर बालुकायन्त्रमें ४ अहोरात्र अग्नि देनेसे रससिंदूर तैयार हो जाता है । लगभग ६० घण्टेपर डाट लगेगा, पश्चात् २४ घण्टे तीव्र अग्नि देनेसे रसायन परिपक्व हो जाता है । एक साथ ६ गुना गन्धक जारण करनेकी अपेक्षा दो-दो गुना गन्धक तीन समय जारण किया जाय, तो रससिंदूर अधिक लाभदायक बनता है ।

यदि उक्त परिमाणवाले पारद गंधकको निश्छिद्र डमरूयंत्र अथवा शीशी में मुंह बंद करके मंदाग्नि द्वारा पकाकर रससिंदूर बनाया जायेगा, उसे अन्तर्धूम, षड्गुण गंधक जारित रससिंदूर कहेंगे । यह विशेष प्रभाव, गुणों वाला होगा ।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें दो बार, अभ्रक भस्म, पीपल और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ ।

विविध अनुपान—

१–वातरोगमें—पीपल शहद मांसरस, तेल या लहसुनके साथ ।

२–पित्त रोगमें—आँवलेके चूर्ण और मिश्रीके साथ ।

३–कफ रोगमें—अदरकके रस और शहदके साथ ।

४–रक्तविकारमें—शहद अथवा हल्दी और मिश्रीके साथ ।

५–अतिसार और पेचिशमें—चौलाई रस, कच्चे बेलफल या लौंग, हिंगुल, अफीम और भाँगके साथ ।

६–कामला, पाण्डु और मन्दाग्निपर—त्रिकटु, त्रिफला, और वासाके स्वरसके साथ ।

७–मूत्रकृच्छ्रपर—शिलाजीत, इलायची और मिश्रीके साथ ।

८–धातुवृद्धिके लिये—लोंग, केशर मिले नागरबेलके पानमें या विदारी कन्दके चूर्णके साथ।

९–वमन शमनके लिए—भांग और अजवायनके ३-३ रत्ती चूर्णके साथ अथवा लाजाचूर्णके साथ।

१०–उदर रोगपर—कालानमक, हल्दी, भाँग और अजवायनके चूर्ण १॥ माशेके साथ।

११–कृमिपर—२ रत्ती पलासफलके चूर्ण और गुड़में।

१२–मन्दाग्निपर—कालानमक और अजवायनके साथ।

१३–बलवृद्धिके लिये—गिलोयसत्वके साथ।

१४–हृदयकी निर्बलतापर—पीपल और शहदके साथ।

१५–वातज प्रमेहपर—शहद पीपलके साथ।

१६–पित्तज प्रमेहपर—त्रिफला और मिश्रीके साथ।

१७–कास, श्वास और शूलपर—त्रिकटु, भारङ्गी और शहद या शहद और पीपल या भांगरेके रसके साथ।

१८–मन्दाग्नि, मलावरोध और हृदयरोगपर—पीपल, चित्रकमूल, हरड़ और काले नमकके साथ।

१९–शुक्रवृद्धिके लिये—कपूर आधा रत्ती, लौंग, केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल और भाँग २-२ रत्ती तथा मिश्री १ माशाके साथ १ से २ रत्ती रससिंदूर देवें अथवा केलेके साथ।

२०–सब प्रकारके ज्वरोंपर—लौंग, चिरायता हरड़ और काले नमकके साथ या जीरा और पीपलके साथ।

२१–ज्वरकी सन्निपातावस्थामें स्थिति देखकर चतुःसमचूर्ण (चन्दन, अगर कस्तूरी और केशर) के साथ या निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ।

२२–रक्तपित्तमें—शक्कर युक्त द्राक्षाके साथ।

२३–राजयक्ष्मामें—घृतके साथ।

२४–धातुक्षयमें—कसौंदी और अदरकके स्वरसके साथ।

२५–अरुचिमें–बिजौरेके रसके साथ।

२६–मदात्ययमें—नीमके मद (जल) और शक्करके साथ।

२७–मूर्च्छामें—नारियलके जल या पित्तपापड़ाके क्वाथसे।

२८–अपस्मारमें—कल्याण घृतके साथ।

२९–विसूचिकामें—सोंठ, जीरा और जावित्रीके साथ।

३०–अजीर्ण और हडफूटनमें—धनियाँ तथा सोंठके क्वाथसे।

३१–ग्रहणीमें–चांगेरीका रस, भूनीहरड़ या सोंठके साथ।

३२–पीनसमें—कालीमिर्चके चूर्णके साथ।

३३-कुष्ठोंमें—बावची और पुंवाड़के बीज अथवा खेरके क्वाथके साथ।
३४-मुखपाकमें—सफेद चन्दनके क्वाथसे।
३५-वातरक्तमें—तालमखानेके चूर्णके साथ।
३६-दन्तरोगमें—दन्तधावन वृक्षोंके रसमें।
३७-विबन्धमें—एलुवाके चूर्णके साथ।
३८-हिक्की और आध्मानमें—कुलथीके क्वाथसे।
३९-हृद्रोग, रक्तस्राव और उदर रोगमें—अर्जुन छालके रस और शहद के साथ।

उपयोग—धातुक्षीणता, हृद्रोग, कफप्रधान, प्रमेह, क्षय, श्वास, कास, वातरोग, उदररोग, मूर्छा, अर्श, भगन्दर, पाण्डु, दुष्टव्रण, शूल, वमन, ज्वर, संग्रहणी, सन्निपात, मन्दाग्नि, मगजकी निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, शोथ गुल्म, प्लीहाविकार और त्रिदोष प्रकोप आदि रोगों पर अति लाभदायक है।

रससिन्दूरका कार्य विशेषतः फुफ्फुस और श्वासवाहिनियोंपर होनेसे कफस्रावी औषधियोंके साथ देनेसे दूषित कफ, जो संचित हुआ हो वह सरलतासे छूटकर बाहर आ जाता है। कफ धातु निर्दोष बनती है और फुफ्फुस शोथ नष्ट होकर फुफ्फुस बलवान् बनते हैं। इसलिये कफ प्रधान सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia) इन्फ्लुएन्जा, श्वास रोग, जीर्ण कफकास और जुखाममें कफ संचय होनेपर विषघ्न और कफघ्न रूपसे रससिंदूरका उपयोग हितकर है।

कफस्राव करानेके लिये रससिंदूरके उत्तेजक गुणका कार्य होता है। इस कफप्रकोपके विरुद्ध जब शुष्क कास हो तब इस रसायनका उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये। अन्यथा कास बढ़ जायगी, क्षोभ अधिक होगा। शुष्क कास युक्त अवस्थामें प्रवालपिष्टी, ब्राह्मी, मुलहठी, इलायची आदि शामक कफ स्रावी औषधि देनी चाहिये।

कफसंचय होकर कास हो रही हो तो रससिंदूरको कफस्रावी अनुपानके साथ देनेसे कफस्राव दूर होता है और कास भी कम हो जाती है। यदि कफ संचयको दूर न किया जाय तो भीतरके स्रोत दुष्ट हो जाते हैं। फिर ज्वरकी उत्पत्ति हो जानेकी संभावना रहती है। ऐसा अनेक बार श्लैष्मिक सन्निपात (Infuenza) में होता है। श्लैष्मिक सन्निपातकी तीव्रावस्थामें नष्ट होकर जब पुनः पूर्व स्थितिकी प्राप्ति होती है तब फुफ्फुसों के किसी स्थानमें कफसंचित रह जाता है तो कुछ समयमें पूयमय दुर्गन्ध युक्त बन जाता है, फिर कफ हरा पीला दुर्गन्धमय निकलता है। जो पूय भावकी प्राप्ति न हो सके तो कफ श्वेत, चिपचिपा और गाढ़ा निकलता है। इस तरह कफ विकृति होनेपर ज्वर आने लगता है। यह ज्वर कफसंचय

और कफ दुष्टिके अनुरूप न्यूनाधिक परिमाणमें होता है। इस विकृतिपर रससिंदूर और शृङ्ग भस्म मिलाकर दिये जाते हैं।

कितने ही मनुष्योंको बार-बार प्रतिश्याय हो जाता है, उनको विशेषतः नासिकाकी श्लैष्मिक कला, स्वरयन्त्र और ग्रसनिकामें क्षोभ उत्पन्न होकर जुकाम हो जाता है। ऐसी प्रकृति वालोंको रससिंदूरका सेवन कराने से क्षोभ दूर होकर व्याधिका निवारण हो जाता है।

उरस्तोय (Pleurisy) होनेपर फुफ्फुसावरणमें जल संचय होता है। इस जलकी विकृति होनेपर ज्वर आने लगता है। यदि जल संचय अधिक हो तो शस्त्रक्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये और जल संचय मर्यादामें हो तो रससिंदूरको आरोग्यवर्द्धिनी, शृङ्गभस्म और लघुमालिनी वसन्तके साथ मिलाकर देना चाहिये। कफवृद्धि और ज्वर होनेपर रससिंदूर अच्छा उपयोगी होता है।

उरःक्षतमें यदि रक्त न पड़ता हो पीला दुर्गन्ध वासा कफ मात्र गिरता हो तो वासावलेह या अन्य व्रणरोपण औषधिके साथ रससिंदूर देनेसे शीघ्र क्षत भर जाता है ऐसे ही कीटाणुजन्य क्षय आदि रोगोंमें सुवर्णके वर्क और अभ्रकके साथ रससिन्दूर देनेसे कीटाणुओंका नाश होता है और शारीरिक शक्तिका रक्षण होता है। यद्यपि कीटाणुजन्य क्षयकी तृतीयावस्थामें उरःक्षत होनेपर किसी भी औषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु द्वितीयावस्था पर्यन्त या तृतीयावस्थाके आरम्भकालमें कफकी प्रधानता होनेपर सुवर्ण, अभ्रक भस्म ओर रससिंदूरसे लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थानपर रससिंदूरका उपयोग कीटाणुनाशक रूपसे होता है।

रससिंदूर हृदयके बलको बढ़ाता; रक्तभिसरण क्रियाको उत्तेजना देता और स्नायुओंको दृढ बनाता है। इस कारण जब हृदय बलके संरक्षणकी आवश्यकता हो तब अनेक रोगोंमें इसका उपयोग होता है।

विष्टब्धाजीर्ण या आमाजीर्णके कारण होनेवाले जीर्ण मन्दाग्नि रोगपर रससिंदूरका प्रयोग विशेष हितकर है एवं जीर्ण आमातिसार या जीर्ण-आमसंग्रहणीमें भी कफकी प्रधानता हो तो कुटजारिष्ट या अन्य ग्राही औषधियोंके साथ रससिंदूर देना लाभदायक है।

रससिंदूर कफ दोष, रस, रक्त ओर मांस ये दूष्य, एवं फुफ्फुस, श्वासवहिनी हृदय और आमाशय आदि कफ स्थानोंपर विशेष प्रभाव दिखाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको या पित्तप्रधान शुष्क कासमें या अन्य पित्तप्रधान रोगमें रससिंदूरका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुवारके रसकी भावना दें। आतशी शीशीमें भर

तीन दिन अग्नि देकर औषधि सिद्ध करें। इस रसायनको द्विगुण गन्धक जारित रससिंदूर कहते हैं। (र० च०)

तीसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक १६ तोले मिलाकर कज्जली कर बड़के अंकुरोंके क्वाथ या घीकुंवारके रसकी भावना दें। फिर कपड़मिट्टीकी हुई शीशीमें भर, ४८ घण्टे अग्नि देकर बालुकायन्त्रद्वारा तैयार करें। इस रसायनको समगुण गन्धक जारित रससिंदूर कहते हैं। (यो० र०)

(३) मल्लसिन्दूर

प्रथम विधि—शुद्धसोमल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले लें। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करें। फिर सोमलका बारीक चूर्ण मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् घीकुंवारके रसकी भावना दें, सुखा, आतसी शीशीमें भरें बालुकायन्त्रमें रख ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर औषधिको सिद्ध करें।

मल्लसिन्दूर बनानेमें बार-बार सावधानतापूर्वक शीशीका गला साफ करते रहना चाहिये। लगभग १२ घण्टे बाद जब गन्धकका धूंआँ बन्द होकर सोमलका धूंआँ निकलने लगे और तप्त शलाकासे वत्ती सफेद रंगको दीखे तब तुरन्त डाट लगा देवें। देर होगी तो सोमल उड़ जायगा और जल्दी होगी तो डाट धूंएके बलसे उड़ जायगा। डाट लगानेके पश्चात् २४ से ३६ घण्टेतक औषधिका विचार करके तेज अग्नि देनी चाहिये। जब तक गन्धकका धूंआ रहता है तब तक शीशीमें काला कीचड़ जैसा दिखाई देता है। गन्धक जल जानेपर ऐसा कीचड़ नहीं रहता। मल्लसिन्दूर काले चमकते रंगका और कठोर होता है। औषधिका पाक होते समय इसके धूंयेसे बचना चाहिये।

मात्रा—पावसे आधी रत्ती तक, दिनमें दो समय शहद और पीपलके साथ। अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार मल्लसिन्दूर वटी बनाकर प्रयोगमें लावें।

उपयोग—मल्लसिन्दूर श्वास, कास, सन्निपात, उन्माद, अपतन्त्रक, हिस्टीरिया, आमवात, बालकोंका डब्बारोग, विसूचिका, वातरोग, प्रमेह और सब प्रकारके कफ रोगोंका नाश करता है।

मल्लसिन्दूर तीक्ष्ण और उग्रवीर्य है। फुफ्फुस, वातवाहिनी और हृदयपर उत्तेजक असर पहुँचाता है। इस रसायनका उपयोग कफवृद्धि और आमवृद्धिसे उत्पन्न दोष और वातप्रकोपपर होता है। जब कफोल्वण सन्निपात, जीर्णश्वास या कासके तीक्ष्ण कफप्रकोपमें देश और ऋतुके प्रतिकूल होनेसे या प्रकृति निर्बल होनेसे मल्लभस्म या मल्लपुष्पको अधिक उग्रताके कारण न दिया जाय, वहांपर मल्लचन्द्रोदय और मल्लसिन्दूर देनेमें अधिक भय

नहीं रहता । मल्लसिन्दूर कफ और आमका शमन करके रोगको शांत भी कर देता है ।

ज्वर १०० डिग्रीसे अधिक न हो, सर्वांगमें प्रस्वेद, श्वासकी घड़-घड़, छातीमें कफसंग्रह, नाड़ीमें क्षीणता, तन्द्रावृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होने पर मल्लसिन्दूर दिया जाता है । यदि वाताक्षेपके झटके साथमें हों तो मल्लसिन्दूरके बदले पंचसूत देना चाहिये । इस तरह शुष्क कफ और श्वास हो तो समीरपन्नग हितकारक माना जाता है ।

उपदंशजनित पक्षाघात और अन्य हेतुसे उत्पन्न पक्षाघातमें वार-बार आनेवाले आक्षेपको रोकनेके लिये यह रसायन उत्तम लाभदायक है । इसके सेवनसे विप और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं जिससे झटके आनेमें प्रतिबन्ध होता है ।

हिस्टीरियापर—मल्लसिन्दूर, कस्तूरी, केशर, कुचिला, सफेदमिर्च और अकरकराके साथ देवें । ऊपर जटामांसीका अर्क पिलावें । इसी तरह इसके सेवनसे हिस्टीरियाका दौरा रुक जाता है ।

जीर्णपक्षाघातपर—मल्लसिन्दूर, शुद्ध कुचिला और असगन्ध को मिला कर दिनमें दो बार घी शहदसे देवें, ऊपर रास्नादि अर्क पिलावें ।

यह रसायन कीटाणुनाशक होनेसे रक्तमें रहे हुए जीर्णज्वर और परिवर्तित ज्वरके कीटाणुओंका नाश कर, ज्वरका शमन करता है । जीर्ण आमवातमें जब तीक्ष्ण प्रकोप न हो, ज्वर साधारण रहता हो, तब कोष्ठ शुद्ध करके मल्लसिन्दूर देना लाभदायक है । अजीर्णजनित, कीटाणु रहित विसूचिका और कीटाणुजन्य विसूचिकामें भी जब जीवनीय शक्तिके रक्षणकी आवश्यकता हो तब इस रसायनका उपयोग लाभदायक है । इसके सेवनसे हृदयमें उत्तेजना आती है, नाड़ीका वेग बढ़ता हैं, शीतलता कम होती है और आमाशयस्थ दोषकी निवृत्ति होती है ।

बालकोंके पसली रोगमें फुपफुस और श्वासनलिका कफसे बहुत भरे हों गलेमें कफ घर घर बोल रहा हो, किन्तु ज्वरकी कमी हो तो अन्य रोगशामक औषधिके साथ $\frac{1}{१६}$ रत्ती मल्लसिन्दूर मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है ।

सूचना—

१. पित्तप्रधान रोगमें इस रसायनका उपयोग न करें । ग्रीष्म ऋतुमें संभल कर प्रयोग करें ।
२. ज्वरकी उष्णता बहुत बढ़ी हो, तब यह रसायन न दें ।
३. वृक्क विकारके रोगी जिनको मूत्रशुद्धि न होती हो उनको यह रसायन नहीं देनी चाहिये ।
४. सोमलवाला धूआँ आँखको न लगे यह सम्हालें । जब तक गन्धक जलता

है तब तक सोमल नहीं उड़ता। गंधक जल जानेपर सम्हालना चाहिये।

५. मल्लसिंदूर बनानेके समय पारदके साथ पारदसे चौथा हिस्सा सूवर्ण मिलाया जाय तो मल्लचन्द्रोदय कहलाता है। मल्लचन्द्रोदय, सुवर्णके संयोगके कारण मल्लसिंदूरकी अपेक्षा कुछ सौम्य किन्तु अधिक प्रभाव शाली होता है। यदि मल्लचन्द्रोदयमें बुभुक्षित पारदके साथ सुवर्ण मिलाकर बनाया जाय तो वह मल्लचन्द्रोदय अधिक गुणदायी बनता है।

दूसरी विधि—शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले, शुद्ध गन्धक २० तोले और रसकर्पूर १० तोले मिला, कज्जली करके घीकुंवारके रसकी भावना देवें। पश्चात् सुखा, शीशीमें भर, उपरोक्त विधिसे बालुकायन्त्रमें ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर मल्लसिंदूर बना लेवें।

मात्रा—पावसे आध रत्ती, घृत और शहद या अदरकका रस और शहदके साथ।

उपयोग—उपदंश (फिरंग), पक्षाघात, कुष्ठ, रक्तविकार, फिरंग अनुबन्ध युक्त मृगी, सन्निपात, कफादिसह तमक श्वास, कास, जीर्ण प्रतिश्याय और सन्धिवात आदि सब प्रकारके वातरोगोंका नाश करता है।

पहिली विधिके मल्लसिंदूरकी औषधियोंके साथ रसकपूरको मिलाकर इस रसायनको तैयार किया है। अतः इस रसायनमें रसकपूरका गुण भी सम्मलित हुआ है। यह रसायन प्रलापक, भुग्ननेत्र, कफष्ठीवी आदि कफोल्वण सन्निपातमें नाड़ियों और फुफ्फुसोंके भीतर रहे हुए दूषित कफको बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाता है; कीटाणुओंका नाश करता हैं, तथा फुफ्फुस और हृदयको उत्तेजना देकर रोगका शमन करता है।

जब ज्वर कफप्रधान सान्निपातिक है, ऐसा निर्णय हो जाय; तभीसे योग्य अनुपानके साथ मल्लसिंदूरका प्रयोगकरनेसे सन्निपातकी सर्व अवस्थाओंमें रोगीको अधिक त्रास नहीं होता और सन्निपातका बल अधिक नहीं बढ़ता है परन्तु औषधि सेवनके साथ लंघन आदि पथ्याचारकी भी आवश्यकता है। कण्ठमें कफकी घर-घर आवाज थोड़ी-सी कास, नेत्र आधे खुले या नेत्रकी पुतली ऊंची चढ़ी हुई, तन्द्रा सी अवस्था, प्रलाप, भ्रम. बेहोशी, बेसुधी, बीच-बीचमें कुछ निद्रा लग जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों और ज्वर मर्यादामें हो तो मल्लसिंदूर देना चाहिये।

न्यूमोनिया और इन्फ्लुएञ्जाकी कफ संचयावस्थामें यह रसायन अधिक लाभदायक है। कफसञ्चय होनेपर जब फुफ्फुसोंकी अशक्ति या फुफ्फुसोंकी वातवाहिनियोंकी अशक्तिके हेतुसे कफको बाहर निकालनेमें त्रास होता हो तो ऐसी अवस्थामें इस रसायनका प्रयोग करना चहिये।

इन्फ्लुएञ्जाके अन्तमें फुफ्फुसोंके बलका क्षय होनेपर श्वासोच्छ्वास मन्द और मन्दतर होता जाता है। ऐसे समयपर मल्लसिंदूरका अच्छा उपयोग

होता है। मल्लसिंदूरसे हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना मिलती है एवं इन अवयवोंके नियंत्रण करने वाले वातवहानानाड़ीकेन्द्र और वातवाहिनियाँ भी उत्तेजित होती हैं, जिससे रोगीकी गिरती हुई हालत सुधरने लग जाती है। किन्तु पित्तकी प्रधानता होनेसे थूकके साथ रक्त गिरता हो और उदर में दाह, वमन आदि लक्षण हों, तो मल्लसिंदूर नहीं देना चाहिये।

ज्वर-वेग अधिक होनेपर इस रसायनका प्रयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर मस्तिष्कमें रक्तका दबाव अधिक हो जाता है।

यदि आँत्रिक सन्निपात (मोतीझरा)में न्युमोनिया या कफ-प्रकोप होकर प्रलाप, भ्रम, तन्द्रा आदि लक्षण हों तो १-२ मात्रा मल्लसिंदूरकी देनी चाहिये।

मल्लसिन्दूर उत्तम कफसंशोषक है। इस हेतुसे फुफ्फुसोंमें कफ संचय, श्वासोच्छ्वासमें घर-घर आवाज, श्वास ग्रहण या त्यागमें कष्ट, नाड़ी मन्द, कपालपर प्रस्वेद, हाथ-पैर शीतल, तन्द्रा, बेसुधि, नेत्रकी पुतली ऊपर चढ़ी तथा जिह्वाके जड़ होनेसे उच्चारण स्पष्ट न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो रोगीका जोवन अनिश्चित हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यदि उरस्थ कफमें न्यूनता हुई तो रोगीके बच जानेकी आशा है। यह कार्य मल्लसिंदूरसे होता है।

परिवर्तित ज्वरमें यदि समवायी कारण कफदोष हो, तो मल्लसिंदूरका सेवन करानेसे उसके कीटाणुओं (Spirochaeta Obermeieri) का नाश होकर रोग शमन हो जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

उपदंश और सुजाक रोगका शमन होनेपर भी उनके विषका असर रह जाता है; जिससे रक्तविकार, संधिवात, पक्षाघात, गुदशूक, नेत्रदाह, कुष्ठ, व्रण, आदि अनेक उपद्रव बार-बार होते रहते हैं। इन उपद्रवोंके मूल-कारण रूप विषको यह रसायन शमनकर देता है; जिससे शरीर निरोग बन जाता है।

सूचना—जब जीर्ण उपदंश आदि रोगोंमें इस रसायनको १५ दिनसे अधिक दिन तक सेवन करना हो, तब १५ दिनके बाद ५-७ रोज इस औषधिको बन्दकर प्रवाल आदि शीतल और विषनाशक औषधि सेवन करनी चाहिये। पश्चात् पुन: १५ दिन तक इस रसायनको लेवें। इस रीतिसे बीच बीचमें छोड़कर सम्हालपूर्वक लेवें। किसीको नेत्रपर सूजन, नेत्र लाली या दाह बढ़ जाय, तो इस औषधिको तुरन्त बन्द करें।

उपदंश और सुजाक रोगीको मल्लसिंदूरके साथ शिलाजीत भी दिया जाय तो विशेष हितकर है।

(४) तालसिन्दूर

विधि—शुद्ध हरताल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १०

तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुँवारके रसमें खरलकर सुखा; आतशी शीशीमें भर, बालुकायन्त्रमें रखकर ४८ घण्टेकी अग्नि देनेसे तालसिन्दूर तैयार होता है। तालसिंदूरमें मल्लसिन्दूरके समान १२ से १५ घण्टे बाद सफेद बत्ती दीखनेपर डाट लगाया जाता है। डाट लगानेके बाद ३६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनी पड़ती है। क्योंकि हरताल जल्दी नहीं उड़ती। तालसिन्दूरमें यदि पहिले पारेके साथ सुवर्णरज या सुवर्णके वर्क मिलावें तो वह तालचन्द्रोदय कहलाता है। (रसा० सा० संग्रह)

सूचना—घीकुंवारके रसकी भावना मूलग्रन्थमें नहीं है; परन्तु हितकर होनेसे हमने बढ़ाई है। गन्धक जल जानेपर डाट तुरन्त लगा देना चाहिये अन्यथा हरताल उड़ने लगती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती, अदरकका रस और शहद या घीके साथ लेवें। अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार लवंगादि तालसिन्दूर या मंजिष्ठादि तालसिन्दूर बनाकर उपयोगमें लेवें।

उपयोग—यह रसायन कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, रक्तविकार, त्वचादोष, शोथ, श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत, कफप्रधान जलोदर, विषमज्वर, परिवर्तित ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। इस रसायनमें मुख्य द्रव्य हरताल है। हरताल रस और विपाकमें कटु (चरपरी), स्निग्ध, कषाय रस वाली, कफघ्न, कण्डघ्न और कुष्ठघ्न है। हरतालके ये सब गुण इस रसायनमें आते हैं। यह तालसिन्दूर, ताल भस्म और तालपुष्पकी अपेक्षा कम उग्र होनेसे तालभस्म या तालपुष्पका उपयोग जहां न हो सके, वहांपर इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है। इस रसायनमें कुष्ठघ्न, कफघ्न और कण्डुघ्न गुण होनेसे कफप्रधान और कफवातप्रधान कुष्ठरोग, उपदंशज कुष्ठ रोग, उपदंशज अन्य उपद्रव रक्तविकार, सन्धिवात, वातरक्त, त्वचादोष आदिमें अच्छा काम देता है। एवं कफघ्न गुणके कारण, फुफ्फुस कोषोंके स्रोतोंमें कफ भर जानेसे जब हृदयकी मन्दगति, सारे शरीरमें शूल, अरुचि व्याकुलता और निर्बलता आ जाती है। तब यह रसायन अति लाभदायक है।

कफघ्न और जन्तुघ्न गुण होनेसे यह रसायन श्वास, कास और क्षयकी प्रथम या द्वितीयावस्थामें फुफ्फुस और स्रोतोंको शोधन, तापका शमन और कीटाणुओंको नष्ट करना, इन सब कार्योंमें सहायता पहुँचाता है। जब तक क्षयके प्रारम्भमें शुष्ककास हो तब तक इसे उपयोगमें नहीं लेना चाहिये। कदाच उपयोगमें लेना हो तो प्रवाल पिष्टी मिला लें तथा कफस्राव होनेपर तालसिन्दूरका उपयोग करना हो तब शृङ्गभस्म और मिश्रीके साथ देनेसे कफ और कीटाणुओंका नाश सत्वर होता है।

यह रसायन ज्वरघ्न जन्तुघ्न कफघ्न और उष्ण होनेसे शीतांग सन्नि-

पात बार-बार उलटकर आने वाले परिवर्तित ज्वर, तृतीयक चातुर्थिक आदि विषमज्वर और शीत सहित आने वाले जीर्ण ज्वरोंमें कीटाणुओंको नष्ट करता है; आम और दूषित कफको जला देता है तथा रक्तको निर्विष बना कर ज्वरको दूर करता है। एवं विष-निवृत्ति हो जानेपर जीर्णज्वरसे उत्पन्न वातप्रकोप, धनुर्वात, आक्षेप, शूल आदि लक्षण भी निवृत्त हो जाते हैं।

इस रसायनमें उष्ण, यकृद्बल्य और हृदयोत्तेजक गुण होनेसे यकृत् या हृदय-विकृतिसे उत्पन्न शोथ और जलोदर रोगमें इसे देनेपर हृदय और यकृत् क्रिया बढ़ जाती है। जिससे रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है और दुष्ट रसका शोषण हो जाता है।

उरः स्थानमें कफ संगृहीत होनेसे स्रोतोंका अवरोध हुआ हो; फिर उस हेतुसे हृदयकी क्रियामें मन्दता सारे शरीरमें शूल चलना, अरुचि, जिह्वापर श्वेत मलका आवरण, उबाक, हाथ पैर शून्य हो जाना, जड़ता, पैरोंमें भारीपन, हाथ पैरोंके तलोंकी शक्तिका ह्रास होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो तालसिंदूरका उपयोग किया जाता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

अनेक वातप्रकोप और कफप्रकोपके रोगियोंको जब वृक्कविकार होनेसे मल्ल सिन्दूर या मल्लमिश्रित अन्य औषधि सहन नहीं होती तब इस ताल-सिंदूरका सेवन कराया जाता है।

इस रसायनके सेवनकालमें भोजनमें घी अधिक लें। मिर्च, तेल, नमक, गुड़ और खटाईका त्याग करें। कुष्ठरोगमें नमक और दूधका भी निषेध है। शोथ रोगमें नमक नहीं देना चाहिये।

(५) शिलासिन्दूर

विधि—शुद्ध मैनसिल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुंवारके रसकी भावना दे, सुखा आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रखें, २।। दिन अग्नि देकर मल्ल-सिन्दूरमें लिखी विधिमें शिलासिन्दूर बना लेवें। शलाकासे सफेद बत्ती दीखनेपर डाट लगावें। फिर ३६ घण्टे तक अग्नि तेज देवें। स्मरण रखें कि मैनसिल अत्यन्त कठोर पदार्थ होनेसे मन्दाग्नि देनेसे नहीं उड़ता। इस औषधिमें सुवर्ण वर्क या सुवर्ण रज मिलानेपर शिलाचन्द्रोदय कहलाता है। शिलासिन्दूरका रंग कालसयुक्त चमकदार होता है। (आ० नि० मा०)

मात्रा—एकसे दो रत्ती, शहदके साथ देवें या शिलासिन्दूर वटी बना कर उपयोगमें लेवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे श्वास, कास, मेद, कुष्ठ, विसर्प, कण्ठ माल, रक्तविकार आदि दोष दूर होते हैं।

इस रसायनमें मुख्य औषधि मैनसिल है। मैनसिल गुरु, वर्ण्य, सारक,

उष्ण, लेखन, कटु (चरपरे) विपाकवाला, तिक्त (कडुवा) और स्निग्ध है तथा विष, श्वास, कास, भूतबाधा और रक्तविकारनाशक है। ये सब गुण इस रसायनमें प्रतीत होते हैं। इसमें कटु, लेखन, कफघ्न गुण होनेसे मेदका शमन होता है तथा नाड़ियोंमें रहे हुए कफको जलाकर श्वास और कासको दूर करता है।

मेदोवृद्धि होनेपर उदर्य्याकलापर मेदका अत्यधिक संग्रह हो जाता है। थोड़ा सा चलनेपर श्वास भर जाता है; प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आती है, क्षुधा और तृषाके वेगको सहन करनेकी शक्तिका ह्रास हो जाता है तथा आलस्य और निद्रा बढ़ जाते हैं। उसपर रसायनके सेवनसे पचनक्रिया सबल बनती है; शनैः शनैः मेद पचन होता है और रोग निवारणमें सहायता मिल जाती है। रोगीको चाहिये कि भोजनमें घी, शक्कर और चावल यथा संभव परिमाणमें कम करें, बार-बार भोजन न करें, तथा शक्ति अनुसार शारीरिक श्रम (घूमना फिरना या और कुछ कार्य करना) चालू रखें।

इस रसायनमें कीटाणुनाशक और विषघ्न गुण होनेसे यह कण्ठमाल, अपची, रसौली, विसर्प, कफप्रधान कुष्ट व्यूची, रक्तवाहिनियोंमें स्थान-स्थान पर रक्त जम जाना, रक्तविकृति और त्वचाविकृति आदि व्याधियोंमें लाभदायक है। इसके सेवनसे कण्ठमाल, कुष्ठ आदिके कीटाणु नष्ट होते हैं; विष की निवृत्ति होती है; दुष्ट कफ और दुष्ट आमका शोषण होता है। तथा रक्त का प्रसादन होकर उक्त रोगोंका शनैः शनैः निवारण होता है। कण्ठमाल अपची और गलगण्ड रोग बहुत पुराने न हुए हों; जब तक रक्तमें विष-प्रकोप अत्यन्त न हो गया हो; तब तक ओषधियोंसे लाभ होता है। रोग अति बढ़ जानेपर बहुधा औषधि सेवन करनेपर भी उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

यह रसायन उत्तेजक जन्तुघ्न, सारक और स्निग्ध होनेसे आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत आम, जन्तु और विषको नष्ट करता है एवं अन्त्रशक्ति को सबल बनाकर कोष्ठबद्धताको दूर करता है। इसमें भूतबाधाशामक गुण होनेसे वातवाहिनियोंके क्षोभसे होनेवाले उन्माद रोगमें रोगशामक अन्य औषधियोंके साथ शिलासिन्दूरको मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(६) माणिक्य रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध शीशा ८-८ तोले लें। शीशेको कड़ाहीमें गलाकर पारा मिलावें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मैनसिल मिला ६ घण्टे खरलकर घीकुंवारके रसकी भावना देवें। सूखनेपर आतशी शीशीमें भर, बालुकायन्त्रमें रखकर २।

दिन अग्नि देवें। स्वांगशीतल होनेपर शीशीके गलेमें लगे हुए माणिक्यके समान लाल रंगके सिन्दूरको निकाल लेवें। (र० चं०)

सूचना—कितने ही ग्रन्थकारोंने इस रसायनमें हरताल भी मिलायी है। हम बिना हरताल मिलाये तैयार करते हैं। नीचे जो शीशा भस्म बच जाती है, उसे अधिक पुट देकर उत्तम नागभस्म बना लेते हैं।

मात्रा—आधसे एक रत्ती, मक्खन और मिश्री, शहद या नागरबेलके पान अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन क्षय रोगमें ज्वर और कास दूर करके शरीरका वजन और बल बढ़ाता है। एवं कास, श्वास, धातुक्षीणता आदि रोगोंको भी दूर करता है। इसके सेवनसे शुक्रस्तम्भन होता है; विविध रोग दूर होते हैं, राजयक्ष्मा नष्ट होता है और वृद्धोंको भी शक्ति मिलती है।

शुष्क कास जो बार-बार आध-आध घण्टे तक आती रहती है; जिसमें कफ सरलतासे नहीं निकलता और रात्रिको सोनेके समय रोगीको त्रास पहुँचता है; उसपर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रसायनके योगसे कफ सत्वर छूट जाता है। उरस्तोयमें फुफ्फुस आवरणके भीतर जल भरना, शुष्क कास होना और ज्वर बढना आदि लक्षणोंको शमन करता है। क्षय रोगमें कफको पतलाकर सत्वर बाहर निकालता है और बढ़े हुए ज्वरको कम करता है।

यकृत् पित्तका अम्लत्व गुण बढ़नेपर यकृत्में पीड़ा, पित्तका स्राव, पतले दस्त, मूत्रका कम होना, मुँहमें छाले, ज्वर आना इत्यादि लक्षण होते हैं। ये सब इस रसातनके सेवनसे दूर होते हैं।

वृद्धावस्थामें बहुमूत्र बहुधा वातवाहिनियोंकी विकृतिके कारण होता है। मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व (Specific Gravity) कम होनेसे बार-बार थोड़ा-थोड़ा पीले रंगका पेशाब होता रहता है; विष या क्षार रक्तमें शेष रहता है; जिससे शरीर निर्बल बनता जाता है। यह विकार इस रसायनके सेवनसे शांत होजाता है। कारण, इस औषधिके योगसे मूत्रपिण्ड; मूत्रवहनलिका और मूत्रवह स्रोतोंको उत्तेजना मिलती है; वातवाहिनियाँ सबल बनती हैं और योग्य परिमाणमें क्षारका निःसरण होता है।

इस रसायनका कार्य उत्तेजक और शक्तिवर्द्धक होनेसे वृद्ध और निर्बलोंके लिये यह है। अमृतरूप यह रसायन कफ और वात दोष; रस, रक्त और मांस, ये दूष्य; तथा यकृत्, फुफ्फुस, आमाशय, वातवाहिनियाँ और मूत्रस्थान, इन सबपर विशेष असर पहुँचाता है।

(७) सुवर्णवङ्ग

विधि—शुद्ध कलई ५ तोले, शुद्ध पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले,

नौसादर ४ तोले और कलमोशोरा १ तोला लेवें। पहिले कड़ाहीमें कज़ईका रस करके पारद मिलावें। फिर सैंधानमकका जल मिलाकर दो दिन खरल करनेके बाद ५-७ बार जलसे धो, क्षारका अंश निकालकर सुखा दें। पश्चात् गन्धक मिलाकर कज्जली करें। तत्पश्चात् नौसादर और शोरा मिला खरल कर आतशी शीशीमें भरें। फिर बालुकायन्त्रमें रख २४ घण्टे अग्नि देकर औषधि तैयार करें। शीशीके गलेमें पहिले क्षार लगता है; इसलिये सावधानतापूर्वक बार-बार तप्त शलाकासे गला साफ करते रहें। ८-१० घण्टेमें गन्धक जारण हो जानेपर डाट लगाकर १६ घण्टे अग्नि देनेसे औषधि तैयार हो जाती है। इस सुवर्ण वंगको मस्क मृगांक भी कहते है। शीशीको तोड़नेसे पैंदेमेंसे सुवर्णके समान केशरिया पीला, तेजस्वी, हलके वजनवाला सुवर्ण वंग और गलेमेंसे क्षार ओर वंगसिन्दूर मिलेंगे। ये तीनों औषधियां उपयोगमें आती हैं। (रसा० सा० सं०)

सूचना—सुवर्ण वंगको अग्नि अधिक तेज नहीं देनी चाहिये, अन्यथा शीरेमे अग्नि लग जाती है। जिससे वंग जलकर काली हो जाती है। कदाच भूलवश अग्नि लग जाय तो तुरन्त शीशीके मुंहपर दो चार मिनटके लिये डाट लगा देना चाहिये जिससे अग्नि बुझ जायगी।

यदि गन्धक जीर्ण होनेपर शोरा डालें, तो बोतलमें अग्नि लगनेका भय नहीं रहता। इस रसायनका रंग गिन्नी गोल्ड जैसा कुछ लाल प्रभायुक्त पीला होता है। यदि रंग शुद्ध सुवर्ण जैसा पीला बनाना हो तो सुवर्ण वंग को कपड़ेमें रख गरम जलमें डुबो, तुरन्त निकाल फिर सुखा देवें। इस प्रकार धोनेपर रंगमें कुछ न्यूनता आती है किन्तु क्षार निकल जानेसे गुण वृद्धि भी होती है।

सुवर्णवंग काली हो जाय तो उसे २-४ बार जलसे धो, सुखा, पुनः कज्जली नौसादर मिला, विधि अनुसार बना लेवें।

मात्रा—२ से ३ रत्ती। शहद मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह औषधि बल्य, प्रमेहघ्न, कान्ति, मेधा तथा अग्नि-बलको बढ़ाने वाली है। मधुमेह, प्रमेह, स्वप्नदोष, खाँसी धातुक्षीणता आदि दोष दूरकर शरीरको बलवान् बनाती है। क्षार, शहदमें देनेसे सूखी खांसी गीली हो जाती है तथा मन्दाग्नि, यकृत्दोष और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं। वंगसिंदूर मलाई या मक्खनके साथ देनेसे कास और श्वासको दूरकर शरीरको पुष्ट बनाता है।

वंग भस्मकी अपेक्षा सुवर्णवंगका रंग तो सुन्दर है और संसारमें महिमा भी बहुत गाई है; परन्तु हमें सुवर्ण वंगके गुणमें वंग भस्मकी अपेक्षा विशेषताका अनुभव नहीं हुआ, ऐसा रसयोगसागरकारका कथन है। हमें भी वैसा ही अनुभव मिला है। इसके विरुद्ध औषधगुणधर्मशास्त्रका लेख है।

सत्य क्या है? इस बातका निर्णय चिकित्सक वर्ग ही करेंगे ।

इस सुवर्ण वंगका उपयोग जीर्ण पूयमेहमें अच्छा होता है । पूयमेहके लीन विषको यह दूर करता है और अपने रसायन गुणके हेतुसे शरीरको सबल बनाता है । एवं पूयमेहयुक्त उपदंश, नपुंसकता, चर्मविकार आदिको भी दूर करता है ।

यह सुवर्ण वंग रक्तमें संचित विषको मूत्रद्वारा बाहर निकाल देती है । मूत्रेन्द्रिय और मूत्रयन्त्रको बलवान् बनाती है तथा मूत्राशय विकृतिको शनैः शनैः दूर करती है । पचनेन्द्रियमें विकार होनेपर सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है एवं वृक्कयन्त्र निर्बल हो जानेपर विष बाहर नहीं निकल सकता । परिणाममें बहुमूत्र या प्रमेह (मधुमेहके अतिरिक्त प्रमेह) हो जाते हैं । फिर रोगी शनैः शनैः गलता जाता है । इनपर विषकी उत्पत्ति रोकने और संचित विषको बाहर निकालने वाली औषधि देनी चाहिये । ये दोनों कार्य इस रसायनसे होते हैं । यदि भूलसे स्तम्भक औषधि दे दी जाय तो लाभके स्थानपर हानि पहुँचती है ।

प्रमेह और पूयमेह दोनों रोगोंकी प्रतीति मूत्रस्थानमें होती है; परन्तु दोनोंमें अति भिन्नता है । मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग कराने वाले अवयवोंमें निज दोष विकृति होनेपर प्रमेह रोगकी उत्पत्ति होती है और पूयमेहकी प्राप्ति अण्डाकृति कीटाणु गोनोकोकस (Gonococcus) द्वारा होती है । यह पूयमेह किसी स्त्री या पुरुषको होनेपर उससे संसर्ग करने वाले अन्य स्त्री पुरुषको हो जाता है । इस व्याधिमें मूत्रनलिकाके भीतर प्रदाह, शोथ, व्रण और पूयोत्पत्ति हो जाती है । इसकी तीव्रावस्थामें तो इस औषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु पूयकी कमी होनेपर इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है । आंतरिक क्षतिकी पूर्ति होती है तथा दाह, हाथ पैर टूटना, मूत्रावयवमें जलन और व्याकुलता आदिकी निवृत्ति होती है ।

जीर्णावस्थामें सुवर्ण वंग, प्रवालपिष्टी, शिलाजीत, गन्धाविरोजा और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें दो बार देते रहनेसे विष शमन होकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो जाती है । यदि पूय बिल्कुल न आता हो तो सुवर्ण वंग, रौप्यभस्म वंशलोचन और अमृतासत्व मिलाकर मलाई-मिश्रीके साथ दिया जाता है ।

यह रसायन पूयमेह युक्त उपदंशकी द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें अच्छा उपयोगी होता है । इसके साथ अष्टमूर्ति रसायन या मल्लसिंदूर (दूसरी विधि) की योजना करनी चाहिये । इसके सेवनसे शरीरपर उत्पन्न पिटिकाएं और धब्बे जल्दी अच्छे हो जाते हैं । प्रथमावस्थामें तो पारद भस्म, अमीररस और व्याधिहरण रस विशेष हितकारक है तथा द्वितीय और तृतीयावस्थामें जब विकार अस्थि तक पहुँच जाता है तब अष्टमूर्ति रसायन और

उपदंश सूर्य विशेष हितकर माने जाते हैं। उस समय सुवर्ण वंगसे लाभ नहीं होता। परन्तु जीर्ण लीन उपदंश विकारमें सुवर्ण वंगको सारिवा और मञ्जिष्ठादि क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है।

अन्य प्रकारके विषसे उत्पन्न चर्मरोगोंमें सुवर्णवंगका अच्छा उपयोग होता है। इस हेतुसे पुराना पामा रोग, बार-बार होने वाले व्रण, प्रस्वेद स्रावयुक्त व्युची, अरुंषिका आदि त्रासदायक और जमकर बैठे हुए त्वचा रोगोंमें इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकारके रोगोंमें ७ दिन तक देवें। फिर ७ दिन छोड़ दें। पुनः ७ दिन दें और ७ दिन बन्द करें। इस तरह औषध देते रहना चाहिये। एवं कोष्ठशुद्धिके लिये एरण्ड तैल या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये। कितने ही पूयमेहके रोगियोंको नपुन्सकता की प्राप्ति होती है। यह नपुन्सकता इस सुवर्ण वंगके सेवनसे दूर होती है।

सुवर्ण वंग सन्धिवातपर उत्तम औषध है। संधिवात और आमवातमें महदन्तर है। पूयमेह, उपदंश दंतवेष्ठ (Pyorrhoea) आदि विकारोंमें उत्पन्न सन्धिवातमें पूय हेतु है तथा आमवातमें आम हेतु है। आमवातमें महायोगराज गूगल, रास्नादि कषाय, श्योनाक छाल आदि आम नाशक औषधियां लाभदायक हैं। सन्धिवातमें पूयनाशक गुणप्रद सुवर्णवग उपयोगी है। यदि पूयमेहका रोग जीर्ण होनेपर शोथ उत्पन्न हुआ हो तो वह भी इस औषधके सेवनसे निवृत्त होता है। इस तरह पूयमेहसे उत्पन्न नेत्रके पूयाभिष्यन्द रोगमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

सुवर्णवंगका उपयोग पित्तप्रधान कासमें उत्तम होता है। सूखी खांसी, कंठमे दाह, खांस-खांसकर वमन हो जाना, नेत्र, कण्ठ और नाकमेंसे स्राव होना, दाह, चक्कर, स्वरयन्त्र, ग्रसनिका, उपजिह्वा, मुखके आगेका हिस्सा ये सब लाल हो जाना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्णवंगको आमके मुरब्बेके साथ देनेसे सत्वर लाभ होता है।

किसी भी स्थानमें वात या पित्तकी दोषज वृद्धि, विशेषतः पित्तज वृद्धि होनेपर वगेश्वर बहुत अच्छा काम करता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थिकी वृद्धि होनेपर भी वंगेश्वर दिया जाता है।

धातु परिपोषण-क्रममें शरीरकी क्षतिकी पूर्ति करना यह मुख्य कार्य है। नित्य होनेवाले शारीरिक व्यापारसे जो क्षति होती है, वह धातुके उत्पादन द्वारा पूर्ण होती है। इस तरह धातुसाम्य बना रहता है। इसी साम्यपर आरोग्यका आधार है। परन्तु कभी कभी अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंसे इस न्यूनताकी पूर्ति नहीं होती, है, बल्कि अधिकाधिक ह्रास होता जाता है। इस तरह शरीरस्थ रक्त आदि धातुओंका परिमाण भी न्यून होने लगता है। प्रति

दिन उत्पत्ति कम और नाश अधिक होते रहनेसे देह शुष्क हो जाती है । इस स्थितिके अनेक कारण हैं । जो कारण हो, उसे निर्णीतकर दूर कर देना चाहिये । परन्तु जब कोई निश्चित कारण नहीं मिलता और शरीर कृश होता जाता है तब सुवर्णवंग देना, यह उत्तम मार्ग है । इससे शारीरिक व्यापार नियमित बनता है और शारीरिक कृशता कम होने लगती है । इस दृष्टिसे यह रसायन-जीवनीय औषध है ।

इस रसायनके साथ शिलाजतु, लोहभस्म, प्रवालपिष्टी मिश्रित करनेका भी रिवाज है । इनके मिश्रणसे अच्छा लाभ होता है । तथापि इनकी अपेक्षा वङ्गेश्वरको स्वतन्त्र देना विशेष हितकर है ।

सुवर्णवंग शक्तिवर्द्धक धातु-परिपोषण-क्रम नियमित करने और सुधारने वाली, पूयनाशक, जीर्ण सुजाक और उपदंशमें लाभदायक है, एवं यह मूत्रेन्द्रियको निर्विष बनाती है ।

यह रसायन पित्त, वात ये दोष, रक्त-माँस ये दूष्य तथा मूत्रेन्द्रिय जननेन्द्रिय, मूत्राशय और वृक्क स्थानपर लाभ पहुँचाता है । (औ. गु, ध, शा.)

श्वेतप्रदर जनित निर्बलता आने तथा पाण्डुता और उष्णता रहनेपर सुवर्ण वंग, सुवर्णमाक्षिक भस्म और गोदन्ती भस्म मिलाकर मधुकाद्यवलेह के साथ देनेसे प्रदर और उससे उत्पन्न सब उपद्रव दूर हो जाते हैं ।

कास रोगमें कफको बाहर निकालनेके लिये सुवर्णवंग, वासाक्षार, मुलहठी और बहेड़ेके चूर्णके साथ दी जाती है । एवं बार-बार कास आती रहती हो तो जहरमोहरा पिष्टी और लोहवान पुष्पके साथ देनेके सत्वर लाभ पहुँचता है । अग्निमांद्य, घबराहट, कफकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये पीपलामूल और शहदके साथ देनेसे रात्रिको त्रास कम हो जाता और घबराहट दूर होती है ।

त्वचागत वायु कुपित होनेपर चर्मकील रोग हो जाता है । इसके मस्से त्वचाके रंगके कठिन, छोटे छोटे और कभी-कभी समीप-समीप अनेक हो जाते हैं । फिर रोगी दीर्घकाल तक उपचार नहीं करते । ऐसे जीर्ण रोगपर पीलूके पानोंकी पुल्टिस या लेप लगाते रहनेके साथ सुवर्णवंग ½ रत्ती यवक्षार और त्रिफला चूर्ण २-२ रत्ती मिला दिनमें २ बार भोजनके बाद देते रहनेसे सत्वर लाभ हो जाता है । यदि नये-नये उत्पन्न होते हैं तो वे बन्द हो जाते है ।

दूसरी विधि—नौसादर, सैंधानमक और पारद तीनों औषधियाँ ५-५ तोले मिला खरलकर डमरुयन्त्रमें बन्द करें । फिर ४ प्रहरतक अग्नि देवें । स्वांग शीतल होनेपर यन्त्रको खोलकर ऊपर लगे हुए पारद मिश्रित नौसादर फूलोंको ले लेवें । इन फूलोंके बराबर शुद्ध कलईका रेतेसे किया हुआ

चूर्ण (या भस्म) और दोनोंके बराबर शुद्ध गन्धक मिलाकर कपड़मिट्टीकी हुई आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् बालुका यन्त्रमें रखकर १। से २ दिन तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर सुवर्णके सदृश सुवर्ण वंग (मृगांक) को निकाल लेवें कितने ही ग्रन्थकारोंने इसे 'मस्क मृगांक' और 'सुवर्णराज वङ्गेश्वर' नाम भी दिया है। (र० यो० सा०)

मात्रा—२-२ रत्ती इलायचीके चूर्ण और शहदके साथ।

उपयोग—किसी ग्रन्थकारने लिखा है कि यह भस्म सुवर्ण भस्मसे सौगुना लाभ पहुँचाती है। यह वृष्य, आयुवर्द्धक और कामोत्तेजक है। सब प्रकारके प्रमेह और मधुमेहका नाश करती है।

(८) समीरपन्नग रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोमल, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध हरताल प्रत्येक १०-१० तोले लेकर कज्जली करें। फिर तुलसीके रस या घीकुंवारके रसकी तीन दिन तक भावना देकर सुखा आतशी शीशीमें भरकर ५० से ६० घण्टे तक अग्नि देनेसे काला तेजस्वी और कठोर समीर-पन्नग रस शीशीके गलेमें तैयार होता है। लगभग १६ घण्टे तक मन्दाग्नि देनेसे गन्धक जारण होता है। फिर डाट लगाकर ३६ घण्टे तेज अग्नि देनी पड़ती है। मूल ग्रन्थकारने ८ प्रहर तक क्रमाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनानेको लिखा है। (औ० गु० ध० शा०)

वक्तव्य—कितने ही चिकित्सक २॥ तोले स्वर्ण वर्क मिला ४८ घण्टेकी मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनाते हैं। उसे सुवर्ण समीरपन्नग कहते हैं। उससे सुवर्ण मिल जाने और मन्दाग्निपर पाक होनेसे रसायनकी उग्रता विशेष नहीं होती। उपयोग करनेपर वह विशेष गुणदायक विदित हुआ है। यदि पारद पक्षच्छेदित और बुभुक्षित किया हुआ इस प्रयोगमें मिलावे तो तत्क्षण गुणदायक बनता है।

मन:शिला तलस्थ समीरपन्नगमें मिलाना चाहिए। कण्ठस्थ बनाना हो तो न मिलावें अन्यथा कुछ औषधि कण्ठस्थ और कुछ तलस्थ रह जाती है।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक। दिनमें २ से ३ समय, नागरबेलके पानमें या अदरकके रस और शहदके साथ। श्वासावरोध या श्वासमें कफस्राव करानेके लिये वासाके पत्ते, मुलहठी, बहेड़ा भारङ्गी और मिश्रीके क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन त्रिदोष और निमोनियामें घबराहट, सन्धिवात, उन्माद, कास, श्वास, ज्वर, जुकाम आदि रोगोंको शान्त करता है। इसमें सोमल, हरताल और मैनसिल मिलाया है। ये तीनों अत्यन्त उग्र और उष्णवीर्य हैं। तीनोंमें भी सोमलकी ही प्रधानता है; फिर भी मल्लभस्म,

मल्लपुष्प और मल्लसिन्दूरकी अपेक्षा यह रसायन कम तीव्र है। जहां मल्ल-भस्म देनेसे हानि होनेका भय रहता है वहांपर समीरपन्नग देनेमें अधिक भय नहीं है।

इस रसायनमें सोमल मिला हुआ है, तथापि इस रसायनकी बढ़ी मात्रा देनेपर (सोमलका परिणाम अधिक हो जानेपर भी) विषविकारके लक्षण प्रतीत नहीं होते। उग्रताको यह न्यूनता रासायनिक सम्मिश्रणसे होती है। समीरपन्नग, मल्लसिन्दूर और पंचसूत तीनों सोमल प्रधान औषध है। अतः तीनों वीर्यवान हैं, तीनोंके गुण धर्ममें साधर्म्य है और वैशिष्ट्य भी। मल्ल-सिन्दूर अत्यन्त तीक्ष्ण, विस्फोटकारी और श्लैष्मिककलापर उग्रता उत्पादक है। पंचसूतमें मल्लसिन्दूरकी अपेक्षा तीक्षणता न्यून है और श्लैष्मिक कलाको कम हानि पहुँचाता है तथा संचित कफका शोषण करके रूपान्तर कराता है। समीरपन्नग मल्लकल्प होनेपर भी दोनोंकी अपेक्षा कम तीव्र गुणयुक्त, कम स्फोटोत्पादक और कम दाहक है।

समीरपन्नग श्वासवाहिनियों और फुफ्फुस कोषोंके भीतर श्लैष्मिककला पर शोथ न लाकर कफका स्राव कराता है और दोष निकल जानेपर उस स्थानके घटकोंको सशक्त बनानेमें सहायक होता है।

समीरपन्नगके प्रयोगसे श्वासनलिकाके अन्तरमें उत्पन्न हुए व्रण कफात्मक या वातात्मक होनेपर, कफस्राव कराकर उसे नष्टकर देता है। इस हेतुसे जीर्णकास या कफाधिक विकारमें वात और कफकी प्रधानता होने पर समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

मल्लसिन्दूरसे कफका शोषण होता है; कण्ठ और श्वासवाहिनियां शुष्क हो जाते हैं। पंचसूतसे संचित कफमेंसे दुर्गन्ध कम होती है। जल द्रव्यका रूपान्तर होकर कफ कम हो जाता है। समीरपन्नगसे श्वासवा-हिनियाँ और फुफ्फुस कोष उत्तेजित होते हैं; कफ छूटकर कफस्थानकी शुद्धि होती है। इस हेतुसे जिस स्थानपर कफस्राव कराना इष्ट हो; उस स्थानपर और कफवातज कास-श्वासमें समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

यदि उरस्तोय और कुक्षिशूल हों तो वहाँपर समीरपन्नगकी अपेक्षा पञ्चसूत अधिक हितकारक है। कारण; उरस्तोयमें संचित द्रव्यका रूपान्तर और संशोषण करानेके महत्वका गुण जैसा पंचसूतमें है वैसा समीर-पन्नगमें नहीं है।

वातकफभूयिष्ठ श्वास रोगमें समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है। पंचसूतका अधिक उपयोग नहीं होता है। ऐसे श्वासमें समीरपन्नग देनेपर तत्काल कफस्राव होने लगता है। इसके लिये समीरपन्नग ½ से १ रत्ती और सोहागेका फूला ३ रत्ती मिलाकर शहदके साथ देवें। ऊपर मुलहठी, बहेड़ा, मिश्री और अडूसेके पत्तेका क्वाथ पिलावें। आवश्यकतापर क्वाथ आधा-

आधा घण्टेपर २-३ बार देवें। यह क्वाथ वेग शामक और कफस्राव कराने वाला है। यह क्वाथ रसायनके साथ सम्मिलित होनेसे कफ जल्दी-जल्दी निकलने लगता है और श्वासका वेगशमन हो जाता है। तीक्ष्ण वेगशमन होनेपर फिर इसे नागरवेलके पानमें देनेसे आँतरिक शक्ति सबल बनती है।

समीरपन्नग उत्तेजक और बलवर्द्धक होनेसे पण्डु और विषमज्वरके पश्चात् आयी हुई निर्बलतामें अति कम मात्रा ($\frac{1}{2}$ रत्ती) में दिनमें दो बार लोहभस्मके साथ मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचाता है।

जीर्णकासमें अनेक प्रकार हैं। कितनेही व्यक्तियोंको यह विकार वर्षा-ऋतुमें उत्पन्न होता है। कितनों ही को शीतकालमें और किसी-किसीको उष्णऋतुमें हो जाता है। जैसे कारण हो, उनके अनुरूप दोष प्रकुपित होते हैं। कभी व्याधि कुछ काल तक शमन हो जानेका भास होता है। दोष धातुओंमें लीन हो जाता है, जिससे पुनः पुनः विवक्षित दोष-प्रकोप कालमें उनके लक्षणोंसे युक्त होकर आक्रमण करता है। उदाहरणार्थ-शीतलवायुमें रहना, लूणेवाले मकान अर्थात् जिनकी दीवारोंसे लवण निकलता रहता हो, ऐसे स्थानमें या सीलयुक्त मकानमें रहना आदि कारणोंसे कफभूयिष्ठ कास हो जाती हैं। इस प्रकारकी कास तत्काल कम हुई तो अच्छा; अन्यथा दोष लीन हो जाता है। फिर सामान्य प्रतिकूलता होनेपर (रोगको अनुकूलता मिलनेपर) रोग बार-बार आक्रमण करता रहता है। इस हेतुसे मकान सदोष हो तो मकानका त्यागकर देना चाहिये अन्यथा वर्षाकी शीतल वायु लगनेपर एवं शीतकालमें वर्षा होनेपर बार-बार व्याधि त्रास देती रहती है; शनैः शनैः रोग जीर्ण होता जाता है और जीवनीय शक्तिको निर्बल बनाता है। फिर चाहे स्थान परिवर्तन करें चाहे जितना पथ्यपालन करें तो भी रोगसे मुक्ति नहीं मिलती। क्योंकि दोषका अत्यन्त सूक्ष्म अंश बीजरूपसे देहमें दृढ़ हो जाता है। यथार्थमें जिस समय पहिली बार दोष दुष्ट होकर कासोत्पत्ति हुई है; उसी समय इन सबका विशिष्ट सम्मिलन हुआ है। फिर इस सम्मिलनके अनुरोधसे दोष-दूष्य संयोगका परिणाम शारीरिक घटकपर होता है; इसी हेतुसे बार-बार समान लक्षण उपस्थित होते रहते हैं।

विपरीत कारणोंसे उत्पन्न हुई शारीरिक परिस्थितिमें दोष-दूष्य संयोग दबा हुआ रहता है। परन्तु उसके बीजोंको थोड़ीसी अनुकूलता मिलनेपर अपना प्रभाव दर्शादेते हैं।

जिस तरह घासके बीज ग्रीष्मऋतुके तापसे या अग्निसे जल जानेपर भी वर्षा ऋतुमें पुनः सजीव हो जाते हैं उसी तरह इस रोगके बीज भी पुनः रोग स्वरूपको धारण करते रहते हैं। इस दृष्टिमें यह रोग प्राकृतिक बन जाता है। प्राकृतिक रोग अनेक हैं। इनमें जीर्ण कास अति त्रासदायक

है। कफस्थानका स्वभाव कफस्राव करानेका हो जानेपर बार-बार श्लैष्मक कलामेंसे कफस्राव होता रहता है। जीर्ण कासविकारमें श्वासनलिका, श्वास प्रणालिका, श्वासवाहिनी जाल और फुफ्फुसकोषगत श्लैष्मिक त्वचा, ये सब दुष्ट हो जाते हैं। श्लैष्मिक कलामें कुछ उग्रता आती है या सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रण होते हैं। अतः कफ संचय होनेपर उपचार करनेसे कफस्राव हो जाता है और किञ्चित् काल स्वस्थता भ्रम होता है। किन्तु रोगबीज जैसाका वैसा ही सुप्तावस्थामें रह जाता है। ऐसी स्थितिमें बीजको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्राकृतिक रोगके अन्य भी अनेक प्रकार हैं। इनमेंसे एक चर्मरोग भी है। कितने ही कण्डू, पामा, व्यूची, दाद, चर्मदल, विस्फोटक, पिटिका आदि पीड़ित रोगियोंको बाल्यावस्थामें उत्पन्न चर्मरोग समग्र जीवन पर्यन्त त्रास देता रहता है। कभी कभी रूपमें एक स्थानमें होता है तो दूसरी बार दूसरे रूपमें अन्य स्थानपर हो जाता है। इनकी खुजानेकी रीति, चलनेकी शैली, मन्दता, अस्थिरता, मानसिक चंचलता और बर्तावमें कुछ उतावला-पन भासता है। ऐसे जीर्ण रोगमें एक प्रकारकी विशिष्टता प्रतीत होती है। वह यह है कि कास और चर्मरोग क्रमशः आक्रमण करते रहते हैं। जब तक त्वचासबल है; तब तक कास कम रहती है या बिल्कुल नहीं रहती। फिर चर्मरोग दब जानेपर आंतरिक दोषसे कफभूयिष्ठ विकार बलवान् बन जाता है। त्वचापर स्फोट रूपसे उत्पन्न होने वाले लक्षण और भावी कफके लक्षण, दोनों एक ही प्रकारके दोष-दूष्य विकृतिसे उत्पादित होते हैं। इस तरह कफ और कफवात प्रकोपसे उत्पन्न इन विकारोंमें समीरपन्नग अच्छा उपयोगी है। समीरपन्नग दिनमें एक बार ही देना चाहिए; और अन्य कोई भी औषध नहीं देनी चाहिए। अन्य औषध मिला देनेसे समीरपन्नगके कार्यमें प्रतिबन्ध होता है।

यह रसायन उपदंश या पूयमेहके उपद्रवरूप सन्धिवात, रक्तविकार, त्वचारोग, जीर्ण पक्षाघात और अन्य उपद्रवोंका नाश करता है। अर्दित, जिह्वास्तम्भ, धनुर्वात या अन्य वातरोगोंमें जब कफ दोष सम्मिलित हुआ हो तब इस समीरपन्नगके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। वात आक्षेपके लिये भी समीरपन्नग अति हितकर है। इस तरह स्तम्भ, संकोच, शूल आदि विकारमें भी यह अच्छा उपयोगी है। बृंहण अनुपानके साथ देना चाहिये। कफप्रधान उन्मादमें भी वात कफ वृद्धिका शमन करके रोगको दबा देता है। रसाजीर्णमें प्रायः पित्त स्राव कम होता है। उदरमें जड़ता, अन्नविद्वेष, उबाक, मुँहमें मीठापन, चिपचिपा थूंक, उदरमें वातसंचय आदि लक्षण होनेपर समीरपन्नग अति उपयुक्त है।

विसूचिका रोगमें वमन-विरेचन अधिक हो जानेपर शक्तिपात हो जाता है। हाथ पैरोंमें शीतलता, नाड़ी अति मन्द होजाना, निश्चेष्टता और सर्वांग

प्रस्वेदपूर्ण हो जाता है। ऐसी स्थितिमें सोंठ और कायफलकी मालिश कराई जाती है तथा समीरपन्नग रस, मण्डूरभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी मिला तुलसीका रस, अदरकका रस और शहद मिलाकर १०-१० मिनटपर देते रहनेसे रोगी सचेत हो जाता है और देह उष्ण हो जाती है। फिर सूतशेखर और संजीवनी वटी देनेसे रोगी सुधर जाता है।

मलावरोध दीर्घकाल तक रहनेपर कीटाणुओंकी आबादी दृढ़ हो जाती है। फिर उस हेतुसे किसी-किसीमें आक्षेप आने लगता है। तीव्रावस्थामें छातीकी धड़-धड़, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट शिरदर्द और घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। झटकोंकी इस तीव्रावस्थामें समीरपन्नग, ¼ रत्ती मात्रामें लहसुनके रसके साथ दिनमें ३ बार देने और गुनगुने चन्दनबलालाक्षादि तैलकी मालिश करनेपर रोगशमन हो जाता है। किन्तु पहले एरण्ड तैलसे उदर शुद्धिकर लेवें।

सेन्द्रिय विष प्रकोप या बार-बार अत्यधिक भोजन करनेकी आदत-वालोंका आमाशय शिथिल हो जाता है। फिर भोजन जब तक न किया जाय तब तक एक पीछे एक डकार आती रहती है। अधिक डकारें आनेसे छातीमें वेदना, अग्निमांद्य, अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर समीरपन्नग, शंखभस्म और मुलहठीके चूर्णको आमके मुरब्बेमें मिला लेवें। फिर भोजनके समय थोड़ा-थोड़ा ग्रासके साथ मिलाकर सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

छातीमें कफ सूख जानेपर वात प्रकुपित होकर शूल चलने लगता है, यह शूल खाँसी आनेपर चलता है। वात प्रकोप होनेसे भीतर कफ सूखकर सूखी खाँसी हो जाती हैं। इस रोगपर समीरपन्नग, मुलहठी सत्व, अदरकके रस और शहदके साथ मिला भोजनके साथ सुबह-शाम देते रहनेसे शूल निवृत्त हो जाता हैं और कफ छूटकर बाहर निकल जाता है।

समीरपन्नग कटु रसात्मक, कटुविपाकी, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य, उत्तेजक, बल्य कफघ्न, कफवातघ्न और त्वचाके रोगोंका नाशक है। इसका कार्य कफ और कफवात दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य एवं उर, आमाशय, यकृत्, प्लीहा वातवाहिनियां, वातवाहिनियोंके केन्द्र स्थान, मस्तिस्क और त्वचा, इन स्थानोंपर होता है।

वक्तव्य—इस रसायनको अनेक चिकित्सक मंद-मंद अग्नि देकर तल भागमें ही सिद्ध करते हैं। उसमें कालापन अधिक रहता है ओर कण्ठस्थ रसायनकी अपेक्षा उग्रता भी अधिक होती है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल और हरताल, चारोंको समभाग मिला तुलसीके रसकी ३ भावना दे, बालुकायन्त्रमें रख २४ घण्टे मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनालें। (र० चं०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

यह रसायन प्रथम विधिकी अपेक्षा वातवाहिनियोंके विकृति जनित रोगोंपर सत्वर लाभ पहुँचाता है। इस द्वितीय विधि वाले ऊर्ध्वलग्न रसायनका उपयोग स्वामी श्री हरि शरणानन्दजीने अर्धांगवात और गृध्रसी-वातपर शहदके साथ अनेक बार किया है। अर्धांगवातपर इससे जितना लाभ होता है, उतना अन्य किसी भी औषधसे नहीं होता। इस तरह पुराने से पुराने गृध्रसी रोगी इससे अच्छे हो गये हैं। अर्धांगवात और पक्षाघातमें रक्तका दबाव बढ़ जाता है। उसे कम करनेके साथ रोगको निवृत्त करता है।

पहली विधिकी अपेक्षा यह रसायन उग्र और रंगमें अधिक श्याम होता है। इसको अनेक वैद्य हेमगर्भपोटली रसके समान वातकफप्रधान सन्निपात में तुलसीके रसमें घिसकर पिलाते हैं।

सूचना—इस समीरपन्नगको शीशीमें बन्दकर तैयार करना हो, तो डाट बन्द करें किन्तु मुखमुद्रा लगाकर पक्का बन्द न करें। अग्नि बहुत मन्द दें या बीच-बीचमें बन्द करदें। आध-आध या १-१ घण्टेपर डाटको खोलकर फिर लगालें। जिससे कुछ धूआँ एकत्र हुआ हो वह निकल जायगा। अन्यथा गन्धकका धूआं अत्यधिक परिमाणमें संचित होनेपर शीशी फूट जायगी। जब गन्धकका जारण हो जाय, तब रसायनका पाक हुआ मानना चाहिये। अग्नि पाक होनेमें कभी २-४ घण्टे अधिक और कभी २-४ घण्टे कम समय लगता है।

यदि तलस्थ समीरपन्नगका रंग काला तेजस्वी न आया हो और अधिक सख्त न बना हो, तो कच्चा समझकर पुनः ४-६ घण्टे आवश्यकतानुसार मंदाग्नि देकर परिपक्व बना लेवें। इस रसायनमें कसर रह जायगी तो थोडे ही दिनोंमें काले नमकके समान दुर्गन्ध आने लगेगी और रसायनके ऊपर सफेद क्षार लग जायगा। ऐसे दूषित रसायनमें पुनः गन्धक मिला भावना दे, बालुकायन्त्रमें रख; अग्नि देकर उड़ा लेना चाहिये।

(९) सुवर्णभूपति रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ भाग; ताम्रभस्म २ भाग; अभ्रक भस्म, लोहभस्म, कान्तलोहभस्म (अभावमें लोहभस्म); सुवर्णभस्म, रजत भस्म और शुद्ध वच्छनाभ १-१ भाग लेकर सबको मिला लेवें। फिर हंसराजके रसमें १२ घण्टे मर्दन करके सुखा लेवें। पश्चात् आतशी शीशीमें भर, चाक मिट्टीका डाट लगा, मजबूत बन्दकर, बालुकायन्त्रमें रख; दो प्रहर मन्दाग्नि देकर औषधि पाक करें। पेंदेमें ही औषधि मिलकर जम जाती है। रेता और शीशीके ऊपरका भाग अच्छी तरह गरम हो जाय तब अग्नि देना बन्द करें। स्वाँगशीतल होनेपर पेंदेमेंसे सुवर्णभूपति रस निकाल लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से १।। रत्ती अदरकके रस और मिश्रीके साथ या पीपल और शहदके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सन्निपात और क्षयकी दूसरी अवस्थामें लाभदायक है। आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात (लंगड़ापन), ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात), पंगुवात, कम्पवात, कटिवात, मन्दाग्नि, सब प्रकारके शूल, गुल्म, उदावर्त्त, भयंकर संग्रहणी, प्रमेह, उदररोग, अश्मरी, मलावरोध, मूत्रविबंध, भगन्दर, कुष्ठ, विषविकार, बढ़ा हुआ विषप्रकोप, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, सब प्रकारके ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरोरोग आदि कफ-वातप्रधान रोग अनुकूल अनुपानके साथ सेवन करनेसे दूर होते हैं। महाराष्ट्रमें अनेक वैद्य इस औषधिका उपयोग अनेक रोगोंपर करते हैं। यह महाराष्ट्रकी अति प्रसिद्ध औषधि है।

सुवर्णभूपतिमें सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह और अभ्रक इन भिन्न-भिन्न गुण वाली धातुओंका संयोग होनेसे यह वात, पित्त और कफ तीनों दोषोंके विकारोंको शमन करनेमें प्रभावशाली है। सन्निपातमें कफसे श्वासनलिका अति आच्छादित न हुई हो, वात या पित्तप्रकोप अधिक हो, कफविकृति न्यूनांशमें हो, ऐसे सन्निपातोंमें यह लाभ पहुँचाता है। क्षयकी दूसरी अवस्था तक इसका उपयोग होता है। क्षयमें सूक्ष्म मात्रा देनेसे कीटाणुओंका नाश वातप्रकोप, ज्वर और कासका शमन तथा बलकी वृद्धि होकर शाँति प्राप्त होती है।

इस रसायनमें ताम्रका परिमाण अधिक होनेसे यकृत्, प्लीहा, और वृक्क स्थानको शुद्ध करना, संचित सेन्द्रिय विषको बाहर फेंकना एवं कफ ओर आम पाचन करना ये गुण विशेष रूपसे मिलते हैं। इसके सेवनसे अजीर्ण, उदरशूल, सारे शरीरमें चलने वाले शूल और आमवातका शमन होता है।

इस तरह रौप्यके प्रभावसे वातवाहिनियाँ और वातप्रकोपपर लाभ पहुँचता है। विविध प्रकारके कम्प, कलायखंज, आक्षेपकवात, चक्षुगत वात विकार, वातवृद्धि होकर चक्कर आना, मूर्च्छा, शुष्क कास और शूल आदि पर व्यवहृत होता है। कभी साथमें कुचिला मिला दिया जाता है और दशशूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है।

आहार-विहारमें दीर्घकाल पर्यंन्त अनियमितता होनेसे आमाशय, यकृत् फुफ्फुस हृदय या शुक्राशय आदि यन्त्र शिथिल हो जाते हैं। तब इनके व्यापारमें न्यूनता न होनेके लिये वातवाहिनियोंके तन्तु लम्बे और पतले बनकर इन सब आशयोंका संरक्षण करते हैं। परन्तु जब इन वातवाहिनियों को शक्तिका क्षय हो जाता है तब पक्षाघात आदि विविध वातरोगोंका आक्रमण होता है। इन वातरोगोंमें तीव्रावस्था दूर होनेपर वात, पित्त, कफ

तीनों धातु, सब आशय और वातवाहिनियोंको सबल बनाकर रोगको पूर्णांशमें दूर करनेके लिये यह रसायन अति उपयोगी है।

जब पचनक्रियामें विकृति होनेसे सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है और फिर इसी हेतुसे धमनियोंमें फिरने वाले रक्तमें मलिनता आ जाती है; रक्त शैरिक भावको प्राप्त होता है तब वाताक्षेप उपस्थित होता है। इस अवस्थामें पचनक्रिया सुधारकर और सेन्द्रिय विषको नष्टकर आक्षेपको दूर करनेका कार्य इस सुवर्ण-भूपतिसे होता है।

इनके अतिरिक्त मानसिक आघात पहुँचनेपर वातप्रकोप हो जाता है। उसे भी यह सुवर्णभूपति रस दूर करता है। इससे वातकफ-प्रधान उरुस्तम्भ और वातवाहिनीकी विकृतिसे होने वाले वातरोग, यकृत् और आन्त्र दोषसे उत्पन्न वातरोग, उदावर्त्त, शिरोरोग, गुल्म, उदररोग, कास और श्वास भी दूर होते हैं।

इस औषधिमें वात आदि तीनों दोषोंको नियमित करने और सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेका गुण होनेसे यह मधुमेहको छोड़कर शेष सब प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करती है। कच्चे आमको प्रस्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालती है और जलाती भी है, जिससे दिनों तक बने रहने वाले नूतन ज्वर और जीर्णज्वरका शमन होता है, तथा मल-मूत्रावरोध और अजीर्ण नष्ट होता है।

संयोगजन्य ग्राही और दीपन-पाचन गुण होनेसे अतिसारका शमन करनेमें यह उपयोगी है। इसके अतिरिक्त इस औषधिका वियोजन पर्पटीके समान अन्त्रमें होता है। अत: अन्त्रशोथयुक्त ग्रहणी, वात, पित्त और कफोल्वण ग्रहणी, अन्त्र व्रण युक्त रक्तज ग्रहणी या पूयमय ग्रहणी, अन्त्रक्षय (संग्रहणी) इन सबको नष्ट करता है। एवं इस रसायनमें लोहका मिश्रण होनेसे यह रक्तमें रहे हुये रक्ताणुओंकी वृद्धिकर पाण्डु और कामलाको भी दूर करता है।

सब रोगोंके मूल वात, पित्त और कफ दोष एवं रस, रक्त आदि दूष्यों की विकृति है इन सबपर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे इस रसायनका असर होता है। आमाशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, अन्त्र, फुफ्फुस, रक्तवाहिनी, वातवाहिनी मस्तिष्क, मांसग्रन्थियां, पिपासास्थान, वृक्कस्थान, वीर्यस्थान आदि शरीर संरक्षण निमित्त महत्वके सब स्थानोंको सुवर्णभूपति बल देता है। अत: शास्त्रमें लिखा है कि "सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां स्वर्णभूपतिः" अर्थात् सब रोगोंके विनाशके लिये सुवर्णभूपति सबसे उत्तम औषध है।

(१०) अष्टमूर्ति रसायन

विधि—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ तोले, सिंगरफ १ तोला, मैनसिल १ तोला, सोमल १ तोला, हरताल ६ माशे, रसकपूर ९ तोले

मुर्दासंग ६ माशे, फिटकरीका फूला १ तोला, सुवर्णके वर्क ६ माशे और चाँदीके वर्क ६ माशे लेवें। सबको मिलानेसे वजन २२ तोले होता है। पारदके साथ सुवर्ण, रौप्य, और गन्धक क्रमशः मिला कज्जली करें। पश्चात् अन्य औषधियोंको मिलाकर आतशी शीशीमें भरें। फिर बालुकायन्त्रमें रखकर लगभग ३० घण्टे की मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देकर रसायन सिद्ध करें। लगभग १० से १२ घण्टे बाद गन्धकका धूँआँ निकल जानेपर तुरन्त डाट लगा २० घण्टे तक तीव्र अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर शीशीके गलेमें लगे हुए अष्टमूर्ती रसायनको निकाल लें। (औ०गु०ध०शा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक. अदरकके रसमें घिस, शहद मिलाकर दिन में २ बार देवें।

उपयोग—यह रसायन जीर्ण उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषमज्वर, सन्निपात क्षय, संन्यास (रक्तज मूर्च्छा), भूतोन्माद, अपस्मार, मूत्राघात, कलायखंज (लंगड़ापन), अपतानक, अपतंत्रक तथा धनुष्कम्प आदि वात-विकारोंको दूर करती है।

यह रसायन जीर्ण, फिरंग (Syphilis) रोगके उपद्रवोंके शमनके लिये अत्युत्तम औषधि है। जिस फिरंग रोगीके विकार अस्थिपर्यन्त पहुँच गये हों, अस्थि व्रण, दाँतोंमें क्षत, मसूड़ेमें सूजन, तालुमें व्रण, मुँहसे लार गिरना, इत्यादि उपद्रव हो गये हों, ऐसे कृश और क्षीण रोगीको यह लाभ-दायक है। एवं फिरंग रोगके अनुबन्धसे हुए क्षयरोग, मस्तिष्कमें रक्त दबाव बढ़कर सन्यास हो जाना, प्रसूताके बालक मर जाना, उन्माद, अप-स्मार, वातबस्ति या वातकुंडली, मूत्राघात, कलायखंज (जिसमें मनुष्य सीधा खड़ा नहीं रह सकता), अपतानक, अपतंत्रक, धनुष्कंप और आयाम आदि वातविकार और अन्य रोग जो फिरंगके विषसे उत्पन्न हुए हों, वे अष्टमूर्ति रसायनके सेवनसे शमन हो जाते हैं। यदि आक्षेपक वातरोग निर-नुबन्ध, स्वतंत्र जीर्णावस्थामें हो, अर्थात् फिरंग आदि रोगका संबन्ध न हो तो भी इनके आक्षेपके शमनके लिये यह रसायन अच्छा उपयोगी है।

बार-बार उलट-उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever) में रोगी बहुत कृश, दुर्बल और हताश हो गया हो, सारे शरीरमें दाह होता हो, शरीरका रंग काला हो गया हो, नाखून विकृत और नीले रंगके हो गये हों, स्थान-स्थानपर रक्तके धब्बे होते हों, छोटी-छोटी फुंसियां सारे शरीरमें हो गई हों, ऐसे विकारमें इस रसायनको उत्तम प्रकारका माना है।

कृष्ण ज्वर जिसमें त्वचा बिल्कुल काली हो जाती है; शीत लगकर ज्वर आता है, पीले झागवाली वमन, मूत्र पहिले लाल रंगका पश्चात् काला अथवा अत्यन्त लाल या अत्यन्त काला होना इत्यादि लक्षण हों और ज्वर

जीर्ण हो जानेसे शरीर दुर्बल हो गया हो; ऐसे रोगीको अष्टमूर्ति रसायन नवजीवन प्रदान करता है।

जीर्णज्वरमें शरीर कृश हो या आँत्रिक सन्निपातमें वातप्रधान लक्षण अधिकांशमें प्रतीत होते हों तथा शरीर कृश और दुर्बल हो, उन रोगियोंको अष्टमूर्ति देना लाभदायक है। किन्तु, इस सन्निपातमें रक्तस्थ दोष विशेषतः हों, अर्थात् दाह, रक्तवमन, मोह, शरीरपर मंडल आदि हों तो इस रसायन के साथ या पश्चात् प्रवाल, मुक्ता या अन्य शीतल औषधि भी देनी चाहिये।

उन्मादके विशेषतः भूतोन्मादके आक्षेपमें इस रसायनका अनेक बार बहुत अच्छा उपयोग हुआ है। इसके सेवनसे मस्तिष्कगत वातवाहिनियोंके केन्द्रपर तत्काल असर पहुँचता है; हृदय-क्रिया उत्तेजित होती है और सेन्द्रिय विष नष्ट होकर उन्माद शमन हो जाता है।

उपदंशका विष रक्तमें लीन होनेके गर्भाशय और उससे सम्बन्ध वाले अवयवोंमें विकृति होनेपर प्रसवकालमें अति त्रास होता है, और संतान भी जीवित नहीं रहती। कदाच जीवित रही, तो उसे उपदंशज विषसे विविध व्याधियाँ होती है, यह दशा बार-बार प्रतीत होती रहती है; ऐसी स्थितिमें उन्माद उत्पन्न होता है तो रोगिणी हताश, दीन. कृश और निर्बल होजाती है। उसकी इच्छाके विरुद्ध थोड़ा-सा हुआ कि मूर्छित होजाती है और आक्षेप आते हैं। ये सब लक्षण होनेपर अष्टमूर्ति रसायन अति उत्तम कार्य करती है।

कलायखंज होनेपर मनुष्य सीधी रीतिसे नहीं चल सकता, पैर टेढ़े पड़ते हैं, सन्धि बन्धनोंमें शिथिलता आ जानेसे चलनेपर विलक्षणता भासती है, पैरकी शक्ति नष्ट हो जाती है। रोगी बडे कष्टसे चलता है; अच्छी तरह खड़ा भी नहीं रह सकता; पैर काँपते रहते हैं। इस रोगमें त्रिकास्थिके ऊपर रहे हुये कटि कसेरुकाओंमेंसे पहली और दूसरी कसेरुकाके भीतर सुषुम्णामुख और उसके समीप रही हुई वातनाड़ियोंकी विकृति भासती है। इस रोगमें अनेक निमित्त कारणोंमें एक कारण उपदंशज विष भी है। यदि उपदंशजनित सम्प्राप्ति हो, तो अष्टमूर्ति देना चाहिये। इससे लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

अष्टमूर्ति रसायन शक्तिवर्द्धक, ओजस्कर, हृदयोत्तेजक, जन्तुघ्न, बल, मांसवर्द्धक और आक्षेपघ्न है। वात और कुछ पित्त दोष; रक्त, मांस, अस्थि और मज्जा ये दूष्य एवं सहस्रार, शिरोब्रह्म, सुषुम्णा, सुषुम्णामुख, अन्य नाड़ीचक्र, आतवाहिनियाँ, स्नायु, फुफ्फुस, हृदय और वृक्क इनपर विशेष लाभ पहुँचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(११) व्याधिहरण रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, इन सबको ५-५ तोले मिला घीकुंवारके रसमें ३ दिन खरल करके सुखा देवें। पश्चात् आतशी शीशीमें भर, बालुकायन्त्रमें रख ५२ घण्टे अग्नि देकर व्याधिहरण रस तैयार करें। गन्धक लगभग १६ घंटोंमें जारण होता है। गंधक जल जानेपर डाट लगाकर ३६ घण्टे तक मंद मध्यम और तीव्र अग्नि देवें। अन्तमें अग्नि खूब तेज देनेपर ही औषधि उड़ती है अन्यथा मैनसिल आदि द्रव्य तलभागमें रह जाते हैं। (रस० सा० सं०)

मात्रा—½ से १ रत्ती, दिनमें २ समय शहद, या घीके साथ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे नये और पुराने फिरंग रोग नष्ट हो जाते हैं एवं फिरंगजनित रक्तविकार, संधिवात, कुष्ठ, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि उपद्रव दूर होते हैं। उपदंश जीर्ण होनेसे विष हड्डीतक फैल गया हो तो भी इसके थोड़े ही दिनोंके सेवनसे विष नष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर नीरोग बन जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ७ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले और रसकपूर १६ तोले लें। सबको यथा विधि मिला, कज्जली कर बालुकातन्त्रमें रखकर २४ घण्टे अग्नि देकर रसायन बना लेवें। (नि० र०)

वक्तव्य—अन्य ग्रन्थकारने इस रसायनको प्रसारणीके रसमें खरल करके बालुका यन्त्रमें रखनेका लिखा है तथा नाम भगन्दरहर रस दिया है।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक। नागरवेलके पानमें अथवा घृत या शहदके साथ, दिनमें २ समय देवें।

उपयोग—यह व्याधिहरण रस प्रथम विधिके अपेक्षा सौम्य है। यह रसायन उपदंश उसके व्रण आदि उपद्रव और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करता है। एवं हृदयशूल, वातश्लेष्म विकार और वलीपलितका भी नाश करता है। इस रसायनमें प्रधानगुण रसकर्पूरका है। रसकर्पूर अति तीव्र होनेसे अनेकोंके मुंह आजाते हैं। यह दोष इसमें न होनेसे नये उपदंशपर निर्भय रूपसे उपयोगमें आता है। इससे उपदंश रोग उपद्रवसहित शमन हो जाता है। उपदंश होनेके पश्चात् सारे शरीरपर लाल चट्टे, स्वरभेद, मुंहमें व्रण, गुदशूक (गुदापर अनेक अंकुर निकलना) गांठ होना, बाल गलना, ज्वर शिरदर्द, निद्रानाश, पांडु, नेत्रलाली, बार-बार नेत्र आजाना, नेत्रोंमें छोटे छोटे दाने हो जाना, अस्थिगत व्रण, वृक्कशोथ, नाखूनोंका टेढ़ा हो जाना, संधिवात, वृषणपर शोथ आदि उपद्रव १ से २ वर्षके भीतर हुये हों, बहुत गहरे न हो तो ये दूर हो जाते हैं।

उपदंशके विषका परिणाम गर्भ, गर्भाशयपर तथा सन्तानपर भी होता है। इस हेतुसे सन्तानोंको विविध चर्मरोग, अस्थिरोग माँसगत रोग, ग्रन्थि-वृद्धि, यकृद्वृद्धि आदि हो जाते हैं। इनकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये विष प्रकोप होनेके पहले इसका उपयोग करना चाहिये। यदि अस्थिपर्यन्त दोष चला गया हो तो व्याधिहरण (प्रथम विधि) देनेसे रक्त, गर्भाशय आदि शुद्ध होते है।

व्याधिहरण रसायनका परिणाम वात, पित्त, कफ तीनों धातुओं और रस, रक्त आदि सप्त दूष्योंपर होता है। यह रसायन उपदंश विषघ्न और बल्य है। (औ० गु० शा० के आधारसे)

(१२) पञ्चसूत रस

विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध हिंगुल ८ तोले, सुवीर (सोमल) २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, रससिंदूर ६ तोले और रसकर्पूर ८ तोले लेवें। सबको मिला कज्जलीकर, छोटी दूधीके रसकी ३ भावना दें, सुखा, आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् मन्द, मध्यम, तीव्राग्नि क्रमशः देवें। ६-८ घण्टेपर डाट लगाकर २७ घण्टे तीव्राग्नि देनेसे बोतलके कण्ठपर औषधि लग जाती है। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—½ रत्ती शहद, अदरकके रस, तुलसीके रस या मुलहठी, बहेड़ा वासाके पत्ते और मिश्रीके क्वाथसे दिनमें २ से ३ बार।

उपयोग—यह रसायन श्वास, कास, आमसे उत्पन्न शूल, दुष्ट वातविकार फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय-Pleurisy) सन्निपात आदि घोर रोगोंको नष्ट करता है।

पञ्चसूतका मुख्य गुण कफशोषक है। यह विशेषतः फुफ्फुसावरण और अन्य स्थानमें सञ्चित दोषोंका शोषण करता है। मल्लसिंदूर और पञ्चसूत दोनों कफशोषक और उत्तेजक हैं। किन्तु पञ्चसूतमें मल्लसिंदूर और सदृश तीक्ष्णता और उष्णता नहीं है। जब वातवाहिनियोंकी क्रियामें शिथिलता होकर व्यत्यय होता है या अन्य प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, ऐसे वात-रोगमें पञ्चसूत उत्तम औषधि है।

फुफ्फुसावरण शोथ होनेसे शारीरिक क्रिया शिथिल होती है, हृदय बिल्कुल अशक्त हो जाता है। फिर रोग जीर्ण होनेपर फुफ्फुसावरणमें जल का संचय होने लगता है। इस रोगको उरस्तोय या कुक्ष्युदर भी कहते है। इस स्थितिमें कुक्षिशूल, शुष्ककास और ज्वर भी रहता है। किसी-किसीको इतना त्रास होता है कि रोगी खाँस नहीं सकता। इस तीव्र अवस्थाके पश्चात् जलसञ्चय होता है। (फुफ्फुसावरणके समान कभी-कभी मस्तिष्कके

आवरणमें भी शोथ आकर जल संचय होता है) पंचसूत इस जलका शोषक जलको रूपान्तर कराने वाला कफको निर्दोष करके साम्यावस्थामें प्रस्थापित करने वाला तथा ज्वर, शोथ और पीड़ाको हरने वाला उत्तम रसायन है।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया) के वेगका शमन होनेपर यदि फुफ्फुसकोषोंमें कफसंग्रह होने लगता है तो फुफ्फुसोंकी क्रियाका प्रतिबन्ध होता है। श्वासोच्छ्वासमें घर-घर आवाज निकलती है। उसपर पंचसूत बहुत अच्छा काम देता है। कारण कि पंचसूत हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना देता है, उनकी क्रियाको सुधारता है और फुफ्फुसोंमें संचित कफका शोषण करके रूपान्तर करता है। किन्तु निमोनियामें रक्त गिरता हो तो पंचसूत नहीं देना चाहिये।

पंचसूत उत्तम हृदयोत्तेजक है। अनेक बार हृद्य औषधियोंके सूचिकाभरण (इन्जेक्शन) लेनेसे रोगी निराश हो गये हों, उन रोगियोंकी जीवन रक्षा पंचसूत और समीरपन्नगसे होनेके उदाहरण मिले हैं। यथार्थमें पंचसूतमें समीरपन्नगकी अपेक्षा हृद्य गुण कुछ न्यून है तो भी कफ स्थानोंपर पोषक गुण विशेष प्रकारका है।

श्वासवाहिनियोंमें कफसंचय होकर श्वासोच्छ्वासमें प्रतिबन्ध; घर-घर आवाज श्वास रुकना, छिन्न श्वास, नाड़ीका विषम वेग आदि लक्षण होनेपर पंचसूत देनेसे वह श्वासवाहिनियोंमें संगृहीत कफको अति सत्वर सुखाकर सरलतासे नाड़ियोंको शुद्ध करता है। किन्तु समीरपन्नगका कार्य इससे विपरीत है। समीरपन्नग कफस्राव कराने और कफको बाहर फेंकनेके लिये श्वासवाहिनीकी शक्तिकी प्राप्ति करानेमें सहायता करता है। इसके अतिरिक्त समीरपन्नगका कार्य वातवाहिनियोंपर भी होता है।

पंचसूतका उपयोग कफयुक्त श्वास रोगमें होता है। किन्तु शुष्क कासयुक्त पित्तश्वासमें उपयोग करना हानिकर है। पंचसूतसे कफका शोषण अधिक होकर श्वास बढ़ जाता है। समीरपन्नगसे कफ खुलकर श्वास-वेग कम हो जाता है। तन्द्रा और मूर्च्छामें कफाधिक्य ओर जड़ताका लक्षण हो तो पंचसूत देना लाभदायक हैं, जीर्ण पक्षाघातमें जब तीव्रावस्था दूर होती है, तब पंचसूत देनेसे सत्वर लाभ होने लगता है।

छोटे बच्चोंका स्कन्दग्रह, अहिपूतना आदि बालग्रहोंके विकार. मस्तिष्कके आवरणकी विकृतिसे अर्थात् मस्तिष्कमें रहे हुए वातकी विकृतिके कारणसे हुए हों, तब तीव्र विकार शमन होनेके पश्चात् कफप्रधान लक्षण होनेपर पंच सूतअमृत सदृश गुणदायी है।

बालग्रहके अनेक कारण है। इनसे १० कारण मुख्य हैं। (१) उदर और अन्त्रकी विकृति वा वातसंचय, (२) दन्तोद्भव, (३) कृमि, (४) मूत्र-द्वारकी त्वचा चिपक जानेसे मूत्रोत्सर्गमें प्रतिबन्ध, (५) कर्णपाक, (६) मृद्वस्थि, (७) शीतला, विस्फोटक, रोमान्तिका आदि तीव्र पिटिकायुक्त ज्वर, (८) काली खांसी, (९) मस्तिष्कावरण शोथ, (१०) धनुर्वात या अपस्मारका पूर्व रूप। इनमेंसे उदर या अन्त्रमें वातसंचय विकृत दुग्ध या विकृत आहारसे होता है। फिर बालग्रह सदृश आक्षेप बार-बार आते हैं। ऐसी परिस्थितिमें उदरस्थ वातप्रकोप शमनार्थ पंचसूत देना चाहिये।

माताके दुग्धकी विकृति या माताकी मानस विकृतिसे बालकोंको पेचिस या आक्षेप हुए हों या कीटाणुजन्य विषप्रकोपसे पेचिसकी प्राप्ति हुई हो, तो दुग्ध विकृति, कीटाणु प्रकोप और वातसंचय, इन सबके निवारणके लिये सरल सौम्य विरेचन और किंचित् यकृदुत्तेजक गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये। येसब गुण पंचसूतमें अवस्थित है। पंचसूत सोम्य रेचन (सारक-गुण) करता है और यकृत्को थोड़ी उत्तेजना भी देता है। ऐसे निराशा-जनक स्थिति प्राप्त छोटे बच्चोंके प्राणका रक्षण इस पंचसूतसे हुआ है। इस रसायनका कार्य यकृत्पर उत्तेजक होनेसे तीव्र यकृत् विकारमें भी उपयोग होता है।

अन्त्र और कोष्ठमें स्थित जन्तुजन्य विषको पंचसूत दूर करता है। इस-लिये गर्भपात, तीव्र यकृत्संकोच और अन्त्रस्थ जन्तुजन्य विकृतिसे उत्पन्न उदरवात रोगमें तीव्र लक्षण होनेपर पंचसूतका उपयोग किया जाता है। जीर्ण व्याधिमें इसका उपयोग नहीं होता।

पंचसूत कफवात और कफप्रधान दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य; और फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण आदि कफ स्थान, पक्वाशय, बृहदन्त्र, ग्रहणी सहस्रार, सहस्रावरण, वातवाहिनियां और स्नायु इन सबपर विशेष प्रभाव दिखाता है। इसका मुख्य कार्य संशोधक है। फुफ्फुसावरण आदि स्थानोंमें संचित द्रवका शोषण करता है।

सूचना—पंचसूत तीव्र औषधि होनेसे सम्हालपूर्वक उपयोग करना चाहिये। पित्तभूयिष्ठ विकारमें पंचसूत देनेसे मुँह आना, मसूड़े सूजना, रक्त गिरना इत्यादि उपद्रव होते हैं इस हेतुसे इसका आंत्रिक सन्निपात (मोतीझरा Typhoid Fever) में उपयोग नहीं करना चाहिये। कदा-चित् आवश्यकता हो तो शामक औषधिके साथ करें।

(१३) त्रिपुर भैरव रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल और रसकर्पूर १०-१०

तोले, नौसादर १ तोला और फिटकरीका फूला ५ तोले मिला, कज्जलीकर आतशी शीशीमें भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर दो दिन अग्नि देवें। पहिलेसे ही क्षार गलेमें लगता रहता है। अत: गला बार-बार साफ करते रहना चाहिये। गन्धकका धूआँ निकल जानेके बाद डाट लगाकर २४ घण्टे तक तीव्राग्नि देनेसे सुन्दर लाल रंगका त्रिपुरभैरव सिद्ध होता है।

(वै० सा० सं०)

मात्रा—आधीसे २ रत्ती; दिनमें २ समय, घीके साथ।

उपयोग—त्रिपुरभैरव रस उपदंशजन्य विकार, रक्तविकार, नाड़ीव्रण, कण्ठमाला और पक्षाघात आदिको दूर करता है। एवं संधिवात, नेत्र-विकृति, अस्थिगतव्रण, गांठ, छाती और पसलियोंमें शूल चलना, इत्यादि का भी शमन करता है।

इस रसायनका उपयोग विशेषत: उपदंशजनित विकारपर होता है। इस रसायनके अतिरिक्त पारद भस्म, रसकर्पूर व्याधिहरण, अष्टमूर्ति और मल्लसिन्दूर, आदि अनेक औषधियाँ उपदंश रोगके लिये लिखी हैं। परन्तु इन सबके उपयोग और गुणोंमें कुछ कुछ अन्तर है। थोडे ही दिनोंके उप-दंश रोगमें पारद भस्म उपयोगी है प्रथमावस्थाके लक्षणों तक व्याधिहरण रस (दूसरी विधि) लाभ पहुँचाता है, यह त्रिपुरभैरव रस प्रथमावस्था और द्वितीयावस्थाके उपदंश रोग और उनके उपद्रवोंको शमन करनेमें उपयोगी है। अष्टमूर्ति, व्याधिहरण (प्रथम विधि) और मल्लसिन्दूर (दूसरी विधि) तृतीयावस्थामें भी हितकर है।

उपदंशजन्य और उपदंश रहित उत्पन्न जीर्ण; अस्थिगत व्रण, अस्थियों के अन्तभाग मोटे हो जाना, छातीमें दर्द, अस्थियोंमें कीटाणु उत्पन्न होने तथा उपदंशज अन्य विकारोंमें यह रसायन उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त वातप्रधान और कफ प्रधान सन्निपातमें अन्य औषधि तैयार न होनेपर इसको प्रयुक्त किया जाता है।

पक्षवध, अर्दित आदि रोगोंपर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। परन्तु तीव्रावस्थाका ह्रास होनेपर यह उपयोगी होता है।

सूचना—त्रिपुरभैरव रसायनमें फिटकरीका फूला ही मिलाना चाहिये। यदि कच्ची फिटकरी मिलाई जायगी तो गला बन्द होकर शीशी फूट जायगी।

(१४) संघात सिन्दूर रस

विधि—कूपीपक्व रसायन बनानेमें शीशी तोड़नेके समय चन्द्रोदय,

रससिन्दूर, मल्लसिन्दूर आदिमें काचके टुकड़े मिल गये हों; ऐसे चूर्णमें समभाग गन्धक मिला लोहेकी खरलमें घीकुंवारके रसके साथ खरल करके आतशी शीशीमें भरें। फिर बालुकायन्त्रमें ३६ घण्टे अग्नि देकर औषधि उड़ा लेनेसे काचके सब टुकडे नीचे रह जाते हैं और रसायन ऊपर लग जाती है। इस सिन्दूरमें सब प्रकारके रसायन होनेसे सबके गुर सम्मिलित होते हैं। (र० सा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस रसायनका उपयोग द्विगुण गन्धकजारित रससिन्दूरके समान होता है। रससिन्दूरसे यह अधिक उत्तेजक है।

सूचना—रसकर्पूर मिश्रित औषधियोंमेंसे रसायन अलग बनाना चाहिये, और उसका उपयोग व्याधिहरणके समान करना चाहिये।

(१५) हरगौरी रस (सुवर्ण)

द्रव्य—अष्टसंस्कारित पारद ५० ग्राम, शुद्ध गन्धक ३०० ग्राम, अभ्रक-सत्व तथा सुवर्णमाक्षिक सत्व २५-२५ ग्राम, नागभस्म १२॥ ग्राम एवं सुवर्ण वर्क ६¼ ग्राम लें।

विधि—पारदको खरलमें डालकर सोनेके वर्क १-१ मिलाते हुये घोटते जायें फिर शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनाकर ३ दिन घोटें। चौथे दिन प्रथम अभ्रक सत्वरज डालकर १ दिन तथा सुवर्णमाक्षिक सत्वरज डालकर १ दिन भर घोटें फिर नागभस्म डाल घोटकर मसृण कज्जली बना, कुमारी रसकी भावना दें, घोकर सुखा लें। इस कज्जलीको डमरूयन्त्रमें भरकर चूल्हेपर चढ़ा मन्दाग्निसे गन्धक जारण करें। यन्त्र शीतल होनेपर सब द्रव्यको निकाल आतशी शीशीमें भर बालुकायन्त्र द्वारा शेष गन्धकका जारण कर पका लें। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

मात्रा—½ से २ रत्ती तक। रोगानुसार विविध अनुपानसह दें।

उपयोग—अकाल जरा-व्याधि, दुराग्रही जीर्णरोग, धातुक्षय, वीर्याणुओं (Spermotozoa) का क्षय या न्यूनता, बंध्यत्व नाशक तथा वाजीकरण रसायन है। रससिद्ध भिक्षु गोविन्दपादाचार्य ने इसे "दैन्य दुखजित्" देह लोह सिद्धिप्रद वतलाया है। इसे मैंने बनाकर प्रयोग किया है।

पर्पटी प्रकरण

रसायन कल्पमें पर्पटीको अति महत्वकी औषधि माना है। पारद और गन्धककी कज्जली या उसके साथ अन्य औषधियोंको मिला अग्निसंस्कार करके पर्पटी बनाई जाती है। पारद गंधकयुक्त पर्पटी विशेष करके अन्त्रके विकारोंको दूर करनेमें अति उपयोगी है। अन्त्रमें रही हुई दुर्गन्धको दूर करती है; कीटाओंका नाश करती है और अन्त्रकी शक्तिको बढ़ाती है। अन्त्र-विकृतिको दूर करनेमें अन्य औषधकृतिकी अपेक्षा पर्पटी सौम्य विशेष हितकर और शीघ्र लाभदायक है। पर्पटी बनानेसे कज्जली और अन्य औषधियोंका वियोजन आमाशयमें नहीं होता, परन्तु ग्रहणी, पक्वाशय और बृहदन्त्रमें होता है। इस हेतुसे ग्रहणी रोगमें पर्पटी अपना प्रभाव विशेष दिखाती है।

पारदयुक्त सब प्रकारकी पर्पटियाँ जन्तुघ्न, पाचक, व्रणशोधक, व्रण-रोपक शक्तिवर्द्धक हैं और अन्य जो-जो औषधियाँ मिलाई जायँ, उनके और भी गुण सम्मिलित होते हैं। लोहपात्रमें पर्पटी तैयार करनेसे पर्पटीसे लोहका गुण आता है। लोहपात्रमें संयोगसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होनेमें सहायता मिलती है। ताम्रपात्रमें तैयार करनेसे यकृत् प्लीहा और वृक्क-स्थानकी निर्बलताको दूर करने और पित्तविसर्जन क्रियाको सुधारनेके गुणोंसे युक्त बनती है। अतः जिस धातुके पात्रका उपयोग किया जाता है, उस धातुका गुण पर्पटीके साथ कुछ अंशमें संयुक्त होता है।

पर्पटीके लिए श्रेष्ठ पारद —जो पारद पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित किया है वह लिया जायगा तो पर्पटी आशु फलप्रद बनती है। ऐसा पारद न हो तो अष्ट संस्कारित और षड्गुण गन्धक जीर्ण लेना चाहिए। ऐसा भी न हो तक हिंगुलोत्थ पारदको निम्नानुसार विशेष शुद्ध करके प्रयोजित करना चाहिए।

पर्पटीके लिए हिंगुलोत्थ पारद शोधन विधि—पारदको घीकुँवारके रसमें मर्दन करनेसे मल दोष, त्रिफलेके क्वाथमें मर्दन करनेसे अग्निदोष और चित्रकमूलके क्वाथमें खरल करनेसे विषदोष दूर होता है। इस प्रकार पारदके दोषोंको दूरकर उसे अरणीके पत्तों, एरण्डके पत्तों, अदरखके और मकोयके पत्तोंके रसोंमें पृथक् पृथक् मिलाकर क्रमशः पत्थरकी खरलमें मर्दन करके शोषण करें। इस रीतिसे पारदकी विशेष शुद्धि करनेपर पर्पटी विशेष गुण दर्शाती है

पर्पटीके लिए गन्धक चूर्ण विधि—शुद्ध गन्धकके चांवलोंके समान छोटे छोटे टुकड़े कर पत्थरकी खरलमें भांगरेके रसकी ७ बार भावना देवें, और ७ बार धूपमें सुखावें। फिर एक कड़ाहीमें थोड़े घीके साथ गन्धक मिलाकर

अग्निपर रखकर रस करें (पिघलालें)। उस गंधकसे चार गुना भांगरेका रस एक पीतलके भगोनेमें भरें। भगोना इतना बड़ा लेवें कि आधा भर जाय उस भगोनेपर स्वच्छ कपड़ा बाँध फिर गंधकका रस होनेपर तुरन्त उस भगोनेपर डाल देवें। पश्चात् गन्धकको निकालकर धो लेनेसे पर्पटीके योग्य गंधककी शुद्धि होती है। भाँगरेकी भावनासे यकृदुत्तेजक गुणकी वृद्धि होती है जो संग्रहणी आदि व्याधियोंमें हितावह है तथा पर्पटी मुलायम बनती है, कठोरता नहीं आती।

पर्पटी बनानेके लिये कड़ाही अथवा कलछीमें घी लगाकर कज्जली आदि औषधि डालें। पश्चात् चूल्हेपर चढ़ा लोहेकी या ताँबेकी शलाकासे सम्हाल पूर्वक चलावें और बेरकी लकड़ीके निर्धूम कोयलोंकी मंद आंचपर पिघलाकर रस करें। फिर जमीनपर गोबर फैला; ऊपर केलेके पत्ते बिछा उसपर तैयार किया हुआ रस ड़ाल, एक केलेका पत्ता ढक, उसके ऊपर और गोबर डालकर दबा देवें। थोडे समय बाद शीतल होनेपर पर्पटीको निकाल लें। कलछीमें शेष कठिन भाग लगा रह जाय उसे ग्रहण न करें। पर्पटीका रङ्ग मयूरशिखाके समान श्याम हो जाय, वह उत्तम मानी जाती है।

श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार चूल्हेपर एक तवा रखें; उसपर एक अंगुल मोटा बालुकास्तर बिछावें, उसपर कड़ाही रखें व पिघला कर उक्त विधिसे पर्पटी बनावें। इस तरह पर्पटी बनानेपर गुण अधिक करती है।

पर्पटी बनानेमें मृदु, मध्यम और खर तीन प्रकारके पाक होते हैं। मृदु बननेपर बिखर जाती है ओर अच्छी रीतिसे नहीं टूटती। मध्यम पाक होने पर चमकदार चांदीके समान टुकड़े बन जाते हैं। खर पाक हो जाय तो रूक्ष, चिकनी और कुछ ललाई युक्त दीखती है और तोड़नेमें जल्दी नहीं टूटती। मृदु और मध्यम पाकमें पारद दृष्टिगोचर होता है किन्तु खर पाक होनेसे पारद कुछ अंशमें उड़ जाता है और शेष रहता है, वह भी सदोष होता है। अत: मृदु और मध्यम पाक युक्तका सेवन करना चाहिये और खरपाकको विष समान मानकर त्याग देना चाहिये। इसी कारणसे कलछी में शेष लगी हुई खर पाक वाली पर्पटीका त्याग करनेका विधान किया है।

पर्पटी सेवनमें अपथ्य–पारद मिश्रित पर्पटीके सेवन करनेवालेको तीक्ष्ण वायु, धूप, क्रोध, मानसिक चिन्ता, आहारके समयकी विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम, स्नान और अत्यन्त बोलना, ये सब अहितकारक हैं। पके हुए केलेके फल, वक्कल और जड़, नीम आदि सम्पूर्ण कड़वे पदार्थ, गरम, आनूप देशके जीवोंका माँस तथा जलचर जीवोंका मांस, पक्षियोंका माँस, मछली, काली मछलियोंमें गड़क नामक मछली खट्टे पदार्थ, दही और शाक आदि

पदार्थ भक्षण नहीं करने चाहिए। पर्पटीका सेवन करते हुए स्त्रियोंसे प्रेम-वार्ता भी नहीं करनी चाहिए। एवं गुड़, खांड, ईख रसके बने हुए पदार्थ, ईख (गन्ने), करेलेके पत्ते, फल और बेल आदि नहीं खाने चाहिये।

पर्पटी सेवन करनेके समय अन्न और नमकका सेवन न किया जाय तो अच्छा। यदि ऐसा न हो सके तो नमक मिश्रित भोजन २ घण्टेतक नहीं करना चाहिये। सैंधा नमक मिश्रित मट्ठेके लिए अधिक बन्धन नहीं है, तथापि अनुपान रूपसे मट्ठा लेना हो तो उसमें नमक न मिलाया जाय, तो अच्छा है। क्योंकि पारदका नमकके साथ संयोग होनेपर पारद लवण (मर्करी क्लोराइड) बनकर हानि पहुँचाता है या योग्य लाभ नहीं पहुँचा सकता।

पर्पटी सेवनमें पथ्य— (जो अन्नका त्याग नहीं कर सकते उनके लिये)— थोड़े घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालोंके द्वारा सिद्ध किये हुये, सैंधा-नमक मिले हुये व्यंजनादि, पुराने शालि चांवलोंका भात काले बेंगन, पाढ़के पत्तोंका शाक, बथुआ, साबुत मूंग, केलेके पत्ते, परवल, सुपारी, अदरक मकोयके पत्तोंका शाक, लवा, बतक, तीतर और मोरका मांस, मुद्गर, रोहित और काली मछली, समभाग जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध, ये सब पदार्थ हितकारी हैं।

पर्पटी सेवन काल ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। शराब, सिगरेट, चाय आदिका व्यसन हो तो जितना हो सके उतना कम या बिल्कुल बन्द कर दें। चाय पीना हो तो ठण्डी करके ही पीवें। व्यसन का त्याग हो सके तो विशेष हितावह माना जायगा। रोगी पूर्ण विश्रांति ले तो लाभ जल्दी पहुँचता है।

इस पर घृत थोड़ा खाना चाहिये और पथ्यमें यथेच्छ सात्विक आहार देना चाहिये। भूख लगनेपर अवश्य भोजन करें। यदि आधी रातको भूख लगे तो उस समय भी दूध अथवा मठ्ठा देना चाहिये। बहुत क्या कहें, रोगी को जब जब भूख लगे तब ही निर्भय होकर बार-बार दूध पिलावें। कदाचित् भोजनके समयका उल्लंघन होनेसे ज्वर या विरेचन हो जाय तो सम-भाग अथवा अधिक जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये। वमन होनेपर नारियलका जल या दूध देवें। स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो दुग्धपान करावें।

भूख उत्पन्न हुई है या नहीं, इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये— जब शरीर शक्तिहीन हो, मस्तकमें शूल और झनझनाहट आदि लक्षण उपस्थित हों तब निश्चय ही भूख लगी समझनी चाहिये।

(१) रस पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध आँवलासार गन्धक दोनों ५-५ तोले मिला

कज्जलीकर लोहेकी कड़ाही या कलछीमें डालकर ऊपर लिखी विधिसे पर्पटी बनालें । (र० का०)

वक्तव्य—आचार्योंने गन्धकको भाङ्गरेके रसमें ७ दिनतक मर्दन करा, रोज सूर्यके तापमें सुखा लेनेका विधान किया है । एवं शुद्ध अष्ट संस्कारित पारदको भी जयन्ती (मतान्तरमें जयापात्र-भांग, एरण्ड पत्र), भृङ्गराज और काकमाची, इनके रससे ३-३ दिन तक स्वेदन करावें । फिर पारद, गन्धकको मिलाकर विधिवत् कज्जली करके पर्पटी बनावें ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, ३ बार, शक्ति अनुसार धीरे-धीरे बढ़ा कर शहद या हींग और जीरेके साथ या घृत अथवा-दूधके साथ देवें । जलके बदलेमें दूध ही दें तथा नमक, जल और अन्न छुड़ा दें । अति तृषा लगती रहे तो जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलावें । पर्पटीके बाद सुपारी का टुकड़ा खिलावें । इस रीतिसे ४० दिन तक सेवन कराना चाहिये । लक्षण और उपद्रव भेदसे एवं दूध अनुकूल न हो ऐसे रोगियोंको दुग्ध कल्पके स्थान पर तक्र कल्पका सेवन भी करा सकते हैं ।

उपयोग—संग्रहणी, अन्त्रव्रण, अन्त्रशोथयुक्त अतिसार, अपचन, शूल बवासीर आदि रोगोंका शमन करती है ।

जब पित्तस्राव कम होनेसे भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता या अन्तड़ी में शोथ होनेसे बार-बार थोड़े-थोड़े पतले दस्त होते रहते हैं, जिनमें कुछ अंश अपक्व अन्नका होता है, पाचनक्रिया विकृत हो जाती है, दस्तमें अम्ल या पूतिगन्ध होती है, रोगीकी जिह्वापर श्वेत मलकी तह आजाती है, जिह्वा की किनारी लाल होती है, पचनेन्द्रिय संस्थान दूषित हो जाता है, तब रस पर्पटी विशेष हितकर होती है ।

गर्मीके दिनोंमें दूध जल्दी विकृत हो जाता है । ऐसा विकृत दूध पिलाने पर बालकके उदरमें कृमि उत्पन्न होकर अतिसार हो जाता है । दस्त चांवलों के धोवन या खड़िया मिट्टीके सदृश होता है, क्वचित् वमन भी होता है, ज्वर बहुधा नहीं होता । ऐसे लक्षण प्रतीत होनेपर बालसंजीवन रस अति हितकर है । परन्तु जब बालसंजीवनसे लाभ नहीं पहुँचता तब रस पर्पटी दी जाती है यदि बालकोंको प्रवाहिका रोग होता है, तो बालसंजीवन रस काम नहीं दे सकता । ऐसे समयपर बालातिसारहर चूर्णके साथ रसपर्पटी ही लाभ पहुँचाती है ।

यदि अतिसारमें कृमिका अनुबन्ध हो तो पहले कृमिघ्न औषध और एरण्ड तैल देकर कोष्ठ शोधन करना चाहिये । फिर रसपर्पटी देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाती है ।

जीर्ण अतिसार रोगमें अन्त्रकी ग्राही शक्ति अति न्यून हो जाती है, ऐसे

समयपर अफीम या अन्य स्तम्भक औषधि द्वारा अन्त्रकी श्लैष्मिक कला को काम चलाऊ शक्ति देने या मलको रोकनेका प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकारकी औषधियोंकी क्रिया अस्थिर होनेसे सच्चा लाभ नहीं होता। क्वचित् थोड़े ही समयमें अतिसार प्रबल वेगपूर्वक फिर हो जाता है। किन्तु रसपर्पटी देनेसे अन्त्रशक्तिकी वृद्धि होकर रोग निर्मूल हो जाता है।

उपदंश रोगमें उपद्रव रूपसे अतिसार हो जाता है; ऐसे रोगियोंके लिए केवल अतिसारकी चिकित्सा करनेसे रोग-निवृत्ति नहीं होती। उपदंशके विषको भी नष्ट करना चाहिए। ये दोनों कार्य रसपर्पटीके योगसे उत्तम प्रकारसे होते हैं। अन्त्रमें शोथ होनेपर एक प्रकारका विषप्रकोप होकर ज्वर उपस्थित होता है। उस ज्वरमें समानवायु प्रकुपित होता है। ज्वर आनेके पश्चात् सब अवस्था पूर्ण होनेमें ३ से ६ सप्ताह लगते हैं। उस विकारमें आगे शोथकी कमी होकर अन्त्रव्रण हो जाते हैं। ऐसे ज्वर और आन्त्रिक ज्वर (मधुरा) के भीतर अनेकांशमें साम्य है। इस प्रकारके ज्वर में महत्वका लक्षण अतिसार है। यह अतिसार अति त्रासदायक और दीर्घ-काल स्थायी होता है। बार-बार बड़े-बड़े दस्त लगते रहते हैं। दस्तका रंग सफेद या पीला-सा होता है। ऐसे अतिसार पर रसपर्पटी उत्तम कार्य करती है। रस पर्पटीके सेवनसे शोथ कम होता है; व्रण भर जाते हैं, पचनक्रिया सुधरती है, अतिसार कम होता है; उदर स्वस्थ हो जाता है, गुदामें फटी हुई त्वचा आदिकी विकृति दूर होती है, विष नष्ट होता है तथा समानवायुका साम्य होकर अनुलोम होता है। (औ० गु० ध० शा०)

जीर्ण अतिसारमें रसपर्पटी, जातिफलादि चूर्ण और लघु गंगाधर चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

जीर्ण आमातिसारपर रसपर्पटी, लघु गंगाधर चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण और कूड़ेकी छालके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें तीन बार मट्ठेके साथ देते रहनेपर आमोत्पत्ति कम होकर पचन-क्रिया बलवान् बन जाती है।

सूचना—रसपर्पटी पित्तप्रकोपजनित रोगोंके अनुकूल नहीं रहती। कारण यह स्वयं पित्तवर्द्धक है। इस पर्पटीके सेवनकालमें विदाही पदार्थ तेल, केला और स्त्री सेवन आदिका आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये। तथा जो इस प्रकरणके प्रारम्भिक वक्तव्यके भीतर पथ्यापथ्य लिखा है यदि उसका आग्रहपूर्वक पालन किया जाय तो लाभ अधिक पहुँचता है।

(२) सुवर्ण पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और सुवर्ण भस्म या सुवर्णके वर्क एक तोला लेवें। पहिले पारद और सुवर्णके वर्कको मिला

नींबूके रसमें ६ घण्टे खरलकर गरम जलमें ३ समय धो लेवें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। सुवर्ण भस्म मिलाना हो तो पारद गन्धककी कज्जलीके साथ मिला लेवें। पश्चात् कड़ाहीमें थोड़ा घी डालकर उपरोक्त विधिसे पर्पटी बना लेवें। (र० च०)

पारदके स्थानपर रससिंदूर मिलाया जाय तो सुवर्ण पर्पटीका वर्ण रक्त होता है। मलमें श्वेत वर्ण और दुर्गन्ध होनेपर यकृत्का पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो तब रससिंदूर वाली पर्पटी विशेष हितावह है, किन्तु शुष्क कास हो तो इसे न दें।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय, त्रिकटु और शहदके साथ देवें। मात्रा २ रत्ती तक शनैः शनैः बढ़ानी चाहिये। संग्रहणी प्रवालपंचामृत २-२ रत्ती और त्रिकटु-शहदके साथ या दाड़िमावलेहके साथ।

उपयोग—यह पर्पटी पित्तशोधक, कीटाणुनाशक और बलवर्द्धक है। सब प्रकारकी संग्रहणी, शोष-क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, शूल, अतिसार, मन्दाग्नि और पाण्डु रोगका नाश करके जठराग्निको प्रदीप्त करती है और बल-वीर्य बढ़ाती है।

पर्पटी कल्पमें सुवर्ण पर्पटी अति महत्वकी अग्रगण्य औषधि है। बिल्कुल अस्थिपंजर और मरणोन्मुख रोगियोंको भी यह स्वस्थ बनाती है। सुवर्ण पर्पटीके साथमें दूध विशेष लाभदायक है।

जिस जीर्ण और त्रासदायक अतिसारमें उदरके भीतर पीड़ा नहीं होती, परन्तु नलको खोलनेपर जिस तरह जलकी धारा गिरती है; उस तरह बड़े बड़े दस्त लगते रहते हैं, शौचकालमें बल नहीं लगाना पड़ता, एक साथ घड़ा खाली करने सदृश जुलाब दिनमें ४-५ बार होते रहते हैं। उस अतिसारमें अन्त्रकी ग्राहक-शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है तथा यकृत् रस और अन्त्र रसस्राव अधिक होते हैं। रोगी अतिशय क्षीण, कृश, दुर्बल, केवल अस्थिपंजरवत् बन जाता है। बोलनेकी शक्ति भी नहीं रहती एवं बलमाँस विहीनताकी अन्त्यावस्था होती है। ऐसी अवस्थामें भी सुवर्ण पर्पटी जादू सदृश कार्य करती है। ऐसे अनेक रोगियोंका प्राण इसने बचाया है।

ऐसे अतिसारसे उत्पन्न उपद्रव रूप कास, श्वास, पाण्डुता, हिक्का या केवल निर्जन्तुक अनुलोम-प्रतिलोम क्षय जिसमें क्रमशः रसधातुसे शुक्रपर्यन्त या शुक्रसे रसपर्यन्त धातुएँ क्षीण होती हैं। इन सबपर यह पर्पटी अच्छी उपयोगी है। सुवर्ण पर्पटी देने योग्य रोगियोंकी मानसिक स्थितिका केवल विचार करना चाहिये। मानसिक स्थिति अविकृत हो, तो सुवर्ण पर्पटी निःसन्देह लाभ पहुँचाती है।

संग्रहणी-अनुलोमक्षय (Sprue) में विशेषत: जिह्वासे लेकर गुदनलिका पर्यन्त समस्त पचनेन्द्रिय संस्थानकी श्लैष्मिक कलापर सूक्ष्म-सूक्ष्म स्फोट हो जाते हैं। ये स्फोट विस्फोट सदृश तीव्रतर नहीं होते किन्तु इससे विलक्षण प्रकारके सौम्य होते हैं। इस हेतुसे रोगियोंको बड़े सफेद रङ्गके और गरम गरम दस्त लगते हैं। जिह्वाका स्वाद नष्ट होजाता है, जिह्वा लाल कांटे वाली हो जाती है। कितने ही रोगियोंकी जिह्वा फटी-सी भासती है। जिह्वाके नीचेके हिस्सेमें, गाल, कण्ठ और समस्त मुँहके भीतर त्वचा लाल हो जाती है। नमक या जलको स्पर्श भी सहन नहीं होता। कइयोंको लाल अधिक निकलती है। कुछ काल तक मुखपाक होता है, फिर अच्छा हो जाता है।ऐसा क्रम, विष शेष रहे; तब तक वर्षों पर्यन्त चलता है। मुखपाक शमन होनेपर दस्त भी न्यून होजाते हैं और रोग निवृत्त होनेका भ्रम हो जाता है। परन्तु किञ्चित् निमित्त कारण मिलनेपर पुन: समस्त लक्षण पूर्ववत् प्रकट होते हैं। इस रोगमें अन्नका रस ही अच्छा नहीं बनता। जो बनता है, उसका भी संशोषण आमाशय और अन्त्र स्फोट युक्त होनेसे यथोचित् नहीं होता। इस हेतुसे योग्य पोषणके अभावमें रोगी दिन-प्रति दिन कृश, अनुत्साही और निस्तेज होता जाता है।

इस व्याधिके मुख्य कारण विषयक विद्वानोंमें मतभेद है। कितने ही विद्वानोंकी मान्यता अनुसार इसका कारण यकृत्के पित्तस्रावकी विकृति है। इस हेतुसे आधुनिक विद्यावाले गोरोचन, मत्स्य पित्त या बैलके पित्तको दही मट्ठे के साथ देते रहते हैं।

आयुर्वेदके मतानुसार किसी भी रोगमें इस तरहके रासायनिक द्रव्यकी अपेक्षा उसके उत्पादक और नियामक त्रिधातु और त्रिदोषको विशेष महत्व दिया है। इस दृष्टिसे यकृत्का पित्तस्राव कम होने या अन्य उत्पत्ति अनुरूप अन्य अन्त:स्रावको न्यूनता होनेसे अन्तमें विकृति हुई हो, उस तरह मान लें तो भो आयुर्वेदकी दृष्टि अनुसार यह स्थिति पित्तदोषसे मानी है। जब पित्तदोषकी दुष्टता दूर हो और पित्तका सम्यक् नियमन होकर उसके बढे हुए अम्लत्व, उष्णत्व और द्रवत्व गुण न्यून हों तब यह व्याधि स्वयमेव शमन होती है। यह महत्वका कार्य सुवर्ण-पर्पटी करती है। किन्तु यकृत् या अन्य पित्तस्थानके मन्दत्वके हेतुसे उस स्थानमें उत्पन्न होनेवाले पित्तको उत्पत्ति ही कम हो या उस स्थानसे अन्त्रमें पित्तस्राब ही कम जाता हो तो पंचामृत पर्पटी देना चाहिये।

अन्त्रमें क्षयके कीटाणुओंकी उत्पत्ति हो तो हाथ-पैरोंपर शोथ आजाता है। कास, श्वास आदि उपद्रव होते हैं तथा शरीर कृश और निस्तेज बन जाता है। ऐसे संग्रहणी (अनुलोमक्षय (Sprue) और प्रतिलोमक्षयमें मान-

सिक अवस्था अधिकृत है तो इस पर्पटीके सेवनसे अवश्य लाभ पहुंचता है। अनुपान रूपसे दाड़िमावलेह देवें ।

यह सुवर्ण पर्पटी शीतल होनेसे पित्तप्रधान विकारमें अच्छा काम देती है । जब यकृत्‌मेंसे पित्तकी उत्पत्ति पूरी होनेपर भी स्राव न्यूनाँशमें होता हो अथवा अन्य अन्त:स्रावकी न्यूनतासे अन्त्रमें विकृति उत्पन्न हुई हो; मल बहुत ज्यादा परिमाणमें एक साथ निकलता हो और दस्तकी संख्या अधिक न हो तब सुवर्ण पर्पटी पित्त धातुको प्रकृतिस्थ (नियमित) बनानेके लिये महत्वका कार्य करती है ।

सुवर्णप्रधान इस रसायनसे संग्रहणीके अतिरिक्त पित्तज प्रमेह, पाण्डु, पित्तप्रधान उदरशूल, उन्माद, शोष, राजयक्ष्मा आदि रोगोंमें लाभ होता हैं । इसका सविस्तार वर्णन सुवर्ण भस्ममें किया है ।

अन्त्रक्षयके रोगीको ज्वरसह मुखपाक रहता हो, खट्टी डकारें आती रहती हों तो सुवर्ण पर्पटीके साथ यशद भस्म, अतीसका चूर्ण तथा लवंग चतु:सम चूर्ण (लवंग, जायफल, जीरा और सोहागेका फूला) मिलाकर देना चाहिये ।

ग्रहणीमें क्षत (Duodenal Ulcer) होनेपर विशेषत: पित्तज परिणामशूल उत्पन्न होता है । फिर भोजनके ३-४ घण्टे बाद वान्ति हो जाती है । वान्ति अति खट्टी होती है, तृषा अधिक लगती है, वान्ति होनेपर फिर दर्द नहीं रहता, शौच शुद्धि नहीं होती, अन्त्रमें क्षत हो जानेके बाद उदर पर दबानेमें व्यथा होती है, जिह्वा लाल होती है, नेत्र पीले भासते है। उस विकारपर सुवर्ण पर्पटी, कामदुघा रस और संगजराहत भस्म मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहने तथा कब्ज रहे, तो स्वादिष्ट विरेचनका उपयोग करते रहनेपर रोग निवृत्त हो जाता हैं । यदि उदरमें वात संचय होता हो, तो बंबूलके कोयलेकी काली राख ४ रत्ती मिला देनी चाहिये ।

(३) ताम्र पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और ताम्रभस्म २ तोले लेवें । प्रथम पारद गन्धककी कज्जली करें । फिर ताम्रभस्म मिला, यथा विधि रस करके पर्पटी बना लेवें । (र० यो० सा०)

ग्रन्थकारने ताम्र पर्पटी तैयार होनेपर भाँगरेका रस, अडूसेके पत्तोंका रस, त्रिकटुका क्वाथ, त्रिफलाका क्वाथ, अदरकका रस, सहिजनेके मूलका क्वाथ, तेजपातका क्वाथ, कटेलीका रस, बच्छनाभका क्वाथ और चन्दनका क्वाथ इनकी ७-७ भावना देनेको लिखा है । रोगानुरूप भावना देकर प्रयुक्त करें, तो लाभ सत्वर पहुँचता है ।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें ३ समय।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें सेका हुआ जीरा ४ रत्ती, धोयी भांग १, रत्ती, छोटी इलायचीका चूर्ण २ रत्ती मट्ठेके साथ दें। प्रमेहपर त्रिफलाके चूर्ण और शहदके साथ। सन्निपातमें अदरकके रसके साथ। उदरशूलपर एरण्ड तैलके साथ। कुष्ठरोगमें खैरके क्वाथके साथ। अर्शरोगमें नागकेशरके चूर्ण मक्खन और मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह पर्पटी संग्रहणी, प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, वातश्लेष्मज्वर, सन्निपात, वृक्कशूल (Renal Colic) वातरक्त, कुष्ठ, वातपित्त प्रकोप, शोथ मन्दाग्नि, अतिसार, पाण्डु आदि रोगोंका नाश करनेमें हितकर है।

इस ताम्रपर्पटीमें ताम्रभस्म प्रधान है। ताम्रका असर विशेषतः यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्डपर होता है, जिससे उन पिण्डोंकी विकृतिसे हुए रोगों में ताम्र पर्पटी लाभ पहुँचाती है। एवं पित्तविसर्जन क्रियामें प्रतिबन्ध होने के कारण उत्पन्न होने वाले अतिसार, संग्रहणी आदि रोगोंमें ताम्र पर्पटी विशेष लाभदायक है। इस पर्पटीमें विशेष गुण ताम्रका है। उसका वर्णन ताम्र भस्ममें पहिले हो गया है।

क्वचित् यकृद्वृद्धि जीर्ण होनेपर त्रासदायक अतिसार होने लगता है, ऐसे समयपर यकृद्वृद्धि और अतिसार, दोनोंको दूर करनेका कार्य ताम्र पर्पटीके सेवनसे होता है।

(४) विजय पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म ४-४ तोले और शुद्ध बच्छनाभ १ तोला लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें। पश्चात् ताम्रभस्म और बच्छनाभका चूर्ण कर मिला गोघृतमें कल्क बना, लोहेकी कलछीमें मन्दाग्निपर रस करें। रस रक्त-वर्णका होनेपर केलेके पत्तेपर डालकर पर्पटी बना लेवें। इस रसायनको अन्य ग्रन्थकारने "महाविजय पर्पटी" कहा है। (र० का०)

मात्रा—½ से १ रत्ती, दिनमें २ से ३ बार।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक-मूल तथा सोंठ) और शहद। राजयक्ष्मामें शहद-पीपल। शूलमें एरण्डीका तैल। उदरवातपर घीकुंवारका रस। सन्निपातमें अदरकका रस पाण्डुमें त्रिफलाका जल। दादमें बावचीका रस प्रमेहमें त्रिफला और शहद। कुष्ठ-रोगमें खदिरकी छालका क्वाथ।

उपयोग—यह पर्पटी सन्निपातमें उष्णता रक्तके दबानकी वृद्धि (H.B.P.)

नाड़ीकी गति बढ़ना, अतिसार, बेहोशी आदि प्रकोपोंको दूर करके तुरन्त रोगको शमन करती है । ऐसे ही ग्रहणी, शूल, उदरवात, प्रमेह और कुष्ठ आदि रोगोंको दूर करती है ।

उपरोक्त ताम्र पर्पटीका गुण इस पर्पटीमें है और वच्छनाभके गुण-शरीर मेंसे दोषोंको प्रस्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालना, वेदना शमन करना, नाड़ीकी बढ़ी हुई गतिको कम कर देना इत्यादि वे इस पर्पटीमें सम्मिलित होते हैं । मन्दाग्नि और यकृत्, प्लीहा, मूत्रपिण्ड आदिकी विकृतिके बादमें ज्वर सहित अतिसार या ग्रहणी रोग उत्पन्न हुआ हो, ऐसे समय विजय-पर्पटी रोगको यथा शक्य तुरन्त नष्ट करती है ।

यदि यकृत् और प्लीहाकी विकृतिके बाद फुफ्फुस विकृत होकर राज-यक्ष्मा हुआ हो तो यह पर्पटी मूलकारणरूप इन स्थानोंको सशक्त बनाकर और ज्वरको दूर करके राजयक्ष्माका शमन करती है । एवं यकृत् प्लीहाकी विकृतिसे चलनेवाले शूल, उदरवात, पाण्डु, पित्तज और कफज प्रमेह तथा कुष्ठ आदि रोगोंको भी नष्ट करती है ।

सूचना—ताम्र भस्म और बच्छनाभ दोनों अधिक परिमाणमें होनेसे बहुत कम मात्रामें इस पर्पटीका उपयोग करना चाहिये ।

(५) लोह पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म तीनोंको समभाग लेवें । पारद गन्धककी कज्जली करके लोह भस्म मिलावें । पश्चात् पूर्वोक्त रीतिसे पर्पटी बना लेवें । (भै० र०)

यदि लोह पर्पटीमें गंधक द्विगुण लिया जाय तो पर्पटी अधिक सौम्य बनती है । वह प्रसूता और छोटे बालकोंके लिये विशेष उपकारक है ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें ३ समय, जीरेके चूर्ण और मट्ठे के साथ या धनिये, जीरेके क्वाथसे दें । मात्रा १ रत्तीसे प्रारम्भ कर शनैः शनैः बढ़ावें ।

उपयोग—यह पर्पटी संग्रहणी,, अतिसार, पाण्डु, कामला, आमवात, कुष्ठ शूल, प्लीहावृद्धि, आमाशयकी, निर्बलता, मन्दाग्नि, उदावर्त, शोथ और स्त्रियोंके प्रसूति रोगमें संग्रहणी व अतिसारको दूर करती है ।

लोह पर्पटीमें रस पर्पटी और लोह भस्मके गुण मिले हुए है । लोहभस्म का मुख्य गुण रक्ताणुओंको बढ़ानेका है । रस पर्पटीकी अपेक्षा इसमें लोह अधिक है । लोह पर्पटी पाण्डु रोगीको विशेष अनुकूल रहती है । जब ग्रहणी रोगके साथ प्लीहावृद्धि, पाण्डु रोग, कामला या रक्तमें रक्ताणुकी न्यूनता हो तब यह लोह पर्पटी अच्छा काम देती है । दीपन-पाचन गुण होने से

यह पर्पटी मन्दाग्नि, आमवात, शूल, पित्तज प्रमेह और उदरवात आदि रोगोंको भी शमन करती है। रक्तमें रहे हुए दूषित अणुओंका नाश करके शुद्ध रक्ताणुओंको बढ़ाती है इस हेतुसे पित्तप्रधान कुष्ठरोगमें भी लाभ पहुँचाती है और शोथ दूर होता है एवं यह पर्पटी प्रसूताके जीर्ण या मन्द ज्वर अतिसार, संग्रहणी, आमशूल, प्लीहावृद्धि, यकृत्‌वृद्धि, पाण्डु मन्दाग्नि, अम्लपित्त, आमवात इत्यादिको भी दूर करती है।

(६) बोल पर्पटी।

विधि—शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गंधक २ तोले और बीजाबोल (या हीरा दोखी गोंद) ४ तोले लेवें। बीजाबोलको थोड़ा दूधका हाथ (मूण) लगालें। फिर कलछीमें कज्जलीका रस बना, बोलका चूर्ण मिलाकर तुरन्त केलेके पत्तोंपर पर्पटी बना लेवें। एक आध मिनट देरी होगी तो बोल जलकर पर्पटी न्यून गुणयुक्त बन जायगी। दूध न लगानेपर पर्पटी कठोर बनती है और बोलका सत्व भी कुछ जलता है। (यो० र०)

वक्तव्य—रसयोगसागरकारने 'रक्तारि रस' का पाठ लिखा है। उसमें भी पारद गन्धक और बोल ये ३ औषधियां हैं। इसके अनुवादके अन्तमें बोलको बीजाबोलकी अपेक्षा बीजक निर्यास (हीरा दोखी गोंद, खूनखराबा Kino) को लेना विशेष हितावह माना है। हीरादोखी रक्तस्रावका रोध करनेमें आशु फलदायी है।

मात्रा—२ से ८ रत्ती मिश्री और शहद, मक्खन-मिश्री, गुलकन्द, अशोकारिष्ट या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ से ३ समय देवें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

उपयोग—यह बोल पर्पटी बोलबद्ध रसकी अपेक्षा रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तार्श (खूनी बवासीर) रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द करनेके लिये सत्वर लाभ पहुँचाती है। बोल पर्पटीके प्रयोगसे रक्तवाहिनियां संकुचित होती हैं; जिससे रक्तपित्त, उरःक्षत, अर्श और स्त्रियोंके रक्तप्रदर आदि रोगोंमें शीघ्र लाभ पहुँचता है। गर्भाशयमेंसे होनेवाले रक्तस्राव और रक्तार्शमें भी रक्तस्रावको त्वरित बन्द करती है। रक्त स्रावके रक्तको बन्द करनेके लिये इस पर्पटीके साथ अकीकपिष्टी और तृणकान्तमणिपिष्टी मिला देनेसे विशेष लाभ होता है।

कई चिकित्सक बोल पर्पटीमें बीजाबोलके स्थानपर हीरादोखी गोंद (खून खराबा) लेते हैं। हीरादोखी मिलनेपर रक्तस्राव सत्वर रुक जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले मिलाकर कज्जली करें। कज्जलीको कलछीमें डाल रसकर काले बोल (एलुवा) का

चूर्ण ४ तोले मिला तुरन्त केलेके पत्तेपर डालकर दबा देवें ।

(औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिनमें २ बार शहद और घी या शहद और मिश्रीके साथ दें या मुनक्कामें रख निगलवा देवें ।

उपयोग—यह पर्पटी स्त्रियोंके दूषित रक्तका स्राव करा गर्भाशयको शुद्ध और बलवान् बनाती है । यद्यपि गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव करानेके लिये कपासमूलत्वक्‌का क्वाथ या अरिष्ट दिया जाता है; परन्तु कपासमूलत्वक् गर्भाशयको उत्तेजित करके उसमेंसे रक्तस्राव कराता है; परन्तु वह रक्तस्राव स्वयमेव बंद नहीं होता । यह दोष इस पर्पटीमें नहीं है । यह पर्पटी दूषित रक्तका स्राव करा फिर स्तम्भन क्रिया भी कराती है । इस हेतुसे इसके प्रयोगमें रक्तस्रावका अतिरेक नहीं होता ।

इस पर्पटीमें पित्त स्थानमेंसे पित्तका सम्यक् विसर्जन करानेका गुण है । इस हेतुसे यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् न होनेसे उत्पन्न होनेवाले अतिसार, आनाह आदि विकार तथा आमाशयमें पित्तस्राव योग्य न होनेसे उत्पन्न अपचन आदि विकारोंको यह दूर करती है ।

जिस तरह यकृत्‌की निर्बलतासे उत्पन्न विविध व्याधियोंमें यह पर्पटी लाभ पहुँचाती है; उस तरह अन्त्रस्थ वातवाहिनियोंको भी शक्ति प्रदान पुरःसरण क्रियाको उत्तेजित कराती है । इस हेतुसे कोष्ठबद्धतामें यह पर्पटी अच्छा कार्य करती है विशेषतः उपदंशज बद्धकोष्ठपर अच्छा गुण दर्शाती है ।

इसके अतिरिक्त यह गर्भाशयको सबल बनाती है । अतः गर्भाशय विकृति और तरुण स्त्रियोंको होनेवाले हारिद्रक और हलीमक पाण्डुमें उपयोगी है । एवं नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तवमें भी इस बोल पर्पटीसे अच्छा लाभ होता है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(७) पंचामृत पर्पटी

विधि—शुद्ध पारद, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले लें । सबको मिला कज्जली कर यथाविधि पर्पटी बना लें ।

(यो० र०)

मात्रा—१ से ३ रत्तीं दिनमें २ से ३ बार; कूडेकी छाल, पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर चाटें या भूनी हींग, सैंधानमक और जीरेके साथ देवें । अन्त्रक्षयमें आध-आध रत्ती जसद भस्म भी मिलाते रहें । मात्रा १ रत्तीसे आरम्भ करके धीरे-धीरे बढ़ावें ।

सूचना—कोमल प्रकृति वालोंको मात्रा अधिक न बढ़ावें एवं जिनको मट्ठा अनुकूल न हो उनको पंचामृत पर्पटीका सेवन नहीं करावें ।

उपयोग—यह पर्पटी आम और रक्तयुक्त प्रवाहिका, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, वमन, ववासीर, ज्वर कृमि, सूजन, क्षय, पाण्डु, अम्लपित्त और प्रसूता स्त्रियोंके ताप, अतिसार, संग्रहणी, शिरदर्द और सूजनको दूर करती है।

सब कज्जली युक्त पर्पटियोंमें पञ्चामृत पर्पटी श्रेष्ठ है। इस पर्पटीके कार्य मध्यकोष्ठमें पचनेन्द्रियको शक्ति देना, अंतड़ीके दोष नाश करना और जन्तुघ्न, ये तीनों प्रकारके हैं। इसका वियोजन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें होता है। ग्रहणीमें थोड़े भागका शोषण होनेसे तत्रस्थ उपतापका शमन होता है। कुछ कुछ भाग यकृत् और पक्वाशयमें शोषण होकर लाभ पहुँचाता है। इनमेंसे ताम्रभस्म विशेषत: यकृत्में जाकर अपना कार्य करती है और लोहभस्म पक्वाशयमें स्तम्भक और शक्तिदायक असर पहुँचाती है। पारद, गन्धक और लोहका कार्य बृहदन्त्रकी शक्तिको बढ़ानेके लिए होता है। अभ्रकभस्म श्वसनेन्द्रिय, श्वासवह स्रोतस्, श्वासवह केन्द्र, धातुपरिपोषणक्रम और मनोदेशको लाभ पहुँचाती है।

पंचामृत पर्पटी पित्तप्रधान रोगोंमें भी दी जाती है। कारण, ताम्र पित्तका नि:सरण करता है और पित्तमार्गका प्रतिबन्ध मिटाता है। पित्तस्थानके मन्दत्वके हेतुसे पित्तकी उत्पत्ति और स्राव न्यूनांशमें होता हो तो पर्पटी विशेष हितकर है। जीर्ण संग्रहणी, जीर्ण क्षयजन्य अतिसार, जीर्ण अम्लपित्तसे उत्पन्न अतिसार और रक्तरहित अतिसारमें रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मठ्ठे यां दूधके साथ देनेसे रोगको शीघ्र मिटाती है।

क्षयजन्य जीर्ण अतिसार और जीर्ण संग्रहणीमें पंचामृत पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है। अति क्षीण हुए रोगियोंको सुवर्ण पर्पटी भी दी जाती है। परन्तु सुवर्ण पर्पटी जब अधिक ज्वर न हो एवं रोगीकी मानसिक अवस्था विचलित न हो तव दी जाती है। केवल क्षयजन्य विषके हेतुसे अन्त्रमें विकृति होकर अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उससे रोगी अत्यन्त क्षीण हुआ हो और बलमांसविहीनताकी प्राप्ति हुई हो तो सुवर्ण पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है। सुवर्ण पर्पटी क्षयके विषकी नाशक और स्तम्भक है, इसमें शोधन गुण विल्कुल नहीं है। पञ्चामृत पर्पटीमें कुछ अंशमें शोधनगुण भी रहता है। यह गुण भी कोमल प्रकृति वालोंपर प्रतीत होता है। अत: शोधन गुणकी आवश्यकता होनेपर पञ्चामृत पर्पटी दी जाती है।

पञ्चामृत पर्पटीका कार्य निर्जुन्तुक क्षयमें विषघ्न और धातु-परिपोषण क्रमको व्यवस्थित करनेका है। इसी हेतुसे फुफ्फुस, यकृत्, अन्त्र तीनों स्थानोंमेंसे जहाँ क्षय-विकृति हुई हो वहांपर यह अपना लाभ पहुँचाती है। यदि यह विकृति जन्तुजन्य विषप्रकोपसे हुई हो और समस्त शरीरमें फैल गई हो

उस हेतुसे शरीर कृश हो तथा प्रवल अतिसार भी हो तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये। सुवर्णपर्पटीका कार्य विशेषत: अन्त्रविकृतिपर होता है, और पञ्चामृत पर्पटीके कार्यक्षेत्र अन्त्र, यकृत् और फुफ्फुस प्रदेश, ये तीन हैं।

संग्रहणी—अनुलोमक्षयकी संप्राप्ति, यकृत्के पित्तकी उत्पति न्यून होने या अन्त्रमें पित्तस्राव न्यून होनेसे हुई हो तो यह पर्पटी दी जाती है। जब संग्रहणीमें दस्त सफेद रङ्गका बाजरेके आटेके घोल सदृश, दुर्गन्धयुक्त होता हो और दस्तके समय अधिक किछना पड़ता हो तथा मानसिक-आघात होनेपर रोग बढ़ जाता हो तो पञ्चामृत पर्पटी हितकारक है। बड़े बड़े जुलाव, क्षयके कीटाणु और बलमांसविहीनता आदि लक्षण हों तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये।

वक्तव्य - प० श्री यादवजी विक्रमजी आचार्यने लिखा है कि इस पञ्चामृत पर्पटीमें वङ्ग भस्म और यशदभस्म २-२ तोले मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनायी है। वह पंचामृत पर्पटीसे अधिक गुणकारी है। अन्त्रक्षयमें सप्तामृत पर्पटी अकेली या सुवर्ण पर्पटीके साथ मिलाकर देनेसे विशेष लाभ होता हैं। हमने भी इसका अनुभव किया है और अब रोगियोंको सफलता पूर्वक देते रहते हैं।

यदि अम्लपित्तके रोगीको पर्पटी देनी हो तो जहरमोहरा पिष्टी और द्राक्षावलेह मिलाकर देनी चाहिये। अधिक अग्निमांद्य हो, आमाशयका पचन अति कम हो तो पचामृत पर्पटीके साथ एरण्ड ककड़ी सत्व(Papsin) मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है।

यदि संग्रहणीके रोगीको शीतसह ज्वर रहता हो, अति अशक्ति आगई हो, पचनशक्ति भी अतिमन्द हो तो पंचामृत पर्पटीके साथ अभ्रक भस्म सप्तपर्णघन एरण्ड ककड़ीका सत्व (Papsin) और जातिफलादि चूर्ण मिलाकर देना चाहिये।

वातज ग्रहणी होनेपर तालुशोष, चक्कर आना, अति निर्बलता, कानोंमें शब्द होना, हाड़-हाड़ दु:खना, शूल चुभाने समान वेदना, स्वादिष्ट भोजनकी चाह होना, गुदामें काटनेके समान पीड़ा होना, आफरा आना, झागयुक्त मल गिरना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकारपर पञ्चामृत पर्पटी को कालानमक मिले हुये मठ्ठेके साथ देना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्धगंधक ८ तोले, शुद्ध पारद ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला और ताम्रभस्म ६ माशे लें। सबको यथा विधि मिला, कज्जलीकर पर्पटी बना लेवें। (र० का०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती। दिनमें ३ समय, कूड़ाकी छाल पीपल और शहद या शहद और गौमूत्रके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ दें। १

रत्ती से आरम्भकर मात्रा शनैः-शनैः बढावें।

उपयोग—यह पर्पटी नाना प्रकारकी ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट बवासीर, वमन जीर्ण अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तपित्त, क्षय आदि रोगोंको दूर करती है। यह वृष्य, हृद्य, आयुवर्द्धक वलीपलित नाशक और सब रोगोंको दूर करने वाली है। अग्नि प्रदीप्त करती है; जिससे पुनः नूतन रोगकी उत्पत्ति की शंका ही नहीं रहती।

पहिली विधि और दूसरी विधिमें औषधियां समान हैं, केवल मात्रामें अन्तर है। पहिली विधिमें ताम्र अधिक होनेसे अधिक उष्ण है, इससे ताम्र कम होनेसे यह सौम्य है। ग्रहणीमें जब पित्त प्रवेश न्यून होता हो; मलका रंग श्वेत हो, यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानको अधिक बल देना हो और पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो तब पहिली विधि वाली पर्पटी उपादेय है। जब इन कार्योंकी आवश्यकता कम हो, मलमें पीलापन हो; पित्त की अधिकता हो तथा हृदयपर उत्तेजक और बल्य असर एवं कफ निर्दोष कराने और रक्तवृद्धिकी आवश्यकता विशेषांशमें हो; तब यह दूसरी विधि उपयोगी है। इस रीतिसे अन्य रोगोंके लिये भी किंचित् अन्तर पड़ता है।

(८) प्राणदा पर्पटी।

विधि—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, नाग भस्म, वंगभस्म, कालीमिर्च, शुद्ध बच्छनाभ प्रत्येक २-२ तोले और शुद्ध गन्धक १४ तोले लेवें पारद गन्धककी कज्जलीके साथ और औषधियोंके सूक्ष्म चूर्णको मिला लोहेकी कड़ाहीमें थोड़े घृतके साथ डालकर बेरके कोयलोंकी अग्निपर रक्खें। सम्हालपूर्वक लोहशलाकासे चलाते रहें। रस होनेपर पर्पटी बना लें। (नि० र०)

मात्रा—½ से १॥ रत्ती। शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपानके साथ दें। ग्रहणी रोगमें मात्रा ½ रत्तीसे आरम्भ करके शनैः शनैः बढ़ावें किन्तु १॥ रत्तीसे अधिक न बढ़ावें। कारण इसमें हृदय अवसादक बच्छनाभ मिला हुआ है।

उपयोग—प्राणदा पर्पटी, पाण्डु, प्रवाहिका, संग्रहणी, ज्वरातिसार, खांसी, क्षय, प्रमेह और मन्दाग्निको दूर करती है।

यह पर्पटी आमपाचक, उष्ण, जन्तुघ्न और ज्वरहर है। आम कफको जलाती है तथा नूतन उत्पत्तिको रोकती हैं, सेन्द्रिय विषको प्रस्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालती है, अग्निको प्रदीप्त करती है, तथा ज्वरातिसार प्रवाहिका, कफ कास, क्षय रोगमें अतिसार, अग्निमांद्य और कफ प्रमेहको नष्ट करती है।

आमाशयिक रसमें जब लवणाम्ल (Acid Hydro Chloric) की उत्पत्ति कम हो जाती है, तब आमोत्पत्ति बढ़ जाती है। ऐसी अवस्थामें

अपथ्य भोजन, अधिक भोजन, देरसे पचने वाला भोजन या भोजनपर भोजन किया जाय तो आमकी अधिक वृद्धि हो जाती है। फिर मलके साथ थोड़ा-थोड़ा आम निकलता रहता है और कुछ मल अन्त्रकी दीवारके भीतर चिपकता रहता है। जब अन्त्रमें आमका संग्रह बढ़ जाता है, तब द्रवांशके शोषणमें प्रतिबन्ध होता है। फिर द्रव अधिक हो जानेपर आमातिसारकी संप्राप्ति हो जाती है। उस समय अरुचि, क्षुधानाश, व्याकुलता, उबाक, वमन (किसीको खट्टी वमन) और निद्रानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी स्थितिमें पहिले एरण्ड तैलका विरेचन देकर आमको निकाल देना पड़ता है। फिर आमोत्पत्तिको रोकने और अतिसारको दूर करने वाली औषधि दी जाती है। किन्तु बार-बार आहार-विहारमें भूल होनेपर रोग जीर्ण हो जाता है। और थोडे-थोड़े दिनपर (आमका संग्रह होनेपर) आक्रमण होता रहता है। ऐसो स्थितिमें तक्रके अधिकारीको तक्र कल्प कराया जाता है। तथा प्राणदा पर्पटीका सेवन चतुःसम चूर्ण (लोंग, जायफल, सौंठ और सोहागेका फूला) के साथ कराया जाता है।

यदि मुखपाक, अम्ल वान्ति, दाह आदि लक्षण हो तो तक्र कल्प नहीं कराना चाहिये। दुग्ध कल्प कराना चाहिये। किन्तु प्रवाहिका हो तो दुग्ध कल्प भी रोगीसे सहन नहीं होता। ऐसी अवस्थामें लघु भोजनके साथ २-४ मास तक प्राणदा पर्पटीका सेवन कम मात्रामें कराया जाता है। भोजनके पश्चात् दिनमें २ बार जीरकाद्यरिष्ट या चविकासव, जो अधिक अनुकूल हो, वह एक या दोनों मिलाकर देते रहना चाहिये। हो सके तो जलको उबाल, शीतल करके लेनेकी सूचना कर देवें, जिससे आमोत्पत्तिमें सत्वर लाभ हो सके।

कितने ही रोगियोंको आमसंग्रहणीके साथ पेचिश होता है। जिसमें बार-बार उदरशूल होकर आममिश्रित थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता रहता है। ऐसी स्थितिमें प्राणदा पर्पटीके साथ कुटजादि वटी मिला देनी चाहिये। भोजनके पश्चात् कुटजारिष्ट देनी चाहिये तथा तक्र (या अजा दुग्ध) का सेवन भी कराते रहना चाहिये।

यदि उदरमें तीव्र वेदना हो तथा मलमें आम और रक्त भी गिरता हो, तो प्राणदा पर्पटीके साथ अफीम प्रधान जातिफलादि वटी (प्रवाहिका) थोड़ी थोड़ी मात्रामें मिला देनी चाहिये।

यदि आम संग्रहणी ५-७ वर्षसे अधिक पुराना हो गया हो, शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई हो, रस रक्त आदि सब धातुएं क्षीण हो गई हों, और रोगी बार-बार अपथ्य सेवन कर लेता हो तो कोई भी औषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती। फिर भी अपथ्य सेवनसे आशुकारी आमातिसारका आक्रमण हुआ हो तो एरण्ड तैलसे उदर शुद्धि करके प्राणदा पर्पटीका

४-६ दिन तक सेवन करानेपर रोगका शमन हो जाता है।

(९) शीतल पर्पटी

विधि—कलमीशोरा २० तोले और गन्धकका शुद्ध तिजाब (Acid Sulphuric) २ तोले लेवें। दोनोंको पात्र (जिसमें उबल सके ऐसे पात्र) में डालकर निर्धूम कोयलोंकी मन्द अग्निपर रख और सम्हालपूर्वक लोह शलाकासे चलाते रहें। गन्धकका धूम्रां श्वासमें न आजाय, इसका ध्यान रखें। धूआं निकल जानेपर जब पतला रस सफेद रंगका बन जाय, तब पात्रको नीचे उतारकर उसीमें ही चारों ओर पर्पटीको फैला देवें, फिर शीतल होनेपर पर्पटी खोलकर निकाल लें।

(स्व० पं० बंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा—६ से १२ रत्ती। सुबह जीरेके चूर्णके साथ देकर थोड़ा शीतल जल पिलावें। आवश्यकतापर एक घण्टे बाद दूसरी मात्रा दें।

उपयोग—यह पर्पटी मूत्रकृच्छ्र या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुए मूत्रावरोधको सत्वर दूर करती है। एवं अम्लपित्त, वमन, उदरशूल वृक्क-शूल, अजीर्ण, यकृद्विकार आदिमें भी हितकर है।

अम्लपित्त रोगीको भोजन कर लेनेंके बाद हृदयमें शूल होता हो तो वह पर्पटी भोजनके बाद दिनमें दो बार शीतल जलके साथ देनी चाहिये। इसके सेवनसे दूषित पित्तका रूपान्तर होता है। मूत्र साफ आता है और दाह, शूल और बेचैनी दूर होते हैं।

आयुर्वेदके मतानुसार शोरा अति उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, दाहक, शोषक, वातनाशक और पित्तकारक है। प्लीहा, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, वात-रक्त, कुम्भकामला, श्वास, शूल, आध्मान, पिटिका आदिमें हितावह है।

डाक्टर वसु लिखते हैं कि शोरेके सेवन अल्प मात्रामें करनेपर लाला-निःसारक, अग्निप्रदीपक, बल्य, शैत्यकारक, रसायन (परिवर्तक), पित्त-निःसारक और क्षारनाशक है। यह क्षुधाको बढ़ाता है और बलका संचार करता है। अधिक मात्रामें सेवन करनेपर प्रदाह (दाह-शोथ) और दाह विष-क्रियाकी उत्पत्ति कराता है फिर मुँह के भीतरकी श्लैष्मिक कला पीली हो जाती है।

शोरेके उक्त गुण इस पर्पटीमें अवस्थित हैं। अतः अत्यधिक मात्रामें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) मल्लपर्पटी (पर्पटी रस)

विधि—सफेद राल १६ तोले और सोमल २ तोले लेवें। प्रथम लोहेकी कड़ाहीमें थोड़ा घी लगा रालका रस तैयार करें। फिर नीचे उतार तुरन्त

सामलका चूर्ण मिला देवें। पश्चात् केलेके पत्ते पर फैलाकर पर्पटीको दबा दें। (सि० भै० म०)

मात्रा—½ से १ रत्ती। शहदके साथ दिनमें दो बार।

उपयोग—मल्लपर्पटी कफज्वर, वातज्वर और ज्वरके उपद्रवरूप वात-भ्रम (चक्कर आना), श्वासावरोध, कफवृद्धि और हृदयावरोध आदि दोषों को दूर करती है।

इस पर्पटीमें सोमल आता है अतः यह तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है। इसका फुफ्फुस हृदय और वातवाहिनियोंपर उत्तेजक परिणाम होता है। अतः जब वातकफप्रकोपसे मंद-मंद ज्वर या अन्य विकार होते हों तब यह अच्छा काम देतो है। विशेष वर्णन मल्ल भस्ममें देखें।

सूचना—पित्तप्रकोपमें इस औषधिका उपयोग न करें ज्वरका वेग अधिक बढ़ रहा हो; उस समय यह औषधि न दें। वरना अस्त्रभिनोदन (रक्तके दबावकी वृद्धि) होकर मस्तकमें रक्त बहुत बढ़ जायगा और बेहोशी, भ्रम आदि लक्षण बढ़ जायेंगे। अतः ज्वर कम होनेपर देवें।

(११) अभ्र पर्पटी

विधि—अभ्रक भस्म १ भाग, शुद्ध पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग लेवें। सबको यथा-विधि मिला, कज्जलीकर विधिवत् पर्पटी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। त्रिकटु और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह पर्पटी कफ प्रधान कास, क्षय रोगमें अतिसार, सगर्भा स्त्रीके अतिसार, संग्रहणी, श्वास, अरुचि, पाण्डु और कफप्रधान रोगोंको नष्ट करती है। अनेक बार यह पर्पटी लोह पर्पटीके साथ मिलाकर व्यवहृत होती है।

राजयक्ष्मा रोगमें कभी कफ निगलनेमें आनेपर अन्त्रमें क्षयकीटाणु लग जाता है। फिर अतिसार भी हो जाता है। उन रोगियोंको तथा अन्त्रक्षयसे पीड़ित रोगी तथा सगर्भाके ग्रहणी रोगमें यह अभ्र पर्पटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसका सेवन दूधके साथ एवं मट्ठे के साथ हो सकता है। ज्वर रहता हो तब दूध देवें। ज्वर न हो और मट्ठा अनुकूल हो उन रोगियोंको मट्ठे का सेवन कराना चाहिए।

सगर्भाको अभ्र पर्पटी देनेसे प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण भी गर्भ के संरक्षणार्थ देते रहना चाहिए।

सूचना—गरम-गरम चाय, दूध और गरम-गरम भोजनका भी त्याग करना चाहिए। भोजन मधुर और हल्का देना चाहिये। क्षार, खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, बेंगन और दालका त्याग कराना चाहिये।

खरलीय रसायन

रस रसायन शास्त्रमें रस पारदको कहते हैं। इस कारणसे जिन जिन औषधियोंमें पारद या पारदके मूल खनिज द्रव्य सिंगरफको मिलाया जाता है; उन सबका रस प्रकरणमें अन्तर्भाव होता है और वे सब रस-रसायन कहलाते हैं। रसायनके २ विभाग, कूपीपक्व और पर्पटी पहले प्रकरणमें लिख चुके हैं। इस कारण इस प्रकरणका नाम "खरलीय रसायन" रखा है। पारदयुक्त औषधिको जितने अधिक परिमाणमें खरल किया जाय, उतने ही पारदके परमाणुसूक्ष्म होते हैं जिससे लाभ भी उतना ही शीघ्रतासे पहुँचता है। पारद युक्त औषधि विशेष समय तक सेवन करनेसे अरुचि उत्पन्न नहीं होती एवं दीर्घकाल तक गुणयुक्त रहती है और थोड़ी मात्रामें शीघ्र लाभ पहुँचाती है।

अनेक औषधियां पारदमिश्रित न होनेपर भी रसायन समान गुणयुक्त होनेसे उन औषधियोंका इसी प्रकरणमें समावेश किया है।

पारा, गन्धक और विषैली वस्तुओंको शुद्ध करके ही औषधि योगमें मिलाना तथा खानेके लिये आंवलासार गन्धक ही उपयोगमें लेना चाहिये। दंडागन्धक खानेके लिए हितकर नहीं है।

फिटकरी और सोहागाका फूला करके उपयोगमें लेना चाहिये एवं हींग को घीमें भूनकर ही पिलाना चाहिये।

औषधि तैयार करनेमें पारद, गंधक, धातु भस्में और काष्ठादिक वस्तुएँ साथमें हों तो पहले पारद और गन्धकको मिला १२ घण्टे खरलकर कज्जली करें। फिर भस्में मिलावें पश्चात् विषैली वस्तुएँ और अन्तमें काष्ठादि वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलावें। पाठमें शिलाजीत, अफीम और गूगल हों तो इनको थोड़े जलमें मिला एक रस करके मिलाना चाहिये।

यदि रसायनोंके गुणकी वृद्धि करना हो तो पारद या कज्जलीको पहिले रोगशामक औषधियोंके क्वाथ या स्वरसकी भावना देवें। फिर प्रयोग तैयार करें। जैसे ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरघ्न औषधियोंके क्वाथकी भावना पित्तप्रकोपमें पित्तशामक, वातवृद्धिमें वातहर, कफनाशके लिये कफस्रावी, कुष्ठनाशके लिये कुष्ठघ्न, अतिसार होनेपर ग्राही एवं मधुमेहको दूर करनेके लिये गुड़मार, जामुनकी छाल या न्यग्रोध आदि वर्गवाले द्रव्यों की भावना देनेसे रसायन सत्वर लाभ पहुँचाता है।

वनस्पति द्रव्योंको उसी द्रव्यके स्वरसकी भावनायें देनेसे उस द्रव्यमें गुण वृद्धि होती है। यह अनुभव आमलकी रसायन आदि औषधियोंके प्रयोगसे मिलता है। वनस्पतिके समान तैल, घृत, उपधातु आदिके साथ संयोग विश्लेष (शोधनद्वारा मलत्याग), काल, संस्कार और युक्तिसे नूतन

गुणाधान भी कराया जाता है। यह औषधि रस-रक्त आदिमें सत्वर शोषित हो जाती है। फिर थोड़ी ही मात्रामें अधिक फल प्राप्ति कराती है। इस आयुर्वेदिक सिद्धान्तको महर्षि-आत्रेयने कल्पस्थानके १२ वें अध्याय में निम्न वचनोंमें दर्शाया है।

भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः ।
सुभावितं ह्यल्पममि द्रव्यं स्याद् बहुकर्मकृत् ।।
स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत् ।
अल्पस्यामि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम् ।।
कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ।।

इस नियमको लक्ष्यमें रखकर औषधियोंको अनुकूल द्रव्योंके स्वरसोंकी भावना देनेका आचार्योंने विधान किया है। रोगशामक समान कार्यकारी द्रव्योंकी भावनाएं शास्त्रीय मर्यादा अनुरूप जितनी अधिक दी जायेंगी, उतनी ही गुणवृद्धि होती है। भावना देनेमें आलस्य करनेपर गुण लाभ कम मिलता है और देर भी होती है।

रस या गुटिकाप्रभृति औषधियोंमें जहांपर भावना देनेके लिये वनौषधि का साक्षात् स्वरस मिल सकता हो, वहाँपर अच्छी रीतिसे औषधि आर्द्र हो जाय, रबड़ी सदृश हो जाय; उतना स्वरस मिला सूखनेतक खरल करनेको एक भावना देनी हो, उसे भाव्य द्रव्यके (जिस औषधिकों भावना देनी हो उसके) समान लेकर ८ गुनें जलमें मिला क्वाथकर अष्टमांश शेष रहनेपर भावना दें। यदि उतने क्वाथसे भी द्रव्यमें अच्छी रीतिसे गीलापन न आता हो, तो क्वाथ करनेको औषधि दुगुनी लेकर क्वाथ करें।

जब रसायन या अन्य कोई औषधि खरलमें हो और घुटाई चालू न हो या रात्रिके समय घुटाई बन्द रहे, तब मोटे कार्डबोर्ड या लकड़ीके ढकनसे खरलको ढक देना चाहिये जिससे बीचमें बत्ता खड़ा रह सके। इस रीतिसे औषधि बन्द रहनेसे बाहरका कचरा या सूक्ष्म जन्तु नहीं गिरेंगे। इसके अतिरिक्त भावनाके लिए मिलाया हुआ रस निकम्मा सूखकर औषधिमें अनावश्यक क्षारकी वृद्धि नहीं होगी। जैसे सुवर्णमालिनी वसंतकी घुटाई अधिक दिनों तक नहीं होती। उस औषधियुक्त खरलको यदि रात्रिके समय न ढके तो उसमें नींबूके रसके क्षारका परिमाण अधिकांशमें हो जायगा जिससे औषधिका गुण न्यून हो जायगा। भावनामें मिलानेका रस उतने अंशमें मिलावें कि जिसमेंसे बहुत हिस्सा शामतक घुटाई करनेमें सूख जाय। अधिक रस बार बार शेष रह जानेसे औषधियोंमें कुछ अंशमें विकृति हो जाती है।

औषधियोंको भावना देनेके पश्चात् गोलियां बनाकर छायामें जहाँ कूड़ा कचरा न उड़ता हो ऐसे स्थानपर सुखावें और सूख जानेपर साफ अच्छे डाट वाली शीशियोंमें भर देवें। यदि गोलियां थोड़ी गीली भर दी जायेंगी तो उस औषधिमें विक्रिया होकर थोड़े ही दिनोंमें दुर्गन्ध आने लगेगी एवं औषधि अच्छी सूख जानेपर भी खुली रखी जायगी तो उसमेंसे सत्वाँश उड़ता रहनेसे औषधि थोड़े ही दिनोंमें हीनवीर्य हो जायगी।

रसायन वाली औषधियोंको घोटनेके लिए पक्के पत्थरके खरलका उपयोग करें। लोहेके खरलमें क्षारयुक्त औषधि मिलाने अथवा नींबू आदि के रसोंकी भावना देनेसे औषधिमें लोहेका जंग मिल जाता है तथा औषधि काली पड़ जाती है।

(१) विश्वतापहरण रस (विषमज्वर)

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल और अकलकरा इन औषधियोंको समभाग लेकर खरल करें। फिर करलेके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोटकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली जीरा-मिश्री ६-६ रत्तीके साथ दें। ऊपर जल पिलावें।

उपयोग—यह रसायन विषमज्वर, धातुगतज्वर, अपचनजनितज्वर, जीर्णज्वर, द्वन्द्वजज्वर, वातज्वर और कफज्वरको दूर करनेमें अति उपयोगी है अनेक दिनों तक स्थिर रहने वाले ज्वर इससे थोड़े ही दिनोंमें चले जाते है। नूतन और जीर्णज्वर जिनमें शीत रहता है; उन ज्वरोंमें इससे सत्वर लाभ होता है। मुद्दतोज्वर जो रस-रक्त, माँस आदि धातुओंके आश्रित होकर कुपित होता है, नाना प्रकारके उपद्रवोंको आरम्भ करता है, उनको संपूर्ण उपद्रवों सहित थोड़े ही दिनोंमें दूर कर देता है। यकृत् प्लीहावृद्धि को कम करता है, कच्चे आमको जलाता है। पाचनक्रियाको बढ़ाता है और विषम ज्वरके कीटाणुओंको नष्टकर ज्वरको निवृत्त करता है।

मलेरियाके कितने ही रोगी बार-बार क्विनाइन लेते हैं। फिर क्विनाइन लेते हुए ज्वर निवृत्ति नहीं होती। ४-६ रोजमें पुनः पुनः मलेरिया आता रहता है। किसी किसीको क्विनाइन लेनेपर निद्रानाश, मूत्रोत्पत्ति का ह्रास, घबराहट, रक्तस्राव आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियोंको इस रसायनके सेवनसे लाभ हो जाता है।

डाक्टरीमें क्विनाइन मलेरियाके लिये सर्वोत्तम औषधि मानी गई है, किन्तु रक्त-दबाववृद्धि पीड़ित वृक्क रोगी और पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको

मलेरिया आनेपर क्विनाइन नहीं देना चाहिए क्योंकि इन दिशाओंमें क्विनाइन देनेसे ज्वर १०५° तक बढ़ जाता है, जिससे अति व्याकुलता, निद्रानाश, हृदयकी धड़कन बढ़ना, उबाक आना, आमाशयमें पित्त अति खट्टा होकर ऊष्ण बन जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना वमन होनेपर कण्ठमें दाह और नेत्रोंमें जल आना, मूत्रमें जलन होना, दिनमें मूत्रावरोध होना और रात्रिमें थोड़ा थोड़ा पेशाब होते रहना, प्यास अत्यधिक लगना, मुंह कड़वा रहना आदि लक्षण उपस्थित रहते हैं। भूलवश क्विनाइन दिया गया हो तो ऐसी अवस्थामें तुरन्त सूतशेखर और प्रवाल पिष्टी देकर व्याकुलता शमन करनी पड़ती है, फिर दूसरे दिनसे विषम ज्वरके शमनार्थ सप्तपर्णघनादि वटी या विश्वतापहरण रस दोनोंमेंसे एक औषधि देनी चाहिए। हृदयस्पन्दनमें तेजी हो या उत्तेजक औषधि देनेपर तेजी बढ़ जाती हो ऐसे रोगीको सप्तपर्णघनादि वटी भी नहीं दे सकते क्योंकि, उसमें कुचिला मिला हुआ है।

अति उग्र न हो, शनैः शनैः स्थिर कार्य करे ऐसी औषधि विश्वतापहरण रस हैं। इस रसायनके आरम्भ होनेपर उसी दिनसे संताप कम होता है, निद्रा आती हैं, मानसिक प्रसन्नता रहती है और रोगीको विश्वास हो जाता है कि यह औषधि मुझे लाभ पहुँचावेगी। फिर २-४ दिनमें ज्वरको दूरकर शरीरको स्वस्थ बना देती है।

पथ्य रूपमें हम रोगीको सुबह-शाम औषधि लेनेके १ घण्टे बाद दूध पिलाते हैं और दोपहरको मोसम्मी देते हैं। मलकी शुद्धि होती रहती है तो मोसम्मीका रस देते हैं। अन्यथा मोसम्मी हो खिलाते हैं।

(२) शीतभंजी रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, सोहागेका फूला, शुद्ध बचछनाभ, सोंठ, मिर्च और पीपल, सब समभाग मिला चित्रकमूलके क्वाथ की ३, अदरकके रसकी ७ ओर नागरबेलके पानके रसकी ३ भावनाये देकर मिर्चके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली। अदरकके रस और शहद या गुनगुने जलके साथ, दिनमें २ वार देवें।

उपयोग—यह रस कफज्वर, शीतांग, त्रिदोष, सततज्वर आदिको दूर करनेमें अति उपयोगी है। कफ और ठण्डीको दूर करके १५-२० मिनटमें शरीरको गर्म बनाता है। एवं सतत रहने वाले ज्वरोंमें उष्णताका शमन करके शरीरको शीतल बनाता है।

विश्वतापहरण रसकी अपेक्षा इस रसायनमें चित्रकमूल आदि दीपन द्रव्योंकी भावनाओंके कारणसे आमशोषण करनेका गुण अत्यधिक परिमाणमें

है। शीतभंजी रस नाड़ियोंमें भरे हुए कफ (मल) को सत्वर दूर करता है और पचनक्रियाको सुधारता है। यह रसायन सन्निपातकी तन्द्रामें सुंघानेमें भी उपयोगी है।

विषमज्वरके कितने ही रोगियोंसे क्विनाइन सहन नहीं होता। उनको क्विनाइन देनेपर रक्तदबाववृद्धि, निद्रानाश, नाक से रक्तगिरना, नेत्रोंमें लाली, मूत्रावरोध, बधिरता और व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको शीतभंजी देना चाहिए। यद्यपि क्विनाइन देनेसे मलेरियाके कीटाणु सत्वर नष्ट होते हैं। इस रसायनसे उतना जल्दी लाभ नहीं पहुँचता तथापि यह भीतरकी शक्तिको सबल और रक्तादि धातुओंको निर्विष बनाता है। यह कार्य क्विनाइनसे नहीं होता।

इस रसमें ताम्रभस्म होनेसे यह यकृत्-प्लीहापर विशेष असर पहुँचाता है। यकृत् प्लीहा बढ़े हों तो वृद्धिका ह्रास होता है तथा पित्तस्राव योग्य परिमाणमें होने लगता है, जिससे अन्त्रमें रहे हुए कीटाणु और आमविषका नाश होकर अन्त्र शुद्ध होता है। फिर ज्वर सरलतामें दूर होजाता है। कफ ज्वर आनेपर श्लेष्मकी वृद्धि, वायु सहन न होना, रोंगटे खड़े होना, क्षुधानाश, त्वचा चिपचिपी होना, जिह्वापर सफेद मैलकी तह जम जाना, मस्तिष्कमें भारीपन, हृदयमें घबराहट, शरीरमें जड़ता, आलस्य, उबाक, निद्रावृद्धि, हाड़-हाड़ फूटना, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर यह रस आशु-फलप्रद है। इस तरह कफप्रधान सन्निपातमें भी इस रसके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचाता है।

वक्तव्य—जब मस्तिष्कमें रक्तदबाववृद्धि, नेत्रोंमें लाली, ज्वर १०४° या अधिक, अधिक स्वेदोत्पत्ति, दाह, तृषावृद्धि, व्याकुलता और अति तेज नाड़ी आदि लक्षण हों तब इस रसका प्रयोग हो सके तब तक नहीं करना चाहिये। उस अवस्थामें सूतशेखर विशेष हितावह है।

इस रसका उपयोग श्री वैद्यराज पं० कांतिलालजी आचार्य अनेक वर्षोंसे अधिक परिमाणमें, सफलतापूर्वक अनेक रोगोंपर सर्वदा करते रहते हैं।

श्रीयुत पं० कांतिलालजीके अनुभव अनुसार यह रस मुख्य वात और कफ प्रकोप और गोण-पित्त प्रकोपपर उत्तम कार्य करता है। इस रसायनके सेवनसे शान्त निद्रा प्राप्त होकर उन्माद और प्रलापका शमन हो जाता है। पचनसंस्थानमें रहे हुए आमका पचन होता है और शौच आकर उदर साफ हो जाता हैं। इस तरह मूत्रावरोध और अफारा आया हो तो वह भी दूर हो जाता है। रक्तमें संगृहीत ज्वर-विषको जलाकर तुरन्त ज्वरका शमन कर देता है। सूतिकाको वातप्रकोप होकर उन्माद हो गया हो तो उसे भी दूर कर देता है।

प्रतिदिन आनें वाले विषमज्वर पर सुदर्शन क्वाथके साथ शीतभंजीरस देनेसे क्विनाइनके सदृश हानि नहीं होती। आमपचन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

अपचनजन्य ज्वरको यह शीघ्र दूर कर देता है। प्रतिश्यायसह ज्वर (Influenza) पर यह रस बनप्साके क्वाथके साथ देनेसे तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है। ज्वरावस्थामें रोगीको लंघन कराना चाहिये।

कफप्रधान श्वासमें होंने वाली घबराहटको दूर करनेके लिये यह व्यवहृत होता है। आक्षेपक वातका बार-बार दौरा होनेपर इस रसकी ३-४ मात्रा २-२ घण्टेपर देनेसे दौरा रुक जाता है। पत्थर, लकड़ी, शलाकादि नाकमें प्रवेश हो जानेपर शीतभञ्जी रस सुँघानेसे २-४ छींक आकर प्रवेशित वस्तु निकल जाती है। सन्निपातकी तन्द्रामें शीतभञ्जी रसका नस्य देनेसे थोड़े ही समयमें सुधि आजाती है। इस तरह इस रसका उपयोग अन्य रोगोंपर भी किया है।

दूसरी विधि—वङ्गभस्म, नागभस्म, पीला सोमल, शुक्ति भस्म और शुद्ध नीलाथोथा इन ५ औषधियोंको समभाग मिला करेलेके पत्तोंके रसकी ७ भावनाए देकर मूंग समान गोलियां बनावें। (र० का०)

मात्रा—१-१ गोली। जीरा और मिश्रीके साथ। पालीके ज्वरमें ज्वर आनेके ६ घण्टेके पहिले एक मात्रा और ३ घण्टे पहिले दूसरी मात्रा दें। जीर्ण ज्वरमें दिनमें दो बार दूध पिलाकर गोली निगलवा देवें।

उपयोग—यह रस विषमज्वर, संतत, सतत, एकाहिक, तृतीयक चातुर्थिक, शीतज्वर, जोर्णज्वर, कफ, श्वास, आम, मंदाग्निको दूर करता है। इस औषधिके सेवनसे अनेक दिनोंसे आनेवाले और बार-बार उखट कर आने वाले ज्वर दूर हो जाते हैं।

यह रसायन विषमज्वर, विभिन्न कृमि कीटाणु जन्य ज्वर और आमविषज ज्वरपर तत्काल गुण दर्शाता हैं। नूतनावस्थामें पीड़ितों एवं जीर्णावस्था पीड़ित दोनों प्रकारके कई रोगियोंको दिया गया है। तुरन्त रोगके कारणको नष्ट करके रोगको दूर करता है। यह वैद्योंको यश दिलाने वाली श्रेष्ठ औषधि है।

कफ प्रधान, जीर्ण श्वास रोगमें यह रस दूधकी मलाई और मिश्रीके साथ कुछ दिनों तक देते रहनेसे रोगको जड़ मूलसे दूर करता है और शरीर सबल बना देता है। रोग दूर हो जानेपर भी पचत-क्रिया अनुरूप दूधकी मलाई २ से ४ तोले तक या मक्खन १ से २ तोले तक शक्कर मिलाकर २-४ मास तक लेते रहनेसे लीन विष नष्ट होता है और बल-बुद्धि होती है। परिणाममें फिरसे रोगका आक्रमण नहीं होता।

(३) सूतराज रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ और सोहागेका फूला १-१ तोला और गायकी छाछमें शुद्ध किये हुये धतूरेके बीज ४ तोले लेवें। सबको खरलमें एक दिन तक घोटें। फिर धतूरेके बीज और बच्छनाभके क्वाथकी ३-३ भावनायें तथा त्रिकटुके क्वाथकी ५ भावनाएँ देकर उड़दके बराबर गोलियाँ बांधें। इस औषधिको "मृतप्राणदायी सूतराज" कहते हैं।
(र० यो० सा०)

मात्रा—एकसे दो गोली। दिनमें २ समय। जल, अदरकके रस और मिश्री तुलसीके रसके साथ। ज्वर सहित अतिसारमें नागरमोथेका क्वाथ, ग्रहणी और अर्शमें मिश्री और शहद, वातप्रकोपमें त्रिकटु और चित्रकमूल का क्वाथ, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादमें शुद्ध धतूरेके बीज ५ नग और मिश्रीका अनुपान दें। इस रीतिसे अन्य अनुपानों की योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग—यह रस शीतांग सन्निपात कफज्वर, वातज्वर, वातश्लेष्म-ज्वर (Influenza) फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), प्रतिश्याय, कफ-प्रकोपसे उत्पन्न रोग, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफप्रधान नया ग्रहणी रोग, अर्श, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है।

इस रसके सेवनसे नाड़ियोंमें संगृहीत कफ और अन्तड़ीमें रहे हुये आम का शोषण होता है तथा मल मूत्रावरोध दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, फिर आमाशय, फुफ्फुस, अन्त्र और मूत्राशय शुद्ध होकर अपनी-अपनी क्रियाको नियमित करने लगते हैं तथा ज्वर शमन हो जाता है।

इस रसके सेवनमें दूध, दूधके बने पदार्थ, मट्ठा, चांवल और शक्कर आदि पदार्थ पथ्य माने जाते हैं। फिर भी रोग और प्रकृतिका विचार करके भोजन देना चाहिये।

सूचना—इस रसमें बच्छनाभकी मात्रा अधिक है, अतः निर्बल हृदय वालोंको यह रस अति कम मात्रामें देना चाहिये। कारण बच्छनाभ हृदय की गतिको शिथिल करता है।

(४) कस्तूरी भैरव रस

विधि—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाभ, सोहागेका फूला, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च, पीपल और कस्तूरी सब समभाग लें। कस्तूरीको छोड़ शेष औषधियाँ, मिलाकर ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करें। फिर कस्तूरी मिलाकर ३ घण्टे नागरबेलके पानके रसमें खरल करके मिर्चके समान गोलियाँ बांधें। भावना देनेको मूल ग्रन्थकारने नहीं लिखा, अनुकूल समझकर हमने बढाया है। (र० रा० सु०)

वक्तव्य—इस रसायनके पाठमें बम्बईके सुप्रसिद्ध वैद्यराज आयुर्वेद मार्तण्ड स्व० श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य १ भाग 'कर्पूर' भी मिलाते थे। कर्पूर मिलानेसे प्रयोग विशेष लाभप्रद बन जाता है। कुचलेका सत्व (स्ट्रिकनिया) इसमें $\frac{1}{६४}$ रत्ती प्रति मात्रामें मिला देनेसे हृदयपर उत्तम प्रभाव होता है। कस्तूरी भैरवका प्रयोग विशेषतया शीतांगकालमें होता है। कर्पूर मिलानेसे कस्तूरी और हिंगुलका कार्य प्रबलतर होता है। परिणाममें शीत तुरन्त दूर होकर उत्तेजना आ जाती है और हृदय नियमित कार्य करने लगता है, नाड़ियोंको बल मिलता है।

मात्रा—२ से ३ गोली; दिनमें २ से ३ समय, जल या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—यह रस ज्वरकी तरुणावस्थामें आम-पाचन और ज्वर-शमनार्थ दिया जाता है। इस औषधिके सेवनसे १४ दिनके मुद्दती ताप प्रलापक सन्निपात (Typhus Fever) और २१ दिनके मुद्दती ताप, आंत्रिक सन्निपात (Typhoid Fever) में रोगीकी शक्ति स्थिर रहती है और समय पूरा होनेपर ज्वर चला जाता है। जिन रोगियोंके जीवनकी आशा छूट गई हो; ऐसे मोतीझरेके अनेक रोगी ब्राह्मी क्वाथके साथ इस औषधिके सेवनसे सुधर गये हैं। यह रसायन कोमल प्रकृति वालों और बालकोंके लिये भी हितकर हैं। कफ और वातप्रधान सन्निपातमें प्रलाप, शीत, निद्रानाश या वातप्रकोपको दबानेके लिये भी अच्छा काम देता है। प्रसूताके धनुर्वात, कम्प, दांत भिचना, श्वास, कास और हृदयावरोधको सत्वर दूर करता है। हिस्टीरिया, अपस्मार, उन्माद और मूर्च्छामें मस्तिष्कको शान्त रखता है और हृदयको भी सबल बनाता है।

इस कस्तूरी भैरव रसमें कस्तूरी और बच्छनाभ दोनोंकी मात्रा अधिक है। इन दोनोंमेंसे पहले कस्तूरीका कार्य आरम्भ होता है। सामान्यतः बालकों नाजुक प्रकृतिकी स्त्रियों आदिके प्रलापक सन्निपातमें कस्तूरी भैरव देनेपर १५-२० मिनट तक कस्तूरीसे किञ्चित् उत्तेजना बढ़ती है। फिर प्रतिक्रिया होकर शामक अवस्था आने लगती है। १ घण्टेके भीतर प्रलाप आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं और निद्रा आने लगती है। यदि १ मात्रासे उचित परिणाम न आया हो तो आवश्यकता अनुसार दूसरी मात्रा भी १ घण्टे बाद दे सकते हैं।

रोगीका हृदय अति निर्बल हो, दिनों तक ज्वर बना रहा हो, फिर विषप्रकोप होकर मन्द-मन्द प्रलाप उपस्थित हुआ हो तो ऐसी अवस्थामें इस कस्तूरी भैरवकी अपेक्षा बृहत् कस्तूरी भैरव (रसतन्त्र० द्वितीय खण्ड) दिया जाय, तो विशेष उपकारक होता है।

(५) सूचिकाभरण रस

विधि—रससिन्दूर, शुद्ध सर्पविष और कस्तूरीको समभाग मिला धतूरे के रसमें १२ घण्टे खरल करके चूर्ण बनालें। (र० यो० सा०)

वक्तव्य—(१) रससिंदूरके स्थानपर बुभुक्षित पक्षच्छेदित पारदसे बना हुआ चन्द्रोदय या मल्लचन्द्रोदयका उपयोग करनेपर इच्छित औषध प्रभाव प्रतीत होता है।

(२) मूल ग्रन्थमें धतूरेके रसमें खरल करनेका विधान है। उस स्थानपर अदरक और तुलसीके रसकी क्रमशः भावना देना विशेष उपकारक होता है।

उपयोग प्रकार—सुईके अग्र भागसे थोड़ासा (१/३२ रत्ती) निकाल, शिर के बालोंको अलगकर, रक्त निकालकर उसमें मिला देनेसे तथा उतने ही परिमाणमें मिश्रीके साथ मिलाकर खिला देनेसे सन्निपातकी बेहोशी और इन्द्रियोंकी शून्यता आदि तत्काल दूर होते हैं। मूर्च्छित व हृदयावसादके रोगियोंमें इंजेक्शन जैसा तुरन्त प्रभाव दिखाता है।

सूचना—दाह होनेपर शर्बत या मिश्री मिला दूध पिलावें।

नोट—असली सर्पविष हाफकिन्स इंस्टिट्यूट-बंबईसे प्राप्त किया जा सकता है।

(६) ज्वर केशरी बटी

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आंवला और शुद्ध जमालगोटा सब समभाग मिला, १२ घण्टे भांगरेके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें (भैं० र०)

निघण्टु रत्नाकरमें भांगरेके स्थानमें द्रोणपुष्पीके रसकी भावना देनेको लिखा है। वह ज्वर शमनमें विशेष लाभप्रद होनेसे हम द्रोणपुष्पीके रसकी भावना देते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ समय, ५ से ७ कालीमिर्चके साथ निगल जायें, ऊपर एक घूंट जल पीवें। बालकोंको सरसोंके बराबर दें। मूलग्रन्थकारने अनुपान भिन्न-भिन्न लिखे हैं। सब प्रकारके ज्वरोंपर नारियलका जल। पित्तज्वरमें शक्कर। सन्निपातमें कालीमिर्च। दाहज्वरमें पीपल और जीरा।

उपयोग—ज्वरकेसरी रस नूतन ज्वर, वातज्वर, पित्तज्वर, दाहज्वर विषमज्वर, सन्निपात, भूतानुबन्धयुक्त ज्वर, प्लीहावृद्धिसे आने वाला ज्वर, पित्तप्रधान कुष्ठ, गुल्म, मलावरोध, मन्दाग्नि, अजीर्ण शोथ, शूल तथा पित्त और रक्त दोषको शांत करता है।

बहुधा अनेक प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति मलावरोध होनेपर होती है। मलावरोध होनेपर आम और सेन्द्रिय विषकी वृद्धि होती है। फिर आम

और विषको जलानेके लिये जीवन संरक्षक शक्ति उष्णताको बढ़ा देती है। उसे शास्त्रकारोंने ज्वर संज्ञा दी है। इस ज्वरमें प्रकृति और लक्षण भेदसे विविध प्रकार होते हैं। यदि मलावरोध ज्वरका हेतु है तो फिर चाहे किसी भी जातिका ज्वर हो, वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज या त्रिदोषज, सबके मूल हेतु रूप मलावरोधको दूर करनें तथा ज्वरको शमन करनेके लिये यह निर्भय औषधि है.।

सूचना—यह औषधि बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री पुरुष सबको देनेमें उपयोगी है। सिर्फ सगर्भा स्त्री और अतिसारके रोगीको नहीं देनी चाहिये।

(७) नारायणज्वरांकुश रस

विधि शुद्ध सोमल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छ-नाभ, शुद्ध धतूरेके बीज, वराटिका भस्म, सोहागेका फूला, भांग, सोंठ, काली मिर्च पीपल सब समभाग लें। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करके क्रमशः सोमल और हरताल मिलावें। फिर आधे घण्टे घुटाई करनेके बाद बच्छनाभ और अन्तमें सब वस्तुओंका बारीक चूर्ण मिला, अदरकके रसमें तीन दिन तक घुटाई करके ज्वारके दानेके समान गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ गोली। दिनके तीन समय जलके साथ दें। ज्वर होनेपर उतारने और ज्वर न हो तब रोकनेके लिये दिनमें ३ समय देवें।

उपयोग—नारायण ज्वरांकुश विषम ज्वर (ठण्ड लगकर आने वाले ताप) सान्निपात, जीर्णज्वर और विसूचिकाको नष्ट करता है। कफप्रधान और वातप्रधान ज्वरमें उपयोगी है।

सूचना—इस औषधिमें सोमल है, इसलिये खान-पानमें अपथ्य नहीं करना चाहिये। जीर्णज्वरमें अवश्य घी और दूध देना चाहिये। नूतन ज्वरमें औषधि देकर कपड़ा ओढ़ा देनेसे पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

यह रस ज्वरके तीव्र वेगमें, ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें तथा पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको नहीं लेना चाहिये।

(८) महाज्वरांकुश रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ तीनों एक एक भाग, धतूरेके शुद्ध बीज ३ भाग और सोंठ, कालीमिर्च पीपल तीनों दो-दो भाग लेवें। सबको यथा विधि मिला, अदरक और नींबूके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोली बांधें। (ब० रा०)

मात्रा—१-१ रत्ती अदरकके रस और शहदके साथ देवें।

कफप्रधान ज्वरमें महाज्वरांकुश शृङ्गभस्म, कफकुठार और नौसादर मिलाकर दिनमें ३ बार देवें और ऊपर पिप्पल्यादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग—यह रसायन वेदना शामक, ज्वरघ्न और पाचक है। वात-

ज्वर, कफज्वर, द्वन्दजज्वर, त्रिदोषजज्वर और अन्य विषमज्वरों—एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिका नाशक है। यह रस बिना ठण्डके ज्वर और लगातार रहनेवाले और घटने बढ़ने वाले ज्वरोमें अति उपयोगी है। ज्वरके साथ उत्पन्न अजीर्ण, पतले दस्त होना पेटमें दर्द होना, पेटमें वायु (आफरा) होना इत्यादि विकारोंको भी दूर करता है। जीर्ण सन्धि-वात (आमवात) में यह रस लाभदायक है।

इस रसके सेवनसे कुछ प्रस्वेद आता है, वेदना शमन होती है और आम पचन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

अजीर्ण या असात्म्य भोजनसे पचनेन्द्रिय संस्थानके कार्यकी विकृति हो कर उत्पन्न ज्वरपर इस रसका उत्तम उपयोग होता है। विशेषत: वेदना सहन न करने वाले अधीर और चञ्चल प्रकृतिके रोगीको यह दिया जाता है।

सर्वांगमें कम्प, ज्वरवेग असमान, निद्रानाश, बार-बार छींकें आना, शरीर अकड़ जाना, हाथ पैर टूटना, सन्धि-सन्धिमें वेदना, मस्तिष्क और कपालमें दर्द, मुँहमें बेस्वादुपन, मलावरोध, सारे शरीरमें भारीपन, हाथ-पैर शून्य हो जाना, कानमें आवाज आना, दांत भिचना, व्याकुलता, शुष्क, कास, उबाक, थोड़ी-थोड़ी वमन, रोंगटे खडे होना, तृषा, चक्कर आना, प्रलाप, मूत्रका रंग पीला-लाल या काला-सा हो जाना, उदरमें शूल, अफारा बार-बार उबासी आना तथा लक्षण वृद्धि होनेपर असहन शीलता, रोगीका बड़-बड़ करते रहना (पूछनेपर रोगी कहता है कि प्रलाप करनेपर अच्छा लगता है), इत्यादि वातप्रधान लक्षण होनेपर यह महाज्वरांकुश रस दिया जाता है। ज्वरका मन्द वेग, अङ्गमें जड़ता, आलस्य, निद्रावृद्धि, अङ्ग अकड़ा हुआ भासना, कपड़ा उतारनेपर शीत लगना मुंहमें बार बार पानी आना उबाक, वमन, उदरमें भारीपन, नेत्रके समक्ष अन्धकार, सूर्यके तापमें बैठने या अग्निसे तापनेकी इच्छा, सूर्यके तापमें बैठनेसे अच्छा लगना, खांसी, अरुचि, बेचैनी आदि कफप्रधान लक्षण होनेपर इस महाज्वरांकुशका अच्छा उपयोग होता है।

कफवातज्वर होनेपर अंगमें जड़ता और अति गीलापन, मस्तिष्क अकड़ा हुआ भासना, हाड़-हाड़ फूटना, तन्द्रा, जुकामके समान नाकमें श्लेष्मकी उत्पत्ति होना, खाँसी, प्रस्वेद न आना, हाथ पैर और नेत्रोंमें दाह, भय लगना क्रोध उत्पन्न होना, थकावट-सी लगना आदि लक्षणोंमें ज्वर विशेषत: मर्यादित होता है। इसपर यह रस लाभदायक है।

सतत विषमज्वर अर्थात् ७ या १० दिन तक रहने वाले ज्वरमें अति जड़ता, हाथ-पैर टूटना, अति प्यास (यह प्यास उष्ण जल या सोंठ, लौंग आदि उष्ण पदार्थके सेवनसे कम होती है) आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वरमें एक दिन छोड़कर आने वाले तृतीयक ज्वरमें यह महाज्वरांकुश

हितकारक है।

अजीर्ण या अपथ्य सेवनसे ज्वर आनेपर कोष्ठ-विकृति होती है। फिर उबाक, लालास्राव, उदरमें वायु भर जाना, अरुचि, उदरमें मन्द-मन्द शूल, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगते रहना, अग्निमांद्य, किसी भी प्रकारके भोजन की इच्छा न होना, शारीरिक उत्ताप मर्यादित होना, सन्धि-सन्धिमें वेदना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वरपर महाज्वरांकुश रसका अच्छा उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(९) रत्नगिरी रस

विधि—शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल समभाग मिलाकर अदरकके रसकी २ भावनाएं देवें। फिर एक-एक रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ गोली। बच्चोंको $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक देवें।

अनुपान—धनिया और मिश्रीको जौकूट चूर्ण आधा-आधा तोला लेकर १ छटांक जलमें एक घण्टे तक भिगो देवें। फिर मसल छानकर औषधिके साथ पिला दें। जीर्ण ज्वरमें दूधके साथ दें।

उपयोग—यह औषधि बड़े मनुष्य और बच्चोंके बने रहने वाले ज्वर को उतारनेके लिए अमोघ है और निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

इस रसको धनिया-मिश्रीके हिमके साथ देनेपर स्वेदल गुण दर्शाता है। रक्तमें रहे हुए विषको जलाकर प्रस्वेदके साथ बाहर निकाल देता है। एवं कोष्टमें सञ्चित आमविषका पचनकर ज्वरके मूलको नष्टकर देता है।

इस रत्नगिरी रसमें बच्छनाभ न होनेसे निर्बल हृदय वालोंके लिये यह विशेष उपयोगी है। मुद्दती ज्वरमें जब बच्छनाभ वाली औषधि देनेसे हानि की संभावना हो तब इस रत्नगिरि रसका उपयोग अति हितकर होता है।

इस रत्नगिरिका उपयोग वातरोग, उदरवात, गुल्म आदिपर भी होता है। वातरोगप्रद इस रसकी ३-३ गोलियां दिनमें ३ बार गुनगुने जल अथवा शहद-पीपलके साथ देनी चाहिये।

खेतोंमें कार्य करनेवालों और ग्रामोंमें फिरने वालोंको अनेक स्थानोंमें वर्षा ऋतुके भीतर अस्वच्छ जल पीना पड़ता है और ऋतु प्रकोपके हेतुसे भी पचनक्रिया योग्य कार्य नहीं करती। फिर अनेकोंको आम संगृहीत होकर ज्वर आ जाता है। इन रोगियोंको रत्नगिरि रस देनेसे विष जलकर थोड़े ही समयमें ज्वरका शमन हो जाता है।

मिथ्या आहार-विहार, अपचन और ऋतु प्रकोप आदि कारणोंसे आम और मल संगृहीत होकर ज्वर आ जाता है। इस ज्वरको दूर करनेके

लिये पहिले आरग्वध आदि औषधियोंके क्वाथ या ज्वरकेसरीसे आम और मलको दूर कर धातुओंको निर्मल बनाना चाहिये। किन्तु अनुभव हीन डाक्टर और उनके अनुयायी उसे विषम ज्वर मानकर क्विनाइन आदि देते रहते हैं। परिणाममें ज्वरविष कुपित होकर धातुओंमें लीन हो जाता है। फिर बहुत दिनो तक कष्ट देता रहता है। सामान्यतः शिरदर्द नेत्रोंमें निस्तेजता, जिह्वा मललिप्त होना, अति थकावट, अग्निमांद्य, अरुचि, मूत्रमें पीलापन, मलावरोध आदि लक्षण भासते हैं। एवं २-४ घण्टोंके लिये ज्वर प्रतिदिन बढ़ जाता है। यदि ऐसी अवस्थामें क्विनाइन देते रहें तो मस्तिष्कमें उष्णता, बधिरता, वृक्कोंके कार्यमें प्रतिबन्ध होकर मूत्रावरोध होना, निद्रानाश आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन रोगियोंको रत्नगिरि रस धनिया, मिश्रीके फाण्ट या हिमके साथ देनेसे ४-६ घण्टोके भीतर धातुओं में लीन ज्वर बाहर आजाता है। २-४ घण्टे तक ज्वर १०२° से १०४°तक बढ़ जाता है। फिर स्वेद लाकर विषको बाहर निकाल देता है और ज्वर का शमनकर देता है।

प्रसवावस्थामें योग्य सम्हाल न रखनेसे पचनशक्तिका विचार किये बिना गुड़-घी खिलाते रहनेसे प्रसूताको ज्वर आ जाता है। सामान्यतः ज्वर १०२° रहता है। शिरदर्द, व्याकुलता, अरुचि. उदरमें भारीपन, जननेन्द्रिय से जल स्राव होते रहना, किसी-किसीको पतले दस्त हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी रुग्णाओंको रत्नगिरि रस देनेसे आम विष शीघ्र जल जाता है और ज्वर निवृत्त हो जाता है।

(१०) अश्वकंचुकी रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोहागेका फूला, शुद्ध, हरताल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शुद्ध जमालगोटा सब समभाग मिलाकर भांगरेके रसमें २१ दिन तक घुटाई करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—एक से चार गोली। सुबह जलके साथ देवें। बालकको आधी गोली देना चाहिये।

उपयोग—ज्वरकेसरी वटीमें सोहागा और हरताल मिलानेपर अश्वकंचुकी रस तैयार होता है। इस रसायनमें भांगरेके रसकी जितनी अधिक भावना लगती है उतनी ही सौम्यता आती है तथा दाहक और विरेचक गुण कम होता है। भांगरेके रसकी अधिक भावना से यकृत्को अधिक लाभ पहुँचता है एवं जमालगोटेकी उग्रता शमन होकर दाह, उबाक और वमन करनेकी शक्तिका ह्रास होता है तथा हरतालकी उग्रता भी कम होती है।

इस अश्वकंचुकी रसको अश्वचोली और घोड़ाचोली भी कहते हैं।

सामान्य जनताकी मान्यता है कि यह रस सब रोगोंपर उपयोगी है। परन्तु शास्त्रदृष्टिसे विचार करनेपर यह मान्यता भ्रमयुक्त भासती है। इतना सत्य है कि यह रस अत्यन्त वीर्यवान् और प्रभावशाली है तथा अनुपान भेदसे अनेक रोगोंमें हितकारक है।

यह रस तीक्ष्ण, उग्र, ज्वरघ्न, सारक, विकाशी, व्यवायी, प्रमाथी, क्षरण करने वाला, लेखन और दोष संघातका भेदक और योगवाही है। कफ, वात-कफ और पित्तकफ दोषको दूर करता है। अनूप देशमें (वर्षा और वृक्ष अधिक हों, ऐसे देशमें) अधिक हितकर हैं; और जांगल देशमें कम उपयोगी हैं।

कफ प्रकोप होकर उदरमें अफारा, उबाक बनी रहना, श्वास और कास उपस्थित होना इन लक्षणोंके साथ तन्द्रा होनेपर इस औषधिका उपयोग करना चाहिये। इस तरह आमाशय और उर:स्थानमें कफवृद्धि होकर वर्षाऋतु प्रारम्भ या मध्यमें उत्पन्न होने वाले श्वास और प्रतिवर्ष वर्षाऋतु में आक्रमण करते श्वासपर इस रसका उपयोग होता है। जिस श्वासमें कफप्रधान लक्षण होते हैं; बार-बार गाढा और सफेद रंगकी बड़ी-बड़ी कफकी गाँठ पड़ती रहती है; श्वासवेग तीव्र नहीं होता एवं घबराहट भी अधिक नहीं होती ऐसे लक्षण होनेपर इस औषधिका उपयोग होता है।

छः मासके शिशुको पसली रोग होनेपर उसकी छाती भारी हो जाती है; श्वासोच्छ्वास जल्दी-जल्दी चलता है, इस रोगमें प्रत्येक श्वासके साथ उदरमें खड्डे पढ़ते हैं। बालक अति व्याकुल हो जाता है, ज्वर-वेग सामान्य होता है, कोष्ठ-शुद्धि नहीं होती। इस विकारमें माताके दूधके साथ या करेलेके पत्तोंके रसके साथ यह रस दिया जाता है। बालकको उत्पन्न होने वाले श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) में, श्लेष्म संचय अधिक होनेपर श्वासोच्छ्वासका वेग बड़ जाता है; इसपर इस घोड़ाचोलीका उपयोग किया जाता है। इस विकारकी प्रथमावस्थामें इस औषधिका उपयोग करने से कफका लेखन होता है और रोगबल बहुत अंशमें कम हो जाता है। रोगी सहसा दगा नहीं देता। एवं कितने ही रोगियोंकी प्रकृति समयके पहिले ही सुधर जानेके उदाहरण मिले हैं। छोटे बालकके समान बड़े मनुष्यको भी कफप्रधान दोष होनेपर इस औषधिसे लाभ पहुँचता है।

बार-बार कफ (आम) मिश्रित वमन होना, उदरमें जड़ता, मुंहमें जल आते रहना, लालास्राव, मधुर और झागयुक्त गाढ़ी वमन होना, आलस्य, मुखपर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होनेपर अश्वकंचुकी रसका उपयोग किया जाता है।

छोटे बालकोंकी यकृत्‌वृद्धिमें यह औषधि उत्तम लाभ पहुँचाती है। इस विकारमें प्रधान रूपसे कफवृद्धिके लक्षण होने चाहिये। यकृत्‌में जड़ता,

तन्द्रा, नेत्रोंमें भारीपन, कास (इतनी अधिक कास होती है कि छाती सर्वदा भरी हुई भासती है), कण्ठमें घर-घर आवाज मलमें पाण्डुता, समस्त शरीरमें पाण्डुता, मुख, हाथ-पैर आदि कुछ फूले हुए भासना आदि लक्षण होनेपर अनूप देशमें रहने वालोंके लिये यह औषधि उत्तम लाभप्रद है। यदि इस रोगमें पित्तप्रधान लक्षण अधिक प्रस्वेद, दाह शुष्क कास, देहमें उष्णता, मल मूत्रमें पीलापन आदि हों तो इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

यकृद्‌वृद्धि समान कफप्रधान प्लीहावृद्धिमें भी यह औषधि लाभदायक है। इस रोगकी अन्त्यावस्थाको प्राप्त रोगी भी इस औषधिके सेवनसे अच्छे हो जानेके उदाहरण मिले हैं। बडे मनुष्यकी यकृद्‌वृद्धि (शराबीके अतिरिक्त मनुष्यकी यकृद्‌वृद्धि) में यदि कफप्रधान लक्षण हों तो इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

वर्तमानमें इस औषधिके दुरुपयोगके भी उदाहरण मिलते हैं। रोगके दोष दूष्य संयोग यथातथ्य विचार न करते हुए केवल व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा करनेपर विपरीत परिणाम आता है। जैसे यकृद्‌वृद्धिमें कफ-विकृतिके लक्षण और पित्तप्रकोपके लक्षण भी होते हैं। पित्तविकारके लक्षण प्रतीत होनेपर इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा रोगीको हानि होती है।

जीर्ण यकृद्‌विद्रधि यदि अन्त्यावस्थाको प्राप्त न हुई हो और शराबका व्यसन इसका कारण न हो तो इसका उपयोग करना चाहिये। क्वचित् संग्रहणी रोगमें उपक्रम योग्य न होने या उपक्रम योग्य होनेपर भी कीटाणु प्रकोपसे यकृद्‌विद्रधि हुई हो और वह रोग जीर्ण हो गया हो तो कुरैयाकी छालका अर्क या कुटजारिष्ट और अभ्रकंचुकी रसका मिश्रण अति उपयोगी होता है। इसमें भी कफप्रधान लक्षण होना चाहिये।

बालकोंके यकृतोदर या प्लीहोदरमें कफप्रधान लक्षण होनेपर जलोदर उत्पन्न हो जानेके पश्चात भी इस औषधिने अनेक रोगियोंको जीवन प्रदान किया है। रोगीको तन्द्रा, आलस्य, पाण्डुता, बद्धकोष्ठ, मलमें आम आना, मल चिकना और गाढा होना, मुख, उदर और हाथ-पैरपर सूजन और मूत्र परिणामकी अपेक्षा अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। इस व्याधिके कारण दीर्घकालका शीतज्वर मृदभक्षण या बार-बार उदरमें कृमि होनेका अभ्यास, बद्धकोष्ठ, मधुर, स्निग्ध और जड भोजन या माताके दूधमें विकृति आदि हैं। परन्तु जलोदरके कारणमें हृदय या वृक्कस्थानकी विकृति हो तो इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

मध्यम कोष्ठशूल बहुधा जीर्ण आमसंचय या कफजन्य स्रोतसावरोधसे होता है और यह शूल कोष्ठबद्धतासह होता है। यह विकार अधिक बैठे रहने वाले या आलसी, स्निग्ध भोजन करने वाले और मांसाहारी मनुष्यों को होता है। इस रोगके रोगीकी आँतोंमें मल-संचयके हेतुसे पुरःसरण क्रिया मन्द होती है। मलावरोध बना रहता है। फिर पचन-क्रिया मन्द होती है और रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। रसका शोषण योग्य न होनेसे परिणाममें रक्त आदि धातुको उचित पोषण नहीं मिलता; उदर बढ़ जाता है तथा रोगी बिल्कुल निर्बल हो जाता है। इस अवस्थामें घोड़ाचोलीका उत्तम उपयोग होता है।

कफ-गुल्ममें अश्वचोलीका उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। गुल्मका यह विकार मध्यम कोष्ठशूलके लिये लिखे हुए कारणोंसे होना चाहिये और अनूप देशमें रहने वालोंको हो तो अश्वचोलीका प्रयोग किया जाता है। यह गुल्म जड़, मोटा और बड़ा होता है, शेष कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं।

यह औषधि वातगुल्म या पित्तगुल्ममें उपयोगी नहीं है। जीर्ण अतिसारके विकारमें बार-बार सफेद चिपचिपा दस्त होता रहता है और उदर में जड़ता भासती है। इस व्याधिमें लघु और बृहदन्त्रकी श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है। उसमेंसे स्राव होता ही रहता है। यह स्राव कफप्रधान विकृतिके हेतुसे होता है। जब इस श्लैष्मिक कलाकी मोटाई कम हो और स्राव कम हो तभी इस अतिसारकी निवृत्ति हो सकती है। यदि स्तम्भक, दीपन-पाचन आदि सामान्य अतिसारकी चिकित्सा करते रहें तो यह व्याधि महीनों तक बनी रहती है। इसका मूल दोष अन्तर्लीन रहता है। उसे बाहर निकाल दूर करना चाहिये। यह कार्य घोड़ा चोलीके योगसे अति उत्तम प्रकारसे हो जाता है।

केवल स्तम्भक औषधके शल्यरूप संचित दोष अधिकाधिक स्तम्भित होकर दृढ़ होता जाता है और रोग दिन-प्रतिदिन प्रबलतर होता जाता है। इसलिये इस स्थानपर दोषका सम्यक् निर्हरण करना आवश्यक है। यही न्याय नूतन कफातिसारके लिये भी लागू होता है। जीर्ण संग्रहणी बृहदन्त्रमें जहाँ व्रण होते हैं; उस स्थानसे श्लैष्मिक कला और रक्त सर्वदा निकलकर मलके साथ गिरते रहते हैं। इस विकारमें हो सके तब तक इस हरताल प्रधान उग्र रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये। इस स्थानपर दोष संचित होनेपर एरंड तैल या नाराचघृतसे कोष्ठ-शोधन करना चाहिये।

आयाम और अपतानक वातविकारमें कोष्ठस्थ मलसंचयके हेतुसे वात-वृद्धि होती है। फिर रोगीको सहसा आक्षेप आने लगते हैं। पश्चात् बेहोशी हो जाती है; मुखमें झाग आ जाते हैं, कण्ठमेंसे घर-घर आवाज निकलती

रहती हैं, मल सञ्जित होनेपर उदर कठोर और मोटा हो जाता है, अधोवायु नहीं सरती; क्वचित् वमन भी होती है; आक्षेपके झटके बार-बार आते रहनेसे रोगी व्याकुल हो जाता है; किसी-किसीको इतना बल-पूर्वक आक्षेप आता है कि पीठ भी कमानके सदृश मुड़ जाती है। इस वात-विकारमें पहले कोष्ठशुद्धि करनी चाहिये। इस कार्यके लिए उदरमें स्थित मल और सेन्द्रिय विषको निकालने वाली औषधियोंमें घोड़ा चोली उत्तम है।

भूतोन्माद रोगमें रोगी बेसुध और व्याकुल हो गया हो, रोगीकी छाती उदर, कण्ठ आदिमें कफभूयिष्ठ मलसंचय अधिक होनेसे संज्ञा नष्ट हो गई हो, कोड़ी प्रदेशके समीपका भाग खूब फूला हुआ हो, कण्ठमें विलक्षण घर-घर आवाज और प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके साथ मुँहमेंसे थूकके बुदबुदे और लाला गिरते हों तो इस अश्वकञ्चुकीको शहदके साथ देनेसे आश्चर्यकारक लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

मूर्च्छा विकारमें विशेषत: पित्तका अनुबंध होनेपर केवल पित्तशामक उपचार करनेकी अपेक्षा पित्तविरेचक औषधि देना विशेष उपयुक्त है। इस के साथ रक्तका दबाव भी कम होना आवश्यक है। यह कार्य त्वरित होना चाहिये। अनेक दिनों तक उपयोग करनेपर आरोग्यवर्द्धिनी और चन्द्रप्रभा भी रक्तदबावको कम कराती है। परन्तु तत्काल कार्यकर औषधि अश्व-चोली है। इससे मूर्च्छा भी दूर हो जाती है।

यकृद्के विकारसे या यकृत्की क्रियाविकृति होनेसे देहपर काले-काले धब्बे उत्पन्न होते हैं। कितने ही समय स्फोट होजाते हैं। शेष लक्षण कुष्ठ सदृश भासते हैं। परन्तु त्वचाकी शून्यता और कुष्ठके कीटाणु इन व्याधियों में नहीं होते। इस विकारपर अश्वचोलीका उपयोग आश्चर्यजनक हुआ है।

क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् चर्म-रोगमें उत्पन्न होनेवाले धब्बे, व्रण, पिटिका, लसिका स्राव, कण्डु आदि व्याधियोंमें हल्दी या त्रिफलाके क्वाथके साथ घोड़ाचोली देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

चातुर्थिक ज्वरमें दोष, रस आदि धातुओंसे मेद-धातु-पर्यन्त पहुँच जाता है इस विकारमें कोष्ठबद्धता, प्लीहावृद्धि आदि विकार होते हैं। यदि चौथे-चौथे दिनपर ज्वर आनेके समय कोष्ठमें जड़ता और छातीमें कफसंचय आदि लक्षण हों तथा अनेक दिनोंसे ज्वर त्रास पहुँचाता हो तो इस रसा-यनका प्रयोग अगस्त्यके पत्तोंके रसके साथ करना चाहिये। इस तरह अन्य प्रकारके विषम ज्वरोंमें भी तीव्रावस्था दूर होनेके पश्चात् जीर्णावस्था प्राप्त होनेपर प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य और पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर घोड़ा-चोली देनी चाहिये।

कोष्ठस्थ मलसंचयसे शीर्षशूल और उसके साथ नेत्रशूल और आमाशय में कफसंचय होनेपर शूल अधिक तीव्र न हों और मलसंचय अधिक हो तो

इस औषधिका उपयोग करना चाहिए।

शरीरमें रस-ग्रन्थियोंकी वृद्धि और साथ-साथ कफ-दोषकी वृद्धि होनें पर कोष्ठमें सूक्ष्म-सूक्ष्म शूल चलता रहता है। कोष्ठमें ग्रन्थियां बढ़ने सदृश भासती हैं। कोष्ठ जड़ होजाता है। इस स्थितिमें अश्वचोली उपयोगी है। इस विकारमें जसद भस्म भी व्यवहृत होती है। शरीरमें दाह, हाथ-पैर टूटना, सूक्ष्म ज्वर और पित्तवृद्धिके लक्षण हों तो जसद भस्म देवें। कफ-प्रकोपमें अश्वचोली और पित्तवृद्धिमें जसदभस्म यह दोनोंमें अन्तर है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस पित्तप्रधान, प्रकृतिवालेको नहीं देना चाहिये। पित्त-प्रधान रोग और पित्तप्रधान ऋतुमें कदाचित् उपयोग करना हो तो शीतल औषधि (या अनुपान) के साथ मिलाकर देना चाहिये।

गर्भिणी सूतिका, छोटे बच्चे और अति वृद्ध मनुष्यके साधारण ज्वरमें इसका उपयोग नहीं होता। ऐसे ही रक्तपित्त, उरःक्षत, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातके रोगीको यह अश्वकंचुकी रस नहीं देना चाहिये।

(११) त्रिभुवनकीर्ति रस

विधि—शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और पीपलामूल प्रत्येक समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् तुलसी, अदरक और धतूरेके रसकी क्रमशः ३-३ भावनाएं देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (यो० र०)

त्रिभुवनकीर्ति रसके पाठमें वृद्ध परम्परा अनुसार औषधि गुणधर्म शास्त्र कारने जीरा और सौंफ ये दोनों औषधियां अधिक मिलाई हैं तथा हमने गुण विवेचन भी उसके अनुसार ही लिखा है।

कितने ही चिकित्सक धतूरेके रसकी भावनाके स्थानमें पीले धतूरे (सत्यानाशी) के स्वरसकी भावना देते हैं, उनकी मान्यता है कि सत्यानाशीकी भावना देनेसे मलेरियापर विशेष लाभ होता है। कोष्ठबद्धता हो तो दूर करता है तथा कफस्राव अधिक कराता है। हमारे यहाँ धतूरेके रस का ही उपयोग होता रहता है।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ समय, अदरकके रस और शहद के साथ या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। सन्निपातमें आवश्यकतापर २-३ घण्टे बाद एक-एक गोली देते रहना चाहिए। कफप्रधान ज्वरमें सुवर्ण बंग और अर्कमूलत्वक्के साथ मिलाकर शहदसे दिनमें २ या ३ बार दें।

उपयोग—यह रस कफघ्न, ज्वरघ्न, स्वेदल और वेदनाहर है वातप्रधान और कफप्रधान नूतन ज्वर, वातकफज्वर (Influenza), ठंड देकर आने वाले संतत ज्वर और सततज्वर एवं कफप्रधान सन्निपातको नष्ट करता है। रोमांतिका (छोटी माता) में जब त्रास बढ़ गया हो कुछ दाने बाहर दीखते

हों तब भीतरका विष बाहर लानेके लिए सहायक औषधिके साथ इस रस का उपयोग करनेसे ३-४ दिनोंमें ही रोग-शमन होजाता है। ऐसे ही कफ प्रधान शोथ, कंठमें रही हुई गांठका शोथ, श्वासनलिकाका उपताप या अन्य कफ विकार और वात प्रकोपसे आने वाले ज्वर, इनको यह रस सत्वर दूर करता है।

यह त्रिभुवनकीर्ति रस वातज्वर, कफज्वर और वातकफात्मक ज्वरमें अत्युत्तम औषधि है। यह रस बच्छनाभ प्रधान औषधियोंमें एक अत्युत्तम कल्प है। इसका उपयोग वातात्मक, कफात्मक और वातकफात्मक ज्वर इन दोषप्रधान विषमज्वरोंमें और सन्निपातिक ज्वरोंमें होता है। यह कल्प तीक्ष्ण गुण युक्त होनेसे पित्तप्रधान सन्निपात या पित्तप्रधान अन्य ज्वरमें प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। कदाच उपयोग करना पडे तो प्रवाल पिष्टी या अन्य कोई पित्त शामक औषधि मिलाकर कम मात्रामें करना चाहिए।

रोमान्तिकाअन्य कफप्रधान शोथ और अन्तरेन्द्रियके उपतापसे उत्पन्न ज्वर (कण्ठमें स्थित ग्रन्थियोंके शोथ और अन्तरेन्द्रियके उपतापसे ज्वर या अन्य आन्तरिक वेदनासे उत्पन्न ज्वर) कफप्रधान दोष होनेपर यह औषधि अप्रतिम कार्य करती है।

त्रिभुवनकीर्ति रसमें ज्वरनाशक धर्म बच्छनाभका है किन्तु बच्छनाभमें हृदय अवसादक दोष है। उसे दूर करनेके लिये स्वेदल और ज्वरघ्न गुण बढ़ानेके लिये अन्य द्रव्योंका संयोग करा तुलसी, अदरक और धतूरेके पत्तोंके रसकी भावना दी है। इन भावनाओंके हेतुसे वातकफनाशक कल्प बना है।

त्रिभुवनकीर्तिकी योजना अति सावधानतापूर्वक की है। फिर भी बच्छनाभका धर्म उसमें रहे हुए उग्र विषके हेतुसे तत्काल प्रतीतिमें आता है। इस बच्छनाभ हेतुसे ही रोगीकी नाड़ी मन्द होती है। यद्यपि नाड़ीकी गति विशेष मन्द न होनेके लिये इस औषधिमें पीपलामूल, पीपल, सोंठ, कालोमिर्च तुलसीका रस ओर अदरकका रस इन हृदय पौष्टिक औषधियोंकी योजना की है तथापि बच्छनाभका स्वभाव पूर्णांशमें दूर नहीं होता।

त्रिभुवनकीर्ति रसका सेवन करनेपर तत्काल हृदय, मस्तिष्क स्थित हृदय केन्द्र, त्वचा और वृक्कके ऊपर परिणाम होता है। नाड़ीके वेग और बलका ह्रास होता है। त्वचा और स्वेद ग्रन्थियां उत्तेजित होती हैं, आध घण्टेमें ही प्रस्वेद आने लगता है, मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है, हृदयके स्पन्दन और बल न्यून हो जाते हैं, नाड़ी शिथिल होती है, श्वासोच्छ्वास क्रिया मन्द होती है, सब स्थानोंकी वेदनाका ह्रास होता है, वातवाहिनियोंके अन्तिम सिरे संज्ञाशून्य हो जाते हैं तथा उपताप और शोथमें रक्त स्वआशयमें वापस आनेकी महत्वकी क्रिया भी इस रसके योगसे होती है।

सर्वांगमें कम्प, नाड़ीका विषम वेग, नाड़ी तीव्र और दृढ़ होना, शिरमें

विलक्षण वेदना, जड़ता, बार-बार छींकें आना, अंग जकड़ जाना, मस्तिष्क छाती, पीठ, आदिमें शूल चलना, किञ्चित् चलनेपर शूलवृद्धि होना, उष्ण जल या उष्ण पदार्थ सेवनकी इच्छा, उष्ण पदार्थ सेवनसे अच्छा लगना, मुंहमें बेस्वादुपन, पैरोंमें ऐंठन, कानमेंसे आवाज निकलना, शुष्क, त्रासदायक और असह्य वेग युक्त कास, कासके साथ कण्ठमें पीड़ा होना, कासके हेतुसे छाती और पीठमें शूल चलना, कण्ठमें ग्रन्थियां सूज जानेसे कास आना, कण्ठ बैठ जाना, इतने तक कि बोलनेमें भी दर्द होना, स्वरयन्त्र, ग्रसनिका, कण्ठ और मस्तिष्कमें शूल चलना, रोंगटे खड़े होना, सन्धि-सन्धिमें दर्द, नासिकाके भीतर वेदना, इन लक्षणोंसे युक्त नूतन ज्वर (किन्तु निराम ज्वर) में त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग होता है। जब तक लालास्राव आदि साम-ज्वरके लक्षण हों तब तक यह रस नहीं देना चाहिये।

ज्वर वेग तीव्र न हो मन्द हो, सर्वाङ्गमें अतिशय जड़ता, चलनेकी इच्छाका अति अभाव, आलस्य, आफरा, उदर जकड़जाना, अतिशय निद्रा, सारे शरीरमें मन्द-मन्द वेदना, कास, छाती भारी और जकड़ी हुई, नाक और मुंहमेंसे कफस्राव, जुकाम, कण्ठमें दर्द, हाथ पैर टूटना, सन्धि-सन्धिमें पीड़ा मस्तिष्क जकड़ जाना, गरदनमें दर्द, प्रस्वेद न आनेसे शिथिलता और जड़ता भासना ये लक्षण होनेपर त्रिभुवनकीर्तिकी योजना करनी चाहिये।

विषम ज्वरोंमें संतत और सततज्वरमें इस औषधिका उपयोग होता है। अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें शीतभंजी, महाज्वरांकुश, नारायण ज्वरांकुश आदि उपयोगी हैं। संततज्वर ८-१० दिनों तक रहता है, बीचमें नहीं उतरता। सततज्वर दिनमें कुछ समयके लिये उतर जाता है, फिर आजाता है। पीठमें पीड़ा होकर ज्वरका प्रारम्भ होना नाड़ीका विषम वेग, प्रस्वेद कम आना, सर्वाङ्गमें व्यथा बेहोशी न होना, प्रलाप करनेपर अच्छा लगना, शांत रहनेपर व्याकुलता, मुखमें शुष्कता, शीतलकी अपेक्षा उष्ण जलपानकी इच्छा, उष्ण जलपानसे तृषा, कम होना और कुछ अच्छा लगना ये लक्षण होनेपर इसे तुलसीके रस और शहद या तुलसीके क्वाथके साथ देवें।

इस रसका उपयोग श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात (न्युमोनिया और इन्फ्लुएञ्जा) में उत्तम प्रकारसे होता है। (न्युमोनियामें इस रसके साथ अभ्रक भस्म, शृङ्गभस्म और चन्द्रामृत रस मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है)। आन्त्रिक सन्निपातमें विशेषत: पित्तप्रकृतिके रोगीको यह औषधि देनेपर अधिक त्रास होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें ज्वर-वेग अधिक हो तथा नाड़ी तीव्र और दृढ़ होनेपर क्वचित् त्रिभुवनकीर्ति रसको प्रवालपिष्टी, गिलोय सत्व और सितोपलादि चूर्णके साथ मिलाकर दिया जाता है।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातमें ज्वर वेग मर्यादामें हो, मन्द, भारी

नाड़ी, अङ्गमें अतिशय व्यथा, कमर और पीठमेंसे शूल निकलना और पीड़ा होना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल उपचारसे दुःख होना और सब लक्षण बढ़ जाना, मस्तिष्कमें भारीपन मन्द वेदना, कण्ठमें दर्द होना और कुछ शोथ-सा भासना, खांसी, पसलियोंमें पीड़ा होना, खांसी आनेपर अधिक पीड़ा होना, श्वास लेनेमें व्यथा, खाँसनेपर छाती दब रही है ऐसा आभास होना आदि लक्षण होनेपर त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग करना चाहिये।

वातकफ-प्रधान श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में त्रिभुवनकीर्तिका उत्तम उपयोग होता है। घबराहट, दाह आदि पित्त लक्षण न हों, सर्वाङ्गमें मन्द शूल, अंगुलियोंकी सन्धि और शरीरकी सब संधियोंमें दर्द, हाथ-पैर टूटना, जुकाम होकर फिर सूखी त्रासदायक खाँसी, कण्ठकी श्लैष्मिक कला में क्षोभ, क्वचित् यह क्षोभ बढ़कर फुफ्फुस या फुफ्फुसावरणका शोथ उत्पन्न होना और उसके साथमें अन्य आनुषंगिक लक्षण उपस्थित होना आदि चिह्न होनेपर त्रिभुवनकीर्ति रस उत्तम प्रकारसे उपयोगी होता है।

रोमान्तिका रोग जैसा प्रतीत होता है, ऐसा मामूली नहीं है। इसकी पिटिका पूर्णांशमें बाहर नहीं आई तो भविष्यमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सूक्ष्म पिटिकाएं, नेत्रसे जलस्राव, बार-बार छींके आना, जुकाम, नाकमेंसे पतला श्लेष्मस्राव, ज्वर, मुँहमें लाल दाने होना और व्याकुलता ये सब रोमान्तिकाके सामान्य लक्षण हैं। इस अवस्थामें त्रिभुवनकीर्ति रस देनेसे रोमान्तिकाका विष बाहर आ जाता है। इस विकारमें बहुधा ३-४ दिनमें, ज्वर कास आदि बढ़ जाते हैं। श्वनक और श्लैष्मिक सन्निपातके लक्षण कुछ-कुछ भासते हैं तथा पिटिकाएँ आधी बाहर आ जाती हैं, ऐसी बढ़ी हुई परिस्थितिमें भी त्रिभुवनकीर्ति रसका उत्तम उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान ज्वरमें यह औषधि न दें। कदाच देनी पड़े तो प्रवाल पिष्टी या अन्य पित्तशामक औषधि मिलाकर देवें।

(१२) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस

विधि—रससिंदूर, हीराभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, प्रवालभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल इन १३ औषधियोंको समभाग मिलाकर चित्रकमूल के क्वाथके साथ ४ दिन तक खरल करें। पश्चात् आकका दूध, निर्गुण्डी का क्वाथ, जमीकन्दका रस और थूहरका दूध इन चार द्रव्योंमें ३-३ दिन तक क्रमशः खरल करें। फिर शुद्ध पीले रंगकी बड़ी कौड़ियोमें इसे भरें और सोहागेको आकके दूधमें खरल करके कौड़ियोंके मुँहको बन्द करें।

सब कौड़ियोंको दो सरावोंमें भर, कपड़मिट्टीकर, सुखाकर गजपुट देवें। स्वाँग शीतल होनेपर कौड़ीसह इस औषधिको खरल करें और इसके साथ समान परिमाणमें रससिंदूर और रससिंदूरका चतुर्थांश वैंक्रान्त भस्म मिलाकर सहिंजनेके मूलके क्वाथकी ७, चित्रकमूलके क्वाथकी २१, अदरकके रसकी ७ और जम्भीरी नींबू या बिजौरेके रसकी ७ भावनाएं दें। फिर शुष्क चूर्ण बनाकर सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाभ और कालीमिर्च, तीनों उक्त चूर्णसे ¼-¼ भाग तथा लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल ये प्रत्येक बच्छनाभसे चतुर्थांश मिलाकर बिजौरेके रस और अदरकके रसकी १-१ भावना देनेसे यह रस सिद्ध होता है। (यो० र०)

सूचना—रससिन्दूर, हीराभस्म आदि १-१ तोले लेनेपर इसका वजन ९ सेर लगभग हो जाता है। अतः इसी मानसे न्यूनाधिक भी बनाया जा सकता है।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक, शहद-पीपल या अदरकके रस और शहद अथवा सोंठके क्वाथ और गुड़के साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन अनेक रोगोंको दूर करनेके लिये विविध अनुपानोंके साथ दिया जाता है। यह अग्नि, बल तेज और वीर्यको बढ़ाता है; विषको हरण करता है और शरीरको दृढ़ बनाता है। इसके सतत सेवनसे अकाल मृत्यु और वृद्धावस्था दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। कास, क्षय, श्वास, वात, विद्रधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोथ, हलीमक, उदररोग, लूताविष, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, विविध ज्वर, अर्श, कुष्ठ, अनेक साध्य और कष्ट साध्य व्याधियां, इसके सेवनसे दूर होती है।

त्रैलोक्यचिन्तामणि तीक्ष्ण और उष्ण है। आन्तरिक अवयवोंमें विशेषतः हृदय, फुफ्फुस, वातवाहिनियां और वातवाहिनीकेन्द्रको तत्काल उत्तेजित करता है तथा शरीरमें नूतन बलका संचार कराता है। इस दृष्टिसे यह रस बल्य, वीर्यवर्धक, ओजस्कर और जीवनीय है। इसका उपयोग करनेके समय इस बातपर लक्ष्य देना चाहिये कि पित्तदोषकी वृद्धि तो नहीं हुई है? अथवा पित्तदोषका साथमें अनुबन्ध तो नहीं है? कफदोषकी वृद्धि, कफका अनुबन्ध या कफात्मक दोषप्रकोप होनेपर इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) और श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) तथा श्लेष्म वृद्धिके विविध प्रकारोंपर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः इन रोगोंकी अन्तिम अवस्थामें इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

जिस तरह अन्य उत्तेजक औषधियाँ उत्तेजना बढ़ाकर फिर विपरीत अवसादकताकी प्राप्ति कराती हैं उस तरह इस औषधिके उत्तेजक कार्यके पश्चात् पुनः हृदय या नाड़ीमें क्षीणता नहीं आती। यह इस औषधिमें महान् सद्गुण है। इसके सेवनसे हृत्संनिध भागमें रक्त वाहिनियां विकसित होकर हृदयका कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

इसका उपयोग हृदयके शूलपर उत्तम प्रकारका होता है। कफप्रधान या कफवात प्रधान दोषपर यह प्रयुक्त होता है।

रक्त दबाव या आवश्यक प्राणवायुकी पूर्तिमें न्यूनता होनेपर अन्तरावयवोंको दुर्बलता प्राप्त होती है फिर वे अपना कार्य नियमित नहीं कर सकते। इस स्थितिमें त्रैलोक्य चिन्तामणि उपयोगी है।

अकस्मात् अपघात या मानसिक आघात होनेपर जब हृदयकी क्रिया क्षीण होती है और नाड़ी मंदता, प्रस्वेद, चक्कर, बेहोशी, भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तब ऐसी परिस्थितिमें त्रैलोक्यचिन्तामणिका कार्य अति उत्तम होता है। कारण, हृद्य औषधियोंमें इस रसका स्थान बहुत ऊँचा है। इसका प्रभाव हृदय, फुफ्फुस और मध्यम कोष्ठपर अधिकार रखने वाली सब वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान और सहस्रारपर होता है। इन सबको यह रसायन शक्ति प्रदान करता है और सबको प्राणवायुकी प्राप्ति भली भांती कराता है। इस हेतुसे ये सब इन्द्रियां उत्तेजित होती हैं।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात स्वतन्त्र होने एवं वात कफ ज्वर, आँत्रिक ज्वर या अन्य ज्वरके उपद्रवरूपमें उत्पन्न होनेपर उरःस्थानमें शोथ और फिर कफ संचय, यह वस्तु स्थिति प्रतीत होती है। इन सन्निपातोंमें प्रारम्भके कुछ दिनों तक दोष-दूष्योंका विवेक करना पड़ता है। परन्तु उपद्रव उत्पन्न हो जानेपर बहुधा एक ही अवस्था प्राप्त होना संभव है। वह यह कि उरःस्थानमें कफसंचय होकर फुफ्फुसोंके कोषसमूह और श्वासवाहिनियां कफसे रुद्ध होते हैं। उनको आवश्यक प्राणवायु नहीं मिल सकता। परिणाममें हृदयके चारों और रक्तकी सम्यक् पूर्ति नहीं होती। इस कारण में वातवाहिनियोंसे मिलने वाले वायुकी पूर्ति भी इन अवयव समूहोंको अच्छी तरह नहीं होती। आगे उस कफका संचय बढ़कर श्वसनमार्ग, रक्ताभिसरण मार्ग और वातमार्ग सब रुद्ध होकर रोगी कालवश हो जाता है। इस स्थितिमें यह रस उत्तम कार्य करता है। इसके योगसे श्वासवाहिनियां उत्तेजित होकर संचित कफको बाहर फेंकने लगती है। हृदयके समीप रक्तवाहिनियां विकसित होकर अभिसरण क्रिया सम्यक् करने लगती हैं और वातवाहिनियां उत्तेजित होकर सर्वत्र प्राणवायु पहुँचाने लगती हैं। इस तरह त्रैलोक्यचिन्तामणिका कार्य तीनों प्रकारसे होने लगता है।

हृदयशूल होनेपर स्तम्भ, सर्वाङ्गमें भारीपन हाथ-पैरोंमें शून्यता, हाथ-पैर भारी हो जाना, जिह्वामें शून्यता आना, पीठ और सर्वाङ्गमें झनझनाहट, मुँहमें जल आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस हृच्छूलका कारण शीतोपचार या वर्षाऋतुमें वर्षा हो जानेपर शीतलवायु हो अथवा कासश्वास विकारके पश्चात् श्लेष्म संचित होकर या अनेक दिनोंतक रहने वाले सान्निपातिक ज्वरके अन्तमें कफसंचय होकर अथवा मनोव्याघातके बिना कफ संचय उपस्थित हुआ हो, तो त्रैलोक्यचिन्तामणिका प्रयोग करना चाहिये।

यह रस अग्निको बढ़ाता है; परन्तु यह कार्य हिंग्वष्टकके सदृश उत्तान स्वरुपका दीपन कार्य नहीं है। हिंग्वष्टक या अम्लरससे आमाशयको श्लैष्मिककला ओर पित्तोत्पादक ग्रन्थियाँ केवल उसी समयके लिये उत्तेजित होकर पाचक पित्तका स्राव कराते हैं। यह कार्य अधिक कालके लिये नहीं है। इसके विपरीत त्रैलोक्यचिन्तामणिका कार्य अति प्रभावशाली, वीर्यवान् और स्थिर होता है। इस रसायनका कार्य आमाशय, ग्रहणी, यकृत्, अग्न्याशय और अन्त्रपर होता है। इतना ही नहीं आंतमें रही रसांकुरिकाओं (संशोषियो-Intestinal Villi) की संशोषण क्रिया, रस-रक्तमें मिलनेके पश्चात् उसकी रूपान्तर क्रिया एवं रक्तमेंसे उत्तरोत्तर धातु बनानेकी क्रिया सबपर इसका परिणाम होता है। इन सबसे कफ विकृति विशेषतः कफके गाढ़ापन, चिकनापन और स्थिरपन ये गुण बढ़कर नाड़ियाँ रुद्ध हो गई हो और उसके हेतुसे रक्त और प्राणवायुकी योग्य पूर्ति न होनेसे मंदाग्नि हुआ हो तो त्रैलोक्यचिन्तामणि रस देनेसे कफकी विकृति नष्ट होती है। सब अवयवोंको रक्त और वायु अच्छी तरह मिलने लगता है। फिर पाचक अग्नि प्रदीप्त होकर योग्य पचन करने लगता है। इस दृष्टिसे मूलग्रन्थमें 'अग्निं दीपयते' यह गुणधर्म दर्शाया है।

स्नायुओंके योगसे विविध क्रियायें सरलतापूर्वक योग्य होनेपर शरीर सबल रहता है। परन्तु स्नायुओंकी क्रिया योग्य तब हो सके, जब उनपर और वातवाहिनियोंपर वायुका कार्य उत्तम रीतिसे होता रहे। जब कफसंरोधसे वायुका सम्यक् कार्य नहीं होता तब निर्बलताकी प्राप्ति होती है। ऐसी अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि देनेसे कफसंरोध दूर होता है, वायुका कार्य योग्य रूपसे होने लगता है तथा बलकी वृद्धि होती है।

शारीरिक शुक्रसे सत्वरूप ओज * की कल्पना आयुर्वेदने स्पष्टकी है। इसके समान कल्पना आधुनिक वैद्यकमें नहीं मिलती। यह ओज हृदयमें है

---

* ओज यह मस्तिष्कस्थ हृदयके भीतर रहता है। उसे ब्रह्मवारि (Cerebro Spinal Fluid) संज्ञा दी गई है। (स्व० ठा० श्री नाथूसिंह जी)

और समग्र शरीरमें फैला हुआ है। इसकी सुस्थितिपर शारीरिक सब व्यापार अवलम्बित है। ओज अच्छी तरह उत्पन्न कर उसके सारे शरीरमें फैलानेका कार्य इस त्रैलोक्यचिन्तामणि द्वारा होता है। इसी गुणके हेतुसे हृदय जब क्षीणतर होने लगता है तब तत्काल उत्तेजना देनेके लिये इस रसायनका उपयोग किया जाता है।

शरीरमें उत्पन्न होनेबाले विविध सेन्द्रिय विषका रक्तमें शोषण होकर कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होनेपर इस औषधका उत्तम उपयोग होता है। कफप्रधान कास और श्वासमें रस रसायनका अच्छा उपयोग होता है।

पक्षाघातकी अन्तिम अवस्था या अन्य वातव्याधिके अन्तमें रोगी अत्यन्त क्षीण, निर्बल और ओजक्षययुक्त होनेपर इस रसकी योजना करनी चाहिये।

संक्षेपमें, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस हृद्य, ओजस्कर, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक और धातुसाम्य लानेवाला है। अत्यन्त वीर्यवान् और तीव्र होनेसे इसका उपयोग विशेषत: कफप्रधान और कफवातप्रधान विकृतिपर होता है। जब स्रोतसे कफसे रुद्ध होती हैं तब इस रसका उपयोग करना चाहिये।
(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१३) जयमंगल रस

विधि—सिंगरफसे निकाला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, ताम्रभस्म, वंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सेंधानमक और सफेद मिर्च प्रत्येक एक-एक तोला, सुवर्णभस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म १ तोला लेवें। सबको यथा विधि मिला, खरलकर, धतूरेके पत्तोंके रस, हारसिंहारके पत्तोंके रस, दशमूलके क्वाथ और चिरायतेके क्वाथकी क्रमश: ३-३ भावनाएँ देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक। दिनमें २ से ३ समय, जीरेके चूर्ण और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह बड़ी दिव्य औषधि है। जीर्ण ज्वरोंको दूर करती है और मस्तिष्कमें पहुँची हुई ज्वरकी उष्णताको दूर करके उसे शान्त बनाती है। बहुत कालका पुराना महाघोर जीर्णज्वर, साध्य और कष्टसाध्य ज्वर, वात पित्त आदि भिन्न-भिन्न दोषोंसे होने वाले ज्वर, विषमज्वर, मेदोगत ज्वर, मांसाश्रित ज्वर अस्थि और मज्जामें रहा हुआ ज्वर, अंतरवेग और बाह्यवेग वाला उग्रज्वर, नानाप्रकारके दोषोंसे उत्पन्न ज्वर, शुक्रगतज्वर तथा अन्य ज्वरोंको यह रसायन दूर करता है। बलवीर्यकी वृद्धि करता है तथा अनेक रोगोंको नष्ट करता है। एवं रक्त दबाव बढ़ गया हो तो उसे भी कम करता है।

अनेक समय विषमज्वर कई दिनों तक त्रास पहुँचाता रहता हो जो मुद्दती ज्वर औषधि या पथ्यमें भूल होनेसे २-२ मास तक या इससे भी ज्यादा समयका हो गया हो, अन्य किसी भी प्रकारके ज्वर, जीर्ण होकर मांस आदि धातुके आश्रित रहे हुए हों और शीतल उपचारसे तथा गरम उपचारसे भी बढ़ जाते हों, ऐसे ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये यह रस अद्वितीय है।

इस रसके सेवनसे मस्तिष्कमें स्थित उष्णता उत्पादक और नियामक केन्द्र स्थान सबल बनते हैं; अन्तरमें रहे हुए ज्वरके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, सेन्द्रिय विष जल जाता है, निद्रा आने लगती है। दाह शमन होजाता है; कफ सरलतासे निकल जाता है, दुष्ट कफकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है, वातवाहिनियां बलवान् बनने लगती हैं; मन प्रफुल्लित बनता है एवं क्षुधा प्रदीप्त होने लगती है। परिणाममें थोड़े ही दिनोंमें शरीर नीरोग, दोष रहित और तेजस्वी बन जाता है।

जब ज्वर-विष रक्त आदि धातुओंमें लीन रहता है, वात, पित्त, कफ तीनों धातुयें निर्बल हो जानेसे जीवनीय शक्ति ज्वरविष या कीटाणुओंको नष्ट करनेमें असमर्थ हो गई हो; हृदयकी शिथिलताके हेतुसे बच्छनाभ प्रधान औषधि अनुकूल न रहती हो या अधिक अवसादकता लाती हो तब विषघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, हृदय और पचनेन्द्रियकी संशोधक गुणयुक्त औषध की आवश्यकता है। ये सब गुण जयमंगल रसमें अवस्थित हैं।

जुकाम होने या शीतलवायु लग जानेके बाद कफप्रकोप होकर ज्वर आ जाता है। फिर योग्य उपचार यथा समय न होने या अपथ्य सेवन करने पर कफ दूषित होता है, अति चिपचिपा और दुर्गन्धमय बन जाता है। फिर खांसी चलती रहती है और श्वसन संस्थानमें खिचाव होता है। भीतरसे कफकी दुर्गन्ध आ रही है, ऐसा बार-बार रोगीको भास होता हैं। ज्वर १००° लगभग बना रहता है। इस कफको सरलतासे बाहर निकालनेके लिये सितोपलादि, लऊकसपिस्तां या कफकर्तन रस आदिकी योजना की जाती है। किन्तु नयी कफोत्पत्तिको रोकने और ज्वरका दमन करनेके लिये साथ-साथ जयमंगलका सेवन कराना आशीर्वादके समान है। इसके सेवनसे राजयक्ष्माकी प्राप्तिका भय दूर होता है और रोग सरलतासे शमन होजाता है।

जब राजयक्ष्मामें ज्वर वेग अधिक रहनेसे व्याकुलता और निर्बलता अधिक आई हो तब सुवर्ण-प्रधान अन्य औषधिका उपयोग नहीं होता परन्तु यह रस न्यून मात्रामें निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। इसके सेवनसे क्षयके कीटाणु और विष नष्ट होते हैं और शारीरिक उत्ताप भी मर्यादित रहता है। यदि रक्तदबाव बढ़ा हो तो उसे भी कम कराकर समान बनाता है।

बालक, स्त्रियों या कोमल प्रकृतिके पुरुष रात्रिको या असमयपर या

अस्थानपर अकेले कभी चले जाते हैं तब भयसे वातवाहिनियों और मनपर आघात होकर अनेकोंको ज्वर आ जाता है। प्रलाप, भीति, दुःस्वप्न, जाग्रत् अवस्थामें भी भयकी कल्पना, कम्प, हृदयकी चंचलता और उन्मादके लक्षणसह ज्वर प्रतीत होता है। ऐसी अवस्थामें जयमंगल रस देनेसे उत्तम लाभ पहुँचता है।

ज्वरमें या बिना ज्वरावस्थामें कभी-शोक आदि कारणोंसे मानसिक आघात पहुँचनेपर सन्निपातिक ज्वरकी संप्राप्ति हो जाती है। लक्षण अनेक सान्निपातिक ज्वरोंके साथ मिल जाते हैं, कुछ-कुछ भेद भी रहता है। वातवाहिनियाँ, वातवहानाड़ी केन्द्र, सहस्रार और मन आदि शिथिल और दूषित हो जाते हैं। प्रलाप, अरुचि, विचार शक्तिका नाश, निद्रानाश, क्वचित ज्वर और अतिसार, क्वचित् अतिसारका अभाव, नेत्रमें बार-बार अश्रु आना, मुखमंडल निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होनेपर जयमंगल रस देना चाहिये। जयमंगल रससे हृदय, मन और वातवाहिनियोंके केन्द्र स्थान आदिका संरक्षण होता है और रोगनिवृत्तिमें अच्छी सहायता मिलती है।

(१४) दुर्जलजेता रस

विधि—शुद्ध बच्छनाभ २ तोले, वराटिका भस्म ५ तोले और कालीमिर्च ९ तोले मिलाकर खरल करें।। फिर अदरकके रसमें ६ घण्टे खरल करके मूंगके समान गोलियाँ बनालें।

मात्रा—१ से ३ गोली। दिनमें २ समय, जलके साथ।

उपयोग—यह रस दुष्ट जलवायु-जनित ज्वर, जुकामसहित ज्वर, शीतज्वर, अजीर्ण, मंदाग्नि, आमवृद्धि, आफरा, मलावरोध शूल, श्वास-कास आदि रोगोंको दूर करनेमें अति हितकर है।

इस रसके सेवनसे कफदोष-दुष्टि कम होती है। पेशाब साफ आता है, पाचक पित्तकी शुद्धि होती है तथा अतिसार और अजीर्ण भी दूर होते हैं।

इस रसका उपयोग वर्षाऋतुमें कीचड़के विषसे उत्पन्न ज्वरपर बहुत अच्छा होता है। ज्वर आनेपर जड़ता, अङ्गपर गीलापन, मुँहमें चिकनापन और मीठापन, अङ्ग अकड़ जाना, उदरमें वायु भरा रहना और भारीपन, क्षुधानाश मीठी और दूषित डकारें आना, मलावरोध, पीठसे कमर तक शूल निकलनेके समान भासना, जुकाम, मस्तिष्कमें भारीपन आदि कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे समयपर इस रसका प्रयोग किया जाता है।

कई रोगियोंको तमाखूके अत्यधिक व्यसन, मद्यादिके सेवन, क्विनाईनके अतियोग आदि कारणोंसे वृक्क स्थान दूषित हो जानेके हेतुसे पारद प्रधान औषधि सहन नहीं होती, उनके लिए दुर्जलजेता रस आशीर्वादके समान तत्काल फलप्रद बनता है। नूतन ज्वरमें तो यह व्यवहृत होता ही है, इसके

अतिरिक्त जीर्ण ज्वरके समय भी संगृहीत आम प्रकोप और विषको जलाने और ज्वरको निवृत्त करनेमें कई रोगियोंके अत्यधिक अनुकूल रहता है।

आमाशयस्थ कफदोष विकृति होनेपर आमाशयके स्राव, अम्लता और पिच्छिलता कम होती है। इस हेतुसे उदरमें भारीपन, क्षुधानाश, उबाक, मुखमें मधुर जल आते रहना, थोड़ा भोजन करनेपर भी सम्यक् पचन न होना, उदरमें आफारा और मन्द-मन्द व्यथा, मल दुर्गन्धयुक्त, पतला अयोग्य मिश्रण वाला हो जाता है और मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर दुर्जलजेता रस दिया जाता है। इस रसके सेवनसे स्राव नियमित होता है, कफ-विकृति दूर होती है। फिर अपचन और अतिसारकी निवृत्ति होती है।

इस औषधिमें पारद न होनेपर भी रसायन समान गुण होनेसे शास्त्रकारोंने इसको "दुर्जलजेता रस" संज्ञा दी है। इस रसको अन्य आचार्योंने अमृतकला निधि, अमृत वटी और त्रिपुरभैरव आदि संज्ञा दी है।

(१५) हेमगर्भपोटली रस

विधि—शुद्ध पारद, ताम्रभस्म और गन्धक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म (या वर्क), चांदीभस्म, लोहभस्म और रससिंदूर प्रत्येक ६-६ माशे लेकर भेड़के दूधकी ३ भावनाएं देवें। फिर सोगठी (शिखरवाली गोली) बांधकर सुखावें। इन सोगठियोंको पृथक्-पृथक् नये रेशमी कपडेमें दृढ़ बांध फिर सबको एक साथ गुच्छके समान एक कपडेमें रख डोरेसे बांधकर हांडीमें लटकावें। इस हाँडीके नीचे दण्डागन्धक इतना भरें कि गन्धक पिघलनेपर उसमें औषधिकी पोटली डूब जाय। कपडेकी बत्तीको तैलमें भिगोकर ताप देवें। लगभग आध घण्टेमें गन्धक पिघलनेपर औषधि पचन होने लगती है, फिर आध या एक घण्टेमेंपाक हो जाता हैं। पोटली निकालकर शीतल होने देवें। पश्चात् सोगठियोंको गरम पानीसे धो लेवें और ऊपर लगी हुई गन्धकको चाकूसे छीलकर साफ कर लेवें। (वै. चि. सा.)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक पानी या अदरकके रसमें घिसकर पिलावें। दिनमें २ से ४ समय, २-२ घण्टेके बाद देवें।

उपयोग—हेमगर्भपोटली रस-त्रिदोष, मूर्च्छा, शीताङ्ग, श्वास, कफ, निमोनिया आदि दोषोंको दूर करके रोगीको सचेत बनाता है। श्वसनक सन्निपात (निमोनिया), आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) और अन्य सन्निपातोंमें हृदयक्षीणता, शरीरमें अधिक शीतलता, श्वासका वेग मंद और नाडीका वेग अधिकाधिक क्षीण होते जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समयपर इस रसायनका सेवन करनेसे ये सब तीव्र लक्षण सत्वर शमन हो जाते हैं। एवं सन्निपात आदि रोगोंमें मस्तिष्क शून्य होकर रोगी वेसुध हो जाता है

तब यह औषधि अमृत समान गुण दर्शाती है। हृदयको उत्तेजना देती है, क्षय, श्वास कफविकार वातप्रकोप, मन्दाग्नि आदि दोषोंको दूर करती है। तब आंतड़ीमें उत्पन्न सेन्द्रिय विषको नष्ट करके रोगीको सचेत बनाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोले, ताम्रभस्म ३ तोले और समीरपन्नग ६ माशे, इन सबको यथा विधि मिला घीकुंवारके रसमें ७ दिन खरलकर सोगठी बांधें। फिर इसको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार पचन करें। (औ० गु० ध० शा०)

वक्तव्य—हेमगर्भपोटली रसकी इस कृतिके साथ हम कासीस भस्म १ तोला भी मिलाते हैं। कासीस भस्म मिलानेसे प्राणवायु (ऑक्सिजन) विशेष परिमाणमें मिल जाता है।

चालू हेमगर्भ पोटली रस अष्टसंस्कारित और षड्गुणगन्धक जीर्ण पारदसे बनाते हैं। एवं विशेष हेमगर्भपोटली रस पक्षच्छिन्न बुभुक्षित पारद और अभ्रकसत्व भस्म तथा माक्षिकसत्व भस्म मिलाकर बनाते हैं। दोनोंके गुणधर्ममें महदन्तर हो जाता है। दोनोंके प्रयोग कई बार हमें करना पड़ा है।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ रत्ती तक आवश्यकतापर घिसकर देवें।

उपयोग—यह रस अतिशय तीव्र और उष्णवीर्य है। इसका उपयोग अति सम्हालकर करना चाहिये। यह औषधि आयुर्वेदके अमूल्य औषध-रत्नोंमेंसे एक उत्तम रत्न है। अनेक बार इस रसने अत्यन्त पराकाष्टाको पहुँचे हुए असाध्य और मृत्यु मुखमें प्रवेश करनेके लिये तैयार रोगियोंको जीवन-दान दिया है। इतना होनेपर भी इसका दुरुपयोग होनेसे रोगीको त्रास और बढ़ जाता है। इस रसके सेवनसे तत्काल नाड़ीका वेग बढ़ जाता है, नाड़ीके स्पन्दन नियमित होते हैं एवं रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है।

हेमगर्भका उपयोग सान्निपातिक ज्वरकी अन्तिम अवस्थामें बहुत अच्छा होता है। आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा), श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया), श्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा) या अन्य सन्निपातकी अन्तिम दशा में शरीर शीतल होने लगता है, श्वास बढ़ जाता है, नाड़ी अति मन्द और छिन्न हो जाती है, तन्द्रा आ जाती है, शरीरपर विशेषतः कपालपर शीतल प्रस्वेद आता है, यह स्वेद अधिकतर आता है और हाथ-पैर शीतल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह रस अति उपयुक्त है। यह अवस्था होनेपर शारीरिक उत्ताप अति कम होनेपर इसका कार्य अति उत्तम होता है। विशेषतः श्लैष्मिक और श्वसनकमें तो यह अत्युत्तम माना गया है। परन्तु इस स्थितिमें उपयोगी होने वाले हृदयोत्तेजक औषधको श्लैष्मिक आदि सन्निपातोंकी बिल्कुल प्रथमावस्था या द्वितीयावस्थामें देनेपर

अति हानि होती है ज्वर भयङ्कर बढ़ जाता है; नाड़ी वेगसे चलने लगती है तथ किसी रोगीके मुँहसे रक्त गिरने लगता है।

ऋतु परिवर्तनसे होने वाले अतिसार (अपचनजनित विसूचिका) और जन्तुजन्य विसूचिकामें अत्यधिक दस्त लग जानेपर नाड़ी और हृदयकी गति क्षीण हो जाती है, फिर श्वास प्रकोप हो जाता है; उदर देखनेपर बैठा-सा भासता है। भयङ्कर तृषा, व्याकुलता, हाथ-पैर और समस्त शरीर शीतल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अन्तमें नाड़ी बिल्कुल डोरी सदृश कृश मन्द और छिन्न हो जाती है; क्वचित् नाड़ी हाथको भी नहीं लगती। इस स्थितिमें हेमगर्भ रस अति उपयुक्त है। यह रस अदरकके रसमें घिस, थोड़ा शहद मिलाकर देना चाहिये। जैसे-जैसे मात्रा शोषित होती है वैसे-वैसे प्रकृति सुधरने लगती है।

तमक, प्रतमक, ऊर्ध्व और महाश्वासमें हेमगर्भका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु खूब सम्हालपूर्वक कम मात्रामें देना चाहिये।

अपतन्त्रक आदि वातरोगमें तन्द्रा, भ्रम, संन्यास आदि लक्षण होनेपर कफाधिकता हो तो इसका अति उत्तम उपयोग होता है।

उरस्तोय और कुक्षिशूल विकारमें ज्वर कम होने और नाड़ीकी क्षीणता बढ़नेपर हेमगर्भपोटली रस देना चाहिए।

प्रसूता वातप्रकोपमें हेमगर्भ अति उपयुक्त है। प्रसवकालमें प्रसववेदना कम होकर नाड़ी क्षीण होनेपर हेमगर्भपोटली रस दिया जाता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—हेमगर्भपोटली रसका अनधिकारीपर प्रयोग होनेसे शारीरिक उत्ताप खूब बढ़ जाता है। क्वचित् मृत्यु हो जानेके बाद भी शरीरोष्मा अधिक रहती है। हेमगर्भ देनेके पश्चात् जब तक उत्तेजना शमन न हो तब तक अन्य औषधिका कार्य बहुधा नहीं हो सकता। शमन क्रिया प्रारम्भ होनेपर आवश्यकता अनुसार अन्य औषधिका प्रयोग हो सकता है।

(१६) पंचवक्त्र रस।

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, पीपल, कालीमिर्च और शुद्ध बच्छनाभ इन ६ औषधियोंको समभाग मिला, काले धतूरेके पत्र के रसमें एक दिन खरलकर (टीकाकारके मतानुसार ७ भावनाएँ देकर) मूंगके बराबर गोलियां बांधे। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें ३ समय अदरकके रस और शहदके साथ देवें, ऊपर त्रिकटु मिला हुआ आकके मूलका कषाय पिलावें।

उपयोग—पंचवक्त्र रस अति उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, व्यवायी और पीड़ाहर

है। कफप्रधान सन्निपातमें वातानुबन्ध होनेपर पंचवक्त्रका उपयोग अति लाभदायक है। पित्तानुबंधमें उपयोग नहीं करना चाहिये। कफवातात्मक सन्निपात और वातश्लेष्म ज्वर (Influenza) में यह रस विशेष लाभदायक है। पूयमेहके तीक्ष्ण दर्द, मूत्रावरोध, पूय और शोथ आदिमें पंचवक्त्र रस देनेसे पेशाब साफ आकर तीक्ष्ण दर्द सत्वर दूर होता है।

श्लेष्म-प्रधान सन्निपातमें कफसंचय होनेपर इस रसकी योजना करनी चाहिये। कफ संचय होनेपर कण्ठमें घर-घर आवाज, नाड़ी भारी और तेज श्वासोच्छ्वासके वेगकी वृद्धि, ज्वरवेग मध्यम, भ्रम, प्रलाप, हाथ-पैर पटकना शिर हिलाते रहना, कफ गिरनेपर किञ्चित् अच्छा लगना, कफ न निकलने तक अधिक त्रास, तन्द्रा, शरीरमें भारीपन, त्वचामें गीलापन आदि लक्षण होते हैं। इसपर इस रसका उत्तम उपयोग होता है।

कफज सन्निपातकी इस अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि, हेमगर्भ, कालकूट पञ्चसूत, समीरपन्नग, मल्लसिन्दूर इन सबका पृथक् पृथक् लक्षणानुरोध से उपयोग होता है। पञ्चवक्त्रके लिये विशेष चिह्न यह है कि कफके साथ वातका अनुबंध होना चाहिये।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया) में बिल्कुल प्रारम्भसे इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। तीक्ष्ण पार्श्वपीड़ा होकर चारों ओर फैलना, साथ-साथ श्वास लेनेमें त्रास, श्वासोच्छ्वासके साथ वेदनावृद्धि, किञ्चित् चलने पर दर्द होना, स्थिर रहे तब पार्श्व-पीड़ाका बल कम प्रतीत होना, सेक करनेपर अच्छा लगना, स्नेह स्वेद उपचार करनेपर भी प्रारम्भ में अच्छा लगकर पुनः पीड़ा पूर्ववत् होना पीड़ित स्थानपर दबाकर बाँधने से पीड़ा कम भासना, सन्धि-सन्धिमें (अंगुलियोंके साँधोंमें भी वेदना, नेत्रपर भारीपन, निद्रानाश, अंग अकड़ जाना, अंगोंको स्पर्श भी सहन न होना, मध्यम ज्वर-वेग होनेपर भी सहन न होना, मन्द-मन्द प्रलाप और अर्द्ध बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। इस सन्निपात ज्वरमें पञ्चवक्त्रका उपयोग उत्तम प्रकारका होता है।

वातकफ प्रधान ज्वर और श्लैष्मिक सन्निपात (एन्फ्लुएञ्जा) में वेदना अधिक, तन्द्रा, आलस्य, सर्वांगमें पीड़ा, पर्वभेद, देहमें गीलापन आदि लक्षण होनेपर इस रसका उपयोग करना अति हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—७ भावनायुक्त रससे किसीको धतूरेका नशा आवे तो दही भात खिलावें या नींबूका रस जल मिलाकर पिलावें।

(१७) मृत्युञ्जय रस

विधि—नींबूके रससें शुद्ध किया हुआ हिंगुल २ तोले, शुद्ध बच्छनाभ,

शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सोहागेका फूला और पीपल प्रत्येक १-१ तोला लें। सबको यथा विधि मिला अदरकके रसमें ३ दिन खरल करके मूंगके बराबर गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें ३ समय अदरकके रस या जलसे दें।

विविध अनुपान

सब प्रकारके ज्वरोंमें—शहद।

वातज्वरमें—दहीका तोड़।

दारूणसन्निपातमें—अदरकका रस।

जीर्णज्वरमें—नागरबेलके पानका रस और शहद या पीपल-शहद।

निमोनियामें—तुलसीका रस।

अजीर्णज्वरमें—जम्भीरी नींबूका रस।

विषमज्वरमें—काला जीरा और गुड़।

पक्षाघात और आमवातमें—बेलपत्रका स्वरस और शहद।

वातज्वर और कफ ज्वरमें—लवङ्गादि पाचन।

लवङ्गादि पाचन—लौंग १ माशा, कालीमिर्च ३ माशे, सौंफ, पोदीना, मुलहठी, सोंठ और गिलोय १-१ तोला लें। सबको मिला क्वाथकर ३ हिस्से करें। दिनमें ३ समय ३-३ माशे मिश्री मिलाकर पिलावें।

उपयोग—कफज तथा वातकफ-प्रधान नवीन ज्वर, विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर और सन्निपातका नाश करता है। अतिसार और कृमि रोगमें भी उपयोगी है।

इस रसके सम्बन्धमें रसचण्डांशुकारने लिखा है कि—

अव्यक्तः सिद्धिदः शुद्धो रोगघ्नः कीर्तिवर्द्धनः।
यशःप्रदः शिवः साक्षात् मृत्युञ्जयरसः स्मृतः॥

यह मृत्युञ्जय रस अव्यक्त, सिद्धिदायक, शरीर शुद्धिकर, रोगहर, कीर्ति को बढ़ानें वाला तथा यशकी प्राप्ति कराने वाला तथा लोक कल्याणकारी है।

यह रस कफघ्न और स्वेदल है। अन्त्रस्थ मल और आमका पाचन करता है, तथा विषको पसीना और मूत्र द्वारा निकालकर ज्वरका शमन करता है। पूयमेह (सुजाक) के तीक्ष्ण प्रकोप, मूत्रजलन और मूत्रनलिका के शोथको १-२ दिनमें ही दूर करता है।

कफज्वरमें नासिका, कण्ठ, श्वासवाहिनियां और फुफ्फुसोंमें कफदुष्टि होनेपर और वह भी बिल्कुल उत्तान स्वरूप (मामूली ऊपर-ऊपरके) होनेपर ज्वर वेग मध्यम, आलस्य, मुखमें मीठापन और चिकनापन बार-बार पेशाब आना मूत्रका सफेद रंग, अङ्गमें भारीपन, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण प्रतीत होनेपर मृत्युञ्जय रसको अदरकके रस और शहदके साथ देना चाहिये।

वात कफप्रधान ज्वरमें जुकाम, कास और सारा अङ्ग टूटना ये लक्षण होनेपर मृत्युञ्जय रस देना अति उपकारक है।

अपचनसे आये हुए ज्वरमें इस रसको जम्भीरी नींबूके रसके साथ देनेसे क्लेदक कफकी शुद्धि होती है, पाचक पित्त-सबल बनता है और अजीर्ण दूर होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातकी प्रारम्भिक अवस्थामें कफाधिक्य होनेपर इस रसका उपयोग होता है। पित्ताधिकता होने और रक्तमिश्रित कफ आनेपर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मलेरियामें क्विनाइन अच्छा लाभ पहुँचाती है तथापि किसी-कसीको हानि भी पहुँचा देती है। ऐसे रोगियोंको क्विनाइन अधिक दिन देनेसे ज्वर विशेष प्रकुपित होता है और धातुओंमें लीन हो जाता है, फिर जल्दी नहीं छोड़ता। क्विनाइनके समान अपथ्य सेवन करने वालोंका मलेरिया ज्वर भी धातुओंमें लीन होकर दृढ़ हो जाता है। ज्वर १०१° से १०४° तक बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें अनेकोंको शिरमें भारीपन, प्रतिश्याय, कफकास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं उसके लीन और उत्तान विषको जलाकर ज्वर दूर करनेके लिए मृत्युञ्जय रस अधिक हितकारक है। १-१ रत्ती रस को सोंठ, नागरमोथा और धनियाके क्वाथके साथ दिनमें दो बार देते रहने से दूसरे ही दिनसे ज्वर कम होने लगता है। उष्णता अधिक हो तो प्रवाल पिष्टी २-२ रत्ती मिला देवें।

सूचना—कफप्रधान घोर तीव्र ज्वरमें पूर्ण मात्रा दी जाती है। परन्तु अतियोग होनेपर हृदयको हानि पहुँचाती है। स्त्री, बालक, वृद्ध और निर्बलों को मात्रा शक्ति अनुसार देवें। छोटे बच्चोंको भी उचित मात्रामें यह दिया जाता है।

पित्तप्रधान ज्वरमें इस रसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१८) महामृत्युञ्जय रस

विधि— शुद्ध मल्ल, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाभ और शुद्ध जमालगोटा एक-एक तोला, सोहागेका फूला और सोंठ २-२ तोला, हिंगुल और सफेद कत्था चार-चार तोला लेवें। सबका बारीक चूर्णकर सत्यानाशीके रसमें १२ घण्टे खरल करके आधी-आधी रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ समय, अदरकके रसके साथ।

उपयोग— महामृत्युञ्जय रस ग्रन्थिक सन्निपात (Plague) को दूर करने में अति उपयोगी है। यह रस हृदयको उत्तेजना देता है, नाड़ियोंमें रहे हुए कफ, आमका शोषण करता है, मलमूत्रावरोधको दूर करता है तथा लसिका ग्रन्थियोंमें और रक्तमें रहे हुए कीटाणुओंको नष्ट करके प्लेगको दूर करता

है एवं अन्य कफ प्रधान सन्निपातमें कफ और मलकी शुद्धिके लिए भी यह दिया जाता हैं।

सूचना—ज्वरका वेग भयंकर हो, रक्त गिरता हो तथा दस्त पतला और गरम-गरम होता हो तो यह रस नहीं देना चाहिये।

(१९) गदमुरारि रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाभ ३ माशे लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर भस्म और बच्छनाभ मिला, अदरकके रसमें १२ घण्टे खरल करके आधी-आधी रत्तीकी गोलियां बनावें। इस रस का नाम अनेक आचार्योंने "ज्वरमुरारि रस" भी रखा है। (नि० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ समय, नित्राये जल, अदरकके रस तुलसी के रस अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—गदमुरारि रस आमप्रधान जीर्ण ज्वरोंका शमन करता है। यह रसायन अनेक दिनों तक रहने वाले ज्वरोंमें धातुपरिपोषण-क्रमको धीरे धीरे सुधार कर रोगको शमन करता है। जिन ज्वरोंमें दोष धातुओंके भीतर लीन रहता हो उनमें ज्वरमुरारिका उपयोग अत्यन्त हितकर है। रसगतज्वर, पित्तज्वर जिन सन्निपातोंकी अच्छी रीतिसे चिकित्सा न हुई हो, ऐसे बहुत समयके पुराने विषमज्वर, क्षयकी प्रथमावस्थाका ताप अति-सार सहित जीर्ण ज्वर आदिपर यह रसायन प्रयुक्त होता है।

रसगत ज्वरमें अङ्गमें जड़ता, हाथ-पैर-टूटना, उबाक, वमन, अरुचि, छातीमें भारीपन, मुखमण्डलपर निस्तेजता और कृशता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसे लक्षण होनेपर गदमुरारि रस देना चाहिये।

कफके साथ रक्त गिरना, थूंकमें रक्त आना, रक्त गिरनेपर भी श्लैष्मिक या श्वसनक ज्वरके अन्य लक्षण न होना और फुफ्फुस आदि अवयवोंकी विकृति भी न होना तथा तृषा, अंगोंका दाह, निकम्मे निकम्मे विचार आते रहना, वमन. चक्कर, वेहोशी, प्रलाप, सन्धि सन्धिमें दर्द होना आदि लक्षण होनेपर गदमुरारि रस ब्राह्मीके क्वाथ, वासा स्वरस या दूर्वामूलके फाँटके साथ देना चाहिये।

अति तृषा, बार-बार शौच और लघुशंका, सर्वांग में दाह, हाथ-पैरोंके तलोंमें जलन, हाथ-पैरोंकी नाड़ियाँ खिचना, हाथ पैर पटकना, अतिशय व्याकुलता पंखेसे वायु करते रहनेपर कुछ अच्छा लगना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस नागरमोथाके क्वाथके साथ देना चाहिये।

अति प्रस्वेद, अति तृषा, बार-बार, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुंहसे दुर्गन्ध

आना, प्रस्वेद द्वारा देहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, अरुचि, शरीरके किसी भी भागमें स्पर्श सहन न होना आदि लक्षण होनेपर ज्वरमुरारिरस शहद और जलके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

हाथ-पैरोंकी नाड़ियाँ खिचना, सर्वाङ्गमें पीड़ा, श्वास, बैचेनी, वमन, अतिसार आदि लक्षण होनेपर ज्वरमुरारि रसको प्रवालपिष्टी और शृङ्ग-भस्मके साथ मिला पियाबांसाके स्वरस या क्वाथके साथ दें।

चक्कर आना, हिक्का, खांसी, शीत लगना या शरीर शीतल हो जाना, हाथ पैर शून्य हो जाना, वमन, अन्तर्दाह, हृदय, मूत्राशय और पार्श्वभागमें वेदना वलपूर्वक दीर्घ श्वास लेना आदि लक्षण होनेपर इसे सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ देनेसे तत्काल लाभ पहुँचता है।

न्युमोनिया, इन्फ्लुएन्जा और मधुराज्वर अति जीर्ण होनेपर तीव्र औषध नहीं दी जाती। ऐसे समयपर शनैः शनैः कार्य करनेवाली सौम्य औषधि देनी चाहिये। ऐसी औषधि गदमुरारि रस है। इस रसका उपयोग कर्णक, भुग्ननेत्र, चितविभ्रम और अभिन्यास सन्निपातकी जीर्णावस्थामें भी होता है।

विषमज्वरकी योग्य चिकित्सा न होनेपर प्रारम्भसे ही चिरकारी होने पर दीर्घकाल स्थायी होता है। इस ज्वरमें निश्चित् प्रकारका व्यक्त रूप नहीं होता अर्थात् चातुर्थिक सदृश चौथे रोज या संतत समान सर्वदा ज्वर आता है, ऐसा नहीं। दिनमें किसी भी समय अनियमित रूपसे आना कभी कम, कभी ज्यादा, कभी शीत लगकर, कभी बिना शीत लगे; कभी तृषा अधिक, कभी तृषा न लगना आदि अनियमितता होती है। ज्वर आनेपर सर्वाङ्गमें दर्द ज्वर चले जानेपर अच्छी तरह चलना-फिरना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे ज्वरमें विषमज्वरके कोटाणु या सेन्द्रिय विषरूप कारण स्पष्ट प्रकाशित नहीं होता। केवल ज्वर दीर्घ कालतक रहता है। परिणाममें कृशता, ग्लानि, अपचन, निर्बलता, निस्तेजता, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारमें ज्वरमुरारि रसका उपयोग किया जाता है।

क्षयकी प्रथमावस्थामें सामान्य ज्वर, शुष्क कास, सारे शरीरमें दर्द, नाड़ीका तीव्र वेग, तृषा, दाह आदि लक्षण होनेपर इस रसके साथ प्रवाल-पिष्टी और शृङ्ग भस्म देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

जीर्ण शोफ, भीतरके अवयवोंका शोफ, जिसमें खांसी, छाती और पस-लियोंमें शूल होना निश्चित, समयपर सूक्ष्म ज्वर, अङ्गमें भारीपन कृशता, उदरमें मन्द-मन्द दर्द होना, आम गिरना, मलकी रचना अच्छी न होना आदि लक्षण गौण हों और प्रधान लक्षण ज्वर हो, तो ज्वरमुरारि रसका उपयोग करना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(२०) कालकूट रस

विधि—शुद्ध बच्छनाभ १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध आँवलासार गन्धक ५ भाग, शुद्ध मैनसिल ६ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, सोहागेका फूला ६ भाग, शुद्ध हरताल ९ भाग, चित्रकमूल ९ भाग, त्रिकटु १२ भाग, त्रिफला १० भाग, भुनी हींग १ भाग और बच १ भाग लेवें। पहिले पारद और गन्धक मिलाकर कज्जलीकर ताम्र भस्म, मैनसिल, हरताल सोहागा और वच्छनाभ क्रमशः मिलावें। बादमें शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला. अदरकका रस, चित्रकमूलका क्वाथ, जम्भीरी नींबूका रस, लहसुनका रस, करञ्जके पत्तोंका रस, आकके मूलका क्वाथ, कलिहारीके मूलका क्वाथ, धतूरेके मूलका क्वाथ नागरबेलके पानका रस, अंकोलके मूलका क्वाथ, सहिंजनेके मूलका क्वाथ, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ) का क्वाथ, बृहद् पञ्चमूल (बेल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी और पाढलकी छाल) का क्वाथ, इन १३ औषधियोंकी १-१ प्रहर तक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा)

मात्रा—१-१ गोली अदरकके रससे दिनमें ३ बार देवें।

उपयोग—कालकूट रस अनेक ज्वरों और सन्निपातोंका नाश करता है। इस औषधिके साथ लिखा है कि इस रसके सेवनके पश्चात् रोगीको स्नान करावें ओर चन्दनका लेप करें। एवं पथ्यमें दही, खजूर आदि तथा ताम्बूल देवें।

यह रस अति तीक्ष्ण, उष्ण, विकाशी और व्यवायी है। इसमें मिलाये हुए द्रव्य और विविध उग्र भावनाओंके हेतुसे यह अति उग्र बना है। इसका उपयोग करनेमें खूब सम्हालना चाहिए। जब नाड़ी पूर्ण भरी हुई या डोरी सदृश हाथको भी न मालूम पड़ने वाली हो; नाड़ी हृदयके अवसादकत्वकी साक्षी देती हो तथा किसी स्थानमेंसे रक्तस्राव न होता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। वरना कालकूटके तीक्षणत्व आदि गुणोंसे रक्तस्राव बढ़ जाता है।

इस रसके सेवनसे आध घण्टेमें हृदयको अतिशय उत्तेजना आकर नाड़ीके वेगमें लगभग २०-३० स्पन्दन बढ़ जाते हैं, फिर रक्तका दबाव भी बढ़ जाता है। अतः नेत्रमें लाली आदि लक्षण हों, तो यह रस नहीं देना चाहिए भूल होनेपर कभी-कभी इस रसायनके तीव्रत्वके हेतुसे रक्त वाहिनियाँ फटकर रक्तस्राव भी होने लगता है रोगलक्षणके साथ औषधिकी उग्रता और हानिके लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। सन्निपात कहनेसे उसकी कठिनता अवगत हो जाती है, ऐसे समयपर अनुचित औषधिकी योजना होनेपर रोगीको त्रास होनेका कहना ही क्या? इस हेतुसे दुष्परिणामको अच्छी तरह

समझकर इसका उपयोग करें। अत: दुरुपयोगसे बचनेके लिए इस औषधिसे होने वाले दुष्परिणाम और इसके विपरीत जीवनदान रूप लाभको हमनें विस्तारपूर्वक समझाकर लिखा है। जिस स्थानपर हानिका संदेह हो, उस स्थानमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

यह रस कफप्रधान और वातसंसर्गी सन्निपातकी सर्वोत्तम औषधि है। इसका मुख्य उपयोग ग्रन्थिक सन्निपातमें किया है। और इससे ग्रन्थिक सन्निपातमें अच्छा लाभ मिला है। परन्तु इस औषधके अवगुणका विचार किये बिना अधिक मात्रामें बार-बार प्रयोग किया जाय तो हानि होनेका भय रहता है।

कफप्रधान सन्निपातमें निम्न लक्षण होनेपर कालकूट रस देना चाहिये। नाड़ी अति मन्द और भारी, सारा शरीर जड़, मस्तिष्क अतिशय जड़, यहां तक कि मस्तिष्कपर बड़ा पत्थर बाँधने सदृश भास होना, मस्तिष्क चलाने या उठानेमें भी कष्ट होना, मस्तिष्क हिलानेके पहिले मस्तिष्क नहीं है ऐसा लगना, जो विचार आवे वह दूसरोंका है ऐसी भावना होना, ज्ञान, विज्ञान, संज्ञा आदि सर्व भावनाओंमें जड़ता आ जाना अर्थात् अति प्रयत्नसे अति समय लगनेपर कुछ विचार आना, मस्तिष्कमें अधिक पीड़ा न होना, यदि पीड़ा हुई तो वह गम्भीर स्वरूपकी होना, नेत्रपर भारीपन, नेत्रमें निस्तेजता नेत्रकी पुतलीमें जड़ता, किसी ओर दृष्टि न डालनेकी इच्छा, प्रकाशकी चाह अन्धकार, शीतल जल और शीतल स्पर्शमें अप्रीति, कभी-कभी नेत्रमेंसे गाढ़ा चिपचिपा स्राव होना, नेत्रमें कुछ मोटा शल्य है ऐसा लगना, कभी-कभी नासिकामेंसे श्लेष्मस्राव, नासिकासे गंधका बोध न होना, गरम पदार्थ या तमाखू सूंघनेपर अच्छा लगना, जिह्वा मोटी और जड़ हो जानेसे उच्चारण अस्पष्ट, मन्द निकलना, जिह्वापर सफेद मेल आजाना दांत और जिह्वापर कुछ शून्यता जबाड़ेमें जड़ता और किसी बातपर लक्ष्य देनेकी इच्छा न होना आदि लक्षण होनेपर इस रसका उत्तम उपयोग होता है।

कफवातात्मक विकृति होनेपर श्वासोच्छ्वास अति कष्टसे चलता है, श्वासोच्छ्वासके मार्गमें कोई खास प्रतिबन्ध नहीं होता; कफस्थानमें विकृति कम होनेपर भी कफदोष-विकृति अधिक होती है। इस हेतुसे श्वासोच्छ्वास अति धीरे-धीरे चलता है। खांसी भी विशेष नहीं होती या गम्भीर होती है। कफकी गांठ सफेद, गाढी, लेसदार और बड़ी होती है। कफमें मीठा, खट्टा कोई स्वाद नहीं होता, नाड़ी मन्द और भारी होती है। एक मिनटमें स्पन्दन संख्या ४० से ५० होती है। ऐसे लक्षण होनेपर कालकूट रस अवश्य देना चाहिये।

हाथ-पैर जड़, हाथ पैरोंमें शून्यता; हाथ पैर चलानेमें त्रास या अशक्ति, हाथ पेरोंमें देर-देरसे मन्द-मन्द आक्षेप आना (यह आक्षेप वातवाहिनियों

की विकृतिसे आता है) और तन्द्रा आदि लक्षण होनेपर कालकूट रसकी योजना करनी चाहिये।

वातकफप्रधान ज्वर (Influenza) में कफ-संसर्ग और वातके लक्षण होनेपर कालकूट रस देना चाहिये। वात लक्षणोंका स्वरूप सन्निपातके लक्षणोंमें पहिले कहा है। इस ज्वरके प्रारम्भमें त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग गुडूच्यादि क्वाथ (चिकित्सातत्वप्रदीप) के साथ बहुत अच्छा होता है। यदि पहिलेसे ही यह प्रयोग किया जाय तो रोगकी वृद्धि नहीं होती। प्रारम्भमें उपेक्षा की जाय तो कफ और वात लक्षण बढ़ जाते हैं। वात लक्षणमें दो प्रकार हैं। एकमें रोगीको आधी सुध, प्रलाप, भ्रम, अति स्वेद, कण्ठ हिलाते रहना, कभी-कभी बूम मारना और शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° डिग्री होना आदि लक्षण होते हैं। उसपर महावात विध्वंसन रस देवें। दूसरे प्रकारके वात लक्षणोंमें मंद प्रलाप, जड़ता, हाल-चाल अति मन्द-मन्द ज्वर, नाड़ीमें मन्दता आदि लक्षण होते हैं इसपर कालकूट तथा स्मृतिनाश और आक्षेप हो तो स्मृति सागर रस देना चाहिए।

कालकूट रस, यह धनुर्वातकी प्रशस्त औषधि है। यदि धनुर्वातमें कफ प्रधान दुष्टि हो तो कालकूट उत्तम लाभदायक है। गर्भपात होनेके पश्चात् होने वाले धनुर्वातमें इस रसायनका उपयोग होता है। गर्भपात होनेपर यदि शारीरिक व्यवस्था अच्छी रही तो कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। परन्तु अव्यवस्था होनेपर मलिन हाथ या मलिन वस्त्र आदिका संसर्ग होने पर धनुर्वातकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके धनुर्वातमें रक्तस्राव अधिक नहीं होता या बिल्कुल नहीं होता। इस बातका पहिले निर्णय कर लेना चाहिये फिर रक्तस्राव किञ्चित् हो या न हो तो कालकूट देना चाहिये। इससे शरीरमें धनुर्वातके कीटाणुनाशक प्रति विष या प्रतिकारी परिस्थिति उत्पन्न होती है।

गर्भपातके पश्चात् जिस संप्राप्तिसे धनुर्वात होता है; वही सूतिकाके लिए भी लागू होती है। आयुर्वेद कथित उत्पत्ति अनुसार इस विकारकी पृथक्-पृथक् अवस्थाओंमें लक्षण-भेदसे पृथक्-पृथक् औषधि-सूतिकारि, सूतिकाभरण प्रतापलंकेश्वर, ताप्यादि लोह और कालकूट आदि औषधियाँ दी जाती हैं। मक्कलशूल आदि वातप्रधान लक्षण मुख्य हों तो प्रतापलंकेश्वर बार-बार आक्षेप और पित्तप्रधानता होनेपर ताप्यादि लोह धनुर्वात आदि लक्षण स्वल्प और सौम्य होनेपर सूतिकाभरणरस, वातकफप्रधान लक्षण हों तो सूतिकारि और कफप्रधान जड़ता, बेहोशी आदिपर कालकूट देना चाहिये। इस बातका भी स्मरण रखें कि रक्तस्राव न हो तो ही कालकूट दिया जाता है।

छोटे बालकोंको होनेवाले पूयमय वृक्कविकारमें यह औषधि सैंधानमक

और हरड़के साथ दी जाती है। इस रोगके आरम्भमें ज्वर अधिक होता है, हाथ-पैरोंपर शोथ, मुख और सर्वाङ्गका रङ्ग भस्म सदृश तथा मूत्र थोड़ा और लालवर्णका पूय मिश्रित होता है। फिर आगे तन्द्रा, मन्द आक्षेप, जड़ता और भयप्रद अवस्थाकी प्राप्ति होती है। इस द्वितीयावस्थामें कालकूट रस उत्तम कार्य करता है।

भुग्ननेत्र सन्निपातकी तीव्रावस्थामें इस रसका अच्छा उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस अति तीव्र होनेसे सगर्भा स्त्रियोंको नहीं देना चाहिये। छोटे बच्चोंको अति कम मात्रामें सम्हालपूर्वक देवें और बडे कोमल मनुष्यको भी विचारपूर्वक ही देवें। इसे ज्यादा दिनों तक चालू नहीं रखना चाहिये।

क्वचित् कालकूट रससे कण्ठमें घाव हो जाता है, जिह्वा फट जाती है और अति उष्णता बढ़ जाती है ऐसी संभावना होनेपर इसे केपसूलमें बन्द करके देना ठीक होगा। अनुपान ऊपरसे पिला देना चाहिये।

(२१) लक्ष्मीनारायण रस

विधि—शुद्ध हिंगुल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गंधक, सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाभ, निर्गुण्डीके बीज, अतिविष, पीपल, कूड़ाकी छाल, सेंधानमक प्रत्येक समभाग मिला, दन्तीमूल और त्रिफलाके क्वाथकी ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती। अदरकके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—लक्ष्मीनारायण रस दुष्टज्वर, आंत्रिक सन्निपात, विसूचिका विषमज्वर, अतिसार ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, शूल, सूतिका रोग वातव्याधि और बालकोंके धनुर्वातको दूर करता है।

यह रस उत्तम ज्वरघ्न, स्वेदल, (परन्तु अवसादक नहीं), पाचकसेन्द्रिय विषघ्न और कीटाणुनाशक है। इसका उपयोग रस और रक्तधातुगत ज्वरोंपर विशेषतः मुद्दती तापकी तीव्रावस्थामें-बहुत अच्छा होता है। यह रस स्वेदल होनेपर भी हृदयको शिथिल नहीं बनाता। धनुष्कंप, अपतानक आक्षेपक आदि वातनाड़ियोंके विकृति जनित वातरोगोंमें जब ज्वर आने लगता है तब इसे देनेसे ज्वर और वातप्रकोप दोनों शमन होते हैं। अनेक बालकोंको धनुर्वातके झटके आते हैं जो बच्चोंके लिये विशेष भयप्रद हैं। उस आक्षेपका शमन इस रससे तत्काल होकर ३-४ रोजमें रोग नष्ट हो जाता है। कुक्षिशूलके विकारमें बार-बार शूल चलना, ज्वरदाह, शोथ और बेचैनी आदि लक्षण होनेपर इस रससे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूतिका ज्वर अति भयंकर व्याधि है। प्रसवकालमें या पश्चात् किसी

कारण वश मलिन हाथ या गन्दे वस्त्रोंके संसर्गसे योनिमार्गमें कीटाणुओंका प्रवेश होकर व्रण उत्पन्न होते हैं। फिर गर्भाशय और योनिमार्गमें विकृति फैलती है। यदि इसे सत्वर न सम्हाला जाय तो इस विकारका असर समस्त शरीरमें होजाता है। इसके योगसे ज्वर आता है। विशेषत: ज्वरका वेग तीव्र हो जाता है। यदि तीव्र ज्वरके साथ शिरदर्द, तृषा, क्वचित् बेहोशी, धनुर्वात आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीनारायण रसको दशमूलारिष्टके साथ देने से वह रक्तमें मिश्रित हुए विषको जलानेका और ज्वरको उतारनेका अच्छा कार्य करता है। साथमें उत्तरवस्ति द्वारा गर्भाशय, गर्भमार्ग और योनिमें उत्पन्न होनेवाले सेन्द्रिय विषका भी निरोध कर देना चाहिये। यदि ज्वरका वेग कम हो और वातप्रकोप भयंकर हो तो इस रसको नहीं देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें प्रतापलङ्केश्वर दें और गर्भाशय शुद्धिके लिये दशमूलारिष्ट साथमें देना चाहिये। इस तरह सूतिका विषजन्य ज्वरमें लक्ष्मीनारायण उत्तम ज्वरघ्न और विषघ्न औषध है।

आन्त्रिक सन्निपात (२१ दिनकामुद्दतीताप-मधुरा) के आरम्भमें लक्ष्मी नारायण देनेसे आन्त्रिक विषका शमन, दोषपाचन और ज्वरघ्न रूपसे उत्तम कार्य होता है। दूसरे तीसरे सप्ताहमें दुर्गन्धयुक्त अतिसार सहित ज्वर १०४°-१०५° डिग्री पर्यन्त बढ़नेपर भी लक्ष्मीनारायणरस, वटी प्रकरणमें कही हुई मधुरान्तक वटीके साथ देनेसे दाह, विषशमन और अतिसारका रोध करनेके लिये अच्छा कार्य करता है और ज्वर बढ़कर रोगीकी शक्तिका क्षय नहीं होने देता। लक्ष्मीनारायणकी मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये। विष बहुत अधिक हो गया हो तो लक्ष्मीनारायण और मधुरान्तक वटी दिन में २ समय तथा प्रवालपिष्टी शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे कोष्ठ दाह विष, प्रलाप, अतिसार. ज्वरका वेग आदि सत्वर कम हो जाते हैं।

इस आंत्रिक ज्वरमें विचित्र-विचित्र उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसे समय पर उपद्रव अनुसार औषध दी जाती है परन्तु लक्ष्मीनारायणको भी बन्द नहीं करना चाहिये।

जिन रोगियोंको आन्त्रिक ज्वरमें लक्ष्मीनारायण नहीं दिया जाता उनमें से कितनों ही को भयंकर त्रासदायक अतिसार होता है। रोगी कहता है कि इस अतिसारकी अपेक्षा बद्धकोष्ठ होंजाय तो वह भी अच्छा। अतिसारसे शक्ति अधिक क्षीण होती जाती है। अतिसार जल सदृश पतला दुर्गन्धयुक्त होता रहता है और दस्त लगनेके पहिले त्रासदायक उदरवातकी उत्पत्ति होती है। यह अतिसार भी लक्ष्मीनारायण रससे ही बंद होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात एवं अन्य प्रकारके सन्निपातोंमें उस उस सन्निपातकी नाशक औषधियों के साथ ज्वरघ्न, स्वेदल और सेन्द्रिय

विषघ्न गुणोंके लिये लक्ष्मीनारायण रस दिया जाता है।

विषम ज्वरमें जिस औषधमें ज्वरघ्न और धातुगत दोषनाशक गुण हों वही उपयोगी होती है। ये दोनों गुण (ज्वर और धातुगत दोषको नष्ट करना) इस रसायनमें होनेसे संतत ज्वर (जिसमें ज्वर निरंतर बना रहता हैं और सर्वांगमें जड़ता, मुंहमें पानी आना, वमन, उबाक, अरुचि, दाह, किंचित प्रलाप, तृषा, आक्षेप, शिरदर्द, चक्कर, प्यास आदि लक्षण प्रातः रहते हैं); सततज्वर (रोज आकर उतर जाने वाला ज्वर), एकाहिक, तृतीयक (एकांतरा) चातुर्थिक (तिजारी); इन सब प्रकारके विषम ज्वरोंमें लक्ष्मीनारायण सुदर्शन अर्क या तुलसीके रसके साथ देनेसे धातुगत दोषका शमन होकर ज्वर जल्दी दूर हो जाता है। सततज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, आदिमें ज्वर न हो, तब सप्तपर्ण सत्व सदृश औषध देने और ज्वरावस्थामें लक्ष्मीनारायण देनेसे रोग शमन हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

परिवर्तित ज्वर जो वर्षों पर्यन्त बार-बार थोडे दिन बाद अनियमित समयपर आता रहता है उसमें कफभूयिष्ठ लक्षण हों तो हरताल या सोमल वाली ओषधि दी जाती है, तथा पित्तप्रधान लक्षण हों, आरम्भमें जोरसे ठण्ड लगकर ज्वर आता हो, और साथ-साथ प्यास, बेचैनी, दाह, शिरदर्द आदि लक्षण हों तो हरताल या सोमल कल्पकी अपेक्षा लक्ष्मीनारायण रस ही विशेष लाभदायक होता है। परिवर्तितके समान अन्य जातिके कीटाणु-जन्य ज्वरमें भी पित्ताधिक्य लक्षण हों तो लक्ष्मीनारायण रस देनेसे कीटाणु नष्ट होकर ज्वरका शमन हो जाता है।

आन्त्रिक ज्वरके पश्चात् उत्पन्न होने वाले ग्रहणी रोगमें एवं दूषित जल वायुके योगसे होने वाले अतिसारमें उदरमें दर्दकी कभी, परन्तु बार-बार थोड़ा थोड़ा आंव और रक्तसहित दस्त होना और ज्वर आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीनारायण रस अत्यन्त हितकर है।

तीव्र ज्वरके पश्चात् संग्रहणी हो जानेपर लक्ष्मीनारायण और कनक-सुन्दर अति उपयोगी औषधि है। उदरमें मन्द-मन्द दर्द होकर बार-बार शौच जाना शौचमें कुछ आम और किंचित् रक्त गिरना, मल कभी बिल्कुल न आना, कभी थोड़ा-सा आना, बार-बार पेशाब आते रहना, साथ-साथ ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षण होनेपर लक्ष्मीनारायण का उपयोग है।

कभी कभी रोगीको लक्ष्मीनारायण रस देनेसे अति प्रस्वेद आता है, इस हेतुसे त्रास अधिक होता है। ऐसे समयपर प्रवाल पिष्टी अमृतासत्व मिश्रण करके देते रहना चाहिये।

इस लक्ष्मीनारायण रसका कार्य विशेषतः अन्त्र, यकृत् और प्लीहा स्थानपर तथा रस, मांस और त्वग्गत स्वेद पिण्डोंपर होता है। यह पित्त

की तीव्रताके शमनार्थ अच्छा उपयोगी है। (औ०गु०ध०शा० के आधारसे)

कभी-कभी रोमान्तिका रोग शहर व्यापी बन जाता है एक मकानके भीतर किसी एक बालकको होनेपर अन्य बालकोंपर भी इस रोगका आक्रमण हो जाता है। यह रक्त धातुगत और वातपित्तात्मक ज्वर है। इस रोगकी सम्प्राप्ति ३ मासके बच्चेसे लेकर ८ वर्ष की आयु वाले बालकोंको हो जाती है। ज्वर १०३° से १०४° तक बढ़ जाना, जिह्वा सफेद, नेत्र उभरे हुए, शुष्ककास, किसीको प्रतिश्याय, बहुधा चौथे दिनसे मुखमण्डल और कण्ठपर पिटिकाएं प्रतीत होती है, पाँचवें दिन समस्त देहपर भासती इस विकारपर लक्ष्मीनारायण रस, गोरोचन, प्रवाल, शृङ्गभस्म, अमृतासत्व और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ समय देने और मसूरिका रोगपर कहे हुए निम्बादि क्वाथ पिलाते रहनेसे बिना कष्ट पहुँचाये रोग दूर हो जाता है।

(२२) मधुरान्तक वटी

विधि—मोतीपिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशे, केशर ३ माशे, जायफल ४ माशे, जावत्री ५ माशे, लवंग ६ माशे, तुलसीपत्र ७ माशे और अभ्रकभस्म ७ माशे लेवें। सबको मिला ३ घण्टे अदरकके रसमें खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक, दिनमें ३-४ समय तीन-तीन घण्टे के अन्तरसे, अदरकके रस या जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे २१ दिनकी मुद्दतीताप (Typhoid Fever) में मधुराके दाने जल्दी निकलकर भर तथा ढल जाते हैं। यह वटी मधुराकी सब अवस्थाओंमें उपयोगी है। विषका शमन करती है। अन्तडीको बलवान बनाती है और दाहको शांत करती है। अपथ्य सेवन या औषधमें भूल होनेपर कभी दाने बाहर नहीं आते, विष भीतर फैल जानेसे विविध विकार उत्पन्न होते हैं, ऐसी परिस्थितिमें यह औषधि जादू के समान लाभ पहुँचाती है।

आवश्यकता अनुसार द्वितीय और तृतीयावस्थामें इसके साथ लक्ष्मीनारायण अथवा सूतशेखर तथा प्रवालपिष्टी योग्य मात्रामें मिला देनेसे कई बिगड़े हुए मोतीझराके रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ हो गये है।

(२३) संचेतनी गुटिका

विधि—मल्लभस्म, ताम्रभस्म, सोंठ, पीपलामूल, बायबिडंग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्री, जावित्री, शुद्ध कुचिला, शुद्ध बच्छनाभ, कस्तूरी, सब समभाग मिला १२ घण्टे भांगरेके रसमें घोटकर चने बराबर गोलियां बना लेवें। (धन्व०)

मात्रा—१-१ गोली। आवश्यकतानुसार गरम जलके साथ, दिनमें ३-४ समय ३-३ घण्टेके अन्तरपर देवें।

उपयोग—यह रसायन सन्निपातमें बेहोशी दूर करनेमें अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगी भी एक दफा होशमें आ जाता है। कफ, आम और वातप्रकोपको यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदयकी गतिको उत्तेजना देती है और त्रिदोषको सम बनाती है।

यह रसायन अति उग्र, उष्णवीर्य, स्वेदल, विकाशी, हृदयोत्तेजक, सेन्द्रिय विषनाशक और कीटाणुनाशक है। जो गुण हेमगर्भपोटली रसमें रहा है, वह इस वटीमें है। वातवाहिनियां और रक्तवाहिनियां दोनोंको यह वटी लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्कगत वातकेन्द्र, हृदय और यकृत्को उत्तेजित करती है तथा अन्त्रस्थ और रक्तस्थ विषको नाश करके रोगीको सुधिमें लाती है। अतः यह वातप्रधान और कफप्रधान और वातकफप्रधान सन्निपातकी गिरी हुई अवस्थामें अमृत-सदृश लाभदायक है। यह रस मस्तिष्कगत केन्द्रको उत्तेजितकर बेहोशीको तत्काल दूर करता है। मरणमुखमें जाते हुए अनेक रोगी इस रसके सेवनसे बच जानेके उदाहरण मिले हैं।

सन्निपातके अतिरिक्त अपस्मार, मूर्च्छा, मानसिक आघात और चोट-जनित बेहोशी, विषप्रकोप, विसूचिका, ज्वर, संग्रहणी, विरेचन आदि कारणों से उत्पन्न शक्तिक्षयको दूरकर तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेमें यह संचेतनी वटी सफलतापूर्वक कार्य करती है।

अनुपान—नागरबेलके पान, पोदीना या अदरकका रस और शहद।

सूचना—(१) यदि उदरमें दूषित मल भरा है तो औषध प्रयोग करने के पहले ग्लीसरीन या एरण्ड तैलकी पिचकारी या बस्ति देकर मलको बाहर फेंक देना चाहिए।

(२) जिन रोगियोंके वृक्क निर्दोष न हों, मुखपर शोथ आता रहता हो, उनको यह वटी अधिक मात्रामें या अधिक बार नहीं देनी चाहिये।

सूचना—पित्तप्रधान विकारमें एवं शारीरिक उत्ताप अधिक होनेपर इस रसका उपयोग नहीं करना चाहिये, वरना मस्तिष्कमें रक्तदबावकी वृद्धि होकर लाभके स्थानमें हानि पहुँचेगी।

(२४) लक्ष्मीविलास रस*

विधि—अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले

* पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ।
तदर्द्धं चन्द्रसंज्ञस्य जातीकोषफले तथा॥
वृद्धदारक बीजञ्च बीजं धुस्तूरकस्य च।

कपूर, जायफल, जावित्री, विधाराके बीज धतूरेके शुद्ध बीज, गाँजेके बीज, बिदारीकंद, शतावरी, नागवला (गुलशकरी), अतिबला (कंघी), गोखरू, जलबेंतके बीज इन १२ औषधियोंको १-१ तोला लें। पहिले पारद-गन्धक की कज्जली करके अभ्रक मिलावें। फिर शेष काष्ठादि औषधियोंके कपड़छन चूर्णको मिला, नागरबेलके पानके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें ३ समय, दूध, दही, शराब, शहद या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य याप्य और प्रत्याख्याय चारों प्रकारके सन्निपातोंसे उत्पन्न विकारोंको नष्ट करता है। इसमें यह नियम भी नहीं है कि वातप्रधान या पित्तप्रधान दोषोंको ही दूर करें। सब प्रकारोंपर यह रसायन उपकारक है। कुष्ठ, प्रमेह, नासूर, दुष्ट व्रण, गुदरोग, भगंदर, रक्तमांसाश्रित कफ-वातप्रधान श्लीपद, मेदगत धातुगत, जीर्ण अथवा वंशपरंपरागत, गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार, आमवात, जिह्वास्तंभ, गलग्रह, उदररोग, नासिका, कर्ण, नेत्र और मुखके विकार, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्श, स्थूलता (मेदवृद्धि), पसीनेमें दुर्गन्ध-आना, कुक्षिशूल, शिरःशूल, प्रसूता स्त्रियोंके मक्कलशूल आदि रोग और पुष्पोंके ध्वजभंग आदि रोगोंको नष्ट करता है, तथा वृद्धोंको तरुणोंकी बराबरी कराता है। इस रसका निरन्तर सेवन करने वालोंको इन्द्रियशैथिल्य और श्वेत केशकी प्राप्ति नहीं होती।

त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीमूलमेव च ॥
नारायणी तथा नागवलाचातिबला तथा।
बीजं गोक्षुरकस्याऽपि नैचुलं बीजमेव च ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं पर्णपत्ररसैः पुनः।
निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ॥
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना।
रसो लक्ष्मीविलासोऽस्तु वासुदेवे जगत्पतौ ॥
अभ्यासाद्यस्य भगवान् (लक्षनारीपु) वल्लभेः।

इस रसको भी रसेन्द्रचिन्तामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह आदि ग्रन्थकारोंने नारदीय लक्ष्मीविलास संज्ञा दी है।

रसेन्द्रचिन्तामणि आदि जो ग्रन्थ धातुवाद और देहवाद और विवेचन करते हैं उनके मता अनुसार पारद विशेष गन्धक-सुवर्ण जारित और पक्षच्छिन्न लेना चाहिए।

यह लक्ष्मीविलास रस आयुर्वेदीय औषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान औषधि है। यह उत्तम हृद्यबल्य (हृदयको बलवान बनाने वाली) और हृदयोत्तेजक है इस औषधिसे तीव्र विकारमें शान्तिपूर्वक उत्तेजना और रक्तवाहिनीकी विस्फारितता एवं जीर्णविकारमें हृद्यगुण मिलता है हृद्यगुण के कारण हृदयको संकोच विकास क्रिया नियमित होनेसे धड़कन दूर हो जाती है और हृदयको शांति मिलती है। इस औषधिका परिणाम पुरीतती हृदयावरण (Pericardinm) वाम और सव्य पार्श्वपटल (बायीं तथा दाहिनी ओरके आच्छादित करने वाले कपाट (Valves) और हृदय के अलिन्द निलय (Auricles and ventricles) इन विभागोंपर उत्तम प्रकारका होता है।

जिस तरह ब्राण्डी आदि औषधियोंमें हृदयोत्तेजनाके पश्चात् उतनी ही बलपूर्वक अवसादकताकी प्राप्ति होती है; उस तरह इस रसजनित उत्तेजना के अन्तमें प्रतिक्रिया रूप अधिक अवसादकता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह गुण इसका विशेष माना जाता है। इस रससे नाड़ी सुधरनेके पश्चात् दीर्घकाल पर्यन्त वैसी रहती है।

श्वसन और श्लैष्मिक सन्निपातमें हृदयकी निर्बलता सम्बन्धी संशय होनेपर इसका उपयोग करनेसे उत्तम कार्य होता है। आगे भी आवश्यकता पर इसके सेवनसे कास, श्वास, ज्वराधिक्य, फुपफुसप्रदाह, नाड़ी और हृदय का वेग अधिक बढ़ना ये सब लक्षण दूर होते हैं। फुफ्फुसशोथ कम होकर श्वासके वेग और कासका शमन होता है। यदि इस सन्निपातकी तृतीयावस्थामें कफप्रकोपसे गलेमें घर-घर आवाज, तन्द्रा और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हों तो लक्ष्मीविलास न देकर मल्लसिन्दूर, पञ्चसूत या समीरपन्नग देना चाहिये।

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) में हृदयक्षीणता, सर्वाङ्गशूल, भ्रम, प्रलाप, बेहोशी, निस्तेजता, शुष्क कास आदि लक्षण उपस्थित हो अथवा मुद्दत पूरी होनेपर भी रोग जैसाका वैसा कायम रहे या शुष्ककास आदि लक्षणोंकी वृद्धि हो तो लक्ष्मीविलास रस देनेसे अन्त्रदोषघ्न और हृद्य, दोनों प्रकारके परिणाम प्रतीत होते हैं तथा रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ हो जाता है।

आन्त्रिक सन्निपातके द्वितीय और तृतीय सप्ताहमें क्वचित् शुष्क त्रासदायक कासका वेग अति बढ़ जाता है। साथ-साथ नाड़ी क्षीण और मन्द हो जाती है; अन्य लक्षणोमें अन्तर नहीं होता फिर भी कासके लिये दुर्लक्ष्य किया जाय तो आगे हृदय और नाड़ी क्षीणतर होते जायेंगे। अतः

कासरोग प्रारम्भ होनेपर ही लक्ष्मीविलास देते रहनेसे कासका निवारण होता है और रोगी शनैः-शनैः स्वस्थ हो जाता है।

आन्त्रिक सन्निपातमें क्वचित् भूल-प्रमाद वश अवधि बढ़ जाती है। ऐसे समयपर रोगीकी स्थिति भयंकर करुणाजनक हो जाती है। मनपर किञ्चिद् विरोधी विचार आनेके साथ मन अस्वस्थ हो जाता है; ज्वरविष से लड़ाई करते-करते जीवनीय शक्ति क्षीण हो जाती है; इस हेतुसे मस्तिष्क विविध पीड़ाओंसे त्रस्त हो जाता है। देहपर अस्थिचर्म शेष रहते हैं। हृदय अति दुर्बल, क्षीण और मन्द हो जाता है। इस अवस्थामें लक्ष्मीविलास रस ने अनेकोंको जीवन दान दिया है। इस आन्त्रिक सन्निपातके अन्तमें हृदय-क्षीणता नाड़ीमांद्य, निस्तेज मुखमण्डल, भ्रम, मन्द-मन्द मनोमय प्रलाप आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास उत्तम कार्य करता है।

वातश्लेष्म ज्वर (Influenza)में इस औषधका उत्तम उपयोग होता है। बिल्कुल प्रथमावस्थामें इस रसायनकी अपेक्षा गुडूच्यादि क्वाथ(चिकित्सातत्व प्रदीप-प्रथम खण्ड) के साथ त्रिभुवनकीर्ति अधिक हितकारक है। परन्तु कास, श्वास, नाड़ीमान्द्य और हृदयविकृति आदि लक्षण होनेपर यही रस उत्तम उपयोगी है।

भयंकर शीत लगने, जलाशयमें डूबने या अन्य शीतोपचार, करने या अन्य कारणसे नाड़ी क्षीणता अथवा वातकफप्रधान ज्वरमें प्रबल अङ्गमर्द, सर्वाङ्गमें शूल सदृश वेदना इन लक्षणोंके साथ हाथ-पैरोंमें ऐंठन, हाथ पैर मुड़जाना, हाथकी अंगुलियोंमें शून्यता आना, मुख या अन्य स्थानके स्नायु बिल्कुल टेढे होजाना, विलक्षण स्फुरण और नाड़ीक्षीणता हो तो लक्ष्मीविलास देना चाहिये, इन लक्षणोंके साथ हृदयाधरिक प्रदेशमें शूल हो तो भी यह उत्तम लाभदायक है।

हृदयका अनियमित स्पन्दन या अधिक स्पन्दन होनेपर घबराहट और व्याकुलता होती है। घबराहटका अन्य कारण न हो और साथ-साथ किंचित् हृदयशूल हो तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

घबराहटके हेतुसे चेतना शक्ति भीतर खिचती हो; श्वासावरोध सा भासता हों; साथ-साथ हाथ पैर शीतल, नाड़ी मन्द और क्षीण सर्वाङ्गमें विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीविलास रस अप्रतिम लाभ पहुँचाता है। इन घबराहट आदि लक्षणोंके साथ शुष्क त्रासदायक कास, बार-बार कास चलना यत्किंचित् श्रमसे खाँसी बढ़ जाना आदि लक्षण हों तथा इनका हेतु हृदयावरण और हृदयमें विकृति हो तो लक्ष्मीविलास अवश्य देना चाहिये।

इस तरहकी बार-बार घबराहट और व्याकुलता बनी रहनेके अतिरिक्त हेतुओंसे हृदय और नाड़ी-क्षीण होकर रक्तभिसरण क्रिया मन्द हुई हो फिर उसी हेतुसे सर्वांगमें शीतलता और देहका वर्ण बदल गया हो, एक प्रकारका श्याम भस्म सदृढ़ रंग हो गया हो तो उस विकारपर लक्ष्मीविलास रसका उपयोग करना चाहिये।

उक्त लक्षणोंके साथ या उक्त लक्षण न होनेपर हृदयकी अशक्तिके हेतुसे प्रारम्भमें बार-बार चक्कर आना, फिर भ्रान्ति, तन्द्रा, बेहोशी आदि लक्षण हों तो भी लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। इन लक्षणोंके साथ क्वचित् छिन्नश्वास (Cheynestokes Asthma) भी होता है। श्वासकी नियमितता नष्ट होकर पहिले जोर-जोर से लम्बा लम्बा दीर्घश्वास आना फिर दीर्घ न होकर ऊपर-ऊपरसे श्वास चलना, २-२ या ४-४ श्वासके बाद, ४-६ या सैकण्डके लिए श्वास टूटना, इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर यह छिन्न-श्वास कहलाता है। यह बिल्कुल असाध्य है, तथापि अति बढ़ा न हो तो लक्ष्मीविलास रस दिया जाता है।

कासके अनेक प्रकार हैं। इनके शुष्क त्रासदायक कास, साथ साथ अति घबराहट, थोड़ासा परिश्रम किया, किञ्चित् चलनेका काम पड़ा,, कुछ बोझा उठाया या अन्य हेतुसे परिश्रम हुआ तो परन्तु शुष्ककास चलने लगती है, श्वास भर जाता है, हृदयके स्पन्दन बढ़ जाते हैं, इन लक्षणोंके साथ क्वचित् थोड़ी सूजन विशेषतः हाथ-पैरोंपर होती है। सूजनमें एक विशेष प्रकार यह है कि शोथपर दबानेसे वहाँ खड्डा होता है। इस तरहके कास-विकारमें लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम कार्य करती है।

इन्फ्लुएञ्जाके तीव्र वेगका शमन होनेपर दिनोंतक शुष्क कास रह जाता है। इस कासमें कफ अति कम गिरता है। इसमें यदि घबराहट लक्षण हो तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

जीर्ण हृद्रोगके विकारसे हृदावरण हृत्स्नायु, अन्तःपटल (दोनों कपाट) या हृदयकी नाड़ियोंकी विकृति—विशेषतः कफ प्रधान विकृतिसे अवयव समूह मन्द कार्यकारी होकर सर्वांगमें शोथ थोड़ेसे श्रमसे घबराहट, हृदय क्रिया और स्पन्दन मन्द और अनियमित होना, इस व्याधिके परिणाममें यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानोंको हानि पहुँचना आदि लक्षण होते हैं। इस पर लक्ष्मीविलास दिया जाता हैं।

कुष्ठ आदि चिरकारी रोगकी वृद्धि हृदय या रक्ताभिसरण क्रियाकी विकृतिसे होती हो तो लक्ष्मीविलासका उपयोग करना चाहिये।

प्रमेहके २० प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें कहे हैं। ये सब और मधुमेह एक

नहीं है। प्रमेहके अनेक कारण हैं। इनमें मुख्य 'कफकृच्च सर्वम' इस प्रधान कारणसे उत्पन्न प्रमेह हो, रोगीको तीव्रताके पश्चात् सर्वांगमें शैथिल्य, अशक्ति हृदयकी मन्दता, बिल्कुल श्रम न होना, अधिक बोलनेकी शक्ति भी न होना मूत्रका परिमाण अधिक, मूत्र अधिक बार होना, मूत्रवेगके पश्चात् अशक्ति या शक्ति पात सा भासना आदि लक्षण उपस्ति हों तो लक्ष्मीविलास देना चाहिए।

नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण और भगन्दर ये रोग दीर्घकालस्थायी होते हैं। इनका कारण, शारीरिक घटक (Tissue) और इनके चित्परमाणुओंकी निर्बलता है। जिनके घटक बलवान् और निर्दोष उनके व्रणका सत्वर रोपण हो जाता है। जखम होनेपर बहुधा नहीं पकते और थोड़े समयमें भर जाते हैं। निर्बल घटक और शक्ति हीन चित्परमाणुवालोंके जखम जल्दी नहीं भरते और व्रण अधिकाधिक भीतर प्रवेश करता जाता है। घटक और चित्परमाणुणोंकी निर्बलतामें भी अनेक हेतु हैं। इनमें रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयी अशक्ति कारण हो तो व्रणरोपण औषधिके साथ लक्ष्मीविलासका सेवन करनेसे व्रणरोपण कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लीपद विकारमें गन्धक रसायन, गुग्गुलु-कम्प और लक्ष्मीविलास उत्तम औषधियाँ हैं। इनमें लक्ष्मीविलासका कार्य व्यापक है। इसके उपयोगमें हृदय और रुधिराभिसरणकी अशक्ति है या नहीं, इस बातपर लक्ष्य देना चाहिए। गन्धक रसायन त्वग्गत विकारपर और लक्ष्मीविलास रुधिराभिसरण और तदंगभूत विकार प्रयुक्त होता है। (गुग्गुल आमविष नाशके लिये प्रयुक्त होता है)।

अग्निमांद्य हो, मुख, जिह्वा, धातु, ये सब चिपचिपे रहते हों, उदरमें जकड़ता अन्नपर अनिच्छा, भोजनकी इच्छा न होना, निस्तेजता पचनेन्द्रिय को यथोचित रक्तकी पूर्ति न होना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। वातकफ ज्वरके पश्चात् उपद्रवरूपसे अग्निमांद्य होनेपर भी लक्ष्मीविलास दिया जाता है। किन्तु मुंहमें जल आता रहता हो तो अग्नि कुमार रस देना चाहिये।

अग्निमांद्यके पश्चात् अतिसार या बिना अग्निमांद्य अन्य हेतुसे उत्पन्न अतिसारमें लक्ष्मीविलास दिया जाता है। अतिसार बड़े बड़े पतले जल सदृश दस्त होने, प्रत्येक जुलावके साथ शक्तिपात, ऐंठन या हाथ-पैर टूटना, सर्वांगमें शीतलता, प्रस्वेद और नाड़ीमांद्य आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम औषधि है।

विसूचिकामें नाड़ीमांद्य, शीतलता और प्रस्वेद लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस लाभदायक है।

उदररोग, सर्वांगमें शोथ और जलोदरमें हृदयावरण हृदय या हृदयके कपाटकी विकृति हेतु हो तो जीर्णावस्थामें लक्ष्मीविलास उपयोगी होता है। हृदयके विकारके साथ या इसके पश्चात् यकृद्वृद्धि. सर्वांगमें शोथ; फिर इन रोगोंको जीर्णावस्थामें जलोदरकी प्राप्ति आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस मूत्रल औषधि-पुनर्नवा, गोखरू और अनन्तमूल वा शिलाजीतके साथ देना चाहिये। यदि इन लक्षणोंके साथ घबराहट, अति स्वेद, थोड़े श्रममें श्वास भर जाना, उदरमें आफरा, मनोग्लानि, भीतर खिचना, हृदयस्पन्दनकी वृद्धि, सर्वांगपर विशेषत: हाथ-पैरोंपर सूजन, मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, शिरदर्द आदि उपलक्षण हों, तो भी लक्ष्मीविलास हितकर है।

स्थौल्य, मेदोवृद्धि विकारकी उत्पत्तिमें विशेषत: व्यायामका अभाव और उपचयकारक आहारका अधिक सेवन ये दो कारण होते हैं। इनमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त रक्तवाहिनियों और अण्डकोष की विकृतिसे भी मेदोवृद्धि हो जाती हैं। इस मेदोवृद्धिका परिणाम हृदय पर होता है। हृदयपर मेद बढ़ने लगता है। हृदयके चारों ओर मेद संचय होता है या हृदयके घटकोंमें मेदके घटक सम्मिलित होकर रहते है। इस प्रकारमें श्वास भर सर्वांगमें प्रस्वेद आते रहना, किसी भी कार्यको करनेकी अनिच्छा व्यायाम तो बिलकुल सहन न होता, थोड़ा सा श्रम होनेपर दम भर जाना, वह इतना कि छाती वायुसे भरकर फूली हुई-सी भासना, नासिकासे श्वास पूरा न ले सकनेके हेतुसे मुखद्वारा जोर-जोरसे लेना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलासरस उपयोगी होता है। ये सब लक्षण मेदसे सब मार्ग आवृत होनेपर होते हैं। इस विकारमें मेदके आगेकी धातुयें यथोचित नहीं बनती। इस हेतुसे शरीर फूला हुआ-सा हो जाता है; इसमेंसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह दुर्गन्ध कुक्षि,कटिसन्धि आदि स्थानोंमें प्रस्वेद आकर फिर सड़कर उत्पन्न होती है। इस विकारमें लक्ष्मीविलास लाभदायक है।

कुक्षिशूल, कक्षाशूल और पार्श्वशूलकी उत्पत्ति बहुधा फुफ्फुसावरणकी विकृतिसे होती है। विकार आशुकारी होनेपर तीव्रशूल और चिरकारी होनेपर मन्दशूल होता है। इस विकारकी उत्पत्ति शीतलता, शीतल वायुके असह्य आघातसे हुई हो, तथा कुक्षि, कक्षा और पार्श्वमें तीव्र शूल हो किसी एक स्थानमें सुई चुभाने सदृश वेदना, किसी भी स्थितिमें चैन न पड़ना, बराबर दबाकर बैठना, गरम जल आदिसे सेक करनेपर वेदना कुछ कम होना, शूलके साथ-साथ समग्र छाती या सर्वाङ्गमें प्रसार होना या आक्षेप होना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

वातज शिर:शूलमें खूब जोरसे सुई चुभाने सदृश वेदना होकर पुन: कुछ कालके लिये कम हो जाना अर्थात् आक्षेप सदृश बार-बार शूल चलता

हो तो महावातविध्वंसन रस देना चाहिये। परन्तु समान शूल चलता रहे एवं गला, कपाल, भ्रू तथा पीठकी ओर दर्द फैले, ऐंठन सदृश दर्द, सेकनें पर अच्छा लगे, शीतल वायुसे वेदना बढ़े आदि लक्षण हों तो लक्ष्मीविलास का उत्कृष्ट उपयोग होता है।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न उदरशूलको व्यवहारमें मक्कलशूल कहते हैं। इसपर महायोगराज गूगल, महावातविध्वंसन, प्रतापलंकेश्वर और लक्ष्मी-विलास रस उपयोगी औषध है। ऐंठन सदृश वेदना और हृदयशूल या हृदयकी अशक्ति हो तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। (आमवृद्धिमें महायोगराज गूगल, स्थान-स्थानपर शूलमें महावातविध्वंसन और गर्भाशय में संगृहीत दोषपर प्रतापलंकेश्वर)।

यह लक्ष्मीविलास रस वृष्य है; अतः यह अण्डकोषकी ओर रक्तका दबाव यथोचित न होनेसे उत्पन्न सामान्य नपुंसकताको (इस तरह अधिक शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकताको भी) दूर करता है।

इस रसायनका उपयोग विशेषतः वात और वातकफ दोष, वायुलघुत्व, शीतलत्व, चलत्व ये गुण, रस रक्त और मांस ये दूष्य हृदयावरण, धम-नियाँ, शिराएँ, फुफ्फुस और फुफ्फुसावरण ये स्थान इन सबपर होता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

मधुराकी अन्तिम अवस्थामें जब नाड़ी छूटने लगती है, ऐसी आसन्न मृत्यु वाली अवस्थामें छिन्न श्वास उपस्थित होता है। उस अवस्थामें डाक्टरी चिकित्सामें प्राणवायु (ऑक्सिजन) फुफ्फुसोंमें भरते हैं। किन्तु हृदय क्षीण होनेसे उसका उपयोग नहीं होता। कारण ऑक्सिजनको ले जाने वाले रक्त कण अति शिथिल मृत-सी स्थितिमें होनेसे वे ऑक्सिजनको योग्य स्थानपर नहीं पहुँचा सकते। उस स्थितिमें हृदयसे संलग्न रक्तवाहि-नियोंका विकास कर हृदयको रक्त और वायुकी पूर्ति करनी चाहिये। यह कार्य इस लक्ष्मीविलास रससे उत्तम प्रकारसे होनेके उदाहरण मिले हैं।

न्युमोनिया और अन्य कितनें ही सन्निपातोंमें कितने ही समय अकस्मात् नाड़ी क्षीण होकर प्रस्वेद आने लग जाता है। और शारीरिक उष्मा बहुत कम होजाती है। यह लक्षण अनेक बार प्राणघातक होता है। ज्वरका जल्दी उतरना, सर्वाङ्गका अति प्रस्वेद आकर शीतल हो जाना, नाड़ी अतिमन्द होना, अति घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस तरह लक्षणके प्रारम्भ होनेपर लक्ष्मीविलास, शृङ्गभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म तीनों १-१ रत्तीको आम के मुरब्बा ६ माशेके साथ मिलाकर ऊपर-ऊपर देते रहें और अर्जुनारिष्ट थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें तो कुछ भी बाधा न होते हुए रोगी सुधर जाता है।

सूचना—इस रससे क्वचित् किसीको नाड़ी वेग बढ़ जाता है। ऐसा होनेपर सुवर्णमाक्षिक भस्मका सेवन कराना चाहिए।

(२५) लक्ष्मीविलास (नारदीय) रस *

विधि— अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, वङ्ग भस्म १ तोला, शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल ६-६ माशे, ताम्र भस्म ३ माशे, कपूर, जायफल जावित्री, विधारेके बीज और धतूरेके शुद्ध बीज १-१ तोला तथा सुवर्ण भस्म ३ माशे लें। पहले पारद गन्धक मिलाकर कज्जली करें, फिर हरताल और अन्य भस्म मिलावें। पश्चात् कपूर छोड़कर शेष औषधियोंका चूर्ण मिलावें। अन्तमें कपूर मिला नागरबेलके पानोंके रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली; दिनमें २ बार; शहद, मांस-रस, शराब या ब्राह्मरसायन या रोगानुसार अनुपानके साथ प्रातः रात्रिको देवें। सन्निपात में आवश्यकता अनुसार १-१ गोली, ३-४ बार २-२ घण्टेपर देवें।

गुणधर्म—यह नारदीय लक्ष्मीविलास रस सुख साध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और असाध्य चारों प्रकारके सन्निपातोंसे उत्पन्न घोर दारुण विकारों (उपद्रवों) को नष्ट करता है। इसमें यह भी नियम नहीं है कि मात्र वातज या पित्तज रोगोंको ही दूर करे। सब प्रकारोंपर सफलतापूर्वक कार्य करता है। इसके अतिरिक्त कण्ठके भीतरके रोग, अन्त्रवृद्धि, अतिसार, कुष्ठ, प्रमेह कफवातज दीर्घकालीन एवं वंशागत श्लीपद, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, मूत्ररोग, गुदरोग, भगंदर, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्शरोग, स्थूलता (मेदोरोग), देहदौर्गन्ध्य, रक्तविकार, आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलशोथ, गलग्रह, उदररोग कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, अरुचि, मुखरोग, उदरशूल, शिरःशूल, मक्कलशूल, स्त्रीरोग, पुरुषोंके ध्वजभङ्ग आदि रोगोंको यह नारदीय लक्ष्मीविलास दूर करता है। इस रसका निरन्तर सेवन करने वालोंको इन्द्रिय शैथिल्य और श्वेत केशकी प्रप्ति नहीं होती है।

उपयोग—लक्ष्मीविलास अभ्रक वालेकी अपेक्षा इसमें ताम्र भस्म, शुद्ध ताल और सुवर्ण भस्म तीन महत्वके द्रव्य अधिक मिलाये गये हैं यह रस मस्तिष्क, हृदय, यकृद् और आमाशय, चारोंपर अपना प्रभाव दर्शाता है। जब यकृद् भी निर्बल है, तब अभ्रक वाला लक्ष्मीविलास योग्य कार्य नहीं

---

* पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धक भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्माऽपि तदर्द्धं पारदं तथा ॥
तत्समं हरिताल च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
रससाम्येन कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥
वृद्धदारकबीजञ्च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येक कार्षिकं भागं मृतं स्वर्णञ्च शाणिकम् ॥
निष्पष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥

करता, ऐसी अवस्थामें इस लक्ष्मीविलासका प्रयोग किया जाता है। सेन्द्रिय विष नष्ट करता है, तो उसपर भी यह अधिक प्रभावशाली है। इस हेतुसे यू० पी० और बंगालमें इस लक्ष्मीविलासका उपयोग अधिक होता है।

सूचना—कईयोंको इस लक्ष्मीविलासके साथ तुरन्त दूध लेनेपर अनुकूल नहीं रहता, उनको ब्राह्मरसायनके साथ दिया जाता है। फिर दूधका सेवन १ घण्टे बाद करनेमें कोई आपत्ति नहीं आती।

(२६) ब्राह्मी वटी

विधि—ब्राह्मी (जल नीम) ५ तोले, रससिन्दूर २ तोले, अभ्रक भस्म, वङ्गभस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पीपल और वायविडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सबको मिला ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनावें। ब्राह्मी ५ तोलेको उबलते हुए २० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। १० तोले शेष रहनेपर उतारकर छानकर उपयोगमें लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ समय, दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी ज्वरके पीछेकी निर्बलता, जीर्णज्वर, मस्तिष्ककी कमजोरी, हृदयकी निर्बलता, स्मरण शक्तिका अभाव, धातुस्राव, आदि विकारोंको मिटाती है। ज्वरको उतारनेमें उपयोगी है। मोतीझरेमें विशेष बेचैनी, प्रलाप, अतिसार, उदरशूल आदि लक्षणोंमें यह वटी हितावह है। वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें हृदय और मस्तिष्कका रक्षण करती है, तथा दोषके पचनमें सहायता पहुँचाती है। अनावश्यक विकारोंका शमन कर रात्रिको शान्त निन्द्रा ला देती है।

ज्वर कुछ दिनों तक रह जानेपर रक्त, माँस आदि संस्थानोंके भीतर कई कोषाणु (Cells) मृत हो जाते हैं। उसके विष प्रकोपसे मन्द मन्द ज्वर बना रहता है, एवं निर्बलता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। ऐसे रोगियोंके देहमेंसे दुर्गन्धयुक्त स्वेद आता है। कई रोगियोंके निःश्वासमें भी दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन रोगियोंको यह ब्राह्मी वटी देते रहनेसे एक सप्ताह के भीतर अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—(१) मूत्रमें अधिक पीलापन हो, स्वेद और निःश्वासमें भी दुर्गन्ध अधिक हो तो इन गोलियोंके सेवनके साथ शिलाजीत २-२ रत्तीको पुनर्नवाके फाण्टके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे जल्दी लाभ पहुँचनेका अनुभव मिला है।

(२) जिन रोगियोंको पित्तप्रकोप हो, सूखी खाँसी चलती रहती हो तथा रात्रिको शान्त निद्रा न मिलती हो, उनको ब्राह्मी वटी नहीं देनी चाहिये। उनको प्रवाल-मुक्ता-सितोपलादि मिश्रण या शशमनी वटी जैसी शामक औषधि देना विशेष हितकारक माना जाता है।

(२७) मल्ल पुष्प

विधि—सोमल १० तोलेको नींबूके रसमें १ दिन घोटें। फिर लाल फिटकरी १० तोले मिला; खरलकर मिट्टीकी हाँडीमें भर ऊपर दूसरी हाँडी उल्टी रखकर डमरूयन्त्र बना लेवे। सन्धिको अच्छी रीतिसे बन्द करें। फिर चूल्हेपर चढ़ाकर ६ घण्टे तक मन्दाग्नि दें। बार-बार ऊपरकी हाँडी पर गीला कपड़ा बदलते रहे। स्वांगशीतल होनेपर सावधानीसे खोलकर ऊपरकी हांडीमेंसे फूल निकाल लेवें। नीचेसे फिटकरीका फूला मिले; उसका उपयोग वटी प्रकरणमें लिखे अनुसार ज्वरादि वटीमें करें। (र० सा०)

मात्रा—१ चावल भर। सोंठके घासेके साथ, बताशेसे अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—मल्लपुष्प श्वास; कास, जीर्णज्वर, कुष्ठ, त्रिदोष, रक्तविकार, निमोनिया, उपदंश, सन्धिवात आदि रोगोंका नाश करता है। सन्निपातमें भयंकर कफवृद्धि होकर गलेमें कफ भर जाता है; वह इस मल्लपुष्पके देनेसे सत्वर दूर हो जाता है।

सूचना—यह औषधि पित्तप्रकृतिवालेको १०२° डिग्रीसे अधिक ताप हो तब नहीं देना चाहिये। इस औषधिके साथ घी-दूधका सेवन ज्यादा करना चाहिये और अपथ्यसे दृढ़तापूर्वक बचना चाहिये।

(२८) मलेरिया वटी

प्रथम विधि—गोदन्ती भस्म, शुद्ध हरताल, गिलोय सत्व, वंशलोचन और छोटी इलायची सबको समभाग मिला सहदेवीके रसमें १२ घण्टे खरल कर ज्वारके दानेके बराबर गोलियाँ बनावें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—पालीके तापमें १ गोली ज्वर आनेके ४ घण्टे पहिले और २ गोली दो घण्टे पहिले शक्करके साथ दें। अन्य तापोंमें दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषमज्वर (मलेरिया), संतत, सतत, एकांतरा तिजारी आदि और अन्य ज्वरोंको दूर करती है।

कभी-कभी चातुर्थिक ज्वर छूट जानेपर चोथे-चोथे दिन हिस्टीरिया मिश्रित अपस्मार (Hystero epilepsy) उपस्थित होता। रोग तीव्रावस्थामें न हो तब जड़ता, प्रलाप, फिर मूर्च्छा, मुंहसे झाग निकलना, फिर दाँत भिचना आदि लक्षण होते हैं। शौचशुद्धि नहीं होती। उदरमें वेदना होती है। उस पर यह मलेरिया वटी अमृतारिष्टके साथ सुबह और रात्रिको अश्वकंचुकी रस देनेसे रोग शमन हो जाता है। उदर शुद्धि नियमित होती रहे ऐसा भोजन लेना चाहिये एवं अनुपानकी योजना भी उसी तरह करनी चाहिये।

दूसरी विधि—क्विनाइन बाई हाईड्रोक्लोराइड ७॥ माशे, गिलोयसत्व

२ तोले, वंशलोचन १ तोला, छोटी इलायचीके दाने ६ माशे और केशर १ माशा मिलाकर खरल करें। पश्चात् नीम गिलोय २ तोले, धनिया १ तोला, लालचन्दन, पद्माख और नीमकी कोमल पत्ती ६-६ माशे मिलाकर क्वाथ करें। इस क्वाथमें औषधिको खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

(स्व० डा० श्री रामरक्षपालजी शुक्ल)

मात्रा—२ से ४ गोली। दिनमें ३ समय; दूध या जलके साथ। जिनको क्विनाइन सहन न होता हो; उनको दूध पिलाकर देवें और ऐसे रोगियों को जीर्णज्वर और मन्द ज्वरमें भोजनके बाद देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषमज्वर, जिसमें दाह और ठण्डी दोनों रहती हों, ऐसे एकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि सब ज्वरोंका नाश करती है, प्लीहावृद्धि को कम करती है, और शरीरमें शान्ति लाती है।

यह मलेरिया वटी जीर्णज्वरमें अधिक उपकारक प्रतीत हुई है। पित्त-प्रकोप पीड़ित रोगियोंको भी निर्भयतापूर्वक दी जाती है। शहरवासी कई रोगियोंका उदर पुराने मल और आमसे भरा रहता है। उनको ज्वर जीर्ण बननेपर जल्दी नहीं छोड़ता। अतः यह वटी नागरमोथा सोंठ, सौंफ, गिलोय और छोटी हरड़के क्वाथके साथ सेवन कराते रहनेपर थोड़े ही दिनोंमें ज्वर दूर हो जाता है। पचनक्रिया सुधरने लगती है तथा बल आने लगता है।

(२९) मल्लादि वटी [विषमज्वर]

विधि—शुद्ध सोमल और शुद्ध हरतालको समभाग मिलाकर करेलेके रसमें ३ दिन तक खरल करके $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{4}$ रत्तीकी गोलियां बनावें।

(र० यो० सा०)

यद्यपि मूल श्लोकमें करेलेके रसकी भावना लिखी है, परन्तु उसकी जगह ककोड़ेका रस लिया जाय तो अधिक काम करता है, ऐसा रसयोग सागर कारका अनुभव है।

मात्रा—१ गोली ज्वर आनेके २ या ३ घण्टे पहले तुलसीके पत्ते और काली मिर्चके साथ या १ गोलीको भांग १ रत्ती और छोटी कटेलीका चूर्ण १॥ माशे और धतूरेकी पत्ती २ इञ्च जितना गोल मिला, कत्था चूना लगे नागरबेलके पानमें डालकर खिला देवें। २-३ घण्टे तक जल नहीं पिलाना चाहिये। पुराने बिगड़े हुए जुकाममें मल शुद्ध करनेके पश्चात् दूध के साथ कफवृद्धिमें मिश्रीके साथ और आमवृद्धिमें अदरकके रसके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी शीत लगकर आने वाले सब प्रकारके विषमज्वर एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिको एक ही दिनमें रोक देती है। जीर्ण प्रतिश्याय, कफवृद्धि, कफवृद्धिसे होने वाली अरुचि, मन्दाग्नि, मन्द-मन्द ज्वर

श्वास, कास और आमवृद्धिको दूर करती है।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको और नये जुकामके रोगको यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

(३०) भूतभैरव रस

विधि—शुद्ध हरताल ६ तोले, शुक्ति भस्म ९ तोले और शुद्ध नीलाथोथा २ तोले मिला, घीकुंवारके रसमें ३ दिन खरल करके टिकिया बनावें। सूखनेपर मजबूत सराव-संपुटकर २। सेर आरण्य कण्डोंकी अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल पीसकर बारीक चूर्ण करें। (र० चं०)

मात्रा—१ रत्ती चूर्णको ३ माशे चीनीके बीचमें रखकर ताप आनेके पहिले २ बार ३ घण्टे पहिलेसे हर घण्टे खा लेवें। तापका समय चला जानेपर दही भात खानेको देवें।

उपयोग—इस रससे सब प्रकारके विषमज्वर, ठण्ड लगकर आने वाले ताप, एकांतरा, तिजारी आदि एक दिनमें ही दूर हो जाते हैं। इस औषध से कदाच किसीको वमन हो जाय तो भय न मानें।

यह औषधि देनेपर गरम दूध या गरम चाय नहीं पीना चाहिये। अन्यथा वमन व बेचैनी होनेकी सम्भावना है। पित्तप्रकोप वालोंको यह रस देनेपर शीतल जल या नींबूके रसमें जल और शक्कर मिलाकर पिलानेसे रस सरलतासे पचकर अपना प्रभाव दर्शाता हैं।

(३१) चन्दनादि लोह [ज्वर]

विधि—रक्तचन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हरड़, सोंठ, कमल कन्द आँवला, त्रिमद (नागरमोथा, चित्रकमूल और वायविडंग), ये १२ औषधियें १-१ तोला और लोहभस्म १२ तोले मिलाकर खरल करें।(रसे.सा.सं.)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ समय देकर ऊपर तुलसी कालीमिर्च और नागरमोथेका क्वाथ पिलावें।

उपयोग —यह रस सब प्रकारके विषमज्वरों और जीर्णज्वरको दूर करता है। जो ज्वर थोड़े दिन आता है, थोड़े दिन नहीं आता; ऐसे दीर्घकाल तक बार-बार आनेवाले ज्वरोंमें यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता हैं। इस औषधिका उपयोग निस्तेज मुखमण्डलयुक्त रोगी, जिनको पाण्डुता और प्रमेह भी हो उनके लिये अधिक सफल होता है एवं इसके सेवनसे नेत्र जलन, प्लीहावृद्धि यकृद्विकार, मन्दाग्नि, पाण्डुता, शिरदर्द, दाह, कृमि आदि दोष दूर होकर शरीर स्वस्थ और बलवान बनता है। यदि रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयकी निर्बलताके हेतुसे जीर्णज्वर बना रहता हो, तो इसके सेवनसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३२) सुवर्ण मालिनीवसंत ।

विधि—सुवर्ण भस्म १ तोला, मोतीपिष्टी २ तोले, शुद्ध हिंगुल ३ तोले सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध खर्पर ८ तोले लेवें। पहिले सुवर्ण भस्म (या वर्क) और हिंगुलको मिलाकर एक जीव करें। फिर अन्य वस्तुयें मिला, गायके कच्चे दूधमेंसे निकाला हुआ मक्खन २॥ तोले मिलाकर ३ घण्टे घुटाई करें फिर नींबूका रस डालकर चिकनापन दूर होने तक खरल करें। लगभग ८-१० दिन घुटाई करनी पड़ेगी। फिर १-१ रत्तीकी गोलियां अथवा १-१ माशेकी टिकिया बना लेवें।

वक्तव्य—सुवर्णभस्मके अभावमें कुन्दन अथवा सुवर्ण वर्क लें। मोतीपिष्टीके अभावमें मोती सीपकी भस्म दूनी लें। खर्परके अभावमें जशदभस्म ४० पुटी लेवें। सिंगरफको शुद्ध करके उपयोगमें लें अथवा द्विगुण गन्धक जारित रससिंदूर मिलावें। अनेक वैद्य मक्खन ४ तोले मिलाकर ४० दिन तक ताजे पक्के नींबूके रसमें खरल करते हैं। परन्तु इससे नींबूका खट्टापन अधिक बढ़ जाता है। यदि वर्क मिलावें तो सिंगरफ (रससिन्दूर) के साथ २ दिन खरल करके भली भांति एक जीव कर लें।

इस रसायनमें मिलानेके लिये पक्के पीले ताजे नींबूका रस कपड़ेकी ४ तहसे छानकर गिलासमें भरें। ८-१० घण्टे बाद कचरा पेंदेमें बैठ जानेपर फिल्टर पेपरसे छानकर उपयोगमें लेवें। सुवर्णमालिनी वसंत तैयार होनेपर ३ माशे कस्तूरी और १ तोला केशर मिलाकर ६ घण्टे खरलकर लेनेसे विशेष लाभदायक बनती है।

एक तोला सुवर्णसे २० तोले सुवर्णमालिनी बनती है। उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलानेसे १ रत्ती मात्रामें ९६ वां हिस्सा कस्तूरी होती हैं। जिससे सगर्भा स्त्रीको भी निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। फिर भी सगर्भा स्त्रियोंको देनेके लिये, जिनको कस्तूरी न मिलानी हो, वे न मिलावें।

मात्रा—१ रत्तीसे २ रत्ती तक। दिनमें २ बार, पीपलके चूर्ण और शहद अथवा गिलोय सत्व, पीपल और शहद (या च्यवनप्राशावलेह)के साथ देवें। क्षयकी प्रथमावस्था और जीर्ण ज्वरपर सुवर्ण वसन्त, अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म और सितोपलादि चूर्ण मिला शहदके साथ दिनमें ३ बार देते रहें।

उपयोग—यह रस क्षय, जीर्णज्वर धातुगत विषमज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, स्त्रियोंके प्रदररोग, मगजकी निर्बलता, खांसी, धातुक्षीणता, हृद्रोग, मस्तकशूल आदिमें हितकर है। पुराने रोगोंमें शांतिपूर्वक सेवन करनेसे निश्चित लाभ होता है। किसी रोगसे अथवा व्यायाम, परिश्रम या वृद्धावस्थाके हेतुसे आई हुई निर्बलता इस वसन्तके सेवनसे निश्चयपूर्वक दूर होती है।

यह रसायन रसवाहिनियां, रसोत्पादक पिण्ड, यकृत्-प्लीहा आदि विकृतिमें उत्कृष्ट है। यकृत् और प्लीहाके दोष (वृद्धि अथवा शिथिलता) को दूर करके पचनक्रियाको नियमित बनाती है। यही औषधिका मुख्य कार्य है; इस हेतुसे थोड़े समयमें शरीर सशक्त हो जाता है। अनुपान भेद से अनेक रोगोंमें यह लाभ पहुँचाती है।

बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री सबके लिये हितकर है। सब ऋतुमें, सब देशमें और सब प्रकारकी प्रकृति वालोंके लिये निर्भयतापूर्वक इस वसन्त-मालिनीको प्रयोगमें ला सकते हैं। तरुण स्त्रियोंके मासिकधर्ममें रक्त अधिक जाना और रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् होने वाली पाण्डुतामें यह सुवर्णमालिनी अत्यन्त उत्तम औषधि है।

सुवर्णमालिनीमें रसायन, बल्य, क्षयघ्न, कीटाणुनाशक और रक्तप्रसादन गुण हैं। वातवह मण्डल, सहस्रार, नाड़ीचक्र आदिसे लेकर शरीरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव समूह पर्यन्त सबको बल देना, यह महत्वका गुण इस रसायनमें है। इसका उपयोग आभ्यन्तरिक अवयवोंकी निर्बलतासे उत्पन्न सब रोगोंपर किया जाता है। इसी हेतुसे मूलग्रन्थकारने इसके गुणमें केवल "सर्वरोगे वसन्तः" इतना ही कहा है।

कुचिला आदिसे क्षणिक उत्तेजना आती है; इससे भी बल की प्राप्ति हुई कहा जाता है। परन्तु विचार करनेपर बल और उत्तेजना दोनोंमें महदन्तर है। कुचिलेसे वातवाहिनियोंका स्पन्दन बढ़कर उत्तेजना आती है; वह क्षणिक है; धातुसाम्य पूर्वक नहीं स्वर्णमालिनी वसन्तसे जो बल मिलता है वह स्थिर है; धातु साम्य रखकर मिलता है। सब अवयव समूहोंको उनके अनुरूप घटक द्रव्य प्राप्त होकर बलकी प्राप्ति होती है। यह नियम है कि आहार परिणामज द्रव्य उस-उस स्थानके धात्वग्निके योगसे पचन होकर उस धातुमें आत्मसात् होनेपर यह कार्य होता है। पूर्व धातुओंमेंसे परधातु बनती है। उसमें पूर्व धातुयें परधातुके लिये आहार रूप है। इसी हेतुसे पूर्व धातुओंमेंसे रूपान्तर होकर परधातुको प्राप्ति होती है। इस तरह धातुओंका पोषण होता है। धातुपोषण व्यवस्थित होनेपर बलाधान होता है। सुवणमालिनीके योगसे; रससे शुक्र और ओज तक सब धातुओंका पोषण सबके भीतर रहे हुए धात्वग्नि सम्यक् प्रकारके कार्यक्षम बननेपर होता है। धातु परिपोषण क्रम सबल और व्यवस्थित होनेपर वात आदि त्रिधातुओंको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसका भी पोषण होना ही चाहिये। त्रिधातुओंके साम्यपर शारीरिक घटक और मण्डलके बलका आधार है। त्रिधातु बलवान् और सम होनेपर भी सब रस रक्त आदि दूष्य और वातवह मण्डल आदि बलवान रह सकते हैं। इस तरह इस रसका परिणाम वातवह मण्डलपर शक्तिदायक होता है।

रोगी किसी बडे त्रासदायक रोगसे उठा, ऐसा कहनेमें तात्पर्य यह है कि, रोगके त्रासदायक लक्षण सब दूर हुए हैं, या कम हुए हैं। किन्तु रोगके साथ लड़ते-लड़ते शरीरकी सभी धातुयें क्षीण हो जाती हैं, बल भी क्षीण हो जाता है। अग्निमांद्य होनेपर अन्नका अच्छा पचन नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमालिनी वसन्त देनेका वृद्ध वैद्योंका वर्ताव है। इस तरह "सर्वरोगे वसन्तः" वचन सार्थक होता है।

वसन्तमालतीसे पाचक रसकी उत्पत्ति और क्रिया उत्तम प्रकारसे होती है, धातुके अन्तर्गत अग्निको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसी हेतुसे अन्नका पाचन योग्य होता है। फिर रस, रक्त आदि धातुएँ सम्यक् प्रकारसे बनती हैं, आगे-आगेको धातु सबल होती जाती है, ओजकी वृद्धि होती है तेज बढ़ता और देहका वर्ण भी सुधर जाता है।

क्षयमें—विशेषतः कीटाणुजन्य राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें शरीर बल बढ़ानेका और क्षयकी प्रतिकारक्षमता बढ़ानेका महत्वका कार्य सुवर्ण-मालिनीसे होता है। प्रतिकारक्षमता बढ़नेपर क्षयके कीटाणुओंका नाश होता है। यह कार्य सुवर्णमालिनीमें रहे हुए सुवर्ण और मुक्ताके योगसे होता है।

कफ-क्षयकी प्रथमावस्थामें शुष्ककास, सूक्ष्मज्वर, विशेषतः सायंकाल को शारीरिक उत्ताप बढ़ जाना, दिन-प्रति-दिन निर्बलताकी वृद्धि होना और प्रातःकालके समय प्रस्वेद आना आदि लक्षण होनेपर सुवर्णमालिनी वसन्त देना चाहिये। इस अवस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

कफक्षयकी द्वितीयावस्थामें सुवर्णमालिनी वसन्तकी अपेक्षा सुवर्णभस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस आदि मिश्रणका अधिक उपयोग होता है।

गण्डमाला या अन्य किसी स्थानमें—कक्षा, उदर, जंघाके भीतर ग्रन्थि उत्पन्न होकर उसमेंसे रसस्राव होना, सूक्ष्म ज्वर रहना, आगे ज्वर बढ़ते जाना, त्रासदायक, शुष्ककास, सर्वाङ्ग शुष्कता, बाह्य त्वचा बिल्कुल रूक्ष हो जाना, अशक्ति, मांस क्षीणता, हाथ-पैर लकड़ी सदृश बन जाना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें सुवर्णमालिनी वसन्त अति उपयोगी है। यदि उपर्युक्त लक्षणोंके साथ मनुष्य मोटा और पुष्ट हो तो जसदभस्म देनी चाहिए।

जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि और मन्दाग्नि आदि विशेष लक्षण होते हैं। इसमें क्षयका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अनेक दिनों तक शीतपूर्वक ज्वर एवं आंत्रिक आदि सन्निपातिक ज्वरके पश्चात् जीर्णज्वर रह गया हो तो सुवर्ण वसन्त अति उत्तम कार्य करती है।

जीर्ण और आग्रही शीतपूर्वक ज्वरके कतिपय ऐसे रोगी प्रतीत होते है कि जिनकी क्विनाइन, सोमल, लोहकल्पके विविध सिद्ध योगोंद्वारा चिकित्सा अनेक बार अनेक दिनों तक सतत हुई हो, फिर भी शीतज्वर न जाता हो, बार-बार अपना अस्तित्व प्रकाशित करता ही रहता हो, रोगी को त्रास पहुँचाता ही रहता हो, इसका कारण यह है कि यह औषधि व्यसन सदृश सात्म्य हो जानेसे शरीरमें शोषण होकर प्रतिकार क्षमता नहीं बढ़ा सकती। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमालिनी वसंतसे अपूर्व लाभ प्राप्त हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस प्रकारके विकारमें प्लीहा-वृद्धि होनेपर एक समय सुवर्णमालिनी और दूसरी बार रोहितारिष्ट देनेपर अति उत्तम लाभ पहुँच जाता है।

धातुक्षयके दो प्रकार हैं—अनुलोम और प्रतिलोम रससे शुक्र पर्यन्त धातुक्षीण होनेको अनुलोम और शुक्रसे रस पर्यन्त क्षय होनेपर प्रतिलोम क्षय कहलाता है। रक्तस्राव अधिक होनेपर अन्य धातुओंका भी क्षय होता है। फिर निस्तेजता, अशक्ति और अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। स्त्रियोंको रजःस्राव अत्यधिक होनेपर या प्रसवावस्थामें रक्तस्राव अधिक होनेपर भी धातुक्षीणता उत्पन्न होकर निस्तेजता आ जाती है। किसी कारणसे धातुक्षीणता होकर बलमांस विहीनत्वको प्राप्त हो, सारा शरीर टूटना, हाथ-पैरमें जलन, नेत्रमें दाह, निरुत्साह, किसी भी कार्यकी इच्छा न होना इत्यादि लक्षण प्रतीत हों, तो सुवर्णमालिनीका सेवन कराना अति हितकारक है। यदि पाण्डुता भी साथमें आई हो तो सुवर्णमालिनी वसन्तके साथ मण्डूर भस्म या लोहभस्म मिश्रित करके या अलग स्वतन्त्र रूपसे देनी चाहिये। यदि पाण्डुताके साथ सर्वाङ्गमें शोथ, सारे शरीरपर मोम लगाने सदृश तेज एवं मुख, गाल आदिपर भी शोथ और तेजी हो, तो लोहभस्म और सुवर्णमालिनी वसन्त देना अधिक हितकर है।

शुक्रका नाश अनेक प्रकारसे होता है। अति व्यवाय, अन्यथा व्यवाय (हस्त मैथुन आदि) कारणोंसे शुक्र-नाश होता है। शुक्रक्षीण होनेपर ओज की क्षीणता होती है। फिर बलक्षय और अन्य धातुकी पूर्तिमें न्यूनता होने से धातुओंकी क्षीणताकी प्राप्ति होती है। परिणाममें सहस्रार आदि बुद्धि-न्द्रिय कार्यक्षम नहीं रहती। बुद्धि, स्मृति, धारणशक्ति, तीनों मन्द हो जाती है। ओजक्षय या शुक्रक्षय होनेपर मनमें विविध भ्रम होने लगते हैं। किसी बातकी अधिक स्मृति नहीं रहती, रोगीको बोलनेमें भी रुकावट होती है। विचार करनेमें थक जाता है। विचार नियमबद्ध नहीं होता। चित्त विभ्रम सा होकर किसी स्थानपर मूढ़ सदृश बैठा रहता है, या मूक बधिर सदृश देखता रहता है, मस्तिष्कमें कुछ विचार ही न हो ऐसा उन्माद रोगी सदृश दीखता है। इस तरह शुक्रधातुक्षीण होनेपर अन्य धातुओंमें क्षीणता आकर

ऐसी परिस्थिति हो जाती है। धातुक्षीण होनेपर आभ्यन्तरिक अवयव भी निर्बल और कृश होते जाते हैं। शुक्रधातु, जो सहस्रार और मन-बुद्धिको शक्तिदायक है, उसका जितना क्षय अधिक हो, उतनी ही सहस्रारको हानि पहुँचती है। इस प्रकारकी विकृतिमें सुवर्णमालिनी वसन्त अति उत्तम औषध है।

मैथुन लालसा अति बढ़ी हुई हो, परन्तु उसमें अतृप्ति होनेपर उसपर लगी हुई चित्तवृत्ति भी एक आपत्ति है। इसका चिकित्सकोंसे (बिना कहे) निदान होना भी कठिन है। इसमें भी स्त्री रुग्ण हो, तो फिर कहना ही क्या ? इस प्रकारमें वातवाहिनियां, इनके केन्द्र स्थान और इनके चक्र (मण्डल), इन सबमें क्षोभ विशेष कार होता है। इस प्रकारकी विकृतिमें सुवर्णमाक्षिक भस्म या ब्राह्मी, जटामांसी सदृश शामक औषधिके साथ सुवर्णमालिनी वसन्तका उपयोग करना चाहिये।

सुवर्णमालिनी वसन्त स्त्रियोंके श्वेत प्रदरमें भी लाभदायक है। यथार्थ में श्वेतप्रदरमें भी अनेक प्रकार है। इनमें गर्भाशय या योनिमार्गकी श्लैष्मिक कलामें उष्णता होकर प्रदर हुआ हो, और नया रोग हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त और गिलोय सत्वको शहदके साथ देनेसे लाभ पहुँच जाता है। बीजाशय विकृति और व्रण आदि हेतुसे प्रदर हो, तो प्रदरान्तक लोह, प्रदरान्तक रस आदि औषधका सेवन और बाह्य उपचार भी करना चाहिये।

गण्डमाला बढ़नेपर उससे सूक्ष्म ज्वर आने लगता है, सारा शरीर टूटता है, क्षीणता आती जाती है, ऐसी स्थितिमें सुवर्णमालिनी वसन्त उत्तम कार्य करती है। यदि ज्वर अधिक हो, तो यह रस नहीं देना चाहिये। सूक्ष्म ज्वर, शुष्क कास, शुष्कता और हाथ पैर टूटना आदि लक्षण होनेपर वसन्त उत्तम कार्यकारी है।

कण्ठके सदृश उदरमें ग्रन्थि बढ़नेपर यदि मन्द ज्वर आदि उक्त लक्षण हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त अवश्य देना चाहिये। यदि मनुष्य बलवान् पुष्ट हो और गाँठ बढ़ी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

जीर्ण अतिसार, साथ-साथ सर्वाङ्गमें रूक्षता, शुष्कता हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त शक्ति बढ़ाने या कायम रखनेके लिये देनी चाहिये। इस प्रकारके अतिसारमें शौच अधिक समय नहीं जाना पड़ता है। परन्तु प्रत्येक समय हौजके डाट खोलनेपर वेगपूर्वक निकलने वाले जल प्रवाहके सदृश पतला दस्त अधिक परिमाणमें एकदम बाहर निकल जाता है। ऐसा होने का कारण अन्त्रकी संग्राहक और धारणाशक्तिकी कमजोरी है। ऐसे अतिसारमें सुवर्ण प्रधान लक्ष्मीविलास रस भी सुवर्णपर्पटी प्रधान दिया जाता है। परन्तु लक्ष्मीविलास देनेमें मलकी कमी और अनेक बार शौच होता है या नहीं, यह देखना पड़ता।

जीर्ण संग्रहणीके विकारमें पर्पटी कल्प मुख्य है। परन्तु वलमांसविहीनत्व होकर अन्त्रकी शक्तिका ह्रास होता जाता है तो शक्ति संरक्षणार्थ सुवर्णमालिनी वसंत देना अति लाभदायक है।

जीर्ण अजीर्ण विकार और इससे उत्पन्न आमविष, फिर होनेवाले सामविकार; इन सबमें सुवर्णमालिनी वसंत उत्कृष्ट औषध है। वसंतसे पाचक अवयवोंकी शक्ति बढ़ जाती है; पाचक रसका स्राव सम्यक् होता है। फिर आमविष कम होता जाता है। इस उत्पत्तिकी दृष्टिसे जीर्ण आमवात और उससे उत्पन्न होने वाले व्याधिसंकर (उपद्रव) के विकारोंमें भी वसंत उपयोगी है।

यह रसायन कफ और पित्तदोष, रस, रक्त, मांस; शुक्र और ओज, ये दूष्य; तथा कोष्ठस्थ अवयव समूह इन सबपर लाभदायक है।

(औ० गु० ध० शा०)

जीर्ण ज्वर होनेपर नेत्रोंमें दाह, हाथ-पैरोंमें जलन, मलावरोध, जिह्वापर सफेद मलकी तह आ जाना नाड़ीमें क्षीणता, पेशाबमें पीलापन आदि लक्षण हो जाते हैं। इनमें कफ प्रकृतिवालेको सुवर्णमालिनी वसंत आधी-आधी रत्तीके साथ मुलहठी, सितोपलादि चूर्ण और अमृतासत्व मिलाकर शहदके साथ देना चाहिये, तथा सुबह शठी, खस, छोटी कटेलीका मूल, सोंठ, और मिश्रीका क्वाथ शहद मिलाकर देवें। तथा आवश्यकतापर रात्रिको उदर शुद्धिके लिये आरग्वधादि क्वाथ या मधुकादि कषाय देना चाहिये।

सूचना—यदि सुवर्णमालिनीसे किसीको पित्त बढ़ता हो या रक्तस्राव हो, तो प्रवालपिष्टी साथमें मिला लेनी चाहिये।

किसी-किसीको तीव्र शुष्ककास होनेपर सुवर्णमालिनी सहन नहीं होती। उनको पहिले मुक्ता प्रवाल और गिलोय सत्व या कामदुधा देकर अधिक उग्रताका दमन करना चाहिये। फिर सुवर्णमालिनी देनेसे पूरा लाभ होता है।

(३३) मधुमालिनी वसंत।

विधि—सिंगरफ २० तोले लेकर, अनार दानोंके रसमें ७ दिन खरल करके सूखा चूर्ण बना लेवें। पश्चात् मुर्गी २० अण्डोंके रसके साथ लोहेकी कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढाकर मन्दाग्नि दें और लोहेकी कलछीसे चलाते रहें। बार-बार रसका शोषण होकर सिंगरफकी गोलियां बनने लगेंगी; उनको कलछीसे तोड़ते रहें। जब रस बिल्कुल सूख जाय; तब कड़ाहीको चुल्हेपरसे उतार लेवें। पश्चात् कचूर, सफेदमिर्च गऊंला (प्रियंगु) प्रत्येक तैयार हुए सिंगरफके वजनसे आधे-आधे परिमाणमें और मिला, बड़हर (अथवा अनार) के रसमें ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली, मिश्री-घृत या दूधके साथ दें। बालकोंके मृद्वस्थि रोगमें मण्डूर भस्म और शृङ्गभस्मके साथ देवें।

उपयोग—यह रस, वृंहण, बल्य, ओजोवृद्धिकर तथा सूक्ष्म स्रोतोंके लिये स्नेहन करने वाला है। यह बालक, सगर्भा, असक्त और सुकुमारोंके लिये अधिक उपयोगी है।

छोटे बच्चोंको गर्भिणी माताका दूध पीनेसे पारिगर्भिक रोगकी उत्पत्ति होती है। इससे बालकका पोषण योग्य नहीं होता। कास, अग्निमांद्य, अरुचि, ग्लानि, चक्कर आदि विकार होते हैं, बालक बार-बार रोता रहता है, देहमें बल मांसविहीनत्वकी प्राप्ति होती है, उदर बड़ा हो जाता है, तथा हाथ-पैर पतले हो जाते हैं, इस विकारमें दीपन पाचन औषधिके साथ इस रसायनका उपयोग करना चाहिये। यदि अग्निमांद्य अधिकांशमें है, तो इसका उपयोग विशेष रूपसे नहीं होगा। बालकको माताका दूध रोगके निदान परिवर्जनके होनेसे नहीं पिलाना चाहिये, और मधुमालिनीका सेवन कराना चाहिये।

छोटे बच्चोंकी अस्थिवक्रता (Rlckets) व्याधिमें अन्य अस्थिपोषक द्रव्यके साथमें इस रसका उपयोग करना चाहिये। इस रोगमें हड्डियां मृदु होकर मुड़ आती हैं, तथा कृशता, पाण्डुता, मांसक्षीणता और कुब्जता आदि तथा अस्थि धातुमेंसे चूनेका परिणाम कम हो जाना. उदर बड़ा, हाथ-पैर पतले, मानसिक, विकृति, बालकका क्रोधी और दुराग्रही होजाना, दाँत आनेके समय जिस तरह अवयवोंका क्षोभ होता है बस तरह क्षोभ होकर अनेक इन्द्रियोंके व्यापारमें विकृति होना, पचनेन्द्रियकी क्रिया विकृति होने से कभी अतिसार और कभी कोष्ठबद्धता होना आदि लक्षण होते हैं। उन पर रक्त, माँस और अस्थिको पोषक चिकित्सा करनी चाहिये। अतः मण्डूर भस्म, शृङ्गभस्म; सुधाषटक्योग, सितोपलादि चूर्ण और मधुमालिनी वसन्तका मिश्रण हितकर है।

गर्भिणीको अस्थि धातु क्षीण होनेपर गर्भकी भी अस्थिधातु क्षीण होती है। फिर बालकको आगे मृद्वस्थि रोग हो जानेकी सम्भावना रहती है। अतः अस्थि धातुके पोषणार्थ सगर्भाको उक्त योगका सेवन कारना चाहिये। जिससे बालकको मृद्वस्थि रोग होनेकी भीति न रहे।

स्त्रियोंकी अशक्तताके कारणसे गर्भका योग्य पोषण नहीं होता और सगर्भा स्त्रियाँ भी दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती हैं। गर्भकी योग्य वृद्धि नहीं होती एवं रूक्ष आहार-विहारके सेवनसे या योनिस्राव अधिकांशमें होनेसे भी गर्भका योग्य पोषण नहीं होता, गर्भ शनैः शनैः सूखता जाता है। इस अवस्थाकी किसी आचार्यने नागोदर और किसीने उपशुष्क (उपविष्टक) संज्ञा दी है। इस अवस्थामें गर्भ और गर्भिणीके पोषणकी अत्यन्त आव-

श्यकता है । इसकी चिकित्सा श्रीवाग्भट्टाचार्यके निम्न वचनानुसार करनी चाहिये ।

तयोर्बृंहण-वातघ्न-मधुर-द्रव्य-संस्कृतैः ।
घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भांश्च खादयेत् ॥

अर्थात् इस अवस्थामें बृंहण और वातघ्न गुणयुक्त घी, दूध, मिश्री, अंगूर आदि मधुर द्रव्यों और आम गर्भ (कच्चे गर्भ) से सगर्भाकी तृप्ति करानी चाहिये । यह कार्य मधुमालिनी वसंतके सेवनसे उत्कृष्ट रूपसे सिद्ध होता है, कारण इसे आम गर्भोंकी भावना दी है ।

स्त्रियोंको श्वेतप्रदर विकारमें अधिक स्राव होता हो तथा बल, मांस और ओजकी क्षीणता हो तो मधुमालिनी बसंत देना चाहिये । इस तरह प्रसवके पश्चात् अत्यधिक स्राव होनेपर बल क्षय प्रतीत होता हो तो शक्ति लानेके लिये यह रस अति उपयोगी है ।

मधुमालिनी वसन्त शीतपूर्वक ज्वरके पश्चात् बल-मांस-विहीनत्वपर उपयोगी है । रक्तकणोंके नाशसे आई पाण्डुतामें लघुमालिनी और मण्डूर भस्मका मिश्रण अधिक हितकर है । परन्तु अधिक कृशता और अधिक बल क्षयपर मधुमालिनी देनी चाहिये ।

जीर्णज्वरके विकारमें पहिले बहुधा शीतपूर्वक ज्वर होता है । यह कम होनेपर या अनेक दिन चले जानेपर जीर्णज्वर हो जाता है । इसमें प्लीहा बढ़ जाती है अग्निमांद्य होता है और रोगी निर्बल बन जाता है । इस विकारमें अग्निमांद्य मर्यादित हो और प्लीहावृद्धि और मांसविहीनत्व आया हो तो मधुमालिनी देनी चाहिये ।

कोई भी व्याधि दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेसे बलमाँसविहीनत्वकी प्राप्ति होनेपर मधुमालिनी वसन्तका उपयोग अवश्य करना चाहिये । यह वसन्त-कल्प नाजुक प्रकृति वाले, कृश बालक और गर्भिणीके लिये शक्तिदायक और मांसवर्द्धक है । केवल अग्निबलका विचार करके इसकी योजना करनी चाहिये । (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

मज्जाक्षय और शुक्रक्षय होनेपर देह निस्तेज हो जाती है तथा सांधो-सांधोंमें पीड़ा, रूक्षत्वक्, चक्कर आना, मलावरोध, स्त्री समागमकी अनिच्छा, हृदयमें कम्प, बड़ी आवाज भी सहन न होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। उक्त रोगपर मधुमालिनीवसंत प्रवाल भस्म और अमृतासत्व मिला कर आमके मुरब्बेके साथ देनेसे थोड़े ही दिनोंमें व्याधि दूर होजाती है ।

जीर्णज्वर दीर्घकाल तक रह जानेपर ओजक्षय होजाता है । फिर रोगी डरपोक बन जाता है । एवं अति निर्बलता, शुष्कता, कान्तिहीनता उत्पन्न होती है । ऐसी अवस्थामें मधुमालिनी वसन्तका सेवन दूधके साथ

करानेपर जीर्णज्वर, ओजक्षय, मांसक्षय, अग्निमांद्य आदि विकार दूर होते हैं।

(३४) लघुमालिनी वसन्त

प्रथम विधि—खपरिया (यशद प्रधान कारबेल्लक या केलेमेना प्रिप्रेटा या यशद भस्म) शुद्ध ८ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध हिंगुल ८ तोले मिला गोदुग्धमेंसे निकाले हुये २ तोले मक्खनके साथ खरल करें। फिर १०० नींबूओंका रस निकाल, फिल्टर पेपरसे छान, थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खरल करें। लगभग ५-६ रोजमें मक्खनका चिकनापन दूर होनेपर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (आ० क० नि०)

मात्रा—१ से २ गोली, शहद, पीपल, दूध या जलके साथ।

उपयोग—इस रसके सेवनसे जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, अतिसार, क्षय, अर्श, ताप, मन्दाग्नि, शूल, वातविकार, प्रदर, रक्तार्श और नेत्र रोगका नाश होता है।

इस लघुवसंतमें सुवर्णमालिनीसे न्यून गुण हैं। दोनोंमें खर्पर मुख्य है। रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्डमें विकृति होनेपर यह रसायन अमृत सदृश गुणकारी है। जीर्ण विषमज्वरमें जब दोष, रस, रक्त, मांस आदि किसी धातुमें प्रवेश करता है, तब शुक्रगत ज्वरको छोड़कर अन्य धातुओंमें रहे हुए ज्वरको दूर करनेमें यह लघुवसन्त अच्छा लाभदायक है। जीर्ण ज्वरमें प्लीहावृद्धि, रसधातुगत ज्वर, मन्दाग्नि, हाथ-पैरमें सूक्ष्म उष्णता रहना इत्यादि दोष होनेपर लघुवसन्त अच्छा लाभ पहुँचाता है। जीर्ण शीतज्वर जब क्वीनाइनसे नहीं जाता तब लघुवसन्तसे रक्तकणोंकी शुद्धि और वृद्धि होकर शमन हो जाता है। शीतज्वर या अन्य ज्वरोंके पश्चात् मन्दाग्नि, पतले दस्त या कब्ज और शरीरमें आई हुई पाण्डुतापर लघु-वसन्त, मण्डूर भस्मके साथ देनी चाहिये।

दूसरी विधि—खपरिया ८ तोले और सफेदमिर्च ४ तोले मिलाकर खरल करें। फिर गौके दूधका मक्खन १। तोला मिला, नींबूके रसमें ४ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बांधें। (यो० र०)

कई ग्रन्थकारोंने इस रसका नाम ज्वरमुरारि रखा है। रससार संग्रह-कारने इसे रसराज संज्ञा दी है। किसी ग्रन्थकारने नवज्वरारि और व्याधिगजकेसरी नाम लिखे हैं। यह जीर्णज्वर और शोष रोगकी उत्तम औषध है। बालक, सगर्भा, सूतिका, वृद्ध आदि सबको निर्भयता पूर्वक दी जाती है।

मात्रा—१ से २ गोली तक शहद-पीपल या दूधके साथ देवें। सगर्भा को जयन्तीके पुष्पके रसके साथ या दूधके साथ दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह औषधि जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, पित्तविकार

रक्तविकार, रक्तातिसार, नेत्ररोग, प्रदर, रक्तार्श तथा बालकोंके बालशोष और तापके पीछेकी निर्बलता आदि विकारोंको दूर करनेमें हाथीके लिए सिंह समान है। छोटे बालक और सगर्भाके लिये यह वसंत अत्यन्त हितकर है।

पहली विधिकी अपेक्षा यह अधिक सौम्य है। पहली विधि पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको कम अनुकूल रहती है। यह शीतल होनेसे विशेष लाभप्रद है। वसंतका मुख्य कार्य रसवाहिनियों और लसिकाग्रन्थियोंपर होता है।

यह रस जीर्णज्वरसे उत्कृष्ट औषधि है। जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि रसगत सूक्ष्म ज्वर और अधिक समय अग्निदौर्बल्य ये लक्षण होते हैं। नाड़ी परीक्षा द्वारा ज्वर प्रतीत होता है, उष्णतामापक यन्त्रद्वारा नहीं जाना जाता। रोगीके हाथ-पैर टूटना, बेचैनी, कुछ शुष्कता आजाना, नेत्रदाह, मूत्रमें पीलापन, त्वचामें निस्तेजता, क्षुधानाश, प्लीहावृद्धि, मुंह फूला हुआ-सा निस्तेज पाण्डु वर्णका होजाना और थोड़ा खानेपर भी उदरमें भारीपन आदि लक्षण होते हैं; उसपर लघुमालिनी वसंत अत्यन्त उपयोगी है।

कभी-कभी जीर्ण शीतज्वरके विकारमें केवल शीतज्वरनाशक उपाय दीर्घकाल पर्यन्त करनेपर भी लाभ नहीं होता। क्विनाइन सदृश औषधका चक्रपारायण करनेपर भी ज्वर नहीं भागता। इसमें एक कारण यह भी है कि क्विनाइन मलेरियाके कीटाणुनाशक होनेपर भी यदि उसका अनेक दिनों तक सेवन किया जाय तो वह भी कीटाणुओंको सात्म्य हो जाता है फिर कीटाणु ढीठ बन जाते हैं। ऐसे समयपर वसंत कल्प अति उपकारक है। इस रसायनसे अग्निबलकी वृद्धि होकर पचन-क्रिया सुधरती है, रस-रक्त, धातुएँ पुष्ट बनती हैं, प्रत्येक धातुकण सबल होता है। फिर आगन्तुक कीटाणुओंको विदा किया जाता है। इस तरह जीर्णज्वरके अनेक रोगियोंको इस औषधिने आरोग्यकी प्राप्ति कराई है। रोग प्रभावसे शीतज्वरके पश्चात् या अन्य ज्वरके पश्चात् रक्तमेंसे रक्त कण कम होकर श्वेतता या पाण्डुता आने पर लघुवसंत और मण्डूर भस्म मिश्रण उत्तम कार्य करता है। पाण्डुरोगकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें इसका उपयोग होता है।

तरुण युवतीको होने वाले पाण्डुरोगमें इस रसायनका उपयोग होता है। मासिकधर्ममें अधिक रज:स्राव, रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् आई हुई पाण्डुतामें भी यह रस उत्तम कार्य करता हैं।

छोटे बच्चेको मिट्टी खानेकी आदत हो जानेपर पाण्डुता उत्पन्न होती है। इसमें पहिले मुर्दासंग आदि मृदुविरेचन योग दान देना चाहिये। फिर लघुवसंत और मण्डूर भस्म मिलाकर दिया जाता है।

कृमिरोगसे उत्पन्न ज्वरमें भोजनकी इच्छा न होना, क्षुधानाश, पाण्डुता आदि लक्षण होनेपर पहिले कृमिनाशक औषधि दी जाती है। फिर वसन्त

मण्डूर मिश्रण देना चाहिये।

यह रस बालकोंको १६ वर्षकी आयु तक बल्यरूपसे उपयोगी है। बिल्कुल स्तनंधय शिशुको यह वसंत नहीं देना चाहिये। परन्तु अन्न और दूध लेने वाले बालकको यह निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। अतः इस वसंतको बालमित्र उपमा देनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सूक्ष्म ज्वर और इसके पश्चात् या इसके साथ अशक्ति, अस्थिमार्दव, रोगकी अशक्ति या क्षीरालसक (त्रिदोष-दूषित स्तन्यसे होने वाला ज्वर, जिसमें वमन, नाक, मुख आदिका पाक भी होता है) तथा पारिगर्भिक रोगसे आई हुई कृशता आदि विकारोंमें स्नायुओंकी निर्बलताको नाश करने वाली और अन्य धातुओंको पुष्ट करने वाली औषधियोंमें यह वसन्त उत्कृष्ट बल्य है। इस अवस्थामें वसन्त-मण्डूर मिश्रणका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण ज्वरमें अग्निसाद मुख्य लक्षण है एवं जीर्ण ज्वरके पश्चात् या अन्य व्याधिके पश्चात् या अन्य धातुओंकी अशक्ति हो जाती है तथा मांसविहीनत्वकी प्राप्ति होती है। इसका कारण भी बहुधा अग्निसाद होता है। अग्नि अर्थात् पचनेमें सहायक होने वाला पित्तांश यह प्रत्येक धातुओंमें रहता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धान्त है। इस नियमानुसार अग्निसादका अर्थ इस स्थानपर प्रत्येक धातुके भीतर रही हुई पाचन शक्ति (पचनक्रिया) जीर्ण होना। इस तरह रस आदि धातु क्षीण होनेमें तत्रस्थ धातुकण बनाने की ओर उसे आत्मसात् करनेकी शक्ति-क्षीणता होती है। इस अवस्थामें बसन्त उत्तम ओषधि हैं। छोटे बच्चोंके लिये तो लघुवसन्त अधिक प्रशस्त हैं। तथापि बड़ी आयु वालोंके लिये भी रसाजीर्ण बार-बार होनेपर लघुबसन्त अति उपयोगी है। अन्नका विद्वेष, उदर और कौड़ी प्रदेश सर्वदा जड़ रहना, उबाक, मुंहमें चिपचिपा पानी आते रहना, निरुत्साह आदि लक्षण होनेपर लघुवसन्त देना चाहिये।

पचनेन्द्रिय निर्बल होनेपर या अधिक अग्निसाद होनेपर अन्नपचन योग्य रूपसे नहीं होता। फिर अतिसार हो जाता है। कुछ दिन तक अतिसार रहता है, कुछ दिन नहीं रहता। फिर अतिसार हो जाता है। इस तरह बार-बार लौट-लौटकर आक्रमण करता है। साथमें सूक्ष्म ज्वर, सारा शरीर टूटना, दाह, रसवाहिनियोंकी विकृति, मुंहमें बेस्वादुपन, उबाक, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगना, मल सफेद रंगका होना, खट्टी-सी वास आना, अशक्ति, क्षुधानाश, थोड़ा-सा खानेपर भी न पचना आदि लक्षण होनेपर लघुवसन्त देनेसे जठराग्नि प्रबल होकर अन्नपचन सम्यक् होने लगता है। फिर अतिसार बन्द हो जाता है। यह अतिसार जीर्ण व्याधि रूप ही होता है।

शारीरिक व्यापार योग्य चलनेके लिये प्राणवायुकी पूर्ति होनी चाहिये

और रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे होकर सब अवयवोंको आवश्यक रक्त मिलते रहना चाहिये । रक्त सबल न होनेपर इन्द्रियोंमें अशक्ति आती रहती है, या पूरा न मिलनेसे इन्द्रियां कार्यक्षम नहीं रह सकतीं । रक्त हेतु से "रक्तं जीव इति स्थितिः" यह वचन योग्य ही कहा है। रक्त सबल बनाने का और सब स्थानोंपर पहुँचानेका कार्य वसन्तसे उत्तम रूपमें होता है। इसलिये भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंकी निर्बलतापर लघुवसन्त अति उपकारक है।

प्रदरमें मुख्य श्वेत और रक्त, ये दो प्रकार है । इनमें श्वेतप्रदर अपचन या योनिमार्गकी सूक्ष्म ग्रन्थियोंके कारणसे भी उत्पन्न हो जाता है । यदि अपचन विकारसे उत्पन्न हुआ हो तो लघुवसन्त अति उत्तम लाभ पहुँचाता है । यदि सूक्ष्म ग्रन्थियोंका क्षोभ हेतु हो तो बंगभस्म और त्रिवंग भस्म अधिक हितकर है । इस प्रकारके प्रदरमें जल सदृश पतला स्राव अनजान पनमें होता रहता है । मस्तिष्क भ्रमता हो ऐसा भासता है शिरदर्द, कण्ठ में शुष्कता या चिपचिपापचन, श्वसन योग्य न होना, बार-बार दीर्घ श्वास लेना, हृदयके स्पन्दनमें वृद्धि, उदरमें आफरा, उबाक, अग्निसाद, लघु अन्त्र और बृहदन्त्रमें आफरा अधिक, मलशुद्धि नियमित न होना (कभी मल साफ होता है, कभी अनेक बार दस्त होता है), मलमें खट्टी वास आना और मलका रंग सफेद-सा हो जाना आदि लक्षण युक्त प्रदरमें लघु-वसन्त देना चाहिये ।

धातुगत ज्वरकी आयुर्वेदिक उत्पत्ति अति अभिनव है । ज्वर विविध कारणोंसे उत्पन्न होना है । किसी भी ज्वरोत्पादक कारणसे विकार उत्पन्न होकर रस, रक्त आदि दूष्योंमें या स्थूल धातुओंमें जाकर पृथक्-पृथक् प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करता है। यह आयुर्वेदिक उत्पत्ति है। इस पद्धतिसे रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि विभाग आयुर्वेदने किये हैं। इनमेंसे शुक्रगत ज्वरको छोड़, अन्य धातुगत ज्वरोंमें ज्वरकी तीव्रता कम होनेपर लघुमालिनी अति उत्तम कार्य करती है। मुंहका बेस्वादुपन, उबाक, शरीरमें भारीपन, अंग गलना, बार-बार वमन, अरुचि, मुखमण्डल पर निस्तेजता और दीनता ये रसगत ज्वरके लक्षण है। दाह, थूंकमें किंचित् रक्त आना, निकम्मे विचार आते रहना या चक्कर आते रहना, वमन, प्रलाप, सर्वाङ्गमें ऐंठन, तृषा, शुष्कता ये लक्षण रक्तगत ज्वरमें होते हैं। अतिशय प्रस्वेद, अति शुष्कता, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, प्रस्वेद में सड़ी हुई दुर्गन्ध, अति ग्लानि, अरुचि, सहनशीलता कम हो जाना ये मेदस्थ ज्वरके लक्षण हैं। इन सबपर वसन्तका अति उत्तम उपयोग होता है। इस प्रकारके धातुगत विषम ज्वरोंसे विषम ज्वरदोष किसी भी धातुमें लीन रहता है। इस तरहके धातुगत विषम ज्वरमें भी यह अति उत्तम है।

नेत्र रोगोंमें पोथकी रोगकी जीर्णावस्थामें वसन्तका अति उत्तम उप-

योग हुआ है। जीर्ण पोथकीके हेतुसे अग्निमांद्य और कोष्ठदुष्टि हो सकती है, यह विकृति लघुमालिनी वसन्तसे उपशमन हो जाती है।

यह वसन्त छोटे बच्चे और गर्भिणीके अबलत्वसे उत्पन्न विकारोंको दूर करता है। इस हेतुसे मूल ग्रन्थकारने इसके फलश्रुतिमें "सर्वं रोगहरः शिशोः" अर्थात् बालकके सब रोगोंको हरण करने वाला कहा है।

कितनी ही स्त्रियोंमें बार-बार गर्भपात होनेकी प्रकृति हो जाती है। चौथे मास तक गर्भस्राव होता है, फिर गर्भपात होता है। इसका कारण गर्भाशयकी अशक्ति या मानसिक अस्वस्थता होती है। यदि गर्भाशयकी अशक्ति हो (गर्भाशयमें उपदंश या अन्य रोगजनित विष-विकृति न हो) तो पहले माससे ही लघुमालिनी वसन्तको प्रारम्भ करना चाहिये। यदि मानसिक अस्वास्थ्य कारण है तो गर्भपाल रस। सार्वदैहिक विशेषतः अधिक मांस क्षीणत्व होनेपर मधुमालिनी वसन्त। उपदंशज विष हेतु है तो अष्टमूर्ति रसायन, अभ्रक और सितोपलादि मिश्रण देना चाहिये। लघु वसन्त से गर्भपोषण उत्तम प्रकारसे होता है, गर्भोदक भी उत्तम बनता है, विकृत गर्भ निर्माण रूप दोषकी निवृत्ति होती है तथा सगर्भाको आने वाला सूक्ष्म ज्वर भी दूर होता है। उरस्तोय विकारमें फुफ्फुसावरणके भीतर यदि जल का संचय थोड़े परिमाणमें हुआ हो तो लघुवसन्तसे संचित जलका शोषण हो जाता है और फुफ्फुसावरण अपने कार्यके लिये सशक्त बन जाता है।

पार्श्व शूलकी तीक्ष्ण अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु शूल नष्ट होनेके पश्चात् जीर्णावस्थामें फुफ्फुसावरणकी त्वचा मोटी हो जाना, सूखी खांसी और श्वासोच्छ्वास क्रियामें थोड़ा त्रास होनेपर यह औषधि लाभदायक है।

सूचना—यह औषधि अधिक मात्रामें २-३ मास तक देनेपर किसीको मुंह आना, गलेमें दर्द, उदरपीड़ा और मूत्रमें लाली आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समयपर कुछ दिनोंके लिये इसे बन्दकर दोष शमनाथ प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्वके मिश्रणका सेवन कराना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० आधारसे)

(३५) संशमनी वटी

विधि—गिलोय घन १० तोले, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और सुवर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे मिलाकर दो-दो रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (वै० चि० सा०)

मात्रा—२ से ४ गोली। दिनमें २ बार, दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी जीर्णज्वर, क्षय, पाण्डु, खांसी, प्रदर, वीर्यस्राव, धातुक्षीणता, निर्बलता आदि दोषोंको दूर करके शरीरमें बल बढ़ाती है।

पित्त प्रकृति वाले, नाजुक प्रकृति वाले, सगर्भा, प्रसूता और बालकोंके लिये यह लाभदायक हैं। वातवाहिनियां, माँस, स्नायु, ग्रन्थियां और मस्तिष्कको बलवान् बनाती है, स्मरणशक्तिको बढ़ाती है और शरीरमें स्फूर्ति लाती है। बिगड़े हुए धातु परिपोषण क्रमको सुधारने, जीर्णज्वरको दूर करने और पचन-क्रियाको बढ़ानेमें अति हितकर है। सगर्भा प्रसूता, वृद्ध, युवा, और बालक सबके लिये यह वटी निर्भय और अति लाभप्रद है।

धातुओंमें ज्वर विष लीन हो जानेपर मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। व्याकुलता अग्निमांद्य, अशक्ति, मूत्रमें पीलापन, हाथ पैरोंकी नसोंमें खिचाव होते रहना, निद्रा शान्त न मिलना, तन्द्रा और मस्तिष्कमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे कई रोगियोंको संशमनी वटीका सेवन कराने पर ज्वर दूर होकर शरीर सबल बन गया है तथा मानसिक स्फूर्ति आगई है।

सूचना—(१) दीर्घकाल तक ज्वर रह जानेपर बहुधा यकृत् निर्बल हो जाता है फिर घी तैलका पचन अधिक नहीं होता। अतः घी; तैल, मावा और मैदाके पदार्थ, मिठाई और कब्ज करनेवाले पदार्थ हो सके उतना कम देना चाहिये। गायका दूध १ या २ ऊफाण आया हुआ हितकर है। अति उबाला हुआ दूध भी नहीं देना चाहिये।

(२) गिलोयका घन बनानेके समय गिलोय २-३ वर्षकी परिपक्व और ताजी लेनी चाहिये। एवं घन तुरन्त बनाया हुआ उपयोगमें लेना चाहिये, गिलोय घन जितना अच्छा होगा उतनी ही औषधि दिव्य गुण दर्शाती है।

(३६) नीलकण्ठ रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला और नीलेथोथेका फूला चारोंको समभाग मिला देवदालीके फलोंके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली। मिश्री और निवाये जलके साथ दें।

उपयोग—यह रस वमन करानेके लिये उपयोगी है। पित्त और ज्वर विष आदिको दूर कर सत्वर ज्वरका शमन कराता है। अम्लपित्त, श्वास, विष सेवन, कास, हिक्का आदि रोगोंके ऊर्ध्व भागका शोधन करके शरीर को नीरोग बनाता है एवं जो-जो रोग पित्त-प्रकोप जनित या कफवृद्धि जनित होनेसे वान्तिसाध्य हो उन सबके लिये यह रस उपयोगी है।

(३७) इच्छाभेदी रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ और कालीमिर्च १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ तोले मिला नींबूके रसमें ६ घण्टे घुटाई करके १-१ रत्तीको गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। सुबह ठण्डे जल या शर्बतके साथ दें।

उपयोग—इस रसको दो गोलीसे ५-७ जुलाब लगकर आंतें साफ हो जाती हैं। यह रसायन वातविकार रक्तदोष, त्वचादोष, श्वास, कास, हिचकी गुल्म, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, अफारा, शूल, उदर रोग, आमवृद्धि मलावरोध, कृमि, विस्फोटक, कफ प्रधान जलोदर आदि रोगोंमें जुलाबके लिये उपयोगमें लिया जाता है। यह रस तीव्र विरेचक, कफवातनाशक, शूलघ्न, विषघ्न और बड़ी आंतमें रहे हुए सेन्द्रिय विषका सशोधक है।

यह रस विरेचन रूपसे जलोदरमें विशेषत: कफप्रधान जलोदरमें उदर्या-कलामेंसे सञ्चित जलको बाहर निकालने या शोषण करानेके लिये दिया जाता हैं।

पिष्टमय पदार्थके खानेसे उत्पन्न तीव्र स्वरूप वाले आनाह और आध्मान (कब्ज ओर अफारा) में इस रसका उत्तम उपयोग होता है। यदि आध्मान की जीर्णावस्था हो या वार-बार आध्मान आ जाता हो तो इच्छाभेद सदृश तीव्र औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि मल सञ्चित होकर शुष्क गट्ठे बन गये हों ओर उस हेतुसे शूल चलना रहता हो तो पहिले स्नेहन देकर फिर विरेचन देना चाहिये।

अपतानक, अपतन्त्रक और आक्षेपक वातविकारमें कफानुबन्ध होनेपर कोष्ठशुद्धि और कफसे संरुद्ध स्रोतोंको शुद्ध करानेके लिये विरेचन औष-धियोंमें इच्छाभेदी उत्तम प्रकारसे लाभदायक है।

बृहदन्त्रमें मलसंचय अतिशय होनेपर सब आंतें दूषित होती है फिर इसमें सेन्द्रिय विषका निर्माण होता है। यह विष अति तीव्र स्वरूपका होता है। उसका सारे शरीरमें शोषण हो जानेपर रस, रक्त आदि धातुएँ विकृत होकर कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न हो जाता हैं। मुख्य कुष्ठ रोग और मलसंचय जनित कुष्ठ सदृश विकार, दोनोंमें सम्प्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे महदन्तर है। इस रोगमें समस्त देहपर बड़े-बड़े काले या लाल धब्बे हो जाते हैं, खुजली भो आती रहती है। इस विकारपर विरेचनको आवश्यकता होनेपर इच्छा-भेदी रस उत्तम कार्य करता है। वात और कफ प्रधान प्रकृतिवालोंके लिये इस इच्छाभेदीकी अपेक्षा अश्वचोलीका उपयोग विशेष उपकारक है, ऐसा हमें अनुभव मिला है।

हिक्काके विकारमें आमाशयमें पित्त या कफ संचय खूब होजानेपर बार-बार हिक्का जनित विलक्षण त्रास होता है। ऐसे समयपर वमन, विरेचन-द्वारा आमाशय शुद्धिकी अति आवश्यकता है। इच्छाभेदीसे वमन और विरेचन, दोनों कार्य उत्तम प्रकारसे हो जाते हैं।

विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजन पचन होनेके पहिले फिर भोजन) या गरविष सेवन होनेपर बार-बार हिक्का आती रहती है और क्वचित् वान्ति भी होती रहती है; उसपर इच्छाभेदी देनेसे कोष्ठशुद्धि होती है और

गर (सेन्द्रिय विष) भी नष्ट होकर व्याधि शमन हो जाती है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

रक्तदबाव वृद्धि (Highbood pressure) होनेपर शिरदर्द होता है। मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियाँ रक्तसे खूब भर जाती है। दबाव अति बढ़नेपर खोपड़ी टूट जायगी क्या? ऐसा भ्रम होता है। उस समय सत्वर उपचार न किया जाय तो कोई बड़ी रक्तवाहिनी टूटकर पक्षवध या सन्यास हो जाता है। इस रोगपर ५-७ जुलाब हो जायें, ऐसा विरेचन दिया जाता है। इस हेतुसे इच्छाभेदी रस २ रत्ती और निशोथ चूर्ण ३ माशे मिलाकर शर्बतके साथ देना चाहिये। आध घण्टेपर सौंफका अर्क ५ तोले देवें। आवश्यकतापर शामको दूसरी बार विरेचन देवें। इस तरह २-४ दिन तक विरेचन देनेसे बृहदन्त्रकी शुद्धि होकर रक्तदबाव कम हो जाता है। भोजनमें खिचड़ी देवें।

सूचना—(१) यह रसायन नूतन ज्वरका रोगी, अतिसार रोगी, जीर्ण आध्मानके रोगी और बार-बार आफरा आने वाले और कोमल बालक व वृद्ध सगर्भाको नहीं देना चाहिये।

(२) जमालगोटेमें उग्र तैल रहता है। शुद्ध होनेपर भी वह पूर्णांशमें सौम्य नहीं बनता। अतः जिनके वृक्कोंमें उग्रता हो उनको इच्छाभेदी रस बार-बार नहीं देना चाहिए। अन्यथा मुंहपर शोथ आयगा।

स्थूल मल और अन्त्रस्थ विषको बाहर निकालनेमें इच्छाभेदी जितना कार्य करता है, उतना कार्य लीन विषपर नहीं करता। लीन विषपर इच्छाभेदीकी अपेक्षा निशोथ प्रधान औषधि विशेष उपकारक रहती है।

पथ्य—खिचड़ी-घी अथवा दही भात।

(३८) आनन्द भैरव रस

विधि—शुद्ध हिंगुल, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोहागेका फूला, बच्छनाभ और गन्धक, इन सबको समभाग मिला, नींबूके रसमें १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ बार। जल, छाछ, चावलके धोवन, कूड़ेकी छालका चूर्ण या अनार शर्बतके साथ देवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे कफज्वर, खांसी, श्वास, जुकाम, अतिसार, मन्दाग्नि, अजीर्ण, ग्रहणी, अपस्मार, वातरोग, प्रमेह, सन्निपात और ज्वरातिसार दूर होते हैं।

यह रस ज्वरहर और स्वेदल है। यह त्रिभुवनकीर्तिकी अपेक्षा कम उग्र है। इस रससे पित्तवृद्धि होती है, अतः पित्त ज्वरमें नहीं देना चाहिये। कफप्रधान ज्वरमें इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु कफज्वरमें भी

जब तक आमावस्था हो तब तक इसे नहीं देना चाहिये। लंघन करा, निरामावस्था प्राप्त होनेपर यह दिया जाता है। इस रससे कण्ठके भीतर श्वास-मार्गकी श्लैष्मिक कलापर परिणाम होकर कफका संशोषण होता है, अतः कफविकारमें इसका उपयोग इतने अशमें अच्छा होता है। सर्वांग में जड़ता, देह गीलापर, मर्यादित ज्वर, ज्वरकी अपेक्षा देहमें भारीपन अधिक आलस्य, मुंहमें मीठापन, अङ्ग अकड़ जाना, लंघन करनेपर भी उदरमें भारीपन, भोजन, अभी किया है ऐसा भासना, सारे शरीरमें शीतलता और मुंहमें जल आना आदि लक्षण होनेपर आनन्द भैरव रस अवश्य देना चाहिये।

कफप्रधान कासको उत्पत्ति जुकाम होकर फिर पक्व करके हुई हो, कफ की बड़ी-बड़ी गांठे निकलती हों या जुकाममें अच्छी तरह कफ निकलता हो तो यह रस देना अति हितकर है। कितने ही चिकित्सक जुकामके प्रारम्भ होनेके साथ बच्छनाभ प्रधान औषधि देते हैं, इसका परिणाम अनेक बार हानिकारक होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग उत्पन्न हो जाने की भीति रहती है। बच्छनाभका महत्वका धर्म, नाक, कण्ठ आदि भागकी श्लैष्मिक कलामेंसे होने वाले स्रावका संशोषणकरा कलाको शुष्क बनाना है। जब विषको बाहर निकालनेके लिए जीवनीय शक्तिने जुकाम उत्पन्न किया है, तब उसका शोषण कराना इष्ट नहीं है। पहले कफका स्राव करा फिर कफ पक्व होनेपर ही आनन्दभैरवका उपयोग करना चाहिये।

श्वासरोगमें कभी-कभी कफ इतनी अधिक बार निकलता है कि रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसे समयपर आनन्द भैरवसे सत्वर लाभ पहुँचता है। श्वासकी अन्य अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता।

कफज अरुचि और अग्निमांद्यसे उत्पन्न अतिसारमें अन्नका सम्यक् पचन न होनेसे उदरमें जड़ता उत्पन्न होकर और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ होकर स्राव होता रहता है। इस हेतुसे अतिसारकी उत्पत्ति हुई हो तो इसकी तीव्रावस्थामें आनन्दभैरवका उपयोग होता है। किन्तु जीर्णावस्थामें अश्वकंचुकी उपयोगी है।

सन्निपातज ग्रहणी विकारमें विशेषतः कफयुक्त आम अधिक गिरना, कफ प्रसेक भारीपन, अरुचि आदि लक्षण होनेपर तथा ग्रहणीका निमित्त कारण शीतोपचार या शीतल वायुमें फिरना आदि हों तो आनन्दभैरवदेना चाहिये।

शीतोपचार या शीतल वायुसे उत्पन्न मध्यम कोष्ठशूल, उदरमें वायुकी उत्पत्ति, मलावरोध और बार-बार दस्त होनेपर शौच शुद्धि न होना आदि लक्षण होनेपर आनन्दभैरवका प्रयोग करना चाहिये।

वातज अपस्मारमें यह रस आक्षेपको दबानेमें सहायक होता है।

आनन्दभैरव रसमें काले बच्छनाभके स्थानपर श्वेत बच्छनाभ मिलाया

जाय तो उदकमेह, पिष्टमेह, शनैःमेह आदि कफज प्रमेहोंपर अच्छा लाभ पहुँचता है। इस रसका प्रमेहपर प्रयोग करनेमें इस बातको सम्हालना चाहिये कि मूत्रमें शर्करा बिल्कुल न हो, यदि है तो भी अति कम मात्रामें। मूत्र बार-बार अधिक परिमाणमें, मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व अति कम और मधुमेहमें तृषा, दाह, चिरचिरापन आदि लक्षण न हों, इस स्थितिमें आनन्दभैरव रसका अच्छा उपयोग होता है। इन प्रमेहोंमें मुख्य लक्षण अपचन भी होना चाहिये। अग्निमांद्य इतना हो कि थोड़ा खानेपर भी पचन न हो। इस तरह अपक्व अन्न पक्वाशय और बृहदन्त्रमें रह जानेसे प्रमेह या मूत्रातिसार उत्पन्न हुआ हो तो उसपर आनन्दभैरव रस देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

द्वितीय विधि- शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ, कालीमिर्च, सोहागेका फूला और पीपलको समभाग मिला नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

उपयोग—इस विधिका अधिक प्रयोग महाराष्ट्रमें कफज कासके निवारणार्थ होता है। दिनमें दो बार १-१ गोली जल या शहद-पीपलसे देवें। कासके अतिरिक्त मन्द ज्वरसह जुकाम, अपचन, अपचनके हेतुसे कुछ बुखार होना दिनमें ३-४ बार शौच होना आदिपर भी लाभदायक है।

(३९) कर्पूर रस

विधि—कर्पूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ और जायफलको समभाग मिला ३ घण्टे अदरकके रसमें खरलकर ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती। दिनमें ३ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस ज्वरातिसार, अतिसार, ६ प्रकारके ग्रहणी रोग और प्रबल रक्तातिसार आदिको रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे सत्वर दूर करता है। विसूचिकामें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् २-२ घण्टे पर देनेसे अतिसार और वमन दोनोंका निवारण करता है।

पित्तातिसार और इसके साथ ज्वर, तृषा, दाह, चक्कर आदि लक्षण होनेपर तथा पीला, नीला और अरुण रंगका मल होनेपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है। अन्य सब प्रकारके अतिसारोंमें इतना अधिक लाभ नहीं होता।

संग्रहणीके सब प्रकारोंपर इसका उपयोग होता है, ऐसा मूल ग्रन्थकारने लिखा है। परन्तु पित्तज और वातज ग्रहणीमें ही इसका अच्छा व्यवहार होता हैं, कफजमें नहीं होता।

वातज संग्रहणीमें भोजनका पचन ठीक नहीं होता। खट्टी बास वाली

उग्र डकारें आती रहती हैं, मुंह और कण्ठ सूखते हैं एवं तृषा, नेत्रके पास अन्धकार, कानमें आवाज तथा कण्ठ, पार्श्व, जङ्घा, गुल्फ आदि संधि स्थानोंमें पीड़ा, उदरमें सुई चुभाने सदृश वेदना, हृदयमें व्यथा, निर्बलता, कृशता, मुंहमें बेस्वादुपन भोजनकी इच्छा होती है परन्तु खानेके साथ ही उदरमें काटने सदृश पीड़ा होना, रोगके अनुपानसे क्षुधा अच्छी लगना, हाथ-पैर गल जाना, अप्रसन्नता, अन्न पचन होनेपर आफरा, अनेक समय पतले शौच होना, चिपचिपा आममिश्रित झागयुक्त मल बड़ी आवाजके साथ गिरना, बहुत समय किछनेसे मल आना, मल शुद्धि न होना, शौच शङ्का बनी रहना, शौचका वेग बार-बार आना आदि लक्षण होते हैं। थोड़ा किछनेपर शौच होता है और इससे कुछ अच्छा भी मालूम पड़ता है परन्तु पुनः पुनः शौच आनेकी इच्छा होती रहती है। इस परिस्थितिमें उत्तम शामक औषधि चाहिये, वह कर्पूर रस है। इस रसायनमें अफीम, जायफल आदि शामक द्रव्योंसे वातवाहिनियोंका उत्पन्न हुआ क्षोभ कम होता है, जिससे शौच शङ्का भी कम होती है।

पित्तप्रधान संग्रहणीमें नीला-पीला, रक्तयुक्त पतला, दुर्गन्धमय मल होता है। अधिक वेदना नहीं होती, किछना भी नहीं पड़ता, परन्तु उदरमें दाह शौचमें जलन, मलोत्सर्ग होनेपर भी गुदामें दाह, गुदापाक, सर्वांगमें दाह, अरुचि, तृषा आदि लक्षण अधिक होते हैं। इस अवस्थामें कर्पूर रस अच्छा उपयोगी है।

रक्तातिसारमें अफीम समान तीव्र स्तम्भक औषधिकी अपेक्षा प्रियंगु, लोध, अर्जुन या धायके फूल सदृश रक्तस्तम्भक और रक्तप्रसादन करने वाली औषधि देना हितकर है। अफीम तीव्र शामक होनेसे अन्तरेन्द्रियका व्यापार अत्यधिक मन्द हो जाता है। फिर इसकी क्रियाशक्ति अनेक बार नष्ट प्रायः हो जाती है। उसे नियमित होनेमें बहुत काल लग जाता है। अतः इस विकारपर हो सके तब तक अफीम प्रधान औषधि न देना यह अच्छा माना जायगा। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—कर्पूर रसमें अफीम और जायफल अति स्तम्भन करने वाली औषधि होनेसे अतिसार और संग्रहणीकी आमावस्था (कच्चे आम) में इसे प्रयोगमें नहीं लेना चाहिये।

नये रक्तातिसारके प्रारम्भमें भी इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा अपक्वदोष भीतर ही रह जानेसे १-२ मास बाद फोड़े फुन्सी आदि रोग हो जाते हैं।

(४०) अगस्ति सूतराज रस

विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, शुद्ध सिंगरफ २ तोले,

धतूरेके शुद्ध बीज ४ तोले और शुद्ध अफीम ४ तोले लें। सबको विधिपूर्वक मिला; भांगरेके रसमें ७ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय। अतिसारमें जीरा और जायफलके चूर्णके साथ। मन्दाग्नि, वमन, शूल, कफ और वातविकारमें त्रिकटु और शहदके साथ। प्रवाहिकामें कालीमिर्च और घीके साथ।

उपयोग—अगस्तिसूतराजरस शामक, वेदनाहर, जन्तुघ्न और अन्तड़ीमें उत्पन्न होनेवाली अब्धातु (जल) की वृद्धिको कम करता है। इसका उपयोग पक्वातिसार और निराम ग्रहणीमें विशेष लाभदायक है। इसका उपयोग संग्रहणी, आमातिसारकी आमावस्थामें नहीं करना चाहिये। लंघनद्वारा आमपाचन कराके फिर इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

पक्वातिसारमें कफ, वात और कफवातज प्रकोपमें इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः बड़े बड़े जुलाब लगना, उदरमें आक्षेप सदृश मूल, रह रह कर शूल चलना और कुछ काल शमन हो जाना आदि लक्षण हों तो अगस्ति-सूतराज रस उत्तम कार्य करता है। इस रोगमें झागयुक्त कुछ दुर्गन्धवाली वमन भी होती हो तो अनुपान रूपसे त्रिकटु और शहद मिलाना चाहिये।

संग्रहणीके विकारमें आमावस्था दूर होनेके पश्चात् इसका अच्छा उपयोग होता है। वातप्रधान और कफप्रधान संग्रहणीके रोगीको मट्ठेपर रखकर इस औषधिका उपयोग करते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। ऐसे अनेक रोगियोंको लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

कफप्रधान संग्रहणीमें वेदना होती है परन्तु तीव्र नहीं होती। मल दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा कफ सदृश होता। इस स्थितिमें इस रससे अच्छा लाभ होता है। मलकी दुर्गन्ध कज्जली और हिंगुलके हेतुसे कम हो जाती है; तथा पित्तस्राव योग्य मात्रामें होनेसे अग्निमांद्य कम होता है। धतूरेके बीजसे अन्तःस्राव अर्थात् कफयुक्त अब्धातु स्राव नियमित होता है।

धतूरेसे वातप्रधान ग्रहणीमें क्षोभ और शूलका ह्रास होता है और अफीमके योगसे पूर्ण प्रशमन होता है। वातग्रहणीमें जो भयंकर शूल होता है उसे अफीम सत्वर दूर करती है। इस औषधिके देनेपर बस्ति देनेसे कार्य जल्दी होता है। विशेष अनुवासन बस्ति (या एरंड तैलकी पिचकारी) देनी चाहिए। ग्रहणीमें पहिले अग्निमांद्य होनेसे घृत वा अन्य प्रकारके स्नेहका उपयोग नहीं करना अच्छा माना जायगा।

अतिसार या ग्रहणीके अन्तमें क्वचित् प्रथमावस्थामें उपेक्षा करनेपर भी बार-बार दस्त होते रहते है। इस हेतुसे गुदामार्ग और संपूर्ण कोष्टकी ग्राहक शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है फिर मल भीतर नहीं रुक सकता, सत्वर

बाहर आ जाता है। इस अवस्थामें अगस्तिसूतराजका उपयोग अच्छा होता है।

प्रवाहिकामें बिना बोध बार-बार शौच हो जाना, इस तरह अधिक किंछना, अधिक बलसे किंछनेपर किसी किसीकी गुदा बाहर निकल जाना, किसी-किसी रोगीको वेदनाके हेतुसे मूर्च्छा आ जाना इत्यादि लक्षण होने पर अगस्तिसूतराज रसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। धतूरा अन्त्रस्राव और आक्षेपको कम करता है तथा अफीम वेदनाका निवारण करती है।

मूत्रमार्गमेंसे शर्करा (छोटे कंकर) या सिकता (रेत) जानेपर आशयोंपर आघात पहुँचता है; जिससे शूल उत्पन्न होता है; यह शूल कितनेही रोगियों में अति भयंकर होता है। सिकता या शर्कराका विद्रावण होजाय या इनको उत्पत्ति बिल्कुल न हो और उत्पन्न शर्करासिकता मूत्रमार्गमेंसे सरलतापूर्वक निकल जाय इस तरहकी औषध योजना करनी चाहिये। परन्तु ऐसी चिकित्सामें समय अधिक लगता है और शूलकी त्रासदायक वेदना हो रही है अतः पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्णं वा बलवन्तमुपद्रवम्, इस न्यायानुसार बलमान् उपद्रव को पहिले जीतना चाहिये। अतः शूल शामक चिकित्सा तत्काल करनी चाहिये। इस स्थानपर अगस्तिसूतराज रसको मूत्रल अनुपानके साथ देना चाहिये। उशीरासव, चन्दनासव, सारिवासव या अरविन्दासव यह आसव कल्प अनुपानरूपसे विशेष अनुकूल रहता है। अगस्तिसूतराजसे स्तम्भन होकर मूत्रका परिमाण कम होनेकी संभावना है। इसी हेतुसे मूत्रल अनुपान की योजनाकी जाती है।

यकृद्का पित्त अधिक गाढ़ा हो जानेसे पित्ताशयमें अश्मरी (पथरी) बन जाती है। कभी गोल बड़ी एक अश्मरी होती है; कभी-कभी २-५ या १०००-२००० या इससे अधिक बाजरीके कण सदृश होती है। इनमेंसे कोई कण जब पित्तनलिकामें होकर ग्रहणीमें जानेका प्रयत्न करता है, तब शूल की उत्पत्ति होती है। यह शूल वातप्रधान होता है। इसका मूल कारण पित्तस्रावकी न्यूनता है। इस हेतुसे पित्त शुष्क होकर जम जाता है। चिकित्सा कारणानुरोधसे करनी चाहिये। अर्थात् वस्तु स्थितिका परिवर्त्तन कर पित्तको सम्यक् गुणयुक्त बनाना चाहिये। यह कार्य ताम्रप्रधान औषधिसे होता है। ताम्रभस्म करेलेके रस या कुटकीके साथ दी जाती है अथवा सूतशेखर दिया जाता है। परन्तु कभी शूल इतना भयंकर होता है कि पहिले उपद्रव दूर करनेकी चेष्टा करनी पड़ती है, ऐसे समयपर शूल-जनित वेदनाको शमन करनेके लिये अगस्तिसूतराज रस अति उपयोगी औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—इस औषधिमें अफीमका परिमाण ज्यादा है। अतः सम्हाल पूर्वक थोड़ी मात्रामें उपयोग करना चाहिये।

(४१) कनकसुन्दर रस

विधि—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध गन्धक, पीपल सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाभ और धतूरेके शुद्ध बीज सबका समभाग मिला भांग क्वाथमें ४ प्रहर खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार, मट्ठेके साथ दें।

उपयोग—कनकसुन्दर रस ज्वरातिसार, अतिसार और संग्रहणीको दूर करके अग्नि प्रदीप्त करता है।

यह रस छोटे बालकोंके लिये उत्कृष्ट औषधि है। बालकोंके दांत निकलनेके समय त्रासदायक लक्षणोंको कम करनेके लिये इस रसका उपयोग अति लाभदायक है।

दांत निकलनेके समय विशेषत: वातविकृतिजनित लक्षण उत्पन्न होते हैं। बालक डरपोक बन जाता है, बार-बार रोता रहता है और पचन-क्रिया बिगड़ जाती है। फिर इसी हेतुसे उदरमें अफारा और वमन या अतिसार होते हैं। दस्त बहुधा हरे रंगका होता है, दस्तमें दूध पानी पृथक् होते हैं, दूधके दधिकण जैसेके वैसे भासते हैं। मानसिक स्थिति अस्थिर हो जाती है। किसी तरह चैन नहीं पड़ता। बच्चा एकसे दूसरेके पास, दूसरेसे तीसरेके पास जानेका प्रयत्न करता है। धीरे-धीरे रोना, जोरसे रोना, चिल्लाना, काटना, मसूड़ोंपर अपनी मुठ्ठी जोरसे दबानेका प्रयत्न करना, निद्रानाश और इसी हेतुसे नेत्रमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्याधिपर कनकसुन्दर रसका अति उत्तम उपयोग होता है। दन्तोद्भव ज्वरमें यदि ज्वर (शारीरिक ऊष्मा) अति तीव्र न हो तो कनकसुन्दर देना चाहिये। इस रसमें रहे हुए धतूरेके बीजोंसे वात प्रकोपका शमन होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है।

ग्रहणीके विकारमें निराम अवस्था होनेपर इस रसका उपयोग होता है। जब तक कच्चे आम निकलते हों, तब तक एक दो दिन लंघन करना चाहिये फिर औषध योजना करनी चाहिये। प्रत्येक शौचके समय रक्त-मिश्रित थोड़ी आम गिरना इसके साथ उदरमें अतिशय शूल निकलना, फिर जोरसे किछनेपर कुछ अच्छे लगना, कभी-कभी शौचके लिये बैठे-बैठे देर तक किछते ही रहना, उठनेकी इच्छा न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो उस अवस्थामें अफीम सदृश स्तम्भक औषधि देनेसे अन्त्रमें रही हुई सूक्ष्म मांसपेशियोंका स्तम्भन होकर आम और मलका नि:सरण उत्तम प्रकारसे नहीं होता। आम और मलमेंसे कुछ अंश शेष रह जानेमें वह अधिक प्रबल विकारकी उत्पत्ति करता है। कनकसुन्दर देनेसे उसमें रहे हुए धतूरा और भांग वेदना शमन करते हैं. मांसपेशियोंका स्तम्भन नहीं

करते और इसके विपरीत मल निःसरणमें सहायता करते हैं। हिंगुल जन्तुघ्न गुणके हेतुसे विषकी निवृत्ति करता है। अतः यह औषधि छोटे बच्चोंकी संग्रहणीपर बडे मनुष्योंके संग्रहणी रोगकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है। बड़ी आयु वाले विशेषतः वातप्रधान प्रकृति वाले रोगियोंके लिये यह अधिक उपयोगी है इस रसका उपयोग जीर्ण रोगकी अपेक्षा नये रोगपर अधिक होता है।

अतिसारके विकारमें वातप्रधान लक्षण होनेपर इस औषधिका उत्तम उपयोग होता है। अतिसारमें अन्त्रका श्लैष्मिक कलामेंसे स्राव अधिक होता है। इस स्रावको केवल स्तम्भक औषधिके योगसे दबानेका प्रयत्न करनेपर वह अन्त्रमें रह जाता है। फिर कुछ समयमें विकृति होकर अतिसार पुनः बढ़ जाता है। इस हेतुसे इस रोगमें केवल स्तम्भक औषधि न देकर श्लैष्मिक कलामेंसे उत्पन्न स्रावकी अधिकताको कम करने वाली औषधि देनी चाहिये। धतूरा इस स्रावको नियमित बनाता है। अतः धतूरा मिश्रित औषधि कनकसुन्दर रस सम्हाल पूर्वक दिया जाता है। वातातिसार और वातकफातिसार दोनोंपर इस रसका उपयोग हुआ है।

अनेक दिनों तक अतिसार विकार चालू रहनेसे कुण्डलिका (Sigmoid Colon) और गुदवलिका (Rectum) की श्लैष्मिक कलामेंसे एक प्रकारका पूय सदृश मलिन स्राव मलके साथ होने लगता है। अन्त्रमें मल का दबाव होनेपर यह स्राव अधिकाधिक होता जाता है। ऐसी परिस्थिति में बेलफलोंके क्वाथके साथ कनकसुन्दर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

वातवर्द्धक पदार्थ अधिक खानेसे विकृत अन्न रसकी उत्पत्ति होती है। फिर अतिसार हो जाता है। इस अतिसारमें ज्वर भी रहता है। एवं बार-बार डकार आना और उदरमें अफारा आदि लक्षण हों तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

आमाशय बिल्कुल शिथिल हो जानेपर रसमें पाचक पित्तकी उत्पत्ति ठीक नहीं होती। इस हेतुसे अन्न पचन भी ठीक नहीं होता। अग्निमांद्य हो जाता है। शनैः-शनैः परिणाम सम्पूर्ण पचन-संस्थानपर होकर सब प्रकार के पाचक पित्त (आमाशय, पित्ताशय, अन्त्र और अन्न्याशयमेंसे निःसृत पित्त) सम्यक् उत्पन्न नहीं होते। पचनसंस्थान विकृत हो जाता है। इस तरह अग्निमांद्यसे अतिसारका प्रारम्भ हो जाता है। इसमें दुर्गन्धयुक्त बड़े-बड़े दस्त होते हैं। इस विकारमें कनकसुन्दर अमूल्य औषधि हैं।

(औ० गु० ध० शा०)

अतिसार, ग्रहणी रोगमें बार-बार किछते रहनेपर गुदभ्रंश हो जाता है। किसीको गुदस्थानसे शूल भी निकलता है, उसपर यह कनकसुन्दर, पंचामृत पर्पटी और सौंफके चूर्णके साथ दिनमें २ समय भोजनके बीचमें

देनेसे और मठ्ठा पिलानेसे विकार थोड़े ही समयमें शमन हो जाता है। बाह्य उपचार रूपसे भातमें घी डालकर सेक करने और माजूफलको शहद में मिलाकर लेप करनेपर सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(४२) ग्रहणीकपाट रस

विधि—शुद्ध पारा २ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध वच्छनाभ १ भाग, शुद्ध अफीम ४ भाग, कौड़ी भस्म ७ भाग, कालीमिर्च ८ भाग और धतूरेके शुद्ध बीज २० भाग लें। सबको यथाविधि मिलाकर खरल करें। फिर पोस्तडोडेके क्वाथकी ३ भावनायें देकर एक-एक रत्तीकी गोलियां बनावें। मूलग्रन्थमें भावना देनेको नहीं लिखा, हमने अनुकूल समझकर बढ़ाया है। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ मे २ रत्ती दिनमें ३ समय, जीरेका चूर्ण ३ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चटावें अथवा मठ्ठेके साथ देवें।

उपयोग—ग्रहणीकपाट रस उग्र संग्रहणी, भयंकर अतिसार और मन्दाग्निका दूर करता है और कच्ची आमका पाचन करता है।

यह रस तीव्र वेदनायुक्त संग्रहणी रोगमें लाभदायक है। ज्वर, मुखपाक, दाह, उदरपीड़ा होकर बार-बार दस्त आना, गुदामें अति जलन, गुदा बाहर निकलना, आम और रक्तमिश्रित मल थोड़ा-थोड़ा बार-बार शूल सहित निकलना आदि लक्षण होनेपर यह रस विशेष लाभदायक है। इस रससे आमका पचन होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, शोथ दूर होता है और थोड़े ही दिनोंमें संग्रहणी रोगका शमन होता है। इस रसमें धतूरेका परिमाण अधिक है जिससे ग्रहणीकी पिच्छिल त्वचामेंसे जो अब्धातुस्राव होता है वह नियमित बनता है। अफीममें स्तम्भक और वेदना शामक गुण होने से बार-बार शौच जाना, शूल होना, इत्यादि विकार शीघ्र बन्द हो जाते हैं। थोडे दिनों तक नियमपूर्वक ग्रहणी कपाटके सेवनसे संग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। वात संग्रहणी, पित्त संग्रहणी, कफप्रधान संग्रहणी, रक्त और पूयमय संग्रहणी, इन प्रकारके नये रोगोंमें यह रस अच्छा काम देता है।

सूचना—इस रसमें अफीम मिली है। अतः रोगारम्भमें जब तक आम दस्त हों, तब तक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, हरड़, अभ्रकभस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागेका फूला (मतान्तरमें काच लवण), मोचरस, अतीस, बच और शुद्ध भांग इन ११ औषधियोंको समभाग मिलाकर १२ घण्टे जम्भीरी नींबूके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती, दिनमें ३ बार, शम्बूक भस्म, घी और शहदके

साथ या मठ्ठेके साथ दें। बालकोंको मात्रा आधसे १ रत्ती तक दें।

उपयोग--यह रस नये संग्रहणी रोगपर निर्भय और अति हितावह है। इस रोगमें कज्जली कल्प, दरद कज्जली कल्प और दरद कल्प (हिंगुल प्रधान औषधि), ये तीनों विकारभेदसे प्रयोजित होते हैं। केवल अन्त्रमें दोष होनेपर कज्जली कल्प, आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानोंमें विकृति होनेपर दरद कज्जली कल्प तथा केवल आमाशयमें दोषदुष्टि होनेपर दरद कल्पका प्रयोग करना चाहिये।

यह रस विशेषत: बालकोंको अधिक अधिक अनुकूल रहता है। एवं बड़ी आयु वालोंको भी दिया जाता है। जब दस्त सफेद रङ्गके, अपक्व अन्नयुक्त, सफेद गाढ़े और झाग वाले आम मिश्रित, किंचित् रक्तयुक्त और योग्य रचना रहित हो, शौच कम समय जाना पड़ता हो परन्तु प्रत्येक समय मलकी मात्रा अधिक हो, शौच होनेपर त्रास होना, कुछ प्रवाहण, विशेषत: मालूम हुए बिना शौच हो जाना या अकस्मात् शौच होना, शौचके साथ वान्तिमें अपक्व और खट्टा दुर्गन्धयुक्त अन्न गिरना इनके अतिरिक्त अधिक शौच होनेसे ज्वर आना आदि लक्षण होनेपर ग्रहणीकपाट देना चाहिये।

बड़ी आयु वालेको मानसिक आघात या शोकसे उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोगपर ग्रहणीकपाट रसका अच्छा उपयोग होता है। शोकोत्पन्न और मनोव्याघात जन्य विकार विशेषतः दुश्चिकित्स्य माने गये हैं। इन विकारोंमें मनोदेश अधिक प्रक्षुब्ध हो जाता है। इस हेतुसे शरीरमें व्याधि उत्पन्न हो जाती है। इस तरहके पीड़ित व्यक्तिको किसी भी स्थानमें चैन नहीं पड़ता। एक ही विषय बार-बार मनमें आता रहता है, उसी विषय का चिन्तन-सा बना रहता है। इसी हेतुसे अन्य इन्द्रियोंका व्यापार मन्द हो जाता है, और वात धातुमें क्षोभ उत्पन्न होता है। फिर पचनेन्द्रिय संस्थान विकृत होता है। इस विकारपर मनोदेशपर लाभदायक, अभ्रक-युक्त पाचक और अन्त्रप्रदीपक औषधिकी आवश्यकता है। यह कार्य इस रससे अत्युत्तम होता है।

राजयक्ष्मा रोगमें उपद्रव रूपसे उत्पन्न अतिसार या ग्रहणी विकार अधिक भयंकर है। इस विकारमें बड़ी आंत बिल्कुल शिथिल हो जाती है और पचनक्रिया मन्द हो जाती है। फिर सफेद रंगके आम मिश्रित दस्त बिना बोध होते रहते हैं, इस विकारपर ग्रहणीकपाट हितकारक है।

कितने ही समय ग्रहणी रोग जीर्ण हो जानेपर या नूतन ग्रहणी रोगके साथ श्वास रूप उपद्रव हो जाता है। इस श्वासपर भी ग्रहणीकपाटका उत्तम उपयोग होता है।

ग्रहणीकपाटमें कज्जली कीटाणुनाशक, रसायन और योगवाही है। अतीस शक्तिवर्द्धक, यकृत्के पित्तका स्राव कराने वाली, पाचक और

ज्वरघ्न है। अभ्रकभस्म शक्तिवर्द्धक, रसायन, मनोदेशदुष्टिनाशक और क्षय रोगमें हितकर है। तीनों क्षार पाचक और यकृदुत्तेजक है, मोचरस उपलेपक, स्तम्भक और संग्राही है। भाँग संग्राही, दीपक और पाचक है। जम्भीर रस पाचक और अग्निप्रदीपक है। हरड़ दीपन, पाचन और रसायन है। वच आमशूलघ्न, मनोदोषनाशक और आक्षेपहर है।

(औ० गु० ध० शा०)

(४३) दुग्ध वटी

विधि—शुद्ध वच्छनाभ १२ रत्ती, शुद्ध अफीम १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और अभ्रक भस्म ६० रत्ती लें। सबको मिला बकरीके दूधमें १ दिन खरलकर ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ या ३ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—इस औषधिके सेवनसे अनेक प्रकारके शोथरोग, शोथयुक्त संग्रहणी, अतिसार, पेचिश, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु आदि रोग दूर होते हैं। जिस संग्रहणीके रोगीको सूजन और बुखार रहता हो और मठ्ठा अनुकूल न रहता हो, उसके लिये यह औषधि हितकर है। इसके सेवनके समयमें केवल बकरीके दूधपर रहने तथा नमक और जल न लेनेसे शोथसह संग्रहणी थोड़े ही समयमें दूर होती है।

सूचना—मलावरोध होकर दूषित मल संगृहीत न होजाय इस बातकी पूर्ण सम्हाल रखें। निर्बल आँतोंवालोंको मात्रा कम देवें।

(४४) लाही चूर्ण

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, भुनी हींग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नेत्रवाला, जायफल, लौंग, कूठ, भुना जीरा, कुलींजन, सोंठ, मिर्च, पीपल, मोचरस, बेलगिरी, कलौंजी, कालानमक, सांभर नमक, बिड़नमक, समुद्रनमक, सबको समभाग मिलावें। फिर सबको समान भुनी भाँग मिलावें। पारा गन्धककी कज्जली बनावें। फिर अभ्रक भस्म मिलाकर घोटें। काष्ठौषधियोंका सूक्ष्म कपड़छन चूर्णकर सबको मिलाकर घोट लें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ माशे। सुबह शाम जीरा, सोंठ और सेंधानमन मिले हुए गायके ताजे मठ्ठे के साथ सेवन करें।

उपयोग—यह रस वातज, कफज और आमयुक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, उदररोग, मन्दाग्नि आदिको नाशकर पचन शक्तिको बढ़ाता है; तथा संग्रहणीके ज्वर, कास, श्वास, निद्रानाश, अरुचि, निर्बलता आदि उपद्रवोंको भी दूर करके शरीर बलका रक्षण करता है।

नूतन आमयुक्त संग्रहणी ओर उदरके विविध विकारोंको दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है। यह चूर्ण पचन-क्रियाकी वृद्धि करता है। आम-

ज्वर, कास, श्वासप्रकोप, निद्रानाश, अरुचिका भी निवारण करता है। तथा शूलसह आमातिसार और रक्तातिसारका शमन करता है।

इस रसमें मुख्य औषधि भाँग है। इस हेतुसे इस चूर्णमें पित्तवर्द्धक आमपाचक, कफनाशक वातनाशक, अग्निप्रदीपक और ग्राही गुण अवस्थित हैं। यदि वातप्रकापको और कफवृद्धिजनित संग्रहणी रोगमें अग्निमांद्य हो: अथवा अधिक पक्के भोजनके सेवनसे मुंहमें अरुचि, दूषित डकार आना, उदरमें वायु भरा रहना, मलमें कच्चे आम जाना, शूल चलना, उदरमें भारीपन, बार-बार दस्त होनेपर भी मलशुद्धि न होना आदि लक्षण प्रतीत हों तो इस चूर्णके सेवनसे पचन क्रिया सबल होकर ग्रहणीरोगका निवारण हो जाता है।

आमप्रधान नूतन संग्रहणीमें तीव्रावस्था होनेपर ग्रहणीवज्रकपाट, पीयूषबल्ली या अन्य औषधि देनी चाहिये। ३-४ दिनमें तीव्रावस्था शमन हो जानेके पश्चात् रोगशमनार्थं या अग्निमांद्यको दूर करनेके लिये यह चूर्ण दिया जाय, तो लाभ पहुँचता है।

सूचना—इसके सेवनसे किसी-किसीको तृषा बढ़ जाती है एवं शक्तिसे मात्रा अधिक होनेपर मादक असर होता हैं। ऐसा होनेपर मठ्ठेका अधिक सेवन करना चाहिए, तथा औषधि मात्रा कम कर देनी चाहिये।

(४५) लघुलाही चूर्ण

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, भुना जीरा, कालानमक, सैंधानमक, भुनी हींग और विड़नमक ये सब समभाग और कूड़ाकी छाल (मतान्तरमें भुनी भाँग) सबके बराबर लें। काष्ठादि औषधियोंका बारीक चूर्ण करें। फिर कज्जली मिलाकर खरल करें।

मात्रा—२ से ३ माशे तक, दिनमें ३ बार; मठ्ठेके साथ।

उपयोग—कूड़ाछाल प्रधान यह चूर्ण नयी वातज, पित्तज और आमप्रधान संग्रहणी. शूल, अफारा, पेचिश और शूल सहित अतिसारका नाश करता है। अन्त्रकी साधारणशक्ति बढ़ाकर अन्त्रको बलवान बनाता है। रक्तातिसार और उदरशूलका शमन करता है, एवं आहारको अच्छी रीतिसे पचन कराकर मलको बांधता है।

जिसको भाँग अनुकूल न हो; अन्त्रकी धारणाशक्ति शिथिल हो जानेसे बार-बार दस्त लगते ही रहते हों, तथा उदरमें मरोड़ा भी आता हो, उसके लिये कूड़ाकी छाल वाली यह औषधि अति हितकर है।

(४६) शंख वटी

विधि—इमलीका क्षार (भस्म) ४ तोले और पांचों नमक मिलाकर ४ तोले लें। सबको २० तोले नींबूके रसमें घोल दें। पश्चात् ४ तोले शुद्ध

शंखको तपा-तपाकर बिखर जाय, तब तक उस रसमें बुझावें या शंखभस्म मिला लें। बादमें भूनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ४-४ तोले, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, और शुद्ध बच्छनाभ तीनों १-१ तोला लें। पारद-गन्धककी कज्जली करके शंखभस्मके साथ मिलावें पश्चात् अन्य औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला, ३ दिन नींबूके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ गोली। दिनमें ३ समय, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी क्षय, ग्रहणी, अजीर्ण और पंक्तिशूल आदि व्याधियोंको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करती है।

शंख वटी आयुर्वेदमें पाचन औषधियोंके भीतर एक उत्तम औषधि है। विष्टब्धाजीर्णजनित आफरा, उदरव्यथा, शूल और व्याकुलता होनेपर शंख वटीका उत्तम उपयोग होता है। अधिक भोजन कर लेनेपर उदरमें भारीपन या उदरमें वेदना होनेपर शंखवटी अति हितकर है। वातवर्द्धक या जड़ भोजन खानेपर कुछ समयके पश्चात् उदर खूब खिंचने लगता हो ऐसा भासता है, श्वास लेनेमें प्रतिबन्ध होता है, चलना फिरना तो प्रायः अशक्य हो जाता है। इस विकारपर शंखवटी देनेसे आमाशय बन्धको उत्तेजना मिलती है, एवं आमाशयमें अलसीभूत अन्नको आगे गति करानेमें सहायता मिल जाती है। इस हेतुसे उदरकी खिचाई और व्यथा कम हो जाती है। मध्यम कोष्ठ (लघु अन्त्र) के शूलमें भी यही स्थिति होती है, उसपर भी शंख वटीका अच्छा उपयोग होता है। इससे अन्त्रकी पुरःसरणक्रिया बढ़ जाती हैं, अवरोध दूर हो जाता है, और अन्नको आगे-आगे चलानेमें सुविधा हो जाती है। इस तरह शूलके हेतु नष्ट हो जानेसे शूल स्वयमेव शमन हो जाता है। लघु और बृहदन्त्रके संगम स्थानमें अपक्व अन्न संचय होकर आनाह और शूल उत्पन्न होनेपर शंखवटी का उत्तम उपयोग होता है। ये सब विष्टब्धाजीर्णकी अवस्थाऐं हैं, और यह शूल अजीर्ण जनित है।

विदग्धाजीर्णमें कण्ठमें दाह, खट्टी डकार, उदरमें जलन-भोजन करनेके पश्चात् घण्टों तक अन्न जैसाका वैसा पड़ा रहना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें शंखवटी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अपक्व आहार, विदग्धाहार जनित मूर्च्छा, अत्यधिक भोजन, विष्टम्भकारक अन्न, कच्चे या अर्द्ध पक्व भोजन, पक्के भारी भोजन, शीतल पदार्थ या दुर्गन्धयुक्त भोजनका सेवन आदि कारणोंसे अतिसार हो जाता है। यह अतिसार अन्न विषके हेतुसे होता है। इस अन्न विषसे विष्टम्भ वेदना, शिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमर अकड़ जाना, जंभाई, हाड़ फूटना, तृषा, ज्वर, छर्दि, प्रवाहिका, अरुचि, अपचन आदि विकार हो जाते हैं। इस अन्न विषसे विदाह होकर अन्त्रकी श्लैष्मिक कला विकृत होती है, और

अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर यह अब्धातु (जल) अपक्व आहारमें मिश्रित होकर बड़े-बड़े जुलाब लगते हैं। इस जुलाबके साथ उदरमें अफारा भी होता है। सारे उदरमें मन्द-मन्द वेदना होती है या शूल चलता है। ये सब अन्न विष जनित क्षोभसे होते हैं। इस अतिसारमें शंखवटी उत्तम कार्य करती है।

ग्रहणी रोगकी अति तीव्रावस्थामें इस औषधिसे अधिक लाभ नहीं होता परन्तु इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेके पहिले अग्निमाँद्य, अजीर्ण, अन्न विष संचय आदिपर इसका अच्छा उपयोग होता है। एवं ग्रहणीके तीव्र विकारमें भी कफप्रधान लक्षण और शूल होनेपर शंखवटी उत्तम लाभ-दायक है।

अग्निमांद्यमें अरुचि और शूल अधिक होनेपर शंखवटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है। परिणाम शूलमें विबन्ध, अफारा और कोष्टशूल ये लक्षण होने या अन्न आमाशयमें अधिक समय रहकर शूल उत्पन्न होनेपर शंखवटी दी जाती है।

जीर्ण बद्धकोष्ठके विकारमें लघु और बृहदन्त्रके संयोग स्थान, अन्त्र-पुच्छ, बृहदन्त्र, इन स्थानोंमें अफारा, कब्ज होकर भयंकर त्रास, शूल, घबराहट या अस्वस्थता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो शंखवटीका उत्तम उपयोग होता है।

शंखवटी वात और वातकफ दोष रस दूष्य तथा आमाशय, यकृत् प्लीहा, ग्रहणी, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र इन स्थानोंपर लाभ पहुँचाती है।

सूचना—इस वटीके अधिक उपयोगसे मुखपाक, दांतोंमें वेदना, क्वचित् अर्श और रक्त गिरना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। (औ० गु० ध० शा०)

(४७) शङ्खोदर रस

विधि—शंख भस्म ४ तोले तथा शुद्ध अफीम, जायफल और सोहागेका फूला १-१ तोला मिलाकर खरल करें। (र० यो० सा०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें ३ से ४ बार, मक्खन-मिश्री या मठ्ठेके साथ। पक्वाशयके शूलपर गुड़ और बेलके क्वाथके साथ।

उपयोग—यह रस रक्तातिसार, रक्तार्श, पक्वातिसार, भयंकर शूल-सहित पतले, पीले, लाल या नीले कष्टसाध्य अतिसार, गुदामें जलन और अनेक प्रकारके उत्कट शूल आदिको तत्काल नष्ट करता है एवं आमका पाचन करता है।

शंखोदर रसमें स्तम्भक गुणकी अपेक्षा वेदनाशामक गुण अति उपयुक्त है। इस हेतुसे इसका प्रयोग शूलसह अतिसार, तीव्र पक्वातिसार और निराम संग्रहणीमें किया जाता है। अजीर्ण विदग्ध आहार, विष, गर, कृमि आदि क्षोभक त्रासदायक निमित्त कारणोंसे उत्पन्न अतिसारमें मूल क्षोभक कारण

-को दूर करना यही इसकी उत्कृष्ट चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त कारणोंसे होने वाले पक्व अतिसार तथा आमातिसार या आमसंग्रहकी प्रथमावस्था को छोड़ शेष अवस्थामें इसका उत्तम उपयोग हुआ है। पित्त या वातप्रकोप से अन्त्र क्षोभ होकर अतिसार हुआ हो तो इसे उपयोगमें लें।

बड़े-बड़े पतले पीले और गरम-गरम जुलाब, नीले लाल रंगके दस्त, अति तृषा, क्वचित् मूर्च्छा, आमाशय आदिमें दाह, गुदाद्वारमें जलन और परिपाक शौचके समय अति जलन, रक्त गिरना और व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर मक्खन-मिश्रीके साथ इस रसका उपयोग करना चाहिये।

अरुण वर्णका झाग और झागयुक्त थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अति किंछना बार-बार शौच होना, उदरमें भयङ्कर दर्द, भयङ्कर वेगपूर्वक पेचिश होकर शौच होना तथा शौचके समय अति कष्टदायक असह्य वेदना आदि लक्षण होनेपर शंखोदर रस आशु फलप्रद है।

जिस अतिसारमें किंछ-किंछकर थोड़े-थोडे दस्त होते हों, दस्तमें विशेषतः आम और कुछ रक्त हों, गुदामार्गमें दाह, गुदापर स्पर्श भी सहन न हो ये लक्षण हों तो शंखोदर रस देना चाहिये।

यह रस वात, पित्त, ये दोष, रस, रक्त, मांस ये दूस्य, तथा यकृत्, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र इन स्थानोंपर लाभदायक है। (ओ० गु० ध० शा०)

सूचना—इस रसमें अफीम होनेसे कम परिमाणमें ही देना चाहिये। कदाचित् किसीको अफीमके नशेका असर हो तो नींबूका रस पिलावें सगर्भा स्त्रीको यह रस नहीं देना चाहिये।

(४८) जातिफलादि वटी

विधि—जायफल, सेंधानमक, शुद्ध सिंगरफ, कौड़ीभस्म, सोंठ, शुद्ध अफीम, धतूरेके शुद्ध बीज और पीपल सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। नींबूके रस, धतूरेके बीजका क्वाथ और भांगके क्वाथकी एक-एक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (वै० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली, दिनमें ३ बार, मट्ठे अथवा जलके साथ। वमनसहित अतिसारमें नींबूके रस और मिश्रीके साथ। अपचन जनित विसूचिकापर हींग और सेंधानमक मिले मट्ठेके साथ।

उपयोग—यह औषधि पक्वातिसार, निराम संग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका और शूलको दूर करती है। यह शामक, स्तम्भक और पाचक है। अजीर्ण जन्य विसूचिकासे छोटी आयु वालोंको थोड़ी मात्रामें दी जाती है। नूतन संग्रहणीमें आमानुबन्ध न हो तो इसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे अजीर्णजन्य शूल, अतिसारमें होने वाले तीव्र शूल और मध्यम कोष्ठस्थ शूल शीघ्र शमन होते हैं।

अतिसारमें बड़े-बड़े पीले रंगके जुलाब लगना, उदरमें शूल या भयंकर पीड़ा होना, पहले प्रत्येक समयपर अधिक शौच बिना त्राससे होना, फिर उदरमें दर्द अधिक होना और श्वास भर जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर जातिफलादि वटी नींबूके रस और मिश्रीके साथ या मट्ठेके साथ देनी चाहिये।

छोटे बालकोंको अजीर्ण जन्य विसूचिका या अतिसार होनेपर इस औषधिका उपयोग होता है। यदि शूल तीव्र हो, जुलाब बार-बार बड़े-बडे लगते हो, व्याकुलता आती हो, परन्तु उदरमें अधिक दोष सञ्चय न हों तो इस वटीका उपयोग करना चाहिये।

संग्रहणीमें आमानुबन्ध हो और विकार थोड़े ही दिनोंका हो तो इस औषधिका उपयोग होता है, किन्तु जीर्ण संग्रहणी और आम संग्रहणीमें इसका उपयोग नहीं होता।

विसूचिकामें दो प्रकार है—जन्तुजन्य और निर्जन्तुक। जन्तुजन्य विसूचिकामें संजीवनी वटीका उपयोग होता है। निर्जन्तुक विसूचिकामें विशेषतः अपचनसे उत्पन्न होनेपर इस जातिफलादि वटीका प्रयोग किया जाता है। आम लक्षण अर्थात् उबाक, मुंहमें पानी आना और अफारा आदि लक्षण हों तब तक यह वटी नहीं देनी चाहिये।

मध्यम कोष्ठस्थ शूल, अपचनसे उत्पन्न अतिसार या संग्रहणीमें उत्पन्न तीव्र त्रासदायक शूल ये सब विकार इस औषधिसे त्वरित प्रशमन होते हैं।

सूचना—अतिसारमें जब तक कच्चा आम गिरता हो तब तक इसका या अन्य अफीमयुक्त स्तम्भक औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(४९) हिंगुल वटी

विधि—शुद्ध सिंगरफ, कच्ची हींग, सुपारीके फूल, जावित्री और अफीम २-२ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर चार बड़े पक्के खट्टे अनारोंमें खड्डा कर औषधि भर, ऊपरसे बन्द करें। पश्चात् थोड़ा सूत लपेट, जलमें घूंदा हुआ गेहूँका आटा ऊपरमें बाटीके समान पाव इञ्च मुटाई जितना लगावें। फिर बाटीकी रीतिसे सेककर खड्डेमें दबा दें और ऊपरसे ३० सेर आरणोंकी निर्धूम कूटी हुई अग्नि डालें। खड्डेमें अनारकी बाटीपर एक-एक इञ्च धूल अथवा राख डालें। फिर ऊपर निर्धूम अग्निकी गरम राख दबावें। २ दिन बाद अग्नि बिल्कुल शान्त हो जाय तब निकाल अनार सहित औषधिको खरल करके चने बराबर गोलियां बनालें।

(पं० श्री रामनाथजी त्रिवेदी)

सूचना—अनारके ऊपरका आटा खड्डेमें दबा देना चाहिये।

खड्डेमें अनार रखनेके समय कटा हुआ भाग ऊपरकी ओर रहना चाहिये अन्यथा रस बाहर निकलकर औषधिका गुण बहुत कम हो जाता है।

मात्रा—१-१ गोली। दिनमें २ से ३ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी प्रवाहिका, उदरशूल, रक्तातिसार, पक्वातिसार, संग्रहणी, हैजा, मन्दाग्नि, निर्बलता, बहुमूत्र, वमन, धातुक्षीणता और श्वास आदि रोगोंका नाश करती है।

यह वटी स्तम्भक, पाचक और वातनाशक है। इससे लघु अन्त्र और बृहदन्त्रमें रहे हुए अब्धातुका शोषण, आमका पचन, उदरवातका निःसरण तथा अन्त्रक्षोभका शमन होता है, जिससे पक्व अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका नूतन ग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका तथा उदरशूल शमन होते हैं। पित्तविकृति और उदरमें वायु भरनेके कारण मूत्रशुद्धि न होती हो, बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आता रहता हो, ऐसा बहुमूत्र रोग भी इसके सेवनसे दूर होता है।

हैजेमें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् दो-दो घण्टेपर १-१ गोली देते रहनेसे ६-८ घण्टेमें रोग निवृत्त हो जाता है।

इस हिंगुल वटीके प्रभावसे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर वमन, अतिसार, प्यास, मूत्राघात (मूत्रोत्पत्ति प्रतिबन्ध) ये सब विकार दूर होते हैं। दीपन पाचन गुणकी प्राप्ति होती है और रोगी क्षुधाका अनुभव करता है। रोग शमन होनेके पश्चात् अति आवश्यकतापर मात्र मट्ठे या मूंगका यूष देना चाहिये।

क्वचित् उदरकृमिघ्न औषध सेवनसे विसूचिका शमन हो जानेपर उपद्रवभूत या अपचन जनित आमाशय प्रदाह होनेपर वमन होता रहता है। उस वमनको दूर करनेके लिए यह हिंगुल वटी जलके साथ दिनमें ३-४ बार आध-आध या १-१ गोली दी जाती है। आवश्यकता अनुसार काली मुनक्काका जल, बड़ी इलायची या नींबूकी सिकंजी दे सकते हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें ऋतु परिवर्तनसे उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग कभी-कभी उग्र बन जाते हैं। इन विकारोंमें दिनमें ५०-१०० बार शौच जाना पड़ता है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा शौच होना, उदरमें अति बलपूर्वक मरोड़ा आना, प्रवाहण करनेपर कुछ आम आना या किंचित रक्तमिश्रित थोड़ा मल गिरना, घबराहट अति थकावट, बेचैनी, मुखमें जल भर जाना, उबाक आना, क्वचित् मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होनेपर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

जितने अंशमें स्तम्भनकी आवश्यकता होगी, उतने अंशमें स्तम्भन होगा। इस स्तम्भन गुणको मर्यादामें रखनेके लिए प्रयोगकारने इसके भीतर हींग मिलाई है। हींगसे वायु शुद्धि, दीपन, पाचन, दुर्गन्धहर, कृमिघ्न और कीटाणुनाशक गुणोंकी प्राप्ति होती है। इस हेतुसे पार्वतीय अतिसार, ज्वरातिसार और ऋतु परिवर्तनजनित अतिसारमें कर्पूर रसकी अपेक्षा

अनेक रोगियोंको हिंगुल वटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसे सब प्रकृति वालोंको निर्भय रूपसे दे सकते हैं।

रक्तातिसार होनेपर उदरमें मरोड़ा आकर रक्तमिश्रित मल गिरना, गुदाद्वारसे कांच निकलना, गुदाद्वारमें झनझनाहट, मूत्र थोड़ा और लाल हो जाना, नाड़ी कभी तेज, कभी क्षीण हो जाना, दस्तके समय किछना आदि लक्षण होते हैं। इसपर भी यह रस उपयोगी है। अनुपान रूपसे बेलका मुरब्बा, हरड़का मुरब्बा या कुटजावलेह या अन्य अनुकूल औषधि की योजना करनी चाहिये।

सूचना—जब तक पुराना दूषित मल निकलता हो तब तक यह या अफीम मिश्रित औषधि नहीं देनी चाहिये।

(५०) रामबाण रस

विधि—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध वच्छनाभ १ भाग, लौंग १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधा भाग लेवें। इन सबको मिला पक्की इमलीके रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (भैं० र०)

अन्य ग्रन्थकारोंने इस रसको इमलीके रसकी भावनाके पश्चात् बिजौरा, सन्तरा, अनार, आकके फूल और अदरक इन सबके रसमें १-१ दिन खरल करनेका विधान किया है। इस तरह ६ औषधियोंकी भावना देनेसे यह रस विशेष लाभदायक बनता है। हम इसी तरह तैयार करा उपयोगमें लेते हैं।

इस रसको कफशमनार्थ अदरकके रसमें, वातशमनार्थ निर्गुण्डीके रसमें, पित्तशमनार्थ धनियेके हिममें, श्वासपर त्रिकटु और वासा स्वरसके साथ, उदर रोगमें सोंठ, सैंधानमक और हरड़के साथ, शोथपर पुनर्नवा क्वाथमें, पाण्डु रोगपर गोमूत्र या त्रिकटु और त्रिफलाके क्वाथमें, क्षयपर शहदमें, विषम वातवेदना और सम्पूर्ण वातविकारमें एरण्ड तैलके साथ देना चाहिये।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें ३ बार, मट्ठे या जलसे दें।

उपयोग—रामबाण रस उत्तम दीपन और ग्राही औषध है। नयी आम-संग्रहणी, अजीर्णजन्य अतिसार, आमवात, मन्दाग्नि, श्वास, कास, ज्वर, वमन, जुकाम तथा कृमि रोगका नाश करता है। यह रस कोष्ठस्थ अब्धातु का शोधन करता है, दूषित अंशको मूत्र और प्रस्वेद द्वारा निकाल देता है तथा पाचनक्रिया बढ़ाता है जिससे आमजनित विविध रोग नष्ट हो जाते हैं।

यह रस विशेषतः वातज विकृति, कफज विकृति और वातकफज विकारोंपर लाभदायक है। पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये

जब आमाशयके पित्तका स्राव कम होकर अग्नि मन्द हो जाती हैं तब अपचन होता है, आमकी उत्पत्ति होने लगती है, बार-बार थोड़ा दस्त लगना, उदरमें भारीपन बना रहना, उबाक तथा कभी जुकाम हो जाना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर इस रसका सेवन लाभदायक है। इसके सेवनसे आमाशयका पित्तस्राव बढ़ जाता है जिससे अग्निमान्द्य दूर होकर सब विकार शमन हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें दोपरहको अधिक फिरने, बिगड़े हुए फल, दूषित अन्न या बासी भोजन करनेपर, अपचन होकर अतिसार हो जाता है। बार-बार दस्त लगना, व्याकुलता, तृषा, कण्ठशोष, अरुचि, किसी-किसीको जुकाम भी हो जाना और हाथ पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर रामबाण रसका उपयोग बहुत अच्छा होता है।

यदि अपचन होनेसे ज्वरोत्पत्ति हुई हो या अग्नि मन्द होनेसे निर्बलता आकर श्वासरोग हो गया हो अथवा आम और कफकी वृद्धि होकर कास रोगकी प्राप्ति हुई हो तो उन सबका मूल कारण (अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण) दूर होनेसे ये नष्ट जाते हैं।

(५१) सिद्धप्राणेश्वर रस

विधि—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म तीनों ४-४ तोले, सज्जीक्षार, सोहागेका फूला, जवाखार, सैंधानमक, सांभरनमक, समुद्रनमक, बिडनमक, कालानमक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, इन्द्रयव, जीरा, कालाजीरा, चित्रकमूल, अजवायन, भूनी हींग, बायविडंग, सोया इन २२ औषधियोंको १-१ तोला लें। पहले कज्जलीकर भस्म मिलावें पश्चात् काष्ठादि औषधियोंका चूर्ण मिला ६ घण्टे खरलकर लेवें।

मात्रा—२ से ६ रत्ती तक। दिनमें ३ समय नागरबेलके पानके साथ देकर ऊपर ५-१० तोला पानी पिलावें।

उपयोग—यह रसायन ज्वरातिसार, अतिसार, ज्वर, त्रिदोषज व्याधि ग्रहणी, रक्तविकार, वातरोग, शूल और परिणाम शूल इन सब विकारोंको नष्ट करता है। विशेष गुण वर्णन प्राणेश्वर रस र० तं० द्वितीय खण्ड में किया है।

(५२) नित्योदित रस

विधि—रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध बच्छनाभ सब समभाग और सबके बराबर भिलावा मिला जमीकन्दके रसमें ३ दिन तक खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।
(र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें दो बार, घी लगाकर निगलें। ऊपर

दहीका मठ्ठा बनाकर पिलावें। कब्ज वालोंको आध-आध छटांक मक्खनके साथ देना विशेष लाभदायक है।

उपयोग—इस रसके सेवनसे अर्शकी सूजन, जलन, रक्त गिरना आदि सब दोष दूर होकर मस्से मुरझा जाते हैं। यह रस दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, रक्त पौष्टिक, वातहर और विषघ्न है।

अर्श रोगमें नित्योदित और अर्शःकुठार ये दो रस प्रधान है। इन दोनोंके कार्यमें कुछ अन्तर है। अर्शःकुठार आमाशय और यकृत् दोनोंकी विकृति और कठोर कोष्ठ वालेके लिये उपयोगी है, किन्तु यह नित्योदित विशेषतः यकृत्की निर्बलतासे उत्पन्न अग्निमांद्य, मलावरोध और आम-प्रकोप होनेपर तथा रक्तार्शपर विशेष प्रयुक्त होता है।

यकृत् निर्बल होनेपर आवश्यक पित्तोत्पत्ति नहीं कर सकता और आम विषका रक्तमें प्रवेश होता रहता है। फिर आलस्य, निद्रावृद्धि, तन्द्रा, व्याकुलता, मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, मलमें दुर्गन्धकी उत्पत्ति होना, मल का रंग चाहिये उतना पीला न रहना या सफेद मैला हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। एवं अन्त्रकी वातनाड़ियां निर्बल बननेपर उदरमें वायु उत्पन्न होती रहती है, किसी-किसीको उदर वायु बनी ही रहती है और अति कष्टसे थोड़ी-थोड़ी बाहर निकलती रहती है। इसके साथ कब्ज रहनेसे अर्शके मस्सेपर दबाव आता है। इस हेतुसे कठोर मलका घर्षण होनेसे बार-बार रक्तस्राव होता है, परिणाममें देहमें पाण्डुता आ जाती है, मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है, नेत्र गड्ढेमें धुस गये हो ऐसा भासता है, मूत्र बहुधा पीला हो जाता है, जिह्वापर मलकी तह जम जाती है, भोजन करनेकी रुचि नहीं रहती, मुखका स्वाद मीठा मीठा भासता है, थोड़ा चलनेकी या कार्य करनेकी इच्छा नहीं रहती इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह नित्योदित रस अमृतके सदृश उपकारक है। यदि ज्वर अधिक है तो दहीकी थोड़ी मलाईके साथ तथा मलावरोध और मन्द ज्वर होनेपर (या ज्वर न होनेपर) मक्खनके साथ देना चाहिये।

इस रसमें रससिन्दूरका मिश्रण शक्तिप्रदानार्थ किया है। अर्थात् यह हृदय और यकृत्को सबल बनाता है तथा साथमें रही हुई औषधियोंके गुणधर्मकी वृद्धि भी कराता है। गन्धक कीटाणुनाशक, विषहर और रक्त शुद्धिकर है। अभ्रक भस्म वातनाड़ी, मांस और मस्तिष्कको पोषण देती है। लोह भस्म रक्तकी वृद्धि करती है और रक्तमें लाली भी बढ़ाती है। अर्थात् रक्तमें रक्ताणु और रक्त रंग दोनोंकी वृद्धि करती है। ताम्रभस्म यकृत्को सबल बनाती है और आवश्यक पित्तस्राव कराकर आमका पचन कराती तथा उदरस्थ दुर्गन्धका भी नाश करती है। बच्छनाभ रक्त आदि धातुओंमें प्रवेशित आम विषको जलाकर ज्वरका शमन करता

है। भिलावा और जमीकन्द आमाशयकी शक्ति बढ़ाते हैं, पचनक्रियाको सुधारते हैं, उदरमें संगृहीत वायुको बाहर निकालते हैं और अन्त्रकी परिचालन क्रियाको सबल बनाते हैं। इनके अतिरिक्त घी, मक्खन या मट्ठेका सहयोग होनेपर मलको कठोर नहीं होने देते तथा रक्तार्शमें गिरने वाले रक्तका अवरोध कराते हैं।

सूचना—रस निकालने, खरल करने और गोलियां बांधनेके समय हाथ पर घी लगाना चाहिये।

(५३) अर्शःकुठार रस

विधि—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ३-३ भाग, बेलगिरी, चित्रकमूल, कलिहारी, सोंठ, मिर्च, पीपल, पित्तपापड़ा और दन्तीमूल १-१ भाग, सोहागेका फूला, जवाखार, सेंधानमक ५-५ भाग सबको मिला खरल करके ३२ भाग गोमूत्रमें पाचन करें। फिर थूहरका दूध ३२ भाग डाल मन्दाग्निपर पकाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली २१ दिन तक सुबह कुटजावलेह, गुलकन्द अथवा जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारकी बवासीर–रक्तार्श, वातार्श आदिको छेदन करनेमें कुल्हाड़ीके समान है। इसके सेवनसे मलशुद्धि बराबर होती रहती है, पाचनशक्ति सबल बनती है और सेवनके आरम्भसे दाहका शमन होता है।

अर्श रोगमें विशेषत: अग्नि मन्द हो जाती है उदरमें वायुकी उत्पत्ति होती है, सरलतासे शौच शुद्धि नहीं होती या मलावरोध बना रहता है। यकृत् निर्बल हो जानेसे पित्ताशयमेंसे पित्तस्राव कम होता है तथा अरुचि, व्याकुलता और निर्बलता आदि लक्षण भी न्यूनाधिक अंशमें प्रायः सभी अर्श रोगियोंको होते हैं। इनके अतिरिक्त वातज अर्शमें कष्ट या शूलसह दस्त होना, पित्तज अर्शमें गुदपाक, दाह, तृषा और रक्तस्रावसह दस्त होना और कफज अर्शमें उबाक, मस्तिष्कमें भारीपन, निस्तेजमुख मण्डल, आम और कफवृद्धि, मांसके धोवन सदृश मल गिरना आदि लक्षण भी उपस्थित होते हैं। रक्तज अर्श होनेपर गुदस्थानपर तीव्र पीड़ा होती है और मल शुष्क हो जानेपर गरम-गरम रक्तस्राव होता है। इनके अतिरिक्त मिश्रित प्रकोपज अर्शमें मिश्रित लक्षण भासते हैं। इन सब प्रकारोंपर अर्शकुठार रस लाभ पहुँचाता है।

इस प्रयोगमें पारद, गन्धक योगबाही और कीटाणुनाशक है। लोहभस्म रक्तके रक्ताणुओंको रक्तके भीतर रहें हुए लाल रंग (Haemoglobin) को बढ़ाता है तथा शक्ति प्रदान करता है। अभ्रक भस्म हृदय-

पौष्टिक और मस्तिष्क पौष्टिक है । त्रिकटु और चित्रकमूल यकृत्के बलको बढ़ानें वाले और अग्निप्रदीपक है । कलिहारी आमपाचक, कीटाणुनाशक और अन्त्र-बलवर्द्धक है बेलगिरी सारक, शिथिल होनेपर अन्त्रका आकुञ्चन (बलवर्द्धक) और दाहशामक है । पित्तपापड़ा आमपाचक, विषहर और कीटाणुनाशक है । दन्तीमूल, थूहरका दूध और गोमूत्र विषहर, आमपाचक, दीपन और मल शुद्धिकर है । सोहागेका फूला, जवाखार और सैंधानमक आमविषोत्पत्तिरोधक और आमपाचक हैं ।

रक्तार्श होनेपर अनुपान कुटजावलेह और तक्र देना चाहिये । मलावरोध होनेपर गुलकन्द, मुनक्का, हरड़का मुरब्बा या ताजा मट्ठा हितावह है । रोग जीर्ण होनेपर यदि विशेष लक्षण कोई प्रतीत न हों तो केवल मट्ठे या जलके साथ अर्शःकुठार रस दिया जाता है ।

(५४) जातिफलादि वटी (अर्श)

विधि—जायफल, लौंग, पीपल, सैंधानमक, सोंठ, धतूरेके शुद्ध बीज, हिंगुल और सोहागेका फूला समभाग मिला जम्भीरी नींबूके रसमें १२ घण्टे खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (र० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार, ६ माशे तिल और १ तोला मक्खन या मट्ठेके साथ या जलके साथ देवें ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे बवासीरका खून गिरना और जलन दूर होते हैं, मलशुद्धि होने लगती है, तथा पचन-क्रिया बलवान बनती है । कुछ दिनों तक इसका सेवन पथ्यपालनसह करते रहनेसे मस्से मुरझा जाते हैं ।

अर्श रोग प्रायः मलावरोग होने, अपथ्य और अधिक मिर्च-मसालोंका सेवन करने और उदरमें अधिक वात प्रकोप होनेपर होता है । अतः अर्श रोगीके मूल कारणको दूर करें तो इसे सौम्य औषधिसे रक्त स्तम्भन हो जाता है । यह वटी उदरस्थ दुर्गन्ध और उग्रताको दूर करती है । अन्त्र-प्रदाहको शान्त करती है तथा पचन-क्रियाको बल प्रदान करती है । यह बिल्कुल निर्भय औषधि है । इसका प्रयोग सब प्रकृतिके मनुष्योंपर सब ऋतुओंमें हो सकता है ।

सूचना—मलावरोध हो तो उसे दूर करना चाहिए ।

(५५) बोलबद्ध रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, गिलोय सत्व तीनों १-१ भाग और बीजाबोल (या हीरा दोखी गोंद) ३ भाग मिला, सेमलके रस या सेमलकी छालके क्वाथमें ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बांधें । (नि. र.)

मात्रा—२ से ३ गोली । मक्खन-मिश्री या शहदके साथ ।

उपयोग—बोलबद्ध रस रक्तज अर्श, पित्तज अर्श, पित्तज विद्रधि, भगंदर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और वातरक्तको दूर करता है ।

इस औषधिके सेवनसे नाक, मुँह, गुदा या योनिमेंसे गिरता हुआ रक्त सत्वर बन्द हो जाता है।

बोलबद्ध रस शीत वीर्य और रक्तस्तम्भक है। रक्तवाहिनियों और गर्भाशयको संकुचित और बलवान बनाता है। गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक रोगोंमें शामक और कोथ प्रशमन (सड़ते हुए भागका संरक्षण) करता है। प्रसवके पश्चात् या मासिकधर्ममें अधिक रक्त जाने या अन्य कारणसे उत्पन्न श्वेत प्रदरमें बोलबद्ध रसका अच्छा उपयोग होता है। इससे गर्भाशयकी शिथिलता दूर होती है। यदि जीर्ण क्षोभ हो तो वह भी शमन हो जाता है इसी हेतुसे गर्भाशय-मुख या योनि-मार्गमें से होनें वाला श्लैष्मिक स्राव (श्वेत प्रदर) बन्द हो जाता है। यह रसायन केवल जल सदृश स्रावमें उपयोगी होता है। प्रदरका स्राव पीले रंगका हो या दुर्गन्धयुक्त हो तो इससे लाभ नहीं होता। इस रससे गर्भाशय-संकोचमें सहायता मिल जाती है। इस हेतुसे प्रसवके पश्चात् भी प्रदरयुक्त गर्भाशय कोष्ठशूलमें इसका उपयोग किया जाता है एवं गर्भाशयके अन्य प्रकारके विकारमें यदि गर्भाशयपर शामक असर पहुँचानेकी आवश्यकता हो तो बोलबद्ध प्रयुक्त किया जाता है।

प्रदरका विकार दीर्घकालके अपचनसे उत्पन्न होता है। थोड़ा अधिक भोजन करने या कुछ जड़ पदार्थ खानेपर अपचन होकर प्रदर बढ़ जाता हो तथा मुख, जिह्वा और मसूड़ोंमें व्यथा या पकजाने सदृश भासना, मुखपाक क्वचित् पतले दस्त अधिक होना और उदरमें अफारा आदि लक्षण हों तो प्रदरके शमनार्थं बोलबद्ध रस अच्छा उपयोगी है।

प्रदर होनेपर भी बार-बार मूत्रमें जलन, मूत्र लाल या पीला होना आदि लक्षण हों तो बोलबद्धका उत्तम उपयोग होता है। इससे मूत्रकी उत्पत्ति अधिक होती हैं, उसका रंग सुधरता है और प्रदरका विकार भी कम हो जाता है।

वृद्धावस्थामें गर्भाशयकी शिथिलता या गर्भाशय मुखके विकारके हेतुसे श्वेत या रक्तप्रदर होना, साथ-साथ श्वास या कास हो तो बोलबद्ध उत्तम औषध है। इसके योगसे कफ छूटकर पतला हो जाता है तथा उसमें दुर्गन्ध कम हो जाती है। श्वास, कासमें अभ्रककी अपेक्षा बोलबद्ध रस विशेष उपयुक्त है। तीव्र वेग शमन होनेपर फिर श्वासको जड़से नष्ट करनेके लिये अभ्रक भस्म देना हितकारक है।

जीर्ण कासमें दुर्गन्ध युक्त, चिपचिपा सफेद कफ होनेपर बोलबद्ध रस अच्छा लाभदायक है। इस औषधिसे कफ छूटता है, पतला होता है और दुर्गन्ध कम होती है।

जीर्ण प्रदर, जीर्ण अजीर्ण रोग, यकृत् सम्यक् कार्यक्षम न होना, त्वचा

पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकायें होना, मुँह फूला हुआ सा भासना, हाथ-पैरोंमें जलन, बार-बार मुँह आना, कण्ठमें रही हुई गाँठे बढ़ जाना, कुछ भी कार्य करनेकी अनिच्छा, निस्तेजता, ओज क्षीणता आदि लक्षण होनेपर बोलबद्ध रस फलप्रद औषध है।

बोलबद्ध रस प्रमेह, विशेषतः कफज प्रमेहके विकारोंमें हितकर है। इस रसमें रही हुई बीजाबोलका कार्य मूत्रेन्द्रियकी श्लैष्मिक कलापर होता है। इस हेतुसे प्रमेहमें बोलबद्ध रस लाभ पहुँचाता है, तथा यह रस स्त्रियोंके गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक विकारोंमें शामक और कोथ प्रशमनकारक गुण दर्शाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—वायु और पित्त बढाने वाली वस्तुएँ नहीं खानी चाहिये। आहारसुपाच्य मधुर और थोड़ा लेना चाहिये।

(५६) अग्निकुमार रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला और शुद्ध बच्छनाभ १-१ भाग, शङ्ख भस्म और कौड़ी भस्म २-२ भाग और कालीमिर्च ८ भाग लेकर बड़े पक्के जम्भीरी नींबूके रसमें ७ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली, दिनमें २ बार, जलके साथ दें।

उपयोग—यह रस अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा वातप्रकोपसे उत्पन्न अजीर्ण विसूचिका और कफ रोग दूर करता है। अपचन-जनित उदरवात, गुदमार्गमें वात संचय, गुल्म जनित वात और अन्य कोष्ठस्थ वात विकार-का प्रशमन करता है इस रसमें दीपन पाचन और वातघ्न गुण प्रधान हैं। इस हेतुसे अन्त्रमें उत्पन्न अन्नविदाह और सड़नको नष्ट करता है। आफरा, उदर शूल, आमाशय, पक्वाशय और ग्रहणीमें वायु संगृहीत होना, फिर अपान वायु न निकलनेके हेतुसे अति व्यथा होना इन सबका तत्काल शमन करता है।

यह रस उष्णवीर्य होनेसे इसका उपयोग कफप्रधान और वातप्रधान और कफवातप्रधान अजीर्णमें उत्तम होता है। पित्तजन्य अजीर्णमें अग्नि-कुमार या अन्य किसी तीक्ष्ण उष्ण आदि गुणयुक्त औषधिका सेवन न करना ही अच्छा माना जायगा। पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग न होकर विपरीत परिणामकी प्राप्ति होती है, अर्थात् पित्त अधिक प्रकुपित होकर उबाक, वमन, व्याकुलता, दाह, आदि विकार सबल बनते है।

कफज अपचनमें —"अजीर्णं तु कफादामं तत्र शोफेऽक्षिगण्डयोः" आम लक्षण अधिक होनेपर पहिले उपवास कराकर आमका पाचन कराना चाहिये पश्चात् अग्निकुमार देनेसे सत्वर लाभ होता है। वातप्रधान अजीर्ण में कब्जियत विशेष रहती है। उसपर यह रस दहीके जलके साथ देना विशेष लाभ दायक है।

यदि उदरशूल तीव्र हो तो घीको पतला कर उसके साथ अग्निकुमार देना हितकर है।

विसूचिकाके दो भेद हैं—एक अजीर्णजन्य और दूसरा कीटाणुजन्य। कीटाणुजन्य विसूचिकामें लहशुनादि वटिका, संजीवनी, विसूचिकाहर वटी आदिका उपयोग अधिक होता है। परन्तु अजीर्णजन्य विसूचिकाके लक्षण–भयंकर उदरशूल, आफरा, मुँहमें बार-बार जल भर जाना, बार-बार वमन होना, उदरमें जड़ता भासना आदि प्रतीत होनेपर अग्निकुमार देना चाहिये अजीर्णजन्य विसूचिकामें कफप्रकोप या पित्तप्रकोप होनेपर वमन होती है। इनमेंसे कफ विकृतिसे उत्पन्न लेसदार, दुर्गन्धयुक्त वमन होनेपर अग्निकुमारका अच्छा उपयोग होता है। खट्टी और गरम छर्दि होनेपर पित्तप्रकोप मानकर शंखभस्म, वराटिका भस्म, शुक्ति भस्म आदिका सेवन कराना चाहिये।

प्रतिश्याय होकर उबाक या वमन होना, बार-बार लालास्राव, इनके साथ आफरा आदि लक्षण होनेपर नागगुटिका की अपेक्षा अग्निकुमार अधिक उपयोगी है। बार-बार प्रतिश्याय होनेका स्वभाव और साथ-साथ अपचन अथवा अपचन होकर प्रतिश्याय होना इन विकारोंपर अग्निकुमार उत्तम सफल औषधि मानी गई है।

प्रतिश्यायके पश्चात् होने वाले कास रोग और प्रतिश्याय न होकर श्वासवाहिनियोंमें कफ संगृहीत होकर उत्पन्न होने वाली कास, साथ-साथ अफारा उबाक, जिह्वापर सफेद मलसंचित होना, मुँहका स्वाद नष्ट हो जाना, किसी वस्तुके स्वादका पूरा बोध न होना, चरपरे पदार्थपर विशेष प्रीति होना, स्निग्ध और स्वादु अन्न दृष्टिगोचर होनेपर मुँहमें पानी छूटना आदि लक्षण होनेपर अग्निकुमार देना चाहिये। क्योंकि ऊर्ध्वगतिशील कफविकारमें अग्निकुमार लाभदायक माना है।

गुदमार्गकी अशक्तताके हेतुसे अतिसार (बार-बार थोड़ा मल निकलना) अपानवायुका अवरोध और जड़ता आदि होते हैं। यह विकृति गुदमार्गका प्रदाह होकर स्तम्भन या धारणाशक्तिकी न्यूनता होनेपर होती है। इस गुद वातरूप विकृतिमें अग्निकुमार रसका अच्छा उपयोग होता है। कफ गुल्म और कफवातज गुल्मके कारणसे उदरमें होने वाले वातप्रधान लक्षण अग्निकुमारके सेवनके शान्त हो जाते हैं। इससे गुल्म तो दूर नहीं होता तथापि उत्पन्न वायु शमन होती है।

उदरमें आम या कफ संग्रहीत होकर बार-बार उबाक होकर कै होती है। वमनमें कुछ मीठेसे, चिकने या बेस्वादु जल या झाग निकलते है। उदरमें जड़ता प्रतीत होती है। चाहे कितनी बार वान्ति हो; फिर भी

उदरकी जड़ता कम नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही जाती है। साथ-साथ अफारा आदि लक्षण होनेपर अग्निकुमार रस देना चाहिये अग्निकुमारसे पित्तका यथोचित स्राव होकर उदरमें संगृहीत द्रव नष्ट हो जाता है। क्वचित् कफ लीन हो जानेसे वमन दिनों तक होती रहती है। ऐसा होनेपर पहले अन्तः परिमार्जन (वमन आदि कर्म) करा फिर अग्निकुमारकी योजना करनी चाहिये।

अग्निकुमारके योगसे द्विदलधान्य, मैदा और पिट्ठीके पदार्थ, पक्का भोजन आदिका पचन सरलतासे हो जाता है। इन पदार्थोंसे अपचन होनेपर बड़े-बड़े जुलाब, उदरमें वायुका संचय, गुदा बाहर निकलना आदि लक्षण होनेपर यह उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(५७) क्रव्याद् रस

विधि—शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्र भस्म १ तोला और लोह भस्म १ तोला लें। प्रथम पारद गन्धककी कज्जली करके भस्में मिलावें। फिर पर्पटी प्रकरणमें लिखी विधि अनुसार बेरकी लकड़ीके कोयलोंकी निर्धूम मन्दाग्निपर कड़ाहीमें कज्जलीका रसकर एरण्डीके पत्तोंपर डाल पर्पटी तैयार करें। शीतल होनेपर खरलकर पुनः लोहेकी कड़ाहीमें डाल, चूल्हेपर चढ़ाकर मन्दाग्नि देवें। बार-बार थोड़ा जम्भीरी नींबूका रस डालते जायँ। ५ सेर रसका शोषण करावें। फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और अम्लवेंतके क्वाथकी ५० भावनायें देवें। पश्चात् सब चूर्णके समान सोहागेका फूला सोहागेसे आधा कालानमक और सबके बराबर कालीमिर्चका चूर्ण मिला चनेके क्षारके साथ ७ दिन तक खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—२ से ४ रत्ती मट्ठा और सैंधानमकके साथ देवें।

उपयोग—क्रव्याद् रस अत्यन्त दीपन और पाचनशक्ति बढ़ाने वाला है। मध्यम कोष्ठमें सब पचनेन्द्रियोंकी शिथिलताको दूर करके उन्हें उत्तेजित करता है तथा पचनेन्द्रियके व्यापारको प्रबल बनाता है। मांस खाने वाले और जड़ान्न खाने वाले लोगोंके लिये यह रसायन अति उपयोगी है। मांसाहार या पक्के भोजनका सम्यक् पचन न होनेपर उत्पन्न होने वाले अलसक (उदरमें पत्थर सदृश पड़ा रहे और तीक्ष्ण शूल चले, ऐसा अजीर्ण), विलम्बिका (वात कफ दोषसे भोजन पत्थर सम होकर उदरमें पड़ा रहे, किन्तु तीक्ष्ण पीड़ा न रहे ऐसा अजीर्ण), विसूचिका आदि अजीर्ण विकारोंको क्रव्याद् रस मट्ठे और नमकके साथ देनेसे शीघ्र दूर करता है।

भोजनका सम्यक् पचन न होनेसे अन्न-रस ठीक तैयार नहीं होता। फिर इस रसका भी योग्य रूपान्तर न होनेसे आमोत्पत्ति होती है। इस

आमका संचय होनेपर शनैः शनैः वह विकृतावस्थाको प्राप्त होती है। इस हेतुसे विविध साम विकारोंकी उत्पत्ति होती है इनमें आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण ये तीव्र प्रकार हैं। आमसंचय अधिक होता है तो शूल, अतिसार, ग्रहणी कोष्ठबद्धता आदि व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। इन सब विकारोंके भीतर दुष्ट आमका पचन करा संशोषण कराना यह कार्य इस रसके योगसे उत्तम प्रकारसे होता है। पहिले लङ्घन करा फिर क्रव्याद् रसकी योजना करनी चाहिये।

धातु परिपोषण क्रमका व्यापार इस तरह होता है कि पूर्व धातुमेंसे परधातुयें अपने अनुकूल अंशका शोषणकर अपने स्वरूपमें मिलाती रहती हैं। पर धातुकी क्रियासे पूर्व धातुमें न्यूनता होती है, फिर वह धातु अपनेसे पूर्व रही धातुमेंसे सत्व ग्रहण करती है। इस तरह शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त और रस इन धातुओंकी क्रियायें सतत होती रहती है। इन सबका आधार योग्य आहार रसपर है। यदि इस नियमका भंग होता है तो फिर मेद आदि कोई धातुयें बढ़ती ही जाती हैं और परधातुको पोषण नहीं मिलता। यदि मेदकी वृद्धि होती है तो फिर मनुष्य स्थूल-(फूला हुआ) बनता ही जाता है। इस स्थौल्यको नष्ट करनेके लिये पूर्व धातुओंके सत्वको परधातुके योग्य बनानेका काम पचन क्रिया बढ़ानेपर ही होता है। यह पचन क्रिया बढ़ानेंका कार्य क्रव्याद् रससे उत्तम प्रकारका होता है। इस रससे धात्वन्तर्गत पचन-गुण भी बढ़ जाता है।

मध्यकोष्ठमें दीर्घकालके अजीर्ण रोगसे अन्नका कीटाँश या पुराना मल संचित होता है। इस संचयसे विविध सेन्द्रिय विष निर्माण होता है। यह विष दीर्घकालतक अन्त्रमें रह जानेपर समस्त शरीरको विकृत बनाता है। विरुद्ध, दूषित और अपथ्य आहारके योगसे इस गरविषकी उत्पत्ति होती है। बासी, बिगड़े हुए ताम्र आदि धातुके विषसे दूषित या सड़ा माँस गर (विष) अधिक बनता है। कृत्रिमविष अर्थात् निर्विष पदार्थमेंसे स्वतः विकृत होकर परिवर्तित विषको गर संज्ञा दी है। यह गर विष सदृश ही है। किम्बहुना विषकी अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। गरके लक्षण दोषानुरोधसे भिन्न-भिन्न होते हैं। जिन प्रकारके गरोंसे कफप्रधान या कफवात प्रधान लक्षण उत्पन्न होते है; उन सब पर क्रव्याद् रसका अच्छा उपयोग होता है।

अर्शमें दोष कफप्रधान हों, मस्से मोटे सफेद रंगके हों, मस्सोंमें वेदना, चिपचिपे झागदार मल, शौच जानेकी इच्छा बनी रहना आदि लक्षण होने पर क्रव्याद् रसको मट्ठेके साथ देना चाहिये।

जीर्ण अजीर्ण रोगमें विशेषतः गुरु और स्निग्ध भोजन अधिक करनेसे

उत्पन्न होने वाले अजीर्णमें आम संचय होकर बार-बार शूल चलता हो, तथा उदरमें जड़ता, उदरमें दर्द, मुंह फीका रहना और मुखमण्डल सूजा हुआ सा भासना आदि लक्षण हो, तो क्रव्याद् रसकी योजना करनी चाहिये इसके योगसे आमका पचन होकर शूल निवृत्त हो जाता है।

वातगुल्म और कफगुल्मपर यह रस उपयोगी है।

जीर्णज्वरके पश्चात् प्लीहावृद्धि और अग्निसाद ये दो लक्षण प्रबल हों ज्वरवेग कम होकर आलस्य, तन्द्रा, गुरुता, हृदयोत्क्लेश, वमन, अंग गल जाना, अरुचि आदि लक्षण हों, तथा प्लीहा कठोर, स्थिर और बड़ी हो तो क्रव्याद् रसके योगसे उत्तम लाभ पहुँच जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। हरड़के हिमके साथ या कुमारी आसवके साथ क्रव्याद् रस देना चाहिये। जीर्ण प्लीहा वृद्धिमें ही इस औषधिका उपयोग होता है। नयी प्लीहावृद्धि, ज्वर-हाथ-पैरमें जलन, सब अंग टूटना आदि लक्षण हों तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

प्लीहावृद्धिके समान यकृद्वृद्धिमें भी क्रव्याद् रसका उपयोग होता हैं। यकृद्वृद्धि जीर्ण होनेपर सब लक्षण कफभूयिष्ठ होने चाहियें।

संग्रहणीके विकारमें अन्नका पचन अतिकष्टसे होता हो, तथा मुंहमें पानी छूटना, उबाक, अरुचि, मुंहमें चिपचिपापन और मीठापन, खांसी, बार-बार लालास्राव होकर चिपचिपे झाग सदृश थूक निकलना, नाक पकजाने सदृश भासना, जुकाम-सा होना, उदर जड़ और जल भरा-सा भासना, मीठी दुर्गन्धयुक्त डकारें आना, अंग टूटना, देह अति कृश न होनेपर भी अति बल हीनता आ जाना, बलक्षय इतना कि थोड़ा चलनेमें भी दुःख हो, आम मिले कफयुक्त बार-बार दस्त लगना आदिलक्षण हों तो दीपन-पाचन औषध देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें क्रव्याद् रस उत्तम औषध है।

वाताष्ठीलाके विकारमें क्रव्याद् रसका उपयोग करना चाहिये।

श्वासका विकार कभी-कभी अपचनसे उत्पन्न होता है। उदरमें अधिकाधिक वायु भरता जाता है, बार-बार डकारें आती हैं फिर भी अफारा कम न होना, मलावरोध, कुछ थोड़ा-सा हल्का भोजन करनेपर भी उदरमें अफारा आकर कोष्ठबद्धता हो जाना, इस अवस्थामें वातघ्न और शौच शुद्धिकर औषध रूपसे क्रव्याद् उत्तम कार्य करता है अपचनके लक्षण न्यून होनेपर श्वास-विकृति भी कम हो जाती है।

जलोदर निमित्त कारण स्निग्ध भोजन या मांसाशन होनेसे अपचन उससे यकृद्वृद्धि होना, इसमें हाथ पैर और मुंहपर शोथ, मुखमण्डल अत्यन्त निस्तेज हो जाना, अङ्ग अत्यन्त गल जाना, जड़ता, सारे शरीरमें झनझनाहठ अति निद्रा, उदर अति जड़, उदर अति खिचना, उदरमें पानीका

संचय, इस हेतुसे खांसी चलना, श्वास और थोड़ा-सा चलनेमें कष्ट होना आदि लक्षण होनेपर क्रव्याद् रसका उपयोग करना चाहिये। इस रसका प्रयोग आसव-अरिष्टके साथ करना चाहिये। यदि जल अधिक संचय हो गया हो तो जलोदरारि रस ऊंटनीके दूधके साथ देना चाहिये।

सूचना—पित्तप्रधान रोगोंमें एवं पित्तप्रकृति वालोंको क्रव्याद् रसका सेवन नहीं करना चाहिये।

(५८) अग्नितुण्डी वटी

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सज्जीखार, जवाखार, चीतामूल, सैंधानमक, जीरा, अजमोद, समुद्रनमक, बायविडङ्ग, कालानमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल सब समभाग और सबके बराबर शुद्ध कुचिला लें। सबको यथाविधि मिला, नींबूके रसमें १२ घण्टे खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (शा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस मन्दाग्नि, अफारा, शूल, आमातिसार, अजीर्ण, पागल कुत्तेका विष, निर्बलता, स्वप्नदोष, हृद्रोग, वातरोग और संग्रहणी में लाभदायक है। सर्वांगशूल और परिणाम शूलका नाश करता है। एवं विशेषतः आमवातको नष्ट कर अग्नि प्रदीप्त करता है।

अग्नितुण्डी वटी शूलघ्न, पाचक और दीपक है। रसाजीर्ण आदि पुराने त्रासदायक विकारमें अति लाभदायक है। कफभूयिष्ठ विकारमें विशेषतः आमाशयस्थ कफवृद्धि है। फिर कफमें भारीपन, चिपचिपापन आदि दुर्गुण बढ़नेसे उत्पन्न कफभूयिष्ठ लक्षणोंमें विशेष उपयोगी होती है। एवं मध्यम कोष्ठगत वात दूषित होकर वायुके शीतल, चलत्व आदि गुणवृद्धि होनेपर भी यह वटी हितकर है।

रसाजीर्णके स्वभाव वाले रोगियोंको बहुधा अग्निविद्वेष होता है; सर्वदा उदरमें जड़ता और भारीपन भासते हैं, वृत्तिमें प्रसन्नता नहीं रहती, क्वचित् उदरकी जड़ता इतनी बढ़ जाती है कि, उदर पत्थर सदृश कठोर प्रतीत होता है, नेत्रदृष्टिमें न्यूनता होती है, किसी भी कार्यको करनेमें उत्साह नहीं होता, अन्नका परिपाक सम्यक् नहीं होता, डकार मधुर या भोजनके दूषित स्वादयुक्त आती रहती है, जिह्वाका स्वाद चला जाता है, जिह्वा चिपचिपी, सफेद मलयुक्त हो जाती है, भोजन कर लेनेपर तुरन्त ही वमन हो जाती है, वमनमें खाया हुआ अन्न और मधुर-सा जल निकलता है, आमाशयमें पित्त (पाचक रस (Gastric Juice) की उत्पत्ति जितनी होनी चाहिये उससे कम होती है, तथा उदरके भीतरकी पिच्छिल त्वचापर श्लेष्माका आवरण आ जाता है। ऐसी स्थितिमें अग्नितुण्डी उत्तम कार्य करती है।

यकृत् अशक्त बननेपर यकृत्मेंसे पित्तस्राव कम होता है या उस पित्तका पाचकत्व गुण न्यून होता है; इस हेतुसे अन्नका सम्यक् पचन नहीं होता; मध्यम कोष्ठमें एक प्रकारकी जड़ता भासती है; किसी-किसी समय उदरमें शूल उत्पन्न होता है एवं अपक्व दूषित अन्नका संचय हो जानेसे अतिसार भी हो जाता है, रस अतिसारमें दुर्गन्धयुक्त सफेद-सा बिखरा हुआ (अपूर्ण रचना वाला) मल बार-बार आता रहता है। ऐसे लक्षण होनेपर अग्नि-तुण्डी देनी चाहिये।

यकृत्वृद्धि विकारमें अग्नितुण्डी वटीका उपयोग होता है। परन्तु बालकोंके लिये इस औषधिका उपयोग जितना हो सके उतना कम करना चाहिये। विशेषतः कफप्रधान और कफ-वातप्रधान यकृत्वृद्धि विकारमें त्वचा, नख, नेत्र, ओष्ठ, मुख आदि श्वेत-निस्तेज हो जाते हैं, गाल फूले हुये भासते हैं, गालोंपर एक प्रकारका चिकनापन (या तेज-सा) आ जाता है, यकृत्का किनारा मोटा हो जाता है, उस भागमें सर्वत्र जड़ता आ जाती है; आमाशयमें जड़ता, पिच्छिलस्राव, उदरमें भारीपन भासना, उदरमें मन्द-मन्द शूल होना, पाचक अग्नि अति मन्द होना, जल मिले हुये बाजरी के आटे सदृश या जल मिले तिलकी खली सदृश सफेद दूषित रचना वाला मल हो जाना आदि लक्षण होते हैं। कोष्टमें शूल तीव्र नहीं होता, फिर भी वेचैनी अधिक रहती है। इस प्रकारमें विशेषता यह है कि सब लक्षणोंके साथ एक प्रकारकी स्तब्धता आ जाती है। सारे शरीरमें जड़ता भासती है। इसी तरह रोगीकी मानसिक स्थिति भी जड़-सी हो जाती है। एक प्रकारका बुद्धिमांद्य आता है, विचार शक्ति न्यून होती है। ऐसे प्रकारमें अग्नितुण्डीके उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिलें हैं। इसके साथ कुमार्या-सव, वज्रक्षार या अन्य मृदुविरेचन दिया जाय तो बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मध्यम कोष्ठ और बृहदन्त्रमें पुरःसरण क्रिया मन्द होनेपर अन्न जहांका तहां रुक जाता है, फिर उदरमें जड़ता आ जाती है। उस स्थानमें वायुके प्रेरकत्व और पित्तके उष्ण तीक्ष्ण आदि धर्मसे जो भिन्न-भिन्न रस निर्माण होते हैं, उसमें मन्दता आ जानेसे अन्नका सम्यक् परिपाक नहीं होता। कुछ न कुछ अंशमें आहार दूषित होने लगता है। परिणाममें कोष्ठमें कदाच अधिक तीव्र शूल न हो तो भी मानसिक प्रसन्नताको नष्ट करने वाला एक प्रकारका शूल निकलता रहता है, आहार आगे गति नहीं करता, जहां का तहाँ स्थिर-सा रह जाता है, फिर अफारा आकर उदर खिंचने लगता है। डकार या अधोवायुकी प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। मुंहमें बार-बार जल आना, उबाक बनी रहना आदि लक्षण होनेपर अग्नितुण्डीका उत्तम उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका विकार जीर्ण होनेपर लघु अन्त्र, शेषान्त्रक (Ilium) और उण्डुक (अन्त्रपुच्छ-Appendix) के समीपके प्रदेशमें अशक्तता आ जाती है। इस हेतुमें अर्द्ध पक्व अन्न अन्त्रमें आवश्यकताकी अपेक्षा अधिक समय तक रह जाता है, एवं पुरःसरण क्रिया सम्यक् नहीं होती। परिणाममें अन्न विकृत होने लगता है। फिर वहांपर शूल निकलता है, जड़ता भासती है, और वह स्थान फूले हुए सदृश बन जाता है। इन विकारमें अग्नितुण्डीका उपयोग किया जाता है।

उण्डुक (अन्त्रपुच्छ) प्रदाह (Appendicitis) के विविध निमित्त कारण होनेपर भी समवायी (उपादान) कारण दोष प्रकोप ही है। दोषों के विकार भेदके अनुसार लक्षणोंमें अन्तर हो जाता है। कफभूयिष्ठ या कफवात भूयिष्ठ प्रदाहमें लक्षण तीव्र नहीं होते। ज्वर और शूल मर्यादित होते हैं। अन्त्रपुच्छ अर्थात् उदरके दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश (Right Iliac region) में पत्थर बाँधने सदृश जड़ता होती है, और यह भाग ऊंचा उठ जाता है। बार-बार उबाक आकर मधुर लेसदार वमन होती है। कितने ही रोगियोंको इस स्थानमें होने वाला शूल अति तीव्र होता है। उसे सहन करना अति कठिन हो जाता है; परन्तु इसके साथ ज्वर दाह आदि लक्षण अति मर्यादित होते हैं। इस प्रकारकी व्याधिमें अग्नितुण्डीका उपयोग अप्रतिम होनेके उदाहरण मिले हैं। व्याधि जीर्ण हो जानेपर इसका उपयोग उतना नहीं होता। जीर्ण व्याधिमें आरोग्यवर्द्धिनी अधिक हितकारी है।

कफज उदर रोगमें हाथ, पैर, मुख, नेत्र, त्वचा, नख ये सब निस्तेज सफेद हो जाते हैं। उदर जड़, ऊपर अधिक उठा हुआ और स्तब्ध भासता है उदर्य्याकलामें अधिक जल संचय होनेके पहिले सारे शरीरमें शोथ इनमें भी हाथ-पैरपर अधिक और हृदयमें क्षीणता आ जाती है, तथा सब यन्त्रों का व्यापार मन्द हो जानेसे समस्त शरीर जड़-सा बन जाता है। मूत्रोत्सर्ग पहिले (स्वस्थ) के समान न होनेपर भी अच्छा होता है। मूत्रका वर्ण श्वेत या किंचित् पीत-श्वेत होता है। ऐसी स्थितिमें अग्नितुण्डीका प्रयोग किया जाता है।

पक्षाघातकी प्रारम्भिक तीव्र अवस्थाके पश्चात् व्यवहारमें लाने योग्य औषधियोंमें अग्नितुण्डीका समावेश कर सकते हैं। हाथ पैरमें पक्षाघात हो जानेपर वातवाहिनियोंका ह्रास हो जाता है, जिससे किसी पदार्थको उठा लेनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। झनझनाहट, जड़ता और भारीपन आदि लक्षण भासते हैं। इस स्थितिमें अग्नितुण्डीका उपयोग करना चाहिये।

यदि मन, मस्तिष्क (सहस्रार-Brain)वातवाहिनी, केन्द्रस्थान आदिमें विकृति हुई हो, मन विचार करनेमें असमर्थ हो गया हो, निकम्मे विचार

आते रहते हों तो स्मृतिसागर अथवा सुवर्णप्रधान औषधि-सुवर्णभूपति या मल्लचन्द्रोदय देनी चाहिये तथा वातवाहिनियां और मांस तन्तुओंमें क्षीणता अधिक हो गई हो, अर्थात् वायुकी क्षीणताके हेतुसे या वातकफका संयोग हो जानेसे वायुके प्रेरकत्व आदि धर्म न्यून होकर वातवाहिनियाँ और स्नायुओंपर अधिकार कम हो गया हो लूलापन आ गया हो तो अग्नितुण्डी वटी देनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

कभी अन्त्रपुच्छप्रदाह सामान्य होता है और गोल कृमि उस स्थानके समीप विष फैलाते हैं, तब नाभिके दाहिनी ओर अन्त्रपुच्छ स्थान ऊँचा उठा हुआ भासता है, शौच शुद्धि नहीं होती, विरेचन लेनेपर योग्य शुद्धि नहीं होती और उदरशूलमें वृद्धि होती है, बार-बार डकार आती रहती है, उदरमें वेदना रहती है। ऐसे रोगीको अग्नितुण्डी वटी आध-आध रत्ती दिनमें ६ बार निवाये जलसे देवें और शोथ स्थानपर हल्दी, पुनर्नवा, गूगल और बारहसिंगेके सींगको घिस निवायाकर दिनमें ३ बार लेप करते रहें। इस तरह उपचार करनेपर कृमि गिर जाते हैं और थोड़े ही दिनोंमें अन्त्र-प्रदाह दूर होता है।

इनके अतिरिक्त बालकोंके कृमि रोग और पागल कुत्तेके विषकी जीर्णावस्थामें इस वटीका सेवन करानेसे दोष जल जाता है और प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।

सूचना—इस वटीमें कुचिला शुद्ध मिलाया जाता है। फिर भी इसमें कुचिला आधे परिमाणमें होनेसे १५ रोजसे अधिक एक साथमें न दें फिर १ सप्ताह बाद पुनः दें। मात्रा ज्यादा न दें एवं बार-बार थोड़े थोड़े दिन छोड़ सेवन कराना विशेष हितावह माना जायगा।

(५९) कृमिमुद्गर रस

विधि—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, बायविडंग ४ तोले, शुद्ध कुचिला ५ तोले और पलासके बीज ६ तोले लेवें। सबको यथा विधि मिला शहदके साथ खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती। नागरमोथाके क्वाथके साथ, दिनमें २-३ बार देवें। इस तरह ३ दिन सेवन करा चौथे रोज जुलाब देना चाहिए।

उपयोग—कृमिमुद्गर रस अति तीव्र होनेसे कफज कृमि और पुरीषज कृमिके लिये विशेष उपयोगी है। कृमिके हेतुसे अरुचि, अपचन, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, आफरा, बार-बार हिक्का आना, छींके आना, पेटमें दर्द होना आदि लक्षण होते हों तो कृमिमुद्गरका उपयोग करना चाहिये। कफवृद्धिसे उत्पन्न कृमि, विशेषतः आमाशयमें उत्पन्न होते हैं और आमाशयमें ही रहते

है। उनको दूर करनेके लिए यह रस अति लाभदायक है। इसके सेवनसे अंतडीमें रहे हुए कृमि बाहर निकल आते हैं और अंतडी निर्दोष तथा बलवान बनजाती है।

इस रसमें कुचिला होनेसे कोष्ठशैथिल्य और इससे उत्पन्न कृमिको बाहर फेंक देनेकी अशक्ति दोनों दूर होती हैं। विशेषतः पक्वाशय और बृहदन्त्रको उत्तेजना मिलनेसे अशक्ति दूर होती है। अनेक समय कृमिघ्न औषधका इष्ट परिणाम नहीं होता, इसका कारण कोष्ठमें अवयवोंकी अक्षमता है। कोई भी औषघ अपना कार्य ठीक व्यवस्थित करने लगे, तब जीवनीय शक्तिकी सहायताकी अति आवश्यकता है। यह सहायता अन्तर अवयवोंसे न मिलने से उचित कार्य नहीं होता या ऐसे ही कहो कि, च्युत हुए कृमि फिर वहाँ ही रह जाते हैं। इस बातको लक्ष्यमें रखकर आयुर्वेदने द्रव्यसंयोग योजना अति मार्मिक रूपसे की है।

जब कृमियोगसे वातक्षीणताके लक्षण उत्पन्न हों, तब कृमिमुद्गर रस का उपयोग किया जाता है। अजमोद और बायविडंगके मिश्रणसे पलास बीजका त्रास कोष्ठमें नहीं होता, बल्कि अपना प्रभाव योग्यरूपसे दर्शा सकता है।

कफज कृमि विशेषतः आमाशयमें उत्पन्न होते हैं। ये कृमि बढ़नेपर आमाशयके सब भागोंमें फिरते रहते हैं। वे कृमि मोटे होते हैं, इनमें कोई गण्डूपद सदृश, कोई धान्यके अंकुर सदृश, कोई अति सूक्ष्म और कोई अति लम्बे होते हैं। ये कृमि सफेद, लाल, काले, नीले या भिन्न-भिन्न रंगके होते हैं। इन कृमियोंके हेतुसे उबाक, अरुचि, अन्नका पचन योग्य न होना, मुँहमें पानी आना आदि लक्षण प्रमुख रूपसे प्रतीत होते हैं। जब कृमि अति बढ़ जाते हैं या दोषवृद्धि अति होजाती है, तब सतत वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अफारा, बार बार हिक्का आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। वे कृमि देहमें दीर्घकाल तक रह जानेपर रस आदि धातुओंकी उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती फिर मनुष्य कृश हो जाता है। बार-बार जुकाम, छींकें आना, खाँसी, उदर पीड़ा आदि विकार होते रहते हैं। इस तरह जीवन अति कष्टमय बन जाता है। इन सबपर कृमिमुद्गर रसका उपयोग किया जाता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(६०) कृमिकुठार रस

विधि—कपूर ८ भाग, इन्द्रजव, त्रायमाण, अजमोद, बायबिडंग, शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाभ और नागकेशर ये ७ औषधियाँ १-१ भाग लेवें। सबको मिला भाँगरेके रसमें ६ घण्टे खरल करके सुखावें। पश्चात् सब चूर्ण के बराबर पलाश बीजका चूर्ण मिला, मूसाकर्णी और ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी) के रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली। दिनमें २ बार सत्यानाशीकी जड़के क्वाथ या शहदके साथ दें। शहदके साथ देना हो तो तीन रोज बाद जुलाब देनेसे कृमि गिर जाते हैं।

उपयोग—गोल और लम्बे कृमियोंको छोड़कर सब प्रकारके उदरकृमि, हृदय कृमि, कफज कृमि, पुरीषज कृमि इत्यादि सब जातिके कृमि, कृमि-कुठार रससे दूर होते हैं। एवं कृमिके हेतुसे उत्पन्न, उदरशूल, शीर्षशूल, पाण्डु और वातरोगका शमन हो जाता है। यदि कृमिके हेतुसे छोटे बालकों को खांसी और धनुर्वात हुए हों तो ये भी इस रससे निवृत्त होते हैं।

कृमिकी २० जातियां आयुर्वेदने कही है। इनके अतिरिक्त वर्तमानमें अनेक प्रकारके कृमियोंकी शोध हुई है। कितने ही कृमि दृश्य हैं और कितने ही अदृश्य अर्थात् अति सूक्ष्म होनेसे केवल नेत्रके योगसे प्रतीत नहीं होते। इन कृमियोंसे विविध व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। इन सब व्याधियोंमें कृमि निमित्त कारण हैं। बाहरसे देहमें आये हुए कृमियोंसे दोष प्रकोप और दोष प्रकोपसे रोग, यह परम्परा कितने ही स्थानोंमें प्रतीत होती है। इससे पृथक् कितने ही स्थानोंमें पहले मलसंचय अधिक होकर कृमिकी उत्पत्ति होती है। कफज कृमि और पुरीषज कृमि इसी तरह उत्पन्न होते हैं। कितने ही प्रकारके कृमियोंसे अतिसार, कोष्ठशूल, आक्षेप आदि होते हैं। यदि कृमि सूक्ष्म, गोल, धान्यांकुर सदृश हों तो उदरशूल, अतिसार और वातविकारकी प्राप्ति होती है। ऐसे समयपर यह कृमिकुठार रस उत्कृष्ट औषध है।

अणुवीक्षण यन्त्रसे दीखने वाले सूक्ष्म कीटाणुओंसे उत्पन्न पाण्डु और अतिसार, साथ-साथ नेत्र, भ्रू भाग, कर्णके पास तथा हाथ-पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रिय आदिपर शोथ, मुख मण्डल निस्तेज सफेद हो जाना तथा आम और रक्तमिश्रित मल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं; इनपर कृमिकुठारका उत्तम उपयोग होता है।

पक्वाशय ओर बृहदन्त्रमें पुरीषज कृमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, उबाक, नाक और सर्वांगमें खुजली, स्थान-स्थानपर शीतपित्तके समान रक्तके धब्बे हो जाना आदि लक्षण होते हैं। इस व्याधिपर कृमिकुठार रसका उपयोग करना चाहिए।

कृमिज हृद्रोग वस्तुतः हृदयविकार नहीं है, परन्तु हृत्संनिध प्रदेश (आमाशय) का है। आमाशयमें कफ संचय होनेपर या जीर्ण व्रण दीर्घ-काल तक रह जानेपर उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते हैं, जिससे उदर में अति वेदना, अम्लपित्तके सदृश खट्टी वमन, बार-बार वमन, अन्नका पचन न होना, दिन पर दिन क्षीणता बढ़ती जाना आदि लक्षण होनेपर आरम्भमें कृमिनाशार्थ कृमिकुठारका उपयोग होता है। फिर कामदुधा,

सूतशेखर आदि प्रयोजित होते हैं। यथार्थमें ये कृमि सत्वर नष्ट नहीं होते। इस हेतुसे बार-बार इस रसका उपयोग करते रहना चाहिये।

मध्यम कोष्ठमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कृमियोंसे कभी-कभी क्षयके समान लक्षण भासते हैं। सम्यक् निरीक्षण और उदर परीक्षा करनेपर निदान निर्णय होता है। कृमियोंका निर्णय होनेपर कृमिकुठार देना चाहिये। फिर विरेचन देवें। इस तरह प्रयोग करनेसे अनेक रोगियोंको जीवन-दान मिला है।

छोटे बालकोंको आक्षेप, बड़ी आयु वालेको आक्षेप, शीर्षशूल, कोष्ठ-शूल, विशेषत: अन्त्रपुच्छके पास, शूल, बद्धकोष्ठ, पाण्डुता आदि रोगोंमें कृमि कारण हो सकते हैं। कृमिका निर्णय होनेपर कृमिकुठारका उपयोग होता है।

कृमिकुठारमें कपूर और पलाश बीज होनेसे कफस्रावी गुण भी दर्शाता है। इस हेतुसे छोटे बालकोंके कास रोगमें उपयोगी है। यह औषध्र किंचित् हृद्य भी है।

सूचना—कृमिकुठार रस ज्यादा परिमाणमें देनेसे स्वेद, आलस्य, जंभाई, हाथ पैरोंमें शून्यता आदि लक्षण होते हैं। अत: मात्रा कम ही देवें।

(६१) ताप्यादि लोह

विधि—हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, बायविडंग प्रत्येक २।।-२।। तोले, नागरमोथा १।। तोले, पीपलामूल, देव-दारु, दारुहल्दी दालचीनी और चव्य १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-माक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म प्रत्येक १०-१० तोले, मण्डूर भस्म २० तोले और मिश्री ३२ तोले लें। फिर सबको यथाविधि कूट खरल करके मिला लेवें।* (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ८ रत्ती तक। दिनमें २ समय, मूलीके रस अथवा गोमूत्र के साथ।

वक्तव्य—मूल मराठी ग्रन्थकारने मात्रा १ से २ रत्ती लिखी है। किन्तु अनेक रोगियोंको इतनी कम मात्रासे लाभ नहीं पहुँचता। उनको १ माशा या इससे भी अधिक मात्रा देनी पड़ती है।

उपयोग—यह रसायन शीत ज्वरके बाद होने वाले पाण्डु, स्त्रियोंके पाण्डु रोग, हृदयको निर्बलता, थोड़ी-थोड़ी सूजन, भोजनके बाद अफारा रजोदर्शनकी अनियमितता छोटे बालकोंको मिट्टी खानेसे होने वाले पाण्डु,

* मूल ग्रन्थमें शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्यभस्म और लोहभस्ममें चारो भूलसे १-१ तोला लिखी गई है। परन्तु गुण विवेचनमें मूलग्रन्थकारने इस औषधिमें शिलाजीत ज्यादा परिमाणमें है, ऐसा लिखा है। अत: इन औषधियोंके आवश्यकतानुसार हमने १०-१० तोले लिया है।

कृमिजन्य पाण्डु, अरुचि, वमन, यकृत्के ऊपरमें होने वाले मांसार्बुद आदि रोगोंका नाश करता है। इस रसायनके योगसे रक्तकणोंकी वृद्धि होकर अभिसरण क्रिया सुधरती है और हृदय आदि इन्द्रियां बलवान् बनकर अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन शास्त्रकारोंने ताप्यादि लोहका मुख्य उपयोग पाण्डु रोगपर लिखा है। इसकी रचनापर दृष्टि ढालनेसे विदित होता है कि रक्तकी अशक्तता या रक्ताभिसरण क्रियाकी मन्दताके कारणसे उत्पन्न होने वाले रोगोंमें इसका उपयोग हो सकता है। आयुर्वेदमें जिसको पाण्डुरोग संज्ञा दी है, उस रोगकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। किसी भी रोगके प्रखर आघातसे रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंका नाश होकर रक्तमें एक प्रकारका फीकापन आता है जिससे त्वचा निस्तेज हो जाती है। मुँह और शरीरपर शोथ आ जाता है। इन लक्षणोंसे युक्त अवस्थाको पाण्डुरोग कहा है। यह अवस्था किसी-किसी समय अन्य तीव्ररोगके उपद्रव रूप भी होती है। इस प्रकारके पाण्डुमें इस औषधके योगसे रक्तकणोंकी वृद्धि और दृढ़ता होती है। अभिसरण क्रिया सुधरती है तथा हृदय आदि अभिसरण करने वाली इन्द्रियाँ सशक्त होकर रोगका नाशकर देती है।

अनेक दिनों तक शीतज्वर आ जानेके हेतुसे पाण्डुता उत्पन्न हो जाती है, उसपर ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। ऐसी अवस्थामें लोहभस्म युक्त औषधि देनेका शास्त्रकारोंने विधान किया है। आयुर्वेदमें केवल लोह भस्मकी अपेक्षा मण्डूर वटक, नवायस चूर्ण, त्रिफला लोह आदि लोह मिश्रित औषध देनेका रिवाज है और वह उत्तम है। यह ताप्यादि लोह इन औषधियोंमें से ही एक है।

तरुण स्त्रियोंको होने वाले पाण्डुरोग (हलीमक) में इस ताप्यादि लोह का उपयोग होता है। इस पाण्डुरोगमें त्वचाका रङ्ग एक प्रकारका हरा-पीला हो जाता है : स्त्री केवल अशक्त, किसी भी बातकी इच्छा न होना किसी काम करनेमें उत्साहका अभाव, बैठी ही तो बैठी ही रहनेकी इच्छा, हृदयमें घबराहट और धड़कन, हृत्स्पन्दनकी वृद्धि, हृदयकी निर्बलता, हृदयके एक खण्डमेंसे दूसरे खण्डमें रक्त जानेकी क्रियामें विकृति हो जाना, मुंह, हाथ, पैर, नेत्र, होठ और गालपर थोड़ी-सी सूजन, अपचन, थोड़ा-सा खानेपर भी पेट फूल जाना, दूषित डकार आना, यथा समय रजोदर्शन न होना इत्यादि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोहका उपयोग करना चाहिये।

छोटे बच्चों और बड़ोंमेंसे किसी-किसीको मिट्टी खानेकी आदत हो जाती है। इसमें पाण्डुरोग हो जाता है। मृद्भक्षणजन्य पाण्डु रोगमें पहिले मृद् विरेचन रस देना चाहिये। पश्चात् ताप्यादि लोह या चरकोक्त योग-राज रसका सेवन करानेसे पाण्डुरोग दूर होता है।

कृमिजन्य पाण्डुरोगमें हाथ-पैरपर शोथ, हृदयमें घबराहट, नाड़ीकी तेज गति, बेचैनी, मल मलीन-सा आम, झाग और रक्तयुक्त, शौच कम समय होवे, परन्तु प्रत्येक समय मल ज्यादा निकले, अविपाक, अरुचि, कभी-कभी वमन, उदरमें थोड़ा-थोड़ा दर्द, सफेद निस्तेज, रक्तहीन त्वचा, मानसिक अस्थिरता, उत्साह न रहना, शक्तिपात और कृशता आदि लक्षण होनेपर उदरमें विशेषतः ग्रहणी (Duodenum) में सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि हैं, ऐसा मानना चाहिये। इन कृमियोंको नष्ट करनेके लिये पहिले कृमिघ्न औषधि देनी चाहिये, पश्चात् अथवा साथ साथ ताप्यादि लोह भी देना चाहिये।

ताप्यादि लोहमें यकृत्शक्तिवर्द्धक, पाचक और अग्निप्रदीपक चित्रक आदि औषधियाँ होनेसे इसका उपयोग कामला रोगमें भली भाँति होता है। यकृत्के ऊपर उत्पन्न होने वाले मांसार्बुद (कर्कस्फोट) के कारणसे कामला रोग हुआ हो तो ताप्यादि लोह थोड़ा-बहुत काम करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारके कामलारोगमें ताप्यादि लोहका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

सर्वांगमें पीलापन, नख, मूत्र, नेत्र और त्वचा ये सब अति पीले उतने परिमाणमें कि पहने हुए कपड़े और बैठनेकी गादीकी चादर भी पीली हो जाना, मूत्रका रंग अत्यन्त पीला और गंदला, कभी-कभी गंदला होकर अति लाल भी हो जाना, शौच मैला, सफेद रंगका चिकनापन रहित, झागयुक्त पतला होना, अन्नपर अरुचि, मंदाग्नि और बलविहीनत्व आदि लक्षण होने पर ताप्यादि लोहको आमके मुरब्बेके साथ या मिश्री मिले मूलीके रसके साथ देनेसे उत्तम कार्य होता है। इसके साथ अमलतासकी फलीका गर्भ या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये।

मूल ग्रन्थोक्त गुण पाठमें 'विशेषाद्ध्वन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च' ऐसे विशेष गुणधर्म दिये हैं। अपस्मार बहुत दिनका हो जानेसे उसपर कितना उपयोग होता है, यह प्रश्न विचारणीय है। परन्तु नया विकार हो तो इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। अपस्मारका अर्थ होता है स्मृति का अपाय-तात्कालिक स्मृति नष्ट होना। यकायक झटका आकर बेहोशी, मुँहमें झाग आ जाना मुँह टेढ़ा हो जाना, वीभत्स चेष्टा, हाथ पैर और सारा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना, बार-बार नाड़ियां खिचना और प्रायः पूर्वसूचक चिह्न कुछ भी न होते हुए अकस्मात् किसी भी स्थानमें और किसी भी स्थितिमें झटका आकर पत्थर समान बेहोश होजाना आदि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोह उपयोगी है। अभ्रक भस्म मनोव्याघात जन्य अपस्मारमें और ताप्यादि लोह शारीरिक दोष विकृतिजन्य अपस्मारमें उपयोगी है।

छोटे बच्चोंके बालग्रह (धनुर्वात) में यह औषधि अच्छा कार्य करती है।

केवल इसके साथ अरण्डीका तैल अथवा अन्य मृदु विरेचन देना चाहिये। बालग्रहका पहिला तीव्र झटका आ जानेके पश्चात् इसका विशेष उपयोग, होनेके अनेक उदाहरण है। जीर्ण बालग्रह, अपचनसे उत्पन्न बालग्रह, उन्माद रोगसे पीडित माताके बालकको होने वाला बालग्रह, डरपोक क्रोधी और निर्बल मनवाली माताकी सन्तानको होवेंवाले बालग्रह इन सबपर ताप्यादि लोह सफल औषधि है। जीर्ण बालग्रह रोगमें अनुपान ब्राह्मीका रस देना चाहिये।

इस औषधिमें शिलाजीतका परिमाण अधिक होनेसे इसका उपयोग मूत्र विकारपर होता है। मूत्रमें रहे हुए अनेक प्रकारके क्षार शरीरमें संचित हो जानेसे उत्पन्न विविध विकारोंमें विशेषत: वातविकारमें उनमें भी जीर्ण वातविकारमें औषधिका अच्छा उपयोग होता है।

शिलाजीत मूत्रल, आमपाचक, रक्तदोषहर और शरीरमें संचित मूत्रके अद्‌भुत क्षारोंका वियोजन करके मूत्रद्वारा स्राव करानें वाली सेन्द्रिय औषधि है। शिलाजीत सेन्द्रिय द्रव्य होनेसे देहमें जानेके साथ तुरन्त शोषण होकर अपना कार्य करनें लगता हैं। शिलाजीतके इस गुणके हेतुसे यह कल्प (ताप्यादि लोह) जीर्ण आमवात और वातरक्त एवं इनसे उत्पन्न होनेंवाले स्नायुसंकोच अथवा वातवाहिनियोंकी शुष्कता इन विकारोंपर बहुत अच्छा काम देता है।

इसी कारणसे प्रमेह आदि रोगोंसे उत्पन्न कोथ (घटकोंका गलना Gangrene) की बिल्कुल प्रारम्भावस्थामें ताप्यादि लोहका सेवन करनें से आगे होनेंवाले सब अरिष्ट दूर हो जाते हैं, ऐसा अनुभव है। त्वचामें या त्वचाके भीतरके भागमें भयंकर जलन, कालापन, साथ-साथ सूक्ष्म ज्वर, बेचैनी, घबराहट, मानसिक अस्वस्थता, प्यास आदि लक्षण अति बढ़नेपर त्वचा बिल्कुल काली-कोलतार (डामर) के समान रंग वाली हो जाती है। ऐसे समयपर उसके घटकोंका गलना यह भी साथ-साथ बढ़ता जाता है। इस तरह कोथ रोग अत्यन्त बढ गया हो तो इस औषधिका उपयोग ज्यादा नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रारम्भ कालमें यदि इसकी योजना की हो तो रोग की वृद्धि रुक जाती है और शनैः शनैः रोग कम हो जाता है।

शरीरपर भयंकर खाज छोटी-छोटी फुन्सियाँ होना, त्वचापर काले धब्बे हो जाना, फुन्सियोंका विष फैलकर दादके समान खाज आते रहना और यह विकार कभी ज्यादा कभी कम हो जाना इनमें त्वचाका विकार होना (क्वचित् झटका भी नहीं आना) ऐसी स्थितिमें ताप्यादि लोह अच्छा उपयोगी है। किंबहुना, ऐसे त्वचा रोगोंमें गन्धक रसायनकी अपेक्षा ताप्यादि लोह ही उपयुक्त औषधि है।

आयुर्वेदमें अम्लपित्त रोगमें अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंका अर्थात् शरीरावयव विकृतिका समावेश होता है। साधारण रूपसे पित्त ज्यादा उत्पन्न होनेसे होने वाला, पित्त ज्यादा तीव्र होनेसे होने वाला, पित्तोत्पादक पिण्ड का क्षोभ होनेसे होने वाला, अन्तर व्रण होकर उदरकी आकृति बढ़ जानेसे होने वाला इस रीतिसे अम्लपित्तके अनेक प्रकार होते हैं। इनमेंसे उदरकी आकृति बढ़ जानेसे होने वाले अम्लपित्तमें सुबह वमन अवश्य करानी पड़ती है। यह विशेष लक्षण है। तथा कण्ठदाह, उदरदाह, क्वचित् उदरपीड़ा, वमन हो जानेपर अच्छा लगना आदि लक्षण हों तो ताप्यादि लोह मक्खन-मिश्रीके साथ देना चाहिये और अन्तः परिमार्जन (आमाशय शोधन) भी करना चाहिये।

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) रोग अन्त्रकी निर्बलताके कारणसे होता है। अन्न का पचन अच्छी रीतिसे न होना, मलोत्सर्ग बराबर न होना, खाये हुए भोजनका विदाह, सेन्द्रिय विष कोष्ठमें संचित होकर आम संचय होना इन कारणोंसे बद्धकोष्ठ उत्पन्न होता है। इनमेंसे वर्तमानमें अन्त्र निर्बलता और इस अन्त्र निर्बलताके कारण उसकी संचालन क्रिया कम होकर उत्पन्न मलावरोध अधिकांशमें प्रतीत होता है। अन्त्रशक्ति कम हो जानेसे किसी भी प्रकारकी विरेचन औषधिका इष्ट परिणाम नहीं होता बल्कि अनिष्ट परिणाम होता है। कारण, विरेचन औषधिसे अन्त्रशक्तिमें न्यूनता और सेन्द्रिय विषकी वृद्धि होती है। फिर आम संचय होकर अन्त्रमें निर्बलता आ जाती है। इसी कारणसे बद्धकोष्ठ निर्माण होता है। ऐसे रोगीको विरेचन देनेसे बद्धकोष्ठ बढ़नेका ही अनुभवमें आता है। इस कारणसे ऐसे रोगी को विरेचन नहीं देना चाहिये। इसके विपरीत अन्त्रको बलवान बनाकर मलोत्सर्ग कराने वाली औषधि देनी, यही श्रेयस्कर है। इस अवस्थामें ताप्यादि लोहके सेवनसे शनैः शनैः आंतें बलवान बनकर बद्धकोष्ठकी आदत कम हो जाती है। यदि यह ताप्यादि लोह देनेपर किसी समय मलावरोध हो जाय और अति आवश्यकता हो तो बस्ति देनी चाहिये, परन्तु विरेचन नहीं देना चाहिये।

किसी भी अवयवमें रक्तका दबाव बढ़नेपर उसका प्रसादन करना, यह ताप्यादि लोहमें बड़ा भारी गुण है। यह गुण शिलाजतु रौप्य और सुवर्ण-माक्षिकके कारणसे दृष्टिगोचर होता है। इस हेतुसे रक्तज मूर्च्छा, पक्षाघात और आँत्रिक सन्निपातमें होने वाले दुष्ट रक्तजन्य वातप्रकोपके शमनार्थ ताप्यादि लोह अति उपयोगी है।

पक्षाघातके बिल्कुल प्रारम्भिक एक दो दिनमें रोगी बेहोश, नेत्र लाल, ज्वर, शक्तिहीनता, हाथ-पैरोंकी शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाना, जड़ता, जिह्वाकी बोलनेकी शक्ति कम हो जाना, अङ्गका एक ओरका अर्द्ध भाग

अकस्मात् शक्तिहीन होकर काष्ठवत् हो जाना आदि लक्षणोंसे युक्त पक्षाघातमें प्रारम्भके एक-दो दिन जानेके पश्चात् रोग कुछ स्थिर हो जानेपर ताप्यादि लोहका उपयोग करना हितकर है। पक्षाघातकी इस अवस्थामें ताप्यादि लोहका उपयोग एकांगवीरकी अपेक्षा भी अच्छा होता है। परन्तु पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इस औषधिका चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। जीर्ण रोगमें भी इस औषधिका रक्तप्रसादन कार्य अनुभवमें तो आता है, फिर भी कितने ही जीर्ण रोगोंमें दोष रक्तकी अपेक्षा अन्य धातुओंमें (गहरे) चले गये होते है। इसलिए इस औषधिसे इष्ट कार्य नहीं होता।

ताप्यादि लोहका उपयोग रक्तप्रसादन गुणके कारण दुष्ट रक्तजन्य ज्वर, सूतिका ज्वर और पूयजन्य ज्वरमें आक्षेपक, झटके, तन्द्रा और मूर्च्छा इन विकारोंपर अच्छी रीतिसे होता है।

इस औषधिमें रक्तप्रसादन और बद्धकोष्ठ नाशक गुण होनेमें अर्शकी प्रारम्भिक अवस्थामें उत्पन्न मस्सोंपर इसका उपयोग उत्तम होता है। वे ही मस्से बड़े हो जानेपर या अधिक शोथ आ जानेपर बाह्य उपचार द्वारा निकाल देनेके सिवाय अन्य उपाय नहीं है।

धनुर्वात विकारमें आयुर्वेदने धनुष्कम्प, अन्तरायाम, बहिरायाम ऐसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। अभिघात (चोट), गर्भपात, सूतिकारोग, कटा हुआ घाव कुपित हो जाना इन कारणोंसे यह रोग उत्पन्न होता है। यह आयुर्वेदको मान्य है। यह रोग लगे हुए घावद्वारा एक प्रकारका जन्तुजन्य विष शरीरमें फैल जानेसे उत्पन्न होता है। इस रोगमें चिकित्सा करनेमें दो बातोंकी ओर लक्ष्य देना पड़ता है। पहिली बात यह है कि, जिस स्थान के भीतर इस प्रकारके विषाक्त कीटाणु गये हो, उस स्थानको स्वच्छ करना, दूसरी बात सारे शरीरके स्नायुओंमें फैले हुए विषको नष्ट करना। घावको स्वच्छ करके शहद मिश्रित रुईका फोहा रखनेसे प्रथम बातकी सिद्धि होती है। दूसरी बातके लिए सारी देहमें विषप्रकोप फैला हो और विषकी तीव्रता हो तो कालकूट रस लाभदायक है। इस रसका विषाक्तजन्तुओंपर निश्चित् उत्तम परिणाम होता है। परन्तु कालकूट रस अति तीव्र है और जितने परिमाणमें रक्तप्रसादक कार्य कराना चाहिये उतने अंशमें इससे नहीं होता। इस कारण तीव्रावस्था कम करनेके लिये कालकूट रसको उपयोग में लें। फिर मन्दावस्थामें रक्तप्रसादन करके रक्तको निर्विष करनें वाली औषधि देनी चाहिये। ऐसी औषधि ताप्यादि लोह है। इस ताप्यादि लोह के सेवनसे धनुर्वातके अवशेष लक्षण और विष नष्ट हो जाते हैं। यह रस कालकूट जितना उष्ण भी नहीं है।

विष प्रयोगमें पहिले विषनाशक वमन आदि प्रयोग और विषको निर्विष

करने वाले साक्षात् प्रतिविषद्वारा जीवनरक्षा करनी पड़ती है, परन्तु आगे उस विषके तीव्रत्व आदि गुणोंका लेश-अनिष्ट परिणामरूप असर भीतर रह जाता है जो अनेक दिनों तक (क्वचित् वर्षों तक) त्रास देता रहता है। उस अवस्थामें ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। इसके सेवनसे विषके लेशसे दीर्घकाल तक टिकने वाले उत्कर्षक और वृत्तिधर्म नष्ट होनेमें सहायता मिलती है। यह इस रसायनमें महत्वका गुण है।

हृदयकी अशक्तता या हृत्स्पंद विकारसे उत्पन्न कास रोगमें फुफ्फुसोंके भीतर विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुंहमें शुष्कता (क्वचित् शुष्कता इतनी बढ़ती है कि मनुष्य अत्यन्त बेचैन हो जाता है।) चाहे जितना जलपान करनेपर भी तृप्ति न होना खाँसते-खांसते पीली, कड़वी, खट्टी और गरम-गरम वमन हो जाना, वेग उत्पन्न होनेपर खूब खांसी चलना, मुंह और सर्वाङ्ग निस्तेज और पीला-सा हो जाना, बार-बार खाँसते रहनेसे मुंह विशेषतः गाल थोड़ेसे फूले हुए दीखना और घबराहट आदि लक्षण होते हैं, उसपर ताप्यादि लोह दाड़िमावलेहके साथ देना चाहिये।

क्षतक्षयमें ऊपर लिखे अनुसार वमन हो जाय ऐसी त्रासदायक खाँसी हो, बार-बार पीला, हरा, गरम, क्वचित् रक्तयुक्त कफ पड़ता हो। तथा उबाक अधिक हो तो इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

विषम ज्वरमें ज्वर आनेका प्रकार, ज्वर निकल जानेकी रीति, लक्षणों की जाति इन सबमें भूत आदिके समान बिल्कुल नियम न होना, जैसे आज थोड़ी ठण्ड लगकर बड़ी जल्दीसे ताप आना, ताप भी ज्यादा हो, दूसरे दिन ज्यादा ठण्ड लगकर ताप आना, कभी न आना, कभी अकस्मात् आ जाना ऐसी अनियमित ज्वरकी अवस्थामें वातपित्तात्मक लक्षण अधिक होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये।

आमाशय पक्वाशय, ऊर्ध्व और मध्यम बृहदन्त्रमें समान वायुका कार्य सम्यक् प्रकारसे न होनेसे बार-बार अपचन होनेकी आदत पड़ जाती है। साथ-साथ अरुचि, उबाक, उदरमें जड़ता, अन्न समीप आनेपर मुंहमें जल आ जाना आदि लक्षण अधिक हों एवं मर्यादामें या थोड़े परिमाणमें भोजन करनेपर भी पचन न होता हो तो उसी विकारपर ताप्यादि लोह अच्छा काम करता है।

कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह इन प्रमेहोंमें विशेषतः पित्त-प्रधान लक्षण होते हैं। इनपर चन्द्रप्रभा, नाग भस्म और ताप्यादि लोह उपयोगमें आते हैं। अपचनसे होने वाले या इन रोगों वाले रोगियोंको अधिकतर अपचन रहती हो, निश्चितता स्थिरता और लक्षणोंकी दृढ़ता ज्यादा न हो, लक्षणोंकी चंचलता हो तो इन प्रमेहोंमें ताप्यादि लोहका

सेवन हितकारक होता है।

रक्तकी अशक्तताके कारणसे शरीर फूलकर आया हुआ सर्वाङ्ग शोथ अर्श या अन्य मार्गमें रक्तस्राव अधिक होनेपर आया हुआ शोथ, यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, मलावरोध या मूत्रपिण्ड (वृक्क) की विकृतिसे उत्पन्न शोथ, रक्तस्राव अधिक हो जानेसे आई हुई निर्बलता और उससे उत्पन्न क्षय, विशेषत: रक्त धातुका क्षय तथा तदनन्तर उत्पन्न शोथ इन सब प्रकारोंपर ताप्यादि लोह उत्तम कार्य करता है।

संक्षेपमें ताप्यादि लोह पाण्डु, कामला, अपस्मार, बालकोंके बालग्रह, जीर्ण वात-विकार, कोथ (शरीरके घटकोंका गलना), खुजली, अम्लपित्त, मलावरोध रक्तदबाववृद्धि, वातप्रकोप, नूतन पक्षाघात, पूयजन्य ज्वर, सूतिकाज्वर, दुष्ट रक्तजन्यज्वर, धनुर्वात, जीर्ण विषप्रकोप, हृदयकी विकृति से होने वाला कासरोग, क्षतक्षय, अनियमित विषमज्वर, जीर्ण अजीर्ण रोग, पित्तप्रधान प्रमेह, शोथरोग, रक्तमें विष अथवा क्षारवृद्धि, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मूर्च्छा, त्वचारोग इत्यादिको दूर करनेमें उत्तम लाभदायक माना गया है।

ताप्यादि लोहमें रक्तप्रसादक, रक्तके रक्ताणुवर्धक, मूत्रल, बल्य, रसायन आक्षेपघ्न, पाचन और दीपन गुण हैं। इसमें सुवर्णमाक्षिक पाचन, दीपन आक्षेपघ्न पाण्डुत्वनाशक (रक्तकणवर्द्धक), बल्य और रसायन है। शिलाजीत रसायन, धातुपरिपोषण क्रममें सहायक और मेहनाशक है। रौप्य मूत्रल वृष्य और आक्षेपघ्न है मण्डूर रक्तवृद्धिकर, रक्तस्तम्भक, रक्तकणवर्द्धक और इस कारणसे धातुवर्द्धक है। चित्रक पाचक, अग्निप्रदीपक. वातनाशक और अर्शोघ्न हैं। त्रिफला रसायन, मृदुसारक और पचनेन्द्रियको शक्ति देकर पचनक्रिया बढ़ाने वाला है। त्रिकटु पाचक और अग्निप्रदीपक है। बायविडंग कृमिघ्न और पाचक है।

(औ० गु० ध० शा०)

(६२) नवायस चूर्ण

विधि—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बायविडंग और चित्रकमूल ये सब एक-एक तोला और लोहभस्म ६ तोले लेवें। सबको मिलाकर एकत्र करें।

वक्तव्य—लोहभस्मके स्थानपर लोहचूर्णको आंवलोंके १६ गुने रसमें डाल १ वर्ष पर्यन्त धूपमें रखकर सूखा लेनेपर वारितर मृदु लोहरज बन जाती है, जो विशेष निर्दोष और अधिक लाभप्रद बनती है। इस प्रकारकी लोहरज मिलानेपर मात्रा ३ रत्तीसे ८ रत्ती तक दे सकते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। घी और शहद या मट्ठेके साथ दिनमें २ बार। धीरे-धीरे मात्रा बढ़ावें। कफ अधिक हो तो अदरकके रसमें दें।

उपयोग—यह रस कामला, पाण्डु, शोथ, हृदयरोग, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मन्दाग्नि, प्रमेह, बवासीर और अरुचिको दूर करता है, तथा शक्तिवर्द्धक, अग्निप्रदीपक और पाचक है। रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि करता है, और यकृत्को शक्ति देकर उसकी क्रियाको सुधारता है।

शीतल वायुका स्पर्श, जीर्ण अपचन, सूक्ष्म ज्वर दिनों तक रह जाना इन कारणोंसे कामला उत्पन्न होनेपर नवायस रसायन उत्तम लाभदायक है इस तरह उत्पन्न कामलामें एक दो दिनके भीतर ही पूर्ण लक्षण उपस्थित हो जाते है। मंद ज्वर, अरुचि, नेत्र, हाथ-पैंर, नाखून, त्वचा और मूत्रमें अति पीलापन, बद्धकोष्ठ, शौच होनेपर सफेद-सा मल, तिलकी खलको जलमें मिलाने सदृश दस्त होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं इसपर सौम्य विरेचन अमलतासकी फलीके गर्भका क्वाथ या अन्य अनुपान देना चाहिये।

दीर्घकालस्थायी अति दुःखदायी ज्वर आ जानेके पश्चात् या अतिसार ग्रहणी या इनके समान दीर्घकाल टिकनेवाले विकार दूर होनेपर आई हुई पाण्डुतापर इस नवायसचूर्णका अच्छा उपयोग होता है। इन विकारोंमें दोष दूष्य आदिकी विकृतिको नष्टकर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेके लिये जीवनीय शक्तिको अति परिश्रम करना पड़ता है। इस हेतुसे देहमें पृथक् अवयव बिलकुल थक-जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सबके लिये शक्तिदायक औषधकी आवश्यकता रहती है। नवायस चूर्णमें इस प्रकारकी उत्तम योजना है।

अपचन, अग्निमांद्य, पाण्डुता साथ-साथ हृत्स्पंद, थोड़ा-सा चलने, बोलने या परिश्रम करनेपर हृदयमें धड़कन और घबराहट हो जाना हाथ-पैरपर शोथ, अनियमित और तीव्र वेगवती नाड़ी, मस्तिष्क और हाथ-पैरोंकी शिराओंमें रक्तकी गति बढ़नेसे रक्त स्पंदन स्पष्ट प्रतीत होना चेतना शक्ति के भीतर खिचनें सदृश भासना आदि लक्षण होनेपर नवायस चूर्णको घृत और शहदके साथ देना चाहिये।

यकृत्की क्रिया सम्यक् न होनेसे उसमें रक्तशुद्धि करनेकी क्रिया ठीक नहीं होती फिर दोष संग्रहीत होकर रक्त विकृत हो जाता है। इसका परिणाम त्वचापर होता है। त्वचापर काले:नीले धब्बे पड़ते हैं, खुजली चलती है। सूक्ष्म पिटिकाएं होती हैं। पिटिकाओंके नष्ट होनेपर उन स्थानोंमर काले मण्डल हो जाते हैं एवं मलावरोध, अग्निमांद्य, यकृत्पर कुछ शोथ आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्याधिमें नवायस चूर्णको मठ्ठेके साथ देना चाहिये।

कफज अर्शमें मस्से बहुत मोटे और लम्बे होते हैं। इनमें वेदना कम होती है। वे ऊपर उठ जाते हैं, तथा सफेद, तेजस्वी, गोल, मोटे और गाढ़े प्रतीत होते हैं, हाथको कुछ गीलेसे मालूम पड़ते हैं, ऊपरमें खुजली आती है

रोगी इन मस्सोंकों बार-बार स्पर्श करता रहता है। स्पर्श करने या खुजाने पर अच्छा मालूम पड़ता है। ये मस्से गोस्तन, कटहलकी गुठली या अंगूरके गुच्छे सदृश भासते है।

सांथलोंमें कुछ सूजन, गुदाद्वार और बस्तिमार्गका नाभि पर्यन्त भीतर आकर्षण हो रहा हो ऐसा भासना, कास, श्वास, उबाक, अरुचि, बार-बार जुकाम हो जाना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, अनेक बार मूत्रमें दाह होना, कण्ठमें जड़ता आ जाना, मस्सोंका त्रास होनेपर देहमें शीत आने सदृश भासना, अग्निमांद्य, कभी-कभी वमन, आम समान लेसदार सफेद दस्त होना, अति किंछनेपर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। मस्से फूटते नहीं मस्सोंमेंसे स्राव नहीं होता, अधिक रक्त भी नहीं गिरता, परन्तु सारे शरीर में अति निस्तेजता आ जाती है। इस प्रकारके अर्श रोगपर नवायस चूर्ण का उपयोग अच्छा होता है।

स्निग्ध भोजन करके बैठे रहने या निद्रा लेकर दिनको पूरे करना, गुड़ या गुड़की विकृतिसे बने हुए पदार्थोंका अधिक उपयोग, ईखके रस या अन्य मधुर पदार्थोंका अधिक सेवन करना इन कारणोंसे कफप्रमेह होता है। इस प्रमेहमें अनेक बार अधिक परिमाणमें मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व अनेक बार कम होता है, इसमें शहद या क्षारकी मात्रा भी कम होती है। ऐसी स्थितिमें नवायस चूर्णका उपयोग अच्छा है।

(औ० गु० ध० शा०)

यकृत् वृद्धि होनेपर अपथ्य सेवन करनेसे यकृदुदरके साथ सर्वांगशोथ उपस्थित होता है। उस रोगपर नवायस चूर्ण १-१ माशा गोमूत्र या निवाये जलके साथ दिनमें २ बार (सुबह और शामको) देने तथा भोजनकर लेने पर पुनर्नवासव, अभयारिष्ट और रोहितकारिष्ट तीनों मिलाकर ३ तोले तथा जल ३ तोले मिलाकर लवणभास्कर चूर्ण १।-१।। माशेके साथ देते रहनेसे यकृत्वृद्धि और शोथ सत्वर शमन हो जाते हैं। अधिक मूत्र शुद्धिकी आवश्यकता हो तो पुनर्नवा और गोखरू ६-६ माशेका क्वाथ बनाकर रोज सुबह नवायस चूर्णके साथ देते रहना चाहिये।

(६३) चन्द्रकला रस

विधि—शुद्ध पारा, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा शुद्ध गंधक २ तोले लेवें। सबकी कज्जली बना नागर मोथा, दाड़िमके दाने, दूर्वा-मूल, केतकीकी, कली सहदेवी, घृतकुमारी पित्तपापड़ा, मरुवा और सतावर प्रत्येकके क्वाथ या रसमें पृथक्-पृथक् क्रमशः १-१ दिन घोटें। फिर कुटकी गिलोयसत्व, पित्तपापड़ा, खस, चमेलीके पुष्प, सफेद चन्दन और सारिवा समभाग मिलाकर चूर्ण करें। पश्चात् उपर्युक्त औषधिके बराबर इस चूर्ण को मिला द्राक्षादिगणकी (द्राक्षा, दाड़िम, केला, ताड़का फल, बेलगिरी,

जामुन, आम) औषधियोंके क्वाथकी ७ भावनायें देकर गोला बनावें। सूखनेपर (पत्तोंमें लपेटकर) अनाजके ढेरमें दबा देवें। सात दिनके बाद निकाल पीस, द्राक्षादिगणके क्वाथकी भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (नि० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती। दिनमें २ बार, जीरा और मिश्रीके साथ लेवें, ऊपर दूध पीवें या गुलकन्दके साथ लेवें।

विशेष अनुपान—मूत्रमें रक्त जाता हो तो गोखरू, धमासा, धनियां आदि औषधिके हिमके साथ।

नाकसे रक्त गिरता हो तो उशीरासव या धारोष्ण दूधके साथ।

क्षय रोगकी प्रथमावस्था, ज्वर, प्यास, छातीमें दर्द और रक्तवमनमें चांदीके वर्क आध रत्ती मिलाकर दाड़िमावलेहके साथ।

रक्त प्रदरमें अशोकारिष्ट या पेठेके रसके साथ।

दाह, पेशाबमें भयंकर जलन और पेशाब लाल रंगका थोड़ा-थोड़ा होता हो तो ब्राह्मी, अनन्तमूल और पित्तपापड़ाके हिमके साथ।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दुस्तर प्रमेह, अम्लपित्त, अन्तर्दाह, बाह्यदाह, भ्रम, मूर्च्छा, रक्तकी वमन और ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। यह रसायन शीतल होनेपर भी जठराग्निको मन्द नहीं करता। एवं वातपित्तप्रकोप तथा अधोगामी और ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त रोगमें ग्रीष्म जैसी उष्ण ऋतुमें भी शान्तिदायक है।

यह चन्द्रकला रस ऐसे विविध द्रव्योंके संयोगसे तैयार हुआ है कि रक्तवाहिनीके लिये प्रसादक और स्तम्भक, दोनों कार्य करता है। मुख्य कार्य समग्र रुधिराभिसरण और रुधिरवाहिनीपर शामक और प्रसादक है। जब जब रक्तका दबाव बढ़नेसे अन्तर्दाह, बहिर्दाह और रुधिरवाहिनी मोटी होकर चक्कर, मूर्च्छा, भ्रम आदि उत्पन्न होते हैं या रक्तमें पित्तमिश्रित होकर रक्तविदग्ध होता है तथा इसी हेतुसे अन्तर्दाह और रुधिरवाहिनियोंकी दीवारकी विकृति होकर विविध व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है, उसपर इसका अच्छा उपयोग होता है।

तीव्र सेन्द्रिय विषके योगसे रक्त विकृत होकर भ्रम, प्रलाप, ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होनेपर चन्द्रकलाका प्रयोग किया जाता है। इस तरह पित्तकी तीव्रता, विशिष्ट सेन्द्रिय विष या विशिष्ट कीटाणुके हेतुसे समग्र मूत्रमार्ग विकृत होकर मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात होनेपर इस रसायनका सेवन कराया जाता है। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क, मध्यम कोष्ट, मध्यम रोममार्ग मूत्रमार्ग और विशेषतः रक्त इनमें पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व गुण की वृद्धि होनेपर भिन्न-भिन्न व्याधियोंपर चन्द्रकला उत्तम औषधि है।

चक्कर, दाह, नेत्रमें व्यथा, नेत्र लाल-लाल हो जाना, मस्तिष्ककी शिराएं खिचना, शिराएँ मोटी, भारी और रक्तपूर्ण होना, असम्बद्ध प्रलाप और ज्वर आदिकी उत्पत्ति होना, बृहद्मस्तिष्क, लघुमस्तिष्क, वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान तथा इनके समीपके सब स्थानोंकी रक्तवाहिनियां मोटी होकर इनका दबाव उन अवयवोंपर पड़नेसे प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी परिस्थितिमें रक्तके दबावको कम करनेका महत्वका कार्य इससे सरलतापूर्वक हो जाता है।

इसी प्रकारकी अत्यन्त तीव्रावस्था कितने ही सान्निपातिक ज्वरोंमें भी उत्पन्न हो जाती है। ज्वरोष्मा अतिशय बढ़ जाती है, रोगी बेहोश हो जाता है नेत्र लाल हो जाते हैं। एवं शिरदर्द, गर्दनको चलाते रहना, बड़ी-बड़ी बूमें मारकर गर्दन इधर-उधर फिराते रहना, मस्तिष्क फूटने या भाले से भेदन करने सदृश दूखना आदि होती है। चाहे रोगी स्पष्ट समझा न सके, फिर भी मुखमण्डल अति दीन, भयभीत, बलह्रास और अति व्यथित प्रतीत होता है। प्रारम्भमें रोगी सचेत जब तक रहता है, तब तक उपर्युक्त क्रियायें करता है। ये सब लक्षण सान्निपातिक ज्वरके मूल हेतुरूप विविध दोष प्रकोपके योगसे होते हैं। अतः इस स्थानमें तत्तद्दोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं उसके साथ ही चन्द्रकला रसका उपयोग करना चाहिये।

कभी-कभी आंत्रिक ज्वरमें मस्तिष्कके भीतर अधिक उष्णता पहुँच जाती है फिर ज्वर हो जानेपर उन्मादका असर उपस्थित होता है। विशेषतः दोषहरको असम्बद्ध प्रलाप करना, नेत्र लाल-लाल भासना, घबराहट, सर्वाङ्गमें प्रस्वेद आदि लक्षण प्रकट होते हैं। उसपर चन्द्रकला रस आध रत्ती, भांगरेका रस ३ माशे और आमका मुरब्बा ६ माशे मिलाकर देवें। इस तरह २-३ बार देनेसे पित्त शमन होकर उन्माद दूर हो जाता है।

यदि क्षयजन्य विषसे इस प्रकारके लक्षण उत्पन्न हुये हों तो चन्द्रकला का उपयोग कहां तक होगा यह निश्चित नहीं कह सकते। परन्तु आंत्रिक सन्निपातकी इस अवस्थामें चन्द्रकलाका उपयोग उत्तम होनेके उदाहरण मिले हैं।

सूर्यके तापमें फिरना, अग्निके समीप अति कार्य करना, शराब या अन्य उष्ण द्रव्यका अति सेवन, व्यायाम आदिके अति योग होनेंपर भी रक्तका दबाव बढ़कर ऊपर लिखे अनुसार लक्षण होते हैं। उस व्याधिपर चन्द्रकलाका उपयोग करना चाहिये। उस प्रकारमें तो केवल चन्द्रकला ही कार्य करता है। परन्तु सान्निपातिक ज्वरमें विशिष्ट अवस्थाके अनुरोधसे अन्य औषधिकी योजना भी की जाती है। इस तरह इन दोनों अवस्थाओं की चिकित्सामें भेद होता है।

ज्वरोष्मा अधिक बढ़नेपर शिरदर्द होकर नासिकासे रक्तस्राव होने

लगता है। कितने ही रोगियोंको दाह अधिक बढ़नेपर मुंहमेंसे रक्त निकलने लगता है। ऐसे लक्षण होनेपर चन्द्रकला रस मिश्री मिले दूधके साथ देकर ऊपर उशीरासव सारिवालेह, हल्दीका अर्क और जल आदिका मिश्रण देना चाहिये।

कण्ठमें वेदना, दाह, छातीमें दर्द, जलन और सूजन आनेके समान भासना तथा सर्वांगमें दाह, रक्त गिरना, ज्वर, तृषा आदि लक्षण होनेपर चन्द्रकलाका दाड़िमावलेहके साथ उत्तम उपयोग होता है।

क्षयरोगके प्रारम्भ या मध्यमें रक्तवमन होकर रोगवृद्धि होती है। तब रक्तस्राव सत्वर बन्द होने हेतु और बलके संरक्षणार्थ चन्द्रकला और चांदी के वर्कको दाड़िमावलेह या अनार शर्बतके साथ देना चाहिये।

ऊर्ध्व रक्तपित्तमें चन्द्रकलाका उत्तम उपयोग होता है। रक्तपित्त अर्थात् सतत होने वाले रक्तस्रावमें पित्तके तीक्ष्णत्व आदि धर्म बढ़ जाते हैं। इस हेतुसे रक्तवाहिनियोंकी श्लैष्मिक कला पतली और विकृत होकर फूटती है फिर उसमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। उर्ध्वग रक्तपित्तमें विशेषतः नाक या मुखमेंसे रक्तस्राव होता है। यह स्राव कुछ काल तक बन्द रहता है और फिर होने लग जाता है। कभी-कभी रक्तपित्त उपद्रव रूपसे और कितनी ही बार स्वतन्त्र रोग रूपसे होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें उसके विष प्रभाव से ऊर्ध्वग अधोग और त्वग्गत रक्तपित्त हो जाता है। पित्तप्रधान विषयुक्त सर्पके दंशसे भी ऐसा ही होता है। इस प्रकारके रक्तपित्तमें निमित्त कारण विविध विष हैं। यह निमित्त कारण दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। अतः इस विषके नाशकी योजना रक्तपित्त चिकित्सामें आवश्यक है। यदि विष कारण न हो केवल शारीरिक दोष विकृतिसे ही रोगोत्पत्ति हुई हो तो चन्द्रकला रस अति लाभ पहुँचाता है।

रक्त पित्तके साथ उदरमें वेदना आदि लक्षण हों और वेदना होकर वमन द्वारा रक्त निकलता हो, मुंहमें शुष्कता, उदरमें जलन-सी भासना, सर्वाङ्गमें दाह, तृषा बनी रहना; बार-बार उदरमें पीड़ा होकर वमन होना आदि अति पित्तप्रकोपजनित लक्षण प्रतीत होते हों तो उसपर चन्द्रकला रसका अवश्य उपयोग करना चाहिये।

अधोग रक्तपित्तमें उपद्रवभूत और मूलरोग रूप, ऐसे दो प्रकार है। इसमें मूत्रेन्द्रिय और गुदासे रक्त जाता है। इनमेंसे गुदामार्गसे रक्तस्रावके हेतुओमें दो प्रकार हैं—अन्त्रव्रण, आन्त्रिक सन्निपात, अति भीतर उत्पन्न हुए रक्तार्श और क्षोभक कारणोंसे अकस्मात् आंतोंमें कोई शिरा टूट जाना आदि हैं। क्वचित् अन्य रोगमें उपद्रवरूपसे उत्पन्न भी हो जाता है। उपद्रव भूत होनेपर तत्तद्रोगनाशक औषधिके साथ स्वतन्त्र व्याधिपर केवल चन्द्रकलाका प्रयोग किया जाता है।

अधोग रक्तपित्तमें मूत्रमार्गसे रक्तस्राव होनेमें मुख्यतः वृक्क स्थानका शोथ, वृक्क स्थानोंमेंसे सिकता (रेत) या शर्करा (छोटे कंकड़) गवीनी द्वारा मूत्राशयमें उतरना, मूत्राशय, मूत्रमार्ग और बस्तिका क्षोभ और दाह ये सब कारण है । इन सबमें पित्तदोषकी वृद्धि ही कारण है । ऐसे रक्तपित्त की सब अवस्थाओंमें चन्द्रकला रसद्वारा विविध अनुपान संयोगसे उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं मूत्रपिण्डके शोथमें अनन्तमूल सदृश शामक, सौम्य और मूत्रल अनुपान देना चाहिये । सिकता, शर्कराको-सत्वर बाहर निकालनेके लिये तृणपञ्चमूल क्वाथ समान मूत्रविरेचन तथा मूत्रमार्गके दाहमें दाहशामक और मूत्रल गोखरू धमासा, धनियाँका क्वाथ देना चाहिये ।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें चन्द्रकलाका उपयोग अच्छा होता हैं । शूलसह रजःस्राव ओर अत्यार्त्तव इन दो व्याधियोंका रक्तप्रदरमें अन्तरभाव होता है । स्त्रियोंके बीजाशय गर्भाशय और अपत्यमार्गमें किसी कारणवश क्षोभ होकर रक्तस्राव होने लगता है, उसे रक्तप्रदर कहते हैं । उसपर आम, अशोक, कपासमूल तीनोंकी छालके क्वाथके साथ चन्द्रकला देनेपर रक्त प्रदर कम हो जाता है । रोग अति प्रबल और भयंकर दुःखदायी हो तो ऊनकी काली राख दी जाती है ।

रक्तपित्त (Scurvy) होनेपर किसी-किसीको दन्तमूल और मसूड़ोंमें शोथ और वेदना होकर रक्तस्राव होता है । एवं कितनों ही को यह त्रास अधिक बढ़ जाता है, फिर त्वचाके रोमरन्ध्रोंसे वून्द-वून्द रक्त निकलता रहता है । यह विकार अति त्रासदायक और प्राणघातक है । परन्तु इसमें भी सारिवाके क्वाथके साथ चन्द्रकलाके उपयोगसे लाभ हो जाता है ।

चन्द्रकला रस दाहनाशक है । इसलिये अतिशयदाह होकर उन्माद समान वेग उत्पन्न होता हो मूत्रमार्ग नेत्र, हाथ पैर इन सबमें दाह, कभी-कभी नाक, मूत्रमार्ग या अन्य मार्गसे रक्तस्राव होना, मूत्रमें चिकना श्लेष्म जाना मूत्र लाल और परिमाणमें कम हो जाना आदि लक्षण होनेपर ब्राह्मी, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा आदिके साथ चन्द्रकलाका उपयोग किया जाता है ।

पित्तजन्य प्रमेहमें विशेषतः कालमेह नीलनेह, हारिद्रमेह और माँजिष्ठमेहमें चन्द्रकला उत्तम औषधि है । इन विकारोंमें मूत्रका रंग क्रमशःकाला नीला, अति पीला और मंजिष्ठके क्वाथके सदृस भासता है । सर्वाङ्गमें अतिशय दाह होता है । अति तृषा, मूत्रके परिमाणमें कमी परन्तु पेशाब अधिक बार होना, चक्कर आना, शुष्कता, अति दाह, पंखेसे निरंतर वायु करते ही रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । पंखेको बन्द करनेपर रोगी चिल्लाता है । इस प्रकारके दाहमें पित्तका तीक्ष्णत्व धर्म बढ़कर रक्ताश्रित और त्वगाश्रित होता है । इसपर चन्द्रकलाका उपयोग अच्छा होता है ।

पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्मकी वृद्धि होनेपर उनको चन्द्रकला रस नष्ट करता है तथा पित्तका साम्य प्रस्थापित करता है। यह रस दाह-नाशक, मूत्रल, शामक, कोष्ठस्थ पित्तका योग्य परिमाणमें स्राव करानेवाला, यकृत्को शक्ति देकर पित्त साम्य लानेवाला, सहस्रार, वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान, वात वाहिनियां आदि स्थानोंके क्षोभको शमन करनेवाला और सौम्य है। इस तरह शीतल गुण होनेपर भी अग्निमांद्य नहीं करता। समस्त शरीरमें उत्पन्न क्षोभ, दाह और वेदनाको शमन करता है। यह कफप्रधान और कफवातप्रधान विकारोंका निवारण करनेवाली उत्तम वीर्यवान् औषधि है। सूतशेखर पित्तके विस्रत्व, सरत्व, द्रवत्व और अम्लत्वधर्म, वृद्धिजन्य विकारोंमें पित्तसाम्य प्रस्थापित करनेमें उपयोगी है और चन्द्रकला पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्म बढ़नेपर लाभदायक है। यह इन दोनोंमें अन्तर है।
(औ० गु० ध० शा०)

जख्मका योग्य उपचार न करनेपर कीटाणुओंका प्रवेश होकर आक्षेपक वात हो जाता है। फिर उसके उपचारमें भूल होनेपर (भलता इञ्जेक्शन देनेपर) रोग अति भयंकर रूप धारणकर लेता है। सारे शरीरमें फुन्सियां, त्वचा लाल हो जाना; निद्रानाश, ज्वर, दाह, घबराहट, सारे शरीरमें सुई चुभानेके समान वेदना, कर्णबाधिर्य, वातप्रकोप, हृदयमें भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसकी चिकित्सा सत्वर न की जाय तो पक्षवध या मृत्यु होनेकी भीति रहती है। ऐसी स्थितिमें मूलकारणरूप कीटाणु और विषको नष्ट करनेके लिये चन्द्रकला रस, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें ३ बार दाड़िमावलेहके साथ देने, जख्मका बाह्योपचार करने और रोगीको केवल गोदुग्धपर रखनेसे सत्वर विष शमन हो जाता है। व्रण शोधनार्थ निम्बपत्र, सत्यानाशी और शमीपत्रका मलहम अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। विष शमन होनेपर फिर शेष लक्षण रहे उनके लिये महा-योगराज गूगल आदिका सेवन कुछ कालतक करते रहना चाहिये।

(६४) महामृगांक रस

विधि—सुवर्णभस्म १ भाग, पारद भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ३ भाग, शुद्ध गंधक ४ भाग, सुवर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, रौप्य भस्म ६ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग और सोहागेका फूला २ भाग लें। सबको यथाविधि मिला, बिजौरेके रसमें ३ दिन खरलकर गोला (पेड़ा) बना, सूर्यकी तेज धूपमें सूखावें। फिर सैंधानमक भरे हुये घड़ेके भीतर रख, घडेसे मुँहपर सराव ढक मिट्टीसे बन्द करके १२ घण्टे मन्द और मध्यमाग्नि देकर गन्धकका जारण करें। स्वांग शीतल होनेपर गोलेको निकाल ६४ वाँ हिस्सा हीरा भस्म या १६ वां हिस्सा वैक्रान्त भस्म मिला, खरल करके शीशीमें भरलें। (र०चं०)

वक्तव्य—महामृगाङ्क रसका गोला निकालनेपर मैले लाल रंगका होना चाहिए। यदि गन्धकका जारण पूरा न हुआ हो तो पुनः ३ घण्टे या अधिक समय अग्नि देकर गन्धकका जारण कर लेना चाहिये।

गोलेका रंग रक्ताभ हो जाना चाहिये। गंधक रह जानेपर रंग काला रहता है। ऐसा हो तो पुनः ४-६ घण्टे अग्नि देवें। भूलसे अग्नि तेज दी जायगी तो सब पारद उड़ जायगा और गुण कम हो जायगा।

मात्रा—आध रत्तीसे १ रत्ती तक। दिनमें २ बार, कालीमिर्च और घृत अथवा शहद पीपलके साथ।

उपयोग—यह रस नाना प्रकारके उपद्रवसहित क्षय, ज्वर, गुल्म, विद्रधि, मन्दाग्नि स्वरभेद, कास, अरुचि, मूर्च्छा, भ्रम, आठ प्रकारके महारोग, ग्रहबाधा, पाण्डु कामला और पित्त प्रकोपजनित रोगोंको नष्ट करता है। यह औषधि क्षयको अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाती हैं। मस्तिष्कमें शांति उत्पन्न करके निद्रा लाती है। मानसिक वेचनी दूर करती है। कीटाणुओंको नष्टकर तथा विषको जलाकर तापका शमन करती है। शरीरमें शक्ति बढ़ाकर थोड़े ही दिनोंमें रोगीको आशातीत लाभ पहुँचा देती है।

जिन रोगियोंको अस्थिसंस्थानमें अति निर्बलता आई हो या जिन रोयियों को निद्रानाश. वृक्कविकृति, वातवाहिनियोंमें क्षोभ और शुक्रक्षय आदि लक्षण हों उन क्षय रोगियोंके लिये यह रस अमृतके समान हितकारक है।

सूचना—इस रसके सेवन-कालमें शक्तिवर्द्धक और शुक्रवर्द्धक भोजन करना चाहिये। पारदके विरोधी करेला और ककारादि वर्गके पदार्थ, हींग, बैंगन, वेन, अधिक नमक, क्षार और तीक्ष्ण पदार्थोंका त्याग तथा ब्रह्मचर्य का आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये।

(६५) हेमगर्भपोटली रस

प्रथम विधि—शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्णका वर्क १ तोला और ताम्रभस्म ३ तोले लेवें। सबको यथा विधि मिला, घीकुंवारके रसमें ३ दिन तक घुटाई करके सोगठो (शिखरवाली गोलियां) बाँध। भली भाँति सूखनेपर नये अच्छे रेशमी कपड़ेपर थोड़ा गन्धक बिछा, ऊपर सोगठी को रखकर बांधें। फिर सब सोगठियोंको एक साथ डोरेसे मजबूत बांध एक मिट्टीकी छोटी हाँडीमें पोटलीके समान वजनमें डण्डा गन्धक डालकर ऊपर पोटली रखें। और थोड़ा गंधक ऊपर रख हाँडीके मुंहपर ढकन लगाकर बन्ध करें। ढकनमें एक छोटा छेद रखें; जिससे उसमें लोहेकी शलाका डालकर परीक्षाकर सके। फिर बालुकायन्त्रमें रखकर लगभग १॥ घण्टा मन्दग्नि दें। नीचे गन्धकका रस होकर औषधि पकनेपर हांडोको उतार लें। फिर तुरन्त गर्म जलसे सोगठियोंको धो लें।

मात्रा—आधा रत्तीसे १ रत्ती। पीपल और शहदके साथ।

उपयोग—यह रस कफ सहित भयंकर कास, श्वास, क्षय, कफप्रकोप, वातरोग, संग्रहणी आदि रोगोंको नष्ट करता है। पित्तविसर्जन क्रियामें दोष उत्पन्न होकर संग्रहणीयुक्त क्षय हुआ हो उसमें पित्त विकृतिको सुधार, क्षयज संग्रहणीको दूर करता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा और सुवर्ण वर्क ४-४ भाग मिलाकर बारीक पीसें। फिर १२ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मोती-पिष्टी १६ भाग, शंखभस्म २४ भाग और सोहागेका फूला १ भाग मिला, पक्के ताजे नींबूओंके रसमें २ दिन खरलकर पेड़के समान गोला बनाकर सुखा लें। बादमें उसे सरावमें रखकर दृढ़ संपुट करें। संपुट सूखनेपर एक हांडोमें सैंधानमकके भीतर दवा चूल्हेपर चढ़ा ३ अहोरात्रि मध्यम अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर बाहर निकालकर खरलकर लें। यह रसायन कुछ गुलाबी आभा वाला सफेद रंगका होता है। यदि रंग श्याम रह गया हो तो अग्नि कम लगी ऐसा मानकर एक दिन तक फिर आंच देवें। (शा.सं.)

मात्रा—१ से २ रत्ती। कालीमिर्च २९ नगके चूर्णके साथ गोघृत और शहदमें मिलाकर चाटें।

उपयोग—यह रस क्षय, कास, श्वास, कफसंग्रहणी और वातज अतिसार आदि रोगोंको दूर करता है। क्षयमें ज्यादा ताप (१०० डिग्री अधिक) न हो तब यह देना चाहिये। यह रसायन यक्ष्माकी सब अवस्थाओंमें लाभदायक है। क्षयरोग, पित्तप्रकोप, मुखपाक, शुष्ककास, अतिसार आदि लक्षणों उपद्रव रूपसे उत्पन्न संग्रहणी तथा बिना राजयक्ष्मा उत्पन्न संग्रहणी को भी यह दूर करता है और पाचनशक्तिको बढ़ाता है। उदरमें वातप्रकोप हो, पित्तमें अम्लता और उष्णता बहुत बढ गई हो, अन्त्रकी साधारण शक्ति निर्बल हो तब इस रसायनका उपयोग अत्यन्त हितावह है। अपची, कण्ठमालमें भी यह लाभदायक है।

(६६) लक्ष्मीविलास (सुवर्णयुक्त)

विधि—सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, मण्डूर भस्म, कान्तलोह भस्म, (अभावमें लोहभस्म) नागभस्म, शुद्ध बच्छनाभ और मुक्ताभस्म इन ११ औषधियोंको १-१ तोला और रस सिंदूरको ११ तोले लें। सबको मिला शहदके साथ खरलकर पूरीके सदृश पतली बड़े थाल समान चौड़ी दो पर्पटी बनाकर सूर्यकी धूपमें सुखावें। ३-४ दिनमें सूखनेपर सराव संपुट करके ताक्ष्र्य पुट अर्थात् ४-५ बनगोबरी की अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर निकाल चित्रकमूलके क्वाथमें ८ प्रहर खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें।

सूचना—अग्नि उतनी ही देनी चाहिये कि रसका वर्ण लाल रहे। अधिक अग्नि लग जानेपर वर्ण काला हो जाता है और पारद उड़ जाता है। फिर वजन कम हो जाता है।

मात्रा—½ से १ रत्ती। दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—क्षयमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व। नपुंसकतामें वंग-भस्म शोथमें मकोयका अर्क। शक्ति वृद्धिके लिमें शहद-पीपल या च्यवन-प्राशावलेह प्रतिश्यायमें कालीमिर्च मिला गुनगुना दूध।

उपयोग—यह रस त्रिदोषज क्षय, पाण्डु, कामला, वातरोग, सूजन, प्रतिश्याय (जुकाम, नजला), शुक्र क्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, मन्दाग्नि, सन्निपात, श्वास, कास आदि रोगोंको नष्ट करता है, शरीरको तारुण्यरूपा लक्ष्मीकी प्राप्ति कराता है तथा शक्तिवर्द्धक, क्षयरोग निवारक और क्षयके कीटाणुओं (Tuberculosis) को नष्ट करने वाला है। इसका उपयोग आयुर्वेदीय चिकित्सकगण शक्तिवर्द्धक गुणकी प्राप्तिके लिये विशेष करते हैं। जिस तरह जलाभावसे मरणोन्मुख अवस्था प्राप्त वृक्षके मूलमें जलसिंचन होनेपर वह प्रफुल्लित होकर फल-पुष्प-पर्ण आदिसे सुविकसित होता है; तद्वत् इस रसायनके सेवनसे जीवन-प्रदीप सुप्रकाशित हो जानेका अनुभव होता है।

क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग करनेपर शक्तिपात दूर होता है। रक्त आदि धातु त्वरित वृद्धिगत होने लगती है, बल बढ़ने लगता है। इस तरह क्षयको द्वितीयावस्थामें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। केवल तृतीयावस्थामें बडे-बड़े उरःक्षत हो जाते हैं तब इस रसायनका विशेष उपयोग हुआ हो ऐसा नहीं जाना गया।

राजयक्ष्माके निमित्त कारण—वेगरोध, धातुक्षय, साहस और विषमाशन (आहार-विहारमें विषमता) है। निश्चित कारण दोषप्रकोप है। इनमें क्षय अर्थात् रस-रक्त आदि धातुओंके ह्रास होनेसे उत्पन्न राजयक्ष्मामें इस लक्ष्मीविलासका उत्तम उपयोग होता है। यदि क्षयके कीटाणु मूल कारण-रूप हों तो भी शारीरिक घटकोंका शक्ति ह्रास हुए बिना इन कीटाणुओंको देहमें बढ़नेका स्थान नहीं मिलता। अतिशय-रक्तस्राव, शुक्रस्राव या रज-स्राव होनेपर या दीर्घकालका अति रजःस्राव रूप विकार होनेपर जब अन्य हेतुओंसे धातुक्षय अधिक होता है तब ही क्षय कीटाणुओंको उपयुक्त क्षेत्रकी प्राप्ति होती है, फिर उस रोगका विस्तार होता है।

माँसक्षीणता, कृशता, दुर्बलता और मर्यादित ज्वर होनेपर क्षय रोगीको लक्ष्मीविलास देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें इसे प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्वके साथ देना चाहिये। या सुबह यह रसायन और सायंकालको ज्वर शामक अन्य ओषधि दें। प्रातःकालको अधिक ज्वर हो तो इस रस

का उपयोग नहीं करना चाहिये। त्रैलोक्यचिन्तामणि या जयमंगल रस देना चाहिये।

क्षयके अतिरिक्त जीर्ण कफकास रोगमें भी इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। रोग अति जीर्ण हो रोगी अतिकृष, बलमाँसविहीन हो गया हो, त्वचा शुष्क हो गई हो, कफ चिकना, गाढ़ा पीला और दुर्गन्ध युक्त निकलता हो, त्रासदायक कास, साथ-साथ श्वास लक्षण प्रतीत होते हों, ऐसे युवा और हाड़पिंजर सदृश बने हुए शक्ति हीन श्वास रोगियोंको यह औषधि अति उपयोगी होती है। इसके सेवनसे जीवनीय शक्ति सबल होती है। फिर वह सरलतासे रोगके विष या कीटाणुओंके साथ युद्धकर सकती है।

किसी भी इन्द्रियके बल और आकृतिका यथा समय योग्य विकास न हुआ हो तो उस इन्द्रियमें समयके पहले क्षीणता और अशक्ति आती जायगी। उससे अपना व्यापार उचित नहीं हो सकेगा। फिर बलात्कारसे परिश्रम करते रहनेसे शक्तिका क्षय अधिक और पूर्ति कम ऐसी स्थिति प्राप्त होती है। उस अवस्थामें फुफ्फुसोंकी क्रिया सम्यक् न होनेपर कफ दोष दूषित होकर कासरोग उपस्थित होता है, क्वचित् साथमें श्वास विकार भी होता है। इस तरह फुफ्फुसोंके समान हृदय अशक्त होनेपर श्वास, हाथ पैरोंमें ऐंठन, हाथ पैर और मुखपर क्वचित् शोथ और कितने ही बार वार्तालाप करते रहनेमें ही श्वास भर जाना, आवाज बिल्कुल भीतर खिंचना और अति परिश्रमसे उच्चारण होना आदि लक्षण होते हैं। उसपर यह रस अच्छा लाभदायक है। अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलालमें हृदयोत्तेजक गुण अधिक हैं, तब इस रस-सिन्दूर प्रधान लक्ष्मीविलासमें शक्तिवर्द्धक गुण विशेष है। यह उत्तेजक होनेपर भी अधिक हृदयोत्तेजक नहीं है। हृदयकी अशक्तिसे रुधिराभिसरण क्रिया ठीक न होनेसे सर्वांगमें अशक्ति आजाती है ऐसी अवस्थामें यह अति हितकर जाना गया है।

आमाशयकी अशक्तिके हेतुसे आमाशय रस (पाचकाम्ल रस-Gastric juice) की उत्पत्ति योग्य नहीं होती; अर्थात् पाचक-रस निर्माण करनेवाले सूक्ष्म कोष समूह असक्त हो जानेसे आमाशयस्थ पित्तोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती फिर भोजनका पचन भी ठीक नहीं होता। ग्रहणी, अग्न्याशय यकृत् और लघु अन्त्र सब निर्बल होनेसे, इन सबसे उत्पन्न पाचक रस भी सबल नहीं होता। इस हेतुसे भी अन्नका पचन चाहिये वैसा नहीं होता। अन्नका विदाह हो जाता है। भोजन-परिपाक योग्य न होनेसे रसोत्पत्ति भी ठीक नहीं होती। फलतः शारीरिक सजीव घटकोंको पोषण नहीं मिलता; लंघन होने लगता है। फिर इनकी वृद्धि या स्थितिमें प्रतिबन्ध होता है। रोगी दिन-प्रतिदिन क्षीण और कृश होता जाता है। थोड़ासा भोजन करनेपर भी उदरमें भारीपन हो जाता है। अन्नपर अरुचि होती है। ऐसी परिस्थितिमें लक्ष्मीविलासका

अच्छा उपयोग होता है। इसके योगसे समस्त पचनेन्द्रिय संस्थानके पित्तोत्पादक कोषाणु सशक्त बनते हैं। अन्नका विदाह होना बन्द हो जाता है; उत्तम रीतिसे परिपाक होने लगता हैं और नूतन अणुभवन क्रिया (Anabolism) नियमित होने लगती है।

यकृत्की अशक्तिसे यकृत्मेंसे उत्पन्न होनेवाले पित्त (Eile) का स्राव निर्माण पूरे परिमाणमें न होनेसे पक्वाशय (लघुअन्त्र) में अन्नका पचन और रसका संशोषण सम्यक् नहीं हो सकता। इस हेतुसे देहमें पाण्डुता प्राप्त होती है तथा उदरमें अफारा, अपचन, उदरमें भारीपन, आँतोंमें गुड़गुड़ाहट, आंतोंमें मन्द मन्द व्यथा होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सबमें अग्निमांद्य प्रधान होता है। ऐसे विकारपर यह रस उत्तम कार्य करता है।

कामला आशुकारी और चिरकारी दो प्रकारके होते हैं। चिरकारी कामलामें यकृत्के कोषाणुओं (Cells) के भीतर धातु क्रियामें विकृत होती है फिर पित्त विकृति होकर रक्त और रस धातुओंमें मिश्रित होता है। परिणाममें कामलाकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके कामलामें असक्ति अधिक होती है। यह रोग दीर्घकाल तक रहता है। सर्वांगमें पीलापन, मूत्रमें आशुकारी कामलाकी अपेक्षा कुछ कम पीलापन, अग्निमांद्य, अरुचि कभी वमन और दिन-प्रतिदिन मांसाविहीनत्वमें वृद्धि होना आदि लक्षण अधिक होते हैं इस प्रकारके रोगमें लक्ष्मीविलास रस उत्तम कार्य करता है।

वातविकारके अनेक भेद हैं। इस रोगके कारण विविध हैं और लक्षणोंमें भी नाना प्रकारकी विचित्रता रहती है। इस विकारमें मुख्य आशुकारी और चिरकारी ऐसे दो विभाग हैं। आशुकारीमें पक्षाघत, अपतानक, आक्षेपक आदि और चिरकारीमें कलायखंज, सर्वांगवात, गृध्रसी, विश्वाची, खल्ली आदि व्याधियोंका अन्तर्भाव होता है। इनमेंसे वातस्थानकी अशक्तिके हेतुसे उत्पन्न चिरकारी विकारमें यह रस लाभदायक है। आशुकारी पक्षाघात आदिकी तीव्रावस्थामें यह उपयोगी नहीं है। परन्तु जीर्णावस्था और साथ-साथ सर्वांगमें अशक्ति आनेपर यह उपयुक्त है। एवं शीर्षशूल, कर्णनाद किसी भी इन्द्रियकी शक्तिसे अपना कार्य सम्यक् प्रकारसे न होना, कोई शारीरिक अवयव केवल अशक्तिसे सूखकर पतले हो जाना, स्मृतिनाश आदि विकार और उपरोक्त चिरकारी विकारमें यह रस अति उपयुक्त हैं।

हृदयकी निर्बलतासे आनेवाले सर्वांग शोथमें मूत्रल अनुपानके साथ इस रसायनका प्रयोग करनेसे हृदय सबल बनकर तथा रस त्वचामेंसे संचित रसका रक्तमें आकर्षण होकर शोथ शमन हो जाता है।

प्रतिश्यायके एक दुष्ट प्रकारमें नाकमेंसे जलस्राव सतत होता रहता है, रात-दिन प्रवाह चालू रहता है। रात्रिमें निद्राके भीतर भी जलस्राव होता

रहता है। यह केवल जल है परन्तु गाढ़ा हो जाता है। यह स्राव नासा-स्थित रसवाहिनियों और श्लैष्मिक कलामेंसे होता रहता है।

इसपर किसी प्रकारसे नियंत्रण नहीं हो सकता। कभी-कभी कुछ काल के लिये जुकाम बन्द हो जाता है। परन्तु जब होता हैं तब स्राव निरन्तर कुछ दिनों तक होता रहता है। इसपर इस रसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे रसवाहिनियां और श्लैष्मिक कलामें नियंत्रण शक्ति प्राप्त होती है। फिर बार-बार जुकाम नहीं होता।

नपुंसकतामें अनेक कारण हैं। इनमेंसे एक कारण अण्डकोषके कोषाणुओंका पुम्बीज और ओज बनानेकी शक्तिका ह्रास है। इन कोषाणुओंकी अशक्तिके हेतुसे रक्ताभिसरण क्रिया ठीक नहीं होती। फिर शुक्रमेंसे ओज (शुक्रधातुमें जो विशिष्ट ओज) योग्य नहीं बनता इस हेतुसे नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। रोगी बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन भासता है, मुखमण्डल उदास रहता है। सर्वदा विचारोंमें डूबा हुआ प्रतीत होता है। किसी भी कार्यके लिये उत्साह नहीं होता। मुखपर किसी भी प्रकार की मनोवृत्ति स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। इसपर वंगभस्मके साथ लक्ष्मीविलास देनेसे पुंसत्व की वृद्धि होकर उत्साह आ जाता है। इसके सेवनसे अण्डकोष सबल बनता है, पुम्बीज और ओज प्रवृत्तिमें सहायता मिलती हैं। नपुंसकत्व नष्ट-वीर्यत्व और शीघ्रपतन, तीनों विकृतियां नष्ट होकर तारुण्य-लक्ष्मीकी पुनः प्राप्ति होती है।

इसका उपयोग सन्निपातकी तीव्रावस्थामें नहीं होता, फिर भी उसके उतरनेपर उसके संकट या उपद्रवको दूर करनेमें यह लाभदायक है। विविध विषम ज्वरोंमें संतत ज्वर उतरनेपर श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातमें ज्वर वेग दूर होनेपर, आन्त्रिक ज्वरमें शारीरिक उत्ताप बिल्कुल कम होनेपर या अन्य प्रकारके ज्वरका वेग शमन होनेपर नाड़ीमें क्षीणता सर्वांगमें चिपचिपापन और शिथिलता, हृदयमें क्षीणता, श्वास अधिक होनेपर भी रोगीको पूर्ण शुद्धि होना ऐसी घातक स्थितिमें यदि नाड़ीका वेग क्षण-क्षणमें चेतना होना कम हो रहा हो तो उस समय हेमगर्भ उपयुक्त है। परन्तु यह प्रवल मारक अवस्था दूर हो जानेपर शारीरिक उत्ताप कम हो, शीत अधिक हो, नाड़ी क्षीण हो, नाड़ी स्पन्दन कम हो, उस स्थितिमें लक्ष्मी विलास अति उपयोगी हैं। कभी-कभी सन्निपात ज्वरोंकी शीतांगवाली भयप्रद अवस्थामें रोगी ८-१० दिन तक रह जाता है। उसपर यह रस अपूर्व कार्य करता हैं। इसने अनेकोंको पुनर्जन्मकी प्राप्ति करा दी है।

अतिसार रोगमें आमाशयसे बृहदन्त्रके अन्त भाग तक अब्धातुकी वृद्धि होकर बड़े-बड़े जुलाब होते रहते हैं। परन्तु मलक्षयके विकारमें मल-प्रवृत्ति

बराबर होती रहती है; थोड़ा-थोड़ा मल निकलता ही रहता है, बिल्कुल स्तम्भन नहीं होता। उसपर लक्ष्मीविलास उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस तरह क्षय रोगमें उपद्रवरूप अतिसारपर भी यह लाभदायक है। केवल शारीरिक उष्णता मर्यादामें होनी चाहिये।

संक्षेपमें यह रस किसी भी हेतुसे निर्बलता आजानेपर सब इन्द्रियों और अवयवोंको योग्य परिमाणमें पोषक द्रव्यकी प्राप्ति करा सशक्त बनाने वाली मूल्यवान् औषधि है। इस हेतुसे शरीर क्षयकारी अनेक व्याधियोंमें इसका उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) में यह रस लाभदायक है। इस रसके साथ मयूरके चन्द्रिकाकी भस्म दालचीनी, मुलहठी और बहेड़ेका चूर्ण मिला अदरकके रस और शहदके साथ प्रातः काल देते रहना चाहिये। यदि निर्बलता अधिक हो तो ¼ रत्ती कस्तूरी भी मिला देना चाहिये। रात्रिको समीरपन्नग रस देते रहें। इस तरह उपचार करनेपर रोग निर्विघ्न दूर हो जाता है।

(६७) चन्द्रामृत रस

विधि—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) चव्य, धनियाँ, जीरा, सेंधानमक ये १० औषधियां एक-एक तोला लें, बारीक कूटकर बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरलकर फिर शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म २-२ तोले, सोहागेका फूला ४ तोले और कालीमिर्चका चूर्ण २ तोले मिलावें। पहिले पारदगन्धककी कज्जली करें। फिर भस्म और चूर्ण क्रमसे मिला ३ घण्टे बकरीके दूधमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र०र०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २-३ बार, बकरीके दूध, वासास्वरस कुलथीके क्वाथ, कमलके रस, शहद-पीपल या अदरकके रसके साथ।

उपयोग—यह रस वातपित्तप्रधान, वातश्लेष्म प्रधान, पित्तश्लेष्मप्रधान वातिक और पैत्तिक कास, रक्तयुक्त कास, शुष्ककास, कफयुक्त कास, श्वासयुक्त कास, ज्वरसह श्वास, तृषा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, आनाह कृमि, हृद्रोग, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। खाँसीकी तीक्ष्ण व्याधिको एक-दो दिनमें शाँतकर देता है; तथा अग्नि, बल और वीर्यकी वृद्धि करता है।

फुफ्फुसोंमें कफ अति संग्रहीत हुआ हो और ज्वर भी रहता हो, तो मुलहठी, अडूसा, गिलोय, भारंगी, मोथा और छोटी कटेलीको समभाग लें, बारीक चूर्ण करके १।।-१।। माशे शहदके साथ भोजनके बाद लें, या इसका क्वाथ अनुपान रूपसे लेनेसे फेंफडे निर्दोष और बलवान बनते हैं। इस रसका हमने भिन्न-भिन्न प्रकारसे कास रोगमें अनेक बार प्रयोग किया है।

यह अति प्रभावशाली सिद्ध औषधि है।

(६८) कफकुठार रस

विधि—शुद्ध पारद; शुद्ध गंधक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, ताम्रभस्म और लोहभस्म, सब समभाग लें। पहिले पारद-गंधककी कज्जली करके भस्म मिलावें। बादमें त्रिकटुका कपड़-छन चूर्ण मिलाकर छोटी कटेलीके फलोंके रसमें ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् कुटकीके क्वाथ और धतूरेके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ गोली, नागरबेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—कफकुठार रस अत्यन्त तीक्ष्ण है। छातीमें बहुत कफका संग्रह हो गया हो; बार-बार खांसी आकर थोड़ा-थोड़ा कफ गिरता हो और ज्वर हो, तब खांसीका वेग कम कराने, कफस्राव करानें और श्वास वाहिनीपर शामक असर पहुँचानेमें यह हितकर है।

कफकुठारका उपयोग उद्रिक्त कफ और तज्जन्य काससह ज्वरपर होता है। जब कफ छातीमें अति संग्रहीत होनेसे बार-बार खांसी चलकर अति गाढ़े चिपचिपे कफकी बड़ी-बड़ी गांठें निकलती रहती हैं; तब औषध योजना करनेमें बड़ी कठिनाई होती है। खाँसी अति त्रासदायक और बार-बार आती रहनेसे कभी-कभी अफीम प्रधान औषध देना पड़ता है। अफीममें स्तम्भक और शामक गुण होनेसे खांसी कम मालूम पड़ती है; परन्तु परिणाममें हानि अधिक होती है। कारण दुष्ट कफ भीतरमें अधिक दुष्ट बनकर अपायकारी बन जाता है। इस हेतुसे ऐसी त्रासदायक कासमें अफीम सदृश केवल शामक औषधि नहीं देनी चाहिये। कफस्रावी और श्वासवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचाने वाली धतूरा-मिश्रित औषधि उपयुक्त होती है। इस रसमें धतूरेके अतिरिक्त छोटी कटेली और कुटकी मिश्रित होनेसे उत्तेजना देकर कफस्राव कराना और कफको पतला बनाकर घबराहट दूर करना, ये दोनों कार्य इससे सरलता पूर्वक होते हैं।

कफ अधिक संग्रहीत रहनेसे कुछ समयमें प्रकुपित होकर ज्वरोत्पत्ति कराता है। ऐसे समयपर कफ जितना-जितना कम होता है; उतना-उतना ज्वरका बल भी घटता जाता है। इस ज्वरमें ज्वरवेग अधिक होनेपर भी नाड़ीका वेग तीव्र नहीं होता। समस्त शरीर गीला-सा और भारी मालूम पड़ता है। आलस्य अधिक आता है। सारा अङ्ग विशेषत: छाती अकड़ जाती है। आगे-आगे खाँसीका बल भी जैसे-जैसे बढ़ता जाता है; वैसे-वैसे छातीमें शूल भी चलने लगता है। खांसनेपर शूल अधिक होता है; और पसलियां ऊपर खिंचकर घबराहट-सी होती है कफ गिर जानेपर वेदना

कम होती है, रोगी अशक्त और निस्तेज हो जाता है। ऐसा होनेपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है।

कफकुठार रसमें ताम्र वेदनाशामक, आक्षेपनाशक और कफोत्पत्ति कम कराता है। धतूरा खांसीका वेग कम करके कफ बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाता है; वातवाहिनियोंके लिये शामक है; और अन्तःस्रावको नियमित करता है। कटेली उत्तेजक और कफस्रावी है। कुटकी कफ पतला बनाने वाली और वामक (कफ बाहर निकालनेमें सहायक) है। पीपल कफस्रावी है। सोंठ और मिर्च पाचक और दीपक हैं। लोहभस्म शक्तिवर्द्धक है, तथा कज्जली योगवाही और रसायन है। (औ० गु० ध० शा०)

(६९) अग्नि रस

विधि—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड़ ४ तोले, बहेड़ा ५ तोले और अडूसेके पत्ते ६ तोले लेवें। सबको यथा विधि मिला, बबूलकी अन्तर्छालके क्वाथकी २१ भावनायें देकर सूखा चूर्ण बना लें; अथवा २-२ रत्तीकी गोलियां बांधें। (र० र० स०)

अनेक ग्रन्थकारोंने इस अग्नि रसमें भारंगी ७ तोले मिलाकर "भागोत्तर वटी" संज्ञा दी है।

यदि अग्निरसके सेवनके समय २-२ रत्ती भारंगमूल मिला लिया जाय तो कफस्थानकी शक्ति अधिक बढ़ती है, जिससे कफ सरलतासे बाहर निकल जाता है। शुष्क कासके रोगियोंके लिये भारंगमूल नहीं मिलना चाहिये।

मात्रा—४ से ६ रत्ती, दिनमें ३ बार शहद मिलाकर चटावें। सुबहशाम ऊपर बकरीका दूध पिलावें। दोपहरको दूध न दें।

उपयोग—यह रसायन कफयुक्त, कास, श्वास, क्षय और उरःक्षतमें अति लाभदायक सौम्य औषध है। क्षयमें या जीर्ण कास रोगमें कफके साथ रक्त आता हो; या फुफ्फुसोंपर चोट लग जानेसे थूकमें रक्त आता हो तब यह औषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। श्वासवाहिनियोंमेंसे कफस्राव शीघ्र कराती है। कंठ और जिह्वाके दोषको शमन करती है और रक्त निकलना बन्द करती हैं। बार बार कास चलती रहती हो, ऐसी शुष्क कासमें भी यह लाभदायक है। यह रस शामक होनेसे कासके वेगका ह्रास करता है।

(७०) लवंगादि तालसिन्दूर

विधि—कूपीपक्व रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार तैयार किया हुआ तालसिंदूर और बिना मिश्री मिला लवंगादि चूर्ण ५-५ तोले मिलाकर खरल करें। फिर ५ तोले लवंगादि चूर्णका क्वाथ कर, उसकी ३ भावनायें देकर मूंगके समान गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ से ३ बार, अदरकके रस और शहदके

साथ अथवा नागरबेलके पानमें देवें।

उपयोग—यह रस फुफ्फुसोंके वायुकोष्ठ और श्वास प्रणालियोंको सबल बनाता है, उनसे संग्रहीत कफको बाहर निकालता है और नूतन कफोत्पत्ति को रोक देता है। यह लवंगादि तालसिंदूर श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत आदि फेफड़े और हृदयके सब रोगोंको दूर करता है। भोजनमें घी अधिक लेवें और पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करें। विशेष गुण तालसिन्दूरके वर्णन में लिखे हैं, किन्तु इस रसायनमें तालसिन्दूरकी उग्रता लवंगादि चूर्णके संयोगसे शमन होकर लवंगादि चूर्णके संयोगसे अग्नि दीपन, कफनिःसरण, शुष्ककास शमन आदि गुणोंकी वृद्धि होती है।

(७१) श्वास कुठार रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोहागेका फूला और मैनसिल १-१ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवें। पारद गन्धककी कज्जली करके बच्छनाभ, सोहागा ओर कालीमिर्च अनुक्रमसे मिलावें। कालीमिर्च एक एक डालते जायँ और खरल करते जायँ। पश्चात् सोंठ, कालीमिर्च और पीपल १-१ तोलेका बारीक चूर्ण मिला लेवें। कितने ही चिकित्सक इस रसको नागरबेलके पानके रसमें खरल करके गोलियां बनाते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ बार, नागरबेलके पान, अदरकके रस और मिश्री अथवा छोटी कटैलीके साथ देवें।

उपयोग—यह रस श्वास, कास, मन्दाग्नि और वातश्लेष्म प्रधान रोगों को नष्ट करता है। सन्निपात, मूर्च्छा, अपस्मार, बेहोशी आदिमें सुंघानेसे रोगी सुधमें आ जाता है। फुफ्फुस आवरण शोथ (कुक्ष्युदर उरस्तोय) में जब तक जल उत्पन्न नहीं होता तब तक यह लाभ पहुँचा सकता है। एवं सूर्यावर्त आधा शीशी और दुस्सह शिरदर्द, प्रतिश्याय, ११ प्रकारके क्षय, हृद्रोग, शूल दारुण स्वरभेद आदिमें रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे उन रोगोंको दूर करता है।

श्वासकुठारका उपयोग स्वतन्त्र श्वास रोगपर अच्छा होता है। मूल-भूत श्वास रोगके अतिरिक्त अन्य कारणोंसे अन्य रोगोंके पूर्वरूप, उपद्रव या लक्षण रूपसे गौण श्वास विकार भी होते है। हृद्रोग या सर्वाङ्गशोथ दोनों रोगोंमें श्वासकी संप्राप्ति हो जाती है, ऐसे लक्षण रूप श्वासमें इस रस का उपयोग नहीं होता।

वृद्धावस्थामें या तरुणावस्थामें ही कास और उसके साथ श्वास होनेपर इसका उपयोग होता है। इस श्वासमें घबराहट अधिक होती है। श्वासो-च्छ्वास वेगपूर्वक चलता है। श्वासकी अपेक्षा उच्छ्वास लम्बा होता है। श्वासका वेग उत्पन्न होनेपर रोगी बिल्कुल बेचैन हो जाता है। समीपमें

रहे हुए खम्भे या मनुष्यको पकड़कर बैठनेसे चैन पड़ेगा ऐसा उसे भासता है। इस हेतुसे जो कुछ हो उसे पकड़ लेता है। कफ छूटनेके लिये जो पदार्थ मिले उसे मुंहमें रखता है। इस श्वासका निश्चित कारण नहीं। किसीको शीतलवायु या शीतकालके हेतुसे, तब कितनो ही को वर्षाकाल, शीतकाल, वर्षा या बर्फ गिरकर फिर शीतल वायु चलना आदि कारणोंसे श्वास हो जाता है। किसी-किसीको ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रखर उष्णताके हेतुसे श्वास वृद्धि होती है। इस तरह आहार-विहारके भेदसे भी दौरा हो जाता है। किसीको किञ्चित् अम्ल मठ्ठेसे श्वासवृद्धि होती है और इसके विपरीत किसी-किसीको प्रकृति भेदसे ऐसे मठ्ठेसे श्वासरोगमें लाभ पहुँचता है।

प्रतिश्याय होकर श्वासवाहिनियोंमें कफका प्रादुर्भाव होनेपर कुछ समय में कफावरोध होता है। फिर श्वास उत्पन्न होनेपर इस औषधका उपयोग करना चाहिये। इस रोगमें श्वासवेग होनेपर बार-बार चक्कर आकर नेत्रों के समीप अन्धकार आता रहता है तथा अग्निमांद्य, कास आदि लक्षण होते है। कफ न पड़े तब तक अधिक त्रास होता है, बार-बार खांसी आती रहती है। कफ गिरनेपर कुछ समय तक अच्छा लगता है। कण्ठमें कुछ वस्तु लगी हो ऐसा भासता है कासवेग और श्वासवेग होनेपर मुंहसे बोलना भी कठिन हो जाता है। निद्रा बिल्कुल नहीं आती। क्वचित् आँख लगी तो थोड़े ही समयमें श्वासका वेग बढ़कर पुनः ज्यादा घबराहट हो जाती है। यह घबराहट कफावरोधके हेतुसे होती है। रोगी पलंगपर सीधा लेट नहीं सकता। बैठे रहनेमें कुछ अच्छा लगता है या आगे पीछे आधार रख लेनेमें कुछ शांती मालूम पडती है। यदि जरा-सा शयन किया तो तत्काल वेग वृद्धि होकर बैठा होना पड़ता है। गरम जल गरम-गरम चाय, सेक, अंगीठी, ओढ़नेके लिये गरम वस्त्र आदिसे अच्छा लगता है। जरा-सी ठंड लगनेपर श्वास-वेग और व्याकुलता बढ़ जाते है। श्वासवेग अधिक होने पर नेत्र आधे मिच जाते है। नेत्रकी पुतली कुछ ऊपर चढ़ी हुई भासती है। प्रस्वेद आना (विशेषतः कपालपर), मुंहमें शुष्कता, आवाज न निकलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे श्वासमें श्वासकुठार रस लाभदायक है।

आकाशमें बादल घिर आने वर्षा होने तथा शीतल और आर्द्र वायु चलनेपर श्वास सहज बढ़ जाता है। इस तरह गीली जमीनपर बैठने, शीतल भोजन या कफवर्द्धक भोजन करनेपर श्वास बढ़ जाता है। शीतवीर्य और शीत स्पर्श वाली वस्तुओंसे कफ बढ़कर श्वास हो जाता है। इस प्रकारके श्वास विकारमें श्वासकुठारका अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकारके रोगोंपर समीरपन्नग भी लाभदायक है।

श्वासके अतिरिक्त मोह, मूर्च्छा, भ्रम आदिमें बेहोशी होनेपर नस्यरूपसे

इसका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—(१) पित्तज श्वास कासमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

कभी-कभी श्वासकुठारसे कितने ही रोगियोंको उष्णता बढ़ जाती है। ऐसे समयपर प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व या दाड़िमावलेह अथवा मिश्री मिले दूधका सेवन कराना चाहिये।

(७२) श्वासरोगान्तक वटी

विधि—शुद्ध सोमल १ तोला, शृङ्ग भस्म ११ तोले; सोहागेका फूला और सफेद मिर्चका चूर्ण २-२ तोले लें। सबको मिला नागरवेलके पानके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ बार शहद, मिश्री मिले हुए दूध अथवा घृतके साथ देवें।

उपयोग—नया और पुराना श्वासरोग, जिसमें कफ बहुत गिरता हो; श्वास नलिकाऐं कफसे भरी रहती हों; थोड़ासा परिश्रम करनेपर श्वास रुकने लगता हो; ऐसे रोगमें इस वटीसे जल्दी लाभ पहुँचता है। जिन रोगियोंकी पचनक्रिया अधिक दूषित न हुई हो उन रोगियोंको विशेषतः जीर्ण रोगमें घीके साथ दिया जाता है। घी २-४ तोले पिलाया जाता है।

स्व० पं० सुखरामदासजी टी० ओझा सफेद सोमल १ तोला, सफेद कत्था २ तोले और रसोई घरका धूँआ १ तोला मिला नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करा आध-आध रत्तोकी गोलियां बनाते थे। इनमेंसे १ से ४ गोली कफप्रधान श्वास रोगीको शीतल जलके साथ देते थे। भोजनके साथ घी, कड़वे तैलके पकवड़े, आमका अचार और शाकमें भी सरसोंका तैल देते थे। दूध-दही नहीं देते थे। क्वचित् रोगीको दूध लेना हो तो थोड़ा देते थे। कड़वा तैल जितना सेवन करे, उतना अधिक कफस्राव होता है ऐसा उनका कथन था।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको यह वटी न दें। वृक्क स्थान सदोष होनेसे योग्य मूत्रोत्पत्ति न होती हो तो भी यह रसायन न देवें। यकृत् निर्बल होनेसे पित्तस्राव न्यून हो तो घी अधिक न दें दूध पिलावें।

दूसरी विधि—शुद्ध वच्छनाभ, शुद्ध सिंगरफ, सोहागेका फूला और पीपलामूल २-२ तोले, पीपल, सफेदमिर्च, मुनक्का, छोटी हरड़ और मुलहठी ५-५ तोले; काली तम्बाखूके डंठलके कोयले १० तोले और केशर ६ माशे लें सबको कूट कपड़छान चूर्ण कर नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार। जल, शहद अथवा नागरबेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी तमाखूके व्यसनसे होने वाले श्वास और कासको दूर करती है। कफजन्य कास, श्वास और शूलपर शीघ्र लाभ पहुँचाती है। जुकाम, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, सूक्ष्म ज्वर और अतिसारको भी नष्ट करती है।

सूचना—तमाखूके डंठलके छोटे-छोटे टुकड़ेकर मिट्टीके बर्तनमें रखकर जलावें। निर्धूम होनेपर ढक्कनसे ढक दें, वरना राख हो जायगी। जिस दिन कोयले करें उसी रोज गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

(७३) मल्लादि वटी (श्वास-कास)

विधि—शुद्ध सोमल, वंशलोचन, इलायची और जावित्री २-२ तोलेको मिला गुलाबजलमें २ दिनमें खरल करके ज्वारके दाने बराबर गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार। दूधके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे कफ, श्वास, जुकाम, जीर्णज्वर, वमन, प्रमेह और वातविकार आदि रोग दूर होते हैं। इस औषधमें सोमलकी उष्णता अन्य शीतल औषधियोंके योगसे कम हो जाती है। इस हेतुसे जिन रोगियोंसे उग्र औषधि सहन न होती हो उनको भी यह दे सकते हैं।

अधिक धूम्रपान करने या अन्य हेतुसे कफ प्रकोप होकर श्वसन संस्थान में दीर्घकालसे अधिक कफ संग्रहीत रहता हो, तब कफ पीला और चिपचिपा बन जाता है। यह बड़े कष्टसे थोड़ा थोड़ा निकलता रहता है। श्वासनलिका और कण्ठमें कफ चिपका ही रहता है। बाहर निकालनेकी इच्छा होनेपर भी निकाल नहीं सकते। ऐसी अवस्थामें इस मल्लादि वटीका सेवन दूधकी मलाई या गो-घृतके साथ करानेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है, एवं कफकी उत्पत्ति भी कम हो जाती है। यह वटी जीर्णवात प्रकोपपर अच्छा लाभ पहुँचाती है; हृदयको सबल बनाती है और निर्बलताको दूर करती है। इस वटीका उपयोग पं० श्री सुखरामदासजी टी. ओझा प्राणाचार्य भी जुकाम और कफ प्रकोपपर अनेक वर्षों तक करते रहे थे।

(७४) श्वासदमन चूर्ण

प्रथम विधि—शुद्ध मैनसिल; भूनी हींग, बायविडङ्ग, कूठ, कालीमिर्च और सैंधानमक समान भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (र० र० स०)

मात्रा—४-४ रत्ती, दिनमें २ बार। दौरा होनेपर २-२ घण्टेसे २-३ बार शहद और घीके साथ दें।

वक्तव्य—अन्य आचार्योंने इसे कफकेसरी संज्ञा दी है।

उपयोग—इस औषधिके सेवनसे श्वास, हिक्का और कासमें लाभ पहुँचता है। हृदयावरोध और श्वासकी रुकावट तुरन्त कम हो जाती है, तथा

हिक्का और कफयुक्त कास नष्ट होती है। घबराहट होनेपर यह औषधि तुरन्त फल दर्शाती है।

इस औषधिका उपयोग आक्षेपकालमें श्वास वेगके दमनार्थ अधिक होता है। यद्यपि एफेड्रिन (Ephedrine) जो सोम (Epliedra Vulgaris) का क्षारीय सत्व है,उसकी अपेक्षा अति कम कार्य करती है। परन्तु अति उग्र औषधियोंका सेवन करनेपर सच्चा रोग दमन नहीं होता, आजीवन बार-बार उनका सेवन करना पड़ता है। इसके विपरीत आयुर्वेदिक औषधिका सेवन तत्काल लाभ नहीं पहुँचा सकता, कुछ समय लगता है; परन्तु रोग निरोधक शक्तिको शिथिल नहीं बनाता। कुछ काल तक आयुर्वेदिक औषधिका पथ्यपालनसह सेवन करनेपर सदाके लिये रोग निवारण हो जाता है।

इस औषधिमें आक्षेपहर मुख्य औषधि कूठ है और हींग सहायक है। मनःशिलादि शेष औषधियां कफघ्न है। यदि अपचन, अफारा, शूल और घबराहट हों, तो वे भी दूर हो जाते हैं। आक्षेपकालमें इस औषधिका सेवन १-१ घण्टेपर ३ बार और आक्षेप न होनेपर दिनमें २ या ३ बार कराया जाता है।

जिस तरह यह चूर्ण श्वासके आक्षेपकालमें व्यवहृत होता है, उस तरह हिक्का और हृदय विकारसह श्वासावरोध (Cardiac Asthma) पर भी व्यवहृत होता है।

यह चूर्ण पित्तवर्द्धक होनेसे अम्लपित्त विकार, मुखपाक, कण्ठशोथ या अन्य पित्तप्रधान, विकारसह श्वास कासपर प्रयुक्त नहीं होता। एवं बिना घी मिलाये इस चूर्णका सेवन नहीं कराया जाता। अन्यथा कण्ठमें प्रदाह हो जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध मैनसिल ५ तोले और गोदन्ती भस्म २० तोलेको मिलाकर खरल करें। (श्री पं० कांतिलाल जी आचार्य)

मात्रा—२-२ रत्ती, दिनमें २-३ बार। अथवा आवश्यकतापर १-१ घण्टेपर ३ बार शहद या घी-शहदके साथ देवें। आवश्यकतापर सेंधानमक मिला लेवें।

उपयोग—यह रस पित्तप्रकृति वालोंको कफ प्रकोपज श्वासप्रकोप होने पर श्वास वेग दमनार्थ दिया जाता है। इस औषधिसे सरलतासे कफ बाहर निकलता है तथा श्वासावरोध और व्याकुलता दूर होते हैं। पहली विधि की अपेक्षा यह औषध सौम्य है। तीव्र आक्षेप हो तब रसतन्त्रसारके द्वितीय खण्डमें लिखा हुआ तालीस सोमादि चूर्ण दिया जाता है। सामान्यतः उष्ण प्रकृति, उष्ण ऋतु, तमाखूके व्यसनी, मुखपाक और अम्लपित्त वाले रोगियों को यह कृति विशेष अनुकूल रहती है।

(७५) हिक्कान्तक रस

विधि—सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, ताम्रभस्म और लोहभस्मको समभाग मिला बिजौरेके रसकी ३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती, बिजौरेके रस, शहद और काले नमकसे या कारणानुसार अनुपानके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देवें।

उपयोग—यह रस हिचकीको निःसन्देह शमन करता है। इस रसायन का नाम 'रसचंडांशु' कारने सुवर्णभस्मादि योग लिखा है।

यह रस यमला, गम्भीरा और महा हिक्का तीनोंपर प्रयोजित होता है। इनमें विशेषतः यमलापर अधिकतर फलदायी है। इन तीनों हिक्काओं की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न कारणोंसे होती है। अतः मूल कारणकी ओर लक्ष्य देकर अनुपान और पथ्यकी योजना करनी चाहिये।

इन तीनोंमेंसे यमलाकी उत्पत्ति उदरस्थ अवयवों (अन्ननलिका, आमाशय, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, यकृत् या उदर्य्याकला) के प्रदाह या गर्भधारण आदि कारणसे महाप्राचीरापेशीका आक्षेप होनेपर होती है। आमाशय-प्रदाह होनेपर मुखपाक, छातीमें जलन, खट्टी वमन होते रहना, अरुचि और आमाशयमें भारीपन आदि, लघुअन्त्रका प्रदाह होनेपर अतिसार आदि बृहदन्त्रके क्षतयुक्त प्रदाह होनेपर प्रवाहिका, रक्तातिसार आदि तथा इन सबमें प्रदाह फैल जानेपर मिश्रित लक्षणोंसह यमला हिक्का उपस्थित होती है। उदर्य्याकलाके व्यापक प्रदाहमें उदरपर पीड़नाक्षमता (दबानेपर अधिक पीड़ा), आध्मान, शूल, बद्धकोष्ठ, वमन, शीतल स्वेद आदि लक्षणोंसह हिक्का उपस्थित होती है। गर्भधारणसे हिक्का हुई हो तो उसके अनुसार लक्षण मिलते हैं।

यमलाके इन सब विकारोंपर हिक्कान्तक रस उपकारक है। आमाशय प्रदाह होनेपर हिंगु, सोंठ, नमक, आदि उग्र उपचार लाभ नहीं पहुँचा सकता। शामक उपचार ही करना चाहिये। अतः मूलग्रन्थकारने बिजौरे का रस, शहद और काले नमक (मात्रा १-२ रत्ती) के अनुपानकी योजना की है। उसके साथ देवें, किन्तु जिनको अम्ल अनुपान सहन न हो, उनको त्रिफला चूर्ण और शहदके साथ दिया जाता है।

लघुअन्त्र प्रदाहमें दाड़िमावलेह या विजयावलेहके साथ, आमाशयप्रदाह और लघुअन्त्रप्रदाह दोनों होनेपर जीरकाद्यरिष्ट या कनकासवके साथ अथवा हरड़ प्रधान तालीसादि चूर्णके साथ देना चाहिये। बृहदन्त्रप्रदाहमें कुटजारिष्ट या कुटजावलेहके साथ देना विशेष हितावह है। रक्तातिसार हो तो आवश्यकता अनुसार ग्रहणी कपाट रस या कर्पूर रस मिला देना चाहिए।

अन्त्रमें दूषित मल, कीटाणु कृमि या विष उपस्थित है तो पहिले दो

तीन दिन तक आरोग्यवर्द्धिनी (त्रिफला फाण्टके साथ) देकर उदरको शुद्ध करना चाहिये। फिर हिक्कान्तक रस देनेसे लाभ पहुँचता है।

उदर्य्याकलाका व्यापक प्रदाह हो तो वेदना शमनार्थ पूरी मात्रामें अफीम देते रहना चाहिये। उसके साथ हिक्का शमनार्थं हिक्कान्तक रस पोस्तदानेके लेह या कर्पूर रसके साथ देते रहना चाहिये।

गम्भीरा हिक्काकी सम्प्राप्ति फुफ्फुसान्तरालमें उत्पन्न अर्बुदोंके दबावसे महाप्राचीरापेशीका आक्षेप होनेपर होती हैं। इनमें सौम्य अर्बुदजन्य दबाव हो या धमनीमें अर्बुदका दबाव हो तो हिक्कान्तक रससे सत्वर लाभ पहुँचता है। सच्चे अर्बुदोंपर अनुपान कट्फलादि क्वाथमें शहद, हींग और अदरकका रस मिलाकर देनेसे श्वासावरोध, पार्श्वशूल आदि लक्षणोंसह हिक्काका निवारण होता है। धमन्यर्बुद (Aneurysm) हो तो शहद और लहशुनका स्वरस या हरड़का क्वाथ अनुपान रूपसे देना चाहिये। सच्चे अर्बुदका दबाव होनेपर गात्रनीलिमा उपस्थित होती है जो धमन्यर्बुदमें नहीं होती। इसपरसे दोनोंका विभेद होजाता है।

महाहिक्का मस्तिष्कप्रदाह (Encephalitis Lethargica) (मस्तिष्कार्बुद (Cerebraltumour) से होती है। इनमें मस्तिष्कप्रदाह कीटाणुजन्य रोग है। इसमें मुख्य लक्षण मस्तिष्कके पिछले खण्डमें शिरदर्द, चक्कर आना, रोंगटे खडे होना, प्रारम्भमें १०२° से १०५° डिग्रीतक ज्वर तथा सार्वांगिक निर्बलतासह हिक्का होती है। उसपर मूलरोग शामक औषधि, सूतराज रस या महावातविध्वंसन रसके साथ हिक्कान्तक रस देते रहनेसे लाभ पहुँचता है।

यदि यमलाकी उत्पत्ति गम्भीर व्यापकउदर्य्याकलाप्रदाहसे हो; गम्भीरा की उत्पत्ति फुफ्फुसान्तरालके घातक अर्बुदसे हो तथा महाहिक्काकी उत्पत्ति मस्तिष्कस्थ घातक अर्बुदसे हुई हो तो इस मूल कारणका निवारण नहीं हो सकेगा। जिससे लक्षण रूप या उपद्रव भूत हिक्का शमन नहीं होती। फिर भी हिक्कान्तक रसका सेवन (हरड़ मिश्रित लघुमंजिष्ठादि क्वाथके साथ) कराते रहनेसे हिक्काके वेगका शमन होता है और रोगीका चित्त प्रसन्न रहता है। इस तरह इन असाध्य हिक्काओंमें भी हिक्कान्तक रसका उपयोग सफल माना जाता है।

सूचना—प्रादाहिक हिक्का होनेपर जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें। कुआँ या नदीका ताजा जल देनेपर प्रदाह और हिक्का बढ़ जाते हैं।

(७६) वान्तिहृद् रस

विधि—लोहभस्म, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, सबको ५-५ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात् घी कुँवार, धतूरेके पत्ते और चांगेरीके रसकी १-१ भावना देकर गोला बनावें। सूखनेपर ७ कपड़मिट्टी करके २

सेर गोबरीमें फूंक दें। स्वांग शीतल होनेपर खरल कर लें। (र० च०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें ३ या अधिक बार शहदके साथ दें। ऊपर पीपल वृक्षकी राखको जलमें भिगोकर उसका नितरा हुआ जल पिलावें। कृमि रोगमें वमन होती हो तो बायबिडंग, अजवायनके चूर्ण और शहदके साथ दें।

उपयोग—यह वान्तिहृद् रस जीर्ण वमन रोग, अपचन जनित वमन, पित्तप्रकोपज वमन और कृमिरोगका नाश करता है।

वमनके लक्षण अनेक रोगोंमें भिन्न-भिन्न उपस्थित होते है। सामान्यतः वान्तिके कारण ३ प्रकारके है—

(१) आमाशय और तत्सन्निध्र अवयवोंकी स्थानिक विकृति।

(२) वातवाहिनियां, वातवहा नाड़ीकेन्द्र या मानसिक विकृति।

(३) दोषदूष्य संयोगजन्य वृक्क, गर्भाशय आदि अन्य स्थानोंकी विकृति से उत्पन्न विकार।

इनमेंसे पित्तजन्य आमाशय विकृतिपर-विशेषतः पित्तके तीव्रत्व अम्लत्व और द्रवत्व गुण बढ़नेपर वान्तिहृद् रसका उपयोग किया जाता है। जीर्ण-विकार, कण्ठमें जलनसह अत्यधिक मात्रामेंके होना, साथ-साथ अफारा, भोजन करनेपर तुरन्त वमन, अङ्गकान्ति निस्तेज होजाना आदि लक्षण होने पर वान्तिहृद् रस उत्तम औषधि है।

दूषित अन्न, वासी दुर्गन्धयुक्त भोजन, गर विष, फटा हुआ दूध या ताम्र आदि धातुओंके पात्रमें रखा हुआ भोजन आदिके सेवनसे कै होने लगती है। ऐसे समयपर प्रारम्भमें वमन आदि क्रिया द्वारा संशोधन कराना चाहिये। फिर विष अनुसार प्रतियोगी विषघ्न उपचार करना चाहिये। इसपर इस वान्तिहृद् रसका उपयोग नहीं होता। केवल निज रोगोंमें यह रस उपयोगी है।

अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, अन्नद्रवशूल आदि व्याधियोंमें बार-बार त्रासदायक वमन होनेपर इसका उपयोग होता है। एवं वीभत्स पदार्थके दर्शन, भोजनमें मक्षिका आदिका प्रतीत होना या अन्य मानसिक कारणसे उत्पन्न छर्दिमें भी यह कुछ अंशमें उपयोगी है।

सर्वांगमें शोथ, पाण्डुरोग, हृद्रोग, यकृत्वृद्धि और जीर्ण ज्वर आदि जीर्ण व्याधियोंमें स्थानिक विकृति होकर वमन होती हो तो वान्तिहृद् रस का उत्तम उपयोग होता है। विशेषतः पित्तप्रधान विकार होनेपर बहुत अच्छा लाभ पहुँचाता है।

जीर्ण कृमिज हृद्रोग और कृमिज पाण्डु रोगपर इस औषधिका उपयोग करके निर्णय करना चाहिये। कृमिजन्य तीव्र विकारमें तो इसका उपयोग नहीं होता, ऐसा अनुमान है।

संक्षेपमें यह रस पित्तघ्न, आमाशयके पित्तको शमन करने वाला, जीर्ण-रोगमें हितकर, पाचक, कृमिघ्न और बल्य है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रस दूषित भोजन और विष भक्षणसे वमन होनेपर एवं उपदंश और जीर्ण सुजाकके रोगवालेको नहीं देना चाहिये।

यह औषधि मलावरोधके रोगी एवं सगर्भा स्त्रीको भी नहीं देनी चाहिये।

तीव्र वमनके रोगीको एक साथ अधिक जल न पिलावें। यदि पीपल (अश्वत्थकी) छालको जला, श्वेत भस्म बना, १६ गुने जलमें भिगो ३ घण्टे बाद ऊपरसे साफ जल नितारकर मिट्टीके घड़ेमें भर लेवें; उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा जल आवश्कतानुसार पिलाते रहें तो विशेष हितकर माना जायगा।

(७७) रसादि चूर्ण

विधि—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले कपूर ३ तोले, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले, खस ५ तोले, श्वेतमिर्च ६ तोले और मिश्री ७ तोले मिला कर खरल करें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, शीतल जलके साथ। दिनमें ३ बार दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अत्यन्त बढ़ी हुई तृषा शमन होती है। इस कारणसे यह औषधि तृषा रोग एवं अन्य रोगके तृषारूप उपद्रवमें उपयोगमें ली जाती है। मधुमेह, विसूचिका, अतिसार, मदात्यय, दाह और विष प्रकोप आदि रोगोंमें और अन्य कारणसे तृषा बढ़नेपर इस औषधिका उपयोग करनेसे अब्धातुकी प्रवृति नियमित होकर तृषा शमन हो जाती है।

(७८) कुमुदेश्वर रस

विधि—ताम्रभस्म ४ तोले और वनौषधिसे मारित वंगभस्म २ तोले मिला, मुलहठीके क्वाथकी ७ भावनायें देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनालें। (र० चं०)

मात्रा—१-१ गोली, दिनमें ३ बार लेवें। ऊपरसे निम्न चन्दनादि क्वाथ पिलावें।

चन्दनादि क्वाथ—सफेद चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर १-१ तोला और धानकी खील(लाह्या) ५ तोले मिला कर १६ गुने जलके साथ, आधा जल रहे तब तक उबालकर छान लें। फिर मिश्री और मधु मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें।

आमप्रकोपसे तृषा लगती हो तो मुलहठीके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे पित्तप्रकोप, आमप्रकोप या मधुमेह आदि रोग या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुई तृषा शमन होती है एवं वमन होती हो वह भी दूर होती है।

यह रस मूलग्रन्थमें तृषा चिकित्सामें दिया है। तृषा स्वतन्त्र रोग नहीं

है, किन्तु उपलक्षण है। इस औषधके पाठ और भावनाका विचार करनेपर यह केवल पित्तज तृषाके लिये उपकारक है, ऐसा नहीं; मधुमेहजन्य तृषा और आमज तृषापर भी उपयोगी है। मधुमेह विकार यकृत्की अशक्तिसे उत्पन्न होनेसे बार-बार अधिक मूत्रोत्सर्ग होता हो और रोगी कृश होकर ओजक्षय विशेष रूपसे हुआ हो तो भी इस रसके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है।

शुक्रस्खलनकी आदत हो जानेपर अपचन और कोष्ठबद्धता आदि विकार उपस्थित होते हैं। फिर थोड़ा-सा जड़ अन्न सेवन करनेपर वह पचन नहीं होता; और अपचन बढ़नेपर बार-बार शुक्रस्राव होता रहता है। मुखमण्डल उदास प्रतीत होता है। जीवनपर बिल्कुल निराशा-सी हो जाती है। यह रोग वर्तमानमें बहुत बढ़ गया है। इसपर कुमुदेश्वरसे जल्दी लाभ पहुँचता है। (औ० गु० ध० शा०)

(७९) राजावर्त रस

विधि—राजावर्त्त भस्म, पारद भस्म (रससिंदूर), ताम्रभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म चारों समभाग मिला, थोड़े घीके साथ मन्दाग्निपर घृत शोषण होकर औषध संमिश्रण हो जाने तक पका लेवें। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती। दिनमें २ बार, मक्खन-मिश्री या मिश्री, घी और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह रस मदात्यय रोग, दाह; शिरदर्द और पित्तविकारको दूर करता है तथा हृदयको सबल बनाता है।

मदात्यय रोगमें शारीरिक और मानसिक निर्बलता तथा निस्तेजता आजाती है। रोगीका मुखमण्डल मलीन हो जाता है। निद्रानाश, प्रलाप; नेत्रमें लाली, दाह, शीत लगना, कम्प होना, भयप्रद दर्शन होना, हृदयमें विविध प्रकारके संशय होना, अतिप्रस्वेद आना, निःश्वासमें दुर्गन्ध निकलना, आमाशयमें उग्रता आजाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। क्वचित् रोगी अधिक सुरापान कर लेवें तो उसके हृदयमें चोरी, डाका, नरहत्या, व्यभिचार आदि दुर्दमनीय कार्यकी लालसा उत्पन्न हो जाती है। इस विकारसे हृदयमें मेदवृद्धि, वृक्कविकृति, ध्वजभंग, उन्माद, मस्तिष्क विधानमें विकृति, मृगी, पक्षाघात आदि होकर आयुक्षय होता है। इस विकारमें निद्रानाश, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है। इस रसके सेवनसे मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं जिससे दाह अति प्रस्वेद और आमाशयकी उग्रता आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः शनैः रोगमुक्त होकर बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

(८०) कामदुघा रस

विधि—मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शंखभस्म,

सुवर्णगैरिक (सोनागेरू) और गिलोयसत्व इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर खरल कर लें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक। दिनमें २ बार, जीरा-मिश्रीके साथ। अम्लपित्तमें आँवलेके चूर्ण और घृतके साथ।

उपयोग—कामदुघा रस शीतवीर्य, क्षोभनाशक और शक्तिदायक है तथा पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्रमार्गपर शामक असर पहुँचाता है। कामदुघासे जीर्णज्वर, पित्तविकार, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद, अपस्मार, मस्तकशूल, सोमरोग, प्रदर, रक्त गिरना आदि शीघ्र दूर होते हैं। मगजकी निर्बलता, मूत्रदाह, मुखपाक, रक्तार्श, सगर्भा स्त्रीकी वमन, मानसिक त्रास इत्यादि भी शमन होते हैं।

कामदुघा रस शीतवीर्य होनेसे इसका शामक परिणाम पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्र मार्गपर होता है। इसके योगसे इन सब अवयव समूहोंमें उत्पन्न दाह कम हो जाता है। इसका कार्य भ्रम, चक्कर आदि विकारोंसे लेकर उन्मादकी परिस्थिति पर्यन्त मस्तिष्कके विकार, आमाशयसे लेकर सब गहास्रोतोंके विकार, मूत्राघात, मूत्रोत्सर्ग, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकार तथा सामान्य रक्तस्राव और नाकमेंसे रक्तस्राव से लेकर रक्तपित्तकी भयङ्कर स्थिति तक रुधिराभिसरण क्रिया, सब पर भिन्न-भिन्न रीतिसे होता है।

इस औषधिमें प्रधानत: सुधाकल्प होनेसे इसका उपयोग सामान्य शक्ति-वर्द्धक रूपसे भी होता है। जीर्णज्वरसे उत्पन्न शक्तिपात चाहे जितना अधिक हो तो भी इससे दूर होता है। शंख, वराटिका भस्मके योगसे प्लीहावृद्धि नष्ट होकर प्लीहाको मूल स्थितिकी प्राप्ति होती है। मन्दाग्नि दूर होकर क्षुधा उत्तम प्रकारसे लगती है। शीतसह ज्वरमें कड़वी ओषधियोंका उपयोग बहुत किया जाता है। इनमें क्विनाइनका अधिक उपयोग होनेपर बधिरता, मन्दाग्नि, भ्रम, अरुचि, अन्नकी इच्छा कम हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होनेपर कामदुघा उत्तम लाभ पहुँचाता है। यदि इन लक्षणोंके साथ निस्तेजता, उबाक, उदरमें पीड़ा होकर बड़ी-बड़ी वमन होना आदि लक्षण हों तो कामदुघाके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण करना चाहिये।

पित्त विदग्ध होनेपर रक्त भी विदग्ध होता है फिर इस हेतुसे रक्त-वाहिनियोंकी श्लैष्मिक कला विकृत होकर दीवार पतली हो जाती है। पश्चात् रक्तवाहिनियां फूट-फूटकर रक्त बाहर निकलने लगता है। इस परिस्थितिमें चूनेका अंश बहुत कम हो जाता है। इस रक्तपित्तके साथ सर्वाङ्गमें दाह, चक्कर, नेत्र खोलनेपर सारा संसार फिरता हुआ भासनेके कारण नेत्र मून्दकर पड़े रहना, अति निर्बलता भासना, मूत्रमें दाह, जहांसे रक्त गिरता हो वहांसे रक्त गरम-गरम निकलना और वहांपर दर्द होना

इत्यादि पित्तप्रधान रक्तपित्त होनेपर कामदुघाका उत्तम प्रयोग होता है।

पित्तभूयिष्ठ या वातभूयिष्ट शीर्षशूलमें कामदुघा अच्छा लाभ पहुँचाता है। कितनों ही को शिरदर्द दिनों तक होता रहता है। शिरदर्द हो-होकर वमन होनेपर शिरदर्द कम होता है। इस अवस्थामें कामदुघा रस देना चाहिये। यदि वमन हो जानेपर भी शिरदर्द रहता हो तो सूतशेखर देना चाहिये।

पित्तप्रधान शीर्षशूलमें रोगी अति क्रोधी व्याकुल, जरा-सा कारण मिलनेपर शिरको कूटने वाला, असहनशील, एवं जोरसे हँसना, जोरसे बोलना, बालकोंका रोना, बाजे आदिकी आवाज, पक्षियोंका कलरव आदि सहन न होना, रोगीकी मानसिक स्थिति अत्यन्त नाजुक हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे रोगीको सूतशेखरकी अपेक्षा कामदुघा अधिक हितकर है। इस विकारमें पित्तप्रकोप होता है; वह कामदुघासे शमन हो जाता है। सूतशेखरसे पित्तकी उत्पत्ति नियमित बनती है अर्थात् पित्त अधिक तीव्र गतिसे या अधिक परिमाणमें उत्पन्न नहीं होता। कामदुघासे पित्तकी तीक्ष्णता और अम्लता कम होकर पित्तकी प्रबलता नष्ट होती है। अतः जब पित्तकी तीक्ष्णताके हेतुसे त्रास होता हो तब कामदुघाका उपयोग करना चाहिये।

जागरण, अति मानसिक श्रम, अति विद्याभ्यास, सूर्यके ताप या अग्नि का अधिक सेवन आदि कारणोंसे नेत्रोंमें त्रास पहुँचता है एवं शिरदर्द होने लगता है उसपर कामदुघा रस अति लाभदायक है। यदि क्षोभ बढ़ जाने पर मस्तिष्ककी विचार और धारणाशक्ति कम हो जाती हो तो उस अवस्थामें कामदुघा सदृश क्षोभनाशक और शक्तिदायक औषधिकी ही योजना की जाती है।

आमाशयस्थ पित्तमें वृद्धि होनेपर जलन, खट्टी डकारें, शिरदर्द, चक्कर आदि लक्षण होकर खट्टी और कड़वी वमन हो, उसे अम्लपित्त कहते हैं। इस विकारमें पित्तस्राव आवश्यकतासे अधिक होता है या पित्तकी तीव्रता बढ़ जाती है। पित्तका स्राव अधिक होनेसे भोजन खट्टा हो जाता है और खट्टी वान्ति होती है; ऐसे समयपर सूतशेखरका प्रयोग अधिक होता है। परन्तु पित्तकी तीव्रता अधिक होकर वमन होनेमें अधिक त्रास होना, पित्त थोड़ा-थोड़ा निकलना आदि लक्षण होनेपर कामदुघाका प्रयोग करना चाहिये। अनुपान रूपसे आँवलेका चूर्ण और घी या नागकेशरका चूर्ण और घी मिला देना चाहिये; जिससे पित्तकी तीव्रतासे बाधा न पहुँचते हुए अम्लपित्त शमन हो जाता है। यह अम्लपित्त रोग बढ़ जानेपर पित्तकी तीव्रता और भोजनके विदाहसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ और दाह होते है। फिर क्वचित् सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रणोंकी उत्पत्ति होती है। इस

तरहके अम्लपित्त जनित विकारोंपर कामदुधाका उत्तम उपयोग होता है।

यह रसायन शीतवीर्य (शामक) होनेसे पित्तकी तीक्ष्णताका शमनकर उसे सौम्य बना देता है। इस औषधमें गेरु अति शामक और स्तम्भक औषधि होनेसे पित्तका स्राव भी कम हो जाता है। कामदुधाके योगसे रक्त और रक्तवाहिनियोंका प्रसादन होता है फिर क्षोभ दूर हो जाता है। पित्तातिसार और रक्तातिसारपर कामदुधाकी शामकता प्रतीत होती है। इस औषधिके योगसे अन्तस्त्वचाका क्षोभ शमन हो जाता है। रक्तातिसार और पित्तातिसारमें लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी अन्तस्त्वचाका क्षोभ हो जाता है। उदरमें दाह होता रहता है। जल पीनेकी बार-बार इच्छा होना, शौचादि जानेपर गुदामें जलन, ये सब पित्तप्रकोपजनित लक्षण होनेपर कामदुधा रस उत्तम कार्य करता है।

विदग्ध पित्तके योगसे रक्तका विदाह होता है। इस हेतुसे रक्तमें तीक्ष्णत्व आदि पित्तके धर्मोंकी वृद्धि हो जाती है। ऐसे गुणवाला रक्त जब रक्तवाहिनियोंमें वहन करता रहता है तब रक्तवाहिनियोंकी अन्तस्त्वचा अधिकाधिक पतली होती जाती है। फिर कुछ क्षोभोत्पादक कारण मिलनेपर रक्तवाहिनियां फूटकर उनमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। इन सबमें विदग्धपित्त कारण है, और रक्तपित्त कार्य है। इसपर प्रवाल-मुक्ता आदि औषध का उपयोग होता है। परन्तु इनमें स्तम्भकपना न होनेसे कितनी ही विशेष अवस्थामें कामदुधाकी योजना करनी चाहिये। बार-बार रक्त पड़ते ही रहना, रक्तस्राव बन्द हुआ भी तो बहुत थोड़े समयके लिये। एक स्थानपर बन्द होनेपर अन्य स्थानपर पुनः प्रारम्भ हो जाना रक्तमें जमकर संधान करनेकी क्रिया मन्द हो जानेसे रक्त गिरते रहना, सर्वाङ्गमें दाह, हाथ-पैर, नेत्र और मूत्रमें जलन, पंखेसे वायु ढालते ही रहना, मस्तिष्क फिरता हुआ सा रहना, घर, आकाश आदि फिरनेका भास होना, कभी चक्कर विकार बढ़कर मूर्च्छा आजाना आदि लक्षण होनेपर कामदुधा उत्तमकार्य करता है।

पित्तदोषकी विकृतिसे पचन-क्रिया विकृति होती है। फिर उदरमें सेन्द्रिय विषका निर्माण होता है, यह पित्त-गुणभूयिष्ठ होता है। इसका प्रकोप होनेपर उन्माद सदृश विकार उत्पन्न होता है। इस घोर दोष संचयका परिणाम मनोवृत्तिपर होता हैं; जिससे अल्पसत्व मनुष्यका मन चंचल होता है। उसमें चल विचलता होकर विभ्रमावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है। इसे ही उन्माद कहते हैं। इस विकारमें बुद्धिका विभ्रम, मनकी अस्थिरता, दृष्टिकी अस्थिरता, चंचल और व्याकुल नेत्र, धैर्य नाश, इच्छानुसार असम्बद्ध प्रलाप, हृदयमें अकस्मात् शून्यता आजाना, बार-बार चक्कर आना, चक्कर आकर बेहोशी आजाना, आदि लक्षण होनेपर कामदुधारस उत्तम कार्य करता है।

हृदयके विकारमें पित्तप्रकोपके लक्षण अधिक होनेपर कामदुघाका उपयोग करना चाहिये । इसमें हृदय और नाड़ीकी गति बढ़ना, बार-बार चक्कर आना; हृत्स्पन्दन और अन्य पित्त-लक्षण बढ़ जाना आदि विकार प्रतीत होते हैं ऐसी परिस्थितिमें कामदुघा हितकारक है ।

सर्वाङ्ग शोथमें व्याकुलता, चक्कर, अकारण थकावट, उत्राक, वमन, शिरदर्द, उदरमें दाह आदि पित्तलक्षण प्रकाशित हों, इस विकारमें यदि मूत्रका परिमाण अति कम हो तथा मूत्र लाल, गाढ़ा हो तो तीव्र क्षारप्रधान मूत्रल औषध लाभ नहीं पहुँचा सकती । तीव्र औषधि देनेपर वृक्कोंका दाह अधिक बढ़कर शोथवृद्धि हो जाती है । अत: शामक औषधका उपयोग किया जाता है । यदि शामक मूत्रल औषधि दी जायेगी तो वृक्कोंको अधिक कार्य करना पड़ता है । वह भी कितनी ही अवस्थामें इष्ट नहीं होता। केवल क्षोभनाशक, शीतवीर्य, प्रसादन औषधका अधिक उपयोग होता है । यह कार्य कामदुघासे होता है । कामदुघा शीतवीर्य होनेसे मूत्रपिण्डोंको होनेवाला त्रास विशेषांशमें कम हो जाता है । यह शामक होनेसे रक्तका प्रसादन करके शोथको कम कराता है । अत: वृक्कविकार जनित पित्तप्रधान सर्वांग शोथमें कामदुघाकी योजना करनी चाहिये ।

गवीनियों (Ureters) में से मूत्र निकलनेके समय दाह और वेदना होना, स्रोतसे स्फोटयुक्त फटी-सी हो जाना आदि लक्षण होनेपर कामदुघा का प्रयोग कराना चाहिये ।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें कामदुघा उपयोगी है । सगर्भावस्थामें कड़वी, खट्टी जलती हुई वमन होती हो तो वह भी कामदुघा रसके सेवनसे शमन हो जाती है ।

बालकोंकी काली खाँसीपर उपयोगी औषधियोंमें कामदुघा रस उत्तम औषधि है । अति निर्बलता आनेपर और आमाशयमें अधिक उग्रता होनेपर अन्य औषधियां जब निष्फल हो जाती हैं तब यह लाभ पहुँचा देता है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(८१) गंधक रसायन

प्रथम विधि—शुद्ध गंधकको गायके दूध, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) का क्वाथ, गिलोयका स्वरस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इनका अलग-अलग क्वाथ, भाँगरेका रस ओर अदरकका रस इन वस्तुओंकी आठ-आठ भावनायें दें; सुखाकर बारीक चूर्ण करें । (यो० र०)

कितने ही चिकित्सक आठ-आठ भावनाओंके स्थानपर केवल एक एक भावना देते हैं । अधिक भावनायें देनेसे गुणमें वृद्धि होती है ।

मात्रा—आधसे १ माशे तक दिनमें दो बार; समभाग मिश्री मिलाकर

दूधके साथ सेवन करें। कुष्ठ रोगमें दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, अनन्तमूल, आँवला, गोखरू, गिलोय, काले खैरकी छाल, चोपचीनी और नीमकी निबोलीके क्वाथके साथ एक मास तक सेवन करें। फिर एक मास छोड़ देवें। पुनः प्रारम्भ करें। इस तरह ३ वर्ष तक सेवन करनेसे कुष्ठ शमन हो जाते हैं।

उपयोग—इस गन्धक रसायनके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि और शरीरकी दृढ़ता होती है, पाचनशक्ति बलवान बनती है। खाज, कुष्ठ और उग्र विष-दोष दो मासके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। घोर अतिसार, ग्रहणी रक्त और शूल सहित ग्रहणी, जीर्णज्वर, प्रमेह, वातरोग, उदररोग, अण्डकोष वृद्धि और सोमरोगको यह रसायन दूर करता है। ६ मास सेवन करनेसे बाल काले हो जाते हैं और युवावस्थाके समान बलकी प्राप्ति होती है। संक्षेपमें यह रसायन अनेक व्याधियोंको दूर करता है। बिल्कुल मरण तुल्य शरीर वालोंको भी बलवान्, नीरोग और दीर्घ आयु वाला बनाता है। वीर्यकी वृद्धि करता है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषोंमेंसे बढ़े हुएको घटाता है और घटे हुएको बढ़ाता है। जीर्णज्वर, जीर्ण रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, क्षय, श्वास, अर्श आदि रोगोंको दूर करके शरीरको तेजस्वी बना देता है।

इस गन्धक रसायनके साथ यदि रससिंदूर या सुवर्ण भस्मका सेवन किया जाय तो बलवृद्धिके लिये विशेष लाभ पहुँचता है।

इस गन्धक रसायनके गुण पाठमें अनेक प्रकारकी व्याधियोंके नष्ट करने का लिखा है, परन्तु इसको एक विशेष प्रकारकी दोष-दूष्योंकी संगति चाहिये। इसका कार्यक्षेत्र रक्त और त्वचा है। किसी भी कारणसे रक्त दूषित हुआ हो, तो उसे शुद्ध बनाना यह धर्म इसमें मुख्य है। ऐसे ही शरीर में संचित हुए विकृत द्रव्योंका रूपान्तर और भेदन करके शुद्ध बनानेका कार्य भी करता है।

रक्तकी अशुद्धिके हेतुसे रस आदि सप्त धातुओंमें मलिनता उत्पन्न होने पर उनका धर्म अर्थात् आवश्यक तत्वोंके संशोषण और रूपान्तर करके आत्मसात् करनेका गुण मन्द हो जाता है। फिर रक्तका संशोधन कर धातुओंके इस धर्मको पुनः प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता है। यह कार्य इस रसायनसे उत्तम प्रकारसे साध्य होता है।

समस्त शरीरमें संचारित विशेष प्रकारका विष दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेसे सप्तधातुओंमें लीन होकर विविध प्रकारकी चिरकारी और जिद्दी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकारके दोष-दूष्योंके जीर्ण संयोगमें यह अमृतवल्लीके सदृश कार्य करता है।

इस स्थानपर विष दो प्रकारके विवक्षित हैं—(१) स्थावर जंगमात्मक

तीव्र, (२) शरीरके भीतर शारीरिक सूक्ष्म कोषाणुओंसे उत्पन्न होनेपर तीव्र या मन्द-सामान्य विष और उपदंश, सुजाक आदि रोगोंके विशिष्ट विष। इन दोनों प्रकारके विषोंको जीर्णावस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

गन्धक रसायन जिन रोगोंमें उपयोगी होता है उन रोगोंमें मुख्य लक्षण दाह होना चाहिये। मूत्रमें जलन, हाथ-पैरोंमें दाह, उदरमें दाह, समस्त शरीरमें दाह, मस्तिष्कके भीतर, कण्ठ, जिह्वा आदिपर दाह, शौच जलता हुआ होना, अधोवायु उष्ण निकलना, किञ्चित् चलने-फिरनेपर सर्वाङ्गमें जलन सी हो जाना, हाथ-पैर किसी स्थानपर रखनेपर दाह होना, हाथ पैरोंपर शीतल जलकी पट्टी रखनेकी इच्छा होना आदि लक्षण होनेपर पित्तकी तीक्ष्णता समझनी चाहिये। ये लक्षण किसी विशिष्ट विष (संक्रामक कीटाणु) का देहमें संचय होनेपर ही होते हैं। उपदंशकी जीर्णावस्थामें गन्धक रसायनके अतिरिक्त उपदंश सूर्य, अष्टमूर्ति रसायन, मल्लसिंदूर, व्याधिहरण आदि औषधियाँ दी जाती है। परन्तु ये सव दाह अत्यधिक होनेपर उपयोगमें नहीं आती। उपदंशसूर्यादि मल्लप्रधान औषधियाँ उपदंश के कीटाणुओंके लिये मारक हैं तो भी विविध दोष-दूष्य संयोगोंके अनुरोध से आयुर्वेदकी दृष्टिसे विविध चिकित्सा करनी पड़ती है। यह उपदंशज विष अथवा पूयशुक्र (Gonorrhoea) जनित विष, क्षुद्र कुष्ठजनक सेन्द्रिय विष या अन्य सेन्द्रिय विश इनमेंसे किसीके योगसे पित्तदोष बढ़कर पित्त रक्तस्थित होनेपर दाहके उपरोक्त लक्षण होते हैं। इस दोष-दूष्य संयोगमें यह विशेष उपयोगी है।

त्वचापर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका या स्फोट, अतिशय शुष्क खुजली होना, शोच-शुद्धि न होना, देहपर अति खुजानेसे उस स्थानपर दाह होना, कभी रक्त निकल जाना आदि लक्षण होनेपर इसे मिश्रीके साथ देना चाहिये। शुष्क कण्डूके सदृश दीर्घकाल स्थायी ओर त्रासदायक पामापर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

खुजलीके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु (Parasites) होते हैं जो अति जिद्दी ओर त्रासदायक होते है। गंधक रसायनके सेवनसे इन कीटाणुओंको पोषण मिलना बन्द हो जाता है। इस हेतुसे रक्त और त्वचामें कीटाणुका बल न्यून होकर रोग शमन होने लगता है। इसके सेवनसे दो-तीन दिनोंके भीतर पामा आदिके फोड़े बड़े हो जाते हैं, जिससे किंचित् विकार बढ़नेका भ्रम होता है; परन्तु यह सचमुचमें इसके लागू होनेके चिह्न हैं। वर्षानुवर्षपर्यन्त त्रास भोगने वाले रोगी गन्धक रसायनके सेवनसे सुधर गये है। जितना विकार जीर्ण हो उतना ही यह अधिक कार्य करता है।

पामा सदृश अन्य क्षुद्र कुष्ठमें भी गन्धक रसायनका उपयोग होता है। मात्रा १-२ रत्ती तक। जैसे-जैसे रोग बल कम हो, वैसे-वैसे मात्रा कम

करनी चाहिये। यहां तक कि एक सप्ताहमें एक बार केवल एक ही रत्ती, त्वचा साफ होनेतक देते रहना चाहिये।

मस्तकपर फोडे होकर उनमेंसे दुर्गन्धयुक्त गांठ निकलना, सफेद या पीला पूयस्राव होना आदि विकारोंपर गन्धक रसायनकी अपेक्षा रसपर्पटी अधिक हितकर है। परन्तु इन फोड़ोंमें ही शुष्कता, कण्डू, ऊपर सफेद त्वचा निकलते रहना, खुजानेपर अतिशय दाह होना आदि लक्षण हों तो उसपर यह अप्रतिम औषध है। मस्तकपर इन्द्रलुप्त होनेपर मस्तकमें जलन होती हो तो इसका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

महाकुष्ठमें विशेषत: पित्तप्रधान महाकुष्ठोंमें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। परन्तु इनमें भी विशेष लक्षण दाह होना चाहिये। कुष्ठ शुष्क और न फूटा हुआ हो एवं इसका विष रक्त और त्वचा पर्यन्त प्रवेशित हो देहपर उत्पन्न धब्बे या स्फोटोंमें लाली, खुजली और दाह विशेष हो तथा सर्वत्र त्वचामें कुछ-कुछ जलन होती हो तो इसे देना चाहिये। इस कुष्ठपर अनुपानरूपसे विवेचनके प्रारम्भमें लिखा हुआ दार्व्यादि क्वाथ देनेसे कुष्ठ दूर होनेके उदाहरण मिले हैं। यह प्रयोग सतत तीन वर्ष पर्यन्त करना पड़ता है।

पामा दब जानेपर अनेक बार विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है। कितनी ही बार तो पामा और अन्य विकार घटमालके समान एक पीछे एक क्रमश: होते और मिटते रहते हैं। अर्थात् पामा मिटनेपर दूसरा रोग उत्पन्न होता है और उसे शमन करनेपर पामा तैयार हो जाता है। यह रोगानुबंध क्रम दीर्घकालपर्यन्त सतत चलता रहता है। ऐसे विकारोंपर यह उत्तम कार्यकर औषध है। क्वचित् पामा बिल्कुल शमन होकर दूसरे रोगके निदानार्थंकर होती है। फिरसे पामाकी उत्पत्ति नहीं होती परन्तु नया उत्पन्न रोग दीर्घकाल पर्यन्त त्रास देता रहता है। अतिसार, संग्रहणी, शीर्षशूल, मुखपाक, उदरमें वायुकी गुड़गुड़ाहट और दाह आदि विकारों में से कोई उत्पन्न होनेपर यह लाभदायक है। मात्रा अति कम देनेसे अति उत्तम कार्य होता है।

उपदंशका जीर्ण विष, अन्य दूषी विष, पारद विष (दूषित रसकपूरका सेवन, हिंगुलका धूम्रपान या अन्य) और जंगम विषकी जीर्णावस्था आदि कारणोंसे घोर अतिसार या संग्रहणी रोग होना, साथमें रक्त और आम जाना, उदरमें कतरनेके सदृश या शूलके समान वेदना आदि लक्षण होनेंपर यह अत्यन्त उपयुक्त है।

उपदंश या अन्य सेन्द्रिय विषकी जीर्णावस्थामें उत्पन्न प्लीहा-वृद्धि और अग्निमांद्यके साथमें यदि सर्वांगमें दाह हो तो गन्धक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

प्रमेह और मधुमेह ये स्थूल और अति कृश मनुष्योंको भी हो जाते हैं। स्थूल मनुष्यको गुग्गुलु, शिलाजतु, त्रिफला आदि अधिक हितकारक हैं तथा कृश मनुष्योंमें जिनको जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग हो जानेसे ये विकार हुए हों उनको गन्धक रसायन देना चाहिये।

उपदंश आदि रोगोंका विष जीर्ण हो जानेपर वातवाहिनियोंपर असर पहुँचाता है, तब वातवाहिनियोंकी विकृति होकर सर्वांगवात, पक्षाघात अथवा अन्य शारीरिक व्यापारको नष्ट करनेवाला रोग उत्पन्न होता है। ऐसे विकारोंपर यह उत्तम कार्य करता है। इस शारीरिक व्यापारकी न्यूनताका परिणाम अन्त्रपर होनेपर अन्त्र बिल्कुल अशक्त हो जाती है। फिर कोष्ठ बद्धता, मलमें सुपारीके सदृश गांठे हो जाना, गांठोंका बाहर निकालनेकी शक्ति अन्त्रमें न रहना, उदरमें अशक्ति और दाह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं उसपर पहिले स्नेहन करा फिर गन्धक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

उपदंशकी जीर्णावस्थामें सांधोंमें शोथ, दांतोंमेंसे रक्तस्राव, सारे शरीर में स्थान-स्थानपर गांठें होना, रक्तवाहिनियाँ मोटी-मोटी हो जाना, खड़े रहनेकी शक्ति नष्ट होना, हाथ पैरोंमें कम्प होना, कभी-कभी विकारकी तीव्रता बढ़नेसे जमीनपर पड़े रहना, छाती और सर्वांगमें शूल चलना हृदयमें खुजली चलना, सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकायें निकलना आदि लक्षण होनेपर गंधक रसायन उत्तम काम करता है।

पूयशुक्रकी जीर्णावस्थामें सर्वाङ्गमें दाह, अण्डकोष बढ़कर उसमें पीड़ा होना, उसपर थोड़ा शोथ आजाना, मूत्रोत्सर्ग करनेपर मूत्रप्रसेक नलिकामें दाह होना, मूत्राशयके मुख या मूत्रप्रसेक नलिकापर दबानेसे पीड़ा होना, उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा पूय निकलना आदि लक्षण होते हैं। इसपर गन्धक रसायनने अनेक बार उत्तम लाभ पहुँचाया है। कभी पूयशुक्रके विषसे नेत्रोंमें शूल, समग्र शरीरमें शूल और दृष्टिनाश आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उन्हें भी यह रसायन दूर करता है। ऐसी तीव्रावस्थामें गन्धक रसायनके साथ खखसाके फूल ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर दिनमें ३ समय देते रहनेसे लाभ त्वरित होता है। साथमें बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये।

अबुध जन स्त्रियोंके पूयशुक्र और प्रदर दोनोंको अज्ञानके हेतुसे एक ही मान लेता हैं। जब कि पूयशुक्र-मूत्रवाहिनी और मूत्राशयका रोग है तथा प्रदर अपत्य मार्ग, गर्भाशय और बीजाशयका रोग है। पूयशुक्रमें स्राव मूत्रमार्गसे और प्रदरमें स्राव अपत्यमार्गसे होता है। पूयशुक्र रोग जीर्ण होनेपर उसके किटाणु अपत्य मार्गद्वारा गर्भाशयमें पहुँचकर उसे दूषित करते हैं। फिर गर्भाशयमेंसे भी पूयस्राव होने लगता है। परन्तु इस स्राव और प्रदरके

स्रावमें अत्यधिक अन्तर है। यह स्राव पीला दुर्गन्धयुक्त और दाहक होता है। साथमें जलन, सर्वाङ्गमें दाह, शिथिलता, हाथ-पैर टूटना आदि पित्त-प्रधान लक्षण होते हैं। इस प्रकारके विकारमें यह उत्तम उपयोगी है।

अर्श रोग अनेक हेतुओंसे होता है। यदि कोष्ठबद्धतासे उत्पन्न हो तो आरोग्यवर्द्धिनी हितावह है। बड़ी अन्त्रके कुण्डलिका-भाग (Sigmoid) और उण्डुक (Caecum) में शिथिलता आनेसे त्रिबलीपर दबाव आकर अर्श उत्पन्न हुए हों, उसकी किनारी सूज गयी हो, गरम-गरम जल गिरता हो, कुण्डलिका और उण्डुकमें दाह, व्याकुलता आदि लक्षण हों तो इसका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

अर्श रोग आनुवंशिक भी होता है। इस तरह अन्य रोगोंमें उपद्रव रूप से हो जाता है। किसी-किसी रोगीमें अर्श, कास और श्वास, किसी-किसी में अर्श और संग्रहणी एवं कितने ही रोगियोंमें अर्श और अपस्मार, इस तरह विकारोंके द्वन्द्व अर्थात् एक शमन होनेपर दूसरा घटमाल सदृश क्रमशः होता रहता और मिटता रहता है। इन द्वन्द्वोंपर गन्धक रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

नेत्रकी किनारी लाल लाल हो जाना, भीतरसे तीक्ष्ण बाष्प निकलना, नेत्रमें अतिशय खुजली चलना, दाह, फिर पूयाभिष्यन्द भी हो जाता है यदि इसमें मूल कारण, पारदका अधिक सेवन अथवा सुजाक या उपदंश विष हो तो इसका उपयोग करना चाहिये।

नासाव्रण शुष्क और दाहयुक्त, उपजिह्व-अधिजिह्व दाहयुक्त छोटे बच्चों को होने वाला तालुकण्टक, तालुके भीतर छिद्र हो जाना, कण्ठमें पिटिका हो जानेसे शुष्क कास चलना और दाह होना आदि विकार होनेपर गन्धक रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

जीर्ण नाड़ीव्रण, जीर्ण अस्थिव्रण, जीर्ण मांसगत व्रण इन रोगोंमें पूय कम हो परन्तु दाहयुक्त लसीका स्राव, व्रण स्थानपर भयंकर जलन, वह इतनी अधिक कि रात-दिन व्याकुलता बनी रहना, व्रणके प्रत्येक किनारेकी और मिर्च लगानेके सदृश जलन आदि लक्षण होनेपर इससे अति सत्वर लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

दन्तव्रण (Pyorrhoea) या दंतपुप्पुट होनेपर मसूड़ेमें जलन, मसूडेपर जरा-सा धक्का लगनेपर रक्तस्राव होना, दाहयुक्त पूय निकलना, फिर यही विकार जीर्ण होनेपर अग्निमांद्य, छर्दि, शूल, विष, अन्त्रमें जानेपर ग्रहणी अतिसार, यकृत् आदि इन्द्रियोंके चिरकारी विकार हो जाना, पश्चात् इनसे दूष्योदर होना. जिसमें घबराहट, मूत्र बिलकुल कम हो जाना, मूत्र लाल हो जाना, सर्वाङ्गमें दाह आदि लक्षण होते है। उनपर यह उत्तम कार्य करता है। अन्य प्रकारके दूष्योदरमें भी यदि पित्त लक्षण अधिक हो, तो इसका अप्रतिम उपयोग होता है।

विशेष किसी भी प्रकारके स्पष्ट कारण न होनेपर रोगी दिन-प्रति-दिन निर्बल होता जाता है और बलमांस विहीनत्वकी प्राप्ति होती है। अन्तरेन्द्रियमें जो-जो अवयव समूह अशक्त होते जाते है कितनी ही सूक्ष्म जांच की तो भी रोगका विशिष्ट कारण नहीं मिलता। असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग समान सामान्य कारण मिलता है। ऐसे रोगमें उत्पन्न हुए बलमांसविहीनत्व नष्ट हुए वीर्य, लुप्त हुई शक्ति, मन्द हुई अग्नि, शिथिल हुए स्नायु इन सबको सम-स्थितिमें लाकर योग्य कार्यक्षम बनानेकी शक्ति गन्धक रसायन और षडगुणबलिजारित रससिन्दूरमें है। रससिन्दूर सेवन योग्य रोगीकी अवस्था रससिन्दूरके विवेचनमें दी है। पित्तप्रधान लक्षणपर गन्धक रसायन और कफप्रधानपर रससिन्दूर लाभदायक है। (औ गु.ध.शा.के आधारसे)

पथ्य—शक्कर, साठी चांवल, गोघृत, केला, सेंधानमक, आमके पक्के मधुर फल, दालचीनी, पुराना शहद, मांस, नागरबेलका पान, सुपारी-कत्था आदि।

अपथ्य—नमक, खट्टे पदार्थ, शाक-भाजी, सब प्रकारकी दालें चाय, कॉफी, तैल, गुड़, बीड़ी या सिगरेट पीना, स्त्री-प्रसंग सवारीपर बैठना और कसरत और अग्नि सेवन और सूर्यके तापसे हो सके उतना बचना चाहिये।

गन्धक रसायनमें मुख्य द्रव्य गन्धक है। गन्धकका सेवन करनेपर उसमें से गन्धक मल, मूत्र, दुग्ध, स्वेद और निःश्वास द्वारा बिना परिवर्तन हुए निकल जाता है। मलमें ५५ से ८०% और मूत्रमें १० से ४०% निःश्वास में दुर्गन्ध निकलनेसे उसमें और स्वेदमें निकलनेसे पहने हुये चांदीके जेवरों में और त्वचापर श्यामता आ जाती है।

गन्धक अन्त्रकी परिचालन क्रियाको उत्तेजित करता है, मलको मुलायम बना देता है, उदरमें गन्धकमय हाइड्रोजन गैस उत्पन्न करता है जिससे अपान वायु और दस्तमें दूर्गन्ध आती है।

गन्धक विषका दूरवर्ती असर—गन्धकका शोषण रक्तमें सल्फाइड्स (द्विविद्ध प्रतिक्रिया युक्त गन्धक मिश्रण) और गन्धकात्मक हाइड्रोजन रूपसे होता है जो प्रबल विष है। वह पहिले रक्त रंगका ह्रास करना है फिर रक्त रंगका विश्लेषण। परिणाममें देहपर नीलता, बेहोशी और मांसपेशियोंकी शिथिलता आती है। अतः गन्धकका सेवन अधिक मात्रामें नहीं करना चाहिये।

किन्तु गन्धकमेंसे गन्धक रसायन बनानेपर गन्धककी तीव्रताका कुछ अंशमें शमन होता है। जिससे रक्तके भीतर रक्त रंगको हानि नहीं पहुँचाती। उदरमें हाइड्रोजनकी उत्पत्ति नहीं होती और मांसपेशियोंके बलका ह्रास नहीं होता। मन्दगतिसे स्थिर कार्य होता रहता है। चिरकारी जीर्ण

रोगमें गन्धककी अपेक्षा गन्धक रसायनका उपयोग कम मात्रामें ज्यादा समय तक करनेपर दुराग्रही स्थिर रोगोंमें भी अच्छा परिणाम आता है।

गन्धक रक्तमें जानेपर वहाँ रहे हुए त्वचा रोगोत्पादक (ब्यूची, पामा, कण्डू आदि रोगोंके) कीटाणुओंका नाश करता है।

अन्त्रमें जाकर वहाँपर अवस्थित हानिकर कीटाणु और आमविष को जला देता है। अपचन, प्रतिश्याय, अन्त्रप्रसेक, शीशा (नाग) विष, जीर्ण आमवात, वातरक्त, संधिप्रदाह और आम विषसे उत्पन्न अनेक रोगोंमें विकारको जलानेके लिये गन्धक उपयोगी है।

यकृत् प्रदाह पित्ताशयप्रदाह आदि रोगोंमें यकृत्को अधिक कार्य नहीं देना चाहिये। इसलिये घृत तैल आदिका सेवन कम किया जाता है। इसके अतिरिक्त यकृत् उत्तेजित न हो यह भी सम्हालना पड़ता है। इस हेतुसे सोंठ, मिर्च, पीपल आदि उत्तेजक औषधियाँ या उत्तेजक भोजन भी नहीं दिया जाता है। ऐसी अवस्थामें गन्धक रसायनका उपयोग शामक अनुपान नींबू, संतरा, मोसम्बी या अनारके स्वरसके साथ कराना चाहिये।

यदि आमाशयमें अम्लताकी वृद्धि या उग्रता आई हो, रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो और अपचन प्रधान विकार हों तो रक्तको क्षारीय बनाये ऐसा मिश्रण बनाकर गन्धक रसायनका सेवन कराया जाता है। मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, शंख, वराटिका इनपर सुधाकल्प मिश्रण अति हितकारक है। इस दृष्टिसे प्रवाल पंचामृत मिला दिया जाता है। भोजनमें चावलका सेवन कम कराया जाता है। खट्टे फल, खट्टा दही, गरम-गरम भोजन छुड़ाया जाता है। आमाशय रस अम्ल बननेपर आँवला और पेठा दोनों हितकर हैं। अतः अनुपानरूपसे आँवलोंका या पेठेका शर्बत दिया जाता है।

त्वचा रोग होनेपर सर्वदा कोष्ठशुद्धि होती रहे वैसी औषधि और भोजन देना चाहिये। इस हेतुसे त्वचा रोगपर गन्धक रसायनका सेवन गुलकंद या आँवलोंके मुरब्बेके साथ कराया जाता है।

कफवृद्धि हो या आमवृद्धि हो, ऐसी अवस्थामें शहद पीपलका योग सत्वर गुणदायी होता है।

सूचना—कदाचित् शक्तिसे अधिक परिमाणमें गन्धक रसायनका सेवन होगा तो उदरमें मरोड़े हो जायेंगे। इसलिये थोड़े परिमाणमें ज्यादा दिन तक लेना अच्छा है अथवा मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिये।

(८२) उन्मादगजकेसरी रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मैनसिल १-१ तोला और धतूरे के शुद्ध बीज ३ तोले लेवें। सबको यथा विधि मिला बच और रास्नाके क्वाथकी ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां अथवा सूखा चूर्ण बना

लेवें। रसराजसुन्दरमें रास्नाके स्थानमें ब्राह्मीकी भावना लिखी है शेष पाठ समान हैं। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक। दिनमें २ बार, मक्खन-मिश्री अथवा घृत और सफेद मिर्चके साथ देवें।

उपयोग—यह रस उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर आदिको दूर करता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्रसन्न तथा सब धातुओंकी विकृति को शमन करके प्रकृति साम्य बनाता है। जब वातप्रकोप अधिक हो, शरीर रूक्ष कृश, शुष्क होगया हो, त्वचाका रङ्ग कुछ श्याम प्रतीत होता हो; भोजन जीर्ण होनेपर व्याधिका बल बढ़ता हो, उसपर और अपस्मारमें यह रसायन लाभदायक है। इन तीव्र लक्षणोंमें रास्नायुक्त भावना लाभदायक है और जिसको ज्वर दाह, निद्रानाश और बुद्धिविकृति विशेषांशमें ही, वातप्रकोप आदि चिन्ह सामान्य हों उसके लिये ब्राह्मीकी भावना हितकर है

भूतोन्माद, जिसमें पहलेके प्राप्त ज्ञानकी स्मृति आनेपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देना या वार्तालाप करना, उन्मादके वेगका समय अनिश्चित रहना; और कफोन्माद, जिसमें अरुचि, निस्तेजता, तन्द्रा, अतिनिद्रा, वमन, लालास्राव आदि लक्षण हों, इन दोनों प्रकारके उन्मादमें ब्राह्मीकी भावना वाला रसायन अच्छा काम देता है। एवं मानसिक चिन्ताजनित और पित्तप्रधान उन्माद जिसमें क्रोध, निद्रानाश, रक्तवर्ण, दौड़ा-दौड़ी, या मारपीट करना आदि लक्षण हों उसमें यह रसायन बहुत थोड़ी मात्रामें ब्राह्मी घृत या ताजे दूधके साथ देना चाहिये। अथवा ताप्यादि लोहका सेवन कराना चाहिये।

सूचना—भोजन पथ्य दें। सूर्यके ताप या अग्निका सेवन धूम्रपान और मानसिक चिन्ताको छुड़ा दें तथा मनको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करें।

(८३) भूतभैरव रस (उन्माद)

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध तपक्रिया हरताल, शुद्ध मैनसिल, लोह भस्म, शुद्ध काला सुरमा और ताम्रभस्म प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें। पहिले पारद-गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर और औषधियां मिला मनुष्य मूत्र, गोमूत्र या वकरेके मूत्रमें दही जैसा प्रवाही बनाकर कड़ाहीमें डाल मन्दाग्निपर औषधिको पका लेवें। (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक। दिनमें २ बार गोघृतमें मिलाकर चटावें। आवश्यकता हो तो थोड़ा शहद मिला देवें और ऊपरमें त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल) का क्वाथ बना, हींग और घी मिलाकर (अथवा छोंककर) पिलावें। अथवा धतूरेके ५ शुद्ध बीजोंके साथ खिलाकर ऊपर आध छटांक घी पिलावें। धतूरेके बीजवाला अनुपान अन्त्रदोष वाले स्थूल रोगीके लिये विशेष हितकर है।

उपयोग—भूतभैरव रससे भूतोन्माद, मानसिक चिन्ताजन्य उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि वातवाहिनियोंसे सम्बन्ध वाले सब रोग शांत होते हैं। इस औषधिसे मलावरोध दूर होता है, निद्रा आने लगती है तथा थोड़े ही दिनोंमें उन्माद दूर हो जाता है।

(८४) वातकुलान्तक रस

विधि—कस्तूरी, शुद्ध मैनसिल, नागकेसर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची और लोंग २-२ तोले लें। पहिले पारद-गन्धक की कज्जली करें फिर शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला जल (ब्राह्मी के क्वाथ) में खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली। दिनमें २ या ३ बार जटामांसीके क्वाथसे दें।

उपयोग—वातकुलान्तक रस महा घोर अपस्मार, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, आक्षेपयुक्त विविध वातरोग निद्रानाश, प्रबल हिक्का, धनुर्वात, सूतिका-रोगमें आक्षेप आदिको दूर करता है और मनको प्रसन्न बनाता है एवं सन्निपात न्यूमोनिया आदि रोगोंमें बुद्धिभ्रंश मूर्च्छा कम्प, आक्षेप, प्रलाप आदि उपद्रवोंको शमनकर निद्रा लानेके लिये भी यह रस हितकर है।

हिस्टीरियामें निद्रानाशको दूर करनेके लिये यह महौषध है। मानसिक विकृतिजन्य अपस्मारमें अभ्रकभस्म आध-आध रत्ती मिलाते रहनेसे त्वरित लाभ होता है। मानसिक व्याघातजन्य मूर्च्छामें भी अभ्रक भस्मके साथ देना विशेष हितकर माना गया है एवं बालकोंके दांत आनेके समय तीव्र आक्षेप (रक्ताधिक्य न हो तो) कण्ठ, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्ताशय पित्तनलिका, महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) आदिके आक्षेपका यह रस तत्काल शमन करता है। धनुर्वात, बालकम्प, हृदयकम्प आदि वातवाहिनियोंकी विकृतिपर यह अति हितावह है।

(८५) निद्रोदय रस

विधि—रससिंदूर, वंशलोचन और अफीम तीनों ६-६ माशे धायके फूल और आंवले २-२ तोले लेवें। सबको मिलाकर भांगके रसकी तीन भावनायें देवें। फिर बीज निकाली हुई मुनक्का १२ तोले मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से ४ गोली तक। सायंकालको दूधके साथ दें। यदि मलावरोध रहता हो तो सुबह सारक औषधिसे उदरशुद्धि करा लेवें।

उपयोग—जब किसी रोगमें निद्रा न आती हो तब इस रसायनके सेवन से शांत निद्रा आ जाती है, शुक्र स्तम्भन होता है तथा बल वर्ण और तेज आदिकी वृद्धि होती है। कई रोगियोंको फुफ्फुस संस्थानमें विकृति उग्रता होती है अथवा कफप्रकोप होता है। उनको शृंग भस्म भी ४-४ रत्ती

दिनमें २ या ३ बार देते हैं। वह भी निद्रा लानेमें सहायक बनता है।

एलोपैथीमें कई औषधियां प्रबल निद्राप्रद है। उनसे वातसंस्थानपर अति घातक असर पहुँचता है और रोगनिरोधक शक्ति भी निर्बल बन जाती है; किन्तु इस निद्रोदय रसका प्रयोग अति निर्भय और शान्त निद्रा लानेमें सफल है। इससे निद्रासे जागनेपर रोगी मानसिक प्रसन्नता, बल-वृद्धिका अनुभव करता है।

सूचना—रोगीको मलावरोध हो तो पहले एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी लगाकर मलको दूर करें। फिर निद्रोदय रस देवें। एवं पुनः कब्ज न हो, यह सम्हालते रहना चाहिये।

(८६) अमरसुन्दरी वटी

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध बच्छनाभ, रेणुक बीज (सम्भालुके बीज), सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपलामूल, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, बायबिडङ्ग, अकलकरा और नागरमोथा सब १-१ तोला लें। पारद-गन्धक की कज्जली करके लोहभस्म और बच्छनाभ मिलावें। फिर शेष औष-धियोंका बारीक चूर्ण और ४० तोले गुड़ मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। गुड़की चासनीमें चूर्ण मिला लेनेसे गोलियां अच्छी बनती हैं।

(नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली। दिनमें २ या ३ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह औषधि अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, अर्श और अनेक वातरोगोंको दूर करती है। स्त्री, बालक, वृद्ध आदिको अजीर्ण ज्वर, तथा कफप्रधान सन्निपात आदिमें निर्भयतापूर्वक दी जाती है। इस औषधि का अजमेर जिलेमें अधिक उपयोग होता है। हमने भी अनेक समय उप-योग करके लाभ उठाया है। नूतन प्रतिश्याय, जीर्ण प्रतिश्याय, आमज्वर, कास आदि रोगोंपर यहांपर जन समाजमें अमरसुन्दरी सुविख्यात है। सूतिकाको निर्भय होकर देते है इससे सूतिकाके वातप्रकोपके चिह्न-मूल, दांत भिचना, व्याकुलता आदि भी शान्त हो जाते हैं।

दूसरी विधि—इस रसका नाम अनेक ग्रन्थकारोंने 'विजयभैरव' रस रखा है, ऐसा रसयोगसागर परसे जाना जाता है। निघण्टु रत्नाकरके पाठ (प्रथम विधि) में पीपलामूल और दालचीनी है। उस स्थानपर रस-योगसागरमें (द्वितीय विधिमें) अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म है। शेष पाठ समान है।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—कफप्रधान रोगोंपर अदरकके रस और शहदके साथ और सन्निपातमें तुलसीके रस या अदरकके रसके साथ देवें।

उपयोग—कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, शूल, पाण्डु और हाथ-पैरोंके रोगोंपर यह गुटिका प्रशस्त है। अभ्रकभस्म और ताम्रभस्मके योगसे यह रस आशुफलप्रद बनता है।

अभ्रक और ताम्र मिलानेसे श्वसन संस्थान, हृदय और यकृत्को उत्तेजना मिलती है। जिससे कफयुक्त कास, श्वास, परिणामशूल प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, पाण्डु, विषमज्वर, नूतन अजीर्ण ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण ज्वर, सूतिका ज्वर, सूतिकाके वात और कफप्रकोप, दांत भिचना, श्वास, कास, अतिसार, ज्वर, अरुचि, सन्निपात, प्रलाप आदि उपद्रव, कफप्रधान सन्निपात, कफगुल्म, वातगुल्म, कफपित्तगुल्म, यकृद्विकारयुक्त संग्रहणो रोग, पाण्डु, हाथ-पैरोंकी नसें खिचना चक्कर, वातवृद्धि, अर्श और अपस्मार आदि रोगोंको दूर करता है।

(८७) महावातविध्वंसन रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नागभस्म (शतपुटी), वंगभस्म, लोह भस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, पीपल, सोहागेका फूला, कालीमिर्च, सोंठ ये ११ औषधियां १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाभ ४।। तोले लेवें। पहले कज्जली करके भस्म मिलावें। पश्चात् शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला त्रिकटु क्वाथ, त्रिफलाका क्वाथ, चित्रकमूलका क्वाथ, भांगरा स्वरस, कूठका क्वाथ, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस, आकका दूध, आंवलेका स्वरस, अदरक का रस और नींबूका रस सबको ३-३ भावनाये देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार, तीव्र वात रोगपर अदरकके रस, भांगरेके रस या शहदके साथ और आमवातपर अरण्डीके तैल, घी या गुनगुने जलके साथ दें।

उपयोग—यह रस वातविकार, शूल, कफप्रकोपसे होने वाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढता, अपस्मार-मन्दाग्नि, शरीर शीतल होना, पित्तोदर प्लीहावृद्धि, कुष्ठ, अर्श स्त्रियोंके गर्भाशयकी विकृतिसे होने वाले रोगों को नष्ट करता है।

महावातविध्वंसन रस वातवृद्धि और वातवाहिनियोंके क्षोभको शमन करने वाली उत्तम शामक औषधि है। एवं इसमें शूलघ्न गुण भी विशेषांश में है। यह रसायन वातवाहिनियोंके क्षोभमें उपयोगी होनेसे अपतानक, अपतन्त्रक, आक्षेप और तीव्रवेग वाले आशुकारी पक्षाघातमें वातवृद्धिके लक्षण अधिक होनेपर इसके सेवनसे वातप्रकोपका शमन होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। किसी भी निमित्तसे उत्पन्न किसी भी रोगमें वातवाहिनियोंमें क्षोभ होनेपर तीव्रावस्थामें महावातविध्वंसन उपयोगमें आता

है। केवल वातविकृति होनेपर यह दिया जाता है परन्तु वातपित्तात्मक दुष्टि हो तो सूतशेखर रस देना चाहिये। इन दोनोंमें यह अन्तर है।

वातवाहिनियोंके कार्यमें किसी कारणसे प्रतिबन्ध होनेपर वातक्षोभ होता है। फिर किसी भी अवयवमें शूल निकलता है। उसपर यह रस दिया जाता है। यद्यपि आमवात और सन्धिवातकी जीर्णावस्थामें तो योगराज गूगल और गोक्षूरादि गूगल हितकर हैं तथापि जब बिच्छूके काटनेके समान अत्यन्त तीव्र वेदना, शोथ स्थानमें भयंकर वेदना, शूल, बेचैनी, प्रलाप आदि लक्षण हों तब आमशोषक और वेदनाशामक ये दोनों कार्य इस महावातविध्वंसनके सेवनसे होते हैं। रोगीको थोडे ही समयमें बहुत लाभ हो जाता है। आमवातकी तीव्रावस्थामें यह अप्रतिम औषधि है।

मानसिक रोगोंमें भी वातक्षोभ होकर वेदना होती है। अपस्मार, उन्माद मनोव्याघात आदि विकारोंमें होने वाली वेदना स्वतः संवेदनाजन्य है। इन रोगोंपर विशेषतः द्राक्षारिष्ट या अभ्रक प्रधान औषधि दी जाती है। किन्तु जो शूल शारीरिक दोषोंसे विशेषतः वातदुष्टिसे उत्पन्न होता है, उसपर इस रसायनका प्रयोग होता है। इससे वातप्रकोप दूर होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। इसी हेतुसे किसी भी प्रकारके शूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। स्थान भेद और दूष्य भेदसे अनुपान भेद कर लेना चाहिये।

केवल वातक्षोभसे शिरदर्द होता हो, वह अति त्रासदायक होता है। उस समय व्याकुलता बनी रहती है, शरीरमें कील गाड़ने सदृश वेदना होती है, रोगी गर्दन इधर-उधर फिराता रहता है, बिलकुल चैन नहीं पड़ता। निरर्थक विचार आते रहना, विशेषतः मस्तिष्ककी दाहिनी ओरमें अतिशय व्यथा होना आदि लक्षण होते हैं। इस व्यथाके मारे रोगी शिर पीटता है और रो देता है। इस तरह कुछ समय तक दर्द होकर स्वयमेव कम हो जाता है, अर्थात् वेदना सहन हो सके उतनी होती है। फिर पहिले के समान तीव्रवेदना होने लगती है। इस तरह बार-बार आक्षेप सदृश तीव्रवेग उत्पन्न होता रहता है। ऐसे शीर्षशूलपर महावातविध्वंसन रस लाभदायक है।

शीर्षशूलके समान कुक्षिशूल, उरःशूल, पार्श्वशूल इनमें भी अकस्मात् तीव्र वेदना होने लगती है। फिर कुछ समयके लिये वेदना कम होकर रोगी को अच्छा लगता है। पुनः शीर्षशूल सदृश तीव्र असह्य वेदना हो जाती है, छुरा मारनेके सदृश दर्द होता है जिससे रोगी रोने लगता है। फिर वेदना शमन हो जाती है। इस प्रकारके रोगोंपर महावातविध्वंसन कफघ्न अनुपानके साथ देना चाहिये।

हृदयके शूलमें उक्त प्रकारके आक्षेप सदृश वेदना होनेपर भी यह रसायन देना चाहिये। परन्तु जब तीव्र वेदना हृदयमेंसे निकल, बांयें हाथकी ओर फैलती हो और साथमें घबराहट, प्रस्वेद आदि लक्षण प्रतीत होते हों तब यह नहीं दिया जाता। स्वल्प मात्रामें सूतराज रस अथवा मुक्ता या प्रवाल प्रधान शामक औषधि देनी चाहिये। यदि वातक्षोभसे छाती या पीठमें शूल निकलता है तो महावातविध्वंसनका उपयोग करना चाहिये। इस तरह फुफ्फुसप्रदाहके प्रारम्भमें छातीमें शूल चलती हो और वेदना वातक्षोभसे होती हो, वेदनाके साथ ज्वर और शोथ मर्यादामें हो, उसपर भी यह रस देना चाहिये।

उदरशूल केवल वातक्षोभसे होनेपर महावातविध्वंसन रस उपयोगी है। उदरमें पीड़ा, यह विकार अति चमत्कारी है, इसमें उदरके भीतर विविध अवयव, उनकी क्रिया और उनमें उत्पन्न विकार तीनोंका सम्बन्ध रहता है। इस हेतुसे इसके कारणके निर्णयमें अति त्रास होता है। उदर परीक्षा करनेमें पचनेन्द्रियके विकार, मूत्रपिण्ड, मूत्रमार्ग या मूत्राशयका विकार, अन्त्रविकृति और उसमें शल्य तथा सर्व कोष्ठमें व्यापक वातवाहिनियोंमें विकृति. सगर्भा स्त्री रोगिणी होनेपर गर्भाशय विकार सबका विचार करना पड़ता है। इनमें वातक्षोभज शूल हो तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह शूल भी आक्षेप सदृश बड़े जोरोंसे उत्पन्न होता है और उतने ही वेगसे शमन होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातकी प्रथमावस्थामें यदि कफविकृति सामान्य और वातप्रकोप अधिक हो तो महावातविध्वंसन रस लाभदायक है। परन्तु जब गलेमें कफकी घरघर आवाज होती रहती है तब इस रससे अधिक लाभ नहीं होता।

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा), ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) और संधिक सन्निपातमें बेहोशी, कण्ठ चलाते रहना, प्रलाप, चित्तविभ्रम, नेत्र भरे हुए भासना, जिह्वा शुष्क, (क्वचित् जिह्वा काली हो जाती है), जिह्वापर कांटे ऐसी वातक्षोभयुक्त अवस्थामें, महावातविध्वंसन रसके समान निश्चयपूर्वक लाभ करने वाली दूसरी औषधि नहीं है।

प्रसूता स्त्रियोंके ज्वर न होनेपर भी मक्कलशूल होता है, जिसमें भयंकर शिरदर्द, बस्ति, कोष्ठ और गर्भाशयमें अति तीव्र शूल या आक्षेपके समान वेदना, गर्भाशयमेंसे निकलकर बस्ति और उदरमें फैल जाना आदि लक्षण होते हैं। इस पर यह रसायन अति उत्तम लाभदायक है।

महावातविध्वंसन का कार्य वातवाहिनियां, वातवह मण्डल और वातस्थानोंपर क्षोभनाशक होता है। यह रस वातदोष तथा मांस और अस्थि

इन दूष्योंपर लाभ पहुँचाता है। इसमें कज्जली रस कीटाणुनाशक और योगवाही है। नाग, वंग और लोह शक्तिवर्द्धक और बल्यके हेतुसे वातशामक है। ताम्र आक्षेप नाशक वातशामक है। अभ्रकभस्म वातवाहिनियोंपर बल्य और शामक असर पहुँचाती है। सोहागा कीटाणुनाशक और शामक है तथा बच्छनाभ अवसादक, क्षोभनाशक और शूलघ्न है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

गृध्रसी रोग (Sciatica) को डाक्टरीमें वातनाड़ी शूल (Neuralgia) के अन्तर्गत माना है। इस रोगके प्रारम्भमें बेचैनी, पैरोंमें झनझनाहट, नाड़ियोंका खिचाव आदि होता है। फिर नितम्ब प्रदेश, जङ्घाके सामने या पीछे या बाहर शूल उत्पन्न होता है। इस रोगमें यन्त्रणा असह्य होती है। निद्रा नहीं आती, इस स्थितिमें कितने ही सप्ताह या मास निकल जाते हैं। इस रोगमें किसीको ज्वर आ जाता है, ज्वर १०२·१०३ या १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर वमन, घबराहट, भयंकर शिरदर्द, छातीमें वेदना और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में महावातविध्वंसन रस ½ रत्ती, आमका मुरब्बा ३ माशे और भांगरेका रस १ तोला मिलाकर उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा चाटण ३-४ बार देवें। इस तरह दो बार चाटण तैयार करके देते रहें। तथा विषगर्भ तैल, तार्पिन तैल, तार्पिन तैल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहनेसे वेदना शमन हो जाती है।

(८८) वातगजांकुश रस

विधि—रससिंदूर, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाभ, बड़ी हरड़, काकड़ासींगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अरणीकी छाल और सोहागेके फूलेको समभाग लेवें। फिर यथा विधि मिला गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तोंके रसकी ३-३ भावनायें देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली। दिनमें २ बार, पीपलके चूर्णके साथ लेकर ऊपर मजीठ या हरड़का काढ़ा पीवें। अथवा अनुपान रूपसे रास्ना गिलोय, देवदारू और अरण्डीकी जड़का क्वाथ थोड़ा गूगल मिलाकर गुनगुना कर पीवें।

उपयोग—यह रस अनेक वातरोगोंको दूर करता है। त्रिदोषज भयंकर वातश्लेष्मात्मक गृध्रसी रोगको ७ दिनमें दूर करता है। एवं कोष्टु शीर्षक (वातरक्तात्मक गोड़ेकी वादी), अपबाहुक (वातश्लेष्मात्मक बाहुकी बादी), उरुस्तम्भ (श्लेष्म, मेद और वातप्रकोपसे उत्पन्न आढ्यवात), हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ (वातकफात्मक कण्ठकी बादी), पक्षाघात (कफविकृति सहित उत्पन्न होने वाला (अर्धाङ्गवात), इनके लिये यह अत्युत्तम औषधि है।

वातरोगमें जब तक कफ या आमसह कफका सम्बन्ध हो तब नूतन और जीर्णावस्था दोनोंमें यह रसायन लाभ पहुँचाता है। केवल वातविकृतिपर महावातविध्वंसन, वातपित्तात्मक विकृतिमें सूतशेखर और आमका अधिक सम्बन्ध हो तो योगराज गूगल उपयोगी है। किन्तु जब कफानुबन्ध और आमविषकी वृद्धि हो तब इस रसायनसे वहुत हित होता है।

इस रसका उपयोग अन्य वातरोगोंकी अपेक्षा गृध्रसीपर अधिक होता है तीव्रशूल चलता हो और उदरमें भारीपन रहता हो तो अनुपान रूपसे हरड़ का क्वाथ दिया जाता है।

कभी अति असह्य वेदना होती है, शान्तिसे निन्द्रा भी नहीं मिलती ऐसी अवस्थामें समीरगजकेसरी ½ रत्ती का प्रातः सायं सेवन कराया जाता है। फिर वेदना मर्यादित बननेपर वातगजांकुश देते रहनेसे रोगको जड़मूलसे नष्टकर देते हैं।

नूतनावस्था और जीर्णावस्थामें वेदनाके दमनार्थ वातशूलान्तक बामकी मालिश करानेसे लाभ मिल जाता हैं।

सूचना—बाहरसे शीत न लगे यह सम्हालें। मलावरोध न रहने देवें। अम्ल पदार्थोंका एवं अम्ल विपाक वाले पदार्थोंका सेवन हो सके उतना कम करें।

(८९) समीरगजकेसरी

विधि—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध अफीम और शुद्ध कुचिला इन सबको समभाग मिला, अदरकके रसमें ६ घण्टे खरल करके ½ ½ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। मूलग्रन्थमें हिंगुल नहीं है। किन्तु हमने गुणवृद्धिके कारण मिलाया है। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली, नागरबेलके पान या जलके साथ। मलावरोध रहता हो तो रात्रिको छोटी हरड़का चूर्ण या अन्य सारक औषधि देवें।

उपयोग—यह रस जीर्ण वातविकार, आमवात, कटिशूल, जुकाम, अरुचि, उदरशूल, संग्रहणी आदि रोगोंको दूर करता है तथा कुब्जता, लंगड़ापन, गृध्रसी रोग, अपबाहुक, शोथ, अपतानक, अपस्मार, विसूचिका (हैजा) आदिको नष्ट करता है। जब नाड़ियोंमें रहे हुए मल, कफ मेद या आमका शोषण करना हो, वातवाहिनियोंके क्षोभको दूर करना हो, हृदय को उत्तेजना और बल देना हो तथा मस्तिष्कको शांत बनाना हो तव यह रस अमृत समान गुणदायी है। किन्तु तीव्र आक्षेप होता हो तब इस न दे, महावात विध्वंसन रस देना चाहिये।

जीर्ण जुकाम और नजलेमें रस धातु अधिक दूषित होती है जिससे पीला या सफेद गाढ़ा नासास्राव होता रहता है तथा विष मस्तिष्कमें चढ़कर नेत्र और मगजको हानि पहुँचाता है। उसका इस रसके सेवनसे निग्रह होजाता

है नये तीव्र प्रकोपमें इसका सेवन नहीं कराना चाहिये; तीव्रता शमन होने पर यह दिया जाता है।

कीटाणुप्रकोप या अग्निमांद्य और रसशेषाजीर्णमें कच्चा रस शेष रहकर आम बनता है तब थोड़ा-थोड़ा आमसहित दस्त होता है। फिर आम आहार विहारके दोषसे कुपित होकर नाड़ियोंमें जाकर आमवातको उत्पन्न करता है, भयंकर वेदना होती हैं और हृदयकी गति शिथिल होजाती है। उसकी जीर्णावस्थामें समीरगजकेसरी देनेसे दोषका शोषण होकर नाड़ी शुद्ध हो जाती है तथा शूल, आमातिसार और आमवात भी नष्ट हो जाते हैं।

सूचना—यदि कोष्ठमें दूषित मल शेष हो तो उदरशुद्धि करनेके पश्चात् इस औषधका उपयोग करना चाहिए।

गृध्रसी शूलकी उत्पत्ति नितम्बमें वातनाड़ीप्रदाह होनेपर होती है। नितम्ब प्रदेशसे जो गृध्रसी नाड़ी (Sciatieanerve) चरणकी ओर गति करती है, उसके भीतर बेदनाका अनुभव होता है और पैरोंमें नाड़ीका खिचाव, होता है। इस हेतुसे निद्रा भी नहीं आती। अनेक रोगियोंको निरुपाय होकर पैरके निम्न भागपर कपड़ेकी पट्टी खींचकर बांधनी पड़ती हैं। इस वेदनाके दमनार्थ समीरगजकेसरीका सेवन कराया जाता है।

गृध्रसी शूलके समान इस रसका उपयोग पित्ताशयशूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल और अन्त्रशूल आदिपर भी होता है। बहुधा इन शूलोंमें वमन होती रहती है। रोगी अति व्याकुल हो जाता है। अफीम प्रधान औषधिका सेवन करनेपर वेदनाके शमनमें सहायता मिल जाती है।

हृदय विकारज श्वास (Cardiac Asthma) होनेपर रोगीको असह्य व्याकुलता होती है बहुधा श्वसन मार्ग या फुफ्फुसके भीतर कफ प्रकोप नहीं होता, श्वास लेनेमें कष्ट होता है, निःश्वास पूरा लिया नहीं जाता और सुखपूर्वक स्थिर बैठ भी नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें समीरगजकेसरी २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे श्वासावरोध दूर होजाता है।

चिन्ता, शोक, पश्चात्ताप आदिसे मानसिक आघात होने और उन्माद की प्रथमावस्थामें अघटित विचारोंकी परम्परा दृष्टि समक्ष खड़ी हो जाती है। कभी-कभी रोगी शोकाकुल या क्रोधाविष्ट होकर मरनेका विचार करता है। उसे बिल्कुल निद्रा नहीं आती, पचनक्रिया बिगड़ती है, मलावरोध या अतिसार हो जाता है, हाथ पैरोंमें शक्ति नहीं रहती, उत्साह भंग होजाता है। इस अवस्थामें समीरगजकेसरीका सेवन सुबह शाम कराया जाता है। शामको साथमें या रात्रिको मृदुविरेचन वटी भी दी जाती है। परिणाममें रोगीको निद्रा आ जाती है, उत्तेजना दूर होती है और सुबह शौच शुद्धि होती है।

३०-३५ वर्षकी आयुवाली स्त्रीको किसी कारणसे निर्बलता न आनेपर भी मासिक धर्म असमयमें बन्द हो जाता है। ऐसी स्थितिमें सन्तानोंकी चाहना वाली स्त्रियोंके मनपर आघात होता है। जिस शोकोन्माद (Malencholia) की संप्राप्ति होती है। रुग्णा सब बात सुन लेती है; किन्तु उत्तर नहीं देती या अति देरसे थोड़े शब्दोंमें उत्तर देती है, मुखमण्डलपर उदासीनता बनी रहती है। इन लक्षणोंके साथ यदि अति मलावरोध और अग्निमांद्य न हो गया हो तो समीरगजकेसरी देते रहनेसे देह सबल बनती है, मासिकधर्म साफ आने लगता है और उन्माद दूर हो जाता है।

वक्तव्य—यदि कोई विशेष रोग हो तो उसे प्रथम दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

(९०) बृहद् योगराज गुग्गुलु

विधि—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल, भुनी हींग अजमोद, सरसों, जीरा, कलौंजी, रेणुकबीज, इन्द्रजौ, पाठा, बायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस भारंगी, बच और मूर्वा ये बीस औषधियाँ एक-एक तोला, त्रिफला, ४० तोले शुद्ध गूगल ६० तोले तथा वंग भस्म, चाँदी भस्म, नागभस्म, शतपुटी लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मंडूर भस्म और रससिंदूर प्रत्येक १६-१६ तोले लें। पहिले गूगलको जलमें मिला गरमकर अवलेह जैसा बना लें। फिर काष्ठादि वस्तुओंका कपड़छन चूर्ण डालें। बादमें भस्मोंको मिलावें तत्पश्चात् पत्थरकी खरलमें थोड़ा-थोड़ा घी अथवा एरण्ड तैल मिलाकर कूटें कुटाई जितनी अधिक होगी गुण उतना ही बढ़ेगा। १००० या अधिक चोटें दें। मुलायम हो जानेपर मटरके समान गोलियाँ बांधें। * (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार दें।

अनुपान—वातव्याधिमें रास्नादि क्वाथ या जल। तीव्र व्याधिमें योगराज गूगल १ से ३ माशेको १ छटाँक अरंडीके तैलमें मिला गरमकर, आधा सेर गरम दूध और १ छटांक मिश्री मिलाकर पिलावें। इस अनुपानसे भयंकर वातव्याधि भी एक सप्ताहमें नष्ट होती है।

पित्त विकारमें काकोल्यादि गण (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, पुण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि. मुनक्का, जीवन्ती और मुलहठी इनमेंसे

* कई प्राचीन आचार्य गूगलको जलमें गरम नहीं करते थे, किन्तु घी मिला-मिलाकर कूटते थे और साथमें औषधियोंका चूर्ण मिलाते जाते थे। यह विधि अधिक गुणप्रद मानी जायगी।

मिल सके उतनी ओषधियोंके क्वाथ) के साथ देवें।

कफविकारमें आरग्वधादि क्वाथ, प्रमेहमें दारुहल्दीका क्वाथ, पाण्डुमें गोमूत्र, मेदवृद्धिमें शहद, कुष्ठमें निम्ब पंचांगका क्वाथ या महामञ्जिष्ठादि अर्क पीड़िताार्त्तवमें अशोकारिष्ट या महामंजिष्ठादि अर्क; पूयप्रधान रोगोंपर नीमकी अन्तरछाल और निर्गुण्डीमूल या पानका क्वाथ, वातरक्तमें गिलोय का क्वाथ शूल और शोथपर पीपलका क्वाथ चुहेके विषपर पाठेका क्वाथ, नेत्रपीड़ापर त्रिफलाका क्वाथ, समस्त उदररोगोंमें पुनर्नवादि क्वाथके साथ दें। इसी तरह अन्य अनुपानोंकी योजना करें।

उपयोग—यह रस वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, संग्रहणी प्रमेह, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, श्वास, कास, मन्दाग्नि, अरुचि, उरोग्रह, पुरुषोंके धातुविकार और स्त्रियोंके गर्भाशयके दोषोंको दूर करता है। वन्ध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति कराता है।

महायोगराजमें पाचक, अग्निदीपक, वातनाशक, आमदोषघ्न, रसायन, योगवाही और धातु-परिपोषक क्रमको नियमित बनाने वाली औषधियाँ होनेसे यह उत्कृष्ट प्रयोग बना है। यह रसायन आमवात, वातरक्त और आमयुक्त रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह आमदोषघ्न औषधियोंमें उच्च-कोटिकी औषधि है। जिस-जिस वातविकारमें आमानुबन्ध है उस-उस वातरोग और उससे उत्पन्न अन्य रोगोंपर यह बहुत अच्छा कार्यं करती है। आमविकारकी दो उत्पत्ति आयुर्वेदने दी है। पहली पाचकाग्निके अबलत्वसे आद्य रस धातु अपक्व रहकर दुष्ट हो जाती है। दूसरी अत्यन्त दुष्ट दोषोंके परस्पर मूर्च्छन होनेपर उनमेंसे जो विष तैयार होता है उसे भी आमविष संज्ञा दी है। जिन-जिन रोगोंमें ये आम-विष कारणभूत हैं; उन-उन रोगोंको आमरोग-आम-प्रधान रोग कहते हैं। इस तरह आमकी व्याख्या व्यापककी है। इस प्रकारके सोमरोगोंमें यह उत्तम कार्य करता है। इसके सेवनसे पाचक अग्नि सम्यक् कार्य करती है; जिससे संचित आमका पचन और नया आम बननेमें प्रतिबंध होता है। इस रीतिसे रोगके मूलको ही नष्ट करता है और दोषदुष्टि वातादि धातुविकृतिको भी दूर करता है।

मूल ग्रन्थमें इस रसका उपयोग सब प्रकारकी वातव्याधियोंपर लिखा है। किन्तु विशेषतः उपयोग जीर्ण आमवातमें ही अच्छा होता है। नूतन आमवातमें भी उपयोगी तो होता है परन्तु तीक्ष्ण अवस्था निकल जानेके पश्चात् बार-बार संधियोंमें सूजन आना या रोग बढ़कर स्नायु मोटे और कमजोर हो जाना नाड़ियां आमयुक्त मोटी हो जाना, सारे शरीरमें शूल निकलना इत्यादि लक्षण होनेपर यह रस उत्तम कार्य करता है।

जीर्ण वातव्याधि, जिसमें रसादि धातुकी विकृतिसे उत्पन्न हुए आम

सहित वातविकार हो उसमें इससे अच्छा लाभ होता है। इसका कार्य जहां दोष धातुओंके भीतर लय भावको प्राप्त हुआ हो ऐसे आमवात, पक्षाघात, बार-बार आयाम, आक्षेपक, खल्ली, गृध्रसी इनकी जीर्णावस्थामें ही विशेष कार्य होता है।

वातार्शमें शुष्क और रूक्ष मस्से हों तो इस रसके सेवनसे पीड़ाका शमन होता है। वातज प्रमेह, जिनमें वात कार्यमें अनियमितता कारण हो और आमज प्रमेह जो अपचनके जीर्णविकारसे आमसंचय होकर होता है इन दोनों प्रकारके विविध प्रमेहोंके लिए यह गूगल अति हितकर है।

आमज प्रमेहोंका उल्लेख यद्यपि प्राचीन ग्रंथोंमें नहीं है तथापि अपचन के जीर्ण विकारके पश्चात् आमसंचय होकर प्रमेह हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। अधिक शक्कर, अधिक द्विदल धान्य या मेदेका पदार्थ खाने वालोंको इस प्रकारका प्रमेह होता है। अन्न रसमें जो एक प्रकारकी शक्कर है उसका परिमाण बढ़ जानेपर उसका संशोषणकर रूपान्तरित करनेका कार्य यकृत्का है। परन्तु यकृत्में आमविकारसे विकृति हो जाने या स्रोतोवरोध हो जानेसे रूपान्तर नहीं करा सकता। फिर वह अभिसरणमें मिश्र होनेसे प्रमेहकी उत्पत्ति हो जाती है। इसपर यह रस अच्छा कार्य करता है।

कुष्ठ रोगमें आमानुबन्ध होनेपर यह रस लाभदायक है। जीर्ण क्षुद्र कुष्ठ, पामा या कच्छू सदृश क्षुद्र कुष्ठ दबकर वातविकार उत्पन्न होनेपर महायोगराज गूगल अति उपयोगी है।

आमोत्पत्ति, आमसंचय और तज्जन्य वातप्रकोप होकर रक्तमें विकृति होना यह वातरक्तका हेतु है। वातरक्तकी उत्पत्ति, बिना आमसंचय नहीं हो सकती। विशेषतः इस रोगके प्रारम्भमें उदराध्मान, अपचन, आमाशय और अन्त्रमें शूल या वेदना, बार-बार मलावरोध फिर अतिसार, मूत्र का परिमाण स्वल्प हो जाना, मूत्रमें प्रचुर मात्रामें कठोर पदार्थ जाना, शारीरिक और मानसिक बलका ह्रास, स्वभावमें उग्रता आ जाना आदि लक्षण होते हैं सामान्यतः पचनेन्द्रियको आम जननकी जीर्ण व्याधि लगी रहती है। इस हेतुसे वातरक्तका रोगी बहुधा सदाके लिये पीड़ित रहता है। वातरक्त और आमवात दोनों भाई हैं। वातरक्तका प्रारम्भ हाथ या पैरके अंगूठेसे होता है। पहिले अंगूठे सूजते हैं, फिर शूलके सदृश वेदना होती है और सूजन आने लगती है। सब अंगुलियां मोटी-मोटी हो जाती है, एवं क्षुधामांद्य, अति पिपासा, मूत्र लाल, स्वच्छ और थोड़े परिमाणमें होना, शूल, स्फुरण, कम्प, रूक्षता, काले धब्बे न्यूनाधिक शोथ, वातवाहिनियों और संधिस्थानोंका अकड़ना और खिचना, अत्यन्त पीड़ा ठण्डी और शीत स्पर्श सहन न होना इत्यादि लक्षण होते हैं। इस रोगको महायोगराज

गूगल नष्ट करता है। वातरक्तसे उत्पन्न विविध रोग संकर शीर्षशूल, मन्यास्तम्भ, हनुस्तंभ इनको भी दूर करता है। किन्तु वातरक्तमें जब निद्रा न आना, माँसकोथ (मांस सड़ना) आदि उपद्रव होने लगते हैं तब इस रसायनका उपयोग नहीं होता। यद्यपि वातरक्तमें अमृता गूगल और कैशोर गूगलका उपयोग भी होता है। तथापि नूतन विकार और तीव्रावस्थामें उपयोगी हैं और महायोगराज गूगल जीर्णावस्थामें विशेष उपयोगी है। यह इसके गुणोंमें अन्तर है।

कोष्ठस्थ आमसंचयसे नाभि प्रदेशमें बार-बार शूल उत्पन्न होना, मलावरोध, मलसंचय अरुचि, मल आममिश्रित होना आदि लक्षण होनेपर यह रसायन उत्तम लाभदायक है। भगन्दर जो एक मार्गी हो अधिक गहरा न हो, विशेषत: वातज अथवा आमवातज हो उसपर गूगल वाली औषध लाभदायक है। नूतन विकारमें सप्तविंशतिको गुग्गुलु और जीर्ण व्याधिमें महायोगराज लाभदायक है। भगन्दरमें जो शतपोनक और शंबूकावर्त हैं वे कठिन हैं। ये बहुधा शस्त्र साध्य हैं।

उदावर्त रोगमें यदि स्थूलान्त्रमें मलावरोध या अपक्व अन्न शेष रहनेसे अवरोध होकर पेटमें अफारा, अपानवायु और शौच प्रवृत्तिका निरोध, हृदयके समीपमें शूल, मुंहमें पानी आना, बेचैनी, मूत्र प्रवृत्ति न्यून, बस्ति मूत्रसे भर जाना, परन्तु अवरोधके हेतुसे मूत्रोत्सर्ग न होना, श्वास, कास, दाह, प्यास, वमन, ज्वर, हिक्का, तन्द्रा, शिरदर्द, भ्रम, कर्णनाद, सर्वाङ्गमें पीड़ा इत्यादि लक्षण होनेपर पहिले तीक्ष्ण स्नेह बस्तिसे मलशुद्धि करके महायोगराज गूगल दिया जाय, अथवा एरण्ड तैलमें मिलाकर दिया जाय तो उत्तम कार्य करता है।

वातगुल्ममें विशेषत: आमानुबन्ध हो, कण्ठ और मुंहमें शुष्कता, बार-बार शीत ज्वर आता हो, अधोवायुकी मन्द प्रवृत्ति, मलसंचय, अन्नपचन हो जानेपर गुल्मके स्थानपर पीड़ा, चल गुल्म, घड़ीमें छोटा, घड़ीमें बड़ा होना, रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन न होना, उदर आदिमें वेदना होना, मुंह और कण्ठमें शुष्कता, त्वचाका वर्ण बदल जाना, शीतसह ज्वर आना इत्यादि स्थितिमें महायोगराज गूगलको घीके साथ देना चाहिये। इस रोगमें रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन नहीं होते; अत: इनका त्याग करना चाहिये।

मन्दाग्नि और बद्धकोष्ठसे सेन्द्रिय विष संचित होकर अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। उदरमें विशेषत: बृहदन्त्रमें मल संग्रहीत होता है। सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शरीरमें शोषित होने लगता है। फिर विविध व्याधियाँ उत्पन्न होती है। इन सबमें कारण कोष्ठस्थ आम विष या घोर अन्न-विष है। इनका भी हेतु अग्निमांद्य है। इस प्रकारके अग्निमांद्यपर इस रसको

भाँगरेके रस (६ माशे) के साथ देनेसे अति उत्तम कार्य करता है।

आमवातसे हृद्ग्रह होता है, तब हृदय जकड़ा-सा भासता है; हृदयको किसीने दृढ़ बांध दिया हो ऐसा भास होता है। इस विकारपर यह रस उपयुक्त है।

पक्षाघात आदि जीर्ण विविध वातरोगोंपर यह रस, प्राचीन वृद्ध परम्परानुसार रास्नादि कषायके साथ दिया जाता है। वातविकारमें आमानुबन्ध होनेपर रास्नादि कषाय देनेपर निःसन्देह उत्तम कार्य होता है।

आमवातज और वातरक्त शीर्षशूल; दन्तशूल, कर्णशूल, पृष्ठशूल, सन्धिशूल, अस्थिशूल, मूत्रमार्गमें शूल तथा आमवातज हृदयरोग और उससे उत्पन्न श्वास, कासपर यह लाभदायक है।

स्त्रियोंके आर्त्तवशूल, अनार्त्तव, साथमें पाण्डुता, नाम मात्रका मासिक धर्म, भयंकर त्रासके साथ आना, कमर, पीठ, पेटमें भयंकर वेदना इनपर महायोगराज लाभदायक है। वातकी अधिकताके कारण गर्भधारणमें प्रतिबन्ध होता हो तो इसके साथ वंगभस्म देना चाहिये। प्रसवकालमें अकस्मात् वेदना बन्द होकर गर्भके बाहर निकलनेकी क्रिया रुक जानेपर यह गूगल काम देता है। केवल यह कार्य अप्रत्यक्ष है अर्थात् किस नियमानुसार होता है, यह निर्णय नहीं हो सका।

आंत्रिक सन्निपातमें यदि सर्वांगमें जड़ता. हाथ-पैरोंकी संधियोंमें शोथ समान आभास होना और जड़ता, जीभ मोटी और जड़, कंठ जड़, नेत्रोंपर परदा-सा आजाना और जड़ हो जाना, भांफणी खोलने और बन्द करनेमें परिश्रम, छाती भर जाना, नाड़ीका वेग मन्द, मन्द-मन्द कोष्ठशूल, उदरमें जड़ताके समान लगना, उन्मादके सदृश थोड़ा प्रलाप, क्वचित बेहोशी, मन स्थिति मन्द होना इत्यादि लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाय तो महायोगराज उत्तम कार्य करता है। (यह आमविष और वातप्रकोपको नष्टकर मधुराको दूर करता है। इस रोगपर अनुपान रूपसे भाँगरेका रस देना चाहिये।)

जहरी चूहेके काटनेसे उसके विषका असर शनैः शनैः शरीरपर होता है। बहुधा काटनेके पश्चात् १५-१६ वें दिन दंशस्थानपर सूजन आती है। शरीरपर लाल-काले धब्बे, ज्वर, तृषा, उबाक, इत्यादि लक्षण होते हैं। उसमें इसे पाठे अथवा बंध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूलके क्वाथके साथ देना चाहिये। ततैया या मधुमक्षिकाके विषपर महायोगराज लगानेमें और खिलानेमें उपयुक्त है।

यह रसायन विशेषतः वातदोष, रस और आम इन दूष्य तथा यकृत, प्लीहा, अन्त्र हृदय और संधि स्थानोंपर कार्य करता है।

(औ० गु० शा० के आधारसे)

मस्तिष्कमें सेन्द्रियविष पहुँच जानेपर भ्रम (चक्कर) रोग उत्पन्न होता है। चक्कर आनेपर नेत्रके समक्ष अंधकार हो जाता है। रोगी खड़ा रहे तो गिर जाता है। कितने ही रोगियोंको यह चक्कर ५-१० मिनट तक रह जाता है। उस रोगपर महायोगराज गूगल, प्रवालपिष्टी और अमृतसत्व मिलाकर शहदसे दें और ऊपर धमासेका क्वाथ पिलाते रहनेसे लाभ हो जाता है।

(९१) एकाङ्गवीर

विधि—रससिंदूर, शुद्धगन्धक, कांतलोह भस्म, वंगभस्म, नागभस्म शतपुटी, ताम्रभस्म शतपुटी, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल इन ११ औषधियोंको समभाग मिला त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी, अदरक, चित्रकमूल, सुहिंजनेकी छाल, कूठ, आंवला, कुचिला, आकका मूल, हारसिंगार और एरंडमूल इन १२ द्रव्योंके क्वाथ या रसकी पृथक्-पृथक् ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (नि० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें ३ बार, रास्नादि अर्कके साथ दें।

उपयोग—यह रस पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धांगवात, गृध्रसी, विश्वाची, अपवाहुक आदि वात रोगोंको निःसंदेह दूर करता है। यह रसायन अत्यन्त तीक्ष्ण होनेसे वातप्रधान और वातकफप्रधान विकृतिमें हितकर है। इसमें बृंहण, वातप्रशमन, जीवनीय रसायन, विषघ्न और कीटाणुनाशक गुण अवस्थित हैं। बार-बार आक्षेप आता हो, ऐसे अर्धांगवात, पक्षाघात, गृध्रसी आदि रोगोंको यह दूर करता है।

पक्षाघातका अर्थ साधारणतः ऐच्छिक मांसपेशियोंकी क्रिया अथवा क्षमताका लोप होना है। इसमें सार्वांगिक या स्थानिक चेतनाशक्तिका लोप या ह्रास हो जाता है। संचालन और चेतना, उभयका लोप होनेपर पूर्ण पक्षाघात और इन दोनोंमेंसे एक का लोप होनेपर आंशिक या अपूर्ण पक्षाघात कहलाता है। पक्षाघातके अनेक भेदोंमें जो अर्धांगवात (Hemiplegia) है, त्रासदायक दीर्घ कालस्थायी और संतापकारक है। विशेषतः उपदंश आदि रोगोंसे जिनकी रक्तवाहिनियां और वातवाहिनियाँ दूषित हो जाती हैं, उनको यह होता है। क्वचित् विषप्रकोप और शीत आदि कारणों से भी हो जाता है। निर्बल हृदयवाले असहयशील मनुष्योंका मनके विरुद्ध कुछ वर्ताव या वार्तालाप होकर तत्काल सारे शरीरमें विकृति हो जाती है। फिर दूषित रक्तवाहिनियोंमें रक्तसंचय अधिक होता है। परिणाममें मस्तिष्क और वात वह केन्द्रमें रक्तभारकी वृद्धि होकर पक्षाघात हो जाता है, रक्तवाहिनियां फूटकर रक्तस्राव हो जाता है। यदि रुधिर संग्रह ज्ञान-केन्द्रके समीपमें होता है तो रोगीका ज्ञान सर्वांश या न्यूनांशमें नष्ट हो जाता है। इस विकारमें शरीरकी संचालन क्रियापर अधिकार नहीं रहता। स्नायुओंके

बल शारीरिक सञ्चालन आदि व्यापार होता रहता है परन्तु स्नायुओं-पर अधिकार कम हो जानेसे व्यापार शिथिल हो जाता है और रोगी विग-लित-सा हो जाता है। चलने फिरनेमें प्रतिबन्ध होता है. इसी हेतुसे आयु-र्वेदने इस रोगकी गणना वातविकृतिमें की है।

इस व्याधिमें सामान्यत: अवस्थाके भेदसे दो प्रकारकी चिकित्सा की जाती है। तीव्र अवस्थामें रक्तवाहिनी फूटकर स्राव होता है। अतः इसका प्रसादन और फूटी हुई रक्तवाहिनीके घटक नये तैयार हो जायें, ऐसी योजना करना, ये दो कार्य करने चाहिये। जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनी फूटने या फूलने की आदतको नष्ट करनी चाहिये। आयुर्वेदमें रक्तप्रसादक औष-धियोंमें ताप्यादि लोह, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शिलाजतु और गुग्गुलु मुख्य हैं। इनके योगसे रक्तवाहिनियांकी टुटी हुई सन्धि मिल जाती हैं। फिर कुछ काल तक अच्छा रहता है। परन्तु फिर पहिलेके समान कारण मिलने पर पक्षाघातका झटका आता है। इस झटकेको रोकने, आक्षेपक विषको नष्ट करने और रक्तवाहिनीकी फूटनेकी आदतको दूर करनेके लिये कोई औषधि देनी चाहिये। आयुर्वेदकी पद्धतिके अनुसार रक्तका वहन कार्य वायुके प्रेरकत्वक हेतुसे होता है। वायुका उद्रेक अधिक होनेपर रक्तका उद्वहन कार्य भी अधिक वेगसे होता है। इस उद्वहन कार्यको मर्या-दित करनेसे रक्तवाहिनीके फूटनेकी आदत दूर होती है। यह कार्य एकांग वीरसे उत्तम होता है। अर्धाङ्गवायुके समान पक्षाघात, कभी-कभी एक हाथ, एक पैर कमरके नीचेका भाग, मुखकी एक ओर अन्य किसी स्थानमें होता है। इन सबपर भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ इसका उपयोग होता है।

देहके किसी भी भागमें अभिघात या अन्य व्रण होनेके पश्चात् व्रण चिकित्साके अनुरोधसे उचित चिकित्सा न होनेपर उसमें धनुर्वात् उत्पादक विशिष्ट कीटाणुओंका प्रवेश हो जाता है जो वातप्रकोपका निमित्त कारण बनता है। फिर स्नायु और रक्तवाहिनियोंमें प्रवेशित वायु सारे शरीरको धनुषके सदृश मोड़ देती है, उसे धनुर्वात कहते हैं। इसको ही लक्षणानु-रोध, अपतानक, आयाम आदि संज्ञा दी जाती है। इस रोगकी प्रथमा-वस्थामें बड़े-बड़े आक्षेप आकर सारा शरीर मुड़ जाता है, दांत भिचते हैं। शुद्धि होनेपर कण्ठसे निगलनेकी शक्ति नहीं रहती। इस अवस्थामें काल-कूट रस अच्छा उपयोगी है परन्तु तीव्रावस्था शमन हो जानेपर सर्वाङ्गमें पंगुता आई हो और स्नायुओंकी शक्ति क्षीण हो गई हो, तो एकांगवीरका उपयोग होता है।

गृध्रसी रोगमें नितम्बसे लेकर कमर, जंघा, टखने और पैर तक बार-बार शूल निकलना, सारा पैर तंग हो जाना, पैर पंगु-सा हो जाना, क्वचित् अति तीव्र वेदना होना, पैर जकड़ जाना और थोड़ा समय खड़े रहनेपर

उसमें स्पन्दन होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोगमें वातप्रधान लक्षण अधिक होनेपर एकांगवीर रस देना चाहिये।

हाथकी अंगुलियोंसे वेदना बढ़ते-बढ़ते हाथ बिल्कुल भारी हो जाना, अंगुलियोंसे कुछ कार्य न होना, थोड़ा-सा कुछ उठाया या पकड़ा कि अंगुलियोंमें झनझनाहट होकर वस्तु गिर जाना, वस्तु कब गिरी यह भी बोध न रहना आदि अवस्था होनेपर भी एकाँगवीरका अच्छा उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—वातरोगमें जब पित्तानुबन्ध हो तब इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये, अथवा सम्हाल पूर्वक प्रवालपिष्टी या शिलाजीत आदि औषधिके साथ सेवन कराना चाहिये।

(९२) मल्लसिन्दूर वटी

विधि—पहिली विधि वाला मल्लसिंदूर, सोंठ, मिर्च, पीपलामूल, अकलकरा, जायफल, इलायची, लोंग और केशर प्रत्येक १-१ तोला लेवें। काष्ठादिक औषधियोंको कूट बारीक कपड़छन चूर्ण करें। फिर मल्लसिंदूरको खरलकर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डाल धीरे-धीरे सब चूर्ण मिला देवें। पश्चात् नागरबेलके १०० पानोंका रस मिला खरल करके ¼-¼ रत्तीकी गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार। नागरबेलके पान, अदरकके रस, भांगरेके रस और कालीमिर्च या अन्य अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे वातरोग, उन्माद, कफदोष, श्वास, त्रिदोष आदि दूर होते हैं। जिनके शरीरमें कफ या मेद अधिक हो थोड़ा चलनेसे भी श्वास भर जाता हों, पचनशक्ति मन्द हो, उदरमें वायुकी गुड़गुड़ाहट होती रहती हों, हृदयकी गति और नाड़ी अति मन्द हो, निद्रा और आलस्य आते हों, स्मरणशक्ति बहुत निर्बल हो गई हो उनके लिये यह अत्यन्त लाभदायक हैं।

जीर्ण विषमज्वर, जो सूक्ष्मांशमें रहता हो और किसी-किसी समय बढ़ जाता हो, वह इस रसायनसे दूर हो जाता है।

उन्माद, अपस्मार और हिस्टीरियाकी जीर्णावस्थामें यह मल्लसिंदूर वटी ब्राह्मी और जटामांसीके क्वाथके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

यह मल्लसिंदूर नं० २ मिलाकर इस रसको तैयार किया हो, तो उपदंशज उपद्रव एवं सन्निपातके कफप्रकोप और बेहोशमें भी अच्छा काम देता है तथा वातप्रकोप, पक्षाघात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, वातवाहिनियोंकी निर्बलता आदिमें हितकर है।

सूचना—यदि मलावरोध रहता हो तो सुबह १ दस्त साफ लाने वाला

मृदु विरेचन रात्रिको आवश्यकतापर देते रहना चाहिये। औषधिके साथमें रोगानुकूल पथ्यका पालन करें। अपथ्य सेवन करनेपर यद्यपि औषधिसे हानि नहीं होती तथापि लाभ पूरा नहीं मिलता या अधिक समय लगता हैं।

(९३) लाङ्गल्यादि लोह

विधि—कलिहारीका शुद्ध मूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, मुनक्का और शुद्ध गूगल, सब समभाग मिला बारीक चूर्णकर सब के समान लोहभस्म मिला लें। पश्चात् बिजौरेके रस और त्रिफलेके क्वाथ की ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (रसे० सा०सं०)

मात्रा—१ से २ गोली, शहदके साथ दिनमें २ बार देवें। ऊपर लघु मंजिष्ठादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग—लांगल्यादि लोह, पैरोंके तलोंमें घाव होकर पीप निकलना, सारे शरीरमें स्थान-स्थानपर त्वचा फूट-फूटकर रक्त और पीप निकलना, तथा घुटनों तक या सर्वांगमें फूटे हुए साध्य और दुःसाध्य वातरक्तको नष्ट करता है।

(९४) आमवात प्रमथिनि वटी

विधि—कलमीशोरा, आकको जड़की छाल, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, इन ५ औषधियोंको समभाग मिला ३ दिन अमलतासके क्वाथमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली, सुबह ६ माशेसे १ तोले तक निसोतके क्वाथके साथ तथा शामको अदरकके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह औषधि आमवात, आमवातज रोग, कफवृद्धि कफप्रकोप से होनेवाले रोग, सबको शमन करती है। तीव्र आमवातमें जब बिच्छू काटनेके समान तीव्र दर्द होता हो तब एवं जीर्ण अवस्थामें व्यथा उत्पन्न होनेपर यह व्यवहृत होती है।

सूचना—रोगीको गुड़ शक्करके पदार्थ कम से कम खाना चाहिए। ठंडी न लग जाय एवं कब्ज न हो, यह सम्हालना चाहिए।

भोजन हल्का, जल्दी पचने योग्य लेना चाहिए।

तीव्र वेदनामें वातशूलान्तक बामकी मालिस हितावह हैं। सामान्य वेदना हो तब पंचगुण तैलकी मालिश करानी चाहिए।

(९५) शूलवज्रिणी वटी

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले, ताम्रभस्म सोहागेका फूला, भुनी हींग, सोंठ कालीमिर्च, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आंवला शठी (कचूर) दाल चीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, जायफल, लोंग,

अजवायन, जीरा और धनियाँ सब एक-एक तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। पहले कज्जली और भस्म मिलाकर फिर उसके साथ चूर्ण मिलावें। पश्चात् बकरीके दूधमें १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें ३ बार। बकरीके दूध या जलसे दें।

यह वटी बड़ी दिव्य है। शूल विशेषत: वातप्रकोप होनेपर होता है तथापि अनुबंध भेदसे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कफपित्तजनित, पचन संस्थान, श्वसन संस्थान आदिमें उत्पन्न सब प्रकारके शूल-शूल ही कहलाते हैं पंक्तिशूल (परिणाम शूल), आमशूल, पार्श्व शूल, हृदयशूल, शिरःशूल और अन्य रोगोंमें उपद्रवरूप शूलोंको यह वटी शमन करती है तथा पाचन क्रियाको नियमित बनाती है। यह वातको शमन करती है। तथा आम और कफका शोषण करती हैं एवं पित्तशुद्धि करके रक्तकणोंको बढ़ाती है। अधोवायु और मल मूत्रावरोधको दूर करती है और अन्त्रक्रियाको नियमित बनाती है। इस रीतिसे मूल त्रिधातुओंको नियमित बनाकर रोगोत्पादक दोषको नष्ट करती है; जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर शास्त्रकथित सब रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर नीरोग, बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

उपयोग—शूलवज्रिणी आठों प्रकारके शूल, गुल्म, यकृत्वृद्धि, नया और पुराना आमवात, यकृत् या प्लीहावृद्धिसह पाण्डुरोग, कामला, कण्ठावरोध दूषित जल भरनेसे होनेवाली वृषण-वृद्धि श्लीपद रोग, कफप्रधान कास श्वास, व्रण, रस, रक्त और मांसस्थित दोषयुक्त नये कुष्ठ, छोटे छोटे उदर कृमि, त्वचामें उत्पन्न होनेवाले कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श, संग्रहणी अति-सार विसूचिका, खुजली, मन्दाग्नि, तृषारोग और पीनसको दूर करती है। रोग चाहे एक दोषज, द्विदोषज, या त्रिदोषज हो सबका नाश करती है। नित्य सेवन करनेसे बुद्धि कान्ति और आयुकी वृद्धि होती है।

(९६) हिंगुल रसायन

प्रथम विधि—हिंगुलकी ५ तोलेकी डलीको इन्द्रायण फलके भीतर रख ऊपर कपड़मिट्टी करें। मिट्टीका लेप १-१ अंगुल मोटा करें। फिर अग्निमें डालकर पकावें। मिट्टी अच्छी तरह पक जानेपर गोलेको निकाल लेवें। स्वांगशीतल होनेपर हिंगुलको सम्हालपूर्वक निकाल इन्द्रायणके दूसरे फलमें बन्दकर पुनः पकावें इस तरह २१ बार पकानेसे उत्तम प्रकारका हिंगुल रसायन बन जाता है।

मात्रा—२ से ४ चावल, दिनमें २-३ बार। नागरवेलके पानमें दें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे प्रसूताके रोग दूर होते हैं। गर्भाशयमें दूषित रक्त रह जाने या कीटाणु प्रवेश हो जानेपर ज्वर, मक्कलशूल, धनु-र्वात संधिवात, अर्दित, शिरदर्द, अरुचि, अग्निमांद्य, व्याकुलता आदि लक्षण

उपस्थित होते हैं। उसपर इसका सेवन करानेसे गर्भाशयमें उत्तेजना आकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है; कीटाणु नष्ट होते हैं। जिससे ज्वर आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। तथा अग्नि, देह-बल, कान्ति और उत्साह की वृद्धि होती है।

कतिपय चिकित्सक इन्द्रायणके स्थानपर बैंगन लेते हैं। बैंगनवाला रसायन अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी, अर्श और वातप्रकोपको दूर करता है तथा इन्द्रायण वालेमें अन्त्रशोधन गुण विशेष होते हैं।

दूसरी विधि—लौंगके ४० तोले चूर्णको प्याजके रसके साथ चटनीकी तरह पीस, गिलास जैसा आकार बनाकर सुखा लेवें। पश्चात् प्याजका रस ५ सेर निकाल फिर उस गिलासको एक कड़ाहीमें रखें, और उसमें हिंगुल २० तोलेकी डली रखकर कड़ाहीको चूल्हेपर चढ़ावें; ऊपर प्याजके रसका बर्तन लटका देवें। बर्तनके पेंदेमें एक छोटा सा छेद करें जिससे धीरे-धीरे रसकी एक-एक बूंद हिंगुलके ऊपर टपकती रहे। अग्नि इस तरह दें कि रस गिरते ही सूख जाय इस रीतिसे ५ सेर रस १२ घण्टोंमें पूरा हो जायगा। बादमें हिंगुलको पीसकर बोतलमें भर लेवें।

(आ० नि० मा० के आधारसे)

मात्रा—आधासे १ रत्ती तक दिनमें २ बार शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, जीर्णज्वर, विसूचिका, अतिसार, आमवृद्धि, कफवृद्धि, कृमि, वातदोष, आदि दूर होकर शरीर लाल बन जाता है। प्रसूताके अतिसार, अरुचि और वात वृद्धिको भी यह नष्ट करता है। निर्बल मनुष्यको सेवन करानेमें यह रस-सिंदूरकी अपेक्षा विशेष लाभ पहुँचाता है।

तीसरी विधि—अशुद्ध सिंगरफ २० तोले, भिलावा ८० तोले, गोघृत, एरण्ड तैल और शहद ६०-६० तोले लें। सिंगरफके छोटे-छोटे टुकड़े करें एवं भिलावेको जौकुट करें। इस भिलावेके चूर्णमेंसे आधा चूर्ण एक मोटे पेंदेकी कड़ाहीमें बिछा ऊपर सिंगरफकी डलियाँ अलग-अलग जमा उन्हे शेष भिलावेके चूर्णसे ढक दें और ऊपरसे घृत तैल तथा शहद डाल, चूल्हे पर चढ़ा ४ घण्टे सामान्य अग्नि दें। जब आधा जल जाय तब अर्धावशेष पर घासको जलाकर कड़ाहीमें आग लगा दें जिससे भिलावे जलकर भस्म हो जायेंगे। स्वांग शीतल होनेपर कड़ाही उतार ऊपर-ऊपरसे राख हटाकर पेंदेसे सावधानता पूर्वक सिंगरफकी डलियाँ निकाल लेवें।

(श्री पं० राधेश्यामजी गोस्वामी)

मात्रा—आधसे ३ रत्ती कपूर आधा रत्ती तथा जायफल, जावित्री और लौंग १-१ रत्तीका कपड़छन चूर्ण और शहदके साथ दिनमें २ बार दें।

अथवा २-३ बादामकी गिरीके साथ आधसे १ रत्ती हिंगुल रसायनको पीस, थोड़ा शहद मिलाकर दिनमें २ बार चटावें अथवा अदरकके रस और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानसे देवें ।

सूचना—(१) इस औषधके सेवनकालमें दही और मठ्ठेका अधिक प्रयोग करना चाहिये । जब-जब प्यास लगे, तब-तब मठ्ठेको ही उपयोगमें लें । ग्रीष्मकालमें दिनमें १-२ समय जल भी पी लेवें । भोजनमें मठ्ठेके साथ ज्वार-बाजरेकी थोड़ी रोटी ले सकते हैं । ग्रहणी रोगमें हितकर शाक भी ले सकते हैं ।

(२) भिलावेको कूटनेके समय हाथ न लगावें । कड़ाहीमें लोहेकी कलछीसे हिलावें और गोला बांधनेके समय हाथमें तैल लगाकर गोला बांधें अन्यथा हाथपर फाला हो जाता है ।

(३) भिलावेका धूआं शरीरको न लगे इस बातका ध्यान रखें ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे संग्रहणी, आमातिसार, शूल, जीर्ण-ज्वर, सन्निपात, वातरोग, सन्धिवात, रक्तविकार, कृमिदोष आदि दूर होते हैं, अग्नि प्रदीप्त होती है; हृदय सबल होता है; शरीर लाल बनता है और उत्साहकी वृद्धि होती है । अनुपान भेदसे अनेक वातज और कफज रोगोंपर उपयोगमें आता है ।

कई चिकित्सक १ से ५ रत्ती तक औषधि और कर्पूरयुक्त अनुपानको रोगीके बलाबलको देखकर दही (भैंसका) आधा सेरमें मिलाकर देते हैं । ४० दिन तक दहीका ही भोजन कराते हैं । इससे संग्रहणी सम्बन्धी विकार दूर होकर शरीर पुष्ट होता है । बादमें क्रमशः अन्न सेवन कराया जाता है ।

(९७) गुल्मकुठार रस

विधि—वंगभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म और नागभस्म शतपुटी ५-५ तोले तथा ताम्रभस्म २० तोले मिला जम्भीरी नींबूके रसमें ३ दिन खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार । शहद, आमका मुरब्बा, अदरकका रस, जवाखार और सज्जी खारके साथ दें । रक्त गुल्म और पित्तज गुल्ममें चातुर्जातके क्वाथके साथ दें ।

सूचना—इस रसमें ताम्रभस्मका परिमाण आधा होनेसे अधिक मात्रा में सेवन नहीं कराना चाहिये । जिन रोगियोंको उबाक या बेचैनी हो उनको आंवले, अनार या नींबूका रस अनुपान रूपसे देना चाहिये । ताम्रभस्म अच्छी होनेपर भी आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें अधिक उत्तेजना लाकर बेचैनी, उबाक आदि लक्षणोंको उत्पन्न करती है । अतः सम्हाल पूर्वक उपयोग करें ।

उपयोग—यह रस गुल्म, अजीर्ण, आमविकार, पित्तज अम्लपित्त, हृदय-

शूल, पार्श्वशूल, उदरशूल आदि व्याधियोंको दूर करता है। इस औषधमें पारद न होनेपर भी संयोगजन्य गुण रस समान होनेसे इसे गुल्म कुठार रस संज्ञा दी है। इसका उपयोग जीर्ण रोगमें और क्षीण रोगियोंके लिये होता है।

शोक या मानसिक आघातसे अपचन होकर अग्निमांद्य होता है वह अति त्रासदायक और विलक्षण स्वरूप होता है। ऐसे अग्निमांद्यके अनेक दिनों तक रह जानेपर उससे वातक्षोभ होकर वातगुल्मकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके गुल्ममें अन्य लक्षणोंके साथ दैन्य, मानसिक अस्थिरता, किसी भी बातमें प्रीति न होना निराशा, निस्तेजता, कृशता, मुखमण्डलकी कांति अति बदली हुई भासना आदि होनेपर इस औषधका अच्छा उपयोग होता है।

मांसाश्रित गुल्म और साथमें ज्वर, अत्यन्त तृषा, जलपान करनेंपर भी तृषा बनी रहना, शीतल जल और शीतल पदार्थंकी अति इच्छा, मुख और देहपर एक प्रकारकी लाली, भोजनकी पच्यमान अवस्थामें तीव्रशूल, बार-बार अति प्रस्वेद आना, अन्नका विदाह, गुल्म अति कठोर न होना, गुल्मपर स्पर्श सहन न होना, व्रण शोथके समान स्पर्श करनेपर वेदना वृद्धि होना, गुल्मपर थोड़ा-सा आघात लगनेपर भयंकर पीड़ा होना, क्वचित् अधिक पीड़ासे बेहोशी आ जाना आदि लक्षणयुक्त पित्तप्रधान गुल्मपर इसका उपयोग चातुर्जातके क्वाथके साथ करना चाहिये। दोष अति तीव्र होनेपर मंजिष्ठा, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रास्नाके क्वाथ और मुनक्का के साथ देना चाहिये।

स्त्रियोंको होने वाले रक्तगुल्म और गर्भ दोनोंके निर्णय होनेमें अनेक बार भ्रम होता है। कारण, रक्तगुल्म गर्भके समान शनैः शनैः बढ़ता जाता है गर्भ धारण होनेपर जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं, वैसे ही लक्षण वमन होना, अंग गलना, उदरमें जडता, मुख म्लान हो जाना और रजोदर्शन न होना आदि उपस्थित होते हैं। दोनोंमें अन्तर केवल इतना ही रहता है कि गर्भ के चौथे माससे गर्भमें एक प्रकारका स्पन्दन-स्फुरण होता है और गुल्ममें ऐसे स्पन्दन या हलचल कुछ नहीं होते। गुल्म बस्तिके समीप एक स्थानमें गाढ़ा चिपका हुआ वर्धिष्णु रहता है। इस भेदपरसे कभी-कभी अनुमान हो जाता है। यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो रक्तगुल्म और पित्तगुल्म के लक्षणोंमें अनेकांशमें साम्य होनेपर भी निर्णय हो जाता है। ज्वर, तृषा, शरीरपर लाल धब्बे उठना, उदर-पीड़ा, दाह, कण्ठमें जलन, दूषित डकार, खट्टी वमन, प्रस्वेदमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध आदि लक्षण गर्भ धारणमें नहीं होते। ये लक्षण होनेपर रक्तगुल्म मानकर गुल्मकुठारकी योजना करनी चाहिये।

शास्त्रकारोंने रक्तगुल्मकी चिकित्सा दस मास हो जानेपर करानेको दर्शाया है। इस तरह 'रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्' इस वचन में रक्तगुल्म जितना जीर्ण हो उतना सुखसाध्य होता है; ऐसा भी कहा है। परन्तु ये दोनों सूचनायें विशेष सावधानी रखनेके लिये हैं, यदि रक्तगुल्मका निःसन्देह निर्णय हो जाय तो तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ कर देनेसे रक्तगुल्म की आगे होने वाली वृद्धि रुक जाती है और चिकित्सा-पथ सुकर बन जाता है। किन्तु जब निर्णय न हो तब आचार्योंकी उक्त सूचनाका अवलम्बन अवश्य लेना चाहिये।

क्वचित् रक्तगुल्म और गर्भ दोनों एक साथ प्रतीत होते हैं। गर्भाशयमें गर्भ वृद्धि होती है और बीजाशयमें रक्तगुल्म बढ़ता है। ऐसी स्थितिमें रक्त-गुल्म अधिक बढ़नेपर गर्भाशयको प्रतिबन्ध होता है, जिससे गर्भ वृद्धिमें बाधा पहुँचती है। रक्तगुल्म अधिक न बढ़ने देनेका कार्य जो अति महत्वका है वह इससे गर्भको किसी भी प्रकारका त्रास न होकर उत्तम प्रकारसे होता है। इसके साथ अनुपान रूपसे उशीरासव, सारिवासव या अन्य सौम्य पित्तशामक औषधकी योजना करनी चाहिये। गुल्मरोग या अन्यत्र पित्तजन्य विदग्धाजीर्ण बार-बार होनेकी आदत वालोंको यह रस देना चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें कण्ठमें जलन, खट्टी डकारें, उदरमें दाह और अफारा, बार-बार डकारें आना, शौच शुद्धि न होना, उदरमें भारीपर, अन्त्रमें गुड़गुडाहट बार-बार अम्लपित्त होनेकी आदत होकर बलहानिका भास होना आदि लक्षण होनेपर गुलमगुठारकी योजना करनी चाहिये। इस अवस्थामें अदरकके रस और शहदके साथ या स्वल्प जवाखार और सज्जी-खारके साथ देवें।

पित्तज परिणामशूलमें हृदयके समीप, पार्श्वभाग और उदरमें अन्नपचन होनेके समय बार-बार शूल चलना, उदरमें अफारा आदि लक्षण होनेपर गुल्म कुठार देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(९८) गुल्मकालानल रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म और सोहागे का फूला प्रत्येक २-२ तोले, जवाखार १० तोले, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, गजपीपल, हरड़, बच और कूठ ये ८ औषधियें १-१ तोला लेवें। सबको विधिपूर्वक मिलाकर पित्तपापड़ा, अदरक, अपामार्ग (आंधी-झाड़ा), नागरमोथा और पाठाके क्वाथकी क्रमशः ७-७ भावनायें देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। हरड़के क्वाथके साथ, दिनमें २ बार दें।

उपयोग—इस रसका विशेष उपयोग वातगुल्म, वातकफज गुल्म और

कफपित्तज गुल्मपर होता है। पित्तगुल्ममें विशेषतः लाभदायक नहीं है।

अन्त्रके भीतर जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी ग्रन्थिरूप रुग्णावस्था प्राप्त होती है; उसे आयुर्वेदमें गुल्म संज्ञा दी है। केवल मांसवृद्धि या अन्य कारणोंमें अन्त्रमें गांठ बढ़ना, इसीकी गुल्म संज्ञा नहीं है। अन्त्रमें बार-बार वायु संचित होकर उसके योगसे गांठ सदृश अफारा आते रहना और कम हो जाना, उसे भी गुल्म कहा है। माँसल सौत्रिक तन्तु एक दूसरोंके जालके सदृश संलग्न होकर उनमेंसे गांठ उत्पन्न होना, भीतरकी ओर मेदके सदृश और बाहर श्लैष्मिककला रूप गांठ बढ़ना या केवल आफरा आकर गांठकी उत्पत्ति होना ये सब गुल्मके पृथक् पृथक् रूप हैं। एक को पित्तगुल्म, दूसरे को कफगुल्म और तीसरेको वातगुल्म संज्ञा दी है। द्वन्द्वज गुल्मोंमें दो दोषोंका संकर होता है। स्त्रियोंको होनेवाला रक्तगुल्म इन गुल्मोंसे पृथक् है। रक्तगुल्म बीजाशय (Ovary) या गर्भाशय (Uterus) में होता है वह पित्तगुल्मकी जातिका है। इसके लक्षण और पित्तगुल्मके लक्षणमें सदृशता है।

इस रसका उपयोग विशेषतः वातगुल्मपर होता है, ऐसा ग्रन्थकारने प्रतिपादन किया है। वातगुल्म अर्थात् अन्त्रमें उत्पन्न अफारा; यह गुल्म बहुत जल्दी कम ज्यादा होता रहता है, मलावरोध, अपानवायुका अवरोध, कण्ठ और मुखमें शुष्कता, बीच-बीचमें शीत लगना, सूक्ष्म-ज्वर-सा भासना, छाती, उदर, पार्श्व और मस्तिष्क आदि भागोंमें कभी-कभी शूल निकलना, अन्नपचन हो जानेपर उदर खिंचना, थोड़ा-सा खा लेनेपर अच्छा न लगना; श्रम सहन न होना, रूक्ष पदार्थ खानेपर त्रास अधिक होना आदि लक्षण होनेपर गुल्मकालानल रसको घी के साथ देना चाहिये।

इस औषधिका उपयोग पित्तज गुल्मपर कितने अंशमें होता है इस विषयमें संशय है। पित्तज गुल्मकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें गुल्मका परिपाक न हुआ हो; पित्तगुल्ममें होनेवाले ज्वर, पिपासा आदि लक्षण पूर्व रूपसे उत्पन्न न हुए हो, ऐसे समयपर पित्तसञ्चय विरेचन द्वारा कम करानेके लिये इस औषधिका उपयोग मधुर और शामक अनुपानके साथ रहना चाहिये।

कफज गुल्म, कफवातज गुल्म और कफपित्तात्मक गुल्मपर इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतः इन गुल्मोंमें स्तैमित्य, शीतपूर्वक ज्वर, अंग टूटना, उबाक; अरुचि, खांसी अंगमें भारीपन, सर्वांगमें शीत लगना; गुल्म और उसके चारों ओर बिल्कुल मन्द वेदना, गुल्म कठिन उठा हुआ गोल, मोटा, समान किनारी वाला; विशेषतः यकृत् प्लीहा इन दो अवयवोंको छोड़कर मध्य कोष्ठमें गुल्म उत्पन्न होना आदि लक्षण होते हैं। इन गुल्मोंपर इस औषधमें रहे हुये यवक्षार, हरताल और ताम्रके क्षार

गुणके योगसे कफज गुल्मके दृढ़ बने घटक झरने लगते हैं, और गुल्म शनैः शनैः कम होने लगता है। यदि गुल्म बहुत बढ़ गया हो, दीर्घकालका पुराना हो, तो औषधियोंसे लाभ नहीं होता। उसपर अस्त्र चिकित्सा ही करनी चाहिये।

रक्तगुल्म बिल्कुल स्वतंत्र व्याधि है। उसकी संप्राप्ति भी स्वतन्त्र होनेसे उसपर इस रसका उपयोग नहीं होता।

इस रससे जीर्ण शीतज्वर (Malarial Fever) और उससे उत्पन्न प्लीह वृद्धि, अग्निमाँद्य यकृद्वृद्धि आदिपर भी लाभ पहुँचनेकी संभावना है। केवल इन विकारोंमें कफदोषकी प्रधानता होनी चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

(९९) प्रवालपंचामृत रस

विधि—प्रवाल २ तोले तथा मोती, शंख, मोतीकी सीप ओर कोड़ी १-१ तोला मिला कूट पीसकर वारीक चूर्ण करें। पश्चात् ६ तोले आकके दूधमें खरल करके गोला बनावें। फिर संपुटकर गजपुट अग्नि देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है।

कितने ही वैद्य आकके दूधके बदलेमें गोदुग्धका उपयोग करते हैं। यह विशेष सौम्य और विशेष पित्तशामक होता है। आकके दूध वाला योग थोड़ा उग्र रहता है। इस औषधिमें पारद नहीं है, परन्तु रसके समान गुण होनेसे शास्त्रकारोंने 'प्रवालपञ्चामृत रस' नाम रखा है।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ बार, शहद और पीपल, गुलकन्दसे या मात्र शहद, नींबूके रस अथवा अनारके साथ देवें।

उपयोग—यह रस आनाह, गुल्म, उदररोग, प्लीहा, बद्धोदर, कास, श्वास, मंदाग्नि, कफ वातप्रकोपसे होनेवाले रोग अजीर्ण, उद्गार, हृद्रोग, ग्रहणी अतिसार, बालकोंके ग्रह-उपद्रव, प्रमेह, सबप्रकारके मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सबको दूर करता है।

प्रवालपंचामृतका कार्य विशेषतः मध्यम कोष्ठ, यकृत्, प्लीहा और संग्रहणीपर अच्छा होता है। पाचक पित्तके द्रवत्व धर्ममें कमी होनेसे पेटमें अन्नका बोझा होता हो या अफारा आता हो, उसे यह रसायन दूर करता है।

पाचक पित्तमें द्रवत्व धर्म बढ़नेपर अन्नपचन होनेका धर्म कम हो जाता है। फिर अन्न-विदाह और अपचन होने लगते हैं। इस हेतुसे कभी-कभी उदरमें अफारा भी आता है। बार-बार दूषित खट्टी डकारें, भोजन करनेके कुछ समय पश्चात् पेटमें भारीपन, उदर खिचना, उदरपर पत्थर बाँधने सदृश जड़ता, शूल या वेदना बहुधा न होना, बैचेनी, मध्यम कोष्ठमें आहार जैसाका वैसा पड़ा रहा हो ऐसा भासना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपञ्चामृतको नींबूके रसके साथ या अन्य अम्ल वर्गके साथ देना चाहिये। जीर्णविकारमें मात्रा कम और दीर्घकाल पर्यन्त देनी चाहिये। कण्ठमें दाह,

खट्टी डकारें आदि पित्तके अम्लताके लक्षण अधिक हो, तो अनारके रस या दाड़िमावलेहके साथ देना चाहिये।

इसी तरह आनाह (मलावरोध) के हेतुसे मध्यम कोष्ठमें वातगुल्म समान न्यूनाधिक अफारा आता है यह वायु बृहदन्त्रमें संगृहीत होती है। इसपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है।

पित्तगुल्मके प्रारम्भमें थोडा ज्वर, तृषा, मुखमण्डल और समस्त शरीर लाल हो जाना, भोजन करनेके दो घण्टे पश्चात् भयंकर उदरशूल, प्रस्वेद आना, अन्नके विदाहके हेतुसे कण्ठमें जलन, उदरमें दर्द स्थानपर स्पर्श भी सहन न होना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपंचामृतको घीके ऊपर रहे हुए प्रवाही सत्व या आंवलोंके क्वाथ (या फाँट) के साथ देनेसे उत्तम लाभ होता है।

उदर रोगमें यकृद्वृद्धि हेतु हो और पित्तप्रधान लक्षण—नेत्र, त्वचा, नाखून और मूत्रमें पीलापन, मुख, हाथ और पैरपर थोड़ी सूजन, उदरमें वायु भरा रहना, उदरवृद्धि उदरमें किंचित् जलसंचय, यकृत् बढ़नेसे किनारी मोटी हो जाना, बार-बार घबराहट, तृषा, हाथ, पैर, नेत्र और मस्तिष्क आदि संतप्त सदृश भासना, मूत्र थोड़ा और अति पीला या लाल रंगका हो जाना, मल कच्चा, सफेद और दुर्गन्धयुक्त हो जाना, मलशुद्धि सम्यक् न होना कभी-कभी कण्ठमें दाह और घबराहट होकर वमन होना आदि लक्षण मुख्य होनेपर प्रवालपञ्चामृतका उपयोग अति हितावह है। अनुपान रूपसे ताजे दहीका जल देनेसे पित्तप्रकोप जल्दी शमन होता है। इस तरह प्लीहा वृद्धिके पश्चात् उत्पन्न उदर रोगमें भी पित्तप्रधान लक्षण होनेपर यह अच्छा उपयोगी है।

कास और श्वास रोगमें अति घबराहट, अन्नका विदाह, बेचैनी, शीतल पदार्थ और शीतल वायुकी इच्छा व अच्छा लगना, दूध, अनारदाने आदि पित्तशामक वस्तु अच्छी लगना, अग्नि सेवन या उष्ण उपचारसे पीड़ा अधिक होना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपंचामृतका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण अग्निमांद्य होनेपर पचनेन्द्रिय संस्थान अशक्त हो जाता है, जिससे पाचक रसका व्यवस्थित निर्माण नहीं होता। अपचन, उदरमें वायु भरी रहना, अफारा, दूषित डकार, रसकी उत्पत्ति सम्यक् न होनेसे रक्त आदि धातुओंमें क्षीणता आकर शरीर कृश और अशक्त होजाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसपर प्रवालपंचामृतका उपयोग उत्तम होता है।

पित्तकी विकृतिसे अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उसीसे संग्रहणी होगई हो, तो भी प्रवालपंचामृतका प्रयोग करना चाहिये। ऐसी स्थितिमें पंचामृत पर्पटी और सुवर्ण पर्पटी भी दी जाती है। परन्तु उनमें पारद-मिश्रित कज्जली होनेसे पित्त दोषकी तीव्रता और अम्लता बढ़ती है। इससे विरुद्ध रससे

पित्त प्रधान अतिसार और ग्रहणीमें पित्तप्रकोपका शमन होकर सत्वर रोग निवारण होता है।

प्रमेहके विकारमें जीर्ण अपचन कारण हो या तीव्र पित्तदोषकी प्रधानता हो, तो प्रवालपंचामृत उत्कृष्ट कार्य करता है। अतिशया तृषा, इस तरह मूत्रका परिमाण अधिक और बार-बार होना, मूत्र काला, नीला, अति पीला या अति लाल होना, चिपचिपा प्रस्वेद, सर्वांगमें और हाथ पैरोंके तलोंमें दाह, बार-बार कण्ठ सूखना, जलपान करनेपर भी सन्तोष न होना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपंचामृत रस देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० आधारसे)

(१००) प्रभाकर वटी

विधि—सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, सबको समभाग मिला अर्जुनकी छालके क्वाथमें ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें दो बार, शहदके साथ लेवें। ऊपर दूध अथवा अर्जुन छालका क्वाथ पीवें।

उपयोग—इस रससे हृदय-शूल, हृदयकी धड़कन (Palpitation) हृदयपेशीवेष्टन (Fibrillation), हृदयावरोध, हृदयके आवरणका दाह आदि सब दोष दूर होकर हृदय बलवान बनता है, एवं पित्तकास, दाह, खट्टी डकार, मन्दाग्नि, चक्कर आना, शरीरकी निस्तेजता आदि विकार भी नष्ट होते हैं।

अग्निमांद्य, रक्तकी न्यूनता, रक्तकी निर्बलता, वातवाहिनियोंकी विकृति, मानसिक आघात, वृक्कविकार, वात या पित्त दोष प्रकुपित होना, विषमज्वर या अन्य संक्रामक व्याधियां आदि कारणोंसे हृदय अशक्त हो जानेपर इस वटीका अच्छा उपयोग होता है। इससे घबराहट धड़कन, दाह आदि दूर होकर हृदय सबल बन जाता है। उत्साह, कांति, स्फूर्ति, बल और वीर्यकी वृद्धि होती है।

(१०१) त्रिनेत्र रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्मको समभाग मिलाकर खरल करें। फिर सूर्यके तापमें अर्जुन वृक्षकी छालके क्वाथकी २१ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनालें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली; दिनमें ३ बार; शहदके साथ लेवें।

उपयोग—त्रिनेत्र रस सब प्रकारके हृद्रोग (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कृमिज) और फेफड़ोंके दोषोंको दूर करता है।

हृदयमेंसे निकली हुई रक्तवाहिनियोंको यह रसायन संकुचित करके दृढ़ बनाता है। हृदयकी उष्णता शूल और कृमिका नाश करता है। फुफ्फुस

और मांसग्रन्थियोंको पुष्ट बनाता है; बल, कांति और स्मरण शक्तिको वढ़ाता है, एवं हृदयवेगके बढ़नेसे होनेवाली मन्दाग्नि मेदवृद्धि, शूल, शोथ, प्रमेह, प्रदर, अपस्मार, कुष्ठ, उदररोग, दुष्टव्रण, भगंदर आदि व्याधियोंको दूर करता है ।

(१०२) हेमनाथ रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध आंवलासार गन्धक, सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा लोह भस्म, कपूर, प्रवाल भस्म और वंग भस्म प्रत्येक ६-६ माशे लें । पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें । फिर शेष औषधियोंको मिला अफीमका रस (अफीमको १६ गुने जलमें मिलाकर एक उफान आये तब तक गरम करें), केलेके खम्भेका रस और गूलरका रस (गूलरके वृक्षके मूलमें खड्डा करके एक घड़ा रखें, ऊपर ढक्कनसे ढककर मिट्टी दबा देवें । घड़ा भर जानेपर दूसरे रोज सुबह निकाल लेवें), इनकी क्रमशः ७-७ भावनायें देकर एक-एक रत्तीकी गोलियां बना लें । (भैं० र०)

इस रसमें पारे और गन्धकके बदलेमें षड्गुण गन्धक-जारित रससिन्दूर मिलानेसे विशेष लाभ होता है, ऐसा मूलग्रन्थकारने लिखा है ।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दूध मिश्री या धात्री घृतके साथ ।

उपयोग—यह रसायन दारुण बहुमूत्र, सब प्रकारके प्रमेह, मधुमेह, सोमरोग, क्षय, उरःक्षत, स्वप्नदोष, श्वास, कास और संग्रहणी आदिको दूर करता है ।

सूचना—अनेक निर्बल अन्त्रवालोंको अफीमके हेतुसे बद्धकोष्ठ हो जाता है । इसलिये औषधिकी मात्रा प्रकृतिका विचार करके देनी चाहिये ।

(१०३) मूत्रकृच्छ्रान्तक रस

विधि—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, जवाखार ४ तोले लें । सबको यथा विधि मिलाकर खरल करें । (र० चं०)

मात्रा—१-२ मात्रा प्रातःकाल मिश्री और मट्ठा या लस्सीके साथ दें ।

उपयोग—यह रस मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है तथा पेशाबको साफ लाता है । मूत्राशयमें अश्मरीकी छोटी-छोटी कंकड़ियाँ (शर्करा या सिकता) हो गई हो, वे भी निकल जाती हैं ।

दूसरी विधि—आधी बटलोईको जलसे भर, उसके मुखको पतले कपड़ेसे ढककर डोरेसे बाँध दें । फिर कपड़ेपर ३ छटांक गन्धाबिजौरा फैला बटलोईको चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द आंच दें । जब पानीकी भापसे गन्धाबिरोजा पिघलकर और कपड़ेसे छनकर बटलोईके अन्दर गिर जायः तब बटलोईको चूल्हेसे उतार लें । शीतल होनेपर तलभागमें जमे हुए बिजोरेको निकाल लें । फिर यह गन्धाबिरौजा ४ तोले और मकरध्वज या षड्गुण

गन्धकजारित रससिंदूर ८ माशे मिलाकर खरल करें। (र० सा०)

मात्रा—२-२ माशे दिनमें दो बार ताजा दूध, जल या मिश्रीके साथ सेवन करें।

उपयोग—इसके सेवनसे नूतन मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) नष्ट हो जाता है। ८-१० रोजमें मूत्रप्रसेक नलिकाके भीतरका घाव मिट जाता है। पीप आना बन्द होता है और मूत्रदाहका भी निवारण होता है। जीर्णरोगमें ज्यादा दिन तक सेवन करना चाहिये।

सूचना—यदि मकरध्वज या रससिंदूर न मिले, तो केवल शुद्ध किया हुआ गन्धाविरोजा भी लाभ पहुँचा सकता है।

(१०४) वसन्तकुसुमाकर रस

विधि—प्रवाल पिष्टी, रससिंदूर, मुक्तपिष्टी और अभ्रक भस्म ४-४ भाग सुवर्णभस्म और रौप्यभस्म २-२ भाग, लोह भस्म, नागभस्म शतपुटी और वंगभस्म ३-३ भाग लेवें। सबको अच्छी तरह मिला अडूसेका रस, हल्दीका क्वाथ, ईखका रस, कमलके फलोंका रस, मालती पुष्पका रस, गायका दूध, केलेके खम्भेका रस, कस्तूरी और चन्दनका फाण्ट * सबकी पृथक्-पृथक् ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। इस रसको अनेक चिकित्सक खस और नेत्रबालाके क्वाथकी भावना भी देते हैं। + (र० यो० सा०)

वक्तव्य—इस योगमें हम अम्बर ४ तोले मिलाते हैं। एवं कस्तूरीकी भावनाके स्थानपर अन्तमें केसर और कस्तूरी २-२ तोले मिला १ दिन केवड़ेके अर्कमें खरलकर गोलियां बांधते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। दूध-मिश्री, मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ।

विशेष अनुपान—(१) क्षयमें कालीमिर्चका चूर्ण और शहद।

---

* चन्दनका फाण्ट—चन्दनके चूर्ण १ तोलेको १६ तोले उबलते जलमें डालकर २-४ घण्टे मन्द आंचपर रहने दें। फिर नीचे उतारकर ढक्कनसे ढक दें। पश्चात् लगभग १६ से २० घण्टे बाद छानकर उपयोगमें लेवें।

सूचना—चन्दनको अधिक उबालकर क्वाथ न करें। अन्यथा कितना ही सुगन्ध युक्त द्रव्य उड़ जाता है।

रस क्वाथ और दूधको दोहरे गाढ़े कपड़ेसे छान लेना चाहिये। नहीं तो व्यर्थ वजन बढ़ जायगा और रसायन हीन गुणयुक्त हो जायगा।

+ श्री वैद्यराज पं० सुखरामदासजी टी. ओझा वसन्तकुसुमाकरमें नीलम पिष्टी, अकीकभस्म, संगेयसब भस्म, लाजबर्द रत्नकी भस्म और माणिक्यभस्म २-२ तोले मिलाकर केसरकी ७ भावनायें देते थे। इनके अनुभव अनुसार इस तरह बना हुआ रस अपेक्षाकृत अधिक हृद्य और सद्यः फलदायी बनता है मधुमेहमें जब अधिक निर्बलता आजाती है, तब यह तुरन्त उपकार दर्शाता है।

(२) प्रमेहमें हल्दी, शक्कर और शहद ।

(३) रक्तपित्तमें चन्दनका चूर्ण और मिश्री या अडूसेका रस, मिश्री और शहद ।

(४) पुष्टिके लिये चातुर्जात या अगर और सफेद चन्दनका चूर्ण १ माशे के साथ मिला शहदके साथ लेवें ।

(५) वमनमें शङ्खपुष्पीका रस ।

(६) अम्लपित्तमें शतावरीका स्वरस, शक्कर और शहद ।

(७) प्रमेह पिटिकामें शिलाजीत ।

(८) मानसिक निर्बलतामें त्रिजातका क्वाथ ।

(९) रक्तपित्तमें मोगरा या सेवतीका रस ।

(१०) मस्तिष्ककी निर्बलतापर कूष्माण्डावलेह ।

(११) शुक्रवृद्धिके लिये शतावरी, असगंध और मिश्री ।

उपयोग—वसन्तकुसुमाकर रस, अंडकोष, हृदय, मस्तिष्क, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और फुफ्फुसोंके लिये पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कामोत्तेजक, मधुमेहघ्न और मानसिक निर्बलताका नाश करने वाला है। जीर्ण मधुमेह और उसके उपद्रव रूप हृद्विकार, श्वास, कास, इन्द्रिय दौर्बल्य आदि एवं प्रमेहपिटिका (अदीठ Carbuncle) शुक्रक्षयके पश्चात्की निर्बलता, जरा-सा विचार आते ही शुक्रपात होना, नपुंसकता, मूत्रपिण्डकी विकृति, स्मरण-शक्ति मन्द होना, भ्रम, निद्रानाश, जीर्णरक्तपित्त, हृदयकी निर्बलता, शुष्ककास, थोड़ा परिश्रम होनेपर श्वास भर जाना, वृद्धावस्थामें श्वास, कास, हृदय या यकृत्की विकृति, जीर्ण सर्वांग शोथ स्त्रियोंके नूतन प्रदर, जीर्ण श्वेतप्रदर, सबको शमन करनेमें यह उपयोगी है ।

यह रस मधुमेहमें अत्यन्त हितकर है। अति व्यवाय (स्त्रीसेवन) और ओजक्षयसे होने वाले जीर्ण मधुमेहमें निर्बलता, मानसिक दौर्बल्य; दिन-प्रतिदिन बढ़ने वाला शब्द-स्पर्श आदि गुणोंकी ग्राहक इन्द्रिय शक्तिका क्षय; जोरकी आवाज और अधिक प्रकाशका सहन न होना बात-बातमें क्रोध उत्पन्न होना; अनिश्चित वृत्ति; विचार करनेकी शक्ति कम हो जाना, इन्द्रिय शैथिल्य इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हों, तो वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त हितकर है। मधुमेहसे उत्पन्न उपद्रव हृद्विकार, श्वास, कास, प्रमेहपिटिका, मूर्च्छा, संन्यास आदिको भी दूर करता है। प्रमेहपिटिका होनेपर शिला-जतुके साथ देना चाहिये मधुमेहके अन्तमें उत्पन्न संन्यास और शक्तिपातको दूर करनेके लिये यह रस अमृत रूप है ।

अति व्यवायशोषीके मनोदौर्बल्य, इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक निर्बलता बढ़नेपर स्त्री दर्शन या आवाज मात्रसे मनमें विकृति, शरीर निस्तेज

हो जाना, जिसमें जननेन्द्रिय बिल्कुल शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते हैं, उनमें यह अत्यन्त लाभदायक है।

अत्यन्त व्यवायसे हृदयदौर्बल्य, शुष्क त्रासदायक कास, श्वास, थोड़े परिश्रममें श्वास भर जाना, धमनी अथवा हृत्पटलका विकार, क्वचित् मूत्रपिण्डका विकार, इन सबपर यह उपयोगी है।

अधिक मगजके श्रमसे शिरदर्द और चक्कर आकर मानसिक निर्बलता बढ़ गई हो; तथा मस्तिष्क, वातवाहिनियां और इनके केन्द्र स्थानोंकी विकृतिके लक्षण विचार करनेपर मनका गुम हो जाना, बाहरकी आवाज सहन न होना, व्याकुलता बनी रहना, विचार करनेमें त्रास होना, आदि प्रतीत होते हों; परन्तु रक्तदबाव न बढ़ा हो, तो यह रसायन हितकारक है। अनुपान रूपसे त्रिजातका क्वाथ या पेठेका रस देना चाहिये। इन लक्षणोंके साथ निद्रानाश हो; और निद्रानाशका हेतु विविध विचार कल्पना हो, तो उसे भी यह दूर करता है।

जब रक्तपित्त (नाक, मुँह, गुदा, मूत्रमार्ग आदिसे रक्तस्राव अधिक बल पूर्वक होता हो, तो चन्द्रकला (या चन्द्रप्रभा), प्रवाल, मुक्ता मिश्रण दिया जाता है। परन्तु जब प्रारम्भिक वेग नष्ट होकर रोग जीर्ण हो जाता है, या रक्तपित्तकी आदत हो जाती है, अथवा भोजनमें किंचित् अन्तर होने या सूर्यका ताप लगनेपर नाककी शिरायें फूटकर रक्तस्राव होने लगता है; ऐसे रक्तपित्तमें पित्तका विदग्धत्व अधिक होता है। इस आदतको मिटाने में यह उत्तम औषधि है।

कितनी ही स्त्रियोंको कहीं भी आघात लगा कि रक्तस्राव होने लगता है; फिर वह जल्दी बन्द नहीं होता। मासिकधर्ममें जाने वाला रक्तस्राव सत्वर नहीं रुकता। इतना ही नहीं, कभी सूई लग जाय, तो उससे भी रुधिरस्राव होना; फिर वह भी जल्दी बन्द नहीं होता। इस प्रकारके प्राकृतिक रक्तपित्त (Haemnyhilia) पर वसन्तकुसुमाकर अति उत्तम कार्य करता है। अनुपान रूपसे मोतियाके फूलोंका लेह देवें।

वसन्तकुसुमाकरका परिणाम अण्डकोषपर बल्य होता है, अतः यह उत्तम वृष्य औषध है। छोटी आयुसे दुष्ट आदत हो जाने या युवावस्थामें अति व्यवाय आदि कारणोंसे उत्पन्न इन्द्रिय शैथिल्य, मनमें कामविकार उत्पन्न होनेके साथ वीर्य-स्खलन, स्त्री सम्बन्धी विचार आने अथवा नूपुर या कंकणकी आवाज सुनने मात्रसे स्खलन आदि लक्षण हों, या नपुंसकता आई हो, तो यह अति उपयोगी है।

वृद्धावस्थामें उत्पन्न जरा कासमें यह औषध उत्तम उपयोगी है। जरा-वस्थामें यह स्वाभाविक काल परिणाम है, यह एक पक्ष है। वृद्धावस्थामें

भी यह रोग ही है, यह दूसरा मत है। यह दूसरा मत आयुर्वेदको मान्य है। जरावस्थाके कारण अनेक हैं। इनमें सब अवयव समूहोंकी विशेषतः अन्तःस्रावक पिण्डोंकी शक्ति कम कम होती जाना, यह भी एक कारण है। फिर अन्तस्थ अवयव समूह अशक्त हो जाता है। इसका परिणाम हृदय और फुफ्फुसोंपर होकर श्वास-कास होते हैं। इसपर वसन्तकुसुमाकर उपयोगी है।

सर्वाङ्ग शोथ, वातज (हृदय-विकृतिजन्य), पित्तज (यकृद्विकृतिजन्य), कफज (वृक्कविकारजन्य) और सर्वज (व्याधि संकर होकर तीनों स्थान दुष्ट होने), इस तरह ४ प्रकारके शोफ आयुर्वेदमें कहे हैं। इनमें पुनः तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। इनमेंसे तीव्र विकारमें इसका उपयोग नहीं होता। परन्तु जीर्ण विकारमें विशेषतः वातज और पित्तजपर, इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

स्त्रियोंकी जननेन्द्रियके विकारमें इसका उपयोग होता है। यह औषधि छोटी आयुकी अपेक्षा बड़ी आयुमें विशेष लागू होती है। व्यवायके अतियोगसे उत्पन्न प्रदर, सर्वाङ्ग शैथिल्य, हृदयकी अशक्तता, वातवाहिनियां और वातवह मण्डलकी शिथिलता, क्रोधी स्वभाव आदि लक्षण होनेपर यह अति उत्तम लाभ पहुंचाती है। प्रदररोग दीर्घकाल पर्यन्त चालू रहता है। तब निरुत्साह, कृशता, निस्तेजता, शक्तिपात आदि हो जाते हैं। इस पर यह अच्छा उपयोगी है।

संक्षेपमें यह रस बल्य वृष्य, मधुमेहघ्न, मानसिक निर्बलता तथा वातवहमण्डल, सहस्रार और वातवाहिनी केन्द्रकी अशक्तिको दूर करने वाला है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त कामोत्तेजक होनेसे बढ़ी हुई कामोत्तजना वालेको नहीं देना चाहिये, अन्यथा उसके मनपर बहुत खराब असर होकर शुक्रक्षय अधिक करनेकी प्रवृत्ति हो जायगी।

(१०५) त्रिविक्रम रस

विधि—ताम्रभस्म १० तोलेको, बकरीके १० तोले दूधमें मिलाकर मन्दाग्निपर पकावें। दूध सूख जानेपर १० तोले पारद और १० तोले गन्धककी कज्जली मिलाकर खरल करें। पश्चात् काले फूलों वाली निर्गुण्डीकी छालके क्वाथमें ३ दिन खरल करके गोला बनावें। फिर सुखा, सराव-सम्पुटमें बन्द कर मजबूत ५-७ कपड़ मिट्टी करें। सूखनेपर बालुका यन्त्रमें रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि देवें स्वांग शीतल होनेपर औषधको निकालकर खरल कर लेवें। (र० र० स०)

सूचना—रस सिद्ध होनेपर गन्धक जल जाता है और पारदका सिंदूर बन जाता है। यदि गन्धक रह गया हो तो पुनः १-२ घण्टे अग्नि देनी

चाहियें।

मात्रा –आधसे २ रत्ती शहदके साथ दिनमें १ वार सुबह, ऊपर ६ माशे बिजौरेके मूलको जलमें घिसकर पिलावें; या हरड़, बहेड़ा, पाषाणभेद धमासा, धनियां, गोखरू और ककड़ीके बीजके मगजका क्वाथ दें।

वक्तव्य—त्रिविक्रम लेनेपर यदि बेचैनी होती हो तो पीले पक्के नींबूका रस, शक्कर और थोड़ा जल मिलाकर पी लेवें।

इस रसका सेवन करनेपर १ घण्टे तक गरम चाय या गरम दूध नहीं लेना चाहिये।

उपयोग—इस रसके सेवनसे मूत्रपिण्ड और मूत्राशयमें स्थित अश्मरी, शर्करा, वृक्कशूल आदि रोग एक मासमें नष्ट होते हैं। पथरी कट-कटकर मूत्रद्वारा निकल जाती है।

(१०६) पाषाणवज्रक रस

विधि—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली करें पश्चात् सफेद पुनर्नवाके रसमें ३ दिन तक खरलकर गोला बांधकर सुखावें। फिर सराव सम्पुटमें बन्दकर भूधरयन्त्रमें १२ घण्टे तक अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर गोलेको निकालकर खरल कर लें।

मात्रा—४-८ रत्ती रोज सुबह समभाग पाषाणभेदका चूर्ण तथा सूर्यावर्त क्षार २-२ रत्ती मिलाकर लेवें। ऊपर गोपाल ककड़ी (एरण्ड ककड़ी-पपीता) के ४ तोले मूलका क्वाथ शहद मिलाकर पीवें। अथवा कुलथीका क्वाथ पीवें। रात्रिको गोखरू, वंशलोचन और नागरमोथेका क्वाथ लें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे अश्मरी एक सप्ताहमें कट-कटकर निकल जाती है। वृक्कस्थानमें शूल निकलता हो तो वह भी इस औषधके सेवनसे शमन हो जाता है।

अश्मरीके भेदन और उत्पत्तिको रोकनेके लिए विशेषत: त्रिविक्रम रस और पाषाणवज्रक रस ये दो रसायन व्यवहृत होते हैं। यकृत् निर्बल होने पर पित्तका स्राव योग्य न होता हो तब यकृद्बल्य औषधि देनी चाहिये। ताम्रभस्म यकृद्को उत्तेजना देती है और सबल बनाती है। इस हेतुसे ऐसी अवस्थामें त्रिविक्रम रस विशेष उपकारक है किन्तु अधिक धूम्रपान करने वालोंके वृक्क जब योग्य कार्य नहीं करते और यकृत्पित्त दूषित हो जाता है तथा शराबके व्यसन वालोंको यकृत्में अधिक रक्तसंग्रह हो जाता है तब मूत्रजनन गुणयुक्त औषधि विशेष व्यवहृत होती है। इसलिए ऐसी अवस्थामें पाषाणवज्रक रस अधिक हितावह होता है। इस रसायनके सेवन से यकृत्पित्तकी रचना सुधरती है और नयी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। अधिक वमन होकर आमाशयमें उग्रता आई हो वह भी शांत हो जाती है। वृक्क और मूत्राशय दोनों स्थानोंपर यह औषधि कार्य करती है।

सूचना—यदि अश्मरी वातज (ओक्झलेट) हो और पुरानी हो गई हो तो इस औषधिके सेवनसे नहीं टूटती। पित्तज और कफज टूट जाती है।

(१०७) अश्विनीकुमार रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोहागेका फूला, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध अफीम, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेडा, आंवला, पीपलामूल और लौंग ये १५ औषधियाँ १-१ तोला लेवें। पहले पारद गन्धककी कज्जलीकर हरताल, बच्छनाभ, अफीम, जमालगोटा और सोहागा क्रमसे मिलावें। बादमें और औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिलाकर गायके ३२ तोले दूधके साथ खरल करें। फिर ३२ तोले गोमूत्रमें और ३२ तोले भांगरेके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार। रोगानुसार अनुपानके साथ दें। पित्तमेहमें हल्दी, मूत्रकृच्छ्रमें जीरे, पुष्टिके लिये शहद और ज्वरमें अदरकके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे पित्तजमेह, मूत्रकृच्छ्र और पित्तप्रधान विषम ज्वरोंका नाश होता है तथा बलकी वृद्धि होती है। आमाशय (मेदा) पक्वाशय (छोटी आंत) और मलाशय (बड़ी आंत) में दोष संचय होनेसे भीतर अब्धातु (जल) की वृद्धि होकर होने वाला जुकाम, नजला, बहुमूत्र, प्रमेह, कोष्ठशूल, कोष्ठशूलज अतिसार और ज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

आमाशय, पक्वाशय और बृहदन्त्रमें दोषसंचय होनेपर सेन्द्रिय विष संगृहीत होता है, फिर विविध विकार उत्पन्न होते हैं। इन पर यह रसायन लाभदायक है। बद्धकोष्ठमें इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु मल संगृहीत होनेमें अब्धातु बढ़कर उत्पन्न होने वाले विकार इस औषधके योगसे निवृत्त होते हैं। कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका परिणाम अन्य स्थानमें होकर उत्पन्न होने वाले प्रमेह और प्रतिश्यायको भी यह दूर करता है। इसके सेवनसे कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका शमन होता है, पचनक्रिया बढ़ जाती है, कोष्ठ सबल होता है, और मलसंचय बाहर निकलकर कोष्ठशुद्धि हो जाती है।

कोष्ठस्थ मलसंचय प्रमेहका प्रमुख कारण है। प्रमेहोंमें भी विशेषतः पित्तदोषके द्रवत्व धर्मकी वृद्धि होकर उत्पन्न होने वाले प्रमेहोंमें अर्थात् कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह और हारिद्रमेहमें मूत्रका वर्णकाला, नीला, लाल या पीला होनेपर इसका उपयोग होता हैं। मूत्रके उक्त रङ्ग बार-बार मूत्रोत्सर्ग होनेपर भी मूत्रशुद्धि न होनेका भास होना, तृषा विशेषतः शीतल जल अधिक पीनेकी इच्छा, हाथ पैरोंके तलोंमें दाह सर्वाङ्गमें जलन, सर्वांगमें विशेषतः बगल आदि स्थानोंमें चिपचिपे दुर्गन्धमय प्रस्वेदमेंसे गन्धक जलनेके सदृश बास आना आदि लक्षण होनेपर हल्दीके साथ अश्विनीकुमार

देना चाहिये ।

मूत्रकृच्छ्रमें बार-बार मूत्रोत्सर्गकी शंका होती है । बहुत पेशाब होगा ऐसा लगता है । परन्तु पेशाब करनेके लिये वेग उत्पन्न होनेका प्रयत्न करने और बलपूर्वक किंछनेपर भी मूत्रप्रवृत्ति योग्य नहीं होती । मूत्रप्रसेक नलिका में दाह, क्षोभ या शोथ अधिक न होनेपर भी उक्त लक्षण हों तो अश्विनी-कुमार अनेक उत्तम औषधियोंमें से एक है ।

कोष्ठमें मलसंचय होकर कोष्ठशूल, अतिसार और ज्वर होनेपर अश्विनी-कुमारका उत्तम उपयोग होता है । तीव्र त्रासदायक शूल, उदरमें शूल, उदर में छुरे मारनेके सदृश वेदना, उदरमें दर्द होकर मरोड़ा आना और बार-बार शौच जानेका भास होना, शौच जानेपर प्रवाहण करनेपर थोड़ा जल मय किंचित् मल निकलता, इस तरहके त्रासके हेतुसे ज्वर आना, ज्वर अधिक नहीं होता परन्तु मन्दज्वरमें भी त्रास अधिक होना आदि लक्षण होनेपर अश्विनीकुमार उत्तम औषधि है ।

विषम ज्वरोंमें एकाहिक, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंमें यदि पित्तदोषका प्राधान्य हो तो भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ अश्विनीकुमार रस देना चाहिये । (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१०८) हरिशंकर रस

विधि—अभ्रक भस्म और रससिंदूर २-२ तोले और नीलेथोथेका फूला १ तोला मिलावें । फिर आंवलेके स्वरस और हल्दीके क्वाथमें ७-७ दिन तक खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें ।

मात्रा—१ गोलीसे प्रारम्भ कर ३ गोली तक बढावें । अनुपानमें जल, त्रिफला और शहद, अडूसेके रस, मिश्री और नागरबेलका पान अथवा तिलका तैल लें ।

उपयोग—यह रस जीर्ण और नूतन पूयमेहको नाश करता है । पूय प्रमेह (Gonorrhoea) मेहकी तीव्र वेदना, पेशाबमें आता हुआ रक्त और पीप पेशाबमें जलन आदि लक्षणोंको दूर करता है । गोली देकर ऊपर ४ तोले तैल या आँवलोंका फाण्ट या नींबूका रस पिलानेसे वमन, घबराहट कुछ भी नहीं होती और २-४ घण्टेमें ही तीव्र जलनकी शांति होती है । तैल पीने वालेको घी, शक्कर, हींग और वेसनकी वस्तुएं नहीं देनी चाहिये ।

आंवलेके स्वरसकी अधिक भावनासे नीले थोथेकी वमन करानेकी शक्ति का दमन होता है और औषधि पूरा लाभ करती हैं । यदि आंवलेके स्वरस की भावना कम दी जायगी तो औषधि सेवनसे बेचैनी उत्पन्न होगी ।

सूचना—इस औषधिके सेवनके पश्चात् ३ घण्टे तक भोजन, दूध, चाय या काफी कुछ न लें । आवश्यकता हो तो थोड़ा ठण्डा जल पीवें ।

(१०९) बृहद्वंगेश्वर रस

विधि—वंग भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, कपूर और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी ३-३ माशे लेकर यथा विधि मिला लें। फिर भांगरेके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (रसे० सा० सं०)

वक्तव्य—रौप्यभस्म १०० पुटी, वङ्ग भस्म चतुर्थ विधिकी, विशेष पुटयुक्त अभ्रक भस्म सहस्रपुटी पाठमें लिखे हुए परिमाणमें तथा अम्बर, रौप्य भस्मसे आधे परिमाणमें मिलानेपर यह औषधि आशुफलप्रद बनती है। हम वृहद्वंगेश्वर (विशेष) इस प्रकारसे बनाते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक। दिनमें २ बार गाय या बकरीके दूध अथवा दही या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन साध्य और असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त और कफप्रधान संग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, बहुमूत्र, मूत्रातिसार, स्तम्भनका अभाव और सोम रोग आदिको दूर करता है, शरीरको पुष्ट बनाता है; बल, ओज, तेज, वर्ण और रुचि उत्पन्न करता है। वीर्योत्पत्ति और वृद्धिके लिये यह अति लाभदायक है। शुक्रस्थान और उससे सम्बन्ध वाली वातवाहिनियों को सुदृढ़ बनाता है। तथा शुक्रक्षयजन्य हृदयकी निर्बलताको दूरकर हृदय को पुष्ट बनाता है। यह रस बालक युवा और वृद्ध सबके लिये हितकारक है। अति व्यवायसे उत्पन्न शुक्रक्षयकी यह उत्तम औषधि है।

वृहद्वंगेश्वर रसके गुणधर्म रसेन्द्रसार संग्रहकारने जो जो दर्शाये हैं वे सब ब्रह्मचर्य और पथ्यके पालन सह सेवन करनेपर प्रतीत होते हैं। विशेषत: यह रस शनैः शनैः रस रक्त आदि सत्र धातुओंको सबल बनाकर जीवन शक्ति प्रदान करता है। तथापि इस रसका अधिक प्रभाव मूत्र संस्थान, वातसंस्थान, मस्तिष्क और हृदयपर प्रतीत होती है।

अधिक शुक्रपात, वृद्धावस्थाकी निर्बलता, किसी रोग, विशेषके अधिक दिनों तक रह जानेसे आई हुई कृशता, प्रतिलोम क्षय, शोष शुक्रके अति योगसे उत्पन्न शुक्र क्षय, पुस्तकोंका अधिक पठन-मनन आदिसे आई हुई मस्तिष्ककी निर्बलता (या उन्माद जैसी मानसिक स्थिति या स्मृति ह्रास), शुक्रक्षयसे उत्पन्न विविध जातिके वातप्रकोप इनपर यह रस जादूके समान कार्य करता है।

शुक्रक्षयके हेतुसे होने वाले वातवाहिनियोंके क्षोभमें उन्माद, व्याकुलता, चित्तकी अशान्ति, कार्य करनेके उत्साहका अभाव, स्मृतिनाश, शरीरके विविध भागोंमें वायुका आक्षेप आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसमें

सुवर्ण, रौप्य, वङ्ग मिश्रित औषधि सफल होती है। इन तीनों औषधियोंका योग्य मात्रामें इस प्रयोगके भीतर मिश्रण होनेसे इन सबके कारणरूप शुक्र और वातवाहिनियोंको बल प्रदान करके रोगका नाशकर देता है।

शुक्रके अति दुरुपयोगसे यकृत् भी निर्बल होता जाता है। जिससे घृत-तैलका पचन कम होता है। इस परिणामका बोध न होनेसे अनेक अनभिज्ञ मनुष्य शक्ति बढ़ानेकी इच्छासे घीका सेवन अत्यधिक करते हैं। जिसके फलस्वरूप अनेकोंके विभिन्न प्रकारके प्रमेह; मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्रातिसार आदिसे पीड़ित होते हैं। कईयोंको कामला, हलीमककी संप्राप्ति होती है। इस विकारावस्थामें पचन-क्रिया बढ़ानेके लिए पित्तवर्द्धक, उष्ण क्षारादि लेते हैं। फिर कई रक्तपित्तसे पीड़ित हो जाते हैं। कई मनुष्योंको आमवृद्धि और अपचन होकर धातुगत ज्वर, पाण्डु, संग्रहणी, अग्निमांद्य, अरुचि आदि की संप्राप्ति होती है। इन सबका मूल शुक्रक्षय होनेपर बृहद्वंगेश्वर रसका सेवन अमृतके समान उपकार दर्शाता है।

सूचना—(१) इस रसके सेवनके साथ चन्दनबलालाक्षादि तैलकी मालिश नियमित कराते रहें तो उससे भी रक्ताभिसरणक्रियामें वृद्धि होकर तथा मांस और वातनाड़ियाँ सबल बनकर शीघ्र लाभ पहुँचनेमें सहायता मिल जाती है।

(२) यदि सिगरेट, बीड़ी, गांजा, शराब, गरम-गरम चायका व्यसन हो तो छोड़ देना चाहिए। भोजनमें अति मिर्च मसाला नहीं लेना चाहिए। भोजन सरलतासे पच सके वैसा लघु पथ्य लेना चाहिए और नियमित समय पर लेना चाहिए।

(३) सब प्रकारकी मानसिक चिन्ताओंको श्री हरिचरणोंमें समर्पितकर देनी चाहिए। जिस तरह मन प्रसन्न रहे, उस तरह प्रयत्न करना चाहिए।

(११०) प्रमेहान्तक वटी

प्रथम विधि—वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमीमस्तंगी, ईसस (कुंदरू) राल, शीतलमिर्च, इलायची और हल्दी सब औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर चन्दनके तैलमें मर्दनकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (आ० नि० मा०)

वक्तव्य—इस वटीमें तैलकी मात्रा अत्यधिक होती है। इस हेतुसे हम १६ तोले औषधियोंमें २ तोले चन्दनका तैल मिलाते हैं। फिर २ तोले रसोंतका जल कर उसमें ३ घण्टे खरल करके गोलियां बांधते हैं।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ समय। जलके साथ देवें। सुबहके समय २ माशे कतीरा गोंदके साथमें देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

उपयोग—यह वटी पूयप्रमेह, पेशाबमें जलन, पेशाबमें पीप आना;

पेशाब बूंद-बूंद आना, मूत्रनलिकामें शोफ इत्यादि दोषोंपर अति उपयोगी है। एक दो दिनमें जलन शान्त होती है और पीप तथा शोथ ५-७ दिनमें दूर होते हैं। नये सुजाककी वेदना इससे तत्काल दूर होती है। यदि रोग बढ़ गया हो तो निर्मूल नहीं करती परन्तु दर्दको शान्त कर देती है।

दूसरी विधि—वंगभस्म १ तोला, लोहभस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १।। तोला, अकलकरा ३ माशे, नारियलकी गिरी १ तोला, छुआरा १ तोला, केशर ४ माशे, बादामकी गिरी ९ माशे, जायफल १ तोला और मिश्री ३ तोले लें। पहिले वंग भस्म आदि तीन दवाइयोंको अलग रख शेष ७ द्रव्योंको कूटकर, कपड़छन चूर्ण करें। फिर चूर्णके साथ वंग और लोह-भस्म खरलकर शिलाजीतके जलमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (चि० चं०)

मात्रा—२ से ४ गोली। दिनमें २ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी प्रमेह रोगोंमें उपयोगी है। थोड़े दिन सेवन करनेसे प्रमेहके दोष निर्मूल होकर वीर्यकी शुद्धि होती है। बहुमूत्र, स्त्रियोंका सोम-रोग वृद्धावस्थामें मूत्राशयकी शिथिलताके कारणसे बार-बार पेशाब करना मूत्रमें जलन, पीलापन और मूत्रदोषके कारण शिरदर्द, चक्कर आना, अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलताको नष्टकर शरीरको नीरोग और सुदृढ़ बनाती है।

तीसरी विधि—कच्चा बिरोजा १ सेर लेकर १०१ बार जल मिलाकर धोवें। फिर संगजराहतका कपड़छन चूर्ण १ सेर मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बांधें। (श्री पं० मंगूलालजी)

मात्रा—१-१ गोली। दिनमें २ बार दें। रात्रिको तुखमबालुंगा १ तोलाको कोरे मिट्टीके बरतनमें गुड़के शर्बतमें भिगो दें। गुड़का शर्बत इतना करें कि सुबह पेट भर जाय। सुबह छानकर टट्टी जानेके पहिले पीलें। फिर १ घण्टे बाद ताजे जलके साथ १ गोली लें और शामको टट्टी जानेके बाद १ गोली जलके साथ लें शामको गुड़का शर्बत न लें।

सूचना—सुबह औषधि लेनेपर ३ घण्टे तक भोजन न करें।

उपयोग—सुजाक (Gonorrhoea) नये और पुराने रोग इस गोलीके १७ दिन सेवनसे दूर होते हैं। भोजनमें बेसनकी रोटी, घी, चावल और बूरा मात्र लेवें। नमक और दूधका त्याग करें।

चौथी विधि—हीरादोखी गोंद १५ तोले, अफीम १ तोला, दालचीनी ४ तोले, जसदभस्म या सल्फेट आफ जिंक (Zinc Sulphate) १२ तोले और कपूर ६ तोले लेवें। सबको मिला जलके साथ खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—२-२ गोली। दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—सुजाक रोग जीर्ण होनेपर पीप आना, मूत्रप्रसेकनलिका, शोथ

जलन, मन्दाग्नि, संधिवात, नेत्रकी कमजोरी आदि उपद्रव होते हैं। इनका शमन इस वटीके सेवनसे हो जाता है और रक्तमें रहे हुए कीटाणु भी नष्ट होते हैं। शांतिपूर्वक पथ्य पालनसह कुछ समय तक औषधि लेनी चाहिये।

(१११) जातिफलादि वटी [मधुमेह]

विधि—जायफल, जावित्री, लौंग, केसर, धतूरेके शुद्ध बीज, शुद्ध अफीम सब समभाग लें। शुद्ध शिलाजीत सबके समान और लोहभस्म शिलाजीत से आधी लें। सबको यथा विधि मिला शिलाजीतके जलमें खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ बार, गुड़मारके अर्क या चूर्ण और गायके दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी मधुमेहमें पेशाबकी शक्कर और प्यास कम करके दर्दको दूर करती है। अतिसार और मूत्रातिसारमें भी हितकर है। इसका कार्य बढ़ी हुई तृषाका शमन करने, इक्षुमेह और मधुमेहमें मूत्रके साथ जाने वाली शर्कराको कम करने और मूत्रको नियमित बनानेका है। मूत्रातिसारमें बार-बार आध-आध घण्टेपर पेशाब आता है, उसे यह नियमित बनाती है। वृद्धावस्थामें मूत्राशयकी निर्बलताके कारण बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आना, मधुमेह होना, ४० वर्षसे बड़ी आयु वालोंको मधुमेह जीर्ण होनेपर बार-बार जलपान और बार-बार लघुशंका होना, शरीर निस्तेज, निर्बल और कृश हो जाना, मानसिक उत्साह भी नष्ट हो जाना आदि लक्षण होते हैं। उसपर यह अच्छा कार्य करती है। मधुमेह जीर्ण होनेपर प्रमेह पिटिका (अदीठ Carbuncle) उत्पन्न हुआ हो तो उसे भी यह नष्ट करती है।

इस औषधसे हृदय, वातवाहिनी और मस्तिष्कपर उत्तेजक, शामक और पोषक असर होता है। यकृत्‌की शक्कर बनानेकी निरंकुश क्रिया मर्यादित होती है, तथा शरीर, इन्द्रिय और मन तीनों सबल होकर रोगको शनैः-शनैः नष्ट करती है।

इस औषधिमें अफीम-तिक्त, शर्कराका रूपान्तर करने वाली सप्तधातु-शोषक, उत्तेजक, बलदायक, मादक, स्वेदजनक, तृषाशामक और स्तम्भक है। लोहभस्म मधुर-कसैले गुण वाली, तृषाशामक, स्तम्भक, यकृत् स्थान, रक्त और शुक्रको बल देने वाली है। शिलाजीत तिक्त गुण वाला, कटु-विपाकी रसायन, कफमेदघ्न, मूत्र और धातु परिपोषक क्रमको नियमित करने वाला है। धतूरेके बीज हृद्य, पीड़ाशामक, नाड़ीशोधक, मादक और अफीमकी बद्धकोष्ठ करनेकी शक्तिको कम करने वाले हैं। जायफल, जावित्री, लौंग और केसर हृद्य, वृष्य, तृषाशामक और स्निग्ध हैं।

(११२) चन्दनादि लोह [प्रमेह]

विधि—सफेद चन्दन, सेमलके फूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, नागरमोथा, खस, मुलहठी, आंवला, सनाय, वंशलोचन, भारंगी, देवदारु, बड़ी हरड़का छिलका इन १८ औषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान खूब महीन चूर्ण करें। फिर सबसे दुगुनी लोहभस्म मिलाकर खरलकर लेवें। (भै. र.)

मात्रा—२ से ३ रत्ती तक। दिनमें २ बार शहदके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अनेक प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अर्श और कामला आदि रोग नष्ट होते हैं। जब मस्तिष्कमें उष्णता, पेशाबमें पीलापन, निस्तेजता, गाढ़ निद्रा कम आना, आलस्य बना रहना, मन्द-मन्द ताप रहना, उत्साहका अभाव होना, पचनशक्ति मन्द होना, श्वास, कास आदि लक्षण उपस्थित हों तब इस चूर्णके सेवनसे सत्वर लाभ होता है।

इस रसायनमें प्रधान औषधि लोहभस्म है। लोहभस्मके साथ अन्य औषधियां दीपन-पाचन और मूत्र संस्थानपर उपकारक मिलायी हैं। इस हेतुसे यह रस हृद्य, यकृद्बल्य, रक्तपौष्टिक, रक्तप्रसादन, दीपन, पाचन और मूत्रजनन बना है। इन गुणोंके हेतुसे यह प्रमेहादि रोगोंपर उपकारक होता है।

वातज, पित्तज और कफज प्रमेहोंकी उत्पत्ति प्रायः अपचन, पाण्डुता, और रक्तविकृति होनेपर होती है। इन प्रमेहोंमें पेशाबके साथ श्लेष्मा, वसा, विविध क्षार, शुक्र, रक्त, रक्तरंग, पित्त और मज्जा द्रव्य जाता है। इनमेंसे पित्तज और कफज मेहोंपर चन्दनादि लोहका उपयोग होता है।

वक्तव्य—यदि अग्निमांद्य और पाण्डुताके साथ जीर्ण मलावरोध भी हो, तो इस रसका अच्छा उपयोग नहीं होता। ऐसी अवस्थामें पहले उदर और पचनसंस्थानके शोधनार्थ आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफलाके फाण्टके साथ दी जाती है। एवं हस्तमैथुनादि कृत्रिम उपायों द्वारा शुक्रमेहकी संप्राप्ति हुई हो तो भी इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये। उसपर पहले वीर्यशोधन वटी और फिर वृद्धदण्ड चूर्ण या वीर्यस्तम्भन वटीका प्रयोग करना विशेष लाभप्रद रहता है।

कामला रोगकी संप्राप्ति प्रायः पित्ताशय नलिकाप्रदाह या पित्तनलिकामें अवरोध होनेपर होती है, कामला उत्पन्न होनेपर नेत्रकी श्लैष्मिककलामें पीलापन, मूत्रमें पीलापन और मल प्रायः सफेद मैले रंगका तथा रक्तमें पित्त अधिक मिल गया हो तो त्वचामें पीलापन आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसकी प्रारम्भावस्थामें उपचारके २ प्रकार हैं। पापड़खार (या सोडाबाईकार्ब) को दही या नींबूके रसमें मिलाकर पिला दें और रोगीको दही भातपर रखें। किन्तु जिन रोगियोंको ज्वर, शोथ, संधिवात, रक्तपित्त, अम्ल-

पित्त या कफप्रधान श्वास रोगादि हों तो उनके लिये क्षार और तक्रप्रधान उपचार नहीं होता। उन रोगियोंको चन्दनादि लोह या अन्य लोह कल्प दिया जाता है और दूधपर या दूध भातपर रोगीको रखा जाता है। यदि पित्तनलिकामें अवरोध हो और पित्ताशयमें वेदना होती हो तो अनुपान रूपसे मूलीके पानोंका रस ४ तोले दिया जाता है।

श्वास रोगकी उत्पत्ति कफ-धातुकी विकृति और पचनसंस्थानकी विकृति होनेपर अधिक होती है। किसी-किसीको रक्तके भीतर मूत्रमें जाने वाले मल द्रव्यका संग्रह होता है। फिर पाण्डुता आकर श्वास उपस्थित होता है। मूत्रमें पीलापन, हृदयमें धड़कन होना, थोड़ा-सा परिश्रम करने पर श्वास भर जाना, निर्बलता, मुखमण्डलपर निस्तेजता, शारीरिक उत्ताप कम रहना, शीत और उष्ण सहन न होना, अग्निमांद्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारपर चन्दनादि लोह व्यवहृत होता है।

मूत्रविष या आमविष जब रक्तादि धातुओंमें लीन होता है तब मन्द-मन्द ज्वर दीर्घकाल तक बना रहता है। इस प्रकारके ज्वरमें थोड़ा परिश्रम करनेपर या रात्रिको शारीरिक उत्ताप प्रायः बढ़ जाता है। रात्रिको ९९° तक हो जाता है। सुबह ९७° या इससे भी कम होता है। अग्निमांद्य, मलावरोध, कफप्रकोप, कास, शिरदर्द, आलस्य बना रहना, पेशाबमें पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकारपर चन्दनादि लोह (प्रमेह) या चन्दनादि लोह (ज्वर) का प्रयोग होता है। यह चूर्ण मूत्रशुद्धि करानेमें विशेष सहायक है। ज्वरपर लिखा हुआ चन्दनादि लोह आमपाचन और दीपन गुण विशेष दर्शाता है। अतः जो विशेष सहायक हो उसका प्रयोग करना चाहिये।

अर्श रोगकी उत्पत्ति प्रायः अजीर्ण रोगके पश्चात् मल मूत्रावरोध, गुदनलिका और बृहदन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता, उदरमें वायु भरा रहने और रक्तमें विषवृद्धि होनेपर होती है। यह औषधि मूल कारणरूप मूत्रावरोधादिको दूर करती है और रक्तका प्रसादन करती है। इस हेतुसे पित्तज अर्श रोग वालोंके लिये हितावह हैं। तक्र अनुकूल हो तो तक्रके साथ चन्दनादि लोहका सेवन कराना चाहिये।

(११३) त्र्यूषणाद्य लोह

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, चित्रक, बिड़नमक, बावची, सैंधानमक, कालानमक और लोहभस्म ये १३ औषधियां समभाग लें। काष्ठादि औषधियोंके कपड़छन चूर्णके साथ लोह भस्म मिला खरलकर बोतलमें भर लें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ माशा। दिनमें २ बार, घी और शहदके साथ दें।

उपयोग—यह औषध मेदरोग (Obesity), प्रमेह, कफवृद्धि और इस कारणसे होनेवाले कुष्ठ आदिको दूर करती है। आहर-विहारमें नियमका आग्रह नहीं है। फिर भी सुबह-शाम घूमनेको निकले तथा घृत, शक्कर और चावल नहीं खायें तो लाभ जल्दी होता है। यह लोह अग्निको प्रदीप्त करा तथा मेदोवृद्धिकी उत्पत्तिको ह्रास करा शरीरको बलवान और तेजस्वी बनाता है।

सूचना—इस त्र्यूषणाद्य लोहके सेवनके साथ शिलाजतु ४-४ रत्तीका सेवन भी किया जाय तो लाभ अधिक मिलता है।

(११४) प्लीहान्तक वटी (लोह)

विधि—फिटकरीका फूला, सोहागेका फूला, गिलोय सत्व, लोह भस्म और शंख भस्म, १-१ तोला तथा एलुआ और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लें। सबको मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार निवाये जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धिमें अति प्रभावशाली है। एवं यकृद्‌वृद्धि उदरशूल, कामला प्लीहावृद्धिसे होनेवाला ज्वर और मलावरोधको दूर करती है। बालक और बडे सबको लाभदायक है। बहुत बढ़ी हुई तिल्ली भी थोड़े ही दिनोंमें कट जाती है और पचन क्रिया सुधर जाती है। इस वटीके सेवनकालमें गुड़ शक्कर वाले भोजनका त्याग करना चाहिये।

(११५) आरोग्यवर्द्धिनी वटिका

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोले, शुद्ध शिलाजीत ३ तोले, शुद्ध गूगल ४ तोले, चित्रकमूलकी छाल ४ तोले और कुटकी २२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला नीमके पत्तोंके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें। * (र० र० स०)

---

* मूल ग्रन्थमें आरोग्यवर्द्धिनीका पाठ निम्नानुसार एक ही है। किन्तु वतमानमें वैद्य समाज शब्दार्थ भेद करके ४४ तोले, १४० तोले, ३६ तोले मिश्रणके ३ प्रयोग बनाते हैं।

रसगन्धकलोहाभ्रशुल्वभस्मसमांशकम्।
त्रिफला द्विगुणा योज्या त्रिगुणं तु शिलाजतु॥१॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम्।
तिक्ता सर्वं समाज्ञेया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः॥२॥
निम्बवृक्षदलांभोभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि।
ततश्च वटिकाः कार्या राजकोलफलोपमाः॥३॥

वक्तव्य—नीम पानको कूट स्वरस यन्त्रमें भरकर उबालें। नरम होनेपर निचोड़कर रस निकाल लें। इस प्रकारके रसको उपयोग करें।

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें २ बार। दूध, जल, त्रिफलाके हिम। शोथपर पुनर्नवाका क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, या मूत्रलक्वाथ, कब्जसह रक्तविकारमें स्वादिष्ट विरेचन। इस तरह अन्य विकारोंपर रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी कुष्ठ तथा वात, पित्त कफोद्भूत विविध ज्वरोंका नाश करती है। यह गुटिका पाचक, दीपन, पथ्यकारक, हृद्य, मेदोहर, मलशुद्धिकर, अत्यन्त क्षुधावर्द्धक और सामान्यतः सब रोगोंमें हितकारक है। श्री नागार्जुन योगीने सब रोगोंके प्रशमनके लिये यह तैयारकी है।

इस गुटीकाका मुख्य उपयोग कुष्ठ रोगोंमें होता है। इसके गुण पाठके प्रारंभमें ही 'हन्ति कुष्ठान्यशेषतः' कहा है। फिर विविध ज्वर आदि रोगों पर उपयोग होनेका उल्लेख किया है। ऊपर-ऊपरसे विचार करनेपर परस्पर एक दूसरेसे विरुद्ध भासमान व्याधियोंमें किस तरह आरोग्यवर्द्धिनी कार्यकर सकेंगी, ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। अतः इस विषयमें कुछ अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करना चाहिये।

कुष्ठकी सम्प्राप्ति आयुर्वेदके मतानुसार वात आदि तीनों दोष, अत्यन्त दुष्ट होकर त्वचा, रक्त मांस और अब्धातुके दुष्ट होनेपर होती है। द्रव्य संग्रह सप्तकसे कुष्ठकी उत्पत्ति होती है। वात आदि दोष जो कहे हैं उनमें भी वातविकृति पहिले होनेसे वात आदि लिखा है। फिर अन्य-अन्य दोष प्रकुपित होकर रक्त, मांस और अब्धातु शनैः शनैः दुष्ट होनेपर कुष्ठ रोग निर्माण होता है।

७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ बृहदन्त्रकी विकृति होनेपर उत्पन्न होते हैं। बृहदन्त्रका कार्य सम्यक् न होनेसे उसमें मलावरोध उपस्थित होता है। फिर बृहदन्त्र और लघु अन्त्रमें वायु दुष्ट होता है। इस तरह पचनार्थ आवश्यक पित्त विकृत होता है। बृहदन्त्रमें पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होनेमें सहायक कफ द्रव्य दूषित हो जाता है। फिर मलके आगे सरकनेमें देरी होती है। परिणाममें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होकर वह अन्तस्त्वचा और रक्तमांस आदि धातुओंमें शोषण हो जाता है, या सूक्ष्म परमाणुओंमें शोषित होकर धातुओंको दुष्ट बनाता है। फिर उस स्थानमें वातविकृति होती है; वह शनैः शनैः समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाती है और वह प्रकुपित दोष कुष्ठको उत्पन्न करता है। लघु अन्त्र और बृहदन्त्र ये वायुके प्रमुख स्थान हैं।

आरोग्यवर्द्धिनीकी रचना सामन्यतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी विकृतिको नष्ट करने वाली है। बृहदन्त्र और पक्वाशयमें स्वयं दुष्टिसे उत्पन्न

सेन्द्रिय विषके हेतुसे कुष्ठ उत्पन्न होता है। इस हेतुसे आरोग्यवर्द्धिनी कुष्ठ रोगमें लाभ पहुँचाती है। कुष्ठोंमेंसे जब गलत्कुष्ठावस्थाकी प्राप्ति होती है, तब इसका उपयोग नहीं होता। बिलकुल प्रथमावस्थामें इसकी योजना करनेसे अति जल्दी और निश्चित सफलता मिल जाती है। यह वटी देनेपर रोगीको केवल दुग्धाहारपर रखना चाहिये, (यह औ. गु. ध. शा. का मत हैं) औषधि देनेपर बस्तिका भी उपयोग करना चाहिये। प्रारम्भमें कुछ दिन केवल जलपान दें लंघन करें तो दुग्धाहारकी अपेक्षा भी अधिक लाभ होता है। आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग सब कुष्ठोंपर होता ही है। परन्तु विशेषतः वातप्रधान और वातकफ प्रधान कुष्ठ कपाल मण्डल, एक कुष्ठ, किटभ, विपादिका, चर्मदल और अलसकपर अधिक लाभ पहुँचता है। कुष्ठमें हरताल भस्म भी विशेष उपयोगी है। परन्तु बद्धकोष्ठ, अग्निमान्द्य, मूत्रावरोध आदि लक्षण अधिक होनेपर हरतालका उपयोग नहीं होता।

शरीरपर विवर्ण, रूक्ष और कठोर धब्बे, त्वचाके स्पर्श-ज्ञानका लोप होना, बार-बार रोंगटे खड़े होना, अति प्रस्वेद आना ये त्वचा-विकृतिके लक्षण है। इस अवस्थामें धब्बे अतिशय लाल और पके हुए गूलरके फलके सदृश उठे हुए हों तो आरोग्यवर्द्धिनीका कुछ भी उपयोग नहीं हो सकेगा। ऐसे समयपर गन्धक रसायनका कुछ उपयोग होता है। भयंकर कण्डू, खुजानेपर धब्बे होना, उनमें पूय पड़ना आदि लक्षण होनेपर आरोग्यवर्द्धिनी मंजिष्ठादि क्वाथके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। धब्बे कठोर, मुंहमें भयंकर शुष्कता धब्बेके स्थानपर कठोर त्वचा निकल आना, या फूटनेके सदृश कठोर हो जाना, उनपर छोटी-छोटी पिटिकाएं होना, सुई चुभानेके सदृश या फूटनेके सदृश वेदना होना आदि लक्षण होनेपर हल्दीका क्वाथ या दुग्धके साथ आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये। ये सब लक्षण मांसाश्रित दोषके हैं। रोग इससे आगे बढ़ जानेपर इस औषधको उपयोग नहीं होता है

वातपित्त कफोद्भूत नाना प्रकारके ज्वरोंमें इस गुटिकाका उपयोग होता है। इस स्थानपर प्रत्येक दोषसे उत्पन्न भिन्न-भिन्न ज्वर होना चाहिये। इस स्थानपर संक्रामक और सान्निपातिक ज्वर विवक्षित नहीं हैं। अर्थात् संतत आदि ज्वर और आन्त्रिक आदि सन्निपातोंमें इस रसायनका उपयोग नहीं होता। केवल पित्तविकृति अथवा केवल कफविकृतिसे उत्पन्न ज्वरपर इस वटीका प्रयोग करना चाहिये। यह दोष स्थूल धातुगत होनेपर जो विविध ज्वर उत्पन्न हुए हो उनपर इसका उपयोग होता है।

आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य विशेषतः वृहदन्त्रशोधक और सेन्द्रिय विषनाशक होनेसे वृहदन्त्र या समस्त मध्यम कोष्ठमें स्थित दोषोंसे उत्पन्न अनियमित ज्वरोंपर इसका उपयोग होता है। बद्धकोष्ठ जनित ज्वर, अपचन-जनित

ज्वर, दीर्घकाल तक बार-बार उलटकर आनेवाला ज्वर और पित्तके वैषम्यसे उत्पन्न ज्वरोंपर यह हितकर है।

बार-बार मुंहमें जल छूटना, झागयुक्त बड़ी-बड़ी वमन होना, उदरमें जड़ता, क्षुधामांद्य, भोजन करनेपर तुरन्त वमन होना, खाँसी, सफेद चिपचिपा कफ गिरना आदि लक्षणोंके साथ मलमूत्रोत्सर्ग सम्यक् न होते हों तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिए।

यह गुटिका पाचनी अर्थात् मल आदिका पचन कराने वाली है। मल आदि जितना अंश रूपान्तर-योग्य हो उतनेका रूपान्तर कराती है। इसका अर्थ यह है कि बृहदन्त्र और लघुअन्त्रमें बहुत अन्नांश अपक्व रह जाता है; मध्यम अन्त्रमें कितना ही किट्ट और कुछ सारभाग शेष रह जाता है। इनमें से उपयोगी अंशका सम्यक् रूपान्तर करा संशोषण कराना चाहिये। शेष किट्ट भागको तुरन्त शरीरसे बाहर फेंक देना चाहिये। वर्तमानमें किट्टको सत्वर बाहर निकाल देनेके लिये स्निग्ध विरेचनका उपयोग होता है। परन्तु उसका इष्ट परिणाम तुरन्त नहीं आता, ऐसी परिस्थितिमें इसको त्रिफलाके हिमके साथ देना अधिक हितकारक है। अति जीर्ण बद्धकोष्ठमें मध्यम अन्त्रमें जड़ता आकर मलसंचय अति होनेपर उक्त कल्प उपयोगी है।

यह गुटिका दीपनी अर्थात् पाचक रसको उत्तम प्रकारसे और योग्य परिमाणमें उत्पन्न करने वाली है। पाचक आदि पित्तका परिमाण कम होने या पित्तमें पाचकांश कम होनेपर अपचन उत्पन्न होता है। यह विकार वर्त्तमानमें बढ़ गया है। इस विकारमें पाचक अर्थात् अम्ल औषधिका उपयोग किया जाता है; परन्तु उसका परिणाम सामयिक होता है। यह व्याधि इस तरहकी औषधसे यथार्थ दूर नहीं होती और सच्ची क्षुधा भी नहीं लगती। आरोग्यवर्द्धनीका कार्य प्रसाद धातुओंपर उनके वैषम्यको नष्ट करनेके लिए होता है; इससे धातु सबल बनती है, उनको शक्तिकी प्राप्ति होती है और वे अधिक कार्यक्षम होती हैं। इन प्रसाद धातुओंकी क्रियापर भिन्न-भिन्न रसोंका परिणाम अवलम्बित है, उन-उन रसोंकी उत्तम उत्पत्ति सम्यक् धातुकार्यसे होती है और कार्य भी उत्तम प्रकारसे होने लगता है। इस तरह इसका दीपन-कार्य स्थिर स्वरूपका होता है। इस वटीका कार्य केवल पाचका रूप रस-उत्पत्ति करना ही नहीं है; अन्य स्थूल धातुओंके भीतर पूर्व धातुओंमेंसे परधातुनिर्माण या रूपान्तर होनेमें कारणभूत जो धात्वन्तर अग्नि है, उसे प्रदीप्त करनेका भी है।

आरोग्यवर्द्धिनी हृद्य है। हृद्यके दो अर्थ आयुर्वेदमें मिलते हैं; हृदयको हितकारक और मनको प्रिय (मनको हर्ष देनेवाला)। गुणधर्म-शास्त्रमें इसका दूसरा अर्थ विवक्षित नहीं है; प्रथम अर्थ ही इष्ट है। इसका कार्य

हृदयकी निर्बलतामें उत्तम प्रकारसे होता है। हृदयेन्द्रियमें स्पष्ट विकृति होनेपर इसका उपयोग हुआ हो ऐसा प्रतीतिमें नहीं आया। परन्तु हृदयकी अशक्ति और उससे उत्पन्न शोथपर उपयोग हुआ है। इस अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवा ये दो शोथघ्न औषधि अति प्रशस्त है। इसका हृद्य परिणाम जीर्ण अवस्थामें प्रतीत होता है। अभ्रक मिश्रित लक्ष्मीविलास, समीरपन्नग और सूतशेखरके समान तीव्र विकारमें हृदयको उत्तेजना देकर हृद्यत्व उत्पन्न करना, यह कार्य इससे नहीं होता परन्तु जीर्ण सर्वांग शोथके समान विकारपर इसका प्रयोग होता है। सर्वांग शोथमें हृदयको शक्ति देना (शक्तिका संरक्षण करना) और मूत्र-मार्गसे जलांशको निकाल देना, ये दोनों कार्य इससे होते हैं। इस तरह पाण्डु रोगमें हृद्य कार्य प्रतीत होता है। यकृत्वृद्धिमें हृदय अशक्त होनेपर आरोग्यवर्द्धिनी दी जाती है।

मेदोवृद्धि दो प्रकारसे होती है। रुधिरवाहिनियोंमें कठोरता आकर रक्तमें बल कम होनेपर मेद अधिक उत्पन्न होता है और निकण्ठमणि (बाल ग्रैवेयक ग्रन्थि (Thymus Gland) निर्बल बननेपर पचन-व्यापार मन्द होकर मेदोत्पत्ति होती है। आयुर्वेदकी उपपत्तिके अनुसार धातुक्रियाके योगसे मेदोपर्यन्त धातुएं क्रमशः बनती जाती हैं। उसमें मेद आवश्यकतासे अधिक बनता है। परिणाममें मनुष्य बिलकुल निर्बल बन जाता है, उसपर आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य मेदोविनाशक होता है। यह कार्य दीपन-पाचन आदि व्यापारको अच्छी तरह बढ़ाकर होता है। साथ साथ इससे मेदका रूपान्तर होकर अन्य धातु भी उत्तम रूपसे बननेमें सहायता मिल जाती है।

मलशुद्धि और विरेचनमें महदन्तर है। विरेचन कर्मका परिणाम सामयिक और तीव्र स्वरूपका होता है। इस हेतुसे उदर आदि व्याधियां या शिरःशूल, जड़ता, स्यन्द आदि तीव्र रोगोंमें जब तत्काल मध्यम कोष्ठको शुद्ध करनेकी आवश्यकता हो तब विरेचनका प्रयोग करना पड़ता है। तीव्र विकार न होनेपर निद्रानाश आदि चिरकारी रोगोंमें तीव्र विरेचनका प्रयोग नहीं होता। कितने ही विकार ऐसे चमत्कारिक और दीर्घ द्वेषी होते हैं कि उनका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। रोगीको भयंकर त्रास होता रहता है, परन्तु क्या होता है, यह स्पष्ट रूपसे बाहरसे नहीं जाना जाता। अङ्ग टूटता है, परन्तु स्पष्ट ज्वर नहीं रहता। काम करना पड़ता है, किन्तु उत्साह नहीं होता, भोजन करना पड़ता है; परन्तु क्षुधा लगकर रुचिपूर्वक नहीं खाया जाता। चाहे वैसा रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन आगे आया, स्वाद नहीं आता। हंसना, विनोद करना, सब होते हैं, परन्तु मनमें प्रेम नहीं होता, केवल देहधर्म, समझकर सब क्रियाएं होती रहती है। मुखमण्डल पाण्डुवर्णका निस्तेज, शुष्क-सा और उत्साह हीन हो जाता है, देह-

भार भूत-सी भासती है, ये सब लक्षण न्यूनाधिक परिमाणमें मलावरोधसे होते हैं। इस मलावरोधके अनेक कारण हैं। ऐसे विकारमें विरेचनका उपयोग नहीं होता, बल्कि उसमें अपाय होता है। मल-शोधन करने वाली सौम्य औषध देनी चाहिये। यह कार्य आरोग्यवर्द्धिनीसे होता है।

मलावरोधके अनेक प्रकारोंमेंसे एक प्रकारमेंसे बृहदन्त्रके भीतर मल संचय होकर ऊपर-ऊपर तह लग जाती है। फिर मलावरोधसे सेन्द्रियविष उत्पन्न होकर शुष्क हो जाती है, जिससे बृहदन्त्रकी दीवारें कठोर बन जाती है। दीवारोंकी मृदुता और कार्यकारित्व न्यून होता है। ये दोनों अति त्रासदायक है। ऐसी स्थितिमें विरेचनका उपयोग नहीं होता। बस्ति देकर अन्त्र शोधन करना अति हितावह माना जाता है। एक और बस्तिसे तथा दूसरी ओर आरोग्यवर्द्धिनीसे शोधन करनेसे मलकी तह पृथक् होनेमें सहायता मिल जाती है एवं मलकी शुष्क तहोंके पीछे संचित विष निर्विष होने लगते हैं। फिर बृहदन्त्र मुलायम और कार्यक्षम होती है। आरोग्यवर्द्धिनी के साथ अनुपान रूपसे त्रिफला या अन्य संशोधक औषध देनी चाहिये।

मलावरोधकी आदत नष्टकर मलशुद्धि करना यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारका मलशोधन भी आरोग्यवर्द्धिनीसे होजाता है। दांतोंमें संचित मल, नाकमें संचित किट्ट और दुर्गन्ध ये संगृहीत होनेपर मुंहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, नाकमें शुष्कता आना, दांतोंपर मलकी शुष्क तह होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकारपर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

दन्तपुप्पुटक (Pyorrhoea) में वात कफप्रधान लक्षण प्रतीत होनेपर आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग हुआ है।

पुरुष जननेन्द्रियके चारों ओर मणिके ऊपर त्वचाके नीचे सर्वदा एक प्रकारका दुर्गन्धयुक्त मल संगृहीत हो जाता है। कितने ही मनुष्योंमें यह मल अति संगृहीत होता है और उसमेंसे अति दुर्गन्ध फैलती रहती है। पुरुषोंके समान स्त्री जननेन्द्रियसे भी ऐसी दुर्गन्ध निकलती रहती है। एवं शरीर, बगल, जांघ आदि स्थानोंसे भी कितनों ही में दुर्गन्ध निकलती है। ये सब लक्षण उन उन स्थानोंमें विकृत मलसञ्चितसे होते हैं। इन सबपर बाह्य शुद्धिके साथ आरोग्यवर्द्धिनीका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस तरह अन्य धातुओंमें मल संगृहीत होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये।

अग्निमांद्यमें क्षुधा न लगनेपर आरोग्यवर्द्धिनी उपयोगी है। प्रभावशाली कुशल चिकित्सक विविध रोगोंमें इसकी योजना करके निःसंदेह लाभ उठा सकता है।

यह गुटिका विविध व्याधियोंके मूलरूप त्रिदोष-विकृति और पचनेन्द्रिय संस्थानकी अशक्तिको दूर करती है। अतः मूलग्रन्थकारने औषधके गुण-

पाठमें 'बहुनात्र किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते' और 'सर्वरोग-प्रशमनी' कहा है। इस वटीका उपयोग सब रोगोंमें होता है। यह वचन शास्त्र दृष्टिसे सुसंगत नहीं भासता, परन्तु ग्रन्थकारकी भावनानुसार उनके वचनकी व्यवस्था करनेपर स्पष्टीकरण हो जाता है।

निकण्ठमणिकी विकृति होनेपर देहकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध हो जाता है। समस्त शरीर गले हुए बैंगनके सदृश शक्तिहीन और नरम-सा भासता है। अगुलियां मोटी, पैर छोटे, बेडौल और भारी तथा शारीरिक प्रगतिका अभाव हो जानेसे स्त्री-पुरुषोंको युवावस्था प्राप्त होनेपर भी योग्य चिह्न न दिखना आदि लक्षण भासते हैं। उसपर इस वटीका प्रयोग हुआ है।

सर्वांग शोफ विशेषतः निकण्ठमणिकी विकृतिसे उत्पन्न होनेपर उसमें विशेष प्रकारके चिह्न होते हैं। अति शोथ, मुख, कण्ठ और हाथ-पैरोंके टखनोंपर विशेष शोथ, अग्निमांद्य, नाड़ीकी मन्द गति, सारे शरीरमें सब व्यापार मन्द हो जाना आदि लक्षण भासते हैं। इसपर आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग होता है।

जलोदरके विकारमें इस वटीके मूत्रल और मल शुद्धिकारी गुणका उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

वृक्क-विकृतिसे उत्पन्न सर्वांग शोफकी तीव्रावस्थामें पुनर्नवा, कृष्ण सारिवा और रेचक क्षार (गोमूत्र क्षार या मेगनेसिया सल्फास आदि) मिश्रण तथा तीव्र मूत्रल औषध आदि दिये जाते हैं। परन्तु तीव्रावस्था निकल जानेपर आगे चन्द्रप्रभा, ताप्यादि लोह और आरोग्यवर्द्धिनी देना हितकर होता है। यदि बद्धकोष्ठ और अपचन ये मुख्य लक्षण हों तो आरोग्यवर्द्धिनीका प्रयोग करना चाहिये।

प्रमेहके विकारमें अपचन और बद्धकोष्ठ, ये मुख्य कारण या मुख्य लक्षण हों तो उसपर इसका आवश्यक उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका परिणाम आमाशय और पक्वाशयपर तो होता ही है और अनेक समय फुफ्फुसोंपर भी होता है। बद्धकोष्ठसे शौच शुद्धि न होनेपर बृहदन्त्र फूलता है तथा सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। फिर वातप्रकोप होकर श्वासके सदृश विकार हो जाता है। ऐसे श्वास रोगपर आरोग्य-वर्द्धिनीका उपयोग हुआ है। अत्यन्त त्रासदायक बद्धकोष्ठ और उसके साथ उतना ही त्रासदायक श्वास, इस युग्मपर यह उत्तम औषधि है। श्वासकुठार या समीरपन्नगका ऐसे बद्धकोष्ठसह श्वास रोगपर उपयोग नहीं होता।

संक्षेपमें आरोग्यवर्द्धिनी बद्धकोष्ठ और कोष्ठगत वातकी नाशक, पाचक, दीपक, मूत्रल, आमपाचक, हृद्य, अन्त्रके सेन्द्रियविष और कीटाणुओं की नाशक है। इन गुणोंके हेतुसे यह वटी मध्यम कोष्ठांतर्गत वातप्रधान,

कफभूयिष्ठ और क्षीण पित्त दोषोंपर उपयोगी है। यह शोथघ्न, मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठगत वातशामक, सम्यक् पित्तस्रावक, सेन्द्रिय विषघ्न और गरनाशक गुण दर्शाती है। कुष्ठ, विषमज्वर, अपचन, जीर्ण बद्धकोष्ठ, हृदयकी अशक्तता, मेदोरोग, मलसंचय, देहमेंसे दुर्गन्ध आना, अग्निमांद्य, सर्वांग शोफ, प्रमेह और श्वासपर प्रयोजित होती है। (औ. गु. ध. शा.)

श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने 'सिद्धप्रयोगसंग्रह' में लिखा है कि आरोग्यवर्द्धिनी उत्तम पाचन, दीपन, शरीरके स्रोतोंका शोधन करने वाली, हृदयको बल देने वाली, मेद को कम करने वाली और मलोंकी शुद्धि करने वाली है। यकृत्, प्लीहा, बस्ति, वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीरके किसी अन्तरावयवके शोथ, जलोदर, जीर्णज्वर और पाण्डु रोगमें इस योगसे विशेष लाभ होता है।

यकृत्की वृद्धिके कारण शोथ हो तो पुनर्नवाष्टक क्वाथमें रोहिड़ाकी छाल और शरपुंखा मूल १-१ भाग अधिक मिलाकर उसके अनुपानसे इसका प्रयोग करें। वृक्कशोथ जन्य सर्वांग शोथ हों तो मूत्रल कषायके साथ देवें। हृद्रोगजन्य शोथ हो तो आरोग्यवर्द्धिनीके साथ डिजिटेलिस पत्र के चूर्ण ½ से १ रत्ती और जंगली प्याज (बनपलाण्डु) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल क्वाथसे देवें।

जीर्ण फुफ्फुसधरा कला (फुफ्फुसावरण) शोथमें इसके साथ शृङ्ग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारंगमूल, पुनर्नवा, देवदारु और अडूसेके क्वाथके साथ इसका प्रयोग करें।

मेद कम करनेके लिये रोगीको केवल गायके दूधपर रखकर शार्ङ्गधरोक्त महामंजिष्ठादि क्वाथके अनुपानसे इसका सेवन करावें।

पुनर्नवाष्टक कषाय—पुनर्नवाके मूल, हरड़, नीमकी अन्तर्छाल, दारुहल्दी, कुटकी, परवल पंचांग, गिलोय और सोंठ। इनको समभाग मिलाकर किया हुआ क्वाथ। (शा० सं०)

वक्तव्य—पाण्डु रोगमें यदि दस्त पतले और अधिक होते हों तो उसका प्रयोग न करके पर्पटी योगोंका प्रयोग करना चाहिये। सर्वाङ्ग (सर्वसर) शोथमें और उदर रोगोंमें विशेषत: जलोदरमें रोगीको केवल गायके दूधके पथ्यपर रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये।

यकृद् विकारमें आरोग्यवर्द्धिनीके साथ अपामार्ग भस्म और नौसादर मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। मलावरोध, अग्निमांद्य और मन्द-मन्द उदरशूल बना रहता हो तो ऐसी अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनीके साथ वज्रक्षार मिला दिया जाता है।

मेदोवृद्धिमें देह मोटी हो जाती है; परन्तु बल नहीं होता। थोडे परि-

श्रममें श्वास भर जाता है, क्षुधा और तृषाके वेगको रोकनेमें अति कष्ट होता है, समयपर भोजन न मिलनेपर विविध प्रकारके वातप्रकोपके लक्षण उपस्थित होते हैं । ऐसी अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनी, शिलासिंदूर और बावचीके चूर्णके साथ दिनमें दो बार देने और ऊपर त्रिफलेका फाण्ट पिलाते रहनेसे शनैः शनैः मेद कम हो जाती है ।

रक्तदबाववृद्धि होनेपर कितनेही रोगियोंको नेत्रशूल उत्पन्न होता है । साथ साथ नेत्रमें लाली, शिरमें दर्द, निद्रा बिल्कुल नहीं आना, मलावरोध और अति व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । ऐसे रोगियोंको थोड़ी थोड़ी मात्रामें आरोग्यवर्द्धिनी अमलतासके गूदासे सिद्ध किये हुए दूधके साथ दिनमें ३-४ बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें विकार शमन हो जाता है ।

रक्तदबाव वृद्धि होनेपर किसी-किसी स्त्रीको मासिक धर्मके दिनोंमें अति रक्तस्राव होता है । यदि रक्तदबाव वृद्धि होनेपर भी रक्तस्तम्भन औषध देकर रक्तस्रावका रोध किया जाय तो भयंकर शिरदर्द और हड़फूठन उपस्थित होते हैं । अतः मूल कारणको दूर करना चाहिये । उसके लिये आरोग्य वर्द्धिनो तथा चन्द्रप्रभा मिलाकर अमलतासके सिद्ध किये-हुए दूधके साथ दिनमें दो बार देते रहनेसे रक्तस्रावसह रक्तदबाव निवृत्त हो जाता है । फिरङ्ग (उपदंश) रोग दूर हो जानेपर भी उसका विष, रक्त आदि धातुओंमें लीन होकर रह जाता है । यह मौका मिलनेपर विविध प्रकारके उपद्रव उपस्थित करता है । इनमें से पचनेन्द्रिय संस्थानमें (अन्त्रमें) व्रणकी प्राप्ति हो जाय तो संग्रहणी रोग हो जाता है । फिर अन्त्रक्षयके समान लक्षण प्रतीत होते हैं । पतला, सफेद दस्त दिनमें २-३ होना किन्तु मल अत्यधिक गिरना, फिर अति निर्बलता आना, शारीरिक कृशता, दस्तके समय उदरमें पीड़ा होना, पेशाबमें पीलापन आदि लक्षण भासते हैं । उसपर आरोग्यवर्द्धिनी दिनमें दो बार चौलाईके मूल, बाकेरी मूल, और दूर्वामूलका रस या क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक क्वाथके साथ देने और खदिरादि तैलका पान करानेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग निवृत्त हो जाता है ।

यकृत्‌मेंसे पित्तस्राव होने वाली या पित्ताशयमें से निकलने वाली नलिका के मार्गमें अवरोध होनेपर कामला होता है । रोध अधिक न होनेपर कामला धीरे-धीरे होता है । फिर नेत्र, पेशाब, त्वचा, नख और मुखमण्डल पीले हो जाते हैं तथा दाह, अन्नका अपचन, मलावरोध, तृषा, घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । इस रोगपर आरोग्यवर्द्धिनी २-२ रत्ती और कुटकीका चूर्ण ३-३ माशे मिलाकर मूलीके रसके साथ दिनमें ३ बार देनेसे विकार सत्वर शमन हो जाता है ।

यदि कामला रोगकी उत्पत्ति दही और घीके अत्यधिक सेवनसे हुई हो,

अधिक अभिष्यन्दी पदार्थके सेवनसे मार्गावरोध, यकृत्में मेद संचय और यकृत्की अधिक वृद्धि हो गई हो, फिर दस्तमें तिलपिष्ठनिभ मल गिरता हो उदरमें अफारा रहता हो तथा मुख, नेत्र, मूत्र आदि पीले हों तो आरोग्यवर्द्धिनी मूलीके रसके साथ दी जाती है। दही और घी जनित अफारा और मार्गावरोध होनेपर रोगीको तक्रपर ही रखना चाहिये।

इस आरोग्यवर्द्धिनीका हिक्का रोगपर प्रयोग किया गया है और तत्काल लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

सूचना—सगर्भा स्त्रीको एवं दाह, मोह, तृषा, भ्रम और पित्तप्रकोपयुक्त रोगीको आरोग्यवर्द्धिनी नहीं देनी चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म सब १-१ तोला त्रिफला १० तोले, चित्रकमूल २० तोले, शुद्ध गूगल २० तोले शुद्ध शिलाजीत १५ तोले और कुटकी ७० तोले लें। शिलाजीत को थोड़ेसे जलमें घोल करके मिलावें, फिर तीन दिन तक नीमके पत्तोंके रसमें घुटाई कर सुखा चूर्ण बनाकर बोतलमें भर लेवें।

आमातिसार (Chronic Ulcerative Colitis) रोग जीर्ण होनेपर मलावरोध रहता हो तो इस विधि वाली आरोग्यवर्धिनी २ से ४ रत्ती मात्रा में आवश्यकतानुसार तक्र मण्डूरके साथ दी जाती है। इसी तरह पुराने मलावरोधके रोगीके लिये वह हितावह है।

मात्रा—१ से ३ माशे, दिनमें १ या २ बार। सुबह और रात्रिको दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—इस दूसरी विधिमें भी गुण पहिली विधिके अनुरूप हैं। जब उदररोग, शोथ, रक्तविकार और कुष्ठ आदि रोगोंमें मूत्रल और विरेचन गुणकी ज्यादा आवश्यकता हो तब पहिली विधिकी अपेक्षा इस दूसरी विधि से सत्वर लाभ होता है।

(११६) जलोदरारि रस

विधि—शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, मैनसिल, हल्दी शुद्ध जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकटु और चित्रकमूल ये १० औषधियां २-२ तोले लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करके मैनसिल मिलावें। फिर शेष औषधियोंका बारीक चूर्ण मिला, दन्तीमूलके क्वाथ, सेहुण्ड (थूहर) के दूध और भांगरेके रसकी सात-सात भावनायें देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनायें। (भै० र०)

मात्रा—एक-एक गोली, दिनमें १ या २ बार। दशमूल क्वाथ या ऊंटनी के दूधके साथ देनेसे जलके समान पतले जुलाब होकर तीव्र शूल और सर्वांग शोथयुक्त जलोदरका नाश होता है। इसके सेवनसे जलोदरके अनेक रोगी

सुधर गये हैं। यह अति दिव्य औषध है।

भोजनमें मात्र ऊंटनीका दूध या दूध-भात देनेसे थोड़े ही दिनोंमें जलोदर दूर होता है। यकृत् क्रिया नियमित होती है, कोष्ठाग्नि प्रदीप्त होती है और आमवृद्धि दूर होती है।

सूचना—यदि वृक्क-विकारसे सर्वांग शोथ हुआ हो तो इसका उपयोग न करें, आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग करना चाहिये। हृदयेन्द्रियकी रचनामें विकृति हो गई हो या जिस रोगीको पहिले संग्रहणी रोग हो गया हो और आंतोंमें क्षत या उग्रता रहती हो, उसे भी जलोदरारि रस नहीं देना चाहिये।

(११७) लोकनाथ रस

विधि—शुद्ध बुभुक्षित और पक्षछेदित पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लेकर कज्जली करें। पश्चात् शुद्ध पीली कौड़ियां ८ तोले लेकर उनमें कज्जली भरें और १ तोला कच्चे सोहागेको गायके दूधमें खरलकर उससे कौडियोंके मुंहको बन्द करें। फिर दो सरावोंके भीतर चूना पोतकर उनमें शंखके शोधन किये हुये छोटे-छोटे टुकडे ८ तोलेके बीचमें कौड़ियोंको रख, मजबूत संपुट करें। सूखनेपर एक हाथके खड्डेमें जंगली कण्डोंकी अग्नि दें। स्वांग शीतल होनेपर शंख और कौड़ियों सहित औषधको खरलकर लेवें। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक। दिनमें १ या २ बार देवें।

अनुपान—वातरोगमें कालीमिर्चका चूर्ण और घृत, पित्तकी विकृतिपर मक्खन, कफरोगमें शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रस अतिसार, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, कास, श्वास और गुल्मको नष्ट करता है। जब कफवृद्धि या कफप्रकोप होकर रोग उत्पन्न होता है तब कफ निकालने, कफशोषण और रूपान्तर करानेके लिये लोकनाथ रस उपयोगी है।

लोकनाथ रसका क्षय रोगमें उत्पन्न होने वाली गांठ अथवा गांठके क्षयमें अधिक प्रयोग होता है। यह रसायन गलेके पासमें होने वाली गांठकी अपेक्षा पेटमें होने वाली गांठपर अधिक लाभदायक है। कांखमें होने वाली गांठमें भी हितावह है। इसके योगसे गांठ धीरे-धीरे कम हो जाती है। किसी-किसी समय पित्ताधिक रोग होनेपर इस ओषधिके कारणसे ज्वर बढ़ जाता है। ऐसे समयपर पित्तघ्न अनुपानकी योजना करनी चाहिये। जब गांठ पककर फूट जाती है, तब इसका उपयोग कितना होता है, यह अनिश्चित है।

क्षयमें उरःक्षत न हुए हों या अधिक बड़े न हों, फुफ्फुसोंमें मोटापन मात्र और जड़ता आई हों; कफदोषका प्राधान्य हो एवं कास, अरुचि, मन्दाग्नि, मुंहसे लार गिरना, कण्ठ बैठ जाना, गला जड़ होना आदि लक्षण

हों तो लोकनाथ विशेष लाभदायक है ।

कफ प्रकोपसे अरुचि, मुँहमें पानी आना, भोजनकी बिल्कुल इच्छा न होना, बार-बार सफेद रंगके आम और दुर्गन्धयुक्त दस्त होना, मुखमण्डल, नेत्र और त्वचा आदि सबमें निस्तेजता आदि लक्षणोंसह जीर्ण अतिसार हो तो लोकनाथ उत्तम कार्य करता है ।

आमज संग्रहणी, विशेषत: जीर्ण विकारमें बृहदन्त्रके तिर्यक् भागमें दुष्टता आकर कफके सदृश दुर्गन्धयुक्त मलिन-सा आम गिरता है; शौच अधिक बार नहीं होता; थोडे ही समय होता है और मल पक्व आता है; उदरमें कुछ मरोड़ा आता है और किंछना पड़ता है । मलके साथ मलकी अपेक्षा आम अधिक होता है । अग्निमांद्य, बेचैनी, किसी बातपर मन न लगना, भोजनकी इच्छा न होना, उदरमें जैसे कुछ चिपका हुआ हो या जड़ पदार्थ बंधा हुआ हो ऐसा भासना, उदरकी जड़ता दूर होनेपर खूब खायँगे ऐसी भावना बनी रहना, आदि लक्षण होनेपर लोकनाथ रस उत्तम कार्य करता है ।

लोकनाथ त्वचाके रोगपर उत्तम औषध है । विशेषत: पित्तीके समान शरीरपर मोटे-मोटे धब्बे, गांठ या सफेद-काले दाग होना, सबको यह नष्ट करता है । किसी-किसीको मांस वाले भागोंमें मांसवृद्धि हुई हो, वह भी इसके सेवन और लेपसे धीरे-धीरे नष्ट होती है ।

यकृद्विद्रधि और वृक्कविद्रधिकी अपक्व या पच्यमान अवस्था एवं बाह्य विद्रधिकी पच्यमान अवस्थामें यह उत्तम कार्यकारी औषधि है ।

कफज कास और श्वासमें कफकी गांठ सफेद और दृढ़ निकलना, उसमें चिपचिपापन अधिक होना, मुंहके भीतर क्वचित् गोंद लगानेके समान चिपचिपापनका भास होना, खांसीके साथ थकावट अधिकाधिक आना, मस्तिष्कमें जड़ता और भारीपन होनेपर भी वेदना कम होना, सर्वांगमें जड़ता, देहमें भारीपन भासना, भोजनकी इच्छा कम होना, अधिक अरुचि, उदरमें जड़ता, त्वचापर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होनेपर लोकनाथ अवश्य देना चाहिये ।

कफज गुल्मके स्थानपर जड़ता, एक स्थानपर स्थिर भासना, गुल्म चिकना लगना, गुल्मके स्थानपर पीड़ा कम होना, गुल्मके स्थानपर शीतल पदार्थ बंधा हो ऐसा लगना, गुल्म कठिन, मोटा और ऊपर उठा हुआ भासना, अंग गल जाना, बार बार उबाक आना तथा खांसी, अरुचि, जड़ता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं । इसपर लोकनाथ रसका अच्छा उपयोग होता है ।

वर्त्तमानमें कण्ठकी गांठें बड़ी हो जानेका विकार अधिक प्रतीत होता है इनमें कितनों ही की गांठें खूब लाल दिखती है । उसके ऊपर सफेद दाग

या सफेदी नहीं आती। एवं कितनों ही को गांठोंपर सफेद रंग आ जाता है या सफेद दाग हो जाते हैं। मुखमें चिपचिपापन, अधिक लार गिरना, आवाज भारी हो जाना, कण्ठमें कुछ रुका-सा भासना आदि लक्षण होनेपर लोक-नाथ द्वारा उत्तम कार्य होता है।

सूतिका ज्वरमें निमित्त कारण सूतिका विष है। इसके योगसे कफ धातु दुष्ट होकर कफ-स्थान विकृत होता है। फिर कास, प्रतिश्याय, श्वास, अग्नि मांद्य, और अरुचि आदि लक्षणोंके साथ ज्वर उपस्थित होता है। इसपर लोकनाथ अत्युत्तम कार्य करता है। इस योगसे सूतिका विष शनैः शनैः निर्विष होकर सब लक्षण शमन हो जाते हैं।

संक्षेपमें यह लोकनाथ रस अत्यन्त वीर्यवान् और तीव्र औषध है। इसका उपयोग श्लैष्मिक कला, कफ स्थान और कफ दोषपर होता है। कफ प्रकृति वाले मनुष्योंपर यह विशेष कार्य करता है। क्षयमें कफभूयिष्ठ लक्षण होनेपर इसका प्रयोग होता हैं। इसके योगसे कफका क्षरण और विलयन होता है एवं कफ रूपान्तरित होनेमें सहायता मिल आती है। इस तरह कफविकृति नष्ट होकर धातु-साम्य प्रस्थापित होता है। इस रसायनका कार्य यकृत्, वृक्क, श्लैष्मिककला, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण अन्य कफस्थान, माँसपेशियां और ग्रन्थियुक्त स्थानोंपर विशेष रूपसे होता है। कफदोषमें विशेषतः स्कन्नत्व और सान्द्रत्व गुणोंकी वृद्धि होनेपर इसका उपयोग होता है। इसका प्रयोग विशेषतः रस मांस और अस्थि, इन दूष्योंपर होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

यह रसायन अतिसारकी अमोघ औषध है। ज्वर हो, तो ज्वर सह अति सारको दूर करता है। २-२ रत्ती मात्रा दिनमें ३ बार शहदके साथ देवें। ऊपर सोंठ, बच, अतीस कड़वा, देवदारु और नागरमोथेका क्वाथ पिलावें।

धमनी या हृदयकी विकृतिसे होनेवाला अन्तर-अर्बुद (रक्तार्बुद), जो देहके किसी भी भागमें गांठकी तरह बन जाता है, जिसका पाक नहीं होता, रोग, अधिक बढ़नेपर हृदयको निर्बल बनाकर सारे शरीरको निस्तेज बना देता है फिर धीरे-धीरे शरीरका क्षय होता है, उसपर लोकनाथ अच्छा लाभ पहुँचाता है।

रसधातुमें और मेदोधातुमें विकृति होनेपर गण्डमाला रोग उत्पन्न होता है : तीव्र विकार होने (अपथ्य सेवन करने) पर ज्वर भी आजाता है। रोग नया हो और गांठ कच्ची हो तो उसपर लोकनाथ रस अच्छा लाभ पहुँचाता है। मंद-मंद ज्वर रहनेपर इन्द्रजौ, परवलके पान, कुटकी, चिरायता, गिलोय रक्तचन्दन और सोंठका क्वाथपर अनुपान रूपसे देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त निर्गुण्डी तैलका नस्य देनेसे गाँठको बिखैर देनें में सहायता मिल जाती है।

पथ्यापथ्य—लोकनाथ रस लेनेके साथ तीन ग्रास घृत मिले भोजनके साथ लेने चाहिये। भोजनके पश्चात् कुछ मिनटों तक पलंगपर सिरानेको हटाकर चित लेटें। अम्ल पदार्थोंका त्याग करें, मधुर दही ले सकते हैं। घृत अच्छी रीति से लें। जङ्गलके पशुओंका मांस घीमें भुना हुआ खायें। सायंकालको क्षुधा लगनेपर दूध-भात खायें। मूंगकी बड़ियोंका शाक खा सकते है। तिल और आंवलोंको, दूध जल या मठ्ठे में पीस कल्क बना शरीरपर मर्दन कर या घृत की मालिश कर निवाये जलसे स्नान करें। तैलका उपयोग बिल्कुल न करें बेलफल, करेला, बेंगन, मछली, इमली, परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शराब, ताड़ी हींग, सोठ, उड़द, मसूर, कूष्माण्ड, राई, कॉंजी, असमयपर निद्रा, कांसीके पात्रमें भोजन और ककारादिवर्ग (ककड़ी, ककोड़ा, कैथ कलिंग, तरबूज, कन्दूरी आदि) के शाक, फल आदिका त्याग करें। शास्त्रानुसार श्रद्धापूर्वक शुभ समयसे विधिपूर्वक इस रसके सेवनका प्रारम्भ करनेसे पूरा लाभ मिलता है। यह रसायन सूर्योदय होनेके पश्चात् २ घड़ी (४८) मिनटके भीतर सेवन करना चाहिये।

सेवन करनेपर दाह हो. तो मिश्री, गिलोय सत्व और वंशलोचन मिला कर शहदके साथ लेवें। एवं खजूर, अनार, अंगूर, ईख आदिका सेवन करें अरुचि हो तो साफ किये धनियेके मगजको घीमें भुन मिश्री मिलाकर लेवें। ज्वर रहता हो तो धनियाँ और गिलोयका क्वाथ लें। रक्तपित्त, कफ, श्वास और स्वरक्षय आदि उपद्रव हों तो नेत्रवाला और अडूसेका क्वाथ शहद-मिश्री मिलाकर लेवें। यदि निद्रा न मिलती हो और अतिसार, ग्रहणी, अरुचि आदि हों तो भाँगको घीमें भूनकर रात्रिको शहदके साथ लेवें। उदर शूल और अजीर्ण हो तो कालानमक, हरड़ और पीपलका चूर्ण निवाये जल से लेवें जीर्णज्वर रहता हो तो पीपलका चूर्ण शहदके साथ लेवें। यदि प्लीहोदर, वातरक्त, वमन, अर्श और नाकमेंसे रक्त गिरना आदि विकार हों तो अनारके फूल और दूबका रस निकाल मिश्री मिलाकर पीवें या सूंघें। वमन और हिक्काके शमनके लिये बेरकी गुठलीका मगज, पीपल और मयूरपुच्छ के चन्देलोंकी भस्मको शहदके साथ देवें। हेमगर्भ पोटली रस; मृगाङ्क; मुक्ता आदि रसोंके लिये भी इसी अनुसार पथ्यापथ्य आचरणका पालन करना चाहिये।

सूचना—इस रसका सेवन अधिक मात्रामें करनेपर और अनुचित प्रयोग करनेपर अङ्गसंताप, ज्वर; रक्तपित्त, शुष्क कास; स्वरभंग, निद्रानाश; पित्तज अतिसार, शूल, प्लीहावृद्धि, पैरोंके अंगूठोंमें सूजन; वमन, अर्श, नाकमेंसे रक्तगिरना और हिक्का आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इनमेंसे किसी भी उपद्रवकी प्राप्ति होनेपर इसे बन्दकर तुरन्त गिलोयसत्व,

नेत्रवालाका शर्बत मिश्री मिले दूध आदिका सेवन कराना चाहिये।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय खण्डके राजयक्ष्मा प्रकरणके भीतर लोकेश्वर पोटली (लोकनाथ) रसका पाठ दिया है। उसके साथ कितनी ही महत्वकी सूचना दी है। उस रसके भीतर सुवर्ण मिलाया है, अतः कीटाणु प्रकोपज रोगोंपर वह इस रसायनकी अपेक्षा अधिक कार्य करता है।

(११८) तक्रमण्डूर

विधि—गोमूत्रके पुट देकर वारितर बनाया हुआ मण्डूर ४० तोले लेकर वेलपत्रका स्वरस, काले भांगरेका स्वरस, सफेद भांगरेका स्वरस, अरनीकी छालका क्वाथ, पुनर्नवाकी जड़का क्वाथ, तालमखानेका क्वाथ इन ६ औषधियोंकी ३-३ भावनायें देवें। पश्चात् एक सेर गोमूत्रमेंसे थोड़ा-थोड़ा मिला ८-१० भावनायें देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें।

(र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार, मट्ठेके साथ दें। रोगीको मात्र मट्ठेपर ही रखें। अन्य भोजन, नमक और जलपान भी छुड़ा दें। क्षुधा और तृषा लगनेपर बिना नमक मिलाया मट्ठा पिलावें।

उपयोग—इस मण्डूरके सेवनसे अत्यन्त बढ़ी हुई शोथ और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। अरुचि, अर्श, मेदोवृद्धि, हृदयका भारीपन, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, कृमि, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अंतड़ीमें शूल चलना, मूत्रावरोध होना, इन लक्षणोंसह शोथ रोगपर इस मण्डूरसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ पहुँचता है। वृद्ध, छोटे बालक, स्त्रियां और नाजुक प्रकृति वाले, सबके लिये बिल्कुल निर्भय उपाय है।

तक्रमण्डूरमें मुख्य औषधि मण्डूर है। मण्डूर सौम्य, शीतवीर्य, हृद्य और कषाय गुणयुक्त हैं। यह लोहकल्प होनेसे रक्ताणु और रक्ताभिसरण क्रिया पर लाभ पहुँचाता है। इसके विशेष गुण मण्डूर भस्ममें वर्णित हैं। उन गुणोंके अतिरिक्त बेल पत्रादिके स्वरस और क्वाथकी भावनाके हेतुसे यह रसायन यकृद् बल्य और वृक्कपर उपकारक बनता हैं। इसके सेवनसे दीपन पाचन और मूत्रल गुणकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे पाण्डु और हृदय विकृति जन्य शोथपर यह तुरन्त लाभ पहुँचाता है।

हृदय विकृतिजन्य शोथका आरम्भ पैर और हाथोंपर पहले होता है। प्रथमावस्थामें दिनमें शोथ बढ़ता है और रात्रिको शांति मिलनेपर दूर हो जाता है। तुरन्त उपचार न करनेपर शोथ सारे शरीरपर फैलता जाता है। फिर शरीर शीतल रहना, हृदयमें भारीपन, आलस्य, निद्रावृद्धि और मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर तक्रमण्डूर व्यवहृत होता है।

वक्तव्य—जिन रोगियोंको अम्लपित्त, रक्तपित्त अथवा वृक्क-प्रदाह न हो, उन रोगियोंको इस तक्रमण्डूरका सेवन तक्रके साथ कराया जाता है। नमकका त्याग करनेपर रक्तमें बढ़ा हुआ, विष और जल मूत्रमार्गसे विशेष मात्रामें बाहर निकलता रहता है, जिससे रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ हो जाता है।

यदि शोथके साथ प्लीहावृद्धि, यकृद्‌वृद्धि, आध्मान, उदरमें शूल चलना आदि उपद्रव भी उत्पन्न हुए हों, किन्तु उदरमें व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट या पूयप्रधान विकृति न हो तो वे सब उपद्रव भी शमन हो जाते हैं। फिर रक्तप्रसादन और रक्तकी वृद्धि होकर शरीर स्वस्थ और सफल बन जाता है।

विषमज्वर दीर्घकाल तक रह जानेपर उसके विषका प्रवेश प्लीहामें हो जाता है जिससे प्लीहावृद्धि हो जाती है। साथ-साथ कितने ही रोगियोंके यकृत् भी निर्बल हो जाते हैं। फिर रक्त रचनामें विकृति और रक्तकी कमी होकर पाण्डुता आ जाती है एवं हृदय-स्पन्दन बढ़ जाता है। हृदय और सारे शरीरकी मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, थोड़ा-सा परिश्रम भी नहीं हो सकता, चक्कर आते हैं, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य बढ़ जाते हैं। किसी-किसीको अफारा आता है और मलावरोध भी होता है। ऐसे रोगियोंको ४० दिनके तक्रकल्पके साथ तक्रमण्डूरका सेवन कराया जाता है। कल्पकालमें आवश्यकता होनेपर सुवर्णमालिनी या सुवर्णप्रधान लक्ष्मी-विलास भी दिया जाता है।

सूचना—(१) यकृद्‌वृद्धि हो जानेसे दस्तमें दुर्गन्ध आती हो मलका रंग सफेद श्याम हो तो तक्रमेंसे मक्खन निकाल लेना चाहिये। फिर दस्त का रंग पीला होता जाय, उतने परिमाणमें मक्खन कम निकालना चाहिये। अच्छा पीला रंग आ जानेपर तक्रमें सब मक्खन रहने देवें।

(२) यदि शोथोत्पत्ति न हुई हो, केवल पाण्डुता आई हो ओर ग्रहणी की सम्प्राप्ति हुई हो तो तक्रमें सेंधानमक मिलाना चाहिये। यदि मूत्राव-रोध हो तो ३ दिन तक सोरा या यवक्षार भी रोज सुबह एक बार देते रहना चाहिये।

ग्रहणी रोग नया हो, दिनमें ५-७ दस्त होते हों, उदरमें गुड़गुड़ाहट, अग्निमांद्य, अरुचि, पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो तक्रकल्प सेवन करानेके साथ तक्रमण्डूरका सेवन करानेसे अन्त्र विशुद्ध और बलवान बन जाती है फिर रोग शमन हो जाता है।

प्रवाहिका रोगमें अन्त्रके भीतर क्षत हो जाता है फिर उस स्थानमें कठोर वस्तु या तीक्ष्ण पदार्थका स्पर्श होनेपर शूल चलता है। रोग जीर्ण होनेपर उदरशूल बढ़ जाता है फिर अग्निमांद्य आममिश्रित थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, शारीरिक निर्बलता और पाण्डता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

इस अवस्थामें भी तक्रकल्पसह तक्रमण्डूरका सेवन कराया जाता है एवं साथ-साथ अफीम मिश्रित ग्रहणीकपाट रस भी दिया जाता है और जिन रोगियों को उदरपीड़ा (ऐंठन) अधिक रहती हो, उनको आवश्यकतानुसार सम्हाल-पूर्वक अफीमप्रधान ग्रहणीकपाट बहुत कम मात्रामें साथ-साथ दिया जाता है। इसके विपरीत जिन रोगियोंको रोग पुराना होनेपर कब्ज रहता हो और आमोत्पत्ति अधिक होनेसे हानि पहुँचती रहती हो उनको तक्रमण्डूर के सेवनके साथ आरोग्यवर्द्धिनी (द्वितीय विधि) भी देनी पड़ती है।

सूचना—जिनको उपदंश सुजाक या वृक्क-विकार जनित अन्य मूत्ररोग तृषा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, दौर्बल्य, भ्रम या रक्तपित्त प्रकोपयुक्त रोग हो, उनको तक्रमण्डूर या तक्रका सेवन नहीं कराना चाहिये। ऐसे लक्षणोंयुक्त शोथ रोगमें दुग्धवटीका उपयोग हितकर माना गया है।

(११९) पुनर्नवा मण्डूर

विधि—पुनर्नवा* (साँठीकी जड़), निसोत, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, देवदारू, कूठ, हल्दी, चित्रकमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दंतीमूल चव्य, इन्द्रजव, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकड़ासींगी कालाजीरा, अजवायन और कायफल, ये सब औषधियां समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर चूर्णसे दूनी मण्डूर भस्मको अठगुने गोमूत्रमें पकावें। गोमूत्र चतुर्थांश शेष रहनेपर औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावें। जब गोली बांधने लायक हो जाय, तब उतार घोटकर मटरके समान गोलियां बना लें। मूलग्रन्थमें गुड़ मिलानेको लिखा है; हमने सुविधाके लिये अनुपान रूपसे मिला लिया है। (भा० प्र०)

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें २ बार थोड़े गुड़के साथ दें। ऊपर मठ्ठा अथवा जल पिलावें। आमप्रधान कब्जवाले रोगीको हरड़का चूर्ण मिलाकर

---

* पुनर्नवासे श्वेत और रक्त, ऐसे २ प्रकार मुख्य हैं। दोनों जातियोंमें कुछ उप-प्रकार भी हैं। रक्तमें जो बड़ी जाति हैं, जिसके मूलको चबानेपर कुछ गला पकड़ता हैं, जिसे लेटिन नाम बोर्हेविया डिफ्युजा (Boecrhavia-Diffusa) दिया हैं, वह अधिक मूत्रल हैं। उसके मूलको तोड़नेपर तुरन्त टूट जाता है। अन्य जातिके मूल सरलतासे नहीं टूटते, वह शोथ मिटानेमें अन्य जातिकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद है।

पुनर्नवा श्वेत, जिसका लेटिन नाम ट्रायें-थेमा पोर्टुलेकस्ट्रम, (Trianthema Portulacastrum) है यह तीव्र विरेचन है। यकृद्वृद्धि आदि विकारपर अधिक लाभ पहुंचाती है। अतः यकृद्दाल्युदर, जीर्णकामलाः यकृद्में से पित्तस्रावकी न्यूनता, यकृत्में रक्तसंग्रह और प्लीहावृद्धि आदि रोगोंमें पुनर्नवामण्डूरका उपयोग करना हो, तब यह श्वेत पुनर्नवा मिलाना चाहिये। अथवा अनुपानमें श्वेत पुनर्नवा का रस या कषाय लेना चाहिये।

देना चाहिये। यदि उसमें योगराज गूगल मिला दें तो सत्वर लाभ पहुँचताहै।

उपयोग—यह औषधि शोथ, पाण्डु, कामला, उदररोग, अफारा, शूल, श्वास, खांसी, क्षय, ज्वर, प्लीहा, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, वातरक्त और कुष्ठका नाश करती है।

यह मण्डूर पाण्डु रोगपर अति हितकारक है। पाण्डु अथवा कुम्भ-कामलारोग अधिक दिन रहनेसे सर्वांग शोथ आया हो; शोथपर दबानेसे खड्डा हो जाता हो; और जल्दी न भरता हो; तो पुनर्नवा मण्डूरके सेवनसे सत्वर लाभ पहुँचता है। शोथके साथ अफारा, मन्द-मन्द ज्वर, अरुचि, रक्तमें रक्ताणुओंकी कमी निर्बलताके हेतुसे श्वास भर जाना, प्लीहावृद्धि आदि विकार हों, वे भी दूर हो जाते हैं। एवं अन्त्रकी निर्बलता, अन्त्रमें मल शुष्क हो जानेके पश्चात वातप्रकोप होकर निकलने वाला शूल और सूक्ष्म कृमि ये सब नष्ट होते हैं। इस मण्डूरसे मल मूत्रकी शुद्धि होती है। और रक्ताभिसरण क्रिया नियमित बनती है। पक्वाशय, रक्त और रस-धातुकी शुद्धि होनेसे रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनती है एवं वातदुष्टि नष्ट होनेसे दोष प्रकोपजन्य-नूतन कुष्ठ और वातरक्तका भी शमन होता है। यह मण्डूर ग्रहणी और अन्त्रको बलवान बनाता है। इस हेतुसे नये संग्रणी रोग और अर्श रोगपर भी हितावह है।

शोथ आनेके मुख्य ३ कारण हैं। हृदय, वृक्क और यकृत्को विकृति, इन तीनों प्रकोपोंपर कार्य हो सके, उस तरह इस रसकी रचनाकी है। मण्डूरसे हृदय और रक्तपर विशेष लाभ पहुँचता है और यकृत्-प्लीहापर इनसे कम। गोमूत्र, यकृत्, वृक्क और अन्त्रादि पचन अवयवोंको बल प्रदान करता है, रक्तका प्रसादन करता है; सूक्ष्म कृमि, कीटाणु और विषका नाश करता है; तथा आमपचनमें सहायता पहुँचाता है। निसोत, दन्तीमूल और कुटकी अन्त्रमें चिपके हुए पुराने मलको निकालकर अन्त्रको शुद्ध बनाते हैं। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, पीपलामूल, कालाजीरा और अजवायन, ये सब दीपन, पाचन है, आमाशय और यकृत, दोनों स्थानोंको उत्तेजना देते हैं। देवदारु, कूठ, कायफल और अजवायनादि तैलीय द्रव्य वातनाड़ियोंको पुष्ट बनाते हैं। हल्दी आम-पाचन और रक्त-प्रसादन कार्यमें सहायता पहुँचाती है। इन्द्रजो और नागरमोथा दीपन पाचन और ग्राही गुण दर्शाते हैं। वायविडंग यकृद्बल्य और कृमिघ्न है। बायविडंगसे कृमिकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है। पुनर्नवा मूत्रल और श्रेष्ठ शोथहर, औषधि हैं। इस तरह इस प्रयोगमें पुनर्नवादि वृक्क, हृदय, यकृत्, रक्त, आमाशय और अन्त्रपर कार्यकर औषधिका संमिश्रण होनेसे शोथकी अति बढ़ी हुई अवस्थामें भी यह अपना प्रभाव दर्शाता है।

यदि शोथके साथ ज्वर भी रहता हो और अन्त्रमें मल संगृहीत हो, तो इस रसायनका सेवन पुनर्नवाष्टक कषाय (आरोग्यवर्द्धिनीके उपयोगमें लिखे हुए) के साथ कराया जाता है अथवा आरोग्यवर्द्धिनी दी जाती है। रोग जितना पुराना हो और अधिक बढ़ा हो, उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये। रोगीको नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

वक्तव्य—रोगीको ज्वर न हो, वृक्क विकार न हो हृदय विकृतिसे शोथ हुआ या पचन-क्रिया मन्द हो अन्त्रमें मलसंग्रह और कीटाणुओंकी वृद्धि हो गई हो, मुखपाक न हो, रात्रिको बार-बार लघुशंका न होती हो, और तक्र अनुकूल रहती हो, तो रोगीको तक्रकल्प कराना चाहिये।

तक्रमण्डूर भी शोथसह पाण्डुपर व्यवहृत होता है, उसमें आमाशय पौष्टिक, पित्तस्रावी और अन्त्रको शोधन करनेवाली औषधियां गोमूत्रके अतिरिक्त नहीं मिलायी। अतः जिन रोगियोंकी पचन-क्रिया अधिक दूषित हो तथा अन्त्रमें आम, मल ओर विषका संचय हुआ हो या उदर कृमि हो गये हों, उनको पुनर्नवामण्डूर विशेष अनुकूल रहता है।

पित्ताशयनलिका और यकृतसे निकलने वाली साधारण पित्तनलिकामें प्रदाह होने या पित्तस्राव कम होनेपर मल सफेद रंगका और दुर्गन्धयुक्त हो गया हो, तो यह रस १-२ माशे सज्जीखार (सोडाबाई-कार्बं) मिलाकर ५-५ तोले मूलीके रस या तक्रके साथ दिया जाता है। रोगीको भोजनमें मात्र तक्र और चावल देना चाहिये।

जलोदर और शोथ, दोनोंमें जल या रस संग्रह होता है। अतः दोनोंकी चिकित्सामें साम्य है। जलसदृश पतला विरेचन मूत्रविरेचन और स्वेद-द्वारा रक्तमेंसे जल बाहर निकाल देनेपर उदर्य्यकला या त्वचाके नीचे संगृहीत जलका रक्तमें शोषण हो जाता है। इस हेतुसे पुनर्नवामण्डूर गोमूत्र या सनायके क्वाथके साथ रोज सुबह देते रहनेपर नया जलोदर रोग शमन हो जाता है। भोजनमें दूध ओर भात दें। नमक नहीं देना चाहिये।

आमाशयकी पचनक्रिया दूषित होनेपर अन्त्रमें आम संगृहित होते हैं। फिर अन्त्रमें कृमि उत्पन्न होते हैं। पाण्डुता उदरशूल, अरुचि, उबाक, अफारा, श्वास, कफवृद्धि, मलावरोध और निस्तेजतादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। सूक्ष्म कृमि होनेपर नाक और गूदामें कण्डू चलती है। कभी कभी त्वचा शुष्क हो, जाती है। किसीको श्वेत कुष्ठ या अन्य उपकुष्ठ हो जाते हैं। इस रोगपर पुनर्नवामण्डूर हरड़के क्वाथके साथ दिया जाता है। यदि वातवा-हिनियोंकी विकृति हो तो पुनर्नवामण्डूरके साथ योगराज गुग्गुलु या चन्द्र-प्रभावटी मिला दी जाती है।

हृदय और रक्तकी निर्बलता होनेपर प्रायः पचनक्रिया निर्बल हो जाती

है। ऐसी स्थितिमें मिर्चादि तेज मसाला और द्विदल धान्यादि वातप्रकोपक आहारका अधिक सेवन होता रहे, तो उदरमें गुड़गुड़ाहट होती है, अफारा आ जाता है तथा मलावरोध, मलमें दुर्गन्ध और किसीको मूत्रावरोध भी होता है। फिर अर्शोत्पत्ति हो जाती है। इसी तरह अपचन और अग्नि मन्द होनेपर भी बारंबार आहारका सेवन अधिक मात्रामें होता रहे; तो अन्त्र शिथिल बनकर संग्रहणी रोगकी सम्प्राप्ति हो जाती है। फिर कुछ दिन मलावरोध और कुछ दिन अतिसार ऐसा चक्र चलता रहता है। इन विकारोंका मूल हृदयकी शिथिलता और पचन-विकृति होनेसे इन रोगोंपर भी पुनर्नवामण्डूर लाभ पहुँचाता है। मात्रा थोड़ी-थोड़ी दिनमें ३-४ समय देनी चाहिये। एवं पथ्य पालनसह औषधि दीर्घकाल पर्यन्त लेनी चाहिये।

(१२०) वृद्धिवाधिकावटी

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, हरताल भस्म, नीलेथोथेकी भस्म, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा आँवला, चव्य, कचूर, बायविडंग, विधारे के बीज, पीपलामूल, पाठा, हाउबेर, बच, इलायची, देवदारु, समुद्रनमक, सैंधानमक, सांभरनमक, बिड़नमक और कालानमक; इन ३१ औषधियों को समभाग लें। फिर यथा विधि मिला छोटी हरड़के अष्टमांश क्वाथमें ३ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लें। (भा० प्र०)

मात्रा—१ से २ गोली; दिनमें २ बार जलके साथ दें।

सूचना—(१) इस औषधिमें ताम्र; नीलाथोथा और काँस्य ये तीन वामक गुण दर्शाने वाली भस्में मिलाई हैं। भस्म विधिपूर्वक ठीक बनी होगी तो उक्त दोष नहीं दर्शा सकेगी।

(२) यदि प्रकृति भेदसे हृल्लास (उबाक) और बेचैनी हो तो अनुपान नमक मिला मठ्ठा या नींबूका रस शक्कर और जल मिलाकर लेवें।

(३) इस वटीके लेनेपर तुरन्त दूध; चाय या काफी गरम-गरम न लेवें। दूध आदि लेना हो तो कमसे कम १ घण्टे बाद लेवें।

(४) कब्ज रहता हो, तो आरोग्यवर्द्धिनीका साथ-साथ सेवन करना चाहिये।

उपयोग—यह वटी अण्डवृद्धिके सब दोषोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करती है; और अन्त्रवृद्धिमें भी लाभ पहुँचाती है। एवं अण्डकोषमें वायु भरनेसे होने वाला दर्द, नया दूषित रस उतरना; रक्त भरना और अन्य सभी प्रकार के दोषोंको निवृत्त करती है। जब अण्डकोषमें बहुत ज्यादा जल भर जाता है; तब यह वटी काम नहीं देती है। प्रथमावस्थाके लिये उपयोगी है।

(१२१) गण्डमालाकण्डन रस

विधि—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ माशे, ताम्रभस्म १।। तोले, मण्डूर भस्म ३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल २-२ तोले, सफेद संधानमक ६ माशे, कचनारकी छाल और शुद्ध गूगल १२-१२ तोले लें। पहिले पारद और गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर सब औषधियों को कपड़छन चूर्ण मिलावें। गूगलमें गोघृत मिला कूटकर पतला करें। फिर सब औषधियोंको गूगलके साथ थोड़ी-थोड़ी मिला अच्छी रीतिसे कूटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। (नि० र०)

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें २ बार कचनार, पियाबांसा, करंज, कटेली और बड़ी कटेलीके क्वाथके साथ ३-४ मास पर्यन्त देते रहना चाहिये। एक गोलीसे आरम्भ करके मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग—यह रस गलगण्ड और दारुण गण्डमालाको नष्ट करता है। यह रस विशेषतः स्थूल प्रकृतिके रोगीके लिये विशेष लाभदायक है। नयी और पुरानी गण्डमाला, दोनोंमें अच्छा काम देता है गांठ फूटकर अपची होती है और उसके साथमें सूक्ष्म ज्वर रहता है, उसपर भी यह लाभदायक है। यह बद्धकोष्ठको दूर करता है, और पाचनशक्तिको सुधारता है। उपदंशको छोड़ कर जो भेद और कफविकृतिसे ग्रन्थि उत्पन्न होती है, उसपर भी यह लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेदमें गण्डमालाकी उत्पत्ति निम्नानुसार कही है। कण्ठ और कांख या कण्ठ और वंक्षण (उरु-संधि) में रही हुई गांठोंमें मेद और कफकी वृद्धि होनेपर उसे गण्डमाला संज्ञा दी है। केवल वंक्षण या केवल उदरमें गांठ होनेपर उसे गण्डमाला नहीं कहते। पहले गण्डमालाका उद्भव कण्ठपर होकर फिर अन्य स्थानोंमें प्रसार होता है।

इस विकारमें विशेषतः मन्द-मन्द ज्वर रहता है। सारा शरीर टूटना, हाथ पैर गल जाना, शनैः शनैः बलमांसविहीनत्व आना आदि लक्षण होते हैं, क्षुधा मांद्य तो प्रारम्भसे ही होती है। यह गांठ शनैः शनैः बड़ी होनेपर पककर फूटती है। गांठ फूटकर व्रणरोपण होता है। परन्तु पुनः गांठें बढ़ती है। गांठ फूटनेके पश्चात् कितनी ही नष्ट होती है, कितनी ही पुनः भरती है। ऐसा क्रम वर्षो तक चलता रहता है। इस अवस्थाको अपची कहते हैं। गण्डमाला फूटनेपर उसमेंसे क्लेदयुक्त पूयस्राव होता है, परन्तु पुनः भरती है और पुनः किंचित् रसयुक्त स्राव होने लगता है। इस तरह यह विकार भयंकर त्रासदायक है। इसकी चिकित्सा जल्दी न होनेपर यह बहुधा दृढ़मूल हो जाता है फिर अस्त्रचिकित्सा करानेपर भी समूल नष्ट नहीं होता।

इस रसके सेवनका प्रारम्भ होनेपर शनः शनैः विकार कम होता है।

विशेषत: निस्तेज और कुछ फूला हुआ-सा मुख जिनका हो गया हो, हाथ पैरमें निर्बलता और कुछ शोथ-सा प्रतीत होता हो तथा अपचन, पचनेन्द्रियकी निर्बलताके हेतुसे कोष्ठबद्धता आदि लक्षण हों, तो इसका उपयोग करना चाहिए। (औ० गु० ध० शा०)

(१२२) शिलासिंदूर वटी

विधि—शिलासिन्दूर ५ तोले, आंवला और बावची २।।-२।। तोले लेवें। पहिले शिलासिंदूरको ३ दिन भांगरेके रसमें खरल करें। फिर आंवले और बावचीका बारीक चूर्ण मिलावें। पश्चात् आंवले और बावची के चूर्ण १०-१० तोले मिला ६ गुने पानीमें क्वाथकर अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। इस क्वाथकी भावना देवें। इस तरह आंवले बावचीके ताजे-ताजे क्वाथकी ५ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ से ३ बार। जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे कण्ठमाला, गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ठ, मेदरोग, मेदोरोगसे होने वाली घबराहट, पसीना और निर्बलता आदि विकार दूर होते हैं। मेदो रोगपर देनेके समय शक्कर, दही, ज्यादा घी, विशेष भात खाना आदि मेदोवर्द्धक आहारको छुड़ा देना चाहिये, तथा हो सके उतना व्यायाम करना चाहिये।

इस रसायनमें मुख्य औषधि शिलासिन्दूर है। शिलासिन्दूरमें लेखन कीटाणु नाशक, रक्तप्रसादन, मेदोहर, कफघ्न, विषनाशक, वातशामक, मांस पौष्टिक और पित्तवर्द्धक गुण मुख्य है। इसके साथ भृङ्गराज, आमलकी और बावची मिलाकर विषघ्न, रक्तप्रसादन, लेखन और कुष्ठहर गुण की वृद्धि करायी है तथा रसायनको सौम्य बनाया है तथा जीवनीयशक्ति विशेष निहित करायी है।

लेखन गुणके हेतुसे कण्ठमाल, गलगण्ड, अपची, अर्बुद (रसौली) और मेदोरोगमें यह लाभ पहुँचाता है। इन सब रोगोंमें संगृहीत रस या मेदको जलाना और नूतन उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करना, ये दोनों कार्य इस वटीके सेवनसे हो जाते हैं।

कण्ठमालकी गांठ पककर फूटनेपर अपची कहलाती है उसमेंसे पूयस्राव दीर्घकाल पर्यन्त होता रहता है। पूयका शोषण किसी-किसीको रक्तमें होता रहता है। फिर उस हेतुसे शीतसह ज्वर भी आ जाता है। उसपर इस वटीका सेवन हितावह होता है। यह वटी पूयज कीटाणुओंका नाशकर ज्वरको शान्तकर देती है।

मेदोवृद्धिके मुख्य ३ हेतु हैं। १. वंशागत मेदोवृद्धि, २. फिरंग विषादि के प्रकोपसे धमनीकी दीवार कठोर हो जाना(Arteriosclerosis) अथवा

धमनीकी दीवार मललिप्त हो जाना, ३. बालग्रैवेयक ग्रन्थि (Thymus-gland) के अन्त:स्रावमें विकृति । इनमेंसे पहले वंशागत प्रकारके लिये औषधि विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकती । द्वितीय प्रकार धमनीकी दीवार की विकृतिपर कितने ही अंशोंमें यह रस सफल होता है । कारण, यह रस उपदंशज विष और कीटाणुओंका नाश करता है, रक्तादि धातुओंमें अवस्थित धात्वग्निको प्रदीप्त करके वसा, कफ, आम और मलको जलाता है, तथा नूतन मेदोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करता है । तृतीय प्रकारमें भी कुछ अंशमें लाभ पहुँचता है । यदि बालग्रैवेयक ग्रन्थिकी निर्बलता नयी हो, अति शिथिलता न आई हो, तो इस प्रकारमें पचन अग्नि अतिमन्द हो और अन्त्रमें पुराना मल चिपका हो तो शिलासिन्दूर वटीकी अपेक्षा आरोग्यवर्द्धिनीका सेवन कराना विशेष हितावह है । बालग्रैवेयक ग्रन्थिका अन्त:स्राव न होता हो या अति कम हो तो डाक्टरी मतानुसार भेड़के बालग्रैवेयक ग्रन्थिका सत्व दिया जाता है । यह प्रयोग जीवन पर्यन्त करते रहते हैं ।

वक्तव्य—मेदोवृद्धिसे पीड़ित रोगीको, घृत, शक्कर, दही, चावल और अन्य मेदोवर्द्धक भोजनका सेवन कम करना चाहिये तथा हो सके उतना शारीरिक श्रम भी करना चाहिये ।

श्वेत कुष्ठ (Leukoderma) की उत्पत्ति रक्तके भीतर रक्त वर्ण (Haemoglobin) की न्यूनता होनेपर होती है । रक्तके भीतर विष या मेद प्रवेश होनेपर यह विकृति हो जाती है । यह रसायन धात्वग्निको प्रदीप्त करता है, इस हेतुसे श्वेतकुष्ठ और रक्त विकृतिसे उत्पन्न अन्य उपकुष्ठ या त्वचा रोगोंपर यह लाभ पहुँचा देता है। विकृति अधिक गहराई तक पहुँची हो, तो शिलासिन्दूर वटीका सेवन २-४ मास तक कराना पड़ता है । यदि बृहदन्त्र मलपूर्ण हो तो प्रारम्भावस्थामें उसे साफ करानेके लिये आरोग्य-वर्द्धिनी त्रिफलाके फाण्टके साथ दी जाती है ।

शिलासिन्दूरमें कफघ्न और विषनाशक गुण होनेसे यह वटी जीर्ण कफ कास, जीर्ण श्वासरोग, जीर्ण आमवात रक्तविकार और जीर्ण त्वचा रोगों पर भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया जाता है ।

(१२३) नित्यानन्द रस

विधि—सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, वंग, भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध नीलाथोथा, शंख भस्भ, काँस्य भस्म, कौड़ी भस्म लोह भस्म, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, सैंधानमक, काला नमक, विड़नमक, काचनमक, समुद्रनमक, चव्य, पीपला मूल, हाऊबेर, बच, कपूर, पाठा, देवदारू, छोटीइलायची, विधारा, (अभाव में निसोत) ये ३१ औषधियां समभाग लेकर विधिपूर्वक मिलावें । पश्चात्

निसोत, चित्रक मूल, दन्तीमूल, और हरड़के क्वाथमें क्रमश १२-१२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० र०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार ठण्डे पानीके साथ देवें।

उपयोग—नित्यानन्द रस श्लीपद रोगपर दिव्य औषध हैं कफजन्य और कफवातजन्य श्लीपद (हाथीपगा) जिसमें त्वचाका रंग काला, ऊपरमें चीरा हो गया हो, वेदना तीव्र हो, ज्वर कम हो, कभी बढ़ जाता हो, पैर जड़ अति मोटा, फीका सफेद रंगका हो, खाज बहुत आती हो, क्लेद निकलता हो, ऐसे लक्षणयुक्त श्लीपद, जो रस, रक्त, माँस, मेद या शुक्रगत हों, इन सबको यह रसायन नष्ट करता है। अलावा अर्बुद, गण्डमाला, अति पुरानी अन्त्रवृद्धि, वात, पित्तज, और श्लेष्मपित्तज गुदरोग और कृमि रोग को दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा बल-वीर्यकी वृद्धि करता है।

कई बार हाथ पैरमें मांसार्बुद या रक्तार्बुद होकर बाहरसे श्लीपद होने का भास होता है। मांसार्बुद घातक रोग है। इसकी वृद्धि तेजीसे होती है अर्बुद स्थान सामान्यतः उष्ण रहता है। इसपर से भी विदित हो जाता है अति वृद्धि होनेपर फटता है और रोगीका जीवन भयमें डाल देता हैं। यदि यह रोग भी प्रथमावस्थामें हो, तो नित्यानन्दके साथ लोकनाथका सेवन करानेपर लाभ पहुँच जाता है।

श्लीपद रोग अधिक जलयुक्त प्रदेश, शीतल शीलवाले स्थानोंमें रहने वालोंको होता है। जिस जलमय स्थानमें पत्र-फूल फल आदि कूड़ा-कचरा संचित होकर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, उस स्थानवासियोंके त्वचागत कफदोषमें विकृति होती है। प्रारंभमें किसी स्थानमें त्वचा मोटी होती है, तथा हाथ पैर कानकी पाली, नेत्रकी भाफणी, शिश्न, ओष्ठ और नाक आदि स्थानों में त्वचा मोटी होजाती है; एवं मन्द-मन्द ज्वर रहता है। ज्वर रहनेपर शोथ अधिक होती है। कफ-प्रधान चिकित्सा करनेपर ज्वरसह शोथ कम होजाता है।

डाक्टरी मतानुसार यह व्याधि फाइलेरिया (Filaria) नामक कीटाणु जनित है। यह बंगाल, कोचीन, मलाबार आदि प्रदेशोंमें अधिक होता है। यह रोग पैरके अलावा वृषण लिंग हस्त आदि स्थानोंमें भी होता है। रोगग्रस्त स्थानोंमें रूक्ष और विषम होजाता है। उन स्थानोंमें लोम रूक्ष हो जाता है और अधिक दूरीपर हो जाता है। त्वचाके नीचे रही हुई संयोजक कला स्थूल हो जाती है. और उसमें लसीका संगृहीत हो जाती है। मांसपेशी, अस्थि या वातवाहिनियोंकी विकृति नहीं होती। रक्त-प्रणालियाँ सब बड़ी और रसायनियां प्रसारित हो जाती हैं। कभी-कभी रोगग्रस्त स्थानके विपरीत दिशामें रही हुई रसायनियां सब कठिन हो जाती है और बढ़ जाती हैं।

इस व्याधिपर इस रसायनके दीर्घकाल सेवनसे ही लाभ होता है। साथ-साथ गर्जन तैलकी मालिश भी कराते रहना चाहिये। रोग अति जीर्ण हो जानेपर शस्त्र चिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

(१२४) केशरादि वटी (उपदंश)

विधि—शुद्ध रसकपूर, केशर, मिश्री, सफेद चन्दनका चूर्ण, लौंग और जावित्रीको समभाग मिला जलके साथ खरलकर मूंगके बराबर गोलियां बनावें। (आ० औ०)

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें २ बार घीमें लपेटकर निगल जायँ दांत को नहीं लगनी चाहिये।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे नया और पुराना उपदंश, विस्फोटक, रक्तविकार, उपदंशजन्य सन्धिवात, पक्षाघात आदि वातरोग, कुष्ठ, गंभीर व्रण, नाड़ीव्रण (नासूर), गलगण्ड, तालुव्रण, वातरक्त तथा त्वचाके नये और पुराने सब रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर होते हैं।

इस रससे मुंह नहीं आता और एक वर्षके जीर्ण रोगोंमें भी अच्छा लाभ पहुँचता है। इस रसको महामंजिष्ठादि क्वाथ अन्य रक्तशोधक अनुपानके साथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूचना—रसकपूरयुक्त औषधि होनेसे पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। तैल, मिर्च, खटाई न खायें। सिगरेट, बीड़ी, तम्बाखू भी बाधक है। सैंधानमक थोड़े परिमाणमें लें। यकृत् सबल है, तो घृत अधिक लें। यदि भोजनमें गेहूँकी रोटी, घी, शक्कर, दूध और भात ही लें तो सत्वर लाभ होता है।

(१२५) उपदंश सूर्य

प्रथम विधि—सफेद सोमल ६ माशे, छोटी कटेलीके पंचांगका स्वरस और नींबूका रस १२-१२ तोले लें। फिर लोहेकी कड़ाहीमें सबको मिलाकर लगभग ४२ दिन पर्यन्त कड़वे नीमके डण्डेसे घुटाई करें। पश्चात् मूंग के समान गोलियां बनावें। रस कम हो जाय, तो और मिला लेना चाहिये। (बृ० यो० त०)

मात्रा—१ से २ गोली, सुबह घृतके साथ निगल जायँ। भोजनमें गेहूँ का फुलका, घी और थोड़ा सैंधानमक वाली मूंगकी दाल लेवें। तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदिका त्याग करें, घी अधिक लें।

उपयोग—यह रस उपदंश रोगको जलानेमें सूर्यके समान तेजस्वी है। आयुर्वेदमें उपदंश रोगके दो प्रकार मिलते हैं—सामान्य उपदंश और फिरंगोपदंश। सामान्य उपदंश अधिक रति सेवन, दांत, नख, शस्त्र आदिका आघात-अधावन (अप्रक्षालन) और योनिप्रदोष (दीर्घ, कर्कश, रोम आदि

युक्त दुष्टयोनि), इन कारणोंसे केवल पुरुष जननेन्द्रियको ही होता है। फिरंगोपदंश (फिरंग रोग) का वर्णन प्राचीन आयुर्वेद संहिताओंमें नहीं मिलता। इसका उल्लेख केवल नव्य आयुर्वेद शास्त्रमें ही मिलता है। इस नामसे ही ध्वनित होता है कि, यह व्याधि विदेशी लोगोंके इस देशमें आने के पश्चात् उनके संसर्गसे ही उत्पन्न हुई है। यह फिरंग रोग स्थानिक हानि-कर नहीं है, परन्तु सर्वाङ्ग व्यापी और विविध अवयव समूहोंमें अनेक उप-द्रवोंको उत्पन्न करने वाला है। फिरंग रोगके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु हैं। ये कीटाणु संसर्ग होनेपर शरीरमें प्रवेश करके आशुकारी और चिरकारी, ऐसी दो अवस्थाएं निर्माण करते हैं। इस रोगकी तीव्रावस्थामें पारद कल्प अधिक उपयोगी होता है और जीर्णावस्था चिरकारी विकारमें विवक्षित संस्कारोंसे बने हुए पारद-कल्प और मल्ल लाभदायक होते हैं। इस रोगके और भी विभाग हो सकते है। कीटाणु जिन-जिन अवयवोंमें प्रवेश करते है या जिन दोष-दूष्य आदिके साथ जितने अंशमें मिल जाते हैं, उतने अंश में–विविध अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं। उपदंशका विष केवल रक्त और त्वचामें ही संचित होकर रह जानेपर शारीरिक अणुभवन क्रिया (Anae-olism) सम्यक् नहीं होती। ऐसा होनेपर पारद, सुवर्ण, रौप्य, मल्लमिश्रित अष्टमूर्ति रसायन उपयोगी होता है। परन्तु यही विष अधिक गहराईमें जानेपर माँस और अस्थिके आश्रित हो जानेपर उनमें विकृति उत्पन्न करता है। मांसगत व्रण, अस्थिगत व्रण गण्ड, अर्बुद, ग्रन्थि, अस्थिमें कीटाणु हो जाने आदि विविध उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यह विष जैसे-जैसे अधिक लीन होकर गहराईमें चला जाता है, वैसे-वैसे उस स्थानपर पारदकल्पकी अपेक्षा मल्लकल्प अधिक उपयोगी होता है। इन मल्लकल्पोंमें उपदंश सूर्य एक उत्कृष्ट मल्लकल्प है।

जीर्ण उपदंश व्रण अन्य व्रणोंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रकारका भासता है। कुछ दिनों तक व्रणका रोपण हो जानेका भ्रम होता हैं। फिर कुछ दिनोंमें पुनः दुगुने बलसे बढ़ जाता है। इसकी किनारी मोटी और कठिन, व्रण संरक्षण कला (Scar tissue) ऊँची-नीची और विविध प्रकारका स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। यह व्रण मांसका आश्रयकर कितने ही दिनों तक जड़ जमा स्थिर टिककर रह जाता है। यह व्रण शरीरके बाह्यांग,मुख, ओष्ठ, श्लैष्मिककला और जिह्वापर भी हो जाता है। यह विकार इतना पुराना और त्रासदायक है, आजन्म मनुष्योंको त्रास देता रहता है। मांसा-श्रित व्रण अधिक काल तक रह जानेपर भी उसकी उपेक्षा होनेसे या अयोग्य उपचार करने अथवा स्वाभाविक कीटाणु या विष गहराईमें चले जानेपर अस्थियोंमें विकृति हो जाती है। फिर अस्थिगतव्रण होता है। कितने ही कीटाणु अस्थियोंमें गल जाते हैं। इसकी अपेक्षासे ही विषका अन्तरमें प्रवेश

होनेपर अन्तरेन्द्रियोंमें छोटी-छोटी ग्रन्थियां हो जाती है। वातवाहिनियां, वातवहकेन्द्र और मस्तिष्क तक विकृति पहुँच जाती है; तथा रोगी शक्ति रहित,विनष्टज्ञान होकर अनिच्छापूर्वक ही कष्टसे जीवित रहता है। उपदंश सूर्यका उपयोग ऐसे मांसाश्रित और अस्थिगत व्रणपर अत्युत्तम हुआ है। इसके सेवन समयमें घी का उपयोग कुछ अधिक करना चाहिये।

गुदशूक (Condyloma) विकारमें गुदाके बाहर पुष्प-पल्लवके सदृश सफेद ओर पतली त्वचाओंकी वृद्धि होती है। यह वृद्धि एक दूसरेपर अधिक अधिक होकर फूलगोभीके सदृश गुच्छेदार बनती है। यह रोग उपदंशके विषसे निर्माण होता है। सामान्यतः रोगी इसे अर्श होना कहते है। परन्तु अर्शके मस्से और इस शूकवृद्धि दोनोंमें सादृश्य कुछ भी नहीं है। संप्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे भी महदन्तर है। इस गुदशूक विकारपर उपदंशसूर्यका उत्तम उपयोग होता है।

पुराना तालुव्रण उपदंशजन्य होनेपर उसपर उपदंशसूर्यका प्रयोग करने से व्रणशमन होनेमें सहायता मिलती है। उपदंशके योगसे उत्पन्न दृष्टिमांद्य अंधता या नेत्रव्रण, नेत्रकी लाली, पक्ष्मव्रण आदि उपद्रव होनेपर त्रिफला और घी के साथ उपदंशसूर्यका प्रयोग करना चाहिये। एवं त्रिफलाके क्वाथ से नेत्रोंको धोते रहना चाहिये। नेत्रकी भांफणीसे समीप उत्पन्न होनेवाला जीर्ण नाड़ीव्रण (नासूर) विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है। इनमेंने उपदंशज व्रणका रोपण उपदंशसूर्यके सेवनसे हो जानेके उदाहरण मिले हैं।

उपदंशके विषका परिणाम वातवह मण्डल; वातचक्र और वातवाहिनियोंपर होकर वातप्रकोप होता है फिर पक्षाघात या कलायखंजके समान लक्षण होते हैं। कितने ही रोगियोंके सर्वांगमें बिल्कुल शक्तिहीनता आती है, कफप्रकोप अधिक होनेपर रोगीको घबराहट ओर अशांति बनी रहती है, रोगी एक स्थानमें पड़ा रहता है, तन्द्रा, जड़ता, विचार करनेकी शक्तिका ह्रास आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थितिमें उपदंशसूर्यका प्रयोग सारिवादि शारकर या रक्तशोधकारिष्टके साथ करना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर बार-बार आता रहता है। १-२ सप्ताह तक ज्वर नहीं रहता, फिर आजाता है। इस तरह रोगीको त्रास देता रहता है। इस ज्वरमें कफ प्रधान लक्षण होनेपर उपदंशसूर्यका उपयोग करना चाहिये। मात्रा अति कम देनी चाहिये।

पीत्तज्वर (Yellow fever) पर इस ओषधका प्रयोग करना चाहिये। यह ज्वर संक्रामक है। विशेषतः बड़ी जातिके मच्छर (Aedesaegyti) के काटनेपर होता है। इसमें सर्वाङ्गमें त्वचा पीले वर्णकी हो जाती है। कामला लक्षण प्रकाशित होते हैं; शीतसह ज्वर आता है; तथा मुख,

नाक और आमाशयमेंसे काले रंगका रक्तका स्राव होता है। इसकी उत्पत्ति अमेरिकाके उष्णता प्रधान देशोंमें होती है। यह ज्वर विशेषतः भारतमें नहीं होता। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—गरम-गरम भोजन, गरम चाय, मिर्च, खटाई और नमकका त्याग करें। भोजनमें थोड़ा सैंधानमक लें।

द्वितीय विधि—सोमल २॥ तोले और भेड़का दूध २॥ सेर लें। सोमल को खरलमें डालकर बारीक घोट लें। फिर थोड़ा-थोड़ा भेड़का दूध डालते हुये खरल करते रहें। लगभग २०-२५ दिन तक घोटनेपर सब दूध मिलकर रबड़ी जैसा हो जायगा। पश्चात् गुलाबके ५०० फूलोंको क्रमशः मिलाते हुए खरल करना। जब गोली बनाने लायक हो जाये तब १-१ रत्तीकी गोलियां बनालें। (श्री० पं० लक्ष्मीनारायणजी आ० भू०)

मात्रा—२ से ४ गोली तक, दूधके साथ लें।

उपयोग—जीर्ण उपदंशके उपद्रव, संधिवात, पक्षाघात, रक्तविकार, कुष्ठ, नेत्रलाली, तालुव्रण, गुदशूक, दुष्टव्रण, विद्रधि, अन्तर्विद्रधि, आदि भयंकर उपद्रवोंको दूर करनेमें उपयोगी है।

सूचना-भोजनमें मिर्च, खटाई, नमकका त्याग करें, थोड़ा सेंधानमक दें।

(१२६) उपदंशकुठार वटी

विधि—नीलेथोथेका फूला, छोटी हरड़, काबुली हरड़ और सोहागेका फूला १-१ तोला और कोड़ी भस्म ४ तोले मिला, ३ दिन नींबूके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली, सुबह-शाम ७ दिन ठण्डे जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी नये और पुराने उपदंश रोगको दूर करती है। एवं पुराने उपदंश रोगके उपद्रव—दृष्टिमांद्य, नेत्रलाली, फोड़ा-फुन्सी, संधिवात अतिसार, संग्रहणी, मूत्र पिण्डकी विकृति, रक्तविकार आदिको भी नष्ट करती है।

कई रोगियोंको गंम्भीर व्रण, नासूर या आंतोंमें और मुंहमें फाले (Ulcers) हो जाते हैं। उनके लिए यह उपदंश कुठार वटी अधिक लाभ पहुँचाती है।

सूचना—नीलेथोथेमें वमन करानेका दोष है। वह नींबूके रसके संयोग से कम हो जाता है, फिर भी किसीको उबाक हो, तो नींबू या तैलका सेवन करें। विशेष सूचना तुत्थ भस्ममें देखें।

(१२७) रसकर्पूर

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, कच्ची फिटकरी, सैंधानमक और कासीस समभाग और नौसादर बीसवां हिस्सा मिलाकर घीकुंवारके रसमें ६ घण्टे खरलकर डमरूयन्त्र और बालुकायन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। (आ० नि० मा०)

सूचना—डमरूयन्त्रको केवल २-३ घण्टे अग्नि देकर रसकपूंर उड़ा लेवें। फिर यन्त्रको खोल ऊपर लगे हुए रसकपूंरको निकाल पुनः बन्दकर ३ घण्टे अग्नि देकर शेष रसकपूंरको उड़ा लेवें। पश्चात् उस रसकपूंरको कपड़मिट्टी लगी हुई बोतलमें भर ईंटका मजबूत डाट लगाकर बालुकायन्त्रमें १२ घण्टे मन्द और मध्य अग्नि देकर उड़ा लेवें। इस तरह दूसरी बार उड़ानेपर रसकपूंर उत्तम प्रकारका बनता है। तेज अग्नि न लग जाय यह सम्हालें, अन्यथा पारद पृथक् हो जायगा।

मात्रा—१/१६ से १/४ रत्ती तक, दूसरी औषधिमें मिलाकर दें।

दूसरी विधि—डाक्टरीमें हाइड्रार्जिरी परक्लोराइडम् (Hydrargyri perchloridum) नाम की औषधि आती है। उसका दूसरा नाम कोरोसिव सब्लिमेट (Corrosive Sublimate) है; वह भी एक प्रकारका रसकपूंर ही है। बनानेकी विधि निम्नानुसार है—

शुद्ध पारद २० औंस और गन्धकका तेजाब १२ औंसको एनेमलके (लोहेकी सफेदी लगे) पात्रमें मिलाकर चूल्हेपर चढ़ावें। थोड़ी आँच लगने पर अपने आप अग्नि लगकर सफेद धूंआं निकलने लगेगा। तेजाब जल जानेपर नीचे उतार देवें। इसे डाक्टरीमें परसल्फेट ऑफ मरकरी (Persulphate of mercury) कहते हैं।

इस परसल्फेट ऑफ मरकरी २० औंसको सैंधानमक (Sodium Chloride) ३६ औंसके साथ मिलावें। फिर उसमें ब्लेक ऑक्साइड ऑफ मैंगनीज (Black Oxide of Manganese) १ औंस मिला अच्छी तरह खरलकर हरी आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रखें। पश्चात् यथा विधि १२ घण्टे अग्नि देकर उड़ा लेनेसे रसकपूंर तैयार हो जाता है। इसे नीले काचकी शीशीमें या नीला कागज लगाई हुई शीशीमें भरकर सम्हालपूर्वक रखें।

उपयोग—वह रसकपूंर रक्तविकार, कुष्ठ, उपदंश आदि रोगोंमें खाने तथा घावको सुखाने वाले कीटाणुनाशक मलहम और घाव धोनेकी औषधि में मिलानेके उपयोगमें आता है। उपदंशकी तो यह विशेष औषधि है।

सूचना—रसकपूंर वाली औषधके सेवनकालमें गेहूँका फुलका, घी, दूध शक्कर और भात खायँ। तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदिका त्याग करें। थोड़ा सेंधानमक मिलाना चाहें, तो गेहूँके आटेमें मिलावें।

रसकपूंरका उपयोग बहुत कम मात्रामें करना चाहिये। मात्रा ज्यादा देनेसे मुंह आना, मसूड़ोंमें सूजन, दांतोंमेंसे रक्त गिरना, जीभ मोटी होना, श्वासमें दुर्गन्ध, मुंहपर सूजन, कोष्ठ और मूलमें जलन, थूंकमें रक्त आना, उदरमें तीक्ष्ण पीड़ा आदि विकार हो जाते हैं। यदि बहुत ज्यादा परिमाण में दिया जायगा, तो हृदयावरोध, होठ काले होना, शरीर पसीनेसे भींग

जाना, पेशाब बन्द होना आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

यदि रसकपूँरका तीक्ष्ण असर हो जाय–मुंह आ जाय या अन्य उपद्रव उत्पन्न हो जाय, तो दूध, अण्डेकी सफेदी आदि पौष्टिक पदार्थका सेवन करना चाहिये, तथा बबूल या बेरकी छालके क्वाथमें फिटकरी और नीलाथोथा मिलाकर कुल्ले करना चाहिये।

(१२८) अमीर रस

प्रथम विधि—रसकपूँर, सिंगरफ, दाल चिकना * और सुनहरी गोटा, चारों १-१ तोला लें। रसकपूँर, सिंगरफ और दालचिकनेको कुछ कूटकर मूंग समान टुकड़े करें। गोटेमेंसे सूत निकाल दें; फिर कतरकर सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़े करें। पश्चात् लोहेके मोटे तवेपर ४ तोले सैंधानमक बिछाकर ऊपर रसकपूँर वाले टुकड़ोंको फैला दें; उनको गोटेसे ढक दें. और आठ तोले सैंधानमकसे चारों ओर किनारा इस तरह बांधें कि इस घेरेको ऊपर रखी हुई प्याली लगती रहे। फिर चीनीमिट्टीकी प्याली ढक दें, तत्पश्चात् ४-८ तोले या अधिक सैंधानमक और १-२ तोले कतीरा गोंदको जलमें भिगो तवा और प्यालीकी संधियोंको दृढ़ बन्द करें। (कितने ही चिकित्सक कतीरा नहीं मिलाते) फिर यन्त्रको चूल्हेपर चढ़ा बेरकी लकड़ी (पैरके अंगूठे जैसी मोटी) की १२ घण्टे तक मन्द-मन्द अग्नि देवें। पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर ऊपरकी प्यालीमें लगे हुए अमीर रसको निकाल लेवें। कितने ही चिकित्सक प्याली रखनेके समय उसके भीतर मठ्ठा (तक्र) लगा लेते हैं। (सि० भे० म०)

वक्तव्य—अमीर रसका मूलपाठ सिद्धभेषज मणिमालाकारने दिया है। किन्तु वह विधि सदोष होनेसे उसे सुधारकर पाठ दिया हैं। मूल पाठमें सोमलके स्थानमें जरीके तार (चांदीके) मिलानेको लिखा है उस तरह रस बन सकता है, किन्तु चांदी नीचे रह जाती है। पारदका वियोजन हो जाता है जिससे मुंह आ जाता है। सोमल मिलानेपर रस विशेष लाभप्रद बनता है।

---

* दालचिकना—(Hydrargy rum Ammoniatum)–रसकपूँर (मर्क्युरिक क्लोराइड) १ औंस, लाईकर एमोनिया ४ औंस, बाष्पजल यथा प्रयोजन लेलें। पहिले रसकपूँरको बाष्पजलमें मिला मृदु अग्निपर द्रव करें। फिर लाइकर एमोनिया मिलाकर चला लें। जो तल भागमें बैठ जाय, उसे बाष्पजलसे पुनः पुनः धोयें। जब धोए हुए जलमें सोरा द्रावक (Acid Nitric dil) मिश्रित नाइट्रेट ऑफ सिल्वर द्रव्य मिलानेपर कुछ भी द्रव्य तलस्थ न हो, तब औषधि शुद्ध मानी जाती है। उसे २१२ डिग्रीसे कम अग्निपर सूखा लेनेपर मैले सफेद रंगका दालचिकना बन जाता है। यह दालचिकना मद्यार्क अथवा ईथरमें द्रवीभूत नहीं होता।

पारदके वियोजनयुक्त रसका सेवन करानेसे कदाच मुंह आ जाय तो बबूलकी छाल या बेरकी छाल या चमेलीके पानके क्वाथसे दिनमें ३-४ बार कुल्ले करावें। प्रत्येक बार २५-५० कुल्ले करावें।

दूसरी विधि--रसकर्पूर, दालचिकना, सिंगरफ १०-१० तोले, सोमल २।। तोले और सैंधानमक ५ तोले। सबको मिला बड़े उदरवाली कपड़-मिट्टीकी हुई आतशी शीशीमें भर बालुकायन्त्रमें रखकर तैयार करते हैं। धूआँ निकले तब तक डाट चिपका हुआ रखते हैं। फिर डाटको दृढ़ करके ६ घण्टे मन्दाग्नि देते हैं।

यह रसायन सुन्दर सफेद बनता है। रसकर्पूरके भीतर मिले हुए गन्धकके तेजाबमेंसे कुछ अंश पीले गंधक रूपसे पृथक् हो जाता है।

सुनहरी गोटा मिलानेपर वह नीचे रह जाता है, उसका कोई विशेष गुण अमीर रसमें नहीं आता। सोमलके संयोगसे गुणमें अति वृद्धि होती है। इस हेतुसे हम सोमल मिलाते हैं।

मात्रा--आधसे १ रत्तीको मुनक्कामें रख सुबह १ बार निगल जायँ। दांतोंको न लगे, वह सम्हालें। ७ से १४ दिन तक सेवन करें।

उपयोग--इस रसके सेवनसे उपदंश, सन्धिवात और उपदंशजनित एक दो वर्षके भीतर उत्पन्न हुए रक्त और मांस तक पहुँचे हुए उपद्रव थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जाते हैं। उपदंशके लिये अति लाभदायक औषधि है भोजनमें गेहूँका फुलका, गायका दूध और मिश्रीके सिवा कुछ भी नहीं लेना चाहिये।

इस रसमें कीटाणुनाशक गुणके अतिरिक्त उत्तेजक, कफघ्न गुण होनेसे यह कफप्रधान सन्निपातमें प्रयुक्त होता है। जब कफ बहुत बढ़ गया हो, तब कीटाणु नष्ट करना; कफको सुखाना; उत्पत्तिको रोकना और उत्तेजना देकर उत्तान कफको बाहर निकालना; इन सब क्रियाओं द्वारा कफ प्रकोपको दूर करना पड़ता है। ये कार्य इस रसायन (रसकर्पूर और मल्ल-मिश्रित) से सन्तोषप्रद होता है।

इन गुणोंके हेतुसे कफप्रकोपसह तमकश्वासके दौरेमें तथा न्युमोनिया, इनफ्लूएञ्जा और अन्य कफप्रकोपसह सन्निपातमें जब ज्वर १००° लगभग हो तथा बेहोशी या व्याकुलता हो; तब इसका प्रयोग होता है। १-१ चावल रसायन मुनक्काके टुकडेमें लपेटकर निगलवा दिया जाता है। यदि वृक्कोंसे योग्य कार्य न होनेसे मुँहपर शोथ आया हो; मुँहमें छाले रहते हो या ज्वर १०२° से अधिक हो; तो उस अवस्थामें अमीर रस या इतर मल्ल-प्रधान औषधि नहीं दी जाती।

(१२८) मल्लादि वटी (फिरंग)

विधि--पीला सोमल १ तोला और सफेद कत्था ३ तोले मिलाकर

कज्जली करें। फिर नागरबेलके पानके रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली; दिनमें २ बार; नागरबेलके पानके साथ दें।

उपयोग—यह वटी जीर्ण उपदंशके उपद्रव; संधिवात, पक्षाघात, गुदशूक; तालुव्रण, वातविकार, कफवृद्धि, मन्दाग्नि, कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, रक्तविकार नाड़ीव्रण, नेत्रव्रण, दुष्टव्रण आदिको १ मासमें नष्ट करती है। उपदंश जनित ५-७ वर्षके जीर्ण उपद्रव इस औषधिसे दूर होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

यह वटी प्रबल कीटाणुनाशक और विषघ्न है। इसका उपयोग विशेषतः फिरंगजनित उपद्रवोंपर होता है। फिरंग विष रक्तमें रह जानेपर मांसादि धातुओंमें लीन होकर कुछ मास या वर्षोंके पश्चात् रक्तविकार, फोड़े-फुन्सी कुष्ठ, त्वचारोग, गुदशूक, तालुक्षत, पक्षाघात, धमनीकोष्ठकाठिन्य रक्तदबाव वृद्धि और नासादि स्थानोंमें मस्सेकी उत्पत्ति इत्यादि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवोंको मूलरोग मानकर उपाय करनेपर सच्चा लाभ नहीं पहुँच सकता फिरंग विषको जलानेपर ही वे निर्मूल होते हैं। इस विषको जलानेमें मल्ल प्रधान औषधि श्रेष्ठ मानी गई है। अष्टमूर्तिरसायन, अमीररस, मल्लसिंदूर (नं. २), उपदंशसूर्य और मल्लादि वटी आदि मल्लकल्प हैं। ये सब उत्तरोत्तर उग्र हैं। आयु, प्रकृति, ऋतु, रोगबल, उपद्रव, पथ्यापथ्य, आर्थिक स्थिति, सामयिक अनुकूलता, शारीरिक बल, व्यवसायादिका विचार करके योजना की जाती है।

रसविकृति, आमप्रकोप, कफप्रकोप, पूयप्रधान ज्वर, नेत्रव्रण नासाव्रण तालुव्रण आदि पर इस वटी की योजना विशेष हितावह है। कारण इस वटीमें कत्था मिला हुआ है, जो उक्त विकृतियोंको दूर करनेमें विशेष सहायक होता है।

श्वसन संस्थानमें जब अत्यधिक कफ संगृहीत हो जाता है, तब शारीरिक उत्ताप प्राय: ९६° से ९७° लगभग हो जाता है, एवं अग्निमांद्य, अरुचि व्याकुलता, कफ थोड़ा-थोड़ा निकलते रहना, छातीमें भारीपन, आलस्य, थकावट; नाड़ी अति मन्द हो जाना; मलावरोध और किसी-किसीको शोथ आजाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर यह वटी दूधकी मलाई और मिश्रीके साथ या दूधके साथ दी जाती है। जिनको दूध अनुकूल न रहता हो, तो उनको मक्खन मिश्री या घृत अनुपान रूपसे दिया जाता हैं श्वासरोगान्तक वटीका पाठ देखें, वह श्वास रोगपर हितावह है।

वक्तव्य—यकृत् निर्बल हो तो अधिक घृत नहीं देना चाहिये। जो कड़वा तैल खा सके उसे पकोड़े तलकर खिलाना चाहिये। कफको बाहर निकालनेमें और छातीका शोधन करनेमें कड़वा तैल विशेष उपयोगी हैं।

जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये। शीतल वायु और

शीतल जलका उपयोग हानिकर है ।

धूम्रपानका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये ।

सूर्यका ताप, मिर्चादि गरम पदार्थ, अति उष्ण भोजन और चाय आदि का सेवन कमसे कम करना चाहिये ।

कफ प्रधान सन्निपातमें ज्वर १०१° से अधिक न हो, नेत्रोंमें लाली न हो मलावरोध न हो, मूत्रशुद्धि होती हो तथा गलेमेंसे कफकी आवाज आती रहती हो, व्याकुलता, मंद, प्रलाप, बेसुधि और श्वास ऊपर-ऊपर चलना आदि लक्षण उपस्थित हों तो उस अवस्थामें नागरवेल या तुलसीके पानका रस और शहदके साथ यह वटी दी जा सकती है । मुख्य औषधि संचेतनी वटी और समीरपन्नग है । तथापि इनके अभावमें मल्लादि वटीका प्रयोग किया जाता है ।

सूचना—जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें । अच्छी तरह सुधि न आ जाय, तब तक खानेको कुछ भी नहीं देना चाहिये ।

गलत्कुष्ट होनेपर प्रारम्भावस्थामें रक्तके भीतर कुष्ट-कीटाणु (Baciel usleprae) प्रवेशित होकर अपना अड्डा जमाते हैं । उनकी आबादी बढ़ने पर उसके विषका प्रवेश मांसादि धातुओंमें होता है । फिर मुखमण्डल फूला हुआ या शोथमय विकृत बन जाता है । रोगवृद्धि होनेपर त्वचा शुष्क बन-कर सड़ने लगती है । फिर अंगुलियोंके पर्व गलकर टूटने लगते है । उन स्थानोंसे दुर्गन्धमय रसस्राव होता रहता है, अति अशक्ति आ जाती है, निद्रा तन्द्रा और आलस्य बने रहते है । इस विकारकी प्रथमावस्थामें पथ्य-पालन सह इस वटीका सेवन कराया जाय, तो लाभ हो जाता है ।

वक्तव्य—(१) भोजनमें गेहूँ, चने मिश्रित रोटी, दूध, घी और शक्कर अति कम सैंधानमक लें । उदरशुद्धि नियमित होनी चाहिये ।

(२) यदि औषध सेवन करनेपर मूत्रावरोध हो जाय, रात्रिको २-४ बार लघुशंकाके लिये उठना पड़े या ज्वर आ जाय अथवा मुखमण्डलपर शोथ आ जाय, तो यह दवा छोड़ देनी चाहिये । कुष्ठकुठार, आरोग्यवर्द्धिनी चोल मोगरा तैल या अन्य औषधि देनी चाहिये ।

नाड़ीव्रण, भगंदर, अन्तर्विद्रधि और दुष्टविद्रधि जो दीर्घकाल तक न भरते हों, जिसके हेतुसे ज्वर आ जाता हो, उसके बाह्योपचारके साथ मलाई या मक्खन (या शहद) के साथ यह नहीं दी जाती है ।

(१२९) पञ्चनिम्ब चूर्ण

विधि—निम्ब पंचाङ्ग (जड़, पत्ती, फूल, फल और छाल) ६० तोले लोह भस्म, छोटी हरड़, पुंवाड़के बीज, चित्रकमूल, भिलावाँ बायविडंग, मिश्री,

आंवला, हल्दी, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, बावची, अमलतासका गूदा और गोखरू, ये १५ औषधियां ४-४ तोले मिलाकर चूर्ण करें। फिर लोह भस्म मिलाकर भांगरेके रस और खैरकी छाल तथा विजयसारके अष्ठावशेष क्वाथकी १-१ भावना देकर सुखा चूर्ण बना लेवें। (शा० सं०)

सूचना—भिलावा नया और पक्का, टोपी निकाला हुआ मिलावें। बाय विड़ङ्गका तन्दुल निकालकर लेवें। कफ अधिक हो तो क्वाथ देनेपर ४-४ रत्ती कालीमिर्चका चूर्ण भी देते रहे। मलावरोध रहता हो तो छोटी हरड़ का चूर्ण २-३ माशे भोजनके बाद भी लेते रहें। यकृत् निर्बल हो तो घीका सेवन कम करावें।

रोगीको नित्यप्रति तैल मर्दन कराकर स्नान करनेकी सूचना करें। जल निम्बके पत्तोंको मिलाकर उबाला हुआ लेवें। अधिक गरमीमें न फिरें। एवं नमक, मिर्च, खटाई और मिठाईका सेवन हो सके उतना कम करें। ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक पालन करें।

चाय, कॉफी, सिगरेट, अफीम, शराब आदि व्यसनोंका त्याग करें।

मात्रा—३ से ६ माशे तक। खैरकी छालके काढ़ेके साथ दें।

अनुपान—रोग बल अधिक हो और पाचनशक्ति प्रबल हो तो खैर-छाल और विजयसारके अष्टावशेष क्वाथसे दें। साथ ही यह भी स्मरण रहें कि, कषाय प्रधान औषधिके पाचन पचन शक्तिको कष्ट (श्रम) होता है, अतः रोगीके बलाबलका अवश्य विचारकर लेना चाहिये। यकृत् सबल है और दाह है तो, घृतसे, पाचन शक्ति मन्द है तो दूधसे दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके कुष्ठ रोगोंका एक मासमें शमन होता है, दूषी विषके उपद्रव रूप और पाचन क्रिया-विकृतिसे होनेवाले कुष्ठ दूर होते हैं, एवं भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, नाड़ीव्रण, विषप्रकोप, प्रमेह, रक्तविकार, उपदंशज उपद्रवके कुष्ठ, प्रदर, शिरदर्द उदरपर मेदवृद्धि और कृशता आदि रोग नष्ट होते हैं। इस चूर्णके सेवनसे रोगी सब प्रकारके रोग (पचनेन्द्रियकी विकृतिजनित और त्वचारोग) तथा जरावस्थाकी निर्बलतासे मुक्त होकर कान्ति वाला बनता है।

कुष्ठ रोगके भीतर ही गौणकुष्ठ हैं। जिनकी गणना एलोपैथीमें त्वचारोगमें की है बहुधा इनकी संप्राप्ति आमविषका नाड़ियोंमें संग्रह, कीटाणु और सूक्ष्म उदर कृमियोंके विषका रक्तमें प्रवेश होनेपर होती है। ऐसी अवस्थामें आमविषघ्न, कीटाणुनाशक, कृमिघ्न गुणयुक्त रोगहर औषधकी आवश्यकता हैं। ये सब गुण पञ्चनिम्बचूर्णसे प्राप्त होते हैं। क्योंकि इन गुणों की प्राप्तिके लिए इस प्रयोगमें भिलावा, चित्रकमूल, बायविड़ङ्ग, पंवाड़बीज, बावची ये सब कृमिज विषोंको जलाने और स्रोतोंको खोलनेमें अधिक

तर सहायक औषधियोंकी योजना की है। यह पञ्चनिम्बचूर्ण सब प्रकृतिके रोगी और छोटी बड़ी आयु वालोंको सब ऋतुओंमें निर्भयता पूर्वक दिया जाता है। यह चूर्ण विशेषतः जीर्ण रोगमें १ वर्ष तक पथ्य-पालन सह दिया जाता है जब बड़ी-बड़ी उग्र औषधियां असफल होजाती हैं। रोग दुराग्रही बनकर दृढ़ हो जाता है, तब इस चूर्णके सेवनसे शरीर सब कुष्ठोंसे मुक्त होकर तेजस्वी बन जाता है।

(१३०) रस माणिक्य

विधि—बिना शोधी हुई तपकिया हरतालका चूर्ण करें। फिर अभ्रकके समान आकारके दो पतरे लें। इनके बीचमें मोटे कागज जितनी मुटाई हो उतना हरतालका चूर्ण फैला दोनों पतरोंको दबाकर गोबरीकी निर्धूम अग्नि पर रखें। तीन-तीन मिनटपर पलटते रहें। तीन बार पलटनेसे माणिकके समान हरतालका रंग हो जाता है। साफ रंग होनेपर अग्निपरसे उतार लेवें ठण्डा होनेपर माणिक्य रस निकाल लेवें। (आ० नि० मा०)

वक्तव्य—कई रसायन कृतिसे अनभिज्ञ और शास्त्रविद्, विद्वान् मानते हैं कि हरताल रसायनको अग्निपर डालनेसे धूँआ निकले तो कच्चा और धूँआ न निकले तो ही पक्का। किन्तु इस कथनमें कुछ भी सत्यांश नहीं है। हरतालमें रहे हुये गंधक और सोमल दोनों ज्वालाग्राही हैं। अग्नि स्पर्श होनेपर वे धूँआ देंगे। धूँआ न निकले तो समझना चाहिये कि लाभप्रद द्रव्य उड़ गया है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती। कफज ज्वरमें नागरबेलके पानके साथ तथा कुष्ठ और रक्तविकार आदिमें गोघृत और शहदके साथ दें। ऊपर खैरकी छालका क्वाथ पिलावें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वातश्लेष्म ज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, श्वास, कास, हृदयावरोध, फूटा और गला हुआ कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाड़ीव्रण दुष्टव्रण, विचर्चिका नाक और मुंहके रोग, भयंकर क्षत (घाव)और पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदल कुष्ठ, विस्फोटक और मण्डल कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

यह रस बालक, युवा, वृद्ध, सुकुमार स्त्रियों और प्रसूताको कीटाणु प्रकोप और आमविषज या वातकफज व्याधिपर दिया जाता है। हरतालके भीतर सोमल और गन्धक स्वाभाविक रहा है। इसकी भस्म बनानेपर गन्धक सब उड़ जाता है और सोमलका भी कुछ अंश निकल जाता है। रस माणिक्य बनानेपर गन्धक परिपक्व होकर रूपान्तरित हो जाता है और सोमल भी रह जाता है। मात्रा १% सोमल उड़ जाता है। इस रसायनमें सोमल और गन्धकका इस प्रकारका संयोजन हो जाता है कि, यह रक्तमें शीघ्र मिलकर अपना प्रभाव तत्काल दर्शाता है।

वर्षामें भीगने या शीत लग जानेपर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका और फुफ्फुसोंपर आघात पहुँचता है। फिर मन्द-मन्द ज्वरसह प्रतिश्याय उपस्थित होता है। नासिकासे जल टपकता है, बार-बार छींकें आती हैं, आवाज बैठ जाती है। ऐसी अवस्थामें १-१ रत्ती हरताल रसायन शहदके साथ सुबह और रात्रिको देनेसे दूसरे ही दिनमें प्रतिश्याय दूर हो जाता है।

सूचना—सूर्यके तापका आघात होकर प्रतिश्याय होनेपर इस रसायन का उपयोग न किया जाय तो अच्छा। जिन रोगियोंको वृक्कप्रदाह हो, उनको पारद, सोमल और तालप्रधान औषधि नहीं दी जाती।

शीत लग जानेपर छाती जकड़ जाती है, उसका तुरन्त उपचार न करनेपर फुफ्फुसोंमें कफोत्पत्ति होकर ज्वर आजाता है, घबराहट, फुफ्फुसों का खिचाव, शिरमें दर्द, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसकी प्रारंभावस्थामें यदि हरताल रसायन १-१ रत्ती शहद-पीपलके साथ प्रातः काल और रात्रिको दिया जाय, तो आगे होने वाले सब लक्षण रुक जाते हैं। ज्वरादि उत्पन्न हो गया हो तो मलावरोधको दूर करें। ऐसा पञ्चसम चूर्ण आदि औषधियां शीतभंजी अथवा त्रिभुवनकीर्ति रसके समान ज्वरघ्न औषध या बच आदि वामक औषधिका सेवन करानेके साथ १-१ रत्ती हरताल रसायन मिलानेपर सत्वर लाभ पहुँचता है।

अनेक बार प्रतिश्याय होकर वातश्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा) की सम्प्राप्ति होती है। इस ज्वरकी प्रथमावस्थामें इस रसायनका उपयोग करनेपर कीटाणु नष्ट होते हैं और कफोत्पत्ति बन्द होती है। फिर ज्वर सरलतासे शांत हो जाता है।

कफप्रधान प्रकृति बन जानेपर यदि दूषित कफ फुफ्फुसोंमें संगृहीत होता है, तो उसमेंसे विषका शोषण रक्तमें हो जाता है। रक्तमें विषवृद्धि होनेपर श्वासका आक्षेप होता है और अन्य समयमें थोड़ा-सा परिश्रम होने पर श्वासावरोध और घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी गलेमें आये हुए कफको भी बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाता है। किसी-किसीको ज्वर भी आजाता है; ऐसे रोगीको १-१ रत्ती हरताल रसायन शहदके साथ या वासा स्वरस और शक्करके साथ दिनमें २ बार, १५ दिन तक देते रहनेसे लाभ पहुँच जाता है। यदि पूरा लाभ न हुआ तो १५ दिन छोड़कर पुनः हरताल रसायन दे सकते हैं।

सूचना—(१) यदि रोगीको धूम्रपानका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। एवं गोमूत्रक्षार चूर्णका सेवन भी कराते रहना चाहिये।

(२) यह अग्निपर डालनेपर धूँआ देता है, उससे भ्रममें न पड़े, यह हरतालके वर्णका रूपान्तर और कुछ पचन हुआ है गुणधर्म दृष्टिसे अति

सफल औषधि है।

कफप्रधान ज्वर होनेपर छातीमें कफका अति संग्रह, कण्ठमेंसे कफकी आवाज निकलना, ज्वर १००° से १०२° तक रहना, मुंहमें मीठापन और चिकनापन आलस्य, प्रतिश्याय, नाड़ियोंका खिचाव, बार-बार लघुशंका होना, मूत्रका वर्ण श्वेत होना, अन्त्रमें भारीपन, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस ज्वरपर रस माणिक्यका उपयोग अदरकके रस और शहदके साथ होता है। इसके सेवनसे कफ सरलतासे बाहर निकलता है, आमका पचन होता है। उदरमें अफारा आया हो, तो वह भी दूर होता है और फिर ज्वर शमन हो जाता है।

फुफ्फुस सन्निपात—(Pneumonia) रोग होनेपर फुफ्फुसके भीतरसे न्यूमोकोकाई कीटाणु कफके साथ बाहर निकलते रहते हैं। इस रोगमें कितने ही रोगी अधिक अशक्त हो जाते हैं। उनके फुफ्फुस सरलतापूर्वक कफको बाहर नहीं फेंक सकते, एवं कफकी नयी-नयी उत्पत्ति होती रहती है। ऐसे रोगियोंको रोगनाशक मुख्य औषधिके साथ इस रसायनका सेवन कराते रहनेपर कफोत्पत्ति कम होती है, घबराहट दूर होती है और कफ सरलतासे बाहर निकलने लगता है।

सूचना—यदि रक्तमय कफ निकल रहा हो, तो यह रसायन नहीं देना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर (Relapsing fever) विशेषत: निर्धनोंको और दूषित अन्नका सेवन करने वालोंको होता है। दुष्काल पीड़ित प्रदेशोंमें इस ज्वरकी उत्पत्ति अधिक होती है। इस ज्वरसे पीड़ितोंको शुद्ध अन्न देनेके साथ इस रसायनका सेवन कराया जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें रोग निवृत्त हो जाता है।

छोटे बालकोंको श्वासप्रणालिका प्रदाह (डब्बा रोग) होनेपर फुफ्फुसोंमें कफ संग्रह हो जाता है। इस अवस्थामें पहले एक वमन और एक दस्त लाने वाली औषध डब्बानाशक गुटिका दी जाती है। इसके पश्चात् भी फुफ्फुसोंमें बल न आया हो और उदरमें खड्डा पड़ता हो, तब हरताल रसायन शहदके साथ मिलाकर दिया जाता है। यदि इसके साथ अडूसेका रस भी मिलाया जाय तो सत्वर लाभ पहुंचता है।

वातरक्तका विकार प्राय: चिरकारी और दीर्घकाल स्थायी होता है। यह रोग हाथ या पैरोंके अंगुष्ठसे प्रारम्भ होता है। अंगुष्ठ सूजता है और उसमें वेदना होती है। फिर कुछ समयमें ऊपर बढ़कर संधिस्थानोंको पकड़ता है। उस समय त्वचा मलीन हो जाती है तथा तीव्र वेदना, सारे शरीरमें नाड़ियां खिचना, कम्प, जकड़ाहट, उस स्थानमें स्पर्शका बोध न होना और शीतल वायु असह्य भासना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। किसी

किसीको सारे शरीरमें शुष्क कण्डू, फोडे-फुंसियां या व्युची आदि त्वचा रोग भी हो जाते हैं। इस विकारपर रक्तशोधक क्वाथके साथ पथ्यपालन-सह रस माणिक्य देते रहनेसे २-३ मासमें रोग दूर हो जाता है।

श्वेतकुष्ठपर लेप करनेके लिये—१ भाग हरताल रसायन और दो भाग बावचीका चूर्ण मिला गोमूत्रमें खरलकर वर्ति बनावें। फिर उसे गोमूत्रमें घिसकर लेप करते रहें। २-३ दिनमें वहांपर फाले हो जाते हैं। पश्चात् ओषधका लेप बन्द करें और वहांपर मक्खन लगाते रहें। फाले मिटनेपर पुनः लेप करें। इस तरह ३-४ बार करनेपर सफेद दाग निर्मूल हो जाते हैं।

सूचना—कुष्ठ और रक्तविकारमें रोगीको नमक रहित भोजन (दूध भात) देनेसे सत्वर लाभ होता है।

(१३१) मंजिष्ठादि तालसिंदूर

विधि—तालसिंदूर ४ तोले और बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथका चूर्ण ४ तोले मिलावें। पश्चात् बृहन्मंजिष्ठादि चूर्ण ६-६ तोलेको अष्टगुण जलमें मिला अष्टमांश क्वाथकर ३ भावना देकर ½-½ रत्तीकी गोलियां बनावें।

(आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें ३ बार। जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रस कुष्ठ, उपदंश, रक्तविकार और त्वचाके रोगोंको दूर करता है। यह उपदंशके जीर्णविकार रूप कुष्ठ और वात-कफ-प्रधान कुष्ठमें थोड़े ही दिनोंमें लाभ पहुँचाता है। महाकुष्ठके पहले कईयोंको शरीरके किसी भी भागमें वातनाड़ियोंके भीतर शून्यता आ जाती है, उस अवस्थामें यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। विशेष गुण तालसिंदूरमें लिखे हैं।

तालसिंदूरमें बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ मिल जाने और उसकी भावना लग जानेके हेतुसे यह रस रक्त आदि धातुओंका शोधन करनेमें बहुत अच्छा कार्य करता है। जीर्ण फिरंगके विष और उपद्रवोंको दूर करनेमें अति उपयोगी है। इसका सेवन वात, पित्त, कफ सब प्रकृति वालोंको एवं बालक, युवा, प्रसूता आदिको निर्भय रूपसे करा सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु और पित्त-प्रधान प्रकृति वालोंको पूर्ण पथ्यपालनके साथ मंजिष्ठादि तालसिंदूर तथा साथमें प्रवाल पिष्टी मिलाकर देवें। एवं एक-एक सप्ताहके सेवनके पश्चात् ४-४ दिन औषधि बन्द रखें। रक्तशोधनमें सहायक चन्द्रकला रस या शीतल पेय आदिका सेवन करावें।

(१३२) सूलशेखर रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाभ, सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धतूरेके शुद्ध बीज, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, बेलगिरी, शंखभस्म, कचूर इन १७ ओष-

धियोंको समभाग मिला भांगरेके रसमें १२ घण्टे घोटकर एक-एक रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

सूचना—भांगरेके रसको निकाल कुछ समय तक स्थिर रहने देवें। जिससे स्थूल तलमें बैठ जायगा। फिर अच्छी तरह रुईकी मोटी तहसे छानकर काममें लें अन्यथा वनस्पतिका अंश रसमें मिलकर वजन अधिक बढ़ जायगा।

वृद्ध परम्परा अनुसार सूतशेखरकी घोटाई २१ दिन तक करानेका रिवाज है। अधिक खरल होनेसे यह रसायन आशु फलप्रद बनता है। कृष्णगोपाल औषधालयकी कल्याण रसायनशालामें इसी तरह विधिपूर्वक २१ दिन तक खरल कराया जाता है।

सुवर्णके स्थानपर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर सूतशेखर बनानेपर पित्त शमन और मस्तिष्कशूल आदि रोगोंपर अच्छा लाभ पहुँचता है। उसका भी हमने अनुभव किया है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार दूध मिश्री, घी और शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

अम्लपित्तमें सूतशेखर, अपामार्गक्षार, लोटिया सज्जी (सोडा बाई कार्ब) और गुलकन्दके साथ दिनमें ३ बार देवें। अथवा प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व और द्राक्षावलेहके साथ मिलाकर प्रातः सायं देना चाहिये।

उपयोग—इस रसके सेवनसे अम्लपित्त, वमन, शूल, गुल्म, खांसी, संग्रहणी, दाह, त्रिदोषज अतिसार, श्वास, मन्दाग्नि हिचकी, उदावर्त, ज्वर, क्षय आदि रोग ४० दिनमें मिटते हैं।

सूतशेखर पित्तकी अम्लता और तीक्ष्णताका शमन करता है, एवं वातप्रकोपको भी नष्ट करता है; जिससे वातपित्तात्मक विकारोंको दूर करनेमें यह अत्यन्त हितकर है। यह रसायन आमाशय और पित्ताशयमें पित्तप्रकोपका शमन करके पित्तोत्पत्तिको नियमित बनाता है, जिससे अम्लपित्त खट्टी वमन, पित्तवृद्धिसे उत्पन्न होने वाला कोष्ठस्थ शूल, हिक्का, उदावर्त, पित्तज शीर्षशूल, दाह, घबराहट, चक्कर आना, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, नाकमेंसे होनेवाला रक्तस्राव, मुंहमें छाले होना शीतपित्त आदि रोग नष्ट होते है। एवं यह पित्तशामक, हृद्य और संग्राह्य होनेसे मधुरा सूतिकारोग क्षयकी प्रथमा और द्वितीयावस्था, पित्तातिसार, रक्तातिसार ज्वरातिसार नया पित्तज ग्रहणी रोग आदिमें सेन्द्रिय विषको नष्ट करके दस्तको बाँधता है, दाहको कम करता है, और ज्वरका शमन करता है। वातपित्तात्मक सूखी खांसी, जो घण्टों तक आती रहती है; जिसमें कफ नहीं निकलता, जो सोनेके समय अधिक त्रास पहुँचाती है, उसे और पित्तप्रधान श्वासरोगको

भी यह दूर करता है, पित्ताशय कमजोर हो जानेसे पित्तोत्पत्ति कम होती है। उस हेतुसे अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रहते हों; तो वह भी इस रसायनके सेवनसे नियमित होती हैं।

समीरपन्नग, पञ्चसूत और मल्लसिन्दूर तीनों सिन्दूर कल्पकी औषधियां उत्तेजक हैं। कज्जली कल्पमेंसे महावातविध्वंसन, एकाँगवीर, स्मृतिसागर और सूतशेखर चारों शामक हैं। महावातविध्वंसनका शामककार्य वातवाहिनियां और वातवह मण्डलपर होता है। एकांगवीर वातवाहिनियां और मांस संस्थानके क्षोभ विकारमें लाभदायक है। स्मृतिसागर, कफ भूयिष्ठ पक्षाघात, आक्षेपक, अपतानक आदि वातप्रकोपका शमन करता है; तथा सूतशेखर पित्त और वातपित्तात्मक व्याधियोंमें विशेषतः मध्यम कोष्ठके भीतर पचनक्रिया करने वाले अवयव समूहपर शामक असर पहुँचाता है। इस शामक शब्दका तात्पर्यार्थ अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है।

यह औषध अफीमके समान तीव्रशामक नहीं है; इसलिये इसके सेवनके पश्चात् प्रतिक्रिया भी नहीं होती अफीम तीव्रशामक होनेसे सेवन करनेपर स्वल्प समयमें शामक गुण प्रदर्शित करती है और वेदनाका शमन करती है. परन्तु वेदना जितनी जल्दी कम होती है, उतनी ही जल्दी पुनः जागृत हो जाती है, जिससे रोगीको पुनः संताप होने लगता है। इतना ही नहीं, क्वचित् वेदना अधिक तीव्र हो जानेका भी अनुभवमें आया है। ऐसी शामक औषधका परिणाम वातवाहिनियोंकी संवेदना शक्तिको कम करनेके लिये होता है। रोगके मूल कारण या वेदनाके मूल कारणका नाश इससे नहीं होता। किंचित् कालपर्यन्त संवेदनाका ह्रास हो जानेसे उस स्थानकी पीड़ाका रोगीको बोध नहीं होता। शामक औषधमें जितनी अधिक तीव्रता हो प्रतिक्रिया भी उतनी तीव्र होती है रबड़की गेंद जितने बलसे पटको उतने ही बलसे वह उछलती है। उस नियमानुसार तीव्र शामक औषधकी तीव्र प्रतिफलित क्रिया होती है।

परन्तु सूतशेखर आदि शामक औषधियोंकी शामकता इस तरहकी है कि इसके योगसे वेदनाके मूल कारण रूप जो विकार है वही दूर होता है, और वेदनाका निवारण होता है। उदाहरणार्थ सूतशेखर अम्लपित्तमें शामक है। इसमें उदरपीड़ा और उदरमें होकर वांतिके साथ अम्लपित्त पड़ता है, यह लक्षण बहुधा मुख्य होता है। इस विकारमें उदरमें दर्द यह लक्षण वात और पित्त संयोगसे होता है। इस स्थानपर अनेक भिन्न-भिन्न प्रकारकी योजनाशामक और सूशोधक रूपसे की जाती है। इनमें तीव्र शामक या केवल पित्तकी अम्लता कम करने वाले स्निग्ध द्रव्य आदिका परिणाम केवल काम चलाऊ होता है। यदि यथोचित सच्चा शुद्ध प्रयोग करना हो, तो

दोष प्रत्यनीक चिकित्सा करना चाहिये। वात और पित्त ये दो दोष आमाशयमें बढ़नेपर अम्लता और वेदना ये दो प्रमुख लक्षण उपस्थित होते हैं। ये ही दोष पक्वाशयमें बढ़नेपर लक्षण पृथक् हो जाते हैं। वेदना तो होगी ही, परन्तु अम्लताके स्थानमें अब्धातुकी वृद्धि होगी, और अतिसार हो जायगा, अथवा स्थूल वायु वृद्धि होकर आध्मान हो जायगा। यहांपर पाचक पित्त और समान वायुका कार्य क्षेत्र होनेसे उनमें दुष्टि उत्पन्न होती है, तथा पाचक पित्त और समान वायु (धातुरूप जो हैं वे) अपने साध्यको स्थिर रखनेके लिये प्रयत्न करते हैं। विकारको निर्दलन करनेकी चेष्टा (लड़ाई) करनेपर उस स्थानपर युद्धके आविष्करण होनेपर वे लक्षण उपस्थित होते हैं। पाचक पित्तमें अम्लता बढ़ना, यह पित्तविकारका लक्षण है, और अन्न ग्रहण कार्य विकृत होना यह समान वायुका दोष लक्षण है। इस दुष्टावस्थाको दूर करनेके लिये जीवनीय शक्तिका प्रयत्न चालू रहता है। इस हेतुसे अम्लता और वेदना उत्पन्न होती हैं। सूतशेखरके द्रव्य समूहोंका परिमाण पित्तकी अम्लता और समान वायु दोनोंपर होता है। जो औषधि आमाशयस्थ पित्तवृद्धिपर उपयुक्त होती है, वहीं औषध पक्वाशयगत वात पित्तवृद्धिपर भी शामकता दर्शाती है। इन स्थानोंमें मुख्य धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित्त करना यह सूतशेखरका विशिष्ट कार्य है। इससे वातवाहिनियां बधिर नहीं होती, वातवाहिनियोंमें वातवहन कार्य व्यवस्थित होता है। जिस तरह लवणके योगसे पित्तस्रावकी अम्लता नष्ट होकर मधुरता आ जाती है, उस तरह इस औषधिसे रूपान्तर न होकर मूल पित्त धातु व्यवस्थित होती है। फिर अम्लपित्तमें अधिक बढ़ी हुई अम्लता स्वयमेव शान्त हो जाती है।

बढ़े हुए दोषोंकी चिकित्सा करनेमें जो औषधि क्षणिक शामक न हो, जिसका प्रयोग दोषोंके वृद्धि-ह्रास रूप वैषम्य (जिस तरहकी विषमता हो उस मूल विकृति) का शमन करने वाला हो, उससे चिकित्सा करनी चाहिये। दोषका शमन अर्थात् किसी एक स्थानमें उत्पन्न विकृत द्रव्यका शमन नहीं है, एवं विकृत हुए अवयवोंका शमन भी नहीं है, परन्तु जिसके योगसे अवयवोंमें विकृति होती है, और विकृत द्रव्य उत्पन्न हो जाता है, जो सम स्थितिमें रहनेपर देहका संधारण करते हैं, तथा जिनमें वैषम्य होनेपर जो दोष रूप कहलाते हैं, उन मूल धातुओंके वैषम्य नष्टकर धातुओंको मूल स्थितिमें प्रस्थापित करना, वही सच्चा दोषशमन है। यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त होता है। अम्लपित्तमें वेदना और अम्लताका इतना गहरा सम्बन्ध होनेसे ऊपर-ऊपरसे कार्य करने वाली तीव्रशामक औषधिसे सूतशेखरकी समानता नहीं हो सकती। सूतशेखरसे मूल धातुओंके वैषम्यका नाश होकर धातु साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह यह मूल ग्राह्य

चिकित्सा सूतशेखरसे साध्य होती है। यद्यपि सूतशेखरसे कार्य होनेमें कुछ विलम्ब लगता है, परन्तु कार्य होने लगता है। फिर प्रतिफलित क्रिया अधिक सबल नहीं होती। इस हेतुसे इस औषधिसे अधिक विपरीत परिणामकी प्रतीति नहीं होती।

सूतशेखर शामक होनेसे हृद्य भी है। सूतशेखरका परिणाम वातवाहिनियाँ और रक्तवाहिनियाँ, दोनोंपर शामक होता है। रक्तवाहिनियोंका कुछ आकुंचन होता है। इस हेतुसे हृदयकी जवाबदारी कुछ कम होकर उसे विश्रान्ति मिलती है। इस तरह यह हृद्य है। इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। किसी भी प्रकारके सान्निपातिक, संक्रामक या सेन्द्रिय विषजन्य ज्वरमें हृदयकी क्रिया अधिक वेगपूर्वक होने लगती है। इसका कारण रक्तमें प्रवेशित सेन्द्रिय विष या कीटाणुओंको नष्ट करने या इनका प्रतिरोध करनेके लिये रुधिराभिसरण क्रिया अधिक बलसे होती है। इस हेतुसे हृदयको अधिक काम करना पड़ता है। हृदय और नाड़ी, दोनों बलपूर्वक अधिक कार्य और अधिक स्पन्दन करते हैं। फिर अधिक व्यापार के हेतुसे आगे-आगे हृदयको थकावट आती है, रोगी भी क्लांत होता है। फिर आगेकी स्थिति शक्तिपातकी है। बुद्धिमानोंको चाहिये कि, इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेसे पहिले ही हृदयको सम्हाल लें। यह कार्य उत्तेजक औषधिसे नहीं होता। उत्तेजक औषधि देनेपर हृदयको उत्तेजना मिलनेसे हृदयक्रिया अधिक वेगसे होने लगती है, परिणाममें हृदय जल्दी थक जाता है फिर शक्तिपातावस्थाकी प्राप्ति होती है। हृदयके कार्यमें होने वाली यह अवस्था वातपित्तात्मक है। ऐसे समयपर हृदयको उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिये। यह एक प्रकारकी हृदय क्रिया ही है। सूतशेखरके सदृश औषधिसे हृदयकी क्रिया कम हो जानेसे कुछ अंशमें विश्रान्ति मिलती है, और वह सबल बनता है। इस दृष्टिसे हृद्य औषधियोंमें सूतशेखर अत्युत्तम औषधि है। ※

सान्निपातिक ज्वरोंमें विशेषत: आन्त्रिक सन्निपातमें सूतशेखरका महत्वकारी उपयोग होता है। वह यह है कि, इस रोगके निमित्त कारणरूप कीटाणुओंका प्रतिकार होता है। रक्तमें कीटाणुजन्य विषसे और दोषप्रकोपसे रक्ताभिसरण क्रिया वेगवती होती है। इस हेतुसे सान्निपातिक ज्वरोंपर सूतशेखरके शामक गुणका उपयोग होता है।

(जब आंत्रिक सन्निपात–मधुरामें पित्तप्रकोपकी प्रधानता हो तब इसका उपयोग होता है। निद्रानाश, अति पीला जलता हुआ पतला दस्त, तृषा,

---

※ विषघ्न और शामक गुणके हेतुसे रक्तदबाव वृद्धि (हाईब्लड प्रेसर) के रोगियोंको सूतशेखर ज्वर शमनार्थ और रक्तदबाव ह्रासार्थ निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

ठा० नाथूसिंह

चक्कर आना, शीर्षशूल, प्रलाप आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिये जाते हैं। इस तरह रक्तपित्तके लक्षण उपस्थित हों, रक्तस्राव होने लगे, तो कामदुघा और रक्तकमलके फूलोंके अवलेहके साथ सूतशेखर दिया जाता है।

यदि आन्त्रिक ज्वरमें अधिक दाह और शुष्ककास हो, शौचशुद्धि न होती हो, और पेशाबमें अधिक पीलापन या लाली हो तो सारिवा, नागरमोथा कुटकी, चिरायता और धमासा ३-३ माशा मिला क्वाथकर फिर शक्कर मिलाकर सुबह-शाम देते रहनेसे ज्वर विषको दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

सूतशेखरका कार्य सहस्रार और वातवाहिनियोंपर शामक होता है। इनमें भी हृदय, फुफ्फुस, आमाशय और अन्त्रपर अधिकार रखने वाली वातवाहिनियोंपर विशेष कार्य होता है।

सूतशेखर देने योग्य वातवाहिनियां और वातनाड़ीकेन्द्र विकृतिके रोगीके मस्तिष्ककी स्थिति अति विलक्षण होती है। यह उन्माद रोगीके सदृश भ्रम पीड़ित और जड़-सा होता है। कुछ विलक्षण असम्बद्ध और अस्पष्ट बोलता है। ऐसे रोगीके प्रलापमें एक विशेष विलक्षणता यह है कि, उसे सचेत करने पर यह सुधिमें आ जाता है, और नेत्र बन्द होने, तन्द्रा आने या निद्राके लक्षण प्रतीत होनेपर बड़-बड़ करने लग जाता है। वातविध्वंसन देने योग्य रोगीका प्रलाप सर्व अवस्थामें सम रहता है, रोगीको बिलकुल सुधि नहीं रहती, वेसुधिमें निरन्तर बकवाद करता रहता है। कभी-कभी रोगी स्वच्छन्द, क्रुद्ध होकर मारना, काटना, जोरसे चिल्लाना, रोना, भागना आदि कार्य करने लगता है। यह अवस्था केवल वातवृद्धिसे होती है। इसपर रोगी को महावातविध्वंसन देना चाहिये। सूतशेखरसे कार्य नहीं होता।

निद्रामें बोलते रहना करवट लेकर शयन करनेपर प्रलाप, अर्द्धावभेदक, नेत्रमें दर्द आदि लक्षणोंके साथ आधी तन्द्रा होनेपर सूतशेखर अप्रतिम औषधि हैं।

भ्रम (चक्कर) रोग होनेपर भूमण्डल फिरनेका भास होता है, अथवा कुम्हार चाकको जैसे घुमाता है या कांटेमें डालकर वस्तु तोलनेके समय जैसे दण्ड ऊपर नीचे होता रहता है, उस तरह रोगीको भ्रमण या गतिका भास होता हो उसपर सूतशेशर अति उत्तम कार्य करता है। यह भ्रमणावस्था कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि, शय्यापर पड़े रहनेपर भी अपने को कोई फेंक देता है। या गोल फिरा रहा है, या बाँध रहा है, ऐसा भ्रम होजाता है। इस अवस्थापर सूतशेखर अमृत सदृश हितकारक औषधि है।

कोई भी कार्य प्रारम्भ करने, पुस्तक पढ़ने और दूसरेके साथ वार्तालाप

करनेपर मस्तिष्ककी थकावट आजाना, शिरमें बार-बार चक्कर आना यह इतने तक चलते चलते समतोलपनेका भंग होकर एक ओर गिर जायेंगे क्या, ऐसा लगना। यहाँपर समतोलपना चला जायगा, ऐसा भासता है, परन्तु नष्ट नहीं होता और रोगी गिर नहीं जाता। यदि समतोलपना नष्ट होकर बेहोशी आजाती है, तो स्मृतिसागर देना चाहिए, सूतशेखर पूर्ण लाभ नहीं होता। समतोलना नष्ट होनेका भासना या भ्रमणावस्थाकी वृद्धि हो, नेत्रके समक्ष अंधकार छा जाता हो, सर्वत्र अंधकार फैल जाता हो, रोगी को ऐसा भास होता हो कि, मैं गाढ़े अन्धेरेमें किसी कोनेमें पड़ा हूँ। यह स्थिति निमिषमात्र रहती है, फिर नेत्रके समीपका अन्धकार कम हो जाता है, और रोगी पूर्ण शुद्धिपर आता है। इसपर सूतशेखरका उपयोग होता है। स्मृतिसागरके योग्य रोगीको पहिले चक्कर आना, नेत्रके पास अन्धकार छाजाना, फिर पूर्ण होश होजाना आदि लक्षण होते हैं। यह दोनोंके कार्यमें अन्तर है।

आक्षेपक वातमें झटके अधिक आनेपर (रक्तकी प्रतिक्रिया अत्यम्ल होने पर) सूतशेखर उपयोगी होता है। इस रसायनसे झटके बन्द होते हैं। केवल ये वातपित्तात्मक होने चाहिये। छोटे बच्चेके बालग्रहमें आनेवाले झटकेमें सूतशेखरका उपयोग अधिक होनेका अनुभवमें नहीं आया। परन्तु बड़े मनुष्य विशेषत: स्त्रियोंको होनेवाले उन्मादके सौम्य झटके या हिस्टीरियाके झटके सूतशेखरसे कम होनेके उदाहरण मिले हैं। उन्मादके वेगको कम करना और जिस दोषसे या दोष दूष्य संयोगसे उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो, उसका भी शमन करना, ये दोनों कार्य (वातपित्तात्मक दोषका निवारण) सूतशेखरके योगसे होते हैं।

परन्तु संन्यास-रक्तजमूर्च्छामें भी झटके आते हैं, किन्तु उन्माद और संन्यास, दोनोंके निदान सम्प्राप्ति और लक्षणोंमें महदन्तर है। रक्तज मूर्च्छा में मस्तिष्कमें भीतर सहस्रार या उसके समीप रक्तका संचय होजाता है। उसपर मस्तिष्क रक्तसंचय कम करनेवाली रक्तशामक, विरेचन और शीतल औषधि देनी चाहिये। चिकित्सा भी इसी तत्वके अनुसार करनी चाहिये। सूतशेखरसे यह कार्य कहीं हुआ हो, ऐसा उदाहरण नहीं मिला। उन्माद मनोवृत्तिके विभ्रमका कारण वातवाहिनियोंका क्षोभ है। उसपर क्षोभ-नाशक और वातशामक औषधि देनी चाहिये। सूतशेखरमें ये दोनों गुण अवस्थित है।

कितनीही स्त्रियोंको गर्भपातके पश्चात् या कष्टार्तवमें उन्मादके सदृश झटके आते है, रजस्राव होनेमें पीड़ा होती है; गर्भाशय संकुचित होनेसे या गर्भकोष्ठमेंसे गये हुए रक्तके अति बड़े-बड़े टुकड़े गिरनेसे वेदना होती है;

तथा बीजकोषोंके भीतरसे शूल निकलता है। इस हेतुसे रुग्णा अतिशय क्लान्त और अस्वस्थ हो जाती है। यह अस्वस्थता भी सब समय सर्वत्र एक समान नहीं होती। कुछ काल अस्वस्थता अधिक और कुछ समय कम हो जाती है, अर्थात् अस्वास्थ्य और वेदनाके दौरे आते रहते हैं। चक्कर आना, छाती बाँध देनेके समान घबराहट, व्याकुलता, बार-बार थोड़ी-थोड़ी वमन होनेमें अतिशय त्रास, वमन होनेपर उदरमें ऐंठन और वेदना होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसपर सूतशेखर लाभ पहुँचाता है। इस तरह अन्य कहीं भी कारणोंसे वातके आक्षेप आते हों, और रोगी पूर्णांशमें बेहोश न हो, तो सूतशेखर देना चाहिये।

शिरदर्द, यह लक्षण सामान्य जुकामसे लेकर सहस्रारके आवरणके शोथ पर्यन्त विविध छोटे-मोटे रोगोंमें प्रतीत होता है। सामान्यतः जनसमूहकी प्रवृत्ति शिरदर्द होनेपर सूतशेखर लेनेकी बढ़ती जा रही है। यदि जुकामसे शिरदर्द हो, तो सूतशेखरके सदृश बलवान औषधि न देकर दूसरी सौम्य औषधि या बाह्योपचारसे दर्दको शमन करना हितकारक माना जाता है। यदि मस्तिष्कके आवरणका ही कुछ विकार होनेसे शिरदर्द होता हो, तो भी उस स्थानपर सूतशेखरका कुछ भी विशेष उपयोग नहीं होता। इन दोनों स्थानोंपर सूतशेखरका सदुपयोग नहीं होता।

पित्तप्रकोप उत्पन्न शिरदर्दपर सूतशेखरका विशेष उपयोग होता है। पित्तदोषका अधिक संचय होनेपर कण्ठमें जलन, वमन, वमन होनेपर शिरदर्द कम हो जाना आदि लक्षण होनेपर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होता है। यद्यपि वृद्ध पित्त या पित्तकी अम्लताकी वृद्धि होनेपर उसे रूपान्तरित करा स्वादुता उत्पन्न करानेका धर्म सूतशेखरमें नहीं है, तथापि सूतशेखरके योगसे पित्तस्राव अधिक होनेकी ओर उदरमें संचित होनेकी प्रवृत्ति कम हो जाती है।

कितने ही मनुष्योंमें शिरदर्दकी व्यथा आनुवांशिक होती है। इसमें पित्त प्रकोप या संचयके लक्षण स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। कुछ विकृति हुई या किसी स्थानपर दोषसंचय हुआ कि, तत्काल शिरदर्द होने लग जाता है। इस वंशपरम्परागत शिरदर्द विकारपर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं।

वातज शीर्षशूलमें वातप्रकोप कारण होता है। वातप्रकोपसे वेदना अति होती है, रोगी अति व्याकुल हो जाता है। इसमें शिरके भीतर बाहरसे कोई कील गाढ़ता है क्या, ऐसी वेदना सारे मस्तिष्कमें होती है। यह वेदना कभी-कभी इतनी असह्य हो जाती है कि, रोगी मस्तकको पीटने लगता है और बड़े जोरसे चिल्लाने या रोने लगता है। यदि क्वचित् वान्ति हो जाय, तो तत्काल रोगीको आराम हो जाता है। वातज शीर्षशूलमें वान्ति बहुधा

नहीं होती और जल्दी शांति भी नहीं होती। इसपर भी सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है।

भ्रम चक्कर, प्रलाप, असम्बद्ध प्रलाप, मानसिक भ्रांति और उन्मादके सदृश स्थिति होना, कोई भी बात मनमें आई कि उसका ध्यान होता रहता है, उसका बार-बार विचार आकर उसके लिये विचारण, प्रश्न या प्रलाप होने लगता है, इत्यादि लक्षण उन्माद या ज्वरमें होनेपर सूतशेखर का उत्तम उपयोग होता है। इसमें विशेषतः रक्तका दबाव और पित्तवृद्धि होकर उक्त लक्षण उपस्थित होते हैं। जिन स्थानोमें ज्वरोष्मा अत्यन्त बढ़नेपर प्रलाप आदि लक्षण होते हैं, उन स्थानोंपर ज्वरघ्न औषधिकी योजना करनी पड़ती है। परन्तु ज्वरोष्मा न्यून होनेपर प्रलाप आदि लक्षण हों तो रक्तमें हानिकर त्याज्य द्रव्योंका मिश्रण होता है। वह वातवहकेन्द्र में पहुँचनेपर ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं, अर्थात् आन्त्रिक, श्वसनक, श्लैष्मिक, आदि सान्निपातिक ज्वरोंमें या इस तरहके अन्य ज्वरोंसे प्रलाप आदि लक्षण उत्पन्न होनेपर सूतशेखर अवश्य देना चाहिये।

आक्षेपके झटके बार-बार होनेपर हाथ-पैर मुड़ जाना, अंगुलियां टेड़ी होजाना, सेक करनेपर कुछ अच्छा मालूम पड़ना, झटकेका वेग अति त्वरित होना, परन्तु झटका अति जोरदार न होना, हाथ-पैरोंमें ऐंठन आदि अर्थात् हाथ पैरोंके मांस कठिन और संकुचित होने, एवं संक्रामक विसूचिका होवें-पर सर्वाङ्गमें होने वाले ऐठन, सबपर सूतशेखर अच्छा लाभ दर्शाता है।

तीव्र अम्लपित्तके योगसे होने वाली कण्ठकी जलन, खट्टी डकार उदरमें दाह, दिन जैसा-जैसा बढ़ता है वैसा-वैसा उदरमें दर्द बढ़ना, साथ-साथ कड़वी और खट्टी वमन होना, कै होनेपर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदिपर दाह होना, कण्ठ और मुंहमें फोड़े होना, तथा उदरकी वेदनाके साथ-साथ शिरदर्दका भी प्रारम्भ होना और भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस रोगकी तीव्रावस्थामें पहिले सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और अनार रस आदि तत्काल शामक, गुणदर्शक औषध देनी चाहिये। तीव्र लक्षण कम होनेपर उदरमें पित्तका अधिक स्राव होनेकी और पित्त तीव्र होनेकी जो आदत हो जाती है, उसे कम करनेके लिये सूतशेखरका उपयोग करना चाहिये।

आमाशयमें पित्तोत्पादक ग्रंथियां विविध कारणोंसे अधिक पित्त (आमाशय रस) उत्पन्न करने लग जाती है। और पित्तमें तीक्ष्णता भी अधिक उत्पन्न होती है। इस हेतुसे आमाशयकी श्लैष्मिककलामें पहिले दाह प्रारंभ होता है। पश्चात् शोथ और स्फोटके सदृश अवस्था होती है, अन्तमें उन स्थानोंमें पतले और सूक्ष्म व्रण हो जाते हैं। फिर उन स्थानोंमें कठोर अन्न चुभते हैं, अन्न उसमें प्रवेशित होकर सड़ने लगते हैं, उदरशूल उपस्थित

होता है, फिर वांति होकर अन्न-बाहर निकल जाता है। जब चुभने वाले अन्नकी वमन हो जाती है, तब कुछ शांति होती है। इसे आयुर्वेदमें अन्नद्रव शूल संज्ञा दी है। इसपर सच्ची मूलग्राही चिकित्सा उसे कहेंगे कि जिससे आमाशय व्रणका रोपण हो। सूखशेखरके योगसे पित्तका स्राव नियमित होता है और व्रणरोपणमें सहायता पहुँचती है। इसी नियमानुसार अग्न्याशयके आग्नेय रसके विकार जनित शूलपर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

पित्ताशयमेंसे निकलने वाला पित्त गाढ़ा हो जानेपर उसमेंसे छोटे-छोटे पत्थर बन जाते हैं। फिर उससे एक प्रकारका तीव्र कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ग्रहणीमें आने वाले पित्तवह स्रोतस्‌में या पित्ताशयमें ही यह शूल चलने लगता है। पित्ताश्मरीके कण चुभनेपर या क्वचित् पित्तके तीक्ष्ण ज्वरके हेतुसे शूलोत्पत्ति होती है। यह शूल प्रत्यक्षत: सूतशेखरके सेवनसे कम नहीं होता तो भी इससे पित्तमार्गमें अश्मरी उत्पन्न होनेकी आदत दूर हो सकती है। पित्तकी अति तीक्ष्णता वृद्धि भी नियमित होती है। अनुपान रूपसे धमासा, गिलोय, मुनक्का, मुलहठी, और मिश्रीका क्वाथ देवें। इसके पहिले पित्तस्राव कराने वाली ओषधि देनी चाहिये। इस तरह पित्ताश्मरी उत्पन्न होनेकी स्थिति दूर हो जाती है।

वातातिसार और पित्तातिसार, दोनोंपर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होता है। विदाही भोजन या आम संचयसे अतिसारकी उत्पत्ति होती है, अन्नका पचन सम्यक् नहीं होता, उसमें यकृत्के पित्तका योग्य मिश्रण न होनेसे जो अन्न अन्त्रमें जाता है, उस अन्नका विदाह होता है, उसका सम्यक् वियोजन नहीं होता, और शोषण भी यथोचितनहीं होता। इस हेतुसे अन्त्रसे अन्न रसका संचय होकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार होकर विदग्ध अन्नका स्राव होने लगता है। पित्तातिसार पित्तके सान्द्रत्व और द्रवत्व गुणकी वृद्धिके हेतुसे उत्पन्न हुआ हो, तो सूतशेखर विशेष उपयोगी होता है। इससे पित्तका नियमन होता है,अर्थात पित्तोत्पत्ति अत्यधिक परिमाणमें होती हो,वह रुक जाती है फिर अतिसार स्वयमेव दूर होजाता है।

क्वचित् पित्तका अतिरेक होनेपर अतिसार होता है, वह उसमें वैषम्य और वैगुण्यके हेतुसे होता है। शरीरमें धातु द्रव्य विशिष्ट परिमाणमें और विशिष्ट गुणवीर्य युक्त होना, यह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आवश्यक है। इसमें विषमता होनेपर व्याधि उत्पन्न होती है। कम परिमाण या गुण क्षयसे एक प्रकारका विकार और अधिक परिमाणमें और गुण वृद्धिसे दूसरे प्रकारका विकार होता है। मर्यादासे अधिक तीक्ष्ण पित्त तथा सान्द्र और द्रव पित्त अन्नमें मिल जानेपर अन्त्रमें विस्फोट और शोथ आकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार हो जाता है। पित्तकी अधिकतासे होने वाले

विरेचन बड़े-बड़े, गरम-गरम, पीले रंगके होते हैं। दस्त होनेके समय उदर में दाह, घबराहट, व्याकुलता, अति तृषा, क्वचित् भ्रम और प्रलाप आदि लक्षण होते हैं। सूतशेखरसे अतिसार तो कम होता ही है, साथ-साथ प्रलाप, घबराहट, तृषा, भ्रम, व्याकुलता आदि भी शमन हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सूतशेखर अति कम मात्रामें आध या एक-एक घण्टेपर (४-६ बार) देते रहें।

अन्त्रमें अनेक प्रकारके विविध विकारोंपर सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखरमें विशेष धर्म यह है कि, शारीरिक घटकोंको बाधा न पहुँचाते हुए कीटाणुओंका नाश करता है। यह गुण सौम्य होनेसे कीटाणु नाशक तो होता ही है, और शारीरिक घटकोंपर दुष्ट परिणाम बिल्कुल भी नहीं होता।

विसूचिकामें कीटाणुजन्य और अपचनजन्य ऐसे दो प्रकार है। कीटाणु जन्य विसूचिका बिल्कुल प्रथमावस्थासे तृतीयावस्था तक प्रत्येक स्थिति और अवस्थान्तरमें सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। विसूचिका में अति जुलाब लगनेपर शरीरमें अब्धातु कम होती है, अधिक वमन होनेसे यह स्थिति होती है। इसके पश्चात् उदर, पीठ,पैर और सर्वांगमें ऐंठन होनें लगती है, सब मॉंसपेशियां निचोड़नेके समान मुड़ जाती है. भयंकर वेदना होनें लगती है, रोगी अति व्याकुल हो जाता है। ऐसी त्रासदायक स्थितिमें सूतशेखर देनेसे १५-२० मिनटमें ऐंठन रुक जाती है। इस तरह बड़ी-बड़ी खट्टी जलके सदृश वमन होनेपर उदरमें तीव्र वेदना, मरोड़ा, उदरमें ऐंठन आदि लक्षण उपस्थित हों, तो सूतशेखर अमृत ही है।

विसूचिकाकी प्रथमावस्थासे बिल्कुल अन्तिम अवस्था तक सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। अन्त्र शक्ति कम होनेपर कितनी ही बार रोगियों को बिल्कुल बड़े-बड़े जुलाब लगते रहते है। नलके डाटको हटानेके समान जलके सदृश दस्त होने लगता है। अन्त्रकी शक्ति क्षीण हो जानेसे गुदमार्गसे स्राव होता ही रहता है। सूतशेखरसे इस अवस्थामें अति उत्तम कार्य होता है।

आयुर्वेदमें उदरके भीतर होनें वाले गोलेको गुल्म संज्ञा दी है। इनमेंसे कितने ही गुल्मोंमें मांस और मेदका संचय होता है। यह संचय धातुपोषण क्रममें कुछ विकृति होनेपर होता है, सूतशेखरके योगसे पित्तज गुल्मकी यह विकृति नष्ट होती है। इस तरह गुल्मका मूल कारण नष्ट होनेसे गुल्मकी वृद्धि कम हो जाती है।

कास अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती है। इनमें पित्तज कास, विशेषतः यकृत् वृद्धिसे उत्पन्न कासमें सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। अनुपान रूपसे आमका मुरब्बा देना चाहिये।

संग्रहणीमें तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। नूतन संग्रहणीमें भी सज्वर और विज्वर ऐसे दो, उप विभाग होते हैं। सज्वर संग्रहणीमें कूड़ाकी छाल का कुछ भी उपयोग नहीं होता। उसमें ज्वर, रक्तयुक्त आम, विलक्षण प्रवाहण (किंछना), दिनमें १००-२०० दस्त होने, प्रत्येक बार किंछ किंछ कर आम या रक्तके एक-दो बूंद गिरने, मल बिल्कुल न गिरना, जल और रक्तमिश्रित या लाल रंगकी बूंदें गिरना, साथ-साथ उदर और हाथ-पैरोंमें ऐंठन नेत्रकी दृष्टि स्थिर न रहना, अधिक प्रस्वेद आना आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर अति उत्तम औषधि है। सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिकको मिलाकर बेलके मुरब्बेके साथ देवें। ऐसी व्याधिमें मल गिरने लगता है कि रोगीकी प्रकृति सुधरने लगती है। रोग जीर्ण हो, तो पर्पटी कल्प उपयोगी होता है।

शुष्क कासके साथ श्वासमें भी सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखर शामक और हृद्य होनेसे हृदय रोगमें उत्पन्न कास श्वासपर अच्छा लाभदायक है।

हिक्का अनेक प्रकारके विकारोंमें एक लक्षण हैं। आमाशयमें आगन्तुक द्रव्य संचय होकर हिक्का होती है, उसमें वमन करा, उस द्रवको दूर करने पर हिक्काका हेतु नष्ट हो जाता है। परन्तु उदर और महाप्राचीरा पेशीको हिक्क हिक्क करनेकी आदत हो गई हो तो. वह जल्दी दूर नहीं होती। उस समयपर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। निज दोष कोष्ठमें संचित होकर हिक्का होती है, उसमें पित्त और वात दोषसे उत्पन्न हिक्कामें यह उत्तम कार्य करता हैं। हिक्का उग्र स्वरूपकी होती है। विसूचिकाकी अन्तिमावस्था या मध्यमावस्थामें भी हिक्का उत्पन्न हो जाती है। उसपर भी सूतशेखर उत्तम उपयोगी औषधि है। चञ्चल, क्रोधी और स्वच्छंदी विचार वाली स्त्रियोंको अनेक बार हिक्का उत्पन्न होती हैं। वह किसी बाह्य उपचार या औषधसे नहीं रुकती। इसपर सूतशेखर प्रभावशाली औषध है।

गंभीरा और महती हिक्का अति त्रासदायक हैं। ५-७ दिन तक एक समान रह जाती है। उनपर सूतशेखर उपयुक्त है। आध्मान, आनाह, छिद्रोदर या बद्धोदर इन रोगोंमें हिक्का उपद्रव रूपसे होती है। यह मरणका निमन्त्रण माना जाता है। उसपर भी कुछ अंशमें सूतशेखर लाभ पहुँचा ही देता है। उस हिक्काको उग्र हिक्का कहते हैं।

हिक्काके साथ अतिशुष्कता, शुष्क उबाक, प्रस्वेद आना, नेत्र बार-बार फिरा देना, कण्ठमें दाह शीतल जल या शीतल पेयसे किंचित् शांति होना फिर बलपूर्वक हिक्का चलने लगना आदि लक्षण होते हैं। उसपर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है।

उदावर्त (उदरमें गेस) की उत्पत्ति वातविकृतिसे होती हैं। इस रोगमें विशेषत: अपान और समान वायुकी विकृति होती है। अपानके अवरोधसे अन्त्रकी क्रिया प्रतिलोम होती है, और अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया विलोम होकर अन्त्र फूलने लगती है। अफारा आनेपर उदरमें पीड़ा होने लगती है। श्वासावरोध सा भास होता है, व्याकुलता, मलावरोध और कभी मूत्रावरोध भी होते हैं। इस प्रकारमें सूतशेखर विशिष्ट कार्य करता है। इससे वायुका अनुलोमन होता है, पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होती है और बेचैनी दूर होती है। फिर शौच शुद्धि होने लगती है। यह औषध रेचक नहीं है, किन्तु शामक होनेसे वायुका शमन करके उसे अनुलोमन करती है।

त्वचाके अन्तर्भागमें रही हुई वातवाहिनियाँ, विशेषत: संज्ञावाहिनियोंमें क्षोभ होकर दाह उत्पन्न होता है। शराबियोंको यह दाह अति उग्र होता है। अन्य कारणोंसे भी त्वचामें रही हुई संज्ञावाहिनियां दुष्ट होकर दाह उत्पन्न हो जाता है। रक्तकी विकृतिसे दुष्टि होकर दाह होता है। इन सबपर सूत-शेखरका उत्तम उपयोग होता है।

अन्त्रमें अन्न पचन योग्य न होनेपर अन्न सड़ने लगता है। फिर उससे घोर आम-विषकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारकी स्वयं दुष्टिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषमेंसे विविध व्याधियोंकी सृष्टि होती है। इस विषको नष्ट करने में सूतशेखर अत्युत्तम औषध है।

संक्षेपमें सूतशेखर कीटाणुनाशक, योगवाही, वातवाहिनियोंपर शामक हृद्य और सेन्द्रिय विषनाशक, है। इसका कार्य आमाशय पक्वाशय, वृहदन्त्र यकृत् अग्न्याशय, प्लीहा और वातवाहिनियोंपर होता है, तथा वात और पित्तदोषका शामक है। (औ० गु० ध० शा०)

(१३४) लघु सूतशेखर रस

विधि—शुद्ध सोनागेरू २९ तोले और सोंठका बारीक चूर्ण १० तोले मिला नागरबेलके पक्के-पीले पानके रसके साथ ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से ३ गोली, मिश्री मिलाये दूधके साथ दें।

उपयोग— इस रसके सेवनसे पित्तजन्य शीर्षशूल, अर्धावभेदक, सूर्यावर्त आदि मस्तकशूल, खट्टी वमन, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, दाह, पसीनेमें दुर्गन्ध, ऊर्ध्व रक्तपित्त, नाकमेंसे रक्त गिरना मुँहमें छाले होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

लघु सूतशेखर पित्तधातुकी अम्लता और तीक्ष्णताका नाशक, प्रसादक और स्तम्भक है, एवं पित्तप्रकोपसे होनेवाले सब रोगोंमें लाभदायक है। सामान्य औषधि होनेपर भी इसमें दिव्य गुण रहे हैं।

पित्तज शीर्षशूल और उसके साथ चक्कर, उदरमें दर्द, व्याकुलता, वमन होनेपर शिरदर्दमें न्यूनता आदि लक्षण हों, तो सूतशेखर देना चाहिये । अर्धावभेदक और सूर्यावर्त्त (अर्धशीशी) में जैसे उष्णताकी वृद्धि होती है वैसे शिरदर्द भी बढ़ता जाता है, और वमन हो जानेपर शिरदर्द शमन हो जाता है । ऐसा लक्षण होनेपर लघुसूतशेखर देना चाहिये ।

पित्तज उन्मादमें बेसुधि कम, परन्तु त्रास, प्रलाप, निद्रानाश, चक्कर भ्रम और सारे शरीर और शिरमें भी प्रस्वेद आना, प्रस्वेदमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । उसपर लघु सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिला पेठेके रसके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है।

निद्रानाश पित्तप्रकोपसे होता है, तब सर्वाङ्गमें दाह होता है और हाथ पैर टूटते हैं, एवं मस्तिष्कमें भ्रमके सदृश या उठा उठाकर फेंकनेके सदृश भास होता हो तथा उदरमें दाह आदि लक्षण हों तो लघु सूतशेखर दूधके साथ देना चाहिये ।

नाकसे होने वाले रक्तस्रावमें पित्ताधिक्य होनेपर इसका उपयोग होता है । रक्त गिरनेके समय या गिरनेके पश्चात् दाह, सारे शरीरमें जलन आदि लक्षण होनेपर लघुसूतशेखर उपयोगी होता है । अति वमन होनेके पश्चात् थोड़ा-सा रक्त गिरनेपर इस लघु सूतशेखरका उपयोग हितकारक है ।

(औ० गु० ध० शा०)

(१३५) लीलाविलास रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ये सब समभाग लेकर आंवलोंके रस तथा बहेड़ेके रसमें ३-३ दिन तक खरल करें । पश्चात् भांगरेके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बांधें । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिनमें २ से ३ बार, शहदके साथ दें । अथवा दूध और कूष्माण्डका रस या आंवलोंका रस मिला पकाकर फट जानेपर जल छानकर ऊपरसे अनुपान रूपसे पिलावें ।

उपयोग—यह रसायन अम्लपित्त,तृषा शूलसहित वमन, हृदयदाह,कृमि, पाण्डु आदि रोगोंका नाश करता है ।

इस रसमें पारद और ताम्रभस्म तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी और स्रोतोगामी है । साथमें अभ्रकभस्म और लोहभस्मका सम्मिश्रण करा उष्णता और तीक्ष्णताको कितने ही अंशमें दबा दिया है । फिर आंवले, बहेड़े और भांगरेके रसकी भावना देकर इन सेन्द्रिय औषधियोंके योगसे गुणोंसे उत्कर्ष कराया है एवं द्रव्य-संयोग और संस्कार द्वारा अम्लपित्त नाशक गुणकी वृद्धि कराई है ।

आंवला उत्तम अम्लपित्त शामक औषधि है, आमाशयके प्रकुपित पित्त

को शान्त करता है, और उत्पत्तिका ह्रास करता है, परन्तु केवल आंवलों का सेवन करनेपर पित्तशामक गुणका शोषण होकर लाभ होनेमें दीर्घकाल लगता है, तथा यकृत् और रक्तमें रहे हुए मृत घटकोंको' जीवित घटकोंसे पृथक्कर बाहर निकाल देना या जला देना, यह कार्य जितना जल्दी ताम्र भस्म द्वारा होता है, उतना केवल आंवलोंके सेवनसे सत्वर नहीं हो सकता। इस हेतुसे शास्त्रकारने ताम्रभस्म सम्मिश्रण किया है। पारद, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म आदि औषधियां योगवाही होनेसे अपने गुणोंका त्याग न करते हुए मिश्रित सेन्द्रिय औषधियोंके गुणोंमें वृद्धि करा देते हैं। पित्तप्रधान मोतीझरा आदि ज्वर दीर्घकाल तक रहना, लवणका अतियोग, विषप्रदान, कीटाणु प्रकोप या तमाखूका अति व्यसन आदि कारणोंसे आमाशयमें पित्त की वृद्धि और श्लैष्मिक त्वचामें उत्तेजना होती है, तथा यकृत् निर्बल हो जानेसे योग्य पित्तस्राव नहीं कर सकता। फिर अम्लपित्तकी संप्राप्ति होने-पर यदि कफका संसर्ग हो तो वमनमें चिपचिपापन आ जाता है। एवं अन्य देहमें भारीपन, शीतलता, अरुचि, निद्रावृद्धि आदि कफभूयिष्ठ लक्षण प्रतीत होते हैं। अथवा वातका संसर्ग होनेसे जब आमाशय, पित्ताशय, हृदय, अन्त्र, बस्ति, पार्श्व, इनमें शूल चलना, झागयुक्त वमन, बार-बार डकारें आना, कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, अन्धेरा आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। अनेकोंको मलावरोध भी रहता है, उन कफ और वात प्रधान लक्षणोंपर लीलाविलास रस अच्छा काम करता है।

बार-बार अत्यधिक गरम भोजन करते रहना, सूर्यके तापका अति सेवन विषप्रकोप और किसी रोगके हेतुसे निर्बलता आ जानेपर आमाशय अशक्त हो जाता है। फिर भोजनको पचन करानेके लिये शक्तिसे अधिक पित्तस्राव कराते रहने या उग्र पित्तस्राव कराते रहनेपर अम्लपित्त रोग उत्पन्न हो जाता है। अपचन, भोजनका विदाह होकर छातीमें जलन होना, उदरमें भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनपर यह लीलाविलास रस दिया जाता है। भोजनमें मधुर फलोंका रस या थोड़ा लघु अन्न देवें।

यदि मुंहमें छाले, भयंकर तृषा, अति खट्टी और उष्ण वमन, बार-बार बड़ी-बड़ी वमन, नेत्रोंमें जलन, गरम-गरम पतले दस्त, भोजन कर लेनेपर तुरन्त होते हों, तो आमाशयके बिना शोधन किये लीलाविलास या अन्य अम्लपित्त नाशक औषधि नहीं देनी चाहिये। पहिले वमन करावें या आमा-शय शोधन नलिका (Stomach pipe) द्वारा आमाशयको शुद्ध करें। फिर प्रातःकाल अविपत्तिकर चूर्ण, सायंकालको लीलाविलास रस तथा दोपहरको पित्तके तीव्रत्व और अम्लत्वको कम कराने वाली सहायक औषधि प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, सूतमेखर या वान्तिहृद् रसमें से आवश्यकता-

नुसार योजना करें। यदि आमाशयमें व्रण होकर वमन होती हो, तो लीलाविलास नहीं देना चाहिये, इसपर लघुसूतशेखर, प्रवाल पञ्चामृत और सुवर्णमाक्षिक का प्रयोग करना चाहिये।

(१३६) सारिवादि वटी

विधि—सारिवा (अनन्तमूल), मुलहठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, प्रियंगू, कमलके फूल, गिलोय, लोंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला सब द्रव्य १-१ माशा तथा अभ्रक भस्म ओर लोह भस्म १४-१४ माशे लेवें। काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्णकर भस्में मिलावें। फिर भांगरे के रस; श्वेत अर्जुनकी छालके क्वाथ, जवके क्वाथ, मकोयके रस और गुञ्जामूलके क्वाथकी १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

(र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली; दिनमें २ बार। धारोष्ण दूध, चन्दनके अर्क अथवा शतावरीके क्वाथके साथ दें।

उपयोग—यह वटी कानका बहना, कानका गूंजना, कम सुनना आदि कानके रोगोंमें लाभदायक है; और प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, जीर्ण-ज्वर अपस्मार, मोह, अर्श, हृद्रोग, मदात्ययको दूर करती है।

मस्तिष्कमें किसी उष्ण औषधिके योगसे अथवा तमाखू सूंघनेसे उत्पन्न तमाखू विष, अति गरम चाय आदिका सेवन करते रहनेसे या अन्य कारण से उष्णता पहुँचनेके कारणसे कर्णमें बधिरता आई हो या वातवाहिनियोंमें विकृति होनेसे कर्णरोग हुए हों; या वात प्रकोपसे कानसे पीड़ा होती हो; उसपर यह हितावह है। इसके सेवनके साथ तेल मर्दन आदि तथा कर्ण विकारके अनुरूप बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये। यदि रक्तमें मूत्र-विष वृद्धि, उष्णता आमविष प्रवेश आदि कारणोंसे धमनी विकार या हृदय की निर्बलता, कम सुनना और कान गूंजना आदि उपद्रव हुए हों, तो यह रसायन हृदय और धमनीको सबल बनाकर कर्ण रोगोंको दूर करता है।

सूचना—यदि कर्ण नाड़ी (Auditory Nerve) का सम्बन्ध कर्ण छिद्र (Cochlea) से विच्छेद हो गया हो, नाड़ी मृत हो गई हो, कर्ण छिद्र दूषित हो गया हो या कर्णास्थि गल गई हो-तो लाभ होनेकी आशा अधिक नहीं रहती है।

(१३७) प्रदरान्तक लोह

प्रथम विधि—लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, वंगभस्म अभ्रक-भस्म वराटिका भस्म, सोंठ पीपल, कालीमिर्च, हरड़ बहेड़ा आंवला चित्रक मूल बायविडंग, सैंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, काचनमक चव्य, पीपल, शंखभस्म, बच, हाऊबेर, कूठ. कचूर; पाढ़; देवदारु, छोटी

इलायची और विधारा; इन ३० औषधियोंको समभाग लें। काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् भस्मोंको मिला ६ घण्टे खरलकर लेवें। (र० र०)

मात्रा—प्रदरान्तक लोह, मिश्री और घृत १-१ माशा और ३ माशे शहद मिलाकर दिनमें २ बार लेवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे रक्तपित्त, नील और श्वेतप्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सब प्रकारके शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं, तथा मासिकधर्म साफ आता है।

प्रदरान्तकलोह समस्त जीर्ण प्रदरोंके लिये बहुत लाभदायक औषधि है। इस लोहकी योजना सब प्रकारके प्रदरपर लाभप्रद हो इस दृष्टिसे की है। वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, पूयप्रधान आदिपर यह कार्य करता है। रोग विष फैल जानेपर आमाशय, यकृत् प्लीहा आदि अवयव कार्य करनेमें असमर्थ हो गये हों; मांसपेशियां, फुफ्फुस और वातवाहिनियाँ क्षीण हो गये हों; गर्भाशय और बीजकोष (Ovaries) शिथिल हो गये हों; तथा अग्निमांद्य अरुचि, शिरदर्द, कफयुक्त कास, थोड़े परिश्रमसे हृदय और श्वास का वेग बढ़ जाना, कटिशूल आदि लक्षण उपस्थित हुए हों तथा समस्त अवयवोंमें भयंकर निर्बलता आई हो तथा चिपचिपा लाल, पीला या नीला आदि प्रकारका स्राव होता रहता है; ऐसे बड़े प्रदरोंको भी यह प्रदरान्तक लोह दूर करता है।

सूचना—गर्भाशयमें गुल्म (अर्बुद) हो तो उसे दूर कराना चाहिए। विद्रधि (Abscess) हो तो बाह्योपचार भी करते रहना चाहिए। इसी तरह क्षत (Ulcer) हो तो भी धातक्यादि तैल या अन्य व्रण रोपण तैल की पिचकारी लगाते रहना चाहिए। इस प्रकारका मूल कारण दूसरा हो, तो उसे शमन करनेकी चेष्टा पहले करनी चाहिए।

दूसरी विधि—लोह भस्म २ तोले, वंग भस्म, शुद्ध खर्पर या जसद-भस्म कहरवापिष्टी, घीमें पकाया हुआ सोनागेरू, मोचरस, सफेद राल, ये ६ औषधियां १-१ तोला लें। सबको मिला दूब, अनार और आंवलेके रस की ७-७ भावनायें देकर सूखा चूर्ण बना लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—३-३ रत्ती, दिनमें २ बार पाषाणभेदके मूलके ३ माशे चूर्णके साथ देवें, ऊपर मिश्री मिला दूध पिलावें।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके प्रदरोंका नाश करता है। जिस प्रदर रोगको असाध्य कहकर वैद्य या डाक्टरोंने छोड़ दिया हो वह इस रसायनके सेवनसे अच्छा हो जाता है। ऐसा रसयोग सागरकारका अनेक वर्षोंका अनुभव है। हम भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक करते रहते हैं।

यह लोह मिश्रण प्रजनन संस्थानके रोगोंके लिये आशीर्वादरूप है। जब

गर्भाशय आदिमें क्षत होकर पूय बन रहा हो गर्भाशय अति शिथिल और प्रसारित हो गया हो, भीतर श्लैष्मिक कला जीर्ण प्रदाहसे पीड़ित रहती हो या श्लैष्मिक कलासे चिकना रस स्राव सतत होता रहता हो अथवा गर्भाशयके भीतर रक्त देने वाली सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंपर आघात पहुँच जानेसे टूट गई हों और उनमेंसे बार-बार रक्तस्राव होता रहता हो, तब दुर्गन्ध युक्त प्रदर, पीत प्रदर, श्वेत प्रदर, गाढ़ा स्राव वाला या पतला और उष्ण स्राव वाला तथा रक्तप्रदरकी संप्राप्ति होती है। इन सब जीर्ण प्रदरोंको दूर करके गर्भाशयको संकुचित और सबल बनाने तथा रक्त आदि धातुओंकी पोषण देनेके लिये यह लोह उत्तम कार्य करता है। हजारों रुग्णाओंपर परीक्षा की गई है।

गर्भाशयके भीतर गुल्म (Tumour) या कर्कस्फोट (Cancer) हो, तो इस रसके सेवनसे विशेष लाभ होनेकी आशा नहीं है। यदि गर्भाशयमें विद्रधि (Abscess) या क्षत (Ulcer) हो, तो बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये।

रोग पुराना हो तो मात्रा कम कर देनी चाहिये, किन्तु दीर्घकाल तक पथ्य पालनसह औषध सेवन कराना चाहिये।

यदि यह रस तैयार न हो, तो शुद्ध मुर्दासङ्ग ३ रत्तीको ३ माशे मिश्री के साथ मिलाकर देवें। ऊपर पाषाणभेदके मूलका चूर्ण १।। माशे समान मिश्री मिलाकर खिलावें, और थोड़ा दूध पिलावें, इस प्रयोगसे बहुत ही विलक्षण लाभ होता है। परन्तु कच्चा मुर्दासङ्ग अधिक दिन तक नहीं देना चाहिये, वरना वान्ति होने लगेगी, और शरीरमें एक तरहकी ऐंठन पैदा होगी। इसलिये शुद्ध करके ही देना चाहिये।

मुर्दासङ्ग शोधन विधि—चतुर्थांश सेंधानमक मिला १ प्रहर खरलकर, ४ गुने जलमें मिलाकर रख देवें। दूसरे दिन जलको सम्हालकर निकाल दें। फिर नया सेंधानमक मिलाकर खरल करें और जल भरकर रख दें। इस रीतिसे २१ दिन शोधन करनेसे मुर्दासङ्ग सब दोषोंसे मुक्त होकर श्वेत हो जाता है। यह उपदंशकी परमौषधि है। (र० यो० सा०)

(१३८) प्रदरान्तक रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध आँवलासार गन्धक, रौप्यभस्म, वंगभस्म कौड़ीभस्म, शखभस्म, प्रवालभस्म, सेलखड़ीकी भस्म और राल, सब समभाग और लोहभस्म सबके बराबर मिला दूब, अनार और आंवलोंके स्वरस में ३-३ दिन और घीकुंआरके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें।

मात्रा—२-२ गोली, आँवलोंके स्वरस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रससे सब प्रकारके नील, श्वेत, रक्त और शूलसह प्रदर

तथा सोमरोग दूर होते हैं, मासिकधर्म साफ आता है, अन्तर्दाह शमन होता है, तथा शरीर नीरोग और तेजस्वी बनता है।

जिन स्त्रियोंका शरीर निस्तेज पाण्डुवर्ण हो गया हो, बार-बार चक्कर आना, सहन शक्तिका अभाव, नेत्रके चारों ओर कालापन, हृदयकी अनियमित गति, थोडेसे परिश्रमसे हृदयके वेगकी वृद्धि हो जाना, हाथ-पैर टूटना, मानसिक उदासीनता बनी रहना, दाह, अग्निमांद्य, गरिष्ठ पदार्थका योग्य पचन न होना, उदरमें भारीपन और प्रदरका स्राव गरम-गरम पतले जल सदृश होना आदि लक्षण हो, उनको प्रदरान्तक रस अमृत सदृश लाभदायक है।

(१३९) प्रदरारि रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और नागभस्म शतपुटी १-१ तोला, रसोंत ३ तोले, लोध ६ तोले लें। सबको मिला अडूसेके रसमें ६ घण्टे घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बांधें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें दो बार। शहद अथवा चांवलके धोये हुए जलके साथ देवें। पाषाण भेदका चूर्ण १।। माशा समान मिश्री मिलाकर साथमें दे देनेपर विशेष लाभ मिलता है।

उपयोग—यह रस श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर और गर्भाशयके दोषको दूर करता है; तथा पाचन शक्तिको बलवान बनाता है।

यदि शरीरमें आमसंचय अधिक हो, तो प्रदरकी औषधि कुमार्यासवके साथ देना विशेष लाभदायक है। एवं निद्रावस्थामें ही स्राव हो जाता हो, स्राव होनेपर रुग्णा जागृत हो जाती हो, तो उसे पाचक और मल निःसारक कुमार्यासव अनुपान रूपसे देना चाहिये एवं शिलाजतु भी देते रहना चाहिए।

यदि गर्भाशय आदि अवयवोंकी निर्बलताके हेतुसे उत्तेजना आये बिना बार-बार स्राव होता रहता हो, तो मात्रा अधिक देनी चाहिये। परन्तु अधिक मात्रासे मलावरोध हो जाय, तो स्वतन्त्र रूपसे अधिक पुट वाली नागभस्म दें और इस रसायनका सेवन भी करावें।

अनेक स्त्रियोंको अति व्यवाय, अनुचित व्यवाय, चरपरे पदार्थ, कामोत्तेजक पदार्थ और शराब आदिके अति सेवनसे अति त्रासदायक प्रदररोग हो जाता है। हाथ-पैर टूटना, दाह, निस्तेजता, कमर जकड़ जाना, स्वभाव क्रोधी हो जाना, मानसिक क्षोभ होनेपर प्रदर स्राव अधिक होना आदि लक्षण होते हैं। उनको प्रदरारि रस अति हितकारक है। मात्रा कम देनी चाहिये। यह रसायन बड़े हुए रोगमें अधिक समय तक ब्रह्मचर्य और पथ्यपालन सह देते रहना चाहिये।

प्रयोगोंमें नागभस्म मिलानी हो तव नागभस्म शतपुटी मिलानी चाहिये।

कम पुट वाली मिलानेपर उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

(१४०) गर्भचिन्तामणि रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म २-२ तोले अभ्रकभस्म ४ तोले, कपूर, वंगभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरूके बीज शतावर खरैंटी और गंगेरन २-२ तोले लें। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला शतावरके रस या क्वाथके साथ १ दिन खरल करके दो-दो रत्तीकी गोलियां बांधें।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ बार। दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह रस गर्भिणीके ज्वर, मन्दाग्नि, दाह, श्वास कास, निर्बलता वमन और प्रदर आदि रोगोंको दूर करके गर्भको बलवान बनाता है। सतत ३-४ मास तक सेवन करनेसे प्रसवके समय दुःख नहीं होता और बालक भी नीरोग और बलवान बनता है।

अनेक ग्रन्थकारोंने पारद और गन्धकके स्थानमें रससिंदूर और रौप्य भस्म मिलाये हैं, एवं कतिपय ग्रन्थकारोंने रससिंदूर और हरताल भस्म लिये हैं। हमें जो पाठ अधिक सौम्य प्रतीत हुआ और हमने जिसका अनुभव किया है; वही पाठ ऊपर दिया है। रससिन्दूर और रौप्य भस्म शतपुटी मिलाकर तैयार करनेपर सुजाक जिनको हो गया हो, वातनाड़ियां अधिक शिथिल हो गई हों उनको देना हितकर माना जायगा एवं जिसके शरीरमें फिरंगज विष रहा हो, रक्तविकार आदि लक्षण प्रतीत होते हो उनको देना लाभप्रद रहेगा।

निर्बल और कोमल शरीर तथा पित्तप्रधान प्रकृति वाली स्त्रियोंके लिये पारद गन्धक प्रधान गर्भचिन्तामणि निर्भय और विशेष हितकर है। सामान्यतः यह सब प्रकृति वालोंके लिये व्यवहृत हो सकता है।

अनेक स्त्रियोंका शरीर रोगोंके हेतुसे या बारम्बार सन्तान होनेसे या छोटी आयुसे निर्बल होनेपर उनको पोषण देने और गर्भको पुष्ट बनानेके लिये पोषक आहार और पोषक औषधिका सेवन कराना चाहिये।

इस गर्भचिन्तामणिमें लोह, अभ्रक, वंग और ताम्र भस्म मिलायी हैं। इस हेतुसे यह रक्तसंस्थान, मांस और वातसंस्थान, प्रजनन और मूत्रसंस्थान तथा यकृत् प्लीहा और वृक्कोंको लाभ पहुँचाता है। गर्भके पोषण और वर्द्धनार्थ माताके देहमेंसे रक्तादि धातुओंके सत्वका पोषण होता रहता है। इनकी पूर्ति करनेके लिये और यकृत् आदि अवयवोंको सबल बनानेके लिये यह रसायन आशीर्वादके समान है।

यदि सगर्भा स्त्रीको वमन होती रहती हो, फिर उस हेतुसे आमाशय पित्त संचित होकर मुखपाक तथा कण्ठ और छातीमें जलन रहती हो तथा

अग्नि मन्द हो गई हो तो मूल कारण रूप वमनको शान्त करनेके लिये यह रसायन दिया जाता है।

अनुपान —सोंठ, नागरमोथा, धनियां और मिश्रीका क्वाथ।

सगर्भा स्त्रियोंकी देह निर्बल बननेपर थोड़े परिश्रमसे भी कितने ही को रात्रिको मन्द ज्वर आ जाता है। फिर हाथ पैर टूटते हैं, मूत्रमें पीलापन रहता है तथा आलस्य, थकावट, निद्रावृद्धि, अग्निमांद्य. श्वेतप्रदर, मलावरोधादि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको यह धनियेके फाण्टमें दूध मिला कर उसके साथ दिया जाता है।

कफ या वातप्रधान प्रकृति वाली निर्बल स्त्रियोंको रक्तविकार. श्वास, कफविकार, यकृत्की निर्बलता हृदयकी निर्बलता पहले किसी स्थानमें पूयोत्पत्ति हुई हो या उपदंश सुजाकादि रोग हुये हों और वृक्क निर्बल हों, तो रससिंदूर और रौप्य भस्म मिला हुआ गर्भचिन्तामणि हितावह है।

वातविकृति, त्वचाविकार, बारम्बार ज्वरपीड़ित हो जाना, ज्वरजन्य निर्बलता और यकृत् पित्तस्रावकी न्यूनतादि उपद्रव हों तो उनसे पीड़ित रुग्णाओंको गर्भ पोषणार्थ रससिंदूर और हरताल (माणिक्य रस) मिश्रित गर्भचिन्तामणि विशेष हितावह है।

वक्तव्य—इस रसके सेवनके साथ प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला लेनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु, दोनोंके मांस और अस्थियोंको बल मिल जाता है तथा गर्भ बलवान, संपुष्ट और तेजस्वी बनता है।

(१४१) गर्भपाल रस

विधि—शुद्ध सिंगरफ, नागभस्म शतपुटी. वंगभस्म, त्रिजात (दालचीनी तेजपात और इलायची), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), धनियां, कालाजीरा, चव्य, मुनक्का, देवदारु, ये १४ द्रव्य १-१ तोला और लोह भस्म ६ माशे लें। सबको यथा विधि मिला सफेद अपराजिता (कोयल) के रसमें ७ दिन तक खरल करके १ १ रत्तीकी गोलियां बना लें।

वक्तव्य—प्रयोगोंमें नागभस्म मिलानी हो तव नागभस्म शतपुटी मिलानी चाहिये। कम पुटवाली मिलानेपर उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार। मुनकाके जलमें देवें। मुनक्का २॥ तोलेको १०-२० तोले जलमें भिगो मसलकर पिलावें।

उपयोग—यह रस गर्भस्राव और गर्भपात होनेसे बचाता है, तथा गर्भिणीके अतिसार, ज्वर, प्रदर, श्वास, कास, वमन, मन्दाग्नि, अरुचि, वातवृद्धि. शूल, मलावरोध शिरदर्द आदिको दूर करके गर्भको बलवान और नीरोग रखता है।

कई स्त्रियोंका गर्भाशय शिथिल होनेसे और देहमें अधिक उष्णता रहने से गर्भपात हो जाता है, एवं पति वीर्य विकारी हो तो भी गर्भपात हो जाने की संभावना है, इनके अतिरिक्त उपदंश अथवा सुजाकके कारण गर्भाशयमें विकृति होनेपर गर्भपात होनेकी विशेष भीति रहती है। उसपर पहिले रक्तशोधक औषधके साथ गर्भपाल देनेसे गर्भिणी और गर्भ, दोनोंकी रक्षा होती है। यदि बीजकोषोंकी पूर्ण परिमाणमें वृद्धि न होनेसे गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, तो वंग या त्रिवंग भस्मके साथ गर्भपाल देनेसे गर्भ वृद्धि और रक्षणमें सहायता मिलती है। अनेक स्त्रियोंको गर्भ धारणके पश्चात् भोजन कर लेनेपर तत्काल वमन, चक्कर, घबराहट, ऐंठन, शिरदर्द, कमर में शूल आदि लक्षण होते हैं। उसपर गर्भपाल रसके साथ कामदुघा, प्रवाल भस्म अथवा सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे सब विकारोंका शमन होता है। किसी-किसी स्त्रीके बच्चे जन्मके बाद थोड़े ही दिनोंमें अथवा थोड़े ही महीनोंमें बार-बार मर जाते हैं, उनमें प्रायः रजोवीर्य या स्त्रीदुग्धमें दोष रहता है यह दोष गर्भचिन्तामणि या गर्भपालके सेवनसे दूर होता है।

(१४२) प्रतापलंकेश्वर रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, तीनों एक-एक तोला, कालीमिर्च (या चित्रकमूल) ३ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, लौहभस्म ४ तोले, शंखभस्म ७ तोले और आरने कण्डोंकी कपड़छन की हुई राख १६ तोले लें। फिर सबको यथा विधि मिला लेवें। (यो० र०)

वक्तव्य—कालीमिर्चके बदले चित्रकमूल मिलाया जाय, तो प्रसूताके गर्भाशममें रहे हुए दूषित रक्तको बाहर निकालनेका कार्य सत्वर हो सकता है

मात्रा—३ से ६ रत्ती, दिनमें २ से ३ बार अदरकके रस और शहद या तुलसीके रसके साथ देवें।

उपयोग—यह रस प्रसूताके ताप-उन्माद खांसी, शिरदर्द वमन कफदोष दांत भिचना, आफरा गृध्रसी, धनुर्वात जुकाम शूल, त्रिदोष अतिसार आदि रोगोंको दूर करनेमें अति लाभदायक है।

प्रतापलंकेश्वर सूतिका ज्वरमें उत्तम प्रकारसे कार्य करने वाली औषधि है। यह रस गर्भाशयमें संचित हुए रक्ताश्रित दोषको दूर करता है, वातवाहिनीके क्षोभको शीघ्र दबाता है, लसीका आदि स्रावकी विकृतिका नाश करता है, निद्रा लानेमें सहायता पहुँचाता है और वातप्रकोपके कारणसे होने वाले प्रलाप और भ्रांतिको शीघ्र शांत करता है, एवं सूतिका ज्वरसे उत्पन्न होने वाले श्लैष्मिक अथवा श्वसन सन्निपातको दूर करता है।

सूतिका ज्वर अति दुष्ट और भयप्रद विकार है। इस हेतुसे प्रसूताकी सम्हाल, प्रसव होनेपर पहिले दिनसे ही पूर्णरूपसे रखना चाहिये। प्रसूताके

पहनने योग्य वस्त्र, रजाई, शय्या, बांधनेकी पट्टी आदि स्वच्छ और कीटाणु रहित होने चाहिये (मूर्ख, अज्ञानी स्त्रियों द्वारा प्रसव कार्य करानेपर स्वच्छता नहीं रहती, और मलिनता उत्पन्न होती है। इस हेतुसे कीटाणुओं का गर्भाशयमें प्रवेश होकर सूतिका ज्वरकी उत्पत्ति होती है। जच्चाके प्रसवकालमें पीड़ासह गर्भजल लसीका और रक्तका स्राव होता है, एवं गर्भाशयकी पूर्व स्थिति प्राप्त करानेके लिये जीवनीय शक्तिका तीव्र प्रयत्न होने लगता है। ऐसे समयपर कीटाणु या गन्दे द्रव्यका गर्भाशयमें प्रवेश हो जाय तो वह भी अति तीव्र गतिसे बढ़कर सेन्द्रिय विषका निर्माण करता है। फिर उसका रक्तमें शोषण होनेपर भयंकर लक्षणात्मक सूतिका ज्वरका जन्म हो जाता है।

इस ज्वरका प्रारम्भ शीत लगकर होता है। मुखमें शुष्कता, व्याकुलता भ्रम, प्रलाप, बेशुद्धि तीव्र और भारी नाड़ी जननेन्द्रियसे होने वाले स्रावमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध आना और शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। क्वचित् दांत भिचना और फिर धनुर्वात भी उपस्थित हो जाता है इस विकारपर प्रतापलंकेश्वरसे कीटाणुजन्य विष कम होनेमें सहायता मिलती है। गर्भाशयको मूल स्थितिकी प्राप्ति करा देनेमें प्रताप लंकेश्वरके समान दूसरी कोई सबल औषध नहीं है। इस रसायनसे ज्वर कम होता है। वातवाहिनियोंकी विकृति नष्ट होती है, निद्रा आनेमें सहायता मिलती है। वात प्रकोपजनित प्रलाप, भ्रम खड़े हो होकर भागना आदि लक्षणोंका प्रशमन हो जाता है। सूतिका ज्वरमें अन्य लक्षण अति तीव्र न हों, केवल निद्रानाश अधिक हो, तो प्रतापलंकेश्वर देनेसे निद्रा आने लगती है, ऐसा अनुभव है।

सूतिका ज्वरमें या सद्योव्रण आदि के पश्चात् व्रण विकृति होकर हनुस्तम्भ (दांत भिचना) लक्षण उत्पन्न होनेपर वह धनुर्वातका पूर्वरूप है। फिर धीरे-धीरे धनुर्वातके झटके आने लगते हैं। अतः हनुस्तम्भ प्रारम्भ होनेपर तुरन्त प्रतापलंकेश्वर देवें, तो धनुर्वातकी उत्पत्ति रुककर अन्य लक्षण भी शनैः शनैः कम हो जाते हैं।

सूतिकाको शिरदर्द अनेक बार वातवाहिनियोंके उद्रेकसे होता है। उस पर इसका उपयोग करनेसे शिरदर्द त्वरित शमन होता है।

सूतिका ज्वरमें लक्षण रूप या उपद्रव रूपसे उत्पन्न श्लैष्मिक (कफात्मक) सन्निपात श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) पर प्रतापलंकेश्वरका उपयोग अवश्य करना चाहिये। अन्य समयमें होने वाले श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात और सूतिका ज्वरमें उत्पन्न, इन दोनोंमें सम्प्राप्ति दृष्टिसे महदन्तर है। इसका कारण सूतिका विष होनेपर उसे नष्ट करनेका उपक्रम करना वही मुख्य चिकित्सा तत्व है।

सूतिका ज्वर न आकर अर्थात् दोषोद्रेक अधिक तीव्र न होकर केवल

पित्तोद्रेकके हेतुसे कितनी ही स्त्रियोंको वमन होने लगती है. वान्तिसे जच्चा को अति त्रास होता है, कै करते-करते उदरमें ऐंठन आ जाती है। ऐसे समयपर प्रतापलंकेश्वरका अच्छा उपयोग होता है।

गृध्रसी, विश्वाची और खल्ली रोगमें वातका उद्वहन कार्य विकृत होता है; वातवाहिनियोंके कार्योंमें प्रतिबन्ध उत्पन्न होता है। इस हेतुसे इन दोनों तीनों विकारोंमें एक प्रकारका दर्द होता है। उसे प्रतापलंकेश्वर दूरकर वात विकारको सत्वर शमन कर देता है।

वातज श्वास रोगमें प्रतापलंकेश्वर अप्रतिम औषधि है। यह औषध सगर्भा स्त्रीको नहीं देना चाहिये अन्यथा गर्भपात होनेकी भीति रहती है। इससे गर्भाशयका संकोच भी होता है। अन्य रोगियोंके लिये इसका उपयोग श्वास नाशक और वातशामक होता है। यह श्वास बहुधा शोक आदि से वातवाहिनियोंमें क्षोभ होकर होता है।

सूतिका ज्वरमें कफ प्रधान दोष प्रकुपित होकर कास होने या कफभूयिष्ठ सन्निपात, श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात होने या कफ प्रधान तृषा कफज अरुचि, कफज वमन आदि विकार तीव्र रूपमें होनेपर और उष्ण पेय आदिसे उपशम होते हों, तो उनपर प्रतापलंकेश्वरका उत्तम उपयोग होता है। (कफवृद्धि हो तो अभ्रकभस्म, अदरकका सत्व और सोहागेका फूला मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।)

सूतिका रोगके पश्चात् उत्पन्न कफज गुल्म या कफप्रधान परिणाम शूल पर प्रतापलंकेश्वरकी गणना उत्तम औषधियोंमें होती है।

प्रसवके पश्चात् आवश्यक गर्भ स्थानकी शुद्धि न होनेसे गर्भ कोष्ठ शनैः शनैः प्रदुष्ट होकर वह दुष्टि सर्वांगमें फैल जाती हैं। उसका परिणाम पक्वाशय और बृहदन्त्रपर भी होता है। फिर उबासी आना, सूक्ष्म ज्वर, कम्प, तृषा, अङ्ग भारी पड़ना आदि प्रारम्भिक चिह्न होते हैं। यह अवस्था बढ़ने पर सर्वाङ्गमें शोथ, कोष्ठशूल और अतिसार, बार-बार त्रासदायक पतले बड़े बडे जुलाब लगना, किसी किसी रोगणीको केवल आम और रक्तमिश्रित दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। उसपर पर्पटीकी अपेक्षा प्रतापलंकेश्वर रसका अधिक उपयोग होता है। कारण, मूल कारण गर्भाशयस्थ सूतिका दोष है।

सूतिकावस्थामें उत्पन्न उन्मादपर इस औषधिका अन्य मादक औषधियों की अपेक्षा अधिक अच्छा उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस औषधिसे मादक निद्रा न आकर उन्मादके कारणभूत सूतिका विषका प्रशमन होकर मनोविभ्रमकी निवृति होती है। ऐसे विकारोंपर प्रतापलंकेश्वरको धमासेके क्वाथ, पेठेके रस या सारिवाके लेहके साथ देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१४३) सूतिकारि रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म सब सम-भाग मिला ब्राह्मीके रसमें ३ दिन तक खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा –१-१ गोली, दिनमें २ बार। त्रिकटु अथवा अदरकके रस और शहदके साथ देवें।

वक्तव्य—सूतिकारि रसमें ताम्रभस्म मिली है-उसका परिमाण ¼ है। उतनी ताम्र भस्म सहन न हो, उबाक आने लगे, तो नींबूके रसको जलमें मिला थोड़ी शक्कर डालकर पिलावें।

उपयोग—यह सूतिकारि रस विषघ्न कीटाणुनाशक, यकृद्बल्य, मस्तिष्क पोषक तथा वातनाड़ियोंको शक्ति देने वाला है। इस हेतुसे प्रसूताके नूतन आमज्वर, तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास; निद्रानाश, शोथ, उदरशूल और अरुचि आदि विकारोंको सत्वर दूर करके शान्ति प्रदान करता है। यह रसायन उदरमें संगृहीत आमको जला डालता है और पचनक्रिया व्यवस्थित कराता है। एवं गर्भाशयमें संचित विष और दूषित रक्तको तत्काल बाहर निकाल डालता हैं; रक्तमें प्रवेशित कीटाणुओंको नष्ट करता है, और वातवाहिनियोंके क्षोभको शमन करता है; यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्डों की विकृतिको दूर करता है; और मस्तिष्कको भी शांत बनाता है। संक्षेप में सूतिकारि रस नूतन और जीर्ण वात कफात्मक तथा वातपित्तात्मक व्याधियोंको शमन करनेमें अति लाभदायक है।

वातप्रकोप लक्षण अधिक हो तो महारास्नादि क्वाथ भी अनुपान रूपसे देवें; मूत्र शुद्धिके लिये पुनर्नवाष्टक क्वाथ देवें।

यह सूतिकारि रस सूतिकाओंके त्रिदोषज, दिनों तक बने रहने वाले ज्वर तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास, शोथ, उदरशूल, अरुचि आदि विकारों को दूर करनेमें श्रेष्ठ औषधि है। विशेषत: यह वातपित्तात्पक लक्षणोंपर प्रयोजित होती है। फिर भी कफात्मकमें मुंहमें चिपचिपापन, कफवृद्धि, शीत लगना आदि लक्षण होनेपर त्रिकटु अथवा अदरकके रस और शहदके अनुपानसे योजना करनेपर कफप्रकोपको भी दूर करता है।

यदि गर्भाशयमें आंवलका अंश रह जानें या क्षत हो जानेसे दुर्गन्धयुक्त स्राव हो रहा हो, प्रजनन संस्थानमें पूयोत्पत्ति हो जानेसे तीव्र ज्वरके साथ वातकफात्मक लक्षण उपस्थित हुए हों, तो उसपर सूतिकारि रसका योग्य उपयोग नहीं हो सकेगा। ऐसी अवस्थामें प्रतापलंकेश्वर तुरन्त कार्य करता है। इसी तरह ज्वरके साथ तीव्र वातप्रकोपके लक्षण धनुर्वात आदि प्रतीत

होते हों तो सूतिकाभरणकी योजना करनी चाहिए। एवं अतिसार या संग्रहणीकी प्रधानता हो तो रुग्णाको सूतिकावल्लभ देना चाहिए।

सूतिकारोग जीर्ण हो गया हो, मंद-मंद ज्वर, आमप्रकोप, उदरशूल, अरुचि मन्दाग्नि आदि लक्षण हों, शरीरमें स्फूर्ति न हो, तो उस अवस्थामें भी सूतिकारि रस हितकर होता है।

इस रसमें ताम्रभस्म मिली हुई है। यह जिन स्त्रियोंके यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् न होनेसे अन्त्रकी पचन क्रिया ठीक नहीं होती है; मलवर्ण सफेद हो; दुर्गन्ध आती हो या सूक्ष्म कृमि उत्पन्न हुये हों, उनके लिये अति लाभप्रद है।

ताम्रभस्मसे यकृत्को लाभ पहुँचनेके साथ वृक्ककी क्रिया भी उत्तेजित होती है; जिससे मूत्रोत्पत्ति सम्यक् होती है। फिर रक्तमें संगृहीत विष मूत्रमार्गसे बाहर निकल जाता है। मूत्रशुद्धि जिनको न होती हो उनको अनुपान रूपसे पुनर्नवाष्टक क्वाथ देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

अभ्रकभस्मके योगसे वातवाहिनियों और मांसपेशियोंको बल मिलता है, तथा धातुओंके भीतर ज्वरकालीन विष हो वह जल जाता है। गर्भाशयके भीतर विकृत् द्रव्य रहा हो वह बाहर निकल जाता है। फिर उस विषप्रकोपसे उत्पन्न श्वास शूल और अरुचि आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं।

ब्राह्मीके रसकी भावना देनेसे यह रस मस्तिष्कको बलप्रदान करता है जिसे प्रलाप होता हो या मनमें विभिन्न प्रकारके विचार आते रहते हों ये सब दूर हो जाते हैं, और शान्त निद्रा मिल जाती है।

ज्वर आदि विकार उत्पन्न हो जानेपर भी अधिक घृत प्रधान भोजनका सेवन कराते रहनेपर ज्वर दृढ़ हो जाता है तथा प्लीहा भी बढ़ जाती है। ऐसी भूल होनेपर इस रसका सेवन कुछ अधिक दिनों तक कराया जाता है।

सूचना—९९° से ज्वर अधिक हो जानेपर गुड़, अन्न और घृत बन्द कर देना चाहिये।

(१४४) चन्द्रांशु रस

विधि—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म; लोह भस्म; वंगभस्म और शुद्ध गंधक सबको समभाग मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० चं०)

मात्रा—१-१ गोली; दिनमें २ बार। जीरेके क्वाथ; दूध अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रस गर्भाशयमें संगृहीत मल; विष आदि द्रव्यके हेतुसे उत्पन्न योनिशूल; योनिमें पीड़ा, योनिदाह; योनिकी स्थानभ्रष्टता; योनिखाज; स्मरोन्माद (Hysteria) आदि विकारोंको शीघ्र दूर करता है;

और शिथिल हुए गर्भाशयको बलवान बनाता है।

प्रसव हो जानेपर कई बार गर्भाशयकी मांसपेशियोंमें निर्बलता आजाती है। रस रक्त आदि धातुओंमें विष प्रवेश होकर लीन हो जाता है। जिससे विचित्र प्रकारके लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्त्रियोंको व्याकुलता बनी रहती है और मन अशान्त बना रहता है ऐसी अवस्थामें यह चन्द्रांशुरस पीड़ित स्त्रियोंके लिये आशीर्वाद रूप है। इसके अतिरिक्त सूतिका रोगका कुछ असर हो; तो उसे भी यह दूर करता है।

(१४५) कुमारकल्याण रस

विधि—रससिंदूर; मोती पिष्टी; सुवर्णभस्म; अभ्रक भस्म; लोह-भस्म; सुवर्णमाक्षिक भस्म इन ६ औषधियोंको समभाग मिला १ दिन धीकुंवारके रसमें घोटकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बांधें। (भं० र०)

वक्तव्य—उत्तम गुणप्रद कुमारकल्याण बनाना हो तो उसमें रससिंदूर के स्थापर सुवर्ण चन्द्रोदय मिलाते हैं तथा अभ्रकभस्म सहस्रपुटी; लोह-भस्म शतपुटी और मुक्तापिष्टी विशेष मिलाते हैं। इस तरह प्रयोग निर्माण करनेपर चमत्कारी लाभ मिलता है।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें १ या २ बार। माताके दूध; वच और अदरकके स्वरस या शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

छोटे शिशुको $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{2}$ रत्ती देवें। अधिक दिनोंतक देना हो तो मात्रा कम देवें। हड्डियोंकी निर्बलता अधिक हो तो साथमें प्रवालपिष्टी भी मिलाते रहें।

उपयोग—यह रस ज्वर; श्वास; कास; वमन; बालशोष; बालग्रह; कामला; पसली (डब्बा); दूषित ज्वर; अतिसार; मन्दाग्नि; निर्बलता; कृशता; इनको दूर करता है; रोगकी भयंकर अवस्थामें शक्तिका रक्षण करता है और हृदयको उत्तेजना देता है इस रसके नित्य सेवनसे बालक पुष्ट और उत्साही बनता है।

आचार्योंने इस रसायनको कुमारकल्याण संज्ञा दी है; वह सार्थक है। क्योंकि; यह रस निर्वल; कृश और रोगी बालकोंके लिये सच्चा कल्याण-कर है। सामान्यत: मस्तिष्क श्रम करनेवाले कुटुम्बोंमें स्त्रियोंको शारीरिक श्रम कम मिलता है। अत: उनकी संतान वहुधा कमजोर होती है। यकृत् अति निर्बल होता है, उनके लिए यह रस अशीर्वाद रूप है। आचार्योंने इस रसकी योजना इस तरह की है कि, यह वात, पित्त और कफ तीनों प्रकृति-वाले बच्चोंको लाभ पहुँचा सके। इन तीनों विकृतियोंमें भी वातज और कफजपर यह रस अधिक प्रभाव दर्शाता है। एवं पित्त प्रधान प्रकृतिवालों को इसके साथ प्रवाल पिष्टी आदि शामक और पौष्टिक औषधि सम्मिलित

की जाय या अरविन्दासव अनुपान रूपसे दिया, तो सत्वर फल दर्शाता है।

कोई भी प्रबल व्याधि हो जानेपर बालकोंकी जीवनीयशक्ति सत्वर कम हो जाती है। फिर धातुपरिपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतुसे यकृत् आदि अवयव निर्बल बन जाते हैं। फिर भोजनका पचन योग्य नहीं होता। रसोत्पत्ति लगभग बन्द हो जाती है और बालक दिन-प्रति-दिन गलता है, उसे बालशोष कहते हैं। उस अवस्थामें शुष्क, निस्तेज, मुखमण्डल म्लान, देह दुर्बल हाथ-पैर, उदरवृद्धि, नितम्बपर सलवटें पड़ना, सारा दिन रोना, अग्निमांद्य, अरुचि. अपचन और मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। मलमूत्र दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं तथा मलमें आमकी प्रतीति होती है। ऐसी अवस्थामें इस रसका सेवन करानेसे पचन क्रिया सुधरती है, इन्द्रियां अपना अपना कार्य नियमित करने लगती है, रस रक्तादि धातुओंकी उत्पत्ति नियमित होने लगती है और शरीर थोड़े ही दिनोंमें सबल बन जाता है।

यद्यपि यह रस श्वास, कास, वमन, त्रिदोषजज्वर, सन्निपात, डब्बा आदि रोगोंकी मुख्य औषधि नहीं है, तथापि इन रोगोंकी तीक्ष्णावस्थामें हृदयका संरक्षण करनेके लिये रोग दूर हो जानेके पश्चात् रोग निरोधक शक्ति बढ़ानेके लिये तथा शारीरिक यन्त्रोंकी क्रिया नियमित करके देहको सबल बनानेके लिए यह निर्भय रूपसे व्यवहृत होता है।

वर्तमानमें भारतवर्षके भीतर बहन बेटियोंको योग्य शिक्षण न मिलने और आर्थिक कठिनताके हेतुसे कितनी ही माताएं निर्बल और कृश होनेसे या सगर्भावस्थामें बीमार रहनेसे गर्भका योग्य विकास नहीं होता। शिशु जन्मके समय निर्बल और कृश भासता है। फिर माताकी निर्बलताके हेतुसे शिशुका योग्य पोषण और संवर्द्धन हो उतने परिमाणमें दूध (स्तन्य) की प्राप्ति नहीं होती। जो थोड़ा बहुत दूध आता है, वह भी पौष्टिक नहीं होता ऐसी अवस्थामें यह रस इन निर्बल बालकोंको अरविन्दासवके साथ दिया जाय तथा माताको कुमार कल्याण × प्रवालपिष्टी × सितोपलादि चूर्ण मिला कर सेवन कराया जाय और माताके भोजनमें दूधकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो बालकको सत्वर लाभ पहुँचता हैं। यदि शैशवावस्थामें ही लक्ष्य नहीं दिया जायगा, तो फिर ३ वर्षके पश्चात् प्रयत्न करनेपर भी योग्य लाभ नहीं पहुंच सकेगा।

माताओंके अज्ञानके हेतुसे सन्तानोंका योग्य रक्षण नहीं होता। माताएं अपनी प्रिय सन्तानोंको दांत आनेके पहले ही अन्न और घी खिलाना प्रारंभ कर देती हैं। यथार्थमें ३ वर्ष तक बच्चोंको अन्त्रमें पचन होने वाला आहार नहीं देना चाहिये। आमाशयमें पच जाय वैसा आहार दूध, फलोंका रस

आदि देना चाहिये। इस भूलके हेतुसे यकृत्वृद्धि होती है अन्त्र शिथिल बनता है और अन्त्रकी संकोच होनेकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। फिर शरीर निर्बल हो जाता है। अग्निमांद्य, अपचन, किसीको मलावरोध और किसीको अतिसार हो जाता है। ऐसे बालकोंको पथ्य आहारसह कुमारकल्याणका सेवन कराया जाय तथा आवश्यकता हो तो कुमार्यासव भी दिया जाय तो यकृत् सबल होकर शारीरिक क्रिया नियमित बना देता है जिससे थोडे ही समयमें देह पुष्ट हो जाता है। किसी किसीको हरड़का घासा अनुपान रूपसे विशेष अनुकूल रहता है। कितने ही बालक विषमज्वर, मोतीझरा, डब्बा आदि रोग हो जानेके पश्चात् निर्बल रहते हैं। पौष्टिक आहार देनेपर भी रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। फिर शरीर कृश हो जाता है। रोग निरोधक शक्ति निर्बल होनेसे प्रतिश्याय बना रहता है या बार-बार होता रहता है, नाकसे श्लैष्मस्राव सतत होता रहता है, मन्द-मन्द ज्वर रहता है। मानसिक प्रसन्नता भी प्रतीत नहीं होती तथा कई बालक दुराग्रही और क्रोधी हो जाते हैं। ऐसे बच्चोंको कुमारकल्याण रस अदरकके रस (या सोंठके घासे) और शहदके साथ देते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें रोग निरोधक शक्ति सबल बनती है, धातु परिपोषण क्रम नियमित हो जाता है। फिर थोड़े ही दिनोंमें बालक नीरोगी और बलवान बन जाता है। निर्बल बालकोंको तैल मर्दन नियमित करते करना चाहिए।

कितने ही बालक शीतल वायुके आघातको सहन नहीं कर सकते। जिससे उनको थोड़ी भूल होनेपर स्वरयन्त्र, श्वासनलिका या फुपफुसोंको ठण्डी वायु लगकर कास, श्वास या डब्बा (Broncho Pueumonia) हो जाता है, ऐसे निर्बल शक्ति वाले बच्चोंको बहुधा कण्ठमें घुर-घुर आवाज होती रहती है, एवं मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अपचन आदि लक्षण भी कभी-कभी उपस्थित होते हैं। इन बालकोंकी निर्बलताको दूर करनेके लिये कुमारकल्याण अमृतके समान उपकार दर्शाता है। उस अवस्थामें अनुपान रूपसे बच और सोंठका घासा तथा शहद विशेष अनुकूल रहता है। यदि बालकका आमाशयिक रसयोग्य न बननेसे दूध पिलानेपर वमन हो जाती हो (दूध दोष वाला न हो) तथा इसी हेतुसे शरीर निर्बल रहता हो, तो जायफलके घासेके साथ कुमार कल्याण दिया जाता है।

यदि बच्चेके आमाशयका रस अति उग्र हो जानेके हेतुसे बार-बार जिह्वा क्षत होता रहता हो या बना रहता हो फिर इस हेतुसे वांति होती हो और देह कृश रहती हो तो कुमारकल्याण की मात्रा कम करें। एवं उसके साथ प्रवाल पिष्टी भी देनी चाहिये और माताको शृङ्ग भस्म, मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्णका सेवन कराना चाहिये तथा माताको

मिर्च, तेल, खटाई, गरम-गरम भोजन कम देना चाहिये तथा आंवले या पेठेके पदार्थ देना विशेष हितावह है। इस तरह माताके आहारकी भी सम्हाल रखनेपर कुमारकल्याण बालकको जल्दी लाभ दर्शाता है।

सामान्यतः बालकको पारदप्रधान औषधि अधिक अनुकूल रहती है। पारदप्रधान औषध सेवनसे इन्द्रियोंपर सत्वर लाभ पहुँचता है। यह रस पारद (रससिंदूर) प्रधान होनेसे सुवर्ण आदि धातुओंके गुणको अनेक गुणा बढ़ा देता है तथा सत्वर लाभ पहुँचाता है। रससिंदूर रसायन, यकृत्, हृदय और रक्त आदिके लिये उपकारक और कीटाणुनाशक है। मोती, मस्तिष्कनेत्र हृदय, रक्त और अस्थिको बलवान बनाता है तथा पित्तप्रकोप को दबाता है। सुवर्ण शीतल, रसायन, मस्तिष्कके वातनाड़ी और हृदयके लिये पोषक विषका संशोधक, कीटाणुनाशक और आयुर्वर्द्धक है। और अभ्रक रसायन, उत्तेजक, सर्वरोग हर, वातनाड़ी, मांसपेशियां हृदय आदिके लिये हितकर तथा कीटाणुनाशक है। लोहभस्म रक्तपौष्टिक है। सुवर्णमाक्षिक रक्तपौष्टिक, पित्तशामक तथा मस्तिष्कके लिये हितकर है। घीकुंवारकी भावना देनेसे अन्त्रस्थ विकृतियकृद्विकृति और मलावरोधमें भी लाभ पहुँचता है। इस रसायनका संयोगजन्यगुण धातु परिपोषण क्रमकी नियमित बनाना, इन्द्रियोंको सबल बनाना तथा कीटाणु विषको नष्ट करना आदि है।

(१४६) बालसंजीवन रस

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री और लोंग, सबको समभाग लें। प्रथम कज्जली करें। फिर जायफल, आदिका बारीक चूर्ण मिलाकर खरल करलें। (बा० चि०)

मात्रा—आधसे १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग—यह रस बालकोंके ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुकाम, अपचन, मन्दाग्नि आदि रोगोंमें अति लाभदायक है। कब्ज हो तो पहले उदरशुद्धि करके बालसंजीवन रस देना चाहिये।

यह रस सामान्य भासता है, किन्तु बालकोंके लिये अति हितावह है। इसमें कीटाणुनाशक, विषहर, यकृत्पोषक, मस्तिष्क शामक, दीपन-पाचन और ग्राही गुण अवस्थित हैं। अतः जिन शिशुओंको बार-बार मंद ज्वर, कफप्रकोप, अपचन, दुर्गन्धमय अतिसार, वान्ति, प्रतिश्याय और उदरकृमि आदि रोग हो जाते हैं, उनके लिये यह निर्भय और उत्तम औषधि है। आवश्यकतापर दिनमें ३ बार दे सकते हैं।

कतिपय शिशुओंके देहमें शुद्ध रसोत्पत्ति नहीं होती। बार-बार कफ-प्रकोप और प्रतिश्याय होते रहते हैं। फिर शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज

बन जाता है। पचनक्रिया योग्य नहीं होती। मल शुष्क होकर गाँठें बन जाती हैं। किसी किसीको फक्करोग (Gees disease) की संप्राप्ति होकर दस्त आम और वसा प्रधान बन जाता है। ❋तथा उदर बड़ा हो जाता है। इस रसविकृतिको सुधारनेके लिये लघुवसन्त नं० २ और बालसंजीवन रसका मिश्रण अति हितावह है। एकाध मासतक नियमित सेवन कराना चाहिये। यदि कफप्रकोप अधिक हो तो शृंगभस्म भी साथमें मिला लेनी चाहिये।

माताकी देहमें रक्तकी न्यूनता रहनेसे शिशुका योग्य पोषण नहीं होता। एवं संवर्धन अति कम होता हैं। यदि माताका यकृत् निर्बल है और वह घृत तैल अधिक खाती रहती है, तो स्तन्य द्वारा बच्चेपर भी असर पहुँचता है। बच्चा पाण्डु पीड़ित हो जाता है और यकृत् भी निर्बल (बड़ा) हो जाता है इन बालकोंको पुष्ट बनानेके लिये बालसंजीवन रस और मण्डूर-माक्षिक भस्मको मिश्रित करके दिया जाता है यदि मन्द-मन्द ज्वर भी आता रहता हो, तो मण्डूरमाक्षिकके स्थानपर लघुवसन्त नं. २ मिलाकर सेवन कराया जाता है।

शिशुको जल्दी बलवान बनानेकी आशासे थोड़े थोड़े समयपर विशेष दूध पिलाते रहनेसे आमाशयकी पचनक्रिया विकृत हो जाती है। फिर योग्य पचन नहीं होता। पतले दुर्गन्धमय सफेद मैले दस्त होते हैं। किसी-किसीको थोड़ा ज्वर भी रहता है। इनको बालसंजीवन रस और गोदन्ती-भस्म मिश्रित करके दिनमें २ बार सेवन कराते रहनेपर कुछ दिनोंमें स्वास्थ्य सुधर जाता है।

कतिपय शिशुओंको आमाशय प्रदाह हो जानेसे दूध पिलानेपर तुरन्त वान्ति हो जाती है जिससे बालकोंको पूरा पोषण नहीं मिलता। एवं तृप्ति न मिलनेसे बच्चा सारे दिन रोता रहता है और सूखता जाता है। उन बच्चों को बालसंजीवन रस दिनमें २-३ बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आमाशय प्रदाह दूर होकर पचन क्रिया सुधर जाती है।

इस रसायनमें मिले हुये पारदमें कीटाणुनाशक; विकासी और योगवाही गुण हैं। पारद बालकोंको अधिक अनुकूल रहता है। रसायन गुणके हेतुसे विषको नष्टकर न्यून हुई शक्तिको सत्वर बढ़ा देता है। कीटाणुनाशक गुण के हेतुसे रोगोत्पादक कीटाणुओंका नाश करता है। योगवाही गुणके हेतुसे साथमें मिली हुई औषधियोंके गुणमें वृद्धि कराता है। गन्धकमें कीटाणु नाशक शोधन गुण हैं। जायफल, जावित्री और लौंगमें दीपन, पाचन, कुछ ग्राही, कीटाणुनाशक, कफघ्न और वातहर गुण अवस्थित हैं।

❋मलको सुखाकर जांच की जाय, तो ५०% तक वसा पृथक् हो जाती है।

जायफल आदि तीनोंमें उड्डयनशील तैल रहता है, यह तैल भी पारदके समान देहके अणु-अणुमें फैल जाता है और कीटाणुओंको नष्टकर देता है। यह कार्य जातिफलादि द्रव्योंका चूर्ण नया होनेपर जैसा होता है वैसा पुराना मिलानेपर बालसंजीवन रससे पूरा लाभ नहीं मिलता।

सूचना—(१) माताके खान पानके हेतुसे शिशुको कष्ट पहुँचता हो, तो उसमें सुधार करना चाहिये। माताके रोगके उपद्रव रूपसे बच्चेको रोग उत्पन्न हुआ हो, तो माताको भी साथ-साथ औषधि देते रहना चाहिये। माताको रोग अधिक प्रबल और दुःखदायी हो, तो माताका दूध छुड़ा देना चाहिये और अनुपान रूपसे शहद मिलाना चाहिये।

(२) रोगावस्थामें शीत, वर्षादिका आघात न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये।

(३) बालकको अन्नका सेवन कराया जाता हो और अपचन हो तो अन्न और घी कम करके दूध और फलोंका रस अधिक परिमाणमें देना चाहिये।

(१४७) चन्द्रशेखर रस

विधि—रससिंदूर, अभ्रक भस्म, कान्तलोह भस्म, मण्डूर भस्म, गोरोचन और सोहागेका फूला, सबको समभाग मिला गोकर्णी (कोयल) के रस में १२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—आधसे १ गोली तक माताके दूध, जल या रोगानुसार अनुपान के साथ दिनमें २ से ३ बार देवें।

उपयोग—यह रस यकृत् आदि पचन अवयवोंको बल प्रदान करता है। एवं श्वसन संस्थान और हृदयको भी उत्तेजित करता है। इस रसके सेवन से बालकोंके अनेक रोग—मलावरोध होकर उत्पन्न आमज्वर, स्तन्यदोषसे उत्पन्न सन्निपात, खांसी, श्वास, अजीर्ण, वमन, अतिसार, शूल, जुकाम, धनुर्वात, डब्बा आदि दूर होते हैं, और बालक पुष्ट होते हैं।

(१४८) बालार्क गुटिका

विधि—शुद्ध खर्पर, (या यशद भस्म) प्रवाल भस्म, शृङ्गभस्म, शुद्ध सिंगरफ, सोहागेका फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केसर इन ८ औषधियों को समभाग मिला जलमें खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें।

(वै० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली माताके दूध अथवा शहद और बायविडंगके चूर्णके साथ दिनमें दो बार देवें।

उपयोग—सुवर्णमालिनीके समान यह बालार्क गुटिका भी रसादि सातों धातुओंको पोषण प्रदान करती है, निर्बल बालकोंको पुष्ट बनानेमें अति हितकर है। सामान्यतः यह वटी बालकोंके वातश्लेष्म-विकार, सूक्ष्म-

ज्वर, अस्थिमार्दव रोग, खांसी, श्वास, कृमि, जुकाम, मन्दाग्नि, वमन, अतिसार आदिको दूर करके बालकोंको प्रसन्न और पुष्ट बनाती है।

जिन बालकोंकी माताका शरीर निर्बल होनेसे या माताको योग्य पोषण न मिलनेसे बालकका योग्य विकास न होता हो, अस्थि निर्बल हो, दाँत जल्दी न निकले हों, स्फूर्ति कम हो और पचन क्रिया सदोष होनेसे बार-बार पतले दूषित दस्त हो जाते हों, उन बच्चोंको बालार्क गुटिकाका सेवन कराते रहनेसे उनके देहका योग्य विकास हो जाता है, तथा वे नीरोगी और सबल बन जाते हैं।

कफ प्रकृति वाली माताके अथवा क्षय या श्वास-कास पीड़ित माताकी संतानको ऋतुपरिवर्तन या थोड़ी भूल होनेपर कफप्रकोप हो जाता है। फिर प्रतिश्याय, छींके आना, कण्ठमें घर-घर आवाज और कफसे छाती जकड़ जाना, कभी-कभी ज्वर भी आ जाना आदि विकार हो जाते हैं। उन बालकोंको बालार्क गुटिकाका सेवन करानेसे वे नीरोग और सबल बन जाते हैं।

माताका दूध न मिलनेसे कितने ही बालकोंको ऊपरके दूधपर रखना पड़ता है। उस दूधमें जल मिलाकर माताके दूधके समान पतला बनाना पड़ता है और ताजा लेना पड़ता है। भूल होनेपर पचनक्रिया बिगड़ती है। फिर रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। बालक दिन प्रति दिन गलता जाता है। उसको स्वस्थ बनानेके लिये पथ्यकी योजनाके साथ बालार्क गुटिकाका सेवन कराया जाय तो वे स्वस्थ और सबल बन जाते हैं।

किसी कारणवश बालकको ज्वर जीर्ण हो जानेपर वह अति निर्बल और कृश हो जाता है। मन्द-मन्द ज्वर रहना, थोड़ा-थोड़ा दुर्गन्धयुक्त दस्त होते रहना, मूत्रमें पीलापन, स्फूर्तिका अभाव, जुकाम और कास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। शारीरिक उत्ताप ९९° तक हो जाता हो, उसे थोड़े ही दिनों तक बालार्क गुटिकाका सेवन करानेपर स्वास्थ्य सुधर जाता है और उसका योग्य विकास होने लगता है।

(१४९) दन्तोद्भेदगदान्तक रस

विधि—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलहठी, देवदारू, दारुहल्दी, बायविडंग, छोटी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकड़ासींगी, बिड़नमक, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म, सबको यथाविधि समभाग मिलाकर बकरीके दूधके साथ ६ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जल या माताके दूधके साथ दें या गोलीका चूर्णकर दिनमें ३ बार दन्तपालीपर घर्षण करें।

उपयोग—इस रसके उपयोगसे बालकोंको दांत आनेके समय होने वाले अतिसार, ज्वर, धनुर्वात आदि विकार दूर होकर दांत शीघ्र बिना कष्ट बाहर निकल आते हैं।

बच्चोंको दांत आनेके समय मसूड़ोंमें कण्डू होती है और एक प्रकारका विष मय रस उत्पन्न होता हैं; उसे बच्चा निगलता रहता है। इस रसके हेतुसे आमाशयके भीतर होनेवाली पचनक्रिया विकृत होती है। एवं यकृत् निर्बल होनेसे विषाक्त रसका जब अन्त्रमें भी यकृत्के पित्त द्वारा रूपान्तर नहीं हो सकता: तब हरे-पीले फटे हुए दुग्धमय अतिसार होते रहते हैं। यदि इस विषका शोषण रक्तमेंहोता है। तो ज्वर भी उपस्थित होता है। वातनाड़ियों और वातकेन्द्रपर अधिक असर होनेपर आक्षेप आता है। इन सब विकारोंका मूल विषमय रस है। यह रसायन आमाशयमें उत्पन्न होने वाले रस (Gastric juice) और यकृत्से निकलने वाले पित्त (Bile) का स्राव अधिक कराता है, एवं उसे सबल बनाता है। इस हेतुसे विषमय रसका रूपान्तर होता जाता है। जिससे वह ज्वर, अतिसार या आक्षेप आदि विकारोंको उत्पन्न नहीं कर सकता।

(१५०) मृद्विरेचन रस

विधि—छोटी इलायचीके दाने १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध मुर्दा संग* २ तोले और सौंफ ३ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बारीक चूर्ण करें। (र० चं०)

मात्रा—बालकोंको आधी-आधी रत्ती दिनमें ३ बार दूधके साथ ५ दिन तक रोज सुबह दें। बड़ी स्त्रियोंको ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार।

उपयोग—मिट्टी खानेसे पाण्डु अथवा अन्य रक्ताल्पता रोग हुआ हो तब जुलाबके लिये यह औषधि दी जाती है। इस औषधिसे मिट्टी दस्तमें निकल कर प्रकृति स्वस्थ बन जाती है। यह औषधि स्त्रियों और बालकोंके लिए अति हितकर हैं।

मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डु रोग जीर्ण होनेपर प्राय: उदरकृमि हो जाते हैं; तब मृदु विरेचन या कपीला, वायविडङ्ग, डिकामाली और कालानमक भोजनके प्रारम्भमें देकर कृमियोंको निकाल देना चाहिये। रोग अति पुराना हो, तो मृदुविरेचन रस १ दिन दें, १ दिन न दें इस तरह १ मास तक या पाण्डु दूर होकर उदर नरम होने तक प्रयोग करना चाहिये।

---

* मुर्दासङ्गकी शोधन विधि प्रदरान्तक लोहके अन्तमें दी है, उसके अनुसार शोधन कर लेना चाहिये।

(१५१) सर्वाङ्गसुन्दर रस

विधि—समगुण गन्धक वाली रस पर्पटी २ तोले तथा जायफल, जावित्री लौंग, निम्बपत्र, निर्गुण्डीके पत्ते और छोटी इलायचीके दाने १-१ तोला लें। काष्ठादि औषधियोंका महीन चूर्ण करें। फिर पर्पटी मिला जलके साथ १२ घण्टे खरल करें पश्चात् जिनमें मोती होते हैं उन सीपोंमें इसका लेपकर २-२ सीपोंका संपुट बना लेवें। ऊपर २-२ अंगुल मिट्टी लगा पुट-पाक विधि अनुसार आरण्य कण्डोंमें पका लें। संपुट लाल होनेपर निकाल लें। स्वांग शीतल होनेपर औषधिको निकाल पीसकर शीशीमें भर लें। (र० च०)

वक्तव्य—इस रसको पुटपाक विधिसे न पकावें तो यह महागन्ध कहलाता है।

मात्रा—आधीसे १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह रस बालकोंके रक्षणके लिये महौषधि है। ज्वरघ्न, दीपन बल और कान्तिको बढ़ाने वाला है। भयंकर संग्रहणी, प्रवाहिका (पेचिश) सूतिका रोग; रक्तार्श और अन्य रक्तज व्याधियोंको नष्ट करता है जहां इसका उपयोग होता है वहां अथवा विविध जातिके कीटाणु जो बच्चोंको पीड़ा देते हैं वे प्रवेश ही नहीं करते। बालकोंके समान स्त्रियोंको भी प्रदर आदि व्याधियोंमें हितकर है।

बाहरके दूषित दूधसे उत्पन्न अतिसार, मलमें जल ही जल, या जल-मिश्रित दूषित दूध, बार-बार जल समान जुलाब होते रहना, मलमें खट्टी-सी दुर्गन्ध, मलका सफेद रंग या आटेमें जल मिला हो ऐसा रंग, साथमें थोड़ी वमन, अफारा, बार-बार डकार, कण्ठसे कांटेसे पड़े होना आदि लक्षण होते हैं। इनमें यह रस उत्तम लाभदायक है। (उस अवस्थामें सर्वाङ्ग-सुन्दरके साथ लोहबान पुष्प और लहशुनादि वटी मिला देना विशेष लाभ-दायक है।)

गर्मीके दिनोंमें दूध फट जाने या कीटाणु मिश्रित हो जानेसे किसी-किसी बच्चेको भयंकर ज्वरातिसार हो जाता है। ज्वर १०१° डिग्रीसे १०५°-६° तक बढ़ जाता है। प्रारम्भमें बार-बार हरे-पीले गर्म-गर्म जलके समान दस्त होते हैं, पश्चात् जुलाब बार-बार किन्तु मल या जल थोड़े-थोड़े परिमाणमें आता है। साथ साथ वमन, बेचैनी, प्यास आदि भयंकर लक्षण भी होते हैं। प्यासके हेतुसे बालक अति बेचैन होता है। यदि दूध अधिक दिया जाता है, तो अतिसार बढ़ जाता है, और तृषा भी अधिक लगती है। व्याकुलता इतनी अधिक होती है कि, बालक शय्यापर सो नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें दूध बन्द कर देना चाहिये। (सन्तरा या मोसम्बीका रस बकरीका दूध दें सकते हैं)। चावलकी खीलको उबाल छानकर जलको

पिलाते रहना चाहिये और सर्वाङ्गसुन्दर रस बहुत थोड़े परिमाणमें बार-बार देते रहना चाहिये।

यदि अफारा अधिक हो और जुलाब बार-बार थोड़े-थोडे परिमाणमें किन्तु अधिक समय होते हों, और ज्वर भी अधिक हो तो, लक्ष्मीनारायण रसको प्रवालपिष्टीके साथ मिलाकर देना अधिक हितकर है। बडे-बड़े जुलाब जल समान प्रवाही पीले रंग वाले होते हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिये। साथमें कम मात्रामें दूधकी शक्कर (Lactose), सेंधानमक अथवा सोहागेका फूला या सोडाबाई कार्ब देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इस तरह दुग्ध विकृति अन्न विष या अन्य कारणसे उत्पन्न ज्वरातिसारमें भी यह रस अति हितकर है।

ग्रहणीरोगको प्रथमावस्थामें जब तक आमानुबन्ध हो, बार-बार थोड़े थोड़े आम और वेदनासह दस्त होते रहते हों, तब तक कुटजावलेह और कुटजादि वटी लाभदायक है। किन्तु तीव्रता कम होनेपर आम कम हो जाय, रक्त गिरने लगे, मल गोबर या काईके समान हो और बार-बार दस्त होता रहे, ऐसी परिस्थितिमें सर्वाङ्गसुन्दरका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोगकी जीर्णावस्था आ जानेपर पर्पटी कल्प उपयोगी होता है।

यदि प्रवाहिका होती है तो शौचकी मर्यादा नहीं रहती। किसी-किसी को बार-बार बूंद-बूंद शौच होते रहते हैं। कितनों ही को बहुत किंछना पड़ता है. बालक अति बेचैन हो जाता है। गुदपाक होता है, शौचके समय काँच बाहर निकलती है। इस विकारपर सर्वाङ्ग सुन्दर रस अति प्रशस्त औषध है।

बालकका जन्म होनेके पश्चात् भूल होनेपर स्त्रीको सूतिका रोग हो जाता है। यह सचमुच दारुण व्याधि है। प्रसूताको क्षय, पाण्डु, ग्रहणी आदि रोग होते हैं, वे चिकित्सा करनेमें अति कठिन है। इनमेंसे अतिसार और ग्रहणी होनेपर इसका उत्तम उपयोग होता है। बड़े-बड़े गरम-गरम पीले रंगके जुलाब होते हैं। ग्रहणी होनेपर अग्निमांद्य, बार-बार शौचकी शंका बनी रहना, बार-बार रक्त मिश्रित थोड़ा-थोड़ा शौच होना आदि लक्षण होनेपर सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये। रुग्णा अति अशक्त और बलमांस विहीन हो गई हो तो इसके साथ सुवर्णमालिनीवसंत देनेपर अधिक उपयोग होता है।

माताका दूध दूषित हो जानेसे अतिसार या संग्रहणी रोग हुआ हो, तो बच्चा और माता, दोनोंको सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये। जिससे साथ-साथ दूधकी भी शुद्धि हो जाय। सगर्भा माताका दूध पीते रहनेसे बालकको पारिगर्भिक रोग हो जाता है, तब अतिसार, बड़े-बड़े जुलाव, वान्ति बालक का शुष्क हो जाना, हाथ पैर पतले और उदर घड़ेके सदृश हो जाना, कुछ

भी खानेपर न पचना, दिनभर खाते रहना, विशेषत: चरपरे खट्टे आदि पदार्थ खानेकी अति वासना होना आदि लक्षण होनेपर माताका दूध छुड़वाकर सर्वाङ्गसुन्दर रस देनेसे उत्तम कार्य होता है। (ऐसी अवस्थामें माता और बालक दोनोंको औषधि देनी हो तो सर्वाङ्गसुन्दर रस, प्रवाल पंचामृत और गोदन्ती भस्म मिलाकर देना चाहिये।

अस्थिवक्रता (Rickets) रोगमें बालकोंकी हड्डीको योग्य परिमाणमें चूना नहीं मिलता, जिससे व्याधिसंकर या उपद्रव रूपसे अतिसार होता है। इस अतिसारकी सब अवस्थाओंमें सर्वाङ्गसुन्दर उपयोगी है। साथमें प्रवाल पिष्टी और मण्डूर भस्मका भी उपयोग करना चाहिये।

इस सर्वाङ्गसुन्दर रसके साथ बकुल (मोलसरी) की छालका चूर्ण आधा तोला मिलाकर दिनमें ३ बार देनेसे रक्तप्रदरमें मात्र २-३ दिनके भीतर हो आश्चर्यकारक लाभ पहुँच जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१५२) माणिक्यरसादि गुटिका

विधि—हरतालसे बनाया हुआ माणिक्य रस, शुद्ध सिंगरफ, एलुवा, पीपल, सैंधानमक, कालानमक, इन्द्र जौ, कोयल (गोकर्णी) के बीज २-२ तोले शुद्ध मैनसिल, सोहागेका फूला, जवाखार, लालबोल, सोंठ, मिर्च, अजवायन, अक्लकरा, बायविडङ्ग ये ९ औषधियाँ १-१ तोला, केसर, जायफल, जावित्री, इलायची, तेजपात और उसारेरेवन ये ६ औषधियां ६-६ माशे लेवें। पहले माणिक्य रस सिंगरफ और मैनसिल मिलावें। फिर केसरको अलग रख शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिलावें। ६ घण्टे खरलकर फिर केसरका बारीक चूर्ण मिला ३ घण्टे तक खरल करें। पश्चात् नागरबेलके पानके रसमें ३ दिन खरलकर ¼-¼ रत्तीकी गोलियां बांधें। (आ० लि० मा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार पानके रसमें दें। और उदर पर डिकामाली (नाड़ीहिंगु) और एलुवाका लेप करें।

उपयोग—इस गुटिकाके प्रयोगसे बालकोंके श्वास, हृदयावरोध, अफारा कास, अतिसार, ज्वर, शूल, आदि रोग दूर होते हैं। यह आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत मल, आम और विषको बाहर निकालती है, उत्तेजना प्रदान करती है, तथा फुफ्फुस प्रणालिकाओंमें संचित श्लेष्माको दूरकर डब्बारोगमें अपना प्रभाव तुरन्त दिखाती है। सैंकड़ों बच्चोंके जीवनकी रक्षा इस गुटिकाने की है।

(१५३) हरताल पुष्प

विधि—२० तोले शुद्ध हरतालके चूर्णको ५ सेर जल रह सके ऐसी हांडी में रखें। पहले हाँडीके मुखको पत्थरपर जल डालकर घिस लेना चाहिये

फिर हांड़ी मुखपर समान मुंहवाली २० सेर जल रह सके, उतनी बड़ी हांड़ी रखें। संधिस्थानको गर्म जल मिलाये हुए उड़दके आटेसे बन्द करें। सूखनेपर ऊपर शहद चूनेवाली कपड़ेकी पट्टीके ३-४ तह लपेट; छोटे चूल्हेपर चढ़ाकर २४ घण्टे मन्द और मध्यम आंच देकर पुष्प उड़ालें। आँच देनेके समय बार-बार ऊपरकी हांड़ीपर हाथ लगावें। अधिक गरम न हो जाय, इस बातका खयाल रखें। यदि ऊपरकी हांड़ी गर्म हो जाय, तो बीच में १-२ घण्टे या ४-६ घण्टे अग्नि मन्द दें, या न देवें। फिर अनुकूलतापर अग्नि दें। अच्छी रीतिसे पुष्प उड़ जानेपर यन्त्रकोखोलकर ऊपरकी हांड़ी के भीतर चारों ओर ऊपरके हिस्सेमें श्वेत वर्णके कण मिलेंगे जो अति शक्तिशाली होते हैं। इसके निम्न भागमें हरतालके भीतर रहा हुआ गंधक हरतालके सदृश पीले रंगका होता है, वह अलग निकाल लें।

वक्तव्य---यन्त्र उत्तम जातिका बनाया होगा, और संधिस्थान ठीक बन्द होगा, तो ४ गुनी मात्रामें या अधिक एक साथ बनानेपर गन्धक नहीं उड़ सकता एवं पृथक् भी नहीं होता। पुष्प पीले रंगके निकलते हैं, जो विशेष फलदायी बनते हैं।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक श्वेतपुष्प नागरवेलके पान या शहद या गौ घृतके साथ दें। सर्पविषमें १५-१५ मिनटके बाद कफोल्वण सन्निपातमें ३-३ घण्टेपर और कुष्ठमें दिनमें ३ बार दें। तीव्र श्वास-प्रकोपमें नागरबेलके पानके साथ दें।

उपयोग—यह श्वेतपुष्प सर्पविष, महाकुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, शून्यकुष्ठ, उपदंश विकार, रक्त-विकार, श्वास, कास, विषमज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। सब प्रकारके कफ और वात प्रधान रोगोंपर लाभदायक है।

यह पुष्प वातज, कफज, वातकफज और कफपित्तज कुष्ठपर लाभदायक है। जिस कुष्ठमें केवल पित्तकी प्रधानता हो, मात्र उसपर नहीं देना चाहिये। शीतांग सन्निपात, निमोनिया, श्लैष्मिक सन्निपातमें एवं अन्य सन्निपातमें जब बेहोशी, नाड़ी अत्यन्त मन्द होना, श्वासवाहिनी कफसे भर जाना, हृदयका अवरोध होने लगना आदि लक्षण उपस्थित हो, उनपर यह हरताल पुष्प अच्छा काम देता है।

उपदंश रोग जीर्ण होनेपर श्वास, कास, त्वचापर काले-लाल धब्बे, कुष्ठ, फोड़ा-फुन्सी, नेत्रमें कमजोरी, सन्धिवात, आदि उपद्रव होते हैं। कभी कभी विकृति, रक्त मांस और अस्थि तक पहुँच जाती है। ऐसी अवस्थामें यह रसायन रक्त-शोधक अरिष्टके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। विषमज्वर, पालीके एकान्तरा, चातुर्थिक आदि ज्वर, बार-बार अनियमित समयपर थोड़े-थोड़े दिन बाद आवें वाले परिवर्तित ज्वर, सबपर

तुलसीका रस या द्रोणपुष्पीके रस या त्रिकटु शक्कर और घीके साथ देनेसे सब शमन हो जाते हैं।

(१५४) आखुविषान्तक रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और कुटकीको समभाग लें। फिर यथा विधि मिला पुनर्नवाके रस और गोमूत्रकी ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली वंध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूलके चूर्णके साथ अथवा पाठाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह रस जहरी चूहेके विष और अन्य विषैले जीवोंके विषप्रकोपको दूर करता है।

सूचना—इस औषधिके सेवनके साथ, पारद, गन्धक हल्दी, दुपहरिया (बांकुली) के फूल, घरका धुंआसा और सिरसके बीज, सबको समभाग मिला आकके दूधमें खरल करके दंशस्थानपर लेप करते रहना चाहिये।

(१५५) कामिनीविद्रावण रस

विधि—शुद्ध हिंगुल ६ माशे, शुद्ध गन्धक ६ माशे, शुद्ध अफीम ८ तोले केसर, जायफल अकलकरा, जावित्री, पीपल, लौंग, सोंठ और लाल चन्दन ये आठ द्रव्य २-२ तोले लें। पहिले हिंगुल गन्धक और अफीमको मिलावें। फिर शेष वस्तुओंका चूर्ण मिला. जल या नागरवेलके पानके रसमें ६ घण्टे घोटकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनालें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली रोज शामको दूधके साथ लें। कब्ज हो तो सुबह उदर साफ कर लेवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे धातुका पतलापन, निर्बलता, मन्दाग्नि और मस्तिष्ककी कमजोरी दूर होकर वीर्यस्तम्भन शक्तिकी वृद्धि होती है।

सूचना—इस औषधिमें अफीम बहुत ज्यादा परिमाणमें है; अतः कम मात्रामें प्रकृति और ऋतुका विचार करके सेवन करना चाहिये। अधिक दिनों तक सेवन करनेसे प्रकृति औषधिवश बन जाती है; इसलिये थोड़े दिन सेवन करके औषधिको बन्द कर देना चाहिये।

(१५६) शुक्रमातृका वटी

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, और लोहभस्म प्रत्येक ४-४ तोले, छोटी इलायचीके दाने, गोखरू-हरड़, बहेड़ा, आंवला, तेजपात, रसोंत, धनियां, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सोहागेका फूला और मीठे अनार-

दाने ये १३ औषधियां २-२ तोले तथा शुद्ध गूगल १ तोला लें। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करके अभ्रकभस्म और लोहभस्म मिलावें। फिर अन्य औषधियोंका चूर्ण मिला-गोखरूके क्वाथ या मीठे अनारके रसमें १२ घण्टे घुटाईकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भैं० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जल या बकरीके दूध अथवा मीठे अनारके रसके साथ देवें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वीर्यस्राव, वातज, पित्तज, कफज प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र आदि दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और गाढ़ा बनता है। यह बल वर्ण अग्निको प्रज्वलित करके जीर्णज्वर (अस्थिगत ज्वर) को नष्ट करता है। अश्मरी (पथरी) में भी लाभदायक है। इसके सेवनसे रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है, मांसग्रन्थियां सुदृढ़ बनती है, एवं मानसिक शक्ति भी बढ़ती है।

शुक्राशय निर्बल बन जानेपर उसमें शुक्रसंचय अधिक नहीं हो सकता है एवं थोड़ा-सा विघ्न उपस्थित होनेपर रात्रिको निद्रामें स्वप्नदोष हो जाता है। मलावरोध रहना, मूत्राशयमें मूत्र संग्रह हो जाना, उदरमें वायु उत्पन्न होना स्त्री संपर्कका स्वप्न आना, इनमेंसे कुछ भी कारण बननेपर स्वप्नदोष हो जाता है। उन रोगियोंको शुक्रमातृका और चन्द्रप्रभाका सेवन लम्वे अरसे तक कराया जाय और आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्य पालनसह लघु पथ्य भोजन कराया जाय, तो शुक्राशयकी निर्बलता तथा शुक्रका पतलापन, दोनों विकृतियां दूर हो जाती है।

वर्तमानमें समाजके पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा वाले नवयुवकों और युवतियोंने बीड़ी, सिगरेट, तमाखू खाना, गरम-गरम चाय पीना, तले हुए पदार्थ चाहे तब खाते रहना, अति मिर्च-मसाला और तेज खटाई खाना आदि दुर्व्यसनोंको अपनाया है। इनके अतिरिक्त रात्रिका जागरण करना और बार-बार सिनेमा देखना भी उनके लिए सामान्य बात है। इनमेंसे अधिकांश मनुष्य शारीरिक श्रम भी नहीं करते। जिससे पचन क्रिया बिगड़ती है। एवं शुक्र पतला और गरम रहने लगता है। विषय भोगकी लालसा बनी रहती है। परिणाममें उनको जरा-सी कामोत्तेजना हुई या दूषित विचार आया, कामशास्त्रकी पुस्तकमें ऐसे प्रसंगको पढ़ा या छोटी बहन-वेटीका स्पर्श हुआ, तत्काल शुक्रपात हो जाता है। यदि ये रोगी अपने दुर्व्यसनोंको त्याग देवें और संयम शील जीवनके पालनसह शुक्रमातृका वटी और सुवर्णमालिनी वसन्त (या कामचूड़ामणि) का सेवन लघु मात्रामें लम्बे अरसे तक करें तो भावी जीवन सुखमय बना सकते हैं।

सूचना—शुक्रमातृका वटीसे तत्काल लाभ प्राप्त हो, इस आशासे बड़ी

मात्रा ली जायगी या कुछ दिन सेवन करके छोड़ दी जायगी तो उचित लाभ नहीं मिल सकेगा।

(१५७) पुष्पधन्वा रस

विधि—रससिंदूर द्विगुण गन्धक जारित या पारदभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वङ्गभस्म ये ५ औषधियाँ समभाग मिला, धतूरा, भांग, मुलहठी, सेमलकी छाल और नागरबेलके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार दूध, घी, मक्खन, मलाई अथवा शहदके साथ लेवें।

उपयोग—यह रस अत्यन्त कामोत्तेजक और वीर्यवर्द्धक है। अण्डकोष फलवाहिनी और शुक्रवाहिनीकी निर्बलतासे आई हुई नपुंसकता, मानसिक दोषसे होने वाली नपुंसकता, स्मृतिनाश, निद्रानाश, वीर्यका पतलापन, इन्द्रियकी शिथिलता स्त्रियोंके बीजकोष (Ovaries) के विकास न होने वाला बन्ध्यत्व, उपदंश अथवा सुजाकके विकारसे गर्भाशय दूषित होकर होने वाला योनिस्राव, स्त्रियोंके नये अस्थिक्षय (हड्डी कमजोर हो जाना), शुक्रमेह, लालामेह, अथवा और प्रमेहके कारणसे होने वाली नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करने वाली औषधियोंमें पुष्पधन्वा रस प्रथम श्रेणी माना गया है।

नपुंसकत्व अनेक कारणोंसे होता है। इनमें अण्डकोष, फलवाहिनियां, शुक्राशय, शुक्रवाहिनियां आदिका योग्य विकास न होना, यह भी एक हेतु है। यदि इन अण्डकोषादिमें वैगुण्य होनेसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वाका उपयोग होता है। इससे पुरुषोंके अविकसित अण्डकोष और स्त्रियोंके अविकसित बीजाशयका योग्य विकास होता है। इस तरह फलवाहिनियां और शुक्रवाहिनियां मोटी और भारी हो जानेसे शुक्रवहन कार्य या रजोवहन कार्य योग्य न होनेसे नपुंसकता आई हो, तो इस रसके सेवन से इन वाहिनियोंका विकार कम होकर नपुंसकता दूर होती है।

अनेक व्यक्तियोंको मानसिक कारणोंसे कथन मात्रकी या कुछ अंशमें आई हुई नपुंसकता इस रसके सेवनसे दूर हो जाती है। अन्य कारणोंसे बीच-बीचमें भासमान नपुंसकता और फिर चेतना आना, ऐसा संशय होनेपर पुष्पधन्वाका उपयोग उत्तम होता है।

अति व्यवाय और उससे उत्पन्न स्मृतिनाश या निद्रानाश, स्त्री समागम की तीव्र इच्छा होनेपर उसका अकस्मात् भेद हो जानेसे होने वाला स्मृतिनाश या निद्रानाश, इस विकारपर पुष्पधन्वाका अच्छा उपयोग होता है। यदि

अनिच्छासे ब्रह्मचर्य पालनके प्रयत्न करनेपर निद्रानाश हुआ हो, तो उसपर इस रसका उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये; वरना विपरीत परिणाम आता है।

अति व्यवायी मनुष्यको व्यवाय-विषयक या स्त्री सम्बन्धी विचार आनेपर शीर्षशूल उत्पन्न होकर रेत: स्खलन हो जाता है फिर शीर्षशूलकी निवृत्ति होती है। यह स्खलन इन्द्रिय शैथिल्यावस्थामें ही होता हो, तो उसपर इस औषधिका उत्तम उपयोग होता है। स्त्री सम्बन्धी ध्यान होकर उन्माद या आक्षेपकी प्राप्ति हो, तो इस रसको ब्राह्मीके सदृश शीतवीर्य अनुपानके साथ देना चाहिये।

स्त्रियोंके बीजाशयों (Ovaries) का योग्य विकास न होनेसे उत्पन्न होनेवाले वंध्यत्वपर यह औषध उत्तम प्रकारसे कार्य करती है। इसी हेतुसे यदि जननेन्द्रियके अन्य अवयवका पूर्ण विकास न होनेसे ग्राम्य-धर्मके सुखास्वादका अभाव रहता हो तो उसपर भी पुष्पधन्वाका उत्तम उपयोग होता है। मनोव्याघातसे यह विकार उत्पन्न हुआ हो, तो उसपर भी यह लाभदायक है। सुजाक या उपदंशके हेतुसे गर्भाशय दुष्ट होकर योनिमुखसे स्राव होता हो और बीजकोष पर्यन्त दुष्टि फैल गई हो, और उसके विविध लक्षण प्रतीत होते हों, तो उसपर अनेक औषधियोंमें पुष्पधन्वाको विशेष महत्व दिया जाता है।

स्त्रियोंके उत्पन्न होने वाले निम्न प्रकारके अस्थिक्षयमें पुष्पधन्वा उत्तम लाभदायक है इसमें अस्थिमें मृदुता आती है। विशेषत: नितम्बास्थि मृदु होनेपर चलनेमें विलक्षण गति होती है, मुड़कर चलना पड़ता है, पैरको उठाकर आगे बढ़ाना पड़ता है; परिश्रम मालूम पड़ता है; क्वचित् अन्य स्थानोंकी हड्डियोंपर भी गांठें हो जाती हैं। यह विकार अति जीर्ण हो, एवं अशक्त और निर्बल स्त्री, जो बार-बार सगर्भा होती रहती हो, उसे यह विकार हुआ हो, साथ-साथ अन्य इन्द्रियां भी अति क्षीण हो गई हो, तो नागभस्मका उपयोग करना चाहिये। किन्तु विकार अति पुराना न हो, मनोव्याघात आदि कारण स्पष्ट हों; या मानसिक विकृतिके लक्षण अधिक हों, तो यह उत्तम कार्य करता है।

प्रमेह या मधुमेहके उपद्रव रूपसे या इन रोगोंके लक्षणोंमें एक व्यभिचारीके लक्षण रूपसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वा उपयोगी है। शुक्रमेह और लालामेहपर यह अत्युत्तम है।

संक्षेपमें पुष्पधन्वा रस अण्डकोष आदि अवयवोंको शक्तिदायक, उत्तेजक, वायुकी पूर्ति कम होनेसे उत्पन्न शिथिलताको नष्ट करनेवाला, अण्ड-

कोषमें अन्तःस्राव बढाने वाला, किञ्चित स्तम्भक, शक्तिवर्द्धक और वृष्य औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

कितने ही निर्बल और शिथिल मांसपेशीवाले रोगियोंको केवल पुष्पधन्वा रस देनेसे योग्य लाभ प्रतीत नहीं होता। उनको मधुमालिनी वसन्त साथमें मिलाकर देनेपर आशातीत गुण मिल जाता है।

कितने ही ध्वजभंगसे पीड़ित रोगियोंमें रक्तके भीतर कुछ अंशोंमें मूत्रविष बना रहता है; उनको जलनके साथ बार-बार मूत्र आता रहता है। स्वभावमें उग्रता, निद्रामें विकृति, बार-बार स्वप्नदोष हो जाना और मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन रोगियोंमें स्थानीय शिथिलताके अतिरिक्त रक्तादि धातुओंमें भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। पहिले उनके रक्तको निर्दोष बनाये बिना यदि पुष्पधन्वा रस दिया जायगा तो कुछ भी गुण नहीं होगा; विपरीत हानि ही होगी। मानस उत्तेजना बढ़कर स्वप्नमें शुक्रस्राव होता रहेगा, शुक्र अधिक पतला भी बन जायगा और स्तम्भनशक्ति नष्ट हो जायगी। उनको पहिले चन्द्रप्रभा (बड़े गोखरू और शीतलमिर्च) के क्वाथसे २-४ मास तक सेवन करना चाहिये तथा मूत्रेन्द्रियपर कपूरके तलकी पट्टी रखकर स्थानिक चेतनाधिक्यको शान्त करना चाहिये। फिर पुष्पधन्वा (मधुमालिनीसह) देना चाहिये।

सूचना—जीर्ण और अधिक अशक्त रोगियोंको यदि मात्रा अधिक दी जायगी, तो दुष्प्रतिक्रिया होकर हानि पहुँचेगी। अतः कम मात्रामें अधिक काल तक औषधि सेवन करानी चाहिये।

(१५८) मृगनाभ्यादि वटी

विधि—सोनेके वर्क १।। माशे, मोतीकी पिष्टी ६ माशे, चांदीके वर्क ४।। माशे, कस्तूरी ३ माशे, केशर ६ माशे, वंशलोचन १०।। माशे; छोटी इलायचीके बीज ७।। माशे, जायफल, ९ माशे और जावित्री १ तोला लें। पहिले मोती पिष्टीके साथ सोने और चांदीके वर्कोंको मिलावें। बादमें अन्य दवाओंका कपड़छन चूर्ण मिला नागरबेलके पानका रस डाल, दो दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (स्वा० र०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार दूध, या मलाईके साथ लें।

उपयोग—इसके सेवनसे वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुविकार, प्रमेह, क्षय, श्वास, मन्दाग्नि ये विकार दूर होते हैं। देह नीरोग बनती है तथा बल, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वीर्य और आयुकी वृद्धि होती है।

यह वटी वातवहानाड़ियाँ और रक्तवाहिनियां, दोनोंको लाभ पहुँचाती है। इस वटीमें सुवर्ण मुक्ता आदि शीतवीर्य औषधियोंका प्राधान्य होनेसे यह उष्ण प्रकृति वालोंको विशेष अनुकूल रहती है, एवं पुरुष और

स्त्रियोंको उष्ण ऋतुमें भी निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

सुजाक, उपदंश या पित्तप्रकोप होनेपर पेशाब बार-बार पीले रंगका थोड़ा-थोड़ा होता रहता है। रक्तमें विष वृद्धि होकर नेत्रमें दाह, मस्तिष्क में भारीपन चक्कर आना, तन्द्रा, आलस्य, मन्दाग्नि और निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर इस वटीके सेवनसे सब लक्षणोंका शमन होकर वीर्य शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बन जाता है।

मानसिक आघात, चिन्ता, अधिक प्रवास, चाय, गांजा या तमाखूका अधिक सेवन आदि कारणोंसे मस्तिष्क जब निर्बल हो जाता है, तब निद्रा-नाश स्मरणशक्तिमें न्यूनता, निकम्मे विचार आते रहना, उदासीनता, अरुचि, मलावरोध आदि विकार उत्पन्न होने लगते हैं, उनपर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

गरम पदार्थोंके अति सेवन या अधिक स्त्री समागमसे वीर्य पतला और उष्ण हो जाता है, फिर बार-बार पेशाबके साथ निकलते रहनें या स्वप्नमें शुक्रपात होते रहनेसे निस्तेजता और उदासीनता प्रतीत होने लगती है, अन्य धातुओंका क्षय होता है, तथा थोड़ा कार्य करनेपर थकावट आती है, उसपर यह वटी अति हितकर है।

अधिक मानसिक परिश्रमसे वातवाहिनियाँ और वातवह केन्द्र निर्बल हो जाते हैं। फिर सुस्ती बढ़ जाती है, स्मरणशक्ति घट जाती है, और मन चितातुर रहता है, ऐसी परिस्थितिमें इस वटीके सेवनसे मस्तिष्क और वातवह यन्त्र सबल होकर सब विकार दूर हो जाते हैं।

उपदंश सुजाक या मधुमेह होनेपर जब शरीरके घटक शनैःशनैः गलते जाते हैं, रक्तमें उपदंश आदिके कीटाणु या विषका प्रवेश होता है, अथवा मधुमेहसे रक्तमें शर्करावृद्धि फिर मूत्रविष वृद्धि होती है; पश्चात् विष फैलनेसे विविध अवयवोंमें दाह होता रहता है या शूल निकलता रहता है क्वचित् सूक्ष्म ज्वरके समान शरीर गरम रहता है, ऐसे रोगमें इस वटीका सेवन लाभदायक है।

इन रोगोंके हेतुसे अण्डकोष और शुक्राशयकी वातवाहिनियाँ या सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ विकृत होकर यदि नपुंसकता आ गई हो, तो वह भी इस औषधसे दूर हो जाती है।

संक्षेपमें यह वटी रक्तमें रहे हुए विषको दूर करती है, वीर्यको शुद्ध शीतल और गाढ़ा बनाती है; मस्तिष्कको सबल बनाती है, मनको प्रसन्न करती है, और शरीरको स्वस्थ बनाती है।

(१५९) वीर्यशोधन वटी

विधि—चाँदीके वर्क वंगभस्म, प्रवालपिष्टी, शुद्ध शिलाजीत और गिलोयसत्व, सब एक-एक तोला तथा कपूर ३ माशे लें। सबको यथाविधि मिला शिलाजीतके जलमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें।

(चि० चं०)

सूचना—प्रवालपिष्टीके स्थानपर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलानेपर उष्णताको शान्त करनेमें विशेष गुण दर्शाती है।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी शुक्रमें रहे हुए दूषित घटकोंका शोधन करती है, उष्णताका शमनकर स्तम्भन शक्तिको बढ़ाती है तथा शुक्राशय और शुक्र-वाहिनीके वातप्रकोप और शिथिलताको दूर करती है। एवं इस वटीसे विविध प्रमेह, धातुदोष, मूत्ररोग, निर्बलता आदि विकार दूर होकर शक्ति की वृद्धि होती है।

शुक्र और शुक्रस्थानमें विकृति होनेके अनेक हेतु हैं। फिरंग, सुजाक-विष, तमाखूका सेवन, गरम-गरम चायका सेवन, अति मद्यपान, मिर्चादि का अति सेवन, अति स्त्री सहवास, हस्तमैथुन, क्विनाइनादि उग्र औष-धियोंका अधिक मात्रामें सेवन, जीर्ण पूयप्रधान रोग, दीर्घकाल तक मधुरा, विषम ज्वरादि रोगोंकी स्थिरता, मलावरोध और वातनाड़ियोको शिथिल करने वाले आहार द्विदल धान्यादिका अत्यधिक सेवन, सर्वदा सूर्यके ताप और अग्निकी उष्णतामें परिश्रम करना पचन होनेके पहले पुनः पुनः भोजन अथवा अन्त्रमें उष्णता (मलावरोध) बनी रहना और दिनमें शयन और रात्रिमें अनियमित जागरण आदि कारण हैं। इन कारणोंमेंसे जो कारण हों या अन्य जो कारण हों उन्हें दूर करना चाहिये। यदि मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न नहीं किया जायगा तो औषधिसे स्थिर लाभ या पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा।

यदि पूय या रक्तप्रकोपक इतर विष, विषमज्वरादिके कीटाणु, आम कफ मलादि जो रक्तको दूषित करने वाले हैं, उनमेंसे किसीका प्रवेश हो गया हो तो पहले उसे दूरकर रक्तप्रसादन करना चाहिये। क्योंकि रक्तमेंसे ही शुक्र बनता है। रक्त मलिन होनेपर शुक्र कभी शुद्ध नहीं बन सकता। अतः रक्त विकार नाशक औषधि चोपचीन्यादि चूर्ण, सारिवासव, रक्त-शोधक क्वाथ या और औषधिका सेवन पहले करना चाहिये।

फिरंग या सुजाक रोग पहले हो गया हो तो उसके कीटाणुओं और विषको नष्ट करना चाहिये। फिरंग विषको नष्ट करनेमें मल्लप्रधान औषधि अष्टमूर्तिरसायन, उपदंश सूर्य और अमीर रसादि तथा सुजाक विषको नष्ट करनेमें रौप्यभस्म, सुवर्ण वंग, गोक्षुरादि गुग्गुलु और चन्द्रप्रभा वटी व्यवहृत

होते हैं। चोपचीन्यादि चूर्ण इन दोनों रोगोंके विषपर तथा रक्तमें प्रवेशित पूय कीटाणुके विषपर हितकारक है। अतः इस वटीके सेवनके पहले अथवा साथ-साथ उक्त औषधियोंमेंसे विशेष अनुकूल औषधिका सेवन करना चाहिये।

फिरंग, सुजाक या अन्य मूत्रविकार होनेपर इस वटीके साथ अनुपान-रूपसे बड़े गोखरू १ तोला और शीतलमिर्च ६ माशेका क्वाथ (६ माशे शहद मिला हुआ) देना विशेष अनुकूल रहता है। इस अनुपानसे रक्तमें रही हुई उष्णता और विष मूत्रके साथ निकल जाते हैं। जिससे औषधि अपना कार्य सरलता पूर्वक करती है।

यदि पूयप्रकोपसे मंद-मंद ज्वर भी रहता हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गई हो, मूत्रमें कुछ जलन होती हो; तो चन्दनादि लोहका सेवन भी कराते रहना चाहिये। यदि मूत्रमें दाह अधिक हो तथा फोड़े फुन्सियां भी होते हों, तो रक्तशोधक क्वाथ अनुपान रूपसे देना चाहिये।

तमाखूका व्यसन—(खाना, पीना, सूघँना) वर्तमानमें बहुत बढ़ गया है। किशोर वयके विद्यार्थी और स्त्री समाजमें भी यह व्यसन प्रवेश कर रहा है। छोटी आयुमें व्यसन होनेपर शुक्रोत्पादक अवयव, शुक्रवाहिनी और शुक्राशय, ये सब दूषित हो जाते हैं। इस तरह जिन माताओंको तमाखूका व्यसन हो, उनकी सन्तानोंका मन, देह, रक्त और शुक्रादि धातुएँ सब स्वभावतः निर्बल रहती हैं। अतः इस भूलसे बचना चाहिये और शुक्र विकृति वालोंको यदि तमाखूका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। यदि तमाखू विष (निकोटिन) नित्यप्रति रक्तमें प्रवेश करता रहेगा, तो कोई भी औषधि शुक्रको शुद्ध और शीतल अधिक समय तक नहीं रख सकेगी। धूम्रपानके व्यसनीको इस वटीका सेवन धारोष्ण दूध या गरम करके शीतल किये हुये दूधके साथ कराना चाहिये। यदि मलावरोध भी सर्वदा रहता हो, तो रात्रिको ४-६ माशे ईसबगोलकी भूसी, समान शक्करके साथ मिलाकर औषधि और दूधके साथ लेते रहना चाहिये।

गरम-गरम चाय, गरम गरम भोजन, अत्यधिक मिर्च और अति मद्य-पानादि कारणोंसे रक्त रचना विकृति हो जाती है। उष्णता बढ़ जाती है तथा रक्ताणु निर्बल और निस्तेज बन जाते हैं। इस हेतुसे यदि शुक्रमें उष्णता और पतलापन आया हो, तो पहले मूल कारणको दूर करें फिर वीर्य शोधन वटी और चन्द्रकला रस मिलाकर धारोष्ण गोदुग्धके साथ सेवन करें।

शुक्रमेह, अधिक स्त्री सहवास, हस्तमैथुन अथवा स्वप्नदोषादि कारणों से वीर्यका अति क्षय हुआ हो और पतला हो गया हो, तो इस वटीका सेवन गिलोय, गोखरू, आंवलोंके क्वाथके साथ करना चाहिये। एवं मलावरोध

करने वाले भोजनका त्याग करना चाहिये। वीर्य शुद्ध होनेके पश्चात् आवश्यकता रहे तो वीर्यवर्द्धक औषधि शतावर्यादि चूर्ण, कौंचपाक या वसन्तकुसुमाकर रसका सेवन कराना चाहिये तथा तिलाकी मालिश भी करानी चाहिये।

ज्वरविष या क्विनाइन आदि उग्र औषधियोंके विषसे रक्तमें उष्णता आई हो और फिर उसी कारणसे शुक्र जलसदृश पतला हो गया हो, स्तम्भनशक्ति नष्ट हो गई हो और देह कमजोर हो गई हो, तो लोह प्रधान संशमनी वटीके साथ इस वटीका सेवन कराना चाहिये। इस विकारमें प्रवाल के स्थानपर सुवर्णमाक्षिक मिलाकर बनाई हुई वीर्यशोधन वटी विशेष कार्य करती है।

पुरुषोंके समान यह वटी स्त्रियोंको भी ज्वरादिसे उत्पन्न रक्तकी उष्णतापर दी जाती है। सगर्भावस्थामें भी इसे निर्भय रूपसे दे सकते हैं।

सूर्यके तापमें अत्यधिक परिश्रम करके तुरन्त जलपान करना, वातनाड़ियोंकी दूषित करने वाला आहार, मलावरोध, अपचनमें भोजन (अध्यशन) आदि कारणोंसे उष्णता और पतलापन आ जाता है, किसी किसीको स्वप्न दोष भी हो जाता है, मल पीला और मैला हो जाता है तथा स्वभाव क्रोधी बन जाता है। यह कारण होनेपर मूल कारणको दूरकर फिर माक्षिकमिश्रित वटीका सेवन कुछ दिनों तक करनेपर शुक्र सबल और शुद्ध बन जाता है।

रक्तमें उष्णता लम्बे समय तक रहनेपर देहमेंसे वसा और मज्जाका ह्रास होता है। वसाकी न्यूनतासे त्वचा शुष्क हो जाती है। मज्जाकी कमीसे सन्धि स्थानोंमेंसे कटकट आवाज निकलती रहती है तथा थकावट आ जाती है। फिर देह कृश हो जाती है। यह विकृति पुरुष और स्त्री; दोनों को होती है। इन दोनोंके लिये यह वटी हितावह है। अनुपान ह्रीवेरादि क्वाथ विशेष अनुकूल रहता हैं।

वातप्रकोप या वातपित्तप्रकोपक होनेपर मंदाग्नि होकर शुक्रमेहकी प्राप्ति हो जाती है फिर शनैः शनैः शरीर गलता जाता है। त्वचा श्याम हो जाती है। थोड़ा परिश्रम होनेपर शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। इस विकारपर इस वटीका सेवन कराया जाता है। अनुपान छोटी इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व, आंवलेका चूर्ण और शहद अथवा न्यग्रोधादि क्वाथ।

इस वटीमें मिला हुआ रौप्य रसायन, पूयकीटाणुनाशक, वृक्कबलवर्द्धक और शुक्रशोधक गुण दर्शाता है। यह शुक्रोत्पादक स्थान और शुक्राशयको पुष्ट करता है तथा शुक्रको भी सबल बनाता है। प्रवाल और माक्षिक दोनों शीत वीर्य हैं। इनमें प्रवाल अस्थिपोषक और माक्षिक रक्तपौष्टिक है। शिलाजीत रसायन, विकृतिनाशक और बल्य है। गिलोयसत्व शीतवीर्य

और त्रिदोषहर होनेसे वीर्यको शीतल, शुद्ध और सबल बनाता है। कपूर कीटाणु और विषका नाशक, बल्य और शामक है।

(१६०) वृष्य वटी

विधि—मल्लभस्म १ रत्ती, अफीम ६ माशा, जुन्देबेदस्तर २ माशा, अम्बर १ रत्ती और केसर आठ माशा मिलाकर गौदुग्धमें ६ घण्टे खरल करके ½-½ रत्ती की गोलियाँ बनावें। ऊपर सोनेके वर्क लगावें अथवा एक माशा सुवर्ण भस्म मिला देनेसे विशेष फल प्रदर्शित होगा।

मात्रा—१ से २ गोली, सुबह दूधके साथ।

उपयोग—यह वटी नपुंसकताको यथा शीघ्र नष्ट करती है और शक्ति बढ़ाती है।

(१६१) वीर्यस्तम्भन वटी

प्रथम विधि—कस्तूरी और सोनेके वर्क १-१ माशा, चांदीके वर्क, इलायची, जुन्देबेदस्तर १-१ तोला, नरकचूर, दरूनज अकबरी, बहमन लाल, बहमन सफेद, जटामांसी, लौंग, तेजपत्र ६-६ माशे, पीपल और सोंठ ३-३ माशे लें। जुन्देबेदस्तरको शहदमें घोटें फिर क्रमशः वर्क, कस्तूरी और शेष वस्तुओंका कपड़छन चूर्ण मिला ३ घण्टे शहदमें खरल करके ४-४ रत्तीकी गोलियां बांधें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ गोली, शहदमें मिलाकर सुबह-शाम लेवें। ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग—तीसरी विधिमें लिखा है।

द्वितीय विधि—चन्द्रोदय १ माशा, कस्तूरी १ माशा, केशर २ माशा, जुन्देबेदस्तर ८ माशे, लोबानके फूल २ माशे, जावित्री २ माशे और अकलकरा २ माशे लें। प्रथम जुन्देबेदस्तरको शहदमें घोटें। फिर चन्द्रोदय और कस्तूरी मिलावें, बादमें शेष दवाइयोंका बारीक चूर्ण मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें।

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें २ बार दूधके साथ लें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और प्रमेह आदि दूर होकर स्तम्भनशक्ति और शरीर बलकी वृद्धि होती है।

तृतीय विधि—जायफल, लौंग, जावित्री, केशर, छोटी इलायचीके दाने शुद्ध अफीम और अकलकरा, ये सब १-१ तोला और भीमसेनी कपूर ३ माशे लें। इन सबको मिलाकर नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ गोली, रात्रिको सोनेके आधे घण्टे पहले, मिश्री मिलाये दूधके साथ लेवें। कब्ज न हो, तो सुबह भी ले सकते हैं।

उपयोग—इस वटीसे शीघ्रपतन दूर होता है, वीर्य शुद्ध और गाढ़ा

बनता है, तथा पचनक्रिया बलवान और शरीर तेजस्वी बनता है।

सूचना—इस गुटिकामें १ तोला रससिंदूर या शुद्ध हिंगुल मिला लेनेसे यह वटी अधिक लाभ पहुँचाती है। हम रससिंदूर मिलाकर उपयोगमें लेते हैं।

(१६२) महावातराज रस

विधि—धतूरेके शुद्ध बीज, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, प्रत्येक २-२ तोले, अभ्रकभस्म, दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल, इलायचीके बीज, भीमसेनी कपूर, कालीमिर्च, चन्द्रोदय या रससिंदूर प्रत्येक १-१ तोला और अफीम १२ तोला लें। पहिले पारद-गन्धककी कज्जलीकर लोहभस्भ, अभ्रक भस्म और चन्द्रोदय मिलाकर खूब मर्दन करें। फिर शेष अन्य औषधियोंका कपड़छन चूर्ण ओर अन्तमें अफीम मिलावे। पश्चात् सबको धतूरेके रसमें एक दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। यह प्रयोग सुजानगढ़के स्व० यतीजी महाराज का है। सिद्धभैषज्य मंजूषाकारने भी इसे अपने ग्रन्थमें ले लिया है।

(स्व० पं० श्री गोवर्द्धनजी छांगाणी, भिषक्केसरी)

मात्रा—½ से १ रत्ती, जलके साथ या रोगानुसार, अनुपानके साथ दिनमें २ बार दें। अतिसार आदिमें शहद और न्यूमोनिया, कफज्वर, आदिमें अदरकके रसके साथ दें। इसी तरह अन्य रोगोंपर उचित अनुपानोंकी योजना करें।

उपयोग—यह रस अनुपान भेदसे कास, हिक्का, अतिसार, संग्रहणी, मधुमेह, प्रमेहपिटिका आदि रोगोंमें बहुत उपयोगी है। कफज्वर, श्वसनक सन्निपात (Pneumonia), प्रवाहिका, जीर्ण पक्व आमातिसार ओर रक्तातिसार आदिमें रामवाणके समान काम करता है। श्वास-कास आदि में उत्पन्न पार्श्वशूलको यह आधे घण्टेमें शमन करता है। मधुमेहमें शक्कर जाती हो, रोग बढ़ गया हो, साथमें हृदय विकृति, कम्प और प्रमेहपिटिका भी हो गये हों, तब इन उपद्रवोंका शमन करनेके साथ मधुमेहको दूर करता है।

आमवात, निमोनिया, उरस्तोय, वृक्करोग, मधुमेह ओर सूतिका ज्वर आदि रोगोंमें हृदयावरण प्रदाह उपद्रव रूपमें उपस्थित होता है। फिर रोगीकी छातीमें खिचाव होता है, हृदयमें बार-बार शूल चलता है और रोगी हृदयविकारसे अति पीड़ित होता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको शान्ति देने और शूलका शमन करनेके लिए तुरन्त उपचार करना चाहिये। मलावरोध हो तो एरण्ड तैल या ग्लीसरीनको पिचकारी द्वारा उदरशुद्धि करके महावातराज रस पूरी मात्रामें अर्थात् १ रत्ती तक दें। अनुपान ईसबगोल की भूसी ६ माशे और शक्कर ६ माशे। पहले गोली निगलवा देवें, ऊपर

३-४ बार शक्कर मिश्रित भूसी थोडे जलके साथ देवें। यदि १ घण्टेमें शान्ति न हो, तो पुनः आधी मात्रामें महावातराज रस देनेसे आशुकारी शूल शमन हो जाता है।

इस रसमें मुख्य औषध अहिफेन होनेसे इसका विविध अविराम ज्वर (न्यूमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा आदि) तथा विसर्प, विस्फोटक आदि प्रादाहिक ज्वरोंमें उपयोग होनेपर उपकार होता है। इन ज्वरोंके उपद्रवरूप प्रलाप, स्थिरता अनिद्रा, अतिसार, तीव्रवेदना, शूल और भ्रम आदिके निवारणमें यह अच्छा कार्य करता है; किन्तु अहिफेनका उपयोग किस किस अवस्था विशेषमें निषिद्ध है, इन बातोंको लक्ष्यमें रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये यथा (१) अनिद्रा है किन्तु उसके साथ प्रलाप या अचेतना नहीं है; अथवा (२) अस्थिरता और प्रलाप है; उसके साथ नाड़ी निर्बल है। मुख मण्डल और नेत्र लाल नहीं हैं। तथा जिह्वा शुष्क और गुलाबी नहीं है; आर्द्र और निर्मल हैं तो इन दोनों प्रकारके लक्षणोंपर इस रसायनको प्रयुक्त करना चाहिये।

उदरमें यदि मल संगृहीत है, तो पहिले बस्ति द्वारा कोष्ठशुद्धि करके फिर इसका प्रयोग करना चाहिये। इन्फ्लुएञ्जाकी प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग निषिद्ध है; किन्तु मल और कफ सरलतापूर्वक निकलनें लगें और फुप्फुसमें रक्त संग्रह न होनेपर भी वेदना, प्रलाप उपस्थित हुये हो तो इसे प्रयुक्त करसकते हैं।

यदि दुर्वल रोगीके सन्निपातमें प्रलाप, खुजली, अस्थिरता, अनिद्रा और अधिक अतिसार आदि लक्षण उपस्थित हों, तो यह रस महोपकारक होता है फिर भी दो बातोंकी ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। (१) नाड़ी पुष्ट और कठिन हो, मुखमढणल और नेत्र उज्वल और लाल हों, तो यह रस नहीं देना चाहिये। (२) चक्षुकी पुतली कुछ आकुंचित हो तो कदापि अफीमप्रधान औषधका उपयोग नहीं करना चाहिये, व्याधिवृद्धि हो जायगी।

यदि अन्त्रावरण (उदर्याकला) प्रदाह, आमाशय-प्रदाह, अन्त्रप्रदाह आदि कारणोंसे रोगोत्पत्ति हुई हो तो अफीम प्रधान औषध निर्भय होकर प्रयुक्तकी जाती है। प्रदाहकी चिकित्सामें प्रधान उद्देश्य यह है कि प्रादहिक स्थानको शान्ति मिले, उस अवयव (इन्द्रिय) की कोई क्रिया न होनी चाहिये उसे अधिक परिश्रम न होना चाहिये; अन्त्र और अन्त्रावरण-प्रदाहमें अफीम द्वारा इस उद्देश्यकी सहज सिद्धी होती है। अफीम-प्रधान औषध सेवनसे अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कलाकी वातनाड़ियोंकी ऊग्रता शमन होती है; आन्त्रिक पेशियोंकी क्रियामें स्थैर्य आ जानेसे कोष्ठबद्धता हो जाती है। इन सब प्रदाहोंमें स्वभावतः इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये चेष्टा होती है। उस कार्यमें अफीम सहायता पहुँचाती है। इस हेतुसे इस रससे सत्वर लाभ हो जाता है।

अतिसार और प्रवाहिकाके वेग, शूल, वेदना, कुंथन आदिके निवारणमें अफीम महौषध होनेसे यह रसायन सत्वर लाभ पहुँचा देता है। एक प्रकार के अजीर्ण रोगमें अतिसार होता है। उसमें बहुधा आमाशय और अन्त्रकी मांसपेशियोंकी क्रिया अत्यन्त बढ़ जाती है। इसी हेतुसे आहार द्रव्य उदरस्थ होनेपर थोड़े ही समयमें अर्द्ध परिपक्व अवस्थामें ही आमाशयके मुद्रिकाद्वारमें से ग्रहणीके भीतर प्रवेश कर जाता है। फिर वह उग्रता उत्पन्नकर अन्त्रकी मल निर्गमन क्रियाओंको बढ़ा देता है। सम्यक् जीर्ण होनेके पहिले ही भेदन हो जाता है। रोगी उदरको खाली अनुभव करता है और क्षुधा लगी है, ऐसी भावना हो जाती है। एवं भोजन कर लेनेपर क्षणिक शान्ति प्रतीत होती है; किन्तु आहार-द्रव्य शोषित होनेके पहिले मलरूपसे निर्गत हो जाता है इस हेतुसे देहको योग्य पोषण नहीं मिलता और विविध वेदना प्रद लक्षण प्रकाशित होते हैं। ये लक्षण चिरकारी अजीर्ण रोगमें सामान्यतः ६ से १२ वर्षकी आयु वाले बालकोंको देखनेमें आते हैं। यदि इन लक्षणोंके साथ मुँहमें छाले, खट्टी डकारें, आमाशयमें दाह ये लक्षण न हों तो भोजनके १५ मिनट पहले इस रसकी एक मात्रा दे देनेसे आमाशय और अन्त्रकी माँसपेशियोंकी क्रिया ठीक हो जाती है जिससे आहार-द्रव्य निर्गमनमें विलम्ब होता है और आहार-पचन होनेके लिये समय मिल जाता है। यदि कीटाणु प्रकोप हो, उबाक होती हो ज्वर भी रहता हो तो इस रसकी अपेक्षा वातेभकेसरी विशेष हितावह माना जाता है और आमाशयके रसस्रावमें उग्रता और अम्लता अधिक हों तो ग्रहणी-कपाट रस देना चाहिये।

नाग विषजशूल रोगमें शूल और आक्षेप-निवारणके लिये यह रस अति उपयोगी है। अनुपान रूपसे एरण्ड तैल देना चाहिये।

आमाशयकी वातवाहिनियोंकी उग्रताके हेतुसे वमन और हिक्का होनेपर यह रस तत्काल लाभ पहुँचाता है। मात्रा बहुत कम देनी चाहिये और २-२ घण्टेपर ३-४ बार देनी चाहिये।

मूत्राश्मरी या पित्ताश्मरीका मूत्र-प्रणाली या पित्त-प्रणालीमें प्रवेश होनेपर भयानक वेदना होती है। वह इस रसकी पूर्ण मात्रा देनेसे निवृत्त हो जाती है। यदि एक मात्रासे वेदनाका शमन न हो तो आधसे एक घण्टा पश्चात् पुनः दूसरी बार एक मात्रा दें। साथ-साथ मूत्राश्मरीके रोगीको उष्ण जलपूर्ण टबमें बिठावें, जिससे सब यातना सहज दूर हो जायगी। पित्ताश्मरीमें रोगीको गरम जल (सहन हो सके ऐसा) पिलाया जाता है जिससे सत्वर वेदना दूर हो जाती है।

सूचना—इस औषधिमें आधी मात्रामें अफीम मिलायी है। इस लिये सम्हालकर प्रकृतिका विचार करके उपयोग करना चाहिये।

(१६३) कालारि रस

विधि—शुद्ध पारा ३ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, शुद्ध बच्छनाभ ३ तोले कालोमिर्च ५ तोले, पीपल १० तोले, लौंग ४ तोले, धतूरेके शुद्ध बीज ३ तोले, सोहागेका फूला ५ तोले, जायफल ५ तोले और अकलकरा ३ तोले लें। पहिले पारद गन्धककी कज्जलीकर अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलावें। फिर करीर (कैर) के स्वरस (ताजे कैरकी बारीक शाखाओंको जलके साथ कूटकर रस निकाल लें) और अदरकके रसमें २-२ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। योग चिंतामणिकारने "करीरार्द्रकनिम्बुकै" कहकर नींबूके रसकी भावना भी बताई है। परन्तु हमारी गुरुपरम्परामें कैर और अदरकके रसकी ही भावना देनेका रिवाज है।

(स्व० पं० श्रीगोवर्द्धनजी शर्मा छांगाणी)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ से ३ वार गरम जल अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कतिपय चिकित्सक अदरकके रसके साथ भी देते हैं। सन्निपातोंमें प्रलाप आदि लक्षण होनेपर वैद्यजीवनोक्त अर्कादि क्वाथ या योगरत्नाकर के तगरादि कषायके साथ दिया जाय तो उन विकारोंको दूर करता है।

उपयोग—यह रस सन्निपातमें उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणोंका शमन करनेमें बहुत उपयोगी है। यह कफप्रधान और वात प्रधान सन्निपातमें विशेष हितकारी है। अन्त्रके शोधन और वातकफ को शमन करनेके साथ सेन्द्रिय विषको सत्वर जलाकर रोगको दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह रस कफज्वर तथा शीतज्वरपर भी तत्काल गुण दर्शाता है।

(१६४) कफकर्त्तन रस

विधि—अपामार्ग पञ्चाङ्ग १ सेर, जावित्री २ तोले, छोटी इलायची साबुत, जायफल और लौंग १-१ तोले तथा कालीमिर्च ३ तोले लें। सबको कड़ाहीमें डालकर जलावें। निर्धूम राख हो जानेपर खरलकर पीस लें। फिर १ तोला चरसकी भस्म मिलावें। अभावमें गांजा और तम्बाखूके चिलममें रहे गुलकी निर्धूम राख बनाकर मिला लें। बादमें सोहागेका फूला १ तोला और पारे-गन्धककी कज्जली ६ माशे मिला अच्छी प्रकार मर्दनकर लेवें। गोलियां बनाना हो तो १-१ रत्तीकी गोलियां अदरककी भावना देकर बना लें। (स्व० पं० श्री गोवर्द्धन जी छांगाणी)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक। दिनमें ३-४ बार नागरबेलके पानके साथ चबाकर धीरे-धीरे निगलते रहे।

उपयोग—यह रस खांसी और श्वास रोगका शमन करनेमें अच्छा उपयोगी है। जमे हुए कफको बाहर निकाल देता है। सूखी और गीली दोनो

प्रकारकी खांसियोंमें अच्छा उपयोगी है। इसका उपयोग श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालयके धर्मार्थ औषधालय, नागपुरमें अनेक वर्षोंसे होता है। यह प्रयोग हमें एक संन्यासी महाराजसे मिला था उनके हम आभारी हैं। इसलिये कि यह प्रयोग दीनदुखियोंके लिये महोपकारी सिद्ध हुआ है।

(१६५) वातेभकेसरी रस

विधि—शुद्ध सोमल, कालीमिर्च, लौंग, शुद्ध बच्छनाभ, छुहारेकी गुठली, जायफल और करीरकी कोंपलें १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बड़के दूधमें मर्दनकर ½-½ रत्तीकी गोलियां बना लें। (सि० भैं० म०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रसको श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) में मिश्रीके साथ देनेसे तत्काल लाभ प्रतीत होता है। श्वास, कास और कफ प्रधान सन्निपातमें शहदके साथ और मरणासन्न बेहोशी अवस्था में १-१ रत्ती सफेद कत्था और अकलकरेके साथ देनेसे सत्वर कफप्रकोपका शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष विकृति दूर होते हैं, एवं रोगीकी रुकी हुई जुबान खुल जाती है। हिचकीमें मूलीके बीजोंके साथ, अतिसारमें छोटी हरड़, सौंफ और जीरेके साथ, रक्तप्रदरमें शहद या घीके साथ, शिर-दर्दमें नकछींकनीके साथ नस्य रूपसे, अफारामें अदरकके रसके साथ सेवन और नाभिपर मूककी मेंगनीका लेप करनेके लिये दें। एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषमज्वरोंमें गुड़के साथ, पित्तज्वरमें शक्करके साथ. नपुंसकतामें दूधकी मलाईके साथ, सुजाकमें गुलाबके गुलकन्द या शक्करके शर्बतके साथ तथा वाजीकरणके लिये जायफल और कस्तूरीके साथ देनेसे यह रसायन अच्छा चमत्कार दिखाता है। हमने इसका उपयोग सन्निपात, शीतज्वर आदि रोगोंपर अनेक बार किया है और यह फलप्रद प्रतीत हुआ है। (स्व. पं. श्री गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी)

(१६६) अर्धाङ्गवातारि रस

विधि—पारा २० तोले और ताम्रभस्म ४ तोलेको जम्भीरी नींबूके रसमें १ दिन खरल करें। रस सूख जानेपर शुद्ध गन्धक २० तोले मिला कज्जलीकर नागरबेलके पानोंके रसमें १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् गोला बाँधकर सुखा लें। बादमें हाँडी या सरावमें संपुट कर ३ कपड़मिट्टी करें। तत्पश्चात् जमीनमें खड्डेके भीतर संपुट रख उसपर ४ या ६ अंगुल मिट्टी दबा दें फिर खड्डेमें २-३ गोबरीकी अग्नि जलावें। १२ घण्टे तक बराबर १-१ गोबरी डालते जायँ। स्वांग शीतल होनेपर संपुटको खोल औषधि निकाल त्रिकटुके क्वाथकी ३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (र० र०)

वक्तव्य—इस रसका पाक योग्य न हुआ हो, गन्धक शेष रह गया हो तो पुन: संपुट करके कपोतपुट देना चाहिये। सामान्यत: गोलेका वजन लगभग १८ तोले रहना चाहिये।

मात्रा—१ से २ रत्ती। त्रिकटुके चूर्ण और शहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे अर्द्धाङ्गवात तथा एकांगवात दूर होते है। अर्धाङ्गवातमें जो थोड़े थोड़े दिनोंके पश्चात् बार-बार कम्प (झटका) आता रहता है उसका भी इसके सेवनसे शमन हो जाता है।

यह रसायन उष्ण, दीपन, पाचन, कफहर, विषनाशक, मांसपेशियोंके लिये बल्य और रक्तवाहिनियोंमें रहे हुए दोषका संशोधन करने वाला है। अत: यह कफप्रधान प्रकृति वाले, मेद बढ़े हुए मनुष्य, अत्यधिक चाँवल सेवन करने वाले और अति शीतल जलपान करने वालोंके लिये अमृतके समान उपकारक है।

अर्धाङ्गवातमें एकांगवीर और अर्धाङ्गबातारि ये दो रस विशेष व्यवहृत होते है। वातप्रकृति वाले उपदंश विषसे पीड़ित और शरात्रीके लिये एकांग वीरका प्रयोग अधिक होता है। एवं पित्तप्रकृति वाले, निर्बल हृदय और अधिक मेदवाले तथा जिनकी रक्तवाहिनियोंमें आम या कफका संग्रह हो उनके लिये अर्धाङ्गवातारि हितावह हैं।

यह रसायन मन्दाग्नि, निर्बल यकृत् वाले और अधिक मेद वालोंके लिये उपयोगी होनेसे अनुपानमें त्रिकटु और शहदकी योजनाकी है एवं आममेद जल जानेके पश्चात् वातनाड़ियोंके बलकी वृद्धिके लिये महारास्नादि क्वाथ दशमूल क्वाथ (गिलोय, एरंडमूल, रास्ना, सोंठ और देवदारू मिलाकर) या देवदार्व्यादि क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है।

यदि रोगीको पहले फिरंग रोग हो गया हो तो (मल्लसिन्दूर) (नं०२) अथवा चोपचिन्यादि चूर्ण इस रसायनके साथ देते रहना चाहिये।

यह रसायन हृदयपेशी और रक्तवाहिनियोंकी दीवारोंको बल देता है और पचन-क्रिया सुधारता है। जिससे कच्चा रस जो रक्तमें प्रवेशित होकर रक्तवाहिनियोंके मार्गका रोध करता है उसकी उत्पत्ति या प्रवेश बन्द हो जाता है। एवं विषघ्न और कीटाणुनाशक गुणके हेतुसे रक्तमें रहे हुए कीटाणु और विषका नाश होकर रक्तप्रसादन हो जाता है फिर आक्षेप या कम्पकी उत्पत्ति नहीं होती केशिकाओंके टूटनेकी आदत दूर हो जाती है तथा रक्त-वाहिनियां और मासपेशियोंके बलकी वृद्धि होती है और पक्षाघात दूर हो जाता है।

पक्षाघात रोग नया होनेपर लाभ थोड़े ही दिनोंमें हो जाता है। यदि ८-१० मास हो गये हों और केन्द्रस्थान मृत न हुआ हो तो लाभ पहुँच सकता है; किन्तु समय लगता है। ऐसे जीर्ण रोग वालेको मात्रा कम देनी

चाहिये। कारण उनकी रोग निरोधक शक्ति अति कमजोर हो जाती है। अनुपान महारास्नादि क्वाथ।

अर्धाङ्गवातके समान मुखमण्डलका पक्षाघात (अर्दित), हाथ पैर या अंगुलियोंका पक्षाघात, गृध्रसी, कम्पवात, आक्षेप (बहिर्याम, अन्तरायामादि) वात इन सबपर हितकारक है। जिस वात रोगमें पीड़ित स्थानकी चेतनाका लोप हो गया हो उसपर बहुधा लाभ नहीं पहुँच सकता।

सूचना—(१) इस रसायनमें ताम्रकी प्रधानता है। अतः इस औषधिके साथ दूधका सेवन नहीं करना चाहिए। जिन रोगियोंको तक्र अनुकूल हो उनको देनेसे यह रसायन विशेष लाभ पहुँचाता है।

(२) चायका व्यसन हो तो अर्धाङ्गवातारि रस लेनेके १ घण्टे पहले या २ घण्टे बाद देवें। उसमें दूध भी कम मिलावें। शराबका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

(३) वृक्कदूषित हों तो यह रस नहीं देना चाहिये।

(४) मात्रा, शक्तिका विचार करके कम देनी चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर दुष्प्रतिक्रिया होकर वातवाहिनियां और कैशिकाऐं टूट जाती हैं।

(१६७) अचिन्त्यशक्ति रस

विधि—शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल और शुद्ध हिंगुल १-१ तोला मिला करेलेके १॥ सेर रसमें खरलकर ½-½ रत्तीकी गोलियां बनालें। करेलेका रस थोड़ा-थोड़ा मिलाकर १॥ सेर आत्मसात् कराना चाहिये।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ बार, बलाबल देखकर देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रसको श्वसनक सन्निपात (Pneumonir) फुफ्फुस शोथ, श्वास, कास, कफज्वर और सन्निपात आदिमें शक्करके साथ देनेसे सत्वर चमत्कारिक लाभ दिखाता है। भोजनमें केवल दूध ही दें; अन्य भोजन नही देना चाहिये। रोगका वेग शान्त होनेपर थोड़े दिनों तक प्रातः सायं शृङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म १-१ रत्ती मिला, घृत शक्कर या केवल घृतके साथ चटाना चाहिये। श्वसनक सन्निपातके समान यह रसायन विषम ज्वरोंमें भी लाभ पहुँचाता है। सतत एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक इनपर सत्वर प्रभाव पड़ता है। पालीके ज्वरके दिनमें ३ समय औषध सेवन करनेपर बहुधा रुक जाता है। ज्वर रुक जानेपर भी ४-६ दिन तक इस रसका सेवन करते रहना चाहिये। अनुभव करनेपर यह रस वस्तुतः अचिन्त्यशक्तिशाली हो सिद्ध हुआ है। यह रस हमें सुजानगढ़के स्वर्गीय यतीजी महाराजके शिष्य पं० नारायणदत्तजो ज्योतिर्विद् कलकत्ता निवासी से प्राप्त हुआ है। हम उनके नितान्त कृतज्ञ हैं।

(स्व० पं० श्री गोवर्द्धनजो छांगाणी, भिषक्केसरी)

(१६८) क्षुद्बोधक रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूल, चव्य, पांचों नमक, डाँसरिया (अभावमें खट्टे बेर), अनारदाना, लोहभस्म, भीमसेनी कपूर सब समभाग लेवें। पहिले पारा-गन्धककी कज्जली करके लोहभस्म मिला दें। पश्चात् अन्य औषधियोंका चूर्ण मिला अम्लबेंतके कषाय, अदरकके रस, नींबूके रस और अजवायनके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

(स्व० पं० गोवर्धनजी छांगाणी भिषक्केसरी)

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ से ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसका उपयोग किसी भी रोगजनित अग्निमांद्यपर अच्छा होता है। भूख जल्दी खुल जाती है। ऐसा हमारा दीर्घकालसे अनुभव है। वातज और कफज अग्निमांद्य, बद्धकोष्ठ, अरुचि, उदरशूल और अपचन आदि विकार इसके सेवनसे दूर हो जाते हैं।

इस रसका उपयोग आमाशयके रसस्रावमें लवणाम्लकी न्यूनतासे उत्पन्न अग्निमांद्यपर होता है अर्थात् वातज और कफज विकारपर यह प्रयुक्त होता है। वातज विकारमें मलावरोध, कभी भोजनका पाचन, कभी पचन न होना आदि लक्षण होते हैं। कफज विकारमें आमोत्पत्ति, उदरमें भारीपन, मुंहमें मीठापन, जिह्वा मललिप्त रहना, उदरशूल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। चाहे यह अग्निमांद्य किसी भी रोगमें उत्पन्न हुआ है, कितने ही रोगियोंमें लवणाम्लस्राव अधिक होता है, उन्हें भी अग्निमांद्य हो जाता है। किन्तु उसे पैत्तिक अग्निमांद्य कहा है। पैत्तिक अग्निमांद्यमें विदग्ध अजीर्ण लक्षण, छातीमें जलन, तृषाधिक्य, खट्टी डकारें, स्वेद आदि होते हैं। उनपर इस रसका उपयोग नहीं होता।

तमक श्वाससे पीड़ित रोगीजो गरम-गरम चाय, गरम-गरम भोजन आदिका सेवन अधिकांशमें करते रहते हैं, उनकी पचन-क्रिया बिल्कुल मन्द हो जाती है। बहुधा आमाशयके रसस्रावमें लवणाम्लका अभाव हो जाता है। जिससे उनको तमक श्वास सर्वदा संताप देता रहता है। ऐसे रोगियोंको गरम पेय आदि छुड़ाकर इस रसका सेवन कराया जाये तो थोड़े ही दिनोंमें पचनक्रिया सुधर जाती है।

(१६९) प्रमेहगजकेसरी रस

विधि—लोहभस्म, नागभस्म, वङ्गभस्म तीनों १-१ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोले, शिलाजीत ५ तोले और खखसाके फूलोंकी केसर ६ तोले लें। सब

को मिला नींबूके रसमें ७ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें।
(वै० सा० सं०)

मात्रा—१ से ३ गोली, दिनमें दो बार। जल, गुड़मारके अर्क या रोगानुसार अनुपानके साथ। प्रमेहपर घी मिश्री और शहदसे।

उपयोग—यह रसायन इक्षुमेह, लालामेह, सान्द्रमेह, पित्तप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र अश्मरी और दाह आदिको नष्ट करता है।

इक्षुमेहमें शर्कराकी मात्रा इस औषधके सेवनसे अति शीघ्र कम होती है, नागभस्म और शिलाजतुके संयोगसे मधु संजनन कम होता है। इक्षुमेह की उत्पत्तिमें शारीरिक कारणोंमें अग्न्याशयकी विकृति, यह प्रमुख कारण है। इसमें उत्पन्न होने वाले आग्नेय रससे आहार रसमें शकर्राभूयिष्ठ या पिष्टमय पदार्थका योग्य पचन होता है, आग्नेय रसका यह धर्म न्यून होनेका अर्थ मधु पचनका धर्म न्यून होता है। इस तरह तीनों दोष, मज्जारस, ओज, मेद, रक्त शुक्र, लसीका, वसा, मांस, रक्तरस आदि दूषित हो जाते हैं अर्थात् धातु उपधातुओंकी दुष्टि हो जाती है। प्रमेहगजकेशरीसे इनकी विकृति दूर होती है। अग्न्याशयके घटकोंकी विकृति दूर होकर वह सबल बन जाता है, फिर आग्नेय रसका स्राव सम्यक् होने लगता है। परिणाममें शर्करासंजनन मर्यादित होकर इक्षुमेहका शमन हो जाता है।

इक्षुमेहसे बार-बार मूत्रोत्सर्ग, भयंकर तृषा, मुखमें शुष्कता, क्षुधा अति प्रदीप्त हो जाना, नेत्रके समक्ष अंधकार छा जाना, भ्रम, कानमें आवाज आना कर्णनादके हेतुसे अति बेचैनी होना और शिरदर्द आदि लक्षण होनेपर इस रसायनका उपयोग अति लाभदायक है।

इक्षुमेहमें अनेक उपद्रव होते हैं। इनमें मूत्रामुत (मूत्रमें एसिटोन यूरिया Aceton Uria) ये भयंकर उपद्रव है। इसपर प्रमेहगजकेसरी फलप्रद माना गया है।

सर्वाङ्गमें शूल, रक्तवाहिनियाँगत वातप्रकोप, कलायखञ्ज सदृश कम्प, चलनेमें पैरोंका विचलित होना, सांधे-सांधे शिथिल होना, वेदना इतनी तीव्र रहना कि रात्रि व दिनमें निद्राका न आना, गरम जलसे सेक करने या तैल मर्दन करनेपर किञ्चित् काल अच्छा लगना, इसके विरुद्ध रोगीको हाथका स्पर्श भी सहन न होना, तब तैल मर्दनकी बात ही कैसे हो? ऐसे लक्षणयुक्त इक्षुमेहमें इसका अत्यन्त उपयोग हुआ है।

बार-बार चक्कर आना, शिर उठानेपर चक्कर आकर गिर जानेका भय लगना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, प्रत्येक बार लघुशंका करनेपर अशक्ति बढ़नेका भास होना, मूत्रका रंग पीला या धूसर होना आदि लक्षण होनेपर प्रमेहगजकेसरी देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्रपर इसका उत्तम उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातमें निम्न प्रकारसे अन्तर है। मूत्राघातके मूत्रोत्पत्ति ही कम हो जाती है। मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रोत्पत्तिके कार्यमें कुछ प्रतिबन्ध नहीं होता। परन्तु मूत्राशयसे लेकर मूत्र नलिकाके अन्त तकके मार्गमें कुछ रुकावट उत्पन्न होती है। इस हेतुसे मूत्रकी प्रवृत्ति कष्टसे होती है। इसके जीर्ण विकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है। पौरुष ग्रन्थि (Prostate gland) की अति वृद्धि न हुई हो तो उसकी वृद्धिसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें इसका उत्तम उपयोग होता है। जीर्ण सुजाकके रोगीके मूत्रकृच्छ्रपर तो इसकी अपेक्षा सुवर्ण वङ्गका अधिक उपयोग होता है।

लालामेह और सान्द्रमेहमें यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। संक्षेप में प्रमेह गजकेसरी सर्व धातुके पोषण क्रमको व्यवस्थित करने वाला, शक्तिवर्द्धक, शर्करासंजनन कार्यको नियमित करने वाला, रसायन और मूत्रदोष नाशक है। यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषों रस रक्तसे शुक्र तक सब धातुओं तथा अग्न्याशय, यकृत् और मूत्रमार्गपर अधिक लाभ पहुँचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१७०) मेहान्तक रस

विधि—अभ्रकभस्म १ तोला, लोहभस्म २ तोले, नागभस्म ३ तोले और वंग भस्म ४ तोले लें। सबको मिलाकर तालफल, वाराहीकन्द, शतावर और सफेद चन्दनके क्वाथमें पृथक्-पृथक् ३-३ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। मक्खन-मिश्रीके साथ सेवन करें।

सूचना—प्रमेहके जिन रोगियोंका यकृत् निर्बल हो, यकृत्मेंसे अन्त्रके भीतर पित्तस्राव कम होता हो, उनको गरम करके शीतल किये हुए गोदुग्ध के साथ मेहान्तक रस देना चाहिये। दूधको १-२ उफाण आवे, उतना गरम करना चाहिये। दूध अनुकूल न हो उनको आंवलोंके हिम या मठ्ठेके साथ दे सकते हैं।

उपयोग—इस रसका दूसरा नाम "पञ्चावलेह रसायन" भी है। यह रसायन प्रातःकाल यथाविधि सेवन करनेपर प्रमेहोंका नाश करता है। शाली चावल, परवल, चौलाई, बथुआ, मत्स्याक्षी (मछेछी) आदि शाक, मूंगका यूष और कच्चे केलेका शाक ये सब पथ्य हैं। प्रमेहके अतिरिक्त यह अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, पाण्डु, शोथ, अपस्मार, क्षतक्षय और रक्त कास आदि व्याधियोंमें लाभ करता है।

इस रसका उपयोग विशेषतः पित्तजप्रमेह—कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह आदिपर होता है। इन मेहोंमें यकृत्के पित्तके कार्यमें

विकृति होती है। इस हेतुसे मूत्रमें विविध वर्णोंकी प्रतीति होती है। अभ्रकभस्मका कार्य धातुपोषणपर होकर क्रमशः वृक्कोंपर भी होता है। फलतः मेह विकृतिका नाश होता है। प्रमेहपिटिकामें इसका उपयोग होता है। परन्तु साथमें शिलाजीतका प्रयोग भी करते रहना चाहिये।

रक्तार्शके पश्चात् हृदयमें धड़कन बढ़ जाना; धमनीमें स्पन्दनवृद्धि, चक्कर और पाण्डुता आदि विकारोंमें इसका उपयोग होता है। ग्रहणी रोग में एक प्रकारकी पाण्डुता आती है; उसे यह दूर करता है।

अश्मरीसे मूत्रमार्गमें निर्बलता आजानेपर अश्मरीके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण किसी-किसी स्थानमें रुक जाते हैं। फिर भयंकर वेदना होती है। पेशाब अति कष्टसे होता है, क्वचित् उसमें अश्मरीके कण निकलते हैं तथा मूत्र गंदला हो जाता है। इसपर मेंहान्तक रसका उत्तम उपयोग होता है। अनुपान गिलोयका स्वरस या तालमखानेका हिम देवें।

कामलाकी उत्पत्ति पित्तस्रावमें रोध होनेपर या यकृत्की विकृति होनेसे होती है। यदि यकृद् विकारसे मन्द कामला हुआ हो तो इस रसका उपयोग किया जाता है।

तरुण स्त्रियोंको होने वालेहलीमक (हारिद्रक पाण्डु) पर यह औषधि लाभ पहुँचाती है इसके सेवन-कालमें गेहूँके बिना छने आटे (चोकर वाले मोटे आटे) की रोटी, गौका मक्खन या ताजा घी और ताजा शाक भाजी का अधिक उपयोग करना चाहिये।

पाण्डु रोगके पश्चात् आये हुए शोफ, वृक्कविकारसे उत्पन्न शोफ, हृद्रोग उत्पन्न शोफ आदि सर्वाङ्ग शोथ दूर होनेपर आई हुई अशक्ति दूर करने और फिर अशक्तिमें पुनः शोथ न आनेके लिये इस रसका उत्कृष्ट उपयोग होता है। उरःक्षतके पश्चात् होने वाले क्षय रोगपर इस रसायनका उपयोग होता है। उरःक्षतमें कासके साथ रक्त गिरने या अन्य प्रकारके क्षयमें कास के साथ रक्त गिरनेपर यह रस लाभ दायक है। इस रसके साथ अनुपान रूपसे वासा स्वरस और शहद या वासावलेह मिलानेपर सत्वर लाभ होता है।

इस रसमें रहे हुए अभ्रक आदि भस्मोंके संयोगसे धातुपोषण क्रम व्यवस्थित होता है, मूत्रमें जाने वाली शर्कराकी मात्रा कम हो जाती है। मूत्र परीक्षा या रक्त परीक्षाद्वारा शर्कराका बारम्बार निर्णय करते रहना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१७१) सूतिकाभरण रस

विधि—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और कुटकी इन १३ औषधियोंको समभाग लें। फिर यथा विधि

मिलाकर आकके दूधमें खरल करें। पश्चात् चित्रकमूलके क्वाथ और पुनर्नवाके रसकी १-१ भावना देकर गोली बनावें। सूखनेपर सराव संपुटकर दृढ़ कपड़मिट्टी करें। फिर भूधरयन्त्रोंमें रखकर अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर खरल कर लें। (र० यो० सा०)

मात्रा—¼ से ½ रत्ती तक। रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—यह रस उपद्रव सह सूतिका रोग, विशेषत: धनुर्वात और त्रिदोषज व्याधियोंका नाश करता है।

सूतिका ज्वरका कारण सूतिका विष है। प्रसवके समयमें आवश्यक स्वच्छता न रखने या मलिन वस्त्र या अन्य मलिन वस्तु धारण करने अथवा मूर्ख दाईके गन्दे हाथके सम्पर्क होनेपर बाहरका सेन्द्रिय विष योनिमार्गमें प्रवेश कर जाता हैं। एवं प्रसवकालकी वेदना, प्रसव समयमें योनिमुख या गर्भाशय मुखमें व्रण हो जाना, अपरा (आंवल) पतनसे गर्भाशयकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ हो जाना, शोथ और व्रणमें विषका प्रवेष हो जाना आदि कारणोंसे दोषप्रकोप होता है। फिर उसका असर सर्वाङ्गमें होनेपर सूतिका ज्वर उपस्थित होता है। इसमें ज्वरके सामान्य लक्षण तो होते ही हैं, साथ-साथ योनिस्रावमें दुर्गन्ध, गर्भाशयपर स्पर्श करनेपर वेदना, रक्तयुक्त या सफेद दुर्गन्ध युक्त स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर सूतिका भरण देना चाहिये तथा उत्तर बस्तिसे योनिमार्गका प्रक्षालन करना चाहिये। केवल योनिमार्ग ही नहीं; गर्भाशयके मुखमें उत्तर-बस्ति-यन्त्रके द्वारा गर्भाशयको भी साफ करना चाहिये। यह प्रसूति कार्यविशेषज्ञोंसे ही कराना चाहिये। कारण प्रसव वेदना, क्लेद-वहन और अस्त्र प्रयोगसे गर्भाशय अत्यन्त नाजुक बन जाता है। अत: सब कार्य सम्हाल पूर्वक करना चाहिये। पहिले शोधन बस्ति दें। फिर आवश्यकतापर तैलकी शमन बस्ति दें। इस तरह प्रयोग करनेपर सूतिका ज्वरके सेन्द्रिय विषका नाश होता है। फिर दोषविकृति दूर करनेसे ज्वरका भी शमन हो जाता है।

सूतिका विष और उससे उत्पन्न दोषप्रकोपका परिणाम वातवाहिनियों और स्नायु, विशेषत: शरीरके बहिर्मार्गमें रहे हुए स्नायु प्रतानपर होकर धनुर्वातकी उत्पत्ति हो जाती है। वातवहमण्डलमें सुषुम्णाके अग्रभाग और त्रिकास्थिके अन्तर्भागमें रहे हुए जलमें दोष-दुष्टि अधिक होती है; फिर प्रारम्भमें हनुग्रहकी उत्पत्ति होती है। *यह धनुरायामके प्रथम और स्पष्ट

*हनुग्रह (Pucrpera Tetanus) लक्षण उपस्थित होनेके साथ व्याधिने मारक रूप धारण कर लिया है, ऐसा मानकर हम सूतिकाभरण और चतुर्भुज मिलाकर नागरबेलके पानके रसके साथ २-२ घण्टेपर ३-४ बार सेवन कराते हैं। जिससे

लक्षण हैं। फिर सर्वाङ्गमें आक्षेप आने लगते हैं। झटकोंके हेतुसे समस्त शरीर धनुषके समान मुड़ जाता है। देह भीतर मुड़ता है तो उसे अन्तरायाम और बाहरकी ओर मुड़ता है तो उसे बाह्यायाम कहते हैं। धनुष्कम्प आदि शब्द लक्षण द्योतक है। इस तरह धनुर्वात सूतिकाको एवं अन्योंको भी होता है। दूसरोंको होनेमें सूतिका विष हेतु नहीं होता। सूतिका विष के समान चोट आदि कारणोंसे उत्पन्न आगन्तुक व्रणमें भी सेन्द्रिय विषका प्रवेश होकर धनुर्वात होता है। दोनोंपर सूतिका भरणका उपयोग होता है।

कालकूट रस भी धनुर्वातमें उपयोगी है; परन्तु वह अति तीव्र है और सूतिकाभरण अति सौम्य है। यह सूतिकाभरण ज्वर होनेपर भी दिया जाता है। कालकूट रस ज्वर होनेपर नहीं दिया जाता। कालकूटसे हृदय और नाड़ीका वेग बढ़ जाता है। रक्तस्राव होनेपर भी कालकूट नहीं देना चाहिये। यदि रक्तस्राव होता है तो सूतिकाभरण और सुवर्णमाक्षिक भस्म को मिलाकर देनेसे उपयोगी होता है।

सूतिका विषसे उत्पन्न सन्निपात ज्वरमें यह रसायन उत्तम कार्य करता है। सान्निपातिक अवस्थामें जो-जो स्थान विकृति हो, उसमें यदि वेदना अधिक हो तो उसपर सूतिकाभरणका अच्छा उपयोग होता है।

श्लैष्मिक सन्निपातमें उरःशूल लक्षण विशेष हो या सूतिकाको श्लैष्मिक सन्निपात हुआ हो तो इस रसका विशेष उपयोग होता है। हृदयशूल चलता हो उसका भी इससे शमन होता है। कुक्षिशूल और साथ-साथ किञ्चित आक्षेप होनेपर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेपमें यह सूतिका-विषघ्न, आक्षेपहर, कीटाणुनाशक और ज्वरहर है। गर्भाशय, वातवाहिनियां, सुषुम्णाके मुख और अग्रभागपर शामक प्रभाव पहुँचाता है। वातादि धातुओं और रस, रक्त, मांस, स्नायुकण्डरा आदि दूष्योंपर हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

(१७२) स्मृतिसागर रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल शुद्ध मैनसिल, ताम्रभस्म ये ५ औषधियां समभाग मिला बच और ब्राह्मीके क्वाथकी २१-२१ भावनायें और मालकांगनीके तैलकी १ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—आध से १ रत्ती। मक्खन या घीके साथ दिनमें २ या ३ बार देवें।

सूचना—यदि स्मृतिसागरको ब्राह्मीके क्वाथकी भावना देनेके पहले मालकांगनीके तैलकी भावना दी जाय तो गोलियां बनानेमें सुविधा रहती

धनुर्वात (अपतानक) के दौरेका शमन हो जाता है। इस तरह यथा समय उपचार नहीं किया जाय, तो फिर कई बार पश्चाताप करना पड़ता हैं।

है। कितने ही ग्रन्थकारोंने इस रसके पाठमें सुवर्णमाक्षिक भस्म भी मिलाई है। सुवर्णमाक्षिकके योगसे गुणोंमें वृद्धि होती है। (यो० र०)

उपयोग—यह रस अपस्मारपर अति उपयोगी है। यह सहस्रार और वातवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचाता है। विशेषतः आज्ञावाही (चेष्टावाही) नाड़ीयोंका क्षोभ होनेपर उत्तम कार्य करता है। महावातविध्वंसन, एकांगवीर और स्मृतिसागर ये वातशामकत्रयी है। ये स्निग्धगुणभूयिष्ठ रसायनोंमें गणना करने योग्य हैं।

स्मृतिसागरका उपयोग उन्मादमें अच्छा होता है। उन्मादविकार केवल मनोवृत्तिके विभ्रमसे उत्पन्न होता है। यह अल्प सत्व मनुष्यको होने वाली मानसिक व्याधि है। अपस्मार केवल मानसिक व्याधि नहीं है। उन्माद कारणभेदसे नाना लक्षणात्मक और विभिन्न प्रकारका होता है। सर्व कारणोंके मूलमें क्रोधी स्वभाव और असहनशीलतायुक्त मनोवृत्ति बहुधा मुख्य कारण है। कितने ही व्यक्तियोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि उनसे जरा भी ऊँचा नीचा व्यवहार सहन नहीं होता। ऐसे मनुष्योंको यह विकार सहज हो जाता है। इस तरह केवल मानसिक क्षोभसे इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारमें शारीरिक दोषोंकी विकृति होनेसे मनपर दुष्परिणाम होकर उन्माद उत्पन्न होता है। स्त्रियोंके स्वभावमें सुकुमारता, गर्भावस्था और प्रसूतावस्था आदि कारणोंसे उन्माद की उत्तम भूमिका तैयार हो जाती है। फिर दोषप्रकोप होकर या मानसिक विकृति होकर उन्माद हो जाता है। यह विकार स्त्रियोंको अधिक होता है।

स्मरोन्माद (Hysteria) और भूतोन्माद तरुण युवतियोंको अधिक होते हैं। बड़ी आयु वाली स्त्रियोंको कम होते हैं। इनमें भी अतिशय उतावले स्वभाव वाली संकुचित मनकी, क्षुद्र कारणोंसे चिढ़ने वाली युवतियों पर इस रोगका आक्रमण अधिक होता है। जिस भूतोन्मादमें अमर्त्य लक्षण अधिक हों ऐसे उन्मादमें स्मृतिसागर अधिक उपयोगी नहीं होता। पिशाच. ब्रह्म, सर्प यक्ष आदि ग्रहपीड़ितोंके लक्षण शास्त्रमें दिये गये हैं। उनपर इस औषधिकी अपेक्षा जटामांसी, माहेश्वरी (सर्पगन्धा) खस आदि औषधियाँ जो मानस शास्त्रने निर्दिष्टकी हैं, उनका उपयोग करना विशेष हितकारक माना जाता है।

स्मरोन्मादमें ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। वह पित्तविशिष्ट लक्षणात्मक विकारमें अधिक उपयुक्त है। बार-बार चक्कर, नेत्रके समक्ष अन्धकार, घबराहट, दाह आदि लक्षण होकर वमन अधिक होती हों तो ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु ये लक्षण न हों बिल्कुल अंग जड़ होना, किसी भी गढ्ढे या जलमें गिरने सदृश भासना, अङ्गोंमें झन-

झनाहट, कण्ठमें घर-घर आवाज; घुरघुराहट, दांत भिंचना, दांत चबानेपर लाला निकलना, मुंहपर जड़ता, हाथ-पैरके तलोंमें प्रस्वेद आना, प्रस्वेदके स्थानपर खुजली चलना मोटे धब्बे पड़ना, उबाक, मुँहमें जल आना उदरमें जड़ता भासना, पहले अंग जड़ और शीतल होकर उन्मादके झटके आना, प्रकृति स्थूल और कफभूयिष्ठ होना, मासिकधर्ममें आर्तव बिल्कुल कम आना, और उदरमें दर्द होना उदरमें ऐंठन, गर्भाशयके चारों ओर जड़ता, झनझनाहट और उबाक आकर वान्ति होना आदि लक्षण हों तो ऐसे स्मरोन्मादपर स्मृतिसागर फलप्रद होता है। झटकेके पश्चात् सर्वाङ्ग में जड़ता अतिशय आती हो, यह विशेष लक्षण होना चाहिये।

उन्मादका कारण क्रोध, शोक या भय इनमेंसे कोई भी एक होनेपर ताप्यादि लोह हितकारक है। परन्तु इनके अतिरिक्त कारण होनेपर स्मृतिसागरका अच्छा उपयोग होता है। अफीमके व्यसनियोंके उन्माद (मानसविषाद Melancholia) जिस प्रकारमें रोगीकी विचारशक्ति कुण्ठित-सी हो जाती है, रोगी उदासीन-सा भासता है, उसपर भी यह उपयोगी है। तथैव गाँजा, भांग और शराबके व्यसनियोंके उन्मादपर ताप्यादि लोह अत्युत्तम है।

छोटे बालकोंके बालग्रहमें स्मृतिसागर उपयुक्त औषधि है। बालग्रह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है; परन्तु परतन्त्र लक्षण है। छोटे बालकके उदरमें कुछ विकृति होनेपर इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। एवं सहस्रार आदि स्थानोंमें विकार होनेपर भी इसका आक्रमण हो जाता है। उदर विकृतिसे उत्पन्न बालग्रह होनेपर पहले उदर शुद्धि कारक औषधि देकर फिर शामक औषधि देनी चाहिये स्कंधग्रह, पूतना, अहिपूतना, शीतपूतना आदि बालग्रहोंमें दोष सहस्रार, सहस्रावरण, सुषुम्णा और सुषुम्णाकन्दमें होता है। इस विकारमें अस्वस्थता, बेहोशी या तन्द्रा हाथ-पैरोंमें बिल्कुल चलनेका अभाव मुँदे हुये नेत्र, केवल आक्षेप आनेपर चेष्टा होना और अन्य समयमें शून्यता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

पक्षाघातकी तीव्र अवस्था कम होनेपर पहलेकी अवस्थामें स्मृतिसागरका अति उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस विकारमें शीतल स्थानमें शयन, गीले वस्त्र पहनना ठण्डे पत्थरोंपर देरतक बैठे रहना; शीत लग जाना या शीत प्रायः अन्य कारण होते हैं। अन्य प्रकारके कारणोंसे उत्पन्न पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इसका उत्तम उपयोग होता है। पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इसे स्वतन्त्र रूपसे एकाङ्गवीर और स्मृतिसागर कुछ दिनोंतक एक ही दिनमें पृथक्-पृथक् समयपर देते रहनेसे उत्तम परिणाम आता है। शरीरमें जड़ता, झनझनाहट, शोथ, बोलनेमें स्पष्ट उच्चारण न होना जीभ रुकना मुहमें पानी छूटना, जिस भागमें विकार हुआ हो वह जड़

भासना आदि लक्षण होनेपर स्मृतिसागर उपयोगी औषध है।

स्त्रियोंको क्वचित् सगर्भावस्थामें तीव्र यकृत्-संकोच और गर्भावात ये दो अति भयंकर विकार हो जाते हैं। तीव्र यकृत् संकोच होनेपर नेत्र पीले हो जाते हैं, सर्वांङ्ग पीला हो जाता है, दस्त सफेद होता है, ज्वर वेगपूर्वक आता है, वमन होती है, और फिर ४-६ दिनोंके बाद आक्षेप आनें लगते हैं। इनमें पित्त भूयिष्ट लक्षण होनेपर ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु जड़ता मन्दता आलस्य, निन्द्रा, उबाक, वान्ति आदि लक्षण होनेपर स्मृति सागरका उपयोग होता है। गर्भवात (Eclampsia) के विकारमें पहलेसे जड़ता आदि लक्षण होनेपर फिर बड़े बड़े झटके आने, जड़ता, उबाक, तन्द्रा, अतिशय शिथिलता आदि लक्षण मुख्य हों, तो स्मृतिसागरका उपयोग कराना चाहिये बेहोशी होनेपर भी यह लाभदायक है।

संन्यास (Coma) अति भयङ्कर व्याधि है। इस रोगके अनेक कारणों में से एक कारण मनः क्षोभ है। इस हेतुसे रोगी अति बेचैन थका हुआ असावधान पड़ा रहता है। हाथ-पैर नहीं चलते, नेत्र भी बन्द रहते हैं। ऐसी स्थितिमें रोगी पड़ा-पड़ा घोरता है; किसीने आवाज दी तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता; बिल्कुल बेहोश भासता है। केवल सुई चुभानेपर किञ्चित् मात्र वेदनाका भास होता है; फिर कुछ नहीं। इस रोगमें कितने ही रोगी जड़ बेहोश देखे हैं और कितनों ही के मस्तिष्कमें रक्तके दबावकी वृद्धि होकर नेत्र लाल, भयंकर शिर दर्द और गर्दन चलाते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इनमें नेत्रोंकी लाली युक्त लक्षणों वाले रोगोपर इस स्मृति सागरका उपयोग नहीं होता। परन्तु जड़ता अधिक होनेसे निश्चेष्ठा, शीतलता लालास्राव आदि लक्षणोंमें इस रसका उपयोग होता है।

अपतानक (Tetanus) आदि जिन विकारोंमें झटके आते हैं, उनमें सुषुम्णा और मस्तिष्कावरणकी विकृति होती है। इनमें श्लेष्म संसर्ग और जड़ता आदि लक्षण अधिक हों तो स्मृतिसागर अत्युत्तम औषध है।

आक्षेपक वातमें झटके कम होकर फिर सर्वाङ्गमें जड़ता, गरदन शून्य-सी भासना, सर्वाङ्गमें झनझनाहट, मुँहमें बेस्वादुपन, उबाक, नेत्रोंमें अंधेरा आजाना आदि लक्षण प्रबल होनेपर स्मृतिसागरका उत्तम उपयोग होता है।

यदि आक्षेपक वातमें कमर और मेरुदण्डमें भयंकर पीड़ा, निद्रानाश, ज्वर १०२°-१०३° डिग्री रहना, अहोरात्र झटके आते रहना, हाथ पैरोंमें शीतलता शरीरमें जड़ता और झनझनाहट आना आदि कफवातप्रधान लक्षण हों तो स्मृतिसागर और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर तुलसीके रस और शहदके साथ दिनमें ४ बार देते रहनेसे आक्षेप सत्वर शमन हो जाते हैं।

ग्रन्थिक, आन्त्रिक या आक्षेपक सन्निपात या ऐसे ही भयंकर सान्निपातिक

ज्वरोंमें अकस्मात् स्मृतिभ्रंश-स्मृतिनाश होकर कोई अवयव निश्चेष्ट हो जाना, कार्य करनेमें असमर्थ हो जाना आदि लक्षण उपस्थित हुए हों तो सान्निपातिक विकारका परिणाम मानस, सहस्रार, नाड़ी चक्र या आज्ञा-वाहिनियोंपर हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। ऐसे रोगका शमनकर मूल विषको नष्ट करनेमें यह अति उपयोगी है।

सन्निपात मूल कारण न होनेपर भी अकस्मात् किसीको स्मृतिनाश हो जाता है वृद्धावस्थामें मनोदौर्बल्यके हेतुसे स्मृतिनाश होता है। वृद्धावस्था में स्मृतिनाश मस्तिष्कको योग्य परिपोषण न मिलनेके हेतुसे होता है। वात वाहिनियोंकी क्रिया उत्तम प्रकारसे नहीं होती। कफदोषका भी अधिक प्रादुर्भाव हो जाता है। ऐसे स्मृतिभ्रंशमें आयुर्वेदीय औषधियोंमें महावात-विध्वंसन और स्मृतिसागर उत्तम कार्य करते हैं। झटके, शूल, तीव्र वेदना और मूर्च्छा आदि लक्षण होनेपर महावातविध्वंसन देना चाहिये परन्तु स्मृति नाश और स्मृतिभ्रंशसे मनुष्य शूल शून्य-सा जड़ हो गया हो तो स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

संक्षेपमें इस रसकी मुख्य औषधमें तीक्ष्ण, उष्ण और व्यवायी गुण होने पर भी उसे योगवाही बनाई है। इन निरीन्द्रिय द्रव्योंपर शुद्धि संस्करण करनेके हेतुसे गुणवीर्यका उत्कर्ष हुआ है। इस द्रव्यगुणोत्कर्षकी वृद्धिकराने के लिये ब्राह्मी आदि सेन्द्रिय और सचेतन द्रव्योंकी भावना दी है।

ब्राह्मी, बच और मालकांगनी तीनों शीतवीर्य, शामक, वातघ्न और आक्षेपहर है। इन औषधियोंको भावनाके हेतुसे स्मृतिसागरमें प्रभाव द्रव्यों का शनैः शनैः संमिश्रण हो जाता है।

पारद आदि औषध, तीक्ष्ण उष्ण व्यवायी और सूक्ष्म स्रोतोगामी होने से उनके साथ मिश्र हुए ब्राह्मी आदि औषधियोंके शामकत्व आदि गुणोंका गुण परिपोष होता है। परिणाममें स्मृतिसागर उत्कृष्ट वीर्यवान् बन जाता है। ब्राह्मीमें अति मन्द स्थिर गुण होनेसे उसके शामक गुणका सत्वर शोषण नहीं होता। अतः शरीरमें उसकी शामकता फैलनेमें और भी समय लग जाता है। परन्तु पारद आदिका संयोग हानेसे ब्राह्मी आदिके गुणोंका उत्कर्ष होता है और वे शरीरमें सर्वत्र फैल जाते हैं। द्रव्य-संयोग और संस्कारसे द्रव्यान्तरोत्पत्ति होती है, द्रव्य द्रव्यान्तर प्राप्ति होनेपर भी मूल स्वभावका त्याग नहीं करता योगवाही द्रव्योंका यह नियम है कि अपने गुणोंका त्याग न करते हुए अन्य मिश्रित औषधिके गुणोंकी वृद्धि करा देना। इस दृष्टिसे यह कफ संसर्गयुक्त रोगोंपर उत्तम कार्य करता है।

यह रस वात और कफदोष तथा रस, रक्त और मांस इन दुष्योंपर कार्य करता है। इसका काय मनोदेश, सहस्रार, सुषुम्णा, आज्ञावाहिनियां और

स्नायुओंपर शामक और आक्षेपघ्न होता है। (औ० गु० ध० शा०)

स्त्रियोंके मासिकधर्मकी निवृत्ति लगभग ५० वर्षकी आयुमें होती है उस समय किसीको शिरदर्द, कमरमें जड़ता और किसीको मानसिक आघात पहुँचकर उन्मादके लक्षण प्रकाशित होते हैं। उस उन्मादपर स्मृतिसागर और महावातविध्वंसन रस मिला जटामांसीके चूर्ण और घीके साथ दिनमें ३ बार देने तथा भोजनकर लेनेपर सारस्वतारिष्ट पिलाते रहनेपर रोग दूर हो जाता है।

(१७३) कुष्ठकुठार रस

विधि—पारद भस्म (रससिंदूर), शुद्ध गंधक, लोह भस्म, ताम्रभस्म, गूगल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शुद्ध कुचिला, चित्रकमूल और शिलाजतु इन ११ औषधियोंको ४-४ तोले तथा करंजबीज और अभ्रक, भस्मको १६-१६ तोला लेवें। सबको यथा विधि मिला लें। शिलाजतु और गूगलको जलमें मिश्रित करके मिलावें। अच्छी तरह खरल होकर शुष्क और एक जीव हो जाय, तब घी मिलावें। फिर शहद मिलाकर अमृतबानमें भर देवें।

(र० यो० सा०)

मात्रा—२ रत्ती से १ माशे तक दिनमें २ बार देवें। पथ्यमें शालि-चावल, दुग्ध, शहद, मिश्री और गुड़ देवें। दाह होनेपर पाताल गरुड़ीकी जड़, ओडहलके फूल और धनियांको समभाग मिलाकर सबके समान मिश्री मिला लगभग १-१ तोला सेवन करें। अथवा नागबलाकी जड़का चूर्ण घी शहदमें मिलाकर चाटें।

उपयोग—गलत्कुष्ठके जिन रोगियोंके कान, नाक, अंगुलियाँ आदि गल गये हों बिल्कुल देह भाग गल गया हो; देहमेंसे भयंकर दुर्गन्ध निकलती रहती हो, मक्खियां भिनभिनाती हों, उनको यह रस जीवन दान देता है और देहको सुन्दर स्वरूपवान वना देता है।

यह औषधि गलत्कुष्ठावस्थामें अति उपयोगी है। इसमें सम्मिश्रित अभ्रकका धर्म जो धातुपरिपोषण क्रम व्यवस्थित करनेका है, वह अति स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है। कुष्ठमें त्वचा, रक्त, मांस और रक्तवारि आदिमें क्रमसे विकृति होती जाती है। गलत्कुष्ठ होनेपर त्वचा बिल्कुल शुष्क सड़ी हुई भासती है। इसमें ऊपरका भाग, विशेषत: अंगुलीयोंके पर्व गलने लग जाते हैं। त्वचाकी संवेदना कम होनेपर या बिल्कुल नष्ट प्राय होनेपर हाथ या पैरके पर्व गिर जाते हैं; पर्व गिरनेपर भी वेदना मर्यादामें ही होती है। जिस स्थानपरसे पर्व टूट जाते हैं, उस स्थानपर मांसयुक्त भाग खुला हो जाता है फिर उस स्थानसे क्लेदयुक्त दुर्गन्धमय लसीका स्राव होता है। सारा स्थान बिल्कुल पककर ऊंचा उठ जाता है। उतना होवेंपर भी जलन

या पीड़ा अधिक नहीं होती। जड़ता, हाथपैर उठानेमें अशक्ति और आलस्य इतना बढ़ जाता है कि, पड़े हो तो पड़े ही रहनेकी इच्छा होना, अति निद्रा, त्वचाका रंग बदल जाना, सर्वाङ्गमें अति रूक्षता, त्वचा फूली हुई और फटी हुई हो जाना स्पर्शका बोध न होना, व्रण होनेपर उसमेंसे दुर्गन्ध मय स्राव, व्रण भाग जल्दी न भरना, अति प्रस्वेद, प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षण युक्त अवस्थामें इसका सेवन अति हितकर है। भोजनमें मधुर रसका सेवन अधिक करना चाहिये। इस रसका कार्य संज्ञावाहिनियोंको पुनः संज्ञाकी प्राप्ति कराना है। इस हेतुसे कितने ही रोगियोंको दाह होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१७४) पञ्चामृत रस

विधि—पारदभस्म (रससिंदूर), अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्धशिलाजतु, शुद्ध बच्छनाभ, गिलोय और त्रिफलाके क्वाथसे सिद्ध किया हुआ गूगल और ताम्रभस्म इन ७ औषधियोंको समभाग मिला शहदके साथ खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें या चूर्ण ही रहने दें। गोलियां बनानेपर गूगल मिश्रित होनेसे कुछ पारद पृथक् हो जाता है। (र० र०)

वक्तव्य—रस रत्नाकर आदि कतिपय ग्रन्थोंके टीकाकारोंने पारदभस्म के अभावमें प्रतिनिधि स्वरूप 'ताम्रभस्म' लेनेको और किसी किसी टीकाकारने ताम्र भस्मको पारद भस्मके समान मिलानेको लिखा है।

रससिंदूर षड्गुण लेना चाहिए। कमगुण वाला होनेपर गूगलके हेतुसे उसका वियोजन हो जाता है। सर्वोत्तम मार्ग यह है कि पारद पक्षच्छिन्नकी भस्म मिलावे। विशेष प्रकारका हम पञ्चामृत रस बनाते हैं। जो क्षयज्वर की बढ़ी हुई अवस्थामें विषप्रकोपसे उत्पन्न ज्वरको दमन करनेमें प्रभावशाली प्रतीत हुआ है।

पारदमें कीटाणुनाशक और रसायन गुणप्रधान है और ताम्रमें प्लीहा यकृत् शक्तिवर्द्धक गुण मुख्य हैं। अतः हमने इन गुणोंकी आवश्यकता समझकर उक्त दोनों ही भस्मोंको मिलाना श्रेष्ठ समझा है।

मात्रा—१ से २ गोली। वासावलेह, बकरीके दूध, शहद-पीपल, कालीमिर्च और घी अथवा जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे राजयक्ष्माके ज्वर आदि विविध लक्षणोंका निवारण होता है। इसका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें ज्वर-वेग तीव्र होनेपर किया जाता है। परन्तु क्षयकी प्रथमावस्थामें जब ज्वर अधिक न हो; तब इस तीव्र रसका प्रयोग न किया जाय तो अच्छा है। प्रथमावस्थामें अभ्रक भस्म, शृंगभस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वका मिश्रण देना विशेष हितावह माना जायगा। जब द्वितीया या तृतीयावस्थामें ज्वरका वेग तीव्र हो जाता है, तब आवश्यकतापर यह रस देते रहें। क्षयमें रस, रक्त आदि

धातु क्षीण होकर आगेकी मांस आदि धातुओंकी क्षीणता होने लगती हैं; बलमांसविहीनत्व आने लगता है; रोगी ज्वरसे ग्रस्त-सा रहता है तथा कफ अधिक मात्रामें निकलता है । तब इसका सेवन अति हितकर है ।

शुक्रपात होनेकी आदत हो जाने या अति व्यवायसे शुक्र धातुका क्षय होनेपर अन्य धातु भी क्षीण होकर क्षय रोग हो जाता है । एवं स्त्रियोंको दीर्घकाल तक प्रदर आदि विकार दृढ़ हो जानेपर अन्य धातु क्षीण होकर क्षय रोगीकी संप्राप्ति हो जाती है । इन दोनों प्रकारके क्षयपर इस पञ्चामृत रसका उपयोग हितकारक है ।

पञ्चामृतका उपयोग प्रमेहमें उत्तम होता है । मूत्रोत्सर्गकी शंका बनी रहना बार-बार अति पेशाब होना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होनेसे निद्रानाश, कृशता और क्षीणता आजाना, मुँहमें शुष्कता, सर्वांगमें चिपचिपा प्रस्वेद आना, सन्धिस्थानोंके प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना या पकजाने सदृश भासना आदि लक्षण होनेपर इसका प्रयोग करें ।

संक्षेपमें यह रस धातुओंकी क्षीणता कम करता है । एवं यह धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित करने वाला, ज्वरघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसायन और प्रमेह आदिका शमन करने वाला है । (औ० गु० ध० शा०)

(१७५) कामधेनु रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ कालीमिर्च, पीपल, लोहभस्म, अभ्रकभस्मः इन ८ औषधियोंको समभाग मिला त्रिफलाके क्वाथमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें । (र.यो.सा.)

मात्रा—१ से २ रत्ती । शहद-पीपलके साथ देवें ।

उपयोग—यह रस धातुक्षय, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, सन्निपात, घोर वातव्याधि, शूल, गुल्म, कृमि, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंको नष्ट करता है ।

यह रस बल्य रसायन, पचनक्रिया-वर्द्धक तथा धातु-परिपोषणक्रमको एक विवक्षित प्रकारसे सहायक है । रससे लेकर शुक्रपर्यन्त सर्वधातु क्षीण होते जाना, इस अवस्थाको धातुक्षय कहते हैं । इसमें अन्न रससे बनने वाली रस धातु योग्य और सशक्त नहीं बनती । परिणाममें रक्त आदि धातुएँ भी क्षीण होती जाती हैं । इस अवस्थामें पूर्व धातुमेंसे परधातुको आवश्यक द्रव्य परिपूर्ण मिलना चाहिये । एवं परधातुको चाहिये कि पूर्व धातुमेंसे आवश्यक द्रव्य ले; रूपान्तर करा; अपने स्वरूपमें मिला लेवें ।

इनमेंसे रस और रक्त धातुमें क्रिया सम्यक् न होनेपर रसक्षय और रक्तक्षय होते हैं । इन दोनोंपर कामधेनु अति उपयोगी है । इसके योगसे रसक्षयमें रसधातु बननेकी क्रिया सम्यक् होने लगती है । उदरमें अफारा,

बड़े-बड़े जलके सदृश पतले सफेद दस्त, उदरमें जड़ता, रात्रि-दिवस उबाक, तृप्तिका भास होना, मुंह और जीभपर चिपचिपापन आदि लक्षण हों तो इसकी योजना करना चाहिये। रक्तक्षयमें रक्तमेंसे रक्तकण कम हो जाते हैं, फिर रक्तधातु कम होती है। रक्तकण कम होनेपर निस्तेजता बढ़ती है, तथा रक्त धातु कम होनेपर ज्वर, दाह, तृषा, चक्कर, घबराहट, नाड़ियोंमें वेगपूर्वक स्पन्दन, बार-बार श्वास भर जाना, जिह्वा शुष्क, फीकी और स्वादरहित, चाहे जितने जल पीनेपर भी तृप्ति न होना, यकृत् और प्लीहाकी किञ्चत वृद्धि, त्वचा और सर्वांगमें विवर्णता, विशेषतः कालापन आदि लक्षण होते हैं, उसपर इसकी योजनाकी जाती है। इस व्याधिके हेतु चिन्ता, शोक, भय, मनोव्याघात, अतिचिन्तन, अभ्यास या मानसिक श्रम अधिक होना आदि हों तो यह उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस विकार में ज्वर और अपचन ये लक्षण मुख्य होने चाहिये।

जीर्णविषम ज्वरमें दोष, दूष्य-संयोग देखकर विविध औषध-योजनाकी जाती है। संतत, सतत दोनों प्रकारके ज्वरोंकी तीव्रावस्थामें कामधेनुका उपयोग नहीं होता। परन्तु इनकी जीर्णावस्थामें ज्वरविष रस और रक्त धातुमें प्रवेशकर उनको क्षीण बनाते रहते हैं; उस अवस्थामें कामधेनु प्रयोजित होता है। सन्तत अर्थात् एक सा बना रहने वाला ज्वर, इसके परिणाममें तीसरे या चौथे रोजसे इसके विषका रसधातुपर आक्रमण होता है। सर्वांगमें जड़ता विशेषतः उदरमें जड़ता, उबाक, मुखमें जल भर जाना, अंग साद विशेष ग्लानि, वमन वमनमेंमीठा-सा जल गिरना अरुचि, मलिन दीन मुखमुद्रा आदि लक्षण होनेपर इसकी योजना करनी चाहिये।

जो सतत ज्वर अनेक मास तक आता रहता है, उसका असर रक्तधातु पर होता है। फिर दाह, निस्तेजता, बेचैनी, मनमें विविध विचार आकर मन शून्य सा बन जाना, कड़वी और खट्टी वमन, विभ्रम, शरीरपर पिटिकाएँ हो जाना, दाह, तृषा, कुछ कुछ प्रलाप अर्थात् बड़-बड़ करते रहना, निस्तेजता दीनवाणी, चिंताग्रस्त सा बन जाना आदि लक्षण होनेपर कामधेनु रसका उपयोग करना चाहिये।

बार-बार अधिक मात्रामें पीले रंगका पेशाब होना, तृषा सर्वांगमें दाह अंगपर चिपचिपापन चिपचिपा, प्रस्वेद और बगल आदि स्थानोंमेंसे दुर्गन्ध निकलना आदि पित्तभूयिष्ठ प्रमेहोंमें कामधेनु रस जामुनके लेह या शिलाजतुके साथ देना चाहिये।

अधोगत रक्तपित्त या रक्तार्श दोनों विकारोंमें रक्तधातु क्षीण होकर दाह दैन्य, तृषा भ्रम, घबराहट आदि लक्षण होनेपर कामधेनु रसकी योजना करनी चाहिये।

आमाशयकी अशक्तिसे आमाशय पित्तकी उत्पत्तिमें आवश्यक रक्तकी पूर्त्ति न होनेसे पित्तस्राव सम्यक् और सर्वगुणयुक्त नहीं होता। इस हेतुसे पित्तके कितने ही गुण बढ़कर अम्लपित्त व्याधि हो जाती है। अन्नका विदाह अन्नका पचन न होना, आमाशयमें दीर्घकाल तक पड़ा रहना, फिर उस हेतुसे उदरमें भारीपन, मुँहमें बार-बार जल भर जाना, मुँहका बेस्वादुपन, घबराहट, बेचैनी, मनकी अस्थिरता, खाया हुआ अन्न कुछ समयमें जलमय, दुर्गन्धित और क्लेदयुक्त बन जाना और वान्ति होकर बाहर निकल जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे अम्लपित्तपर इस कामधेनु रसकी योजना करनी चाहिये। भोजनमें पथ्य हलका अन्न, फल रस आदि देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(१७६) बालचन्द्र रस

विधि—सुवर्ण भस्म (अभावमें सुवर्णके वर्क) १ तोला सोनागेरु ३ तोला और मुक्तापिष्टी १२ तोले लें। फिर तीनोंको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ रत्ती, दिनमें २-४ बार। मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्व, अनार शर्बत, दाड़िमावलेह या वासावलेहके साथ देवें।

उपयोग—राजयक्ष्मामें जब रक्तवमन, कफके साथ रक्त गिरते रहना और पित्तप्रकोपज दाह, निद्रानाश अति स्वेदोत्पत्ति, व्याकुलता, मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण उपस्थित होते है, तब इस बालचन्द्र रसका उपयोग तत्काल गुणप्रद होता है। बार-बार रसवाहिनियाँ टूटकर जो रक्तस्राव होता रहता है, वह तुरन्त काबुमें आ जाता है। इसके लिये वासावलेह (अथवा दाड़िमावलेह) अनुपान रूपसे प्रयोजित होता है। यदि मलके साथ रक्तस्राव होता हो तो दाड़िमावलेह अथवा मक्खन-मिश्री विशेष लाभदायक माने जाते हैं। रक्तवमन और रक्तातिसार दोनों प्रकारोंमें अनारशर्बत, दूर्वाघृत, अमृतासत्व आदि शामक औषधियोंका सेवन सहायक होता है।

यह रस राजयक्ष्मा रोगमें होने वाले वान्ति, उबाक, अतिसार, अरुचि श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, पीनस, शुष्क-कास, श्वास और रक्तपित्त आदि विकारोंको दूर करता है, तथा कृत्रिम विष और दूषीविषजनित दाह आदि का शमन करता है।

यह रस रक्तमें रहे हुए कीटाणु और विषका संहार करता है, मस्तिष्क और वातवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचाता है, हृदयको सबल बनाता है, तथा आमाशय और अन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थानमें सेन्द्रिय-विषजनित विकृतिको नष्टकर अतिसार, अरुचि, उबाक आदिको दूर करता है।

(१७७) योगेन्द्र रस

विधि—रससिंदूर २ तोले, सुवर्ण भस्म, कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिष्टी और वङ्ग भस्म १-१ तोला लेवें। सबको यथा विधि मिला ३ दिन घीकुंवारके रसमें मर्दनकर गोली बनावें। फिर एरण्डके पत्तोंमें लपेट कच्चे डोरेसे बांध धान्यराशिमें तीन दिन तक दबा देवें। पश्चात् निकाल खरलकर ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बना छायामें सुखा लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली। रोगानुरूप अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस रसके सेवनसे वात-पित्तज रोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, बालपक्षाघात, (Polio) अपस्मार, भगन्दर, गुदरोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियोंकी कमजोरी, शूल और अम्लपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं। त्रिफलाके स्वरस अथवा शक्कर या च्यवनप्राशावलेहके साथ सेवन करानेसे स्वस्थ मनुष्य तेजस्वी होता है। निर्बलोंको एक एक रत्ती गोदुग्धके साथ देवें। जीर्णवात, अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगोंमें सारस्वतारिष्ट या धमासा, ब्राह्मी और जटामांसीके क्वाथके साथ देना चाहिये।

यह रस आयुर्वेदिक औषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् वातशामक औषध है। यह विशेषतः हृदय, मस्तिष्क, वातवहानाड़ियों, मन और रक्त पर अपना प्रभाव दर्शाता है। पचनसंस्थान और मूत्रसंस्थानपर भी असर पहुँचाता है। इसके सेवनसे वातवहानाड़ियाँ सबल होती हैं, अतः जीर्ण वातविकारके साथ पित्तप्रकोपजन्य दाह, व्याकुलता, निद्रानाश, मुखपाक अपचन आदि लक्षण हों तब यह विशेष लाभदायक है। जीर्ण वातविकार, अपस्मार और उन्माद आदि रोगोंमें यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त किया जाता है।

इस रसमें हृद्यगुण होनेसे हृदय बलवान बनता है और हृदयकी संकोच विकास क्रिया नियमित होनेसे स्पन्दन संख्या कम हो जाती है। रक्तमें रहे विष और कीटाणुओंका नाश होकर रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे इस रससे रोग शमनके साथ शारीरिक शक्तिकी भी वृद्धि होती जाती है।

इस रसके सेवनसे पचनेन्द्रिय सबल होनेपर मूत्रसंस्थानके प्रमेह आदि रोगका भी निवारण हो जाता है, शुक्र शुद्ध और गाढ़ा बनता है, कामोत्तेजना होती है और देह दिव्य और तेजस्वी बन जाती है। मूत्रसंस्थानके रोगोंपर इसे शिलाजीतके साथ देना चाहिये।

अति व्यवायसे उत्पन्न क्षय रोगकी प्रथमा और द्वितीयावस्थामें दाह होता हो वीर्य पतला हो गया हो, स्वप्नदोष होता रहता हो, शिथिलता और व्याकुलता बनी रहती हो, तो इस रसका सेवन करनेसे क्षय कीटाणुओं

का नाश होता है, दाह शमन होता है और वीर्य सुदृढ़ होता है फिर निर्बलता और व्याकुलता भी दूर होती है। युवकोंके धातु जन्य क्षय रोगमें अच्छा लाभ मिलता है।

पक्षाघातकी संप्राप्ति विशेषत: रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियोंकी विकृति होनेपर होती है। इस रोगमें कारण रक्तभार वृद्धि, मस्तिष्कमें रक्तवाहिनी फट जाना; धमनी या शिरामें शल्य आ जाना या शल्यकी उत्पत्ति हो जाना, संज्ञावाही वातवहानाड़ियोंके केन्द्रस्थानपर आघात, शीर्षास्थिभंग आज्ञावाही वातवहानाड़ियोंके व्यापारकी विकृति या इनके मार्गमें अर्बुद हो जाना आदि अनेक हैं। उसकी तीव्रावस्थामें तो इस रसका उपयोग नहीं होता। परन्तु तीव्रावस्था शमन होनेपर पुनः दौरा न हो जाय इस लिये वात शामक, बृंहण, जीवन और रसायन गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये। इसके लिये एकांगवीर और योगेन्द्ररस दोनों महत्वके हैं। इनमेंसे जो व्यक्ति अधिक तीक्ष्ण औषधि सहन कर सकते हैं; ऐसे वात प्रधान और वातकफप्रधान प्रकृतिवालोंको एकांगवीर दिया जाता है। तथा पित्तप्रधान और वातप्रधान प्रकृति वालोंके लिये योगेन्द्र रसकी योजना करनी चाहिये। पक्षाघातपर यह अति दिव्य औषधि है अर्धांगवातके समान हाथ-पैर कमरके नीचेके हिस्से या मुख मण्डलके आधे भागका वध हो गया हो तो उसपर भी इसका सेवन हितकारक है। इसके सेवनके साथ मांसपेशियोंको कार्यक्षम बनानेके लिये गुनगुने नारायण तैलकी मालिश हल्के हाथसे कराते रहना चाहिये। पक्षाघात रोग अति जीर्ण होनेपर बहुधा औषधि प्रयोगसे लाभ नहीं होता।

अपस्मार और उन्मादकी उत्पत्ति रक्तमें विषवृद्धि होकर मस्तिष्क विकृति होनेपर होती है। दोनों रोगोंपर स्मृतिसागर, उन्मादगजकेशरी और भूतभैरव रस लाभदायक है; परन्तू कितने ही पित्तप्रधान प्रकृति वाले पुरुष रोगी तथा सगर्भा, प्रसूता, छोटे बच्चेकी माता आदि नाजुक स्वभाव वाली स्त्री रुग्णाओंसे ताम्रभस्म, हरताल, मैनसिल आदि उग्र औषधियां सहन नहीं होती। उनको रक्तप्रसादक, बृंहणीय और जीवनीय गुणयुक्तशीतल औषधि देनी चाहिये। इन गुणोंका समन्वय योगेन्द्र रसमें होनेसे अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेपमें यह रस अनेक महारोगोंकी अद्वितीय औषधि है। जो रोग अन्य औषधियोंके दीर्घकाल सेवनसे भी निवृत्त न हुए हों वे इस औषधिके सेवन से थोड़े ही दिनोंमें निवृत्त हो जाते हैं। बालपक्षाघात (Polio) में यह रस सर्व श्रेष्ठ कार्यकारी सिद्ध हुआ है। अनेक जीर्ण रोगी जो किसी चिकित्सा पद्धतिसे ठीक नहीं हो सके, वे इस रससे ठीक होनेके अनुभव हुये हैं।

(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(१७८) चतुर्मुख रस

विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म चारों ४-४ तोले तथा सुवर्ण भस्म १ तोला लें। सबको यथाविधि मिलाकर ७ दिन घीकुंवारके रसमें खरल करें। फिर सोंठ, हरड़ और पुनर्नवाका क्वाथ कौंच बीज और लौंगका क्वाथ तथा चित्रकमूल और पदमकाष्ठका क्वाथ इन तीनोंकी क्रमशः ३-३ भावनायें देकर खूब गाढ़ा करें और एक गोली (एरंड पत्रमें लपेटकर) धान्यराशिमें ३ दिन दबा देवें। तत्पश्चात् निकाल (चित्रकमूल और पद्मकाष्ठके क्वाथमें ६ घण्टे खरलकर) आध-आध रत्ती को गोलियां, बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार त्रिफला और शहदसे दें।

उपयोग—यह चतुर्मुख रस ब्रह्मदेवने राजयक्ष्माको शमन करनेके लिये निर्माण किया है। इस रसको अग्निप्रदीपक, पाचक बल्य, रसायन और पौष्टिक औषधियोंकी भावना देनेसे यह प्रमेह और अग्निमांद्यको दूरकर शरीरको सबल बनाता है।

चतुर्मुख रस और सुवर्ण-मिश्रित लक्ष्मीविलास रस, दोनों क्षयरोगमें उपयोगी होनेवाली बल्य औषधिकी जोड़ी है। इनमेंसे लक्ष्मीविलास ज्वर मर्यादित होनेपर ही दिया जाता है; परन्तु इस चतुर्मुख रसके देनेमें ज्वरोष्मा चाहे जितनी बढी हो या चाहे जितनी घटी हो, इस बातके विचारकी आवश्यकता नहीं है। दोनों औषधोंमें क्षयघ्न अर्थात् क्षयोत्पादक कीटाणुओं को मारने वाली सुवर्ण भस्म और धातुपरिपोषक शक्तिको व्यवस्थित करने वाली अभ्रक भस्म मुख्य है। एवं लोह आदि विशिष्ट धातुओंको बलदायक औषधियोंकी योजना भी की है। लक्ष्मीविलास रसमें रसिंदूरका परिमाण अत्यधिक है और चतुर्मुखरसमें कज्जली मर्यादित है। एवं चतुर्मुखमें सुवर्ण का परिमाण भी लक्ष्मीविलासकी अपेक्षा कुछ कम है। इस तरह कृति-भेद होनेसे लक्ष्मीविलासका कार्य कफस्थान अर्थात् उरः और श्वासवाहिनियां आदि अवयवोंपर अधिक होता है; तब चतुर्मुख रसका कार्य आमाशय, ग्रहणी, लघुअन्त्र और बृहदन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थानपर अधिक होता है। इस लिये रोगारम्भस्थान फुफ्फुस आदि होनेपर लक्ष्मीविलास और पचनेन्द्रिय संस्थान होनेपर चतुर्मुखरस लाभदायक माना जाता है। अर्थात् जब क्षयके कीटाणुओंसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषद्वारा लघु और बृहदन्त्र दुष्ट होना प्रारम्भ हुआ हो, तब चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है। इस रसायनका मुख्य गुण वीर्य बलोत्पादक है। बाहरसे देखनेपर रोगी हट्टा कट्टा दीखता हो, निर्बलताका कोई भी लक्षण प्रतीत न होता हो; किन्तु भीतर से शनैः शनैः शक्तिपात होता रहता हो; ऐसी परिस्थितिमें चतुर्मुख रस

उत्तम प्रकारसे कार्य करता है।

अपचनकी जीर्ण आदत अर्थात् कुछ थोड़ा-सा खानेपर उदरमें आफरा आ जाय, स्निग्ध, द्विदल या जड़ पदार्थ थोड़ा-सा खानेपर भी पचन न होना, भोजन कर लेनेपर उदरमें भारीपन आ जाना, जैसे कोई वस्तु झूलेमें डालनेपर नीचे बैठे जाती है, उस तरह भोजन आमाशयमें जानेपर तलमें बैठ जाना, भोजन उदरमें जानेपर इच्छा दूर हो जाना, मुंहमें पानी आना अरुचि, अन्नका स्पर्श उदरमें होनेपर मन्द-मन्द शूल चलना, भोजन दीर्घकाल तक जैसा का वैसा ही पड़ा रहना, किसी तरह २४ घण्टेमें एक बार कर्त्तव्य पूरा करने या बेगार टालनेके लिये थोड़ा-सा खा लेना, दो ग्रास भी रुचिपूर्वक न लिया जाना, आदि परिस्थितियां होनेपर मन अति निर्बल हो जाता है। किञ्चित् भी मानसिक आघात सहन नहीं होता, सहनशीलता बिल्कुल नहीं रहती। शरीर बल और अग्निबल भी धीरे-धीरे क्षीण होते जाते हैं। इन कारणोंसे रसोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। परिणाम में रक्त, मांस आदि धातुओंमें भी क्षीणता होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में त्रिफला चूर्ण और शहदके साथ इस रसायनकी योजना करनी चाहिये।

इस तरह अपचनका परिणाम पक्वाशयपर होकर उसमेंसे अन्नरसका शोषण योग्य प्रकारसे नहीं होता। पक्वाशय शिथिल हो जाता है। उसकी अन्तस्त्वचाके भीतर रक्तकी पूर्ति चाहिये उतनें परिमाणमें नहीं होती। फिर इससे सारकिट्टको पृथक् करनेका कार्य सम्यक् प्रकारसे नहीं होता। एवं रस वहनका कार्य भी योग्य नहीं होता। परिणाममें पक्वाशयके समीपस्थ प्रदेशमें रसवाहिनियाँ मोटी हो जाती हैं और उनसे सम्बन्ध वाली छोटी-छोटी ग्रन्थियां भी मोटी हो जाती हैं। इस हेतुसे अग्निसाद उपस्थित होता है। सारा उदर भारी हो जाता है। सर्वदा उदरमें एक प्रकारकी तृप्ति होनेका भास होता है। बार-बार उबाक, अरुचि, उदरमें व्यथा, मन्द ज्वर, कभी-कभी क्षुधाका भास होना, परन्तु भोजन करनेकी इच्छाका अभाव हो जाना आदि लक्षण होते हैं। भोजन नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थितिमें आगे-आगे कुछ कच्चे झाग युक्त सफेद दुर्गन्धमय दस्त होते हैं। कितनों ही को कुछ समय जानेपर अतिसार हो जाता है। यह विकृति पित्त धातुकी विकृतिसे उत्पन्न होती है। इस हेतुसे अतिसार प्रारम्भ होता है। यकृत् अशक्त हो जाता है जिससे पित्तोत्पत्ति पूरी नहीं होती। परिणाममें रोगी निस्तेज, दीनवाणीयुक्त, क्षीण ओज वाला और बलहीन-सा प्रतीत होता है। उसपर चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है।

बृहदन्त्रका उण्डुक (Coceum) भाग अशक्त हो जानेपर अन्नपर पित्त का संस्कार होकर बना हुआ अन्नांश, बृहदन्त्रके आरोही भाग (Ascen-

diug Colon) में योग्य रूपसे नहीं फेंका जाता। आरोही भागमें अन्नांश को ऊपर और नीचे फेंकनेकी क्रिया (दोनों क्रियायें) होती रहती हैं। ये दोनों क्रियाएँ मुख्यत: लघुअन्त्रकी क्रियापर अवलम्बित हैं। ये दोनों कार्य मन्द हो जानेसे और उस स्थानमें अन्नांशके शोषणमें न्यूनता आ जानेसे अन्नांश जैसाका वैसा लघुअन्त्रमें दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता है। इस तरह प्रतिदिन अन्नांश रह जाने और पक्वाशयमें पाचकत्व (अग्नि) कम हो जानेसे अन्नका पचन, योग्य प्रकारसे नहीं होता। फिर अन्त्र उसी स्थानपर विकृत होने लगता है और उस हेतुसे विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है। यह जीर्ण बद्धकोष्ठका विकार अत्यन्त त्रासदायक है। इससे उदरमें वायु सर्वदा भरा रहता है, शौच-शुद्धि नहीं होती, अपान वायुका कार्य सम्यक् न होनेसे किट्ट भाग पूर्ण रूपसे और योग्य समयपर बाहर नहीं निकलता, रोगी सर्वदा उदासीन और व्याकुल रहता है, तथा मन बिल्कुल निर्बल और उत्साह रहित बन जाता है। ऐसी परिस्थितिमें लघुअन्त्रको शक्ति प्रदानकर अन्त्रकी उत्सर्ग-क्रिया, पाचन-क्रिया और संशोषण-क्रियाकी सुधारनेका कार्य इस रससे सहज हो जाता है।

इस रससे इन्द्रिय समूहको तुष्टि मिलती है और निर्बलता नष्ट होती है। अन्न सड़नेकी क्रिया बन्द हो जाती है। विशेषत: कफप्रधान और कफपित्त प्रधान लक्षण होनेपर इसका विशेष उपयोग होता है। यदि वातप्रधान लक्षण हों तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

धातुओंके विविध क्षयके हेतुसे धातु-परिपोषण-क्रम क्षीण हो जाता है। इस क्षीणताको दूर करनेका कार्य इस रसायनसे सरलतापूर्वक हो जाता है। पचनेन्द्रिय क्षीण होनेसे पाचक पित्तमें क्षीणता आती है। फिर उससे अन्न-रस योग्य नहीं बनता। रसधातुकी इस क्षीणताके हेतुसे रक्त भी जितने परिमाणमें सबल और पूर्णांशयुक्त चाहिये, उतने परिमाणमें नहीं होता। परिणाममें आगे-आगेकी धातुएँ और शरीरके अवयवोंको एक प्रकारका उपवास करना पड़ता है जिससे क्षीणताकी प्राप्ति होती है। रोगी कृश, दीन और दुर्बल बन जाता है। इस अवस्थामें ज्वर रहता है, यह नियम नहीं है। इस प्रकारके धातुक्षयपर चतुर्मुख रसका उत्तम उपयोग होता है।

इस कारण परम्पराके हेतुसे अन्न-पचन योग्य न होनेसे उत्पन्न होनेवाले अतिसारमें इस रसका उपयोग होता है। इस अतिसारमें शौच सफेद और झागयुक्त होता है। कभी-कभी बिल्कुल कच्चा अन्न जाता है। इसके साथ खाये हुए अन्नकी वमन हो जाती है। उस वान्तिमें अम्लता या कड़वापन नहीं होता। जैसाका वैसा अन्न किञ्चित् मधुर-सा बनकर निकल जाता है।

चतुर्मुख राजयक्ष्माकी उत्तम औषध है। इस रसमें सुवर्णकी मात्रा

मर्यादित है। फिर भी इसे आरम्भ करनेपर क्वचित् तुरन्त ज्वरका परिमाण बढ़ने लगता है। ऐसी स्थितिमें इसे कुछ दिनके लिये बन्द कर देना चाहिये या मात्रा अत्यन्त कम कर देनी चाहिये। क्षयका केवल संशय होनेपर एवं नेत्र, छाती, पसली तथा पैर आदिमें जलन, बेचैनी, अङ्ग टूटना कुछ ज्वर सदृश देह संतप्त हो जाना आदि लक्षण होनेपर इसे बिल्कुल कम मात्रामें प्रारम्भ करना चाहिये। ऐसी स्थितिमें प्रवाल भस्मका भी उत्तम उपयोग होता है परन्तु पित्ताधिक्य हो, तो प्रवाल और कफाधिक्यसे स्रोतसोंका रोध हो तो चतुर्मुख देवें। चतुर्मुख देनेमें दूसरा विशेष लक्षण क्षीणता होनी चाहिये। अन्तरेन्द्रियकी क्षीणता; रोगीको अशक्ति लगना, यह लक्षण विशेष रूपसे होनेपर क्षयके प्रारम्भ कालमें इसका प्रयोग करने से आगेकी सब अनर्थ परम्पराकी प्राप्ति ही नहीं होती।

राजयक्ष्माके आगेकी अवस्थामें क्षीणतारूप लक्षण प्रधान होनेपर और इसी हेतुसे स्वरभेद (ज्वरका वेग तीव्र न होनेपर), सर्वंगात्रमें क्षीणता, मर्यादित दाह होनेपर भी सहन न होना, दस्त पतला और अधिक होना, शौच दिनमें एक दो बार होना और अधिक कष्ट न होकर होना, प्रत्येक शौचके साथ क्षीणताकी वृद्धि होना. अन्नकी वाञ्छा न होना, विशेषतः जड़ और शीतगुणयुक्त अन्न, (भात-दाल) की इच्छा बिल्कुल न होना, भोजन बहुत थोड़ा करनेपर भी उदरमें जानेपर भारीपन होना स्वल्प भोजन भी व्यथारूप भासना, खांसी शुष्क या कफयुक्त होना परन्तु खाँसीके प्रत्येक वेगके साथ मानसिक व्याकुलता और कष्ट होना, खांसीकी आवाज अति गहराईमेंसे निकलना, प्रत्येक वेगके साथ क्षीणताकी वृद्धि होनेका भास होना,बोलनेपर कण्ठमें कफ चिपका हो ऐसा भासना, क्षीणताके हेतुसे एक भी शब्दका उच्चारण नहीं हो सके ऐसी भासना होना, एकाध शब्द बोलनेमें भी अति कष्ट होना, हाथ-पैर चलानेकी भी शक्ति न रहना और सारा शरीर शिथिल हो जाना, आदि लक्षण भासते है। ऐसी परिस्थिति में चतुर्मुखसे उत्तम कार्य होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

रक्तमें रक्तकण कम हो जानेसे और इसका कारण विशेषतः मानसिक श्रम होनेसे चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। इसमें भी क्षीणता रूप लक्षण तो होना ही चाहिये। उस पाण्डुतामें रोगी उतना क्षीण हो जाता है कि उसकी आवाज भी अतिशय कष्टसे ही बाहर निकलती है; स्वरसाद होता है तथा शेष इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं। इस स्थितिमें ज्वर हो तो चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

केवल एक स्थानपर बैठे-बैठे व्यवहार करने वाले, विशेषतः कुछ भी

उद्योग (परिश्रम) या व्यायाम न करते हुए स्निग्ध आहारका सेवनकर खूब सोने वाले, मांसाहार या पक्वाहार अपनी शक्तिसे अधिक खाकर पाचनशक्तिकी ओर दुर्लक्ष्य करने वाले, मधुर रसका सेवन अत्यधिक करने वाले, इसी तरह मत्स्य सेवन अत्यन्त करने वाले और जिनकी पचनशक्ति क्षीण हो गई है, ऐसे अजीर्णभोजी मनुष्योंको प्रमेह रोगकी संप्राप्ति होती है। इस मेह रोगके मूलमें अग्निमांद्य और उस हेतुसे उत्पन्न अपचन ही विशेषरूपसे कारण होते हैं। इस विकारमें मूत्रोत्सर्ग बार-बार अधिक परिमाणमें होता है, तृषा अधिक लगती है; मिथ्या क्षुधा बनी रहती है; हाथ पैरोंमें दाह होना, देहपर बार-बार प्रस्वेद आना, प्रस्वेदमें एक प्रकार की दुर्गन्ध रहना, शौच मर्यादित होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर प्रारम्भमें कुछ दिन लङ्घनकरा फिर चतुर्मुखका उपयोग करना चाहिये।

(१७९) शतायु रसायन

विधि—तलस्थ-सिद्धमकरध्वज शतगुण गन्धक जारित सुवर्ण चन्द्रोदय १ तोला, अभ्रकसत्व भस्म (शतपुटी); सुवर्णमाक्षिक सत्वभस्म (दशपुटी) शिलाजीत; सोंठ, मिर्च, पीपल; वायविडंग, हरड़, बहेड़ा; आमला ये प्रत्येक २-२ तोले लें। सबका मसृण कपडछन चूर्ण बना लें। इसमें असगंध, शतावरी व आमलेके रसकी १-१ भावना दे सुखाकर भर लें।

(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

मात्रा—२ से ३ रत्ती तक। घी शहदसे चाटें। दोनों समय लें। भोजन में दुग्ध भातका प्रयोग करें। शरीर शुद्धिके बाद सेवन करें।

उपयोग—यह रसायन रस रक्तादि धातुवर्द्धक; पौष्टिक; जीवनीयशक्ति प्रद; आरोग्यदायी है। इसके १ वर्ष सतत सेवनसे शतायुकी प्राप्ति होती है यह श्रेष्ठ रसायन है। एक मासमें सुपरिणाम न मिलनेपर वैद्यकी सलाह लें।

(१८०) नागार्जुनाभ्र रस

योग—सहस्रपुटी अभ्रकभस्म।

भावना द्रव्य—अर्जुन की छाल।

विधि—सहस्रपुटी अभ्रकभस्मको लेकर अर्जुनकी छालके क्वाथके साथ ७ दिन तक घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली अर्जुनकी छाल से सिद्ध किये हुए दूधसे अथवा जलसे देवें।

उपयोग—इसके सेवनमें हृदयके रोग, शूल, अर्श हृल्लास, क्षत-क्षय, शोथ, छर्दि अरुचि, अतिसार, अग्निमांद्य रक्तपित्त, उदररोग, अम्लपित्त और विषमज्वरादि नष्ट, होते हैं, तथा बल, वीर्यकी वृद्धि होती है। यह उत्तम रसायन भी है। (र० चि०)

गुटिका प्रकरण

एक या अनेक औषधियोंके महीन चूर्णको जल, दूध, वनौषधियोंके स्वरस, क्वाथ, शहद, गुड़ या शक्करकी चाशनीमें मिला अच्छी रीतिसे खरल करके गोलियां बनाई जाती हैं, उन्हें गुटिका कहते हैं। गुटिकामें आकृति और परिमाण-भेदसे गुटिका, वटिका, वटी (बड़े), मोदक (लड्डू), पिण्डी (मूठियां), वर्ती (बत्तीके सदृश आकार वाली), गुड़ (गोला), सोगठी शिखराकृतिकी गोली) आदि अनेक प्रकार हैं। वर्त्तमानमें चक्रिका, टिकिया केपसूल, टेबसूल आदि विविध प्रकार बनाये जा रहे हैं।

जल, दूध, स्वरस या क्वाथ आदिकी भावना देकर गोलियाँ बनानी हों तो औषधि अच्छी तरह भीग जाय, उतना द्रव पदार्थ मिला खरल करके गोलियाँ बना लेनी चाहिये। यदि गोलियां बनानेमें किसी औषधिके क्वाथ की भावना देनी हो तो मूल औषधियोंके चूर्णके बराबर क्वाथ करनेके द्रव्यको ले, आठ गुने जलमें औटा, आठवाँ हिस्सा शेष रहनेपर उतार छान कर भावना दें।

शक्कर और गुड़ प्रायः चाशनी करके मिलाये जाते हैं। शुद्ध गूगलको जलमें पका या घी मिला अन्य औषधियोंके साथ कूट करके गोलियां बनाई जाती हैं। शक्कर मिलानी हो तो चूर्णसे ४ गुनी, गुड़ दुगुना, शहद चूर्णके समान और गूगल भी चूर्णके बराबर लेना चाहिये।

यदि गुगलका पाक करना हो तो गुडके पाकके समान करें। किन्तु गाढ़ा बनावें। जो जलमें डालनेपर डूब जाय, इधर-उधर फैल न जाय, ऐसा पाक होनेपर औषधियोंके चूर्णके साथ मिलावें। यदि पाक न करना हो तो चूर्ण और शुद्ध गूगलको मिला थोड़ा थोड़ा घी डालकर इमामदस्तेमें खूब कूटकर अच्छी तरह मिला लें पश्चात् गोलियां बांधें।

गोलियाँ जो सेवनमें अधिक कठोर हों; उन्हें पीस, अनुपानके साथ मिलाकर लेनी चाहिये; अन्यथा कठोर गोलियां मलके साथ ज्योंकी त्यों निकल जाती हैं। एवं गोलीको पीसकर लेनेमें लाभ भी सत्वर होता है।

भस्म और रसायनकी अपेक्षा काष्ठादि औषधियोंसे बनाई हुई गुटिका प्रायः सौम्य होती हैं। अतः अशक्त नाजुक और उष्ण प्रकृतिवाले रोगियों को और पुराने रोगोंमें लाभदायक हैं। यद्यपि चूर्ण आदिकी अनेक कृतियां सौम्य हैं; तथापि उनकी मात्रा ज्यादा हैं। गुटिकाकी मात्रा कम है और गुटिकाको निगलनेसे औषधिमें रहे हुए बेस्वादुपन या कडुवापन से मनमें ग्लानि भी नहीं होती। इसलिये बालकों स्त्रियों और नाजुक प्रकृति वाले पुरुषोंको गोलियोंका सहज सेवन करा सकते है; एवं हानिकी सम्भावना न होनेसे साधारण बोध वाले चिकित्सक भी निर्भयतापूर्वक गुटिकाओंको

उपयोगमें ले सकते है ।

गूगल और अन्य अनेक प्रकारकी गुटिकाएँ शीघ्र लाभ न पहूँचाकर; शनै: शनै: स्थिर लाभ प्रदान करती है । इसलिये ऐसी औषधियोंका सेवन धैर्यपूर्वक पथ्यपालनके साथ विशेष समय तक करना चाहिये ।

कितनी ही प्रकारकी गुटिकाओंमें बच्छनाभ, जमालगोटा कुचिला आदि विष मिलाते है । इन गुटिकाओंको तैयार करनेमें विषोंको "शोधन प्रकरण" में लिखी विधिसे शुद्ध करके ही मिलाना चाहिये । जहरी औषधियों को बिना शुद्ध किये मिलानेसे औषधि-प्रयोग अति उग्र बनता है; जिससे विष प्रकोपका असर औषधि सेवन करनेवालेपर होता है ।

बच्छनाभ आदि विष-मिश्रित गुटिकाएँ उग्र है । अत: इनको आवश्यकतापर सम्हालकर बहुत थोड़ी मात्रामें उपयोगमें लेनी चाहिये । विष-मिश्रित उग्र औषधि रोगको दबानेमें तुरन्त लाभ पहुँचाती है । परन्तु वह जीवनीय शक्तिको निर्बल बनाती है; अथवा उत्तेजनाके पश्चात् अवसादक असर पहुँचाती है ।

जिन गोलियोंको शास्त्रकारोंने सूर्यके तापमें सुखानेको लिखा है; उनको सूर्यके तापमें ही सुखाना चाहिये । शेष गुटिकाओंको छाया और खुली वायु में पत्थर या एनेमलके पात्र या कलई लगी हुई थालीमें सुखाकर सावधानी से काचकी अच्छी डाटवाली शीशियोंमें भर लेना चाहिये ।

नींबू या खट्टे रसमें तैयारकी हुई गोलियां कलई किये वर्तनमें सुखानेपर भी दूषित हो जाती हैं । अत: उनको मिट्टी या पत्थरके बर्तनोंमें ही सुखावें और जब तक गोलियाँ अच्छी रीतिसे न सूख जायँ तब तक शीशीमें न भरें । अन्यथा थोडे ही दिनोंमें दुर्गन्ध आने लगेगी । गोलियां अच्छी सूख जानेपर खुली भी न रखनी चाहिये; अन्यथा उनका सत्व कम होता जायगा व गोलियोंपर वातावरणका प्रभाव हो जायगा ।

अनेक गुटिकाओंमें अफीम आदि विष मिलाते है । उनके उपयोगके विषयमें अधिकारी और समयके लिये संक्षेपमें सूचना "आवश्यक सूचना प्रकरण" में लिखी है; तथापि पुन: यहां संक्षेपमें लिखते है ।

पेचिस अथवा अतिसारमें जब तक सफेद आम गिरता हो; अथवा भीतरका दूषित मल दूर न हुआ हो; तब तक अफीम वाली औषध न दें ।

जमालगोटा अनेक औषधियोंमें आता है, उसका उपयोग करनेके पहिले अधिकारी: समय और मात्राका अच्छी रीतिसे विचार कर लेना चाहिये । जमालगोटा मिश्रित गुटिकाएँ बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, अति निर्बल, क्षयरोगी, मुद्दती तापके रोगी आदिको नहीं देना चाहिये या आवश्यकतापर अति कम मात्रामें सम्हालकर देनी चाहिये ।

कुचिलामिश्रित गोलियाँ एक साथ १५ दिनसे अधिक काल तक न दें। अधिक समय तक देनी हो तो बोच-बीचमें ५-७ दिन छोड़-छोड़कर दें; कारण कुचिला, डिजीटेलिस (Digitalıs), संखिया आदि अनेक जहरी ओषधियोंका अंश आमाशयमें संचित होता रहता है।

बच्छनाभ-मिश्रित औषधि जब मूत्रल असर पहुँचाकर रोगके कारणके निवृत्यर्थ दी जाय, तब तीन दिनसे अधिक नहीं देनी चाहिये। कारण, बच्छनाभ आरम्भमें मूत्रको बढ़ाता है, जिससे संचित दोष मूत्रद्वारा निकल जानेपर मूत्र साफ कुएँके जलके समान हो जाता है। किन्तु तीन दिन पश्चात् पुनः शनैः शनैः मूत्रका रङ्ग पीला होता जाता है। फिर भी बच्छनाभ वाली औषध दी जायगी तो लाभके बदलेमें हानि होगी।

वक्तव्य—विशेष विवेचन और अन्य प्रयोगोंके लिए यहांसे प्रकाशित नित्योपयोगीगुटिका संग्रह देखें।

(१) संजीवनी वटी

विधि—बायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बच, ताजी गिलोय, शुद्ध भिलावा और शुद्ध बच्छनाभ इन १० वस्तुओंको समभाग लें। पहिले बच्छनाभ, भिलावा और गिलोयको मिलावें। फिर शेष ओषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला गोमूत्रमें १२ घण्टे खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां बनावें। (शा० सं०)

सूचना—यदि इस वटीमें बच्छनाभके समान शुद्ध हिंगुल भी मिला लिया जाय, तो वटी अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

मात्रा—१ से ३ गोली, दिनमें २ से ४ समय। अदरकके रस या ४ रत्ती सोडाबाईकार्ब मिलाकर जलके साथ दें। अथवा गोली निगलकर ऊपर जल लेवें।

उपयोग—यह वटी ज्वर, अजीर्ण, कृमि, वमन, उदरशूल, कफयुक्त कास गुल्म, विसूचिका (हैजा), सर्पदंश और सन्निपात आदि रोगोंको दूर करती है।

इस संजीवनी वटीमें बच्छनाभ मिलाया है। बच्छनाभमें उष्ण स्वेदल और ज्वरघ्न गुण होनेसे भीतर बढ़ा हुआ दोष, पसीने और मूत्रद्वारा बाहर निकल जाता है तथा आमका शोषण होता है। इस कारणसे अजीर्ण जुकाम, अजीर्ण जन्य ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। स्थावर और जंगम विष एक दूसरेके प्रति द्वन्दी होनेसे बच्छनाभ प्रधान इस गुटिकासे सर्पविष का भी शमन होता है।

कितने ही चिकित्सक संजीवनीका प्रयोग मोतीझरेपर सफलतापूर्वक करते रहते हैं। मोतीझरेकी प्रथमावस्थासे लेकर अन्तिमावस्था पर्यन्त यह दी जाती है। प्रातः सायं संजीवनीके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर तथा दोष-

हरको केवल प्रवालपिष्टी देते रहनेसे २१ दिनमें ज्वरविषका परिपाक होकर मोतीझरा निवृत्त हो जाता है। यदि बीचमें अपथ्य या अन्य किसी कारण-वश उपद्रव उपस्थित हुआ हो तो उपद्रवके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

सन्निपातकी विविध अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाने वाली अनेक ओष-धियोंका विवेचन आयुर्वेदमें मिलता है। इन औषधियोंमें संजीवनीको भी स्थान मिला है। यद्यपि यह साधारण औषधि है तथापि ज्वरविष और आमको जलानेमें अति उपयोगी सिद्ध हुई है। कफवृद्धि, मन्द-मन्द प्रलाप अति बेचैनी आदि लक्षण युक्त सन्निपातपर व्यवहृत होती है। अनुपान रूप से तुलसीका रस दिया जाता है। यदि सन्निपातमें उदरमें भारीपन, कठो-रता और मलावरोध हो तो पहिले वर्ति (सपोजिटरी) या बस्ति अथवा मृदु-विरेचक औषधि देकर उदर शुद्धि करा लेनी चाहिये। कीटाणु दूषित सड़े हुए फल अथवा बासी या सड़ा हुआ अन्न खानेसे अपचन होता है। फिर पतले दस्त, उदरशूल, उदरमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। एवं किसीको विसूचिका हो जाता है। फिर बार-बार पतले दस्त और वान्ति होती है इन दोनों प्रकारोंपर संजीवनी व्यवहृत होती है। मन्द प्रकोपमें दिनमें ३ बार और विसूचिकाके तीव्र असरमें १-१ गोली एक एक या २-२ घण्टेपर ४-५ बार देनेसे कीटाणुओंको नष्ट करती है; अतिसार और वमन को रोक देती है, वायुको शान्त करती है तथा पचनशक्तिको सबल बनाकर आमविषको जला देती है। जिससे अपचन जनित अतिसार, विसूचिका आदि विकार दूर हो जाते हैं। अनुपान रूपसे प्याजका रस या अदरकका रस देना विशेष लाभ दायक है।

अपचन जनित विसूचिकाके समान कीटाणुजनित विसूचिकापर भी इसका उपयोग होता है। यदि विसूचिकाकी प्रारम्भावस्थामें ही इसका प्रयोग किया जाय तो लाभ पहुँच जाता है।

विसूचिकामें वान्ति और अतिसार द्वारा जलांश अधिक निकल जानेके अतिरिक्त (बाहर अंग शीतल होनेपर भी कोष्ठके भीतर उष्णता बढ़ जाने से भी प्रायः मूत्रोत्पत्ति नहीं होती। यदि पेशाब साफ आ जाय तो विसू-चिका रोगमें बहुधा आराम हो जाता है। भीतरकी उष्णताको शमनकर पेशाब लानेका कार्य इस संजीवनीवटीसे होता है। ये अन्तरकी उष्णता शामक और मूत्रल गुण बच्छनाभके हेतुसे होते हैं।

बच्छनाभ, भिलावा, बच और त्रिकटु मिले होनेसे इस औषधिमें दीपन पाचन और वातश्लेष्महर गुण प्रतीत होते हैं। इन गुणोंके हेतुसे औषध दूषित कफ और आमका संशोषण करके शूल और अजीर्णको दूर करती है, तथा अग्निको प्रदीप्त करती हैं, एवं वात और कफोल्वण सन्निपातमें दूषित

कफका संशोधन करना और बाहर फेंकनेके लिये उत्तेजना देना दोनों कार्य करती है। जिससे कफोल्वण और वातकफभूयिष्ठ सन्निपातकी निवृत्ति होती है। कफ युक्त कास और श्वास रोगमें भी लाभदायक है।

इस प्रयोगमें सहायक औषधियाँ त्रिफला. बायबिडंग, गिलोय और गोमूत्र है। त्रिफला रुचिकर और मलशोधक है। बायविडग जन्तुघ्न और गिलोय तीनों दोषोंका संशमन करने वाली है। एवं गोमूत्र अग्निदीपक, मल मूत्रावरोध नाशक और कफघ्न है। इस रीतिसे साधारण द्रव्योंसे बनने पर भी संजीवनी दिव्य प्रभावशाली सिद्ध हुई है। इसलिये इसे "अमृत-संजीवनी" भी कहते हैं।

सूचना—यह वटी सूखी खाँसी वालेको नहीं देनी चाहिये और हृदयकी शिथिलगति वालोंको एवं हृद्रोग पीड़ितोंको सम्हालपूर्वक देनी चाहिये। एवं गरम-गरम चाय, कॉफी आदिके साथ भी संजीवनी नहीं देनी चाहिये।

(२) ज्वरारि वटी

विधि—मल्ल पुष्पके साथ बना हुआ गुलाबी फिटकरीका फूला १ भाग पीपल और मिर्च २-२भाग लें। सबको मिला घीकुंवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० सा०)

मात्रा—१-१ गोली, दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी नवीन ज्वर, जीर्णज्वर और विषम ज्वरको दूर करती है। इस वटीके प्रभावसे नूतन ज्वर २-४ दिनमें ही दूर हो जाता है।

नूतन सामान्य ज्वर और नूतन विषमज्वरमें यदि मलावरोध है अथवा आमाशय और लघु अन्त्रमें अपाचित अन्न रहा है, तो पहले आचार्य वृन्द कथित आरग्वधादि क्वाथ या अन्य उदरशुद्धि कर अथवा आमपाचक औषधि देनी चाहिये। एवं रोगीको एक दिन लंघन कराना चाहिये।

विषम ज्वरमें अनेकोंसे क्विनाइन सहन नहीं होता, क्विनाइन देनेपर पित्त प्रकोप होकर ज्वर बढ़ जाता है। फिर शिरमें भारीपन, निद्रानाश, रक्तदबाव वृद्धि, बार-बार लघुशंका होना और आलस्य आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उन रोगियोंके लिये यह वटी अति लाभदायक है।

कितने ही रोगियोंको योग्य उपचार न होनेपर या अपथ्य सेवन होनेसे दीर्घकाल तक ज्वर नहीं छोड़ता। रोज शामको ९९° डिग्री तक या अधिक उत्ताप हो जाता है। देह हाड़पिंजर-सा शुष्क और निस्तेज बन जाता है। पचनक्रिया दूषित हो जाती है, ठण्ड और गरमी सहन नहीं होती। आलस्य बना रहता है: उन रोगियोंको शुष्क कास न होनो पथ्य पालनसह इस वटीका सेवन थोड़े दिनों तक करानेपर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

फिटकरीमें विषमज्वरके कीटाणु विषको नष्ट करनेका गुण रहता है।

इसके साथ सोमलका योग होनेपर उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। यद्यपि इस औषधिमें मल्लका विशेषांश उड़ जाता है, तथापि फिटकरी मल्ल-संयोगसे प्रबल ज्वरहर बन जाती है। ज्वरावस्थामें कुछ आमविष रहता है और अग्नि मन्द हो जाती है। अतः आम विषको जलाने और अग्निको प्रदीप्त करनेका कार्य मल्लसंयोग और मिर्च मिश्रणसे हो जाता है।

सूचना—(१) इस वटीमें सोमलका योग होनेसे मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये।

(२) यदि रोगीका यकृत् निर्बल हो तो दही गुड़, शक्कर, घी और तले हुये पदार्थोंका सेवन कुछ दिनों तक कम परिमाणमें करना चाहिये।

[३] त्रिवृदष्टक मोदक

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नाग केशर, बायविडंग औंर आंवला ये ९ औषधियाँ १-१ छटांक, निशोथ ८ छटांक और दन्तीमूल २ छटांक लेवें। सबको मिला बारीक चूर्णकर ६ गुनी शक्करकी चाशनीमें मिलावें। फिर १ छटांक सेंधानमक और २ छटांक शहद मिलाकर १-१ माशेकी गोलियां बनावें। (सु० सं०)

मात्रा—२ से ३ गोली। सुबह शीतल जलके साथ देवें। यदि पित्त-श्लेष्म दोष हो तो दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह औषधि उत्तम सौम्य विरेचन और विषघ्न हैं। मल-मूत्रावरोध, बस्तिमें शूल चलना, पित्तवृद्धिके कारणसे प्यास, वमन दाह, शोथ ज्वर और पांडु आदि रोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

सुश्रुत संहिताका यह त्रिवृदष्टक मोदक और शार्ङ्गधर संहिताका अभयादि मोदक, दोनोंमें अधिकांशमें समानता है। गुणधर्म दृष्टिसे भी यह मोदक अधिकतर गुणप्रद भासता है।

जीर्ण मलावरोध पीड़ितोंको ४-४ रत्तीकी १-१ गोली प्रकृति अनुरूप २-४ मास तक नियमित रोज सुबह आरोग्यवर्धिनीके साथ सेवन करायी जाय तो आंतोंके भीतर चिपके हुए मल धीरे-धीरे निकल जाते हैं। रस, रक्त आदि सब धातुओंका शोधन हो जाता है और क्रमशः शक्ति वृद्धि होने लगती है।

मलावरोधसे उत्पन्न होने वाले, मदाग्नि, अपचन, अर्श, अतिसार, उदर रोग, पाण्डु, उदरवात, विभिन्न वातरोग मन्द-मन्द ज्वर आना और बार-बार ज्वर बढ़ जाना, आमविष संग्रह होकर विविध चर्मरोग तथा अन्य रोगोंकी संप्राप्ति होना आदि विकार इस औषधिका पथ्यपालनसह नियमित सेवन करनेपर मलावरोध रूप मूल नष्ट होनेसे दूर हो जाते हैं।

यदि नया मलावरोध, अपचन, दूषीविष या अन्य विषको निकाल देने

के लिए एक समय ही उदरशुद्धि करानी हो तो मात्रा ३ से ६ माशे तक मूलकारण और कोष्ठकी मृदुता कठोरताके अनुरूप योजना की जाती है। एवं जलोदर प्रधान उदर रोगोंसे तथा शोथपर बड़ी मात्रामें त्रिवृदष्टक मोदकका सेवन कराया जाता है। और भोजनमें मात्र दूध, दूध-भात, मूंग का यूष या खिचड़ी दी जाती है।

सूचना—इस मोदकके सेवनकालमें सिगरेट, बीड़ी, गरम-गरम चाय, मिर्च-मसाला, द्विदल धान्य तले हुए पदार्थ ये सब हो सके उतने अंशमें छोड़ देना चाहिये।

(४) नाग गुटिका

विधि—शुद्ध बच्छनाभ, पीपल, लौंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, सोंठ, अकलकरा, कालीमिर्च, शुद्ध सिंगरफ और सोहागेका फूला ये १२ औषधियाँ १-१ तोला, केशर ३ माशे और कस्तूरी १ रत्ती लें। सबको कूट, कपड़छन कर अदरकके रस और नागरबेलके पानके रसमें अनुक्रमसे १२-१२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियां बनावें।

(औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१-१ गोली, दिनमें २ बार। नागरबेलके पान या जलके साथ दें।

उपयोग—यह गुटिका जुकाम, ज्वर, गला और छातीका दर्द, अरुचि, जुकामसे होने वाले अतिसार, उबाक, शिरदर्द, अपचनके हेतुसे उदरमें भारीपन आदि विकारोंको दूर करती है।

इस गुटिकामें प्रधान औषध बच्छनाभ होनेसे इसका प्रयोग अति सम्हालपूर्वक करना चाहिये। बच्छनाभ शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक और पीड़ाहर है। इसके प्रयोगसे नासिका और कण्ठकी श्लैष्मिक त्वचामेंसे होने वाले स्रावका शोषण होकर कम हो जाता है। यह स्राव शरीरके किसी स्थानमेंसे बाहर निकलना चाहिये। अतः इस वटीके प्रभावसे प्रस्वेद अधिक होता है, एवं मूत्रोत्पत्ति भी अधिक होती है। प्रतिश्यायमें जो श्लेश्मस्राव होता है यह इस हेतुसे कम होता है। फिर विकार कम होनेपर मूत्रकी मात्रा कम हो जाती है।

मुंहमें पानी भर जाना, उबाक, अरुचि आदि अपचनसे होनेपर झाग-युक्त कफ गिरता हो तो अग्निकुमार रस दिया जाता है। परन्तु शीतल स्थानमें शयन करनेपर, वर्षाके जलसे भीगनेपर या शीत लग जानेसे क्षुधा नष्ट होना, उदरमें भारीपन, कब्ज, मस्तिष्कमें जड़ता, अंग अकड़ जाना आदि लक्षणोंसह ज्वर होनेपर नाग गुटिका अवश्य देनी चाहिये फिर मूत्र का रंग पीला होने लगे या मूत्रस्राव कम हो जाय तब नाग गुटिका बन्द कर देनी चाहिये। यदि ऐसी परिस्थितिमें गुटिका दी जाय तो अपाय होता

है। अर्द्धावभेदक या वृक्क-विकार होकर शोथ आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते है।

ठण्ड लगकर जुकाम होना, फिर ज्वर, ज्वर होनेसे त्वचापर चिपचिपापन, सर्वाङ्गमें जड़ता, आलस्य, जंभाई आना, मुंहमें मधुरता और चिपचिपापन, खाँसी आनेपर छाती और कण्ठमें दर्द होना आदि लक्षण होनेपर नागगुटिका अति हितकर औषध है।

इस गुटिकामें सफेद बच्छनाभ मिलानेपर मधुमेह, इक्षुमेह, हस्तिमेह, इन प्रमेहोंपर लाभ पहुँचाती है। इसके योगसे मधुकी उत्पत्ति कम नहीं होती केवल बार-बार होने वाली मूत्रकी शंका नष्ट होती है। मधुकी उत्पत्ति कम करानेके लिये नागभस्म, वसन्तकुसुमाकर, जातिफलादि वटी या प्रमेहगजकेसरीका प्रयोग करें।

नाग गुटिकाके योगसे रसका संशोषण होनेसे देहमें शीतलता आदि गुण कम होते हैं तथा बच्छनाभके योगसे त्वचामें रही हुई केशिकाओंमें रक्तका दबाव बढ़ता है, जिससे प्रस्वेद-वृद्धि होकर सेन्द्रियविष त्वचासे बाहर निकल जाता है। इस गुणके हेतुसे बच्छनाभ प्रधान औषधियाँ क्षोभ-जन्य ज्वर और क्षोभयुक्त अन्य रोगोंमें प्रयुक्त होती है। (औ. गु. ध. शा.)

(५) धनंजय वटी

विधि—जीरा, चव्य, सफेद चन्दन, बच, दालचीनी, छोटी इलायची, कचूर हाऊबेर, कलौंजी, नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला, सोंफ ६ माशे, अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हरड़ जायफल, लौंग सब २-२ तोले, धनियां ३ तोले, चित्रकमूल, पीपल और साँभरनमक ४-४ तोले, कालीमिर्च ७ तोले, निशोत ८ तोले, सामुद्रनमक, सैंधानमक और सोंठ १०-१० तोले, चूका (खट्टी भाजी) ३२ तोले और इमली १६ तोले लें। सबको मिला, कूट, कपड़छनकर चूकेके रसमें ६ घण्टे खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ३ गोली तक, दिनमें ३ बार। मठ्ठा, नींबूका रस, अनार का रस अथवा जलके साथ देवें।

उपयोग—धनञ्जय वटी प्रभावशाली औषधि है। यह पाचक, अग्नि-प्रदीपक, विरेचक, सारक और रुचि उत्पादक है, आमाशयसे बृहदन्त्र तक के विबंधको दूर करती है। पक्वाशयमें पाचक रसका स्राव नियमित कराती है, तथा नजला, उदरशूल और मलावरोधको दूरकर लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी पुरःसरण क्रियाको बढ़ाती है।

इस धनंजय वटीका कार्य तत्काल देखनेमें आता है, अतः अपचनके विकारमें विशेषतः आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णपर इसका अच्छा उपयोग होता है। इस वटीमें वातनाशक औषधियोंका सम्मिश्रण होनेसे डकारें

आकर आमाशयके विबंधका नाश होता है ।

शक्तिकी अपेक्षा अधिक खा लेनेपर ही केवल अपचन होता है ऐसा नही अप्रिय, विष्टम्भकारक, जले हुए, अधकच्चे, जड़, रूक्ष, शीतल, वासी, दुर्गन्ध युक्त और अपवित्र भोजन करनेपर भी अपचन हो जाता है । अर्थात् विभिन्न प्रकारके अन्नके अलग-अलग प्रकारके अपचन होते हैं । गुरु अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें कफदोषका प्राधान्य और रूक्ष अन्नसे वातप्राधान्य होता है । इस तरह विविध प्रकारके भोजनोंसे उत्पन्न अजीर्णोंमें विविध दोषप्रकोप होते हैं । अतः औषध-योजना करनेपर दोष-दूष्यविवेक अवश्य करना चाहिये । आंखें मूंदकर दीपन, पाचन औषधि देते रहना यह शास्त्रीय चिकित्सा नहीं है । इसका विशेष विचार औषधगुणधर्म विवेचनमें किया है ।

केवल गुरुअन्नके सेवनसे आमाजीर्ण होता है; इस तरह स्निग्ध भोजनसे भी आमाजीर्ण होता है । परन्तु दोनोंकी दोषदुष्टिकी दृष्टिसे दोनोंमें अन्तर है । केवल गुरु स्वभाव वाले भोजन या गुरु मात्रा (अधिक भोजन) के सेवन करनेसे उत्पन्न अजीर्णमें क्रव्याद रसका अच्छा उपयोग होता है : स्निग्ध अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें शंखवटी, गन्धकवटी, लहशुनादि वटी आदि अधिक लाभदायक हैं । रूक्ष, निस्नेह, विष्टम्भकारक, कच्चा अन्न, शीतवासी अन्न और अपवित्र भोजनके सेवनसे विष्टब्धाजीर्ण होनेपर उदरमें वायुकी उत्पत्ति उदरपीड़ा, शूल आदि होते हैं । डकार साफ नहीं आती या अधोवायु नहीं सरता । उदरमें भारीपन और बेचैनी होती है । यदि वेदना अधिक हो तो रोगी चिल्लाता है, तृषा अधिक लगती है; खूब जल पी लेनेपर भी तृषा शमन नहीं होती ऐसे अजीर्णमें धनंजय वटीका उत्तम उपयोग होता है । इससे विबंध दूर होता है । शूलका शमन होता है; शोचशुद्धि होती है और वायुका अनुलोमन होता है । पक्वाशयमें पाचक रसका योग्य स्राव होता है और आंतोंकी पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होकर मलावरोध कम हो जाता है । (औ० गु० ध० शा०)

(६) चन्द्रप्रभा वटी

विधि—कपूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रक, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, बायविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, काचनमक ये सब तीन-तीन माशे, काली निसोत, दन्तीमूल, तेजपत्र, दालचोनी, छोटी इलायचीके दाने, वंशलोचन एक-एक तोला, लोहभस्म २ तोले, मिश्री चार तोले, शुद्ध-शिलाजीत ८ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले लें । सबको बारीक कूट, गूगल मिला, थोड़ा थोड़ा गोघृत डाल करके कूटते जायं । एक जीव करके चनेके समान गोलियाँ बांधें । (शा० स०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार देवें ।

वक्तव्य—हम चन्द्रप्रभावटीके चूर्णादिमें प्रथम ३ भावनाएं हल्दीके स्वरस या (हरी हल्दी न मिलनेपर) हल्दीके क्वाथकी देते हैं । बिल्कुल सूख जानेपर थोड़ा-थोड़ा गोघृत डाल-डालकर कुटाई कराते हैं मुलायम एक जीव हो जानेपर गोली बांधते हैं । जिससे चन्द्रप्रभावटीके गुणोंमें वृद्धि हो जाती है और शरीरको सुन्दरता प्रदान करती है ।

यह उपरोक्त कृति वैद्यराज श्री रमेशचन्द्र जी व्यास अजमेर वालोंसे प्राप्त हुई है ।

अनुपान—१—सब प्रमेहोंपर १ तोला गिलोयका स्वरस और ६ माशे शहद या त्रिफला, दारुहल्दी, देवदारु और नागरमोथेका क्वाथ ।

२—मधुमेहमें निम्बपत्र और बेलपत्रका स्वरस, जामुनका रस या अरनीकी छालका क्वाथ ।

३—लालामेहमें त्रिफला और अमलतासका क्वाथ ।

४—माँजिष्ठमेहमें नीमकी छाल, अर्जुन छाल, और कमलगट्टेकी गिरीका हिम ।

५—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शर्करा और सिकतामेहमें शीतल-मिर्च और गोखरूका क्वाथ ।

६—पुष्टिके लिये गोदुग्ध और मिश्री एवं रोगीकी प्रकृति देश और कालका विचारकर अन्य अनुपानोंकी योजना करें ।

उपयोग—यह वटी मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, प्रमेह भगन्दर, अण्ड-वृद्धि, पाण्डु, कामला, बवासीर, कमरका दर्द, नेत्ररोग स्त्रियोंके गर्भाशयके विकार, पुरुषोंके धातुसम्बन्धी विकार आदिको दूर करती है । जीर्णरोगमें इसका सेवन शान्तिपूर्वक ३-४ मास तक करना चाहिये । ज्यादा समय तक इसके सेवनसे असाध्य भगन्दर जैसा रोग भी दूर हो जाता है । मानसिक श्रम करनेवाले विद्यार्थियोंके लिये यह अति लाभदायक है ।

चन्द्रप्रभाका मुख्य कार्य मूत्रेन्द्रिय और शुक्रार्तवकी उत्पादक इन्द्रियपर शामक, बल्य और रसायन असर पहुँचानेका है । शरीरके धातु-परिपोषण क्रममें प्रतिबन्ध आकर जो व्यवस्था भंग होती है, उसे यह व्यवस्थित बनाती है । अर्थात् पूर्व धातुओंमेंसे परधातु-निर्माणक्रिया सम्यक् होने लगती है । सुजाक उपदंश, शराबका सेवन तीव्र रसायन आदि औषधि सेवन अथवा गरम मसालोंका अधिक उपयोग करते रहना, तमाखू, गांजा, सूर्यके तापमें अधिक भ्रमण आदि कारणोंसे मूत्रेन्द्रिय संस्थानमें क्षोभ उत्पन्न होकर मूत्रेन्द्रियमें दाह आदि विकार उपस्थित होते हैं । इसका परिणाम वृक्कोंपर

होकर मूत्रकी मात्रा कम बनती है। कमरमें दर्द मूत्रमें अधिक जलन, मूत्र-में सिकता (रेत), शर्करा (कंकड़) जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर चन्द्र प्रभाका उत्तम उपयोग होता है।

भिन्न भिन्न कारणोंसे विशेषत: पित्तोत्पादक कारणोंसे पित्त विकृति होकर वृक्कोंपर शोथ आ जाता है। फिर सर्वाङ्ग शोथ उपस्थित होता है। मूत्र अति कम और अति लाल रंगका उतरता है। उसमें ओजस् द्रव्य (Albumen) न्यूनाधिक अंशमें जाता रहता है। कभी अधिक कभी कम ओजस् द्रव्य जाता है। इस विकारमें आशुकारी तीव्र और मंद चिरकारी ऐसी दो अवस्थायें होती हैं। इसमेंसे चिरकारी और जीर्णावस्थामें इसका उपयोग शहद मिश्रित जल या शामक मूत्रल अनुपानमें साथ करना चाहिये। मूत्रलके शामक और उत्तेजक भेदका विवेचन औषधगुणधर्म विवेचनमें में किया है।

मूत्रकृच्छ्र यह विकार मूत्रमार्गका है। इसमें मूत्रोत्पत्ति योग्य होती है, परन्तु गवीनी, मूत्राशय, पौरुषग्रन्थि या मूत्रप्रसेकनलिकामें जीर्णव्रण, व्रण-शोथ या मूत्रप्रसेकनलिकाका संकोच आदि इन्द्रिय-विकृति रूप कारणोंमेंसे कोई भी एक होनेपर मूत्रदाहयुक्त पीला, लाल और दुर्गन्धयुक्त आता है। कभी कभी क्षार, सिकता, शर्करा या श्लेष्मा आदि भी होते हैं। इसपर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। विशेषत: मूत्रेन्द्रियमें जीर्णव्रण होने पर मूत्रकृच्छ्र हुआ हो, तो चन्द्रप्रभाके साथ उशीरासव या सारिवासवकी योजना करें। *

मूत्राघातमें कितने ही प्रकारके मूत्रकृच्छ्रके समान इन्द्रियजन्य विकृतिके होते हैं। परन्तु मुख्यत: इस विकारमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है। वृक्की भिन्न-भिन्न कारणोंसे होनेवाली विकृति ही मूत्राघातका हेतु है; और इस विकृतिका परिणाम समस्त शरीरपर होकर वातबस्ति, वातकुण्डलिका आदि मूत्राघातके कष्ट साध्य प्रकार उत्पन्न होते हैं। इन सबके मूलमें अव-स्थित वस्तुस्थिति यह है कि मूत्र कम उत्पन्न होना और मूत्रद्वारा शरीरसे बाहर जानेवाले क्षार और विष शरीरमें ही रह जाना, इस परिस्थितिपर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। यह शामक, बल्य और मूत्रल होनेसे इसका असर मूत्रपिंड़ोंपर होकर मूत्रपिंडके दाह, शोथ आदि विकार कम

---

* अनेक समय अश्मरी सिकता या शर्कराके हेतुसे मूत्रोत्सर्गमें कष्ट होता है उस पर यह चन्द्रप्रभावटी १-२ मास तक दी जाती है। अनुपानरूपसे दर्भमूल, कासमूल, छोटे गोखरू, हरड़ अमलतासकी फलीका गूदा, पाषाणभेद धमासा, इन ७ औषधियों का क्वाथ दिया जाता है पौरुषग्रन्थि (Prostate glands) की वृद्धि होनेसे कष्ट होता हो तो भी उक्त प्रयोगसे लाभ पहुंचता है।

हो जाते हैं। इसपर चन्द्रप्रभाको पुनर्नवासव, पलाशपुष्पासव या गोक्षुरादि अवलेहके साथ देना विशेष हितकारक है। इसका कार्य अधिक गहराईमें होता है। इस हेतुसे जीर्ण विकारपर यह अच्छी उपयोगी है।

अश्मरी रोग जब अधिक बढ़ जाता है तब शस्त्रचिकित्सा कराना ही इष्ट है, परन्तु अश्मरीकी अधिक वृद्धि न होनेपर औषध चिकित्सा द्वारा अश्मरीभेदन हो सकता हैं। इसके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण मूत्रद्वारा बाहर निकल जाते हैं। इस कार्यके निमित्त चन्द्रप्रभाका उपयोग तृणपञ्चमूल क्वाथके साथ करना चाहिये।

सुजाक (शुक्रमेह), जिसमें मूत्रके साथ पूय जाता है और मूत्रत्यागके समय जलन होती है। उसकी जीर्णावस्थामें विविध जीर्ण व्याधियां उत्पन्न होती है। जितना रोग जीर्ण और जितना अधिक गहराईमें हो उतना ही चन्द्रप्रभाका अधिक अच्छा उपयोग होता है। व्याधि नूतन हो, विष शाखागत और स्नायु गत हो तो सुवर्णबंग उपयोगी है। परन्तु विषका परिणाम रक्त आदि धातुओंपर होकर उससे विविध विकार उत्पन्न हुए हों तो चन्द्रप्रभा उपयुक्त है। शीर्षशूल, जीर्णसंधिशूल, स्नायु संकोच, जीर्ण नेत्राभिष्यन्द, अण्डकोष शोथ आदि उपद्रवोंमें और पूयशुक्रके पश्चात हाथ पैर टूटने, नेत्रका दाह, मूत्रमें दाह, वृषण और शिश्नपर विष फैलकर पिटिका होना, खुजली चलना और माँसाबुंदके सदृश उपद्रव हो जानेका भय लगना आदि विकारोंपर चन्द्रप्रभाने अप्रतिभ काम किया है। जीर्ण रोगमें सेवन अधिक काल करना चाहिये। अनुपान रूपसे दारूहल्दी, गिलोय गोखरू और आँवलेका क्वाथ देवें। कब्ज अधिक हो तो कुटकी आवश्यकतापर मिला देनी चाहिये।

गर्भस्राव, गर्भपात, सुजाक, जीर्ण उपदंश, जल्दी-जल्दी गर्भ धारण, अनेक संतान हो जाने या अति व्यवाय आदि कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर समस्त शरीर निर्बल हो जाता है; फिर निस्तेज मुखमण्डल, उत्साहका अभाव, नेत्रोंमें दाह, हाथ पैर टूटना, शिर, कमर और सर्वाङ्गमें दर्द; शूल निकलना; विशेषतः मासिकधर्मके समयपर शूल या अति वेदना होना, रजोदर्शन होनेमें कष्ट होना; अनियमित रजोदर्शन; किसी-किसीको ३-४ मास रजोदर्शन न होना; रजोदर्शन हो तो भी रजःस्राव बहुत कम होना, रजःस्रावका रंग नीला, काला, पीला या मलीन होना, योनि मुखमेंसे सफेद जलके सदृश चिपचिपा या गाढ़ा, दुर्गन्धमय स्राव होते रहना आदि लक्षण होनेपर चन्द्रप्रभाका सेवन घीके साथ करना चाहिये। या वाग्भट्ट शारीरिक स्थानमें कहे हुए ९ कषायोंके साथ चन्द्रप्रभा देनी चाहिये।

उक्त कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर शिथिलता आनेपर भीतर एक

और गिर आता है। फिर उस हेतुसे वस्तिशूल और अनार्तव होते हैं। इस विकृतिमें भी चन्द्रप्रभा हितकर है। प्रसूतिके समय मूर्खतावश या अन्य समय में गर्भाशयपर अधिक आघात पहुँच जानेपर यह अत्यन्त शिथिल होकर बाहर निकल जाता है। ऐसी स्थितिमें तुरन्त गर्भाशयको स्निग्धकर भीतर यथा स्थान बैठा दिया जाय, ऊपरसे कोपीनके सदृश बन्धन बाँध दें: कुछ समय विश्रान्ति लें और चन्द्रप्रभाका सेवन करें तो गर्भाशय स्थिर हो जाता है। किन्तु रोग जीर्ण होनेपर फिर लाभ नहीं होता।

गर्भाशयकी अशक्तिसे बीजका ग्रहण न होना, गर्भ न रहना या रहनेपर ३, ४ या ५ मास गर्भधारण होकर गर्भस्राव हो जाना इस परिस्थितिमें चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है।

पूयशुक्रके परिणाम बंध्यत्व आया हो अथवा बीजाशय और गर्भाशयको सम्यक् पोषण न मिलने या अकालमें दुरुपयोग होनेके हेतुसे वे विकृत हो गये हों तो गर्भधारणमें प्रतिबन्ध होता है। इस परिस्थितिमें चन्द्रप्रभा लाभदायक है। चन्द्रप्रभाके सेवनसे विष निर्मूल होकर गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बन जाते है। आर्त्तवस्रावमें अनियमितता, अत्यार्त्तव, पीड़ितार्त्तव, अनार्त्तव इन सब विकारोंके मूलमें ऊपर कही हुई कारण परम्परा हो (गर्भाशयकी शिथिलता हो) तो चन्द्रप्रभा स्त्रियोंका उत्तम मित्र है।

छोटी आयुमें हस्तमैथुनकी दुष्ट आदत पड़ जानेसे कितने ही व्यक्तियोंकी मूत्रेन्द्रिय शिथिल बन जाती है और शुक्रस्राव वार-बार होता रहता है। फिर स्वप्नके भीतर अज्ञानावस्थामें शुक्रस्राव हो जाना, मूत्रसह शुक्र निकलना मूत्रके पश्चात् शुक्रस्राव हो जाना, प्रत्येक स्रावके पश्चात् सारे शरीर में अशक्ति आना विशेषत: इन्द्रियाँ शिथिल होजाना आदि लक्षण होते हैं। कितने ही मनुष्योंको स्त्री सम्बन्धी विचार आनेपर तत्काल शुक्र स्खलन और कभी स्त्री के दर्शन मात्रसे शुक्रस्राव हो जाता है। इस परिस्थितिमें चन्द्रप्रभा उत्तम लाभदायक है। योग्य आयु हो गई हो तो चन्द्रप्रभाकी अपेक्षा वंगभस्म विशेष उपयोगी है। चन्द्रप्रभा धातुपरिपोषण क्रमको सुधार कर शुक्रपर्यन्त धातुओंको व्यवस्थित बनाती है। यदि शुक्रकी अशक्तिके हेतुसे गर्भधारण सम्यक् न हो तो ब्रह्मचर्यके साथ चन्द्रप्रभाका सेवन करना चाहिये।

अति व्यवाससे स्त्री औरपुरुष दोनोंके शरीर निर्बल हो जाते हैं। फिर चिरकाल स्थायी अजीर्ण और कोष्ठबद्धताके सदृश रोग उपस्थित होते हैं। परिणाममें सर्वधातु परिपोषण क्रम विकृत होता है। इस हेतुसे सर्वाङ्गमें पाण्डुता, कितनों ही को कामलाके सदृश और कितनों ही को हलीमक समान चिरकारी और त्रासदायक व्याधि हो जाती है। ये विकार हस्त

मैथुनकी आदतसे भी उत्पन्न होते हैं। किसी-किसीको इस विषयका सर्वदा निदिध्यास बना रहता है, परन्तु पूर्ति न होनेसे निराश हो जाते हैं। इस वैषयिक सुख लालसाका दुष्परिणाम अत्यन्त खराब होकर उक्त विकार हो जाते हैं। सच्चे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और बलात्कारसे जगद्मय मानकर सेवन किया हुआ ब्रह्मचर्य इन दोनोंमें मुख्य भेद भावनाका है। सच्चे नैष्ठिक ब्रह्मचर्यमें बिषयसुखकी लालसा किञ्चित् भी नहीं होती। इस हेतुसे उनको दुष्ट विकार नहीं होता। कृत्रिम ब्रह्मचारीको विविध विकार होते हैं। इनके लिये चन्द्रप्रभा उत्तम कार्य करती है।

शुक्रक्षयकी आदतसे अपचन और कोष्ठबद्धता उत्पन्न होते हैं। फिर उदरमें वायु भरा रहना, शौचशुद्धि न होना, किसी किसीको अर्श होजाना रक्त गिरना, गुदाद्वारमें जलन, अतिशय थकावट आजाना आदि लक्षण होने पर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। इसके साथ मल वातानुलोमक औषधि भी आवश्यकतापर देते रहना चाहिये।

अपचनकी आदत जीर्ण होजानेपर उसका परिणाम कोष्ठबद्धता होता है, और कोष्ठबद्धता जीर्ण होनेपर प्रमेहकी उत्पत्ति हो जाती है। इन सबके मूलमें अनेक दिनों तक शुक्रस्राव होते रहनेकी आदत होती है। इस तरह उत्पन्न लालामेह हस्तिमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह आदि प्रमेह विकारोंमें वातपित्तका अनुबंध होना है। इन व्याधियोंमें शिथिलता और कृशता लक्षण हों तो चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग हो जाता हैं। केवल मधुमेहमें चन्द्रप्रभा की अपेक्षा नागभस्म प्रमेहगजकेसरी, जातिफलादि वटी, वसंतकुसुमाकर आदि औषधियां विशेष हितकारक है। (औ० गु० ध० शा०)

रक्तदबाव वृद्धि (High blood pressure) के शराब आदि अनेक हेतु हैं। किन्तु विशेषतः इसकी उत्पति बृहदन्त्रमें आमविष संग्रहीत होनेपर होती है। जिन व्यक्तियोंको बार-बार भोजन करने या अधिक भोजन करने की आदत होती है. उनके अन्त्रमें आमविषका संचय होता है, उस हेतुसे फिर बार-बार अपचन होता रहता है। पश्चात् आहार रस दूषित होनेसे रक्तादि धातुयें दुष्ट होती है। परिणाममें रक्तदबाव वृद्धि होती है। इस विकार में यदि आमविष हेतु हो और रोगी दृढ़ पथ्य पालन करे, द्विदल धान्य मांस शराबका व्यसन और भारी भोजनका त्याग करें. तो चन्द्रप्रभा वटीके साथ नागकेशर १-१ माशा और शक्कर १-१ माशा मिलाकर १५ दिन तक दूर्वा स्वरस या गायके दूधके साथ सेवन करानेसे रक्तदबाव कम हो जाता है। विशेषतः विरेचन देनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। यदि अधिक कब्ज हो तो सुख विरेचन वटीसे कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिये।

चन्द्रप्रभा वटी सामान्य औषधि है, किन्तु कर्कस्फोट (Cancer) और अन्त्रावतरण जैसे प्रबल रोगोंपर भी लाभ पहुँचा देती है। कण्ठस्थानमें कर्कस्फोट नया हो किसी स्थानके उपद्रव रूप गौण न हो तो प्रारम्भावस्था में चन्द्रप्रभा वटीकी योजना करनेपर कर्कस्फोट २-४ मासमें विल्कुल दूर हो जाता है। इसी तरह नये अन्त्रावरणमें शान्तिपूर्वक २-४ मास तक चन्द्रप्रभा वटी का सेवन कराते रहनेसे अन्त्रका उतरना रुक जाता है।

(७) शुक्रस्तम्भन गुटिका

विधि—लौंग, जायपत्री, दालचीनी, अकरकरा, समुद्रशोषके बीज और शुद्ध अफीम सबको १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण करें। फिर ६ तोले मिश्री मिला शहदके साथ खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। इन गोलियोंको ८-१० दिन खुली वायुमें रहने देनेसे अच्छी सूख जाती है। पश्चात् बोतलमें भरें। (आ० भि०)

मात्रा—१-१ गोली। रोज सायंकाल, दूधके साथ लेवें।

उपयोग—यह गुटिका शुक्रका पतलापन और नपुन्सकताको दूर करती है। शुक्रका स्तम्भन अधिक समय होता है। अतिसार और प्रवाहिकामें भी इससे लाभ पहुँचता है। यह निद्रा भी ला देती है।

शुक्रस्तम्भन गुटिका यह चन्द्रोदय वटी और वीर्य स्तम्भनका सौम्य योग है। चन्द्रोदय वटीमें चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म तथा अधिक मात्रामें कर्पूर मिलानेके हेतुसे उग्र बना है। कई रोगियोंको उग्र औषधि या पित्तवर्द्धक औषधि अनुकूल नहीं रहती। उनके लिए यह वटी अति हितकारक है।

उग्र कामोत्तेजक औषध सेवनसे जिस तरह स्त्री समागमकी वासना प्रबल बनी रहती है। उस तरह इस वटीके सेवनसे हानि नहीं होती। परिणाममें शुक्रका अधिक नाश नहीं होता। इस दृष्टिसे यह गुटिका कामोत्तेजक गुण चन्द्रोदय वटीकी अपेक्षा कम उत्तेजक मानी जायगी।

सूचना—जिन रोगियोंको स्वाभाविक मलावरोध बना रहता हो, उन रोगियोंको रात्रिको दूधके साथ १-१ ड्राम बादामका तैल सेवन कराना हितावह है। एवं अधिक मलावरोधक हो तो सुबह ४ माशे छोटी हरड़का चूर्ण निवाये जलसे देकर उदरशुद्धि करा देना चाहिये।

(८) अन्त्रवृद्धिहर गुटिका

विधि—शुद्ध सिंगरफ ५ तोले, एलुवा १० तोले, गूगल, लाल बोल, कांटेदार करंजके बीज, नौसादर, कालानमक, हींग ये सब पांच-पांच तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर घीकुंवारके रसमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली। दिनमें २ बार, जलके साथ दें।

उपयोग—इन गोलियोंके १ मास सेवनसे आंत उतरना (Hernia) उदरशूल, मलावरोध, उदरवात आदि दूर होते हैं।

अन्त्रवृद्धिहर गुटिकाके सेवनसे आंते सबल होती है। एवं आंतोंकी क्रियामें वृद्धि होकर मल नियमित साफ होने लगता है। इसके अतिरिक्त पचनक्रिया व्यवस्थित होनेसे उदर वायुकी उत्पत्ति नहीं होती और उत्पन्न हुई तो भी जल्दी निकल जाती है। इस हेतुसे यह वटी अन्त्रवृद्धि वालोंके लिए विशेष उपकार दर्शाती है।

सूचना—बीड़ी, सिगारेट, गरम-गरम चायका व्यसन छोड़ देना चाहिये, द्विदल धान्य, कन्द शाक, तले हुए पदार्थ, वातवर्द्धक भोजन अधिक घृत-तैल अधिक मिर्च मसाला, तेज खटाई, मावा और मेदाके पदार्थ ये सब हानिकर है। अतः हो सके उतना कमकर देना चाहिये।

(९) कांकायन वटी [अर्श]

विधि—हरड़ २० तोले, जीरा, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और छोटी पीपल ४-४ तोले, जवाखार ८ तोले, भिलावां ३२ तोले तथा सूरण ६४ तोले लें। सबको कूट दुगुना गुड़ मिलाकर १-१ माशे की गोलियां बना लें। (वृन्द)

मात्रा—१ से २ गोली तक, दिनमें २ बार। मट्ठे अथवा जलके साथ दें। पहले और पीछे एक-एक माशा घी-चाट लें।

उपयोग—यह वटी विशेषतः वात कफज अर्शको नाश करनेमें अति लाभदायक है और मंदाग्नि, संग्रहणी तथा पांडु रोगको भी दूर करती है।

(१०) दुर्नाम कुठार वटी

विधि—कालीमिर्च, छोटी पीपल, कूठ, सैंधानमक, जीरा, सोंठ, बच, भुनी हींग, बायविडंग, हरड़, चित्रकमूल और अजमोद सबको समभाग मिला सब औषधियोंसे दुगुने गुड़की चाशनीमें डालकर १-१ माशेकी गोलियां बनावें। (आ० भि०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार। गरम जलके साथ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे वातज अर्शका नाश होता है, पचनक्रिया सुधरती है।

इस वटीमें मुख्य गुण दीपन, पाचन और वातहर है। इसके सेवनसे यकृत्का पित्तस्राव अधिक होता है, जिससे लघुअन्त्रमें होने वाली पचनक्रिया सबल होती है। अन्त्रमें उत्पन्न वायुका सरलतासे निःसरण होता है और वातोत्पत्तिका रोध होता है। यह गुण विशेषतः हींगसे मिलता है। त्रिकटु, चित्रक, अजमोद आदि सहायक होते हैं। वायु उत्पन्न होनेपर अन्त्र

शिथिल और प्रसारित हो जाती है, वह हरड़, जीरा आदि द्वारा दृढ़ और आकुंचित बनती है। जिससे रुका हुआ मल सरलतासे बाहर गिरता है। अग्नि या पचन-क्रिया मन्द होनेपर आमवृद्धि और कफवृद्धि होती है। इन मेंसे हरड़के सम्मिश्रणसे आमोत्पत्तिका रोष होता है तथा बच, पीपल, कूठ आदिके मिश्रणसे आमाशय और फुफ्फुसमें उत्पन्न आम और कफ सहज दूर हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त रोग जीर्ण होनेपर उदरकृमि और आम विष-वृद्धि होकर अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, व्याकुलता, तन्द्रा आदि उपद्रव हुए हों तो भी इस दुर्नामकुठार वटीके सेवनसे १ मासके भीतर अग्नि और शरीर बलकी वृद्धि होकर सब उपद्रव शमन हो जाते हैं।

(११) गोक्षुरादि गुग्गुलु

विधि—गोखरूके जौकूट चूर्ण ११२ तोलेका ६ गुने पानीमें क्वाथ करें। आधा जल बाकी रहे तब उतार लें। फिर छानकर पुनः उबालें; लगभग आधा जल रहनेपर २८ तोले गूगल मिलाकर पकावें। जब गुड़ पाकके समान गाढ़ा हो जाय; तब सोंठ, मिर्च पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, सबको समभाग मिला, कूट महीन चूर्णकर २८ तोले गूगलकी चाशनी मिला लें। फिर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें। (शा० स०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार। दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—यह गूगल प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रदर वातरोग, वात-रक्त, शुक्रदोष और पथरी आदि रोगोंका नाश करता है।

कभी-कभी रक्तप्रदरका योग्य उपचार न करने और दुर्लक्ष्य करनेपर बहुत बढ़ जाता है। भारतीय स्त्री समाजमें लज्जावश रोगको छिपाते हैं, जिससे रक्त प्रदर और रक्तगुल्म दोनों बहुत बढ़ जाते हैं। फिर अशक्ति अधिक आ जाती है। उस अवस्थामें गोक्षुरादि गूगल, वङ्गभस्म, मूत्र-दाहान्तक चूर्ण * और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें ४ बार दाडिमावलेहके साथ देते रहनेसे और अशोकारिष्ट प्रातः सायं देते रहनेसे दो मासमें दोनों विकार नष्ट हो जाते हैं।

मूत्राशयमें अश्मरीकण (शर्करा और सिकता) उपस्थित होनेपर मान-सिक अवस्था, सांधों-सांधोंमें पीड़ा, अपान वायुकी शुद्धि न होनेसे उदरमें अफारा आना, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उसपर गोक्षुरादि गूगल गोखरुके क्वाथ और दशमूलारिष्टके साथ दिनमें ३ समय देते रहने और भोजनके प्रारम्भमें हिंग्वष्टक चूर्ण सेवन करानेसे छोटे-छोटे पत्थर और रेती निकलकर रोग दूर हो जाता है।

---

* मूत्रदाहान्तक चूर्णका पाठ द्वितीय खण्डमें दिया गया है।

(१२) कांचनार गुग्गुलु

विधि—कचनारकी छाल १२० तोलेको जौकुट कर ८ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान शुद्ध गूगल ८० तोले मिलाकर पुनः मन्दाग्निपर पाक करें। गाढ़ा होनेपर त्रिफला २४ तोले, त्रिकटु १२ तोले, वरनाकी छाल ४ तोले और इलायची, दालचीनी, तेजपात १-१ तोलेका चूर्ण मिला २-२ रत्तीकी गोलियां बांधें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ३ गोली तक। त्रिफलाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह गूगल कण्ठमाला, अपची, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer), ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर आदि उग्र रोगोंमें अति लाभदायक है। औषधि ३-४ मास तक सेवन करनेसे ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

(१३) चिंचाभल्लातक वटी

विधि—इमली और शुद्ध भिलावा समभाग मिला कूटकर १-१ रत्ती की गोलियां बांधें। इमली नई लें नमक मिली हुई नहीं लेनी चाहिये। दोनों वस्तुओंको कूटनेसे गोली बन जाती है। जल मिलानेकी जरूरत नहीं है। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २-३ बार मट्ठे या जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे विसूचिका (कॉलेरा); संग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदंशके हेतुसे होनेवाले संधिवात, पक्षाघात, अर्दितवायु, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागतवायु आदि दोष दूर होते हैं। इसके साथ पथ्यापथ्यका विशेष बन्धन नहीं है। यह विसूचिकामें कार्यकारी औषधि समझी गई है; एवं अन्य रोगोंमें भी अच्छा प्रभाव दिखाती है।

विसूचिकाके कीटाणुओंके आक्रमणजन्य और अपचनजन्य २ प्रकार हैं। इन दोनोंमें कीटाणुप्रधानरोग विशेष घातक हैं। इसके प्रारम्भिक लक्षण दस्त और वमन हैं। दस्त और वमन थोडे थोडे समयके अन्तरपर होते रहते हैं। प्यास लगती है, देह शीतल होने लगता है और निर्बलता बढ़ती है। यदि १२ घण्टे तक योग्य उपचार न किया जाय तो रोग असाध्य बन जाता है। अपचनजन्य विकारमें भी दस्त और वमन होते हैं; किन्तु बहुत समयके पश्चात् उदरमें वायु उत्पन्न होती है, अधिक प्यास नहीं लगती और अधिक निर्बलता भी नहीं आती। इन दोनो प्रकारकी विसूचिकाकी प्रथमावस्थामें इस वटीका उपयोग किया जाय तो रोगवृद्धि रुक जाती है और थोड़े ही समयमें रोगी स्वस्थ हो जाता है। अपचनजन्य विसूचिकामें २-२ गोली दिनमें ३ या ४ बार मठ्ठेके साथ देनी चाहिये यदि कीटाणुजन्य प्रबल विसूचिका है तो १-१ गोली आध-आध घण्टेपर प्याजके रस या २-२ तोले जलके साथ देनी चाहिये। विसूचिका रोगका जब तक शमन होकर प्रकृति स्वस्थ न बने, तब तक जलके अतिरिक्त कुछ भी भोजन

नहीं देना चाहिये। जल भी १-१ चम्मच बारम्बार देते रहना चाहिये।

यदि कीटाणुजन्य विसूचिका उपचार न करनेसे बढ़ गया हो, रोगी अशक्त हो गया हो, ५-५ मिनटपर सफेद जल जैसा दस्त होता रहता हो, वमन भी बराबर होती रहती हों, मांसपेशियोंमें आक्षेप आते हो, देह शीतल हो गया हो तथा मुखमण्डल तेजोविहीन हो गया हो, ऐसी अवस्था में इस वटीका उपयोग नहीं करना चाहिये। विसूचिकान्तक रस या विसूचिकाहर वटीका प्रयोग करना चाहिये। अन्तिमावस्था जैसी स्थिति हो गई हो तो शिराद्वारा नमक जल चढ़ाना पड़ता है।

संग्रहणीके अनेक प्रकार हैं। आमाशयकी पचन-क्रिया निर्बल होनेपर आमविष होता रहता है। फिर मलके साथ आम अधिक निकलता रहता है। उसे आमग्रहणी कहते हैं। दूसरे प्रकारमें अन्त्रकी पचनक्रिया भी दूषित हो जाती है। यकृत् पित्तका स्राव न होनेसे मल सफेद रंगके और दुर्गन्धयुक्त होते हैं तथा लघु अन्त्रमें उग्रता होनेसे पचनक्रिया नहीं होती और शोषण क्रिया योग्य न होनेसे पतला रस रह जाता है। यदि आमाशय, यकृत् और अन्त्र सब दूषित हों तो दोनों स्थानोंकी पचनक्रिया बिगड़ती है। फिर आमाधिक्य, सफेद दुर्गन्धमय पतले दस्त होते हैं। यदि पतलापन मर्यादामें हो और दिनमें ३-४ दस्तसे अधिक न होते हों तो यह चिचाभल्लान्तक वटी व्यवहृत होती है। यह वटी आमाशय, अन्त्र और यकृत् तीनोंको बल प्रदान करती है। इस हेतुसे उक्त तीनों प्रकारकी ग्रहणीमें इसका उयोग निर्भयतापूर्वक होता है।

वक्तव्य—जिस संग्रहणीमें अधिक पीला, उष्ण और जलसदृश प्रवाही मल हो उदरमें मरोड़ा आता हो, कभी-कभी रक्तस्राव भी होता हो, एक दिनमें १०-२० या अधिक बार दस्त होते हों, उसपर इस वटीका प्रयोग नहीं हो सकता। पर्पटी कल्पका उपयोग होता है।

अतिसार और ग्रहणी रोगमें मठ्ठेके साथ इस वटीका सेवन करानेपर सत्वर लाभ पहुँचाता है। दस्त कम होते हैं, वेदनाका शमन होता है और उदरमें अफारा नहीं आता।

उपदंश (फिरंग), रोग कीटाणुजन्य है। रोग शमन हो जानेके पश्चात् यदि रक्तके भीतर इस रोगके कीटाणु शेष रह जाते हैं, तो विषवृद्धि फोड़े-फुन्सी, संधिवात, पक्षाघात, अर्दित, कटिवात आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इस रक्त विकारकी अथवा उपद्रव रूप वातविकारकी प्रथमावस्थामें ही इस वटीका प्रयोग किया जाय और पथ्यपालन किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है। यदि रोग जीर्ण हो गया हो, तो मल्लप्रधान औषधिका सेवन कराया जाता है।

उपदंश हेतुसे संधिवात हुआ हो या अर्दित, पक्षाघात, कटिग्रह, गृध्रसी आदि वातरोग हुए हों, अथवा शिरागत वातविकार हुआ हो, तो २-२ गोली जलके साथ देते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है ।

सूचना—इस वटीके सेवन कालमें मांसाहारका त्यागकर देना चाहिये । एवं मूत्र लाल हो जाय, तो इस वटीका सेवन बन्द कर देना चाहिये और नारियलका जल पिलाना चाहिये ।

(१४) धात्रीभल्लातक वटी

विधि—शुद्ध भिलावा १ सेर, हरड़, बहेड़ा, आंवला प्रत्येक ४०-४० तोले सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ३०-३० तोले; काले तिल एक सेर और गुड़ पुराना एक सेर लें । सबको बारीक कूट गुड़ मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बांधें । (आ० नि० मा०)

सूचना—भिलावा कूटते समय हाथको तैल लगा लें; लोहेकी कलछीसे चलावें और निकालें । दूसरी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर कूटनेपर भिलावे के तैलका भय कम हो जाता है ।

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार, जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह वटी आमाशय और उदरके विकार, शूल, आमवात, कई वातरोग, उपदंश अथवा किसी हेतुसे होने वाले संधिवात, अर्द्धाङ्गवात, ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात) और सुजाकके उपद्रव आदिको दूर करती है ।

आमाशयकी पचनक्रिया आमाशय रसके स्रावपर अवलम्बित है । आमाशय स्राव कम हो तो पचनक्रिया मन्द हो जाती है; आमोत्पत्ति होती है और मुंह फीका रहता है । यह कफ विकार कहलाता है । आमाशय स्राव कभी कम और कभी अधिक होनेपर आमाशयकी वातवाहिनियोंकी शिथिलता और उत्तेजना मानी जाती अतः इसे वातविकार कहा है । आमाशय रसस्राव तीव्र, अति अम्ल और अधिक मात्रामें होनेपर उसे पित्त-प्रकोप संज्ञा दी है । इस प्रकार विशेषतः अम्लपित्त रोगमें प्रतीत होता है । इनमेंसे वात विकारज या कफविकारज अग्निमांद्य होनेपर धात्रीभल्लातक वटीका सेवन कराया जाता है ।

उदररोग बहुधा पचनक्रिया विकृत होनेपर होता है । यह वटी आमाशय और यकृत् दोनोंको बल देती है । इस हेतुसे वातप्रधान उदररोग, प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदरकी प्रथमावस्थामें इस वटीका उपयोग हो सकता है ।

उदरमें मलकी गाँठ बनकर रुकने या कच्चा मल संगृहीत होनेपर उदर-शूल उत्पन्न होता है । साथ-साथ अपचनके या मलावरोधके अन्य लक्षण उपस्थित होते हैं । इनमेंसे अपचनके हेतुसे उदर शूल हो, दूषित डकारें

आती हों, उदरमें भारीपन हो तो यह वटी जल या मठ्ठेके साथ दी जाती है। यदि मलावरोधज उदरशूल हो तो ६ माशेसे १ तोले हरड़के क्वाथके साथ इस वटीका सेवन कराया जाता है।

आमवात (Roeumatism) की संप्राप्ति आमप्रकोप होनेपर होती है। एलोपैथीमें इसे कीटाणुजन्य माना है। इस रोगकी तीव्रावस्थामें स्थान-स्थानपर बिच्छू काटनेके समान वेदना होती है, पेशाब लाल होता है तथा ज्वर १०२° से १०४° तक बढ़ जाता है। कितने ही रोगियोंको हृदयमें भी विकृति होती है। इस तीव्रावस्थामें यह वटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। चिरकारी अवस्थामें ज्वर नहीं रहता तथा वेदना मन्द होजाती है। उस समय भी यह वटी रक्तमें रहे हुये विषको जलाती है तथा हृदयेन्द्रिय और आमाशयिक पचन अवयवोंको सबल बनाती है। जिससे भावी आक्रमणसे रक्षा मिल जाती है। इस रोगसे पीड़ितोंको चाहिये कि मधुर पदार्थोंका सेवन कमसे कम करें।

जिस तरह प्रदाह-प्रधान वात रोगोंमें चिंचाभल्लातक वटी व्यवहृत होती है, उसी तरह यह वटी भी दी जाती है। जिन रोगियोंके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है; जिनको खट्टे पदार्थके सेवनसे सब सांधें अकड़ जाते हैं और दांत आम जाते हैं, उनको चिंचाभल्लातकके स्थानपर धात्री भल्लातक वटी दी जाती है।

सुजाक रोग अति दुःखदायी है। इसका दमन होनेपर रोगी उससे निवृत्त हो गया, ऐसा मान लेता है और उपचार बन्दकर देता है। इतना ही नहीं आहार विहारमें स्वच्छन्दी बन जाता है। परिणाममें सुजाकके कीटाणु विष रक्तादि धातुओंमें लीन होकर दृढ़ हो जाते है। फिर सांधे सांधे अकड़ जाना फोड़े फुन्सी होना, मूत्रमें जलन होना आदि उपद्रव उपस्थित होते है। इन उपद्रवोंके दमनार्थ इस धात्रीभल्लातक वटीका प्रयोग होता है। इस वटीसे कीटाणुनाश और रक्तप्रसादन होकर उपद्रव दूर हो जाते है। यथार्थ में पूर्ण रुपसे विषको नष्ट करनेके लिये चन्द्रप्रभावटी और गोक्षुरादि गुग्गुलु का सेवन १ वर्ष पर्यन्त पथ्यपालनसह कराना चाहिये।

उक्त रोगोंके अतिरिक्त अर्श रोगपर भी यह वटी हितकारक है। इस वटीके सेवनसे गुदनलिकामें रक्तदबाव कम हो जाता है। उदरमें वायुकी उत्पत्ति बन्द होती है तथा उदर-शुद्धि होती है। इस हेतुसे अर्शका कष्ट दूर हो जाता है।

स्त्रियोंके मासिकधर्ममें कष्ट होता हो, रजःस्राव कम गिरता हो। फिर उस हेतुसे कटिमें वेदना, मस्तिष्कमें भारीपन, दृष्टिमांद्य, निर्बलता, श्वेत प्रदर और अग्निमान्द्यादि रहते हो तो उनको धात्रीभल्लातक वटी दी जाती है।

(१५) गन्धक वटी

विधि—शुद्ध गन्धक २ तोले, चित्रकमूल, पीपल, कालीमिर्च सब १-१ तोला, सोंठ २ तोले; जवाखार, सैंधानमक, कालानमक और सांभरनमक आधा-आधा तोला लें। सबको मिला नींबूके रसकी ७ भावनायें देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें ३ बार भोजनके दो घण्टे बाद।

उपयोग—यह वटी मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, शूल, सूक्ष्म कृमि, ग्रहणी दोष, आमवृद्धि, गुल्म और उदावर्तका नाशकर अग्निको प्रदीप्त करती है। नींबूके रसकी ७ भावनायें देनेपर यह तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है। उदरमें उत्पन्न दूषित वायुके ऊपर चढ़नेको तुरन्त दबाती हैं, एवं शूल,बेचैनी आदिको दूर करती है।

यह वटी उत्तम कीटाणुनाशक और दीपन-पाचन है। इसके सेवनसे आमाशयिक रस तथा यकृत् पित्तका स्राव अधिक होता है। जिससे आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानोंकी पचनक्रिया सबल बनती हैं। इस हेतुसे अग्निमांद्य, आमवृद्धि, उदरमें भारीपन, उदरकृमि और मलावरोधादि विकार दूर हो जाते है। एवं यकृत् पित्त कम मिलनेसे उत्पन्न मलमें दुर्गन्ध, मल श्वेत वर्णका हो जाना, सूक्ष्म कृमि हो जाना आदि लक्षण भी दूर हो जाते है। आमाशय, अन्त्र और यकृत् निर्बल होनेपर घृतादिका सेवन अधिक हो जाय, तो अपचन होता है। फिर उदरमें वेदना, आफरा, बार-बार दूषित डकारें आना, किसीको थोड़ा-थोड़ा दस्त दिनमें ३-४ बार होना औरअरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा बार-बार भोजन करनेका विचार आता रहता है। इस विकारपर इस वटीका अच्छा उपयोग होता है। १-१ घण्टे पर २-३ बार गन्धक वटी देनी चाहिये। यदि रोग जीर्ण हो तो इस वटीका सेवन एकाध मास तक करानेपर आमाशय, अन्त्र और यकृत् सबल बन जाते है। फिर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। इस वटीमें गन्धक, चित्रकमूल पिप्पली कालीमिर्च, सौठ ये सब अग्निप्रदीपक द्रव्य है। यदि अपचनसे विसूचिकाको प्राप्ति हो गई हो अर्थात् वमन और दस्त होते हों तथा उदरमें पीड़ा बनी रहती हो तो इस वटीका सेवन १-१ घण्टे बाद ३-४ बार प्याजके रसके साथ करनेसे लाभ हो जाता हैं। रोग मन्द मन्द बना रहे तो वह वटी दिनमें ३ बार मठ्ठे के साथ ४-६ दिन तक देनी चाहिये।

शारीरिक निर्बलता और पाण्डुताकी संप्राप्ति आमप्रकोपसे हुई हो तो गंधक वटीका सेवन भोजन करनेके २ घण्टे बाद कुछ दिनों तक करानेसे पचन-क्रिया सबल बनती है और आमोत्पत्ति नहीं होती। फिर शनैः शनैः पाण्डुता और निर्बलता दूर हो जाती है।

यकृत् पित्तका स्राव कम होने तथा दूषित पदार्थ खाने, मांसाहार अधिक करने अथवा अपथ्य या संयोग विरोधि पदार्थोंका एक साथ सेवन करनेपर उदरमें सूक्ष्म कृमियोंकी उत्पत्ति हो जाती है। अनेक बार ये कृमि १२ घण्टोंमें ही उत्पन्न होकर मलके साथ असंख्य निकलते हैं। इस विकृति को दूर करनेके लिये पहले एरण्ड तेलका विरेचन, लेकर उदरको साफकर लेना चाहिये। फिर गन्धक वटीका सेवन पथ्य पालनसह कुछ दिनों तक करानेसे विकार दूर हो जाता है।

वक्तव्य—सूक्ष्म कृमि वालोंको प्रायः दूध अनूकूल नहीं रहता। दही और मट्ठा विशेष अनुकूल रहता है। लहसुन और प्याज भी हितावह है।

(१६) कासीसादि वटी [रजःप्रवर्त्तिनी वटी]

प्रथमविधि—कासीस, सोहागेका फूला, भुनी हींग और एलुआ सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें ६ घण्टे खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियां बनावें। इस वटीका नाम भैषज्यरत्नावली और आयुर्वेद संग्रह-कारने रजःप्रवत्तनी वटी रखा है।

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें २ बार। १ १ तोला गोरखमुण्डीके क्वाथ अथवा जल या निम्न अनुपानसे देवें।

अनुपान—काले तिल, इन्द्रायणकी मूल, अमलतासका गूदा और अनी-सूनकी जड़ (सौंफके मूल) १०-१० तोले, बाँसकी गांठ, कपासमूल, गाजर के वीज, मूलीके बीज, ककड़ीके बीजोंकी गिरी और हंसराज ५-५ तोले लें। सबको मिला जौकूट चूर्ण करें। उसमेंसे ३ तोले चूर्णको १६ गुने जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर ३ हिस्से कर सुबह, दोपहर, रात्रिको २-२ गोलीके साथ क्वाथ देवें। पीनेके समय क्वाथमें थोड़ा-थोड़ा गुड़ मिला देवें।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोंके मासिकधर्म कम होना, मासिकधर्मके समय दुःख होना; अनियमित ऋतु आना; इन सब दोषोंको दूर करके गर्भाशयको शुद्ध बनाती है। मासिकधर्म आनेपर १० दिन तक औषधि-सेवन बन्द करें। यह वटी कन्यालोहादि वटीकी अपेक्षा उष्ण है।

दूसरीविधि—कासीस, भुनी हींग सोहागेका फूला, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रायणकी मूल, इन्द्रायणके फल, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर और समुद्रझाग इन १४ औषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् घीकुँवारके रसमें खरलकर चनेके समान गोलियां और सोगठियाँ (शिखरके आकार वाली गोलियां) बना लेवें। (र० त०)

मात्रा—२ से ४ गोली तक, दिनमें २ बार, जलके साथ देवें और आव-श्यकतापर सोगठीको जननेन्द्रियमें रखें।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोंके नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तव आदि मासिक धर्मके दोषोंको दूर करके ऋतुको साफ और समयपर लाती है। पहली विधिकी अपेक्षा यह विशेष तीव्र है; अतः नाजुक प्रकृतिवाली रुग्णाओंको नहीं देनी चाहिये।

कई मेद बढ़ी हुई स्त्रियोंके गर्भाशय और बीजाशय बहुत कठोर होते हैं। उनको मासिकधर्म आनेपर अति कष्ट होता रहता है और रजःस्राव भी बहुत कम होता है। उनको ऊपर कहे हुये अनुपानके साथ कासीसादि वटीका सेवन मासिकधर्म आनेपर १५-१५ दिन ३ मास तक पथ्य भोजन, ब्रह्मचर्य पालनके साथ करानेपर गर्भाशय नरम हो जाता है। फिर मासिक धर्म नियमित बिना कष्टसे आने लगता है।

सूचना—यदि वेदना तीव्र होती हो तो पेडूपर पीड़ितार्त्तवहर लेप भी लगावें। इसका पाठ रसतन्त्रसार द्वितीय खण्डमें देखें।

(१७) प्रदरान्तक वटी

विधि—अकीक पिष्टी और कहरवा पिष्टी एक एक तोला, हीरादोखी गोंद (दम्बुल खवैन) २ तोले, रसोंत ३ तोले सबको मिला जलमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बांधें। (वैं० चि० सा०)

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें २ बार। चांवलोंके धोवनके साथ दें।

उपयोग—रक्तप्रदर तथा अर्शका खून बन्द करनेके लिये यह निर्भय और अति हितकर औषध है। रक्तको बहुत जल्दी बन्द करती है एवं उष्णता, बेचैनी और कब्जको दूर करती है।

यह प्रदरान्तक वटी अति निर्भय औषधि है। यह विशेषतः रक्तप्रदर ग्रस्त रुग्णओंको दी जाती है। इसका सेवन पथ्यपालन सह कराया जायगा एवं गरम-मसाला; गरम गरम चाय; शराब, तीक्ष्णपदार्थ और अधिक पति समागम ये सब कम करा दिये जायेंगे, तो इस वटीसे लाभ हो जाता है।

जिन बहिनोंको मासिकधर्ममें अधिक रजःस्राव होता हो या अधिक दिनों तक रजःस्राव होता रहता हो, उनको भी इस वटीके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है। मासिकधर्म आनेके पहले या प्रारम्भमें उदरशुद्धि करा लेना चाहिये फिर लघुपौष्टिक भोजनके साथ इसका सेवन करनेपर थोड़े ही दिनोंमें लाभ पहुँच जाता है।

(१८) बालरक्षक सोगठी

विधि—बायविडङ्ग, वायपुंबा (कुंभी), कालानमक, चिरायता, इन्द्रजो, सौंठ, हरड़, डीकामाली, बच, जायफल, जायपत्री, करंजके भुने बीज, पित्तपापड़ा, कुटकी, कालीजीरी, कोलम्बो, अतीस, एलुवा, उसारेरेवन, मरोड़ाफली सब समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर ६ घण्टे जलके साथ

घुटाई करके १-१ रत्तीकी गोलियां बना ले। (वै० चि० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ समय। आवश्यकतापर २-२ या ३-३ घण्टेपर।

उपयोग—ये गोलियां छोटे बालकोंके सूक्ष्म ज्वर, खांसी, कब्जियत और पेटका दर्द आदि रोगोंमें पत्थरपर जलमें थोड़ी घिसकर पिला देनेसे तुरन्त उदरशुद्धि हो जाती है। आवश्यकतापर एक दो घण्टे बाद दूसरी बार देवें।

यह बालरक्षक सोगठी विशेषतः बालकोंके मलावरोध, अपचन, उदर पीड़ा और उदरवायुको दूर करनेके लिए प्रयोजित होती है। जब जरूरत हो तब इसका उपयोग करना चाहिए। इस सोगठीका नियमित उपयोग बहुत दिनों तक नहीं करना चाहिए। कारण कि इसमें विरेचन प्रधान द्रव्य मुख्य है। अधिक दिनों तक बच्चेको देते रहनेसे अन्त्रमें प्रदाह उत्पन्न होता है। फिर मल संग्रह होने लगता है।

यह सोगठी अति निर्दोष है। सब प्रकृतिके बच्चोंको सब ऋतुओंमें दे सकते हैं। किसीको हानि नहीं पहुँचती।

सूचना—बच्चोंको मलावरोध अधिक होता हो तो फलोंका रस, शाक का रस, गोदुग्धका सेवन अधिक करना चाहिए। मावा और मेदाका पदार्थ, अधिक घृत, बार-बार भोजन, गरम-गरम चाय आदिका सेवन नहीं कराना चाहिए।

(१०) बालरक्षक गुटिका

विधि—जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग, इलायची, अजमोद, सफेद मिर्च वायपुंबा, वायविडङ्ग, सोया, कालानमक, हरड़, चिरायता करंजके भुने बीज, अतीस, अनारका छिलका, पीपलामूल, वंशलोचन, एलुवा, बीजाबोल, खसखस, लोबान और केशर सब समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें फिर शहदमें घुटाई करके $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। (वै० चि० सा०)

वक्तव्य—एलुवा मिलानेसे गुटिका बहुत कड़वी हो जाती है। इस हेतु से हम एलुवाके स्थानपर गोकर्णीके बीज मिलाते हैं।

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें २ बार। १ माससे ६ मास तकके बच्चों को माताके दूधके साथ दें। ७ माससे १२ मास तकके बच्चोंको २ से ४ गोली देवें। बड़े बच्चोंको अधिक मात्रा देवें।

उपयोग—बालकोंके पतले दस्त, वमन, अजीर्ण, वायु, मन्दाग्नि निर्बलता और कब्ज आदि दोष दूर होकर दूध अच्छी रीतिसे पचन होता है। शरीर मजबूत और नीरोग बन जाता है। यह गुटिका नीरोगी और रोगी, सब बालकोंके लिये अति उपयोगी है।

शिशुओंके स्वास्थ्यकी रक्षार्थ जन्मघूंटी (बालघूंटी) कई प्रकारकी प्रचलित है। यह भी जन्मघूंटी ही है। इसका प्रचार गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छमें अत्यधिक हो रहा है। यह बालरक्षक गुटिका और द्वितीय खण्डमें दी हुई जन्मघूंटी, दोनोंकी औषध योजनामें गुणधर्म दृष्टिसे अन्तर है। इस गुटिकामें दीपन, पाचन, सारक, ग्राही, कृमिघ्न और कफघ्न औषधियोंको मुख्य स्थान दिया है और द्वितीय खण्डकी जन्मघूंटीमें सारक, कृमिघ्न कफहर और दुर्गन्धनाशक द्रव्योंको संयोजित किया है। यह अन्तर देश भेद और जलवायु भेदसे हुआ है।

जिन बालकोंके लिए दीपन, पाचन, सारक, ग्राही, कृमिघ्न और कफघ्न गुणोंकी आवश्यकता हो, उनके लिए यह वटी अति उपकारक है। यह सौम्य है। निर्भयतापूर्वक सब प्रकृति वालोंको सब ऋतुओंमें दे सकते हैं। जिन शिशुओंको सारक गुणके साथ ग्राही (अन्त्र आकुंचन कराने और आहार रसको धारण करने वाले) तथा दीपन, पाचन गुणप्रधान औषधि मिलानेकी आवश्यकता न हो, समशीतोष्ण औषध देना इष्ट हो उनको जन्मघूंटी दी जाती है।

जिन बच्चोंको पतले दस्त होते रहते हो; उदरमें वायु उत्पन्न होती रहती हो, बार-बार अपचन हो जाता हो और दूधका पचन भली भांति न होता हो उनके लिए बालरक्षक गुटिका अति उपकारक है यह दूषित मल को फेंकवाती है और ग्राही गुण दर्शाती है। एवं शनैः शनैः पाचन क्रिया व्यवस्थित करके बालकको निरोगी सबल बना देती है।

जिन बालकोंको कब्ज बना रहता हो, कब्ज होकर ज्वर आ जाता हो, अन्य कोई दोष न हो उनके लिए बालरक्षक गुटिकाकी अपेक्षा जन्मघूंटी हितावह है। किन्तु क्वचित् मल संग्रह होकर मलावरोध हो गया हो तो बालरक्षक सोगठीकी योजना करना विशेष हितावह माना जायगा।

जिन बालकोंको बार-बार जुकाम हो जाता हो, ऐसे बालकोंके लिए यह गुटिका आशीर्वादके समान है। जब तक बालक निर्बल हो तब तक बाहरकी शीत, वर्षाकी वायु और सूर्यके तापमें अधिक रहना आदिसे बचाना चाहिए। अति शीतल पेय नहीं देना चाहिए। एवं स्थान करानेके पहले तैलकी मालिशकर लेनी चाहिए। इस तरह सम्हालनेके साथ इस गुटिकाका नियमित सेवन कराया जाय तो बालक स्वस्थ और सबल बन जाता है।

कफश्वास कफकास और नाकसे श्लेष्मस्राव होते रहना आदि विकार हों, वे शृङ्गभस्म और इस गुटिकाके मिश्रणसे थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जाते हैं।

जिन बच्चोंको मन्द ज्वर बना रहता हो या बार-बार आता रहता हों, उनको इस गुटिकाका सेवन नियमित कराया जाय तथा मधुर पदार्थका

अधिक सेवन या मलावरोध कारक आहारका सेवन कम करा दिया जाय तो लाभ हो जाता है। आवश्यकता अनुसार गोदन्ती भस्म और प्रवालपिष्टी साथमें दे सकते है।

यदि ज्वर अधिक आ गया हो, मलावरोध, अपचन, जुकाम, कफप्रकोप आदि लक्षण उपस्थित हुए हों तो ऐसी अवस्थामें इस गुटिकाकी अपेक्षा एरण्ड तैलका अन्य विरेचन द्रव्यसे उदरका शोधन करके लक्ष्मीनारायण, गोदन्तीभस्म और प्रवालपिष्टीका सेवन हितावह माना जायगा।

उदरमें सूक्ष्म कृमि हो गये हों, मल दुर्गन्धयुक्त आता हो तथा उदरमें अफारा आ जाता हो, उन सब विकारोंको यह बालरक्षक गुटिका बहुत जल्दी शमन कर देती है। बालकको घृत प्रधान आहार, अधिक मात्रामें दूध और बार बार भोजन आदि बल बढ़नेकी भावनासे देते हों तो बन्दकर देना चाहिए। जो भोजन पाचन नहीं-होता वह शरीर बलको घटाता है।

जिन माता पिताका शरीर निर्बल हो उनके शिशुओंके देह भी सामान्यत: निर्बल होते है। इन बालकोंको बालरक्षक गुटिकाके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर सेवन कराया जाय तथा नियमित तेल मर्दन कराया जाय तो देह क्रमश: पुष्ट होने लगती है।

सूचना—कई कुटुम्बोंमें बच्चोंको शैशवावस्थासे चाय पिलाते रहते है। यह प्रथा हानिकर होनेसे छोड़ देनी चाहिए।

यह बालरक्षक गुटिका सौराष्ट्रकी घरेलू औषधि है। यह ग्राही और सारक. विषहर, कृमिघ्न, ज्वरहर, कफनाशक और मनको प्रसन्न रखने वाली निर्भय औषधि है। शिशुओंके जीवन-विकासके प्रतिबन्धको दूर करने में अति सहायक है, सब प्रकृतिके बालकोंको दी जाती है और सब ऋतुओं में इसका उपयोग हो सकता है। कच्छ सोराष्ट्र और गुजरातमें इस वटीका उपयोग हो रहा है।

(२०) बाल जीवन वटी

विधि—गोरोचन ३ माशे, एलुवा ६ माशे, उसारेरेवन, केशर, कटेली का जीरा. जवाखार और सत्यानाशीके बीज प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सब को कूट-पीस छानकर अदरकके रसमें ३ घण्टे घोट $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{4}$ रत्तीकी गोलियां बनाकर छायामें सुखा लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ गोली। आवश्यकता माताके दूध या शहदसे दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे बच्चोंके पसली (डब्बा) रोग, कब्जियत, मूत्रावरोध. अफारा, कास आदि रोग दूर होते हैं और बच्चे नीरोग हो जाते हैं। इस वटीका उपयोग विशेषत: डब्बानाशक गुटिकाका उपयोग करनेके पश्चात् किया जाता है। क्वचित् निर्बल शिशुके लिये प्रारम्भसे ही यह देनी

पड़ती है।

शिशुओंका यकृत् जन्य होनेपर स्वाभाविक बड़ा और निर्बल होता है। इसलिए वह शीघ्र रोग पीड़ित हो जाता है। जिन बालकोंको ३ वर्षकी आयुके पहले घृत-मिश्रित अन्न देना आरम्भ कर देते हैं, उनके यकृत् और अन्त्र दोनों अधिक निर्बल और शिथिल बनते हैं। एवं जन्मसे कृश बालकों का यकृत् भी कमजोर रहता है। उनको डब्बारोग हो जानेपर प्रायः यकृत् भी प्रभावित हो जाता हैं। उन बच्चोंके लिए डब्बानाशक गुटिकाकी अपेक्षा बालजीवन वटी विशेष उपकारक सिद्ध हुई है। इसके भीतर गोरोचन आता हैं, वह यकृत्को बलप्रदान करता है और कीटाणुओंका नाश करता है।इस हेतुसे यह सफलता पूर्वक कार्य करती है। यह वटी अति दिव्य सिद्ध हुई है। इस वटीने सैकड़ों बच्चोंके जीवनकी रक्षाकी है।

(२१) तृष्णाघ्नि गुटिका

विधि—नीलकमल, कूठ, धानकी खील और वड़के अंकुर सबको सम-भाग मिला महीन चूर्णकर शहदके साथ २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें।

(चक्रदत्त)

मात्रा—१-१ गोली करके प्रतिदिन १५-२० गोलियोंका रस चूसते रहें।

उपयोग—यह वटी भयंकर बढ़ी हुई तृषा और वमनको तत्काल नष्ट करती है। किसी भी रोगमें तृषाकी वृद्धि होनेपर इस गुटिकाका उपयोग हो सकता है।

(२२) लहशुनादि वटिका

विधि—लहशुन, जीरा, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध गन्धक और सैंधानमक इन ८ औषधियोंको समभाग मिला नींबूके रसमें ३ दिन खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लें। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ४ गोली, दिनमें ३ बार। जल या मठ्ठेके साथ दें। विसूचिकामें ३-३ गोलियाँ आध-आध घण्टेपर देते रहे।

उपयोग—यह वटी अजीर्ण, कृमि, उदर शूल, अफारा और विसूचिका को दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है। अपचन और विसूचिकाके लिये अत्यन्त लाभदायक है।

रसयोग सागरमें इस वटीका नाम 'गन्धक वटी' विसूचिका विध्वंसिनी और 'त्रिकटु रसायन' लिखे हैं। यह वटी विसूचिकाके लिये अति हितकर है। नींबू और अदरकके रसमें सैंधानमक और कालानमक १-१ रत्ती मिला कर इस रसके साथ यह वटी देनेसे शूल, वमन, विसूचिका और कृमि आदि रोग नष्ट होते है। इससे विसूचिकाके कीटाणु नष्ट होते है एवं शीतांगतामें कमी होती है।

(२३) विसूचिकाहर वटिका

विधि—भूनी हींग ३ तोले, आमकी गुठलीकी गिरी और लालमिर्चके छिलके २-२ तोले, अफीम, जायफल, जायपत्री, लौंग सोहागाका फूला और शुद्ध सिंगरफ १-१ तोला और पीपरमेण्टके फूल ६ माशे लें। इन आठ औषधियोंको मिलाकर ६-६ घण्टे नींबू और लहशुनके रसमें खरल करके आध आध रत्तीकी गोलियां बनावें।

वक्तव्य—पीपरमेण्टके फूल नींबूके रसकी भावना दे देनेके पश्चात् मिलावें फिर लहशुनका रस डाल-डालकर ६ घण्टे मर्दन करें।

मात्रा १ से २ गोली, १-१ घण्टेपर रोग काबूमें आवे तब तक १ तोला जलके साथ या शक्करके साथ देते रहें। रोग कम होनेपर औषधिकी मात्रा कम करें। वमन, अतिसार या पेचिशमें ३ बार जलके साथ देवें।

सूचना—पिलानेके लिये १। सेर जलमें १ तोला लौंग या जायफल मिलाकर उबाल लें। शीतल होनेपर छानकर आवश्यकतानुसार बार-बार १-१ तोला जल पिलाते रहें।

इस औषधिमें करीब १४ वां हिस्सा अफीम आती है। अतः जब तक उदरमेंसे दुर्गन्धयुक्त मल न निकल जाय, तब तक इस विसूचिकाहर वटीका का प्रयोग न करें।

इस गुटिकामें अफीम मिली है। इस लिये यह वटी हो सके तब तक सगर्भाको नहीं देनी चाहिये। कारण अफीमका असर गर्भपर हानिकर होता है।

उपयोग—विसूचिका (कालेरा) के लिये यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। अनेक मरणोन्मुख रोगी इससे थोड़े ही घण्टोंमें स्वस्थ हो गये है। इसके प्रयोगसे कालेराके वमन और दस्त दोनों सत्वर रुक जाते हैं; तृषा कम होती है; कीटाणु नष्ट होते हैं, अन्तर्दाह शमन होता है, हाथ-पैर में ऐंठन आना रुक जाता है, नाडियोंमें रही हुई शीतलता सत्वर दूर होती है तथा पचनक्रिया प्रदीप्त होकर रोगी सत्वर निरोग बन जाता है। ऐसे ही यह वटी पेचिश, अतिसार, अजीर्ण जन्य अतिसार, अरुचि, वमन, आदि रोगोंको दूर करती हैं। यह छोटे बालकोंको थोड़े परिमाणमें दी जाती है। बालक, युवा वृद्ध स्त्री-पुरुष आदि सबके लिये यह लाभदायक है।

(२४) सर्पगन्धादि गुटिका

विधि—सर्पन्धा १० सेर खुरासानी अजवायन २ सेर जटामांसी और भांग १-१ सेर मिला जोकुट चूर्ण करें। इन्हें अटगुने जलमें रात्रिको भिगो सुबह मन्दाग्निपर पकावें और कड़छीसे हिलाते रहे। अष्टमांश जल शेष रहनेपर नीचे उतार मसलकर कपड़ेसे छान लेवें। फिर दूसरी बार छान मन्दाग्निपर पकावें। जब क्वाथ कड़छीसे लगने लगे ऐसा गाढ़ा हो, तब

उसे नीचे उतार धूपमें सुखावें। गोली बनने योग्य हो जाय तब उसमें पीपलामूलका चूर्ण २० तोले मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें।

(स्व० श्री० पं० यादव जी त्रिकम जी)

मात्रा—२ से ३ गोलो। रात्रिको सोनेके १-२ घण्टे पहले, जल या दूध से दें।

उपयोग—इस औषधिमें निद्राप्रद और रक्त दवाव शामक गुण हैं। जब किसी रोग विशेषसे वेदना होनें या मदात्यय, क्विनाइन विष हिस्टीरिया या शराब, उन्माद या मस्तिष्कमें अधिक उत्तेजना पहुँचनेसे निद्रा न आती हो; तब निद्रा लानेके लिये इस गुटिकाका प्रयोग किया जाता है। इसके सेवनसे शान्त निद्रा आ जाती है, तथा मस्तिष्कमेंसे रक्तका दबाव कम हो जाता है।

वृक्क प्रदाह होनेपर मूत्रमें ओज-धातु (एल्ब्युमिन) जाती है तथा रक्तमें मूत्र विषका संचय होता रहता है। फिर मस्तिष्कमें विष पहुँचकर रक्त-दबाववृद्धि करता है, निद्रा नहीं आती, शिरमें भारीपन बना रहता है चक्कर आता है, तथा सर्वांगमें शोथ प्रतीत होता है उसपर इस वटीको सेवन करानेसे शान्त निद्रा आने लगती है। साथमें वृक्क विकार और मूत्रविष शमनार्थ योग्य उपचार करना चाहिये।

हिस्टीरिया रोगमें विविध लक्षण प्रकट होते हैं। अनेकोंको मस्तिष्कमें रक्तदबाववृद्धि होकर मुखमण्डलपर लाती शिरमें भारीपन, चक्कर आना, निद्रा नहीं आना, मनमें विविध कल्पना आती रहती है; उसपर रक्त-दबाव कम करके निद्रा लानेके लिये यह वटी प्रयुक्त होती है। मानसिक उद्वेग अधिक रहता हो तो साथमें कस्तूरी भी दी जाती है।

शराब, क्विनाइन आदि उग्र औषधियोंकी मात्रा अधिक हो जानेपर निद्रानाश, रक्तदवाववृद्धि, शोथ, धड़कन, अरुचि, बेचैनी, मूत्रावरोध, मलावरोध आदि अनेक उपद्रव प्रकट होते है। इनमें रक्तदवाववृद्धिको शमन करा शान्त निद्रा लानेके लिये शामको सर्पगन्धादि वटी दी जाती है।

(२५) ज्वरमुरारि गुटिका

विधि—क्विनाइन सल्फास और शुद्ध रसोंतको समभाग मिला जलके साथ खरलकर १।।-१।। रत्तीकी गोलियाँ बनावें। गोलियोंको बना-बना कर मेगनेशिया कार्बमें डालते जायँ। (श्री० डा० कर्पूरसिंहजी)

मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें ३ बार। दूध या जलके साथ देवें।

उपयोग—यह गुटिका विषमज्वरोंका नाश करती है। सतत एकांतरा तिजारी आदि बुखारोंको रोक देती है। तापकी पाली हो उस दिन ६ घण्टे पहले १ मात्रा दें। फिर २ घण्टे बाद दूसरी बार दें फिर ताप न आया

हो तो २ घण्टे बाद तीसरी बार देनेसे ताप नहीं आता है।

जीर्णज्वरमें आधी मात्रा सुबह शाम देनेसे जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, निर्बलता, अग्निमांद्य, निस्तेजता आदि दूर होते हैं। इन्फ्लुएन्जा, आमवातिक ज्वरमें भी यह वटी लाभदायक है।

अपचन, कफप्रकोप या ऋतुपरिवर्तनमें उत्पन्न ज्वर तथा शीत लगकर आने वाले ज्वरोंपर यह वटी तत्काल गुण दर्शाती है। कब्जको भी दूर करती है। जिनको अधिक कब्ज हो उनको पहले कब्ज दूर करनेके लिये अश्वकंचुकी रस या ज्वरकेसरी वटी देकर कोष्ठशुद्धि करा लेनी चाहिये।

सूचना—(१) चढ़े हुए ज्वरमें और बुखार बढ़नेके समय इस वटीका उपयोग नहीं करना चाहिये। ज्वर उतर जानेपर रोकनेके लिये देवें। (२) जो ज्वर उतरकर फिर तुरन्त बढ़ने लगता है, ऐसे ज्वरमें ताप उतरने लगे तब यह वटी दी जाती है। (३) जब तक शरीरमें ज्वर तीव्र हो, तब तक भोजन नहीं देना चाहिये। क्षुधा लगनेपर दूध, चाय, कॉफी या मोसम्बीके रसका सेवन कराना चाहिये। (४) जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये।

(२६) कैशोर गुग्गुलु

द्रव्य--हरड़, बहेड़ा, आँवला तीनों ६४-६४ तोले, जौकूट, ताजी नीमगिलोय १२८ तोला तथा भैंसा गूगल ६४ तोला।

प्रक्षेप चूर्ण—त्रिफला ८ तोले, नीम गिलोय सुखाई हुई ४ तोले, त्रिकटु ६ तोला, बायविडंग ४ तोला, निशोथ १ तोला, दन्ती १ तोला।

विधि—गूगलको १ कपड़ेमें बाँधकर कड़ाहीमें दोलायंत्र विधिसे लटका देवें। हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा ताजी गिलोयको ४ गुनें जलके साथ कड़ाहीमें भर दें तथा क्वाथ पकावें। बार-बार कलछीसे चलाते रहें। चौथाई क्वाथ शेष रहनेपर पोटलीमें अवशिष्ट गूगलके कचरेको फेंक दें। और क्वाथके जलको छानकर कड़ाहीमें भर लें और फिर पकावें। गाढ़ा होनेपर तथा गूगलकी-सी गन्ध आनेपर नीचे उतार लें। शीतल होनेपर उसमें उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्योंको कूटकर कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला लें, इसमें गायका घी मिलाकर कूटें और ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बना लें।

मात्रा—१ से ४ गोली, दिनमें २ बार दूध यूष तथा रोगानुसार अनुपानके साथ।

अनुपान—वातरक्त रोगमें मंजिष्ठादि क्वाथके साथ। नेत्र रोगोंमें वासादि क्वाथसे, गुल्म रोगमें वरुणादि क्वाथसे, व्रण तथा कुष्ट रोगमें खदिर क्वाथसे।

त्याज्य आहार विहार—खट्टे पदार्थ, अध्यशन, अजीर्णमें पुनः भोजन, मैथुन, परिश्रम, धूप गर्मी, आगमें तापना, मदिरा, क्रोध आदि।

उपयोग—अनुपान भेदसे अनेक व्याधियां व वातरोग नष्ट होते हैं। यह उत्तम जीर्ण रक्तविकार प्रधान रोगपर तथा आम विषज विकारोंपर लाभप्रद है।

(२७) योगराज गुग्गुलु

द्रव्य—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, दोनों जीरे, रेणुका (निर्गुण्डी बीज), इन्द्रजौ, पाठा, विडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच, मूर्वा, ये २० द्रव्य छः छः माशे इन सबसे दूना त्रिफला (२० तोला) इन सबके बराबर गूगल ३० तोला लें।

विधि—सब द्रव्योंको कूटकर बारीक कपड़छान चूर्ण बना लें फिर त्रिफला चूर्ण एवं शुद्ध गूगल मिलावें सबका गुड़पाक बना गूगल शुद्ध कर लें, पश्चात् घृत दे देकर तीन दिन तक खूब कूटें। भली भांति एक जीव हो जानेपर मटरके समान गोलियां बना लें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार।

अनुपान—वातरोगोंमें रास्नादि क्वाथ, पित्तरोगोंमें काकोल्यादि क्वाथ, कफरोगोंमें आरग्वधादि क्वाथ, प्रमेह रोगोंमें दारुहल्दीका क्वाथ पांडुरोग में गोमूत्र, मेदोवृद्धि में शहद, कुष्ठरोगमें नीमका क्वाथ, वातरक्तमें गिलोय क्वाथ, शोथ एवं शूल रोगोंमें पीपलका क्वाथ, मूषक विषमें पाटला क्वाथ, तीव्रनेत्र पीड़ामें त्रिफला क्वाथ सब प्रकारके उदर रोगोंमें पुनर्नवादि क्वाथ।

उपयोग—सब प्रकारके वातरोग, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीविकार, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगंदर, उदावर्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, उरोग्रह, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि, पुरुषोंके धातुविकार तथा स्त्रियोंके रजोविकृति, ये सब इस योगराज गूगलके सेवनसे निवृत्त हो जाते हैं। यह दिव्य औषधि है। यह योगराज गुग्गुलु संतान दाता तथा बन्ध्याओंकी विकृति नष्ट करने वाला भी है।

वक्तव्य—इस योगराज गुग्गुलुके पाठमें मतान्तरमें कई भस्में मिली हुई हैं। उसके अनुसार भस्म मिला करके भी यह औषधि बनाई जाती है। यह विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई है। उसे बृहद् योगराज गुग्गुलु नाम दिया गया है।

(२८) लाक्षादि गुग्गुलु

द्रव्य—लाख, हड़सिघार, अर्जुनकी छाल, असगन्ध तथा गंगेरन, इन सबका बारीक चूर्ण और इन सबके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली, जलके साथ या दूधके साथ। दिनमें ३ बार।

उपयोग—टूटी हुई हड्डी, या स्थानसे हटी हड्डीको स्थानपर बैठा देनेके पश्चात् शेष रही हुई पीड़ा नष्ट होकर हड्डी जुड जाती है।

(२९) सप्तविंशतिको गुग्गुलु

द्रव्य—त्रिकटु, त्रिफला. नागरमोथा, बायबिडंग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर देवदारू, तुम्बरु, पोखरमूल, चव्य. इन्द्रायणकी जड़, हल्दी, दारुहल्दी, बिडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी खार. सेंधानमक, गजपीपल इन २७ औषधियोंको समभाग मिला चूर्ण बना कर इन सबके वजनसे दूना शुद्धगूगल मिलाकर ½-½ माशेकी गोली बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली शहदसे दिनमें ३ बार।

उपयोग—कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियों का शूल, कुक्षि तथा बस्ति और गुदाकी पीड़ा अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमीरोगको नष्ट करता है। जीर्णज्वरी तथा यक्ष्मीके लिये हितकारी है। आनाह, उन्माद, कुष्ट, उदररोग-नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोगोंको नष्ट करता है। यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंमेंसे विकृति हुए को प्रकृतिस्थ बनानेका, आमविष जलानेका तथा पचनेन्द्रियको बल देने का इसमें उत्तम गुण है। इस हेतुसे उक्त सब रोगोंके मूलरूप पचनेन्द्रिय संस्थानको व्यवस्थित करके सब रोगोंपर लाभ पहुँचाता है।

(३०) सिंहनाद गुग्गुलु

द्रव्य—हरड़ १२ तोला, बहेड़ा १२ तोला, आँवला १२ तोला इनको जो कूटकर क्वाथ बनावें। यह छना हुआ क्वाथ १२ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोला, गूगल १२ तोला और एरंडका तैल १६ तोला, इन सबको दृढ़ लोह पात्रमें पकावें, और ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २-३ बार जलके साथ।

उपयोग—वात, पित्त और कफसे उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ, खञ्जता पंगुता, महादुर्जय श्वास, पाँच प्रकारके कास, कुष्ठ, वात रक्त, गुल्म शूल, उदर विकार तथा भयंकर आमवात और बलि पलितको नष्ट करता है।

(३१) अभयादि मोदक

विधि—हरड़, पीपलामूल, सोंठे, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात नागरमोथा, वायविडंग और आंवला ये सब १-१ भाग दन्तीमूल ३ भाग निशोथ ८ भाग और मिश्री ६ भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। बादमें गोली बन सके उतना शहद मिलाकर ३ से ४ माशेकी गोलियां बना लें। इनमें १ से २ गोली सुबह शीतल जलके साथ दें। जब जुलाब बन्द करना हो तब निवाया जल पिलावें।

उपयोग—यह पाण्डु, विषविकार, कास, विषमज्वर, मन्दाग्नि, उदरशूल पार्श्वशूल, वातशूल, दोनों प्रकारके अर्श, मूत्रावात, गलगण्ड, भगंदर सूजन गुल्म, प्रथमावस्थाका क्षय, उदररोग, भ्रम, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्लीहावृद्धि, नेत्र रोग, वातरोग, आध्मान, अश्मरी, कुष्ठ और प्रमेह आदि रोगोंमें मलविकार

उपयोग—अनुपान भेदसे अनेक व्याधियां व वातरोग नष्ट होते हैं। यह उत्तम जीर्ण रक्तविकार प्रधान रोगपर तथा आम विषज विकारोंपर लाभप्रद है।

(२७) योगराज गुग्गुलु

द्रव्य—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, दोनों जीरे, रेणुका (निर्गुण्डी बीज), इन्द्रजौ, पाठा, विडंग, गज-पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच, मूर्वा, ये २० द्रव्य छः छः माशे इन सबसे दूना त्रिफला (२० तोला) इन सबके बराबर गूगल ३० तोला लें।

विधि—सब द्रव्योंको कूटकर बारीक कपड़छान चूर्ण बना लें फिर त्रिफला चूर्ण एवं शुद्ध गूगल मिलावें सबका गुड़पाक बना गूगल शुद्ध कर लें, पश्चात् घृत दे देकर तीन दिन तक खूब कूटें। भली भांति एक जीव हो जानेपर मटरके समान गोलियां बना लें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार।

अनुपान—वातरोगोंमें रास्नादि क्वाथ, पित्तरोगोंमें काकोल्यादि क्वाथ, कफरोगोंमें आरग्वधादि क्वाथ, प्रमेह रोगोंमें दारुहल्दीका क्वाथ पांडुरोग में गोमूत्र, मेदोवृद्धिमें शहद, कुष्ठरोगमें नीमका क्वाथ, वातरक्तमें गिलोय क्वाथ, शोथ एवं शूल रोगोंमें पीपलका क्वाथ, मूषक विषमें पाटला क्वाथ, तीव्रनेत्र पीड़ामें त्रिफला क्वाथ सब प्रकारके उदर रोगोंमें पुनर्नवादि क्वाथ।

उपयोग—सब प्रकारके वातरोग, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीविकार, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगंदर, उदावर्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, उरोग्रह, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि, पुरुषोंके धातुविकार तथा स्त्रियोंके रजो-विकृति, ये सब इस योगराज गूगलके सेवनसे निवृत्त हो जाते हैं। यह दिव्य औषधि है। यह योगराज गुग्गुलु संतान दाता तथा बन्ध्याओंकी विकृति नष्ट करने वाला भी है।

वक्तव्य—इस योगराज गुग्गुलुके पाठमें मतान्तरमें कई भस्में मिली हुई हैं। उसके अनुसार भस्म मिला करके भी यह औषधि बनाई जाती है। यह विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई है। उसे बृहद् योगराज गुग्गुलु नाम दिया गया है।

(२८) लाक्षादि गुग्गुलु

द्रव्य—लाख, हड़सिघार, अर्जुनकी छाल, असगन्ध तथा गंगेरन, इन सबका बारीक चूर्ण और इन सबके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली, जलके साथ या दूधके साथ। दिनमें ३ बार।

उपयोग—टूटी हुई हड्डी, या स्थानसे हटी हड्डीको स्थानपर बैठा देनेके पश्चात् शेष रही हुई पीड़ा नष्ट होकर हड्डी जुड जाती है।

(२९) सप्तविंशतिको गुग्गुलु

द्रव्य—त्रिकटु, त्रिफला. नागरमोथा, बायबिडंग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर. देवदारू, तुम्बरु, पोखरमूल, चव्य. इन्द्रायणकी जड़, हल्दी, दारुहल्दी, बिडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी खार. सेंधानमक, गजपीपल इन २७ औषधियोंको समभाग मिला चूर्ण बना कर इन सबके वजनसे दूना शुद्धगूगल मिलाकर ½-½ माशेकी गोली बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली शहदसे दिनमें ३ बार।

उपयोग—कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियों का शूल, कुक्षि तथा बस्ति और गुदाकी पीड़ा अश्मरी, मूत्रकृच्छ, अन्त्रवृद्धि और कृमीरोगको नष्ट करता है। जीर्णज्वरी तथा यक्ष्मीके लिये हितकारी है। आनाह, उन्माद, कुष्ट, उदररोग-नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोगोंको नष्ट करता है। यह वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंमेंसे विकृति हुए को प्रकृतिस्थ बनानेका, आमविष जलानेका तथा पचनेन्द्रियको बल देने का इसमें उत्तम गुण है। इस हेतुसे उक्त सब रोगोंके मूलरूप पचनेन्द्रिय संस्थानको व्यवस्थित करके सब रोगोंपर लाभ पहुँचाता है।

(३०) सिंहनाद गुग्गुलु

द्रव्य—हरड़ १२ तोला, बहेड़ा १२ तोला, आँवला १२ तोला इनको जो कूटकर क्वाथ बनावें। यह छना हुआ क्वाथ १२ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोला, गूगल १२ तोला और एरंडका तैल १६ तोला, इन सबको दृढ़ लोह पात्रमें पकावें, और ४-४ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २-३ बार जलके साथ।

उपयोग—वात, पित्त और कफसे उत्पन्न होनें वाली व्याधियाँ, खञ्जता पंगुता, महादुर्जय श्वास, पाँच प्रकारके कास, कुष्ठ, वात रक्त, गुल्म शूल, उदर विकार तथा भयंकर आमवात और बलि पलितको नष्ट करता है।

(३१) अभयादि मोदक

विधि—हरड़, पीपलामूल, सोंठे, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात नागरमोथा, वायविडंग और आँवला ये सब १-१ भाग दन्तीमूल ३ भाग निशोथ ८ भाग और मिश्री ६ भाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। बादमें गोली बन सके उतना शहद मिलाकर ३ से ४ माशेकी गोलियां बना लें। इनमें १ से २ गोली सुबह शीतल जलके साथ दें। जब जुलाब बन्द करना हो तव निवाया जल पिलावें।

उपयोग—यह पाण्डु, विषविकार, कास, विषमज्वर, मन्दाग्नि, उदरशूल पार्श्वशूल, वातशूल, दोनों प्रकारके अर्श, मूत्रावात, गलगण्ड, भगंदर सूजन गुल्म, प्रथमावस्थाका क्षय, उदररोग, भ्रम, दाह, मूत्रकृच्छ, प्लीहावृद्धि, नेत्र रोग, वातरोग, आध्मान, अश्मरी, कुष्ठ और प्रमेह आदि रोगोंमें मलविकार

को दूर कर सत्वर लाभ पहुँचाता है।

जैसे आयुर्वेदमें स्नेह आदि क्रियाका विधान किया है, वैसे युनानी मत में मुन्ज़िस देनेके पश्चात् जुलाब देनेका रिवाज हैं।

(३२) एलादि गुटिका

द्रव्य—छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, दालचीनी, प्रत्येक ६-६ माशे ले तथा छोटी पीपल २ तोला, मिश्री, मुलैठी, बीज रहित छुआरा, मुनक्का प्रत्येक ४-४ तोला लें। सब चीजें महीन पीसकर शहदमें मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनालें।

मात्रा—१-१ गोली जलसे लें या चूसे दिनमें १०-१५ गोली तक।

उपयोग—कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तपित्त तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोथ, प्लीहा, ऊरुस्तंभ, स्वरभेद तथा क्षय रोगमें उरःक्षत, सबको नष्ट करती है। सामान्य औषधि होते हुए अति प्रबल रोगों को भी दूर करनेमें अति उपयोगी सिद्ध हुई है।

(३३) करंजादि वटी

द्रव्य—भुनी हुई करंजकी गिरी, इन्द्रायणकी जड़, बनप्सा, अतीस, फिट करी फूला, पीपल, बड़ी हरड सब १-१ तोला लें।

विधि—सबको कूट पीस बारीक चूर्णकर शहदमें मिला चने बराबर गोली बना लें।

मात्रा—२-२ गोली ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—नवीन ज्वर, विषमज्वर, मलावरोध व प्लीहा वृद्धिसह जीर्ण ज्वर दूर होते हैं।

(३४) कन्यालोहादि वटी

द्रव्य—एलुआ १० तोला, कासीस ७।। तोला, दालचीनी ५ तोला, इलायची ५ तोला, सोंठ ५ तोला, गुलकन्द २० तोला। (आ, औ.)

विधि—सबको मिला चूर्णकर गुलकंदमें घोटकर मटर बराबर गोली बनावें।

मात्रा—२-३ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—स्त्रियोंके कष्टार्त्तव, अनियमितार्त्तव तथा अनार्त्तव सबको सुधारती है। सौम्य औषधि हैं। कोमल प्रकृति वालोंके लिए हितावह है। ४-६ मास तक औषधि दी जाती है।

सूचना—मासिक धर्म आनेके १० दिन बाद तक औषधि न दें। फिर प्रारम्भ करदें। गोली निगलकर ऊपर जल पीवें। गोली चबानेपर मुंह कड़ुवा होता है। इस वटीके सेवन कालमें मिठाई, तले हुए पदार्थ, द्विदल धान्य, इनका सेवन थोड़े परिमाणमें करें। अन्यथा उदरमें दर्द होने लगता है।

(३५) कर्पूरादि वटी

द्रव्य—कपूर-दाड़मके फूलकी छाल और लौंग १-१ तोले, कालीमिर्च; पीपल, बहेड़ेकी छाल और कुलिजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था १-१ तोले लें।

विधि—सबको मिला बंबूलकी छालके क्वाथसे भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लें। ३ घण्टे तक खरल करना चाहिये।

मात्रा—१-१ गोली १०-१५ बार मुंहमें रखकर रस चूंसें।

उपयोग—सब प्रकारकी खांसी विशेषतः वातज कासमें अति उपयोगी है जिस कासमें सोनेपर वेग उत्पन्न होता है, २-४ मिनट तक खांसी चलती है, फिर थोड़ा झाग निकलता है, उसपर यह अति लाभप्रद है।

(३६) कंठ सुधार वटी

द्रव्य—मुलैठी सत्व ७ तोले, पीपरमेंटके फूल ३ माशे, कपूर, इलायची और लौंग १-१ तोला तथा जावित्री २ तोले लें। (धन्वन्तरि)

विधि—सबको मिला जलमें आध घंटे खरल करके १-१ रत्तीकी गोली बनावें।

मात्रा—१-१ गोली मुंहमें रखकर रस चूंसते रहें। दिनमें ८-१० गोली तक।

उपयोग—अरुचि, मंदाग्नि, स्वरभेद, मुखपाक, वमन, व्याकुलता, अजीर्ण उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगोंको नष्टकर चित्त प्रफुल्लित करती है।

(३७) कासमर्दन वटी

द्रव्य—श्वेत कत्था ४ तोला, सेलखड़ी २ तोला, कपूर १ तोला, छोटी इलायचीके बीज ६ माशे लें।

विधि—सबको बारीक कर कपड़छन चूर्ण बनावें। ३० तोले बंबूलकी छालको ऽ२।। सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करें, जल चतुर्थांश रहनेपर उतार कर छान ले। फिर क्वाथ और चूर्णको मिला मंद-मंद आंचपर पकावें और चलाते रहें। जब गोली बाँधने योग्य हो जाये, तब नीचे उतार लें। ठंडा होनेपर चनेके बराबर गोली बना लें। यदि मसाला हाथसे चिपकता हो तो थोड़ी सी सेलखड़ी लगाकर गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१-१ गोली मुंहमें रखकर चूसें। दिन भरमें १०-१५ गोली चूसें।

उपयोग—इस वटीसे वातज कास, पित्तज कास, नूतन कास, जीर्ण कास थोड़े ही दिनोंमें दूर होती है। मुख-पाक, दंतचालन, गल घंटिकाकी शिथिलता, स्वर भेदमें लाभ पहुँचता है। छोटे बच्चोंको गोलीका चूर्ण बनाकर चटा देना चाहिये।

(३८) कुटजादि वटी

द्रव्य—कूड़ाकी छाल ८० तोले, माजूफल, लौंग, मरोड़फली; बहेड़ा,

बायबिडंग, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री तथा बेलगिरी, प्रत्येक १-१ तोला लें। (आ० नि०)

विधि—पहले कूड़ाकी छालका जौकूट चूर्णकर ८०० तोले जलमें क्वाथ करें। २०० तोले जल शेष रहनेपर शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्णकर मंदाग्निपर पाक करें। गाढा होनेपर शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला कर चनेके बराबर गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ बार जल या मट्ठेके साथ लें।

उपयोग—संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार; पेचिश और ज्वरातिसारको दूर करती है। तथा रक्ताशंमें रक्त गिरना बन्द करती है।

(३९) खदिरादि वटी

द्रव्य—कत्था ८५ सेर, पानी १२ सेर ६४ तोले, इनको मिलाकर पकावें। अष्टमांश शेष रहनेपर जावित्री, कपूर, चिकनी सुपारी, कंकोल, ४-४ तोले इनके बारीक चूर्णको मिलाकर गोलियाँ बना लेना।

मात्रा—१-१ गोली मुंहमें रखकर चूंसे। दिनमें १०-१२ तक।

उपयोग—मुंहको सुगन्धित करने वाली, दांत, होंठ, जीभ व तालुके रोगोंको नष्ट करती है।

(४०) चित्रकादि वटी

द्रव्य—चित्रकमूलकी छाल, पीपलामूल, जवाखार, सज्जीखार पांचों लवण, त्रिकटु, भुनीहींग, अजमोद तथा चव्य ये १५ द्रव्य प्रत्येक समान भाग।

विधि—सब द्रव्योंका चूर्ण बनाकर बिजोरे नींबू या दाडिमके रसमें खरलकर मटर बराबर वटी बनावें।

मात्रा—२ से ४ गोली जलसे दिनमें ३ बार।

उपयोग—ग्राम दोष नाशक तथा अग्निप्रदीपक है।

(४१) छर्दिरिपु वटी

द्रव्य—कपूर काचरी १० तोला चूर्ण। (ग्रा० नि० मा०)

विधि—जलमें खरलकर चने प्रमाण गोली बनावें।

उपयोग—वमन (कै) तथा अरुचिको नष्ट करती है। बच्चोंको विशेष हितकारी है। वमन रोगको रोकनेमें यह वटी निर्दोष और सफल औषधि है।

(४२) डब्बानाशक गुटिका

द्रव्य—सत्यानाशीके बीज १ भाग, उसारेरेवन्द २ भाग लें।

विधि—दोनोंका बारीक चूर्णकर सत्यानाशीके रसमें घोटकर उड़दके बराबर गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली १ या २ बार जल या माताके दूधसे दें।

उपयोग—बच्चोंके डब्बारोगको दूर करती है। १ दस्त व १ वमन

होकर छातीका कफ निकल जाता है। एक समयमें पूरा लाभ न हो तो दूसरी मात्रा देवें।

(४३) मरिचादि गुटिका

द्रव्य--कालीमिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, यवक्षार ६ माशे, दाड़िम का छिलका २ तोला।

विधि--इन सबका महीन चूर्ण बनाकर आठ तोले गुड़ (गुड़की चासनी) मिलाकर २-२ रत्तीकी गोली बना लें।

मात्रा—१-२ गोली मुंहमें रखकर दिनमें १०-१५ गोली तक चूसें।

उपयोग—कफयुक्त कास, दुर्गन्ध युक्त, नीले चिकने बंधे हुये कफ वाली खांसी तथा असाध्य खांसीमें उत्तम गुणकारी है।

(४४) लवङ्गादि गुटिका

द्रव्य—लौंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध वत्सनाभ, भांगरा, कटेलीका मूल और वहेड़ा समभाग लें।

विधि—सबका बारीक चूर्ण बनाकर गंवार पाठेके रसमें घोटकर ४-४ रत्तीको गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली गर्म जलसे दिनमें ३ बार। दौरेके समय १-१ घण्टेपर।

उपयोग—श्वास रोगनाशक हैं।

(४५) व्योषादि गुटिका

द्रव्य—सोंठ, मिर्च, पीपल, अम्लबेंत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रक, जीरा तथा इमलीका गूदा ये प्रत्येक ६-६ माशे और गुड़ २० तोले लेकर, सबका वारीक कपड़छन चूर्ण करें और इमलीको अलग कूट लें, ;फिर गुड़ मिला मसलकर एक जीव करें। फिर मटरके बराबर गोली बनावें। यदि गुड़ कठोर हो तो चाशनी बनाकर मिलावें।

मात्रा—१-२ गोली. दिनमें ५-७ बार मुंहमें रखकर चूसें। अथवा निवाये जलसे लेवें।

उपयोग—प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, कास, अरुचि, स्वरभंग आदिमें उपयोगी है।

(४६) विषतिन्दुकादि वटी

द्रव्य—शुद्ध कुचिला १० तोले, सुपारी १ तोला, कालीमिर्च ९ माशे, इमलीके बीज नग ८। (आ० नि०)

विधि—सबको मिला बारीक चूर्णकर जलमें चने बराबर गोली बना लें।

मात्रा—१-२ गोली दिनमें २ बार जल से दें।

उपयोग—अतिसार, जुकाम, अजीर्ण, मन्दाग्नि, हृदयकी दुर्बलता, जीर्ण

वातरोग, धातुक्षीणता तथा उदरशूल आदि नष्ट होते हैं।

सूचना—अधिकांशमें इसका उपयोग अफीमका व्यसन छुड़ानेमें किया जाता है। अफीमके बराबर गोलियां देनेसे उतना ही नशा आता है, किन्तु हानि नहीं करता है। एक सप्ताहमें व्यसन छूट जाता है। सेंकड़ों रोगियों की अफीम इस वटीसे छुड़ाई है। निर्भय औषधि है। अफीम छूटनेके बाद शरीर तेज युक्त होकर अग्निमांद्य दूर हो जाता है।

(४७) हिस्टीरिया नाशक वटी

द्रव्य—गांजा, कपूर, वच १-१ तोला, जटामांसी २ तोला, खुरासानी अजवायन ४ तोले और केशर ३ माशे।

विधि—सबको मिला कूट कपड़छन चूर्ण बना ६ घण्टे तक अद्रकके रस में खरलकर चने बराबर गोली बनावें।

मात्रा–२-२ गोली दिनमें ३ बार जटामांसीके फाण्ट या जलके साथ।

उपयोग—इस वटीका सेवन करनेसे हिस्टीरिया रोग २१ दिनमें दूर होता है। यह वटी मस्तिष्कको शान्त बनाती है और निकम्मे विचारोंको दूर करती है। पुरुषार्थं देती है तथा पचनक्रिया सुधारती है।

(४८) हिंग्वादि वटी

द्रव्य—भुनी हींग, अम्लबेंत, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, अजवायन तथा तीनों नमक (सेंधा, काला तथा सांभरनमक) ये ९ औषधियां समभाग लें, बारीक कपड़छन चूर्ण बना २-२रत्तीकी गोलियां बना लें।

मात्रा—२-४ गोली जलके साथ दिनमें २-३ बार।

उपयोग—वातजशूल नष्ट होते हैं। उदावर्त (गेस) से कष्ट होता हो, उसे कम करती है। पचनक्रिया व्यवस्थित करती है।

(४९) शिलाजतु वटी

द्रव्य—शुद्ध शिलाजीत २८ ग्राम, शुद्ध गूगल १४ ग्राम, लोहभस्म ३।। ग्राम, बंगभस्म ३।। ग्राम तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म ७ ग्राम लें।

विधि—प्रथम तीनों भस्मोंको खरलमें डालकर १ दिन घोटें। फिर शिलाजीत व गूगलको मिलाकर इसमें उक्त भस्मोंका मिश्रण मिलाकर घोटकर १ जीव करलें तथा २-२ रत्तीकी गोलियां बनालें।

मात्रा—२ से ४ गोली तक।

अनुपान—दूध, जल, शहद।

उपयोग—वातजप्रमेह, शर्करामेह, इक्षुमेह तथा मधुमेहमें अति लाभप्रद है जिन रोगियोंको वातरोग सह प्रमेह भी हो उनके लिये उत्तम फलप्रद है। पूयमय व्रण, विद्रधिमें पूय (Pus) के शुष्क करनेमें अद्वितीय कार्यकारी है। तथैव उक्त रोगोंको नष्टकर शुक्रधातुकी वृद्धि करता है। निर्बल वीर्यवालोंको आशीर्वाद तुल्य है।

चूर्ण प्रकरण

एक अथवा अनेक वनौषधियोंको मिला कूटकर चूर्ण तैयार किया जाता है। यदि सब औषधियोंको अलग-अलग कूट कपड़-छान करके मिलाया जाय तो ठीक शास्त्रोक्त मात्रा अनुसार गुणकारी चूर्ण तैयार होता है। मुनक्का, अनारदाना, इमली आदि औषधियां मिलाना हो तो उनको पृथक् कूट करके ही मिलाना चाहिये। चूर्ण अति सौम्य होनेसे विशेष परिमाणमें सेवन करना पड़ता है। चूर्णसे हानि होनेकी प्राय: सम्भावना नहीं है। अनेक प्रकारके रसायन और भस्म वर्षों पर्यन्त सेवन करके जिन्होंने अपनी प्रकृतिको परावलम्बी बना दी हो, उनके लिये चूर्णोंकी कृति अति शाँतिदायक मानी जाती है।

चूर्ण बनानेके लिये औषधियां शुद्ध, नयी और अच्छी देखकर लानी चाहिये। पुरानी और दूषित औषधियाँ त्याग दें। शास्त्रकारोंने ओषधियों का संग्रह करनेका कार्य वैद्यपर ही रखा है। भिन्न-भिन्न औषधियोंके वीर्यका परिपाक-काल शरद, शिशिर और वसन्त ऋतु है। इनमेंसे जिस ऋतु में औषधिपाक होता हो, उस समय जंगलके शुद्ध स्थानोंमें उत्पन्न हुई औषधियोंको विधि पूर्वक ला, छायामें सुखाकर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये।

अपक्व, मकड़ीके जाले लगी हुई, कीटाणुओंसे दूषित, अशुद्ध स्थानमें और असमयपर उत्पन्न हुई हो, ऐसी औषधियोंको नहीं लेना चाहिये। किन्तु इस नियमका पालन वर्तमानमें बहुत कम अंशमें होता है। क्योंकि आजका वैद्य परावलंबी हो गया है।

वर्तमानमें प्राय: पंसारियोंके पाससे ही औषधियां ली जाती हैं। औषधि नयी-पुरानी, अच्छी बुरी, शुद्ध-अशुद्ध कैसी है, इस बातका निर्णय करना दुष्कर हो गया है। कितने ही वैद्य औषधियोंको नहीं पहिचानते और पंसारी अज्ञान, प्रमाद या स्वार्थवश गलत औषधि दे देते हैं। फिर इच्छित लाभ कैसे हो सकेगा। चिकित्सकोंको चाहिये कि अच्छी रीतिसे जाँच किये बिना औषधियोंको प्रयोगमें न लें।

चूर्णोंको आवश्यक परिमाणमें तैयार करके काचकी अच्छे डाटवाली शीशियोंमें सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। बिना सम्हाल खुले रहे हुए चूर्ण थोड़े समयमें ही हीनवीर्य हो जाते हैं। क्षार-मिश्रित चूर्णोंको लोहपात्रमें नहीं रखना चाहिये, अन्यथा दूषित हो जाते हैं।

स्वादिष्ट विरेचन, लवणभास्कर, हिंग्वाष्टक आदि शक्कर या लवण मिश्रित चूर्ण वर्षाके दिनोंमें नहीं बनाने चाहियें।

इस प्रकरणमें कतिपय क्षारयुक्त चूर्ण भी लिखे हैं। क्षारको अस्थिपोषणार्थ हितावह माना है, परन्तु धमनियोंकी दीवारोंको हानि पहुँचाता है।

क्षारमें साधारणतया पाचक, तीक्ष्ण, पित्तवृद्धिकर और शुक्रनाशक गुण हैं। इस लिये पाचन-क्रियामें हितावह होनेपर भी क्षारयुक्त औषधि क्षय, प्रमेह, व्रण नेत्र रोग और पित्ताधिक रोगोंमें, सगर्भा स्त्रियों, बालक और वृद्धोंको तथा उष्ण ऋतुमें सब रोगियोंको विचार करके देना चाहिये। दुरुपयोग होनेसे दांतोंमें दर्द, मुखमें छाले, आमाशयमें दाह, धातुक्षीणता, मगजमें उष्णता, सन्धि स्थानोंमें पीड़ा आदि विकार उत्पन्न होकर शरीर निस्तेज बनता जायगा।

कितने ही चूर्णोंमें अफीम आदि विष मिलाते हैं। वे चूर्ण जहरी बनते है। अतः आवश्यक सूचना प्रकरण और गुटिका प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी हुई सूचना लक्ष्यमें रखकर उनका उपयोग करना चाहिये।

वक्तव्य—विशेष विवेचन और अन्य अनुभूत प्रयोगोंके लिए "नित्योपयोगीचूर्ण संग्रह" देखे।

(१) महासुदर्शन चूर्ण

विधि—हरड़, बहेड़ा, आँवला; हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली (बनभटा), छोटी कटेली (भटकटैया), कचूर, सोंठ. मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा (मोर बेल); गिलोय, धमासा, कुटकी; पित्तपापड़ा; कूड़ाकी छाल; मुलहठी, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला; पुष्करमूल; नीमकी छाल; अजवायन, इन्द्रजव, भारङ्गी; सुहिजनेके बीज, फिटकरीका फूला; बच (मीठा); दालचीनी; पद्माख सफेद चन्दन; अतीस; खरैंटी; शालपर्णी (सरिवन); पृष्ठपर्णी (पिठवन); बायविड़ङ्ग; तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, श्वेत कमलपुष्प काकोली (अभावमें अश्वगन्धा), जीवक (अभावमें विदारीकन्द), ऋषभक (अभावमें वंशलोचन). खस, लोंग, वंशलोचन, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र इन ५३ औषधियोंको समभाग लें और सबका आधा चिरायता मिलाकर बारीक कपड़छन चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ माशे, दिनमें ३ बार। जलके साथ दें। अथवा ४से ६ माशे चूर्णका फाण्ट बनाकर पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण पुराने और नये ताप, एक दोषज, धातुगत ज्वर, द्विदोषज, त्रिदोषज, सन्निपात, शीतज्वर, विषमज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, निर्बलता, शिरदर्द और ज्वरके साथ श्वास, कास, पाण्डु, हृद्रोग, कामला, कटिशूल आदि विकारोंका नाश करता है। ज्वर हो तब उतारनेके लिये और न हो तब रोकनेके लिये दिया जाता है। इस चूर्णके उपयोगमें किस जातिका ज्वर है; इस बातके निर्णयकी विशेष आवश्यकता नहीं है। एवं यह चूर्ण वात पित्त और कफप्रकोप; द्वन्द्वज और त्रिदोषज ज्वर; पुरुष और स्त्री; सगर्भा और प्रसूता; बालक; युवा और वृद्ध इन सबको निर्भयता-

पूर्वक दे सकते हैं।

ज्वरोंकी उत्पत्ति विशेषत: आमप्रकोप होनेके पश्चात् प्रश्वेद द्वारा विष बाहर न निकलनेपर होती है। इस चूर्णसे आमका पचन; कोष्ठशुद्धि विषको निर्विष बनाना और प्रस्वेद ग्रन्थियोंको बन्धनमुक्त बनाना ये चारों कार्य सरलतापूर्वक हो जाते है। इस हेतुसे यह चूर्ण सब प्रकारके ज्वरों पर उपयोगी होता है।

यह महासुदर्शन चूर्ण जिस तरह नूतन ज्वरमें उपयोगी है उसी तरह जीर्ण ज्वरपर भी लाभदायक है। कभी-कभो मधुरा (आन्त्रिक ज्वर) उतर जानेपर रोगी आहार विहारमें भूल कर देता है। जिससे ज्वर पुन:प्रकुपित होकर आ जाता है। मधुराके पहले आक्रमणमें रोगी बहुधा क्षीण हो जाता है; उसपर पुन: आक्रमण होनेसे रोगी अधिक कृश और दीन बन जाता है। उसपर महासुदर्शन चूर्ण मिलाकर सिद्ध दूध बनाकर देते रहनेसे सरलता पुर्वक कीटाणु विष और आम जलकर ज्वरका शमन हो जाता है; क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीरमें बल आने लगता हैं।

ज्वर अधिक दिनोंतक बना रहनेपर बारम्बार आता रहनेसे देह निर्बल हो जाती है फिर किसीको मन्द ज्वर रहता है। (जिसे अस्थिगत ज्वर कहते है) या रात्रिको कुछ ज्वरांश हो जाता है। मूत्र में पीलापन-बेचैनी-अग्निमांद्य अरुचि, निर्बलता, आलस्य, हाथ-पैर टूटना, मलावरोध, स्वभावमें उग्रता आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें क्विनाइन आदि तीव्र औषधिके सेवनसे प्राय: हानि पहुँचती है। उसपर ४ से ६ माशे इस महासुदर्शन चूर्णका फान्ट, २ रत्ती शिलाजीत १ रत्ती कपूर और ६ माशे शहद मिलाकर प्रात:सायं देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें ज्वरका निवारण होता है, पचनक्रिया सुधरती है, स्फूर्ति आती है और बल वृद्धि होती है।

कोमल स्वभावकी निर्बल रुग्णा या रोगी, जो पित्तप्रकोपसे पीड़ित हों उनको विषमज्वर आनेपर क्विनाइन नहीं दे सकते। यदि क्विनाइन अल्प मात्रामें भी दिया जायगा तो विविध स्थानोंसे रक्तस्राव, निद्रानाश, वृक्क कार्यमें प्रतिबन्ध, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, किन्तु इस महासुदर्शन चूर्णका सेवन करानेपर सर्व लक्षणोंसह ज्वरकी निवृत्ति होती है।

रक्तमें विष लीन हो जानेपर रोगीकी पचनक्रिया अधिक निर्बल हो जाती है। फिर भोजन करनेकी रुचि नहीं होती। मूत्रमें पीलापन, अग्निमांद्य, कठोर उदर, कभी-कभी उदरमें शूल चलना, हाथ-पैर टूटना, किसी-किसीको छातीमें जलन, किसीको कभी-कभी उदरमें शूल चलना, किसीको श्वास कास हो जाना शिरमें भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर महासुदर्शन चूर्ण खिलाते रहनेसे सब लक्षणोंसह

ज्वरका समन होता है ।

ज्वर लगभग २१ दिनसे अधिक हो जानेपर जीर्णज्वर माना जाता है। फिर रक्तमेंसे रक्तजीवाणुका ह्रास होता है। थोड़ा परिश्रम करनेपर हृदयकी गति बढ़ जाती है। आलस्य बना रहता है। पाण्डुताके साथ शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, आलस्य बना रहना, शिरमें भारीपन, अरुचि और अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर सुदर्शन चूर्णका फांट और संशमनी वटीका सेवन करानेपर थोड़े ही दिनों में शरीर स्वस्थ हो जाता है ।

सगर्भावस्थामें कब्ज होनेपर कितनी ही स्त्रियोंको बार बार ज्वर ९९° तक आ जाता है। पचनक्रिया मन्द हो जाती है। भोजन करनेपर आहार उदरमें जड़ होकर पड़ा रहता है। इनके अतिरिक्त शिरदर्द, आलस्य, जुकाम, कफवृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर सुवर्ण वसन्तके या लघुवसन्तके साथ इस चूर्णका फांट देते रहनेसे ज्वरकी निवृत्ति हो जाती है।

प्रसव होनेके पश्चात् कितनी ही स्त्रियोंको दूसरे तीसरे दिन पित्त प्रकुपित्त होकर मन्द-मन्द ज्वर आ जाता है। तृषावृद्धि, दाह, व्याकुलता, प्रस्वेद आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि उनको दशमूल क्वाथ दिया जाय तो पतले गरम दस्त हो जाते हैं और दाह बढ़ जाता है। उनके लिये सुदर्शन चूर्णका फांट अति हितकारक है। यदि मलावरोध हो तो थोड़ा निशोथका चूर्ण भी शक्करके साथ देना चाहिये। यदि ज्वर ९९° से अधिक बढ़ गया हो तो रत्नगिरी रसके साथ सुदर्शन फांट देना चाहिये। यदि गर्भाशयमें अशुद्ध रक्त रह जानेके हेतुसे शूल भी चलता रहता हो तो प्रारम्भ में गर्भाशय-शुद्धिके लिये प्रतापलंकेश्वर रसके साथ दशमूल क्वाथ देना चाहिये। गर्भाशय शूल बन्द होनेपर सूतशेखरके साथ सुदर्शन फांटका सेवन कराना चाहिये ।

कितने ही बालकोंको मधुर पदार्थका अत्यधिक सेवन और दिनभर खाते रहनेके कारण मलावरोध और अपचन होकर बार-बार ज्वर आता रहता है। फिर धीरे-धीरे प्लीहा बढ जाती है और अग्निमांद्य हो जाता है उनको पथ्यसह सुदर्शन चूर्णका सेवन थोडे दिनों तक नियमित रूपसे कराया जाय और मधुर पदार्थ बन्द कर दिये जायें तो ज्वर निवृत्त होता है। प्लीहावृद्धिका ह्रास होता है और पचनक्रिया सबल बन जाती है।

महासुदर्शन चूर्णका फाण्ट सोडाबाई कार्ब मिलाकर, दिनमें २ बार देते रहनेसे मलावरोध आमप्रकोप तथा अग्निमांद्य सह जीर्णज्वर निवृत्त हो जाता है। यह प्रयोग बम्बई जैसे शहरमें मध्यम और सामान्य स्थितिके हजारों रोगियोंपर किया गया है। परिणाम अति संतोषप्रद आया है।

(२) अमृत चूर्ण

विधि—नौसादर और फिटकरी समभाग मिलाकर डमरूयन्त्रद्वारा पुष्प उड़ा लें। फिर अपामार्गक्षार और आकका क्षार आठवां-आठवां हिस्सा मिला, काली तुलसी और आकके पत्तोंके रसकी एक-एक भावना देकर चूर्ण बना लें। (धन्वन्तरि)

सूचना—सफेद फिटकरीकी अपेक्षा लाल फिटकरी मिलानेपर विशेष लाभ पहुँचता है।

मात्रा—२ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार। दूध, चाय या गुनगुने जलसे।

उपयोग—यह चूर्ण नये बुखार, जीर्णज्वर, ठण्ड सहित या ठण्ड रहित विषमज्वर (सतत, चातुर्थिक आदि) को दूर करता है। केवल फिटकरी और नौसादरके पुष्पको ही ३-३ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर देवें तो भी अपना प्रभाव दिखा देता है। यह चूर्ण दोषोंको पचन करा प्रस्वेद लाकर ज्वरको उतार देता है।

यह अमृत चूर्ण सतत आदि विषमज्वरपर तथा अपचनजनित ज्वर (आमज्वर) पर प्रयुक्त होता है। यह स्वेद लाकर ज्वरविष और उष्णता को २-४ घण्टोंमें बाहर निकाल देता है, तथा विषम ज्वरोत्पादक कीटाणुओंको मारकर रक्तको शुद्ध बना देता है। यह चूर्ण क्विनाइनके समान रक्तके रक्ताणुओंकी हानि नहीं पहुँचाता। * यह वात, पित्त और कफ तीनों प्रकृति वालोंको और सगर्भा स्त्रियोंको भी निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। जब कीटाणु-विष अति बढ़ गया हो तब उसे नष्ट करनेमें क्विनाइनके समान जल्दी सफल नहीं होता। एवं घातक तृतीयक ज्वर और चातुर्थिक ज्वरके प्रबल कीटाणुओंको नष्ट करनेमें यह जल्दी कार्य नहीं कर सकता। अतः इसे क्विनाइनके समकक्ष नहीं मान सकेंगे। फिर भी यह असफल नहीं होता। क्विनाइनकी अपेक्षा कुछ देरसे लाभ पहुँचाता है।

---

* क्विनाइनकी डाक्टरीमें विषमज्वरकी सर्वोत्तम औषधि मानी है। वह सब प्रकारके मलेरियाके कीटाणुओंको नाशकर देती है, फिर भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे उसे औषधि नहीं कह सकेंगे। आयुर्वेदकी मर्यादानुसार वह विष है। कारण वह कीटाणुओंके नाशके साथ रक्तके रक्ताणुओंको भी नष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्कमें उष्णता पहुँचाती है, रोगनिरोधक शक्तिको निर्बल बनाती है तथा वृक्कों के कार्यमें बाधा पहुँचाती है। पित्त प्रकृति वालोंको या पित्त प्रकोप वालोंको क्विनाइनका सेवन करानेपर रक्तस्राव होता है, कानोंमें बधिरता आती है, निद्रा दूर हो जाती है और व्याकुलता उत्पन्न होती है। सगर्भावस्थामें प्रयोग करनेसे गर्भपात या गर्भस्रावका भय रहता है। अतः क्विनाइनका उपयोग सर्व रोगियोंपर और सब समयमें बिना विचार किये नहीं हो सकता।

विषमज्वर पीड़ितोंमें प्राय: जिनकी रोगनिरोधक शक्ति सबल हो, ऐसे रोगियोंकी संख्या अत्यधिक होती है। इनके लिए इस चूर्णका प्रयोग क्विनाइनकी अपेक्षा विशेष हितावह माना जायगा। शेष थोडे रोगी जो प्रबल कीटाणु पीड़ित हो या क्षीण शक्ति वाले हों, उनके लिए समयकी सुविधा होते ही क्विनाइनका प्रयोग करना चाहिये।

मधुर पदार्थके अत्यधिक सेवनसे अनेकोंको अपचन होकर ज्वर आ जाता है। इस प्रकारके ज्वरमें आमोत्पत्ति अधिक होती है। ज्वर १००° से १०२° तक, उदरमें भारीपन, आलस्य रोंगटे खडे हो जाना, मूत्रमें पीलापन, मुखमें मीठापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस ज्वरपर इस चूर्णका सेवन करानेसे प्रस्वेद आकर सत्वर ज्वरका शमन हो जाता है।

अनेकोंको आश्विन, कार्तिकमें सूर्यके तापमें भ्रमण करके तुरन्त शीतल जलपान करनेसे मलेरिया सदृश शीतज्वर आ जाता है। उनको ३-४ घण्टे मन्द-मन्द शीत लगकर ज्वरावस्था उत्पन्न होती है। सामान्यत: ज्वर १०१° डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर २-३ घण्टेमें ही स्वेद आ जाता है। इस ज्वरमें अमृत चूर्णका सेवन करानेपर ज्वरका लीनविष (रक्तमें लीन आमविष) जल्दी जल जाता है और पचनक्रिया सबल बन जाती है। जिससे ज्वरका पुन: आक्रमण नहीं होता।

सूचना—इस चूर्णके सेवन कालमें पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन कराया जाय अर्थात् ज्वरावस्थामें अन्न न दिया जाय, मलावरोध हो तो उसे दूर किया जाय, जल गरमकर शीतल करके पिलाया जाय, रोगीको दूध, चाय, मोसम्बीका रस, संतरा, अमरूद आदिपर रख दिया जाय तो लाभ जल्दी पहुँचता है। प्लीहावृद्धि नहीं होती, शक्तिका ह्रास नहीं होता और ज्वर शमनके पश्चात् थोड़े ही दिनोंमें शरीर पूर्ववत् सबल बन जाता है।

मलावरोध हो तो पहले ज्वरकेसरी अभ्रकंचुकी रस, पञ्चसकार अथवा अन्य औषधिसे कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये।

(३) सितोपलादि चूर्ण

विधि—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन * ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी

---

* वर्तमानमें सोहागा आदि मिलाकर कृत्रिम वंशलोचन निर्माण हो रहा है, बांसमेंसे निकाला हुआ और कृत्रिम वंशलोचन दोनोंको मिलानेपर बाह्य दृष्टिसे ठीक अन्तर नहीं भासता है। रात्रि दिन कार्य करने वाले भी सरलतासे दोनोंका भेद नहीं कर सकते हैं। गुणधर्म दृष्टिसे नैसर्गिक वंशलोचनमें जीवनीय शक्ति और प्राण-तत्व निहित है, वह रस, रक्त आदि धातुओंको पुष्ट बनाता है। यह गुण कृत्रिमसे नहीं मिल सकता है। नैसर्गिक वंशलोचन मिलानेपर जितना गुण मिलता है, उतना लाभ कृत्रिमसे नहीं मिलता है।

इलायचीके बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला लें। सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण बनावें। (च० सं०)

सूचना—मिश्री, वंशलोचन और अन्य औषधियोंको अलग-अलग कुट कपड़छन करें। कपड़छन वंशलोचनको ६ घण्टे खरल करें। फिर शेष औषधियाँ ६ घण्टे तक और खरल कर लेवें।

मात्रा—२ से ४ माशे, दिनमें २ बार। घी और शहदके साथ। कफ-प्रधान रोगोंमें घी से शहद दूना लें। वात और पित्तप्रधान रोगोंमें घी से शहद आधा मिलावें। घी पहले मिला लें फिर शहद मिलावें। कफ सरलता से निकलता हो, ऐसी खांसीमें केवल शहदके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण क्षय, खांसी, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह छातीमें जलन, पित्तविकार, खांसीमें कफके साथ खून आना, बालकोंकी निर्बलता, रात्रिमें ज्वर आना, नेत्रमें उष्णता तथा गलेमें जलन आदि विकारोंको दूर करता है। सगर्भा स्त्रियोंको ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ पुष्ट और तेजस्वी बनता है। साथमें गर्भपाल रस की योजना करनी चाहिये।

राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें श्वास प्रणालिका और फुफ्फुसोंके भीतर रहे हुए वायुकोषोंमें क्षय कीटाणुओंके विष प्रकोपसे शुष्कता आ जाती है। उस अवस्थामें यदि ज्वर शमनार्थ क्विनाइन आदि उग्र औषधियोंका या त्रिकटु, चित्रकमूल आदि अग्निप्रदीपक औषधियोंका सेवन प्रधान रूपसे या विशेष रूपसे किया जाय तो फुफ्फुस संस्थानमें शुष्कताकी वृद्धि होती है। फिर शुष्क कास अति बढ़ जाती है और किसी-किसी रोगीको रक्त-मिश्रित थूक या झाग आता रहता है। दिनमें शान्ति नहीं मिलती और रात्रिको पूरी निद्रा भी नहीं मिलती। व्याकुलता बनी रहती है। प्रायः ज्वर ९९° से अधिक नहीं बढ़ता। अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, मूत्रमें पीलापन, शुष्क कासका वेग चलनेपर बारम्बार स्वेद आते रहना, नेत्रोंमें जलन होते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें अभ्रक आदि उत्तेजक औषधिसे लाभ नहीं मिलता, अपितु कष्टवृद्धि होती है। शामक औषधिके सेवनकी ही आवश्यकता रहती है। अतः यह सितोपलादि चूर्ण अमृतके सदृश उपकार दर्शाता है। मात्रा २-२ माशे, गोघृत और शहदके साथ मिलाकर दिनमें ४ समय देते रहना चाहिये। मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी साथमें मिला दी जाय तो लाभ सत्वर मिलता

वंशलोचन सच्चा होनेपर लकड़ीपर घिसनेपर रेखा चिन्ह नहीं बनता। कृत्रिम होनेपर रेखा प्रायः हो जाती है। सच्चे वंशलोचनमें तीलाभ कड़े अधिकांशमें होते हैं (पुराना होनेपर सच्चा भी श्वेत बन जाता है) कृत्रिम श्वेत होता है। वंशलोचन सच्चा होनेपर जिह्वापर चिपकता है।

है एवं क्षय कीटाणुओंकी क्रियामें प्रतिबन्ध होता है तथा मस्तिष्क, रक्त और अस्थि संस्थान सबल बनते हैं।

राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें शामक औषधियोंका सेवन न होनेपर फुफ्फुस संस्थानमें उग्रताके हेतुसे कफोत्पत्ति होने लगती है। प्रारम्भमें झाग सदृश कफ होता है, उसमेंसे क्रमशः सफेद पतला कफ, सफेद गाढ़ा कफ, पीला कफ, पीला बंधा हुआ कफ आदि रूपान्तर होता है। कफ जितना जीर्ण हो जाता है, उतना ही पीतवर्ण और गाढ़ापन बढ़ता जाता है। इस कफसे श्वासप्रणालिकायें और वायुकोष्ठ सब भरे रहते हैं। जिससे श्वासोच्छ्वास क्रिया भी योग्य नहीं होती। उस कफमेंसे दूषित द्रवका शोषण रक्तमें होता रहता है, क्षय कीटाणुओंकी वृद्धि होती रहती है और इन कीटाणुओंकी फुफ्फुसके भीतर विवर बनानेकी क्रिया शनैः शनैः उग्र बनती जाती है। ऐसी अवस्थामें अभ्रक, शृङ्ग, रससिंदूर आदि उत्तेजक कफघ्न औषधियोंके सेवनकी आवश्यकता रहती है, परन्तु किसी-किसी रोगीको फुफ्फुस संस्थानमें अधिक शुष्कता आ जानेसे या कैशिका आदिके टूटनेसे कफके साथ रक्त निकलता रहता है जिससे उग्रता शमनार्थ और रक्तस्रावके रोधनार्थ शामक औषधि भी देनी पड़ती हैं। पीला दूषित या पूयमय हरा कफ अत्यधिक हो गया हो तब तो वासाप्रधान औषधि दी जाती है, परन्तु पीला कफ दुर्गन्ध रहित हो, कफके हेतुसे ज्वरवृद्धि न होती हो तो मुक्ता, प्रवाल मिश्रित सितोपलादि चूर्णका ही सेवन विशेष हितावह माना गया है। इस मिश्रणसे विषकी शुद्धि होती है, ज्वर मर्यादित बनता है, रस रक्तादि धातुओंको पोषण मिलता है, कास-वेगका ह्रास होता है और व्याकुलता दूर होकर आवश्यक निद्रा (या शान्ति) मिल जाती है।

कितने ही रोगियोंको राजयक्ष्माकी प्रथमा, द्वितीया या तृतीयावस्थामें कफ विकृतिके साथ पित्तप्रकोप भी होता है, जिससे कण्ठ, छाती, नेत्र, हथेली, पैरोंके तले आदिमें जलन, मुखपाक, मस्तिष्कमें उग्रता, व्याकुलता, मूत्रमें दाह आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं। उनको रोगशामक मुख्य औषधिके साथ-साथ सितोपलादि चूर्णका सेवन कराते रहनेसे पित्तप्रकोपज लक्षणोंकी निवृत्ति होती है तथा कफोत्पत्ति, ज्वर और कीटाणु विषका भी ह्रास होता है।

ज्वर जीर्ण होनेपर देह निर्बल बन जाती है. फिर थोड़ा परिश्रम भी सहन नहीं होता, आहार विहारमें स्वल्प अन्तर होनेपर भी ज्वर बढ़ जाता है। शरीरमें मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है या रात्रिको ज्वर आ जाता है और शुष्क कास भी चलती रहती है। ऐसी अवस्थामें क्विनाइन, सुदर्शन चूर्ण आदि तिक्त औषधियाँ कितने ही रोगियोंको सहन नहीं होती। तिक्त ज्वरघ्न औषधिके सेवनसे कास बढ़ जाती है और ज्वरकी निवृत्ति भी नहीं

होती। उन रोगियोंको प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण शहद मिलाकर दिनमें ३ समय देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें कास शान्त हो जाती है, ज्वर विषका पचन हो जाता है और रस रक्त आदि धातुएं पुष्ट बनकर ज्वरका निवारण होता है।

गर्भकी अस्थिका पोषण माताकी अस्थि संस्थानगत मज्जासे होता है। माता निर्बल होनेपर सन्तान निर्बल रह जाती है। उनकी हड्डियां बहुत कमजोर होती है। ऐसे शिशुओंको प्रवाल, सितोपलादि मिश्रण १ से २ रत्ती दिनमें २ समय लम्बे समय तक देते रहनेसे बालक पुष्ट बन आता है। यह उपचार प्रथम वर्षमें ही कर लिया जाये तो लाभ अधिक मिलता है।

कितने ही मनुष्योंकी निर्बलतासे उनकी सन्तानें निर्बल होती है। ऐसी सन्तानोंकी माताओंको सगर्भावस्थामें अभ्रक, प्रवालसह सितोपलादिका सेवन ५-७ मास तक कराया जाय तो सन्तान बलवान, तेजस्वी और बुद्धिमान् बनती है। इस प्रयोगका उपयोग हमने अति कृश और क्षय पीड़ित बच्चोंकी माताओंपर अनेक समय किया है।

कितनी ही स्त्रियोंको अधिक सन्तान होनेके पश्चात् बारम्बार अधिक काल जानेके पहले गर्भधारण हो जाने, किसी रोग विशेषसे शरीर कृश और निर्बल हो जावे अथवा छोटी आयुसे ही देह अति कृश होनेपर गर्भावस्थामें अति कष्ट होता है। इनमेंसे कितनी ही स्त्रियोंमें थोड़ा चलने जितना बल भी नहीं रहता आलसीकी तरह पड़ी रहती है (यदि सगर्भावस्थामें वे परिश्रम नहीं करती, तो उनको प्रसवावस्थामें अधिक कष्ट पहुँचता है)। इनको अभ्रक, प्रवाल और सितोपलादिके मिश्रणका सेवन ५-७ मास तक कराया जाय तो गर्भिणी और गर्भ दोनों पुष्ट बन जाते हैं, शरीरमें स्फूर्ति रहती है और मन भी प्रसन्न रहता है।

रोग विशेषके हेतुसे अथवा अधिक गरम-गरम मसालों, अधिक उष्ण चाय आदि अथवा आमाशय पित्तकी वृद्धि करने वाले लवणभास्कर आदि चूर्णोंका अधिक सेवन होनेपर आमाशयस्थ पित्तकी वृद्धि हो जाती है या पित्त तीव्र बन जाता है। अर्थात् आमाशय पित्त (Gastric Juice), लवणाम्ल (Acid Hydrochlorie) की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे छाती और कण्ठमें जलन, मुखपाक, खट्टी-खट्टी डकारें आती रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। आहारका योग्य पचन नहीं होता और अरुचि भी बनी रहती है। इन रोगियोंको प्रवाल भस्म (या वराटिका भस्म) और सितोपलादि चूर्णका सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें अम्लपित्तके लक्षण

और अरुचि दूर होकर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

आमाशय पित्त तीव्र बननेके हेतुसे पचन-क्रिया मन्द हो जाती है। इसका उपचार शीघ्र न किया जाय तो किसी-किसीको विदग्धाजीर्ण होता रहता है और पित्तप्रमेह (विशेषतः हारिद्रमेह) की प्राप्ति होती है। पेशाब का वर्ण अति पीला भासता है। सर्वाङ्गमें दाह, तृषा, मूत्रके परिमाणमें कमी, मूत्रस्राव अधिक बार होना, देह शुष्क हो जाना, चक्कर आते रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें मुख्य-औषधि चन्द्रकला रस के सेवनके साथ साथ आमाशय पित्तकी शुद्धि करनेके लिये सितोपलादि चूर्णका सेवन कराया जाय तो जल्दी लाभ पहुँचता है।

जीर्णज्वर या प्रकुपित हुआ ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेपर शरीर अशक्त बन जाता है और मस्तिष्कमें उष्णता आ जाती है। जिससे सहनशीलता कम हो जाती है, थोड़ी-सी प्रतिकूलता होने या विचार विरुद्ध होनेपर अति क्रोध आ जाता है। यकृत् निर्बल हो जाता है, मलावरोध रहता है और मलमें दुर्गन्ध आती है एवं मन्द-मन्द पित्तप्रकोप, पाण्डुता, हृदयमें धड़कन और अति निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियोंको सितोपलादि चूर्ण खमीरेगावजवांके साथ कुछ दिनों तक देते रहनेपर सब लक्षणोंसह पित्तप्रकोप दूर होकर शरीर बलवान बन जाता है।

(४) बृहत् सितोपलादि चूर्ण

विधि—दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, छोटी पीपल, मुलहठी, वनप्सा के फूल, गोजिह्वा (गावजवां) और तालीसपत्र चार-चार तोले वंशलोचन ८ तोले और मिश्री १६ तोले लें। सबको कूट-पीस छानकर चूर्ण करें।

मात्रा—२ से ४ माशे, दिनमें ३ बार। घी और शहदके साथ।

सूचना—चरक संहिताकारने (चि० अ० ८-१०१) राजयक्ष्मा की चिकित्सामें सितोपलादि चूर्णकी योजना की हैं। उसमें इलायची बड़ी मिलायी है। बड़ीकी अपेक्षा छोटी इलायची मिलानेपर अधिकतर लाभ मिलनेका अनुभव मिला है। इसलिये सुगन्धित, हरी-छालवाली इलायची को हम मिलाते हैं।

इस चूर्णमें सितोपलादि चूर्णके पाठके अतिरिक्त मुलहठी, वनप्सा, गावजवां और तालीसपत्र मिलाये हैं। जिससे शामक गुणके साथ कफको आर्द्र बनाकर बाहर फेंकनेका गुण बढ़ गया है। यह चूर्ण भी सितोपलादि के समान निर्भय है, इसका प्रयोग सब ऋतुओंमें और सब प्रकृतिवालोंके

लिये हो सकता है। छोटे-छोटे शिशु, सगर्भा, प्रसूता, वृद्ध और नाजुक प्रकृतिके मनुष्योंको भी इस चूर्णका सेवन कराया जाता है।

उपयोग—यह चूर्ण खांसी, श्वास, जुकाम, मन्दज्वर, दाह और मन्दाग्निको दूर करता है, निमोनियामें भी अति हितकर है। यह चूर्ण श्वासवाहिनियोंकी श्लैष्मिक कलाके क्षोभको दूर करता है, जिससे शुष्क कास ज्वरसह सरलतापूर्वक शमन हो जाता है।

जब प्रतिश्यायमें नीलगिरी तैल, पीपरमेण्ट, सोंठ, पिप्पली या अन्य उष्ण और शोषक औषधियोंका सेवन अत्यधिक होता है, तब कफ सूखकर छातीमें चिपक जाता है। बार-बार कास वेग उपस्थित होता है; गलेमें या छातीमें कफ भरा हो, ऐसा भास होता है; कफकी आवाज भी निकलती रहती है; किन्तु कफ सरलतासे बाहर नहीं आता। किसी-किसी रोगीको मन्द-मन्द ज्वर भी आ जाता है। इस अवस्थामें बृहत् सितोपलादि चूर्णका सेवन करानेपर कफ आर्द्र बन जाता है। और फिर सरलतासे बाहर निकलता रहता है।

श्वासरोगमें सोमल, मिर्च, पिप्पली आदि उग्र और उष्णवीर्य औषधियोंका सेवन अधिक मात्रामें या अधिक समय तक होने और घृत-दुग्धादि स्निग्ध पदार्थोंका सेवन न होनेपर छाती कफसे जकड़ जाती है; थोड़ा चलने या थोड़ा-सा श्रम करनेपर श्वास भर जाता है, कास चलनेपर कफकी आवाज आती है और श्वास गहरा नहीं चल सकता, आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियोंको पथ्य पालनसह यह चूर्ण नियमित कुछ दिनों तक देते रहनेसे कफ, कास और ज्वरसह प्रतमक श्वास थोड़े ही समयमें मर्यादामें आ जाता है।

(५) लवणभास्कर चूर्ण

विधि—सामुद्रनमक ८ तोले, कालानमक ५ तोले, काचलवण, सैंधानमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, तेजपात नागकेशर, तालीसपत्र, अम्लवेत सब २-२ तोले, कालीमिर्च, जीरा, सोंठ तीनों १-१ तोला; अनारदाना ४ तोले; इलायची और दालचीनी आधा-आधा तोला लें। सबको मिला कूट करके बरीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

सूचना—कितने ही चिकित्सक काचलवणके स्थानमें नौसादर मिलाते हैं। नौसादर मिले हुये चूर्णका असर तीव्र होता है। मात्रा आधी देनी चहिए।

मात्रा—२ से ३ माशे, दिनमें २ बार। मट्ठे या जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण उदररोग, वात और कफसे उत्पन्न गुल्म रोग, प्लीहा वृद्धि, बवासीर, संग्रहणी, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्ज, शूल, शोथ, आमवात आदि दोषोंको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करता है।

अग्निमांद्य और निर्बलतामें लवणभास्करके साथ १-१ रत्ती शुद्ध कुचिलेका चूर्ण और १-१ माशा सोडाबाईकार्ब मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है एवं मलावरोध होनेसे लवणभास्कर और पंचसकार मिलाकर सेवन करानेपर मलावरोध; उदरपीड़ा, अग्निमांद्य आदि विकार दूर होते हैं। यदि अपचनसह उदरवात रहता हो तो शुद्ध कुचिला, लहशुनादि वटी और सोडाबाईकार्ब मिला देना चाहिये। लहशुनादि वटी मिलानेपर अपचनरूप विकार सरलतासे दूर होता है।

कभी कोष्ठबद्धता होनेपर अपानवायु दूषित हो जाती है। फिर सरलतासे बाहर नहीं सरती। परिणाममें अफारा रहना और किसीको हृदयशूल उपस्थित होता है। उसपर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। दिनमें ३ समय देना चाहिये। सुबह निवाये जलसे, दोपहर और रात्रीको घीके साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावें। इस तरह योजना करनेपर अग्निमांद्य, अफारा शूल आदि दूर हो जाते हैं। आवश्यकता होनेपर उदरपर एरण्ड तैल और कालानमकके चूर्णकी मालिशकर सेक भी करना चाहिये।

आमाशय रसस्राव कम होनेपर भोजन कर लेनेसे उदरमें भारीपन आ जाता हैं, पचन क्रिया ठीक नहीं होती। किये हुए भोजनकी डकारें बारबार आती रहती हैं। ऐसी अवस्थामें भोजनके आध घण्टे या भोजन कर लेनेके पश्चात् तुरन्त लवणभास्कर चूर्णका सेवन कराया जाता है। भोजनके पहले सेवन करना हो तो जलसे और भोजन कर लेनेपर सेवन कराना हो तो मट्ठेके साथ सेवन करना चाहिये।

अर्श रोगकी उत्पत्ति अग्नि मंद होनेके पश्चात् उदरमें वायु भरी रहनेपर भी हो सकती है। एवं सब प्रकारके अर्शरोगमें अग्नि मन्द रहती है और प्राय: मलावरोध भी रहता है। अत: अर्श रोगमें अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये लवणभास्कर चूर्णको मठ्ठेके साथ (या घी और निवाये जलके साथ) सेवन कराया जाता है।

ग्रहणी रोगमें प्राय: अग्नि मन्द होती है। तथा अन्त्र निर्बल हो जानेसे पञ्चामृत पर्पटी आदि पर्पटी-कल्पका सेवन करानेपर कितने ही रोगियोंको मलावरोध भी होता रहता है। ऐसे रोगियोंको लवणभास्कर चूर्ण ताजे मट्ठेके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है और मलावरोध नहीं होता।

उदरमें वातनाड़ियोंकी निर्बलता आ जानेपर भोजनके ३-४ घण्टे बाद आमाशय या अन्त्रमें वायुकी उत्पत्ति होती है। आमाशयमें वायु उत्पन्न होनेपर वह डकाररूपसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करती है और अन्त्रमें होनेपर वह अपानवायु रूपसे बाहर निकलती है। इस वायुकी उत्पत्ति रोकने और वातनाड़ियोंको सबल बनानेके लिये लवणभास्कर चूर्णके साथ शुद्ध कुचिलेका चूर्ण १-१ रत्ती देते रहना लाभदायक माना गया है। यदि अपचन होकर आमाशयमें दूषित अम्ल रस भी साथमें रहा हो तो सोडा-बाईकार्ब १-१ माशा साथमें मिला देना चाहिये।

अग्निमांद्यके रोगीको मलावरोध होनेपर उदरशूल चलता है। यह शूल मलकी आगे गति होनेमें रुकावट आनेपर उपस्थित होता है प्रायः मलकी गांठें बन जानेपर ऐसा होता है। ऐसी अवस्थामें लवणभास्कर चूर्णके साथ पंचसकार चूर्ण मिला देनेसे शूलका निवारण हो जाता है।

मात्रा आधीसे भी कम देनी पड़ती है। इस प्रकार दोनोंका मिश्रण हमने बनाकर प्रयोजित किया है। काफी लाभ पहुँचाता है।

नौसादरको पुष्प उड़ाकर कार्यमें लेते हैं। स्त्री और पुरुषोंके गुल्म, गर्भाशयस्थ गुल्म, उदर्य्याकलाके भीतर उत्पन्न गुल्म इनको गलानेमें उक्त लवणभास्कर उपयोगी सिद्ध हुआ है। लवणभास्कर और सोडाबाईकार्ब समभाग मिलाकर दिनमें ३ बार नींबूके रस मिश्रित जलके साथ दिया जाता है। परिणाममें काफी लाभ मिलता है। शनैः शनैः गुल्म कट जाता है। यह परीक्षण पहले कई वैद्यों द्वारा बम्बईमें कराया है। करीब २००-४०० रुग्णाओं और रोगियोंको लाभ मिला है। किसीको हानि नहीं पहुँची है।

सूचना—(१) यदि आमाशय रसमें लवणाम्ल तीव्र हो जानेसे पचन क्रिया योग्य कार्य न करती हो, अपचन हो जाता हो, छातीमें जलन तथा जीभपर छाले आदि लक्षण भी प्रतीत होते हों तो ऐसा अवस्थामें लवणाम्लवर्द्धक लवणभास्कर चूर्ण आदि औषधियाँ नहीं दी जाती।

(२) आमाशय अथवा अन्त्रमें क्षत हो जानेके हेतुसे आमाशय या अन्त्र में शूल चलता हो तो ऐसी अवस्थामें लवणभास्कर चूर्ण लाभ नहीं पहुँचा सकता यदि लवणभास्कर चूर्णमें नौसादर मिला हो तो क्षत स्थानमें हानि पहुँचती है, या श्लैष्मिककलामें अधिक उग्रता पहुँचकर नये क्षत हो जाते हैं।

(३) इस चूर्णको अच्छे डाट वाली शीशीमें रखें। खराब डाट वाली शीशी या टीनके डिब्बेमें रखनेसे वर्षाऋतुमें दूषित हो जाता है।

(६) हिंग्वष्टक चूर्ण

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद (या अजवायन), सैंधानमक, जीरा, कालाजीरा और भुनी हींग इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (अ० हृ०)

वक्तव्य—वर्तमानमें वैद्यसमाज, हिंग्वष्टक चूर्णमें हींग एक भागके स्थान पर हीरा हींग ⅛ भाग मिलाते हैं। हींग कम होनेसे इस चूर्णका सेवन सरलतासे हो सकता है। किन्तु कम मात्रामें सत्वर लाभ प्राप्त करवेके लिये हीरा हींगको घीमें भून, पूरी मात्रामें ही मिलाना विशेष हितावह माना जायगा।

मात्रा—२ से ४ माशे, भोजनके समय घीके साथ लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण अजीर्ण रोग, अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, पतले दस्त, वात संग्रहणी, वातगुल्म, वातशूल, अफारा आदि दोषोंको दूर करके पाचन शक्तिको सुधारता है। कफज और वातज विकारमें लाभदायक है। पित्त-विकारमें और पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

इस चूर्णमें प्रधान औषधि हींग है। हींगमें उदर-वातघ्न और शूलहर गुण प्रधान हैं। यह आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत वायुको दूर करती है, उदरशूलका शमन करती हैं, पाचक रसका स्राव अधिक कराती है और कीटाणुओंको नष्ट करती है। इस हींगके साथ मिलाये हुए त्रिकटु आदि द्रव्य यकृत्पित्तको सबल बनाकर पित्तस्राव करानेमें सहायक होते हैं। इस हेतुसे यह चूर्ण आमाशय और अन्त्र दोनोंकी पचन-क्रिया बढ़ाता है।

जब अन्त्रकी निर्बलता या पचन विकृतिके कारण भोजन करनेपर तुरन्त शौच जाना पड़ता हो अथवा दिनमें ४-५ बार थोड़ा-थोड़ा मल-त्याग होता हो, उदरमें भारीपन बना रहता हो तथा मुख स्वाद फीका रहता हो तब इस चूर्णके साथ जायफल, जावित्री और कपूर मिलाकर थोड़ी थोड़ी मात्रामे देते रहनेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

(७) शिवाक्षारपाचन चूर्ण

विधि—हिंग्वष्टक चूर्ण, छोटी हरड़का चूर्ण और शुद्ध सज्जीक्षार तीनों समभाग लें। सबको मिला बोतलमें भरें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—३ से ४ माशे, दिनमें २ बार। जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण वायु, अजीर्ण, कब्ज, अफारा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, हैजा और कृमि आदि रोग नष्ट करता है। इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होती है, आमपचन होता है, अपान वायु शुद्ध होती है तथा मलावरोध दूर होता है।

यह चूर्ण पाचक, अग्नि प्रदीपक, यकृत्-शक्तिवर्द्धक और सारक है। इस चूर्णका उपयोग अधिकतर उदरमें भारीपन होनेपर होता है। जब आमाशयके गितमें अम्लता बढ़ने तथा यकृत्मेंसे पित्तस्राव कम होनेसे उदरमें वायु भरा रहता है, शूल चलता रहता हो उद्गार शुद्धि न होती हो, अन्त्रमें सूक्ष्म कृमि बने रहते हों, तब इस चूर्णके सेवनसे तत्काल लाभ होता है। यह चूर्ण यकृत् पित्तको सबल बनाता है, आमका पचन कराता है, उदरमें संगृहीत वायुको बाहर निकालता है, कीटाणुओंको नष्ट करके उदरमें उत्पन्न होने वाली दुर्गन्धको दूर करता है तथा शौचशुद्धि करानेमे सहायता पहुँचाता है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी विकृत पचन-क्रिया और निर्बल यकृत् वाले बालकोंके लिये अति हितावह है।

(८) पाठादि चूर्ण

विधि—पाठा, बेलगिरी, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च पीपल, जामुनकी गुठली, अनारदाना, धायके फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कूड़ेकी छाल ये १५ औषधियां समभाग और सबके बराबर इन्द्र जौ मिला कूट कपड़ छानकर चूर्ण करें। (च० द०)

मात्रा—४ से ६ माशे। शहदमें मिलाकर दिनमें ३ बार दें। ऊपर चांवलोंका धोवन पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण वमन, ज्वरातिसार, शूल, तृषा, दाह, ग्रहणीरोग, अरुचि और मन्दाग्निको नष्ट करता है।

(९) प्लीहान्तकक्षार चूर्ण

विधि—सैंधानमक, बिड़नमक और कसीस प्रत्येक ८-८ तोले मिला गोमूत्रमें पीस, १०० पक्के पीले आकके पत्तोंपर लेप करें। फिर हांडीमें संपुट करके गजपुटमें भस्म करें। भस्म (क्षार) निकाल पीसकर रख लें। भस्म अपक्व हो तो फिरसे संपुट करके पका लें।

मात्रा—½ से १ माशा, दिनमें २ बार। शहदके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण प्लीहावृद्धि, वातरोग, वातगुल्म, शूल, आमवृद्धि, अपचन, पुराना अजीर्ण रोग, पाण्डु और उदरवात आदि रोगोंको नष्ट करता है। चूर्ण अपक्व होगा तो उबाक लाता है।

(१०) प्लीहान्तक चूर्ण

विधि—शुद्ध नौसादर ८ तोले, कालानमक और सोनागेरू १-१ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (ब्र० स्व० सदानन्द गिरिजी)

मात्रा—४ से ८ रत्ती, दिनमें २ बार। जलके साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण यकृत्का पित्तस्राव अधिक कराता है, यकृत् और

प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि, उदररोग, शोथ, मूत्रदोष और मन्दज्वरको दूर करता है; तथा पचन क्रियाको बढ़ाता है।

सूचना—यह औषध खाकर तुरन्त चूना लगा हुआ पान और तमाखू नहीं खाना चाहिये, नहीं तो जिह्वापर घाव हो जायगा। छाले हो जायेंगे।

(११) त्रिफला चूर्ण

विधि—बड़ी नयी रसदार हरड़ उत्तम बहेड़ा और नया आंवला तीनों के छिलकोंको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (च० सं०)

सूचना—पुराने, नीरस और सदोष हरड़ आदि से या पुराने चूर्णसे योग्य लाभ नहीं मिलता। एवं जो हरड़ोंकी गुठली निकाली हुई छाल बाजारमें आती है, उसके भीतर कषायाम्ल (Tannic Acid) अधिक होता है, उस का प्रयोग त्रिफला चूर्णमें करनेपर योग्य लाभ नहीं मिलता।

अधिक जीर्ण मलावरोध पीड़ितोंके लिए पुराने मलको खोलकर बाहर निकालनेका प्रधान उद्देश्य हो, दीपन-पाचन गौण हो तो छोटी कच्ची हरड़ मिला लेना विशेष हितावह है।

अर्धपक्व हरड़ जिसमें कषायाम्ल (Tannic Acid) अधिक है, उसके उपयोगसे उचित लाभ नहीं मिलता। दीपन-पाचन और सारक कार्यके लिए बड़ी हरड़ लेना चाहिए। एवं सारक गुणकी मुख्य आवश्यकता होने पर छोटी हरड़े मिलानी चाहिये।

मात्रा—२ से ६ माशे। दिनमें १ या २ बार देवें।

अनुपान—(१) नये मन्द ज्वरमें पीपल और शहद।

(२) चातुर्थिक ज्वरमें दूध।

(३) खाँसीमें शहद और गोघृत।

(४) मेदरोगमें शहद या शहद-मिश्रित जल।

(५) रसायन गुणके लिये २-२ माशे त्रिफलाको पीपल, वंशलोचन और शहदसे देवें। या रात्रिको कान्तलोहके पात्रमें त्रिफलाके कल्कका लेप कर दूसरे दिन सुबह शहद और जल मिलावें। पचन होनेपर गोघृत पिलावें।

(६) ऊरुस्तंभमें कुटकीका चूर्ण मिलाकर निवाये जलसे दें।

(७) नेत्ररोगोंमें घी और शहदके साथ सेवन करते रहनेसे बढ़ता हुआ मोतियाबिन्दु आदि रोग रुक जाते हैं।

(८) शनैर्मेहपर गिलोयके स्वरसके साथ।

(९) सब प्रकारके प्रमेहोंपरत्रिफला चूर्णके समान हल्दी और दुगुनी मिश्रीके साथ।

(१०) फेनमेह (थोड़ा-थोड़ा झागसह मूत्र आने) पर त्रिफला, अमलतासके गूदे तथा शहदके साथ दें। ऊपर मुनक्काका क्वाथ पिलावें।

(११) वृषणशोथमें गोमूत्रके साथ।
(१२) भगन्दरमें खदिर छालके क्वाथके साथ।
(१३) मूर्च्छा रोगोंमें शहदके साथ।
(१४) पित्तज विद्रधिपर त्रिफलाके क्वाथमें निसोतका चूर्ण और घी मिला कर पिलावें।

(१५) संधिस्थानोंमें शूल होनेसे निद्रा न आती हो तो त्रिफलाके क्वाथ में शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण प्रमेह, शोथ, कब्ज, शीतपित्त, विषमज्वर, रक्त-विकार वीर्यदोष, कफ, पित्त और कुष्ठरोगमें अति उपयोगी है। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त और मलशुद्धि होती है। घी शहदके साथ खानेसे सेन्द्रिय विषप्रकोप और पित्त-विकार जनित नेत्ररोग दूर होते हैं। पुराने रोगमें कम मात्रामें दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करना चाहिये।

इस त्रिफला चूर्णमें अनेक अद्भुत गुण अवस्थित है। यह दीपन, रुचि-कर, चक्षुष्य, रसायन, आयुस्थापक, वृष्य, सारक, हृद्य और बृंहण है। शास्त्रीय अनेक ग्रन्थोंमें इसका वर्णन मिलता है। चरक संहितामें त्रिफला को रसायन कहा है और लिखा है कि "जो मनुष्य त्रिफलाको घृत और शहदके साथ नित्य सेवन करता है, वह नीरोग रहकर १०० वर्षको आयु भोगता है।

(१२) पञ्च सम चूर्ण

विधि—सोंठ, छोटी हरड़, पीपल काली निसोत और कालानमक इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

सूचना—कितने ही चिकित्सक इस चूर्णको नींबूके रसकी भावना देते हैं।

मात्रा—३ से ६ माशे तक। निवाये जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण शूल, अफारा, कब्ज आमवात आदि रोगोंमें मल-शुद्धि करके रोगोंको दूर करता है। इस चूर्णके सेवनसे कोष्ठशुद्धि होकर अग्नि प्रदीप्त होती हैं। कितने ही व्यक्तियोंको बार-बार मलावरोध हो जाता है और शारीरिक उत्ताप कुछ अंशमें बढ़ जाता है। उनके लिये यह चूर्ण हितावह है।

पञ्चसम चूर्ण उदरकृमि, उदरशूल, विष्टब्धाजीर्ण, आध्मान, उदरमें आम संग्रह, कफप्रधान, उदररोग, ज्वर, शोथ, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, जीर्ण आमवात नूतन आमज्वर आदि रोगोंमें मलावरोध होनेपर उदरशोधन और पाचन गुणके लिए व्यवहृत होता है। यह अति निर्दोष और उत्तम प्रयोग है।

सोंठ, पीपल आमपाचन गुण दर्शाते हैं, छोटी हरड़, निशोथ विरेचन गुणके लिए प्रयुक्त होते हैं। कालानमक आमपाचन गुण तथा विरेचन गुण दोनोंको सहायता पहुँचाता है।

पञ्चसकार और पञ्चसम चूर्ण दोनों सौम्य हैं; तथापि पञ्चसम पञ्चसकारकी अपेक्षा विशेष आमपाचक और विशेष विरेचक है।

दोनोंके कार्य क्षेत्रमें कुछ भेद है। सौम्य रोगियोंको और सामान्यावस्थामें आमशोधन कार्य मुख्य होनेपर पञ्चसकारका प्रयोग हितावह है और ज्वरादि रोगावस्थामें आमपाचन और आम विरेचन कराना हो तब पञ्चसम विशेष सहायक होता है।

(१३) विरेचन चूर्ण

विधि—सनाय, गुलाबके फूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला ३-३ तोले, बादाम की गिरी और कुलफाके बीज १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ माशे लें। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा—१॥ से २ माशे चूर्णको ३ माशे मिश्रीमें मिलाकर रात्रिको सोते समय लें। ऊपर गरम दूध अथवा गरम जल पीवें।

उपयोग—यह चूर्ण नवीन और पुराने कब्जको दूर करता है, जिससे आंतें तथा आमाशय शुद्ध बन जाते हैं। इसके दस्तोंसे कमजोरी नहीं आती, कोमल प्रकृतिवाला भी ले सकता है। इससे एक या दो दस्त सुबह खुलकर हो जाते हैं।

(१४) पञ्चसकार चूर्ण

विधि—सोंठ, सोंफ, सनाय, सेंधानमक और छोटी हरड़ सबको समभाग मिला कूट-छानकर चूर्ण बना लें। (सि० भै० म०)

मात्रा—३ से ६ माशे तक। रात्रिको निवाये जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण सौम्य विरेचन है। कब्ज, आमवृद्धि, शिरदर्द, अजीर्ण, उदरवात, अफारा, उदरशूल गुदशूल आदि दोषोंको दूरकर पाचनक्रियाको सुधारता है।

यह चूर्ण अर्शरोग, आमप्रकोप, जीर्ण आमवातमें संधिस्थानोंकी पीड़ा और मलावरोध तथा नये अम्लपित्तके रोगियोंके लिये हितकारक है। इसके सेवनसे आमाशय रसकी अम्लता और उग्रताका ह्रास होता है। आंतोंमें गये हुये दूषित आमका पचन होता है और नये आमकी उत्पत्तिका ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त यकृत् पित्तका स्राव बढ़ता है जिससे छोटी आंतमें होनेवाली पचनक्रिया सुधरती है। यकृत्पित्त पूरा मिलनेपर मलमें दुर्गन्ध नहीं होती। कीटाणु और विष नष्ट हो जाते हैं तथा मलको आगे फेंकनेका कार्य सरलता पूर्वक होता हैं और शुद्धि होनेके पश्चात् उसका आकुंचन होनेमें भी सहायता मिल जाती हैं।

यह चूर्ण अति सामान्य औषधियोंके सम्मिश्रणसे बना है, फिर भी कफप्रधान रोगी, जीर्ण आमवातपीड़ित, अर्श रोगी, जीर्ण आमातिसार और

अन्य रोगोंमें होने वाली आमवृद्धिपर अमृत सदृश उपकारक है।

सूचना—आमातिसारमें आमवृद्धि और मलावरोध होनेपर यह चूर्ण २ माशा सुबहको निवाये जलके साथ देना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर अन्त्रमें उग्रताकी वृद्धि होती है और उदरमें मरोड़ा आता है।

(१५) प्रवाहिकारिपु चूर्ण

विधि—शीशियोंको बन्द करनेके लकड़ीके डाट पुराने अथवा नयोंको हांडीमें भर जलाकर कोयला करें। निर्धूम होनेपर बरतनसे ढक देवें, जिससे सफेद राख न हो जाय। १ सेर डाटमेंसे ९ तोले भस्म मिलती है।

(आ० नि० मा०)

सूचना—जो डाट साफ हों, अन्य दूषित औषधियोंके संयोगसे खराब न हुए हों, ऐसे डाटोंको उपयोगमें लें। अथवा कारखाने वालोंसे डाटके नये टुकड़े लेकर उसकी भस्म बना लेवें।

मात्रा—२ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार। दहीके साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण ग्राही, स्तम्भक, शूलघ्न, कीटाणुनाशक और पाचक है; घोर रक्तातिसार, पेचिश, दस्तमें पीप और रक्तका जाना इत्यादि दोषोंको दूर करता है। प्रवाहिकाके समान रक्तप्रदरमें भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(१६) अविपत्तिकर चूर्ण

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायबिडंग, छोटो इलायचीके दाने और तेजपात सब एक-एक तोला, लौंग १० तोले, निसोत ४० तोले और मिश्री ६० तोले लें। इन सबको मिला कूटकर चूर्ण करें। (रसेन्द्र चिन्तामणि)

मात्रा—४ से ६ माशे। भोजनके पहले, ठण्डे जलके साथ देवें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अम्लपित्त तथा अम्लपित्तसे उत्पन्न उदर-शूल, अग्निमांद्य, वातनाड़ियोंमें शूल, अर्श, प्रमेह, मूत्राघात और मूत्राश्मरीका नाश होता है। केवल दूध और भातका भोजन करनेसे जल्दी लाभ होता है।

यह चूर्ण अम्लपित्त रोगमें विशेष व्यवहृत होता है। अम्लपित्त होनेपर छातीमें जलन होती रहती है, रोग अधिक बढ़नेपर उबाक और वमन भी होती रहती है, वमन खट्टी और जलती हुई होती है। वमन होनेपर कण्ठ में दाह होता है और नेत्रोंमें जल आ जाता है। भोजन कर लेनेपर थोड़े ही समयमें उदरमें भारीपन अधिक आता है। इस विकारमें अपचन होने या रोग जीर्ण होनेपर आमाशय पित्त अत्यधिक बढ़ जानेसे सुबह भी खट्टी डकारें आती रहें और वमन होती रहे, तब अविपत्तिकर चूर्णका सेवन

शीतल जल या नारियलके जलके साथ कराया जाता है, जिससे आमाशय का पित्त आँतोंमें चला जाता है।

इस चूर्णमें निसोत मिलाया है, जिससे यह कुछ विरेचन गुण भी दर्शाता है और आमाशयके भीतर संगृहीत पित्तको फेंक देता है। यदि विरेचन गुणको अति कम कराना हो तो आचार्योंके कहे अनुसार चूर्ण भोजनके पहले और भोजनके अन्तमें थोड़ी-थोड़ी मात्रामें घी और शहदके साथ देना चाहिए।

अम्लपित्त रोग बढ़नेपर आमाशयस्थ पित्तका अम्ल प्रभाव रक्तपर पहुँचता है। फिर कई रोगियोंकी वातनाड़ियां भी खिचती रहती है। ऐसी अवस्थामें उनकों लाभ पहुँचानेकी दृष्टिसे आचार्योंके मूलपाठमें "बीजञ्चैव विडङ्गकम्" के स्थानपर "विडञ्चैव विडङ्गकम्" भी पाठ मिलता है। इस पाठको मानकर १२० तोले चूर्णके साथ १ तोला बिड़नमक (नौसादर) मिला लेना चाहिए। अर्थात् ४ माशे चूर्णकी मात्रा देनी हो तो उसमें १ रत्ती बिड़नमक मिलाकर देनेसे रक्त और वातनाड़ियोंको पहुँची हुई अम्लताका ह्रास होता है।

सूचना—यदि आंतोंमें शोथ हो, ऊपर दबानेपर वेदना होती हों तो इस चूर्णका सेवन नहीं करना चाहिये, अथवा घी शहदसे करना चाहिये। आमाशय नलिकासे पित्तको निकाल देना चाहिये।

वृक्क दाह होनेपर रक्तमें मूत्र-विषकी वृद्धि होती है। फिर नेत्र और मुखमण्डलपर शोथ उत्पन्न होता है। देह कृश और निस्तेज हो जाती है, आलस्यकी वृद्धि होती है। दृष्टि मन्द होती है, रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है। आमाशयमें पित्त तेज हो जाता है। ऐसी स्थितिमें प्रायः मलावरोध भी दुःख देता रहता है, इस मलावरोधको दूरकर उदरको शुद्ध करने के लिए बिड़नमक मिश्रित इस चूर्णका उपयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त आमवात और रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होनेसे उत्पन्न संधिवात, पक्षाघात, उदरशूल, पित्तप्रकोपज उन्माद, रक्तदबाववृद्धि आदि रोगोंमें विरेचनकी आवश्यकता होनेपर भी इस चूर्णका उपयोग किया जाता है।

(१७) गोमूत्रक्षार चूर्ण

विधि—१० सेर गोमूत्रको एक लोहेकी कड़ाहीमें डालकर औटावें। चौथा हिस्सा शेष रहनेपर सोंठ ऽ।. जवाहरड़ ऽ।. सैंधानमक २।। तोले और लौंग १।। तोले कूट पीसकर डाल दें। फिर खुरपेसे हिला-हिलाकर अग्निपर भस्म बना लें। शीतल होनेपर बारीक चूर्ण कर लें।

मात्रा—१ से २ माशे, दिनमें २ बार। निवाया जल, नागरबेलके पान या तुलसीके पत्ते के साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण कफ-सहित श्वास, कास, उदररोग, मलावरोध आदि

रोगोंको दूर करता है। साधारण औषध होनेपर भी श्वास रोगियोंके लिए बहुत लाभदायक है। तमाखूके व्यसनियोंको श्वास रोगमें सत्वर लाभ पहुँचाता है। आमाशयमें रहे हुए कफ और आमको दस्तके साथ बाहर निकाल देता है तथा श्वासवाहिनियोंमें रहे हुए कफको पिघलाकर प्रणालियोंको कफसे मुक्त करता है।

(१८) कर्पूराद्य चूर्ण

विधि—कर्पूर, खस, शीतलमिर्च, जायफल, तेजपात और लौंग १-१ तोला, नागकेशर २ तोले, कालीमिर्च ३ तोले, पीपल ४ तोले और सोंठ ५ तोले लें। सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर चूर्णके समान मिश्री मिलाकर खरल करें। चूर्णमें कर्पूर सबसे बादमें मिलायें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ माशे तक, दिनमें ३ बार। जल, बकरीके दूध, शहद अथवा घृतके साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण राजयक्ष्मा रोगमें अरुचि, कास, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कण्ठ रोगको नष्ट करता है।

जब स्वरयन्त्रमें कफ चिपका रहता हो तथा आमाशयमें कफ चले जानेसे बेचैनी बनी रहती हो, मुँह मीठा या फीका रहता हो तब इस चूर्णका सेवन करानेसे स्वरयन्त्र साफ रहता है, उबाक दूर होती है, मुँहका स्वाद सुधर जाता है और मानसिक प्रसन्नता रहती है:

(१९) अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण

विधि—भुनी हींग, छुहारा, सोया, अजवायन, बायविडङ्ग, सौंफ, पोदीना, इन्द्रजव, सफेदमिर्च, बड़ी इलायची और छोटी हरड़ १-१ तोला, बड़ी हरड़ और सनाय १॥-१॥ तोले तथा कांटे वाले करंजकी गिरी और कालानमक २-२ तोले लें। इनमेंसे सनायको छोड़कर शेष औषधियोंको अलग-अलग तवेपर भूनें। फिर सबको मिला कूट कपड़छन चूर्ण बनावें। (वै० स० वि०)

मात्रा—४ से ६ माशे, दिनमें २ बार। मिश्री, इलायची, दालचीनी, सोंठ और लौंगका चूर्ण मिलाये हुए आध सेर गरम दूधके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण उदरमें वायुकी उत्पत्तिको रोकता है, संग्रहीत पुराने मलको निकालता है तथा अन्त्र आदि अवयवोंको सबल बनाता है। इससे आंत उतरना (Hernia), उदरशूल, मन्दाग्नि, मलावरोध और उदरवात आदि विकार १ से १॥ मासमें दूर होते हैं।

(२०) मंजिष्ठादि चूर्ण

विधि—मजीठ, हरड़, गुलाबके फूल और निसोत २॥-२॥ तोले, सनाय १० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (वै० चि० सा०)

मात्रा—४ से ६ माशे । रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे ।

उपयोग—यह चूर्ण उदरविकार और रक्तमें रहे हुए विषको नष्ट करता है, जिससे रक्तविकार, पामा, त्वचारोग और कब्ज दूर होते हैं । भोजन हल्का पथ्य लेवें । अति खट्टे, अति नमकीन और अति चरपरे पदार्थोंका सेवन न करें । शक्कर वाले मधुर पदार्थ भी कम लें ।

(२१) दन्तप्रभाकर मञ्जन

विधि—विलायती चाकमिट्टी ८० तोले, लोध्र १५ तोले, माजूफल और अकरकरा ५-५ तोले, कपूर, लौंग और छिलकासह छोटी इलायची २।।-२।। तोले, फिटकरीका फूला १। तोले, एसिड कारबोलिक २।। तोले और ग्लिसरीन ४ तोला तथा पीपरमेण्टका तैल १। तोले लें । पहिले चाकमिट्टी ग्लिसरीन मिला लें फिर कारबोलिक एसिड और कपूरको मिलावें । जल हो जानेपर चाक मिला लें । बादमें अन्य औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिलावें । अन्तमें पीपरमेन्टका तैल मिलाकर मजबूत डाट वाली शीशीमें डिब्बेमें भरनेसे थोड़े ही दिनोंमें मंजन कमजोर और दूषित हो जाता है । इस चूर्णमें ४ तोले मृदुसाबुन या (बोरिक एसिड) मिलानेसे गुणमें वृद्धि होती है । रंग और मधुरता लाना हो तो १।:-१।। माशे रेड कारमाइन और सैकरीन मिलावें । सुगन्धके लिये १०० तोले मंजनमें जिरेनियम आइल १ ड्राम डालें ।

उपयोग—यह दन्त मञ्जन दांत और डाढ़के दर्द, पीप आना, रक्तगिरना, चीस चलना, दाँत हिलना, मसूड़े फूलना, मैल जमना, दुर्गन्ध आना इत्यादि विकारोंको दूर करके दाँतोंको सफेद और मजबूत बनाता है । साथमें गले और जीभपर लगे हुए कफ और मुँहके बेस्वादुपनको भी दूर करता है ।

इस मंजनमें कपूर, कार्बोलिक एसिड, बोरिक एसिड, पीपरमेण्ट तैल आदि कीटाणुनाशक औषधियां मिलायीं हैं । कपूर, लौंग, इलायची आदि कण्ठसे नीचे रहे हुए कफ और मलको खेंच लेते हैं । सेलखड़ी और खड़िया दाँतोंको स्वच्छ और उज्वल बनाते हैं तथा माजूफल, लोध्र, फिटकरी आदि मसूढ़ोंको सबल बनाते हैं ।

(२२) दन्तदोषहर मञ्जन

प्रथम विधि—नीलेथोथेका फूला १ तोला, कपूर १ तोला, लौंग २ तोले, दालचीनी २ तोले, फिटकरीका फूला ४ तोले, समुद्रझाग ८ तोले, सोनागेरू ६ तोले और शुद्ध चाकमिट्टी १६ तोले लेवें । सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें । (आ० नि० मा०)

उपयोग—यह मंजन दाँतोंपर रगड़नेसे दांत स्वच्छ और मजबूत होते हैं । दन्तशूल, कृमि, मसूड़े फूलना, पीप, रक्त निकलना, आदि दूर होते हैं । अधिक दर्द होनेपर दिनमें २-३ बार उपयोग करें ।

सूचना—दर्दके समय इस दन्तमञ्जनको लगाकर थोड़ी देर मुँह नीचा रखकर लार टपकावें। फिर निवाये जलसे कुल्ले करें। गलेके नीचे मञ्जन के रसको न उतरने दें। अन्यथा नीलेथोथेके हेतुसे उवाक आने लगती है।

द्वितीय विधि—कासीस, फिटकरी फूला, नीलाथोथेका फूला, मीठा कूठ पाठा, कत्था, माजूफल, कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग और सेंधानमक सोहागेका फूला और साँभरनमक इन १३ औषधियोंको समभाग मिला बारीक कपड़छन चूर्ण करें।

उपयोग—यह मंजन दांतोंका हिलना, तीव्र दन्तशूल, मसूडेकी सूजन, दन्तकृमि आदिको मिटाता है। मञ्जन लगाकर लार टपकाते रहनेसे कीटाणु बाहर निकल जाते हैं, फिर शूल-शमन हो जाता है। कासीसके हेतुसे दांतोंपर कुछ कालापन आजाता है. परन्तु वह थोड़े ही दिनोंमें दूर होजाता है।

(२३) उष्णवातघ्न चूर्ण।

प्रथम विधि—फिटकरीका फूला, कलमीशोरा, छोटी इलायची, संगजराहत, सफेद चन्दन, रेवतचीनी, शीतलचीनी और सफेद जीरा एक-एक तोला, गंधेविरोजेका सत्व २ तोले, सफेद राल ३ माशे और मिश्री सबको बराबर मिला कूट पीसकर छान लें।

मात्रा—आधा से १ तोले। प्रातःकाल दूधकी लस्सीके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे नया सुजाक (पूयमेह-उष्णवात) ३-४ दिनोंमें ही दूर होते हैं।

सूचना—संगराहतको कूट कपड़छन करनेके पश्चात् ३ घण्टे तक खरल करके मिलाना चाहिये।

दूसरी विधि—कपूर, गिलोयका सत्व, वंशलोचन, शीतलचीनी, छोटीइलायची, नागकेशर, हरड़, बहेड़ा; आंवला; नागरमोथा; बड़ा गोखरू, शतावर, सफेद चन्दन, तगर, पीपल लोंग; जटामांसी; जायफल सब औषधियोंको समभाग लें और सबके बराबर मिश्री मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण बना लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ से ६ माशे; दिनमें २ बार। मिश्री मिले दूधके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण सुजाककी तीव्र अवस्था दूर होनें हेतु लाभदायक है। सुजाककी मूल व्याधि, रक्तमें लीन विष, मूत्रप्रसेकनलिकामें क्षत होना और मूत्रविकारको यह थोड़े ही दिनोंमें नष्ट करता हैं।

(२४) मूत्रविरेचन चूर्ण

विधि—शीतलचीनी, रेवतचीनी, छोटी इलायची और जीरा १-१ तोला, कलमीशोरा २ तोले और मिश्री ४ तोले मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण बनावें।

मात्रा—तीन माशे, दूध जलकी लस्सीके साथ, दिनमें ३ से ४ बार दो-दो घण्टेपर देवें ।

उपयोग—यह चूर्ण मूत्रोत्पत्तिको खूब बढ़ाता है । सुजाकमें पीप दूर करने और मूत्रमार्ग साफ करनेके लिये उपयोगी है । भोजनमें केवल दूध-भात खानेसे इन्द्रिय जुलाब अच्छा लगता है । इस चूर्णको ३ दिन सेवन करनेसे मूत्रमार्ग साफ हो जाता है और सुजाककी तीव्रावस्थाका शमन होता है ।

(२५) वीर्यशोधन चूर्ण

विधि—बबूलकी बिना बीज वाली कच्ची फली, बबूलकी कोंपल और बम्बूलका गोंद तीनोंको समभाग लेकर चूर्ण करें।

मात्रा—४ से ६ माशे, मिश्री मिलाकर लें । ऊपरसे दूध पीवें ।

उपयोग—यह चूर्ण वीर्यका पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह (पेशाबके साथ वीर्यका जाना) इत्यादि धातुदोषको दूरकर वीर्यको शुद्ध गाढ़ा और श्वेत बनाता है । यह औषध सामान्य होनेपर भी अच्छा काम देती है ।

(२६) न्यग्रोधादि चूर्ण

विधि—बड़, गूलर, पीपल (अश्वत्थ), अरलू, अमलतास और असन (विजयसार) इन सब वृक्षोंकी छालें, आम और जामुनकी गुठली, कैथ, चिरोंजी, अर्जुनछाल, धायकी छाल महुएकी छाल; मुलहठी, लोध, बरनाकी छाल, नीमकी अन्तर छाल, कड़वे परवलके पत्ते, मेंढासींगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाटल (पाढल) करञ्जके बीज, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रजौ, भिलावेकी गिरी (गोडम्बी) सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें ।

(यो० र०)

मात्रा—३ से ६ माशे, दिनमें २ बार । शहदके साथ लें और ऊपर त्रिफलेका क्वाथ पीवें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बातज, पित्तज और कफज प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका और मूत्रकृच्छ्र शमन होते हैं । शांतिपूर्वक ३-४ मास तक सेवन करना चाहिये ।

(२७) नारसिंह चूर्ण

विधि—शतावरी, गोखरू, छिलके निकाले हुए तिल और विदारीकन्द ६४-६४ तोले, वाराहीकन्द १ सेर, गिलोय १। सेर, शुद्ध भिलावे १२८ तोले, चित्रकमूलकी छाल आध सेर, त्रिकटु ३२ तोले मिश्री ३।। सेर, शहद १।।। सेर और घृत ७० तोले लेवें । इनमेंसे सूखी ओषधियोंको कूट छान महीन चूर्णकर मिश्री मिलावें । पश्चात् घृत और फिर शहद मिलावें । बादमें अमृतबानमें मिश्री भरें । पश्चात् घृत और फिर शहद मिलावें ।

बादमें अमृतबानमें भरें। (चक्रदत्त)

वक्तव्य—हम घी और शहद नहीं मिलाते। सेवनके समयमें ६ माशे घी और १ तोला शहद मिला लेना विशेष हितावह माना है।

रसायन और बाजीकरण गुणके लिये चूर्ण बनाना हो तो गिलोयके स्थानमें गिलोयसत्व, भिलावेके स्थानमें भिलावेका मगज (गोडम्बी) और त्रिकटुके स्थानमें त्रिजात लेना विशेष लाभदायक है।

मात्रा—२-४ माशे चूर्ण या घी शहद मिला हो तो ६ माशेसे १ तोला, दिनमें २ बार दूधके साथ लेवें।

उपयोग—इस चूर्णका १ मास तक सेवन करनेसे क्षय, कास, वृद्धाबस्था की निर्बलता, गंज, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, हलीमक, श्वास, कास, पीनस, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कुष्ठ, उदर रोग, प्रमेह, वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, द्वन्द्वज रोग, त्रिदोषज रोग, अर्श ये रोग दूर होकर पुरुष तेज वाला पराक्रमी, वेग और गम्भीर स्वरवाला बन जाता है।

भिलावे मिलानेसे चूर्ण अधिक उग्र बनता है। वातप्रधान और कफ प्रधान प्रकृति वालोंके लिये यह हितकर है। पित्तप्रकृति वालोंसे सहन नहीं होता एवं इसमें कामोत्तेजक गुण होनेसे बालकोंको भी न दें। यह चूर्ण वातरोगोंमें अच्छा लाभ पहुँचाता है।

अनेक रोगोंकी उत्पत्ति पचनक्रियाकी विकृतिसे, आहारमेंसे योग्य रस न बननेपर होती है। रस शुद्ध और योग्य परिणाममें बनें तो आगे होने वाली रक्तादि धातुएं शुद्ध और सबल बनती हैं। इन सबका आधार आमाशय और यकृतादि पचनयन्त्र अथवा जठराग्निपर विशेष रहता है। जब जठराग्नि निर्बल बनती है तब उसे प्रज्वलित करना चाहिये। यह कार्य इस चूर्णके सेवनसे सम्यक् प्रकारसे होता है। इस चूर्णकी क्रिया मुख्यतः आमाशय, यकृत् और वातनाड़ियोंपर होती है। इस चूर्णके सेवनसे आमाशय और यकृत् उत्तेजित होते हैं। अर्थात् आमाशय रस (Gastri jucce) में लवणाम्ल (Hydrochloric Acid) की उत्पत्ति अधिक होती है, यकृत् पित्त (Bile) के स्रावमें वृद्धि होती है एवं वातनाड़ियाँ भी सबल बनती हैं परिणाममें आमाशय और लघु अन्त्रके भीतर होनेवाली पचन-क्रिया सबल बनती है। इस हेतुसे आहारमें से आम और विष बनना बन्द हो जाता है, रस रक्तादि धातुओंका निर्माण सम्यक् होता है। फिर अकालमें आई हुई निर्बलता या वृद्धावस्था और विविध रोगसृष्टि ये सब दूर हो जाते हैं।

इस चूर्णमें मुख्य ओषधि भिलावा है, वह पाचक अग्नि और धात्वग्नि को प्रदीप्त करता है। जठराग्नि प्रदीप्त होनेसे पचन क्रिया सुधरती है तथा

धात्वग्नि प्रदीप्त होनेपर रस रक्तादि धातुओंमें रहे हुये निर्बल और सबल अणुओंकी उत्पत्ति होती है। इस तरह धातुओंके भीतर होने वाली चयापचय क्रिया (Metabolism) में सुधार होता है। जिससे आमविष या धातुमलका संचय होकर जो रोग उत्पन्न हुए हों, वे दूर हो जाते हैं।

मांसक्षय—(रक्त, मांसादि, धातुओंका ह्रास होकर देह शोष होना (Atrophy) की उत्पत्ति चयापचय क्रियाकी विकृतिसे होती है। जब तक चय क्रिया अर्थात् नवनिर्माण और संग्रह क्रिया सबल हो तब तक देहशोष नहीं होता; किन्तु इस क्रियाकी विकृति होनेपर रसमेंसे रक्त पूरा नहीं बन सकता रक्तक्षय होनेपर मुखमण्डलपर निस्तेजता, चक्कर आना शारीरिक निर्बलता, हृत्स्पन्दनवर्द्धन (धड़कन), श्वास भर जाना, जिह्वा शुष्क रहना, मलावरोध और उदासीनता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर मांसक्षय होनेपर देहके वजनका ह्रास, अग्निमांद्य, स्फूर्तिका नाश, त्वचामें कालापन, सर्वाङ्गमें विवर्णता, निद्रावृद्धि, थोड़ेसे परिश्रममें थकावट आजाना, सर्दी-गरमी सहन न होना, कफवृद्धि, और यकृत्-प्लीहाविकृति आदि लक्षण बढ जाते हैं। इस क्षयपर नारसिंह चूर्णका सेवन अति हितावह है। औषधि २-४ मास तक पथ्यपालनपूर्वक सेवन करनी चाहिये। रोग जितना पुराना हो और अशक्ति जितनी अधिक हो उतनी ही मात्रा कम होनी चाहिये।

कास—पचनक्रिया मन्द होनेपर देहबलका ह्रास होता है। फिर शीतल वायुका आघात, सूर्यके तापमें घूमकर शीतल जलपान या कफप्रकोपक आहार विहार अथवा कीटाणुओंका आक्रमण होनेपर कफधातु प्रकुपित होकर कासकी संप्राप्ति कर देता है। यदि प्रथमावस्थामें तीव्रता होनेसे शुष्क कास रहती हो तो उस अवस्थामें भिलावा प्रधान, उष्णवीर्य औषधि नहीं दी जाती। फिर जब कासका वेग कम हो जाता है और कफ सफेद और कुछ चिपचिपा बन जाता है; रोग चिरकारी या जीर्ण बन जाता है, तब इस चूर्णका सेवन करानेपर दूषित कफकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। दूषित कफ सरलतासे बाहर न निकलता हो तो इस चूर्णके अतिरिक्त कफघ्न औषधि कफकुठार, शृङ्गभस्म या कफकर्तन अथवा इतर औषधि देनी चाहिये।

सूचना—यदि कासके साथ ज्वर भी रहता हो, ज्वर ९९° से अधिक हो जाता हो, मूत्रमें पीलापन रहता हो, शीत लगकर रोंगटे खड़े हो जाते हों तो यह चूर्ण नहीं देना चाहिये।

निर्बलता—वृद्धावस्था आनेपर वातनाड़ियां शिथिल हो जाती है। रोग निरोधक शक्ति निर्बल हो जाती है, पचनक्रिया मन्द होजाती है; किसी-किसीको अच्छी निद्रा भी नहीं मिलती; आलस्य बना रहता है और शरीर थका हुआ भासता है। यदि तमाखूका व्यसन हो तो कफ धातु भी

दूषित बन जाती है। ऐसी अवस्थामें इस चूर्णका सेवन शीतकालमें एकाध मास तक करानेसे देह स्वस्थ और सबल बन जाती है।

कुष्ठ—भिलावेमें एक प्रकारका दाहक तैल रहता है, वह रक्तमें जाकर फिर स्वेद द्वारा शनैः शनैः बाहर निकलता रहता है। इस हेतुसे त्वचापर बाह्य कीटाणुओंकी आबादी हुई तो वह इस चूर्णके सेवनसे नष्ट हो जाती है। इस हेतुसे गंज, श्वेतकुष्ठ, व्रण, विद्रधि और दद्रु आदि उपकुष्ठ इनपर लाभ पहुँचाता है।

वक्तव्य—यदि मात्रा अधिक दी जायगी, उष्ण ऋतु होगी अथवा पित्त प्रकृति वालोंको सेवन कराया जायगा तो त्वचा शुष्क हो जायगी और कण्डु की प्राप्ति होगी। कदाच ऐसा हो जाय तो औषध सेवन बन्द करावें। और नारियलकी गिरी खिलाने तथा नारियल या तिलीके तैलसे मालिश करावे पर कण्डु शमन हो जाती है।

प्लीहावृद्धि—पचन क्रिया मन्द होने या थक जानेपर आमोत्पत्ति होती है। फिर उसके विषका रक्तमें शोषण होनेपर ज्वर आ जाता है। ज्वरा-वस्थामें पथ्यका योग्य पालन न होने या अन्य कारणसे विषमज्वरके कीटा-णुओंका प्रवेश प्लीहामें हो जानेपर प्लीहावृद्धि हो जाती है। यदि यह वृद्धि ज्वर निवृत्त हो जानेपर भी रह गई है, ज्वर न आता हो और पचनक्रिया निर्बल हो तो उस अवस्थामें इस चूर्णका सेवन कराया जाय तो रक्तद्वारा प्लीहामें भिलावेके तैलका प्रवेश होनेपर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर प्लीहावृद्धि शमन हो जाती है।

अर्श—पचनक्रिया मन्द हो जानेपर अनेकोंको मलावरोध रहता है। तथा उदरमें वायु उत्पन्न होती हैं; इस अवस्थामें योग्य उपचार न हो तो अफारा आता है और मलावरोध रहता है। तत्पश्चात् गुदनलिकामें स्थित शिराओंपर मल और वायुका बोझा पड़कर अर्शकी सम्प्राप्ति हो जाती है। अर्शके मस्से शुष्क और कठोर बन जानेपर चुभते हैं। देह कृश और निर्बल हो जाती है। इन अफारा मलावरोध और अर्श रोगोंपर इस चूर्णका सेवन तक्रके साथ कराया जाता है। मिर्चादि मसाले, द्विदल धान्य और बद्धकोष्ठ करने वाले पदार्थोंका सेवन कम कर देनेसे रोगका सत्वर दमन होता है और देह सबल बन जाती है।

पाण्डु—पचन क्रिया दूषित होने, उदरमें कृमि होने और विषमज्वरकी संप्राप्ति होनेपर रस-रक्तादि धातुएं भी दूषित हो जाती हैं। फिर रक्तमें वर्ण द्रव्य अथवा रक्तका परिमाण ही कम हो जाता हैं जिससे पाण्डु और हलीमक रोगकी संप्राप्ति होती है। यदि ज्वरमें कृमि हो तो पहिले कृमिघ्न औषधि लेकर उनको दूर कर देना चाहिये। ज्वर विष रहा हो तो पहिले

ज्वरघ्न औषधिका सेवन कर उसका निवारण करना चाहिये। इस तरह उत्तान दोषको दूरकर फिर लीन विषको जलाने, रक्तको बढ़ाने और शरीर को सबल बनानेके लिये नारसिंह चूर्णका सेवन कराया जाता हैं।

श्वासरोग—इसकी उत्पत्ति श्वसन संस्थामें विकृति होनेपर होती है, इसके कारणोंमें कफ धातुकी विकृति, शुक्रक्षय और पचनक्रिया दूषित होना ये मुख्य हैं। इन तीनों कारणोंपर इस चूर्णका अच्छा असर होता है। इस हेतुसे कफप्रधान श्वासरोग दूर हो जाता है। यदि धूम्रपानका व्यसन हो और सेवन चालू रहे तो इस चूर्णका सेवन करनेपर पूरा लाभ नहीं मिलता यदि कफ रहित शुष्क वात-पित्तप्रधान श्वासप्रकोप हो तो थोड़ा-सा परिश्रम भी सहन नहीं होता। परिश्रमसे हृदयमें धड़कन होती हो तो उसपर चूर्ण का कुछ विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पीनस—भिलावेका तैल जिस समय तैल ग्रन्थियोंसे निकलता है, उस समय श्वसन यन्त्रमें या नासापथमें रहे हुये कीटाणु कफ और माँसकोथका नाश होता है। इस हेतुसे पीनस रोगमें भी इस चूर्णसे लाभ पहुँच जाता है नस्यादि बाह्योपचार भी आवश्यकता अनुसार करते रहना चाहिये।

भगन्दर—रोग नया हो और गुदद्वारकी रक्तवाहिनी वहुत दूर तक दूषित न हुई हो तो बाह्योपचार (मर्यादि बेलके कल्ककी पुल्टिस) के साथ इस चूर्ण का सेवन कराया जाय तो पूयोत्पत्ति बन्द हो जाती है और माँसकोथमें भी लाभ पहुँचता है। कारण भिलावेका तैल पूयमें रहे हुये कीटाणु और कोथमें उत्पन्न कृमियोंको नष्टकर देता है, यह क्रिया रक्तमेंसे भिलावेका तैल बाहर निकालनेपर होती है।

अश्मरी—यकृत् पित्तकी रचनामें विकृति होनेपर या यकृत् पित्त गाढ़ा बननेपर अश्मरी द्रव्यकी उत्पत्ति होती है। फिर यह द्रव्य वृक्क या मूत्राशयमें संचित होकर अश्मरी बन जाता है। इस अश्मरीके कारणरूप यकृत् पित्तकी रचनाको यह चूर्ण सुधारता हैं। इस हेतुसे अश्मरीकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये प्रथमावस्थामें यह चूर्ण हितावह है।

उदररोग—इसकी सम्प्राप्ति अग्निमांद्य होनेके पश्चात् होती है। पचन विकृतिके साथ अन्य सहायक अवयव या धातु-विकृतिके भेदसे उदररोगके ८ प्रकार पृथक् हो जाते है। इन ८ प्रकारोंमेंसे वातोदर; कफोदर; यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदरकी प्रारम्भावस्थामें यह चूर्ण सहायक औषधि रूपसे व्यवहृत हो सकता है। कारण भिलावा, चित्रक मूल और त्रिकटुका प्रभाव यकृत् और प्लीहाकी क्रियापर तथा वात और कफ विकृतिपर होता है। इनके अतिरिक्त शतावरी, गोखरू और तिल भी वातनाड़ियोंको पुष्ट करते है

प्रमेह—प्रमेहके २० प्रकार शास्त्रमें कहे हैं। इन सबपर चूर्णका

उपयोग हो, ऐसा नहीं कह सकेंगे। हस्तिमेह, जिसमें मूत्रका परिमाण अत्यधिक होता है और अधिक बार होता है, रात्रिको निद्रामेंसे भी बार-बार उठना पड़ता है। उसमें मूत्रकी अधिक उत्पत्ति इस चूर्णके सेवनसे रुक जाती है। यदि ज्वरादि की उष्णताके हेतुसे मूत्र, आम, कफ, लसीका आते हों तो उन्हें दूर करनेमें यह चूर्ण सहायक होता है। इसी तरह शुक्राशयको उष्णता पहुँचानेसे शुक्र पतला होकर शुक्रमेह हो गया हो (मूत्रके साथ बाहर निकलता है) तो इस चूर्णके सेवनसे विष नष्ट हो जानेसे वह भी दूर हो जाता है।

जिन प्रमेहोंमें वृक्क और मूत्राशय अपना कार्य योग्य रूपसे न कर सकते हों, उन प्रमेहोंमें या मूत्रकृच्छ्रमें इसका सेवन कराना हितकर नहीं हो सकेगा।

इक्षुमेह—इसमें अग्न्याशयका अंकुश यकृत्परसे हट जानेसे यकृत निरंकुश होकर अत्यधिक शक्कर उत्पन्न करता है। इसमें विकृति अन्य प्रकार की होती है। अतः इस विकारपर इस चूर्णका उपयोग नहीं हो सकता।

भिलावा सामान्यतः वातज और कफज विकृतिपर अति लाभदायक है। यह इस चूर्णमें मुख्य औषधि है। साथ-साथ चित्रकमूल, त्रिकटु आदि सहायक औषधियोंमें भी वातकफघ्न गुण रहा है। इस हेतुसे वात और कफ धातुकी विकृतिसे उत्पन्न रोगोंके पूर्वरूप और प्रथमावस्थामें यह चूर्ण व्यवहृत होता है।

पित्तप्रकोपमें सामान्यतः भिलावा, त्रिकटु, चित्रकमूलादिमें औषधियाँ हानि पहुँचाती हैं, किन्तु इन औषधियोंकी उग्रताको दमन करने और पित्त को शमन करनेके लिये गिलोय, शतावरी, विदारीकन्द, मिश्री और घृत मिलाया है। इस हेतुसे वातकफकी प्रधानतासह गौण पित्तप्रकोप हो तो इस चूर्णका उपयोग हो सकता है। पित्तप्रकोप होनेपर गिलोयके स्थानमें गिलोय-घन या गिलोय सत्व तथा भिलावेके स्थानपर गोडम्बी (भिलावेकी गिरी) का उपयोग करना विशेष हितावह माना जायगा।

इस चूर्णमें शतावरी, बड़े गोखरू, छिलके रहित तिल, विदारीकन्द और वाराहीकन्द ये सब औषधियां मिलानेसे यह चूर्ण रसायन, शुक्रवर्द्धक और कामोत्तेजक गुण दर्शाता है। कामोत्तेजनाके लिये यथार्थमें इस चूर्ण का सेवन न कराया जाय तो अच्छा। कारण, जितनी कामोत्तेजना होती है, उतना ही वीर्यका अपव्यय होता है। फिर परिणाममें हानि होती है।

कष्टार्त्तव—जिन स्त्रियोंको मासिकधर्म असमयपर होता हो, उस समय वेदना होती हो और रजःस्राव कम होता हो, फिर उसी हेतुसे शारीरिक निर्बलता, पाण्डुता, मस्तिष्कमें दर्द रहना, दृष्टिमांद्य, अग्निमांद्य, अरुचि, मलावरोध, आलस्य बना रहना और प्रदरादि लक्षण प्रतीत होते हों, उन रुग्णाओंको नारसिंह चूर्णका सेवन करानेपर लाभ पहुँचता है।

मासिकधर्मकी अप्राप्ति—कतिपय नवयुवतियोंको आयु बढ़नेपर भी बीजाशय या समग्र प्रजनन संस्थानका योग्य विकास न होनेसे मासिकधर्म का आरम्भ नहीं होता। उनका देखाव छोटी कुमारियोंके सदृश भासता है। देह कृश और निस्तेज होती है। एवं स्तनोंमें मांसवृद्धि नहीं होती। उनको यह चूर्ण, त्रिवंग भस्म और मधुमालिनीके साथ दिया जाता है।

सूचना—(१) यदि उबाक, वमन, मुखपाक, छातीमें दाह, मुंहमें कड़वा पन, स्वेदाधिक्य, अधिक उत्ताप, व्याकुलता, निद्रानाश, और क्रोधाधिक्य पैत्तिक लक्षण प्रबल हों तो इस चूर्णका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२) अधिक प्रवास, अधिक सूर्यके ताप या अग्निका सेवन करने वालों को यह चूर्ण नहीं देना चाहिये। एवं ग्रीष्म ऋतु और शरद् ऋतुमें भी इस चूर्णका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(३) इस चूर्णके उपयोग कालमें अधिक मिर्चादि गरम पदार्थ, गरम-गरम चायादि पेय, धूम्रपान, मांसाहार, स्त्री समागम, चिन्ता और क्रोधादि से हो सके उतना बचना चाहिये।

(४) शुष्ककास, प्रतमक श्वास (कफरहित श्वास प्रकोप), अम्लपित्त, नूतनज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पेचिस, निद्रानाश, विदग्धाजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र शुक्रका अति पतलापन और अति उष्णता इन रागोंसे पोडितोंको नारसिंह चूर्ण नहीं देना चाहिये।

(५) इस चूर्णका सेवन १६ वर्षसे कम आयुवालोंको नहीं करना चाहिये एवं सगर्भा स्त्री और अति वयोवृद्धोंको भी नहीं देना चाहिये।

(६) इस चूर्णके सेवन कालमें बारम्बार मूत्रके परिणाम और वर्णपर लक्ष्य देते रहना चाहिये। यदि मूत्र परिमाण अति कम और वर्ण पीला हो जाता है, अति स्वेद आने लगता हैं और दाह होता है; तो इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिये और विकार शमनार्थ नारियलका जल पिलाना चाहिये।

(७) यदि वातनाड़ियों या सुषुम्णाकाण्ड (पीठकी हड्डी) से सम्बन्ध वाले रतिकेन्द्रमें चेतनाधिक्य (Hyperesthesia) है तो नारसिंह चूर्ण या भिलावे मिश्रित अन्य औषधिका सेवन नहीं कराना चाहिये। अन्यथा स्वप्नदोष बार-बार होता रहेगा।

(८) इस चूर्णके सेवन करनेपर तुरन्त गरम गरम चाय दूध, काफी सेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा भल्लातकसे मुँहमें शोथ आ जायगा।

(२८) कृमिघ्न चूर्ण

विधि—करंजकी गिरी, पलासके बीज, किरमाणी अजवायन, कपीला और वायविडंग सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा और उपयोग—२ से ३ माशे, दिनमें ३ बार। गुड़ मिलाकर

गुनगुने जलसे लेवें। फिर दूसरे दिन सुबह एरण्ड तैलका जुलाब लेनेसे उदर कृमियोंका नाश होता है।

(२९) हिस्टीरियानाशक चूर्ण

विधि—भुनी हींग २ तोले, बच २ तोले, जटामांसी २ तोले, कूठ ४ तोले कालानमक ४ तोले और वायविडङ्ग १६ तोले लें। सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा—१ से ३ माशे, दिनमें ३ बार। गुनगुने जलके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णका धैर्यपूर्वक एक दो मास तक सेवन करनेसे हिस्टीरिया रोग दूर होता है, और उदरवात, कृमि, निद्रा न आना इत्यादि विकारोंका भी शमन हो जाता है।

इस चूर्णमें मुख्य औषधि हींग है। हींग हिस्टीरिया और इतर समस्त आक्षेपजनक रोगोंमें अति उपकारक है। इसे हिस्टीरियाकी सब अवस्थाओं में प्रयुक्त कर-सकते हैं। गर्भाशयके विकार जनित कम्पवात और अपस्मार पर लाभ पहुँचाती है।

बच और जटामांसी वातशामक और मस्तिष्कके लिये अति लाभदायक है। इन औषधियोंके हेतुसे हिस्टीरिया रोगिणीकी अशांति कम होती है और निद्रा भी आ जाती हैं। कूठ आमाशय आदि स्थानोंके दोषोंको दूर करता है तथा आक्षेप निवारक है। कालानमक अग्निप्रदीपक और दोषपाचक है। वायविडंग कृमिनाशक, उदरशोधक और अनुलोमक है, रुकी हुई वायुको बाहर फेंकनेमें सहायक होता है।

(३०) प्रदरान्तक चूर्ण

विधि—चिकनी सुपारी, माजूफल, चोलाईकी जड़, धायकेफूल, सोनागेरु, मोचरस, पठानी लोध और राल सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें फिर सबके बराबर मिश्री मिलावें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला। चाँवलोंके धोवनके साथ दिनमें २-३ बार दें।

उपयोग—यह चूर्ण गर्भाशय आदि प्रजनन यन्त्रपर शामक असर पहुँचाता है। इसके सेवनसे रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर दूर होते हैं तथा गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बनते हैं।

प्रदरके श्वेत और रक्त ये दो भेद मुख्य हैं। अन्य रीतिसे जल सदृश प्रवाही उष्ण स्राव, गाढ़ा सफेद स्राव, पीलास्राव, रक्तस्राव और दुर्गन्धमय पूयमिश्रित स्राव ये ५ प्रकार होते हैं। रोगारम्भमें उष्णता अथवा प्रदाह होनेपर जल जैसा प्रवाही स्राव होता है। वही जीर्ण होनेपर या रोग चिरकारी होनेपर गाढ़ा सफेद स्राव होता है। जीर्णावस्थामें स्राव पीला

बन जाता है। किसी रक्तवाहिनीसे सम्बन्ध होनेपर या बीजाशयसे आने वाली नलिकाओंमेंसे रक्तमय या रजोमय स्राव होता है। गर्भाशयमें कर्कस्फोट होने, शिरा टूटने या क्षत होनेपर भी स्रावरक्तमय बन जाता है। बीजाशय, बीजवाहिनी, गर्भाशय या प्रजनन मार्गमें क्षत होकर पाक होने या विद्रधि बननेपर पूयप्रधान दुर्गन्धमय स्राव होता है। इनमेंसे पहले ३ प्रकारों पर इस चूर्णका उपयोग होता है। चौथे रक्तमय प्रकारमें कर्कस्फोट या अन्य अधिक विकृति न हुई हो और रोग अति जीर्ण न हुआ हो तो इसपर भी इस चूर्णके सेवनसे लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य—(१) यदि गर्भाशयमें अधिक मल संग्रह हुआ हो या कीटाणु प्रकोप हो तो उत्तरबस्ति द्वारा उसे धोते रहना चाहिये। धोनेके लिये और पञ्चम प्रकारमें तैल बस्ति आदि उपचारके लिये किसी स्त्री चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

(२) शराब, गरम-गरम चाय, अति गरम मसाला, राई आदि दाहक पदार्थ और देरसे पचने वाले भोजनादिका त्याग करना चाहिये। गर्भाशय शिथिल होनेपर ब्रह्मचर्यका पालन करना हितावह है।

इस चूर्णके सब द्रव्य कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान हैं। अतः मन्दाग्नि वालोंको मात्रा कम देनी चाहिये। कारण, हरड़के अतिरिक्त सब कषाय रसप्रधान औषधियां प्रायः पचन क्रिया मन्द करती हैं, किन्तु कषाय रस और ग्राही गुणप्रधान औषधियां बहुधा शामक असर पहुँचाती है। इनमें इस प्रयोगकी औषधियोंका शामक गुण प्रजनन यन्त्रपर मुख्य होता है।

सूचना—यदि प्रदरके स्रावमें गर्भाशयमें कोथ होनेसे मुर्दे सदृश दुर्गन्ध आती हो तो उसपर इस चूर्णका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(३१) चन्दनादि चूर्ण

विधि—सफेद चन्दन, जटामांसी, लोध, खस, कमलकेशर, मिश्री नागकेशर, बेलगिरी, मोथा, सोंठ, नेत्रवाला पाटा, कुड़ेकी छाल, धायके फूल, इन्द्र जौ, अतीस, रसोंत, आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस, कमलगट्टोंकी गिरी, लज्जालू, छोटी इलायची और अनारके फलकी छाल इनको समभाग मिला कूट कपड़छन चूर्ण बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा—४ से ६ माशे, दिनमें २ वार लेवें। ऊपर ५-१० तोले चांवलोंके भिगोये जलमें ३ माशे शहद मिलाकर पीवें।

उपयोग—यह चूर्ण प्रदर, रक्तातिसार रक्तार्श और रक्तपित्त रोगको दूर करता है।

इस चन्दनादि चूर्णमें गर्भाशयपर असर पहुँचानेके अतिरिक्त चिपके हुये आम मल (गर्भाशयमें संगृहीत प्रदर मल) और कफादिको खोलकर बाहर

फैंक देनेका गुण भी अवस्थित है। एवं इस चूर्णमें चन्दन, जटामांसी आदि सुगन्धमय कीटाणुनाशक द्रव्योंकी प्रधानता है। इस हेतुसे कीटाणु विष-प्रकोपज प्रदाह होकर उत्पन्न होने वाले रक्तस्राव या पूयस्रावमय नूतन प्रदर पर इस चूर्णका प्रयोग होता है। स्राव दुर्गन्धमय होनेपर इस चूर्णके उदर सेवनके अतिरिक्त इस चूर्णके क्वाथ या फिटकरीके जल अथवा बोरिक एसिड मिले हुए जलसे धोनेपर बाह्यशुद्धि होती है। इनमें फिटकरीके जलसे गर्भाशयकी शुद्धि और आकुंचन भी होता है। अतः गर्भाशयकी शिथिलता होनेपर फिटकरीके जलका उपयोग करना विशेष हितावह है।

प्रदरके समान रक्तस्राव प्रधान अतिसार, अर्श और रक्तपित्त रोगमें शामक असर पहुँचाने और रक्तस्रावको बन्द करानेके लिये इस चूर्णका प्रयोग किया जाता है। रक्तातिसारमें चांवलोंकी यवागू रक्तार्शमें मट्ठा और रक्तपित्तमें आंवलोंके हिम या फाण्टकी योजना अनुपान रूपसे करनेपर लाभ जल्दी पहुँचता है।

(३२) रजःप्रवर्त्तक चूर्ण

विधि—भारंगी, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ, ये सब ८-८ माशे और भुनी हींग ३ माशे लें। सबको पीसकर चूर्ण करें।

मात्रा—२ से ३ माशे। ब्राह्मी १ तोला और काले तिल ५ तोलेके क्वाथके साथ दें। मासिकधर्म आनेके समयसे १० दिन पहलेसे रोज सुबह देवें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे मासिक धर्म नियमित रूपसे आने लगता है, और कष्ट नहीं होता। मासिकधर्म आनेपर चूर्ण देना बन्द करें। इस रीतिसे ४-६ मास तक देते रहनेसे मासिकधर्मकी रुकावट, शूल, कमरमें दर्द, अरुचि बेचैनी आदि दूषित रक्तकी विकृतिसे होने वाली पीड़ा दूर होती है।

बीजाशय नलिकामें अवरोध होनेसे जब रक्तस्रावमें कष्ट होता है तथा पूरा स्राव नहीं होता। इसी हेतुसे मस्तिष्कमें भारीपन और वेदना, दृष्टि-मांद्य शारीरिक निर्बलता और पाण्डुतादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकारपर इस चूर्णका प्रयोग किया जाता है।

वक्तव्य—यह औषधि सामान्यतः १५ से ३५ वर्षकी आयु वाली स्त्रियों को दी जाती है। ५० वर्षकी आयुमें प्रायः रजोधर्म बन्द होता है। ऐसे समयपर उत्पन्न विकारोंपर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। यदि रुग्णाका शरीर निर्बल हो, पाण्डुरोगसे पीड़ित भी रहती हो तो मासिक धर्मके ५ वें दिनसे सुवर्णमालिनी वसन्त या लोहप्रधान औषधिका सेवन १५-१५ दिन तक कराते रहना चाहिये।

मासिक धर्मके दिनोंमें मलावरोध नहीं रहना चाहिये। भोजन लघु पौष्टिक लेवें। ३ दिन तक स्नान न करें और शीतल वायुका सेवन भी न करें नेत्रोंको अधिक कष्ट न देवें। शान्तिसे लेटे रहना विशेष हितावह है।

सूचना—यदि रुग्णाको मासिकधर्म कालमें मलावरोध हो तो सनाय या स्वादिष्टविरेचन चूर्ण देकर उदरशुद्धि करा देनी चाहिये। अन्यथा रजःस्राव पूरा नहीं हो सकेगा।

(३३) रक्तप्रदररिपु चूर्ण

विधि—पुराने ऊनी वस्त्र या ऊनको घड़ेमें बन्दकर, जलाकर काली राख करें, सफेद राख नहीं होनी चाहिये या खुले मैदानमें खुले घड़ेमें रखकर जलावें, निर्धूम होनेपर ढक देनेसे काली राख हो जाती है।

मात्रा—१ से ३ माशे तक। दिनमें २ बार ठण्डे जलके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे घोर रक्तप्रदर आशम होता है। बड़ी-बड़ी औषधियोंसे अच्छी न हुई अनेक रुग्णाएँ इस औषधिसे अच्छी हो गयी है। यह चूर्ण ६ माशे गुनगुने जलमें घोलकर पिला देनेसे उदरशूलपर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(३४) बालघोरकासघ्न चूर्ण

विधि—काली तमाखूके पत्तोंके डण्ठल २० तोले साफ करके लें। शाखाका कोई भाग आगया हो तो निकाल डालें। फिर एक एक इञ्चके टुकडेकर मिट्टीके बरतनमें रखकर जलावें। निर्धूम होनेपर ऊपर ढक्कन लगा देवें, जिससे कोयले हो जायँ। राख न होना चाहिये। फिर सेंधानमक २० तोले मिलावें दोनोंको कूट कपड़छान कर मजबूत डाटवाली शीशी भरें। वर्षा ऋतुमें जलाने, कूटने और शीशीमें भरनेकी क्रिया एक दिनमें ही कर लेनी चाहिये अन्यथा सर्दी पाकर औषधि निर्बल हो जायगी।

(आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, दिनमें ३ बार देवें।

अनुपान—बालकोंके श्वास, ज्वर और अतिसार आदि व्याधियोंमें नागर बेलके पक्के १ पान और १ से २ रत्ती अजवायनके चूर्णको ३-४ माशे जलमें मिलाकर बारीक पीसें। फिर छान जलको गुनगुनाकर औषधि मिलाकर पिला दें।

काली खांसीमें नागरबेलके पक्के पान और २ इलायची (छिलका सहित) को साथमें मिला जल डालकर पीसें। फिर छान जलको गुनगुना कर औषधि मिलाकर दिनमें २-३ बार पिलावें।

सामान्य खांसीपर शहदमें चटावें। साथमें प्रवालपिष्टी १ रत्ती मिलावें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंकी काली खांसी (Whooping Cough), सादी खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसार, हरे रंगके दस्त आदि रोग

बहुत जल्दी दूर होते हैं।

(३५) बालअतिसारहर चूर्ण (गुलाबी)

विधि—आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस और खस १०-१० तोले तथा शुद्ध सिंगरफ १ तोला लें। सबको कूट कपड़ घन चूर्ण बना लें। आमकी ऋतुमें बनानेसे चूर्ण अच्छा बनता है। फिर विशेष गुणकारी नहीं बनता। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार। जलके साथ देवें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंके अतिसार, पेचिश और ज्वर आदि रोग दूर होकर बालक पुष्ट बनते हैं।

(३६) बालमित्र चूर्ण

प्रथम विधि—कमलकी केशर, लजालू, धायके फूल और मोचरसको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार। जल या शहदसे दें, अथवा जलमें उबाल छानकर पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके अन्त्रकी उग्रताका शमनकर रक्तातिसारको दूर करता है।

दूसरी विधि—लोध, इन्द्रजव, धनियां, आंवला, नागरमोथा और नेत्र-बाला सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार। शहदसे चटावें।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंकी प्रवाहिका, उदरपीड़ा और ज्वरको दूर करता है।

तीसरी विधि—१० तोले कुटकीके छोटे-छोटे टुकड़ेकर तवेपर मंदाग्निसे भूनें, कलछीसे बराबर चलाते रहें। जल न जाय, यह सम्हालें। अच्छी रीतिसे भुन जानेपर उतार लें। शीतल होनेपर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्णका मूल ग्रन्थकर्ताने "कटुभर्जित चूर्ण" नाम रखा है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती (बड़े मनुष्योंको २ से ४ माशा), दिनमें ३ बार गुनगुने जलके साथ अथवा मण्डूर भस्म मिलाकर गुड़के साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंके यकृद्की वृद्धि, मलावरोध, ज्वर, सुस्ती, उदर विकार, सूजन आदिको ४-६ रोजमें दूर करता है। बड़े मनुष्योंको १ से २ माशे तक देना चाहिये।

बालकोंको शीत लग जाने या माताके आहार-विहारमें भूल होवे अथवा भैंस आदिका दूध पिलानेसे यकृत्की वृद्धि होकर बुखार आ जाता है। फिर उदरमें कुछ भारीपना मालूम पड़ता है तथा मलावरोध, उत्साहका अभाव और निस्तेजता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसपर इस चूर्ण

का प्रयोग दिनमें ३ बार करते रहनेसे एक दो दिनमें उदर शुद्धि होकर ज्वरका शमन हो जाता है और यकृत्में लाभ होने लगता है। फिर ५-७ दिनमें यकृत् मूल स्थितिमें आ जाता है।

वक्तव्य—यदि यकृत्-वृद्धि अत्यधिक हो गई हो तो बालकोंको उबले हुए दूधमें नींबूका रस डालकर फाड़े, फिर जल छानकर पिलाते रहना चाहिये। दूध, अन्न आदि सब आहार बन्दकर देना चाहिये।

यदि बड़े मनुष्यको जीर्ण मलावरोध और आमवृद्धि होकर अग्निमांद्य हुआ हो तो इस चूर्णके साथ सज्जीखार (Soda-bi Carb) मिलाकर दिन में एक या २ बार दिया जाता है।

यदि यकृद्वृद्धि, यकृद्में रक्तसंग्रह या प्रदाह हुआ हो तो इस चूर्णके साथ नौसादर २-२ रत्ती मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहना चाहिये। ऐसी अवस्थामें मात्रा कम दी जाती है।

यदि बड़ी आयु वालोंको ज्वरादि रोगमें उदरवृद्धिके लिये बालमित्र चूर्ण देना हो तो लगभग ३ माशे और सोंठका चूर्ण १ माशा मिला, सुबह जलके साथ देना चाहिये। सोंठका चूर्ण मिलानेसे उदरमें वेदना नहीं होती आमको निकालनेमें सहायता मिल जाती है।

श्री० वैद्यराज कान्तिलाल जी आचार्य कुटकीको जला, काले कोयले करके बालकोंके कासपर उपयोगमें लेते रहते हैं। वे दिनमें २ या ३ बार २-३ रत्ती शहदके साथ देते हैं। इसे उन्होंने कृष्ण चूर्ण संज्ञा दी है। इस चूर्णके सेवनसे बालकोंको वमन होकर कफ सरलतासे निकल जाता है और कासका शमन हो जाता है।

श्री० वैद्यराज नगनदासजी इस चूर्णका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें करते हैं। इस चूर्णमें से कड़वापन कम कराने और गुणमें वृद्धि करानेके लिये वे भूनी हुई कुटकी १० तोला, कालानमक ५ तोला, कालीमिर्च २॥ तोला और भांग १। तोला मिलाकर मिश्रण बना लेते हैं। इस मिश्रणमेंसे बच्चोंको एक माशे और बड़े मनुष्योंको ३ से ६ माशेका क्वाथ देते हैं। जब विषमज्वरमें मलावरोध हो और उदरमें कच्चा आहार हो, तब उदर शोधन करके ज्वर शमनार्थ यह चूर्ण दिया जाता है। विषमज्वरमें सोड़ाबाई कार्ब भी १-१॥ माशे तक मिला देते हैं। उसके अतिरिक्त अपचन या उदर में अफारा होनेपर नौसादर पुष्प भी २ रत्ती मिला देते हैं।

बालकोंके ज्वर, अपचन, उदरशूल, उदरकृमि, कामला और यकृद्-वृद्धिपर यह निर्भय रूपसे व्यवहृत होता है।

सूचना—ज्वर होनेपर भोजनमें दूधके अतिरिक्त कुछ भी नहीं देना चाहिये। यकृद्वृद्धिपर और कामलाके रोगीको, घी नहीं देना चाहिये।

इस चूर्णमें विरेचन गुण होनेसे छोटे या बड़े. सभीको इस चूर्णके सेवन के पश्चात् लघु भोजन, खिचड़ी, दूध, भात या तक्र देना चाहिये।

चौथी विधि—सोंठ, नागरमोथा, बेलकी गिरी, चित्रकमूल, पीपलामूल और बड़ी हरड़का छिलका इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (वृ० नि० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती, दिनमें ३ बार। शहदके साथ चटावें।

उपयोग – यह चूर्ण बालकोंकी कफज ग्रहणीको दूर करता है।

पांचवी विधि—हरड़, बच और कूठको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

मात्रा—आध-आध रत्ती, दिनमें ३ बार। शहद मिलाकर माताके दूध के साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंका तालुपातन (गला पड़ना) रोग नष्ट होता है।

(३७) भस्मकनाशक चूर्ण

विधि—हरड़, बहेड़ा, आँवला नागरमोथा, बायविडंग, पीपल, मिश्री और अपामार्गके बीज इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (आ० भि०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक, शहद और घृतके साथ। दिनमें ३ बार चटावें।

उपयोग—यह चूर्ण आमाशयपर अवसादक असर पहुँचाता है, जिससे बढ़ी हुई अग्नि सम होकर भस्मकरोग शांत हो जाता है।

(३८) चिन्तामणि चूर्ण

विधि—रास्ना, खरेंटी, पद्‌मकाष्ट, देवदारु, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और बायविडंग इन सब औषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। (वैं० जी०)

मात्रा—२ से ३ माशे, शहद और घीके साथ मिलाकर दिनमें २ बार चाटें। घी १ से २ माशे तक पहिले मिलावें। फिर चाटने लायक शहद मिला लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण वात-प्रकोप और पचनेन्द्रिय संस्थानकी विकृतिको सुधार कर श्वास और कास रोगोंको दूर करता है।

(३९) वासादि चूर्ण

विधि—अडूसेके ५ सेर पत्ते लेकर उनके बीचमें रही हुई नसें निकाल डालें। फिर २० सेर जलमें मिला कर गरम करें। पश्चात् कालानमक और सेंधानमक ४०-४० तोले तथा जवाखार और पापड़खार २०-२० तोले डालें।

पत्ते पक जायँ और पानी जल जाय, तब कड़ाहीको उतार लें। फिर पत्तों को सुखाकर कपड़छन चूर्ण करें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—२ से ८ रत्ती, दिनमें ३ बार। शहद या नागर बेलके पान अथवा घी में मिलाकर देवें। जलसे देना हो तो भी चल सकेगा।

उपयोग—इस चूर्णके उपयोगसे नई और पुरानी खाँसी, सूखे हुए कफ वाली खाँसी, अति कफवाली खाँसी दूर होती हैं। सामान्य औषध होनेपर भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

नोट—चूर्णोंकी विस्तृत जानकारी हेतु संस्थाद्वारा प्रकाशित "नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह" का अवलोकन करें। जो इसी पुस्तकका अङ्ग है।

(४०) राजरेचन

जुलाफा (जलफ) हरड़ ५ तोले, शक्कर ५ तोला लें। दोनोंका कपड़छन चूर्ण बनालें।

मात्रा—४ से ६ रत्ती तक जलके साथ, आवश्यकतानुसार समयपर दें।

उपयोग—बिना जी मिचलाये व बिना उदरशूल हुये २-३ दस्त हो जाते हैं। (वैद्य बद्रीनारायण)

(४१) अजमोदादि चूर्ण

द्रव्य—अजमोद, बायविडङ्ग, सँधानमक, देवदारु, चित्रकमूल, पिप्पली मूल, सौंफ, पीपल, कालीमिर्च ये औषधियाँ १-१ तोला हरड़ ५ तोला, वृद्ध दारु १० तोले, सोंठ १० तोले लें।

विधि—इन सबका कपड़छान चूर्णकर बोतलमें भर लें। या चूर्णके समभाग गुड़ मिलाकर १॥-१॥ माशेकी गोलियां बना लेवें।

मात्रा—चूर्ण १ से २ माशे तक। गोली १ से ३ तक। दिनमें २ से ३ बार निवाये जलके साथ।

उपयोग—यह अजमोदादि चूर्ण जीर्ण आमवातके लिए उत्तम औषधि है। आमवातज वेदना, आमवातज शोथ, संधिपीड़ा, गृध्रसीवात (जंघाके पिछली ओर रही हुई गृध्रसी नाड़ीमें भयंकर वेदना) कटिवात, गुदस्थान की पीड़ा, जंघामें वेदना, तूनीवात और प्रतितूनीवात (छोटी आंतसे नीचे को ओर गति वाला तथा नीचेसे छोटी आंत तक करने वाली वायु), विश्वाची (हथेली और हाथकी अंगुलियोंका वातरोग) तथा कफ वातप्रकोप आदि जीर्ण विकारोंमें यह चूर्ण अति हितकर है।

(४२) तालीसादि चूर्ण (ग्रहणी)

द्रव्य—तालीस पत्र, बच, वंशलोचन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक मूल, सोंठ, कालीमिर्च, हल्दी, लौंग, धायके फूल, अतीस, जायफल, अज-

वायन, पाठा, मोचरस, इमली, सैंधानमक, समुद्रनमक, अम्लबेंत, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पलाशबीज, जटामांसी, नागरमोथा, खस, इंद्रायणकी, जड़ हुलहुल वेलगिरी, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कोकम, कालानमक, सांभर नमक, विडनमक, सफेद जीरा, कालाजीरा, बायविडङ्ग, भूमिआंवला, कूठ, नागकेशर, यह ४६ औषधियां १-१ तोला, असगंध ४६ तोले, भांग शुद्ध ९२ तोले, मिश्री १८४ तोले।

विधि—भांगको शुद्ध करें। काष्ठादि औषधियोंको पृथक् कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर मिश्रीका चूर्ण मिलाकर एक जीव करें।

मात्रा—१ से २ माशे तक दिनमें २ से ३ बार। बालकोंके लिए १ से २ रत्ती।

उपयोग—यह तालीसादि चूर्ण उत्तम दीपन, पाचन, ग्राही, कीटाणुनाशक, वेदनाशामक, निद्राप्रद, समशीतोष्ण, कफघ्न, वातहर और बल्य है। ग्रहणी, क्षय, कास, श्वास, अरुचि, प्लीहावृद्धि, अर्श, अतिसार, जीर्णज्वर, वातविकार, मेदोवृद्धि, प्रमेह, तीव्र अपस्मार, पाण्डु, गुल्म, उदरशूल, अफारा, कफप्रकोप, पित्तविकार उन्माद आदि रोगोंका नाशक है। बालकों के लिए यह विशेष हितावह है। वाणी, पुष्टि आयु, बल, कान्ति, बुद्धि, स्मृति, मेधा (धारण शक्ति) और प्रसन्नताको बढ़ाता है।

(४३) नारायण चूर्ण

द्रव्य—अजवायन, हाऊबेर, धनिया, सोया, कलौंजी, कालाजीरा, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, चित्रकमूल, सफेदजीरा, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, सत्यानाशीकी जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, यवक्षार, सज्जीक्षार, पुष्करमूल, कूट, सैंधव, समुद्रलवण, बिडलवण, कालानमक, सांभरनमक, बायविडंग यह २९ औषधियां १-१ तोला, दंतीमूल ३ तोले; निसोत २ तोले, इन्द्रायण २ तोले, सातलाथूहरपान ४ तोले।

विधि—सब द्रव्योंको मिला कूटकर चूर्ण करें।

वक्तव्य—इस चूर्णमें गुण वृद्धिके लिये हम थूहरके दूधकी १ भावना देते हैं। योग रत्नाकरने स्वर्णक्षीरीके स्थानपर कङ्कुष्ठ (उसारेरेवन) लिया है, यह अधिक विरेचन कराता है, एवं तीव्र विरेचन कराता है। साथ-साथ अन्त्रमें (Irritation) भी कराता है। इसलिए इसे विचार करके ही मिलाना चाहिये।

मात्रा—१ से २ माशा सुबह निवाये जलके साथ देवें।

अनुपान—उदररोगमें तक्र। गुल्ममें बेरकी जड़का क्वाथ। आनाह (उदरवात और मलकी गांठे बंध जाना) में सुराका मण्ड। वात रोगोंपर प्रसन्ना (सुरामण्ड)। मलावरोधपर दहीका जल। अर्शपर अनारदानोंका

रस। परिवर्तिका। उदर शूल गुदामें कैंचीसे काटनेके समान पीड़ा होने) पर कोकम आमचूर (वृक्षाम्ल) का क्वाथ। अजीर्णमें निवाया जल। सर्वाङ्गशोथ और जलोदर रोगपर राजस्थान और अन्य प्रान्तोंमें मिल सके वहां ऊंटनीका दूध।

सूचना—भगन्दर, पाण्डु, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठ, अग्निमांद्य, ज्वर, दाढवाले जन्तुओंके विष, मूलविष, कृत्रिम और सेन्द्रिय विष, जिनमें पचन संस्थानकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभोत्पत्ति हो जानेपर पहले, कोष्ठको स्निग्ध बनाकर विरेचन देवें।

उपयोग—नारायण चूर्ण श्रेष्ठ विरेचन औषधि है। जीर्ण मलावरोध, पाण्डु, आमविष वृद्धि, अफारा उदावर्त, वातरोग, आमवात, भगन्दर, जलोदर, आदि सब उदररोग, कुष्ठ, जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, विषप्रकोप, आमाशयमें पित्त वृद्धि और कफप्रकोप आदि सब रोगोंमें यह प्रयोजित होता है। रसायन सेवनकी इच्छा वालोंको पहले उदर शोधनार्थ नारायण चूर्णका सेवन करानेपर आम, विष, कफ, मल आदि सब दूषित द्रव्य और कृमि दूर हो जाते हैं।

विरेचन हो जानेपर २४ घण्टे तक जल उबालकर शीतल किया हुआ पीना चाहिए। एवं भोजनमें खिचड़ी जैसा हलका भोजन लेना चाहिये।

(४४) लघुगंगाधर चूर्ण

द्रव्य–नागरमोथा, बेलगिरी, मोचरस, इन्द्रजव कड़वा, लोध, धायके फूल।

विधि—सब द्रव्योंको समभाग मिला कूटकर चूर्ण करें।

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३-४ बार।

अनुपान—मठ्ठा और गुड़ या चांवलोंका धोवन।

उपयोग—यह लघुगंगाधर चूर्ण उत्तम ग्राही और दीपन-पाचन औषधि है। सब प्रकारके नये अतिसार और प्रवाहिकाको दूर करता है।

(४५) लवङ्गादि चूर्ण

लौंग, शीतलमिर्च, खस, सफेद चन्दन, तगर, नीलोफर, कालाजीरा, छोटी इलायची, कालीअगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटां-मांसी, नागरमोथा, कपूर, जायफल, वंशलोचन यह १८ औषधियां १-१ तोला मिश्री ९ तोले।

वक्तव्य—इस लवङ्गादि चूर्णमें कई पाठान्तर मिलते हैं। यह पाठ शार्ङ्गधर संहिता और अन्य ग्रन्थोंमें भी है। अतः प्राचीन ग्रन्थके अनुरूप पाठ को ही योग्य मानकर यहां दिया है।

विधि—कपूर, वंशलोचनका चूर्ण और मिश्रीका चूर्ण पृथक् करें। फिर

फिर शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण करके वंशलोचन मिलावें। कपूरको मिश्रीके साथ मिलाकर फिर औषधियोंके मिश्रणके साथ खरलकर एक जीव करें।

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ बार शहदके साथ।

उपयोग—यह लवङ्गादि चूर्ण रुचिकर, तृप्तिकर, अग्निदीपन, बल्य, वृष्य और त्रिदोषघ्न है। यह राजयक्ष्मा रोगसे उत्पन्न छातीकी जकड़ाहट, तमकश्वास, कण्ठावरोध, कफकास, शुष्ककास, हिक्का, अरुचि, यक्ष्मा, पीनस, ग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह, वातजगुल्म आदि सब रोगोंको नष्ट करता है।

(४६) वज्रक्षार चूर्ण

द्रव्य—समुद्र लवण १० तोले, काला नमक १० तोले, सेंधव १० तोले, सोहागा १० तोले, काच लवण १० तोले, सज्जीक्षार १० तोले, यवक्षार १० तोले।

विधि—इन सबको मिला आकके दूधमें भिगोकर सूर्यके तापमें सुखावें। इस तरह ३ दिन करें फिर थूहरके दूधमें ३ दिन तक भिगो-भिगोकर सूर्यके तापमें सुखावें। फिर गोला बना ऊपर आकके पत्ते लपेट हांडीमें बन्द करके गजपुट अग्नि देवें। स्वाङ्ग शीतल होनेपर निकालकर पीस लेवें।

सोंठ १० तोले, हरड़ १० तोले, अजवायन १० तोले, कालीमिर्च १० तोले, बहेड़ा १० तोले, जीरा १० तोले, पीपल १० तोले, आंवला १० तोले, चित्रकमूल १० तोले।

इन सबको मिला कूट कर चूर्ण करें। फिर क्षारका जितना वजन हो उससे आधा चूर्ण मिलाकर एक जीव कर लें।

मात्रा—१ से २ माशे तक दिनमें २ बार।

अनुपान—वायु अधिक होनेपर निवाया जल। पित्तकी अधिकता होनेपर घी। कफ प्रकोपमें गोमूत्र। तीनों दोषोंमें कांजी।

उपयोग—यह वज्रक्षार दीपन, पाचन और शूलहर है। गुल्म, सब प्रकारके उदररोग, शोफ, अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदावर्त (गेस बढ़ना), प्लीहावृद्धि आदिको दूर करता है।

(४७) वृद्धदण्ड चूर्ण

द्रव्य—सफेद मूसली १ तोला, सेमलकी जड़की छाल १ तोला, गिलोय सत्व १ तोला, आंवला १ तोला, कौचके बीज १ तोला, मिश्री १ तोला,

गोखरू १ तोला । (आ० औ०)

विधि—मिश्रीको छोड़ शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण करें । मिश्री का चूर्ण मिलाकर एक जीव करें ।

मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक दिनमें २ बार प्रातः तथा रात्रिको ।

अनुपान—दूध ।

उपयोग—यह वृद्धदण्ड चूर्ण धातुक्षीणता, स्वप्न दोष, वृद्धावस्थामें होने वाले वातज मेह, कमरकी वेदना आदिको दूर करता है तथा स्फूर्ति प्रदान करता है ।

(४८) शृङ्ग्यादि चूर्ण (श्वास)

द्रव्य—काकड़ासिंगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बड़ी कटेली फल, भारंगी, पुष्कर मूल, सैंधानमक, समुद्रनमक, कालानमक, बिड़नमक, सांभरनमक, जवाखार ।

वक्तव्य—गुण वृद्धिके लिए जवाखार हमने बढ़ा लिया है ।

विधि—सबको समभाग मिला कूटकर चूर्ण करें ।

मात्रा—२ से ३ माशे दिनमें ३ बार प्रातः, मध्याह्न, रात्रिको और आक्षेप कालमें १-१घण्टेपर निवाये जलसे । बालकोंके लिए मात्रा १ से ३ रत्ती ।

उपयोग—यह शृंग्यादि चूर्ण हिक्का कफसह श्वास, ऊर्ध्ववात, कफ-कास, अरुचि और पीनसका नाश करता है । बालकोंको कफ कास, कफ-श्वास और डब्बाका मन्द असर होनेपर दिया जाता है ।

(४९) सामुद्राद्य चूर्ण

द्रव्य—समुद्रनमक, सैंधानमक, सज्जीक्षार, यवक्षार, कालानमक, रोमक लवण, बिड़लवण, दन्तीमूल, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, निशोथ, जमीकन्द ।

विधि—उक्त १२ द्रव्योंको समभाग कूटकर चूर्ण करें । फिर उसे कड़ाहीमें डाल, दही, गोमूत्र और गोदुग्ध ४-४ गुना मिलाकर मन्दाग्निपर पाचन करावें । शुष्क चूर्ण हो जानेपर खरलकर बोतलमें भर लेवें ।

मात्रा—१॥ से ३ माशे तक दिनमें २ बार निवाये जलसे । औषध पचन हो जानेपर उड़दके पदार्थ घृतयुक्त पाचन शक्तिके अनुसार सेवन करते रहें ।

उपयोग—यह सामुद्राद्य चूर्ण परिणामशूल, नाभिशूल, यकृत्का शूल,

प्लीहावृद्धि, गुल्म, अन्तर्विद्रधि, अष्ठीला और कफवायु उत्पन्न विकारोंको दूर करता है।

(५०) स्वादिष्ट पाचन चूर्ण

द्रव्य—नींबूका सत्व (Citric Acid) १॥ तोला, मिश्री १६ तोले, अनारदाना ४ तोले, सोंठ ४ तोले, कालीमिर्च २ तोले, पीपल २ तोले, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी २ तोले, तेजपात २ तोले, पोदीनाके पान २ तोले, जीरा भुना हुआ १२ तोले, धनियाँ ८ तोले सैंधानमक १० तोले लें।

विधि—नींबू सत्वको आध तोले जलमें खरल करें। फिर काष्ठादि औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर खरल कर लेवें। पश्चात् मिश्री मिलावें। अच्छी तरह मिल जानेपर सैंधानमक मिलाकर खरलकर लेवें।

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें २ या ३ बार जलके साथ।

उपयोग—यह स्वादिष्टपाचन चूर्ण रुचिकर दीपन और पाचन है। यह अग्निमांद्य, अपचन, अरुचि, उदरवात आदिको दूर करता है।

(५१) स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण

द्रव्य—शुद्ध गन्धक ५ तोले, मुलहठी ५ तोले, सोंफ ५ तोले, सनाय १५ तोले मिश्री २० तोले लें।

विधि—मिश्रीका पृथक् चूर्ण करें। शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण करें। उसके साथ मिश्री मिला खरलकर एक जीव करें।

मात्रा—३ से ६ माशे रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे लेवें।

उपयोग—यह स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण मलावरोध, आमवृद्धि, शिरदर्द, अर्श, रक्तविकार, चर्मरोग, पामा और खुजली आदिमें उदरके शोधनार्थ व्यवहृत होता है। बालक, सगर्भा, प्रसूता, निर्बल, वयोवृद्ध सबको निर्भय रूपसे यह दिया जाता है।

कषाय प्रकरण

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट ये कषायके ५ भेद हैं। उत्तरोत्तर लघु-पाचन गुण वाले हैं। अर्थात् स्वरससे कल्क हल्का कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे हिम और हिमसे फांट लघु होता है।

स्वरस—ताजी औषधियोंको कूट निचोड़कर रस निकाला जाता है, उसे स्वरस कहते हैं। कितनी ही औषधियोंका रस स्वरस यन्त्रद्वारा निकाला जाता है अर्द्ध सूखी औषधियोंको कुचल या कूट, द्विगुण जलमें २४ घण्टे भिगो छानकर रस निकाल लेनेको भी स्वरस कहते हैं। एवं सूखी औषधियोंको ८ गुने जलमें पका चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान लेनेसे भी स्वरसका काम निकलता है।

सूचना—अनेक वृक्षोंकी छालों और पत्तोंमें रस बहुत कम होनेसे कूट कर निचोड़नेसे नहीं निकलता। ऐसी औषधियोंको कूटकर एक कलई किये हुए पात्रमें भरें। फिर यन्त्र वर्णनमें लिखे अनुसार स्वरस यन्त्रद्वारा स्वरस निकाल लेवें। आजकल द्रव्योंको मशीनों द्वारा प्रेस करके सुगमतासे स्वरस निकाल लेते हैं।

अनेक औषधियोंका स्वरस पुटपाक कृतिसे निकाला जाता है और अनेकोंको कूट निचोड़कर कपड़ेसे छान लिया जाता है।

कल्क—ताजी औषधियोंको बिना जल मिलाये और सूखी औषधियोंमें जल मिलाकर चटनी (लुगदी) तैयार करनेको कल्क कहते हैं। यदि कल्क में प्रक्षेप शहद, घृत या तैल मिलाना हो तो कल्कसे द्विगुण, शक्कर या गुड़ मिलाना हो तो कल्कके समान और कांजी आदि द्रव्य पदार्थ मिलाना हो तो कल्कसे चतुर्गुण मिलाना चाहिये।

क्वाथ—ताजी या सूखी एक या अनेक औषधियोंको मोटी मोटी कूटकर औषध-कृति विधिमें लिखे अनुसार उबाल लेनेसे क्वाथ तैयार होता है।

क्वाथ द्रव्योंको कूटकर रखनेसे ६·७ मास बाद या वर्षाॠतुके पश्चात् हीनवीर्य हो जाते हैं। अतः आवश्यकतानुसार थोड़े-थोड़े परिमाणमें तैयार कर कांचकी शीशीयों या चीनीमिट्टीके वर्तनमें सम्हालकर बन्द रखें। जिससे औषधियां अधिक समय तक अच्छी रहे।

क्वाथ करनेकी औषधियोंको रात्रिको मिट्टी अथवा कांचके पात्रमें भिगो सुबह चूल्हेपर, मन्दाग्निसे उबालकर क्वाथ करें। मोटे चूर्णको १६ गुने जलमें भिगो-उबालकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये : बारीक कूटे हुए चूर्ण अथवा तैल युक्त मृदु औषधियोंका क्वाथ करना हो तो ४ या ८ गुना जल मिला पौना या आधा जल शेष रहवे पर्यन्त उबालकर छान लेना चाहिये।

शास्त्र विधि-अनुसार कुटजारिष्टके लिये या अन्य कार्यके लिये कुटजत्वक् ताजी लेनी चाहिये। परन्तु सर्वत्र ताजी छाल नहीं मिल सकती। अतः सूखी छाल ही लेनी पड़ती है। उसका क्वाथ करनेके लिये १६ गुने जलमें उबालकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। यदि जल ८ गुना या ४ गुना लिया जायगा तो पूरा सत्व नहीं निकल सकेगा। जलमें आये हुए सत्वमेंसे कितने ही अंशका पुनः छालमें संशोषण (पात्रको चूल्हेपरसे नीचे उतारनेके समय) हो जाता है। अतः शुष्क द्रव्योंमें ८ गुना जल मिलानेका नियम बनाया है।

क्वाथ करनेके लिये बर्तन मिट्टीका लेना चाहिये और उबालनेके समय बर्तनका मुँह खुला रखना चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधर संहितामें कहा है। किन्तु ढक्कन ढक कर क्वाथ करनेसे अनेक सूक्ष्म परमाणुओंका संरक्षण होता है, जिससे क्वाथ अधिक गुणदायी होता है, ऐसा कतिपय विद्वान् चिकित्सकों का अनुभव है और वही ग्राह्य करने योग्य है। यदि तैलीय औषधियों और मृदु ओषधियोंकाक्वाथ करनेके बदले नलिकायन्त्र द्वारा अर्क निकालें तो विशेष लाभप्रद होता है और बार-बार क्वाथ करनेका श्रम भी मिट जाता है।

क्वाथ रोज नया-नया बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये। क्वाथ २४ घण्टोंसे ज्यादा समय तक गुणदायक नहीं रह सकता। अधिक समय तक गुणयुक्त रखनेके लिये अनेक औषधालयोंमें १२ वाँ हिस्सा रेक्टीफाइड स्पिरिट (या शराब) और चौथा हिस्सा शहद मिला लेते हैं, परन्तु उसमें क्वाथके गुणके रेक्टीफाइड स्पिरिटका गुण सम्मिलित होकर मूल गुणमें थोड़ा रूपान्तर कर देता है। मात्र ताजा क्वाथ करनेके लिये समयाभाव होनेपर काम चल सकता है।

हिम—ओषधियोंके चूर्णको रात्रिको ६ गुने जलमें भिगो देवें। सुबह मसलकर छान लेनेसे शीतल कषाय–हिम तैयार हो जाता है। भिगोनेके लिये पात्र चीनीमिट्टी या काचका लेना चाहिये।

फाण्ट—औषधियोंके महीन चूर्णको किसी पात्रमें गरम उबलते हुए १६ गुने जलमें डालकर ढक्कन लगा दें। आध या एक घण्टे बाद छान लेनेसे फाण्ट हो जाता है।

अथवा ओषध चूर्णको ४ या ८ गुने अथवा १६ गुने जलमें १२ घण्टे भिगो देवें। फिर चूल्हेपर उबाल, आधा जल शेष रहनेपर उतार लेवें। शीतल होनेपर छानकर उपयोगमें लेवें।

फाँट पाकमें हलका है और गुण सत्वर दर्शाता है। हिम और फाण्ट रोज ताजा बनाकर उपयोगमें लेने चाहिये।

कषाय सरलता पूर्वक रस आदि धातुओंमें मिश्रित होकर तत्काल

अपना गुण प्रदर्शित करता है और कषायसे प्रायः अपाय होनेकी संभावना भी नहीं है। इसलिये रोगोंकी तीव्रावस्थामें एवं जिनके वात आदि धातु बहुत निर्बल हो गये हो, उनके लिये गुटिका, चूर्ण आदि औषधियोंकी अपेक्षा कषाय विशेष हितकर है। कषायका पचन शीघ्र होकर रस रक्तादि में पहुँचकर सत्वर लाभ दिखाता है।

क्वाथमें प्रक्षेप रूपसे मिश्री मिलानी हो तो वातज रोगमें अष्टमांश, पित्तज रोगमें चतुर्थांश और कफप्रधान रोगमें षोडशांश मिलानी चाहिये। शहद मिलाना हो तो इसके विपरीत अर्थात् वातज रोगमें $\frac{1}{16}$ पित्तजमें $\frac{1}{8}$ और कफजमें $\frac{1}{4}$ हिस्सा मिलाना चाहिये। जीरा, गूगल, क्षार, नमक या त्रिकटु मिलाना हो तो १ से ३ माशे तक, भुनी हींग २ रत्ती और शिलाजीत भी २ रत्ती डालना चाहिये। दूध, घी, गुड़, तैल, गोमूत्र या अन्य कोई द्रव पदार्थ, कल्क या चूर्ण प्रक्षेप रूपसे मिलाना हो तो १ तोला तक मिलावें।

चिरस्थायी कषाय—वर्तमानमें आयुर्वेदिक औषधियां बनाने वाली कितनी ही फार्मेसियोंने क्वाथ-अर्क-स्वरस, शर्बत, मुरब्बा आदिको चिरस्थायी (Durable) तैयार किये हैं। इनका उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। क्वाथ आदिको दीर्घ समय तक मूल स्थितिमें रखनेके लिये निम्न विधि अनुसार एसिड सेलिसिलिक (Acid Salicylic) मिलाया जाता है।

चिरस्थायी कषाय विधि—जिन क्वाथ आदिको टिकाऊ बनाना हो उनमेंसे किसी एकको चीनी या एनेमलके पात्रमें ६ पौण्ड डालकर गरम करें। स्नान करनेके अधिक गरम जलके समान गरम होनेपर १ ड्राम एसिड सेलिसिलिकको मिलाकर तुरन्त बिक्रीके डिब्बों या बोतलोंमें भरकर मजबूत डाट लगा देवें। फिर यह प्रवाही वर्षों तक मूल स्थितिमें रह जाता है।

इस तरह कषाय आदिको चिरस्थायी बनानेके लिये फार्मेसी वालों ने डाक्टरी औषधिकी शरण ली है। इस कषायके साथ जो एसिड सम्मिलित किया जाता है, वह एक प्रकारका मन्द विष है। अतः परिणाममें कितने ही व्यक्तियोंके लिये हानि भी पहुँचा देता है। अतः दीर्घकाल तक उपयोग करने वालोंको विचारपूर्वक लेना चाहिये।

संस्थाने इस पद्धतिको हानिप्रद समझ कर त्याग रखा है। अन्य विधि से तैयार करनेके परीक्षण चालू हैं।

एसिड सेलिसिलिकके सम्मिलनसे क्षुधानाश, मलावरोध और अतिसार क्रमशः होते रहना, त्वचापर रक्तविकारके धब्बे होना, वृक्कविकृति (मूत्रोत्पत्तिका ह्रास) और मानसिक निर्बलताकी संप्राप्ति होती है। अधिक

विकार होनेपर श्लैष्मिक त्वचामें प्रदाह शिरदर्द, रक्तदबावका ह्रास और रक्तसंचालनमें क्षीणता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कितने ही फार्मेसी वाले लोहबान अम्ल (बेन्झॉइक एसिड) फार्मल्डी-हाइड, सल्फाइट या क्लोरोफार्म का उपयोग करते हैं। किन्तु ये सभी रासायनिक द्रव्य स्वास्थ्यके लिए हितकर नहीं माने जायेंगे।

इनके अतिरिक्त क्वाथ आदिकी औषधि और एसिड सेलिसिलिक दोनोंके मिश्रणसें रासायनिक गुण क्या होता है? इस बातका भी विचार करना चाहिये। कहीं दोनोंमें विरोध होकर रोगीको विपरीत असर तो नहीं पहुँचाता? जैसे दूध और दही दोनों हितकर वस्तु होनेपर भी दोनोंको मिलाकर सेवन नहीं किया जाता। सेवन करनेमें विविध दोष शास्त्रकारोंने दर्शाया हैं।

क्वाथ कण—कुछेक विद्वानोंने क्वाथोंके कण (Crystals) तैंयार किये हैं। इनकी सेवनीय मात्रा ४ ६ रत्ती जितनी है। जिसे किसी भी स्थान पर २-४ तोले कदुष्ण जलमें मिलानेपर घुल मिलकर तैंयार हो जाती है। इनसे पैंकिंग, ईन्धन व समयकी बचत होकर यात्रादिमें क्वाथ सेवनकी सुविधा होती है। तथा गुणधर्ममें न्यूनता नहीं होती। हमारे यहाँ भी इसकी शोध चालू है। (संशोधक)

अस्तु—विशेषविवेचन और अन्य पाठोंके लिए "नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह" देखें जो कि संस्था द्वारा प्रकाशित इसी पुस्तकका अङ्ग है।

(१) दशमूल क्वाथ

विधि—बेलछाल, गंभारी छाल, पाढ़ल छाल, अरलू छाल, अरणीकी छाल, गोखरूका पंचाङ्ग, छोटी कटेलीका पञ्चाङ्ग, बड़ी कटेलीका पञ्चाङ्ग, पृष्ठपर्णीका पञ्चाङ्ग और शालपर्णीका पञ्चाङ्ग ये सब समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण कर लेवें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथकर दो हिस्से करके दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण अथवा घी मिलाकर पिलावें; रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—इस क्वाथका सेवन विविध अनुपानोंके साथ करनेसे यह वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातके लक्षण, कण्ठावरोध, हृदयावरोध, तन्द्रा, वातप्रकोप, शोथ, कफवृद्धि, श्वास, पसलियोंकी पीड़ा आदि तथा प्रसूताके मुखशोष, शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदिको दूर करता है।

दशमूल क्वाथ उत्तप, गर्भाशय शोधक, विषघ्न, आम विषहर, वातशामक, मस्तिष्क संरक्षक और शूलनाशक है। इसके सेवनसे किसी भी प्रकारकी हानि होनेकी संभावना नहीं है। फिर भी जिस सूतिकाको पित्तप्रकोप हो, मुखपाक, छातीमें जलन, अतिसार (पतले गरम दस्त लगना),

अति स्वेदस्राव, व्याकुलता, कण्ठशोष आदि लक्षण प्रतीत होते हों उसे दशमूलका सेवन न करना ही इष्ट माना जायगा।

दशमूलोंका संमिश्रण करके महर्षियोंने विश्वपर बड़ा भारी उपकार किया है। इन दिव्य औषधियोंके क्वाथका प्रयोग भारतके कई प्रान्तोंमें प्रसूताके गर्भाशय शोधनार्थ घरेलू प्रयोग रूपसे दीर्घकालसे हो रहा है। प्रसूतावस्थामें बहुधा गर्भाशयके विष और आमविषका शोषण रक्तमें होता रहता है। जिससे सामान्यतः वातवृद्धि या वातक्षोभ होता है, शरीर निरोगी और सबल हो तो आघात सहन हो जाता है। अन्यथा ज्वर, भ्रम, स्वेदवृद्धि, कास, श्वास, हृदयावरोध, तन्द्रा, प्रतिश्याय, मुखशोष गर्भाशय और पसलियोंमें पीड़ा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सबकी उत्पत्तिको रोकने और उत्पन्न हुये हों तो तुरन्त दबा देनेके लिये दशमूल क्वाथका प्रयोग कराया जाता है।

यदि प्रसव होनेके पश्चात् ८-१० दिन हो गये हों, गर्भाशयमें दोष शेष रह जानेसे या ससगज कीटाणुओंका प्रवेश हो गया हो, जिससे दुर्गन्धित रसस्राव हो रहा हो, ज्वर वेग १०२° से अधिक रहता हो, आक्षेप आ रहे हों ऐसी अवस्थामें गर्भाशयका स्थानिक संशोधन आदि उपचार करना चाहिये एवं प्रतापलकेश्वर आदि औषधिके साथ दशमूल क्वाथकी अनुपानरूपसे योजना करनी चाहिये।

सामान्यत: जीवनीय शक्तिकी क्रियाद्वारा सगर्भावस्थामें गर्भवृद्धि और गर्भसंरक्षणार्थ पोषक रसस्राव गर्भाशयमें होता रहता है। यह रस ग्रहण क्रियामें प्रसव हो जानेपर प्रतिबन्ध होता है और उसके प्रति बदलेमें यह स्राव स्तनोंकी ओर गति करता है। जिससे स्तनोंमें दुग्धोत्पत्तिके लिये दबाव बढ़ जाता है। इस कारणसे कई निर्बल सूतिकाओंको ज्वर आ जाता है। इस ज्वरका शमन दशमूल क्वाथसे हो जाता है।

गर्भाशयके भीतरकी वात नाड़ीपर प्रसवकालमें विष, कृमि, कीट या वातादिकका आघात पहुँच जानेसे कई स्त्रियोंको मक्कलशूलकी उत्पत्ति होती है। इस शूलसे सूतिकाको असह्य वेदना होती है। इसके शमनार्थ तैलमर्दन, सेक, उत्तर बस्ति या पिचु धारण आदि उपचारके साथ दशमूल क्वाथका सेवन कराते रहनेसे जल्दी रोगका शमन हो जाता है।

सूतिकाके अतिरिक्त विभिन्न प्रकारके वातप्रकोपज रोगोंपर भी दशमूल क्वाथका सेवन आशीर्वादके समान हितावह माना है। देहके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अकस्मात् शूल चलना, पर्श्व शूल, उदरशूल, हृदयाधरिक प्रदेशमें शूल, शिरशूल, अपचन जनित शूल, गृध्रसी, नाड़ीमेंशूल, वृक्क और बस्तिके भीतर वातज शूल आदि वातप्रकोपसह यह निर्भयरूपसे सफलतासह

व्यवहृत होता है ।

वातज्वर, कफज्वर वातकफज्वर, कफप्रकोप आदिमें भी दशमूल क्वाथ मुख्य औषधि रूपसे और अनुपान रूपसे बार-बार प्रयोजित होता है ।

अनुपान--(१) वातश्लेष्मज्वरमें--पीपलका चूर्ण ।

(२) सन्निपातपर--दशमूल, कचूर, कांकड़ासींगी और त्रिकटु मिला क्वाथ करके पिलावें ।

(३) ज्वर और कासमें--दशमूल, पीपल, धनियाँ और सोंठ मिला क्वाथ करें । फिर चातुर्जात मिलाकर पिलावें ।

(४) वातकफोल्वण सन्निपातमें—दशमूल, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय मिलाकर क्वाथ करें । शोधन करना हो तो निसोतके चूर्णका प्रक्षेप मिला देवें ।

(५) वातकफज्वर, अपचन, अतिनिद्रा, पार्श्वशूल, श्वास, कास, तन्द्रा कण्ठावरोध और हृदयावरोधमें—पीपलका चूर्ण ।

(६) सन्निपात, श्वास, कास और पार्श्वशूलपर—क्वाथके साथ पीपल और पुष्कर मूलका चूर्ण मिलावें ।

(७) कफज पाण्डु ज्वरातिसार, शोथ, संग्रहणी, कास, अरुचि, कण्ठावरोध और हृदयावरोधपर—सोंठ ।

(८)हृदयावरोधपर—जवाखार और सैंधानमक ।

(९) सूतिका रोगपर—(१) निवाये क्वाथमें घी मिला लें । (२) क्वाथमें लोहेको गर्म करके बुझावें । (३) शराब मिलाकर पिलावें । (४) दशमूलमें १६ गुना जल और ४ गुना दूध मिला सिद्धकर शक्कर मिलाकर पिलावें ।

(१०) जलोदरपर—दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, सफेद पुनर्नवा और हरड़का क्वाथकर पिलानेसे जलोदर, शोथ श्लीपद, गलगण्ड और वात रोग नष्ट होते हैं ।

(११) मुख रोगमें--दशमूल, मूंग और कुलथीको उबालकर निवाया निवाया पिलावें ।

(१२) बाधिर्य (बहरापन) में (१) इस क्वाथमें चतुर्थांश तिलके तैल को सिद्ध करके कानमें डालें । (२) दशमूल, त्रिफला कायफल और भारंगी का क्वाथकर त्रिकटु और हींग मिलाकर पिलावें ।

(१३) वातरक्तमें शूलपर—इस क्वाथके साथ दूधको सिद्ध करके पिलावें और दशमूलसे सिद्ध किये हुये घृतसे परिषेक करें ।

(१४) अपस्मार (हृदयकंप सहित) में--कल्याणघृतके साथ ।

(१५) गृध्रसी वातपर--भुनी हींग १ रत्ती और पुष्करमूलका चूर्ण २

माशे मिलाकर देवें ।

(१६) गृध्रसी और आमवृद्धि (कुक्षि, बस्ति और कटिस्थानके शूलसह) पर दशमूल, गिलोय, अरंडीकी जड़, रास्ना, सोंठ और देवदारुको मिला क्वाथकर अरंडीका तैल मिलाकर देवें ।

(१७) वातज मूत्राघातपर—शिलाजीत और मिश्री पिलावें ।

(१८) विस्फोटकमें—दशमूल, त्रिफला, चिरायता और धमासेका क्वाथकर पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावें ।

(२) अष्टादशांग क्वाथ

विधि—बेलछाल, गम्भारी, अरलू, पाढ़ल, अरनी, गोखरू छोटी कटेली बड़ी कटेली, पृष्ठपर्णी शालपर्णी काकड़ासींग पुष्करमूल कचूर, धमासा, भारंगी, इन्द्रजव, पटोलपत्र और कुटकी इन १८ औषधियोंको समभाग लेकर जौकुट करें । (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथकर दो हिस्से कर दिनमें २ बार दें ।

उपयोग—अष्टादशाँग क्वाथमें उत्तेजक, कफघ्न, आमपाचन, विरेचन वातहर और विषनाशक गुण है । यह क्वाथ सन्निपात ज्वरको दूर करनेमें उपयोगी है । इसके सेवनसे सन्निपातमें खांसी, हृदयावरोध, पसलियोंकी पीड़ा, श्वास, हिक्की और वमन आदि लक्षण दूर हो जाते है । यदि मल-शोधन कार्य अपूर्ण हो या न हुआ हो तो कुटकीकी मात्रा बढानी चाहियें अथवा बस्ति देकर जल्दी अन्त्रको शुद्ध बना लेना चाहिये ।

अष्टादशांग क्वाथ बालक, युवा वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता आदिके लिये निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है । इसका प्रयोग भारतके सब प्रान्तोंमें सर्वदा होता रहता है । दशमूल क्वाथकी १० औषधियोंके साथ आमपाचन और कफघ्न गुण प्रधान ८ औषधियोंको मिलाकर इस अष्टादशांगकी योजना प्राचीन आचार्योंने की है ।

त्रिदोषज ज्वरमें वातप्रकोपके साथ आम विष और दूषित कफ विशेष परिमाणमें संगृहीत हो गये हों, रोगी अधिक घबरा रहा हो, अपचन, मलावरोध, कास, श्वास, हृदयावरोध, पार्श्वशूल, हिक्का आदि लक्षण प्रतीत होते हों तब इस क्वाथका सेवन प्रधानरूपसे या अन्य रस आदि औषधिके साथ अनुपान रूपसे कराया जाता है ।

दूसरी विधि—दशमूल, देवदारू, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल इन १८ औषधियोंको समभाग मिलाकर क्वाथ करें ।

मात्रा—२ से ४ तोले । दिनमें बार दो हिस्से करके देवें ।

उपयोग—यह क्वाथ, तन्द्रा; प्रलाप, खांसी, अरुचि, दाह, मूर्च्छा और

श्वास आदि लक्षणों सहित सन्निपातको दूर करता है।

(३) लघु मंजिष्ठादि क्वाथ

विधि—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, गिलोय और नीमकी अन्तरछाल इन ९ औषधियोंको समभाग मिला लें।

(शा० सं०)

वक्तव्य—कई ग्रन्थकारोंने "नवकार्षिक क्वाथ" संज्ञा दी है।

मात्रा—१ से २ तोलेका क्वाथ बना सुबह पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ रस, रक्त आदि सप्त धातुओंका शोधन करता है। तथा पचन संस्थान गत आम, विष कीटाणुओंको नष्ट करता है। पुराने मल आदिको निकाल, रोगके मूल कारणको दूरकर उदरको शुद्ध बनाता है। इस हेतुसे कण्डु आदि त्वचा रोग, आमवात तथा वातरक्त, पामा, कुष्ठ, उपदंश, सुजाक आदि रक्तविकार मय रोगोंको पोषण मिलना बन्द हो जाता है और वे सरलतासे दूर हो जाते हैं।

(४) बृहत् मंजिष्ठादि क्वाथ

विधि—मजीठ, नागरमोथा, कूड़ेकी छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेली पञ्चांग, बच, नीमकी अन्तरछाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसेके पत्ते, भांगरा, देवदारु, पाठा, खैरछाल, लाल चन्दन, निसोत, वरनेकी छाल, चिरायता, बावची, अमलतास का गूदा, सहोडेकी छाल, बकायन, करंजकी छाल, अतीस, नेत्रबाला, इन्द्रायणकी जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा सब समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण तैयार करें। (शा० सं०)

मात्रा—½ से १ तोलेका क्वाथकर सुबह पीपलका चूर्ण और गूगल मिलाकर पीवें। शामको पुनः नया बनाकर पीवें।

उपयोग—यह क्वाथ कुष्टरोग, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद, अंग शून्यता, पक्षाघात, मेदरोग और नेत्र रोगका नाश करता है। रक्तशुद्धिके लिये अति उपयोगी है। विशेषतः यह क्वाथ गन्धक रसायन या हरतालमेंसे बनाये हुए माणिक्य रसके साथ कुष्ठादि रोगोंपर प्रयुक्त किया जाता है। मेदोवृद्धि में महायोगराज गूगलके साथ दिया जाता है। इस क्वाथका प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्तमें दीर्घकालसे हो रहा है। यह रक्तविकार प्रधान रोगोंमें निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। इसका सेवन सब प्रकृतिके स्त्री पुरुषोंको सब ऋतुओंमें कराया जाता है।

यह क्वाथ उत्तम रक्तशोधक, सारक, कीटाणुनाशक, विषहर, आमपाचक, कफघ्न, पित्तशामक, वातहर और धातुगतज्वरका नाशक है। इसके सेवनसे पचन संस्थानमें रहे हुये कृमि, कीट और आमविष जलते

रहते हैं और उदर शुद्धि होकर बाहर निकलते रहते हैं। क्वाथका प्रधान द्रव्य रक्तमें प्रवेश करके रक्तशोधन करता रहता है। तथा वातनाड़ियोंको पुष्ट करता रहता है। इसी हेतुसे रक्त दूषित होकर होनेवाले कुष्ठ, वातरक्त और श्लीपद आदि रोग दूर होते हैं एवं अङ्गशून्यता वातनाड़ी-विकृति और मस्तिष्ककी उष्णताकी निवृत्ति होती है। महाकुष्ठ (Leprosy) की प्रबलावस्थामें भी इस क्वाथका सेवन माणिक्य रस (हरताल) के साथ कराते रहनेसे रोग वशमें आ जाता है। फिर अधिक गति नहीं करता। इसी तरह वातरक्तकी आशुकारी और जीर्णावस्था दोनोंपर इस क्वाथका प्रयोग होता है। इसके सेवनसे वेदनाका थोड़े ही समयमें ह्रास होता है। संगृहीत विष मूत्र मार्गसे बाहर निकलता रहता है और २-३ मासमें दूर हो जाता है।

अन्तर्विद्रधि आदि रोगोंमें रक्तमें विष या पूय प्रवेश होता रहता है जिसमें मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है और थोड़े थोड़े दिनमें विष-संग्रह होकर ज्वर बढ़ता रहता है। इस विकारको नष्ट करने तथा धातुगत लीन विष, पूयको जलानेके लिये पथ्य पालनसह माणिक्यरस, प्रवालपंचामृत और सुवर्णवंगके साथ मंजिष्ठादि क्वाथका सेवन कराते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग-बलका दमन हो जाता है और २-४ मासमें रोग दूर हो जाता है। जीर्ण श्लीपद रोगमें जब रक्तके भीतर विष संगृहीत हो जाता है। तब ज्वर आ जाता है और वेदनाकी वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्थामें वृद्धदारुकादि चूर्णके साथ मंजिष्ठादि क्वाथका सेवन करानेसे १-२ दिनमें वेदनासह ज्वर दूर हो जाता है।

सूचना—(१) यह क्वाथ अन्त्रमें शोधन कार्य करता है। इस हेतुसे जिनकी प्रवाहिका रोग हो गया हो अथवा अन्त्र निर्बल हो, उनसे अधिक मात्रा सहन नहीं होती उनको मात्रा कम देवें। एवं द्विदल धान्य, कन्द, शाक, भारी भोजन आदि अनाज पदार्थोंसे आग्रह पूर्वक रोकें।

(२) ग्रीष्म ऋतुमें इसका सेवन कम मात्रामें करावें।

(३) धूम्रपान, गरम चाय, शराब आदिका व्यसन हो तो त्याग करें। माँसाहारका व्यसन हो तो छोड़ दें।

(५) अमृताष्टक क्वाथ

विधि—नीमगिलोय, नीमकी अन्तरछाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ सोंठ, पटोलपत्र और लालचन्दन आठ वस्तुएं समभाग लेकर २ से ३ तोले तकका क्वाथ करें। दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावें।

(शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तज्वर, वमन अरुचि, दाह, तृषा आदि विकारों

को दूर करता है। यह अमृताष्टक क्वाथ आचार्य शार्ङ्गधरने पित्तज्वरके रोगियोंके लिए कहा है। पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको ज्वरके साथ प्रायः मलावरोध, दाह, तृषा, वमन, अति प्रस्वेद आना, अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे लक्षण युक्त नूतन ज्वरके विषको यह क्वाथ तत्काल दूर करता है।

इस क्वाथमें कुटकी मिलायी है जो अति कड़वी होती है। इस हेतुसे क्वाथका स्वरस अति कडुवा हो जाता है। कुटकी मलावरोधको दूर करनेमें उपकारक है। यदि मलावरोध न हो, पतले गरम दस्त होते हों तो कुटकी नहीं मिलानी चाहिए। एवं वमन न हो तो नागरादि पाचन चतुर्थ विधि वाला देना चाहिये। जब शिरदर्द, व्याकुलता, तृषा, मलावरोध, बार-बार वमन होना, अति स्वेद आदि लक्षणों सह ज्वर हो तब इस क्वाथ के सेवनसे लाभ मिलता है।

सूचना—यदि रोगीको मलावरोध न हो, पतले दस्त दुर्गन्ध रहित होते हों, तो कुटकी मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। उदर शोधन करना हो तो ही कुटकी मिलानी चाहिये।

(६) कंटकार्यादि क्वाथ

विधि—छोटी कटेली, बड़ी कटेली, सोंठ, धनियाँ और देवदारु, पांचोंको समभाग मिला २ से ४ तोले तकका क्वाथ करें। दिनमें २ बार पिलावें।
(शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ नूतन ज्वरोंमें कच्चे दोषको पकानेमें उपयोगी है। इसको "नागरादि पाचन" भी कहते हैं।

इस नागरादि पाचनमें ५ सामान्य वनोषधियां मिलाई हैं। किन्तु यह उत्तम लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस क्वाथका उपयोग भारतके सब प्रान्तोंमें होता रहता है। वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज आदि नूतन ज्वर, जो आम विषके हेतुसे उत्पन्न हुए हों, उनको दूर करनेके लिए यह श्रेष्ठ और निर्भय है। यदि लङ्घन करानेके साथ इस क्वाथका सेवन कराया जाये तो सब कच्चे दोष पक जाते हैं जिससे ज्वर कदापि कुपित नहीं होता एवं सरलता से काबूमें आजाता है।

इस क्वाथके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त होती है। पचन संस्थानस्थ उत्तान आम और मल पक जाता है। रस, रक्त आदि धातुओंके भीतर प्रवेशित और लीन हुआ बिष जलकर नष्ट हो जाता है। फिर धातु निर्विष बन जाती है। यह बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता, कोमल स्वभाववाली स्त्रियां सबके लिए उपकारक है।

(७) नागरादि क्वाथ

प्रथम विधि--सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवले, पाठा, कमलनाल और नेत्रबाला १-१ तोला लेकर क्वाथ करें। २ हिस्से कर सुबह शाम ३ माशे मिश्री और ६ माशे शहद मिलाकर पिलावें। (हा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तकफज्वर और रक्तदोषको दूर करता है और पाचन-क्रियाको सुधारता है।

दूसरी विधि—सोंठ, गिलोय, कटेलीकी जड़, नागरमोथा और आंवले प्रत्येक १-१ तोले मिलाकर क्वाथ करें। २ हिस्से करके शहद पीपल मिला कर सुबह शाम पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ विषमज्वरोंको रोकता है और पाचन-क्रियाको सुधारता है।

तीसरी विधि-- सोंठ, गिलोय, चिरायता, बेलगिरी, नेत्रबाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और खस इन ९ औषधियोंको समभाग लेकर जोकूट चूर्ण करें। फिर ३ से ६ तोलेका क्वाथ बना, ३ हिस्सेकर, ३ बार पिलावें। (च० द०)

उपयोग—यह क्वाथ ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, शिरदर्द और दाहको दूर करनेमें लाभदायक है। यदि यह क्वाथ सर्वाङ्गसुन्दर रसके साथ ज्वरातिसारमें दिया जाय तो सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(८) पंचमूलादि क्वाथ

विधि—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेलो, गोखरू, गिलोय नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इन ९ औषधियोंको समभाग लेकर जोकूट चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह वातपित्तशामक, आमपाचक, विषहर और ज्वरघ्न है। यह कषाय वातपित्त-ज्वरमें कच्चे दोषोंको पका सोपद्रव ज्वरको जल्दी नष्ट करता है।

यह क्वाथ उत्तम आमपाचक है। नूतन ज्वर, अपचन जनित ज्वर, वात प्रधान और कफप्रधान ज्वर-पीड़ितोंको ज्वरावस्थामें दोष-पचन करानेके लिए इसका प्रयोग कराया जाय तो ज्वर निःसंदेह कुपित नहीं होता, सरलतासे दूर हो जाता है। रोग-निरोधक शक्ति सबल होती है और ज्वर जानेके पश्चात् पुनः शक्ति वृद्धि और पचनक्रियाकी वृद्धि हो जाती है।

(९) मधुरज्वरान्तक क्वाथ

विधि—रक्तचन्दन, नेत्रबाला, खस, धनियां, पित्तपापड़ा, नागरमोथा

और सोंठ इन सब औषधियोंको समभाग मिलाकर जोकुट चूर्ण करें।
(यो० र०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ पाचन, कीटाणुनाशक, आमविषहर और शामक है। लक्ष्मीनारायण रस या संजीवनी वटीके साथ इसका सेवन अनुपान रूपसे कराते रहनेसे दबे या विलीन हुए मधुराके दाने जल्दी बाहर निकलकर बिना त्रास दिये मोतीझरा दूर हो जाता है।

अपथ्य सेवन, क्विनाइन आदि बिरोधी औषधिका प्रयोग अथवा अन्य कारणोंसे कुपित हुए मोतीझरेके कई रोगियोंको लक्ष्मीनारायण या अधिक पित्तप्रकोप होनेपर सूतशेखरके साथ इस क्वाथका सेवन कराया है। परिणाममें निराश हुए कई रोगियोंको जीवनदान मिलनेके उदाहरण मिले हैं।

सूचना—(१) आमाशयमें सरलतासे पचन हो ऐसा प्रकृतिके अनुकूल आहार (दूध, फलोंका रस या निम्बायवश मूंगका यूष) देते रहनेसे रोग सरलतासे काबूमें आ जाता है।

(२) अन्त्रकी ग्रन्थियोंकी विकृति बहुधा इस रोगमें होती है। अतः अन्त्रको अधिक कष्ट न हो, यह सम्हालना चाहिए।

(३) गरम चाय, मिर्च-मसाला, बीड़ी, सिगरेट आदिसे रोगीको बचाना चाहिए। ज्वर बने रहने तक अन्नाहार नहीं देना चाहिये।

(१०) देवदार्वादि क्वाथ

विधि—देवदारु, दारुहल्दी, पीपल, चिरायता इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतासका गूदा, पाठा, पद्माख, कूड़ेकी छाल, धनियां, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कालीमिर्च, पियाबांसाकी छाल, कुटकी, धमासा, गिलोय, एरण्डकी जड़, छोटी कटेली, हरड़ और पित्तपापड़ा इन २३ औषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वै० सा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके सुबह-शाम शहद-पीपल मिलाकर पिलाते रहें।

उपयोग—यह क्वाथ ज्वरकी जीर्णावस्थामें उपकारक है। धातुगत-ज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर, त्रिदोष ज्वर, भूतज्वर आदि ज्वरोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है। आमाशय और अन्त्रका शोधन करता है, यकृत् और प्लीहावृद्धिको दूर करता है तथा पाचन-क्रियाको प्रबल बनाता है।

(११) कुटजादि कषाय

विधि—कूड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर जोकूट चूर्ण करें। (बृन्द)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्से करके दिनमें ३ बार मिश्री और शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह कषाय मलको बाँधता है, तथा पित्तकफज अतिसारका शीघ्र शमन करता है।

(१२) त्रिकण्टकादि क्वाथ

विधि—गोखरू, अमलतासका गूदा, दर्भमूल, कासमूल, धमासा, पाषाणभेद और हरड़ सबको समभाग मिलाकर ४ तोलेका क्वाथ करें और शहद मिलाकर पिलावें। (भै० र०)

उपयोग—यह क्वाथ अश्मरी (पथरी) और भयङ्कर मूत्रकृच्छ्र रोगको दूर करता है। तीव्रावस्थामें आवश्यकतापर दो घण्टे बाद दूसरी बार पिलावें।

वृक्कस्थानमें अश्मरी हो गई हो, उसके अणु या ऊपरकी नलिकामेंसे अश्मरी कण आकर वृक्कमेंसे मूत्राशयमें जाने वाली नलिकामें फँस जाता है, तब भयङ्कर वृक्कशूल उत्पन्न होता है। साथ-साथ अति व्याकुलता, बारम्बार वमन होना और निर्बलता आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें अश्मरी कणको पिघलाकर मूत्राशयमें फेंक देनेकी योजना करनी चाहिये। यह कार्य हजरूलयहूद चूर्णके साथ इस क्वाथके सेवनसे सरलतासे हो जाता है। तीव्रावस्था शमन होनेके बाद अश्मरीकी उत्पत्ति रोकनेके लिये शिलाजीत या चन्द्रप्रभाके साथ इस क्वाथका सेवन दिनमें २ बार २-३ मास तक कराया जाता है।

सूचना—यदि धूम्रपानका व्यसन हो तो उसे छोड़ देना चाहिये। यकृत् निर्बल है तो घृत-तैलादिका सेवन कम करना चाहिये और उसे सबल बनानेके लिये चित्रकादि वटी या पिप्पल्यासव, चविकारिष्ट या अन्य औषधिका सेवन करना चाहिये।

(१३) जातिपत्रादि क्वाथ

विधि—चमेलीके पत्ते, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आंवलाको बराबर लेकर जौकूट चूर्ण करें। (वं० से०)

उपयोग—इस चूर्णका क्वाथ बना शीतल करके कुल्ला करनेसे मुंहके छाले दाह, मसूढ़ेका शोथ और कण्ठदोष दूर होते हैं।

पारद प्रधान औषधि अथवा दाहक, तीक्ष्ण या अति उष्ण पदार्थके सेवनसे मुंहमें क्षत हो जाते हैं। उसपर यह क्वाथ लाभ पहुँचाता है। यदि रोग जीर्ण होनेसे क्षत पूयमय बन गया हो तो इस क्वाथका उपयोग दिनमें ३ या अधिक बार करते रहनेपर १०-२० दिनमें क्षतका रोपण हो जाता है।

सूचना—(१) भोजन करनेके पहले क्षतपर रहे हुए पूयको कुल्ले करके

दूरकर देना चाहिये। एवं भोजनके आध घण्टे पश्चात् पुनः कुल्ले कर लेना चाहिये। ताकि अन्नके छोटे कण जो क्षतपर लग गये हों, वे सब साफ हो जायँ।

(२) पूयका प्रवेश आमाशयमें न हो इस बातको पूर्ण रूपसे सम्हालना चाहिये। अन्यथा आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें पूयप्रधान क्षत हो जायगा। फिर आमाशयमें वेदना, उबाक, वान्ति और दाह आदि लक्षण उपस्थित होंगे और पचन क्रिया विकृत हो जायगी।

मधुमेहादि रोगोंसे उत्पन्न कोथ (Gangrene) प्रधान क्षत हो तो मूल रोगको दूर करनेवाली ओषधिके सेवनके साथ इस क्वाथसे बारंबार गण्डूष करते रहना चाहिये। यदि कोथ अधिक गहरा हो गया हो तो उस स्थानको प्रतिसारणीयक्षारके जल द्वारा जलाकर इरिमेदादि तैलके गण्डूष कराये जाते है। ऐसी अवस्थामें इस क्वाथका उपयोग बहुत कम होता है।

(१४) महारास्नादि क्वाथ

विधि— रास्ना ५० तोले मतान्तरमें २ तोले, धमासा, खरेंटी, अरण्डी की जड़, देवदारु, कचूर, बच, अडूसेके पत्ते सोंठ, हरड़, चव्य, नागरमोथा सांठी (पुनर्नवा) की जड़ गिलोय, विधारा सोंफ गोखरु, असगन्ध अतीस अमलतासका गूदा, शतावर, पीपल, पियावाँसा, धनियां छोटी कटेली और बड़ी कटेली ये सब १-१ तोला मिलाकर जोकूट चूर्ण करें। (शा० सं०)

महारास्नादि क्वाथके पाठके आरम्भमें 'रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागा स्ततः परे, यह बचन शार्ङ्गधर संहितामें है। वंगसेननें "समभागान्वितैरेते रास्ना त्रिगुण भागिकैः" यह वचन लिखा है। इन वचनोंपरसे टीकाकारोंमें मत भेद होता है। किसीने २ या ३ तोला रास्ना ली है, किसीने ५० या ७५ तोले रास्ना लेना हितावह माना है। रास्ना वातशामक है। रास्ना प्रधान औषध है, वह अधिक मात्रामें हो तो वात रोगीके लिये हितावह है।

मात्रा—२॥ तोले चूर्णका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावें। इस क्वाथके साथ अजमोदादि चूर्ण या सोंठ अथवा पीपलका चूर्ण अथवा अरण्डी का तैल मिला लेवें या योगराज गूगलके साथ दें।

उपयोग—यह क्वाथ वातरोगकी तीव्रावस्थामें विशेष उपकारक है। अनेक प्रकारके वातरोग—सर्वांगवात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात गृध्रसी कमर जंघा आदि स्थानोंमें फिरता वात, श्लीपद, आमवात, अन्त्र वृद्धि, पक्षाघात अपतानक, कुब्जवात, मूत्राशय और वीर्याशयमें रही हुई वायु, अफारा, स्त्रियोंके योनिदोष, बन्ध्यादोष आदिको नाश करता है।

वातरोगकी संप्राप्ति वातवहासंस्थामें विकृति होनेपर होती है। वात-नाड़ियोंके प्रदाह होनेपर बहुधा वातरोगकी उत्पत्ति हो जाती हैं। जिस

स्थानकी वात नाड़ियाँ दूषित हों उस स्थानमें रोगोत्पत्ति होती है। फिर स्थान भेदसे नाम भेद होता है। विविध स्थानोंके वातरोगोंमें मुख्य विकृति वातनाड़ियोंकी होती है। इस हेतुसे सब प्रकारके वातरोगोंपर यह क्वाथ व्यवहृत होता है। यदि वातनाड़ियोंकी विकृतिके साथ वातनाड़ीकेन्द्रका घात होकर पक्षवध हो गया हो तो वातरोग असाध्य हो जाता है।

वातरोगकी उत्पत्ति होनेमें आमप्रकोप और रक्तमें विषवृद्धि भी कारण होते हैं। वातशमनके साथ उन कारणोंको भी दूर करना चाहिये। इस हेतुसे रास्नाके साथ सहायकरूपसे दीपन-पाचन आमशोषक, मूत्रल और कफघ्न औषधियोंका मिश्रण किया है। जिससे यह क्वाथ आशुकारी वातप्रकोपमें तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है।

गृध्रसी नाड़ी जो नितम्ब प्रदेशमें रहती है और नीचे पैरोंकी ओर गति करती है, उसमें प्रदाह होनेपर कटिप्रदेश, नितम्ब पैरोंकी पिछली जंघा और टखने आदिमें शूल निकलता है; पैरोंमें खिचाव होता है और पैर जकड़ जाते हैं। ऐसी अवस्थामें एरण्ड तैलके साथ यह क्वाथ देनेसे उदरशुद्धि होकर वात शमनमें सहायता मिल जाती है। इसके सेवन करनेपर भी शूल शमन न हुआ हो तो शूलशमन और निद्रा लानेके लिये अफीम प्रधान औषधि निद्रोदय रस महावातराज रस या समीरगजकेसरी या अन्यका सेवन कराया जाता है। अति तीव्रशूल न हों तो महावातविध्वंसन रस प्रदाह शमनार्थ रास्नादि क्वाथके साथ दिया जाता है। देह अधिक मेदमय हो या आम प्रकोप हो तो महायोगराज गुग्गुलुके साथ महारास्नादि क्वाथ देना चाहिये।

वातनाड़ियां जो ऐच्छिक मांसपेशियोंका संचालन करती हैं और चेतना प्रदान करती हैं, उनको शीत लग जाने, मानसविकृति उपदंशादि रोगोंमें विष प्रकोप और मधुमेहमें रक्तके भीतर विषकी अति वृद्धि होकर रक्तदवाव अत्यधिक हो जानेपर वे नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। फिर आक्षेप आकर पक्षाघात हो जाता है। संचालक नाड़ियोंका वध हो जानेपर मांसपेशियाँ क्रिया करनेमें असमर्थ हो जाती हैं। वातनाड़ी विकृतिके साथ साथ कतिपय छोटी मोटी रक्तवाहिनियां टूट जाती हैं फिर मस्तिष्कगत वातकेन्द्रमें रक्त दवाव बढ़ जाता है। यह रक्तसंग्रह ज्ञानकेन्द्रके पास हो तो चेतनानाड़ियोंसे बोध होने वाले ज्ञान-शीत, उष्ण, सूची आदिके स्पर्शका ज्ञान नहीं होता।

यह विकार तुरन्त दूर नहीं होता तो दीर्घकाल स्थायी बन जाता है। प्रारम्भिक अवस्थामें चन्द्रप्रभा, शिलाजीत अथवा योगराज गुग्गुलुके साथ इस क्वाथका (एरण्ड तैल मिश्रित) सेवन कराया जाय तो लाभ हो जानेकी आशा रख सकते हैं: इसके सेवनसे वातनाड़ियांकी विकृति दूर होती है, मस्तिष्कका दबाव कम हो जाता है; रक्तप्रसादनमें सहायता मिल जाती है। फिर रक्तवाहिनियोंका संधान सरलतासे हो जाता है।

यदि फिरंग, सुजाकादिके कीटाणुविष या मधुमेहज विषके हेतुसे वात-रोग हुआ हो तो उन मूल रोगोंके कीटाणु या रोगारम्भ द्रव्यको दूर करें, ऐसी चिकित्सा भी साथ साथ करनी चाहिये। इन सब रोगोंपर गुग्गुलु, शिलाजीत सह इस क्वाथका सेवन दीर्घकाल पर्यन्त पथ्यपालनपूर्वक कराना चाहिये। जिससे पुनः आक्षेप आकर पक्षाघात न हो जाय।

कभी-कभी प्रसूताकी योग्य सम्हाल न रहनेपर प्रजनन मार्गसे गर्भाशय में कीटाणुओंका प्रवेश होकर वहां सड़ाव उत्पन्न होता है। फिर उसमेंसे विषका शोषण रक्तमें होनेपर आक्षेप आने लगते हैं। शीतसह ज्वर १०२° से १०४° तक बढ़ जाता है। फिर अति स्वेद आकर वह शमन हो जाता है। किसी किसीको प्रलाप होता है; दांत बार बार भिचते हैं और बेहोशी आजाती है। इस अवस्थामें कालकूट रस या महावातविध्वंसन रसके साथ इस क्वाथका सेवन करानेपर तुरन्त लाभ हो जाता है। फिर ४-६ दिन तक गर्भाशयमें नतादि तैलकी बस्ति देकर उसे शुद्ध कर लेना चाहिये।

देहके किसी भी भागमें चोट लगकर पूयपाक हुआ हो या विद्रधि होकर उसके विषका संचार रक्तमें होता है तो आक्षेप आने लगते हैं। उस अवस्था में स्थानिक कीटाणुनाशक उपचारके साथ उदर सेवनार्थ यह क्वाथ शिला-जीत, वंगभस्म और शृङ्गभस्मके साथ दिया जाता है। यदि रोगी मधुमेह पीड़ित हो तो शिलाजीत और महावातराजके साथ इस क्वाथका सेवन कराया जाता है। आमाशयमें वातप्रकोप होनेपर आमाशय शिथिल बन जाता है और उसमें वायु भरी रहती है। वह बारम्बार बड़ी जोरोंसे डकार आकर बाहर निकलती रहती है। वायु निकले तब तक व्याकुलता भासती है और आमाशयमें भारीपन रहता है। इस विकारमें पचन-क्रिया मन्द हो जाती है। मलावरोध बना रहता है। यह विकार दीर्घकाल स्थायी है। यदि इसका उपचार प्राथमिक अवस्थामें रौप्यभस्म शङ्खभस्म और अजमो-दादि चूर्णके साथ इस क्वाथका सेवन कराया जाय तो लाभ हो जाता है। रोग जीर्ण होनेपर कुचिलाप्रधान औषधिके साथ इस क्वाथका सेवन दीर्घ-काल पर्यन्त कराना पड़ता है। मात्रा कम देनी चाहिये। भोजन भी दिनमें ४ बार थोड़ा-थोड़ा कराते रहनेसे आमाशयको कष्ट नहीं पहुँचता।

यदि अन्त्र चौडे और शिथिल हो गये हों तो अन्त्रमें अफारा आता रहता है; अपानवायु सरलतासे नहीं सरती; मलावरोध और व्याकुलता रहती है ऐसी अवस्थामें इस क्वाथके साथ हरड़ और हिंग्वाष्टक या शिवाक्षार-पाचन चूर्ण देते रहनेसे कुछ दिनोंमें लाभ पहुँचता है।

मूत्राशयकी वातनाड़ियाँ शिथिल हो जानेपर उसकी मांसपेशियाँ योग्य कार्य नहीं कर सकती, मूत्राशय फूला हुआ रहता है, मूत्र त्यागमें कष्ट पहुँ-चता है। उसपर चन्द्रप्रभा या शिलाजीतके साथ इस क्वाथका सेवन १-२

मास तक करानेपर रोग निवृत्त होकर मूत्राशय सबल बन जाता है।

वीर्योत्पादक ग्रन्थियां या वीर्याशयकी वातनाड़ियाँ शिथिल बननेपर उस स्थानमें वायु भरी रहती है। फिर पतले, उष्ण-वीर्यका स्राव बार-बार होता रहता है; मनमें कामोत्तेजनाका विचार आने, स्त्री स्पर्श होने या स्त्री दर्शन होने मात्रसे तत्काल वीर्य निकल जाता है। वीर्यको धारण करनेकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। इस रोगपर वीर्य शोधन वटी या शिलाजीतके साथ इस क्वाथका सेवन २-३ मास तक ब्रह्मचर्यके पालनसह करानेपर रोग निवृत्त हो जाता है।

संक्षेपमें किसी भी स्थान या प्रकारके वातरोगपर यह क्वाथ मुख्य औषधि रूपसे अथवा अनुपान रूपसे व्यवहृत होता है। इसके सेवनमें किसी भी प्रकारकी हानिका भय नहीं है। यह बालक, युवा, वृद्ध, प्रसूता और सगर्भादि सबको निर्भय रूपसे दिया जाता है।

(१५) पर्पटादि क्वाथ

विधि—पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्से करके सुबह शाम पिलावें। इसे "पंचभद्रादि क्वाथ" भी कहते हैं। (वृ० मा०)

उपयोग—यह क्वाथ उदरस्थित दोषका पचन करा वातपित्त ज्वरको समस्त लक्षणोंसह दूर करता है।

(१६) दार्व्यादि क्वाथ

विधि—दारुहल्दी, रसौंत, नागरमोथा, भिलावा, बेलगिरी, अडूसेके पत्ते और चिरायता सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमें से २॥ तोलेका क्वाथकर दिनमें दो बार शहद मिलाकर पिलावें। भिलावेके स्थानमें अनेक चिकित्सक रक्तचन्दन लेते हैं। (शा० सं०)

उपयोग—इस क्वाथके १ मास सेवनसे स्त्रियोंके प्रदर रोग शूल सहित नाश होते हैं। फिर गर्भाशय सुदृढ़ बनकर मासिक धर्म नियमित समयपर साफ आता है।

यह क्वाथ प्रजननयन्त्रके शोधनार्थ प्रयुक्त होता है। जब बीजाशय या बीजाशयनलिका या गर्भाशयमें विकार उत्पन्न होता है, तब प्रदर उत्पन्न होता है, वह दृढ़ मूल बननेपर रक्तमें विष शोषित होता रहता है। फिर शारीरिक निर्बलता, दृष्टिमांद्य, कटिवेदना, शिरदर्द, मन्दज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह क्वाथ प्रजनन यन्त्रके सर्व अवयवोंको बल देता है, दोषको जलाता है और प्रदरको दूर करता है। नये और पुराने रोग, सब पर यह लाभ पहुँचाता है। यदि गर्भाशयमें क्षत (Ulcer) होकर दूषित स्राव होता हो तो उसे भी यह दूर करनेमें सहायता पहुँचाता है। ऐसी अवस्थामें धातक्यादि तैल या नतादि तैलकी पिचकारी

भी लगाते रहना चाहिये।

यदि गर्भाशयमें कर्कस्फोट (Cancer) हुआ हो और नया रोग हो तो चन्द्रप्रभा वटी के साथ इस क्वाथका सेवन करानेसे लाभ पहुँच जाता है।

(१७) स्तन्यशोधक क्वाथ

विधि—अनन्तमूल, पाढ, देवदारू, चिरायता, मोरबेल, कुटकी, गिलोय, तगर, सोंठ, नागरमोथा और इन्द्रजो सबको समभाग लेकर जोकूट चूर्ण करें।

मात्रा—२-२ तोले चूर्णका क्वाथ दिनमें २ बार माताको पिलाते रहनेसे दूध शुद्ध होता है और बालककी प्रकृति स्वस्थ रहती है।

उपयोग—कई माताओंके रक्तमें जीर्ण उपदंश, सुजाक आदि रोगोंका विष होता है और कईयोंके अम्लपित्त और आमाशय या अन्त्रमें क्षत होनें पर रक्तमें कच्चे रसका प्रवेश होकर स्तन्य अशुद्ध और विषमय बनता है। जिसके सेवनसे शिशु अस्वस्थ रहता है। और कई शिशुओंको १-२ वर्षके भीतर ही मृत्यु हो जाती है। ऐसी माताओंके स्तन्यका शोधन करनेके लिये यह क्वाथ बहुत उपयोगी है। यदि पथ्यपालन सह मूल रोगका उपचार भी साथ-साथ किया जाय तो स्थिर लाभ पहुँच जाता है।

(१८) रजःप्रवर्तक क्वाथ

विधि—चौलाईकी जड़, गुलाबके पत्ते और तेलिया गेरू ६-६ माशे, कपासकी जड़ १।। तोला और ३ वर्षका पुराना गुड़ २ तोले लेवें। सबको ३ पाव जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेंपर छान लेवें। (श्री पं० मंगुलाल जी)

उपयोग—इस क्वाथको ३ दिन तक रोज सुबह पिलानेसे मासिकधर्म साफ खुलकर आ जाता है। रुका हुआ दोष दूर होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। यह क्वाथ सामान्य औषधियोंसे बना है, तथापि दिव्य गुणप्रद सिद्ध हुआ है। कई पीड़ित स्त्रियाँ जिनको मासिकधर्मके समय भयंकर कष्ट होता था मासिकधर्म अनियमित समयपर दुर्गन्धयुक्त आता था, उनको इसका सेवन कराया गया। परिणाममें अच्छा हुआ और वे सब रोग मुक्त हो गई है।

यदि इस क्वाथके साथ रजोदोषहर वटीका सेवन कराया जाय तो लाभ जल्दी मिलता है।

सूचना—मलावरोध रहता हो तो मासिकधर्म आनेपर उदरशुद्धि कर लेनो चाहिये। मासिकधर्ममें विकृति होनेपर ३ दिन स्नान नहीं कराना चाहिए। अन्यथा रजःस्रावमें रुकावट होती है। आवश्यकतापर गर्भाशय और बीजाशयपर एरण्ड तैल लगा, कपड़ा रखकर, गरम जलकी थैलीसे सुबह और रात्रिको २०-२० मिनट तक सेक करना चाहिए।

(१९) उपदंशहर क्वाथ

प्रथम विधि—कटेली पंचांग २० तोले, बबूलकी कच्ची फली सूखी २० तोले, इन्द्रायणके फल, इन्द्रायणकी जड़, बड़ी हरड़, सौंफ, कचनारकी छाल, नीमकी अन्तरछाल, छोटे बेरकी जड़की छाल और दश वर्षका पुराना गुड़ ये आठ औषधियां १०-१० तोले, दन्तीमूल ५ तोले और बेख जुलाब (काले दानेकी जड़) १ तोला लें। सबको जौकूटकर ३२ सेर जलमें मिलाकर मिट्टीके घड़ेमें उबालें। लगभग ४ सेर जल शेष रहनेपर उतार, मसलकर छान लें। इस तरह ४ बार छाननेसे अति स्वच्छ जल हो जाने पर बोतलोंमें भर लें। (स्वामी जगदानन्द गिरिजी)

मात्रा—पहले दिन २।। तोले एक बार। दूसरे दिन २।।-२।। तोले दो बार तीसरे दिन सुबह १ छटांक। शामको आधी छटांक। चौथे दिन दोनों समय १-१ छटांक, पांचवें दिन सुबह १।। छटाँक, शामको १ छटांक। छठे दिन दोनों समय १।।-१।। छटाँक इस रीतिसे २ बोतल समाप्त होवे तब तक बढ़ाते जायँ, पश्चात् मात्रा घटाते जायें।

उपयोग—यह क्वाथ उपदंश और सुजाकके उत्तानविष और कीटाणुओं को नष्ट करता है एवं लीनविषको भी दूर करनेके लिये प्रयुक्त होता है। इस क्वाथके सेवनसे घोर उपदंश और सुजाक २१ दिनमें दूर होते हैं। उपदंशजनित कुष्ठमें भी लाभदायक है। क्षीर्णरोगमें रक्तशोधनकी आवश्यकता होनेपर इस क्वाथका उपयोग किया जाता है।

सूचना—पहले उष्णवातघ्न क्वाथमें लिखे हुए मुंजिसका ४ दिन सेवन करें। बादमें इसका आरम्भ करें। इसके सेवनके समयमें भोजनके साथ जितना घृत पचन हो सके उतनी मात्रामें अवश्य लेते रहें।

दूसरी विधि—नीमकी अन्तरछाल, बकायनकी छाल, कचनारकी छाल, बबूलकी कच्ची फली, इन्द्रायणकी जड़, छोटी कटेलीका पंचांग ये ६ औषधियां २०-२० तोले और पुराना गुड़ १।। सेर लेवें। सबको मिला जौकूट कर १० गुने पानीमें मिट्टीके घड़ेमें क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार मसल कर छान लेवें। (श्री० पं० मंगुलालजी)

मात्रा—१० तोले रोज सुबह ४० दिन तक पिलावें।

उपयोग—उपदंश और सुजाकमें दूषित व हानिकारक औषधियोंके सेवन अथवा अपथ्य पालनसे विष या कीटाणु शेष रह जाते हैं, उनका इस औषधिके सेवनसे जड़मूलसे नाश हो जाता है, भोजन हल्का और सादा लेना चाहिए।

(२०) कृमिघ्न क्वाथ

विधि—अनारकी जड़की ताजी छालके टुकड़े कुचले हुए ५ तोले, पलाश बीजका चूर्ण ६ माशे, बायविडंगका चूर्ण १ तोला और जल १००

तोले। सबको मिला ढक्कन ढके हुए कलईके बरतनमें (१।। घण्टे तक) आधा जल शेष रहने तक उबालें। फिर शीतल होनेपर छानकर बोतलमें भर लेवें।

मात्रा—५-५ तोले ६ माशे शहद मिलाकर सुबहसे आध-आध घण्टेपर ४ बार पिला दें।

उपयोग—यह क्वाथ उदरावेष्टक्रमि (चिपटे कद्दूदानाक्रमि Tape Worms), महागुदा (गोलकेंचवे कृमि Round Worms), चुरव कृमि (सूती कृमि Thread Worms), अन्त्रादक्रमि (धान्याङ्कुरके सदृश मुडे हुए Hook Worms) इनको निकाल देता है। इन सबमें यह प्रयोग विशेषत: उदरावेष्ट कृमियोंके लिये है। जो अति कष्ट देने वाले हैं।

अनारके मूलकी छालमें कद्दूदानोंको नष्ट करनेका गुण अधिक है। पलाश बीज और बायविडङ्ग केंचवे और कद्दूदाना दोनोंको निकालनेमें सहायक है। बायविडङ्ग सूक्ष्म कृमियोंका नाशक, दीपन-पाचन, रक्तप्रसादन, सारक और चर्मरोगहर है।

इस क्वाथके सेवनसे कुछ बेचैनी होती है, परन्तु वान्ति नहीं होती। उस अवस्थामें कृमि च्युत होते हैं। फिर वे स्थिर न हों, इसके पहिले जुलाब देकर निकाल देने चाहिये। इसके लिए एरण्ड तैलका जुलाब विशेष हितकर है, जो अन्त्रमें स्निग्धता लाता है, कृमि और आमको निकालता है तथा विरेचन हो जानेके पश्चात् अन्त्र संकुचित होनेमें सहायता होता है।

सूचना—कद्दूदाना कृमि होनेपर उसके पूर्व दस्तोंके साथ निकलते रहते हैं, जब तक उनका शिर न निकल जाय, तब तक औषधि सेवन करानी चाहिये। चाहे १, २, ३ दिन या अधिक दिन लगें। रोगीके दस्तको देखते रहना चाहिये कि कद्दूदानोंका शिर निकला या नहीं।

हरड़के अतिरिक्त कषायरस वाली सब ओषधियां प्राय: न्यूनाधिक अंशमें अग्निको मन्द करती है। इसलिए इस कृमिघ्न क्वाथको भी आवश्यकतासे अधिक दिन नहीं लेना चाहिए।

कृमिरोगमें बहुधा पाण्डु, अग्निमांद्य, अरुचि, वमन, रक्तविकृति, मांसपेशियों और वातवाहिनियोंकी निर्बलता आदि अनुगामी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये इस क्वाथके सेवनके पश्चात् ताप्यादि लोह नवायस लोह अथवा लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ६४ प्रहरी पीपलका मिश्रण कुछ दिनों तक सेवन कराना चाहिए।

(२१) मूत्रशोधक द्रव

विधि—मुर्दासिंग, फिटकरी, रसौंत, सुरमा, सफेद कत्था प्रत्येक १०-१० तोले, नीलाथोथेका फूला १। तोले, रसकपूर १। तोले और पानी १। सेर लें। सबको बारीक पीसकर जलमें मिलावें। इसमेंसे ३-३ माशे जल

लेकर १०-१० तोले पानीमें मिला लें। फिर तीन-तीन उत्तर बस्ति दिन में ३ बार दें। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस औषधिसे सुजाककी पीप और जलन दूर होते हैं। यह नये और पुराने सुजाकको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है।

यह मूत्रशोधक द्रव विशेष तेज है। इसमें नीलाथोथा होनेसे लगानेके समय जलन भी करता है तथापि नये तीव्र प्रकोपयुक्त सुजाकके भीतरी घावको शुद्ध करता है। इसका उपयोग बहुधा ३ दिन करनेपर भीतरका घाव शुद्ध हो जाता है फिर प्रथम विधिके क्वाथका उपयोग करना हो तो भी हो सकता है।

इस क्वाथके भीतर नीलाथोथा स्थानिक क्षत शोधक है, रसकपूर क्षत शोधनमें सहायक और रक्तशोधक भी है। मुर्दासिंगी, सुरमा, फिटकरी ये व्यथा शामक और क्षतरोपक हैं, रसोंत, कत्था ये क्षत रोपणमें और वेदना शमनार्थ सहायक द्रव्य हैं। संक्षेपमें अनुभवी चिकित्सकने इस प्रयोगकी योजना अनुभवके आधारसे की है। यह प्रयोग अति सफल सिद्ध हुआ है।

(२२) बृहत्यादि क्वाथ

विधि—छोटी और बड़ी कटेलीके मूल, गोखरू, एरण्डकी जड़, कुश, कास और ईखकी जड़ इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वृ० मा०)

उपयोग—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके पिलानेसे पित्तप्रकोपजनित दारुणमूल नष्ट होता है। शूल वातपित्तज हो तो शहद मिलाकर पिलावें।

यह बृहत्यादि क्वाथ उदरस्थ आमशूल, हृदयस्थ रक्तवाहिनियोंके भीतर उत्पन्न (प्रवेशित) वातजनित शूल, मांसपेशियोंमें शूल, शीर्षशूलपर प्रयोजित होता है। यह क्वाथ निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है।

यदि विषप्रकोपज मांसपेशियोंमें खिचाव हो तो सूतशेखर और सोहागे के फूलेके साथ इस क्वाथकी अनुपान रूपसे योजना करनी चाहिए।

सूचना—कई रोगियोंको क्वाथकी मात्रा बढ़ जानेपर वान्ति हो जाती है, किन्तु उससे आमाशयस्थ और कण्ठस्थ कफ और आम निकलकर मार्ग शुद्ध हो जाता है। प्रकृति कोमल हो तो उसके अनुरूप मात्रा कम देनी चाहिए।

(२३) दुरालभादि क्वाथ

विधि—धमासा, पित्तपापड़ा, परवलके पत्ते और कुटकीको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। (वं० सं०)

मात्रा—३ से ६ तोलेका क्वाथ करके दिनमें ३ बार पिलावें। विस्फोटकपर निवाये क्वाथमें कालीमिर्च और गूगल मिला लेवें।

उपयोग—इस क्वाथसे पित्त और कफपित्तप्रधान मसूरिकामें संताप नष्ट होता है एवं विस्फोटक रोगका शमन होता है।

(२४) पटोलादि क्वाथ

विधि—परवलके पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, वासाके पत्ते, धमासा, चिरायता, नीमकी अन्तर छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा इन ९ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (यो० र०)

मात्रा—३ से ६ तोलेका क्वाथ करके दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ अपक्व मसूरिकाको शांत करता है। पच्यमानका जल्दी पाक कराता है और पक्व मसूरिकाका शोधन करके सत्वर घावको सुखा देता है। विस्फोटक और शीतलाके तापका शमन करनेके लिये यह उत्तम औषधि है।

यह क्वाथ बालकोंको मसूरिकाकी सभी अवस्थाओंमें निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह क्वाथ उदरको शुद्धि करके पित्तप्रधान विषमज्वरको दूर करता है तथा विसर्प और कण्डू आदि त्वचारोगोंमें भी यह अति हितावह है।

(२५) कपित्थादि यवागू

विधि—कैथ, कच्चे वेलफलकी गिरी, अम्लोनिया (चूकेके पत्ते) और अनार दाने १-१ तोला लेकर ६४ तोले मठ्ठेमें मिलावें। उसमें चावलका आटा मिला पकाकर पतली पतली यवागू बनालें। (च० सं०)

उपयोग—इस यवागूके पीनेसे आमका पचन होता है और मल गाढ़ा होता है। पुराने अतिसार, अर्श, प्लीहावृद्धि और संग्रहणीके रोगीके लिये अति हितकर है। यदि अतिसार या संग्रहणीमें वायुका भी प्रकोप हो तो इस यवागूमें बृहत् पंचमूलका क्वाथ मिला लेना चाहिये।

(२६) षडंग यूष

विधि—पीपल, जौका सत्तू, कुल्थी, सोंठ, अनारदाने और आंवला १-१ तोले और बकरेका मांस १२ तोले लेवें। ८ गुने जलमें उबालें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर घीका छौंक देकर पिलावें। (च.चि.)

उपयोग—इस यूषके सेवनसे क्षयरोगमें उत्पन्न पीनस, शिरदर्द, कास, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होते है एवं क्षयरोगीकी शक्तिका संरक्षण होता है।

राजयक्ष्मामें—शिरदर्द, प्रतिश्याय आदि बहुधा नाड़ियोंमें कफ अथवा आमका प्रवेश होनेपर होते हैं। इस प्रकारका कारण प्रतीत हो तो षडङ्ग-यूषका सेवन करानेपर नाड़ियां शुद्ध होकर सब लक्षण शमन हो जाते हैं।

क्वचित् बृहदन्त्रमें दूषित मलसंग्रहके हेतुसे भी ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें ग्लिसरीन या एरण्ड तैलकी पिचकारी देकर गुद-नलिकाके समीपके मल-संग्रहको निकाल देनेसे लाभ हो जाता है।

क्वचित् पारद, क्विनाइन, सोमल आदि प्रधान उग्र औषधियोंसे जो

वृक्कोंके मूत्रोत्पत्ति कार्यमें प्रतिबन्ध करनेसे प्रतिश्याय आदि उपस्थित हुए हों तो जिस उग्र औषधिका सेवन हो रहा हो उसे बन्द करनेपर ही योग्य लाभ मिलता है।

कभी बाहरकी ठण्डी लग जानेसे फुफ्फुस जकड़ जाते हैं। फिर कफ अधिक चिपक जाता है और कास, श्वास आदि लक्षण प्रबल हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें फुफ्फुसोंपर निवाये तैलकी मालिश, एण्टि फ्लोजस्टिनका लेप आदि उपचार उपकारक माने जाते हैं।

कभी अफीम आदि कफको सुखाने वाली औषधिका प्रयोग हो जानेसे कफ सूखकर खिचाव उत्पन्न होता रहता है। ऐसी अवस्थामें सितोपलादि चूर्ण+प्रवाल पिष्टी+शृङ्ग भस्मको घृत-शहदके साथ मिलाकर दिनमें ४-४ बार देते रहने और अलसीका फाण्ट (चाय) पिलानेसे लाभ पहुँचता है। इस प्रकार हेतु, लक्षण, प्रकृति, शरीरबल, ऋतु, औषधि-सेवन, आहार-विहार, व्यसन आदिका विचार करके राजयक्ष्मामें उपचार करना चाहिये।

(२७) षडंग पानीय

विधि—नागरमोथा, पित्तपापड़ा खस, लालचन्दन, नेत्रवाला और सोंठ इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर १ तोले चूर्ण को १२८ तोले जलमें मिलाकर औटावें। आधा जल शेष रहनेपर उतार लें। शीतल होनेपर छान लेवें।

वक्तव्य—शास्त्रीय मर्यादानुसार आधा जल शेष रखना चाहिये; किन्तु ऐसा करनेपर स्वाद कसैला हो जाता हैं जो रोगीको नहीं दिया जा सकता अतः २-३ उफान आनेपर उतारकर तुरन्त छान लेना चाहिये, उबालनेके समय ऊपर ढक्कन ढककर उबालना चाहिये जिससे उसमें धूँएका प्रवेश न हो सके।

उपयोग—इस जलका उपयोग विशेषतः पित्तज्वरोंमें पिलानेके लिये किया जाता है। इसके सेवनसे रक्त और पित्तमें संगृहीत विष सरलतासे स्वेद और मूत्रके साथ बाहर निकल जाता है। सुबह औटाये हुए जलको शाम तक और शामको औटाये हुए जलको सुबह तक काममें लें। उबाले हुए जलको अपने आप शीतल होने दें, पंखादिसे ठण्डा न करें।

(२८) आरग्वधादि कल्क

विधि—अमलतासका गूदा ४० तोलेको ८२ सेर नींबूके रसमें २४ घण्टे तक भिगोवें। फिर मसल छान ४० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत जैसा बना लें। बादमें दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धनियां, भुनी हींग इन ८ औषधियोंको २-२ तोले, सेंधानमक १० तोले, बड़ी हरड़, भुना जीरा और मुनक्का ५-५ तोले लें। सबको कूट शर्बतमें मिला थोड़े समय अग्निपर रख, चटनीके समान बना लेवें।

मात्रा—३ माशेसे १ तोला, दिनमें १ या दो बार लें। इसे भोजनके साथ भी लिया जाता है।

उपयोग—यह कल्क अपचन, अपचनसे होने वाला ज्वर, शिरदर्द, उदरशूल, आम, उदरवात, जुकाम, अरुचि आदिको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है। इसके सेवनसे आंतोंमें चिपका हुआ सूखा मल शिथिल होकर जीर्ण मलावरोध दूर होता है।

(२९) शुष्ककासहर क्वाथ

विधि—गुलबनप्शा, हंसराज, छिली हुई मुलहठी तीनों ६-६ माशे, खतमीके बीज और अलसी ३-३ माशे और उन्नाव ६ दाने लें। सबको कुचलकर डेढ़ पाव जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार मसलकर छान लें। शीतल होनेपर ३ माशे शहद और ३ माशे मिश्री मिलाकर पिला देवें। (चि० चं०)

उपयोग—इस क्वाथको दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे १०-१५ दिनोंमें सूखी खांसी (वातज कास) चली जाती है।

(३०) सप्तमुष्टिक यूष

विधि—जौका सत्तू, बेर, कुलथी, मूंग, मूलीके टुकड़े, धनियाँ और सोंठ इन ७ औषधियोंको एक एक मुट्ठी (४-४ तोले) मिलाकर अठ गुने जलमें पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार, मसलकर छान लेवें।

उपयोग—सन्निपातमें भोजन देनेकी आवश्यकता हो तब इस यूषका उपयोग करना चाहिये। यह यूष, वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंको हरने वाला, गुल्म, शूल, श्वास, कास, धातुक्षय और ज्वरका नाशक आमदोषघ्न, हृद्य एवं कण्ठसे मुंह तकके दोषोंको नष्ट करने वाला है।

(३१) मधुकादि हिम

विधि—मुलहठी विहिदाना, गावजवां, गुलबनप्शा, रेखाखतमी, मुनक्का और लिहसोड़ा सबको १-१ तोला लें, जौकूट करके ७ पुड़िया बनावें।
(र० यो० सा०)

उपयोग—१-१ पुड़ियाको १० तोले जलमें मिट्टी या कांचके पात्रमें रात्रिको भिगो दें। सुबह मसल छान, मिश्री मिलाकर पी लेवें। ऐसे ही सुबह एक पुड़िया भिगोकर शामको पी लेवें। इस तरह ७ पुड़ियोंके उपयोगसे अर्द्धावभेदक पित्तवृद्धिजनित शिरदर्द, लू लगनेसे होने वाले मन्द-ज्वर, जुकाम, शिरमें भारीपन आदि विकार दूर होते हैं।

सूचना—जिनको श्वास, कास या कफवृद्धि स्वाभाविक रहते हों उनको हिमके स्थानपर क्वाथ करके पिलाना चाहिये।

(३२) तगरादि कषाय

विधि—तगर, असगन्ध, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, देवदारु, कुटकी,

ब्राह्मी (जलनीम), जटामांसी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, छोटी हरड़ और मुनक्का इन १२ औषधियोंको समभाग मिला ४ से ८ तोलेका क्वाथ करें। फिर चार हिस्सेकर ३ या ४ बार तीन-तीन घण्टेपर आवश्यकतानुसार पिलावें। (यो० र०)

उपयोग—यह कषाय सन्निपातमें उत्पन्न वातप्रधान, पित्तप्रधान और वात पित्तप्रधान प्रलापोंको तत्काल शमनकर देता है। यह मस्तिष्कको शांत बनाता है, अन्त्रके दोषोंका शोधन करता है, पचने योग्य दोषोंका पचन करता है, निकालने योग्य दोषोंको बाहर निकालता है तथा वातसंस्थानपर शामक असर पहुँचाकर रोगीको निद्रा ला देता है।

जब आमाशय और अन्त्रकी पचनक्रिया दूषित होती है और भोजन नियमानुसार रोज करते रहनेसे पचन संस्थानको विश्रान्ति नहीं मिलती, तब आम संगृहीत होता है फिर वह सड़ने लगता है और रस, रक्तादि धातुओंमें शोषित होता रहता है और सब धातुओंको दूषित बना देता है। ऐसी स्थितिमें आमका संशोषण तत्काल बन्द कराना चाहिए और अन्त्रगत आमको बाहर फेंकना चाहिये, यह कार्य कुटकी और अमलतासका मुख्य है। नागरमोथा, छोटी हरड़ और द्राक्षा सहायक होती है। ये सब औषधियां इस क्वाथमें है। जिनसे उदर शुद्धि हो जाती है। फिर आमविषका तत्काल दमन होता है। साथ-साथ ब्राह्मी, शंखाहुली, जटामांसी, तगर आदि द्वारा मस्तिष्कगत विषको जलानेकी ओर मनको शान्त करनेकी क्रिया होती है। इन दो हेतुओंसे यह क्वाथ अकेला या दूसरे रस आदिके अनुपान रूपसे सान्निपातिक अवस्थामें श्रेष्ठ माना गया है।

यदि उदरमें आम, मल, कृमि आदि विशेष परिमाणमें हों कोष्ठ क्रूर हो तो कुटकी और अमलतासकी मात्रा बढानी चाहिये। यदि कोष्ठ मृदु हो तो कुटकी आदि कमकर देनी चाहिये। यदि पहले प्रवाहिका हो जानेसे अन्त्रमें क्षत हो गये हों तो कुटकी कम मात्रामें मिलावें या न मिलावें। एवं थोड़ा एरण्ड तैल और सोंठ मिला लेवें जिससे उदरमें अधिक वेदना नहीं होती है। एवं अधिक दस्त भी नहीं होते पर उदर शुद्ध हो जाता है। नाड़ियोंमें रहा हुआ मल जल जाता है। इस तरह लक्षण और उपद्रव अनुरोधसे द्रव्योंकी मात्रामें न्यूनाधिकता कर लेनेसे यह कषाय चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

सूचना—उदर शुद्ध हो जानेपर कषायमेंसे कुटकी और अमलतासको निकाल डालें। शेष औषधियोंका क्वाथ दो चार दिन तक वातवाहिनियोंके विकारको पूर्णांशमें शमन करनेके लिए देते रहें।

विशेष योगोंकी जानकारी हेतु संस्था द्वारा प्रकाशित "नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह" का अवलोकन करना चाहिये। जो इसी पुस्तकका अंग है।

आसवादि प्रकरण

वनौषधियाँ पुरानी होनेपर न्यून गुणवाली होकर नष्ट हो जाती हैं; एवं काष्टौषधियोंके रस और क्वाथ भी थोड़े ही समयमें बिगड़ जाते हैं। इनके गुणोंको दीघकाल तक अवस्थित रखनेके लिये आसवारिष्ट प्रणाली प्रचलित हुई है। जैसे जठराग्निमें गले हुये अन्नका सार तत्व, रस निकल आता है एवं स्थूल (मल) फेंक दिया जाता है, वैसे ही आसवीकरण क्रियामें काष्ठादिक औषधियोंका सत्वांश निकल आता है। 'आसुतत्वादासव' संज्ञा अर्थात् आसुत पद्धति (संयोगज मूर्च्छा प्रक्रिया) से तैयार हो उसे 'आसव' कहते हैं। आसुत परिस्रवण निःसरण, क्षरण, खिंचाव, टपकाव, चुआव, फांट, क्वाथ, काढा। आसवीकरण क्रिया द्वारा मूल द्रव्योंका सत्वाँश एवं मधुर द्रव्योंका मद्यांश खींचा जाता है। यह मद्यांश मूलद्रव्योंके सत्वांशको दीर्घकाल तक सुरक्षित रखनेमें सहायक है तथा मूलक्वाथके गुणोंमें भी वृद्धि करता है, एवं ओषधियोंके गुणोंके संरक्षणार्थ व विवर्धनार्थ आसव अरिष्ट क्रिया व्यवहारमें आई है।

आसव अरिष्टके द्रव्योंमें कार्यदृष्टिसे तीन विभाग होते हैं-(१) कार्मुकतत्व निष्कासन, (२) कोहल संजनन एवं (३) मधुसंजनन।

कार्मुकतत्व निष्कासन, औषध द्रव्योमें रहे सत्वद्वारा होता है। कार्मुक तत्व, जल (प्रवाही द्रव्य) में उतरना फिर अवस्थित रहना और उसके सामर्थ्यको; बढाना ये तीन कार्य संधान विधिद्वारा सिद्ध होते हैं। कोहल एवं मधु संजनन कार्य मधुर पदार्थों द्वारा होते हैं। धातकीपुष्प, सुराबीज (जंगल) महूवेके फूल, सुपारी, बबूलकी छाल, नागकेशर, गुड़, मधु एवं शक्कर आदि मधुर पदार्थ हैं। इनके द्वारा आसवीकरण क्रिया निश्चित रूपसे मर्यादित समयमें हो जाती है और उपयुक्त मद्यांश भी मिल जाता है। मधुर गुणयुक्त अणुओंको किण्व कीटाणु भक्षणकर आसवके अणुओंमें रूपान्तरित कराते हैं। मधुर द्रव्य न मिलाया जाय तो आसव या मद्य बन नहीं सकता।

यथार्थमें मद्यके आसव, अरिष्ट, सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय ६ भेद हैं।

(१) आसव—"यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः"। अर्थात् अपक्व औषधियोंको मधुर द्रव्य और धायके फूल आदिके साथ जलमें मिला बिना क्वाथ किये पात्रमें भर मुखमुद्राकर कुछ काल तक बन्द रखकर जो मद्य सिद्ध किया जाय, उसे आसव कहते हैं।

आसवानामासुतत्वादासव संज्ञा (चरक)

अर्थात् संधानित द्रवको परिस्रुत किये जानेसे आसव संज्ञा दी गई है। जल, मीठे आदिके संधानके समय जो मदकारी वस्तु उसमें उत्पन्न हो, उसे

आसव कहते हैं। आसव तथा अरिष्ट दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं हैं। दोनों एक रूप हैं। कोई आसव पका करके भी बनाया जाता है। कोई अरिष्ट बिना पकाये भी बनता है। यथा—

(२) अरिष्ट—"अरिष्टः क्वाथसिद्धःस्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः।" अर्थात् ओषधियोंका क्वाथ कर फिर मधुर द्रव्य और धायके फूल आदि मिलाकर मद्य तैयार किया जाय वह अरिष्ट कहलाता है।

जो चिरकाल तक नष्ट न हो उसे अरिष्ट कहते हैं।

(३) सीधु—"सीधुः इक्षुरसैः पक्वैः।" अर्थात् ईखके रसको उबाल कुछ काल बन्द रखकर जो द्रव्य सिद्ध किया जाता है; उसे सीधु-सिरका कहते हैं। वर्तमानमें रसको बिना पकाये ही सिरका बनाते हैं। गन्ने (ईख) के समान द्राक्षा या जामुनके रसको किसी बरतनमें भरकर संधान उठाने पर भी सीधु तैयार होता है। इसके पक्वरस, शीतरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक और जाम्बव ये भेद मानें गये हैं।

(४) वारुणी—यत्तालखर्जूररसैरास्तुतं सैव वारुणी।" अर्थात् ताल या खर्जूरके शिखर-प्रदेशपर कुल्हाड़ीसे तिरछा घाव करनेसे कटे हुए भागसे जो रस स्राव होता है; उसे बर्तनमें भरकर रख देनेसे थोड़े ही समयमें खमीर आकर मद्योत्पत्ति हो जाती है; वह वारुणी (ताड़ी) कहलाती है। इस तरह पुनर्नवामूल और चांवलोंको पीस पिट्ठी बना, जलमें घोल देनेसे खमीर आकर मद्य बन जाता है, उसे भी "वारुणी" संज्ञा दी है।

(५) सुरा—"परिपक्वान्नसंधान समुद्भूता सुरा मता।" अर्थात् चांवल आदिको पका, मीठा मिला, खमीर उठाकर जो मद्य तैयारकी जाय उसे सुरा (शराब) कहते हैं। इसके गौडी (गुड़ मिलाकर बनाई हुई), माध्वी (महुआके फूल मिलाकर तैयारकी हुई), पैष्टी (चांवल आदि अन्नके संधान-जन्य) और निर्यास (ईखके रस और फलोंके रसमें तैयारकी हुई) ये चार भेद हैं। ये सब नलिकायन्त्रद्वारा वाष्पको खींचकर तैयारकी जाती हैं। ये सब स्वच्छ वर्णरहित और एक प्रकारकी गन्धयुक्त होती हैं।

(६) मैरेय—आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने।
संधानं तद्विजानीयात् मैरेयमुभयात्मकम्॥,

अर्थात् आसव द्रव्य और सुरा (अन्न या फल रस आदि) मिलाकर संधान किया जाय उसे "मैरेय" कहते हैं। एवं बबूल या बेरकी छाल और गुड़-शक्कर आदिको जलमें मिलाकर मद्य बनाया जाय, वह भी "मैरेय" कहलाता है।

मद्य और आसव दोनोंकी क्रियामें भेद हैं। घटक, अवयव और गुणमें भी भेद हैं। 'मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठम्' तथा 'आसवं विनष्टं अम्लतां यातम्' इस

प्रकारसे शास्त्रकारोंने भेद दर्शाया है। तथापि सारग्राही दृष्टिसे व मद्यार्क-पन दृष्टिसे शराब और आसवारिष्टकी एक जाति है। शराबमें मद्यार्क और जल रहते हैं; तथा आसवारिष्टमें मद्यार्क और जलके अतिरिक्त विविध औषधद्रव्योंके सत्व भी रहते हैं एवं मद्यार्ककी मात्रा अति न्यून होती है, शराबमें मादक गुण प्रधान है किन्तु आसवारिष्टमें औषध गुणोंका ही प्राधान्य है। यह इन दोनोंमें अन्तर है। आसवारिष्टोंमें औषधगुणोंका प्राधान्य होनेसे मर्यादित मात्रामें ही सेवन किया जाता है।

बिना क्वाथ किये हुए संधानित द्रवको आसव और क्वाथकर बनाये हुए को अरिष्ट कहते हैं ऐसा अनेक आचार्योंका मत है। किन्तु कितने ही विद्वान् चरक, सुश्रुत आदि आचार्योंके वचनोंके आधारसे इस व्याख्याको निर्मूल दिखाते हैं। लोध्रासव, दुरालभासव, द्राक्षासव आदि अनेक आसवोंकी मुख्य औषधियोंका क्वाथ करनेकी आज्ञा शास्त्रकारोंने दी है। एवं चरकसंहिताके चिकित्सास्थानमें तक्रारिष्ट, अष्टशतारिष्ट, त्रिफलारिष्ट और अन्य अनेक अरिष्टोंमें क्वाथ करनेका विधान नहीं हैं। इनके अतिरिक्त सुश्रुत संहितामें भी अनेक अरिष्टोंमें क्वाथ विधि नहीं कही है। अत, आसव और अरिष्ट दोनों पर्याय शब्द है, ऐसा भी अनेक विशेषज्ञोंका मत है।

निर्माण क्रिया—

आसव बनानेसे संधानक्रिया अत्यन्त आवश्यक मानी है। जल औषध-द्रव्य मधुरद्रव्य आदिको मिला अमृतबानके मुखपर ढक्कन लगा संधिस्थान पर लेपन (संधान) करनेको संधान विधिकी संज्ञा दी है। आधुनिक समयमें अमृतबानकी जगह लकड़ीके ढोल उपयोगमें लाये जाते हैं, तथा उनका ढक्कन भी लेपके बजाय कपड़ेसे बांधकर पक्का बन्द किया जाता है। नवीन पद्धतिकी निर्माणक्रिया जो आजकल अधिकांशमें प्रचलित है वह सामान्यतः इस प्रकार है।

प्रथम—जो भी आसव बनाना हो उसके, विधि अनुसार मूल द्रव्योंको जौकूट कर लेवें और लकड़ीके ढोलमें जल डालकर उसमें प्रथम गुड़ यथा-मात्रामें मिला लेवें। जलको हिलाकर गुड़को पूर्णतया मिश्रित कर लें। बाद जौकूट मुख्य द्रव्य जलमें डालें। ढोलको ढक्कन लगा कपड़ेसे बांध देवें। आसव निर्माणके पात्रोंके मुखपर पतला कपड़ा बांधकर ढक्कन कुछ ऊँचा उठा हुआ रख देना चाहिये जिससे पात्रमें हवाका आवागमन होता रहे।

संधान विधिमें उन्हें कभी कभी हिलाते भी रहना चाहिये। ढोलको इस प्रकार बन्द करनेके उपरांत उसमें आसवीकरण क्रिया प्रारम्भ होकर खमीर उठने लगेगा। खमीर उठते समय ढोलके अन्दर एक प्रकारकी

'सूं सूं सी' आवाज उठने लगेगी। विशेष निश्चय करनेके लिये ढोलके मुंहपर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी, और खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायगी। जलपर फेन चक्र रूपमें आ जावेंगे। खमीरमें एक प्रकारके कीटाणु (किण्व) उत्पन्न होंगे, जो मद्यांशको पैदा करेंगे। आसवीय द्रव द्रव्यमें किण्व (Yeast) के कीटाणुओंकी जीवन क्रिया सम्पादनको खमीर उठना (Fermentation) कहते हैं। और इस क्रियासे (Carbonic acid gas) कारबो० एसिड गैस उत्पन्न होता है, उत्तापोत्पत्ति होती है तथा मीठेके अणु टूट-टूटकर आसवके अणु बनते हैं।

आसवीकरण क्रियाके कीटाणु ४० फारनहीटसे नीचेके तथा ९० फारन हीटके ऊपरके तापमानपर जीवित नहीं रह सकते। ४० फारनहीटसे नीचे के तापमानपर वे निष्क्रिय हो जाते हैं और ९० फारनहीटके तापमानपर वे मर जाते हैं। अतः संधान क्रिया नहीं होकर आसव वैसेका वैसा पड़ा रहता है या विकृत हो जाता है। ठीक ठीक आसवीकरण क्रियाके लिये उस स्थानका उत्ताप ५० से ७५ फारनहीट तक आवश्यक होता है।

अतः शीत व उष्ण ऋतुओंमें इतना उत्ताप बने रहनेका कृत्रिम प्रबन्ध करना चाहिये।

उष्ण तापमानपर यह क्रिया अच्छी प्रकार होती है। अधिक उष्णता बढ़नेपर या अधिक शीतलता आ जानेपर आसव क्रिया बन्द हो जाती है। आसव क्रिया प्रारम्भमें प्रबल होती हैं, फिर जैसे-जैसे मद्यार्क अधिकाधिक तैयार होता जाता है वैसे-वैसे यह क्रिया मन्द होती जाती है। १५ प्र० श० मद्यार्क बन जानेपर उसमें कीटाणु जीवित नहीं रह सकते, कीटाणु नष्ट होते ही क्रिया बन्द हो जाती है। परिवर्त्तन क्रियामें अम्ल परिवर्त्तन इष्ट नहीं है। कोहल परिवर्त्तन अपेक्षित है। किन्तु जैसा अम्ल परिवर्त्तन प्रतीत होता है वैसा कोहल परिवर्त्तन नहीं होता है। कुछ न कुछ अंशमें अम्लरूपान्तर होता ही है। यदि अम्लरूपान्तर अधिक हो जाय तो आसव बिगड़ जाता है। अम्लत्व, यह मद्यका सहज रस है और मधुर, यह आसवका रस है। अम्लता बढ़नेसे आसव मद्यरूप या शराब बन जायगा। आसव खट्टा होकर 'शुक्त' बन जायगा। आसवका पहिला संधान समाप्त होनेपर कुछ समयके बाद यदि पुनः दुबारा संधान प्रारम्भ हो जाय तो आसव 'शुक्त' बन जायगा इस लिये प्रथम संधान बन्द होते ही आसवको छानकर दूसरे ढोलमें भर लेना चाहिये। कपरौटी करके जो बर्तन (पात्र) बन्द किये जाते हैं उनमें प्राणवायु (Oxygen) के प्रवेशका जगह न रहनेसे कार्बोनिक गेस बाहर जानेकी भी जगह नहीं रहती और वह अन्दर ही धूमायित होकर आसवको

बिगाड़ देगी। इसलिये पात्रके ढक्कनमेंसे थोड़ी सी वायु आने जानेका रास्ता रहना आवश्यक है।

आसव डालनेके बाद ५ दिनके अन्दर उसमें फेन उठने चाहिये। अगर फेन न उठे तो आसवमें उचित उष्णतामानकी कमी समझकर उचित उष्णतामान पैदा करनेके लिये उसे धूपमें रखकर मोटे, कपड़ेसे अच्छी तरह ढक कर ऊपरसे बांध देना चाहिये। ऐसा करनेसे २ दिनोंके भीतर ही फेन उठने प्रारम्भ हो जायेंगे। फेनके अन्दर सूक्ष्म दृष्टिसे अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा देखनेपर लम्बे आकार (Yeast) के कीटाणु कभी कभी दिखाई देते हैं। ये कीटाणु मधुर पदार्थोंको खाकर मद्यांश पैदा करते हैं। जब इनके द्वारा मधुर पदार्थोंका सेवन पूर्ण हो जाता है तब यथावश्यक मद्यार्क आसवमें उत्पन्न हो जाता है। ये कीटाणु "मृतसंजीवनी सुरा" में अधिक एवं बडे आकार वाले भी पैदा होते हैं। द्राक्षासवमें उससे कम और अन्य आसवों में उनसे छोटे या कम उत्पन्न होते हैं। इसीसे इनमें मद्यार्ककी मात्रा प्रतिशत या पर्सेन्टेजमें उत्तरोत्तर कम पायी जाती है। ऐसा भी अनुभवमें आता है कि अगर कोई कीटाणु बाहर पड़ा हो और आसवीकरण क्रिया बन्द पढ़ गई हो तो उस कीटाणुको ढोलमें डालदेनेपर क्रिया पुनः उठने लगती है। और भी क्रिया भेद पड़नेपर उठानेका तरीका यह है कि गुड़ शक्कर आदि मधुर पदार्थ अनुमानतः ५ मन पानीमें १० सेर डाल देनेसे क्रिया पुनः उठने लगेगी।

इस आसवीकरण क्रियामें मद्यांशके उत्पन्न होनेके साथ साथमूल द्रव्यों का सत्वांश भी खिंचता जाता है। सत्वांश और मद्यांशका मिश्रण सम्यक् प्रकारसे होता जाता है, जिससे औषधमें गुणवृद्धि होती है। आसव केवल मद्य न रहकर औषध रूप बनता है। यथार्थमें औषधिका सत्व मद्यको अपने अंशमें समाविष्ट कर लेता है। इससे यह स्पष्ट है कि आसव मद्य नहीं, औषध है।

आसवीकरण क्रिया समाप्त होनेके उपरांत शीघ्र ही उसे दूसरे ढोलमें छानकर भर लेना चाहिये। छानते समय यह लक्ष्य रखना चाहिये कि उसमें मच्छर, मक्खी आदि न पड़ जाँय और आसवको धीरे-धीरे छानना चाहिये जोरसे एकदम उंडेलनेसे सत्वांश उड़नेकी संभावना है। सत्वांशका रक्षण आवश्यक है। अन्यथा आसव हीनवीर्य हो जायगा।

गुड़, शक्कर, मधु आदि मधुर पदार्थ आसवमें जलके कितने प्रमाणमें मिलाये जाँय? इसमें कई मत हैं। इन मधुर पदार्थोंका मिश्रण यथोचित व सम्यक् होना चाहिये। ज्यादा होनेपर आसव गाढा होकर (आसवीकरण) क्रिया उठेगी नहीं, कम होनेपर भी क्रिया नहीं उठेगी। आसवारिष्टके बनने

का मूल आधार मीठे द्रव्य हैं। मीठी वस्तुओंसे आसव अरिष्ट बनते हैं। मीठेके अणु ही आसव रूपमें बदलते हैं। चाहे गुड़, शक्कर, मिश्री, शहद, खजूर, गन्नेका रस महुआ, मुनक्का, ताड़का रस आदि हों। किण्वके कीटाणु मीठेके अणुओंका भक्षण जैसे जैसे करते रहते हैं वैसे वैसे आसव बनता रहता है। अतः उन कीटाणुओंको मीठा चाहिये; चाहे गुड़ हो या शक्कर।

इससे स्वाद व गुणोंमें न्यूनाधिकता हो सकती है। किन्तु आसव क्रिया में अन्तर नहीं होता। जिस मीठेमें अम्लता, तिजाबी असर या (Free Phospporic Acid) युक्त स्फूरिकाम्ल होगा वे आसवारिष्ट अम्लतायुक्त या दोष पूर्ण स्वाद गंधवाले खराब हो जाते हैं। नकली शहदके योगसे भी आसवारिष्ट सदोष हो जाते हैं।

अतः शास्त्र प्रमाणानुसार मीठा मिलाना ही चाहिये।

जब आसव बन चुका होता है या जब आसव बनाने वाले कीटाणुओं का काम समाप्त हो जाता है, उसी समयसे सिरका बनाने वाले कीटाणु सक्रिय होकर सिरका बनाना प्रारंभ कर देते हैं। और उस समय यदि उसमें आवश्यक परिणाममें मीठा न मिलाया गया तो आसव शुक्त (सिरका) रूपमें परिवर्त्तित हो जाता है।

अतः आसव बन चुकनेके तुरन्त बाद छाननेसे पूर्व या पश्चात् आसवमें $\frac{1}{4}$ भाग या $\frac{1}{5}$ भाग मीठा मिला देनेसे शुक्त बननेसे बचेगा आसवारिष्टोंका स्वाद भी अच्छा हो जायगा। आसवसे सिरका बन जानेके बाद शक्कर आदि मीठा मिलानेसे फिर आसवमें मिठास कभी नहीं आयेगा व वह द्रव सिरका ही बनता रहेगा।

आसव पूरा पक्व होनेपर ही दीर्घकाल तक टिक सकता है। कच्चा रहनेपर अगर बोतलमें भर दिया तो उसमें वायु (गैस) पैदा होकर वह वायु तो शीशीको फोड़ डालेगा या डाटको फेंक देगा। आसव कच्चा रहनेपर बोतलमें फेन अधिक दिखाई देगें। पक्व आसवमें बोतलको हिलाने पर कुछ फेन दिखाई देंगे पर वे जल्दी ही शमन हो जायेगे। आसव पतला, हल्का व सौम्य भी होना चाहिये और साथ-साथ पारदर्शक भी हो तो बहुत ही अच्छा माना जावेगा। ऐसा होनेके लिये आसवको ढोलमेंसे निकालते समय ढोलके अन्दर नली डालकर उस नलीके दूसरे मुंहसे हवा को खींच लेनी चाहिये। ताकि नली आसवसे भर जाय और उस नलीके द्वारा बोतलें भरनी चाहिए। ऊपरी जल जैसा-जैसा भरा जावेगा गाद नीचे-नीचे बैठती जावेगी। अन्तमें जब जल थोड़ा रह जावे तब विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है कि नली गादको स्पर्श न करें। नली गादको स्पर्श करनेपर गाद बोतलमें आ जावेगी। द्राक्षासवको छोड़कर अन्य आसवोंकी 'गाद' पुनः उपयोगमें नहीं आती है। द्राक्षासवकी गादको

'जगल' या किण्व (Yeast) कहते हैं। यह जगल पुनः आसवीकरण क्रिया में मदद करनेके लिए किसी भी आसवके उपयोगमें लायी जा सकती है। ५ मन पानीमें मात्र २ सेर डालनी चाहिए।

अनुमान होता है कि आसवोंके रूप, गुण, स्वाद और स्वभाव चिर-काल तक न्यून नहीं होते। इसी हेतुसे आसवका गुणात्मक नाम अरिष्ट दिया गया है। इन ६ प्रकारके मद्योंमेंसे आचार्योंने विशेषतः आसव-अरिष्ट को ही औषधि रूपसे प्रयोगमें लिया है। इसी हेतुसे आसव अरिष्ट रोग-नाशक औषधियोंमेंसे ही तैयार किये हैं। सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेयको औषधियोंसे नहीं बनाया। विशेषतः वारुणी, सुरा आदिका उपयोग मादकताके लिये ही होता रहता है; औषध रूपसे उपयोग बहुत कम अंशमें किया है।

जो औषधि कठोर हो उसमेंसे उबाल करके अरिष्ट और सौम्य, तैल और सुगन्धयुक्त हों, उनमेंसे आसव बनाना चाहिये। क्योंकि तैल औषधि उबालनेपर तैल सत्व उड़ जाता है और औषध हीनगुण हो जाती है।

प्राचीन विधि—

आसवीभवन–परिवर्तन–Fermentations–में २ प्रकार हैं। १-अम्ल (Acid) २–कोहल (Alcohol), इस परिवर्तनके लिये शक्कर, गुड़, शहद, मुनक्का, गंभारीफल, महुएके फूल और धायके फूल आदि द्रव्योंका उपयोग होता है। कितने ही चिकित्सक धायके फूलके स्थानपर धायके फूलका कषाय करके मिलाते हैं। क्वाथ मिलानेसे परिवर्तन रूप कोहल-क्रिया अति सरलतासे और उत्तम प्रकारसे होती है।

धायके फूलकी कषाय विधि—धायके फूलोंके चूर्णको १० गुने जलमें २४ घण्टे तक भिगो उबालकर कपडेसे छान लेवें। फूलोंके चूर्णको अच्छी तरह दबाकर निचोड़ लेवें। फिर १ सेर मधुर पदार्थयुक्त मिश्रणमें २॥ तोले धातकी पुष्प कषाय मिलावें। इस जलके मिलानेसे (१) फफूंदी कम आती है, (२) कोहल क्रिया सरलतापूर्वक सत्वर और इष्ट परिमाणमें होती है, (३) आसव छाननेके समय त्रास कम होता है। यदि आवाप (प्रक्षेप) द्रव्यको पोटलीमें बाँधकर डालें तो छाननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

आसव-अरिष्टके पात्र—प्राचीन कालमें घी से रमा हुआ मिट्टीका पात्र लेनेका रिवाज था। परन्तु ऐसे पात्रोंको यदि धूपमें रखकर घीको न पोंछ लिया जाय, तो आसवमें घीका अंश आ जाता है, एवं पात्र घीसे रमा हुआ न होनेपर आसव बाहर निकलता रहनेसे कम हो जाता है।

इनके अतिरिक्त मिट्टीके बर्तनमें उत्ताप वाहक गुण होनेसे भीतरकी उष्णताको बाहर फेंकता रहता है। एवं शीतकालमें बाहरकी शीतल वायु का सम्बन्ध होता रहे तो भी भीतर रहा हुआ आसव शीतल हो जानेसे

उसका यथोचित पाक नहीं होता। इस हेतुसे भूतकालमें जमीनमें या धान्य राशिमें दबाते थे। परन्तु वर्तमानमें अमृतबानके स्थानपर चीनी मिट्टीके अमृतबान, लकड़ीके ढोल या सीमेण्टके होजका उपयोग करना विशेष हितकर माना जाता है।

यदि मिट्टीके ही पात्रोंको उपयोगमें लेना हो तो घड़ेके भीतर निम्न रालमिश्रणका लेपकर लेना चाहिये, जिससे आसवका शोषण न हो, एवं भीतरकी उष्णता बाहर न निकले।

राल मिश्रण—१० तोले राल, १० तोले बीजाबोल और १० तोले उत्तम चपड़ी वाली लाखकी २ बोतल (४८ औंस) मैथीलेटेड स्पिरिटमें मिलाकर लेप करें। एक लेप सूखनेपर दूसरी बार, फिर तीसरी बार लेप करें। इस तरह ७ बार लेप करनेपर घड़ेके सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र बन्द हो जाते हैं। फिर उसके भीतर भरे हुए आसवोंमेंसे जल बाहर नहीं निकल सकता। भीतरकी उष्णता जैसीकी तैसी बनी रहती है और आसव यथा समय सिद्ध हो जाता है।

विदेशी शराबके लिये सागवानकी लकड़ीके ढोल आते हैं, उनका उपयोग करना हो तो पहले गरम जल और सोडा आदिसे या चूनेके जलसे उनको भली भाँति साफ कर लेना चाहिये। जिससे उनमेंसे शराबका अंश निकल जाय। ये ढोल शीशम, सागवान आदि दृढ़ लकड़ीके आते हैं, जो वर्षों तक खराब नहीं होते। उनमें भरे हुए आसव-अरिष्ट मूल स्थितिमें कायम रह सकते हैं। इस ढोलकी लकड़ी उत्तापरोधक होनेसे भीतरकी उष्णताका वहन नहीं होने देती। अतः मिट्टीके पात्रोंकी अपेक्षा ये अच्छे माने जाते हैं।

१—सागवानके बने ढोलोंमें उत्तापरोधक गुण होता हैं। अतः सर्दी गर्मी का असर जल्दी नहीं होता तथा संधानक्रियामें खास परिवर्त्तन नहीं होता।

२—सागवानके बने ढोलोंमें डाले गये आसव चुचाते भी नहीं हैं।

३—इनके फूटनेकी भीति नहीं होती है।

४—इनका संसर्गजन्य हानिकर दोष आसवमें नहीं आता।

पहले आसव अथवा अरिष्टकी वस्तुओंके क्वाथ अथवा स्वरसको तैयार करें। फिर शक्कर, गुड़ अथवा शहद मिलाकर चीनी मिट्टीके अमृतबानमें भरें। पश्चात् मुंह तक थोड़ा भाग खुला रख, ऊपर कपड़ा बांधकर एकान्त स्थानमें १०-१५ दिन तक खमीर आकर शांत हो जाने तक रहने दें। प्रारम्भमें कार्बोनिक गैस उत्पन्न होकर बाहर निकलती रहती है। इस गैस को यदि अरिष्टके पात्रपर मुखमुद्रा करके रोक दी जाय, तो आसवमें अम्लता बढ़ेगी, और आसवके स्थानपर शुक्त बन जायगा। खमीर उठानेके समय "सूं सू" जैसी आवाज अमृतबानके पास कान लगानेसे सुननेमें आती है।

खमीर शांत होनेपर आवाज सुननेमें नहीं आती। विशेष निश्चय करनेके लिये अमृतबानके मुंहपर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी और खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायगी। इस तरह परीक्षा करके खमीर शांत होनेपर प्रक्षेप (धायके फूल, जायफल, जावित्रीका चूर्ण अथवा कल्क) डालना चाहिये; ऐसा कितने ही विद्वानोंका मत है। इसके विरुद्ध अनेक चिकित्सक प्राचीन पद्धति अनुसार प्रक्षेपको तुरन्त मिला देते हैं। हमने इस ग्रन्थमें प्राचीन मत अनुसार एवं नवीन दोनों विधियां लिखी हैं। नव्य मतानुसार प्रक्षेप मिलाने वालोंके लिये खमीर आजानेके बाद कदाचित् आसव-अरिष्टके ऊपर पूड़ी जैसी पपड़ी आगई हो तो फेंक दें और आसव अरिष्टोंको छान करके प्रक्षेप मिलावें। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबानका पौन हिस्सा भरें। चौथाई हिस्सा खाली रखना चाहिये जिससे अमृतबान न फूटे। खमीर शांत हुए बिना पहलेसे एक साथ में प्रक्षेप मिला देनेसे अमृतवान फूटनेका और उफान आकर औषधि निकल जानेका डर रहता है। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबानका मुंह बन्द करें। फिर मुंहपर अच्छी रीतिसे कपड़मिट्टी कर एकान्त स्थान या धूपमें रखें, अथवा जमीनमें दबा दें। इस तरह १ से ३ मास तक रहने देवें। धूपमें रखनेसे औषधियोंमेंसे जलका अंश बहुत जल जाता है। जमीनमें दबानेसे बर्तन फूट जानेका भय रहता है। परन्तु मकानमें एक तरफ सम्हाल पूर्वक रखनेसे उफान या टूटनेका भय नहीं रहता और कच्चे पक्केकी परीक्षाका लक्ष्य भी रह सकता है।

द्राक्षासव बनानेके समय जो गाढा भाग तलेमें रह जाता है, उसे किण्व (सुराबीज) कहते हैं। उसे तेज धूपमें सुखाकर सुरक्षित रख लेवें और आवश्यकतानुसार आसव-अरिष्ट बनानेपर दूधमें दहीके जमानेके सदृश मिलाते रहें। दो द्रोण (२०४८ तोले) द्रवमें १ सेर किण्व मिला लेनेसे आसव-अरिष्ट की संधान क्रिया सत्वर होती है और आसव बिगड़नेका भय दूर होता है।

यदि उक्त किण्वको न मिलावें तो भी आसव-अरिष्टका खमीर तो उठता ही है। कारण, धायके फूल आदिमें किण्व रहते हैं। परन्तु किण्व मिलानेसे सत्वर संधान होता है। आसव अच्छा बनता है। सुराबीज विरोधी कटाणुओंको नष्ट कर डालते हैं और आसवकी रक्षा करते हैं।

आसव-अरिष्टोंके पाठमें कषाय-रस प्रधान धातकी पुष्प, बबूलछाल, बेरछाल, महुआके फूल, सुपारी, नागकेशर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं वे भी सुराबीज हैं। परन्तु इनकी अपेक्षा द्राक्षासवके तल भागमेंसे मिले किण्वमें सुरा कीटाणुओंकी संख्या अत्यधिक होती है। और वे सब सबल होनेसे सफलतापूर्वक सत्वर कार्य कर सकते है।

किण्व कीटाणु (Yeast) लम्बे और अति सूक्ष्म होते हैं। ये अणुवीक्षण

यन्त्रद्वारा प्रतीत होते हैं। ताड़ वृक्षकी मंजरी, ईखका रस, विविध पुष्प आदिमें भी ये कीटाणु प्रतीत होते हैं। धायके फूलोंमें बहुत रहते हैं। इन किण्व कीटाणुओंको शर्कराभूयिष्ट और पिष्टमय पदार्थका आहार मिलनेपर औषधि द्रव्यका मद्यमय रूपान्तर होने लगता है।

शीतकालमें आसव निश्चित समयसे ८-१० दिन पीछे तैयार होता है और उष्ण ऋतुमें ८-१० रोज पहिले ही तैयार हो जाता है। इसलिये औषधिकी जाति और ऋतुभेदसे तैयार हो जानेका अनुमान हो तब भाण्ड को खोलकर परीक्षाकर लेनी चाहिये।

मधुर पदार्थ मिश्रण—आसवोंमें गुड़, शक्कर, शहद आदि मिलानेके लिये प्राचीन आचार्योंने सामान्य परिमाण लिखा है कि—

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुड़म्।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुड़ादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

जहां गुड़ आदिके परिणाम शास्त्रमें न दिये हों; वहांपर १ द्रोण (१०२५ तोले) द्रवमें १ तुला (४०० तोले) गुड़, शहद गुड़से आधा और प्रक्षेप दशमांश मिलाना चाहिए।

कभी-कभी आसव-अरिष्टोंमें सुवर्ण या लोहा आदि धातु मिलाए जाते हैं। इन धातुओंके लवण बनाकर मिलानेपर वे अच्छी तरह मिल सकते हैं। भस्म रूपसे धातु पूर्णांशमें नहीं मिल सकते। सब धातुओंमें सुवर्ण अधिक मूल्यवान होनेसे उसके लिए विशेष सम्हालना चाहिए। सुवर्णका लवण निम्न पाश्चात्य विधि अनुसार बनाकर मिला सकते हैं।

सुवर्ण लवण—नमकका तेजाब (Hydrochloric Acid) ३ औंस और ३ ड्राम और शोरेका तेजाब (Nitric Acid) ४ औंस मिश्रित करें। उसे आतशी शीशीमें डाल उसके भीतर शुद्ध सुवर्ण ३ तोलेके पतरे डालकर ४ दिन रहने देवें। फिर आतशी शीशीको स्पिरिट लेम्पपर रखकर गरम करें अच्छी तरह गरम हो जानेपर १० तोले सैंधानमक मिलावें। जल सूख जाय और सुवर्णका रंग नारङ्गीके सदृश प्रतीत होवे लगे तब शीशी उतार लेवें। स्वांग शीतल होनेपर सुवर्ण लवणको निकाल लेवें। इस लवणको केमिष्ट्रीमें 'ओरम क्लोराइड' (Aurum Chloride) को संज्ञा दी है।

ओरम क्लोराइडकी मात्रा डॉक्टरीमें $\frac{1}{६०}$ से $\frac{1}{१०}$ ग्रेन है। क्रमशः मात्रा बढ़ाकर $\frac{1}{२}$ ग्रेन तक दे सकते हैं। इसकी १५-१५ ग्रेनकी ट्यूब डाक्टरी ओषधि बेचने वालीके पास तैयार मिलती है इसमें रक्तशोधक, उत्तेजक, बल्य, कामोद्दीपक और रसायन गुण हैं। यह डाक्टरीमें वातवाहिनियोंकी निर्बलता, चिरकारी वृक्कदाह, शिरःशूल, कष्टार्त्तव, गर्भाशयका चिरकारी दाह, बीजाशयमें वातजशूल, राजयक्ष्मा, मृगी, हिस्टीरिया, आक्षेपक वात, नपुन्सकता आदिपर प्रयोजित होता है।

यदि सुवर्ण लवणका सेवन अधिक मात्रामें किया जाता है तो पारदके समान मुंह आ जाता है तथा आमाशय और अन्त्रमें उग्रताकी उत्पत्ति हो जाती है, फिर क्षुधाका लोप, उदरमें पीड़ा, जुकाम, हाथ-पैर टूटना, व्याकुलता तथा हाथ-पैरोंमें पक्षाघात और श्वासावरोध होकर मृत्यु तक हो सकती है। इस लवणका सेवन करनेपर यह मूत्रद्वारा देहमे निर्गत हो जाता है।

लोह आदि धातु मिश्रण—जहाँ लोह ताम्र या अन्य धातुयें मिलाती हों वहाँपर भस्म ही मिलानी चाहिये। कच्ची धातु मिलानेसे आसवोंमें उचित गुण नहीं आ सकते।

लोहभस्म मिलानेके लिये लोहभस्म और हरड़के चूर्णको जलमें मिलाकर ३ दिन खरल करें। फिर आंवले और बहेड़ेका चूर्ण मिला खरल करें। पश्चात् और जल मिलाकर एक सप्ताह तक रहने देवें ताकि लोहभस्म त्रिफलाके जलमें विलीन हो जाय। तत्पश्चात् इस जलको क्वाथ आदिमें मिलाकर आसवको सिद्ध करें। जिस योगमें लोहभस्म डालनेका विधान हो वहां लोहभस्म १०० पुटी या लोहभस्म वारितर मिलानेसे वह आसव में घुल जाती है।

लोहासवमें लोह, परिणाममें अत्यधिक मिलानेका शास्त्रीय विधान है। उसमें लोहेका बुरादा, मण्डूरभस्म या कासीसमेंसे कौन-सा विशेष हितकर है, यह प्रश्न विचारणीय है। यद्यपि विलायती कासीस मिलानेपर आसव में लोह परिणाम अधिक आता है तथा उसमेंसे लोहका शोषण कितना होता है, यह अभी निश्चित नहीं हुआ।

कस्तूरी केशर आदि मिश्रण—आसव-अरिष्ट तैयार हो जानेपर उनको बोतलोंमें भर लेवें। फिर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगन्ध वाली औषधियोंको आसव या मद्यार्क (Alcohol) मेंघोल, बोतलोंमें यथा विभाग थोड़ी-थोड़ी बूंदें डालें, फिर मजबूत डाट लगा दें।

आसव तैयार करनेमें तिक्त आदि रसका परिवर्तन हो जाते हैं। कड़वापन, चरपरापन, मधुरता और कषायत्व बहुत कम हो जाते हैं। अम्लरस और लवणरस दोनों विरोधी हैं। अम्लरस होनेपर आसवमें अम्लता आ जाती है। एवं लवण रससे भी आसव क्रिया उचित रूपमें नहीं होती।

प्राय: आसव-अरिष्ट भोजनके पश्चात् दिये जाते हैं, किन्तु रोग और रोगीकी परिस्थिति अनुसार समयमें अन्तर किया जाता है। आसव-अरिष्ट के लिये क्वाथ करनेको औषधियाँ रात्रिमें जलमें भिगोकर सुबह उबालें। आसव-अरिष्टमें गुड़ मिलाना हो तो १ से ३ वर्षका पुराना लेना चाहिये।

सामान्य रीतिसे आसव-अरिष्ट एक समयमें १। से २।। तोले तक समानभाग जल मिलाकर सेवन करना चाहिये। जलके साथ लेनेसे आसव

नाड़ियोंमें शोषित होकर शरीरपर तत्काल असर पहुँचाता है और बिना जल मिलाये लेनेसे गलेमें खरखरी और आमाशयमें दाह हो जाता है।

आसव-अरिष्ट साधारणतः दीपन, पाचन, मलशोधक और पौष्टिक हैं। आसव-अरिष्टके सेवनसे शीघ्र गुण प्रतीत होता है। अनेक प्रकारके आसव-अरिष्ट पुराने रोगोंमें बहुत हितकर है और कोई-कोई तीव्र प्रकोपके समय भी लाभदायक हैं। आसव अरिष्ट जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणयुक्त और दोष रहित बनते हैं। अगर आसव-अरिष्ट कच्चे रह जावेंगे, तो थोड़े समयमें ही दुर्गन्धयुक्त होकर खराव हो जायेंगे। इसलिये ऊपर लिखी विधिसे सम्हाल पूर्वक बनाना चाहिये। आसव-अरिष्ट तैयार होनेपर भी उग्रता रहती है, वह धीरे-धीरे शान्त होती है। इसलिये ३-४ मास तक तो नवीन आसव-अरिष्टका सेवन नहीं कराना चाहिये।

नये आसव-अरिष्ट या शराब विशेषतः गुरु और वातुल होते हैं और जीर्ण होनेपर (कमसे कम ४ मासके पश्चात्) तेजोका शमन होकर स्रोत-शोधक, लघु, दीपन और रुचिकर हो जाते हैं। यदि आसव-अरिष्टोंको सम्हालपूर्वक बोतलोंमें बन्द रखा जाय तो जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणकारी होते हैं।

सूचना—(१) आसव-अरिष्ट वर्षाऋतुमें नहीं बनाने चाहिये। थोड़ी-सी असावधानी हो जानेपर दूषित हो जाते हैं, एवं शीतल वायु वाले स्थानमें भी आसव-पात्रको नहीं रखना चाहिये।

(२) जल अत्यन्त स्वच्छ मिलावें। जलको गरमकर फिर छानकर मिलावें या बाष्प-जल मिलावें दूषित जल होनेपर आसव-क्रिया सम्यक् नहीं हो सकती। जिस जलमें खारापन हो ऐसे जलको उपयोगमें न लेवें।

(३) आसव-अरिष्टकी औषधियोंका मोटा चूर्ण लेवें। सूक्ष्म चूर्ण मिल गया हो तो उसे निकाल डालें। कारण गाढ़ापन आसव-प्रक्रियामें अति बाधक होता है। क्वाथ करनेके लिये पहले दिन शामको ही जोकूट चूर्णको जलमें भिगो देवें फिर दूसरे रोज क्वाथ करें।

(४) क्वाथ मन्दाग्निपर करना चाहिये और तैयार होनेपर गरमागरम को ही छान लेना चाहिये। शेष रही हुई औषधिको अच्छी तरह दबाकर जल निकाल लेना चाहिये।

(५) आसव-अरिष्ट बनानेके लिये पात्र साफ लेना चाहिये। पहले जटामांसी, चन्दन, अगर, गूगल, कपूर, कालीमिर्च, शक्कर आदिकी धूप देकर कीटाणु और दुर्गन्धको दूर कर लें, फिर आसव-अरिष्टका द्रव भरें।

(६) मधुर द्रव्य क्वाथ शीतल होनेपर मिलावें। अच्छी तरह मिल जानेपर शेष चूर्णादि मिलावें, फिर डण्डेसे चलाकर अच्छी तरह मिश्रण कर दें

(७) धायके फूल ताजे, नये लेने चाहिये। मुनक्का भी नयी लें और जलसे अच्छी तरह धोकर उपयोगमें लेनी चाहिये।

(८) गुड़ और शहद पुराना हितकर है। परन्तु गुड़ दुर्गन्धयुक्त, काला, खट्टा या खारा नहीं लेना चाहिये। एवं शहद भी खट्टा, काला या दुर्गन्धयुक्त नहीं होना चाहिये।

(९) गुड़ आदि मधुर द्रव्यमें अम्लगुणका संयोग हुआ हो किसी प्रकार की दुर्गन्ध हो या खमीर आ जानेसे तिजाब जैसा असर उत्पन्न हुआ हो तो आसव तैयार होनेके पश्चात् वे अधिक काल तक नहीं टिक सकेंगे।

(१०) अनेक बार गुड़ और शहद खट्टे और दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं; एवं सड़ी गली द्राक्षा या फलोंका स्वरस निकालनेके पश्चात् कुछ समय तक पड़ा रहनेपर वह भी दूषित हो जाता है। ऐसे सदोष पदार्थको आसव-अरिष्ट बनानेके लिये उपयोगमें नहीं लेना चाहिए।

(११) आसव-प्रक्रिया समाप्त होनेपर अम्ल द्रव्यकी क्रिया होने लगती हैं। जब तक आसव-क्रिया विद्यमान होगी तब तक अम्लक्रिया निष्क्रिय रहती है। फिर अम्लक्रिया द्वारा आसव सिरकेमें रूपान्तर हो जाता है।

(१२) आसव-अरिष्ट तैयार होनेपर पहले मोटे कपड़ेसे या बाँसकी टोकरीसे छान लेना चाहिये। फिर दूसरे अमृतबानमें बन्दकर १०-१५ दिन रहने दें। फिर ऊपर-ऊपरसे साफ प्रवाही नितरा हुआ हो, उसे सम्हाल पूर्वक बोतलोंमें भरकर मजबूत बन्द करें। गाढ़ा द्रव नीचे पेंदेमें हो उसे निकाल डालें।

(१३) आसव-अरिष्टको बोतलोंमें मुंह तक लबालब नहीं भरना चाहिये। मुंह तक भर देनेसे आसव-अरिष्टमें जोश आकर बाहर निकल जाने या बोतलके फट जानेका भय रहता है। अतः कुछ स्थान खाली छोड़ देना चाहिये।

(१४) आसव बोतलमें भरनेके समय यदि उसमें जलकी बूंदें रह गई होंगी तो आसव दूषित हो जायगा।

(१५) आसवको बोतलमें भरनेके समय तलस्थ गाढे भागको भीतर नहीं जाने देना चाहिये।

(१६) जो मद्य या आसव अरिष्ट आदि बहुत गाढ़े, पचनकालमें दाह उत्पन्न करने वाले, दुर्गन्धयुक्त बिगडे हुए, वेस्वादु कृमियुक्त, गुरुपाकी मनको अप्रिय, नये बने हुए तीक्ष्ण उष्ण (स्पर्श करनेमें गरम) मैले या दूषित पात्रमें रखे हुए-औषधियोंकी बहुत कम मात्रा मिलाकर तैयार किये हुए, बिगड़ जानेपर पुनः पकाये हुए या किसी खुलेमुख पात्रमें रहे हुए, अति पतले या अति भारी और पात्रके तलभागमें रहा हुआ किंचित् अवशेष भाग इन सब का त्यागकर देना चाहिये।

(१७) उष्ण उपचारके साथ क्षुधा लगनेपर और विरेचन लेनेपर मद्य या आसव-अरिष्टका सेवन नहीं करना चाहिये ।

(१८) आसव अरिष्टका शोषण रक्तके भीतर त्वरित हो जाता है। इस हेतुसे अन्य शुष्क औषधियां (चूर्ण, गुटिका) की अपेक्षा यह सत्वर फलदायी है। इसका अनुभव प्राचीन वैद्यसमाजने किया है। अत: आसव-अरिष्टका प्रयोग वर्त्तमानमें अधिकतर हो रहा है। कई चिकित्सक तो मात्र आसव अरिष्टोंको ही उपयोगमें लेते रहते है।

(१९) आसव अरिष्टोंकी प्रतिक्रिया (Re-action) अम्ल होती है, जिससे वह रक्तमें शोषित होनेपर तुरन्त अम्लताकी वृद्धि कराती है।

रक्तकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो या उदासीन हो उनको आसव-अरिष्टोंके सेवनसे पूरा-पूरा लाभ मिल जाता है। किन्तु जिनके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हों, अम्लपित्त, रक्तपित्त, अन्तर्दाह, वातनाड़ियोंपर दबानेपर बेदना होना, वातज शूल, वृक्क या मूत्राशयमें अश्मरी होना, वृक्कसे मूत्रोत्पत्ति योग्य न होती हो, ऐसे रोग या लक्षण पीड़ितोंको आसव-अरिष्टका सेवन नहीं कराना या विचार करके कराना चाहिए दुराग्रह करनेपर क्वचित् विपरीत असर पहुँच जाता है।

अर्क—अनेक औषधियोंका क्वाथ नित्यप्रति बनानेमें श्रम पड़ता है और समय भी लग जाता है। इनके अतिरिक्त क्वाथमें बेस्वादुपन रहता है, जिससे सब कोई नहीं पी सकते, यदि उसी औषधिका अर्क निकाल लिया जाय, तो नाजुक प्रकृति वाले रोगी सहज ही ले सकते हैं और लाभ पूर्णरूपसे होता है।

अनेक कठोर औषधियोंका केवल क्वाथ ही लाभ दायक रहता है। कारण घनत्व अर्करूप होकर नहीं चढ़ता। किन्तु अनेक उडनशील तैलीय औषधियों की और मृदु औषधियोंके क्वाथकी अपेक्षा अर्क विशेष लाभ दायक रहता है। कारण तैलीय द्रव्योंमेंसे तैलका विशेष अंश क्वाथ करनेसे उड़ जाता है। अतः क्वाथ अथवा अर्क तैयार करनेके पहले औषधिके स्वरूपपर लक्ष्य देना चाहिये।

अर्क ६ मास तक प्रायः गुणयुक्त रहते हैं। नलिका यन्त्र द्वारा निकाले हुए अर्कके जलकी एक बूंद गिर जायगी अथवा गीली शीशियोंमें अर्क भरनेमें आवेगा तो थोड़े समयमें ही अर्कपर फफूंदी आकर वह बिगड़ जायगा। रेक्टीफाइड स्पिरिटसे बने हुए अर्क ५-७ वर्ष तक गुणयुक्त रहते हैं। रेक्टीफाइड स्पिरिटसे बने हुए अर्कोंको मजबूत डाट वाली शीशीमें बन्द रखना चाहिये, अन्यथा उड़कर कम हो जाता है।

(१) दशमूलारिष्ट

विधि—दशमूल सब मिलाकर २०० तोले, चित्रक छाल १०० तोले,

पुष्करमूल १०० तोले, लोध ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आंवला ६४ तोले धमासा ४८ तोले, खैरकी छाल, विजयसारकी छाल, हरड़की छाल ये सब ३२-३२ तोले, कूठ, मजीठ देवदारु, बायबिडंग, मुलहठी, भारंगी, कबीठ, बहेड़ा सांठीकी जड़ चव्य, जटामांसी, गऊंला अनन्तमूल, स्याह जीरा, निसोत. रेणुक बीज, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सूवा पद्म काष्ठ, नागकेशर, नागर मोथा. इन्द्र जौ, काकड़ा सींगी, प्रत्येक ८-८ तोले; विदारीकन्द, असगन्ध, मुलहठी और बाराही कन्द १६-१६ तोले लें। सबको कूटकर आठ गुने जलमें क्वाथ करें चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार लें। पश्चात् २५६ तोले मुनक्काको १०२४ तोले जलमें उबालें। पौन जल शेष रहनेपर उतार लेवें। फिर दोनों क्वाथोंको मल छानकर शहद १३० तोले, गुड़ १६०० तोले, धायके फूल १२० तोले, शीतल मिर्च, नेत्रबाला, सफेद चन्दन जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल, नाग-केशर प्रत्येक ८-८ तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। यह चूर्ण और कस्तूरी ३ माशे मिला मुख मुद्राकर १।। मास रख दें। परिपक्व होनेपर छान लें। फिर निर्मलीके थोड़े बीज मिलाकर अरिष्टको स्वच्छ बना लेवें। (भैं० र०)

सूचना—कस्तूरी पहले मिलानेकी अपेक्षा आसव तैयार होनेपर मिलाने में सुगन्ध बनी रहती है और लाभ भी अधिक पहुँचता है।

मात्रा—१। से २।। तोले तक दिनमें २ बार। भोजनके बाद समान जलके साथ दें।

उपयोग—दशमूलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातरोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय (Atrophy) आदि दोष दूर होते हैं। दुर्बलोंको पुष्ट बनाता है, स्त्रियोंके गर्भाशयकी शुद्धि करता है। बन्ध्या स्त्रीको सन्तान देता है एवं तेज, वीर्य और बलको बढ़ाता है। यह औषधि विशेषतः वातविकार, मूत्ररोग और उदररोगकी नाशक है और उदरके अवयवोंके लिये बल्य हैं।

यह औषधि प्रसूता स्त्रीके लिये अत्यन्त हितकर है। पहले १० दिनमें प्रसूताको देते रहनेसे मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, कास; श्वास, वातविकृति आदि रोगोंके उत्पन्न होनेका भय दूर होता है और प्रकृति स्वस्थ रहती है। इस अरिष्टमें थोड़ा स्तम्भक गुण होनेसे प्रसूताके अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि विकारोंमें भी उपकारक है।

गर्भाशयको शिथिलता या अन्य रोग विकृतिके कारण बार-बार गर्भ पात या गर्भस्राव हो जाना या गर्भ-धारण ही न होना, यदि सन्तान हुई तो भी रोगी कृश होना, ऐसे विकारोंमें दशमूलारिष्ट उत्तम औषध है। जिन स्त्रियोंको गर्भाशयकी अशक्तिके हेतुसे गर्भधारण नहीं होता, उनके गर्भा-

शयको पुष्ट बनाकर सन्तान प्राप्ति कराता है एवं पुरुषोंके लिये भी शुक्र शुद्धिकर और वृद्धिकर है।

जीर्ण संग्रहणी रोगमें मन्दाग्नि होकर शरीर कृश हो जाता है। ऐसे समय भोजन कर लेने पर दशमूलारिष्ट देना अति लाभदायक है।

सूतिका ज्वरकी तीव्रावस्थामें प्रतापलंकेश्वर और दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करनेवाली औषधियाँ है। प्रसूतावस्थामें पवित्रता और सावधानता न रखनेपर सूतिका ज्वरकी उत्पत्ति होती हैं। यह ज्वर अति भयङ्कर है। इसमें एक प्रकारके कीटाणुका अनुबन्ध होता है। प्रसवके १-२ दिनमें ही यह ज्वर उत्पन्न हो जाता है। प्रसव-क्लेश, फिर होनेवाला रक्तस्राव और क्लेदस्रावके हेतुसे जीवनीय शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती हैं। इस हेतुसे कीटाणुओंको अपना प्रभाव पहुँचानेका समय मिल जाता है। इस ज्वरमें शरीरिक उत्ताप १०३° से १०५° डिग्री तक बढ़ जाता है। भयंकर तृषा अत्यन्त व्याकुलता, भयंकर शिरदर्द, योनिस्रावमें दो तीन दिन बाद दुर्गन्ध आना, योग्य उपचार न होनेपर सान्निपातिक लक्षणोंकी उत्पत्ति, बेसुधी, प्रलाप तथा किसी-किसी रुग्णाको धनुर्वात, दाँत भिचना और हनुग्रह आदि लक्षण होते हैं। इस ज्वरमें दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी है। इससे दोष-प्रत्यनीक शक्ति या रोगप्रतिकार शक्तिकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे गर्भाशयमेंसे स्राव अधिक या कभी अत्यधिक होता है। रक्तका दबाव गर्भाशय की ओर अधिक होनेसे रक्त और क्लेदका स्राव ज्यादा होता है। परिणाम में कीटाणु और विषका देहमें प्रवेश होनेपर भी नहीं टिक सकते एवं गर्भाशयका आकुंचन और नियमन होता एवं मक्कलशूल भी शमन हो जाता है।

दशमूलारिष्टमें रहे हुए अनेक जीवनीय द्रव्योंके हेतुसे प्रत्यनीक शक्ति प्रबल होती है। इस हेतुसे प्रसव होनेपर तुरन्त इस औषधिका सेवन प्रारम्भ कराया जाय तो रोग प्रतिरोधक शक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है। जिससे सूतिकाज्वरकी संप्राप्ति ही नहीं होती। इस उद्देश्यको लेकर अपने देशमें प्रसव होनेपर दशमूल क्वाथ या अन्य क्वाथ देनेकी प्राचीन परम्परा है। यदि सूतिका ज्वर होनेपर तुरन्त ही अरिष्ट या क्वाथका उपयोग किया जाय तो भी जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

प्रसव होना यह नैसर्गिक कार्य है। उसमें किसीकी आवश्यकता न रहे, यह स्थिति उत्तम मानी जायगी। जङ्गलोंमें रहने वाले प्राणियोंके लिये प्रसवकी चिन्ताका प्रश्न ही नहीं आता। उनके बिना कष्ट प्रसव होता रहता है। इस तरह नैसर्गिक नियमानुकूल रहने वाले मानवों(ग्रामवासियों) के लिये भी ऐसा ही प्रतीत होता है। प्रसव होनेपर अपने शरीर और बच्चेको नदीमें बहते हुए शीतल जलसे धो, अपनी गोदमें सुलाकर फिरने

वाली अनेक स्त्रियां इस नवयुगमें भी प्रतीत होती है। उनको प्रसूति ज्वर और तदानुषङ्गिक विकार नहीं होते। कारण इनकी प्रतिकार शक्ति बलवत्तर है। ऐसे स्थानमें कीटाणुओंका प्रवेश नहीं होता और प्रवेश हुआ तो भी वे जीवित नहीं रहते। कीटाणुओंकी वृद्धिके लिये उनका शरीर अनुकूल नहीं है। दूसरी ओर नगरवासियोंमें प्रतिकार शक्ति निर्बल रहती है, अतः इनके लिये दशमूलारिष्ट सूतिका रोगकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक रूपसे उपयोगी है।

सूतिकावस्थामें या प्रसवके पश्चात् उत्पन्न होने वाले संग्रहणी या अतिसारमें दशमूलारिष्ट अत्यन्त उपयोगी है। अन्य समयमें सूतिका ज्वरके निमित्त कारण (पुराने) कीटाणु मलमें प्रतीत होनेपर उनसे उत्पन्न संग्रहणी में भी दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी औषधि है।

यह औषधि वातशामक होनेसे नक्कलशूलको तो शमन करती ही है, इसके अतिरिक्त कुक्षिशूल, कक्षाशूल वातज परिणामशूल, तीव्र शिरःशूल, कोष्ठशूल आदिपर भी अच्छी उपयोगी है। इन रोगोंमें मात्रा कम देनी चाहिये।

वातज श्वासरोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। श्वासके साथ शुष्ककास होनेपर वह भी शान्त होती है। कास और श्वास दोनोंमें प्राण और उदानवायुकी प्रदुष्टि होती है। वातज कास और श्वासमें शुष्क कास बहुत आती है। फिर ऐसे ही शुष्क कासका वेग आता है, जिसमें कफ अधिक नहीं गिरता। शुष्क वेगवान कास और हाँफनीके हेतुसे रोगी व्याकुल हो जाता है। कितने ही रोगी बेहोश हो जाते हैं, या कुछ अंशमें मूर्च्छा आ जाती है। और नाड़ीका वेग प्रबल हो जाता है। इस अवस्थामें दशमूलारिष्ट जलमें मिलाकर थोड़ा-थोड़ा २-२ घण्टेपर देना चाहिये। सान्निपातिक ज्वरमें भी ऐसी अवस्था होनेपर यह दिया जाता है।

जब भगन्दरका व्रण बार-बार शस्त्रचिकित्सा करानेपर भी नहीं भरता, बार बार व्रण पूयसे भरते हैं, फूटते हैं अन्य कई मुख उत्पन्न होते हैं, ऐसे लक्षणयुक्त भगन्दरको शतपोनक कहते हैं। उस स्थानमें व्रण भरने की क्रिया करने वाली शक्ति क्षीण हो जाती है। इस तरह कितने ही जीर्ण नाड़ी व्रणोंमें भी ऐसा ही होता है। बार-बार शस्त्र क्रिया करनी पड़ती है। फिर भी व्रण नहीं भरता, कितने ही रोगियोंका नाड़ीव्रण सर्वदा बहता रहता है। यह स्थिति मधुमेह, जीर्ण सुजाक, उपदंश और क्षय रोगमें होती है, या अन्य अज्ञात कारणोंसे ऐसा व्रण होता है। रक्तादि धातुओंकी रोग निरोधक शक्ति कम होनेके अन्य भी अनेक हेतु हैं। इन प्रकारोंपर दशमूलारिष्ट अत्युत्तम औषधि है।

आयुर्वेदने अनेक विकारोंकी विविध परिस्थितियोंका अन्तर्भाव वात-

व्याधिमें किया है। वातवाहिनियों और स्नायुओंमें प्रेरणा, प्रस्पन्दन और उद्वहन कार्य रक्तवाहिनियों और रसवाहिनियोंमें पूर्ति और उद्वहन आदि कार्य तथा सचेतन परमाणु, घटक (कोषाणु) और मानस क्षेत्रमें विवेक कार्य इन सबकी दृष्टि वातरोगमें समाविष्ट की है। वातरोगमें वातस्थान दुष्ट होनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं एवं भय, शोक, काम आदि मानस विकृतिसे उत्पन्न होने वाले रोगोंका भी वातरोगमें समावेश किया गया है। अकस्मात् उत्पन्न मानस आघातज विकार सृष्टिको वातरोगके भीतर स्थान दिया है। इन सब वातव्याधियोंमें दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इससे वातका शमन होता है। वातस्थान जीवनतत्व मिलने बृंहण होते है। एवं इस अरिष्टमें वातशामक गुण होनेसे यह संकोच, मेद, स्तम्भ, कलायखञ्ज, खल्ली, विश्वाची, गृध्रसी आदि वातरोगोंपर अति लाभप्रद माना गया है।

अस्थि और वायुका आश्रय-आश्रयीभाव है। इस हेतुसे अस्थि क्षयके विकारमें दशमूलारिष्ट उत्तम औषधि मानी जाती है। विशेषत: प्रसवके पश्चात् यह विकार हुआ हो तो इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। अस्थिमार्दव होकर कमरमें दर्द होना, चलनेमें दोनों पैरोंपर खूब भार देकर चलना, पैर कठिनतासे उठाकर चलना अस्थिसन्धिपर गांठ उत्पन्न होने सदृश भासना, मन्द-मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होनेपर दशमूलारिष्ट अति प्रशस्त औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—जिस प्रसूताके मुंहमें छाले, दाह, गरम-गरम जल सदृश पतले दस्त, प्यास आदि लक्षण हों ऐसी पित्तप्रधान विकृतिमें दशमूलारिष्ट न दें।

(२) लोध्रासव

विधि—पठानी लोध, कचूर, पोहकरमूल, छोटी इलायची, मूर्वा, बायविडंग, हरड़, बहेड़ा आंवला, अजवायन, चव्य, प्रियंगू, चिकनी सुपारी, इन्द्रवारुणीका मूल, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रकमूल, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजो, नागकेशर, कूड़ेकी छाल, नख, तेजपात, कालीमिर्च और नागरमोथा इन ३० औषधियोंको १०-१० तोला मिला जो कुट चूर्णकर ३२०० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर मलकर छान लें। शीतल होनेपर ५०० तोले शहद मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर १५ दिन रख दें। पक जानेपर छानकर बोतलोंमें भर लेवें।

मात्रा—१। तोलासे २॥ तोले तक, समान जलके साथ देवें।

उपयोग—यह आसव पित्तज प्रमेह (क्षारमेह, कालामेह, नीलमेह हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह) और कफजमेह (उदकमेह, सान्द्रमेह, पिष्ठमेह, शीतमेह आदि) को नष्ट करता है। एवं पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणी, किलास

आदि विविध क्षुद्र कुष्ठोंको भी दूर करता है। लोध्रासव यकृद्बल्य होनेसे यकृत्पित्तके विकारसे उत्पन्न व्याधियोंका नाशक है। यह आसव रक्तप्रदर रक्तपित्त, बालकोंके मसूरिका और रोमांतिका हो जानेके पश्चात् रक्तमें रहे हुए शेष विष और मूत्रावरोध आदि रोगोंमें उपकारक है। रक्तप्रदरपर लोध्रासवके साथ अरविन्दासव सारस्वतारिष्ट मिलाकर देनेपर सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३) कुमार्यासव

विधि—घीकुंवारका रस १०२४ तोले और गुड़ ४०० तोले लेवें। फिर हरड़ अथवा भांग १०० तोलेको १०२४ तोले जलमें मिला उबालकर क्वाथ करें। पानी चौथा हिस्सा रहनेपर उतारकर छान लें। फिर घीकुंवारके रस, गुड़ और क्वाथ तीनोंको मिलाकर अमृतबानमें भरें। उसमें शहद २५६ तोले, धायके फूल ६४ तोले; जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, जटामांसी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकड़ासींगी, बहेड़ेकी छाल, पुष्करमूल ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण तथा लोहभस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले डालकर २० दिन बन्द करके रखें। पक्व होनेपर छानकर बोतलमें भर लें।

(यो० र०)

सूचना—भस्म मिलानेकी विधि आसवादि प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी है। उस तरह मिलाना विशेष लाभदायक है। घीकुंवारका रस निकालनेके लिये छोटे-छोटे टुकड़े कर कड़ाहीमें डाल गरम करनेसे सरलतापूर्वक रस निकलता है।

मात्रा—१। से २। तोले, दिनमें २ बार। भोजनके बाद जलसे।

उपयोग—इस आसवसे स्त्रियोंके ऋतुदोष, गुल्म, रक्तगुल्म, प्लीहा, खांसी, श्वास, क्षय, उदररोग, अर्श, वातरोग, अपस्मार, मन्दाग्नि, उदरशूल आदि मिटते हैं और पचनशक्ति प्रबल बनती है।

मूल संस्कृत ग्रन्थोंमें विजया शब्द है। विजया भांग और हरड़ दोनोंके नाम है। हमने दोनों प्रकारके आसव बनाकर उपयोगमें लिये है।

कितने ही चिकित्सक छोटे बालकोंको देनेके लिये ताम्रलोहरहित कुमार्यासव बनाते हैं। इस तरह भांगमिश्रित, हरड़मिश्रित और ताम्रलोह रहित ऐसे तीन प्रकारके आसव एक ही पाठमेंसे बनते हैं।

घीकुंवारके रसमें कड़वापन है, यह आसव-क्रियाद्वारा रूपान्तरित हो जाता है। घीकुंवारका रस स्पर्शमें शीतल और वीर्यमें भी शीतल है। परन्तु कुमार्यासवमें ये गुण नहीं हैं। आसव क्रियाके योगसे परिवर्तन हो जाता है।

हरड़युक्त कुमार्यासव—दीपन-पाचन, किंचित् स्रंसनगुणयुक्त (दस्तावर), मूत्रल, कुछ बल्य, शोथहर, रक्तप्रसादक और दाहनाशक है। इसका

कार्य विशेषत: पचनेन्द्रियपर होता है। आमाशय, ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत् लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, गुदनलिका और गुदत्रिवली इनपर प्रभाव पड़ता है। इसके योगसे इन सब अवयव समूहोंमेंसे पित्तविरेचन होता है। इसका परिणाम गर्भाशय, बीजाशय, बीजवाहिनियों आदिपर भी होता है। इन स्थानोंमें किञ्चत् संरम्भ होकर आर्तव प्रवृत्ति होती है। कुमार्यासव अधिक दिनों तक बड़ी मात्रामें देते रहनेसे बृहदन्त्र, गुदकाण्ड और गुदत्रिवलीकी शिराएं रक्तपूर्ण होकररक्तार्शकी उत्पत्ति होती है या रक्तस्राव होने लगता है। कुमार्यासवके सेवनसे मलशुद्धि होती है; मलका वर्ण हरा-सा होता है। शौचके समय उदरमें कुछ दर्द होता है परन्तु सबको नहीं।

कुमार्यासव कभी सतत और अधिक मात्रामें नहीं देना चाहिये। इसका परिणाम मूत्रपिण्ड, गवीनियां और मूत्राशयपर भी होता है। कभी कभी इससे मूत्रमार्गमें खलबली मच जाती है। कितनों ही को वृक-प्रदाहको प्राप्ति होती है। अतः कुमार्यासवके इस दोषको लक्ष्यमें रखकर योग्य मात्रामें योग्य समयपर, योग्य रोगपर, अधिकारी व्यक्तियोंको देना चाहिये। मूत्र-रोगी प्रवाहिका या अन्त्रमें प्रदाहयुक्त रोगीको नहीं देना चाहिये। इन बातोंको सम्हालकर इस आसवका उपयोग किया जाय तो यह उत्तम औषध है। छोटे बालकोंके लिये यह अमृत है। इस आसवसे पचनक्रिया सुधरती है अन्त्र सबल बनते हैं, शौच शुद्धि होती हैं, पाचक पित्तका स्राव अधिक होता है, आहार रस अच्छा बनता है। फिर इसकी शोषण क्रिया उत्तम होती है, रक्त सबल बनता है; शारीरिक बलकी वृद्धि होती है तथा गुदत्रिवलीमें अवस्थित सूक्ष्म कृमि नष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त इसका कार्य श्वासवाहिनियोंपर भी होता है और उसमेंसे कफ पृथक् होने लगता है।

कुमार्यासव छोटे बच्चोंके बार-बार उत्पन्न होने वाले कास रोगमें अति उपयुक्त औषधि है। इससे श्वास नलिकामें स्राव उत्तम प्रकारसे होकर संचित कफ जल्दी गिरने लगता है। इसका कार्य प्राण और उदान दोनों पर होकर कास कम होती है। कफ और वात दोषकी दुष्टिसे उत्पन्न श्वास भी इसके सेवनसे कम हो जाता है। क्षयके विकारमें विषमाशन (भोजनमें नियमका अभाव) कारण होनेपर कुमार्यासव थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देनेसे कुछ सहायता मिल जाती है।

अग्निमांद्य और अरुचिमें आमाशयस्थ अम्लपित्तका स्राव अधिक नहीं होते जिससे बिल्कुल थोड़ा खानेपर भी पचन नहीं होता, मीठी सी या फीकी-सी डकारें आती रहती हैं। मुँहमें पानी छूटता है एवं उदरमें भारी-पन, भोजनमें रुचि न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन विकारोंमें कुमार्यासवका सेवन करनेसे आमाशयमेंसे योग्य पित्तस्राव होने लगता है। इन विकारोंपर भोजनके आध या एक घण्टे पहले आसव लेना चाहिये।

भोजन ग्रहणीमेंसे लघुअन्त्रमें जानेपर यदि ग्रहणी सबल है तो कुछ भी त्रास नहीं होता अन्यथा उसमें खलबली होकर अन्नकी गतिके साथ शूलोत्पत्ति होती है। यह भोजनके २-३ घण्टेपर होता है। शूल अधिक बलपूर्व नहीं होता सामान्य होता है, मुंहमें पानी भर जाता है, तथा वमन होगी, ऐसा भासता है। ऐसे शूलपर कुमार्यासव उत्कृष्ट कार्य करता है।

अग्न्याशयमेंसे आग्नेय रसका स्राव उचित न होता हो तो कुमार्यासवके सेवनसे योग्य स्राव होने लगता है। यह कार्य कालमेह और नीलमेहमें प्रतीत होता है।

कुमार्यासव यकृद्बल्य होनेसे यकृत्वृद्धिमें उपयुक्त औषधि है। यकृत् निर्बल होनेपर यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् नहीं होता। उसपर कुमार्यासव देना चाहिये। यकृत्की अशक्तिसे उत्पन्न अतिसारमें कुमार्यासव अमृतके सदृश कार्य करता है। इस विकारमें विशेषतः दस्त श्वेत वर्णके दुर्गन्धयुक्त होते हैं।

पित्ताशय विकृति होकर पित्तकी घनता और तीव्रता बढ़कर उत्पन्न शूल और पित्ताश्मरीसे उत्पन्न पित्तज शूलमें कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं।

यकृद्वृद्धिसे उत्पन्न शुष्क कासका इस आसवसे बहुत जल्दी शमन हो जाता है। छोटे बालकोंके यकृद्विकारमें यह अत्यन्त उपयुक्त औषधि है। यकृद्दाल्युदरमें जलसंचय होनेके पहले या जलसंचयका प्रारम्भ होते ही कुमार्यासव दिया जाता है। इसके साथ मूत्रल-क्षार या ताम्रभस्मके समान संघातभेदी औषधि देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त बीच-बीचमें तीव्र विरेचन भी देते रहना चाहिये।

प्लीहावृद्धिमें इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है। अति जीर्ण व्याधि होने पर इसके साथ ताप्यादि लोह देनेसे अति उत्तम कार्य होता है। प्लीहावृद्धि अधिक होनेपर लोह प्रधान प्लीहान्तक वटी और पारिजातक (रोहितक) चूर्ण या क्वाथ देना विशेष हितावह है।

जीर्ण कोष्ठबद्धतामें कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होता है। इससे अन्त्र की पुरःसरण क्रिया बढ़ती है और मलशुद्धि होती है। परन्तु इसका सेवन अधिक काल तक नहीं करना चाहिये अन्यथा अन्त्रमें प्रदाह उत्पन्न होनेकी संभावना है।

कुमार्यासवका उपयोग अर्श रोगपर होता है। इससे अर्श निर्मूल नहीं होते, परन्तु मस्से मुलायम और निर्बल होते हैं। फिर शनैः शनैः इनका बल घटता जाता है। रक्तार्शके विकारमें इसका उपयोग होता है। इससे अन्त्र आमविषोत्पत्तिका विनाश होता है। परिणाममें अर्श रोगमें लाभ

हो जाता है।

सब प्रकारके उदर रोगोंपर इस आसवका उपयोग होता है। इससे अग्निमान्द्य दूर होता है। संचित मलमेंसे थोड़ा-थोड़ा शनैः शनैः टूट-टूट-कर बाहर निकलता रहता है। इस हेतुसे उदर रोगोंपर इसका उत्तम उपयोग होता है। जलोदरमें भी यह उपयोगी है। परन्तु जलोदरमें इसके साथ क्षार वाली मूत्रल औषधि और विरेचन औषधि देनी चाहिये। यह आसव यकृत् विकारसे उत्पन्न जलोदरमें तो दिया जाता ही है, (यह ऊपर कहा है।) प्लीहोदरमें भी इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। हृदयके विकारसे उत्पन्न जलोदरमें इसका अधिक उपयोग नहीं होता, परम्परागत कुछ सहायता मिलती है। मूत्रपिंडकी विकृतिसे उत्पन्न होने वाले जलोदर में इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। वृक्कविकारज जलोदरमें चन्द्रप्रभा वटी, पलाशपुष्पासव, ताप्यादि लोह आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये। इस उदररोगमें वातपित्त कफात्मक लक्षण होते हैं। अतः लक्षण अनुरोधसे औषधोपचार करना चाहिये।

विशेषतः अग्निमांद्य रो। अनेक दिनों तक रह जानेपर आमदोष संचित होने लगता है। विशेषतः आमविषके बृहदन्त्रमें संचय होनेपर वातविकार उपस्थित होता है; इसपर कुमार्यासव लाभदायक है। इस प्रकारके विषसे आमवातकी भी उत्पत्ति हो जाती है। आमवातसे संधियोंमें शोथ, स्नायु अकड़ जाना, शिरदर्द, कमरमें पीड़ा आदि लक्षण होनेपर कुमार्यासवका उत्तम प्रयोग होता है।

कक्षाशूल, कुक्षिशूल, पृष्ठशूल आदि जीर्ण व्याधि, जीर्ण आमविषमें उत्पन्न हुई हों तो कुमार्यासवसे उत्तम लाभ होता है। इस तरह आमविषसे उत्पन्न अन्य रोगोंमें भी यह अच्छा उपयोगी है।

जीर्ण-अजीर्ण रोगसे उत्पन्न शूल और गुल्मपर कुमार्यासव प्रयोजित होता है। गुल्मका अर्थ होता है गोला। उदरमें उत्पन्न होनेवाले छोटे-छोटे गुल्मों की प्रथमावस्थामें कुमार्यासवसे लाभ पहुँचता है। वातज गुल्मके केवल अन्त्र में वातसंचय होता है, अन्य मांस आदिकी वृद्धि नहीं होती। कुमार्यासवके योगसे इस वातज गुल्मकी विकृतियोंके नष्ट होनेमें सहायता मिल जाती है।

स्त्रियोंके बीजाशय विकृतिसे उत्पन्न नष्टार्तवपर यह उत्तम उपयुक्त औषध है। इसे कन्यालोहादि वटी या महायोगराज गूगलके साथ देना चाहिये। बड़ी आयुमें आई हुई लड़कीको होनेवाले हारिद्रक (पाण्डु) में इसका अच्छा उपयोग होता है। यदि कुमार्यासवके साथ लोहभस्म या मण्डूर भस्मका सेवन कराया जाय तो उत्तम कार्य होता हैं। (औ० गु० ध० शा०)

भाँगयुक्त कुमार्यासव—भाँगयुक्त आसव अन्त्र और गर्भाशयके विकारों-पर अधिक असर पहुँचाता है। अतः विसूचिका (Cholera), पुराना संग्र-

हणी रोग, अफारा, आमातिसार, अजीर्ण, उदरशूल आदि रोगोंको दूर करनेमें विशेष हितकर है। यह अन्नको सुदृढ़ बनाता है। स्त्रियोंके मासिक-धर्ममें अधिक रक्त जानेको और रक्तार्शके रक्तको बन्द करता है। मासिक-धर्ममें होनेवाले कष्टको दूर करता है, नष्टार्तव (मासिकधर्म न आता) हो तो गर्भाशयको संकुचित और उत्तेजित करके मासिकधर्म ला देना है। निद्रा लानेमें सहायता पहुँचाता है और धनुर्वात आदि वातरोगोंके आक्षेपोंको भी दबाता है। भांग मिलानेसे यह आसव हरड़युक्तकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण, उष्ण दीपक और पाचक बनता है।

(४) उशीरासव

विधि—खस, नेत्रवाला, नीलोफर, लालकमल, सफेदकमल, प्रियंगु, गंभारी, पद्मकाष्ठ, लोध, मंजिष्ठा, धमासा, कचूर, पाठा, चिरायता, बड़की छाल, गूलरकी छाल, जामुनकी छाल, कचनारकी छाल, मोचरस, पित्त-पापड़ा और परवलके पत्ते सब ४-४ तोले, मुनक्का ८० तोले और धायके फूल ६४ तोले लेकर जौकुट करें। फिर निवाया जल २०४८ तोले, मिश्री ५ सेर और शहद २॥ सेर मिला, अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके एक मास तक रख दें; बादमें छान लें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले, भोजनके पश्चात् दिनमें २ बार। समान जल के साथ मिलाकर देवें।

उपयोग—यह आसव रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि, रक्त-विकार शोषरोग आदिका नाश करता है। यह उशीरासव, शामक, मूत्रल, पित्तशामक दाहनाशक और प्रसादक है। यह अधोग रक्तपित्तमें विशेषतः मूत्रमार्गसे रक्त जानेपर अति उपयुक्त है। रक्तपित्तमें रक्त निर्बल और उष्ण होजाता है, पित्तके संयोगसे विदग्ध हो जाता है। पित्तमें विदग्धत्व बढ़नेपर यह रक्तको विदग्ध कर देता है। फिर रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली हो जाती है, पश्चात् रक्तवाहिनियाँ फूट कर रक्तस्राव होने लगता है। क्वचित् रक्तका दबाव बढ़ जानेपर भी रक्त गिरने लग जाता है। यदि रक्त विदग्ध होकर रक्तपित्तकी सम्प्राप्ति हुई हो तो उशीरासवका अति उपयोग होता है।

ग्रीष्म ऋतुमें कितने ही व्यक्तियोंमें रक्तपित्तकी अधिक प्रवृत्ति होती है। उनके नाकमेंसे बार-बार रक्त गिरता है। जैसे-जैसे गरमी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे नाकमेंसे रक्त गिरनेका त्रास बढ़ता जाता है और मूत्रमें दाह भी होता है। ऐसी प्रकृतिवालोंके लिये उशीरासव अति उपयोगी होता है।

अत्यार्तव, रक्तातिसार, अर्श इन व्याधियोंमें अधिक रक्तस्राव होनेपर इस आसवसे उत्तम लाभ पहुँचता है। विशेषतः पित्तप्रकृतिवालोंको उष्ण-वीर्य पदार्थ खानेमें आने; जागरण होने, सूर्यके तापमें घूमने, अथवा अग्नि के पास बैठनेपर रक्तस्रावकी प्रवृत्ति अधिक बढ जाती है। इनपर उशीरा-

सब उत्तम कार्यकारी है।

कितने ही लोगोंको किसी भी स्थानमें छोटासा जख्म होनेपर या सुई लग जानेपर खूब रक्तस्राव हो जाता है। पुरुषोंकी अपेक्षा ऐसी प्रकृतिवाली स्त्रियां विशेष देखनेमें आती है। उनके लिये यह उशीरासव अधिक हितकर है।

रक्तस्राव अधिक होनेसे उत्पन्न पाण्डुरोगमें धड़कन, धमनियोंमें स्फुरण आदि लक्षण होनेपर उशीरासव सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ देना चाहिये।

सुजाक या उपदंश विकारके शमन हो जानेपर रक्तमें कुछ विष अवशिष्ट रह जाता है। उसका निवारण उशीरासवके सेवनसे हो जाता है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातमें मूत्रकी उत्पत्ति बढ़ाना और मूत्रमें होनेवाले दाहको दूर करना, ये दोनों कार्य इस उशीरासवसे सिद्ध होते हैं। इस तरह अश्मरी या मूत्र शर्कराके चुभनेपर उसे शमन करनेका महत्वका कार्य भी आसवसे होता है। कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह आदि पित्तज प्रमेहोंपर यह विशेष उपकारक है। एवं यह शोथकी तीव्रावस्थामें रक्तसंचयकी प्रवृत्ति नष्टकर रक्तप्रसादनका महत्वका कार्य करता है। (औ० गु० ध० शा०)

(५) खदिरारिष्ट

विधि—काले खैरकी अन्तरछाल या लकड़ीका बुरादा २०० तोले, देवदारु २०० तोले, बावची ४८ तोले, दारुहल्दी ८० तोले और त्रिफला ८० तोले लेकर सबको जौकुट करें। फिर जल ८१९२ तोले मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर शीतल होनेपर मिश्री ५ सेर, शहद १० सेर, धायके फूल ८० तोले, पीपल १६ तोले, जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, नागकेशर, इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक ४-४ तोले डालें। १ मास तक बन्द रखें, फिर छान लें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले, दिनमें २ या ३ बार। समभाग जलके साथ दें।

उपयोग—इस अरिष्टके सेवनसे कुष्ठ, पाण्डु, हृदयरोग, अर्बुदरोग, कृमि, श्वास, कास, रक्तविकार, प्लीहोदर, गुल्म आदि मिटते है। यह रक्तशोधक किञ्चित् सारक और पाचक है।

इस खदिरारिष्टका विशेष प्रभाव रक्त त्वचा और अन्त्रपर होता है। अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष इस अरिष्टके सेवनसे निष्क्रिय होता है। छोटे रेंगनेवाले सूक्ष्म कृमि अन्त्रमें होनेपर उनपर भी अरिष्टका प्रभाव होता है। ये कृमि इस आसवके योगसे मूर्च्छित हो जाते हैं, उनके अण्डे नष्ट होते हैं। इस तरह अन्त्र स्वच्छ और कृमि विकारसे अलिप्त हो जाता है। अन्त्र व्रण है, तो उसमें अवस्थित कीटाणु खदिरारिष्टसे नष्ट होते हैं। एवं वह भी सरलतासे भर जाता है।

इस तरह चर्मरोगके कारणभूत होने वाले कीटाणुओंको भी यह आसव नष्टकर देता है। इस हेतुसे इस अरिष्टको कुष्ठनाशक कहा है। क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् पामा, दद्रु, ब्यूवी आदि त्वचा रोगोंमें अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे देखनेपर विविध कृमि प्रतीत होते हैं। ये कृमि विशिष्ट स्थूल धातु या उसके अंग प्रत्यंग विभागोंमें बढ़ सकते हैं। उसमें परिवर्तन करानेको चरक विभागके ५ वें अध्यायमें "ततो विधातः प्रकृतेः" इस वचनसे प्रकृति विघात कहा है। इन कृमियोंकी वृद्धिमें धातुओंके भीतर विशिष्ट द्रव्य परिस्थिति कारणभूत होती इस परिस्थितिका परिवर्तन करा उसके प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करा देनेपर धातुओंमें कीटाणुका प्रतिकार करने वाला प्रतिविष तैयार होता है। फिर वहांपर कृमियोंका जीवित रहना अशक्य हो जाता है। क्योंकि उनका जीवन व्यापार ही नहीं चल सकता। यह कार्य (प्रतिविषोत्पत्ति) खदिरारिष्टके योगसे सहज हो जाता है। बावची और देवदारुमें से कार्यकारी द्रव्य त्वचाद्वारा देहसे बाहर निकलता रहता है। एवं खदिर भी रक्तमें मिश्रित होकर रक्त कृमियोंका निरुपयोगी बनाता है। इस तरह यह अरिष्ट कुष्ठ कृमि और कृमिज कुष्ठको नाश करता है।

महाकुष्ठ (Leprosy) में भी खदिरारिष्ट उत्कृष्ट कार्य करता है। महाकुष्ठकी उत्पत्ति भी कीटाणुओंसे होती है। इन कीटाणुओंकी और राजयक्ष्माके कीटाणुओंकी आकृतिमें सादृश्य है। इन कुष्ठोंमें रक्त, लसीका, त्वचा, मांस आदि दूष्य दूषित हो जाते हैं ये कीटाणु लसीकामें बढ़ते हैं, फिर सर्वत्र फैल जाते हैं और अन्य दूष्योंको दुष्टकर देते हैं। खदिरारिष्ट का परिणाम लसीकापर विशेष होता है। इससे कुष्ठोत्पादक जीवाणु बढ़ नहीं सकते फिर शनैः शनैः आगेकी धातुओंकी दुष्टि भी निवृत्त हो जाती है:

अन्त्रमें आमदोष संचित होकर उसका परिणाम रक्त हृदयपर होता है। परिणाममें हृदयस्पंदनकी वृद्धि होकर बार-बार घबराहट हो जाती है. और प्रस्वेद आ जाता है। इन लक्षणोंपर खदिरारिष्ट उत्तम उपयोगी होता है।

पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म या अन्त्रमें गांठ कास, श्वास. प्लीहोदर इन रोगोंपर खदिरारिष्ट उपयोगी है। इसके सेवनसे जीर्ण आमविषका शनैः शनैः रूपान्तर होता जाता है, रक्तप्रसादन होता है, लसीका और त्वचा शुद्ध होती है।

(६) कनकासव

विधि—धतूरेका पंचाङ्ग और वासामूल ३२-३२ तोले, मुलहठी, पीपल, कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी, तालीसपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६-१६ तोले,

धायका फूल १२८ तोले, साफ करके कुचली हुई बीजरहित द्राक्षा १६० तोले, शक्कर ८०० तोले, शहद ४०० तोले और जल ४०९६ तोले लें। सब औषधियोंको चीनीमिट्टीके पात्रमें डाल, मुँह बन्दकर एक मास तक रख दें। बादमें निकालकर छान लें। (भै० र०)

मात्रा—आधासे सवा तोला तक दिनमें २ बार। जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—कनकासव श्वास, कास राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण. जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षतका नाश करता है।

यह आसव उष्ण, कफस्राव कराने वाला, शोथघ्न, किंचित् मादक, वेदना शामक और बल्य है। इस आसवसे फुफ्फुस और श्वासवाहिनीके प्रदाह दूर होकर ये निर्दोष बनते हैं, जिससे श्वास कास, यक्ष्मा आदि रोगोंका शमन होता है और क्षीणता दूर होती है।

कनकासव कास और श्वास रोगीके लिए उपयुक्त औषधि है। श्वास-वाहिनियोंसे प्रदाहके हेतुसे कास, श्वास होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है। कनकासवसे श्वासवाहिनियोंकी संकुचित होनेकी प्रवृत्ति नष्ट होती है, कफ पृथक् होकर बाहर निकलने लगता है तथा श्वासके हेतुसे होनेवाली घबराहट और बेचैनी तत्काल दूर होते हैं। कभी-कभी इस आसवके योगसे कितने ही व्यक्तियोंको वान्ति हो जाती है; परन्तु उससे हानि नहीं होती; प्रत्युत लाभ ही होता है। श्वासवाहिनियोंमेंसे श्लेष्मस्राव हो जानेमें सहायता मिल जाती है।

शरीरमें उदीरित होनेवाले स्राव कनकासवके योगसे कम हो जाते है, अर्थात् स्तन्य (दूध) प्रस्वेद, उदरमें पित्तस्राव, अतिसारमें अन्त्रःतुका स्राव आदि कम हो जाते हैं। क्षयकी अन्तिमावस्थामें होनेवाला अत्यधिक प्रस्वेद कनकासवके योगसे कम हो जाता है।

कोष्ठशूल, विशेषतः पित्तप्रधान शूलपर इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। पित्ताशयमें पित्ताश्मरी बननेपर उत्पन्न शूलके शमनार्थ इसका अच्छा उपयोग होता है। परिणाम शूल और अन्नद्रवशूल, दोनों प्रकारके शूलोंपर इस आसवका वेदना शामक रूपसे अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रशर्करा या अश्मरीके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण गवीनीमेंसे मूत्राशयकी ओर जानेके समय शूलोत्पत्ति होती है। इसपर भी कनकासवके शूलघ्न धर्मका अनुभव होता है।

शीतपूर्वक ज्वरमें शीत लगनेपर अंग टूटना, शिरदर्द, कम्प आदि जो त्रास होता है, वह कनकासवके योगसे कम हो जाता है। मात्रा कम देनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

अनेक बार हिक्का किसी भी औषधिके सेवनसे शमन नहीं होती; बार बार वेगपूर्वक आती रहती है। उत्तेजक औषध सेवनसे हिक्काका वेग बढ़

जाता है। ऐसे समयपर कभी कनकासवके प्रयोगसे तत्काल लाभ पहुँच जाता है।

यदि श्वास और कासरोगमें कफ अत्यधिक संगृहीत हो गया हो, तो कनकासवके साथ अपामार्ग क्षार मिलाकर देनेपर सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना—कनकासवका उपयोग कम मात्रामें करना चाहिये अन्यथा विष प्रकोप होता है। बिष लक्षण होनेपर मट्ठा अथवा नींबू या इमलीके शर्बतमें जल मिलाकर पिलाना चाहिये।

(७) अश्वगन्धारिष्ट

विधि—असगन्ध २०० तोले, सफेद मूसली ८० तोले; मजीठ, हरड़ हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा और निसोत सब ४०-४० तोले और अनन्तमूल सफेद, अनन्तमूल काला सफेद चन्दन, लाल चन्दन, वच, चीतेकी छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको कूटकर ८१९२ तोले जलमें पकावें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतार कर छान लें। शीतल होनेपर चीनी या मिट्टीके पात्रमें भरकर धायके फूल ६४ तोले, शहद १० सेर, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च पीपल) प्रत्येक ८-८ तोले, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात, इलायची) प्रत्येक १६-१६ तोले नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले मिला लें। फिर मुँह बन्दकर २ मास रहने दें। बादमें छान लेवें।

मात्रा—१। से २।। तोले, दिनमें २ बार समभाग जलके साथ दें।

उपयोग—यह अरिष्ट दीपन, पाचन वृष्य और वातनाशक है। प्रमेह, ध्वजभंगता, नामर्दी, उन्माद, शोष बवासीर, मूर्च्छा, मस्तिष्ककी निर्बलता, भ्रम, मृगी, वातव्याधि, हृदयरोग इत्यादिमें लाभ करके शरीरमें स्फूर्ति, वीर्य की शुद्धि और वृद्धि करता है।

यह अरिष्ट हिस्टीरिया, मूर्च्छा और उन्मादके लिए उत्तम औषधि है। यह कोष्ठस्थ आमविषको नष्ट करता है। अतः आमवातका मन्द वेग होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है। यह अग्निप्रदीपक होनेसे पचन-विकृतिको दूर करता है, वातवाहिनियाँ और रस, रक्त आदि धातुओंको सबल बनाता है। प्रसूताकी निर्बलताको दूर करनेमें हितावह है। नपुंसकता जो शारीरिक निर्बलताके हेतुसे आई हो उसे दूर कर उत्साहकी वृद्धि कराता है।

(८) त्रिफलारिष्ट

विधि—हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपल, चित्रकमूल, अजवायन, बायविडंग सब १६-१६ तोले लेकर २००० तोले जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार छानकर लोह भस्म १६ तोले, गुड़ ४०० तोले, शहद ३२ तोले मिलावें। फिर पात्रमें भर मुखमुद्राकर १ मास बन्द रखनेसे अरिष्ट पक जाता है। (ग० नि०)

मात्रा—१। से २।। तोले तक दिनमें २ बार। जलमें मिलाकर भोजन के बाद लें।

उपयोग—इस अरिष्टमें त्रिफलाके अतिरिक्त लोहभस्मका भी प्राधान्य है। यह हृद्य, दीपक और पाचक है। इस आसवसे रक्तकी वृद्धि होती है, एवं हृदयरोग, घबराहट, फेफड़ेकी कमजोरी, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, भगंदर, अर्श, गुल्म, तिल्ली, संग्रहणी, कास श्वास आदि रोगोंका नाश होता है।

सूचना—लोहभस्म मिलानेके लिये प्रकरणके प्रारम्भमें सूचना की गई है; उस तरह मिलानी चाहिये।

(९) अर्जुनारिष्ट

विधि—अर्जुनकी छाल ४०० तोले, द्राक्षा २०० तोले और महुएके फूल ८० तोले मिला जौकूट कर ४०९६ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें; चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लें। फिर शीतल होनेपर गुड़ ४०० तोले और धायके फूल ८० तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास तक रख देवें; फिर छान कर भर लेवें। (भै० र०)

इस अरिष्टमें हम गुड़के साथ शहद १०० तोले मिलाते हैं। मूलग्रन्थमें "पार्थाद्यरिष्ट" नाम लिखा है।

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह अरिष्ट उत्तम हृद्य है। पित्तप्रधान हृद्रोग और फेफड़ों की सूजनसे फूली हुई शिथिल नाड़ियोंको संकुचित और दृढ़ बनाकर निर्बलताको दूर करता है तथा शरीरमें बल लाता है। हृदय-शूल, हृद्रेपन, हृदय शैथिल्य तथा विविध हृदय रोगोंमें उत्तम लाभकारी है।

(१०) अमृतारिष्ट

विधि—गिलोय ४०० तोले और दशमूल ४०० तोलेको जौकूट करके ४०९६ तोले जलमें क्वाथ करें। चौथा भाग जल शेष रहनेपर उतार मसलकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ १२०० तोले मिलावें। जीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोले और सतोना, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ प्रत्येक ४-४ तोले मिला यथा विधि चीनी मिट्टीके पात्रमें मुखमुद्रा करके १ मास तक रख दें। परिपक्व होनेपर छान लें। (भा० भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले तक दिनमें २ बार समभाग जल मिलाकर देवें।

उपयोग—अमृतारिष्ट, जीर्णज्वर, मुद्दतीज्वर और निर्बलताको दूर करता है। जीर्ण विषमज्वर, शीतज्वर, पित्तप्रधानज्वर और अन्य ज्वरोंमें भी हितकर है।

अमृतारिष्ट सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि विषमज्वरोंमें अति उत्तम कार्य करता है। इसके योगसे रसरक्तगत दोषोंका निर्हरण उत्तम रूपसे

होता है। ज्वर तीव्र होनेपर भी यह दिया जाता है। कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुनः पुनः उलटकर आनेवाले परिवर्त्तितज्वर इस औषधिके सेवनसे शमन हो जाते है। कितने ही दृढ़मल ज्वरोंपर सोमल कल्पके साथ इस अमृतारिष्टका उत्तम उपयोग होता है।

जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि और अग्निमांद्य होनें और ज्वर अति कम परिमाणमें होनेपर यह अरिष्ट अति उत्तम कार्य करता है। अन्य हेतुओंसे अर्थात् जीर्णविषमज्वर, कालाआजार मेदक्षय आदिसे प्लीहावृद्धि होनेपर अमृतारिष्टका अत्यन्त उत्तम उपयोग होता है। यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदर हो जानेपर मूत्रल अनुपानके साथ अमृतारिष्टका प्रयोग करनेसे अच्छा लाभ होता है।

अमृतारिष्टका उपयोग प्रमेहपर उत्तम होता है। इससे मूत्रदोष नष्ट होते हैं, फिर बार-बार मूत्रोत्सर्ग नहीं करना पड़ता। सुजाकके जीर्णविकार में यह अति उपयोगी है। सुजाक या उपदंशके हेतुसे संधिवात उत्पन्न हुआ हो तो उसपर इस अरिष्टका उपयोग होता हैं। इस तरह आमवात जीर्ण होनेपर यह लाभ पहुँचाता है।

अग्निमांद्यमें अमृतारिष्ट हितकारक है। इसके सेवनसे आमाशयमें रस का स्राव योग्य होने लगता है। फिर आहारका पचन होने लगता है और उत्तम क्षुधा लगती है एवं रंजकपित्तका स्राव अच्छा होता हैं, जिससे रक्तकणोंकी योग्य वृद्धि होने लगती है तथा मुखमण्डलपरसे निस्तेजता दूर होकर लाली आ जाती है।

संक्रामक ज्वर अनेक दिनों तक रह जानेपर निर्बलता आती है और बल क्षय होता है। उसपर अमृतारिष्ट अत्यन्त उपयुक्त है। इससे निस्तेजता का नाश होकर शक्ति और बल, मांसकी वृद्धि होती है।

अमृतारिष्टसे यकृत् सबल बनता है, उसमेंसे पित्तस्राव उत्तम प्रकारसे होने लगता है, यकृत्में पित्तोत्पादक घटकोंको बलकी प्राप्ति होती है। फिर उनका कार्य सम्यक् प्रकारसे होने लगता है। इस हेतुसे यह अरिष्ट पित्तजशूल, उदरशूल और अपचनपर अच्छा लाभ पहुँचाता है। कामलाके कितने ही प्रकारोंमें यह उत्तम कार्य करता है। विशेषत: शीतल वायु या शीतल स्थानोंमें फिरने या रहनेपर कामलाकी उत्पत्ति हुई हो तो उसपर लाभदायक है अतिसार या जीर्ण संग्रहणीमें यकृत् कार्य सम्यक् न होता हो तो यह अरिष्ट देना चाहिए अतिसारमें इसके योगसे अब्धातुकी प्रवृत्ति कम हो जाती है और यकृत्पित्तका स्राव योग्य मात्रामें होने लगता है।

अमृतारिष्ट त्वचाके कितने ही विकारोंमें अति उपयोगी है। यकृत्के विकारसे त्वचापर काले धब्बे या सूक्ष्म पिटिका उत्पन्न होनेपर अमृतारिष्ट देवें। जीर्ण कण्डूपर भी यह उत्तम उपयोगी है।

अमृतारिष्टका उपयोग सूतिकाज्वरमें अच्छा होता है। रक्तमें सूतिका विष कम करनेके लिये इसके साथ प्रतापलंकेश्वर देना चाहिये। दशमूलारिष्ट भी सूतिका ज्वरमें दिया जाता है, परन्तु पित्तप्रधान पतले गरमागरम दस्त लगनेपर जब वह न दिया जाय तब ज्वरावस्थामें इसका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(११) सारस्वतारिष्ट

विधि—ब्राह्मी (जल नीम) ८० तोले, शतावरी, विदारीकंद, हरड़, नेत्रबाला अदरक, सौंफ सब २०-२० तोले लेकर जौकुट करें। जल १०२४ तोले मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर शीतल होनेपर शहद ४० तोले और शक्कर १०० तोले मिलावें। धायके फूल २० तोले, रेणुकबीज, पीपल, बच, असगन्ध, गिलोय, वायविडंग, निसोत, लौंग, कूट, बहेड़ा, इलायची, दालचीनी और सोनेके वर्क प्रत्येक १-१ तोला डालें। मुखमुद्रा करके एक मास तक रखें, फिर छानकर भर लें। (भै० र०)

वक्तव्य—५०० तोले छने हुए (अच्छी तरह नितरे हुए) सारस्वतारिष्टमें १ तोला स्वर्णवर्कके स्थानमें हम १ तोला स्वर्णलवण मिलाते हैं। २ औंस अरिष्ट निकाल उसमें १ तोला स्वर्णलवण मिलावें तथा घोंट दें। बिल्कुल गल कर एक जीव होजाने पर १ बोतलमें डालकर १६ औंस लगभग और अरिष्ट मिला अच्छी तरह चलाकर फिर उसे ५०० तोले अरिष्टमें मिला लेवें।

मात्रा—½ से १ तोले तक भोजनके बाद, दोनों समय, समभाग जलसे।

उपयोग—यह अरिष्ट आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल और कांतिको बढाता है तथा वाणीको शुद्ध करता है। यह उत्तम हृद्य रसायन है। बालक, युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सबके लिये हितकर है।

यह स्वरकी कर्कशता और अस्पष्टताका निवारण करके स्वरको कोयलके समान मधुर बनाता है। स्त्रियोंके रजोदोष और पुरुषोंके शुक्रदोषको नष्ट करता है। अति अध्ययन, अति गाना आदि कारणोंसे स्मरण शक्ति शिथिल हो गई हो तो उसे सबल बनाता है। एवं चित्तको प्रसन्न और संतोषी बनाता है। यह अरिष्ट एक मासमें हृद्रोगका नाश करता है और एक वर्षके सेवनसे शारीरिक सिद्धि देता है।

सारस्वतारिष्ट उत्तम बल्य, हृद्य, रसायन, वातवाहिनियां और वातकेन्द्रपर शामक, चित्तप्रसादक, बुद्धिप्रद और स्मृतिवर्द्धक है। वातवाहिनियोंके क्षोभसे उत्पन्न व्याधियोंपर कार्यकारी औषध है।

छोटे बालकोंको बालग्रहमें कोष्ठशुद्धि कराकर सारस्वतारिष्ट देनेसे लाभ पहुँच जाता है। तोतलापन, बुद्धिमांद्य, श्रवणशक्ति और स्मरणशक्तिमें न्यू-

नता विचार रहित बोलना आदि विकारोंपर यह अच्छा उपयोगी है एवं उन्माद, अपस्मार, उत्साहका अभाव, उतावलापन आदि व्याधियोंमें सारस्वतारिष्ट लाभदायक है।

स्त्रियोंके मासिकधर्म बन्द होनेपर होने वाले अनेक विकार—घबराहट, चक्कर, हाथ पैरमें शून्यता आ जाना, बेचैनी, कहीं भी चित्त न लगना, निद्रानाश आदि होते हैं। उनपर यह सारस्वतारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इन विकारोंमें कितनी ही स्त्रियोंको चक्कर बहुत आते हैं; वह इतने तक कि ऊँची दृष्टि भी नहीं कर सकती। सोते-सोते मोटर गाड़ी चलनेके सदृश मस्तिष्क फिरता है, सर्वदा कानमें नाद गूंजता रहता है। ऐसे समयपर सारस्वतारिष्ट सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ देनेसे उत्तम कार्य करता है।

स्त्रियोंके बीजाशय या पुरुषोंके अण्डकोषकी वृद्धि योग्य रूपसे न होनेसे स्त्री-पुरुषोंके शरीर आयुवृद्धि होनेपर भी उचित अंशमें नहीं बढ़ते। युवावस्थाकी भावनायें भी नहीं होती। ऐसी स्थितिमें मकरध्वज और वंगभस्मके साथ सारस्वतारिष्ट देना चाहिये।

सूचना—स्वर्णलवणमिश्रित अरिष्ट १ तोलेसे अधिक मात्रामें नहीं लेना चाहिये। अन्यथा स्वर्णलवणका परिमाण अधिक हो जायगा; फिर मुँह आना आदि उपद्रव उपस्थित होंगे। प्रारम्भमें ¼ तोला लें। फिर धीरे-धीरे मात्रा बढावें। (औ० गु० ध० शा०)

(१२) द्राक्षासव

प्रथम विधि—५ सेर मुनक्काको धो, कुचलकर ४०९६ तोले जलमें उबालें चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार मलकर छान लें। फिर ५ सेर मिश्री और ५ सेर शहद मिलावें। धायके फूल ६४ तोले, शीतलमिर्च, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल और निर्गुण्डीके बीज प्रत्येक चार-चार तोले लें। जौ कूटकर मिला देवें। फिर पात्रमें कपूर; अगर और चन्दनका धुँआ देकर आसव भरें और मुखमुद्रा करके १॥ मास तक रख देवें। परिपक्व होनेपर निकाल कर छान लें। (यो० र०)

जो मुनक्का दूषित या शुष्क हो गई हो या सड़ गई हो उसे उपयोगमें न लेवें।

मात्रा—१। से २॥ तोले। समभाग जल मिलाकर; दिनमें २ से ३ बार लेवें।

उपयोग—यह द्राक्षासव ग्रहणी, अर्श, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदररोग, कृमि कुष्ठ त्रिविध प्रकारके व्रणरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, गलरोग, ज्वर, आम, पाण्डु, और कामला रोगको नाश करनेमें श्रेष्ठ है। यह बृंहण, बलवर्ण कारक और अग्नि प्रदीपक है।

किसी भी रोगमें शक्तिके संरक्षणार्थ और निर्बलताको दूर करनेके लिये यह उपयोगी है। अरुचि, आलस्य, थकावट और बेचैनोको दूरकर शारीरिक उत्साह बढ़ाता है। इसके सेवनसे शान्त निद्रा आजाती है। मलशुद्धि होती है और मन प्रफुल्लित बनता है।

यह आसव पाचक पित्तका स्राव बढ़ाता है, इस हेतुसे अग्निमांद्य और उससे उत्पन्न विविध व्याधियोंमें यह लाभदायक है।

रक्तार्श या पित्तार्शपर इसका सेवन हितकारक है। यदि उदावर्त (आमाशयसे गैसका ऊपर आना) रोग प्रबल न हो गया हो तो इसका प्रयोग अच्छा माना गया है। पित्तज गुल्ममें ज्वर, तृषा, समस्त देह लाल हो जाना, मुखमण्डल लाल हो जाना, भोजनके ३-४ घण्टेपर मन्द-मन्द उदरशूल, जिस तरह व्रणपर हाथ लगानेसे वेदना होती है उसी तरह गुल्म पर स्पर्श करनेसे तीव्र वेदनाका भास होना आदि लक्षणोंवाले गुल्ममें यह अच्छा उपयोगी है।

नवप्रसूता स्त्रीको अपथ्य सेवन करानेपर या बार-बार गर्भपात होनेवाली स्त्रीको रक्तगुल्म हुआ हो; गर्भधारणके सदृश लक्षण प्रतीत हों, साथमें अग्निमांद्य, बार-बार वमन आदि चिह्न हों तो द्राक्षारिष्ट अधिक उपयुक्त होता है, इससे रक्तगुल्मका शमन तो नहीं होता. परन्तु अधिक सन्ताप दूर होता है और वमन आदि लक्षणोंका नाश होता है।

पित्तभूयिष्ठ उदर रोगमें सहायक औषधि रूपमें द्राक्षासवका उपयोग किया जाता है।

आमज्वरकी प्रथमावस्थामें ज्वर पाचन रूपसे इसका प्रयोग हितकारक है ज्वरमें कास होनेपर उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—(द्राक्षारिष्ट) शुद्ध जलसे धोई हुई नई मुनक्का २०० तोलेको २०४८ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। शीतल होनेपर मसलकर छान लेवें। फिर ८०० तोले गुड़, धायके फूल ३२ तोले, बायविडंग. प्रियंगू, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, नागकेशर, कालीमिर्च और सोंठ प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर अमृतबानमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास रख दें। मूलग्रन्थमें सूर्यके तापमें रखनेको लिखा है। परन्तु सुरक्षित मकानमें रखना विशेष हितकर है। फिर आसव परिपक्व होनेपर छान लेवें। (यो० र०)

हम इस आसवमें गुड़ मिलाते हैं, पाँच किलो गुड़ मर्यादासे अधिक हो जानेपर मद्यार्क कम हो जाता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक। समान जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, गलरोग और राजयक्ष्मा आदि रोगोंको लाभ करता है यह उरः संधानकारक होनेसे उरःक्षतको भी दूर

करता है।

छोटे बच्चोंके कफविकारमें यह उत्तम उपयुक्त है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातोंके शमन हो जानेपर शेष रहने वाले कास रोगको नष्ट करनेमें द्राक्षारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इसके सेवनसे हृदय सबल बनता है। फुफ्फुसोंका क्षोभ शनैः शनै, शमन होता है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातोंमें इसके सेवनसे कफविकार कम होता है। शनैः शनैः कफ छूटकर स्राव होने लगता है। कफसे होनेवाली घबराहट दूर होती है। छोटे बालकोंके श्वसनक सन्निपात (पसली रोगमें) ३० से ६० बूंद तक बार-बार गरम जलमें मिलाकर देते हैं।

अन्य प्रकारके कासरोगमें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः काली खांसीपर मृगश्रृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टीके साथ द्राक्षारिष्ट देनेसे उत्तम उपयोग होता है। इससे खांसीके वेग और त्रासका शमन होता है।

पित्तज श्वासके विकारमें अति घबराहट होती हैं। सारा शरीर प्रस्वेद से भींग जाता है और मस्तिष्क फिरने लगता है। ऐसे समयपर इस द्राक्षासवका उत्तम उपयोग होता है।

क्षय रोगकी कासमें अति त्रास होनेपर इसके सेवनसे त्रास कम हो जाता है। यह आसव क्षय कीटाणुओंको नष्ट नहीं करता, फिर भी द्राक्षासव और च्यवनप्राशावलेहके सेवनसे क्षयपीड़ित व्यक्तिका बल बढ़ जाता है; अग्नि प्रदीप्त होती है; कास कम होती है; मांस बढ़ता है और रोगीकी मुखमुद्रा अच्छी दीखने लगती है। इसके साथ सुवर्णकल्प देनेपर क्षयरोगके निवारणमें अच्छी सहायता मिल जाती है। जब राजयक्ष्मामें बड़े-बडे उरःक्षत हो जाते हैं, तब किसी औषधिका उपयोग नहीं होता। परन्तु उस अवस्थामें भी द्राक्षासव देते रहनेसे कुछ शांति रहती है। इस आसवमें उरःसंधानकारकता कितने अंशमें है, यह अभी निर्णीत नहीं हुआ। शांत रहना एक बात है और उरःसंधान होना दूसरी बात है। (औ० गु० ध० शा०)

(१३) कुटजारिष्ट

विधि—काले कूडेकी छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुवेके फूल ४० तोले और गम्भारीकी छाल ४० तोले लें। जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिलाकर उबालें, चतुर्थांश जल रहनेपर उतार, मलकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ ५ सेर और धायके फूल १ सेर मिला मुखमुद्रा कर १ मास रख दें। परिपक्व होनेपर छान लें। (शा० सं०)

मात्रा—१। से २।। तोले, दिनमें ३ या ४ बार। समभाग जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह अरिष्ट संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार पेचिश, मन्दाग्नि, ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है एवं बालकोंकी संग्रहणी, रक्ताति-

सार और ज्वरमें भी हितकर है।

कुटजारिष्ट किंचित् वामक और कफस्रावक है। इस हेतुसे जीर्ण कास और छोटे बच्चोंके नूतन कासमें कफस्रावी रूपमें उपयोगी है। इतना ही नहीं, श्लेष्मिकसन्निपात और श्वसन सन्निपातमें पुनर्नवा और मुलहठीके क्वाथके साथ कुटजारिष्ट देनेसे श्लेष्मस्राव होकर खांसीका त्रास कम हो जाता है। इसके योगसे श्वासवाहिनियोंका क्षोभ और प्रदाह नष्ट होता है। छोटे बच्चोंके श्वसनक ज्वर (डब्बा) में कुटजारिष्ट और द्राक्षारिष्ट मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ होता है।

यह औषध प्रवाहिका प्रधान संग्रहणीके विकारमें अति उत्कृष्ट है। संग्रहणीमें भी कालज अर्थात् वर्षाऋतुके प्रारम्भमें होने वाली और अन्य समयमें होने वाली, ऐसे दो विभाग होते हैं। कीटाणुओंसे उत्पन्न संग्रहणी इस अरिष्टके योगसे सत्वर शमन होती है। बार-बार अति कम मल, कुछ आम और रक्त गिरना, ज्वर हो तो अति कम वमन होना, उदरमें भयंकर मरोड़े आना, शौचके समय किछते ही रहना, किछनेसे कुछ ठीक लगना आदि लक्षण होनेपर कुटजारिष्ट अति उपयुक्त है।

संग्रहणीके दूसरे प्रकारमें ज्वर अधिक रहता है। शौचमें केवल रक्त-मिश्रित आम गिरता है। मल पहले प्रकारके समान नहीं गिरता तथा उदर में मरोड़ा अति प्रबल होता है। ऐसे विकारपर कुटजारिष्टका उपयोग नहीं होता। इस प्रकारमें गुदनलिकामें मल होता है, परन्तु गुदत्रिवलीमें शोथ होने या व्रण होनेपर उसके बलसे मल प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं हो सकती। इस प्रकारमें सर्वांगसुन्दर, कनकसुन्दर, रसपर्पटी आदि औषधियोंका विशेष उपयोग होता है।

यदि ज्वररहित ग्रहणीरोग तीव्र हो तो कुटजारिष्ट अधिक मात्रामें (१ से २ औंस तक) समान जल मिलाकर या बिना जल मिलाये दिनमें ४ समय देते रहनेसे लाभ हो जाता है। उदरमें मरोड़ा बलपूर्वक आता रहता हो तो कुटजारिष्टके साथ वेदना-शामक गुणके लिये अमृतवटी, कनकसुन्दर या सूतशेखर जैसी औषधि देनी चाहिये। इनमें अमृत वटी विशेष हितावह है। (अमृतवटी) शुद्ध बच्छनाग ६ भाग, वराटिका भस्म ५ भाग और काली-मिर्च ९ भाग मिलानेसे अमृतवटी तैयार होती है। मात्रा—आध आध रत्ती।

दुर्निवार संग्रहणीका बल कम होकर जैसे-जैसे शौचवेग कम होता जाय, वैसे-वैसे कुटजारिष्टकी मात्रा भी कम करते जाना चाहिये। व्याधि जितनी जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिये। कभी-कभी रोगी संग्रहणीका वेग कम होनेपर औषधि और पथ्यका त्याग कर देता है, जिससे पुनः रोग का आक्रमण हो जाता है। इस तरह बार-बार होनेपर रोग पुराना हो जाता है। ऐसे अनेक रोगी २-२ या ४-४ वर्षसे पीड़ित देखनेमें आते हैं।

ऐसे रोगीको निरोगी बनानेके लिये आग्रहपूर्वक पथ्यपालनसह कुटजारिष्ट अति कम मात्रामें दीर्घकाल तक देते रहना चाहिये। कभी-कभी यह क्रम एक-दो वर्ष तक कायम रखनेका है। संग्रहणी रोग पुराना होनेपर कभी-कभी यकृत्विद्रधिके सदृश अनेक भयंकर उपद्रव होनेका भय रहता है, अतः इसे हो सके उतना सत्वर दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यकृद्विद्रधि, अग्निमांद्य, कोष्ठशूल ये उपद्रव संग्रहणीके तीव्र विकारके पश्चात् उत्पन्न होनेपर इनपर कुटजारिष्टका अच्छा उपयोग होता है। यकृद्विद्रधिपर शिलाजीत आदि शोथघ्न और कीटाणु-विषनाशक औषधि के साथ कुटजारिष्ट देना अति हितकारक है।

संग्रहणीके विकारके पश्चात् या स्वतंत्र दोषदुष्टिसे अग्निमांद्य उत्पन्न होनेपर कुटजारिष्टका अच्छा उपयोग होता है। इसके योगसे यकृत्का पित्त-स्राव योग्य परिणाममें होने लगता है, जिससे अग्निबलकी वृद्धि होकर आहार पचन और शोषण होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

ग्रहणीकी विकृति होनेपर अग्निमांद्य, अग्निमांद्यसे अपचन, अपचनसे बार-बार आमदोष संचित होकर ज्वर आते रहना; फिर ज्वर अति त्रास-दायक बन जाना, ज्वर संतत ज्वरके सदृश हो जाना, ज्वरका वेग तीव्र न होनेपर भी व्याकुलता अधिक रहना, उबाक, क्षुधा न लगना, अरुचि, मुँह फीका रहना जिह्वापर मैलकी तह आजाना भोजन बेस्वादु लगना आदि लक्षणयुक्त संतत और सतत ज्वरमें कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

अन्त्रकी संग्राहक शक्ति कम होनेपर अन्त्र शिथिल हो जाते हैं। बार-बार शौच होना, कितने ही बार रक्तातिसार होजाना, गुदभ्रंश होना आदि लक्षण होते हैं। इसपर कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(१४) अभयारिष्ट

प्रथम विधि—हरड़ ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, बायविडङ्ग ४० तोले और महुवेके फूल ४० तोले लें। सबको जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिला कर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ ५ सेर; गोखरू, निसोत, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायणकी जड़, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस, प्रत्येक ८-८ तोले ले। जौकुट चूर्ण कर मिला लें। फिर अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें; पश्चात् छान लें। (भैं० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले। समभाग जल मिलाकर लें।

उपयोग—यह अरिष्ट अर्श, उदररोग, मलावरोध और मूत्रावरोधको दूर करता है तथा अग्निको प्रदीप्त करता है।

अभयारिष्ट उत्तम सारक, मूत्रल और पाचक है। इसका उपयोग कोष्ठ-

बद्धतापर अत्युत्तम होता है। बद्धकोष्ठमें जमालगोटाके सदृश तीव्र विरेचक औषधि उपयोगी नहीं होती। उससे तो अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह हो जाता है। और अन्त्र निर्बल बनता है। फिर रूक्षता आकर अन्त्रकी पुरः सरणक्रिया मन्द हो जाती है। फलतः बद्धकोष्ठ व्याधि कम होनेके स्थानमें और बढ़ जाती है। बद्धकोष्ठमें मल संग्रहीत होकर सड़ने लगता है। फिर उसमेंसे सेन्द्रिय विष उत्पन्न होता है। वह रक्तमें शोषित होकर विविध व्याधियोंके निर्माणमें कारण बनता है।

अभयारिष्टके सेवनसे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे होकर मलनिःसरण कार्य योग्य होता है। सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि अभयारिष्टके साथ थोड़ा घी सेवन किया जाये तो स्नेहन होनेमें सहायता मिल जाती है। घी पहले दें और रात्रिको भिगोये जलके साथ अभयारिष्ट दें, तो भी लाभ होता है।

अर्श रोगमें शौच शुद्धि न होना, यह प्रमुख लक्षण होता है। शौच-शुद्धि न होनेसे अधिक किछना पड़ता है। गुदत्रिवलीपर दबाव पड़-पड़कर क्षोभ उत्पन्न होता है, फिर शोथ आ जाता है। शोथके पश्चात् शिराजाल में नीलता की वृद्धि होती है। इन सिराओंको मस्सेके रूपकी प्राप्ति होती है। इन सबका मूल है शौच शुद्धि न होना। यकृत्के कार्यमें शैथिल्य अभयारिष्टके योगसे नष्ट होता है।

जिस तरह उदररोगकी उत्पत्ति अजीर्ण, मलिन अन्न और मल संचयके योगसे होती है, उस तरह दोषसंघात भी उदर रोगका हेतु है। दोषसंघात पचन-संस्थामें शोषण कार्य विकृत होता है। उत्तरा महासिरा और अधरा महासिरा आदिपर दबाव आता है और रसवहन कार्यमें प्रतिबन्ध होता हैं। कोष्ठस्थ कफवृद्धि होती है। समानवायु, अपानवायु पाचकपित्त, तीनों दोष यकृत्, प्लीहा आदि यन्त्र सब विकृत होते हैं। शनैः शनैः हृदय और वृक्क भी दूषित होते हैं। फिर उदर्य्याकलाके भीतर जलसंचय होता है, उसे जलोदर कहते हैं। अभयारिष्ट जलसंचयसे उत्पन्न उदर रोगमें उत्कृष्ट कार्य करता है। इस तरह पित्तोदर, यकृतोदर और प्लीहोदरमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है। कफोदरमें इसके साथ अन्य क्षारकी योजना करनी चाहिए अथवा हरीतकी रसायनका उपयोग करना चाहिये।

इस औषधिसे मलमूत्र शुद्धि योग्य रूपसे होती है। पेशाब अधिक बार और अधिक परिमाणमें होता है, अग्निमांद्य दूर होता है। अन्त्रमें विस्फोट और जलवृद्धि नहीं होती। इस हेतुसे कोष्ठ बलकी वृद्धि होती है। अन्त्र में स्निग्धता बढ़ती है। फिर अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् होकर मल सरलतासे बाहर निकलता रहता है।

बृहदन्त्रमें जीर्ण आमविष होनेपर इस अरिष्टके योगसे शनैः-शनैः वह

नष्ट होता है। पक्वाशयमें आहाररसका संशोषण सम्यक् होने लगता है। रसाजीर्णकी आदतका नाश होता है। इस तरह यह आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र आदि कोष्ठावयवोंपर अति उत्तम प्रकारसे बल्य और दोषनाशक असर पहुँचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१५) अशोकारिष्ट

विधि—अशोकछाल ५ सेरको जौकुट करके ४०९६ तोले जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ १० सेर, धायके फूल ६४ तोले, काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आमकी गुठलीकी गिरी, जीरा, अडूसाकी छाल, रक्तचन्दन प्रत्येक ४-४ तोले मिलावें। फिर अमृतबानमें भर मुख-मुद्रा करके १ मास रख दें। पश्चात् छानकर उपयोगमें लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें २ बार। समान जलके साथ दें। रक्तप्रदरमें चन्द्रकला रसके साथ और पीड़ितार्तवमें बृहद् योगराज गूगलके साथ विशेष लाभ पहुँचाता है।

उपयोग—यह अरिष्ट स्त्रियोंके रक्तप्रदर, मन्दज्वर, रक्तपित्त, अर्श अग्निमांद्य, अरुचि आदि विकारों तथा पुरुषोंके प्रमेह, शोफ और अरुचि को दूर करता है।

अशोकारिष्ट स्त्रियोंका परम मित्र है। इसका कार्य गर्भाशयपर बल्य होता है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव विकारोंमें इसका उत्तम उपयोग होता है। अत्यार्तव विकार अनेक कारणोंसे होता है। गर्भाशयके भीतरके आवरणमें विकृति, बीजवाहिनियोंकी विकृति, गर्भाशयके मुखपर योनिमार्गमें या गर्भाशयके भीतरकी ओर कर्कस्फोट होना और प्रसवके पश्चात् गर्भाशयके भीतर या बाहर व्रण हो जाना आदि कारणोंसे अत्यार्तव व्याधिकी प्राप्ति होती है। इनमेंसे कर्कस्फोटके अतिरिक्त कारणोंसे उत्पन्न अत्यार्तवपर इस अरिष्टका अच्छा उपयोग होता है। मासिकधर्ममें अति रक्तस्राव होता हो तथा साथमें मलावरोध रहता हो तो अशोकारिष्टके साथ दन्त्यरिष्ट भी मिला देना चाहिये। एवं रक्तस्राव में दुर्गन्ध आती हो तो गर्भाशय और योनिमार्गकी शुद्धिके लिये निम्बपत्र को ४० गुने जलमें मिलाकर उत्तरबस्ति भी देते रहना चाहिये।

कितनी स्त्रियोंको मासिकधर्म आनेपर उदरपीड़ाकी आदत पड़ जाती है, उसे पीड़ितार्तव और कष्टार्तव कहते हैं। इसमें मुख्यतः बीजवाहिनी और बीजाशयकी विकृति कारण है। कितनी ही रुग्णाओंको पीड़ा अत्यधिक तीव्र होती है। कमरमें भयंकर दर्द, शिरदर्द, वमन आदि लक्षण होते हैं। इसपर अशोकारिष्ट अत्युत्तम कार्य करता है।

पीड़ितार्तवमें मन्दज्वर होता है। ज्वरोष्मा ९९-९९॥ डिग्री होती है। परन्तु ज्वर बहुत दिनों तक रहता है। उसपर यह उपकारक है।

उर्ध्वग रक्तपित्तमें अशोकारिष्ट उपयुक्त औषधि हैं। एवं रक्तार्शमें भी विशेषत: वेदना या जलन न होनेपर और बिना ज्ञान रक्तस्राव होते रहनें पर अशोकारिष्ट अति उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(१६) कार्पासारिष्ट

विधि—कपासके मूलकी छाल ३ सेर, बांसकी जड़ २ सेर, सुहिंजनेकी छाल, रक्त चित्रकमूल, अशोक छाल और दशमूल चारों १॥-१॥ सेर लें। सबका जौकुट चूर्णकर ८८ सेर जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर बाबूनाके फूल १ सेर, धायके फूल ४० तोले; लोध्र, गूगल, एलुवा, देवदारू पुनर्नवामूल, जटामांसी, दारुहल्दी शीतलमिर्च, बेलकी छाल, रक्तचन्दन श्वेत चन्दन ये ११ औषधियाँ १०-१० तोले, धोई हुई मुनक्का १ सेर शहद २॥ सेर और गुड़ १० सेर मिलाकर पात्रमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास बन्द रखें। फिर छान लेवें। (श्री पं० घनानन्द जी पन्त विद्यर्णव)

मात्रा—२ से ४ तोले तक, दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह अरिष्ट गर्भाशयको संकुचित करता है। अत: प्रसवकाल में गर्भाशयकी निर्बलतापर इसका सेवन अति लाभप्रद है। एवं यह गर्भाशयमेंसे संचित रक्त, गर्भ या जेरको बाहर निकालनेमें सहायक है। रक्त संचित होनेपर मासिकधर्ममें कष्ट होता हो तो वह इसके सेवनसे दूर होता है।

(१७) चन्दनासव

विधि—सफेद चन्दन, नेत्रवाला; नागरमोथा, गम्भारीके मूल, नीलकमल, फूलप्रियंगू, पद्माख, लोध, मजीठ, लालचन्दन, पाठा, चिरायता. बड़की छाल, पीपल वृक्षकी छाल, कचूर, पित्तपापडा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनारकी छाल, आम वृक्षकी छाल और मोचरस इन २२ औषधियोंका जौकूट चूर्ण ४-४ तोले; धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, शक्कर ४०० तोले और गुड़ २०० तोले लेवें। सबको २०४८ तोले जलमें मिला मिट्टीके पात्रमें भर यथा विधि संधानकर तैयार करें। लगभग १। मासमें यह आसव तैयार हो जाता है। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले, दिनमें २ बार। समान जल मिलाकर सुबह और रातको लें। रोग जीर्ण होनेपर मात्रा कम लेवें।

गुण—यह चन्दनासव शुक्रमेहनाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अग्निवर्द्धक है। जीर्ण सुजाकके रोगियोंके लिये हितकारक है। इसके सेवन से रक्तमें उत्पन्न मूत्रविष मूत्राशयदाह, मूत्रावरोध और मूत्रकृच्छ्र आदि विकार शमन हो जाते हैं।

पथ्य—लघु (शीघ्र पचने वाला) और पौष्टिक अन्नपान, सत्संग, शास्त्र

श्रवण, शान्ति और स्वाध्याय आदि हितकारक हैं।

अपथ्य—शुक्रमेहरोगमें अभिष्यंदी (दही आदि) तीक्ष्ण अन्नपान (लाल-मिर्च, तैल, शराब आदि), सूर्यका ताप, अग्निसेवन, स्त्री प्रसंग, मलमूत्र आदि वेगोंका धारण, रात्रिका जागरण, क्रोध, शोक, दिनमें शयन, उपवास अत्यन्त चिन्ता, आलस्य और दुष्टोंका सहवास आदिका परित्याग करना चाहिये।

चन्दनासव शीतवीर्य, बल्य, मूत्रल, दाहशामक और पित्तशामक है तथा मूत्रमार्गकी दोषदुष्टिको नष्ट करता है। इसका उपयोग पुराने और नये सुजाकमें उत्तम होता है। इसके उपयोगसे बार-बार मूत्रोत्सर्ग होते रहनेसे सुजाकके पूयका शोधन होता रहता है। सुजाककी प्रथमावस्थामें मूत्रप्रसेक नलिकाकी श्लैष्मिककलामें प्रदाह होता है; वह इस आसवके सेवनसे कम होता है। फिर दाहसह वेदना भी कम हो जाती है तथा निमित्त कारण जो कीटाणु (Conococcus) हैं, उनका बल कम होता जाता है। यद्यपि कीटाणु नष्ट होते हैं या नहीं यह अभी निश्चित नहीं हुआ, तथापि इस आसवके योगसे सुजाककी तीव्रावस्था और चिरकारी अवस्थामें उपद्रव कम कम होते जाते हैं; यह निःसन्देह है।

चन्दनासवसे सुजाक समूल नष्ट होनेके उदाहरण नहीं मिले है। इसके रोगीको तीव्रावस्था, मन्दावस्था और जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होती रहती है तथा रोगी सर्वदा इनसे पीड़ित ही रहता है इन सब अवस्थाओंमें चन्दना-सव शामक रूपसे प्रयोजित होता है। इससे मूत्रोत्पत्तिकी वृद्धि होकर पूयका स्राव होता रहता है; मूत्रमार्गमें जीर्ण व्रण हो तो उसका त्रास कम हो जाता है; क्षोभ हो, तो कम हो जाता है और कुछ समयके लिये पीड़ा उपशम होती है।

सूचना—यदि मूत्रमार्ग संकुचित हो गया हो तो चन्दनासवका अधिक उपयोग नहीं होता। इस आकुंचनको उत्तर बस्ति द्वारा या उत्तरबस्तिकी नलीको मूत्र मार्गमें प्रवेश कर शनैः शनैः कम कराना चाहिये। आकुंचन अत्यधिक हो तो चन्दनासव या अन्य मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिये अन्यथा मूत्राशयमें मूत्रसंचय अधिक होकर आपत्ति बढ़ जायगी।

मूत्रमें सिकता और शर्करा (अश्मरीकण) जानेपर चन्दनासवका उत्तम उपयोग होता है। इस आसवसे अश्मरीके छोटे-छोटे अणु द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाते हैं। अश्मरीजन्य शूलमें इसका उपयोग होना है।

मूत्राघातमें शामक व मूत्रल रूपसे इस औषधिका प्रयोग किया जाता है। एवं मूत्र पिण्डोंके प्रदाहमें प्रदाहघ्न और ज्वरघ्न रूपसे यह अच्छा कार्य करता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१८) जीरकाद्यरिष्ट

विधि—जीरा ५०० तोलेको ४०९६ तोले जल मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर मसलकर छान लेवें। शीतल होनेपर गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, सोंठ ८ तोले, जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीके दाने, नागकेशर, अजवायन, शीतलमिर्च और लौंग प्रत्येक ४-४ तोले मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर १ मास रहने देवें। परिपक्व होनेपर छान लें। (भै० र०)

सूचना—जीरेका क्वाथ करनेके पात्रपर ढक्कन रख देना चाहिये अन्यथा तैल उड़ जाता है। छाननेको मोटा वस्त्र लें। वस्त्रको जलसे धो गीला करके छानें तथा जीरेको अच्छी तरह मसलकर निचोड़ लेवें। क्वाथका जल मन्दाग्निपर अर्धावशेष अर्थात् २०४८ तोले शेष रखें या फाण्ट बना लें।

नव्य प्रयोग—जीरकाद्यरिष्टमें चतुर्थांश क्वाथ करनेपर जीरेमें अवस्थित उड़नशील तैल, जो कार्यकारी द्रव्य है, वह उड़ जाता है। फिर क्वाथ-रूक्ष और उष्ण होता है। इससे स्तन्यकी वृद्धि होती है, किन्तु माताको निर्बलता आती है। यदि फाण्ट बनाकर जीरेका तैल कायम रक्खा जाय तो मद्यार्ककी उत्पत्ति कम होती है। किन्तु फाण्ट बनाकर किया हुआ जीरकाद्यरिष्ट स्तन्यवर्द्धक, माताके लिए बल्य, दीपन-पाचन और बालकके लिए हितावह है। सामान्यतः ८०० तोले जीरेके लिए १६०० तोले जलमें फाण्ट कर लेनेपर शेष १०२४ तोले जल ले लिया जाए तो ठीक होगा।

मात्रा—१। से ५ तोले; दिनमें दो या तीन बार। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—जीरकाद्यरिष्ट सूतिकारोगमें उत्पन्न ग्रहणी और अतिसारको नष्ट करता है और पाचनक्रियाको सुधारता है।

यह अरिष्ट जीर्ण सूतिका रोगमें अच्छा लाभदायक है। तीव्रावस्थामें ज्वर अधिक होनेपर प्रतापलंकेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सूतिकारि रस, सूतिकाभरण रस और दशमूलारिष्ट आदि हितावह हैं। परन्तु रोग जीर्ण होकर ज्वरवेग मन्द होनेपर यदि पित्तानुबन्धके लक्षण मन्दज्वर, अङ्ग टूटना-आलस्य, उबासी, तृषा, जड़ता, उदरशूल, अतिसार, शोथ आदि हों तो जीरकाद्यरिष्ट हितकर है।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न क्षयरोगमें इसका उपयोग होता है। क्षयमें सुवर्ण कल्पके साथ देना चाहिए जिससे क्षयके कीटाणुओंके साथ सूतिका विष भी नष्ट होकर रुग्णाको सच्चा लाभ पहुँच सके। बार बार पतले, पीले, गरम-गरम दस्त लगते हों और जिह्वा फटी हो या मुंहमें छाले हो तो जीरकाद्यरिष्ट फलप्रद है।

संग्रहणीमें पित्तानुबन्ध होनेपर यह विशेष उपयोगी है। बार-बार शौच होना किछना, रक्त गिरना, रक्तके साथ कुछ झाग पड़ना, मन्दज्वर, तृषा, निद्रानाश आदि लक्षण होनेपर यह दिया जाता है।

प्रसवके पश्चात् संग्रहणी होनेपर भी इसका उपयोग किया जाता है। विदग्धाजीर्ण, पित्तज, परिणामशूल और पित्तज अम्लपित्त रोगमें भी जीरकाद्यरिष्ट अच्छा कार्य करता हैं।

इस अरिष्टके सेवनसे नवप्रसूताके स्तन्यकी वृद्धि होती है। मन्दज्वर, हाथ पैरोंमें दाह, त्वचामें जलन आदिका निवारण होता है। इस अरिष्टमें कुछ मूत्रल गुण होनेसे मूत्रकी शुद्धि होती है तथा त्वचापर कण्डू, पिटिका, धब्बे आदि हों तो वे विकार निवृत्त होते हैं। (औ० गु० ध० शा०)

(१९) चविकासव

विधि—चव्य २०० तोले, चित्रकमूल १०० तोले, हिंगुपत्री (डीकामाली), पुष्करमूल, बच, हाऊबेर, कचूर, कड़वे परवलकी मूल, हरड़, बहेड़ा आंवला, अजवायन, कूड़ेकी छाल, इन्द्रायणके मूल, धनिया, रास्ना और दन्तीमूल ये १५ औषधियाँ ४०-४० तोले, बायविडङ्ग, नागरमोथा, मजीठ, देवदारु, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल ये ७ औषधियाँ २०-२० तोले लें। सबको ८१९२ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहनेपर १२०० तोले गुड़, धायके फूल ८० तोले; दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ८-८ तोले; लौंग, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल और शीतलमिर्च ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला अमृतबानमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास रहने दें। हम गुड़ १५ सेरके स्थानपर ७।। सेर मिलाते हैं।

(ग० नि०)

मात्रा—१। से २।। तोले; दिनमें दो बार। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—चविकासव गुलम, प्रमेह प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्टीला, वातरक्त, उदररोग और अन्त्रवृद्धि आदिको नष्ट करता है।

इस आसवमें मुख्य औषधियां पाचक, दीपक, सारक, उष्णवीर्य और कटुरसात्मक हैं। आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णमें पचन व्यापार करनेवाले अवयव समूहोंमेंसे अत्यन्त सूक्ष्म स्रोतके रुद्ध हो जानेसे पाचक रसका स्राव सम्यक् नहीं होता। अन्तस्रावके उदीरणके लिये वायुकी पूर्त्ति और रक्तके दबावकी आवश्यकता रहती है। ऐसी परिस्थितिमें चविकासवके सेवनसे वायुकी प्रेरणा और रक्तकी पूर्ति होती है और स्रोतोरोध नष्ट होकर पाचक पित्तस्रावकी वृद्धि होती है। इस तरह इन दोनों अजीर्णोंमें इस आसवका उत्तम उपयोग होता है।

आमाजीर्णमें क्लेदक कफकी वृद्धि होती है। आमाशयमें आहार जावे

पर उसमें पाचक पित्त योग्य परिमाणमें मिश्रित होना चाहिये, परन्तु क्लेदक कफको अधिकताके हेतुसे पाचक (आमाशय रस) का योग्य यात्रामें स्राव नहीं होता, एवं आहारके साथ अच्छी तरह मिश्रण नहीं होता। इसके विपरीत क्लेदक कफकी मात्रा बढ़ जाती है, यही भोजनमें मिल जाता है। प्रारम्भमें ऐसी परिस्थिति होनेपर आगे-आगेके अन्य पाचक रस (यकृत् पित्त, आंत्रिक रस, आग्नेय रस) भी निर्बल हो जाते हैं। योग्य रूपमें इनका स्राव नहीं होता, एवं (अन्नके साथ) मिश्रित भी नहीं होते। इस हेतुसे आहार पचन नहीं होता, फिर वह सड़ने लगता है। इसका परिणाम समस्त शरीरपर होता है। उदर और कोष्ठके बीचका स्थान जड़ हो जाता है। आलस्य, निद्रावृद्धि, निरुत्साह हाथ-पैर टूटना, मुखमण्डलपर निस्तेजता, मुँहमें बेस्वादुपन या मीठापन, मुंहमें बार-बार जल भर जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसपर चविकासव अति उत्तम कार्य करता है।

वायु विशेषतः समान वायुकी प्रेरणाकी न्यूनता होनेपर पाचक पित्त का स्राव योग्य मात्रामें और योग्य रूपसे नहीं होता। पाचक पित्त थोड़ा निकलता है और पाचन करनेका गुण भी न्यून होता है। आमाशय और अन्त्रकी गति मन्द होनेसे आहार जितने समयमें आगे बढ़ना चाहिये, उतने समयमें नहीं बढ़ सकता। इस हेतुसे उदर खिचता है, मन्द-मन्द शूल चलता है, शौच शुद्धि नहीं होती, सर्वाङ्गमें मन्द-मन्द वेदना होती है तथा उदरमें अफारा आ जाता है। इस प्रकारके विकारमें चविकासव उत्तम उपयोगी होता है।

इसका प्रयोग वातज गुल्म, कफज गुल्म और वातकफज गुल्मपर अच्छा होता है, रक्तगुल्म और पित्तज गुल्मपर नहीं होता।

प्रमेहोंके विकारोंमें हस्तिमेह, लालामेह और इक्षुमेहकी उत्पत्ति यकृत् और अग्न्याशयकी विकृतिसे होती है, विशेषतः पित्तका कार्य क्षीण होनेपर कोष्टमें दोषोत्पत्ति और कफाधिक्यकी प्राप्ति होती है। फिर आहारमेंसे रस और रक्तकी उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। इस हेतुसे यह दोषदुष्टि मूत्रमार्गसे बाहर निकलती है। बार-बार विशेष मात्रामें मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्रकी मात्रा और संख्या दोनों बढ़ जाते हैं। मूत्रमें मधु नहीं जाता। किसी-किसीको लालातन्तुसह मूत्रोत्पत्ति होती है, मूत्र अज्ञानावस्थामें हो जाता है या अनिच्छावश निकल जाता है। ऐसे विकारोंमें चविकासव देना चाहिये।

इक्षुमेहके भीतर मर्यादामें मधु हो तथा अपचन अधिक, बार-बार दुष्टडकार, कब्ज, क्षुधा न लगना, चरपरे पदार्थोंकी अधिक इच्छा होना आदि लक्षण हों तो चविकासव उपयुक्त औषधि है।

प्रतिश्याय और प्रतिश्यायजनित कास, बार-बार छींकें आना, नाक बिल्कुल पका-सा हो जाना, श्वासोच्छ्वासमें कुछ त्रास होना, नाक और कण्ठमें दर्द, समस्त शरीरमें दर्द (अङ्गमर्द) यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार में नाकमेंसे जल गिरते रहना और खांसीमें पतला कफ गिरना आदि लक्षण होते हैं। दोनोंपर यह हितकारक है।

यकृतोदर और प्लीहोदरमें अग्निमांद्य अधिक होनेपर चविकासव दें। एवं क्षय, अष्ठीला, वातरक्त और अन्त्रवृद्धिमें भी अग्निमांद्य होनेपर इसका उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२०) रोहितारिष्ट

विधि—रोहिड़ेकी छाल ४०० तोलेको जौकुट कर ४०९६ तोले जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर शीतल होनेपर ८०० तोले गुड़ धायके फूल ६४ तोले, पीपल पीपलामूल, चव्य चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन ११ औषधियोंका जौकुट चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अमृतबानमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास रखें, परिपक्व होनेपर छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले समान जलके साथ दिनमें २ बार दें।

उपयोग—रोहितारिष्ट प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि आदिको नष्ट करता है।

यह यकृत् और प्लीहावृद्धिमें अत्यन्त उपयुक्त औषधि है। यह अरिष्ट जीर्ण अग्निमांद्यको दूरकर पाचक पित्तोंके स्रावकी वृद्धि कराता है। पाचक पित्तस्रावक सूक्ष्म कोषोंको रक्तकी मात्रा पूर्ण रूपसे मिलती है, इस हेतुसे पाचक पित्तस्राव योग्य होता है।

विषमज्वर जीर्ण होनेपर प्लीहावृद्धि हो जाती है। उसपर यह रोहितारिष्ट उत्तम कार्य करता है।

मध्यम कोष्ठ (उदरगुहा) में रही हुई रसग्रन्थियोंके आकारकी वृद्धि होनेपर उदरमें गाँठ होनेका भास होता है। यह वृद्धि क्षयरोगमें होनेपर सुवर्ण कल्पका सेवन कराना चाहिये। परन्तु क्षय और उपदंशके अतिरिक्त कारणोंसे होनेपर रोहितारिष्ट देना चाहिये।

गुल्म (पित्तज या वातज) में रोहितारिष्ट हितकर है। अष्ठीलामें इसके सेवनसे रोगशमनमें सहायता मिलती है। एवं वातार्शमें और पित्तार्श में भी यह उपयोगी है। (औ. गु. ध. शा.)

(२१) पुनर्नवासव

विधि—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला दारुहल्दी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, अडूसेके पत्ते, एरण्डकी जड़, कुटकी,

गजपीपल, पुनर्नवा, नीमकी अन्तरछाल, गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोलपत्र इन २० औषधियोंको ४-४ तोले, धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, मिश्री ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। काष्ठादि औषधियोंको जौकूट करें। फिर सबको २०४८ तोले जलमें मिला अमृतबानमें भर १ मास रहने दें। परिपक्व होनेपर वस्त्रसे छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—पुनर्नवासव शोथ, उदररोग, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, यकृद्-वृद्धि गुल्म, ज्वर आदि कष्टसाध्य रोगोंको दूर करता है।

यह औषध उत्तम मूत्रल और हृद्य है। इस हेतुसे हृदय, यकृत्, प्लीहा और वृक्कोंपर लाभ पहुँचाता है। इनमेंसे किसीके भी विकारसे शोथ आनेपर उसे दूर करता है एवं हृदयको सबल तथा यकृत् और वृक्कोंको कार्यक्षम बनाता है। अतः सर्वाङ्ग शोथपर यह आसव अति कार्यकारी औषधि है।

शोथ तीव्र होनेपर पुनर्नवासवके साथ सारिवासव मिलाना चाहिये; जिससे रक्तप्रसादन होकर शोथकी सत्वर निवृत्ति हो जाय। अन्तर्विद्रधि या अन्तर अवयवोंके शोथपर भी यह हितकर है।

यकृद्वृद्धि; प्लीहावृद्धि, वातगुल्म और कफज गुल्मके विकारमें यह आसव अच्छा सहायक होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२२) सारिवासव

विधि—सुगन्धवाली सफेद अनन्तमूल, नागरमोथा, लोध, बड़की छाल, पीपलकी छाल, कचूर, काली अनन्तमूल, पद्माख, नेत्रवाला, पाठा, आँवला, गिलोय, खस, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, अजवायन और कुटकी ये १७ औषधियां ४-४ तोले तथा छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कूठ, सनाय और हरड़ १६-१६ तोला लें। सबको जौकुट कर जल २०४८ तोले, गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ४० तोले और मुनक्का २४० तोले मिला अमृत-बानमें भर मुखमुद्रा कर एक मास रहने देवें। परिपक्व होनेपर छान लें। इस आसवमें हम सुगन्धवाली अनन्तमूलका परिमाण ४ गुना अर्थात् १६ तोले लेते हैं। (भै० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले तक द्विगुण जल मिलाकर देवें।

उपयोग—सारिवासव प्रमेह, प्रमेहजनित शराविका आदि पिड़िका उप-दंशके उपद्रव, वातरक्त और भगन्दर आदि रोगोंको नष्ट करता है।

यह आसव अत्यन्त शामक, मूत्रल, दाहशामक और उत्तम रसायन है। इसका कार्य वातवाहिनियों, वातवाहिनियोंके मूल, वातवहा नाड़ीकेन्द्र, नाड़ीचक्र, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और अन्तःस्रावक ग्रन्थियोंपर शामक होता है। इस आसवका अधिक समय तक सेवन करनेपर उपदंशका विष नष्ट हो जाता है वातरक्त आदि विकारका शमन होता है। प्रमेहोंमें विशेषतः

पित्तप्रमेह पर इसका कार्य अच्छा होता है।

स्मृतिनाश और बुद्धिमांद्य जन्मसे न हो, किसी हेतुसे बीचमें उत्पन्न हुए हों, तो सारिवासवका अच्छा उपयोग होता है। यदि रक्तका दबाव बढ़कर बार-बार चक्कर आता हो तो सर्पगन्धाके सेवनके साथ सारिवासव का सेवन कराना चाहिये।

मूत्राघातमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है। मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रोत्पत्ति तो होती है परन्तु बस्तिके आगेके अवयवोंमें प्रतिबन्ध होनेसे मूत्रको बाहर निकालने में बाधा पहुँचती है। उनपर सारिवासवके सेवनसे मूत्रोत्पत्ति अधिक होकर मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें लाभ पहुँचता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रशर्करा और सिकता आदिपर यह आसव अच्छा कार्य करता है। इसके योगसे अश्मरीका क्षरण होकर मूत्रके साथ अणु बाहर निकलते रहते हैं। अश्मरीपर सारिवासवके साथ तिलक्षार, केलेका क्षार या इमलीका क्षार देवें। पौरुषग्रन्थिपर शोथ आनेसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें भी यह आसव लाभदायक है। वातभूयिष्ठ मूत्रकृच्छ्रपर चन्द्रप्रभा के साथ इसका सेवन कराना चाहिए।

पुराने सुजाक रोगसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें यह आसव अति लाभ पहुँचाता है। इसके सेवनसे पूय बाहर निकलता रहता है जिससे प्रदाह कम होकर मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। नये सुजाकमें प्रमेहान्तक वटी [प्रथम विधि] के साथ सारिवासव देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाता है।

ज्वरदाह या धातुक्षयसे उत्पन्न दाहपर यह आसव उपयोगी है। उपदंश और सुजाकके पश्चात् जननेन्द्रियमें चिरकारी अनेक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। स्त्रियोंके लिये इन रोगोंकी जड़ जाना अति कठिन है। इसपर सारिवासव उत्तम उपयुक्त औषधि है। इससे विषनिवृत्ति होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

अन्तःस्रावक ग्रन्थियोंकी विकृतिसे उत्पन्न विकार सारिवासवसे शमन हो जाते हैं। मधुमेहमें इस आसवका योगवाही रूपसे उपयोग होता है। प्रमेहपिड़िका होनेपर सारिवासव उपयुक्त औषधि है।

आमवात, वातरक्त और आढ्यवातमें सारिवासव उपयोगी होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

(२३) भृङ्गराजासव

विधि—भांगरेका रस १०२४ तोले, गुड़ ८०० तोले और हरड़ ३२ तोले मिला अमृतबानमें भरकर १५ दिन रहने देवें। फिर पीपल, जायफल, लोंग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोलेका जोकूट चूर्ण मिला १५ दिन रहने दें। बादमें छान लेवें।

मात्रा—१। से २।। तोले तक। समान जल मिलाकर सेवन करें।

उपयोग—यह आसव धातुक्षय और उत्कट कासको दूर करता है। कृश मनुष्योंको पुष्ट बनाता है। यह आसव बलकारक, बाजीकरण और बन्ध्या स्त्रियोंको सतानोत्पादक है।

इस आसवका उपयोग बद्धकोष्ठ बहुत अच्छा होता है। बद्धकोष्ठ होने पर अन्त्रके भीतर मलका संचय अधिक होता है, मल सड़ता रहता है। फिर उसमेंसे दुर्गन्ध और सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। यह विष श्लेष्मिककलाद्वारा शोषित होकर रक्त आदि धातुओंमें प्रवेश करता है। इस विषके हेतुसे विविध व्याधियोंकी सृष्टि निर्माण होती है। बार-बार बिना हेतु थकावट, पित्तविकार होकर बार-बार वमन, मलसंचयसे अन्त्र चोड़े और शिथिल हो जाते, उनमें वायु भरा रहना, क्षुधा, तृषानाश, जिह्वा पर मैल जमना, श्वासोच्छ्वास और मुंहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, बार-बार ज्वर होते रहना, शिरःशूल, निद्रानाश, कमरमें दर्द होना, बार-बार ज्वर आते रहना, हृदयकी शिथिलता, मानसिक अक्षमता, मूत्राघात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गलग्रन्थियोंकी वृद्धि, सर्वाङ्ग शोथ, मधुमेह, अन्य प्रकारके मेह, पाण्डुता, अन्त्रक्षय, कर्कस्फोट, आमवात, संधिवात, आढ्यवात, वातरक्त, धातुक्षय, (धातुवृद्धि होनेके बदले क्षीण होते जाना), क्षुद्र कुष्ठ, दन्तव्रण, नेत्ररोग, बाधिर्य, अकालमें व धक्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्पत्तिको यह भृंगराजासव रोक देता है इसके योगसे कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विष निर्विष हो जाता है या हानि पहुँचानेके लिये समर्थ नहीं रहता। भृंगराजासवके साथ सिद्ध घृत या एरण्ड तैलके सदृश स्नेह विरेचन देनेसे विशेष लाभ होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२४) पर्पटाद्यरिष्ट

विधि—पित्तपापड़ा ४०० तोलेको ४०९६ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहनेपर उतार मसलकर छान लेवें। शीतल होनेपर गुड़ ८०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, छोटी कटेली, धमासा, वच, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग इन ११ औषधियोंके ४-४ तोलेका जौकूट चूर्ण मिला १ मास तक आसवको बन्द रखें. फिर छान लेवें। (भैं० र०)

मात्रा—१। से २।। तोले। समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—पर्पटाद्यरिष्ट पाण्डु, गुल्म उदररोग, अष्ठीला कामला, हलीमक, प्लीहावृद्धि, यकृत्का शोथ और विषमज्वरको नष्ट करता है।

इस अरिष्टमें मुख्य औषधि पर्पट है। उसमें शामक, हृद्य, पित्तशामक और वातवाहिनियोंके क्षोभको नष्ट करनेका गुण है। अतः इस अरिष्टमें अम्लपित्तके विकारमें पित्तको अम्लता और तीक्ष्णताको नष्ट करनेका

उत्तम गुण हैं। यह अरिष्ट पित्तकी विषमता नष्टकर उसके साम्य प्रस्थापित करता है जिससे पाण्डु रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः पाण्डु रोगमें हृदयकी धड़कन और स्पन्दनकी वृद्धि होनेपर यह उपयोगी है। पाण्डुता रञ्जक पित्तके नष्ट होनेसे उत्पन्न होती है। रञ्जक पित्तका स्राव आमाशय, यकृत् और प्लीहामेंसे होता है, उसे इस औषधिसे सहायता मिल जाती है।

पित्तस्राव यकृत्मेंसे अच्छा न होने या साक्षात् पित्तांशका रक्तमें शोषण होनेपर उत्पन्न होने वाले कामला और हलीमकमें इसका उत्तम उपयोग होता है। इनपर विरेचन औषधि भी साथमें देनी चाहिये।

यकृद्वृद्धिमें कामला या प्लीहावृद्धि शरीर पीला बन जानेपर पर्पटाद्यरिष्टका उपयोग होता है। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिसे शोथ आने या अन्य कारणोंसे शोथ होनेपर भी यह प्रयोजित होता है।

विषमज्वरकी तीव्रावस्थामें तिक्त रसात्मक औषधि, क्विनाइन आदि औषधियोंका उपयोग होनेपर लाभ हो जाता है। परन्तु तीव्रता शमन होनेपर और जीर्णावस्थाको प्राप्ति होनेपर इन औषधियोंका अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें तीव्र कड़वी औषधिका उपयोग किया जाय तो घबराहट, ज्वर, पाण्डुता, विशेषतः पीली और चिकनी वमन, अन्नपर इच्छा न होना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें विष धातुओंमें लीन रहता है। इस लीन हुए विषको नष्टकर धातु साम्य प्रस्थापित करनेका कार्य इस औषधिद्वारा होता है।

पारदके अधिक मात्रामें सेवनसे उत्पन्न विकारोंपर यह अरिष्ट उपयोगी है। जिनसे पारदकी तीक्ष्णता और उष्णता सहन नहीं होती; उनके लिये इसका अच्छा उपयोग है। (औ. गु. ध. शा.)

(२५) अरविन्दासव

विधि—सफेद कमल, खस, गम्भारीकी छाल, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरेंटीमूल, जटामांसी, नागरमोथा, काली अनन्तमूल, हरड़, बहेड़ा, बच, आंवला, कचूर, काली निसोत, नीलके बीज, पटोल पत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुनकी छाल, मुलहठी, महुआके फूल, मुरा (अभावमें जटामांसी) इन २३ औषधियोंका ४-४ तोले जौकुट चूर्ण, मुनक्का ८० तोले, धायके फूल ६४ तोले, जल २०४८ तोले, शक्कर ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। सबको मिला अमृतबानमें भरें १ मास रहने देवें, परिपक्व होनेपर छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—बालकोंको ३ माशेसे ६ माशे और बड़े मनुष्योंको १। से २॥ तोले दिनमें २ बार, जलके साथ देवें।

उपयोग—यह आसव बालकोंके अनेक रोगोंका नाशक है; बच्चोंको पुष्ट

बनाता है, अग्निको बढ़ाता है तथा ग्रहदोषको दूर करता है।

यह आसव बच्चोंके रोगोंपर उपयोगी है, ऐसा गुणपाठ है। छोटे बच्चोंको होने वाले अस्थिवक्रता रोगपर इस औषधिका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें अस्थियोंमें विकार होता है। वे नरम बन जाती हैं जिससे बालकों के हाथ-पैर मुड़ जाते हैं, पतले हो जाते हैं और उनपर सलवट हो जाते हैं। नितम्ब प्रदेश बैठ जाता है। इस विकारमें जीवनीय द्रव्योंकी कमी होती है फिर धातुपोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतुसे अन्तर अवयवोंको भी योग्य पोषण नहीं मिलता; उनका व्यापार ठीक नहीं चलता। खांसी, अपचन, पतले दस्त, उदरमें अफारा, सारे दिन रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं। इस विकारपर यह आसव जीवनीय द्रव्यकी पूतिकर अग्निबल बढ़ानेका कार्य करता है।

सुजाक रोगके पश्चात् शेष विष धातुओंमें लीन रह जाता है; जिससे मूत्रमें बार-बार जलन, मूत्र गाढा हो जाना, मूत्रमें पूय या पिष्ट होना आदि लक्षण होनेपर अरविन्दासव लाभदायक है। स्त्रियोंके प्रदर विशेषतः रक्त-प्रदरमें यह उपयुक्त औषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

(२६) कर्पूरासव

प्रथम विधि—उत्तम पुरानी देशी शराब अथवा रेक्टीफाइड स्पिरिट १। सेर, कपूर ८ तोले, छोटी इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन और बायविडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण करके मिला दें। अमृतबान अथवा काचकी बोतलोंमें १ मास बन्द रखें, छानकर भर लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१० से २० बून्द। बताशेमें अथवा मिश्रीके साथ दें। कॉलेरा में आध-आध घण्टेपर। शेष रोगोंमें दिनमें ३ बार।

उपयोग—यह विसूचिका (Cholera, की परम औषधि है। इसका प्रयोग विसूचिकाको प्रारम्भावस्थासे अन्तिमावस्था तक निर्भयता पूर्वक होता है यदि प्रथमावस्थामें ही इसे प्रयुक्त किया जाय तो रोगियोंको जीवन लाभ मिल जाता है। किन्तु जब देह अति शिथिल हो जाती है और रक्तमें से जलका अति ह्रास हो जाता है, तब रक्तमें लवण जलके प्रदान और हृदयपौष्टिक औषधिके साथ इसका प्रयोग किया जाय तो लाभ होनेकी आशा रख सकते हैं। इसके अलावा अतिसार, वमन, दांतके दर्द आदिको भी दूर करता है।

दूसरी विधि—रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ औंस, कर्पूर २ औंस और ऑइल पीपरमेंट २ औंस लेवें। पहिले स्पिरिटमें कपूरका चूर्ण मिलाकर रख दें। २-४ घण्टेमें कपूर गलजानेपर पीपरमेंटका तैल डाल, अच्छी रीतिसे मिला, मजबूत डाट वाली शीशियोंमें भर लें।

मात्रा—३ से १० बून्द। बताशे अथवा मिश्रीके साथ दें। कॉलेरामें

१-१ घण्टेके बाद देते रहें। अतिसार, पेचिश, वमन आदि रोगोंमें दिनमें २ से ४ बार दें। दांतके दर्दमें फोहा रखें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, वमन, दांत और डाढ़का दर्द, सबको दूर करता है। यह कॉलेरामें आशुफलप्रद है। कॉलेराके अनेक रोगियोंके प्राण इस अर्कने बचाये हैं।

सूचना—पेशाब बन्द हो तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रखें। कलमीशोरा और केसूलाको जलमें पीसकर नाभिके नीचे भागपर लेप करें। सौंफका अर्क मिला जल १-१ चम्मच पिलाते रहें या बर्फका जल १-१ चम्मच पिलावें। ज्यादा जल पिलानेसे वमन नहीं रुकेगी। दस्त बन्द होनेपर भी वमन न रुके तो २-२ तोले घी या तैल २-३ बार पिलावें।

(२७) देवदार्वाद्यरिष्ट

विधि—देवदारु २०० तोले, अडूसेके पत्ते ८० तोले, मंजिष्ठा, दन्तीमूल, इन्द्रजौ तगर, दारुहल्दी हल्दी, रास्ना, बायविडंग, नागरमोथा, सिरसकी छाल, खैरछाल अर्जुनछाल, प्रत्येक ४०-४० तोले, गिलोय, चित्रकमूल, अजवायन, रक्तचंदन, कुटकी, कूड़ेकी छाल प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको जौ कुटकर जल ८१९२ तोले मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर शहद १२०० तोले; धायके फूल ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची तीनों मिलाकर १६ तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल तीनों मिलाकर ८ तोले; नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले लेकर मोटा-मोटा चूर्णकर मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें, फिर छान लें। हम शहद १५ सेरके स्थानमें ११। सेर मिलाते हैं। (शा० सं०)

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें ३ बार। समभाग निवाया जल मिलाकर भोजनसे पिलावें।

उपयोग—देवदार्वाद्यरिष्टके सेवनसे दुस्तर वातज प्रमेह, उपदंश, पूयमेह, उपदंश आदि जन्य मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, संग्रहणी, अर्श, प्रदर, गर्भाशय दोष, कण्डू, कुष्ठ इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट रक्तशोधक है। जीर्ण उपदंश और सुजाकके उपद्रवोंको दूर करता है। मलशुद्धि करता है और पचनक्रियाको सुधारता है।

यह अरिष्ट स्त्रियोंके गर्भाशय विकारपर अधिक हितावह है। कुमारियोंको इसका सेवन नहीं करना चाहिये। तरुण स्त्रियोंको सगर्भावस्थामें या प्रसवके पश्चात् यह उपयुक्त होता है। पीड़ितार्तव, नष्टार्तव अनार्तव इन रोगोंमें यह हितावह है। प्रसवके पश्चात् मक्कलशूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। प्रसूताके ज्वरको भी दूर करता है। ज्वरके साथ गर्भाशयमें से स्राव बन्द हो गया हो, अथवा थोड़ा-थोड़ा स्राव दुर्गन्ध रहित होता

हो, गर्भाशयके चारों ओर वेदना हो तो उसकी प्रारम्भिकावस्थामें देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। इस अवस्थामें स्रोतोवरोध हो, तो ही इसका उपयोग करें। वातज या सान्निपातिक लक्षण होनेपर दशमूलारिष्ट देना चाहिये।

जीर्ण सूतिकारोगमें इसका उपयोग होता है। प्रसवके पश्चात् १० दिनमें ज्वर आवे और सूतिका रोगके लक्षण उपस्थित होकर अधिक दिनों तक रह जायें तो देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। गर्भाशय अशक्त और शिथिल होनेसे उत्पन्न सूतिका रोगमें यह अधिक उपयोगी है। कीटाणुजन्य विषप्रकोप और व्रण आदिसे उत्पन्न तीव्र विकारोंमें दशमूलारिष्ट हितकारक है।

(औ० गु० ध० शा०)

(२८) रक्तशोधकारिष्ट

विधि—अनन्तमूल ४० तोले, मुनक्का ८० तोले, उशबा, कचनारकी छाल, खैरकी छाल और चोबचीनी २०-२० तोले, छोटी कटेली, इन्द्रायण की जड़, सिरसकी छाल, मंजिष्ठा, चिरायता, पित्तपापड़ा, गिलोय, मुण्डी, सरफोंका, उन्नाव, शतावरी, बबूलकी छाल, जवासेकी जड़, देवदारु तथा नीम और बकायनकी अन्तरछाल १०-१० तोले लेवें। सबको मिला जौकूटकर २५६० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मलकर छान लें। शीतल होनेपर गुड़ २॥ सेर, शहद १। सेर, धायके फूल २४ तोले रक्तचन्दनका चूर्ण १२ तोले तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर २-२ तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास रख देवें फिर छान लेवें।

उपयोग—यह अरिष्ट रक्तमें लीन कीटाणु और विषको जलाकर रक्त को शुद्ध बनाता है। उपदंशके उपद्रव—लाल काले धब्बे, सन्धिवात, कुष्ठ, वातरक्त, रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी आदिको १ मासमें दूर करता है।

(२९) द्राक्षारिष्ट

योग—मुनक्का २२½ कि.ग्रा., शीतल चीनी २५० ग्रा. तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, नागकेसर, लवंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, सम्भालूके बीज प्रत्येक २५०-२५० ग्राम, धायके फूल २½ कि० बम्बूल छाल १¼ कि०, शक्कर ६५ कि०, महुआ ५ कि०।

विधि—सर्व प्रथम मुनक्काको साफ पानी डालकर साफ कर लें फिर ६ गुने पानी याने १८० कि० पानीमें मुनक्का महुआ और बबूलकी छालको उबालें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर ठण्डा कर लें।

जिस ड्रममें अरिष्ट डालना हो उसमें कपूर अगर आदिसे बनी धूप लगा दें फिर ड्रममें डालकर ६५ कि. शक्कर डालकर हिलाते रहें। शक्कर मिल जानेपर शेष औषधियोंका प्रक्षेप धायके फूल सहित डालकर ४५ दिनके लिए मुखमुद्रा कर दें याने कपड़मिट्टीसे ढोलका मुंह बन्द कर दें। अगर

जरूरत समझें तो ४५ दिनसे पूर्व भी देख सकते हैं।

धूप

जटामांसी, सफेद चन्दन, गूगल, कपूर कावरी, कपूर देशी, नागरमोथा, बड़ी इलायची, दालचीनी, शीतल मिर्च, इन दस चीजोंको समभाग कूटकर धूप निर्माण कर ली जाती है।

(३०) महा द्राक्षासव

विधि—मुनक्का १। सेर, मिश्री ५ सेर, झरबेरीकी जड़की छाल ५० तोले, धायके फूल २५ तोले, चिकनी सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, रूमीमस्तंगी, कमल कन्द, अकलकरा और मीठा कूठ ये १५ औषधियां १०-१० तोले लें। सबको ४ गुने (१६। सेर) जलमें मिलाकर अमृतबानमें भरें। मुँहपर कपड़मिट्टी करके १४ दिन रहने दें। शीतकालमें २-४ रोज अधिक रखना पड़ेगा। फिर परीक्षा करके निकालें। यदि कच्चा हो तो पुनः मुखमुद्रा करके ३ दिन रहने दें। अपक्व आसवको निकाल लिया जायगा, तो बहुत खट्टा बन जायगा। पश्चात् वारुणीयन्त्र या नलिकायन्त्र में डालकर अर्क निकाल लेवें। फिर निकले हुए अर्कमेंसे दूसरी बार अर्क निकालें और इस समय २ तोले केशर और ३ माशे कस्तूरी मिला एक कपडेकी पोटलीमें बाँधकर यन्त्रके मुँहपर बाहर लटका दें।

सूचना—शराब निकालनेके पुराने घड़ेमें पाक जल्दी होता है, अमृतबान और नये घड़ेमें लगभग १ मास लग जाता है।

मात्रा—१ से २ तोले तक, दिनमें ३ बार लेवें। ऊपरसे स्निग्ध मधुर पदार्थका भोजन करना चाहिये।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, राजयक्ष्मा, निर्बलता, निद्रानाश, मानसिक भ्रम, अरुचि, मलावरोध, मन्दाग्नि, शिरदर्द आदि रोगोंको दूर करता है तथा बल-वीर्यकी वृद्धिकर बलिपलितका नाश करता है। अधिक मात्रा होनेपर नशा लाता है, अतः मात्रा कम देवें।

(३१) अंगूरासव

विधि—मीठे अंगूरोंका स्वरस १०० कि. शर्करा ५० कि. धायके फूल ५ कि. चिकनी सुपारी २५० ग्राम, लौंग, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागकेशर, अकरकरा, कमलकन्द, कूठमीठा और बंबूलकी छाल ये बारह औषधियाँ २००-२०० ग्राम लेवें। इन सबको यवकूट करके यथा विधि संधानके लिए अमृतबानमें भरकर मुखबन्द करके १५ दिन रहने देवें। फिर परिपक्व होनेपर परीक्षा करके निकालकर छानकर बोतलोंमें संवेष्टित कर देवें।

मात्रा—इसे २५ ग्राम से ४० ग्राम तक दिनमें २ या ३ बार लेवें।

उपयोग—यह सुमधुर पेय हैं। यह बल और वीर्यको बढ़ाता है। कास, श्वांस, क्षय, अग्निमांद्य, विबन्ध, शिरःशूल, श्रम तथा अनिद्राको दूर करता है। मनको प्रसन्न करके शरीरको स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

(३२) मृद्विकासव

विधि—मुनक्का ५ सेर, शक्कर २० सेर, छोटे बेरके मूलकी छाल २॥ सेर, महुआ फूल १ सेर, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, जायफल, जावित्री, लोंग, अकरकरा, कूठ, चिकनी सुपारी, नागकेशर ये प्रत्येक जौकूटकी हुई आधा-आधा सेर, जल ६५ सेर को एकत्र लकड़ीके ढोलमें भर दें। ढोलका मुंह बन्दकर १५-२० दिन रहने दें। आसव पक जानेपर निकाल छानकर दूसरे ढोल या शीशियोंमें भर दें।

(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

सूचना—यह आसव पीछे वर्णित द्राक्षासव या द्राक्षारिष्टकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली व गुणप्रद बनता है। उनकी अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट व रुचिकर बनता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक। भोजनके बाद, दोनों समय समान जल मिलाकर लें।

उपयोग—इसके सेवनसे श्वास, कास, उरःक्षत, शोष, धातुक्षय, रक्ताल्पता, किसी रोगके बाद आई निर्बलता, मंदाग्नि, शारीरिक व मानसिक श्रमको दूर करता है। इससे शान्त निद्रा आती है। थकावट दूर होती है। मलावरोध दूर होता है। यह सर्वोपयोगी स्वादिष्ट व रुचिकर पेय है।

(३३) वासारिष्ट

रसतन्त्रसार सिद्ध प्रयोग संग्रहके द्वितीय भाग षष्ठम संस्करण पृ. २२७ में लिखा गया वासकासव ही वासारिष्ट है।

ज्ञातव्य—(नोट)–आसव अरिष्टोंमें जितनी जलकी मात्रा है, उससे द्विगुण ही लेनी चाहिए। "द्रवद्वैगुण्यतो विधानात्" के सिद्धान्तके अनुसार क्योंकि, शास्त्रकारोंका विधान है कि, क्वाथ आदिके निर्माणके लिए जल की कही हुई मात्रा से दूनी लेवें। यथा—"क्वाथ्यादष्टगुणं वारि पादस्थं स्यात् चतुर्गुणम्" तो चतुर्थांश में शेष, चौगुना जब ही रहता है, जब सोलह गुना लेते हैं। इसी सिद्धान्त को "भैषज्य रत्नावलीकार" श्री विनोदीलाल सेन ने भी अपनी टीकामें उद्धृत करके अपनाया है। तथा रसतन्त्रसारके कषाय प्रकरणमें भी उल्लेख कर दिया है। इसी सिद्धान्तसे आसव निर्मल और पारदर्शक बनते हैं। (वैद्य स्वरूपनारायण)

अर्क प्रकरण

(१) चन्दनादि अर्क

विधि—सफेद चन्दन १० तोले, लाल चन्दन, नेत्रवाला, खस, कमलके पुष्प, गुलाबके पुष्प, नागरमोथा, गिलोय, नीमकी अन्तरछाल, धनिया, सौंफ, छोटी इलायची, शीतल मिर्च, पित्तपापड़ा, दारुहल्दी, देवदारु, धमासा की जड़, गन्नेकी जड़, काँसकी जड़, दर्भकी जड़, कुशकी जड़, गोखरू, सह देवी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, गोरखमुण्डी, गावजवां बनफ्शा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पोस्तडोडे, शतावर, कौंचके बीजकी गिरी और तालम-खाना इन ३५ औषधियोंको २-२ तोले लें। सबको जौकुट करके ८ सेर जलमें भिगो दें। २४ घण्टे बाद नलिकायन्त्रमें भरें। फिर ६ माशे केशर और १ तोला कपूरको एक पतले कपड़ेकी पोटलीमें बाँध यन्त्रके मुँहपर बाहर लटकाकर मन्दाग्निसे अर्क निकाल लेवें।

मात्रा—२॥ से ५ तोले, दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क पेशाबमें जलन, पेशाब बूंद-बूंद गिरना, पेशाबमें रक्त आना, वीर्यकी उष्णता, पित्तज, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशयमें दाह जीर्णज्वर, क्षय रोगमें पेशाबका पीलापन एवं सूर्यके तापमें भ्रमणसे होने वाले दाह इत्यादिको दूर करता है। रक्तमें संचित विषको मूत्रद्वारा बाहर निकालकर प्रकृतिको स्वस्थ बनाता है।

(२) बालबन्धु अर्क

विधि—कलीचूना २ तोले, मिश्री ४ तोले ओष जल ३० तोले मिलाकर घोल दें। चूना नीचे बैठ जानेपर साफ जलको नितार लें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ मासके बच्चेको ५ से १० बूंद। १ वर्ष तक २० से २५ बूंद। ३ वर्ष तक ४० से ५० बूंद। दूध मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे आमाशय रसकी विकृतिसे उत्पन्न बालकों के अपचन, दूध फेंकना, उदरपीड़ा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोग दूर होकर वे नीरोग और बलवान बन जाते हैं।

(३) नींबू द्राव

विधि—नौसादर, कलमीशोरा, सोहागेका फूला, फिटकरीका फूला, सज्जीखार और जवाखार २०-२० तोले मिला कूटकर चूर्ण करें। फिर नींबूका रस २ सेर मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर एक मास रखें, पश्चात् छानकर बोतलमें भर लें। (र० त०)

मात्रा—५ से १० बूंद मिश्रीमें मिलाकर पिलावें, अथवा २।। तोले जलमें मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह द्राव गुल्मरोगको थोडे ही दिनोंमें दूर करता है। प्लीहा-वृद्धि यकृद् विकार, उदररोग और शूलको भी नष्ट करता है।

(४) उदरामृत योग

विधि—घीकुंवारका रस, मूलीका रस, नींबूका रस, २०-२० तोले, अदरकका रस ५ तोले, सोहागेका फूला, नौसादर, पंचलवण २-२ तोले, चित्रकमूल, पीपलामूल, भुनो हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुना जीरा, अजवायन, लोहभस्म प्रत्येक १-१ तोला लें। फिर गुड़ १५ तोले डाल सबको अमृतबानमें भरकर १५ दिन धूपमें रखें. बादमें छानकर बोतलमें भरें।

मात्रा—६ माशेसे १। तोला, दिनमें २ बार भोजनके बाद २।। तोले जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह अर्क उदर रोग, प्लीहा, यकृद्दोष, पाण्डु, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मन्दाग्नि, कब्ज और शूल आदि रोगोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

(५) लघु शङ्खद्राव

विधि—नौसादर, कलमीशोरा, फिटकरी और जवाखार, चारोंको समभाग लेकर नींबूके रसमें खरल करें। फिर गेहूँके आटेकी दो मोटी रोटी बना, एकके ऊपर उपरोक्त कल्क रखकर उसकी किनारी मोड़ दें। ऊपर दूसरी रोटी ढ़क सन्धिको जल लगाकर बन्द करें। फिर तवेपर दोनों ओर पकाकर लाल करें। पश्चात् हिलाकर देखें। जल हिलनेपर रोटीमें एक ओर सलाईसे छेदकर रसको चीनीके प्यालेमें सम्हालपूर्वक निकाल लें।

मात्रा—५ से १० बूंद तक। २ से ५ तोले जल मिलाकर दिनमें २ बार पिलावें यह शंखद्राव थोड़े दिनों तक अच्छा रहता है।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, अफारा, शूल, यकृद् दोष, प्लीहा, अश्मरी इत्यादिको दूर करनेमें अति लाभदायक है। पथरीको गलाकर निकाल देता है और तकलीफ भी नहीं होती।

(६) शंखद्राव

विधि—सैंधानमक, कालानमक, बिड़नमक, समुद्रनमक ५-५ तोले साँभर नमक १८ तोले, सज्जीखार १९ तोले, कलमीशोरा २० तोले, फिटकरी ९ तोले, नौसादर ४।। तोले, कसीस २।। तोले और सोहागा २।। तोले सबको एकत्रकर चौगुने नींबूके रसमें मिला, चीनी मिट्टीके तेजाब रखने लायक पात्रमें डालकर धूपमें रख दें और प्रतिदिन लकड़ीसे चला दिया

करें। ७ दिनके पश्चात् मिट्टी या चीनीमिट्टीके वारुणी-यन्त्रसे अर्क निकाल लें।

मात्रा—१० से ६० बूंद, दिनमें २ बार। २॥ तोले जलके साथ, भोजनके बाद दें।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, शूल, उदररोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र अग्निमांद्य, संग्रहणी आदि रोगोंको दूर करता है।

शंखद्राव दीपन-पाचन (आमाशय पौष्टिक) यकृद्बल्य, उदरशोधन, कृमिघ्न और अश्मरीनाशक है। यह उग्र तेजाब होनेसे इसका सेवन सर्वदा कम मात्रामें करना चाहिये। यह बहुधा लवणाम्ल (Acid Hydro-Chloric) और सोरकाम्ल (Acid Nicrie) के मिश्रण (जलयुक्त) के समान बन जाता है। इसका योग एसिड नाइट्रोम्युरेटिक डिल० के नामसे केमिस्टोंके यहाँ मिलता है।

जब आमाशयके पित्तकी उत्पत्ति योग्य न होती हो, बहुत कम स्राव होता हो अथवा पित्त कम तेज हो, तब इस शङ्खद्रावका उपयोग हितावह है। भारी भोजन, अपथ्य सेवन या दूषित भोजनसे अपचन होकर दुर्गन्ध युक्त आहारमय वमन होती हो, दूषित डकार आती हो, उदरशूल होता हो, ऐसी अवस्थामें २-२घण्टेपर २-३ बार शंखद्रावका प्रयोग करनेपर उदर विकार निवृत्त हो जाते हैं।

उदरमें वातप्रधान गुल्म जो वातवर्द्धक पदार्थका सेवन करनेपर उत्पन्न होता है और वायु शमन होनेपर दूर हो जाता हो उस विकारको यह नष्ट करता है। अर्थात् पचनसंस्थानको सबल बनाकर गूल्मोत्पत्तिको रोक देता है। इस विकारमें अफारा, मलावरोध, अपानवायुका अवरोध और अन्न पचन हो जानेपर उदरका खिचना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस तरह कफज गुल्म होनेपर श्लैष्मिक कलापर मेदके सदृश मुलायम बड़ी गांठ भासती है। उवाक, अरुचि, काम, हाथ-पैर टूटना, रोंगटें खड़े होना और अङ्गमें भारीपनादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसकी प्रथमावस्थामें यदि शंखद्रावका सेवन १-२ मास तक कराया जाय तो गुल्म गल जाता है। अधिक शराब पीनेका व्यसन, रक्तवर्द्धक औषधिका अतियोग अथवा कीटाणु विषप्रकोपसे यकृत्में रक्तसंग्रह हो जाता है। फिर यकृत्में भारीपन, अन्त्रकी पचन क्रिया और मूत्रमें विकृति आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, उसपर शंखद्राव दिनमें ३ बार थोड़े दिनों तक देते रहनेसे लाभ हो जाता है। इस तरह ज्वरादि रोगोंमें वृद्धि हो जानेपर भी शंखद्रावका सेवन कराया जाता है।

वक्तव्य—यह द्राव उग्र होनेसे छोटे बालकोंको नहीं देना चाहिये।

बालकोंको कुमार्यासव या गोमूत्र सदृश सौम्य औषधि देनी चाहिये।

पित्त नलिकामें प्रदाह होकर कामला उत्पन्न हुआ हो, पित्ताशय या पित्त नलिकामें शूल न चलता हो तो शंखद्रावका सेवन ३ दिन तक दिनमें ३ बार कराते रहने और भोजनमें मट्ठा और भात देनेसे कामला दूर हो जाता है।

वातज अश्मरी अर्थात् ऑक्जलिक एसिड (Oxalic acid) के क्षारसे बनी हुई अश्मरी विशेष दुःखदायी और कठोर होती है। इसकी रचना वृक्कमें होनेपर कुछ-कुछ दिनोंके बाद (गविनीमें अणुका प्रवेश होनेपर) तीव्रशूल उत्पन्न होता है। उसकी प्रथमावस्थामें शर्करा या सिकताको दूर करने और उत्पत्तिको रोकनेमें शंखद्राव हितावह है। यदि मूत्राशयमें अश्मरी बनती हो या सिकतासे मार्गावरोध होनेपर मूत्रकृच्छ्र होता हो तो उसका भेदन यह सरलतासे कर देता है।

सूचना—(१) अश्मरी और वृक्कशूलके रोगीको तमाखूका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। अश्मरीके रोगीको चाहिये कि प्रवाल, मुक्तादि चूने प्रधान औषधिका सेवन न करें।

(२) आमाशयके पित्तमें उग्रता आई हो, छातीमें दाह रहता हो तो इस द्रावका सेवन नहीं करना चाहिये।

अन्त्रमेंसे रस शोषण क्रिया शिथिल होनेसे पतले दस्त होते रहते हों अथवा सूक्ष्म उदर कृमिके प्रकोपसे अपचन होकर पतले दस्त होते हों और त्वचापर कण्डू होती हो तो शंखद्रावका सेवन कुछ दिनों तक करनेपर पचन क्रिया सुधरकर अतिसार और अपचन शमन हो जाते हैं।

(३) यह एक प्रकारका तेजाब है। सम्हालकर उपयोग करें। केवल तेजाब पिलानेसे दाँतोंमें लगेगा तो दाँत गिर जायेंगे। अतः जल मिलाकर उपयोग करना चाहिये। इस अर्कको धातुके यन्त्रमें नहीं निकालना चाहिए।

(७) जम्भीरी द्राव

विधि—जम्भीरी नींबूका रस २।। सेर, भुनी हींग २ तोले, अजवायन, सोंठ, पीपल, मिर्च, बायविडङ्ग, लौंग, शोरा और छोटी हरड़ ५-५ तोले, सेंधानमक २५ तोले और राई १० तोले लें। सबको कूट जम्भीरीके रसमें डालकर १ मास रखें। फिर छानकर काममें लें। (आ० भि०)

मात्रा—१। से २।। तोले, भोजनके १।।-२ घण्टे बाद, दिनमें २ बार। जल मिलाकर पीवें। अधिक वेदना होती हो तो शंख भस्म १ माशा मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस द्रावके सेवनसे यकृत्, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, अजीर्ण और मलावरोध दूर होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

जम्भीरी द्राव सौम्य और उत्तम दीपन-पाचन, शूलहर और कृमिघ्न है। आमाशय रसस्रावके ह्राससे उत्पन्न अग्निमान्द्य, अपचन, उदरशूल, अफारा और मलावरोधको दूर करनेके लिये उपयोगी है। नूतन अपचन हुआ हो तो १-२ बार सेवन करानेसे ही लाभ हो जाता है। किन्तु दीर्घ-कालसे अग्निमांद्य, अजीर्ण रोग हुआ हो तो दिनमें २ या ३ बार कुछ दिनों तक सेवन कराते रहना चाहिये। यदि यकृद्वृद्धि, यकृत्में रक्तसंग्रह, प्लीहा-वृद्धि अथवा उदरमें वातप्रधान गुल्म या कफज गुल्म हो तो उसे भी यह नष्ट कर देता है। इन रोगोंपर दिनमें ३ बार शंखभस्म या अन्य पौष्टिक औषधि (मण्डूरभस्म, आरोग्यवर्द्धिनी या अन्य) के साथ एकाध मास तक पथ्यपालनसह सेवन कराना चाहिये।

सूचना—आमाशयमें व्रण, आमाशयविद्रधि और अम्लपित्त प्रधान रोगोंपर इस द्रावका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(८) गाजरका अर्क

विधि—गाजर १ सेर, गावजवां १० तोले; गावजवांके फूल, सफेद-चन्दन, तोदरी लाल और बहमन सफेद ५-५ तोले लें। सबको ८ सेर जल में मिलाकर नलिकायन्त्र द्वारा ४ बोतल अर्क खींच लें।

मात्रा—½ से १ छटांक, दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क हृदयकी धड़कन, शारीरिक निर्बलता और मंदाग्नि को दूर करता है। वातवाहिनियोंको सबल बनाता है। मूत्रको साफ लाता है। एवं अन्नजा और यमला हिक्का, श्वास, अर्श, शोथ, अतिसार और कामला रोगियोंके लिये हितकर है। सगर्भा स्त्रीको इस अर्कका सेवन नहीं कराना चाहिये। कारण गाजर गर्भाशयको उत्तेजित करता है।

(९) किरातादि अर्क

विधि—चिरायता, कुटकी, नीमकी अन्तरछाल, सोंठ, हरड़, धमासा, पटोलपत्र, लालचन्दन, नागरमोथा और खस इन १० औषधियोंको सम-भाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ८ गुने जलमें रात्रिको भिगोकर सुबह नलिकायन्त्र द्वारा अर्क खींच लें।

मात्रा—२॥-२॥ तोले अर्क ३-३ घण्टे बाद ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क विषमज्वर-सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक आदि चढ़े हुए तापमें दिया जाता है। प्रवालपिष्टीके साथ देनेसे ज्वरके विष को जल्दी जला देता हैं और तत्काल वेगका शमन करके तापको उतार देता है। प्रायः एक ही दिनमें दोषका पचन करा देता है, जिससे पारी छूट जाती है। इस औषधिसे रोगीके हृदय आदि अवयवोंको हानि नहीं पहुँचती

एवं निर्बलता नहीं आती। इनके अतिरिक्त अन्य ज्वरोंमें भी यह लाभ पहुँचाता है

(१०) मेदोहर अर्क

विधि—गोमूत्रको मिट्टीके नलिका-यन्त्रमें भरकर अर्क खींच लें। अर्क निकलनेके मुंहपर १० बोतल अर्कके लिये ३ माशे केशरको पतले कपड़ेकी शिथिल पोटलीमें बांधकर रखें। जिससे अर्कमें केशर मिश्रित हो जाय।

(स्व० वैद्य श्री वंशीधर जी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा-१ से २ औंस,दिनमें २या३बार, १-१तोला शहदमिलाकर लेवें।

उपयोग—यह अर्क मेदवृद्धि, दुर्गन्धयुक्त पसीना आना, हृदयमें पीड़ा, शोथ, उदरशूल, यकृत्में शूल, रक्तविकार, मन्द-मन्द ज्वर थोडे परिश्रमसे श्वास बढ़ जाना, बेचैनी, प्रमेह आदि दोषोंको दूर करता है। मेदवृद्धिमें अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास रस या चन्द्रप्रभावटीके साथ इस अर्कका सेवन करनेसे सत्वर लाभ होता है।

सूचना—यदि इस अर्ककी मात्रा अधिक ली जायगी या शहद कम मिलाया जायगा तो व्याकुलता होने लगती है। फिरएकाध दस्त लग जाता है, पसीना आजाता है और कुछ मिनटोंके लिये निर्बलता आजाती है।

(११) कर्पूरधारा [जीवनरसायन] अर्क

विधि—कपूर १० तोले, पीपरमेंटके फूल ५ तोले, थाइमोल(अजवायन के फूल) ५ तोले, बेंजोइक एसिड (लोबानके फूल) २।। तोले लें। पहले कपूर, पीपरमेंट और थाईमोलको मिलावें। जल हो जानेपर एसिड मिलादें।

मात्रा—२ से ५ बूंद तक, दिनमें ३ से ४ बार बताशेमें या शक्करके साथ अथवा जलमें देवें।

अनुपान—हैजेमें आध-आध घण्टेपर बताशेमें देते रहें। जल बहुत थोड़ा थोड़ा (चम्मचसे) पिलावें। अन्य रोगोंमें दिनमें २ से ३ बार दें। दाँत-डाढ़ के दर्दमें फोहा रखें और २ से ५ बूंद तक जलके साथ पिलावें। त्वचारोग में ७ गुणा तिलका तैल मिलाकर मालिश करें और दिनमें ३ बार २-४ बूंद जलमें मिलाकर पिलावें। कर्णरोगमें १ माशा तिलका तैल गरम करें, गुन गुना रहे, तब उसमें चौथा हिस्सा अर्क मिलाकर २-२ बूंद कानमें डालें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, मन्दाग्नि, खांसी, अरुचि, उदरशूल, वमन, रक्तविकार, आमवात, अजीर्ण कर्णपीड़ा शिरदर्द, ज्वर, कफविकार जुकाम, डाढमें चीस चलना, दाँतोंकी पीड़ा, कण्डू आदिको दूर करता है।

(१२) ज्वरहर अर्क

विधि—नौसादर और चूना, १०-१० तोले लेकर एक चीनी मिट्टीके

बरतनमें डालें। ऊपरसे ईखका सिरका या एसेटिक एसिड या सल्फ्यूरिक एसिड १०% वाला २० तोले लें। झाग उतर जायँ तब जल २ सेर मिला कर रहने दें। जल ऊपरसे स्वच्छ हो जाय तब बोतलमें भर लेवें।

(आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ तोले, तीन-तीन घण्टेके बाद ३ बार। सौंफका अर्क अथवा जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे नवीन ज्वर पसीना आकर सत्वर उतर जाता है। पेशाव साफ आता है। कफ प्रधान ज्वर, अजीर्ण ज्वर और इन्फ्लुएञ्जामें यह उपयोगी है।

(१३) शोथनाशक अर्क (बाह्यप्रयोगार्थ)

विधि—सोंठ १ तोला हीराबोल २ तोले, आमाहल्दी ५ तोले, मैदाल कड़ी ५ तोले, उसारेरेवन, सज्जीखार, लोध्र, कपूर और फिटकरी ये ५ औषधियाँ २।-२। तोले लें। सबको जौकुटकर २४ औंस मेथीलेटेड स्पिरिट में डाल दें। रोज बोतलको ३-४ बार चला देवें। तथा रोज बोतलको १-२ घण्टे सूर्यके तापमें रखें। एक सप्ताह पश्चात् वस्त्रमें छानकर बोतलमें भरें।

(श्री गोपाल जी कुंवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस अर्कको सूजन, वेदना, चोट लगना, रक्त जमजाना आदि पर रूईके फाहेसे दिनमें एक या दो बार लगा देनेसे बहुत जल्दी आराम हो जाता है। यह औषधि टिंचर आयोडीनका कार्य करती है।

(१४) लाक्षा अर्क [बाह्य प्रयोगार्थ]

विधि—१० तोले लाखको २० औंस मेथोलेटेड स्पिरिटमें मिलावें। आध घण्टेमें रस होकर अर्क बन जाता है।

उपयोग—शस्त्र लगने अथवा चोटसे रक्त निकलनेके स्थानपर इस अर्क में रुईकी पट्टी भिगोकर लगा देनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इससे घाव पर पट्टी चिपक जाती है। फिर विजातीय द्रव्यका बाहरसे प्रवेश नहीं होता, जिससे घाव नहीं पकता। जब यह घाव भर जाता है और त्वचा मिल जाती है तब ३-४ दिन बाद वह पट्टी खुल जाती है।

वक्तव्य—कितने ही चिकित्सक लाखके स्थानपर लोहबान पुष्प (Acid Benzoic) मिलाकर टिंचर बेंजोइक बनाते हैं यह भी अच्छा कार्य करता है।

यदि शस्त्र दूषित होनेसे या मिट्टी, धूल आदि लगनेसे घावमें विजातीय द्रव्य रह गया हो तो पहले त्रिफला क्वाथ, बोरिक लोशन (टंकणानुद्रव) या अन्य किसी कीटाणु नाशक धोवनसे घावको धोना चाहिये। रूईसे पोंछ-कर इसे लगावें।

(१५) स्त्रीगदान्तक अर्क

विधि—अशोकारिष्ट ६ औंस, ऑइल कोपायबा १।। ड्राम, ऑइल सेन्डलवुड (चन्दनका तेल) १० बूंद, टिंचर कॅथारीडीस १५ बूंद, लाईकर फॅरी ४ ड्राम अरबी गोंद (गम एकेशिया) १५ ग्रेन और एक्वा केम्फर केन्सण्टेड १।। ड्राम लें। गोंदको २ औंस बाष्पजलमें मिलावें। फिर छानकर उसके साथ तैल मिलावें। अशोकारिष्टमें शेष औषधि मिलावें। बादमें सबको मिला १२ औंसमें कम हो उतना अशोकारिष्ट और डाल लेवें।

उपयोग—इस अर्कके उपयोगसे स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशयमें दाह; मासिकधर्ममें अनियमितता, मासिकधर्मके समय गर्भाशयमें शूल चलना गर्भाशय विकृति जनित मलावरोध, बेचैनी, अरुचि, नेत्रदाह, शिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, अपचन आदि विकार दूर होते है। जीर्ण रोगमें अर्क २-३ मास तक पथ्यपालन सह लेना चाहिये।

जब किसी भी कारणसे गर्भाशयमें उग्रता उत्पन्न होने, प्रदाह होनें दूषित अथवा द्रव्य संगृहीत होनेसे प्रदरोत्पत्ति हुई हो तब यह अर्क पिलाते रहनेसे थोड़े समयमें ही लाभ पहुँच जाता है। यह उत्तम गर्भाशय शोधक औषधि है। गर्भाशयके साथ यदि मूत्रसंस्थानमें भी विकृति हो गई हो तो उसे भी यह अर्क दूर कर देता है। इस अर्कके सेवनसे मूत्रदाह, मूत्र बून्द-बून्द गिरना मूत्रका पीलापन, मूत्रावरोध आदि दोष दूर हो जाते हैं।

प्रारम्भमें यह अर्क सुजाकके उपद्रवोंसे पीड़ित रुग्णाके लिये तैयार किया था। फिर इसका उपयोग सुजाक रहित रोगियोंपर भी किया गया। अनेकोंको लाभ होनेसे पाठ जैसाका वैसा दे दिया है। अभी तक इस अर्कका उपयोग ५०,००० से अधिक रुग्णाओंपर हो चुका है। यह अति निर्भय और उत्तम औषधि है।

सूचना—यदि पूयमय प्रदर हो, प्रदरमें दुर्गन्ध आती हो, तो गर्भाशयको कीटाणुनाशक धोवनसे धोते रहें। फिर धातक्यादि तैल या नतादि तैलका पिचकारी लगाते रहना चाहिये।

(१६) ज्वरमुरारी अर्क

विधि—क्विनाइन सल्फास २ औंस, एसिड सल्फ्युरिक डाइल्यूट ४ औंस टिंचर नक्सवाँमिका १। औंस, टिंचर डिजिटेलिस ४ औंस, ऑइल पीपरमेन्ट ३० मिनिम और डिस्टिल्वाटर (परिश्रुत सलिल) २० औंस लें। क्विनाइनको थोड़े वाष्प जलमें मिला, फिर एसिडके साथ मिलावें। पश्चात् तैलको एक जीवकर फिर सबको मिला लेवें। रंग मिलाना हो तो १ औंस अर्कमें ३० बूंदके अनुपातसे रासबरी कलर मिला लेवें।

ऐसिड सल्फ्युरिक डाइल्यूट बनानेके लिये १ औंस वजन गन्धकके

तेजाबको ९ औंस जलमें मिलाना चाहिये। जलको तेजाबपर न डालें। तेजाबको जलपर डाल दें। फिर चलाकर रहने दें। जल शीतल हो जानेपर काममें लावें। १० औंस जलमें जितना कम हो उतना (३ ड्राम) जल मिला लेवें। अथवा एक औंस नापसे लिये हुए गन्धकके तेजाबको १४॥ औंस जलमें मिला लेनेसे भी डाइल्यूट हो जाता हैं।

मात्रा—½ से १ ड्राम तक, १-१ औंस जलके साथ, दिनमें ३ बार दें। बालकोंको मात्रा कम देवें।

सूचना—(१) अर्क तैयार होनेपर उतना परिश्रुत जल मिला लेवें कि एक मात्रामें क्विनाइन ४ ग्रेन और एक पौण्ड क्विनाइनसे २० पौण्ड अर्क बन जाय।

(२) जिन रोगियोंके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, उनसे क्विनाइन सहन नहीं होती। उनको क्विनाइन देनेपर मस्तिष्कमें उष्णता, निद्रानाश, रक्तदबाववृद्धि, वृक्कोंके कार्यमें शिथिलता और थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अतः इन रोगियोंको क्विनाइन मिश्रित ओषधि देनेंसे २०-३० मिनट पहले सोड़ाबाई कार्ब १ माशेको १०-२० तोले जलमें मिलाकर दे देना चाहिये। या अन्य क्षार देकर रक्तको क्षारीय बना देना चाहिये। रक्त क्षारीय होनेपर क्विनाइन सेवनके बाद भी मूत्र-शुद्धि होती रहती है। विष विकारके चिह्न उपस्थित नहीं होते और क्वि-नाइनसे योग्य लाभ मिल जाता है।

(३) पित्तप्रधान प्रकृति वालोंको पहिले दूध पिलाकर ऊपरसे अर्क पिलावें। अथवा पित्तशमनार्थ यह अर्क या क्विनाइनवाली कोई भी ओषधि देनेके ३ घण्टे पहिले सोडाबाई कार्ब २० ग्रेन जलमें मिलाकर पिला देवें।

उपयोग—ठण्डी लगकर आनेवाले ज्वर, विषमज्वर-एकाहिक, तृतीयक चातुर्थिक आदि एक दिनमें ही चले जाते है। पालीके बुखारमें जिस दिनकी पाली हो उस दिन रोगीको खानेको कुछ भी न दें। अति निर्बल रोगी हो या बालक हो तो थोड़ा दूध पिलावें और बुखार आनेपर ६ घण्टे पहले ओषधिकी १ मात्रा दे दें। फिर २-२ घण्टेपर दो बार ओषधि देनेसे एक ही दिनमें ज्वर रुक जाता है। ज्वरका समय चला जानेपर रोगीको क्षुधा लगनेपर दूध दें। भोजन दूसरे दिन करावें। उस दिन स्नान भी नहीं कराना चाहिये। पालीके दिनसे अन्य दिनोंमें ओषधि ३ बार दें।

यह अर्क सौम्य, विषमज्वर तथा घातक विषमज्वरपर हितावह है। सन्ततज्वर (Malarial Remmityent Fever) सततज्वर (Double Quotidian Fever), एकाहिकज्वर (Quotidian Fever) सौम्य तृती-यकज्वर (Benigntertion Fever), मृदुतृतीयकज्वर (Obvaltertian

Fever) गम्भीर तृतीयकज्वर (Malignant Tertian Fever), चातुर्थिक ज्वर (Quartau Fever) इनपर इस अर्कका उपयोग होता है। अभी तक एक लक्षसे अधिक रोगियोंपर यह अर्क व्यवहृत हो चुका है। यह अति सफल प्रयोग सिद्ध हुआ है।

कितने ही रोगियोंको ज्वर ९९॥ से कम नहीं होता। बढ़कर १०४° तक हो जाता है। रोगीको अवस्था अति भयप्रद मानी जाती है। ऐसे रोगियोंपर भी इस अर्कने जादूके समान कार्य किया है। कितने ही रोगियोंको चातुर्थिक ज्वर महीनों तक नहीं छोड़ता। ऐसे अनेक रोगियोंको यह अर्क दिया गया है। जिनको देह पिंजर जैसी शुष्क और निस्तेज बन गई थी। उनमेंसे अनेकोंको ३ दिन अर्क पिलाने मात्रसे ज्वर चला गया था। किसी-किसीको ७ दिन तक देना पड़ा है। इस अर्कसे सबको लाभ पहुँचा है। कभी किसी को हानि नहीं हुई।

मलेरियाके अतिरिक्त पूयज्वर (Pyaemia) आमवातिक ज्वर (Rheumatic Fever), परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever), राजयक्ष्मामें ज्वर वातश्लैष्मिक ज्वर (Influenza), अपचनजनित ज्वर, सूतिकाज्वर (Puerperal Fever) और आगन्तुक ज्वर आदि रोगोंपर भी इस अर्कका उपयोग निर्भयतापूर्वक किया जाता है।

(१७) चांदी का खिजाब

विधि—रौप्यक्षार (सिल्वर नाइट्रास) १ तोले और गन्धकका तेजाब १ तोलेको चीनी मिट्टीकी प्यालीमें रखकर कोयलोंकी जलती हुई सिगड़ी पर रखें। १५-२० मिनटमें तेजाब जलकर चाँदीकी भस्म तैयार हो जायगी। फिर गन्धक आंवलासार २० तोलेको ३ दिन खरल करें। चौथे रोज़ थोड़ा-थोड़ा गुलाबजल मिलाकर खरल करें। ३-४ रोज खरल करनेसे गुलाबजल अच्छी तरह मिल जाता है। फिर बोतलमें भरें। ६० तोले गुलाबजलमेंसे घट गया हो उतना और गुलाबजल तथा चांदीकी भस्म मिला लें। (श्री० ठा० रघुरामसिंह)

उपयोग—पहिले बालोंको साबुनसे धोकर ब्रुशसे थोड़ा खिजाब लगावें। सूखनेके बाद बाल धो दें। अन्य जगह खिजाब लगकर काला दाग हो जाय तो तैल अथवा घी का हाथ लगाकर साफ कर लें। पहिले रोज रंग थोड़ा कम आवेगा। तीसरे समय लगानेसे नैसर्गिक बालोंका रंग आ जाता है।

(१८) गुड़मार अर्क

चौगुणे जलमें गुड़मार पत्तीको भिगोकर अर्क त्रिविसे अर्क खींच लिया

जाता है । यही गुड़मार अर्क है ।

उपयोग—यह यकृत्‌की शक्कर बनानेकी क्रियाका दमन करता है इसी हेतुसे मधुमेहकी औषधियोंके साथ व्यवहृत होता है ।

मात्रा—१। से २।। तोला दिनमें दो बार ।

(१९) पुनर्नवा अर्क

पुनर्नवाको चौगुणे जलमें भिगोकर अर्क खींच लें । हस्त पादादि सर्वांगिक शोथ यकृत्शोथ, मूत्रविकार, मूत्रकृच्छ्र आदि विकारोंमें पीनेसे तथा नेत्रोंमें डालनेसे नेत्र प्रदाह शोथादिको मिटाता है ।

मात्रा—१। से २।। तोला दिनमें २-३ बार दें ।

(२०) महासुदर्शन अर्क

महासुदर्शन चूर्णके नुस्केको जो कूटकर भिगोकर चौगुने जलसे अर्क खींच लें । जीर्ण नूतन ज्वर, दिनों तक बना रहने वाला ज्वर, अग्निमांद्य, पाण्डु, शारीरिक निर्बलता आदिपर हितकारक है ।

मात्रा—१। से २।। तोला तक दिनमें २ बार सुबह शाम ।

(२१) सौंफका अर्क

सौंफको चौगुने जलमें भिगोकर अर्क विधिसे अर्क खींच लें । यह अर्क आम प्रकोप उदरमें आम बढ़ जाना, बेचैनी, मलावरोध, तृषा अधिक लगना, अग्निमांद्य, उदरमें वायु भरा रहना आदिपर हितकारी है ।

जुलाब लेनेके बाद सौंफका अर्क पीनेपर उबाक आना दूर होता है । दाह शान्त होता है और आम निकल जाता है ।

मात्रा—५-५ तोले दिन ३ बार या जुलाबके २ घण्टे बाद ।



पाक-अवलेह शर्बत प्रकरण

मृदु प्रकृति वाले, बालक, स्त्री, वृद्ध, पुराने रोगी अथवा जो कड़वे चूर्ण आदि सेवन न कर सकें और जो भस्म आदि औषधियोंके अनधिकारी हों, उनके लिए पाक, अवलेह आदि औषधियों विशेष अनुकूल रहती हैं। पाक आदि औषधि स्वादिष्ट होनेसे सब कोई सप्रेम ग्रहणकर सकते हैं। ये औषधियाँ शीघ्र पचन होनेसे, रस-रक्तमें मिलकर रोगोंको दूर करती हैं और शरीरको सुदृढ़ बनाती हैं। केवल भस्म जिनको लाभ नहीं पहुँचाती उनको यदि पाक अथवा अवलेहमें मिलाकर दी जाय तो वे अपना लाभ अवश्य पहुँचाती हैं।

पाक और अवलेह बनानेकी विधि औषधिकृति प्रकरणमें लिखी है। माजून। यूनानी हिकमत वालोंका है। वे लोग शहदको उबालकर ऊपर आनेवाले मैलको निकाल देते हैं। शेष रही हुई शुद्ध शहदको माजूनके चूर्णके साथ मिला लेते हैं। किन्तु आयुर्वेदने गर्म किये शहदको विष माना है जिससे शहदको तपाना, आयुर्वेदके नियमके विरुद्ध है। इसलिये शहदको बिना गरम किये मिलाया जाय तो भी औषधि प्रयोग न्यून गुणवाला नहीं होता।

कुछ शर्बत इस प्रकरणके अन्तमें दिये हैं। अनेक समयपर शर्बत रूपसे औषधियां देनी पड़ती है अथवा अन्य औषधिके साथ अनुपान रूपसे शर्बत मिलाना पड़ता है। शर्बत मधुर व स्वादिष्ट होनेसे सब कोई ग्रहणकर सकते हैं जिससे स्वादके साथ-साथ औषधिका लाभ भी पहुँच जाता हैं।

पाक सेवन प्राय: दिनमें १ बार प्रात:काल होता है। अनेक पाकोंमें भस्म मिलनेको लिखा है। उनको यदि न मिलावें या न्यूनांशमें मिलावें तो कोई दोष नहीं होता; पाक विशेष सौम्य बनता है। केवल भस्मोंका लाम नहीं मिलता। अवलेह और माजूनका सेवन दिनमें २ बार किया जाता हैं। भस्म मिले पाक, अवलेह और माजून सबकी मात्रा नियमित न होनेसे सब के साथ दी है।

सूचना—अवलेहके भीतर वंशलोचन मिलाना हो, उसे भस्म सदृश या नेत्राञ्जनके समान मुलायम करके मिलाना चाहिए। मोटा चूर्ण रह जाने पर दांतोंके नीचे रेती समान करकरा सा प्रतीत होता है।

(१) सौभाग्य सुंठी पाक

प्रथम विधि—सोंठके ३२ तोले चूर्णको घी की भावना (मोण) देकर ४ सेर गायके दूधमें मिलाकर खोवा बनावें। फिर खोवेमें थोड़ा-थोड़ा घी डालते जाय और हिलाते जायं। १ सेर घी डालनेसे दाना अलग-अलग पड़ेगा। बादमें ४ सेर मिश्रीकी चाशनीकर उसमें खोवा डाल दें। फिर

धनियाँ ३ माशे, सोफ १। तोला, बायविडङ्ग, सोंठ, नागकेशर, कालीमिर्च पीपल ओर मोथा ४-४ तोलेका चूर्ण एवं थोड़े-थोड़े बदाम, पिस्ता चिरोंजी मिलाकर पाक तैयार करें। (ध० वं०)

वक्तव्य—इस पाठमें मूल ग्रन्थकारने धनियाँ ३ माशे और सोंफ १। तोला लिया है। उनके स्थानपर हम ४-४ तोले मिलाते हैं।

मात्रा—५-५ तोला। रोज सुबह खिलाकर ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग—सौभाग्यसुंठी पाक वातनाड़ीपोष्टिक अग्निप्रदीपक, यकृद्-बल वर्द्धक, कीटाणु-नाशक, स्तन्योत्पादक और अन्त्रशोधक है। इस पाकके सेवनसे स्त्रियोंके प्रसूति (सूवा) रोग, वातरोग, प्यास, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खांसी, तिल्ली, कृमि इत्यादि विकार नष्ट होते हैं।

सूचना—यदि प्रसूताको निद्रानाश, मुखपाक, छातीमें जलन, खट्टी, डकारें आना या गरम-गरम पतले दस्त होना आदि विकार हों तो इस पाकका सेवन नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—१९२ तोले सोंठके चूर्णको समभाग घृत मिलाकर भूनें। फिर ७६८ तोले दूध मिलाकर उबालें। आधा दूध शेष रहे तब १९२ तोले मिश्री डालकर पाक करें। पाक तैयार होनेपर जायफल, त्रिफला, जीरा, काला जीरा, धनियां, सौंफ, इलायची, पीपल, नागरमोथा; नेत्रवाला, मुनक्का विदारी कन्द, सफेद चन्दन और छुहारा सब २-२ तोले, ताजे नारियलकी गिरी ३२ तोले शिलाजीत और लोह भस्म ८-८ तोले, सोवा १६ तोले, चिरोंजी १६ तोले और निसोत ३२ तोलेका बारीक चूर्ण डालें और केशर आदि सुगन्धित पदार्थ इच्छानुकूल मिलावें। मिश्री १९२ तोले मिलानेपर पाक अधिक चरपरा रहता है; इस हेतुसे हम ३८४ तोले मिलाते है। (आ० मि०)

शिलाजीतको ४ गुनी मिश्रीके साथ खरल करके पाक तैयार होनेंपर मिला लेवें। पहले मिलानेसे पाक ढीला हो जाता है। और शिलाजीतसे पाकका रङ्ग श्याम हो जाता है। यदि शिलाजीत पाकमें न मिलावें, बल्कि पाक सेवनके साथ रोज २-२ रत्ती दूधके साथ लेते रहें तो भी पूरा लाभ मिल सकता है।

मात्रा—२ से ४ तोले तक। सुबह खाकर दूध पीवें।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे बल, कान्ति सौभाग्य, वृद्धि, स्मृति; वाणी सोंदर्य और सुकुमारताकी प्राप्ति होकर योनिकी शिथिलता दूर होती है। स्त्रियोंके स्तन घट्ट होते हैं और वातरोग, कफरोग, पित्तरोग, ज्वर, मूत्ररोग, एवं नासा, नेत्र, कर्ण, मुख, मस्तिष्कके रोग, बस्तिशूल, योनिशूल और अन्य रोग भी नष्ट होते है।

(२) सुंठ्यादि पाक

विधि—सौंठ, बादामकी गिरी और पिस्ता ५-५ तोले; मेथी चास्को (बनकुलथी), खसखस, सौंफ, सोवा, पीपल, गोखरू, सफेद मूसली, काली मूसली, कौंच, मिर्च, धनिया, तालमखाना, बायपुंबा, हालो (चन्द्रशूर), प्रत्येक १-१ तोला. शतावरी, जायफल, जावित्री, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, पीपलामूल, बायविडङ्ग, कुलिंजन, जीरा, हल्दी ६-६ माशे खरेंटी के बीज २ तोले, नारियलकी गिरी १० तोले और बबूलका गोंद २० तोले लें। गेहूँका आटा सब चूर्णसे ड्योढा तथा घी और गुड़ चूर्णसे २॥-२॥ गुना लें। बबूलके गोंद और दूसरी ओषधियोंको अलग-अलग कूटकर मोटा चूर्ण बनावें। बबूलके गोंद, चूर्ण और आटेको घीमें अलग-अलग भूनें। फिर तीनोंको मिला लेवें। बादमें गुड़ मिलाकर पाक सिद्ध करें। (व० चि० सा०)

मात्रा—रोज सुबह ५ से १० तोले तक अनुकूल हो उतने परिमाणमें खाकर ऊपर दूध पीवें। पाक पचन होनेपर भोजन करें।

उपयोग—यह पाक प्रसूता स्त्रियोंकी निर्बलताको दूर करता है और जठराग्निको प्रदीप्त करता है। निर्बल मनुष्यके लिये भी पोष्टिक रूपमें अच्छा काम देता हैं।

(३) कौंच पाक

विधि—कौंच १२८ तोलेको गरम जलमें १२ घण्टे भिगो दें। फिर निकाल खादीके कपड़ेसे घिस ऊपरके छिलकोंको अलग करें। पश्चात् छाया में सुखा कूटकर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्णको १६ गुने दूधमें मिलाकर उबालें। जब दूध मावा जैसा गाढ़ा हो जाय तब चूर्णसे दुगुना घी मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। फिर चूर्णसे चार गुनो शक्करकी चाशनी करें। पश्चात् कौंचवाला मावा मिला लें। अगर. जायफल, जावित्री, सोंठ, लौंग. अकलकरा, जीरा, पीपल. दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलमिर्च, समुद्रशोष, भिलावा, केशर, करंजके बीजकी गिरी, खुरासानी अजवायन, तालमखाना और दूधमें शोधन किया हुआ बच्छनाभ २-२ तोले काली मूसली और शुद्ध अफीम ४-४ तोले लें. फिर बारीक चूर्ण करके मिला दें। रससिंदूर, नागभस्म, वङ्गभस्म २-२ तोले और लोहभस्म ४ तोले डालें। ठण्डा होनेपर ६४ तोले शहद मिलावें। सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी इच्छानुकूल मिला पाक बनाकर कलईदार बरतनमें भर दें।

सूचना—इस पाकमें अफीमका परिमाण बहुत ज्यादा है। अफीमके व्यसनीसे इतनी अफीम सहन होती है; अन्य लोगोंसे नहीं। अतः अफीम आधेसे १ तोला मिलावें। ४ तोला अफीम मिलानेसे ४ तोले पाकमें १ रत्ती

अफीम आती है। इसके अतिरिक्त बच्छनाभका परिणाम अफीमसे आधा है। यह भी अत्यधिक है। बच्छनाभ आध तोलेसे अधिक नहीं डालना चाहिए।

मात्रा—२ से ४ तोले। रोज सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवें।

उपयोग—यह पाक धातुवृद्धि और पुष्टिके लिये अति उपयोगी है। यह अत्यन्त कामोत्तेजक है। श्वास, पाण्डु, क्षय, खांसी, सूजन, मेद और वात-रोगोंका नाश करता है। क्षीणवीर्य, नष्टवीर्य और खंजवातसे पीड़ित मनुष्योंके लिये अमृतरूप है। इस पाकके सेवनसे बुद्धिकी वृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है।

सूचना—इस पाकके सेवन कालमें अंगूर, मुनक्का, केला, चिरौंजी, मिश्री, दूध, घृत और तिल पथ्य हैं और खट्टे पदार्थ अपथ्य हैं।

(४) जीरकादि मोदक

विधि—जीरा ३२ तोले, भांग (भुनी हुई) १६ तोले; लोहभस्म, वंग भस्म, अभ्रकभस्म, सौंफ, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल, धनियां, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, तेजपात, लौंग, छरीला, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, जटामांसी, मुनक्का, कचूर, सोहागेका फूला, कुंदरू, मुलहठी, वंशलोचन, शीतलमिर्च, नेत्रवाला, सोंठ, मिर्च, पीपल, धायके फूल, बेलगिरी, अर्जुनछाल, सोया, देवदारू, कपूर गंगेरनकी छाल, प्रियंगू, कुटकी, जीरा, मोचरस, कमलकी नाल सब १-१ तोला लें। भस्म को छोड़ शेष सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें। ८० तोले मिश्री मिलावें और गोली बंध सके उतना शहद मिलाकर आध-आध तोलेकी गोलियां बनावें। कितने ही चिकित्सक इस मोदकमें आध सेर गोघृत मिला पश्चात् शहदके साथ गोलियां बनाते हैं। (भै० र०)

सूचना—इस प्रयोगमें आचार्योंने कुटकी मिलायी है। कुटकी मिलानेसे मोदकका स्वाद कड़वा हो जाता है। मलावरोध न हो तो मिलानेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि यकृत् बलवान हो तो लड्डू बनानेके समय गोघृत मिलाना हितावह होता है यदि दस्तमें दुर्गन्ध हो सफेद वर्ण हो, आम अधिक हो तो घी नहीं मिलाना (५-१० तोले ही मिलाना) हितावह माना जायगा।

मात्रा—१ से २ गोली रोज सुबह जल या मठ्ठेके साथ दें।

उपयोग—इस मोदकके सेवनसे संग्रहणी, आमदोष, पित्तदोष, मन्दाग्नि रक्तातिसार, अतिसार, विषमज्वर, शब्द सहित अतिसार, अम्लपित्त, उदर-रोग, शूल, अरुचि आदि रोग दूर होते हैं।

वक्तव्य—यह जीरकादि मोदक आमप्रधान ग्रहणी पीड़ितोंके लिए विशे-

षतर हितावह माना जाता है । यदि आमाशयके पित्तमें उग्रता आकर दाह-मुखपाक हो जाता हो तो उसे भी शमन करता है । मुखपाक, दाह आदि अम्लपित्तके लक्षण हों तो अनुपान रूपसे मट्ठा नहीं देना चाहिए । शीतल जल ही देना चाहिए एवं भात आदि अम्लविपाक वाले पदार्थका सेवन भी कम कराना चाहिए ।

अग्निमांद्य, आमाशयके पित्तकी उग्रता होनेपर एवं आमाशयके पित्तकी उत्पत्ति कम या पित्त कमजोर होनेपर तथा यकृत्का पित्तस्राव कम होनेपर भी होती है । इनपर यह मोदक अनुपान और पथ्यभेदसे उपयोगी हैं । इस प्रकारसे आचार्योंने औषध योजना की है । यह मोदक आमाशय पित्तकी न्यूनाधिकताको सम बनाता है एवं यकृत्को भी बल प्रदान करता है ।

क्वचित् अन्त्रमें प्रदाह होनें या उग्रता आ जानेपर रक्तातिसार होता है । उस विकारको शान्त करनेके लिए इसमें वंशलोचन आदि शामक ओषधियां तथा बेलगिरी आदि स्निग्ध ओषधियां मिलायी है ।

कई मात्राधिक आहार सेवन करने वाले, बार-बार भोजन करनें वाले, अपथ्य सेवन करने वाले तथा सिगरेट और गरम चाय आदिके व्यसनियों की आंतें शिथिल व चौड़ी हो जाती है । जिससे मल, आम और वायु संगृहीत होती है तथा उदरशूल या उदावर्त रोगकी भी संप्राप्ति हो जाती है । उस विकारको शान्त करनें या लक्षणोंको दूर करनेंके लिए भांग, अभ्रक आदि ओषधियोंका मिश्रण किया है ।

कई रोगियोंको आम ग्रहणी जीर्ण होने और मलावरोध बना रहनेके कारण मन्द-मन्द ज्वर आने लगता है, वह भी मुख्य रोग दूर होनेके साथ दूर हो जाता है । कई रोगियोंको मलावरोध भी बना रहता है । अतः मल की शुद्धि करनेके लिए कुटकी मिलायी है । इसका कार्य बढ़ानेके लिए भांग भी योगवाही बन जाती है ।

संग्रहणीके अनेक रोगियोंको अरुचि बनी रहती है । उसे दूर करनेके लिए भांग श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है । रोग जीर्ण होनेपर रक्तमें न्यूनता और पाण्डुता आती है, वह लोह मिलानेसे दूर हो जाती है । मांसपेशियां शिथिल हो जाती है , यह अभ्रक भस्मके मिश्रणसे दूर होती है । एवं मूत्र-संस्थान और शुक्रस्थानकी विकृतिको वंगभस्म दूर करता है ।

संक्षेपमें आचार्यने इस प्रयोगमें औषध योजना इस प्रकारसे की है कि ग्रहणी, जीर्ण अतिसार और जीर्ण प्रवाहिकापर लाभ पहुँचाता है ।

सूचना—गरम चाय, गरम-गरम कॉफी, सिगरेट, बीड़ी अतिभ्रमण करना, अति मिर्च मसाला खाना आदि छुड़ा देना चाहिए ।

(५) नेत्रशूलान्तक मोदक

विधि—पक्के नारियल (जिसमेंसे तैल निकलता है), उसकी गिरी २० तोले, गुड़ १० तोले और आनन्दभैरव रस ४ रत्ती मिलाकर ५ अथवा ७ लड्डू बनावें। (श्री० वैद्य परमानन्दजी)

मात्रा—एक-एक मोदक रोज सुबह। बकरीके दूधके साथ दें।

उपयोग—इस मोदकके सेवनसे नेत्रशूल (अधिमन्थ Glucoma), शिरागत वातविकार, शिरदर्द, शिराशूल आदि रोग दूर होते हैं।

नेत्रशूल तीव्र होनेपर १-१ तोला कलौंजी भी गुड़के साथ मिलाकर दिन में दो समय देते रहना चाहिये। जिससे मस्तिष्कमेंसे प्रस्वेदको अधिक बाहर निकालकर नेत्रान्तर दबावको कम कर देता है फिर नेत्रशूलका शमन हो जाता है। इस मोदकके साथ रौप्यभस्म आध-आध रत्ती अभ्रक भस्म ¼-¼ रत्ती मिलाकर देनेसे तीव्रशूलका तीन दिनमें शमन हो जाता है।

(६) च्यवनप्राशावलेह

विधि—पाटला, अरणी, गंभारी, बेल और श्योनाक (अरलू) इन सब की छाल, गोखरू, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पीपल, काकड़ासींगी, मुनक्का, गिलोय, हरड़, खरेंटी, भूमि आंवला, अडूसा, जीवंती, कचूर, नागरमोथा, पुष्करमूल कोआठोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द, सांठी, कमलगट्टा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और अष्टवर्ग [अभावमें प्रतिनिधि द्रव्य]* की आठों औषधियाँ, सब चार-चार तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर यह चूर्ण बड़े-बड़े ताजे ५०० आंवले [६। सेर आंवले ताजे; सूखे हों तो वजनमें आधे] और २०४८ तोले पानीको एक घड़ेमें डालकर पकावें। आठवां हिस्सा पानी शेष रहनेपर छान लेवें और आँवलोंको निकाल लेवें। फिर कलई किये हुए बरतनपर मजबूत खादीको बाँधकर उसपर आँवलोंको मसलनेसे आंवलोंका मगज छन जाता है इस मगजको २८ तोले घृतमें (मतान्तरमें घी-तैल १४-१४ तोले) मिलाकर मन्दाग्निसे लाल होने तक भूनें। आंवले भुन जानेपर घृत अलग निकल जाता है। फिर क्वाथके छाने हुए जलको पुनः उबालें। आधेसे अधिक

---

* ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली इन ८ औषधियोंको अष्टवर्गकी संज्ञा दी गई है।

ये औषधियां जो वर्तमानमें मिलती है, वे अभी तक संदिग्ध मानी जाती है। इस हेतुसे इन औषधियोंके प्रतिनिधिकी योजना की जाती है। प्रतिनिधिके सम्बन्धमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। विशेषत: निम्नानुसार प्रतिनिधि विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है।

खरेंटी, पन्जासालब, शकाकुल छोटी, शकाकुल बड़ी, लम्बासालब, काली मूसली, सफेद मूसली और सफेद बहमन ये क्रमशः लिये जाते हैं।

अंश जल जाय तब ५ सेर शक्कर मिलाकर पाक करें। कुछ गाढ़ा होनेपर आँवलोंवाला पाक मिलाकर पकावें। फिर पीपल ८ तोले, वंशलोचन १६ तोले और दालचीनी, इलायची, नागकेशर तथा तेजपात १-१ तोलेका बारीक चूर्ण करके मिलावें। अवलेह ठण्डा होनेपर ४८ तोले शहद मिलावें। हमने शहद और शक्करका परिमाण अधिक लिया है।

शेष पाठ शास्त्रानुसार (शा० सं०)

सूचना--क्वाथका जल अधिक रहनेपर शक्कर मिला दी जाये तो अवलेह चिट्ठा पड़ जाता है एवं दाँतोंको लगता रहता है। कितने ही चिकित्सक शक्कर १० सेर मिलाते हैं। इससे शक्करकी मात्रा अधिक बढ़ कर मात्रा व गुणोंमें अन्तर आता है।

आंवलोंको कलई लगी हुई पीतलकी कड़ाहीमें भूनना चाहिये। लोहेकी कड़ाही या खुरपीके स्पर्शसे अवलेहका रङ्ग काला हो जाता है।

भूननेके लिये घृत और तैल दोनों लेनेपर घी शीतल होनेपर मिल जाता है, किन्तु तैल अवलेहके ऊपर निकल जाता है जो सेवन करने वालों को बेचैनी लाता है।

आंवला परिपुष्ट पक्व बननेपर विशेष गुणदायी बनता है। इस अवस्थामें आँवला सुखाते भी हैं। जो आंवले वृक्षपर ही अति कठोर हो जाते हैं उन्हें नहीं लेने चाहिये। जिन आँवलोंका माँसल भाग वृक्षपर ही काष्ठमय बन जाय और जिनमेंसे द्रव पूरा न निकल सके वे आंवले अवलेहके लिये उपयोगी नहीं माने जाते। ताजे आंवलोंके स्थानमें सूखे आंवले यदि लिये जायेगे तो अवलेहका रंग काला होता है और गुण भी न्यून करता है।

क्वाथ द्रव्यके जौकुट चूर्णको १२ से २४ घण्टे पहलेसे जलमें भिगो देना चाहिये। अन्यथा क्वाथ करनेपर पूरा सत्व नहीं निकल सकेगा।

घीमें भूना हुआ बंबूल गोंद ३२ तोले तथा सोया और खसखस ४ ४ तोले भी मिलाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जिनको गुड़ अनुकूल हो वे शक्करके स्थानपर गुडको घीमें पकाकर मिलाते हैं।

गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छमें इस पाकके भीतर मेथी और चास्को (वन कुलथी) भी मिलाते हैं। ये दोनों ओषधियाँ दुग्धवर्द्धक और पौष्टिक हैं। किन्तु कड़वी होनेसे राजस्थान, यू० पी० आदि प्रान्तोंमें प्रायः कोई नहीं मिलाते हैं।

इस अवलेहमें जो शहद मिलाया जाता है वह अधिक द्रव (पतला) न होना चाहिये। यद्यपि आयुर्वेदने शहदको गरम करनेका निषेध किया है, तथापि सारग्राही दृष्टिसे यूनानी मतानुसार शहदको शुद्ध कर लिया जाय तो उसके मिलानेसे अवलेह दूषित होनेका भय नहीं रहता। (किन्तु वह शक्कर रूप बन जाता है। शहदका गुण नहीं दर्शा सकता) जो शहद

अधिक पतला होता है वह अवलेहको बिगाड़ देता है।

मात्रा—१। से २।। तोले, दिनमें २ बार। १० से २० तोले दूधके साथ। उदरमें वायु उत्पन्न हो तो आध घण्टे बाद दूध पीवें।

उपयोग—यह अवलेह उत्तम शक्तिप्रद है। यह पचन संस्थान, श्वसन संस्थान, हृदय, मस्तिष्क, रक्तवाहिनियाँ, वातवाहिनियाँ, मूत्रसंस्थान और प्रजनन संस्थान आदिको शक्ति प्रदान करता है। यह उत्सर्जक इन्द्रियोंको सबल बनाकर आवश्यक शोधन कार्य भी करता है। जिससे शारीरिक सर्व व्यापार सरलतापूर्वक चलने लगता है। यह क्षय, उरःक्षत, शोथ, हृदयरोग, स्वरभंग, निर्बलता, कास, श्वास, प्यास, वातरक्त, नेत्ररोग, मूत्र दोष, वीर्यके दोष तथा वात, पित्त और कफके रोगोंमें हितकर है। बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, क्षतक्षीण, सबके लिये लाभदायक है। बल, वीर्य, मेधा, स्मृति और कांतिको बढ़ाता है। यह किसी भी रोगसे उत्पन्न निर्बलताको दूरकर जीवनीय शक्तिको बहुत जल्दी बढ़ा देता है, इस हेतुसे इस अवलेह को 'जीवन' भी कहते हैं। च्यवनप्राशावलेहका मूलपाठ चरक संहिताका है। उसमें आंवलोंको घृतमें और तैलमें भूननेको लिखा है और शार्ङ्गधर संहिताकारने केवल घृतमें पकानेका विधान किया है। केवल इतना ही दोनोंमें अन्तर है।

यह अवलेह रसायन, उत्तम शक्तिप्रद, कान्तिवर्द्धक, वाजीकर, दीपन-पाचन, पित्तप्रकोप-शामक, सारक, मूत्रजनक, रुचिकर और चर्मरोगनाशक है। यह अवलेह बड़ी आयु वाले नीरोगी मनुष्योंको रसायन गुण दर्शाता है, अर्थात् शारीरिक सब यन्त्रोंकी क्रियाको सुधार तथा दोषको जलाकर कम हुई शक्तिकी फिरसे वृद्धि कराता है। इसकी मात्रा अधिक दी जाय, तो पित्तका स्राव कराता है और सारक गुण दर्शाता है। तथा साथ-साथ उदरमें वायु उत्पन्न करता है। मात्रा अधिक होनेपर शक्ति वृद्धि नहीं कर सकता।

पित्तधातुकी वृद्धि होनेपर उष्णता उत्पन्न होती है, फिर वह कफको पतला बनाना, नासिकामेंसे श्लेष्म स्राव होना अथवा प्रमेह या श्वेतप्रदर की उत्पत्ति होना अथवा मासिकधर्ममें अति रजःस्राव होना आदि विकार उत्पन्न करता है। यह अवलेह उन विकारोंके मूल धातुवैषम्यको दूरकर साम्यावस्था ला देता है।

कोष्ठमें दुष्ट मल संगृहीत होनेपर विविध रोगोंकी सृष्टिका आविर्भाव होता है। रक्तविकार, कुष्ठ, त्वचा शुष्क और काली हो जाना, शिरदर्द, नेत्ररोग, नासारोग, उदरकृमि, अरुचि, अग्निमांद्य, मन्द-मन्द ज्वर रहना, प्रतिश्याय, श्वास, कास, शूल उदरवात, पाण्डु, शोथ आदि अनेक रोगोंका मूल हेतु मलसंग्रह है। इस जीर्ण मलसंग्रहको दूर करनेमें च्यवनप्राशावलेह

उत्तम सहायक होता है।

यदि आँतें अति निर्बल हो जानेसे च्यवनप्राशसे मलावरोध होता हो तो च्यवनप्राश या अन्य सारक द्रव्यका सेवन नहीं कराया जाता। अन्त्रको बलवान बनाने वाली कुचिलाप्रधान औषधि या अजवायनादि वातहर द्रव्यका उपयोग करना चाहिये।

च्यवनप्राश हृद्य है। यह हृदयकी माँसपेशियोंको पुष्ट करता है तथा रक्तको शुद्ध और सबल बनाता है। जिससे उष्णता, रक्तविष या रक्तकी न्यूनतासे बढ़ी हुई हृदयकी गति कम होती है और धड़कन भी मर्यादित होती है। यदि रोगीको गरम-गरम चाय धूम्रपान आदिका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

सूर्यके तापकी उष्णता, गरम-गरम भोजन, गरम-गरम चाय, तमाखू विष (Nicotin) तथा उपदंश आदि रोगोंके कीटाणुओंके विषसे मस्तिष्कमें उष्णता और रक्तदबाववृद्धि रहती हो या मस्तिष्कगत हृदयकेन्द्रके अनुचित प्रकुपित होनेसे हृदयकी गति तेज रहती हो और वातनाड़ियोंकी विकृति हुई हो परिणाममें निद्रानाश, चक्कर आना, निकम्मे-निकम्मे विचार आना, धड़कन, अग्निमांद्य और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी और अकीकभस्मके साथ च्यवनप्राशका सेवन करानेसे ये दूर हो जाते हैं। साथ ही मूल कारणरूप दोषको दूर करना चाहिये।

इस अवलेहके साथ स्थानिक विकृति अनुरूप भस्म या रसादि मिला दिया जाय तो लाभ सत्वर और अधिक मिलता है। यकृत् पित्तस्राव कम हो, तो ताम्रभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और रससिंदूर $\frac{1}{4}$ रत्ती। प्लीहावृद्धि और रक्त की न्यूनतामें ताम्रभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और लोहभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती। फुफ्फुसकी शिथिलतामें अभ्रकभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती। विविध प्रकारके कीटाणु विकारपर रससिंदूर $\frac{1}{4}$ रत्ती। अस्थिसंस्थानकी निर्बलतामें प्रवालपिष्टी १ रत्ती और गोदन्ती भस्म १ रत्ती। राजयक्ष्मामें शक्ति संरक्षणको सुवर्णभस्म $\frac{1}{10}$ रत्ती, अभ्रक भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती, शृङ्गभस्म १ रत्ती और प्रवालपिष्टी ४ रत्ती। हृदयकी निर्बलतापर अकीक भस्म १ रत्ती। हृदय शूलमें शृङ्गभस्म। ज्वर पीछेकी निर्बलतापर सुवर्णमालिनीवसन्त १ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती। मस्तिष्ककी निर्बलतापर बृहद् ब्राह्मीवटी। वातसंस्थानकी निर्बलतापर नवजीवन रस। शुक्रकी उष्णतापर रौप्यभस्म और प्रवालपिष्टी। नाड़ीसंकोच और खिचावपर रौप्यभस्म, शतावरी और अमृतासत्व। शुक्रस्थानकी शिथिलतापर बंगभस्म। गर्भस्थान और बीजाशयकी निर्बलतापर त्रिवंगभस्म। व्रण, भगन्दर विद्रधि आदिपर वंगभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती और जसदभस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती। पित्तजप्रमेहपर जसदभस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती। सुजाकके लीन विषपर

रौप्यभस्म और गोक्षुरादि गूगल मिलाते हैं। इस तरह योजना करनेपर यह अवलेह अनेक कष्टसाध्य जीर्ण रोगोंको दूर कर स्वास्थ्य और बलकी प्राप्ति कराता है। अकालमें वृद्धावस्था, मानसशक्तिका ह्रास और नपुंसकता आनेपर च्यवनप्राशावलेहका कल्प कराना चाहिये। यह कल्प एक वर्ष पर्यन्त चालू रखना चाहिये। रोज सुबह १।-१। तोले तक च्यवनप्राशका सेवन करें। आध घण्टे बाद दुग्ध पान करें। पश्चात् क्षुधा लगनेपर भोजन करें। भोजन सत्वर पचन हो तथा प्रकृतिको अपथ्य न हो ऐसा करें। फिर रात्रिको च्यवनप्राशावलेहका सेवन करें और सोनेके आध घण्टे पहले दूध पीते रहें तो विकार निवृत्त होकर बल, बुद्धि, इन्द्रियोंको शक्ति, अग्नि और आयुकी वृद्धि होती है तथा गई हुई युवावस्थाकी पुनः प्राप्ति होती है और ग्राम्यधर्ममें उत्साह आता है।

सूचना—(१) जिन रोगियोंकी मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, रात्रिको २-४ बार मूत्र त्यागके लिये उठना पड़ता हो, स्वप्नदोष बार-बार होता हो, पचनक्रिया मन्द हो, उदरमें वायु भरी रहती हो जीर्ण मलावरोध रहता हो उन रोगियोंको च्यवनप्राशका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२) जिन रोगियोंको मल अति पतला उतरता हो और मूत्रमें पीलापन बना रहता हो, उन रोगियोंको च्यवनप्राश नहीं देना चाहिये।

(७) गोक्षुरादि अवलेह

विधि—५ सेर गोखरू जड़-सह उखाड़ थोड़ा कूट २० सेर पानीमें पकावें। पानी चौथा हिस्सा रहनेपर उतार मलकर छान लें। फिर चूल्हेपर चढ़ाकर उबालें। शेष जल १। सेर रहनेपर २॥ सेर मिश्री मिला मन्दाग्निपर पाककर अवलेह सिद्ध करें। नीचे उतारनेपर सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, जायफल, अर्जुन वृक्षकी छाल और ककड़ीके बीजका मगज प्रत्येक ८-८ तोले और वंशलोचन ३२ तोले मिला दें। (आ० भि०)

मात्रा—२ से ४ तोले, रोज सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रमेह, पेशाबकी जलन, पेशाबमें रक्त, अश्मरी (पथरी) या रेती जाना और धातुदोष आदि दूर होते हैं। मूत्र रोगके नाशके लिये यह उत्तम औषधि है।

(८) सितोपलादि अवलेह

विधि—शुद्ध सिंगरफ, अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, गिलोय सत्व और लौंग १-१ तोला और सितोपलादि चूर्ण ५ तोलेको खरलमें मिला लें। फिर शहद १० तोले मिलाकर लेह बना लें। (आ० नि० भा०)

मात्रा—१-१ माशा, दिनमें ३ बार। चढाकर ऊपर अडूसेका क्वाथ

पिलावें। या ५-१० मिनट बाद थोड़ा बकरीका दूध पिलावें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे क्षय, खांसी, उरःक्षत, हृदयशूल, ज्वर मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। क्षयके लिये सरल और लाभ दायक औषधि है। इस अवलेहसे क्षय-कीटाणुओंकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध होता है और शक्तिका संरक्षण होता है।

(९) कासकंडनावलेह

विधि—बकरीका मूत्र ५ सेर लेकर मन्दाग्निसे पकावें। रबड़ीके समान गाढ़ा होनेपर नीचे उतारकर छोटी कटेलीके फलोंका चूर्ण और बहेड़ेका चूर्ण ८-८ तोले तथा पीपल और लोहभस्म ४-४ तोले मिलावें। शीतल होनेपर समभाग शहद मिलावें। (वृ० यो० त०)

मात्रा—२ से ४ माशे। निवाये जलके साथ दिनमें २ से ४ बार दें।

उपयोग—यह अवलेह फुफ्फुसोंमें संगृहीत दूषित कफको बाहर निकालनेका कार्य करता है। कास, जिसमें पीला दुर्गन्धमय कफ बार-बार निकलता रहता हो तथा मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, अति निर्बलता, छातीमें भारीपन, उत्साहका अभाव और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत हों, जिन रोगियोंको वैद्योंने त्याग दिया हो तथा जीर्ण कफकास, पथ्यके अपालनसे कुपित हुई कास इनको यह नष्ट करता है। कफको सरलतासे बाहर निकालता रहता है तथा नयी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करता है। क्षय रोगीके लिये भी यह हितकारक प्रयोग है।

जिन रोगियोंके फुफ्फुसोंके वायुकोष्ठोंकी आकुंचन-प्रसारण शक्ति (स्थितिस्थापक गुण) नष्ट हो गई हो तो फिर उसी हेतुसे उनमें कफ भरा रहता हो, थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता हो तथा कफकास, श्वास, मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, अग्निमांद्य, मलावरोध, मूत्रमें पीलापन, आलस्य, तन्द्रा, हाथ पैर टूटना, शक्तिका अभाव भासना, ऋतु परिवर्तन और थोडेसे अपथ्य आदिसे कष्ट बहुत बढ़ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो उन रोगियोंके लिये यह अवलेह कष्ट कम करानेमें सहायक होता है। यदि इस अवलेहके साथ लोहबानपुष्प २-२ रत्ती मिलाते रहें तो कफनिःसरणमें विशेष सुविधा रहती है।

सूचना—(१) फुफ्फुसोंको शीत न लग जाय यह सम्हालें।

(२) दूध अनुकूल हो तो सेवन करें अन्यथा नहीं। किन्तु अवलेह लेनेपर १ घण्टे तक दूध नहीं लेना चाहिये।

(३) दहीका पूर्णरूपसे त्याग करना चाहिये।

(१०) वासावलेह

प्रथम विधि—अडूसेका स्वरस, (यन्त्रसे निकाला हुआ) ६४ तोले और शक्कर १२८ तोले मिलाकर पाक करें। फिर पीपल और घी ८-८ तोले

मिलाकर मन्द अग्निसे पकावें। चाटने योग्य हो तब उतार लेवें। ठण्डा होनेपर ३२ तोले शहद मिला देवें।

वक्तव्य—कितने ही चिकित्सक इस अवलेहमें बहेडे और हल्दीका चूर्ण ४-४ तोले मिलाते है। बहेड़ा व हल्दी मिलानेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला तक, दिनमें २ बार। चटाकर गौ या बकरीका दूध पिलावें।

उपयोग—वासावलेह क्षय, खांसी, रक्तकास, श्वास, पार्श्वशूल, हृदय-शूल, कण्ठके दर्द, तृषा, उरःक्षत, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है।

दूसरी विधि—अडूसेके ताजे पत्ते ४०० तोले लेकर अठगुने पानीमें उबालें। चतुर्थांश पानी शेष रहे तब उतारकर छान लें, फिर हरड़का चूर्ण २५६ तोले और शक्कर ४०० तोले मिलाकर मन्दाग्निपर पाककर अवलेह तैयार करें। नीचे उतार वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ४-४ तोलेका चूर्ण मिलावें। फिर ठण्डा होनेपर शहद ३२ तोले मिला लें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ तोले, दिनमें २ बार। चटाकर दूध पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह रक्तपित्त, कास, श्वास, क्षय, विद्रधि, उदररोग, गुल्म, तृषारोग, पीनस, हृद्रोग, मलावरोध आदिके दोषोंको दूर करता है। बालकोंकी काली खांसीमें भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(११) अष्टांगावलेह

विधि—कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासींगी, धमासा, कालाजीरा, सोंठ, मिर्च और पीपल सब समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर समान शहद मिला लें। इसे 'अवलेहिका' भी कहते हैं। (वृन्द)

मात्रा—४ से ६ माशे, दिनमें ३ बार। चाटकर दूध पीवें। सन्निपात के रोगीके मुंहमें रखकर चूसावें। अधिक कफप्रकोप होनेपर अदरकके रसके साथ दें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे कफज्वर, खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात तथा सन्निपातके रोगीके गलेका रोध, कफ और कास दूर होते हैं। न्यूमोनिया आदि रोगोंमें इसके सेवनसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है।

(१२) कुटजावलेह

विधि—कुड़ेकी छाल ४०० तोलेंको जौकुट कर १०२४ तोले पानीमें डालकर काढ़ा करें। पानी चतुर्थांश शेष रहे तब उतारकर कपड़ेसे छान लेवें। इसमें गुड़ ११० तोले डालकर फिर औटावें। गाढ़ा होनेपर रसौंत,

मोचरस, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लजालू, चीते की छाल, पाढ़, कच्चा बेलफल, इन्द्रजौ, बच, भिलावा, अतीस, बायविडङ्ग, नेत्रबाला इन १८ औषधियोंका ४-४ तोले चूर्ण मिलावें और घी १६ तोले डालें। अवलेह ठण्डा होनेपर शहद १६ तोले मिलावें।

मात्रा—१ से २ तोले, दिनमें ३ बार। बकरीके दूध, मट्ठा, दही, अथवा घीके साथ देवें।

उपयोग—यह अवलेह बवासीर, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पाण्डु-रोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और पेचिश आदि रोगों को दूर करता है। भगन्दरमें हितकर है। मलाश्रित वायु और गुदपाकका भी शमन करता है।

दूसरी विधि—कूडेकी छालको १६ गुने जलमें उबालकर ८वां हिस्सा जल शेष रहनेपर हांडीको उतार क्वाथको वस्त्रसे छान लेवें। फिर पानी को कड़ाहीमें डाल पुनः चूल्हेपर चढ़ाकर गाढ़ा करें। पश्चात् कूड़ेकी छाल का चौथा हिस्सा गुड़ और ८वां हिस्सा अतीसका चूर्ण मिलाकर अवलेह बना लेवें। (च० द०)

मात्रा—आधा-आधा तोला, दिनमें ३ बार चटावें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे अतिसार (आमातिसार, त्रिदोषज अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार), अरुचि, संग्रहणी, पेचिश, अम्लपित्त आदि रोग शमन होते हैं। यह अवलेह अन्त्रप्रदाहको दूर करने और अन्त्र को शक्ति देनेके लिये विशेष प्रयोजित होता है। अग्निमन्द हो तो मात्रा कम देवें।

(१३) गुलाबका गुलकन्द

विधि—मौसमी गुलाबके ताजे फूलोंकी डीटें एवं बीचकी केसर निकाल पंखड़ियोंको अलग-अलग करके उनमें ३ गुनी पिसी हुई मिश्री मिलावें। कलई अथवा काचके तसलेमें थोड़ी पंखड़ियें और थोड़ी मिश्रीको हाथसे मसलकर अमृतबानमें डालते जायँ। प्रथम अमृतबानके नीचे थोड़ी मिश्री की तह बिछावें, उसपर पंखड़ियोंकी मिश्री मिली तह लगावें। फिर केवल मिश्री, ऊपर पंखड़ियां और मिश्री मिली हुई तह रखें। इसी रीतिसे तहों को लगा सबके ऊपर मिश्रीकी तह डालें। फिर अमृतबानका मुंह बन्दकर कपड़मिट्टी करके रख दें। एक मास बाद गुलकन्द तैयार हो जाता है।

मात्रा—१ से २। तोले तक. दूधके साथ लेवें।

उपयोग—गुलकन्द दाह, पित्तदोष और कब्जको दूर करता है तथा मस्तिष्कका शान्ति पहुँचाता है। इससे स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमीका शमन होकर अत्यार्तव (मासिकधर्ममें ज्यादा रक्त जाना) रोग शान्त होता है।

(१४) कूष्माण्डावलेह

विधि—पेठेका स्वरस ४०० तोले, गायका दूध ४०० तोले और आँवलोंका चूर्ण ३२ तोलेको एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्दाग्निसे पकावें। पिण्ड बँधने लगे तब ३२० तोले बूरा मिलाकर अवलेह बना लेवें।

(आ० भि०)

मात्रा—२-२ तोले रोज दो बार। दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह अवलेह रक्तपित्त, अम्लपित्त, दाह, तृषा और कामला रोगको नष्ट करता है, मस्तिष्कको शान्त बनाता है तथा आमाशय-रसकी उग्रताको दमन कर अग्निको प्रदीप्त करता है।

दूसरी विधि—(कूष्माण्ड खण्ड) पक्के पेठेको बारीक कसकर जल निचोड़ लेवें। फिर कसे हुए पेठेको सुखा कलई किये हुए ताँबेके पात्रमें डाल घीमें भूनकर लाल बना लेवें। पश्चात् पेठेके सूखे चूर्णके सम परिमाणमें बादामके मगजको जलमें भिगो, ऊपरसे पतले छिलके निकाल, पीसकर घीमें अलग भून लें। एवं पेठेके समान मावेको घीमें अलग भून लें। तत्पश्चात् जायफल, लौंग, जावित्री, छोटी इलायचीके दाने, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और कमल गट्टेका मगज (भीतरसे हरी पत्ती निकाले हुए), १ सेर पेठेमें २-२ तोलेके हिसाबसे लें। बारीक चूर्णकर पेठा, बादाम, मावा और चूर्ण सबको मिला लें। फिर इन सबके वजनसे दुगुनी शक्करकी चाशनी और १ तोला केशर मिला अवलेह बना लेवें। (आ० भि०)

मात्रा—१ से २ तोलें, दिनमें २ बार। गोदुग्धके साथ लेवें।

उपयोग—यह अवलेह अम्लपित्त, दाह, तृषा, भ्रम, शोष, धातुक्षय और कामला आदि रोगोंको नष्ट करता है तथा अग्निको प्रदीप्त करके शरीरको पुष्ट बनाता है।

(१५) मधुयष्टयाद्यवलेह

प्रथम विधि—मुलहठी, रक्तचन्दन, रसौंत, पीपलकी लाख, लाल कमलके पुष्प, कुशकी जड, वीरण (खस) की जड़, खरैटीकी जड़, अडूसेकी जड़, बेरकी गुठलीकी मींगी, मोथा, मोचरस, बेलगिरी, दारुहल्दी, धायके फूल, अशोककी छाल, मुनक्का, जपाकुसुम (गुड़हर) की कली, कमलके पत्ते, आमकी कोंपल, जामुनकी कोंपल, शतावर, विदारीकन्द, रौप्यभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये २६ चीजें २-२ तोले लें। मिश्री १०४ तोले शतावरका स्वरस ६४ तोले और शहद ८ तोले लें। प्रथम मुलहठीसे लेकर विदारीकन्द तक सब औषधियोंको अलग-अलग कूटकर कपड़ेमें छान लें, तीनों भस्में खरलकर मिला लें। फिर शतावरके स्वरसको कड़ाहीमें डाल कर पकावें, उसमें मिश्री मिलाकर चाशनी करें, फिर भस्म मिश्रित चूर्ण

मिला लें, शीतल होनेपर शहद मिलाकर कांचके बरतनमें रख दें।

(आयुर्वेद संग्रह)

मात्रा—६-६ माशे, दिनमें २ बार। खिलाकर अशोकारिष्ट पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह प्रदर, वेदनायुक्त कुक्षिशूल, दुःसह बस्तिशूल और योनिशूल आदि रोगोंको दूर करता है स्त्रियोंके लिये यह अमृतके सदृश हितकारी है। जीर्ण रक्तपित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श, मूत्ररोग, दाह, वमन, भ्रम (चक्कर आना) आदि इस अवलेहके सेवनसे दूर हो जाते हैं।

द्वितीय विधि—मुलहठी, पीपल, मुनक्का, लाख, काकड़ासींगी और शतावर १-१ तोला, वंशलोचन २ तोले और मिश्री ३२ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। बादमें १६ तोले घृत मिलावें। पश्चात् चाटने लायक हो जाय उतना शहद मिला लें। (वृन्द)

मात्रा—१-१ तोला, दिनमें ३ बार चाटें।

उपयोग—यह अवलेह उरःक्षत कास, दाह और रक्तपित्तका शमन करता है।

(१६) द्राक्षावलेह

विधि १ सेर मुनक्काको जलमें १ घण्टा भिगो मसलकर धो लें। फिर दूध मिला चटनीकी तरह पीसकर कल्क तैयार करें। पश्चात् २० तोले गोघृतमें मन्दाग्निपर भूनें। बादमें २ सेर शक्करकी चाशनी करके मुनक्का मिला देवें। साथमें जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, वंशलोचन, लौंग, दाल चीनी, तेजपात, नागकेशर, छिलके तथा जीभी निकाली हुई कमल गट्टेकी गिरी १।-१। तोलेका बारीक चूर्ण और केशर ३ माशे मिलावें।

(वै. सा सं.)

मात्रा—१से २ तोले, दिनमें २ बार। दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह अवलेह अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, पाण्डु, कामला, क्षय, भ्रम, शोथ, शिरदर्द, बद्धकोष्ठ, अतिसार, अरुचि मन्दाग्नि और रक्तार्शमें जलन इत्यादिको दूर करता है।

(१७) आर्द्रकावलेह

विधि—बारीक कतरे हुए अदरकके टुकड़े १ सेर, पुराना गुड़ १ सेर और घृत ४० तोले लें। पहले अदरकके टुकड़ोंको घीमें लाल होने तक भूनें पश्चात् गुड़को थोड़े जलमें पाक करें। फिर अदरकके टुकड़ोंको मिला लें। पश्चात् दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल हरड़ बहेड़ा, आंवला लोंग बहेड़ा (दूसरी बार) भारंगमूल, अडूसेके पत्ते, चिरायता, पुष्कर मूल, देवदारू, असगन्ध, जायफल, जावित्री, अगर, कत्था, मुनक्का ये २३ औषधियाँ १-१ तोला और लोहभस्म २ तोले मिलाकर अवलेह सिद्ध करें। (आ० भि०)

यह प्रयोग पाकावली (उपाध्याय माधव) का है। मूलग्रन्थमें अदरक ६४ तोलेमें घी १६ तोले ३२ औषधियाँ ४-४ तोले और लोहभस्म ८ तोले लिखी है। आर्यभिषक्कारने समयानुसार प्रक्षेप वाली औषधियोंकी मात्रा कम की है एवं उग्रता दमनार्थ घृतकी मात्रा बढा दी है।

मात्रा—१-१ तोला, दिनमें २ बार।

उपयोग—यह अवलेह कफयुक्त कास श्वास धातुक्षय, शोष, कफप्रकोप मन्दाग्नि, उदररोग, आमवृद्धि, हृदयरोग, रक्तदोष और क्षयमें लाभ करके अग्निको प्रदीप्त करता है। तथा कांति, बल और शुक्रकी वृद्धि करके शरीर को पुष्ट बनाता है।

(१८) एरंड पाक

विधि—१ सेर अरंडीके अन्तर्जिह्वा निकाले हुए मगजको पीस, ४ सेर गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें। पश्चात् ४० तोले घृत मिलाकर भूनें। फिर २। सेर शक्करकी चाशनीकर मावेको मिला दें और सोंठ, कालीमिर्च पीपल दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य-गिलोय सत्व शठी, अजवायन, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, असगन्ध खरेंटी के बीज, पाठा, झाऊबेर, बायविडङ्ग गोखरू कूड़ेकी छाल, देवदारु, वृद्ध दारु विदारीकन्द सब १-१ तोलेका कपड़छन चूर्ण मिलाकर लड्डू बना लें।

(आ० भि०)

मात्रा—४ से ८ तोले। सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवें।

उपयोग—यह पाक वातव्याधि, शूल; शोथ अण्डवृद्धि उदररोग बद्ध-कोष्ठ, अफारा, गुल्म, आमवात, कटिग्रह हिक्का, श्वास, कास, पक्षाघात, पांगुल्य, अर्दित, वातरोग, अश्मरी और अर्शरोग आदिको दूरकर बल, वीर्य और कांतिकी वृद्धि करता है तथा अग्निको प्रदीप्त करता है।

(१९) बादाम पाक

प्रथम विधि—बादामका मगज ४० तोले, मावा २० तोले, बिहीदाना ४॥ तोले, लौंग, जायफल, जावित्री, केशर वंशलोचन ये सब ६-६ माशे, कमलगट्टोंकी मींगी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर १-१ तोला, अभ्रकभस्म बङ्गभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ६-६ माशे और प्रवाल पिष्टी ३ माशे लें। पहिले बादामके कल्कको ३० तोले घीमें भूनें। फिर मावे को १० तोले घीमें भूनकर मिला लेवें। पश्चात् २॥ सेर शक्करकी चाशनी कर उसमें केशर और पाक मिलावें। फिर काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्ण और उसमें भस्म मिलाकर ४-४ तोलेके लड्डू बाँधें। (वै० सा० सं०)

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके साथ लिखे हैं।

द्वितीय विधि—बादामका मगज १ सेरको जलमें भिगो, छिलका निकाल कर कल्क करें। पश्चात् ४ गुने गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें। फिर १ सेर

घी मिलाकर भूनें। पश्चात् ४ सेर मिश्री की चाशनी कर १ तोला केशर और मावेको मिला दें तथा जावित्री, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, विदारीकन्द सबको १-१ तोला ले कूट कपड़छन चूर्ण करके मिला दें। एवं रससिंदूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और वङ्गभस्म १-१ तोला मिलावें।

मात्रा—२ से ४ तोले। खाकर ऊपर २० तोले गोदुग्ध पीवें।

उपयोग—बादामका पाक मस्तिष्क और हृदयको लाभदायक है। मानसिक श्रम और वृद्धावस्थाकी निर्बलता, वातवृद्धि और शुक्रक्षय आदि को दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है। बल, वीर्य, स्मृति, आयु और कान्तिको बढ़ाता है।

(२०) सालमपाक

विधि—पञ्जासालम ४० तोले, पिस्ता २० तोले, बादाम २० तोले, चिरौंजी ९ तोले, अखरोट १ तोला, सफेद मूसली ९ तोले, गोखरू ४ तोले, असगन्ध, तालमखाना, शतावर, रूमीमस्तंगी, कौंच बीज २-२ तोले केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, शीतल मिर्च, वंशलोचन, दालचीनी और बिही-दाना १-१ तोला, मिश्री १२८ तोले और घी ४० तोले लें। पहिले सालम के बारीक चूर्णको २०-२० तोले घीमें भून लें। पश्चात् पिस्ता, बादाम, चिरौंजी और अखरोटके कल्कको २० तोले घीमें भूनें। फिर मिश्रीकी चाशनीकर केशर, सालम मिश्रित भूने हुए चूर्णको मिलावें। अन्तमें शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिलाकर ४-४ तोलेके लड्डू बांधें।

सूचना—सालमको मन्दाग्निपर भूनें। जल न जाय यह सम्हालें, साव-धान रहकर हिलाते रहें अन्यथा पाकमें जली दुर्गन्ध आयगी।

मात्रा—१ से २ लड्डू खाकर ऊपर २० तोले दूध पीवें।

उपयोग—यह पाक वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है। अण्डकोषकी नसोंके दोषसे वीर्यका पतलापन, शारीरिक निर्बलता, मस्तिष्ककी निर्बलता, अधिक निद्रा, आलस्य और मन्दाग्नि आदि दोषोंको दूर करता है।

क्षीण शुक्र वालोंके लिए यदि भस्म मिलानी हो तो रससिंदूर १ तोला, सुवर्णभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोले और वङ्गभस्म २ तोलें मिला लेनेसे पाक विशेष लाभदायक बनता है। भस्म मिलानेपर पाककी मात्रा कम लेनी चाहिये। शीतकालमें सेवन करनेसे विशेष लाभ पहुँचाता है।

(२१) मदनमोदक

विधि—सुवर्ण सिन्दूर (पूर्णचन्द्रोदय रस अथवा षड्गुण जारित रस-सिन्दूर), लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वङ्गभस्म, जलवेंतके बीज, चोबचीनी, सेमलका कन्द धामनकी छाल, केशर, जीरा, जायफल, लौंग, समुद्रशोष, सोंठ, मिर्च, पीपल और वंशलोचन ये १७ औषधियाँ ६-६ माशे तथा

जाविश्री, शतावरी, मुनक्का, खरैटीकी जड़, काकड़ासींगी, छोटी इलायची के बीज, कौंचके बीज, मीठा कूठ, नागरमोथा, बिदारीकन्द, पेठा, नागकेशर, जटामांसी, शुद्ध कपूर, शीतल चीनी और गोखरू ये १६ औषधियां २-२ तोले लें। सबसे आधी (२०। तोले) भुनी भांग और सबसे दूनी (१२१।। तोले) मिश्री लें। मिश्रीकी चाशनी लेकर क्रमशः सब औषधियों के कपड़छन चूर्णको मिला ३-३ माशेकी गोलियां बना लें। (र. यो. सा.)

मात्रा—१ से २ गोली, सुबह-शाम। मिश्री मिले निवाये दूधके साथ सेवन करें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग—इस मोदकके सेवनसे नष्टेन्द्रिय, नष्ट शुक्र और वलीपलित व्याप्त जर्जरित वृद्ध भी युवाके समान बनते हैं और ग्रहणी, श्वास, कास, अर्श, प्रमेह, मधुमेह दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी बनता है। यह मोदक परम रसायन है।

(२२) भल्लातक पाक

विधि—अच्छे पक्के भिलावे (जो जलमें डालनेसे डूब जायँ) १२८ तोले लेकर २-२ टुकड़े करें। फिर १०२४ तोले दूधमें मिलाकर मन्दाग्नि से पचन करें। खोवा बन जानेपर भिलावेको निकाल डालें। पश्चात् खोवे मे १२८ तोले घृत मिलाकर पकावें। बादमें उसके साथ शक्कर २५६ तोलेकी चाशनी तथा त्रिफला १२ तोले, नागरमोथा, मजीठ, धनियां, जीरा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायचीके दाने, हाऊबेर, मुलहठी, तेजपात, लौंग, नागकेशर, जायफल, शीतलमिर्च, बिदारीकन्द, कमल, वंशलोचन, लोहभस्म, ताम्रभस्म, भीमसेनी कपूर और कत्था इन २२ औषधियोंके १।।-१।। तोले चूर्णको मिलाकर पाक बना लें।

(र० यो० सा०)

सूचना—(१) पाकके समय जो बाष्प निकलती है, उससे बचना चाहिये। अन्यथा शोथ हो जानेका भय रहता है।

(२) इस पाकमें भिलावे जो निकाल दिये है. उनको भी चटनीकी तरह पीस घीमें भूनकर पाक बना लें, तो वे भी अच्छा काम देते हैं।

(३) भिलावोंके टुकड़े करते समय हाथोंको भिलावेका तैल न लगने दें। कदाच लग जाय तो, तुरन्त घी या तैल लगा देना चाहिये।

मात्रा—१ से २ तोले, दिनमें दो बार सेवन करें।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे रक्तपित्त, कुष्ठ, दाद, पामा, विचर्चिका, वातरक्त, शून्यवात, वंशपरम्परागत व्याधियां और वातरोग नष्ट होते हैं। गलित्कुष्ठमें भी इस पाकके सेवनसे रोगका बढ़ना रुक जाता है। पक्षाघात में अच्छा लाभ पहुँचता है। अस्थिभग्न एवं मूढ़मारमें भी लाभ करता है।

सूचना—यह पाक पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको एवं ग्रीष्म ऋतुमें नहीं लेना चाहिये।

इस पाकके सेवनकालमें गरम-गरम भोजन, अधिक गरम जलसे स्नान, सूर्यके तापमें भ्रमण और अग्निसेवन निषिद्ध हैं।

इस पाकके सेवनसे कदाच खुजली हो जाय तो पाक बन्द करें और नारियलके तैलकी मालिश करें तथा भोजनमें बादाम, पिस्ता, काजू, नारियलकी गिरी, चिरौंजी आदि तैलीय फलोका सेवन करें।

(२३) विजयापुष्पाद्यवलेह

विधि—शुद्ध गांजा १४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, अकरकरा और केशर २-२ तोले तथा बादामकी गिरी ४ तोले लें। सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर १ सेर मिश्रीकी अवलेह लायक चाशनी कर चूर्ण मिलावें फिर कस्तुरी और अम्बर ६-६ माशे डालें।

गाँजेकी शुद्धि—गांजेमेंसे शाखा और बीजोंको निकालकर केवल दल-पत्र लें। उसे जलमें १ घण्टे भिगो देवें। फिर मलकर जल निकाल डालें तथा बार-बार जल डाल-डाल कर हरा जल निकले तब तक धोवें। पश्चात् छायामें सुखा देवें।

मात्रा—१ से ३ माशे। प्रातःकाल या रात्रिको चाटकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे थोडे ही दिनोंमें शरीरमें स्फूर्त्ति आती हैं; शान्त निद्रा मिलने लगती है; मन प्रफुल्लित बनता है; पचन शक्ति सबल होती है तथा शरीर पुष्ट बनता है। शीघ्र पतन, उदासीनता; स्मृतिह्रास आदि दूर होते हैं। जिन स्त्रियोंको हिस्टीरियाका दौरा होता है उनके लिए यह अवलेह हितावह है।

यदि केवल शुद्ध गांजेके साथ समभाग गुड़ मिला मटरके समान गोली बनाकर हिक्काके रोगीको दी जाय तो हिक्का शांत होती है। आवश्यकता पर आध या एक घण्टेपर दूसरी बार गोली दी जाती है। इस गोलीसे कुछ नशा आता है।

(२४) दवाउल मुश्क

विधि—नरकचूर, दरूनज अकरबी, मोतीपिष्टी, कहरवापिष्टी, प्रवाल-पिष्टी प्रत्येक ३५-३५ माशे, आबरेशम, बहमन सफेद, बहमनलाल, जटामांसी इलायची १७॥-१७॥ माशे, पत्थर फूल (छरीला), पीपल और सोंठ १४-१४ माशे तथा कस्तूरी ७ माशे लें। सबको कपड़छान करके मिला लें। पश्चात् चाटने योग्य तैयार हो सके उतना शहद मिलाकर माजून बना लें।

आबरेशमको कैंचीसे काटर कृमिको निकाल देनेके पश्चात् बारीक टुकड़े करके प्रयोगमें मिलाना चाहिये।

वक्तव्य---हमने दवाउल मुश्क विशेष बनानेका प्रारम्भ किया है। जिसमें कस्तूरी पाठकी अपेक्षा ४ गुनी तथा कस्तूरीसे आधा अम्बर मिलाते हैं। इस विशेष प्रकारकी मात्रा ४ रत्ती है।

मात्रा—१ से ३ माशे, दिनमें २ बार। चाटकर दूध पीवें। मस्तिष्क शामक असर पहुँचानेके लिए सुवर्ण भस्म ¼ रत्ती, मुक्तापिष्टी ½ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती मिला लेनेपर तत्काल लाभ मिलता है।

उपयोग—यह दवाउल मुश्क यूनानीका प्रसिद्ध और सफल योग है। यह मस्तिष्क शामक है। इससे मुख्य औषधि कस्तूरी है। मोती, अम्बर, केशर आदि गुणवर्द्धक सहायक द्रव्य हैं। शेष गौण द्रव्य भी गुण-वृद्धि और उपद्रवके शमनार्थ मिलाये गये हैं। यह औषधि यकृत्, हृदय और मस्तिष्कको शक्ति प्रदान करती है तथा उदरस्थ दोषको निवृत्त भी कराती है। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क शान्ति और कामोत्तेजनाके लिए सेवन करने वालोंको गुण भी दर्शाती है।

वातप्रधान प्रलापयुक्त सन्निपात, श्वासावरोध, हृदय एवं नाड़ी गति मांद्य, उन्माद, उदरस्थ वायु (गेस) का मस्तिष्कमें पहुँचकर विविध विकारोंकी प्राप्ति होना, तथा निद्रानाश इनपर यह दवाउल मुश्क हितावह है। यदि रोगी मलावरोधसे पीड़ित हो तो पहले उसका उपचार कर लेना चाहिए। फिर बादाम तैलका सेवन कराते रहना चाहिए।

राजयक्ष्माकी प्रारम्भिक अवस्थामें सुवर्ण, अभ्रक, शृङ्ग भस्म प्रधान औषधि सेवनके साथ इस औषधिका सेवन कराया जाय तो शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

कई सगर्भा स्त्रियाँ कृश और निर्बल होती हैं। वे कई बार विविध रोगोंकी शिकार हो जाती है। राजयक्ष्मा, मलावरोध, ज्वर, वातविकार, शक्ति ह्रास आदि रोग उपस्थित होते हैं। कईयोंको गर्भपात हो जाता है। उन स्त्रियोंको ६ मास हो जानेपर आवश्यकता हो तो इस औषधिका सेवन कम मात्रामें कराया जाता है। परिणाममें गर्भ और गर्भिणी दोनोंको पोषण मिल जाता है और यथा समय स्वस्थ संतानका जन्म होता है। एवं इस शिशुको वातविकार, धनुर्वात आदि नहीं होता तथा क्वचित् कोई रोग हो जाय तो उससे उसकी रोग निरोधक शक्ति रोगोंको सत्वर दूर कर देती है।

दवाउल मुश्क उत्तम हृद्य है। वातप्रकोपजशूल, हृदयशूल (Angina pectoris), उदरशूल (Angina abdominis), हिस्टीरिया या अपचन जन्य हृदयशूल (Angina false) और फुफ्फुसावरण शूल आदि एवं

स्वरयन्त्र प्रदाह, शीत लग जाना, वाताक्षेप, हृदयमें भारीपन और मानसिक व्याकुलता आदि विकारोंको यह दूर करता है।

जिह्वालोलुप व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन मिलनेपर बार-बार अत्यधिक परिमाणमें खा लेते हैं, उनका आमाशय शिथिल और प्रसारित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गरम-गरम पेय, फिरङ्ग विष, उदरकृमि आदि कारणों से भी ऐसा हो जाता है। उनकी चिकित्सा तुरन्त न करनेपर उदावर्त (गेस बनने) की संप्राप्ति होती है। आमाशय रिक्त होनेपर बार-बार गेस उठता रहता है। ऐसी अवस्थामें भी यदि अपथ्य सेवन होता रहे और कब्ज होने पर विरेचन लेते रहे, तो अन्त्र भी वायुसे भर जाती है, हृदयमें भारीपन आ जाता है और अति व्याकुलता होती है। ऐसे रोगियोंको दवाउल मुश्क देनेपर शान्ति मिल जाती है। इस औषधिमें मूलरोगको दूर करनेकी शक्ति न होनेपर भी लक्षणोंका तुरन्त दमन हो जाता है।

गेस उठनेपर अनेकोंके मस्तिष्क, नेत्र और हृदयको हानि पहुँचती रहती है। अतः उनको अनुपान रूपसे वातपित्त शमनार्थं वैद्यजीवनोक्त पञ्चमूलादि कषाय अथवा वातशमनार्थं रास्नापञ्चक क्वाथ दिया जाता है।

मुद्दतीज्वर, आशुकारी अतिसार, संग्रहणी, राजयक्ष्मा, चोट लग जाना और मानसिक आघात आदि कारणोंसे शक्तिपात होनेपर सहायक औषधि रूपसे दवाउल मुश्क देनेसे हृदय उत्तेजित होकर बलवृद्धि और जीवनकी रक्षा हो जाती है।

कई सज्जन शारीरिक और मानसिक शक्तिके संरक्षणार्थं इस औषधि का प्रतिदिन प्रातःकाल एक बार सेवन करते रहते हैं। उनका स्वास्थ्य दीर्घकाल तक ठीक बना रहता है वे शारीरिक रोगके शिकार प्रायः नहीं होते।

सूचना—कई धनिक इस औषधिमें सुवर्ण भस्म, माणिक्य पिष्टी, रौप्य-भस्म गुण-वृद्धिके लिए मिलाते हैं, ऐसे योगको दवाउल मुश्क (जवाहर वाला) संज्ञा दी जाती है।

(२५) माजून नुकरा

विधि—कस्तूरी, मोती पिष्टी, माणिक्य पिष्टी, पन्नापिष्टी, स्वर्ण वर्क, अम्बर ये ६ वस्तुएँ ४।।-४।। माशे, संगेयशब पिष्टी, कहरवा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी और जहरमोहरा पिष्टी ६-६ माशे, वंशलोचन १ तोला, बालछड़ ६ माशा, आबरेशम कूटा हुआ १ तोला लें। इन सबको अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्कमें घोटें, फिर अर्क सेव और अर्क अनार १०-१० तोले, अर्क केवड़ा, अर्क गावजवां, अर्क वेदमुश्क २०-२० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर चाशनी करें। चाशनीमें वर्क चांदी ४ तोला मिलाकर खूब घोटें, फिर

उपरोक्त औषधियाँ मिलाकर एक जीव करें, जिससे वर्क चांदी और दवाइयाँ चाशनीमें एक रूप हो सकें। (राजवैद्य पं० रमेशचन्द्रजी)

मात्रा—१ से २ माशे तक।

उपयोग—यह यूनानी योग बड़ा सौम्य हृद्य, वातनाड़ियोंके दौर्बल्य तथा विकारोंको दूर करने वाला है। वर्क चांदी मिले होनेसे पित्तको नहीं बढ़ाता है, रक्त चापाधिक्यसे उत्पन्न उपद्रवोंमें दुर्बलता मिटानेके लिए, मस्तिष्कगत कफ, आम, विषका शोधन करनेके लिए सर्वोत्तम योग है। किसी भी कारण से उत्पन्न दिलकी घबराहटको दूर करके शांति व बलप्रदान करता है। जब ऊष्मा बढ़नेके डरसे जहाँ दवाउलमुश्क नहीं दी जा सके, तब इस योगको निर्भय होकर दिया जा सकता है। यह यूनानीका बड़ा सुन्दर योग है।

सूचना—अम्बरको प्रथम थोड़ी मिश्रीमें पीसकर मिलाना चाहिए।

(२६) माजून हिजरलयहूद

विधि—कद्दू, ककड़ी, खीरे और खरबूजेके बीजोंका मगज और काकनुज ५-५ माशे और हिजरलयहूद ५० माशे लें। सबको कूट कपड़छनकर खरल में बारीक करें। फिर चाटने लायक शहद मिलाकर माजून बनालें।(ति.अ.)

मात्रा—१ से २ माशे। सुबह जलके अथवा गोखरूके क्वाथ या चनेके क्वाथके साथ दें।

उपयोग—यह माजून मूत्राशयकी शर्करा (कंकड़ी) को निकालनेमें उपयोगी है। अश्मरीको तोड़-तोड़कर निकाल देती है।

(२७) माजून फिलासफा

विधि—सोंठ, कालीमिर्च पीपल दालचीनी, आँवला, बहेड़ा, चित्रकमूलकी छाल, झरबंद, मद्देहर्ज, पंजा सालब. मगज चिलगोजा, बेखबाबूना (बाबूनाका मूल) और जटामांसी ये १२ औषधियाँ ६-६ माशे. बाबूनाके बीज १५ माशे, मुनक्का बीज निकाली हुई ३ तोले लें। मुनक्काके अतिरिक्त अन्य औषधियोंका कपड़छन चूर्ण करें। चूर्णसे दूना शहद और मुनक्काका कल्क मिलाकर बोतलमें भर लें। (घ० वै०)

मात्रा—६ माशेसे २ तोले। दिनमें २ बार अर्क मकोय या अर्क सौंफके साथ दें।

उपयोग—यह माजून अग्निको प्रदीप्त करती है, वीर्यवृद्धि करती है, एवं स्मरण-शक्तिको बढ़ाती है। ज्यादा मूत्र होता हो उसे कम करती है। कमरकी पीड़ा, कफवृद्धि, वृक्क स्थानका शूल और सन्धिवातको दूर करती है। बहुमूत्र मूत्रातिसार, सोमरोग और मधुमेहमें भी हितकर है।

(२८) माजून चोबचीनी

विधि—चोबचीनी २० तोले, असगन्ध १० तोले और मीठी सुरंजान ५

तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। बादमें ४ सेर शक्करकी अवलेहके समान चाशनी बना चूर्ण मिलाकर माजून बना लें।

मात्रा—१ से २ तोले, दिनमें २ बार। दूधके साथ दें।

उपयोग—इस माजूनके सेवनसे उपदश और सुजाकसे होनेवाला रक्त-विकार, संधिवात और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं।

(२९) माजून उशबा

पहली विधि—उशबा मगरबी, बिसफाईज कस्तकी (Polypodiam Vulgare) अफ़तीमून विलायती, गाऊजुबान, कबावचीनी, दालचीनी ये ६ औषधियाँ २-२ तोले, गुलाबके फूल; चोबचीनी; सफेद चन्दन चूर्ण और लाल चन्दन ये ४ औषधियां ३-३ तोले, सनाय ४ तोले; हरड़; बालछड़ १-१ तोला हरड़ ६ माशे, बहेड़ा ७ माशा सबको कूटकर वस्त्रछान चूर्ण कर लेवें। फिर शक्कर ६० तोले, शहद ४० तोले इनका यथा विधि पाककर चूर्ण मिलाकर माजून बना लेवें।

मात्रा—आध तोले से १ तोले तक। रात्रिको या प्रातः काल सेवन करें। अनुकूल होतो ऊपर गोदुग्धका सेवन करें।

उपयोग—यह माजून विशेषतः जीर्ण लीन विषको जलाने और स्वेद-द्वारा विषको बाहर निकालनेके लिए प्रयोजित होती है। इसके सेवनसे प्रकृति भेदसे एकाध दस्त अधिक आता है। जीर्ण फिरङ्ग, जीर्ण सुजाक, नाड़ीव्रण, विस्फोटक आदिके लीन विषसे उत्पन्न रक्तविकार, चर्मरोग, कण्डू अर्श और संधिस्थानोंकी वेदना आदिको दूर करती है। इसके अतिरिक्त अर्बुद (कॅसर और ट्यूमर) अन्तर्विद्रधि, कोथ जनित लीन विषको जलाने में उपयोगी है।

द्वितीय विधि (दस्तावर)—उशवा मगरबी (असली) १ तोला, बिसफाईज ३ तोला, अफतीमून विलायती ३ तोला, गुलाबके फूल ३ तोला, वंशलोचन १½ तोला, चोबचीनी नयी ६ तोला, सुरंजान शीरी (मीठी) ३ तोला चन्दन सफेद चूरा ३ तोला, सनायके पत्ते १२ तोला रेवन्दचीनी १½ तोला शहद १३२ तोला, बादाम रोगन ७½ तोला इनमेंसे काष्ठादि दवाओंको कूटकर कपड़छन चूर्णकर लेवें। शहद १३२ तोलेमें १० तोला अर्क गुलाब डालकर १-२ उफान ले लेवें, फिर उसे छान लेवें, अगर ठण्डा हो जाय तो फिर आधा उफान ले लेवें, नीचे उतारकर बादाम रोगन मिलावें. फिर ठण्डा होनेपर कपड़छन चूर्ण थोड़ा-थोड़ा करके मिलावें। अच्छी तरहसे घोट लेवें ताकि दवा और शहद एक रूप हो जाय।

(श्री वैद्यराज रमेशचन्द्र जी व्यास)

मात्रा—६ माशेसे १½ तोला तक। रात्रिको या प्रातःकाल दिनमें १ बार।

उपयोग—यह माजून उत्तम रक्तशोधक है, उतानविष और रक्तादि-

धातुओंमें लीनविष दोनोंको नष्ट करता है। पचनसंस्थानसे अवयव मसूड़े, मुख ग्रसनिका, आमाशय नलिका, आमाशय, यकृत् और लघु-बृहद् अन्त्र इन सबमेंसे किसीके भी भीतर क्षत, विद्रधि, अर्बुद (केन्सर अथवा ट्यूमर) आदि विकारोंमेंसे कोई हो रहा हो या हुआ हो और विष उत्पन्न होता रहता हो तो उसपर भी इस माजूनका प्रभाव पहुँचता रहता है। इसी तरह फुफ्फुस गर्भाशय, मस्तिष्क आदिमें भी उक्त विकार हो तो उनसे उत्पन्न विष का भी दमन होता है। जब तक मूल हेतु दूर न होगा तब तक रोग तो दूर न हो सकेगा किन्तु विषोत्पत्ति व वृद्धिका दमन यह अवश्य करती है।

पचनसंस्थानमें आमविष, कृमि, पूय, मल आदि कुल संगृहीत हुये हों तो उस उत्तानविषको रोज एक दो दस्त लगाकर बाहर फेंकती रहती है, साथ साथ रक्त मांसादि धातुओंके भीतर जो विष लीन हो गया हो उसे जलाती है एवं स्वेदद्वारा बाहर भी निकालती रहती है। इस तरह उत्तान व लीन दोनों प्रकारके विषोंको कुछ दिनोंमें नष्ट करके देहको पूर्ववत् स्वस्थ बना देती है।

विषोंके अनेक प्रकार हैं, प्राणिज, वनौषधज विष, खनिज विष ये सामान्यत: अधिक आपत्तिकर होते हैं, तथापि उन लीन विषोंको भी यह नष्टकर देती हैं।

बासी भोजन जनित विकृति, भोजनकी संयोगजविकृति तथा ताम्रादि पात्रोंके भीतर रखे हुये दुग्धादि पदार्थोंके समान, दूषित पात्रोंके संयोगसे भोजनमें विकृति हुई हो तो उसे भी यह माजून दूर करती है।

क्वचित् दूषित औषधियाँ (कच्ची ताम्र, नागभस्म, पारद विष आदि आदि) के सेवनसे विषप्रकोप हुआ हो तो उसे भी शमन करनेके लिये यह माजून अत्यन्त उपकारक है।

संक्षेपमें यह कहना पड़ेगा कि जिन मनुष्योंको अतिसार, प्रवाहिका संग्रहणी रोग भूतकालमें न हुये हों और इस दस्तावर माजूनके सेवनमें समर्थ हों उन व्यक्तियोंके लिये यह अत्यन्त हितावह है।

(३०) माजून कचूर

विधि — कचूर, दरूनज, जायफल, लौंग, अकाकिया, अजवायन, अजमोद और सोंठ १-१ तोला सिरकेमें भिगोया हुआ जीरा २॥ तोले और जुन्दे बेदस्तर ३ माशे लें। पहले जुन्दे बेदस्तरको ४ तोले शहदमें मिला लें, पश्चात् शेष औषधियोंका कपड़छन चूर्ण और ९ तोले शहद मिलाकर माजून बना लेवें। (ति० अ०)

मात्रा—२ से ३ माशे निवाये जल या अशोकारिष्टके साथ दें।

उपयोग—यह माजून गर्भाशयमें उत्पन्न वायु, मासिक धर्ममें रक्तकी गाँठ और काले रङ्गका रक्त (शूल और आवाजसहित) गिरना, कमर और

शिरमें दर्द रहना आदिको दूर करती है।

(३१) खमीरा गाऊजुबान [सादा]

विधि— गाऊजुबान ३ तोला, गाऊजुवान पुष्प, धनियां, अपक्व आबरेशम कैंचीसे कतरा हुआ, चन्दन सफेद, वादरंज वोया, उस्तेखद्दूस, बालंगा बीज, तुख्म फरंजेमुश्क, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, ये १२ औषधियां १-१ तोला मिश्री या कन्द २ सेर, शुद्ध मधु एक पाव सब औषधियोंको रात्रिको २ सेर पानीमें भिगो देवें, प्रातः क्वाथ करें। तीसरा भाग जल शेष रहनेपर हाथसे मलकर कपडेमें छान लेवें। क्वाथ जलमें मिश्रीकी चाशनी शर्वतसे कुछ गाढ़ी लेवें। इसके बाद मधु मिलावें। मधु मिलानेके बाद दो तीन उफान चाशनीमें और आजावे तब नीचे उतार लेवें। फिर कूंडी या कड़ाहीमें सोटेसे खूब घोटें। यहां तक घोटें कि खमीरा गाऊजुबानका रंग बिलकुल सफेद हो जावे। अनेक स्थानों में इसकी घुटाई मशीनसे की जाती है।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक। सुबह शाम सेवन करें।

उपयोग—यह खमीरा हृदय और मगजको पुष्ट तथा वातवाहिनियोंको दृढ़ बनाता है स्मरण शक्ति बढ़ाता है अग्नि प्रदीप्त करता है, तथा उदरशुद्धिमें भी सहायता पहुँचाता है।

नोट—हम उपरोक्त योगमें विशेष रूपसे ६ माशे केशर और मिलाते हैं।

(३२) खमीरा गाऊजुबान (अम्बरी)

वक्तव्य—खमीरा गाऊजुबान सादेमें घोटते समय अम्बर सह ३ माशे, चांदी वर्क ६ माशे (आवश्यकतानुसार वंशलोचनमें खरलकर) मिश्रित करें। तो यह खमीरागाऊजुबान (अम्बरी) हो जाता है।

मात्रा—३-३ माशे, दिनमें दो समय, दूधके साथ।

उपयोग—यह खमीरा हृदय, मस्तिष्क और पचन संस्थानको बल देता है। जब मगज या हृदय अपना कार्य योग्य व्यवस्थित नहीं कर सकते है तब यह खमीरा दिया जाता है। यह बहुधा निर्भय है। सब प्रकृति वालोंको अनुकूल रहता है एवं स्वादु और श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवनसे नेत्र-दृष्टि और स्मरण शक्तिमें भी वृद्धि होती है।

(३३) खमीरा गाऊजुबान अम्बरी [जवाहरवाला]

वक्तव्य—खमीरा गाऊजुबान अम्बरीमें स्वर्ण वर्क ६ माशे तथा मुक्ता, याकूत (माणिक्य), जमुर्रद (पन्ना) तथा जहरमोहरा इनकी पिष्टियां ४।-४।। माशे खरल कर मिश्रित करें। तब खमीरा गाऊजुबान अम्बरी जवाहर बाला बन जाता है।

मात्रा—१।। माशेसे ३ माशे तक, दिनमें दो बार। दूधके साथ।

उपयोग—मस्तिष्क, हृदय और शरीरको दृढ़ बनाता है। विशेषतः

वातपोड़ितोंके लिए श्रेष्ठ है। अर्दित, अर्धाङ्ग, वातकम्प, अपस्मार, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) और बालग्रह अत्युपयोगी है।

(३४) खमीरा आबरेशम स्वर्णमुक्ता युक्त

विधि—आबरेशम कतरा हुआ ९ तोले, गुले गाऊजुबान ९ तोले गाऊजुबान पत्ते और सूखा धनियां नया १॥-१॥ तोले लेकर जोकुट करें। फिर चीनी मिट्टी या कलईदार बर्तनमें रात्रिको अर्क केवड़ा अर्क वेदमुश्क और अर्क गाऊजुबान २०-२० तोलेको भिगोवें। सुबह उबाल, आधा जल जलाकर छान लेवें, पश्चात् तुरंजबीन १० तोले और शीरखिस्त ७ तोलेको गुलाबजल ३० तोलेमें मिला १ उबाल देकर छान लेवें। इसमेंसे बत्ती बनाकर जल नितार लेवें। या कुछ समय रख जलको नितार लेवें। इस जलको ऊपर वाले उबालकर छाने हुये जलमें पुनः डालकर चाशनी करें। चाशनी होनेमें आवे, तब मुरब्बेकी हरड़ चटनीकी तरह पिसी हुई १० तोले मिलाकर जोश देकर नीचे उतार लेवें। फिर सफेद चन्दनका चूर्ण १ तोला, फिरंजमुश्क, काली अगर औरसफेद बहमन ६-६ माशे, बहमन लाल और वंशलोचन ३ ३ माशे तथा कपूर १॥ माशा मिलावें एवं मोतीपिष्टी, सोनेके वर्क१॥-१॥ माशे कहरवा पिष्टी और जहरमोहरा खताई पिष्टी ३-३ माशे, प्रवाल पिष्टी और चांदीके वर्क ६-६ माशेको पृथक् घोट एक जीवकर खमीरा में अच्छी तरह मिला लेवें (स्व० राजवैद्य रामचन्द्रजी द्वारा परिवर्द्धित)

यूनानी वाले चन्दन चूर्ण, फिरजे मुश्क, अगर और बहमनको क्वाथ द्रव्यके साथ मिला देते हैं। एवं धनियाके स्थानपर धनिया मग्ज लेते हैं। हम भी वैसे ही बनाते हैं।

मात्रा—२ से ४ माशे तक, दिनमें २ समय सुबह और रात्रिको।

उपयोग—खमीरा आबरेशम पचनेन्द्रिय संस्थानको पुष्ट करता है। आमाशय, क्षत, अन्त्र क्षत, उदरशूल, दाह, अम्लपित्त, तृषावृद्धि, वमन, यकृत्की निर्बलता, मलावरोध, उदरवात विदग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, कृमिविकार, अपचन और व्याकुलता आदि विकारोंपर चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है। एवं हृदय मस्तिष्कको भी बल देता है। खमीरेका सेवन नियमित २-४ मास तक करते रहनेसे आमाशय और अन्त्र दोनोंकी पचन क्रिया नियमित बन जाती है।

पचन क्रिया सुधर जानेसे जो मूत्रयन्त्रको अनावश्यक कष्ट होता है वह भी दूर हो जाता है जिससे वृक्क और मूत्राशयकी क्रिया भी नियमित बन जाती है। मूत्रमें दाह होना दूर हो जाता है।

खमीरा आबरेशम विषको नष्ट करके मस्तिष्क और हृदयको बल प्रदान करता है। मनको प्रसन्न रखता है तथा रक्तको सबल और शुद्ध बनाकर प्राकृत फुफ्फुसोंको भी पुष्ट बनाता है।

(३५) खमीरा मरवारीद स्वर्ण मुक्तायुक्त

विधि—गावजुवां पत्ती और गुले गाऊजुबान ५-५ तोले, कुलफा बीज १० तोला, बादरञ्जबोया और सफेद चन्दन २-२ तोलेको जौकुट कर रात्रिको कलईदार बर्तनमें अर्क वेदमुश्क और गुलाबजल १-१ सेरमें मिलाकर भिगो देवें। सुबह उबालकर आधा जल जला देवें, फिर २ सेर मिश्री डालकर चाशनी करें। पाक होनेके पहले केशर ९ माशेको अर्क केवडेमें खरलकर मिला लेवें, फिर पाक होनेपर बहमन सफेद, बहमन लाल, तोदरी पीली, तोदरी लाल सब १-१ तोला, प्रवालपिष्टी और अम्बर ६-६ माशे, मोती पिष्टी, सुवर्णके वर्क और कस्तूरी ३ माशे मिलावें। अम्बरको मिश्रीमें खरलकर लेवें फिर कस्तूरी और सुवर्णके वर्क मिला खरलकर खमीरेमें मिला लेवें। (स्व० राजवैद्य रामचन्द्रजी शर्मा)

मात्रा—१॥ माशेसे ३ माशे तक दिनमें २ समय सुबह और रात्रिको अर्क गाऊजुवांके साथ।

सूचना—घबराहट अधिक हो तो मात्रा कम देवें या अर्क गाऊजुबान १० तोले पिलावें।

उपयोग—खमीरा मरवारीद हृदय-पौष्टिक है। हृदयके स्पन्दनोंकी अनियमितता, हृदय शोथ, हृदय वृद्धि आदि रोगोंमें हृदयकी शक्ति संरक्षणार्थ इसका उपयोग किया जाता है।

यह खमीरा हृदय और मस्तिष्क विकारपर व्यवहृत होता है। मानसिक बेहोशी, अशान्ति और व्याकुलताको दूर करके मनको प्रसन्न करता है।

मोतीझरा, शीतला और विषज ज्वर, जो दीर्घकाल तक बने रहे हों उनके लीन विषको दूर करके शरीर स्वस्थ बनाता है।

(३६) खमीरा जमुर्रद

विधि—जमुर्रद (पन्ना) पिष्टी ४ तोले, राजावर्त्त रत्नकी पिष्टी, सोनेके वर्क चांदीके वर्क और अम्बर १-१ तोला, आबरेशम कतरा हुआ, गावजुवांके फूल बहमन सफेद, बहमन लाल, पीली तोदरी और लाल तोदरी ६-६ माशे, मिश्री ६० तोले तथा सेवका रस ३० तोले लेवें। पन्ना आदि सबको खरलकर एक जीव करें एवं सेवका रस और मिश्रीको मिलाकर चाशनी करें। नीचे उतार कुछ शीतल होनेपर औषध मिश्रण मिलाकर खमीरा बना लेवें।

मात्रा—२ से ४ माशे तक दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको।

उपयोग—यह खमीरा जमुर्रद शीतल, हृदय पौष्टिक और वातशामक है। हृदयकी घबराहट, मस्तिष्ककी उष्णता, मानसिक व्याकुलता तथा शारीरिक निर्बलताको दूर करता है तथा मुखमण्डलको प्रसन्न और तेजस्वी बनाता है।

(३७) खमीरा सन्दल

प्रथम विधि —सन्दल (सफेद चन्दन) का चूर्ण ८ तोला और धनियांका मगज १।। तोला जौकुट कर रात्रिको १ सेर जलमें भिगो देवें। सुबह उबालकर आधा जल जला देवें। फिर छानकर उसमें अंगूर, तुर्शका अर्क, गुलाब जल और वेदमुश्कका अर्क २०-२० तोले; अंगूरका सिरका २।। तोले और मिश्री २। सेर मिलाकर चाशनी करें। पश्चात् सफेद चन्दनको जलमें घिसकर सुखाया हुआ चूर्ण और वंशलोचन २।।-२।। तोले चांदीके वर्क और प्रवालपिष्टी ६-६ माशे मोतीपिष्टी और संगेयशव पिष्टी ३-३ माशे मिला लें। (स्व० राजवैद्य रामचन्द्र जी शर्मा)

मात्रा—६ माशे से ९ माशे तक। २ समय सुबह और रात्रिको लस्सी या दूधके साथ।

उपयोग—यह खमीरा सन्दल पूयमेह (गोनोरिया), बस्तिव्रण, मूत्रनलिका क्षत आदिमें मूत्रशुद्धि कराता है। मूत्रदाह और पूयको दूर करता है, प्रबल व्यथाको दबा देता है, गर्मीको शान्त करता है।

दूसरी विधि—सफेद चन्दनके १० तोले चूर्णको ८० तोले गुलाबजलमें मिलाकर शिलापर पीसकर २४ घण्टे भिगो देवें, मन्दाग्निपर पकावें। चतुर्थांश शेष रहनेपर शक्कर १२० तोले मिलाकर पुनः पकावें। गुलकन्द जैसा खमीर बने तब उतार लें।

मात्रा—१ से २ तोले। सुबह शाम लेकर दूध पीवें।

उपयोग—यह खमीरा मस्तिष्कके लिये शामक और मूत्रसंशोधक है। मूत्र में दाह, घबराहट, तृषा आदिको नष्ट करता है। मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार एवं नेत्रोंकी जलनको दूर करता है। सुजाक रोगीके लिये हितकर है।

(३८) लबूब कबीर

द्रव्य—मग्ज पिस्ता, मग्ज बादाम, हिब्बल खिजरा, मग्ज अखरोट, सकंकूर, कुलिञ्जन, सकाकुल, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख, तोदरी सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी जर्द, हब्ब किलकिल, काले तिल, दालचीनी ये प्रत्येक ३५-३५ माशा, जायफल १५ माशा, कालीमिर्च, नागरमोथा, लवंग, कबावचीनी, तुख्म गाजर, तुख्म हलियुन, तुख्म मूली तुख्म शलजम, तुख्म प्याज, तुख्म शिब्बित, इन्द्रजौ मीठे, दरुनज अकरबी, कचूर ये प्रत्येक २३-२३ माशा, सोंठ ३५ माशा, जावित्री १४ माशा, पीपल १४ माशा, पञ्जा सालिम ६ तोला, खोपरा ताजा ६ तोला, खशखश श्वेत ६ तोला, सुरञ्जान शीरी २० माशा, बोजीदान २८ माशा, पोदीना २८ माशा, मायाशुत्र अहराबी २८ माशा, जाफरान २८ माशा, गूगल, लकड़ी २८ माशा, सोनेके वर्क ९ माशा; चाँदीके वर्क ९ माशा; अम्बर शहब ९ मासा; मुश्क ९ माशा; शहद (या मिश्री) तिगुनी मिलाकर लबूब तैयार करें।

मात्रा—४ से ६ माशे। दूधसे दिनमें २ बार।

उपयोग—यह अत्यन्त बलप्रद लबूब है। यूनानीमें यह श्रेष्ठ वीर्यप्रद तथा वाजीकरण औषध है। यह उत्तेजक; स्तम्भक तथा शरीर पोषक है। इसके सेवनसे शरीर सुन्दर, सुडौल बनता है तथा मन उत्साहित होता है।

(वैद्यराज श्री रमेशचन्द्रजी व्यास, भिषगाचार्य धन्वन्तरि)

(३९) अतरीफल कश्नीजी

विधि—चार जातिकी हरड़ (बड़ी हरड़, काबुली हरड़, सादी हरड़ और जवाहरड़) ४ तोले लें। चारों मिला कूट छानकर चूर्ण बनावें। फिर २ तोले बादामके तैलका मूण देकर १ तोले धनियेका बारीक चूर्ण मिलावें। बादमें २० तोले शहद मिला चीनी मिट्टीके बरतनमें भरकर जौ (अनाज) की कोठीमें ३ मास दबा दें। (घ० वै०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोले, दिनमें २ बार। दूधके साथ लें।

उपयोग—यह औषध नेत्र रोगियोंके लिये हितकारक है। इससे नेत्रोंकी जलन, शिरदर्द कब्ज, रक्तविकार, आदि रोग दूर होते हैं। बवासीरमें लाभ दायक है। मोतियाबिन्दुके रोगीको देते रहनेसे रोगको बढ़ने नहीं देता।

सूचना—अतरीफलको टीनके डिब्बेमें न रखे। अन्यथा रंग काला हो जायगा। चीनीमिट्टीके पात्रमें या कलईदार बर्तनमें रखें।

(४०) अतरीफल मुलैयन

विधि—काबुली हरड़, पीली हरड़, काली हरड़, आंवले, बहेड़ा १-१ छटाँक, गुलाबके फूल, सनाय, तुरबुदकी छाल और सोंठ २०-२० माशे लें। सबको कूट बारीक चूर्णकर बादामके तैलमें भून लें। बादमें ३ गुने शहदमें मिलाकर अवलेहके समान बना लेवें। इस मिश्रणको चीनीमिट्टीके अमृतबानमें भरकर ४० दिन रहने देवें। फिर उपयोगमें लेवें।

मात्रा—३ से ६ माशे, दिनमें २ बार। निवाये जल या दूधके साथ लें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे मस्तिष्ककी उष्णता; चक्कर आना, नेत्रोंकी कमजोरी मोतियाबिन्दुकी वृद्धि, कफवृद्धि, कानमें शब्द होना, बहरापन, तन्द्रा, मलावरोध, दाह आदि दूर होते हैं। यह अवलेह आँख, कान, नाक और मगजके पुराने रोगोंमें प्रयुक्त होता है।

(४१) सारिवादि शार्कर

विधि—श्वेत सारिवा, मुलहठी, सनाय, श्वेत मूसली असगन्ध, उशवा और हरड़ ७ औषधियाँ १०-१० तोले; जवासा ५ तोले; लौंग, गोरखमुण्डी, उन्नाव सोंफ, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, गुलाबके फूल, छोटी इलायची मजीठ, और दालचीनी १० औषधियाँ २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुट कर १६ गुने जलमें उबालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर ५ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बना लें।

(श्री पं० लक्ष्मीनारायण वैद्यभूषण)

मात्रा—१। से २।। तोले दिनमें २ बार। जलके साथ दें।

उपयोग—इस शर्बतके सेवनसे उपदंश, सुजाक अथवा अन्य कारणोंसे बिगड़ा हुआ रक्त थोड़े ही दिनोंमें शुद्ध हो जाता हैं।

(४२) लऊक सपिस्तां

विधि—ल्हिसोड़े ५० नग, उन्नाब २० नग, मुलहठी १ तोला, तुख्म खतमी १ तोला, पोस्तके छिलके २ तोले और बिहीदाना ६ माशे ले। सबको २ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर मल कर छान लें। फिर क्वाथसे ४० तोले शक्कर मिलाकर पकावें और बादाम की गिरी ६ तोले. पोस्तदाना १ तोला जवाखार १ तोला, कतीरा ६ माशे गोंद ६ माशे और मुलहठो ६ माशेका बारीक चूर्ण मिलाकर चाटने योग्य बना लेवें। (चि० चं०)

मात्रा—४ से ६ माशे, दिनमें ३ या ४ बार चटावें।

उपयोग—इस चाटणके सेवनसे श्वास नलिकामें चिपका हुआ कफ बाहर निकल आता है। फुफ्फुसोंकी उष्णताका ह्रास होकर शुष्क कास शमन होती है और फुफ्फुस निर्दोष बनते हैं। जीर्ण प्रतिश्याय, कास व पीनसमें उपयोगी है।

(४३) आंवलेका मुरब्बा

विधि—ताजे पक्के बड़े-बडे आँवलोंको बांसकी शलाका या जर्मन सिल वर अथवा पीतलके कलई किये हुए कांटेसे चारों ओर अच्छी तरहसे टोंचें। फिर कलो चूनेके नितरे हुए जलमें २४ घण्टे भिगो दें। चूनेसे ३२ गुना जल मलाकर १ घण्टे बाद ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ जल नितारकर उपयोगमें लें। पश्चात् आंवलोंको हल्का सा जोश देकर छायामें सुखा दें। १२ घण्टे बाद आंवलों के वजनसे दूनी शक्करकी चाशनो बनाकर आँवले मिला दें। ८-१० दिन बाद मुरब्बेमें आँवलेका स्वरस मिल जानेसे ऊपर झाग आनेपर उस चाशनीको निकाल, पुनः नयी दूनी शक्करकी चाशनी बनाकर मिला देनेसे मुरब्बेमेंसे अम्लता दूर हो जाती है तथा दो-तीन वर्ष तक मुरब्बा अच्छा रह सकता हैं। १ सेर आँवलोंमें ६ माशेके हिसाबसे केसर दूसरी बारकी चाशनीमें मिला लेवें।

अनेक दुकानदार आंवलोंको नहीं गोदते। केवल चूनेके पानीमें फिटकरी मिलाकर उबाल लेते हैं। ५ सेर आंवलोंमें २ तोले फिटकरी मिलाते हैं। कितने ही लोग पहली बार की हुई चाशनीको पुनः पकाकर मिला लेते हैं। नई शक्कर नहीं मिलाते। परन्तु नई शक्करकी चाशनी मिला लेनेसे मुरब्बा विशेष स्वादिष्ट व गुणकारी होता है। दुकानदार पहले समय की चाशनीको हरड़के मुरब्बेमें मिला लेते हैं। इस हेतुसे वह शक्कर भी निकम्मी नहीं होती।

मात्रा—१ से २ आंवले। चांदीके वर्कके साथ लें।

उपयोग—यह मुरब्बा दाह, शिरदर्द, पित्तप्रकोप, चक्कर, नेत्र जलन, बद्धकोष्ठ, अर्श, रक्तविकार, त्वचादोष, प्रमेह और वीर्यदोषको नष्ट करता है, पित्तवृद्धिका शमन करता है और शरीरको बलवान बनाता है।

(४४) शुण्ठ्यादि पायस

विधि—सोंठ और अरण्डीके मगज अन्तर्जिह्वा निकाले हुए १-१ तोले के बारीक चूर्णको १६ गुने दूधमें मिलाकर पायस (खीर) बनावें। आवश्यकतानुसार शक्कर मिला लें।

उपयोग—इस खीरके सेवनसे आमप्रकोपसह वातविकार, कटिशूल और ग्रध्रसी आदि रोगोंका नाश होता है।

(४५) रक्तशोधक शर्बत

विधि—उसबा ८ तोले, मञ्जिष्ठा ४ तोले, सौंफ २ तोले, उन्नाव २५ नग, सपीस्तान २५ नग, हंसराज १ तोला और गावजुवां १ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें। रात्रिको ८ गुने जलमें भिगो दें, सुबह क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर २० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत बना लें।

मात्रा—१। से २।। तोले, दिनमें २ बार। जलके साथ लें।

उपयोग—यह शर्बत उपदंश विकार, सुजाक, कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा-फुन्सी आदि रोगोंमें रक्तको शुद्ध करता है।

(४६) बनप्शा शर्बत

विधि—बनप्शा १० तोलेको उबलते हुए ३५ तोले जलमें २४ घण्टे भिगो दें, फिर छान लें। छाननेके समय दबाकर न निचोड़े। पश्चात् ४० तोले शक्कर मिलाकर शर्बत बना लें।

सिद्धभेषज मणिमालाकारने लिखा है कि ८ गुने जलमें भिगो अष्टमांश क्वाथकर गाढ़े कपड़ेसे युक्तिपूर्वक छान (अर्थात् पोटलीको लटकाकर जल टपका) लेवें। फिर ४ गुनी शक्कर मिलाकर शर्बत बनावें। और इसे पित्तज्वरपर प्रयुक्त करें।

मात्रा—१। से २।। तोले तक, जल मिलाकर पीवें।

उपयोग—यह शर्बत ज्वरके पीछे की निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशयकी गर्मी, नेत्रको उष्णता, शिरदर्द, मलावरोध, पसलीकी पीड़ा और मूत्राशयके दर्दको दूर करता है तथा निद्रा अच्छी लाता है। बढ़े हुए पित्तको बाहर निकाल देता है, मल-मूत्र साफ लाता है।

(४७) चन्दनका शर्बत

विधि—आध पाव श्वेत चन्दनके चूरेको आध सेर गुलावजलमें रातको भिगो दे, सवेरे हल्का-सा जोश दें। डेढ़ पाव जल शेष रहनेपर मलकर छान लें। फिर आध सेर मिश्री मिलाकर शर्बत बना लें। उबालनेपर

ढक्कन ढँक देना चाहिये, अन्यथा तैल उड़ जाता है।

वक्तव्य—कई चिकित्सक गुलाबजल और मिश्री दूने परिमाणमें अर्थात् गुलाबजल १ सेर लेते हैं।

मात्रा—२-२ तोले, दिनमें २ बार। जलके साथ देवें।

उपयोग—यह शर्बत तृषा, दाह, बहुमूत्र, पिशाबका पीलापन, जलन होना, नाक मुखमें खुश्की रहना, नकसीर फूटना तथा गर्मीके दिनोंमें होने वाले पित्तके विकारोंको नष्ट करता है। गर्मी, प्यास, लू, बेचैनी सबसे रक्षा करता है। सुजाक रोगमें पेशाब साफ ला देता हैं।

(४८) स्वादिष्ट शर्बत [स्वदेशी पेनकिलर]

विधि—नींबूका रस १ सेर, अदरकका रस ४० तोले, सैंधानमक २ तोले, काला नमक २ तोले, हींग ६ माशे और मिश्री १ सेर मिला कलई वाली कड़ाहीमें ३ उफान आवे तब तक उबालें। फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान लें। शीतल होनेपर ऊपर-ऊपरसे अलग निकाल लें। पेंदेमें कचरे वाला भाग होवे उसे अलग रखें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—६ माशे से २ तोले तक। आधी रत्ती कपूर मिलाकर दें। अथवा जलके साथ दें।

उपयोग—इस शर्बतके सेवनसे अपचन, अपचन-जनित अतिसार, हैजा, पेचिश, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरशूल, वमन आदि रोग दूर होकर क्षुधाकी उत्पत्ति होती है।

(४९) गुलाबका शर्बत

विधि—गुलाबजलमें दूनी शक्कर मिलाकर चाशनी करें। फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान लें।

मात्रा—१ से ४ तोले तक; जल मिलाकर पीवें।

उपयोग—इस शर्बतसे मगजकी उष्णता, पित्तविकार, तृषा और दाह शांत होते हैं तथा मलावरोध दूर होता है। स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमी भी कम होती है।

(५०) नींबूका शर्बत

विधि—नींबूके रसमें २॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें; फिर गरम गरमको छान लें। शीतल होनेके बाद नहीं छनता।

मात्रा—१ से २ तोले तक। जल मिलाकर पीवें।

उपयोग—इस शर्बतसे पित्तविकार, मन्दाग्नि, अरुचि, तृषा, उबाक, अजीर्ण, मलावरोध और रक्तदोष आदि दूर होते हैं तथा अग्नि प्रदीप्त होती है सूर्यके तापमें भ्रमणसे उत्पन्न हुई व्याकुलता और पित्तप्रकोप दूर होते हैं।

(५१) अदरकका शर्बत

विधि—अदरकका रस निकालकर २ घण्टे रहने दें। रस स्थिर होनेपर

सम्हालकर ऊपर-ऊपरसे निकाल लें। नीचे अदरकका सत्व रहे उसे सुखा कर अलग उपयोगमें लें। नितरा हुआ रस ६४ तोले लेकर १९२ तोले शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें। उसमें केशर १ माशे, इलायची, जायफल, जावित्री और लौंग ३-३ माशेका चूर्ण मिलावें। इसे विशेष गाढ़ा बनावे तो अवलेह बन जाता है।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला तक। जल मिलाकर दिनमें २ बार पीवें।

उपयोग—इस शर्बतके सेवनसे अपचन, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात, श्वास, कास, अतिसार, उदरशूल आदि दूर होते हैं।

(५२) प्रतिश्यायहर शर्बत

विधि—तुलसीपत्र, मरवा (सब्जा) के पत्ते, गावजुवां, अफतीमून विलायती), उस्तेखद्दूस और विसफाइज १-१ छटाँक लेकर १ सेर गुलाबजल और आध सेर अंगूरी सिरकेमें रात्रिको भिगो दें; सुबह उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। पश्चात् १॥ सेर शक्कर मिला कर शर्बत बनालें। (श्री पं० गुरूशरणदासजी)

मात्रा—२ से ४ तोले, जलमें मिलाकर, पिलावें।

उपयोग—यह शर्बत जुकाम, कण्ठदाह, निद्रानाश, नाकमेंसे खून गिरना, हृदयकी निर्बलता, मगजकी कमजोरी, सूक्ष्म ज्वर, मलावरोध आदिको दूर करता है।

यूनानी माजून-खमीरें आदिकी निर्माण विधि

माजून—पतले अवलेह जैसी मृदु रहती है। इसके लिये विशेषत: शहद और शक्करकी चाशनीकर शीतल होनेपर इसमें थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिलाते हैं और एक जीव कर लेते हैं। सामान्यत: जवारिशका पाक और माजूनका पाक समान-सा होता है। यह चम्मचसे या अंगुलीसे सरलतासे सेवनकी जाती है।

विशेषत: औषध द्रव्योंसे तीन गुने शहद या शक्करके पाकसे माजून तैयार की जाती है। क्वचित् कुछ कम शक्कर भी ली जाती है।

बादाम, पिस्ता आदि इसमें मिलाना हो तो उन्हें पीसकर, हो सके उतना बारीक कर, घीमें भूनकर मिलाना चाहिये।

केशर-कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य मिलाना हो. तो इन्हें अलग अच्छी तरहसे पीसकर माजून बना लेनेके बाद सबसे अन्तमें मिलावें।

जवारिश—इसे अवलेह या माजूनके समान चाटने योग्य बनाया जाता है। विशेषत: यह पचन-संस्थानकी विकृतिके शमनार्थ या दमनार्थ सेवन किया जाता है।

इसमें मिलाये जाने वाले चूर्णको कुछ मोटा रखते हैं जिससे आमाशयमें पचनकालमें उसका सत्व शनैः शनैः वियोजित होकर पित्तके साथ सम्मिलित होता रहे।

जवारिशमें गुरुपाकी द्रव्य नहीं मिलाये जाते। अतः बादाम, पिस्ता आदि मेवे, स्वादिष्ट बनानेके लिये भी इसमें नहीं डाले जाते हैं।

जवारिश निर्माणार्थ विशेषतः शहद समभाग तथा शक्कर द्रव्योंकी अपेक्षा दुगुनी ली जाती है। शहद शक्करका यूनानी विधि अनुसार पाक किया जाता है अर्थात् शहदको मृदु अग्नि देकर गरम किया जाता है और झाग आवे उनको झरसे निकालते जाते हैं। इसी समग चाशनीमें थोड़ा दूध मिलाकर मोमका सम्पूर्ण अंश पृथक् कर दिया जाता है।

चाशनी पाकके निर्णयार्थ चम्मचसे थोड़ी निकालकर थालमें कुछ ऊंचाईसे गिरावें। चाशनीकी आकृति उस समय त्रिकोण सी हो जाय, तो पाक योग्य हो गया है ऐसा माना जाता है। यदि जवारिशमें सुगन्धित अर्क मिलाना हो तो चाशनीको अग्निसे नीचे उतार तुरन्त मिला लेवें।

चाशनी शीतल होनेपर औषधियोंका चूर्ण थोड़ा-थोड़ा मिला-मिलाकर एक जीव करें, एवं एक या दो सप्ताह बाद इसका उपयोग करें। ऐसा करने से चाशनीमें मिलकर औषधियोंका वियोजन भली भांति हो जायगा।

खमीरा—यह भी माजूनके समान शहद-मिश्रीका पाक बनाकर तैयार किया जाता है। खमीरेके लिये चाशनी औषध द्रव्योंके क्वाथमें मिश्री मिला कर बनायी जाती है। (यह चाशनी चम्मचसे थालीमें गिरानेपर गोल-सी आकृतिमें गिरती है।) फिर कुण्डेमें लकड़ीके सोटे (डण्डे) से (हिन्दीके अंक '४' या अंग्रेजीके अंक '8' के सदृश आकृति बनाते हुए घोटाई करें। ऐसा करनेसे खमीरा गाढा प्रवाही और चिपचिपा बनता है एवं श्वेताभ भासता है। यदि केशर, कस्तुरी; अम्बर, स्वर्णवर्क, रौप्यवर्क आदि मिलाना हो तो इन्हें पृथक् खरलकर श्वेताभ खमीरा बन जानेपर थोड़ा-थोड़ा मिलावें। वर्क मिलाना हो तो १-१ पत्र या चूरा डालते जायें और एक जीव करते जायें।

अतरीफल—इसकी चाशनी अवलेह जैसी रखते हैं। इसमें प्रधान द्रव्य त्रिफला है। टिनके डिब्बेमें रखनेसे इसका रङ्ग श्याम हो जाता है। अतः काच या चीनीके बर्तनमें ही रखें।

सूचना—अतरी फल तैयार हो जानेके ४० दिन या इससे अधिक समय व्यतीत होनेपर इसको उपयोगमें लिया जाता है। एवं बीच-बीचमें बार-बार सेवन बन्दकर किया जाता है। नियमित सेवन करते रहनेपर पचन-क्रिया कुछ मन्द हो जाती है।

लबूब–इसका पाक माजूनके समान ही रहता है किन्तु कुछ प्रवाही रूपमें।

उपयोग—धातुओंके पोषणार्थ विशेषतः होता है। इसमें बादाम पिस्तादि मगज मिलानेके लिये इनको बारीक पीस मन्दाग्निपर घीमें भूनें। फिर चाशनी शीतल होनेपर इनको मिला लें। सुगन्धित द्रव्य एवं स्वर्णके वर्क अन्तमें थोड़ा-थोड़ा मिला-मिलाकर एक जीव बनाले।

घृत-तैल प्रकरण

घृत सिद्धि—सिद्ध घृत बनानेके लिये गोघृतको ही श्रेष्ठ माना है। गो-घृतको पहले मूर्छित करें। मूर्छित करनेके लिए ३४ तोले घृतको पीतलकी कलईकी हुई कड़ाहीमें डालकर मन्दाग्निपर गरम करें। झाग दूर होनेपर नीचे उतार लें। उष्णता थोड़ी कम होनेपर हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और नागरमोथा इन ५ ओषधियोंको ४-४ तोले लेकर बिजोरे नींबूके रसमें कल्क बनाकर डाल दें। पश्चात् २५६ तोले जल मिलाकर पाक करें। थोड़ा जल शेष रहनेपर उतारकर ७ दिन तक रहने दें। इससे घृत साफ, आमदोष रहित और वीर्यवान् बन जाता है। इसमें घृतके साथ क्वाथ, दूध दही आदि द्रव पदार्थ और अन्य औषधियोंके कल्कको मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें।

घृत पाकके लिये गिलोय आदि मृदु क्वाथ द्रव्योंमें चार गुना जल, सोंठ, अमलतास आदि मध्यम द्रव्योंमें ८ गुना जल और देवदारु, पद्‌माख आदि कठिन द्रव्योंमें १६ गुना जल मिलाना चाहिये। घृत पाकके लिये जिन ओषधियोंको क्वाथ बनाना हो उन सबको मिलाकर घृतसे द्विगुण परिमाण में लें। सामान्यतः आठ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। किन्तु क्वाथ करनेकी ओषधियोंका परिमाण अत्यधिक हो तो ५-५ सेर ओषधियोंका क्वाथ अलग-अलग करके सबको मिला लें तथा १ सेर ओषधियोंके लिये जल १०२४ तोले तक लें। इस रीतिसे जलके परिमाणमें थोड़ी औषधि और अधिक ओषधिके लिये अन्तर है।

यदि केवल दूधसे ही घृत-पाक करना हो, अन्य क्वाथ आदि द्रव पदार्थ न मिलाना हो तो घृतसे आठ गुना दूध लेना चाहिये और क्वाथ आदि द्रव मिलाना हो तो दूध घृतके समान लेना चाहिये। यदि २ या ३ प्रकारके द्रवसे घृतको सिद्ध करना हो तो सबको समान परिमाणमें मिलाकर घृतसे चार गुना लेना चाहिये। (किन्तु सुश्रुत संहिताके टीकाकार डल्हणाचार्य के मतानुसार सब द्रव्योंको ४-४ गुना मिलाना चाहिये) यदि ४ या ४ से अधिक प्रकारके द्रव पदार्थोंको मिलाना हो तो सबको घृतके समान लेना चाहिये और केवल स्वरस, दूध या दहीसे घृतको सिद्ध करनेका लिखा हो तो भी घृतके ४ गुने जलको अवश्य साथमें मिलाना चाहिये। कारण केवल स्वरस, दूध या दहीसे घृतकी पाक अच्छी रीतिसे नहीं हो सकता।

स्नेहमें प्रायः चतुर्थांश कल्क डाला जाता है। किन्तु केशर, नागकेशर, लौंग, चम्पा, कमल आदि पुष्पोंका कल्क हो तो घृतसे अष्टमांश लें। सर्प-

विष, बच्छनाभ आदि तीक्ष्ण विषके संयोगसे स्नेह सिद्ध करना हो, वहाँपर इस नियमका पालन नहीं हो सकेगा। यदि घृतमें क्वाथ या स्वरस न मिलाना हो, केवल जल मिलाना हो तो कल्क चौथा भाग, क्वाथसे घृत सिद्ध करना हो तो कल्क छठा भाग और केवल स्वरससे सिद्ध करना हो तो स्नेहसे कल्कको आठवां भाग लेना चाहिये। किन्तु अन्य आचार्योंका मत है कि दूध, दही, स्वरस या तक्रमेंसे किसी एकको मिलाया हो तो कल्क अष्टमांश मिलाना चाहिये। यदि द्रव इनसे भिन्न प्रकारका हो तो कल्क चतुर्थांश लें।

जहां द्रव्योंका परिमाण न लिखा हो, वहांके लिये यह नियम है। जैसे सुश्रुत संहितामें "सौवर्चल यवक्षार कटुका व्योषचित्रकैः। वचाऽभया विडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये॥" इन औषधियोंसे घृत, सिद्ध करना हो, तब ऊपर लिखी परिभाषानुसार कल्क क्वाथ आदिको मिलावें। अन्य किसी भी प्रकारके घृत-तैल आदि बनाना हो तभी उक्त विधि अनुसार बनावें। किन्तु जहां शास्त्रने परिमाण निश्चित किया है वहांपर शास्त्राज्ञानुसार पदार्थ लें। उसमें परिभाषामें अन्तर होनेपर भी परिवर्तन न करें। स्नेहपाकके तीन प्रकार हैं—मृदु, मध्यम और खर। कल्क किंचित् रसयुक्त हो तो मृदुपाक, रस रहित किन्तु मुलायम हो तो मध्यम पाक और कल्क जलकर कठिन हो गया हो तो खरपाक समझना चाहिये। इसमेंसे नस्यार्थ मृदु पाक सभी कार्यके लिये मध्यम पाक और मालिशके लिये खरपाक उत्तम है।

स्नेह सिद्धिकी परीक्षा—घृत और तैल सिद्ध होनेपर उसमेंसे थोड़ा कल्क निकालकर अग्निमें डालें। किसी प्रकारकी आवाज न हो तो उसे सिद्ध समझें घृत सिद्ध होनेपर बिल्कुल झाग नहीं रहते और तैलकी सिद्धि के समय खूब झाग उठते हैं। इसके अतिरिक्त स्नेह परिपक्व होनेपर कल्क को अंगुलीसे मर्दन करनेपर गोली अथवा वर्त्ति (बत्ती) हो जाती है। एवं वर्ण और सुगन्धसे भी परिपाकका निश्चय हो जाता है। जिस प्रयोगमें जितने घृतका पाक करनेका विधान किया है, उतना ही लें। न्यूनाधिक परिमाण (आधे अथवा दूने) में घृतका पाक ठीक नहीं होता।

घृतको दूधसे सिद्ध करना हो तो दो दिनमें सिद्ध करें। स्वरससे सिद्ध करनेमें तीन दिन और कांजी मट्ठा आदिसे सिद्ध करनेमें पांच दिन तक पकावें। अधिक दिन लगानेमें रोज थोड़े-थोड़े समय तक पाक करके छोड़ देवें।

घृत सिद्ध होनेपर कड़ाही नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। शीतल होने तक कड़ाहीमें रह जानेसे घृत कुछ उड़ जाता है।

घृत पुराना होनेसे भी गुणयुक्त रहता है। घृत शीतवीर्य होनेसे सिद्ध घृतमे भी प्राय: वही गुण रहता है। इसके अतिरिक्त जिन जिन औषधियोंसे सिद्ध घृत तैयार किया जाता है, उन-उन औषधियोंके गुण, वीर्य, विपाक आदि घृतमें सम्मिलित होते हैं। प्राचीन आचार्योंने सिद्ध घृतोंका विशेष उपयोग किया है। घृतसे रोग शीघ्र दूर होकर शरीर स्वस्थ, बलवान् और कांतिवान् बनता है। जो रोगी अनेक प्रकारकी औषधियां अनेक वर्षों पर्यन्त सेवन करके निराश हो गये हों, जिनकी पाचन-शक्ति अति मन्द हो गई हो, जिन्होंने अपने शरीरको सदाके लिये मलावरोध, अफारा बेचैनी, अरुचि शिरदर्द आदि विकारोंका घर रूप बना लिया हो उनको सिद्ध घृतके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें आशातीत लाभ प्राप्त हो जाता है। वात, पित्त अथवा कफ प्रकृति वाले पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध आदि सब मनुष्य सिद्ध घृतको सुबह शाम अथवा भोजनके साथ सेवन कर सकते हैं।

घृत सेवन से बिना कष्ट अन्न पचन और मलशुद्धि नियमपूर्वक होती है. रोगीकी मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है और श्रद्धापूर्वक सप्रेम नियमित सेवन कर सकता है किसीको सिद्ध घृतोंसे हानि होनेकी लेशमात्र सम्भावना नहीं है।

घृत शास्त्रोक्त विधिसे सिद्ध कर लेनेपर सुगन्धयुक्त बन जाता है। घृत को सम्हालपूर्वक काचकी खुले मुँह वाली शीशियोंमें अथवा चीनीमिट्टीके अमृतबानमें रखनेसे खराब होनेको संभावना नहीं रहती। वृन्द माधवकार ने तो लिखा है कि—"एक वर्ष पश्चात् सिद्ध घृत हीनवीर्य हो जाता है. और तैल हीनवीर्य नहीं होता।" परन्तु पुराना सिद्ध घृत गुण वाला ही रहता है और पुराना तैल दोषयुक्त हो जाता है ऐसा अनुभवमें आया है।

तैल सिद्धि—तैलको सिद्ध करनेके पहले दुर्गन्ध और अन्य दोषकी निवृत्तिके लिये मूर्च्छित करें। पश्चात् तैलका पाक घृतके पाकके समान करें, किन्तु मूर्च्छा विधिमें अन्तर है। तिलके तैल, अरण्डीके तैल, सरसोंके तैल तीनोंकी मूर्च्छाकी औषधियाँ पृथक्-पृथक् हैं। तिलके लिये मजीठ, हल्दी, लोध्र, नागरमोथा, दालचीनी, आँवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ेका फूल और बड़की जटा लें। सरसोंके तैलमें मजीठ, हल्दी, आंवला, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्ध वाला दालचीनी और बहेड़ा मिलावें। एवं एरण्ड तैलकी मूर्च्छाके लिये मजीठ नागरमोथा, धनियां, चमेलीके पत्ते सुगन्ध वाला, खजूर, बड़की जटा, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, केवडेका फूल, दही और कांजी लें।

मूर्च्छाके लिये ४ सेर तैल हो तो मजीठ ४ छटांक और सब द्रव्य एक-एक छटांक लेना चाहिये। उनमेंसे हल्दी और मजीठका कल्क अलग-अलग करें, और शेष औषधियोंको मिलाकर कल्क करें। तैलको मूर्च्छित करनेके

लिये कलईकी हुई पीतलकी साफ कड़ाहीमें डालकर चूल्हेपर चढावें । जब तैल गरम होकर झागरहित होजाय, तब नीचे उतारें । उष्णता थोड़ी कम होनेपर उसमें हल्दीका कल्क, फिर मजीठका कल्क पश्चात् शेष ओषधियों का कल्क और तैलसे चौगुना पानी मिलाकर पुनः अग्निपर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पाक करें । थोड़ा जल शेष रहनेपर उतारकर ७ दिन तक रहने दें । पश्चात् तैलको छानकर तैल पाकमें कही हुई औषधियोंसे सिद्ध करें ।

यदि वातनाशक तैल बनाना हो तो आम, जामुन, कैथ और बड़े नींबूके पत्तोंको तैलसे ८-८ वाँ हिस्सा लेकर चौगुने जलमें औटावें । जल चतुर्थांश शेष रहनेपर छान, मूर्छित तैलमें मिलाकर पाक करें । थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें ।

सिद्ध तैल तैयार करनेके लिये तिल, सरसों या अरण्डीका ताजा तैल, रोगीकी प्रकृति, देश व ऋतु और रोगपर विचार करके लेना चाहिये । तैल सिद्ध होनेपर चिपचिपापन, मूलकी वास और तैल मूल दोष तीनों दूर होते हैं तथा गुणकी वृद्धि होती है । तैल स्निग्ध और उष्णवीर्य है । सिद्ध तैलोंमें भी प्रायः वे ही गुण रहते हैं । तैलका मुख्य उपयोग वातजन्य रोगोंपर होता है । सिद्ध तैल शरीरके बाह्य भागमें मर्दन करने तथा पीनेके लिये उपयोग में आता है । मर्दन करनेके समय त्वचाके रोम टूट न जायं, यह सम्हालना चाहिये । नीचेसे ऊपरकी तरफ तथा आड़ी बाजूमें मर्दन करनेसे हानि होने की संभावना है । अनुलोम (ऊपरसे नीचेकी ओर) धीरे हाथसे शान्तिपूर्वक मर्दन करनेसे वेदना नहीं होती और हानि होनेका भय नहीं रहता । तैल मर्दनसे स्नायु और शिराबन्धन नरम होते हैं तथा रक्ताभिसरण क्रियाकी वृद्धि होती है; अथवा रक्तमें रहे हुए दूषित परमाणु प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाते हैं ।

पक्षाघात (Paralysis) आदि वातरोगोंमें मर्दनके पश्चात् गर्म जलसे निर्गुण्डीके पत्तोंसे अथवा अन्य वातनाशक ओषधियोंके क्वाथसे सेक करना अति हितकर है । केवल पित्ताधिक्य विकारमें विशेष तैलमर्दन अथवा सेक नहीं करना चाहिये । तैलमर्दन अथवा सेक करनेके बाद तुरन्त ठण्डी वायु न लगे इस बातको भी लक्ष्यमें रखना चाहिये ।

तैलपानकी प्रथा प्रायः वर्तमान समयमें लोप होगई है । फिर भी आवश्यकतापर पिलानेमें कोई हानि नहीं है । केवल नये ताजे तैलमें से सिद्ध तैल बनाकर प्रकृति और ऋतुका विचार करके पिलाना चाहिये । तैलपानके पश्चात् तुरन्त ठण्डा जल नहीं पिलाना चाहिये ।

सूचना—घृत-तैल बनानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ बरतन लें लोह पात्रमें घृत-तैलका रंग काला हो जाता है ।

गोमूत्र आदि अधिक उफान लानेवाले पदार्थ मिलाना हो तो कड़ाही आठगुनी बड़ी चाहिये। कारण, गोमूत्रसे उफान बहुत आता है। घृत तैल का पाक होनेपर कड़ाहीको नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। देर होनेसे घृत या तैल जलकर परिमाणमें कम हो जाता है।

घृत और तैलमें कई पीनेके और कई लगानेके हैं। उपयोग औषधियोंके साथ स्पष्ट लिखे हैं।

(१) त्रिफलादि घृत

विधि—त्रिफला ६४ तोलेका आठगुने जलमें क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर छानकर उपयोगमें लें। यह क्वाथ, भांगरेका रस, अडूसेका रस आंवलेका रस, शतावरका रस अथवा क्वाथ, गिलोयका रस और बकरी का दूध, प्रत्येक ६४-६४ तोले लेवें। सबको एकत्र करें। इनमें पीपल, मिश्री, मुनक्का, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलेकमल, क्षीरकाकोली (अभावमें मुलहठी) असगन्धकी जड़ और कटेली सबको समभाग मिलाकर १६ तोले कल्क डाल घी ६४ तोले मिलाकर पकावें। फिर उतारकर तुरन्त छान लें। (वं० से०)

मात्रा—आध से १ तोले तक। दिनमें २ बार, सुबह रात्रिको दूधके साथ या दोपहरको और रात्रिको भोजनके प्रारम्भमें प्रथम ग्रासके साथ।

उपयोग—इस घृतके सेवनसे नेत्ररोग दूर होते हैं। यह घृत रुधिरके बढ़ने या दूषित होनेसे नेत्रोंमें जो उत्पन्न हुए हों, रतौंधी, तिमिर, मोतियाबिन्दु, मांस बढ़ना, नेत्रकी लाली, तीव्र जलन सहित नेत्रकी लाली, भांफनीके बाल गिरना, वातज, पित्तज और कफज नेत्ररोग, अन्धता, मन्द दृष्टि, कफ-वातसे दूषित दृष्टि, वात और पित्त प्रकोपसे नेत्रस्राव, खुजली, आसन्नदृष्टि (दूरकी वस्तु स्पष्ट न दीखना (Short Sight) दूर दृष्टि (दूर की वस्तु अच्छी दीखना किन्तु समीपकी वस्तु या छोटे अक्षर स्पष्ट न दीखना (Long Sight) आदि नेत्र रोगोंको नष्ट करके गृध्रके समान प्रबल दृष्टि बनाता है। शरीर बल पचनशक्ति और शारीरिक कांतिको बढ़ाता है। इस त्रिफलादि घृतका ४-६ मास तक श्रद्धापूर्वक पथ्यसहित सेवन करनेसे लाभ मिलता है। जीर्ण बद्धकोष्ठके रोगियोंकी आंतोंकी मेदा और यकृत्की शुद्धि हो जाती है।

मोतियाबिन्दुका विष रक्तमें शनैः शनैः दृष्टिमणि (Lens) में पहुँचता हैं। फिर दृष्टिमणिके तन्तु दूर-दूर होते जाते हैं, जिससे बीचमें दूषित रस भरकर अपारदर्शकता आने लगती है। यदि इस रोगकी प्रारम्भावस्थामें ही इस घृतका सेवन कराया जाय, नेत्रमें नेत्रसुदर्शन अर्क डाला जाय तथा विष वर्द्धक तमाखू आदि द्रव्योंका त्याग किया जाय तो मोतियाबिन्दुकी वृद्धि रुक जाती है, इतना ही नहीं अनेकोंकी दृष्टिमणि पारदर्शक होकर

मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

मोतियाबिन्दु पीड़ितको इस घृतका सेवन एक वर्ष तक सतत करते रहना चाहिए। अन्य तीव्र नेत्ररोगोंमें थोड़े दिन तक तथा दृष्टिमांद्यमें दीर्घकाल तक इस घृतका सेवन करना तथा त्रिफला हिमसे नेत्र धोते रहना चाहिए। मस्तिष्ककी निर्बलता और जीर्ण मलावरोध वालोंके लिए भी इस घृतका सेवन लम्बे अरसे तक करते रहना हितावह है।

(२) फल घृत

विधि—मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, बायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायणकी जड़, कायफल, काकोली और क्षीर काकोली (अभावमें असगन्ध और शतावर), मेदा और महामेदा (दोनोंके अभावमें शतावर), बच, सफेद अनन्तमूल, काली अनन्तमूल, फूल-प्रियंगु, सौंफ, भुनी हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेलीके फूल, कमल, वंशलोचन मिश्री अजमोद, दन्तीमूल इन ३२ ओषधियोंको एक-एक तोला लेकर कल्क करें। फिर यह कल्क गोघृत ६४ तोले, गायका दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर पाक करें। पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लेवें। इस घृतपाकमें लक्ष्मणा (अभावमें सफेद फूल वाली कटेली) का पञ्चांग डालना विशेष लाभदायक है। (शा० सं०)

मात्रा—आधसे १ तोले। रोज सुबह सेवन करें।

उपयोग—यह घृत स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये हितकर है। धातुदोष, रजोदोष और गर्भाशयके दोषोंको दूर करता है। बन्ध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है। और जिसके बच्चा होकर मर जाता हो उसकी सन्तति नीरोग होती है। जिसको बार-बार कन्या ही जन्मती हो, जिसको गर्भ रहकर बार बार नष्ट हो जाता हो; जो स्त्री मृत संतान या अल्पायु संततिको उत्पन्न करती हो, वह यदि इस घृतका सेवन करे तो दीर्घायु और नीरोग पुत्रको जन्म देनेमें समर्थ होती है। संक्षेपमें गर्भाशयदोषकी निवृत्यर्थ यह घृत अत्युत्तम है।

शास्त्रकारोंने १ वर्षकी जीवद्वत्सा (बछड़ा जीता हो ऐसी) बलवान् गौका घृत लेनेको लिखा है; एवं पुष्यनक्षत्रमें गौके जंगली कण्डोंकी अग्निपर शास्त्रोक्त विधिमें पाक करनेकी आज्ञा की है।

(३) नाराच घृत

विधि—लोध, चित्रकमूल, चव्य, बायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, निसोत, शंखिनी (ओंधाफूली), अतीस, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्तीमूल १-१ तोला लें। थूहरका दूध १६ तोले; अमलतासका गूदा १६ तोले और गोमूत्र ६२ तोले लें। गोमूत्रको छोड़ शेष सबको पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोमूत्र, गोघृत ६४ तोले और

घृतसे ४ गुना जल मिलाकर यथा विधि मन्दाग्निपर घृतको सिद्ध करें।
(भै० र०)

मात्रा—½ से १ तोला। सुबह निवाये दूधके साथ लेवें।

उपयोग—यह घृत उदर रोग, गुल्म, अफारा, प्लीहावृद्धि, आमवात, भगन्दर, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोगोंको शमन करता है। कोष्ठस्थ दोषों को बाहर निकालनेके लिये उत्तम औषधि है।

इस घृतकी योजना दीपन, पाचन, आमविषहर और विरेचन औषधियों के संयोग सह की है। यह घृत पचन संस्थानकी इन्द्रियां जब अति निर्बल और अपना कार्य करनेके लिए परावलम्बी हो जाती हैं, तब उन्हें शनैः शनैः सजल बनाने, पचन संस्थानगत उत्तान मलको बाहर फेंकने एवं रस, रक्त आदि सब धातुओंमें प्रवेशित आमविषको जलानेका कार्य करता है। इस घृतके सेवनसे उत्तान विष और लीन विष नष्ट हो जाता है। जिससे पचन क्रिया क्रमशः नियमित होने लगती है। २-४ मास तक इस घृतका सेवन करनेपर दृढ़ मलावरोध, उदररोग, उदावर्त, आध्मान, प्लीहावृद्धि, वातज गुल्म, उदरकृमि, आमवात, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोग सरलता से काबूमें आजाते हैं।

इस घृत सेवनके साथ पचन संस्थानपर रोगानुरोध और प्रकृतिभेदसे उपकारक औषधिकी योजना करनेपर लाभ जल्दी मिलता है। विशेषतः ताम्र प्रधान, यकृत्के लिए उपकारक क्रव्याद रस, प्रवालपञ्चामृत, अग्निकुमार, चतुर्मुख या क्षुद्बोधक रसकी योजनाकी जाती है। ये सब वात और कफ प्रधान रोगोंमें प्रयोजित होते हैं। यदि प्रकृति पित्तप्रधान हो, मुखपाक दाह स्वेदाधिक्य, निद्रानाश मूत्रमें पीलापन, रक्तस्राव आदि लक्षण तों तो चन्द्रकला, सूतशेखर, शंखभस्म, वराटिका भस्म, शंखवटी, प्रवालपञ्चामृत आदि औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। साथ-साथ रक्त और मांस संस्थानको बल देनेके लिये सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म मण्डूरमाक्षिक भस्म, कासीस भस्म, रौप्य भस्म, त्रिवंग भस्म, अभ्रक भस्म प्रधान औषधियोंका सेवन भी कराया जाता है।

(४) षट्पल घृत

विधि—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और सैंधानमक, सब समभाग मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क १६ तोले, गोघृत ६४ तोले, दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें।
(वृन्द)

मात्रा—६ माशे से १ तोला। दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत विषमज्वर, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहावृद्धि और

गुल्मका नाश करता है एवं भोजनमें रुचि उत्पन्न करता है।

यह घृत दीपन, पाचन ओषधियोंके योगसे बना है। पचन-संस्थानके लिए एवं रस-रक्तादिके भीतर उपस्थित अग्निको प्रदीप्त करनेके लिए सहायक है। जब रोग विष सब धातुओंमें लीन हो जाता है तब उससे उत्पन्न रोग सरलतासे दूर नहीं होता। उस अवस्थामें धातुओंके भीतर रही हुई अग्निको प्रदीप्त करने वाली ओषधि देनेकी आवश्यकता रहती है। इस उद्देश्यको लेकर आचार्योंने इस षट्पल घृतकी योजनाकी है। यह दीर्घकाल व्यापी विषमज्वर, प्लीहावृद्धि और गुल्मको दूर करनेमें अति हितकर माना गया है। इसके सेवनके साथ सर्वज्वरहर लोह, विषमज्वरांतक लोह, संशमनी वटी या अन्य अनुकूल ओषधिकी योजना की जाये तो शीघ्र लाभ मिल जाता है।

(५) दशमूलाद्य घृत

प्रथम विधि—दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, बेलछाल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलू और अरणीकी छाल) १२८ तोले लेकर १६ गुने जलमें चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् रास्ना सोंठ, देवदारु, लाल पुनर्नवा और श्वेत पुनर्नवा समभाग मिला जलमें पीसकर १० तोले कल्क करें। बादमें छाना हुआ दशमूल क्वाथ, उपरोक्त कल्क और १२८ तोले गोघृत मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें। (बं० से०)

मात्रा—आधे से १ तोला। दिनमें २ बार लें।

उपयोग—यह घृत वातोदर, मन्दाग्नि, अरुचि, शूल, श्वास, कास, हिक्का, वातविकारको शमन करके प्राणवायुको बलवान् बनाता है। प्रसूता स्त्रियोंके लिए विशेष लाभदायक है।

दूसरी विधि—दशमूल क्वाथ और दधिमण्ड (दहीका पानी) २-२ सेर लेवें। पीपल, कालानमक जवाखार, आंवला, हींग, बिजोरेकी छाल और हरड़, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क १२½ तोले बनावें। फिर कल्क क्वाथ, दधिमण्ड और गोघृत १ सेर मिला मन्दाग्निपर सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—आधेसे १ तोला तक। दिनमें २-३ बार देवें।

उपयोग—यह घृत हिक्का और कफ सूख जानेपर बनी हुई शुष्क खांसीको नष्ट करता है, श्वास और कास रोगमें कफको बिना कष्ट बाहर निकालता है, मन्दाग्नि, वातविकार, प्रसूतिका रोग, उदररोग इत्यादिमें लाभदायक होता है। शुष्क शरीर वालोंके लिये अति हितकर है।

यह दशमूलाद्यघृत उत्तम वातहर, दीपन, पाचन और सारक है। यह प्रसूतरोग, उदरमें आमसंग्रह पीड़ित हिक्का रोगी और शुष्ककास, पीड़ितों

के लिए अति शान्तिप्रद है। इसके सेवनसे नाड़ियोंमें प्रवेशित आम दूर हो जाता है, फिर वायुकी गति सरलतापूर्वक अव्याहत होती रहती है। एवं उदरमें चिपके हुए मल और आम खुलकर निकल जाते हैं तथा उदरमें रही हुई वायु भी साफ हो जाती है। जिससे बनी रहने वाली व्याकुलता, मस्तिष्कमें उग्रता, शरीरके विविध भागोंमें होने वाली वेदना आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। फिर रोगी शनैः-शनैः स्वास्थ्य लाभ करता है और सबल बन जाता है।

जब तीक्ष्ण या उष्ण औषधि या अफीम प्रधान औषधिका अधिक सेवन होनेपर श्वसन-संस्थानमें कफ सूखकर चिपक जाता है जिससे कासका वेग बार-बार होता रहता है, सोनेके आरम्भमें कास अधिक सताती है एवं थोड़ेसे परिश्रममें श्वास भर जाता है कार्य करनेका उत्साह दूर हो जाता है तब ऐसी अवस्थामें इस घृतका सेवन होनेपर चिपका हुआ कफ सरलता से खुल जाता है। श्वासवाहिनियां और फुफ्फुसस्थ कोषोंमें वायुकी गति प्रतिबन्धरहित होती है। फिर थोड़े ही दिनोंमें श्वास, कासकी निवृत्ति हो जाती है। यदि इस घृतके सेवनकालमें सितोपलादि चूर्ण+प्रवालपिष्टी+श्रृंगभस्मके मिश्रणका सेवन शहदके साथ दिनमें ३-३ बार किया जाय तो लाभ जल्दी मिलजाता है। सेवनकालमें अभ्रकभस्म, रससिंदूर, क्विनाइन, सोमल या सोंठ, मिर्च आदि उष्ण द्रव्योंका सेवन नहीं करना चाहिए।

वायुके आघात या अन्त्र यन्त्रोंकी क्रिया-विकृति आदि कारणोंसे जब महाप्राचीरा पेशीकी गतिमें प्रतिबन्ध होता है या इसकी विपरीत गति हो जाती है तब हिक्का उपस्थित होती है। इस प्रतिबन्धका कारण कफकी शुष्कता और उदरमें वायुप्रकोप तथा आमसंग्रहणी आदि कारण हो (किसी यन्त्रमें गुल्म, विद्रधि, यन्त्रप्रदाह या शुक्रक्षय हेतु न हो), तब इस घृतके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है। साथ-साथ हिक्कान्तक रस, आरोग्यवर्द्धिनी, कनकासव या ताम्रभस्म अथवा किसी प्रकृतिके अनुकूल रोगशामक औषधि का प्रयोग हो तो लाभ जल्दी मिल जाता है।

(६) पञ्चगव्य घृत

विधि—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कूड़ेकी छाल, सतोनाकी छाल, अपामार्ग, नील, कुटकी, अमलतास, कठगूलरके मूल, पुष्करमूल और धमासा ये २४ औषधियाँ १०-१० तोले लेकर ३२ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर भारंगी, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, समुद्रफल, गजपीपल, पीपल, मूर्वा, दन्तीमूल, चिरायता, चित्रकमूल, काला सारिवा (अनन्तमूल), सफेद सारिवा, रोहिष घास, गन्धतृण, चमेलीके पत्ते सब १।-१। तोले मिला जलमें पीसकर कल्क

करें। फिर क्वाथ, कल्कके साथ गायके गोबरका रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत २-२ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—आधासे १ तोला दिनमें २ बार लें।

उपयोग – पंचगव्यघृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर पाण्डु, कामला, भगंदर इत्यादि रोगोंमें लाभदायक है, चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है।

पंचगव्य घृतका प्रवेश धातुओंमें सरलतापूर्वक हो जाता है। मस्तिष्कके भीतर आम, विष, कफ, कृमि या कीटाणुकी स्थिति हुई हो, उसे यह घृत जला डालता है या नष्ट कर देता है। इस हेतुसे रोगीको श्रद्धासह पथ्य-पालनपूर्वक २-४ मास तक इस घृतका सेवन कराया जावे तो भगवान् धन्वन्तरिजी रोगीको निःसंदेह आरोग्यता प्रदान करते हैं। अपस्मार और उन्माद पीड़ित कई रोगियोंको इस घृतका सेवन सफलतापूर्वक कराया गया है और हमें इस घृतने यश दिलाया है।

यह पंचगव्यघृत अपस्मार और उन्मादके रोगीके लिए आशीर्वाद रूप श्रेष्ठ ओषधि है। यद्यपि जीर्णावस्था और तीक्ष्णावस्था दोनोंमें प्रयुक्त होता है। तथापि जीर्णावस्थामें इसके सेवनकी विशेष आवश्यकता रहती हैं। जीर्णावस्थामें लीन विषको नष्ट करने, वायुके प्रतिबन्धको दूर करने, मन और इन्द्रियोंकी विकृतिको दूर कर प्रकृतिको सबल बनाने तथा चिन्ताको नष्टकर मनको प्रसन्न रखनेकी आवश्यकता है। वे सब कार्य इस पंचगव्य घृतसे होते हैं।

(७) जीवन्त्यादि घृत

विधि—जीवन्ती (डोडीकी), मुलहठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, शठी (कचूर) पुष्करमूल, छोटी कटेली, गोखरू, खरेंटी, नीला कमल, भूई-आँवला, त्रायमाणा, धमासा और पीपल १-१ तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करें। फिर कड़ाहीमें कल्कके साथ १।। सेर गोघृत, बकरी या गायका दूध और जल ६-६ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—आधासे १ तोला। दिनमें २ बार सेवन करें।

उपयोग—यह घृत राजयक्ष्मा (क्षय), जीर्णज्वर, कफप्रकोप दाह, निद्रानाश, धातुक्षीणता आदि दोषोंको दूर करता है। क्षयके तीसरे वर्षमें भी इससे लाभ होता है।

राजयक्ष्माके प्रथम वर्षमें जब तक शुष्क कास हो तब तक सामान्यतः इस घृतके सेवनके साथ सूतशेखर+सितोपलादि चूर्ण+कामदुधाका मिश्रण दिन में ३ बार सेवन कराया है।

द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें जयमङ्गल रस, महामृगांक, मृगांक,

वसन्तकुसुमाकर या कामचूड़ामणिका सेवन हितकारक माना है। इसमेंसे रोगहर मुख्य औषधि सेवनके साथ ब्रह्मचर्य और पथ्य पालन पूर्वक यदि इस घृतका सेवन कराया जाय तथा निम्बोलीका तैल प्रातः सायं ५-१० बूंद पतासेमें या केप्सूलमें दे दिया जाय तो रोगी आरोग्य लाभ प्राप्त कर लेता है। इस घृतसे राजयक्ष्माके पीड़ितोंको अच्छा लाभ पहुँचानेके कई उदाहरण मिले है।

(८) अशोक घृत

विधि—अशोककी छाल सेरका चौगुने जलमें क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर नीचे उतारकर छान लेवें। पश्चात् १ सेर जीरेको ४ गुने जलमें (ढक्कनसे ढंककर) पका, आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लें। फिर जीवनीयगणकी औषधियाँ (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी जीवन्ती और मुलहठी), चिरौंजी, फालसा, रसौंत, मुलहठी, अशोककी छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाईकी जड़ प्रत्येक २॥-२॥ तोले लेकर कल्क करें। तत्पश्चात् कल्क, अशोकका क्वाथ, जीरेका क्वाथ, चांवलोंका धोवन २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, भांगरेका स्वरस २ सेर और गोघृत २ सेर लें। सबको कड़ाहीमें डाल शास्त्रोक्त विधि अनुसार पाक करें। घृत छान लेनेपर १ सेर मिश्री मिला लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ तोला, दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत स्त्रियोंके रोगोंका नाशक है। श्वेत, नील और कृष्ण वर्णके प्रदर, गर्भाशयमें शूल, कटिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कामला आदिको नष्ट करता है। शरीरबल, कान्ति और आयुकी वृद्धि करता है।

जब गर्भाशय या अपत्यमार्गके भीतर क्षत या विद्रधि होकर पूयोत्पत्ति होती है, तब नील या नीलकृष्ण (पूय रक्तमिश्रित) दुर्गन्धमय स्राव होता रहता है, व्रण स्थानमें शूल भी चलता रहता है, रोग जीर्ण होनेपर रुग्णा निस्तेज और कृश हो जाती है। इन विकारोंपर बाह्य उपचारके साथ अशोक घृतका सेवन लाभदायक है। धातक्यादि तैल या इतर व्रणरोपण तैलकी पिचकारी गर्भाशयमें लगाते रहना चाहिये।

यदि बीजाशय या बीजाशयनलिकामें विकृति होनेसे मासिकधर्मके समय वेदना होती हो, रजःस्राव पूरा न होता हो तथा प्रदररूपसे स्राव होता रहता हो तो ऐसी स्थितिमें चन्द्रांशु रसके साथ इस अशोक घृतका सेवन २-४ मास तक करानेसे विकार दूर हो जाता है और रुग्णा सबल हो जाती है।

मासिकधर्मकी योग्य शुद्धि न होनेपर विषका प्रवेश रक्तद्वारा मस्तिष्कमें

होता है; नेत्रदृष्टि मन्द हो जाती है तथा शिरदर्द, निद्रावृद्धि और आलस्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं, किसी-किसीको श्वास प्रकोप भी हो जाता है। क्वचित् उन्मादका असर आजाता है। इस रोगपर चन्द्रांशु रसके साथ अनुपान रूपसे इस घृतकी योजना की जाती है।

सामान्यत: ५०-६० वर्षकी आयुमें मासिकधर्मकी निवृत्ति होती है। इसके पहले कुछ समय तक मासिकधर्मकी योग्य शुद्धि नहीं होती। फिर उसी हेतुसे सारे शरीरमें वेदना होना मस्तिष्कमें भारीपन रहना, व्याकुलता और किसी-किसीको स्मृतिनाश और उन्मादका असर होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें चन्द्रांशु रसके साथ अशोक घृतका सेवन कराया जाय तो मासिकधर्मकी शुद्धि होती है और व्याकुलतादि लक्षणोंका दमन हो जाता है।

सूचना—(१) यदि रुग्णाको मलावरोध हो तो मासिकधर्म आनेके पहले मृदुविरेचन देकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये।

(२) मासिकधर्मके दिनोंमें ३ दिन तक शीतल वायुका सेवन, शीतल जलसे स्नान, सूर्यके तापमें घूमना, नेत्रको परिश्रम पहुँचे ऐसा कार्य करना और भारी भोजन ये सब हानिकर हैं।

(९) बृहत्धात्री घृत

विधि—आंवलोंका स्वरस, विदारीकन्दका रस, दूध, शतावरका रस पञ्चतृण (कुश, कास, ईख, मूंज और नरसल) का रस और गोघृत २-२ सेर लें। छोटी इलायची, लोंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कैथ, नेत्रवाला, सिरसकी छाल, जटामांसी, केलेका कन्द, कमलकी जड़को समभाग मिला जलके साथ २० तोले कल्क करें। सबको लोहेकी कड़ाहीमें मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। घृतमें मिश्री और शहद ४०-४० तोले, मुलहठी निसोत जवाखार और विधारेका चूर्ण ५-५ तोले मिला मन्थनकर एक जीव बना लें। (भै० र०)

मात्रा—आधासे १ तोला, दिनमें २ बार चाटें।

उपयोग—यह घृत बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, तृषा, दाह, अरुचि, सोमरोग, पित्तवृद्धिजन्य विकार, वातिकरोगको दूर करके बलवीर्य की वृद्धि करता है। इस औषधिसे सोमरोग और बहुमूत्रमें ठीक लाभ होने लगता है।

(१०) अष्टमंगल घृत

विधि—बच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधानमक और पीपल इन ७ औषधियोंको समभाग मिला जलके साथ पीसकर कल्क करें। बादमें कल्क, ४ गुना गोघृत और १६ गुना जल मिलाकर यथा विधि घृत

सिद्ध करें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ माशा, शकरमें या भोजनके पहले ग्रासमें मिलाकर; दिनमें १ या २ बार देते रहें।

उपयोग—यह घृत २॥ वर्षसे बड़े बालकोंको रोज चटानेसे उनकी बुद्धि बढ़ती है और धारण शक्ति तीव्र होती है तथा पिशाच, राक्षस-भूत आदि की बाधा नहीं होती एवं बालक स्वस्थ और पुष्ट बनता है।

वक्तव्य—जिस बालकका यकृत् बढ़ा हुआ (निर्बल) हो तो उसे घृत-प्रधान औषधि या भोजन नहीं दिया जाता। ३ वर्षसे बड़ो आयु वाले बच्चों को घृत प्रधान औषधि देनेसे मस्तिष्कको जल्दी लाभ पहुँचता है।

(११) ब्राह्मी घृत

प्रथम विधि—ब्राह्मीका स्वरस ४ सेर और गोघृत २ सेर लेवें। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कालीनिशोत, सफेद निशोत, दन्तीमूल, शंखाहुली, अमलतासकी फलीका गूदा, सातलाकी छाल (सिकाकाई) और बायविडंग १।-१। तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करें। फिर सबको ८ सेर जलमें मिला मन्दाग्निपर पचनकर घृत सिद्ध करें। (अ० हृ०)

मात्रा—आध से १ तोला, दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत उन्माद, कुष्ठ, अपस्मार, मगजकी निर्बलता और मन्दाग्नि आदिको दूर करता है। वाणी, स्वर और स्मृतिको बढ़ाता है। बन्ध्या स्त्रीको संतानकी प्राप्ति कराता है। जिन रोगियोंको मलावरोध रहता हो उन रोगियोंके लिये यह विधि हितावह है।

यह घृत वातसंस्थानके लिये बल्य और मस्तिष्क शोधक है। जब मस्तिष्कमें कफसंग्रह होकर भारीपन आजाता है, तब बुद्धि और स्मरण-शक्तिका ह्रास, निद्रावृद्धि, थोडेसे मानसिक प्रयत्नसे मस्तिष्क थक जाना, मुखमण्डल निस्तेज और उदासीन भासना, पचनक्रिया मन्द रहना और मला-वरोध बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब मस्तिष्कको शुद्ध और सबल बनानेके लिये यह घृत आशीर्वादके समान है।

कतिपय विद्यार्थियोंपर परीक्षाके समय अभ्यासका बोझा बहुत बढ़ जाता है जिससे वे रात्रिको पूरी निद्रा भी नहीं ले सकते। उनके स्वास्थ्यकी रक्षा करने और मस्तिष्कको शक्ति देनेके लिये यह घृत उपयोगी है। इसके सेवनसे अनेक विद्यार्थियोंको आशातीत लाभ हुआ है।

नव्य वैद्यकके मतानुसार अपस्मार रोग कीटाणुजन्य है; अथवा अप-स्मार होनेपर मस्तिष्कके भीतर विशेष प्रकारके कीटाणु संगृहीत हो जाते हैं। फिर उनके विषका प्रकोप होनेपर अपस्मारका दौरा होता है। इन कीटाणुओंको मस्तिष्कस्थ कफ या मलसे पोषण मिलता रहता है।

यदि अपस्मारकी प्रारम्भावस्थामें इस घृतका सेवन कराया जाय तथा वैरेचनिक नस्य सुंघाया जाय तो संगृहीत कफ और कीटाणु सब निकल जाते हैं। फिर मस्तिष्कका शोधक होकर रोगका शमन हो जाता है।

मस्तिष्कमें आम, मल या कफका संचय होनेपर उसके विषका रक्तमें प्रवेश होता है। फिर उसी हेतुसे श्वेतकुष्ठ, दद्रु, कण्डू आदि त्वचा रोगकी संप्राप्ति हो जाय तो मस्तिष्क और रक्तका शोधन हो जाता है और उक्त विकार शमन हो जाते हैं।

सूचना—यदि यकृत् निर्बल हो और मल सफेद, दुर्गन्धयुक्त निकलता हो तो घृतका सेवन नहीं कराना चाहिये।

दूसरी विधि—ब्राह्मीका स्वरस या क्वाथ ४ सेर, गोघृत १ सेर तथा बच, कूठ और शंखपुष्पी तीनोंको समभाग मिला २० तोले कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—आधासे १ तोला, दिनमें २ बार लेवें।

उपयोग—यह घृत उन्माद, अपस्मार और बालकोंके बालग्रहको नष्ट कर स्मरणशक्ति, बुद्धि और कान्तिकी वृद्धि कराता है। जिन रोगियोंको मलावरोध न रहता हो उन रोगियोंके लिये यह विधि अति लाभदायक है।

(१२) गन्धक घृत

विधि—गोदुग्ध ८ सेरको गरम करें। उफान आनेपर आधा सेर शुद्ध आंवलासार गन्धकका चूर्ण डालें। ३-४ उफान आ जानेपर दूधको नीचे उतारें। शीतल होनेपर दहीको मिलाकर जमा देवें। दूसरे दिन मन्थनकर मक्खन निकाल घी बना लेवें। छाछमें शुद्ध गन्धक रह जाय उसे अलग निकालकर उपयोगमें लें।

उपयोग—इस घृतमेंसे ६ माशे से १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तविकार, दाह, प्रमेह, दृष्टिमांद्य शिरदर्द, मन्दाग्नि, कब्ज, फोड़ा-फुन्सी और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। मालिश करनेसे सूखी खाज और त्वचारोग नष्ट होते हैं। वातरक्त और गलत्कुष्ठ रोगमें भी यह घृत हितकारक है।

(१३) चांगेरी घृत

विधि—चांगेरी (चूका) का रस, बेलफलकी छालका क्वाथ और खट्टा दही ३-३ सेर, गोघृत १ सेर और सोंठ तथा जवाखार ५-५ तोले लें। सोंठ और क्षारका कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—आधासे १ तोला, दिनमें २ बार।

उपयोग—इस घृतके पिलानेसे गुदभ्रंश रोग दूर होता है। आवश्यकता

पर चूहेकी चरबी गुदभ्रंशपर लगाते रहें। बंगसेनने इस घृतको शूलयुक्त अतिसार नाशक कहा है। आमातिसार, अग्निमांद्य, अरुचि और उदर पीड़ाको भी दूर करता है।

(१४) दूर्वादि घृत

विधि—दूबका मूल, नीलकमल, कमलकी केशर, मजीठ, एलुवा (अभावमें नेत्रबाला), मूर्वा, लोध, खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ, मुनक्का, मुलहठी, हरड़, गम्भारीकी छाल और सफेद चन्दन प्रत्येक १।-१। तोले मिला जलके साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् बकरी अथवा गायका घी १ सेर, बकरीका दूध और चावलोंका धोवन ४-४ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर घृत सिद्ध करें। (यो० र०)

मात्रा—आधसे २ तोले, दिनमें ३ बार चाटें। और जहांसे रक्त निकलता हो वहाँपर अंजन नस्य अथवा पिचकारी दें या मालिश करें।

उपयोग—यह घृत ऊर्ध्व रक्तपित्त, अधो रक्तपित्त और रक्तार्शमें गिरने वाले रक्तको शीघ्र बन्द करता है। स्त्रियोंके रक्तप्रदर और अत्यार्तव रोग को भी दूर करके गर्भाशयको शुद्ध बनाता है। भयंकर बढ़े हुए रक्तपित्तका भी इस घृतके सेवनसे शमन होता है।

इस घृतका सेवन करानेसे रक्तपित्त दूर होते हैं। यदि वमन होती हो तो घृतपान कराना चाहिये। नाकसे रक्त गिरता है तो नस्य कराना चाहिये। कानोंसे रक्त आता हो तो कानोंमें डालना चाहिये। नेत्रसे रक्त आता हो तो नेत्रको घृत पूरित कराना चाहिये। गुदा या मूत्रेन्द्रिय रक्तस्राव होता हो तो बस्ति या उत्तरबस्ति करानी चाहिये। एवं रोमकूपोंसे रक्तस्राव होता हो तो समस्त शरीरपर मालिश करानी चाहिये। इस तरह इस घृतको त्रिविध प्रकारसे उपयोगमें लिया जाता है। बाह्य-स्थानिक प्रयोग करते हुये भी घृतपान तो कराना ही चाहिये। घृतपान कराते रहने में आभ्यन्तरिक दोषकी निवृत्ति सत्वर होती है।

(१५) कल्याण घृत

विधि—इन्द्रायनकी जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सम्हालूके बीज, देवदारु, एलुवा (अभावमें नेत्रवाला), शालपर्णी, धमासा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, चमेलीके ताजे फूल, बायविडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माख इन २८ औषधियोंको १।-१। तोले लेकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोघृत १ सेर और ४ सेर जल मिलाकर यथा विधि पाक करें। (च० सं०)

चक्रदत्तने इस घृत पाकमें दूध द्विगुण और जल चतुर्गुण मिलाकर नाम

'क्षीरकल्याण' घृत रखा है।

मात्रा—आधा से २ तोले, दिनमें २ बार चाटें।

उपयोग—कल्याण घृत अपस्मार, चातुर्थिक ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण-ज्वर, हृदयका कम्प, कास, श्वास, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, वातरोग, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डु, उन्माद, दूषी विष, प्रमेह, भूतबाधा, हिस्टीरिया, बालग्रह, स्वरभेद और स्त्रियोंके बन्ध्यापनको नष्ट करता है तथा आयु, बल, बुद्धिको बढ़ाता है। निःतेजता, पापज रोग, राक्षस और ग्रहोंकी बाधाका विनाश करता है। यह घृत सन्तानोत्पत्त्यर्थ उत्तम वृष्य है।

(१६) जात्यादि घृत

विधि—चमेलीके पत्ते नीमके पत्ते, पटोलपत्र, मैनफल, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलहठी, करंजके पत्ते, नेत्रवाला और अनन्तमूल प्रत्येक १-१ तोला मिला पानीमें घोट लुगदी बना लें। फिर लुगदीसे चार गुना गायका घी और १६ गुना जल मिला मन्द आंचसे पकाकर घृत सिद्ध करें। (शा० सं०)

अनेक चिकित्सक घृत पक जानेपर छान, मोम और नीलेथोथेका फूला १-१ तोला मिलाकर मलहम जैसा घृत बना लेते हैं।

उपयोग—पुराना नाड़ीव्रण (नासूर), व्रण, गम्भीर व्रण, दुष्टव्रण आदि पर इस घीकी पट्टी बांधनेसे बहुत जल्दी आराम होता है।

(१७) नासाकृमिहर घृत

विधि—हींग, आँवलासार गन्धक, मैनसिल, कूड़ाछाल, बच्छनाभ, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सहिजनेके बीज और बायविडंग १०-१० माशे, नीम की निम्बोलीकी गिरी २ तोले और कालीमिर्च ५ माशे लें। सबको गोमूत्र में खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। बादमें ३ पाव गोघृतको कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें। घी पकनेपर टिकिया डालें। टिकियां काली हो जानेपर कड़ाही उतार लें। थोड़ा गरम रहनेपर घृतको छान लें।

(पं० श्री धूलचन्दजी शर्मा, वैद्य)

उपयोग— यह घृत दोनों नथनोंमें ५-५ बूंद रोज सुवह चढ़ानेसे थोड़े ही दिनोंमें नाकमेंसे कृमि मरे हुए गिर जाते हैं, फिर शिरदर्द तथा नेत्रोंकी कमजोरी दूर हो जाती है। जली हुई टिकियाओंको पीसकर व्रण, नाड़ीव्रण आदिमें डालनेसे वे भर जाते हैं।

(१८) मल्ल तैल

विधि—सफेद मल्ल ५ तोले, जायफल २।। तोले और बादामका तैल २० तोले लेवें। पहिले मल्ल और जायफलका कपड़छान चूर्ण करें। फिर

जल मिला पीसकर कल्क (चटनी) बनावें। पश्चात् तैल, कल्क तथा १ सेर जल मिला, कलईदार पीतलके भगोनेमें मन्दाग्निसे तैल सिद्ध कर लें।

मात्रा—१ सींक भरके पानमें खाँय और रात्रिको एक अंगुलीपर लगा इन्द्रियकी सुपारी और सींवनको छोड़कर मालिश करें। फिर उसपर नागरबेलका पान बाँध दें।

उपयोग—इस तैलके सेवनसे थोड़े दिनोंमें शारीरिक निर्बलता दूर होती है। थोड़े सरसोंके तैलमें मिलाकर मालिश करनेसे संधिवात दूर होता है। कफप्रधान श्वासके रोगीको खिलानेसे फायदा होता है। घी खूब खाना चाहिए।

सूचना—तैल खुले स्थानमें निकालें। बिना जल मिलाये तैलपातन यन्त्रसे तैल निकालें। उस समय शीशीमेंसे बहुत दुर्गन्धयुक्त धुआँ निकलता है उससे बचना चाहिये।

(१९) व्याघ्री तैल

विधि—छोटी कटेलीका पञ्चांग, दन्तीमूल, बच, सहिंजनेकी छाल, तुलसीके पत्ते, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और सेंधानमक सब समभाग लें। सबको कूट जल मिला पीसकर कल्क करें। फिर कल्कसे ४ गुना तिलका तैल और तैलसे ४ गुना छोटी कटेलीके पञ्चांगका क्वाथ मिलाकर मन्दाग्निसे तैल सिद्ध करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस तैलको सूंघनेसे पीनस (नाकमेंसे निकलने वाले पीप और दुर्गन्ध), नाकमेंसे श्लेष्मा आना, मस्तिष्कमें कृमि होना आदि रोग दूर होते हैं; तथा इस तैलको पीनेसे कफ दूर होकर खाँसी और श्वासका नाश होता है।

सूचना—पीनेके लिये ताजे तिलके तैलको और सूंघनेके लिये सरसोंके तैलको सिद्ध करना चाहिये।

(२०) चन्दनबला लाक्षादि तैल

विधि—सफेद चन्दन, खरेंटीकी मूल, लाख और लामज्जक (खस) चारोंको ६४-६४ तोले लेकर १०२४ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार छानकर सबको मिला लें। फिर सफेद चन्दन, खस, मुलहठी, सोया, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूट, मजीठ, अगर, नेत्रबाला, असगन्ध, खरेंटी, दारुहल्दी, मरोड़फली, नागरमोथा, मूली, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पाके फूल, सफेद अनन्तमूल, पीलाचन्दन, (पीतक्षार) सेंधानमक और बिड लवण सब समभाग मिलाकर ३२ तोले कल्क करें। तिल तैल १२८ तोले और दूध २५६ तोले लें। सबको कड़ाहीमें डाल मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे कास, श्वास, क्षय, वमन, ज्वर,

कामला, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पाण्डु, पित्त और कफके प्रकोप आदि रोग दूर होकर धातुएं बलवान बनती है। मस्तिष्ककी उष्णता, नेत्रदाह और शरीर दाहका नाश होकर कान्तिकी वृद्धि होती है। खुजली सूजन, फोड़ा-फुन्सी आदि रक्त और त्वचाके दोष दूर होते हैं। बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा स्त्री सबके लिये हितकर है। जीर्णज्वर और पाण्डु रोगमें यह तैल विशेष उपयोगी है। प्रसूता स्त्रियों और बालकोंको इसकी मालिश करते रहनेसे रोग होनेका भय दूर होकर शरीर बलवान बनता है।

(२१) चन्दनादि तैल

प्रथम विधि—सफेद चन्दन, मुलहठी, मूर्वा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलोफर, प्रियंगू, बड़के अंकुर, गिलोय, कमलकी केशर, लोहका चूरा, जटामांसी, सफेद सारिवा, काली सारिवा सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करें पश्चात् ४० तोले कल्क, तिलका मूर्च्छित किया हुआ तैल २ सेर और भाँगरेका स्वरस ८ सेर मिलाकर यथा विधि पाक करें। (च० द०)

उपयोग—इसकी नस्य लेने तथा शिरमें मालिश करनेसे गिरे हुए केश उत्पन्न होते हैं, बाल स्निग्ध दृढ़ मूल वाले और भ्रमरके समान काले हो जाते हैं।

द्वितीय विधि—सफेद चन्दन, नेत्रबाला, नख, कूठ, मुलहठी, छार-छरीला, पद्माख, मजीठ, सरल, (चीड़), देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, जायफल, नागकेशर, तेजपात, बेलकी छाल, शीतल मिर्च, रक्तचन्दन, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, निर्गुण्डीके बीज और नलिका इन ३० औषधियोंको २-२ तोले मिला मस्तुके साथ पीसकर कल्क तैयार करें और पीपलकी लाखका (लाक्षा रसमें कही विधिसे) क्वाथ करें। फिर एक पीतलकी कलई की हुई कड़ाईमें कल्क, ३।। सेर लाक्षा रस, १० सेर मस्तु (दहीका तोड़) और ३।। सेर तिल्लीका तैल मिला मन्दाग्नि यथा विधि पाक करें। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे विशेषतः जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त दूर होते हैं। यह उन्माद, अपस्मार, दाह, शिरदर्द, धातु विकृति आदि रोगोंमें लाभ पहुँचा करके आयु और कान्तिको बढ़ाता है।

(२२) चक्रमर्दादि तैल

विधि—पंवाड़के मूलका कल्क १६ तोले, भाँगरेका स्वरस २५६ तोले और सरसोंका तैल ६० तोले मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। पाक होनें के ५-७ मिनिट पहिले १६ तोले सिन्दूर मिलावें, फिर उतार लें, शीतल होनेपर तैल निकाल लें। (वं० से०)

उपयोग— इस तैलकी पट्टी लगाते रहनेसे भयंकर गण्डमाला नष्ट हो जाती है एवं नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण आदिमें भी लाभ पहुँचता है।

(२३) वातहर तैल

विधि—अरण्डीके बीज, मालकांगनी और एक पोथिया लहसुन १-१ छटांक, भेड़का दूध ३ छटांक और तिल अथवा सरसोंका तैल १२ छटांक लें। इन तीनों औषधियोंको पीसकर दूधमें मिला लें। बादमें कलई की हुई पीतलकी कड़ाहीमें तैल डाल चूल्हेपर चढ़ावें। फिर उस तैलमें औषधिकी छोटी-छोटी पकोड़ी डालते जायें और अच्छी रीतिसे लाल होनेपर निकालते जायँ। अन्तमें तैलको नीचे उतार शीतल होनेपर छानकर बोतलमें भर लें। (श्री पं० मंगूलाल जी)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे वातरोग दूर होते हैं। न्युमोनियामें फेफड़ोंपर मालिश करनेसे फेफड़ोंके दोष दूर होते हैं. कानमें डालनेसे फुन्सियाँ दूर होती हैं, देहके किसी भागमें वातनाड़ियोके प्रदाहसे होने वाली पीड़ा इस तैलकी मालिशसे शान्त हो जाती है। यदि उदरमें वायु भरा हो तो उदरपर इस तैलकी मालिश धीरे हाथसे करायी जाती है। प्रसूताके गर्भाशयपर इस तैलकी मालिश कराते रहनेसे गर्भाशय सबल बनता है। ठण्डी वायुके आघातसे शरीरका कोई भाग रह गया हो और रोग नया हो तो इस तैलकी मालिशसे जल्दी लाभ पहुँचता है। उपयोग करनेके समय एक कटोरीमें निकाल निवाया कर लें। इस तैलको पैरोंके तलवे और गलेके ऊपरके भागमें नहीं लगाना चाहिये।

इस तैलका लगभग १०० से अधिक वर्षोंसे श्री पं० मंगूलालजीके पितामह आदि उपयोग करते आये हैं। साधारण औषधि होनेपर भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

सूचना—जल प्रधान शोथमें वेदना होती हो या न होती हो तो उस शोथपर इस तैलकी या अन्य तैलकी मालिश नहीं की जाती।

(२४) अपूर्व तिला

विधि—सफेद सोमलके १० तोले चूर्णको ७ दिन तक आकके दूधमें भिगो दें। पश्चात् गायके २० तोले घीके साथ सोमलकी ३ दिन घुटाई करें। फिर छोटी कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द अग्नि दें। जब घी बिल्कुल नितरकर ऊपर आ जाय और सोमल नीचे बैठ जाय तब कड़ाहीको नीचे उतार लें। कड़ाही किंचित् गरम रहनेपर सम्हालकर ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ घी दूसरी कटोरीमें ले लें। जो सोमल वाला घी को शेष रहे उसे जमीनमें गाड़ दें। फिर स्वच्छ घी ५ तोले, केशर और कस्तूरी १०-१० रत्ती, जायफल, जावित्री, लौंग और बीरबहूटी ५-५ माशे मिलाकर १ दिन घुटाई करें। (धन्वन्तरि)

उपयोग—यह तिला एक चनेके बराबर लेकर, रातको सोते समय इन्द्रियपर सुपारी तथा सींवनके भागको छोड़कर सम्हाल पूर्वक मालिश करें। फिर नागरबेलके पानको थोड़ा गरमकर उसपर लपेट लें, ऊपर कपड़ा बांधें। इस तरह थोडे दिन मालिश करनेसे हस्तमैथुन या गुदा-मैथुनसे उत्पन्न नपुन्सकता और इन्द्रियका टेढ़ापन दूर होता है।

सूचना—४-६ रोज बाद इन्द्रियपर छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाय तो ३-४ दिन मालिश बन्द करें और धोये घीकी मालिश दिनमें ३-४ बार करें। फुन्सियां मिटें तब फिर तिलाकी मालिश करें। इस रीतिसे १५-२० रोज मालिश करनेसे रोगियोंको आशातीत लाभ होता है।

दूसरी विधि—सफेद सोमल १ तोलेको ३ दिन आकके दूधमें खरल करें फिर मुर्गीके २४ अंण्ड़ोंकी जर्दी मिला छोटी कड़ाहीमें डाल तेज अग्नि पर रखें, कलछीसे सम्हालपूर्वक हिलाते रहे। जर्दी जलकर काली हो जाय और धूआं निकलने लगे, तब उसमेसे तैल अलग हो जाता है। इस तैलको अलग निकाल शीशीमें भर लें। दूसरे दिन शीशीको धूपमें रख देनेसे साफ हो जाता है। (श्री स्वा० हरिशरणानन्द जी)

उपयोग—इस तैलकी इन्द्रियपर मालिशकर ऊपर नागरबेलका पान बांध देवें। यह तैल ४-६ बूंद पताशे या कैपशूलमें डालकर निगल जायें ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। इसके उपयोगसे इन्द्रियकी शिथिलता (किसी भी प्रकारसे उत्पन्न हुई हो) दूर होती है और इन्द्रियका टेंढापन भी दूर होता है।

सूचना—पहिली विधिमें लिखी है।

(२५) मल्लसर्प

विधि—शुद्ध मल्ल ४ माशे, कनेरके जड़की छाल २ तोले, सफेद गुञ्जा ३ तोले और दूध ४ सेर लें। सबको दूधमें औटाकर दही जमा देवें। दूसरे दिन मथकर घृत निकाल लेवें। (अ० यो० मा०)

उपयोग—इस घृतकी मालिश करनेसे हस्तमैथुनजनित शिथिलता दूर होती है। इस घृतको सुपारीको छोड़ लिंगपर मर्दनकर ऊपरसे नागरबेलका पान बांध देना चाहिये। विशेष सूचना अपूर्व तिलामें देखें।

(२६) लिंग तैल

विधि—कस्तूरी ७ रत्ती, कालीमिर्च, अकरकरा, जुन्देबेदस्तर, हींग बढ़िया और बीरबहूटी ५-५ माशे, केशर १ माशा और बिनौलेकी गिरी ७ माशे लें। सबको खरलकर चमेलीके ५ तोले तैलमें मिला लेवें।

उपयोग—थोड़ा-सा तैल लेकर रात्रिको लिंगपर मालिश करें। यह तैल लिंगकी शिथिलताको दूर करनेमें अति लाभदायक है। हस्तमैथुन और

शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकताको दूर करता है।

(२७) चर्मरोगनाशक तैल

विधि—नीमको छाल, चिरायता, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन, हरड़ बहेड़ा, आंवला और अडूसेके पत्ते सबको समभाग लेकर कल्क करें। कल्क से चौगुना तिलोंका तैल और तैलसे चौगुना जल मिलाकर मन्दाग्निपर पकावें। पानी जल जानेपर उतारकर तुरन्त छान लेवें। (स्वा० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे त्वचारोग, ब्यूचो, खुजली, खाज चमड़ी फटना, शुष्क होना, फुन्सी आदि दूर होते हैं। साधारण औषधियोंसे यह तैल बनता है। फिर भी बड़े-बड़े दृढ़ रोगोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

(२८) बिल्वादि तैल

विधि—कच्चे बेलकी गिरी ४० तोले, सरसोंका तैल २ सेर, जल और बकरीका दूध ८-८ सेर लेवें। प्रथम बेलगिरीको गोमूत्रमें पीसकर लुगदी बना लेवें। फिर एक पीतलकी कलईदार कड़ाईमें सबको मिलाकर धीमी आंचसे पकावें। जब लुगदी लाल होने लगे तब उतारकर तुरन्त छान लें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ बूंद ड्रापरसे कानमें डालें।

उपयोग—इससे कर्णशूल, कर्णस्राव, बधिरता आदि कानके रोग मिटते हैं। लोहेकी कड़ाहीमें तैलका रंग काला हो जाता है, इसलिये पीतलका बरतन ही काममें लेना चाहिये।

सूचना—जब कानमें फुंसी होकर पाक हो रहा हो तब बहुधा शूल चलता है। ऐसी अवस्थामें बिल्वादितैल या अन्य किसी भी तैलका उपयोग नहीं करना चाहिये। उस समय धतूरेके पानोंका रस या अन्य वेदनाहर औषधिका रस या क्वाथ डाला जाता है। एवं शीतल जल और शीतल वायुसे कानकी रक्षा करनी चाहिये।

(२९) क्षार तैल

विधि—कोमल मूलियोंका खार, सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, बिड़नमक, साँभरनमक, हींग, सहिजनेकी छाल, सोंठ, देवदारु, कूठ, सोंफ, बच, रसौंत, पीपलामूल और नागरमोथा सब १-१ तोला लेकर कल्क करें। सरसोंका तैल ६४ तोले, केलेके खम्भेका रस, बिजोरेका रस और मधुशुक्त प्रत्येक २५६-२५६ तोले लें। फिर सबको मिला चूल्हेपर चढ़ाकर पाक करें। तैल मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवें। (शा० सं०)

मधुशक्त विधि—नीबूका रस ६४ तोले, शहद १५ तोले और पीपलका चूर्ण ४ तोले मिला एक बोतलमें बन्दकर अनाजकी कोठीमें ३ दिन दबा

देनेसे मधुशुक्त तैयार होता है ।

उपयोग—इस तैलको कानमें डालनेसे सब प्रकारके कर्णरोग, पीप बहना, कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता आदि दूर होते हैं । इनके अतिरिक्त मुखरोग भी नष्ट होते हैं ।

यह तैल कर्णार्शजनित बधिरतापर उपयोगी है । इस तैलके प्रयोगसे कर्णार्शका क्षरण होता है, फिर बधिरता दूर होती है । इस तरह दोषको निकालनेके लिये इसका उपयोग कर्णपाकपर भी होता है । कभी देहके अन्य भागमें व्रण भरने लगे तब मांस-वृद्धि अधिक होती है, उस मांसवृद्धिकी कमी करानेके लिए क्षार तैलका उपयोग होता है ।

(३०) निम्बादि तैल

विधि—निम्बोलीका तैल २।। सेर, हरताल २।। तोले, मैनशिल २।। तोले, चमेलीके पत्ते, मजीठ, मुलहठी, भिलावा, अगर, चन्दनका चूरा, इलायची प्रत्येक ५-५ तोले लेकर इनका कल्क करके तैलमें मिलावें और ५ सेर छाछ (तक्र) डालकर तैल सिद्ध करें ।

उपयोग—इस तैलमें बत्ती भिगोकर भगन्दरके छेदमें रोज रखनेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम होता है । दूसरी जगहके सडे घाव भी इसके उपयोगसे मिटते हैं । इस तैलको योगतरङ्गिणीकारने वल्मीकनाशक लिखा है ।

(३१) चक्रमर्द तैल

विधि—पुंवाड़के बीज, आहलिव (हालो), राई, सरसों, मालकांगनी, तिल और नारियलकी गिरी समभाग लें । नारियलको छोड़ अन्य वस्तुओं को मिलाकर चूर्ण करें । फिर नारियल मिलाकर कोल्हूमें तैल निकलवा लें । फिर इसमेंसे ४० तोले तैलको गरमकर उबलनेपर नीचे उतार लें । आधी गरमी कम होनेपर ५ तोले कपूरका चूर्ण मिलाकर ढक देवें । शीतल होनेपर ८० तोले शेष तैलमें इसे मिला लेवें । अतः १२० तोले तैल हो जायगा । (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस तैलको किञ्चित् गुनगुना कर मालिश करनेसे वात रोगसे जकड़ी हुई कमर, जाँघ, पिण्डी आदि अङ्ग अच्छे हो जाते हैं । यह पुराने रोगियोंको लाभ पहुँचाता है ।

(३२) नारायण तैल

विधि—असगन्ध, खरेंटी, बेलकी छाल, पाढ़, कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, अतिबला (कंघई), नीमकी अन्तरछाल, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरणी ये १३ वस्तुएं ४०-४० तोले लेवें । सबको जौकुटकर ४०९६ तोले पानीमें डालकर काढ़ा करें । चतुर्थांश जल अवशेष रहनेपर उतारकर छान लेवें । इसमें तिल तैल २५६ तोले, शतावरीका रस या क्वाथ २५६

तोले तथा गौका दूध १०२४ तोले मिलावें। फिर कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, खरैंटी, बच, जटामांसी, सेंधानमक, असगन्ध, शैलेय (पत्थर फूल), रास्ना, सोया, देवदारु, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर ४-४ तोले ले कल्क करके मिलावें। फिर कड़ाहीको चूल्हेपर चढ़ाकर मन्द तावपर पाक करें। पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लेवें। (भा० प्र०)

उपयोग—इस तैलका वातशमनार्थ पीने, नस्य, बस्तिकर्म और मर्दनमें उपयोग होता है। वातरोग, पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, उरुस्तम्भ, कटिग्रह वायु, गलग्रह, खंज, चलते समय पैर टेढे पड़ना, अङ्ग सूखना, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होना, वीर्यके साथ रक्त जाना, ज्वर, राजयक्ष्मा, अण्डवृद्धि, अण्डकोषमें शूल चलना, दन्तरोग, शिरोग्रह, पंगुता, स्मृतिनाश, कष्टसाध्य वातरोग, सर्वाङ्गवात, बहरापन, पसलियोंका शूल, ज्वर, क्षय, धातुक्षीणता, रक्तविकार आदि रोगोंमें अति लाभदायक है इसके प्रभावसे वन्ध्याको पुत्र होता है। इसकी मालिश हाथी और घोड़ोंके लिये भी हितकर है।

यह तैल वातनाड़ियोंके क्षोभको दूर कर वातवाहिनियोंको सबल बनाता है। वातके साथ पित्तविकार हो तो भी इस तैलकी मालिश हितावह है। यदि आमदोष हो तो इस तैलकी अपेक्षा विषगर्भ तैलकी मालिश विशेष अनुकूल मानी जायगी।

(३३) कासीसादि तैल

विधि—कासीस, लांगली (कलिहारी), कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधानमक, मैनसिल, कनेरकी छाल, बायविडंग, चित्रकमूल, अडूसेके पत्ते, दन्तीमूल, कड़वी तोरईके बीज, सत्यानाशीकी जड़, हरताल सबको १-१ तोला जलमें पीसकर लुगदी बनावें। फिर तिलोंका तैल ६४ तोले, थूहरका दूध ८ तोले, आकका दूध ८ तोले और गोमूत्र २५६ तोले लें। सबको बड़ी कड़ाहीमें मिलाकर मन्दाग्निसे पकावें। फिर उतारकर तुरन्त छान लेवें। (शा० सं०)

उपयोग—यह तैल अर्शपर लगानेसे मस्से मुरझा जाते है। यह तैल गुदाकी वलीको नुकसान नहीं पहुँचाता। इस तैलको धैर्यपूर्वक ३-४ मास तक लगाते रहना चाहिये।

(३४) लाक्षादि तैल

विधि—पीपलकी लाख ४ सेर, सोया, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, रेणुकबीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, पद्माख खस, सफेद चन्दन, जटामांसी और मजीठ १।-१। तोला लें। तिलका तैल १ सेर और दहीका पानी अथवा मठ्ठा ४ सेर लें। पहले लाखको १६ सेर

जलमें मिलाकर औषधिकृति प्रकरणमें लिखे अनुसार क्वाथ (रस) करें। ४ सेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लें, फिर और वस्तुओंको जलमें पीसकर कल्क करें। पश्चात् कलई की हुई पीतलकी कड़ाहीमें सबको मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करें। तैल शेष रहे तब उतारकर तुरन्त छान लें। (शा० सं०)

सूचना—तैल पाक होनेपर छरीला, नखी, कपूर, कूठ और सफेद चन्दन आदि सुगन्धी द्रव्य १।-१। तोला मिला लेनेसे तैल सुगन्धित बनता है। यह तैल एक साथ ४ गुना बनानेसे अच्छा बनता है और पूरा मिलता है। कम बनानेपर कुछ जल जाता है। तथा कुछ लाखके रसमें मिल जाता है, जिससे कम हो जाता है। इस पाठमें लाख १ सेर, तैल ४ सेर, मठ्ठा १६ सेर लें तो तैल योग्य बनता है।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे जीर्णज्वर, विषमज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, कटिवात, पीठमें कफपित्तसे होनेवाला दर्द, वात-पित्त प्रकोप-अपस्मार, उन्माद, खुजली, शूल, यक्ष व राक्षसका प्रकोप (कीटाणुजन्य ज्वर धनुर्वात् आदि), प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना, गात्र-स्फुरण और क्षय रोगमें हितकर है। इस तैलकी मालिशसे गर्भिणी स्त्री और गर्भ पुष्ट होते हैं, हाथ पैरोंकी जलन दूर होती है, क्षय रोगमें इस तैलकी मालिश करते रहनेसे शक्तिका रक्षण होता है। क्षयरोगमें जब ज्वर मर्यादित (९९° डिग्रीसे कम) हो तब मालिश करें। ज्वर बढ़ जानेपर मालिश न करें।

यह तैल वातवाहिनियों और मांसपेशियोंको सुदृढ़ बनाता हैं; रक्तमें रहे हुए विषको शान्तकर शारीरिक उष्णताको कम करता है तथा त्वचा पुष्ट बनाता है।

सूचना—(१) क्षयरोगमें जब ज्वर मर्यादित (९९° से कम) हो तब मालिश करनी चाहिये। सामान्यत: रात्रिको स्वेद निकल जानेके पश्चात् मालिश कर लेनी चाहिये। यदि बढ़ते हुये उत्तापकालमें मालिशकी जायगो तो त्वचासे बाहर निकलने वाली उष्णता और स्वेदस्रावमें अवरोध होगा। फिर विषवृद्धि हो जायगी।

(२) शीतकालमें तैलको निवाया करके मालिश करनी चाहिये एवं शरीरको शीत न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये। यदि अन्तर्दाह होता हो तो शीतल तैलसे मालिश करनी चाहिये।

(३) मालिश धीरे-धीरे हाथसे मांसपेशियोंको और नाड़ियोंको कष्ट न पहुँचे और सहन हो सके वैसी करनी चाहिये। मालिश सर्वदा सीधे हाथसे करनी चाहिये विपरीत गतिसे नहीं।

(४) इस तैलकी मालिश मस्तिष्कपर नहीं करनी चाहिये। अन्यथा

बाल चिपक जायेंगे और फिर मैल जम जायगा।

(५) मालिश करनेसे त्वचाके छिद्र कुछ बन्द हो जाते हैं। इस हेतुसे दोपहरको अधिक ज्वर न हो तब, तौलियेको गरम जलमें भिगोकर देहको पोंछ लेना चाहिये एवं उस समय तेज-वायु न लगे यह सम्हालना चाहिये।

(३५) घावतैल

विधि—भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन ५-५ तोलेको मिला कर ४० तोले तिलके तैलमें भूनें। ठण्डा होनेपर छान लें।

उपयोग—यह तैल आगन्तुक घाव (छुरी, चक्कू, पत्थर आदिसे चोट लगनेपर खून निकलना) दूर करनेमें अति उपयोगी है। यह तैल साधारण वस्तुसे बना है, परन्तु अति लाभदायक है। इस तैलमें हाथ-पैरका भाग डुबो देनेसे रक्तस्राव तत्काल रुक जाता है और घाव भर जाता है। इस तैलका फोहा बांधनेसे घाव नहीं पकता।

(३६) नाड़ीव्रणहर तैल

विधि—भिलावा और कौंच बीज २-२ तोले, खुरासानी अजवायन, मुर्दासंग, नीलेथोथेका फूला ३-३ तोले और तिलका तैल १॥ सेर लें। पहिले तैलको चूल्हेपर चढ़ावें। उफान आनेपर भिलावा डालकर जलावें। फिर कौंचका चूर्ण और अजवायनका चूर्ण डालें। पश्चात् कड़ाहीको नीचे उतार मुर्दासंग और नीलाथोथा मिलाकर अच्छी रीतिसे घोटें फिर छान-कर बोतलमें भरलें।

उपयोग—यह तैल सब प्रकारके नासूरोंको भरनेमें उपयोगी है। साधारण फोड़ोंके लिये छाननेकी जरूरत नहीं। अनेक नाड़ीव्रणमें रोगियोंको इस तैलके उपयोगसे लाभ हो गया है, जो अनेक वर्षोंसे पीड़ित रहते थे एवं बड़े-बड़े शहरोंके डाक्टरोंकी औषधियां करके निराश हो गये थे, ऐसे रोगियोंका रोग निर्मूल हुआ है।

सूचना—तैलपाक करते समय भिलावेके धूएँसे शरीरको बचाना चाहिये।

(३७) भृङ्गराज तैल

विधि—भांगरेका रस ४ सेर, मंडूर, त्रिफला और अनन्तमूल इन पांच औषधियोंको समभाग मिलाकर २० तोले कल्क और तिलका तैल १ सेर लें। सबको ४ सेर जलके साथ मिलाकर मन्दाग्निसे तैल सिद्ध करें।

(शा० सं०)

उपयोग—दारुणक (शिरपर छोटी-छोटी फुन्सियां होना, केशभूमि कठोर होना, खुजली चलना), अरुंषिका (छोटे-छोटे फोड़े शिरपर होना, पीप निकलना), बाल सफेद हो जाना, इन्द्रलुप्त (बाल झड़ जाना) इत्यादि दोष इस तैलकी मालिशसे दूर हो जाते हैं। इस तैलका अनेक समय हमने

अनुभव किया है। यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(३८) करवीर तैल

विधि—सफेद कनेरका मूल, दन्तीमूल, हल्दी, कलिहारी, चित्रकमूल, सेंधानमक ३-३ तोले, बिजोरेका रस ४ सेर और आकका दूध २० तोले लें। पहली ६ वस्तुओंको जलमें पीसकर चटनी बनालें। फिर एक कड़ाही में सबके साथ सरसोंका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर सिद्ध करें।

उपयोग—भगन्दर और नासूरमें इस तैलका बत्ती द्वारा प्रयोग करनेसे थोड़े ही दिनोंमें दूषित भागका शोधन होकर वे भर जाते हैं। गहरे भागमें शोधनके लिए यह अच्छा प्रयोग है।

(३९) कोशातक्यादि तैल

विधि—कड़वी तोरईका रस २ सेर, तिलका तैल २० तोले तथा कड़वी तुम्बीके बीज और सोंठ ५-५ तोले लें। पहिले तुम्बीके बीज और सोंठका कल्क करें। फिर सबको कलई वाली पीतलकी कड़ाहीमें भरकर मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें। (आ० भि०)

उपयोग—इस तैलकी पट्टी बांधनेसे सड़ा मांस, उपदंशके घावमें कीड़े पड़ गये हों, दुष्टव्रण, भगन्दर आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना—इस तैलमें मोम, सिन्दूर, कपीला और मुर्दासङ्ग मिलानेसे मलहम बनता है जो घावोंको सत्वर भर देता है।

(४०) षड्बिन्दु तैल

विधि—अरण्डीकी जड़, तगर, सोया, जीवन्ती (डोडी), रास्ना, सेंधानमक, भाँगरा, बायबिडंग, मुलहठी और सोंठको समभाग मिला भाँगरेके रसमें पीसकर कल्क करें। बादमें कल्कसे ४ गुना काले तिलका तैल और उतना ही बकरीका दूध तथा तैलसे ४ गुना भांगरेका रस मिलाकर यथा विधि तैल सिद्ध करें। तैल पाक खर न हो जाय यह सम्हालें। (ग० नि०)

उपयोग—इस तैलके नस्यसे शिरोरोगोंमें लाभ होता है और बाल गिरना, दांत हिलना, प्रतिश्याय, नाकके सूजन आदि दोष दूर होकर दृष्टि तीव्र होती है एवं पलित रोग दूर हो जाता है।

नस्य करानेके लिए मनुष्यको चित लिटावें। गलेसे नीचे धड़ ऊँचा रहे इस तरह सिरहाना रखें कि मस्तिष्क पिछली ओर झुकता रहे। फिर ४-६ बूंदें षड्बिन्दु तैलकी डालें। इस तरह योजना करनेपर तैल मस्तिष्कमें पहुँचता है। अन्यथा कण्ठ मार्गसे चला जाता है।

(४१) सिद्धार्थादि तैल

विधि—सफेद सरसों, पीपल, कूठ, गोभी और जटामांसीको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करें। कल्कसे चार गुना सरसोंका तैल और

१६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग—गुदा अथवा योनिमें बस्तिद्वारा इस तैलका प्रवेश करानेसे प्रसूता स्त्रीका रुका हुआ जेर शीघ्र गिर जाता है।

(४२) कटुतुम्बी तैल

विधि—बायविडंग, जवाखार, सेंधानमक, बच, रास्ना, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और देवदारु सबको समभाग मिला कड़वी तुम्बी के रसमें पीसकर कल्क करें। बादमें कल्कसे ४ गुना सरसोंका तैल और १६ गुना कड़वी तुम्बीका स्वरस मिलाकर मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें।

उपयोग—इस तैलके नस्यसे गलगण्ड रोगका शमन होता है। इसके अतिरिक्त नाड़ीव्रण और भगन्दरमें इस तैलकी बत्ती रखनेसे भीतरके विकारका शोधन होता है।

(४३) मनःशिलादि तैल

विधि—मैनसिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, चमेलीके पत्ते और तगर सबको जलके साथ पीसकर कल्क करें। बादमें नीमके बीजों (निबोली) का तैल कल्कसे ४ गुना और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग—वल्मीक (सूजन होकर छोटे-छोटे अनेक छिद्र होना) रोगपर इस तैलकी पट्टी लगानेसे शीघ्र लाभ होता है।

(४४) बालरक्षक तैल

विधि—मकोयके पत्ते, रियाबांसा, करेला, भांगरा, छोटी दूधीका पंचांग और नागरबेलके पान, सबका रस ४०-४० तोले लें। हल्दी, जटामांसी, अगर, कूठ, सुगन्धवाला, असगन्ध, मुलहठी, रक्तचन्दन, जायफल, लौंग सबको समभाग लेकर २० तोले कल्क करें। रस, कल्क और तिलका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें। फिर १ छटांक तैल गरम कर १ तोला कपूर डालकर सब तैलमें मिला लें।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे बालकोंके जीर्णज्वर, तालुकण्टक (बालशोष) निर्बलता, मृद्वस्थि, कण्डु आदि रोग दूर होते हैं।

(४५) धातक्यादि तैल

विधि—धायके फूल, आंवले, तेजपात, जल बेंत, मुलहठी, कमलके फूल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कसीस, लोध, कायफल, तेंदूकी छाल, कच्ची फिटकरी, अनारकी छाल, गूलरकी छाल और कच्चे बेलफल इन १६ औषधियोंको १।-१। तोले मिला कूट चूर्णकर बकरीके मूत्रमें पीस-कर लुगदी बनालें। पश्चात् कड़ाहीमें २ सेर तिलका तैल, ४-४ सेर बकरी

का मूत्र और बकरीका दूध मिलाकर मन्दाग्निपर यथा विधि पाक करें। (च० सं०)

उपयोग—इस तैलका फोहा योनिमें रखने या उत्तर बस्ति (पिचकारी) देनेसे विप्लुता, परिप्लुता, वातला आदि वातज योनिरोग, योनिके भीतर का शोथ, योनिका बाहर उभर आना, योनिशूल, घाव होना, पीप बहना एवं योनिकन्द आदि रोग दूर होते हैं। योनिशूलमें पेडू, कमर, पीठ आदि-पर मालिश भी करनी चाहिए।

(४६) नतादि तैल

विधि—तगर, बड़ी कटेलीका पंचाङ्ग, कूठ, सैंधानमक और देवदारु सबको समभाग मिला जलमें पीसकर ४० तोले कल्क करें। एक कड़ाहेमें कल्क, २ सेर तिलका तैल और कल्कमें कही हुई औषधियोंका क्वाथ ८ सेर मन्दाग्निपर तैल सिद्ध करें। (अ० हृ०)

उपयोग—इस तैलकी पिचकारी लगाने या फोहेको योनिमें रखनेसे विप्लुता (योनिके भीतरको पीड़ा बनी रहना), उदावृत्ता योनि, वातला योनि, योनिशोथ, योनिशूल आदि दूर होते हैं।

गर्भाशय शिथिल होनेपर मासिकधर्म अनियमित आता है, एवं मासिक धर्मके समय शूल निकलना कमरमें वेदना, चारों और दबानेमें पीड़ा होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसी अवस्थामें इस तैलकी उत्तर बस्ति दिनमें १-२ बार देने (१-२ औंस तैल चढ़ाने) तथा कमर, गर्भाशय, पैर आदि भागपर मालिश करनेपर योनिशूल निवृत्त होता है, गर्भाशय सबल होता है और मुखमण्डल तेजस्वी बनता है। यदि योनिमार्गमें बस्ति देना हो तो रुग्णाको बाँयी करवट लेटा, बाँया हाथ पीठकी ओर करा, दाहिना पैर मुड़वावें। अर्थात् सिम्स पोजिशन (Simi' Position)में लेटाकर पिचकारी देवें और आध घण्टे तक लेटे ही रहने देवें। योनि मुखपर रुईका फोहा लगा देवें। बस्ति गर्भाशयमें देना हो तो पलंगपर चित्त लेटा, गर्भाशय और योनिमुख ऊँचा रखवाकर रबरके निर्जन्तुक किये हुए केथेटर द्वारा तैल प्रवेश करावें। इस बस्तिके प्रयोगसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

(४७) बला तैल

विधि—बला (खरैंटी) के मूल, दशमूल, जौ, बेर, कुलथी सबका अलग अलग क्वाथ ८-८ सेर, गोदुग्ध ८ सेर, तिलका तैल १ सेर और निम्न औषधियोंका कल्क २० तोले मिला यथा विधि पाककर तैलको सिद्ध करें। कल्कके लिये मधुरादिगण (काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि मुद्गपर्णी, माषपर्णी गिलोय काकड़ासींगी, वंश-लोचन, पद्माख, मुनक्का, जीवन्ती, मुलहठी और पुण्डरिया, (इनमें जो मिल सके), सैंधानमक, अगर, राल, सरेसका गोंद, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन,

कूठ, छोटी इलायची, कृष्ण सारिवा जटामांसी, छरीला, तेजपात, तगर, श्वेत सारिवा, बच शतावर, असगन्ध, सोया, पुनर्नवाकी जड़ सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करें। (सु० सं०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश या योनिमें संतर्पण करने और पिलानेसे प्रसूताके वातप्रकोप शमन होते हैं। यह तैल गर्भ धारणकी इच्छा रखनेवाली स्त्री और क्षीणशुक्र पुरुषोंके लिये हितकर है। इसके प्रयोगसे धातुक्षीणता, मर्मस्थानपर चोट लगना, टूटे हुए तथा निर्बल हुए अवयव, आक्षेप आदि वातव्याधि नष्ट होती हैं। इसके सेवनसे धातु और यौवन स्थिर रहते हैं।

(४८) महाविषगर्भ तैल

विधि—धतूरेके बीज, निर्गुण्डीके बीज, कड़वी, तुम्बीके बीज, पुनर्नवामूल, अरण्डीके बीज, असगन्ध, पुंवाड़, चित्रकमूल, सहिंजनेकी छाल, काकमाची, कलिहारीकी मूल, नीमकी अन्तरछाल, बकायनकी छाल, दशमूल, (शालपर्णी आदि १० औषधियाँ); शतावर; छोटे करेले; सारिवा; गोरखमुण्डी, विदारीकन्द, सेहुँड, आक, मेढ़ासिंगी, सफेद कनेरकी मूल, पीले कनेरकी मूल, काकजंघाकी मूल; अपामार्गकी मूल, बला, अतिबला, नागबला, महाबला, छोटी कटेली, अडूसेके पत्ते, गिलोय और प्रसारणी इन ४३ औषधियोंको ४-४ तोले लेकर १०२४ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् त्रिकटु, कुचिला, रास्ना, कूठ, पीला सोमल, नागरमोथा, देवदारु, काला बच्छनाभ, जवाखार, सज्जीखार, पंच लवण नीलाथोथा, कायफल पाठा, भारंगी, नौसादर, त्रायमाण, जवासा, जीरा, इन्द्रायण फल इन २६ औषधियोंको १-१ तोले लेकर जलके साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, क्वाथ और काले तिलके ४ सेर तैलको मिलाकर यथा विधि सिद्ध करें। (यो० र०)

वक्तव्य—तैल तैयार होनेपर थोड़ा गरम रहनेपर उसमें कर्पूरका चूर्ण १० तोले मिला लेना चाहिये।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे आम और शूलसह वातरोग सन्धिवात, कटिवात, अर्धांगवात, गृध्रसी, दण्डापतानक आदि वातरोग तथा कर्णनाद, कानसे कम सुनना आदि दूर होते हैं। वेदना शमनार्थ यह उत्तम प्रयोग है।

(४९) लघुविषगर्भ तैल

विधि—काले तिलोंका तैल, भूसीका क्वाथ, कनेरकी जड़का क्वाथ, धतूरेका स्वरस, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस, आकके पत्तोंका स्वरस, जटामांसीका क्वाथ, सबको २५६-२५६ तोले मिलाकर तैल सिद्ध करें। पश्चात् धतूरेके बीज, कूठ, फूलप्रियंगु, बच्छनाभ, सत्यानाशीकी जड़ रास्ना सफेद कनेरकी जड़, मालकांगनी, कालीमिर्च, दन्तीकी जड़, जटामांसी, चित्रकमूल, पीली सरसों, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, अरण्डीकी जड़, लाख, त्रिफला,

मजीठ इन २३ औषधियोंके ४-४ तोलेके बारीक चूर्णको तैलमें मिलाकर ७ दिन धूपमें रखकर छान लेवें। शीतकालमें २१ दिन धूपमें रखना चाहिये। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे महाविषगर्भ तैल प्रकरणमें लिखे हुए वातरोग नष्ट होते हैं।

(५०) चन्दनादि यमक

विधि—रक्तचन्दन, बड़की जटाके अंकुर, मजीठ, मुलहठी, नीले कमल, दूब, पतंग और धायके फूल सबको समभाग मिला दूधमें पीस ४० तोले कल्क करें। फिर तिलका तैल और गोघृत १-१ सेर तथा गोदुग्ध ४ सेर मिलाकर यमक सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग—इस यमकके लेपसे अग्निदग्ध व्रण भर जाते हैं। लगानेके साथ ही तीव्र व्यथा शमन होती है और थोड़े ही दिनोंमें घाव भर जाता है।

सूचना—अग्निदग्ध व्रणको ठण्डे जलसे नहीं धोना चाहिये।

(५१) पीड़ाशामक तैल

विधि—सिरस, धतूरा, निर्गुण्डी और सिताब (सर्पदंष्ट्रा) इन चारोंके पान, मैदालकड़ी, सोंठ, अजवायन, बच, सैंधानमक और कपूर ये १० औषधियां ५-५ तोले, बच्छनाग और कुचिला २॥ तोले और तिलका तैल १२० तोले लेवें। कपूरको छोड़ शेष सब औषधियोंको मिला कूट जलमें पीसकर कल्क करें। फिर कड़ाहीमें तैल डालकर गरम करें। इसमें सब कल्ककी पकौड़ी तल-तलकर निकाल देनेसे तैलमें गुण और सुगन्धी आ जाती है। तैलका रंग हरा हो जाता है। फिर कड़ाहीको नीचे उतार तैलको तुरन्त छान लेवें और उसमें कपूरका चूर्ण मिलाकर ढँक दें। शीतल होनेपर बोतलमें भर लेवें। (श्री गोपालजी कुँवरजी ठक्कर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस तैलका उपयोग वातरोगमें तात्कालिक वेदना शमनार्थ किया जाता है। कभी-कभी चोट लगनेके पश्चात् कुछ कसर रह जाती है। फिर मन्द-मन्द वेदना होती रहती है, कभी-कभी शूल निकलता है। और दीर्घकाल तक त्रास पहुँचता रहता है। इनपर इस तैलकी मालिश और थोड़े सेकसे लाभ पहुँचता है। संधियां खुल जाती हैं, हड्डियोंमें होनेवाली वेदना दूर होती है और ये सब अवयव पहिलेके समान दृढ़ बन जाते हैं।

चोट लगकर रक्त जम जाय, रक्ताभिसरण क्रिया योग्य न हो, वायु प्रकुपित होकर वेदना होने लगी हो ऐसी परिस्थितिमें इस तैलकी मालिश अति हितकर है।

सूचना—जहरी होनेसे इस तैलकी मालिश करनेके पश्चात् हाथोंको अच्छी तरह साबुनसे धो लेना चाहिये।

अंजन प्रकरण

प्राणिमात्रके जीवनके आधार नेत्र हैं। नेत्र निर्दोष होनेसे जीवन सुखमय रहता है। इसलिए नेत्रोंकी औषधियां बनानेमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए और पूरी परीक्षाकर रोगका निश्चय करके औषधिका प्रयोग करना चाहिये। एवं हो सके तब तक नेत्रोंमें तीक्ष्ण औषधियोंका उपयोग नहीं करें।

वर्षाऋतुमें वायुमण्डलके भीतर विविध प्रकारके कीटाणु फैल जाते हैं एवं बड़े शहरोंके वायुमण्डलमें तो रोगोत्पादक कीटाणु बारहों मास वर्तमान रहते हैं। वे कीटाणु वायुके संस्पर्शके साथ नेत्रकी श्लैष्मिक त्वचा बाह्यपटलको लगते रहते हैं। इनमेंसे कितने ही कीटाणु नेत्रवारिद्वारा नष्ट हो जाते हैं। दिनमें पलकके खुलने व बन्द होनेकी क्रिया सतत चलती रहती है। इस हेतुसे आवश्यक नेत्रवारि बाहर निकलकर सतहको सम्हालता रहता है। किन्तु रात्रिके समय पलकोंको क्रिया स्थगित हो जाती है। इस हेतुसे नेत्रकोण या नासारन्ध्रमें प्रवेशित कीटाणुओंको मौका मिल जाता है। जिससे कितने ही कीटाणु वहां दृढ़ स्थिर हो जाते हैं जो शनैः शनैः आबादी बढ़ाकर कुछ दिनोंमें विविध रोगोंकी सम्प्राप्ति कराते हैं। इस उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर शास्त्राचार्योंने सोवीरांजन (सुरमा) का नित्य प्रति अञ्जन और ५ या ८ दिन होनेपर रसांजनका अञ्जन करनेकी आज्ञा की है। (च० सं० सू० ५।१२) तथापि आधुनिक विद्वानोंकी दृष्टिसे निर्दोष नीरोग नेत्रोंमें सुन्दरता दिखानेके लिये अथवा तेज वृद्धि निर्मित्त नित्य प्रति विविध तीक्ष्ण औषध मिश्रित नेत्रांजन डालते रहनेकी प्रथाको लाभदायक नहीं कह सकेंगे। केवल बालकोंके निर्बल नेत्रोंको सबल बनाने के लिये काजल डालनेमें विरोध नहीं है। नेत्रोंमें अवस्थित अन्तर शक्ति सबल होनेपर यदि बाह्य सहायता बिना नेत्र रोगोंकी उत्पत्तिसे संरक्षण कर सकती है तो विविध औषध मिश्रित नेत्रांजनका उपयोग न करना ही श्रेयस्कर माना जायगा। अन्यथा वह शक्ति शनैः शनैः पराधीन और निर्बल हो जायगी। इसके अतिरिक्त जो नेत्रोंकी अच्छी स्थितिमें तीक्ष्ण नेत्रांजन डालकर ज्यादा अश्रुबिन्दु निकालनेका प्रयत्न करते हैं, वे तो नेत्रोंको निःसन्देह हानि ही पहुँचाते हैं।

आहार विहारके दोषोंसे नेत्रोंमें उष्णता बढ़कर रोग उत्पन्न हुआ हो तो कारणभूत मूलदोषका (अपथ्य आहार-विहारका) त्याग करें। पश्चात् मस्तिष्क और नेत्रोंको शान्ति पहुँचानेके लिये खानेकी औषधि और अनुकूल पथ्य भोजनके साथ नेत्रौषधिका उपयोग किया जाय तो लाभ शीघ्र पहुँचता है।

उपदंश, सुजाक आदि रोगोंसे रक्त दूषित होकर नेत्ररोग हुआ हो तो

साथमें रक्तशोधक औषधिका सेवन करना चाहिये। रक्तकी शुद्धि हुये बिना केवल नेत्रौषधिसे कदापि नेत्ररोग दूर नहीं हो सकेगा।

नेत्र रोगोंकी चिकित्सामें निम्न सेक आदि ७ कर्म कहें हैं—

सेकं आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्॥

(१) सेक-जल आदिकी धारासे नेत्रोंको स्वेद देना।

(२) आश्च्योतन—नेत्रोंमें ड्रापर आदिसे अर्क तैल आदि औषधियोंकी बूँदें डालना।

(३) पिण्डी—नेत्रोंपर लुगड़ी बांधना।

(४) बिड़ालक—नेत्रोंके ऊपरके भागमें लेप करना।

(५) तर्पण—नेत्रोंको बन्द रखकर दुग्ध आदि नेत्र तृप्तिकर औषधि भरना। (विशेष विधि चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम खण्डमें हैं)।

(६) पुटपाक—पुटपाक कृतिसे निकाला हुआ स्वरस आश्च्योतन या तर्पणरूपसे नेत्रोंमें डालना।

(७) अञ्जन—परिपक्व दोष होंनेपर औषधिको आंखमें डालना।

इन सबमें अनेक उपविभाग हैं। इन सबको शास्त्रीय ग्रन्थोंसे समझ करके ही नेत्र रोगका उपचार करना चाहिये। बिना समझे उपचार करने पर अनेक समय हानि होनेकी संभावना है।

अञ्जनमें लेखन, रोपण और स्नेहन ऐसे ३ भेद हैं। कलमीशोरा आदि क्षारयुक्त, तीक्ष्ण मिर्च आदि और अम्ल, नींबू रस आदि युक्त अञ्जनको लेखन अञ्जन, हरीतकी आदि कसैले और निम्ब आदि कड़वे रसवाले स्निग्ध अञ्जनको रोपण अञ्जन एवं घी, शहद आदि मधुर रसयुक्त स्निग्ध अञ्जन स्नेहन अञ्जन कहते हैं।

सामान्यतः वातजरोगमें स्निग्ध और उष्ण औषधि, पित्तज व्याधिमें शीतल और मधुर औषधि, कफजमें तीक्ष्ण,, रूक्ष, उष्ण और विशद औषधि एवं सन्निपातज रोगमें तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु और शीतल नेत्रौषधियोंके सम्मिश्रणका उपयोग करना चाहिये।

अञ्जनके लिये सलाई कॉच, स्फटिक आदि धातु या बारहसींगेमेंसे बनी हुई चिकनी, दोनों मुँहकी ओरसे सकुची हुई आठ अंगुल लम्बी बनानी चाहिये। लेखन औषधिके लिये ताँबा, पत्थर, कॉच या बारहसींगेकी सलाई लें। रोपण औषधिके लिये अंगुलीसे अञ्जन करें। अथवा शीशे, लोहे या जस्तेकी सलाई तथा स्नेहनके लिये सोने या चांदीकी सलाई लेनी चाहिये।

नेत्रौषधिका सुबह-शाम अंजन करें। मध्याह्नके समय नेत्रोंमें औषधि न

डालें। अञ्जन काले भागके नीचे करें। पहिले बाँयी आंखमें और फिर दाहिनी आंखमें अंजन करें। वर्षाऋतुके समय बादल न हों तब अंजन करें।

कच्चे दोषमें अंजन, घृतपान, स्नान, गुरु भोजन, क्वाथ आदि औषधिके प्रयोगका निषेध किया है। उपवास करना हितकर है। किन्तु बालक और नाजुक प्रकृति वालोंके लिये मधुर भोजन, भापसे सेक और नेत्रोंपर लेप आदिका उपचार करना चाहिये।

जब अन्तर दोष-वृद्धिके हेतुसे नेत्रपीड़ा बहुत बढ़ रही हो तब नेत्रोंके दोषघ्न अञ्जनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। कच्चा दोष बाहर आ जानेके पश्चात् दोषघ्न औषधिका अञ्जन करनेसे सब दोष नष्ट होकर नेत्र निर्दोष बन जाते हैं। थके हुए, उदावर्त रोगी, बहुत रोये हुए, भयभीत, मद्यपान किये हुए, क्रोध आया हो तब, तरुण ज्वर वाले, अजीर्ण रोगी, शिरोरोगसे पीड़ित और मलमूत्रके वेगको रोकने वालेको अञ्जन नहीं करना चाहिये। अति ठण्डी, अति उष्णता, वायुका अत्यन्त वेग, अत्यन्त बादल हो जाना इन समयोंमें नेत्रोंमें अञ्जन नहीं करना चाहिये अति तीक्ष्ण अञ्जनका दिनमें उपयोग न करें, रात्रिमें ही लगाना चाहिये।

लेखन अञ्जनमें मधुर रसका निषेध है। अन्य रसोंका प्रायः उपयोग किया जाता है। जैसे वातजन्य रोगमें लेखन अञ्जनका उपयोग करना हो तो अम्ल और क्षार द्रव्ययुक्त, पित्तज और रक्तज नेत्ररोगोंमें कड़वे और कसैले द्रव्योंका और कफज व्याधियोंमें कड़वे, तीक्ष्ण और कसैले रसयुक्त लेखन अञ्जन हितकारी हैं। द्वन्द्वज और त्रिदोषज प्रकोपमें दोषानुरूप लेखन अंजनकी योजना करनी चाहिये। लेखन औषधिमें मधुर रसका निषेध होने पर भी शहदमें लेखन, कषाय, रूक्ष और नेत्ररोगनाशक गुण होनेसे लेखन औषधियोंमें मिलाया जाता है। कफज नेत्ररोगोंमें लेखन अञ्जन सुबह, वातजन्य, रोगोंमें सायंकालको और पित्तज तथा रक्तज व्याधियोंमें तीक्ष्ण लेखन औषधि रात्रिको सोनेके समय डालनी चाहिये। प्रथम लेखन, फिर रोपण तत्पश्चात् स्नेहन अञ्जनका उपयोग करना चाहिये।

लेखनके योगसे नेत्र, भाँफणी, नेत्रशिरा, नेत्रपटल, नेत्रवारि नेत्रदर्पण, नेत्रस्रोतसे और शृङ्गाटक (नासा, नेत्र, कर्ण और जिह्वाकी संतर्पणी शिराओंके भीतरके मर्मस्थान) आदि स्थानोंमें रहा हुआ दोष पतला होकर नेत्र, नासा और मुँहसे बाहर निकलकर नेत्र निर्दोष बनते हैं।

रोपणांजन कसैला, कड़वा स्निग्ध, शीतल और वृष्य होनेसे नेत्र दृष्टि को स्वच्छ करता है।

स्नेहाञ्जन (प्रसादाञ्जन) मधुर स्निग्ध होनेसे दृष्टिको स्वस्थ करता है। इस रीतिसे तीनोंके गुण पृथक-पृथक हैं।

(१) नेत्रप्रभाकर अंजन

विधि—शुद्ध काला सुरमा (या सफेद सुरमा) ४० तोले, कपूर १ तोला छोटी इलायचीके दाने ३ माशे, शीतलचीनी ३ माशे, सफेदमिर्च १॥ माशे और मोतीकी पिष्टी ६ माशे लें। कपूरको छोड़ शेष सबको गुलाब जलमें ३ दिन खरल करें फिर कपूर मिला १ दिन खरल करके शीशीमें भर लेवें।

वक्तव्य—हम सुरमेको पहिले त्रिफलाके फाण्टमें ७ दिन तक खरल करके मिलाते हैं।

उपयोग—इस नेत्रांजनका दिनमें दो बार अञ्जन करनेसे उष्णता, पानी गिरना, कमजोरी आदि दोष दूर होकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

(२) कृष्ण नेत्रांजन [नयनामृतांजन]

विधि—शुद्ध शीशा ५ तोला लेकर रस करें। रस होनेपर कड़ाही नीचे उतार पारा ५ तोले मिलाकर खरल करें। पारा मिलजानेपर शुद्ध काला सुरमा २० तोले मिलावें। फिर कपूर १। तोले डाल ६ घण्टे खरल करके शीशीमें भर लेवें। (यो० त०)

वक्तव्य—कपूर १। तोला मिलानेपर नेत्रदाह और अधिक नेत्रस्राव होता है। हम अतः निर्दोष मात्रामें ६ माशा डालते हैं।

उपयोग—इस नेत्रांजनका दिनमें २ बार उपयोग करनेसे जलन, तिमिर, धुन्ध, फूला, काचबिन्दु, मांसवृद्धि आदि नेत्ररोग दूर होते हैं और नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

(३) रक्तनेत्रांजन

विधि—सिन्दूर ८ तोले, शोरा १ तोला और सफेदमिर्चका चूर्ण ३ तोले लें। सबको मिला ३ दिन खरल करें। (ग्रा० नि० मा०)

उपयोग—बबूलादि स्वरसवाली सलाईपर रक्तनेत्रांजन लगाकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रशोथ, फूला, लाली, जलन, कुकूणक, मांसवृद्धि, तिमिर आदि दोष दूर होते हैं। बालकों तथा बड़े मनुष्यों सबके लिये हितकर है। नेत्रोंके ऊपरकी सूजन २-४ रोजमें ही दूर हो जाती है। मांसवृद्धिको थोडे दिनमें कम कर देता है।

(४) बबूलादि स्वरस

विधि—बबूलकी हरी पत्ती कांटा कचरा रहित १ सेर, जल १० सेर, पापड़खार (लोटिया सज्जी) और सेंधानमक १०-१० तोले मिलाकर गरम करें। पानी ४ सेर रहे तब उतार मलकर छान लें। फिर जलको पीतलके कलईदार बरतनमें डालकर पकावें। आधेसे अधिक पानी कम होनेपर शहद १ सेर डालकर मन्दाग्निसे पाक करें, शहद जैसी चाशनी बनालें।

चाशनी पतली रहनेसे सड़ जाती है। कड़ी हो जानेपर अञ्जनमें उपयोगी नहीं होती। नेत्रोंमें स्वरसवाली सलाई फिरानेसे ओषधि फैल जाय ऐसी चाशनी चाहिये। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस स्वरसके अञ्जनसे नेत्रोंकी लाली, पानी गिरना, मल आना, खड्डा होनेसे पीप बहना, कुकूणक, शोथ ये दूर होते हैं। छोटे-छोटे (१ मासके) बालक और बड़े मनुष्य सबके लिये हितकर है; विशेष बढ़े हुए रोगमें रक्त नेत्रांजनके साथमें प्रयोग करें और नेत्रके ऊपर रसांजनादि लेप लगावें तो जल्दी आराम होता है।

(५) नेत्र बिन्दु

विधि—अनार दाना ४ तोले लेकर गुलाब जल २० तोलेमें शामको भिगो दें, सुबह मलकर छान लें। फिर फिटकरीका फूला ६ माशे, नीलेथोथेका फूला ४ रत्ती, रसौंत ६ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा; कपूर देशी १ माशा लें। सबको पीस उपरोक्त गुलाब जलमें मिलाकर दिनमें २ या ३ बार हिला देवें। तीन दिन बाद फिल्टर पेपरसे छान लेवें।

उपयोग—इस अर्ककी २-३ बूंदें दिनमें दो बार डालते रहनेसे नेत्रोंकी लाली. खुजली, पानी गिरना, जलन होना इत्यादि रोग २-३ दिनमें दूर होते हैं।

(६) रसकेश्वर गुटिका

विधि—शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, सेंधानमक, नीलेथोथेका फूला, सोहागेका फूला, सोंठ, मिर्च, पीपल सबको समभाग मिला नींबूके रसमें ७ दिन खरल करके वर्ति बना लें। फिर शहदमें घिसकर अञ्जन करें। (वैद्यामृत)

उपयोग—यह गुटिका फूला, धुन्ध, जाला, नये मोतिया बिन्दु और नेत्र वायु आदि पर लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इस अञ्जनसे सन्निपातकी बेहोशी दूर होकर रोगी जल्दी होशमें आ जाता है।

(७) चन्द्रोदया वर्त्ति

विधि—हरड़, बच, कूठ, पीपल, कालीमिर्च, बहेडेकी मींगी, शंखनाभि और मैनसिल सबको समभाग मिला कपड़छान चूर्ण करें। फिर दो दिन खरल करें। पश्चात् बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरलकर वर्ति बना लें। शंख नाभिको अलग खरलकर बारीक होनेपर मिलानी चाहिये। (वृन्द)

उपयोग—यह उत्तम लेखन अञ्जन है। मांसवृद्धि और कफवृद्धिको दूर कर दृष्टिको स्वच्छ बनाता है। इस वर्त्तिको शहदमें घिसकर आंखोंमें लगानेसे फूला मिटता है। नेत्रमें मांसवृद्धि और रतौंधीको नष्ट करती है।

तिमिरमें भी लाभदायक है।

मस्तिष्क और नेत्रमें उष्णता हो तो सप्तामृत लोहका सेवन कराना चाहिये या सुवर्णमाक्षिक भस्म, वंशलोचन, त्रिफला और मुलहठी मिला घृत और शहदके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

(८) अञ्जन रस [सन्निपातहर अञ्जन]

विधि—पारद, गन्धक, लोहभस्म और पीपल १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा १२ तोले लेकर २१ दिन तक जम्भीरी नींबूके रसमें खरल करके सोगठी बना लें।

उपयोग—यह अंजन सन्निपातके तन्द्रा आदि विकार और सर्पविषमें निद्रा आना आदि दोषको दूर करता है, रोगी सचेत होता है।

(९) दार्व्यादि रसक्रिया

विधि—दारुहल्दी, परवलके पत्ते, मुलहठी, नीमकी अन्तरछाल, पद्माख, नीलोफर, पुण्डरिया इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। रात्रिको ४ गुने जलमें भिगो, सुबह मन्दाग्निपर बरतनके मुंह को ढककर, क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब नीचे उतारकर छान लें। पुनः रसका पाक करें। और सम्हालपूर्वक चलाते रहें। रबड़ी जैसा गाढा हो जाय तब नीचे उतार लें। शीतल होनेपर चतुर्थांश शहद मिलाकर खुले मुंहकी शीशी या अमृतबानमें भर लें। शहदके स्थानमें बंगसेनने शहद और मिश्री ८-८ वां हिस्सा मिलानेको लिखा हैं।

उपयोग—इस रसांजनके अञ्जनसे दाह, जल गिरना, रक्त प्रकोपजनित पीड़ा (नेत्रोंकी लाली) आदि रोग दूर होते हैं।

(१०) नेत्रसुदर्शन अर्क [पलाशांजन]

विधि—पलाशकी ताजी जड़ ३ सेर सुबह मँगाकर ऊपरसे मिट्टी लगी हो उसे साफकर लेवें जलसे नहीं धोवें। फिर एक एक इञ्चके टुकड़े करा नलिकायन्त्र अथवा आकाशपातन यन्त्रद्वारा अर्क निकाल लें। जड़ लाने और अर्क निकालनेकी क्रिया एक ही दिनमें होनी चाहिए। दूसरे दिन अर्क बहुत कम निकलता है। नलिकायन्त्र द्वारा अर्क अच्छा निकलता है, आकाशपातन यन्त्रसे अर्क थोड़ा निकलता है, और किसी किसी समय जल भी जाता है। अर्क यदि जला हुआ निकलेगा तो नेत्रोंमें जलन ज्यादा करेगा और फायदा कम होगा। (स्वा० अखण्डानन्दजी)

सूचना—वर्षाऋतुमें अर्क निकालना हो तो पलाशके मूलको १ दिन रहने दें। फिर दूसरे दिन अर्क निकालना चाहिये। अन्यथा अर्क बहुत कमजोर निकलता है और वहुत जल्दी खराब हो जाता है। शीतकालमें अर्क

निकाला जाय तो पूरा निकलता है और दीर्घकाल तक टिकता है।

उपयोग—इस अर्ककी २-३ बूंदें दिनमें ३ बार नेत्रोंमें डालनेसे नेत्रोंके सब प्रकारके रोग—लाली, तिमिर, कमजोरी, दाह, रतौंधी आदि दूर होते हैं। इस अर्कसे हजारों मनुष्योंके चश्मे उतर गये हैं। इस अर्ककी ३-४ बूँदें नागरबेलके पानमें डालकर दिनमें २ बार खानेसे धातुविकार दूर होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है।

मोतियाबिन्दु प्रारम्भ हुआ हो और शनैः शनैः बढ़ने वाला हो तो इस अर्कके ४-६ मास तक उपयोग करनेपर दृष्टिमणिकी अपार दर्शकता दूर होकर मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

(११) पथ्यादि अञ्जन

विधि—हरड़की मींगी ३ भाग, बहेड़ाकी मींगी २ भाग और आंवलों की गुठलीकी मींगी १ भाग लें। सबको मिला जलमें ६ घण्टे खरल करके वत्तियाँ बना लें। (यो० र०)

उपयोग—इस बत्तीको जलके साथ घिसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रों की लाली भयंकर अश्रुस्राव, कष्ट साध्य नेत्रपाक इत्यादि रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं।

(१२) चन्दनादि वर्त्ति

विधि—रक्तचन्दन, सोनागेरु, लाख, चमेलीकी कली, चारोंको समभाग मिलाकर महीन पीसें। फिर गुलाब जलके साथ ६ घण्टे खरल करके बत्तियाँ बना लें। (बं० से०)

उपयोग—इस बत्तीको जलमें घिसकर अंजन करनेसे व्रणशुक्र (घावयुक्त फूला (Corneal Ulcr) नेत्रोंमें घाव होकर पीप आना, नेत्रोंकी लाली, खुजली आदि रोग नष्ट होते हैं।

(१३) पुष्पहर अंजन

विधि—कलमीशोरा ४० तोलेको पत्थरकी खरलमें शुद्ध शीशा धातुके बत्तेसे ४० दिन तक गुलाब जलके साथ खरल करें। फिर २ तोले कपूर मिलाकर ६ घण्टे खरल करके नेत्रांजनको शीशीमें भर लें।

कितने ही चिकित्सक गुलाब जल और कपूर नहीं मिलाते। समुद्रझाग १६ वां हिस्सा मिलाकर ७ दिन घोट लेते हैं। यह नेत्रांजन तेज होता है, परन्तु लाभ अधिक करता है।

उपयोग—यह अजन फूला, कुकूणक, लाली, तिमिर, खुजली वर्म (नेत्र के सफेद, भागमें मांसवृद्धि), अजका जात (नेत्रके काले भागमें मांसवृद्धि), रतौंधी, अश्रुस्राव, नेत्रार्बुद, दृष्टिमांद्यको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

लेप-मलहम-सेक-धूम्र प्रकरण

व्रण, विद्रधि, शोथ, अस्थि-भंग, चोट, शूल आदिमें लेप, मलहम आदि औषधियोंका उपयोग होता है। व्रण चिकित्साका क्रम निम्नानुसार शास्त्र-कारोंने दिखाया है।

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः।
तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः ॥
पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपणमिष्यते।
सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमाः मताः ॥

पहिला शोथहर लेप, दुसरा जौंक आदिसे रक्त निकालना, तीसरा पकानेके लिये पुल्टिस आदि उपचार, चौथा शस्त्रसे चीरकर पीप और दूषित रक्त आदिको निकाल देना, पांचवाँ घावका शोधन, छट्ठा घाव भरना और सातवाँ पूर्ववत् त्वचाका रंग लानेका प्रयत्न करना ये क्रमशः व्रणके चिकित्सोपचार है।

इस नियमानुसार पहिले अपक्व शोथ या गाँठको बैठानेके लिये लेप. सेक और औषधियोंके क्वाथोंके तरडे देने चाहिये। इनमें भी पित्तज व्याधि हो तो सेक न करें। जो रक्त निकालने योग्य हों, उसमेंसे दूषित रक्तकी जौंके लगवाकर निकाल देना चाहिये। जो बैठानेके अयोग्य हों, उसे पकाने के लिए लेप करना चाहिये या पुल्टिस बाँधना चाहिये। पकनेपर पीप और दूषित रक्तको निकालकर घावको निर्दोष करने वाले तथा सुखाने वाले मलहम आदिको लगाना चाहिये। फिर घावको भरकर त्वचाको पूर्ववत् रंग लाने वाले मलहम या घृत तैल आदिका प्रयोग करना चाहिये।

लेपके चूर्ण अथवा गोलीको गरम जलके साथ पीस. लेपकर ऊपरसे रुई लगा दें जिससे लेप जल्दी सूखकर फट न जाय। लेप वाला भाग खुला रहनेसे पूरा लाभ नहीं मिलता।

पहिले समयका लेप सूखनेपर नया लेप लगाना चाहिये। परन्तु नया लेप लगानेके पहिले विशेष सावधानीसे पुराने लेपको गरम जलसे धोकर सूजन वाले भागको साफकर लेना चाहिये अन्यथा नये लेपका असर शीघ्र नहीं होगा। कारण पहिले वाले लेपने जो दूषित परमाणु रोगमेंसे खींचे हैं वे सब पहिले वाले लेप साथ मिले हुए बाह्य त्वचापर ही लगे रहते हैं।

वायु सूजनपर रात्रिको लेप नहीं लगाना चाहिये और किया हुआ लेप गिर जाय तो उसे उठाकर फिर नहीं लगाना चाहिये। दिनमें लेपको सूखने पर बार-बार हटा दें। किन्तु गांठपर बैठानेका गाढा लेप किया हो उसे रात्रिमें ही रहने दें। पकानेके लिए गांठपर रात्रिको भी लेप अवश्य करें।

फोड़ा पकानेके लिये बाँधी हुई पुल्टिस २-३ घण्टेपर बदलते रहें तो फोड़ा जल्दी पकता है। अधिक समय पुल्टिस रहनेसे फोड़ा जल्दी नहीं पकता। अस्थिभंगका लेप २-३ दिन अथवा अधिक दिनके बाद खोलकर बदलना चाहिये।

वातज शोथमें स्निग्ध, अम्ल और नमक मिश्रित लेप, पित्तजमें स्निग्ध, शीतल और दूध मिश्रित लेप तथा कफज व्याधियोंमें गोमूत्र और अन्य क्षार मिश्रित निवाया लेप करना चाहिये।

वायुकी सूजनपर गरम जलकी भाप देकर फिर लेप लगानेसे शीघ्र आराम होता है। कफप्रकोपके शमनके लिये लेप लगाकर ऊनी वस्त्र लपेट देना चाहिये और ठण्डी वायुसे भी रक्षण करना चाहिये।

(१) दोषघ्न लेप

विधि—सहिंजनेकी छाल, सोंठ, सरसों; पुनर्नवाकी जड़ और देवदारु सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर काँजी या खट्टी छाछ मिलाकर चटनी जैसा पीसकर मोटा लेप करें। (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वात और कफसे उत्पन्न होने वाले शोथ और गाँठ को दूर करनेके लिये उत्तम हैं। विष शोथपर गोमूत्रमें मिलाकर लेप करना चाहिए।

(२) दशांग लेप

विधि—सिरसकी छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ और खस इन दस औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपको जलमें पीस चूर्णसे $\frac{1}{5}$ हिस्सा घी मिलाकर मोटा लेप करें, ऊपर रुई चिपका दें। यह लेप उग्र विस्फोटक, विसर्प, दाह, विषदोष, शोथ, सर्वाङ्ग शोथ, व्रण-शोथ, सिरका दर्द, दुष्ट व्रण आदि को दूर करता है।

पामा और ब्यूचीपर दशांग लेप हितकारक है। इन रोगोंमें दशांगलेप के साथ समान सोनागेरू मिला, गुलाबजलमें चटनीके समान पीसकर लेप लगाते रहनेसे दाह कण्डूसह विकार शमन हो जाता है। दो-चार रोजमें विषका आकर्षण होकर पामाव्रण और ब्यूची सूख जाते हैं।

यह लेप पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथपर लाभ पहुँचाता है। वृषणपर शोथ आनेपर दशांग लेपके साथ निर्गुण्डीके पान मिला पीसकर लेप करने से शोथका शमन हो जाता है।

ज्वरमें १ तोला दशांग लेपको १०-१५ तोले शीतल जलमें मिला, उसमें कपड़ेको भिगो उसकी पट्टी कपालपर रखनेसे शिरदर्द और ज्वरका वेग

कम हो जाता है। यू० डी० कोलनके बदले इसका प्रयोग अच्छा है। ऐसा पं० यादव जो त्रिकम जी आचार्यका अनुभव है।

(३) बीजपूरजटादि लेप

विधि—बिजौरेकी जड़, जटामाँसी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अरनी को समभाग मिला काँजीमें पीस लें। (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वातज शोथको दूर करनेमें उत्तम है, गलेकी सूजन भी शमन करता है।

(४) मधुकादि लेप

प्रथम विधि—मुलहठी, रक्त चन्दन, मूर्वा, नरसल, पद्मकाष्ठ, नेत्रवाला खस और कमलको समभाग लेकर दूधमें पीस लें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपसे दाह सह पित्तज शोथका शमन होता है।

द्वितीय विधि—मुलहठी, त्रिफला, मोरबेल, दारूहल्दीकी छाल, नीला कमल, नेत्रवाला, लोध और मजीठ इन १० औषधियोंको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—यह लेप पित्तप्रकोपज दोषोंपर हितकारक है। इसे बकरीके दूधमें पीसकर लेप करें। मसूरिका (शीतला) के फोड़े आँखमें होनेपर नेत्रों के ऊपर लेप करें और दूधमें पतला प्रवाही बनाकर नेत्रोंमें थोड़े-थोड़े बून्द डालनेसे फोड़े अच्छे हो जाते है। ऐसे ही शरीरके किसी भी भागमें उत्पन्न पित्तजशोथपर यह उपयोगी हैं।

(५) कृष्णादि लेप

विधि—पीपल, पुरानी खली, सहिजनेकी छाल, नदीकी रेत और हरड़ को समभाग मिला गोमूत्रमें पीसकर कल्क करें पश्चात् थोड़ा गरम करके बाँध देवें।

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कफज शोथ नष्ट होता है।

(६) द्विनिशादि लेप

विधि—हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, हरड़, दूबका मूल, साठोकी जड़, खस, पद्मकाष्ठ, लोध, सोनागेरू और रसौंत सबको समभाग मिला जलमें चिपचिपा हो तब तक पीस लें।

उपयोग—यह लेप चोट लग जानेसे आये हुए नये शोथ और रक्तज शोथका शमन करता है।

अभिष्यन्दी व गुरु भोजन अत्यधिक कर लेनेपर अपचन हो जाता है एवं मल अन्त्रमें चिपक भी जाता है। फिर उदरमें वेदना होने लगती है। उसपर मालिश करने और शुष्क सेक करनेपर अन्त्रके भीतर शोथ आजाता है।

फिर जुलाब और बस्ति देनेपर भी उदर शुद्धि नहीं होती, बार-बार वमन होती रहती है, जल पीनेपर भी वान्ति हो जाती है, उदर अति कठोर बना रहता है। इस प्रकारके उदावर्त (Intestinal Obstruction)में डाक्टरी मत अनुसार शस्त्र चिकित्सा ही एक मार्ग है। उसके लिये द्विनिशादि लेप को जलमें पीसकर उदरपर लेप करने और सूखनेपर उसे हटाकर पुनः नया लेप करते रहनेसे एक ही दिनमें उदर नरम होकर मल मूत्र आदिकी योग्य प्रवृत्ति होने लगती है।

(७) कुष्ठहर लेप

प्रथम विधि—हरड़, करंज के बीज, सरसों, हल्दी, सफेद गुञ्जा (चिरमी) सैंधानमक और वायबिडंग, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें करके लेप करें।

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कुष्ठके सफेद दाग, व्यूची, दद्रु खाज आदि रोग दूर होते हैं।

दूसरी विधि—आँवलासार गन्धक, कासीस, हरताल, हरड़, बहेड़ा और आँवला, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके गोलियां बनावें। (र० चं०)

उपयोग—इस लेपको गोमूत्र अथवा जलमें घिसकर लगानेसे मुंहपरके कुष्ठके सफेद दाग दूर होते हैं।

(८) व्रणशोधक लेप

प्रथम विधि—सिरसके बीज, मैनफल, जंगाल, रेवाचीनी, प्याज और नीमके पत्ते प्रत्येक एक एक तोला और एलुवा, गूगल, अलसी और मेथी ६-६ माशे लें। सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर तेज शराब या गर्म पानीमें मिला गरमकर लेप करनेसे भयंकर पीड़ा और शोथयुक्त कठिन फोड़ा पककर जल्दी फूट जाता है।

दूसरी विधि—साबुन, रेवाचीनी, गूगल और मैनफलको पीस कपड़ेकी पट्टीपर लगाकर गरमकर बाँधनेसे फोड़ा फूट जाता है।

वक्तव्य—पहिले नीम, करंज, अरंडी और तुलसी सबके पत्तोंको जलमें उबालकर भाप देनेसे पीड़ा दूर होकर सूजन उतर जाती है और गांठ नरम हो जाती है।

तीसरी विधि—नीलेथोथेका फूला, पत्थरका कोयला, सज्जीखार, हल्दी, सैंधानमक एक-एक तोला और साबुन २ तोले लेवें। सबको घीकुंवारके रसमें मिला गरम करके लेप करें। इसे फोड़ेके मुंहपर लगानेसे जल्दी फूट जाता है। लेप लगाकर ऊपर पट्टी बाँधें।

(९) प्रतिसारणीय क्षार

विधि—एक सेर लोटिया सज्जी और दो सेर चूना बिनाबुझा मिलाकर १ हांडीमें भरें। फिर पानी १ मन मिला लकड़ीके डण्डेसे खूब चला, हाँडीको ५ दिन तक खुले मैदानमें रहने दें। दिनमें एक दो बार रोज डन्डेसे चला दें। फिर छठे दिन ऊपरसे स्वच्छ पानी लोहेकी कड़ाईमें निकालकर चूल्हेपर चढ़ावें। आधा सेर जल शेष रहें तब लहसुनका रस ४ तोले मिलाकर मन्दाग्निसे पकावें। आधा जल (२० तोले) शेष रहनेपर कड़ाहीको नीचे उतार फिर क्षारको शीशोमें भर लें। (र० सा०)

उपयोग—यह क्षार पके फोड़े और प्लेगकी गाँठपर लगानेसे गांठोंको फोड़कर बिठा देता है। सड़े हुए घावपर लगानेसे दोषको जला देता है। बवासीरके मस्से अथवा कुष्ठके दागपर लगानेसे तुरन्त उननी जगह उपड़ जाती है और घाव हो जाता है। इस घावपर गरम घी लगानेसे पीड़ा शांत हो जाती है। दोषोंको जलानेके लिये यह उत्तम औषधि है।

सूचना—यह क्षार तेजाब जैसा है। इसलिये हाथ नहीं लगाना चाहिये, और जहाँ लगता है वहाँ बहुत जलन होती है। जलन दूर करनेके लिये धोया हुआ घृत लगावें। देश, काल और रोगीकी प्रकृतिका विचार करके उपयोग करें। इस क्षारसे सूजन आ जाती है, कभी-कभी बुखार भी आ जाता है।

(१०) अंगुलीपाकहर लेप

विधि—सोमल, सोहागेका फूला और नीलाथोथेका फूला एक-एक तोलेका बारीक चूर्णकर गीला गन्धाबिरोजा ६ तोले मिला लें।

उपयोग—अगुलीपाक (Whitlow) जो कीलोंकी तरह गड़ता रहता है, उसपर इस लेपकी पट्टी लगानेसे दर्द दूर होता है और पककर कील निकल आती है। कील भीतरसे निकली हुई देखनेमें आवे उसे कैंचीसे काट देनी चाहिये। कील काटनेके बाद सादा मलहम लगानेसे घाव भर जाता है।

(११) अंजननामिकाहर लेप

विधि—रसौंत, सोंठ, कालीमिर्च और पीपलको समभाग मिला जलमें खरल करके सोगठियां बना लेवें।

उपयोग—आँखकी भापणीपर होनेवाली फुन्सीपर जलमें घिसकर इसे लगानेसे फुन्सी दूर होती है।

(१२) तुत्थादि लेप

विधि—नीलेथोथेका फूला १ तोला, काबुली हरड़का छिलका, भाँग, चूना और सफेद कत्था दो-दो तोले मिला, घोटकर जलमें सोगठी बनावें या

सबसे चौगुना धोया घी मिलाकर मलहम बना लें ।

उपयोग—इस सोगठीको धोये घीमें मिलाकर लगानेसे मुंहपर तथा दूसरे भागोंमें होने वाली फुन्सियाँ दूर होती हैं ।

(१३) कंकुष्ठादि लेप

विधि—मुर्दासंग, नीलेथोथेका फूला, सफेद कत्था, जली सुपारी, हरड़ और उसारेरेवन्दको समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें ।

उपयोग—यह लेप पिटिकाए और फोड़ोंपर हितकारक है । इस चूर्णको फुन्सियोंपर धोये हुए घीके साथ अथवा पानीमें मिलाकर लगावें । फूटे हुए फोड़ोंपर सूखा चूर्ण डालें ।

(१४) अस्थिसंधानक लेप

विधि—एलुवा, हीराबोल, गूगल, कुन्दरू, गूजर (अजरूल-Astragulus Sarcocolia), उसारेरेवन्द, मेदा लकड़ी सज्जीक्षार, लोध, माजूफल और फिटकरी ये ११ औषधियां १०-१० तोले लेवें । तथा आमाहल्दी ५० तोले लेवें । (आ० नि० मा० के पाठसे थोड़ा परिवर्तित)

थोड़ेसे चूर्णको गरम जलमें मिला लेपकर ऊपर रुई लगाकर कपड़ा लपेटें । जरूरत हो तो लकड़ीकी पट्टी रखकर ऊपर कपड़ा बाधें । आवश्यकतापर ३ दिन बाद दूसरा लेप करें । ३ दिनसे पहिले पट्टीको नहीं खोलनी चाहिए ।

उपयोग—यह लेप मूढ़मार, शूल, शोथ, हड्डी टूटना अथवा हड्डी उतर जाना, रक्त इकट्ठा होना आदि दोष दूर करनेमें बड़ा उपयोगी है । टूटी हुई हड्डीको जोड़ देता है, मांसमें होने वाली वेदनाको दूर करता है । हमने इस का अनेकों बार उपयोग किया है ।

इस औषधिके एक, दो या तीन लेपसे चोट आई हो या हड्डी टूटी हो, वह दोष निवृत्त हो जाता है और तीव्र वेदना सत्वर शमन हो जाती है । अनेकोंको केवल एक ही बार लेप करनेसे आराम हो गया है । इस लेपको ४८ घण्टे तक रहने देना चाहिये । फिर निकाल, सम्हालपूर्वक धोकर नया लेप लगाना चाहिये ।

डाक्टरी प्लास्टर वेलाडोना, एक्स्ट्रेक्ट बेलाडोना आदि औषधियोंकी अपेक्षा इस औषधिसे सत्वर लाभ होता है ।

लाठीकी मारसे गाँठ हो जाना, सुजन आ जाना या किसी स्थानमें मांस कुचल जाना, इनपर यह लेप फलप्रद है ।

सूचना—यदि लेप खोलनेपर त्वचा लाल हो गई हो, तो दूसरा लेप १२ घण्टे बाद लगाना चाहिये । तब तक उस भागको खुला रखना चाहिये ।

(१५) पार्श्वशूलनाशक लेप

विधि—सोंठ, कुचिला और बारहसींगेको जलके साथ घिस उसमें २ से ४ रत्ती अफीम मिला लें। फिर थोड़ा गरमकर लेप करें। ऊपर गर्म पानीकी थैलीसे सेंक करें।

उपयोग—न्यूमोनियामें पसली और छातीपर लेप करनेसे फुफ्फुसदोष दूर होता है।

(१६) रसांजनादि लेप

विधि—रसौंत, मिश्री, बंबूलका गोंद, समुद्रझाग, फिटकरीका फूला सब दो-दो तोले और अफीम १ तोला लें। फिर सबको मिलाकर ३ दिन जलमें घोटें। जल उतना मिलावें कि अच्छी रीतिसे पतला हो जाय। रसौंत और अफीमको शुद्ध करके डालें। ३ दिन बाद अवलेह जैसा गाढाकर खुले मुँहकी शीशीमें भर लेवें। अथवा सुखाकर सोगठियां या बत्तियां बना लेवें। (ब्र० स्वा० सदानन्द गिरिजी)

मात्रा—यह लेप जरूरत पड़े तब १-२ रत्ती सीप अथवा कटोरीमें निकाल जल मिला. पतले दहीके घोल जैसा करके नेत्रोंके ऊपर और नीचे लगावें तथा नेत्रोंमें भी अंजन करें।

उपयोग—यह लेप नेत्रोंकी लाली, दाह, खाज, भयंकर सूजन, चोट लगना घाव होना, पीप आना, नेत्रशूल (घोबा) चलना, नासूर आदि दोषों को दूर करता है। १ मासके छोटे बच्चे और बड़े मनुष्य, सबके लिये हितकर है। यह निर्भय रूपसे नेत्रोंमें अञ्जन किया जाता है। इस लेपके अंजनसे लाली, दाह, और शूल दूर होते हैं। अनेकों बच्चोंको इस अञ्जनसे लाभ पहुँचा है।

सूचना—(१) तीक्ष्ण नेत्ररोगमें नेत्रोंको ठण्डे जल और वायुसे बचाना चाहिये। गरम जलमें कपड़ा भिगोकर उससे आंखोंको धोवें। शूल होता हो तो सोनेके समय रुईका फोहा फिटकरीके जलमें भिगो घीमें तलकर आंखपर बांध करके सोना चाहिये।

(२) तीव्र प्रकोप बढ़ रहा हो उस समय इस अञ्जनका या दूसरे रोगशामक अञ्जनका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१७) प्रलापहर लेप

विधि—तम्बाखू, कायफल, कोड़िया लोबान और हींगको पीसकर गुड़ में मिलावें। फिर जल मिला, गरमकर कपड़ेकी पट्टीपर लगाकर बांधे। कनपटी, कपाल और मस्तकपर लेप लगे, इस रीतिसे कपड़ा बाँधना चाहिये लेप भी मोटा लगाना चाहिये। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस लेपसे वातज और पित्तज सन्निपातकी बकवास शान्त

हो जाती है और रोगीको निद्रा आने लगती है।

(१८) दद्रूहर लेप

विधि—आँवलासार गन्धक, कच्चा सोहागा, सफेद कत्था और राल ५-५ तोले मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर ५ तोले गूगलका बारीक चूर्ण मिला नीबूके रसमें तीन घण्टे खरल करके सोगठी बना लें।

उपयोग—इसे गोमूत्र अथवा नींबूके रसमें घिसकर लगानेसे लाल काला नया पुराना दाद चला जाता है।

(१९) कासीसादि लेप

विधि—कासीस, गोरोचन, नीलेथोथेका फूला और वर्की हरताल १-१ तोला तथा रसोंत २ तोलेको काँजी अथवा नींबूके रसमें पीसकर सोगठियां बना लें। (वृ० नि० र०)

वक्तव्य—वृद्धपरम्परा अनुसार गोरोचनके स्थानपर गन्धक मिलानेका रिवाज है।

उपयोग—इस लेपको नींबूके रस अथवा जलमें घिसकर लगानेसे खाज योनिकी खुजली, अण्डकोषकी खुजली, बालकोंका अहिपूतना रोग (गुदा पकना) और बवासीरके मस्सेकी सूजन दूर होते हैं। खुजलीके स्थानको पहिले २-४ रत्ती नौसादर या फिटकरीको २० तोले जलमें मिलाकर धो लेना चाहिये, बादमें लेप करें। हमने इसका उपयोग बिना गोरोचन मिलाये किया है।

(२०) मांस्यादि लेप

विधि—जटामांसी, राल, लोध्र, मुलहठी, निर्गुण्डीके बीज, मूर्वा, नीलकमल, लालकमल, सिरसके फूल सबको समभाग मिला चूर्णकर धोये हुए घृतके साथ मिलाकर लेप करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपको वातरक्तज या पित्तरक्तज विसर्पपर लगानेसे दाहका शमन होकर रोग दूर होता है।

(२१) कर्णशोथहर लेप

प्रथम विधि—बारहसींगेका सींग, बच, सोंठ, हींग और सुहिंजनेकी जड़ सबको थोड़े-थोड़े पानीके साथ घिस गरमकर कानकी बाजूमें सूजनके ऊपर लेप करनेसे सूजन मिट जाती है और कानके शूल, पीप निकलना आदि रोगोंमें भी लाभ होता है।

द्वितीय विधि—गीले अरमानी, लोध, आंवला और आमाहल्दीको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग—गुलाबजलमें मिला गरमकर दिनमें ३-४ बार पतला-पतला

लेप करनेसे कानकी जड़में आया हुआ शोथ दूर होता हैं। केवल गीली अस्मानी भी गुलाब जलमें पीसकर लगाई जाती है।

(२२) श्लीपदहर लेप

प्रथम विधि—हल्दी, आँवला, अमरबेल, सरसों, अपामार्ग, रसोईघर का धूँआ सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर श्लीपदपर लेप करें।

(डा० श्री रामरक्षपाल जी)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, श्लीपद (फीलपांव) की सूजन नष्ट हो जाती है। डाक्टर साहबने इस प्रयोग द्वारा अनेक रोगियोंको लाभ पहुँचाया है। सामान्य औषधियोंसे बननेपर भी श्लीपदके लिए अत्युत्तम प्रयोग है।

दूसरी विधि—कनेरकी छाल, बच्छनाभ, धतूरेके बीज, कलिहारी, सरसों, अपामार्ग मूलकी छाल, करंजकी छाल, सेंधानमक, कूठ, हरड़, सांठीकी जड़, आककी जड़ और सहिजनेकी जड़ सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। आवश्यकतापर गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे श्लीपदका प्रकोप शमन हो जाता है।

(२३) वृद्धिदमन लेप

प्रथम विधि—गूगल, एलुवा, कुंदरू, लोध, फिटकरी और गन्धाबिरोजा सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर लेप करें।

उपयोग—वृषणपरसे बाल दूर करके इस लेपको लगाते रहनेसे अण्डवृद्धि दूर होती है।

यह "वृद्धिदमन लेप" शिथिल बने हुए वृषणका आकुंचन कराता हैं। इस हेतुसे वायु भर गया हो तो निकल जाता है। एवं रस आदि उतरा हो तो उसका नया स्राव बन्द हो जाता है और संगृहीत रस शनैः शनैः स्वेद रूपसे बाहर निकल जाता है और कुछ अंशमें जल जाता है।

द्वितीय विधि—तम्बाखू, कसूम, केसूला. सोंठ. कुंदरू, एलुवा, आमाहल्दी, रूमीमस्तंगी, बच. बच्छनाभ, खसखसके डोडे सबको समभाग मिला बारीक चूर्ण कर मकोयके रसमें गोली बांधें।

उपयोग—इस गोलीको पानीमें घिस अण्डकोषपर लेपकर गोबरीसे थोड़ा सेक करनेसे थोड़े ही दिनोंमें अण्डवृद्धि दूर होती है। साथमें खानेके लिये वृद्धिवाधिका वटी चालू रखनी चाहिये।

पहली विधि की अपेक्षा यह कम चिपकता है, किन्तु इसके गुणधर्मका प्रभाव भीतरके भागपर तुरन्त और विशेष रूपसे होता है। इस लेपके भीतर तमाखू मिलाई हैं जो हल्लास करती है और क्वचित् वान्ति भी करा देती है। इस तरह भीतर रहे हुए वायु, रस, जल आदिको यह ऊपर

फेंकनेकी क्रिया होती है जिससे वृषणमें प्रवेशित द्रव्य निकलकर थोड़े ही समयमें वृद्धि दूर हो जाती है।

(२४) निशादि लेप

विधि—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरसकी छाल, नागरमोथा, लोध, सफेद चन्दन और नागकेशर इन ८ औषधियोंको समभाग मिला जलके साथ लेप तैयार करें। (बं० से०)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे विस्फोट, मसूरिका (शीतला) के व्रण, विसर्प, दाह, पसीना, शरीरकी दुर्गन्ध, रोमान्तिका और कुष्ठ रोगका शमन होता है। इस निशादि लेपका जल, गोमूत्र या नींबूके रसमें खरलकर लेप करते रहनेसे त्वचाकी उग्रता शान्त होती है और कीटाणु नष्ट होते हैं। फिर कण्डूकी उत्पत्ति नहीं होती।

विसर्प, विस्फोट और मसूरिका आदि विकार शान्त हो जाते हैं, एवं देहके किसी भी भागमें उत्पन्न रोमान्तिका की पिटिकाओंपर भी यह लेप लाभ पहुँचाता है तथा हाथ पैरोंके तलोंके दाहको भी शान्त कर देता है। यदि व्रण फूट गये हों तो इस लेपका कपड़छन चूर्ण बुरकाते रहनेसे व्रण जल्दी सूख जाते हैं।

(२५) कर्पूरादि मलहम

विधि—पारा, गन्धक, कुन्दरु, गूलर (अजरूल), गूगल, लोबान सब समभाग और सबके समान कपूर लें। पहले कपूरको खरलमें डाल तेज धूपमें घुटाई करें। थोड़े समय बाद कुन्दरु, गूलर, गूगल, लोबान क्रमसे मिलाते जायँ, अन्तमें पारा-गन्धककी कज्जली मिलावें। जब खरल करते करते नरम होकर मलहम बन जाय तब चीनीमिट्टीकी डिबियामें भर लें। (आ० नि० भा०)

इस मलहमको कड़क हो जानेपर निम्ब तैलके साथ मिला गरम कर लें। जिससे लगाने लायक मुलायम बन जाए। ग्रन्थकारने इस मलहमका नाम "तड़कानो मल" अर्थात् सूर्यके तापका मलहम रखा है।

उपयोग—विद्रधि, गलगण्ड, नासूर आदि रोगोंपर यह अच्छा काम देता है। इस मलहमसे गाँठ पिघलती है, पकती है और फूटकर भर भी जाती है। नासूरमें पहले निम्ब तैलकी पिचकारी लगावें, फिर इस मलहमकी पट्टी बाँधनी चाहिये।

यह कर्पूरादि मलहम विद्रधि (Abscess), गलगण्ड (Goitre) और नाड़ीव्रण, किसी भी भागमें होने वाली पीड़ा (Fistula) और दुष्ट व्रण आदि रोगोंपर सफलतापूर्वक कार्य करता है। मूल प्रयोग दाताने ४२ वर्ष तक अनेक रोगियोंपर इसका प्रयोग करके लाभ उठाया था एवं हम भी इसका प्रयोग करते रहते हैं।

निम्ब तैल—नीमके सूखे पत्तोंसे चौगुने तिल्लीके तैलको कड़ाहीमें डाल कर चूल्हेपर चढ़ावे। तैल गरम होनेपर थोड़े-थोडे नीमके पत्तोंका चूर्ण डालते जायं। सब पत्ते डालनेके बाद भुन जानेपर कड़ाहीको नीचे उतार लें। ठण्डा होनेपर छानकर शीशीमें भर लें।

(४६) रालका मलहम

विधि—तिल तैल १६ तोले, राल ४ तोले और नीलाथोथा ३ माशे लें। पहले तैलको कड़ाहीमें डाल मन्दाग्निपर गरम करें। धूआं निकलनेपर राल और नीलाथोथा डालकर कड़ाहीको उतार तैलको तुरन्त एक थालीमें छान लें। शीतल होनेपर जल मिला-मिलाकर धोवें। बार बार मलकर जलको निकाल डालें। इस तरह १०-२० बार धोनेसे मलहम मक्खनके सदृश मृदु और सफेद बन जाता है। इसे काचके अमृतबानमें भर ऊपर जल भरें। रोज सुबह पुराना जल निकाल डाले और ताजा भर दें। जब तक मलहम जलमें डूबा रहेगा, और जल बदलते रहेंगे, तब तक मलहम अच्छा रहेगा। मूल ग्रन्थकारने इसे जलका मलहम और सफेद मलहम संज्ञा दी है।

(आ० नि० मा०)

वक्तव्य—जल न बदलनेसे जलका रंग काला हो जाता है और मलहम पर फफून्दी आ जाती है एवं जलमें न रखनेपर भी मलहम चिपचिपा होकर बिगड़ जाता है।

उपयोग—इस मलहमकी पट्टी लगानेसे अग्निदग्ध व्रण, बालकोंकी गुदा का पक जाना, सड़े हुए फाले, व्रण रोग. मूत्रेन्द्रियके पास उत्पन्न शोथ, अर्शका शोथ और पाक ये अच्छें हो जाते हैं। सामान्य फोड़े फुन्सियोंपर यह बहुत अच्छा कार्य करता है।

अकस्मात् मनुष्य जल जानेपर पीड़ित स्थानमें भयङ्कर दाह होता है, देहका कोई सा भाग जल जाय या कभी सारी देह जल जाय एवं कोमल भाग के भीतर श्लैष्मिक कलामें भी दाह होनें लग जाय तो ऐसी अवस्थामें तत्काल दाह शान्त करनेकी आवश्यकता है। यह कार्य इस मलहमसे सफलतापूर्वक होता है। दाह शान्त हो जाता है, मानसिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, फिर निद्रा आ जाती है, तथा फाला होनेकी भीति भी दूर हो जाती है।

सूचना—जले हुए भागको शीतल जलको स्पर्श नहीं कराना चाहिए। धोनेकी आवश्यकतापर जलको उबालकर निवाया या शीतल करके लेवें या खदिर छालके क्वाथ अथवा चायके क्वाथसे धोते रहें।

पैरोंके तलकी शिरापर चोट लग जानेसे शोथ होता है। उसपर इस मलहमकी पट्टी लगानेपर ५-१० मिनटमें मलहमका शोषण हो जाता है और पट्टी शुष्क हो जाती है, फिर तुरन्त दूसरी पट्टी लगावें। इस तरह ३-४ बार

पट्टी बदल देवें; जैसे जैसे पट्टी बदली जायगी वैसे-वैसे शीतलता आती जायगी वेदना कम हो जायगी और विकार दूर हो जायगा।

इस मलहमका उपयोग राजवैद्य रामचन्द्रजीने अनेक वर्षो पर्यन्त अग्नि से जले हुए भागोंपर सफलतापूर्वक किया था। वे इस २० तोले मलहममें १ ड्राम यूकेलिप्टस ऑयल (नीलगिरी तैल) मिला मन्थनकर प्रयोग करते थे।

(२७) व्रणामृत मलहम

विधि—गन्धाबिरोजा, देशी मोम, रालका चूर्ण प्रत्येक १०-१० तोले और अलसीका तैल २० तोले लें। चारों चीजें कड़ाहीमें डाल ढँककर अत्यन्त मंद अग्निसे गलावें। जब पिघलकर एक रस हो जाय तब नीचे उतार तुरन्त वस्त्रसे छान लें। शीतल होनेपर खरलमें घोटकर रख लें।

उपयोग—यह मलहम हर प्रकारके खुले घावके दोषको आकर्षित करके सुखानेमें श्रेष्ठ है। इससे उपदंशके घावका आराम हो जाता है। दुष्ट व्रण जिसका जहर चारों ओर फैल गया हो जो अनेक प्रकारके मलहमोंसे अच्छा न हुआ हो, ऐसे अनेक रोगी इस मलहमसे अच्छे हो गये हैं।

(२८) व्रणामृत श्वेत मलहम

प्रथम विधि—कपूर १ तोला, सफेद मोम ५ तोले, सफेदा १० तोले और मीठा तैल १० तोले लें। पहिले तैल और मोम गरम करें। थोड़ा ठण्डा होनेपर सफेदा मिला लें। फिर कपूर मिलाकर मलहम बना लेवें। यह मलहम शुद्ध हुए घावोंको भर देता है।

दूसरी विधि—गूगल, पीली कौड़ीकी भस्म, गली सुपारीकी काली भस्म, छोटी इलायचीके दाने और पपड़िया कत्था, १-१ तोला और शत-धौत गोघृत ५ तोले मिलाकर मलहम बना लें। (पं० मंगूलालजी।

उपयोग—यह मलहम शुद्ध हुए व्रणोंको भर देता है। पुराने व्रणोंमेंसे भी पीला-पीला पानी निकालकर थोड़े दिनोंमें भर देता है। अग्निदग्ध व्रण (जले हुए घाव) पर भी लाभदायक है।

(२९) गुलाबी मलहम

विधि—कोकम अमचूरका तैल (Theobromine) और अरंडीका तैल १०-१० तोलेको कड़ाहीमें डाल चूल्हेपर चढ़ाकर गरम करें। फिर छानकर १ तोला सफेदा और १ तोला सिंदूर मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे विपादिका (हाथ पैर फटना) होठ फटना आदि रोग दूर होते हैं त्वचा मुलायम बनती है।

(३०) चूनेका मलहम

विधि—चूना ५ तोले, अरंडीका तैल ३ तोले और रुई ६ रत्ती मिला

कर मलहम बना लें।

उपयोग—यह मलहम व्रणका शोधन करके घाव भर देता है। सड़े हुए घावोंके दोषोंको निकालकर व्रणको साफ कर देता है।

इस मलहमका विशेषतः उपयोग अति पूयमय दूषित व्रणोंके शोधनार्थ होता है। सहन शीलता, रोगबलका विचार कर एक दिनमें २ से ४ बार मलहमकी पट्टी बदल दी जाती है। इस तरह करनेपर १-२ दिनमें घाव शुद्ध हो जाता है। घावमें लाल स्वच्छ मांस प्रतीत होने लगता है। फिर पारद-मिश्रित या अन्य रोपण मलहमका प्रयोग करनेपर व्रण जल्दी भर जाता है।

रोगीको डाक्टरोंने हाथ पैर कटवा देनेका कह दिया था, ऐसे कुछ रोगियोंको इस प्रकारका उपचार करनेसे लाभ हो गया था और अङ्ग विच्छेद करानेसे बच जानेके उदाहरण भी हमें मिले हैं।

दुष्टव्रण और नाड़ीव्रणकी चिकित्सा करनेके समय रोगीको मल्लादि वटी, रसमाणिक्य या व्याधिहरण अथवा अन्य रक्तशोधक उपकारक ओषधियोंका सेवन भी हम कराते रहते हैं। तथा साथमें लङ्घन या लघु, पौष्टिक पथ्य आहारकी भी योजना करते हैं।

यदि रोगी मधुमेह पीड़ित हो तो हम मधुमेहके विष और मधुहर ओषधियां नागभस्म, प्रमेहगजकेसरी या जातिफलादि (मधुमेह) की योजना आवश्यकता अनुसार करते रहते हैं।

दुष्टव्रणोंको धोनेके लिए रोगबल, रोगीबल और स्थान-भेदसे पीतधावन नीलाथोथाका धावन या खदिर क्वाथका उपयोग करते रहते हैं।

(३१) दारुणकनाशक मलहम

विधि—नीलेथोथेका फूला, कपीला, सफेद कत्था, गेरू और शोरा १-१ तोला, मुर्दासंग, कालीमिर्च और मेंहदीके पत्ते २-२ तोले, सरसोंका तैल १८ तोले और देशी मोम २ तोले लें। पहले तैलमें मेंहदीके पत्ते पकावें, जल जानेपर नीचे उतारकर मोम डालें। ठण्डा होने लगे तब और वस्तुओंका कपड़छन चूर्ण मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—इस मलहमके उपयोगसे दारुणक (केश-भूमिखुश्क होकर खुजली आना). अरुंषिका (शिरपर छोटी-छोटी फुन्सियां होना), बाल गिरना आदि विकार दूर होते हैं।

(३२) पामाहर मलहम

प्रथम विधि—पारा, गन्धक, कालीमिर्च, नीलाथोथा सिन्दूर, काला जीरा, सफेद जीरा प्रत्येक समभाग लें। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें। सब ओषधियोंका बारीक चूर्ण मिला, सबके समान धोया गोघृत

डालकर चीनीके बरतनमें लें।

उपयोग—इस मलहमको पामा (खुजली) और कच्छूपर लगानेसे ५-७ रोजमें दर्द दूर होता है। पानीमें नीमके पत्ते डाल, गरम करके, रोज स्नान करना चाहिये। यह मलहम सौम्य निर्भय तथा बालक और कोमल प्रकृतिकी स्त्रियोंके लिये भी प्रयोजित होता है।

दूसरी विधि—पारद, गन्धक, नीलेथोथेका फूला और जमालगोटा सब १-१ छटांक लेवें। पारद गन्धककी कज्जली करके नीलाथोथा मिलावें। फिर जमालगोटेको मिलाकर ६ घण्टे अच्छी तरह करें। पश्चात् १ सेर धोये गोघृत या सफेद बेसलीनमें मिला, खरलकर बोतलमें भर लेवें। (श्री० वैद्य कान्तिलाल जी आचार्य)

उपयोग—यह प्रयोग प्रथम विधिकी अपेक्षा अधिक तेज और अधिक उपकारक है। अति गहराई तक पहुँचे हुये घावको शुद्ध करनेमें यह विशेष सफल है। यह मलहम पामा, सूखी खुजली, ब्युची, सड़ी हुई विद्रधि और दुष्ट विद्रधि आदिपर सफलतापूर्वक व्यवहृत होता है।

इसके लेपसे सामान्य पामा ३ दिनमें दूर हो जाती है। सारे शरीरमें कण्डू आनेपर मलहमके साथ समान तैल मिलाकर, समग्र शरीरपर मालिश कर, १-२ घण्टे सूर्यके तापमें बैठकर स्नान करते रहनेसे २-४ दिनमें कण्डू शमन हो जाती है। दुःखदायी जीर्ण ब्यूचीपर इसे लगानेसे उसे पकाकर नष्टकर देता है।

सूचना—मलावरोध रहता हो तो नियमित उदर शुद्धि करावें। मिर्च, नमक, शक्कर और मलावरोध करने वाले भोजन हो सके उतना कम करें।

फोड़ा, जो दिनों तक दुःख देता हो, जिसके भीतर मांसके सड़ जानेसे दुर्गन्ध आती रहती हो या जिसका पूय दूसरे स्थानपर लगनेपर दूसरी जगहपर फोड़ा हो जाता हो अथवा जो अधिक गहराई तक चला गया हो, उनके शोधनार्थ इस मलहमका उपयोग होता है। घाव शुद्ध हो जानेपर दूसरे रोपण मलहमका लेप करनेसे जल्दी लाभ पहुँचाता है।

(३३) ब्यूचीहर मलहम

विधि—पारा, गन्धक, मैनसिल, सफेद कत्था, पाषाणभेद पत्थर, मुर्दासंग सब १-१ तोला और पुंवाड़के बीज ७ तोले लें। पारा-गन्धककी कज्जलीकर अन्य वस्तुओंका कपड़छन चूर्ण मिला दें। फिर सब ओषधियों को चौगुने गोघृतके साथ तांबेके बरतनमें तांबेके दस्तेसे (या नीमके डण्डेके नीचे तांबेका पतरा लगाये हुए दस्तेसे) ६ घण्टे खरलकर मलहम बना लें।

उपयोग—इस मलहमसे सूखी ब्यूची (उकवत Eczema), पामा, दाद, खाज इत्यादि दूर होते हैं। विस्फोटक और चांदीके घावपर लगावेंमें

भी यह उपयोगी है ।

क्वचित् यकृद्वृद्धि होनेपर भी अपथ्य सेवन करनेवालोंको ब्यूची हो जाता है । वह बाह्य उपचारसे और गन्धक रसायन आदि रक्तशोधक औषधिके सेवनसे भी दूर नहीं होता वरन् क्रमशः बढ़ता जाता है और अधिक दुःखदायी बनता जाता है । ऐसे विकारपर यकृत् पौष्टिक औषधिके सेवनके साथ ब्यूचीहर मलहमका उपयोग करनेपर लाभ होता है ।

सूचना—(१) ब्यूचीको रोज सुबह शाम तमाखूके जलसे धोना चाहिये तमाखू १ तोलेको आध सेर जलमें भिगो दें, फिर छानकर उपयोगमें लेवें । सुबह भिगोया जल शामको लें । शामको भिगोया जल सुबह लें और शीतकालमें जलको गरमकर लेवें ।

(२) जिस ब्यूचीमेंसे जल जैसा स्राव अत्यधिक हो रहा हो, उसपर घृत तैल युक्त कोई भी मलहम नहीं लगाना चाहिये । अन्यथा विष अधिक स्थानमें फैलता है। उसपर दशांग लेप या हरीतकी आदि कषाय द्रव्य अथवा गोमूत्रकी पट्टीका प्रयोग हितावह होता है ।

(३४) दद्रुदमन मलहम

विधि—एसिड क्राईसोफेनिक ४ ड्राम, एसिड कार्बोलिक ४ ड्राम एसिड सेलीसिलिक २ ड्राम और पीली बेसलीन १६ औंस लें । सूखी औषधियोंको वेसलीनमें डालकर मलहम बना लें ।

उपयोग—यह मलहम दादको २-४ दिनमें नष्ट कर देता है । मलहम वाला हाथ नेत्रोंको नहीं लगाना चाहिये ।

(३५) अदीठ कारबंकलका मलहम

विधि—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, मुर्दासङ्ग ४ तोले, कपीला ८ तोले और नीलेथोथेका फूला २ माशेलें । पहिले पारे और गन्धककी कज्जली करें फिर सबको मिलाकर ६ घण्टे खरल करें । बादमें धोया हुआ चौगुना गोघृत मिलाकर मलहम बना लें । (धन्वन्तरि)

उपयोग—मलहम लगाते ही अदीठकी जलन और पीड़ा दूर होती है । व्रणको पकाकर अन्दरसे पीप, रुधिर और गले-सड़े मांसको अलग करता है । बार-बार मृतमांस काट करके अलग करते रहना चाहिये । साथमें खानेके लिये मधुमेह नाशक औषधि तथा निम्ब तैलका सेवन कराते रहनेसे थोड़े दिनोंमें अदीठ रोग दूर होता है ।

सूचना—विशेषतः अदीठ मधुमेह पीड़ित व्यक्तिको होता है । अतः उनको शक्कर प्रधान भोजन, मधुर फल आदि जो अपथ्य हो वे बन्दकर देने चाहिये ।

(३६) भगन्दरनाशक मलहम

प्रथम विधि—रस कपूर, सिंदूर, सेलखड़ी, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था कपूर, चिकनी सुपारीकी राख प्रत्येक १-१ तोला. सत्यानाशीके बीज ८ तोले मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर चार गुना धोया हुआ गोघृत मिलाकर मलहम तैयार करें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे नूतन भगन्दर, कण्ठमाल, उपदंश, नासूर, गम्भीर व्रण, बवासीर, पामा, फोड़ा-फुन्सी, दाद इत्यादि रोग दूर होते हैं। छोटा छिद्र हो तो मलहमकी बत्ती बनाकर भर दें।

जब भगन्दरमें गुदाकी बाह्य त्वचा और भीतरकी रक्तवाहिनीमें सीमित विकृति हो या मांसतक विकृति प्रविष्ट हो गई हो, तब तक इस मलहमके उपयोगसे लाभ पहुंच जाता है। बार-बार कीटाणुनाशक धावनसे इसे धोते रहना चाहिए। एवं सुविधा अनुरूप निम्बतैल, नाड़ीव्रणहर तैल, करवीर तैल या अन्य पूयहरशोधक तैलको; इञ्जेक्शन सीरिञ्ज या बत्तीद्वारा प्रवेश कराते रहें तथा भगन्दरहर रस या कैशोरगुग्गुलु आदिका सेवन कराते रहें, तो भगन्दर रोग १-२ मासके प्रयोगसे दूर होजाता है।

दूसरी विधि—बिलावके पैर और कुत्ते के पैरकी हड्डी ५-५ तोलेको एक करवेमें संपुटकर जलाकर कोयला करें। फिर राखके समान वजनमें धोया घी मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—भगन्दर, नासूर और भयङ्कर व्रणमें इस मलहमको भर देनेसे आराम होता है। त्रिफलाका क्वाथ अथवा नीमके क्वाथमें घिसकर भी लगाया जाता है। दो प्रकारकी हड्डियोंमेंसे किसीकी भी हड्डी मिल जाय तो भी लगानेके काममें आ सकती है। ऊंटकी हड्डी घिसकर लगानेसे भी भगन्दर दूर होता है।

जब गुदस्थानकी अस्थिके समीप भगन्दर हो जानेसे अस्थिको हानि पहुंची हो और अधिक पहुँच रही हो तब दूसरी विधिके मलहमका प्रयोग करते रहनेसे एवं कैशोरगुग्गुलु और शृंगभस्म मिलाकर उदरमें सेवन कराते रहनेपर भगन्दर नष्ट होजाता है।

(३७) कण्ठमालका मलहम

प्रथम विधि—दालचिकना, पारा, गन्धक, मुर्दासङ्ग, सफेदा, सफेद कत्था, सोहागेका फूला, कुँदरू, भिलावा (ऊपरकी टोपी निकाला हुआ), कालीमिर्च, नीमके पत्ते और मोम २-२ तोले तथा सरसोंका तैल ४० तोले लें। पहिले दालचिकना और पारा गन्धककी कज्जली मिलावें। फिर मुर्दासंग और सफेदा, पश्चात् और वस्तुओंका चूर्ण मिलावें, नीमके पत्ते बाकी रखें। सरसोंके तैल और नीमके पत्तोंको मिलाकर मन्दाग्निपर गरम करें।

पत्ते जल जायं तब मोम मिलावें। फिर कड़ाहीको नीचे उतार अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर पतला मलहम तैयार कर लें। (आ० नि० मा०)

उपयोग-- इस मलहममें कपड़ेकी पट्टी डुबोकर कण्ठमाल, अपची जो फूट गई हो उसपर लगाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग निर्मूल हो जाता है।

दूसरी विधि---मनुष्यकी खोपड़ी अथवा हड्डीका बारीक चूर्ण और मक्खी की विष्ठा समभाग मिलावें। मक्खी रातको डोरीपर बैठती है उस डोरीपर विष्ठा लगी रहती है, वह डोरी लेवें। इसे मनुष्यके मूत्र (या गोमूत्र) में पीसकर तैयार करें। फिर कपड़ेपर लगाकर कण्ठमालपर बाँध लेवें (धन्वन्तरि)

उपयोग—यह लेप थोडे दिन तक लगानेसे कण्ठमाल और गलगण्ड दूर होते हैं तथा अन्य प्रकारकी गांठ भी बैठ जाती है।

(३८) उपदंशरिपु मलहम

विधि---रसकपूर ६ माशे, कपूर ६ माशे, मुर्दासंग १ तोला, सफेद कत्था ६ तोले, हीरादोखी गोंद (दमुल अखवैन) २ तोले, नीलेथोथेका फूला ३ माशे और पीली वैसलीन २० तोले लें। वैसलीनको गरम कर अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—नीमके पत्तोंके क्वाथसे उपदंशके घावको धोकर मलहम लगाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें घाव भर जाता है।

यह मलहम फिरंग रोगीके क्षतपर लगानेके लिए अति उपयोगी है। कोमल स्वभावकी स्त्रियों और पुरुषों, दोनोंके लिए उपकारक है। यदि घाव पुराना हो, गहराई तक सड़ान्द पहुँच गई हो तो पहले सड़े हुए मांस या त्वचाको जल्दी गलानेकी और घावको शुद्ध करनेकी आवश्यकता रहती है। अतः उनको पारदादि मलहम दिया जाता है। यह नहीं देना चाहिए।

(३९) अर्शोहर मलहम

विधि---वर्की हरताल और सफेद कत्था २-२ तोले लेकर खरल करें। फिर १०० बार पानीमें धोया हुआ ८ तोले गोघृत मिलाकर मलहम बना लें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमको दिनमें २ बार लगानेसे खून गिरना बन्द हो जाता है; जलन और वेदना दूर होती है तथा शुष्क मस्से मुरझा जाते हैं।

दूसरी विधि—सिंदूर ४ तोले और गोघृत २० तोले मिला कांसीकी थालीमें डालकर नीमके डंडेसे रगडें। डण्डेपर ५ तोले सीसेका पतरा लगा दें और घृतको १०० बार पानीसे धो लेवें। रगड़नेसे मलहम बन जाता है। (इलाजुलगुरबा)

उपयोग—दिनमें दो-तीन बार मलहम लगाते रहनेसे जलन मिट जाती है और मस्से थोड़े ही दिनोंमें मुरझा जाते हैं।

तीसरी विधि—अफीम ३ माशे, आकका दूध १ माशा, जायफल १ तोला और धोया हुआ गोघृत १ तोला लें। सबको मिला खरलकर मलहम बनालें।

उपयोग—शौच (जंगल जाने) के बाद दिनमें २-२ बार मस्सोंपर इस मलहमका लेप करनेसे मस्से नष्ट होते हैं, मस्सेकी वेदना शमन होती है, शोथ नष्ट होता है और धीरे-धीरे अर्श मृत बनते जाते हैं।

चौथी विधि—सेलखडी, कलीका चूना, सोनागेरू, फिटकरीका फूला, मरोड़फली, आमाहल्दी इन ६ औषधियोंको समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् ४ गुने गायके मक्खनमें मिलाकर मलहम बना ल।

(स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग—शुष्क और रक्त निकलनेवाले, दोनों प्रकारके मस्सोंपर यह औषधि लाभदायक है। पहिले ही दिन वेदना और जलन शमन हो जाती है, शोथ दूर होती है और शनैः शनैः मस्से मुरझा जाते हैं। रोज शौच जानेके बाद २-३ बार मलहम लगाते रहें।

सूचना—अधिक बद्धकोष्ठ करने वाले पदार्थोंका सेवन और अधिक मिर्चोंका उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाच मलावरोध हो जाय तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण अथवा सौम्य औषधिका सेवन करके उदरको साफकर लेना चाहिये।

(४०) शिरःशूलान्तक मलहम

प्रथम विधि—सफेद वैसलीन ३ पौण्ड, पेराफीन (विलायती मोम) १ पौंड, लोहबानपुष्प २ औंस, कपूर २ औंस, पीपरमेन्टके फूल १ औंस, अजवायनके फूल २ औंस, नीलगिरी तैल ६ औंस, दालचीनीका तैल २ औंस लें। पहिले (लोहेके सफेदी लगे हुए) बर्तनमें वैसलीन और मोमको गरम करके छान लें। कपूर, पीपरमेंट और अजवायनके फूलोंको मिलाकर प्रवाही अर्क बना लें। पश्चात् तैल और लोहबान पुष्पको वैसलीन वाले प्रवाही द्रव्यमें मिला लें। फिर जब थोड़ा गरम रहे तब अर्कको डाल, काच या लोहेकी शलाकासे चलाकर सबको भली भाँति मिला लें और शीशियों में तुरन्त भर लें।

उपयोग—इस मलहमकी मालिश करनेसे शिरदर्द, सूजन, सांधोंमें दर्दहोना, चोट लगनेसे रक्त जम जाना, अग्नि, तैल, घी अथवा तेजाबसे जलना, शूल, वायुका दर्द, स्त्रियोंके स्तन फटना, होठ फटना, जहरी जन्तु का काटना आदि दर्द दूर होते हैं। एवं बिच्छूका जहर जब दंशस्थानमें रह जाता है, तब दंश-भागपर मालिश करनेसे जलन शान्त होती है।

दूसरी विधि—नीलगिरी तैल ८ भाग, लोहबान पुष्प ४ भाग, कठिन मोम (पेराफिन हार्ड) ३८ भाग। मृदु मोम (पैराफिन सोफ्ट) ५० भाग लें। पहिले मोमको गरम करें; फिर तैल और पुष्प मिला लेवें, शीतल हो

तब तक चलाते रहें ।

उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(४१) अग्निदग्धव्रणहर मलहम

प्रथम विधि—राल ४ तोले और अलसीका तैल ४० तोले लेकर दोनों को कड़ाहीमें डालकर पकावें । फिर उतार तुरन्त ही वस्त्रसे छान लें। शीतल होनेपर कांसीकी थालीमें चूनेके पानीसे २१ बार धोवें । धोनेके लिये कलई चूना १ तोला लेकर १ बोतलमें डालें । ऊपर १। पौंड जल डालें । फिर डाट लगा २-३ मिनट चलाकर १ घण्टे रहने दें । चूना नीचे बैठ जानेपर ऊपरसे साफ जलको निकालकर उपयोगमें लें । इस हिसाबसे अधिक जल बना लें ।

उपयोग—इस मलहमको आगसे दग्ध स्थानपर लगानेसे जलन शान्त हो जाती है; घाव भरता है और खूबी यह है कि वहाँ सफेद दाग भी नहीं पड़ता ।

दूसरी विधि—शुद्ध चूना ४ तोले, मोम २ तोले और नारियलका तैल १६ तोले लें । प्रथम मोम और तैलको अग्निपर गला लें । फिर चूना मिलाकर मलहम तैयार करें ।

उपयोग—अग्निदग्धव्रणमें चमड़ी जलकर बिल्कुल उतर गई हो, वहां पर भी इस मलहमको लगानेसे आराम हो जाता है । चूना भिगोकर ऊपर का जल फेंक करके पुनः सुखा लेनेसे शुद्ध होता है ।

यह मलहम योनि कण्डू, योनिके भीतर क्षत, योनिदाह इनपर प्रयोजित होता है । ३ दिनमें योनिकण्डू, दूर करता है । योनिदाह और क्षतपर लगानेसे शान्ति मालूम पड़ती है और घाव थोड़े दिनोंमें भर जाता है ।

(४२) मनःशिलादि मलहम

विधि—मैनसिल, छोटी इलायची, मजीठ, लाख, हल्दी और दारुहल्दी को २ २तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् ६ तोले घी और ६ तोले शहद मिलाकर मलहम बना लें ।

उपयोग—व्रण अच्छा हो जानेके बाद दाग रह जाता है और चमड़ी खराब होजाती है, यह दोष इस मलहम लेपसे दूर हो जाता है ।

(४३) पारद मलहम

द्रव्य—विलायती मोम (पेराफीन) १ सेर तिलीका तैल ½ सेर, शुद्ध पारद १५ तोले, निम्बकी अन्तर छालका रस २½ तोले, भृङ्गराज रस २½

तोले, सिन्दूर ६ माशे ।

विधि—पहले कड़ाहीमें तिलका तैल गरम करें । फिर मोम थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और चलाते जायं । दोनों मिल जानेपर लोहेकी खरलमें डाल लेवें । पश्चात् पारद मिलाकर मर्दन करना प्रारम्भ करें । करीब ४ घण्टेमें पारद अणु अणुमें मिल जायगा और पारदकी प्रतीति नहीं हो सकेगी । फिर सिन्दूर, निम्बरस और भृङ्गराज रस मिलाकर पुनः २ घण्टे खरल करके बोतलोंमें भर लेवें ।

उपयोग—यह पारद मलहम छोटे बड़े घाव, ब्यूची गीली, सड़े हुए घाव लगा हुआ घाव, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण इनपर सफलतापूर्वक कार्य करता है ।

गीली ब्यूचीपर पहले मैदेके साथ शक्कर मिला पुल्टिस बनाकर लगा देवें । ऊपरमें टाटका टुकड़ा बाँधें फिर सेक करें । जिससे खुजली काफी आने लगेगी । अब असह्य हो जाय तब टाटके टुकड़ेको खोल देवें और पुल्टीसको जलमें डाल देवें । अणुवीक्षण यन्त्रसे उस जलमें देखनेपर सूक्ष्मतम कीटाणु प्रतीत होते हैं ।

तदन्तर निम्ब जलसे धोकर स्थानको शुद्ध करें और पोंछ लेवें । पश्चात् मलहम लगाते रहें । कदाच कण्डू आती रहे तो पुनः उपयुक्त पुल्टिस बाँधनी पड़ती है । बहुधा ४ पट्टीमें ब्यूची साफ हो जाती है ।

सड़े हुए घावपर मलहम लगाना हो तब घावको पहले निम्बजल या खदिरछालके क्वाथसे धोवें । फिर पोंछकर मलहम लगावें । इसी तरह पूयमय फोड़े, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण इनको धोनेका पूरा पूरा लक्ष्य रखें । पूय चारों ओर न फैले यह सम्हाले । पूय फैलनेपर उस स्थानपर भी त्वचा दूषित होती है और नये फोडे हो जाते हैं या पुराना ही फैल जाता है ।

यह मलहम पारदादि मलहमकी अपेक्षा सौम्य है । बालक, सगर्भा, कोमल स्वभाव वाले स्त्री, पुरुष, वृद्ध तथा निर्बल व्यक्ति जो तीव्र शोधक पारदादि मलहम न लगा सकें उन सबके लिये यह मलहम हितावह है ।

(४४) पारदादि मलहम

विधि—पारद और गन्धक १-१ तोला, मुर्दासंग २ तोले, कपीला ४ तोले और नीलेथोथेका फूला ३ माशे लें । सबको खरलकर ३२ तोले धोये हुए गोघृतमें मिलाकर मलहम बनालें ।

उपयोग—यह मलहम अति प्रभावशाली है । व्रणोंपर व्यवहृत होता है । यह व्रणोंका शोधन करके उनको भर देता है । दुष्टव्रण जिसमें अति दुर्गन्ध वाला पूय स्राव होता है, मांस सड़ गया हो, खूब फैल गया हो और गहरा हो गया हो, ऐसे गम्भीर व्रण इसके योगसे थोड़े ही दिनोंमें भर जाते हैं । मस्तिष्क जांघ और अन्य स्थानोंके दुष्टव्रणोंपर इसका प्रयोग होता है ।

इसके लगानेसे उपदंशज व्रणका रोपण हो जाता है । शीतलाके टीका

लगानेपर कभी कीटाणु प्रवेश होकर दुष्टव्रण हो जाता है। फिर अत्यन्त दुर्गन्ध मय पूयस्राव होता रहता है, इसपर भी यह लाभदायक है।

कितने ही रोगियोंके रक्त और त्वचाकी रचनामें विकृति आजाती है। फिर थोड़ा सा घाव लगनेपर वहां व्रण होकर महीनों तक नहीं भरता। ऐसे व्रणोंका भी यह मलहम शोधन और रोपण कर देता है।

कितने हो व्रण औषधि लगानेपर भर जाते है। किन्तु थोड़े ही दिनोंमें उस स्थानमें या उसके समीपमें पुनः व्रण उत्पन्न हो जाता है। इस तरह बार बार दुःख पहुँचता रहता है। ऐसे दुष्ट व्रणोंका यह मलहम सम्यक् प्रकारसे शोधन करके फिर रोपण कर देता है। इस मलहममें पड़े हुए नीलेथोथेके प्रभावसे व्रणके भीतर रहे हुए विष और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। मुर्दासंगके योगसे घावमें सत्वर शुष्कता आ जाती है। कपीला घाव सुखाने और भरनेमें सहायक है। पारद गन्धक गहराईमें रहे हुए कीटाणुओं और विषको नष्ट करनेका कार्य करते हैं। इस मलहमका उपयोग कई वर्षो से सफलतासह हम कर रहे है। यह दद्रु, पामा व कण्डूमें भी उपयोगी है।

(४५) निम्बादि मलहम

विधि—निम्बके पत्तोंका स्वरस ४० तोले, गोघृत १० तोले, रसकपूर १ तोला और मोम २ तोले लें। पहले निम्बके पत्तोंके रसको घीमें मन्दाग्नि से जलावें। पश्चात् मोम मिलाकर घीको छान लें। निवाया रहनेपर रस-कपूर मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—यह मलहम नये और पुराने घावोंको शुद्ध करके भर देता है। जिन घावोंमेंसे जहरी पानी निकलता रहता हो, वह पानी जहां-जहां लगे वहांपर नया व्रण हो जाता हो, उनके विषको नष्ट करके व्रणको भरने का कार्य यह मलहम सत्वर कर देता है।

(४६) माहेश्वर धूप

विधि—राई, सरसों, नमक, गूगल, कुन्दरु, बच, वायविडङ्ग और नीम के पत्तोंको समभाग मिलाकर चूर्ण करें।

उपयोग—छोटे बालकोंके ज्वरमें माहेश्वर धूपका चूर्ण १-२ तोला लेकर बालकसे थोड़ी दूर अग्निपर डाल दें। जिससे वातावरणमें धूपके अणु मिलकर बालकके श्वासोच्छ्वास द्वारा शरीरमें प्रवेश करके ज्वरको उतारनेमें सहायता पहुँचाते हैं। बड़ोंके लिये भी हितकर है।

(४७) अपराजित धूप

विधि—गूगल, अगर रोहिस घास, नीमके पत्ते, आकके पत्ते, बच, राल और दारुहल्दीको समभाग मिला लें।

उपयोग—इसका धूँआ देनेसे ज्वर कीटाणु नष्ट होते हैं।

(४८) जन्तुघ्न धूप

विधि—नमक ३० तोले, कासीस १० तोले और नौसादर २० तोले मिला लें। (वै० स० वि०)

उपयोग—प्लेगके मरीज जहां रहते हों वहाँ कोयलोंकी जलती हुई अंगीठीके ऊपर तवा रखकर नमक वाला धूप रख दें, जिनसे वातावरणमें धुपका असर फैल, प्लेगके मरीजके श्वासोच्छ्वासमें मिलकर रोग दूर करने में सहायता पहुँचाता है। शेष अंश (लाल राख) तवेपर रहे, उसे जलमें मिलाकर प्लेगकी गाँठपर लगानेसे लाभ पहुँचता है।

(४९) दशांग धूप

विधि—बच, हींग, बायविडंग, सैंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल इन १० औषधियोंको समभाग मिलाकर जौ कुट चूर्ण करें। (वा० भ०)

उपयोग—इस चूर्णका धूप देनेसे बालकोंके ग्रहदोष नष्ट होते हैं। धूप देनेके लिए बेहोश बालकको कपड़ा बिछा खाटपर सुलावें। फिर अग्निपर धूप द्रव्य डालें, पैरोंसे कण्ठके नीचे तक कपड़ा ओढ़ा देवें। जिससे धूँआं शरीरके सब भागको लगता रहेगा। इस तरह ५-१० मिनट धूआँ दिनमें २ बार ३ दिन तक देते रहनेसे कीटाणु और विष प्रकोपमें लाभ पहुँच जाता है।

(५०) जात्यादि धूप

विधि—चमेलीके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगलको समभाग मिलाकर बकरीके मूत्रमें पीसकर गोलियाँ बना लें। (यो० र०)

उपयोग—इस गोलीको चिलममें रखकर धूम्रपान करनेसे कफ निकल जाता है, हृदयावरोध और कण्ठावरोध दूर होते हैं, तथा कास, श्वासका शमन होता हैं।

(५१) अर्शोघ्न धूप

प्रथम विधि—कचूर (शटी) १० तोले, बायविडङ्ग १० तोले और भाँग ५ तोले लेकर चूर्ण करें। फिर एकाध तोलेका धूआँ दें।

धुआँ देनेकी विधि—एक बर्तनमें निर्धूम कोयले रख ऊपर चूर्ण डाल तुरन्त हुक्का पीनेकी चिलमसे ढक दें। चिलमके छिद्रमेंसे धूआं निकलता रहे, उसे मस्सेपर लगाते रहे। कमर तक कपड़ा ओढ़ करके धुआं देना चाहिये।

उपयोग—इस धूम्रके प्रयोगसे फूले हुये मस्से नरम होकर वेदना शमन होती है, फिर मस्से भी मुरझा जाते हैं। जो मस्से भीतरके हैं वे नरम होकर ऊपर चढ़ जाते हैं। यदि शोथ आया हो तो शमन हो जाता है तथा

खुजली आती हो तो वह दूर हो जाती है।

दूसरी विधि—कुचिला, कपूर, शमी (छोकर) के पत्ते, हल्दी, छोटी कटेलीके फल सबको समभाग लेकर चूर्ण करें।

उपयोग—कमर तक कपड़ा, ओढ़ा, ईटोंपर उकड़ू बैठाकर गोबरीकी निर्धूम अग्निपर एक तोला औषध डाल, चिलमकी नली द्वारा अर्शके मस्से को धूआँ देनेसे दर्द शाँत होता है।

(५२) कृमिघ्न धूम्र

विधि—छोटी कटेलीके सूखे फलको एक कलछीमें रखकर कोयलोंकी सिगड़ीपर रखें और कलछीपर एक नली रखकर, दाँत अथवा कानमें जहाँ कृमि हों, वहांपर धूआँ देनेसे कृमि बाहर निकल जाते हैं। एवं एक-एक फल चिलममें रखकर धूम्रपान करनेसे तमाखूके व्यसनीकी खाँसी, कफ-प्रकोप, हृदयावरोध आदि दूर हो जाते हैं।

(५३) देवदार्व्यादि धूम्र

विधि—देवदारु, खरेंटीकी जड़ और जटामांसीको समभाग मिला वकरीके मूत्रमें पीसकर वर्त्ति बना लें।

उपयोग—इस बत्तीपर घी चुपड़कर धूम्रपान करनेसे श्वासकी पीड़ा नष्ट हो जाती है।

जिन रोगियोंको अधिक कफ प्रकोपसह श्वास-वेगका आक्रमण हुआ हो और सिगरेट आदि धूम्रपानका व्यसन हो, उनके लिये यह धूम्र लाभ पहूँचा देता है। छाती में चिपके हुए कफको खोलकर सरलतासे बाहर फेंक देता है।

सूचना—(१) कफ निवृत्त होने और दौरा शान्त होनेपर निम्ब तैल ४ ५ बूँदें कुछ दिनों तक सेवन करानेसे शेष रहा हुआ कफ निकल जाता है और कृमि (कीटाणु) नष्ट हो जाते हैं।

(२) अलसीको भून, आटा कर, चाय बनाकर पीते रहनेसे भीतर स्निग्धता आ जाती है और भावी आक्रमणसे रोग बच जाता है।

(५४) मनःशिलादि धूम्रपान

विधि—मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामाँसी, नागरमोथा और हिंगोटके फलकी छालको समभागलेकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—२ से ४ रत्ती चिलममें डालकर धूंआँ लेनेसे कफ निकलकर एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज कास और श्वासावरोध दूर होते हैं। विशेषतः तमाखू पीने वालोंके वातकफ जनित श्वास और कफयुक्त कासमें लाभदायक है। धूंआं लेकर ऊपर गुड़ या मिश्री मिला निवाया दूध पीवें। जो सैकड़ों औषधियोंसे अच्छे न हुए हों, ऐसे रोगी भी इस प्रयोगसे त्वरित अच्छे होजाते हैं।

सूचना—रक्तपित्त, उदररोग, तिमिरदोष और प्रमेहके उपद्रववालोंको धुम्रपान नहीं करना चाहिये। धूम्रपान करनेपर उनको धूंआँ मुँहसे निकालना चाहियें, धूंऐंको नाकसे न निकालें।

(५५) अस्थिदोषहर सेक

विधि—गेहूँका मैदा, मैदालकड़ी और हल्दी १०-१० तोले, सज्जीखार २ तोले और तिलका तैल २० तोले लें। पहले तैलको गरमकर मैदा भूनें फिर सज्जीखार, मैदा लकड़ी और हल्दीं क्रमसे डालें, थोड़ा पानी मिलाकर हलवे के समान पकावें। फिर बार-बार गरमकर आध घण्टे तक चोटपर सेक करें। पश्चात् औषधि बाँध देवें। चोटके कारण हड्डीपर आघात, शोथ, रक्त इकट्ठा होना, वेदना आदि दोष दूर होते हैं।

(५६) कलिंगाद्यनस्य

विधि—इन्द्रजौ, कच्ची हींग, कालीमिर्च, लाक्षा, कायफल, कूठ, बच, सहिजनाके बीज और वायविडंग इन ९ औषधियोंको समभाग मिला कूट-कपड़छन चूर्णकर बोतलमें भर लें। इस नस्यमें थोड़ा, कपूर भी मिला लिया जाय तो विशेष हितकर है। (यो० र०)

उपयोग—इस नस्यके सूंघनेसे जुकाम, शिरदर्द, श्वासकी रुकावट और सब प्रकारके नासिका-रोग दूर होते हैं।

रोगावस्थामें यह नस्य उपकारक है किन्तु फिर सुविधा अनुरूप षड्बिन्दु तैलका नस्य मस्तिष्कको झुकाकर कुछ दिनोंतक कराते रहनेसे मस्तिष्कमें रहे हुए आम, कफ निकल जाते हैं या जल जाते हैं। यदि उदर-विकृति या अन्य कारणसे जुकाम, शिरदर्द आदि होते हों तो मूल कारणको दूर करना चाहिये यदि नासिकामें अर्श होने या ग्रन्थि वृद्धि होनेसे श्वास वरोध होता हो तो षड्बिन्दु या कासीसादि तैलका नस्य कराते रहना चाहिए।

(५७) नजलानाशक नस्य

विधि—काश्मीरी पाठा और उस्तखद्दूस दोनों २-२ भाग तथा बालछड़ (जटामाँसी) और गुलबनफ्शा १-१ भाग लें। सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। (स्वा० कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग—इस नस्यके सूँघनेसे कपालमें संगृहीत कफ दूर होता है। श्वासनलिका साफ होती है। जिसे नजलेका पानी आँखोंमें उतरकर नुकसान पहुंचाता हो, वह वन्द हो जाता है। शिरदर्दका शमन होकर मस्तिष्क

हलका और शान्त बन जाता है। जुकामवालोंके लिये अति लाभदायक है। सन्निपात और उदावर्त रोगोंमें शिरोविरेचनकी जहाँ आवश्यकता हो वहाँ पर यह लाभ पहुँचाता है।

(५८) शिरःशूलान्तक नस्य

प्रथम विधि—कायफल ५ तोले, नकछींकनी २ तोले, छोटी पीपल, तुलसीपत्र, बायविडङ्ग, छोटी इलायचीके बीज, कपूर सब १-१ तोला और देवदाली ६ माशे लें। सबको कूट कपड़छन चूर्ण बना लें। इसमेंसे १-१ रत्ती आवश्यकतापर सुँघावें।

उपयोग—इस नस्यसे शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध आदि दोष दूर होते हैं।

दूसरी विधि—हरड़, सोंठ, कालीमिर्च, और पीपल ६-६ माशे, बच्छनाभ २ माशे तथा पीपल (अश्वत्थ) की छालकी राख १॥ तोले लें। सबको अच्छी रीतिसे खरल करके नस्य तैयार कर लें।

सूचना—इस नस्यमेंसे आध रत्ती सुँघानेसे कफ, कृमि आदि दोष निकल कर शिरदर्दका शमन होता है।

(५९) मूर्च्छान्तक नस्य

विधि—नौसादर, चूना और कलमीशोरा प्रत्येक १-१ तोला लें। फिर अलग-अलग पीस स्टॉफर्ड बोतलमें भरकर मिला लें। पश्चात् कपूर ३ माशे मिलाकर अच्छी रीतिसे हिला लें।

उपयोग—बेहोशीके समय सुँघानेमें अति उपयोगी हैं। सन्निपात, हिस्टीरिया और सर्प आदि जानवरोंके जहरकी मूर्च्छा दूर कर देता है। दाँत भिचे हुए हों, औषध खा न सके उस समय इस नस्यको सुंघानेसे दाँत खुल जाते हैं, और रोगी होशमें आ जाता है। यदि रोगी सूँघ न सके तो उसकी नाकके पास बोतलको खोलनेसे गैस नाकमें प्रवेश कर जाती है।

(६०) विषादि उद्‌धूलन

विधि—अशुद्ध बच्छनाभ १ तोला, कालीमिर्चका चूर्ण ३ तोले और जंगली कण्डोंकी राख १६ तोले मिला धतूरेके पत्तोंके रसकी भावना देकर सूर्यके तापमें सुखा लें।

उपयोग—यह उद्‌धूलन सन्निपातमें शीत और पसीना दूर करनेके लिये सारे शरीरपर मालिश करनेमें उपयोगी है।

(६१) भूनिम्बादि उद्धूलन

विधि—चिरायता, कुटकी, कूठ सौंफ, इन्द्रजौ और कचूरको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग—सन्निपातमें अत्यन्त पसीना आता हो और कण्ठावरोध हो, तबशरीरकी प्रत्येक सांधोंपर इसको मालिश करनेसे सन्निपातके विकार शान्त हो जाते हैं।

(६२) त्वक्पत्रादि उद्वर्त्तन

विधि—दालचीनी तेजपान, रास्ना, अगर, सहिंजनेकी छाल, कूठ, बच और सौंफ सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—इस चूर्णको नींबूके रस या काँजीमें पीस, गरमकर लेप करनेसे हैजेमें हाथ-पैरकी नसोंका खिचना बन्द हो जाता है। यदि इस चूर्णका कल्क बना, कांजी मिला, सरसोंका तैल सिद्ध करें और इस तैलकी मालिश करें तो भी शीघ्र लाभ होता है।

(६३) चन्द्रप्रभा उबटन

विधि—पीली सरसों, चिरौंजी और मसूरकी दालको समभाग मिला गोदुग्धमें पीस रात्रिको सोनेके समय मुँहपर लेप करें।

(श्री रामस्वामी जी)

उपयोग—तारुण्य पिटिका (मुँहासे) और मुँहपरके काले दाग थोडे ही दिनोंमें दूर होते हैं। सारे शरीरमें मालिश करनेसे दुर्गन्ध, फुन्सी और खाज दूर होकर शरीरकी त्वचा सुन्दर बन जाती है।

(६४) रजःप्रवर्तिनी बत्ति

विधि—एलुवा और कड़वे बन्दाल (देवदाली) के फल ६-६ माशे लें, तेज शराबमें पीस, पतले कपडेपर लेप करें फिर वस्त्रको गुण्डालकर वत्ति बना लें। (श्री पं० मंगूलाल जी)

उपयोग—इस वर्त्तिको भगमें धारण करानेसे मासिकधर्म आने लगता है। साथमें चोक (सत्यानाशी की जड़) को जलमें घिसकर नाभिपर लेप करें।

(६५) फलवर्ति

विधि—मैनफल, पीपल, कूठ, बच, सफेद सरसों और जवाखार १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। बादमें ५ तोले गुड़को जलमें मिला गरम करके चाशनी करें फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहें। जब वर्ति बांधने

लायक हो जाय तब कनिष्ठिकासे कुछ पतली और नोकवाली वर्ति (बत्तियाँ) बना लें । (वृन्द)

उपयोग—इस वर्त्तिपर थोड़ा घी वाला हाथ लगाकर गुदामें चढ़ानेसे मलावरोध जनित उदावर्त रोगका शमन होता है, उस समय रुकी हुई अधोवायु निकलकर अफारा दूर होता है ।

यदि मल सूखकर गुदनलिकामें फँस गया हो या दृढ़ हो गया हो तो वह निकल जाता है और फिर ऊपरमें रही हुई अपान वायु सरलतासे बाहर निकल जाती है ।

सूचना—यदि मल सूख गया हो तो एरण्ड तैलका उदर सेवन कराने, उदरपर एरण्ड तैल लगा कपड़ा रख, गरम जल भरी हुई रबरकी थैलीसे १५-२० मिनट सेक करनेसे जल्दी लाभ पहुँच जाता है ।

(६६) निर्मला गुद वर्ति

विधि—साबुन (सनलाइट) २० तोले, गुड़ नरम १० तोले एरण्ड तैल २ तोले, मैनफलका सूक्ष्म चूर्ण ५ तोले, सेंधानमक २ तोले लें । साबुनका बारीक चूर्णकर गुड़ मिलावें, फिर मैनफलके चूर्ण एरण्ड तैल व सेंधानमक मिलाकर सबको एक जीव करके कनिष्ठिका (अगुली) समगोलाकार १ इंच लम्बी बत्तियाँ बना लें । ऊपर पन्नो लपेटकर चौड़े मुख वाली शीशी या डिब्बेमें भर कर रख दें ।

उपयोग—ग्लीसरीनकी बत्तीके समान गुदामें भीतर रखकर १५ मिनट तक प्रतीक्षा करें । इससे मलाशयमें खुश्क मल निकलकर उदावर्त्त व अफारा दूर होगा । (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)



परिशिष्ट

पिष्टियां (विशेष)

नोट—यहाँ संस्थाकी निर्माणशालामें कुछ सुधाकल्पों तथा रत्नों-यथा प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति आदि तथा पन्ना, माणिक्य, नीलम, कहरवा (तृणकांत), संगेयहूद, संगेयशव, पुखराज, पिरोजा, गोमेदमणि, जहरमोहरा आदिके अति सूक्ष्म चूर्णको गुलाबजल या केवड़ा अर्क में २१ दिन या निश्चित अवधि तक घोटकर उन-उन उक्त द्रव्योंकी पिष्टियां बनाते हैं। जो कि हृद्य, शीत, सौम्य व बलप्रद होती है।

(१) अकीक पिष्टी (विशेष)

द्रव्य—उच्च जाति (Highqality) के पक्के तथा अपेक्षया अति मूल्यवान् अकीक इस विशेष प्रकारमें लेना चाहिये।

विधि—इनका अति सूक्ष्म, मृस्रण चूर्ण बना, छानकर खरलमें डालें तथा गुलाबजलमें तर करके घुटाई करें, एवं प्रतिदिन गुलाबजल डालते हुये १० दिन तक घुटाई करें। वादमें छाया-शुष्क कर घोटकर छान लें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, मक्खन-मलाई अथवा खमीरेगाजवांके साथ।

उपयोग—यह अकीक पिष्टी (विशेष) उक्त अकीक पिष्टीकी अपेक्षा सत्वर व अधिक गुण प्रद है।

(२) तृणकान्तमणि पिष्टी (विशेष)

द्रव्य—उत्तम तथा अपेक्षाकृत उच्च जाति की तृणकान्तमणि (कहरवा) जो सामान्यसे सवा-डेढ़ गुने मूल्य वाला हो यथेच्छ लें।

विधि—सतर्कतासे सूक्ष्मश्लक्ष्ण बारीक चलनीछन चूर्ण बना, खरलमें डालकर गुलाबजलमें डालकर १० दिन तक घोट छान भर लें।

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक।

अनुपान—रक्तस्राव व कृमियोंके लिये अनार रस, जल, शहदके साथ।

उपयोग—यह विशेष पिष्टी अपेक्षाकृत शीघ्र प्रभावी व अधिक गुणों वाली होती है। शेष उपयोग व गुण सामान्यके समान।

(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(३) यशद भस्म (विशेष)

विधि—पहली विधिके अनुसार बनी हुई यशद भस्मको नींबूके रसमें घोटकर गजपुटमें फूँखें। फिर निकालकर नींबूके रसकी भावना देकर गजपुट दें इस प्रकार ३ गजपुट दें। इसी प्रकार हल्दीके स्वरस या क्वाथकी ३ भावना व ३ गजपुट दें, फिर कुमारी स्वरसकी भावनायें व गजपुट देनेसे अपेक्षा कृत जल्द गुण प्रभाव दर्शाने वाली, उत्तम भस्म बनती है। यही

इसका वैशिष्ट्य है।

मात्रा व उपयोग—यशद भस्मके समान।

(४) कुक्कुटांडत्वक् भस्म (विशेष)

विधि—पूर्वोल्लिखित कुक्कुटांडत्वक् (श्वेत) भस्म यदि ८ तोले हो तो उसमें १ तोले हिंगुल मिला-कुमारी रसकी भावना देकर गजपुट लगावें। इस प्रकार १-१ तोले हिंगुल डालते हुये ४ पुट लगा दें। यही इसमें विशेषता होगी।

गुण—इसप्रकार हिंगुलके पुट लगानेसे शीघ्र प्रभावकारी एवं अल्प मात्रामें ही लाभप्रद होगी। शुक्र दौर्बल्य, शुक्र बीजाणु दौर्बल्य नाशक हो यह उत्तम सुधा कल्प है। बालशोष, प्रमेह, श्वेतप्रदर, सोमरोग, बहुमूत्रादि में उत्तम फल प्रद है।

(५) प्रवाल पंचामृत (नं० २)

द्रव्य—प्रवाल भस्म या पिष्टी ६० ग्राम, शुक्ति भस्म या पिष्टी ३० ग्राम शंखभस्म ३० ग्राम, शुक्ति भस्म ३० ग्राम तथा वराटिका भस्म ३० ग्राम लें।

विधि—उक्त पांचों द्रव्योंको खरलमें डालकर बारीक मिश्रण बनाकर आकके दूध या गौदुग्ध १८० ग्राममें घोटकर गोला बना कर संपुट कर गज पुटमें फूंक दें। यह उत्तम मुलायम भस्म बनेगी।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २-३ बार।

अनुपान—शहद, शहद पीपल, गुलकन्द या अनार रस।

उपयोग—यह उत्तम सुधा कल्पयोग है जो कि प्रवाल पंचामृत (मुक्ता वालेसे कुछ ही न्यून गुणवाला है।

इसका उपयोग—बालशोष, कफ व आमज व्याधियां, हृद्रोग, प्लीहा, क्षय मंदाग्नि श्वास तथा अन्य विविध उदर रोगोंमें प्रयुक्त होता है। अश्मरी व मूत्ररोगोंमें भी उत्तम कार्य करता है। निर्बल अस्थिवालोंके लिये शक्तिप्रद है। शेष गुण—प्रवाल पंचामृत (मुक्ता) से कुछ न्यून है।

संस्थाकी निर्माण शालामें बन रहे औषध निर्माणोंके विशेष योगोंके

विषयमें विशेष सूचना (विशेष दवाओंकी परिभाषा)

संस्थामें विगत २० वर्षोंसे निर्माण हो रहे विशेष योगोंमें डाले जाने वाले द्रव्योंके समान ही होते हैं, किन्तु विशेष योगोंमें वे ही द्रव्य सामान्यों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् व उच्च क्वालिटीके डाले जाते हैं तथा बहु द्रव्य मिश्रण वाले योगोंमें सामान्य पुटोंवाली भस्मोंके स्थानपर १०० पुटी, ५०० पुटी, सहस्र पुटी भस्में या मुक्तापिष्टी (विशेष), प्रवालपिष्टी (विशेष) आदिका विशेष योग करानेसे वे दवायें विशेष नाम वाली बनाई जाती

हैं। विशेष दवाओंमें गुणों, मात्राओं तथा शीघ्र प्रभाव कारिता आदि गुण सामान्यकी अपेक्षा अधिक बढ़ जानेकी दृष्टिसे इन योगों (विशेष योगों) का निर्माण यहां संस्थामें कराया जाता है।

यथा—

(१) प्रवालपिष्टी—मध्यमदर्जेकी प्रवालशाखा द्वारा किन्तु प्रवालपिष्टी (विशेष) उच्च क्वालिटीकी अधिक मूल्य वाली प्रवाल शाखा द्वारा निर्माण कराई जाती है–किन्तु इन दोनोंमें प्रवाल मूलका कदापि प्रयोग नहीं किया जाता। यही नियम अन्य पिष्टियोंमें भी पालन किया जाता है। किसी भी प्रकारकी मुक्तपिष्टीमें मोतीसीपका प्रयोग नहीं किया जाता।

(२) लक्ष्मीविलास रस (सुवर्ण विशेष) के निर्माणमें रौप्यभस्म १०० पुटी अभ्रकभस्म ५०० पुटी, लोहभस्म १०० पुटी, नागभस्म १०० पुटी, मुक्तापिष्टी (वि०) डाले जाते हैं, जब कि सामान्यमें उक्त द्रव्य कम पुटोंवाले डाले जाते हैं। यही नियम अन्य विशेष-रसरसायनोंमें भी पालन किया जाता है। (वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)

(६) शतावरी गुग्गुलु

शतावरी, गिलोय, गन्धप्रसारणी, गोंखरू, पीपल, सोंफ, अजवायन, रास्ना, असगंध पद्माक, कचूर और सोंठ ये सब औषधि १-१ पल (५-५) तोले, शुद्ध गूगल १२ पल ६० (तोला)।

विधि—इन सब औषधियोंका महीन चूर्ण करके शुद्ध गूगलको घृतके साथ मिलाकर कूटकर ८-८ माशा की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक गरम जल या गरम दूधके साथ सेवन करें।

उपयोग—यह सर्व प्रकारके वातरोग विशेष कर अर्धांग वात (पक्षाघात) के लिए शीघ्र लाभ पहुँचाती है। (र० च० स०)

(७) पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु

क्वाथ द्रव्य—नीमकी छाल, गिलोय, वासा, पटोलपत्र, और कटेली १०-१० पल शुद्ध गूगल ५ पल। घी २ सेर।

प्रक्षेप—पाठा, बायविडंग, देवदारू, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सोया, चव्य, कूठ, मालकांगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजो, जीरा, चित्रक, कुटकी, शुद्ध भिलावा, वच, पीपलामूल मजीठ, अतीस, हरड़, बहेड़ा, आमला, अजवायन, प्रत्येक ये औषधियां १।-१। तोला।

विधि—क्वाथ द्रव्योंमें गूगलको छोड़कर सब औषधियोंको यवकुट करके ३२ सेर पानीमें रातको भिगोकर प्रातःकाल पकावे और ४ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। फिर इस क्वाथमें पोटलीमें गूगल बांधकर

लटका देवे. घृत मिलाकर पाक करें । जब क्वाथ जल जावे तब घृतको और प्रक्षेप वाली औषधियोंका चूर्ण डालकर गूगल मिलाकर कूटकर ६-६ माशे की गोलियाँ बनावें अथवा अमृतबानमें भरकर रक्खें ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक । तत्तद् रोगहर अनुपान से ।

उपयोग—इसके सेवनसे, सन्धि, अस्थि, तथा मज्जागत प्रबल वायु, कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्व जत्रुगत समस्त वातरोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, कास, पीनस, शोष, हृद्रोग, पाण्डु, गलविद्रधि और वातरक्तका नाश हो जाता है । (भै० र०)

(८) चित्रकहरीतकी

योग—चित्रक, आमले, गिलोय, दशमूल उनका क्वाथ या स्वरस ६¼-६¼ सेर बड़ी हरड़का चूर्ण ४ सेर । गुड ३। सेर ।

सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायचीका चूर्ण प्रत्येक १०-१० तोले यवक्षार ५ तोला शहद ४० तोले ।

विधि—चित्रकादि औषधियोंके क्वाथ या स्वरसमें गुड़ डालकर पकावें गाढ़ा होनेपर हरड़का चूर्ण तथा अन्य औषधियोंका चूर्ण मिला देवें । दूसरे दिन ठण्डा होनेपर शहद ४० तोला मिलाकर पात्र भरकर रक्खें ।

मात्रा – २ तोला से ४ तोला तक अग्निबल के अनुसार ।

उपयोग—दुष्ट प्रतिश्याय, कास, क्षय, दुस्तरपीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, बवासीर, और भयङ्कर श्वासका नाश तथा अग्निकी वृद्धि होती है । यह विष्टम्भको दूर करनेमें भी अपूर्व लाभ पहुँचाती है । (भै० र०)

(९) पञ्चतिक्त घृत

द्रव्य—नीमकी अन्तरछाल, पटोलपत्र, कटेलीका पञ्चाङ्ग, गिलोय, अडूसा इन पांचों औषधियोंको १०-१० पल (५०-५० तोले) घी गायका ऽ१ सेर ।

कल्क—त्रिफला चूर्ण २० तोले ।

विधि—निम्ब आदि पांचों औषधियोंको जोकुट करके ऽ३२ सेर पानी में क्वाथ करे ऽ८ सेर शेष रहनेपर उतार कर छान लेवें और घी और कल्क मिलाकर पाक करके घृत सिद्ध करें ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ।

उपयोग—१८ प्रकारके कुष्ठ रोग, ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्त रोग, २० प्रकारके कफ रोग, दुष्ट्रव्रण (बिगड़े हुए घाव) क्रिमिजन्य रोग, अर्श (बवासीर) तथा पांच प्रकारके कास रोगोंको नष्ट करता है ।

(भै० र०)

रोगानुसार औषध सूची

इस सूचीमें किस रोगपर कौन-कौनसी औषध दी जाती है, यह दिखाया है। एक ही रोगपर अनेक औषधियाँ काम देती हैं। परन्तु इनमेंसे देश, काल दोषदूष्य आदि भेदसे कोई विशेष अनुकूल रहती है, कोई कम। कोई सत्वर लाभ पहुँचाती है, कोई चिरकालमें। एक समान औषधियोंमेंसे अनेक लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। अतः विवेकपूर्वक उपयोग करना चाहिये। यथाहि निद्रानाशपर मुक्तापिष्टी, सूतशेखर, निद्रोदय रस आदि औषध उपयोगमें आती है। इनमेंसे पित्तप्रकोप या रक्तकी उष्णता हेतु हो, तो मुक्तापिष्टी; वातपित्तात्मक दोष हो; तो सूतशेखर और तीव्र वेदना होनेपर वातकेन्द्रको बलात्कारसे सुप्त बनाकर निद्रा लानी हो, तो निद्रोदयरस देना चाहिये। पृष्ठ ४२६ में हेमगर्भपोटली रसकी दो विधि लिखी हैं दोनों क्षय और संग्रहणीपर उपकारक हैं। इनमें प्रथम विधि जब यकृत्पित्तका स्राव कम होता हो, तब बढाकर नियमित कराने तथा कफस्राव और अनेक पिण्डोंकी सुदृढ़ बनानेकी जहां आवश्यकता हो, वहांपर हितकारक हैं। द्वितीय विधि उदरवात तथा आमाशयके पित्तकी अम्लता और उष्णताको शमन करने, अन्त्रकी संग्राहक शक्तिको बढ़ाने तथा अस्थिसंस्थानको दृढ़ बनानेके लिये लाभदायक मानी गई है इस रीतिसे सब औषधियोंमें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर विभिन्नता जानी जाती है। यहांपर कुछ अंशमें दोष आदि भेदसे औषधकी पृथक्ताका दिग्दर्शन कराया है। अधिक विस्तार "चिकित्सा तत्वप्रदीप" में देखें।

पाठकोंसे प्रार्थना है कि संक्षेपमें लिखी हुई चिकित्सा पद्धतिके अनुसार रोगी, रोग, रोगबल, हेतु, दोष-दूष्य, लक्षण, आयु, औषधिबल, आहार-विहार परिस्थिति सब बातोंका विचार करके चिकित्सा करें। रोगोंके नाम प्रांतभेदसे भिन्न होनेसे किसी एक प्रांतमें प्रचलित नाम अन्यत्र उपयोगमें नहीं आते। अनेक नाम अन्य प्रान्तवासी नहीं जानते अतः यहां माधवनिदानमें लिखे संस्कृत नाम ही प्रायः अकारादि क्रमसे लिखे हैं।

पाठकोंकी सुविधाके लिये रोगोंके नामोंकी यादी यहाँ दी है, जिससे सब कोई इच्छित रोग वर्णन तुरन्त निकालकर देख सकें। उदाहरणार्थ कब्ज, कब्जियत, मलावरोध, बद्धकोष्ठ और आनाह, इन शब्दोंमेंसे वर्णन आनाहके साथ लिखा है। इस रीतिसे अनेक पर्याय नाम वाले रोगोंके लिये समझ लें।

१ अग्निदग्ध व्रण आगसे जलना

वराटिका भस्म १९८ । अग्निदग्ध व्रणहर लेप ८७१ । शिर:शूलान्तक मलहम ८७० ।

दाग रह जानेपर—मन:शिलादि मलहम ८७१ ।

२ अग्निमांद्य-मन्दाग्नि (Loss of Appetite)

वात प्रधान—अग्नितुण्डी वटी ४०५ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६३२ । धनंजय-वटी ६१८ । शिवाक्षारपाचन चूर्ण ६६२ । गन्धक वटी ६३२ । आर्द्रकाव-लेह ६९४ । क्षुद्‌बोधक रस । ५८९ ।

पित्तप्रधान—वैडूर्य भस्म १८० । प्रवाल भस्म १८६ । शुक्तिभस्म १९६ शख भस्म २०१ । वराटिका भस्म १९८ । नींबूका शर्बत ८११ । स्वादिष्ट-शर्बत ८११ । सितोपलादि चूर्ण ६५४ ।

कफ प्रधान—अग्निकुमार रस ४०० । धनजय वटी ६१८ । लोकनाथ रस ५०७ । गन्धक वटी ६३२ । आर्द्रकावलेह ६९४ । क्षुद्‌बोधक रस ५८९

जलवायु दोष जनित—दुर्जल जेता रस ३३३ । आर्द्रकावलेह ७९४ ।

धातुकी निर्बलतासे—सुवर्ण भूपति २७८ । अभ्रकभस्म १५० । ताम्र-भस्म ९८ । लोहभस्म १०५ । वंगभस्म ११३ । लक्ष्मीविलास रस ३४९ । सुवर्णमालिनी वसंत ३६२ । हिंगुल रसायन ४७४ । द्राक्षासव ७४७ । अश्व गन्धारिष्ट ७४३ । त्रैलोक्य चिन्तामणि ३२७ । वसंतकुसुमाकर ४८४ ।

विष्टब्ध या आमाजीर्णसे मन्दाग्नि—रससिन्दूर २५७ । प्राणदा पर्पटी ३०३ । अग्नितुण्डी ४०५ । द्राक्षासव ७४७ । महाद्राक्षासव ७६८ । क्षुद्-बोधक रस ५८९ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६६२ ।

ज्वरके पश्चात् अग्निमांद्य—सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२ । लघुमालिनी ३७० । लक्ष्मीविलास रस ३४९, ३५७, ४२७, जयमङ्गल रस ३३१ । ६४ प्रहरी पीपल ४६ ।

विष प्रकोपसे अग्निमांद्य - सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२ । सुवर्णभूपति रस २७८ । चतुर्मुख रस ६०६ । प्रवाल पिष्टी ११८ । शुक्तिभस्म १९६ । मुक्ताभस्म १८३ । वराटिका १९८ । । वैडूर्य भस्म १८० ।

आमाशय वृद्धि जन्य—समीरपन्नग + शंख भस्म २७३, २०१ ।

३ अजीर्ण अपचन (Indigestion Dyspepsia)

सामान्य अपचन और आमाजीर्ण—अग्निकुमार रस ४०० । क्रव्याद रस ४०२ । संजीवनी वटी ६१३ । आरग्वधादि कल्क ७१४ । धनञ्जय वटी ६१८ । गन्धक वटी ६३२ । लहशुनादि वटी ६३८ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६६२ । चविकासव ७५७ ।

विदग्धाजीर्ण—आरोग्य वर्द्धिनी ४९७ । शंख वटी ३८८ । स्वादिष्ट शर्बत ८११ । धनञ्जय वटी ६१८ । लवणभास्कर चूर्ण ६५९ । भृंगराजा-

सव ७६१ । चविकासव ७५७ । खमीरा आवरेशम ८०५ ।

रसशेषाजीर्ण—प्रवाल भस्म १८६ । वराटिका भस्म १९८ । शंखभस्म २०१ । शुक्ति भस्म १९६ । अग्नितुण्डी वटी ४०५ । क्रव्याद् रस ४०२ । स्वादिष्ट शर्बत ८११ । लवणभास्कर चूर्ण ६५९ ।

जीर्ण अजीर्ण—कासीस भस्म १६२ । समीरगज केसरी रस ४६३ । लोह भस्म १०५ । ताप्यादि लोह ४११ । सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२ । लक्ष्मीविलास रस ३४९, ३५७, ४२७ ।

अलसक विलम्बिका—क्रव्याद रस ४०२ । लक्ष्मीविलास नारदीय ३५७

४ अतिसार-दस्त (Diarrhoea)

वात प्रधान—अगस्ति सूतराज रस ३८० । कनक सुन्दर रस ३८३ । कामदुघा रस ४४४ । सूतशेखर रस ५३४ । शखोदर रस ३९० । प्रवाल-पञ्चामृत ४८० । अश्विनीकुमार रस ४८९ । कुटजावलेह ७९१ ।

कफप्रधान—(नया) अगस्तिसूतराज रस ३८० । (जीर्ण) लोहभस्म १०५ । लक्ष्मीविलास रस ३४९, ३५७, ४२७ । लोकनाथ रस ५०७ । प्राणदा पर्पटी ३०३ ।

जीर्ण आमातिसार—रसपर्पटी २९१ । प्राणदापर्पटी ३०३ ।

पक्व आमातिसार—महावातराज रस ५८२ लक्ष्मीनारायण रस३४५ संगजराहत भस्म २१७ । शम्बूक भस्म २४२ । बोल पर्पटी २९९ । कर्पूर रस ३७९ । शंखोदर रस ३९० । सूतशेखर रस ५३४ । जातिफलादि वटी ३९१ । कुटजारिष्ट ७४९ । उशीरासव ७३९ ।

मानसिक आघात जन्य—द्राक्षासव ७४७ । अभ्रक भस्म १५० । और वराटिका भस्म १९८ । (शहद और सोंठके चूर्णके साथ) ।

प्रसूताके आमातिसार—जीरकाद्यरिष्ट ७५६ । सूतशेखर रस ५३४ ।

अन्त्र शोथज अतिसार—जसद भस्म १२७ । भृंगराजासव ७६१ । रस पर्पटी २९१ । सिद्ध प्राणेश्वर रस ३९५ ।

गुद भ्रंश—क्षुद्ररोगमें देखें ।

आंतोंकी साधारण शक्ति वृद्धयर्थ—अभ्रक भस्म, नाग भस्म और रस-सिंदूर (कुटजारिष्टके साथ) पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

५ अन्त्र विद्रधि [विद्रधि रोगमें]

नूतन—अन्त्रवृद्धिहर गुटिका ६२५ । अन्त्र वृद्धिहर चूर्ण ६६९ । वृद्धि-बाधिका वटी ५१६ ।

जीर्ण—नित्यानन्द रस ५१९ ।

६ अन्तःस्रावक ग्रन्थियोंकी विकृति

सारिवासव ७६० । नाग भस्म १३० । जसद भस्म १२७ । जाति-फलादि वटी ३९१ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । लक्ष्मीविलास नारदीय ३५७ ।

७ अन्त्रपुच्छ प्रदाह (Appendicitis उदर रोगमें देखें)

८ अन्त्र वृद्धि [आंत उतरना] (Inguinal Hernia)

९ अपस्मार-मृगी (Epilepsy)

नया—ताप्यादि लोह ४११ । अमर सुन्दरी वटी ४५८ । रौप्य भस्म ९२ । वातकुलान्तक ४५७ । भूतभैरव रस ३६१, ४५६ । उन्मादगज केशरी ४५५ । स्मृतिसागर ५९४ । योगेन्द्र रस ६०४ ।

जीर्णावस्था—अभ्रक भस्म १५० । अष्टमूर्त्ति रसायन २८० । मल्ल-सिंदूर २६१ । सूतराज रस ३१३ । मल्लसिंदूर वटी ४७२ । सारस्वतारिष्ट ४४६ । पञ्चगव्य घृत ८२५ । ब्राह्मी घृत ८२६ । कल्याण घृत ८२८ । स्मृतिसागर ५९४ ।

बेहोशी शमनार्थ—श्वास कुठार ४३५ । मूर्च्छान्तक नस्य ८७५ ।

अर्श रोग-सह अपस्मार—गन्धक रसायन ४४८ ।

उपदंश रोगके उपद्रव रूप अपस्मारका दौरा—अष्टमूर्ति रसायन २८० । मल्लसिंदूर २६१ । उपदंश सूर्य ५२१ ।

हिस्टीरिया सह अपस्मारका दौरा—मलेरिया वटो ३५९ ।

१० अम्लपित्त (Hyper acidity)

सबपर हितावह—जीरकादि मोदक ७८३ ।

वात प्रकोप सह—रौप्य भस्म ९२ । अविपत्तिकर चूर्ण ६६७ ।

आमाशय वृद्धिज—रौप्य भस्म ९२ । नागभस्म १३० । सुवर्णमाक्षिक-भस्म १३८ । वङ्ग भस्म ११३ । ताप्यादि लोह ४११ । कामधेनु रस ६०१।

कीटाणु प्रकोपज— लीलाविलास ५४७ ।

उदरमें व्रणहोकर जीर्ण अम्ल पित्त—नागभस्म १३० । स्वर्णमाक्षिक भस्म १३८ । ताप्यादि लोह ४११ । खमीरा आबरेशम ८०५ ।

यकृत्की निर्बलता सह— लीलाविलास ५४७ ।

भोजनके बाद हृदय शूल—शीतल पर्पटी ३०५ ।

उदरमें भारीपन—शंख भस्म २०१ ।

कफ प्रधान अम्लपित्त—लीला विलास ५४७ ।

पित्तकी तीक्ष्णता और अम्लता कम कराना—मुक्ता भस्म १८३ । प्रवाल भस्म १८६ । कामदुधा रस ४४४ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । ताप्यादि लोह ४११ । सूतशेखर ५३४ । शंख भस्म २०१ ।

शरीर शोधनार्थ—तुत्थ भस्म २२१ । नीलकण्ठ रस ३७५ ।

११ अरोचक अरुचि (Anorexia)

सबपर हितावह—अदरख शर्बत ८११ । धनञ्जय वटी ६१८ । शंख-वटी ३८८ । आर्द्रकावलेह ७९४ । आरोग्यवर्धादि कल्क ७१४ । गन्धकवटी

६३२ । द्राक्षासव ७४७ ।

वातिक —मानसिक चिन्ता जन्य-रौप्य भस्म ९२ । फिरङ्ग सुजाक-बाद रौप्य भस्म ९२ । क्षयादि पश्चात्-अभ्रक भस्म १५० ।

पित्तविकार जन्य—प्रवाल भस्म १८६ । कामदुधा रस ४४४ । प्रवाल पंचामृत ४८० । नींबूका शर्बत ८११ । सितोपलादि चूर्ण ६५४ ।

कफ दुष्टि जन्य – अग्निकुमार ४०० । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । अग्नि तुण्डी वटी ४०५ । हिंगुल रसायन ४७४ ।

ज्वरके पश्चात्—आरग्वधादि कल्क ७१४ । सुवर्ण मालिनी वसंत ३६२ लघुमालिनीवंसत ३७० । चौसटप्रहरी पीपल ४७ । खमीरा आवरेशम ८०५

१२ अर्बुद (Tumours)

सब प्रकारपर—कांचनार गूगल ६२८ । खदिरारिष्ट ७४० । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ ।

वात या कफ प्रधान— ताम्रभस्म ९८ ।

पित्त प्रधान— बंग भस्म ११३ । नागभस्म १३० ।

यकृद्पर मांसार्बुद—ताप्यादिलोह ४११ ।

१३ अर्श-बवासीर (Piles)

सब प्रकारपर हितकर—ताप्यादि लोह ४११ । नित्योदित रस ३९५ अर्शःकुठार रस३९७ । अभयारिष्ट ७५१ ।

वातार्श—रौप्यभस्म ९२ । लोहभस्म १०५ । नागभस्म १३० । वंग भस्म ११३ । बृहद् योगराज गूगल ४६५ । अश्वगंधारिष्ट ७४३ । दुर्नाम-कुठार वटी ६२६ ।

पित्तज—रौप्य भस्म ९२ । गन्धक रसायन ४४८ । मुक्तापिष्टी १८३ । अभयारिष्ट ७५१ । द्राक्षासव ७४७ ।

कफज—क्रव्याद् रस ४०२ । नवायस चूर्ण ४१८ ।

रक्तार्श—नागभस्म १३० । पीतल भस्म २१९ । सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८ । द्राक्षासव ७४७ ।

रक्त बन्द करनेके लिये— बोल पर्पटी २९९ । शंखोदर रस ३९० । जातिफलादि वटी ३९८ । बोलबद्ध रस ३९८ । लोहभस्म १०५ । उशीरा-सव ७३९ । तृणकान्तमणि पिष्टी २०४ ।

शक्ति संरक्षणार्थ—अभ्रकभस्म १५० । लक्ष्मीविलास रस ३४९, ३५७ ।

लगानेके लिये —प्रतिसारणीय क्षार ८५५ । कासीसादि लेप ८५८ । अर्शोहर मलहम ८६७ । कासीसादि तैल ८३६ ।

मल शुद्ध्यर्थ—द्राक्षासव ७४७ । अभयारिष्ट ७५१ । नाराच घृत ८१९ त्रिफला चूर्ण ६६४ । विरेचन चूर्ण ६६६ ।

अर्शसह कास, ग्रहणी या अपस्मार—गन्धक रसायन ४४८ ।

१४ अश्मरी-पथरी- शर्करा-सिकता (Calculus)

संगयहूद भस्म २१८। त्रिविक्रम रस ४८७। पाषाणवज्रक रस ४८८। त्रिकंटकादि क्वाथ ७०४। माजून हिजरुलयहूद ८०१। गोक्षुरादि गूगल ६२७। चन्दनासव ७५४।

१५ अष्ठीला वायुकी गांठ

ताम्र भस्म ९८। लोह भस्म १०५। क्रव्याद रस ४०२। चविकासव ७५७ शूल और रसोत्पादक पिंडकी विकृति सहपर-अभ्रक भस्म १५०।

१६ अस्थिभंग हड्डी टूटना

अस्थिदोषहर सेक ८७४। अस्थिसंधानक लेप ८५६।

अस्थिशूल—नागभस्म १३०। और नागभस्म प्रधान औषधियां।

१७ अस्थिक्षय-अस्थिशोष

पुष्पधन्वा रस ५७४। मधुमालनी वसन्त ३६७। कुक्कुटाण्डत्वक भस्म २२५। प्रवालपिष्टी ११८।

१८ अहिफेन व्यसन

अफीम छुड़ाना-कुचिला शोधन ७५।

१९ आध्मान-अफारा (Tympanites)

जडान्न या अपक्व भोजनसे—शंख वटी ३८८। क्रव्याद रस ४०२। शंखद्राव ७७०। उदरामृतयोग ७००। धनञ्जय वटी ६१८। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६६२। पंचसम चूर्ण ६६५। पचसकार चूर्ण ६६६।

जीर्ण रोग—अग्नि तुण्डी वटी ४०५। बृहद् योगराज गूगल ४६५। दशमूलारिष्ट ७३०।

उदरवात पेटमें वायुभरा रहना—कासीस भस्म १६२। लोहपर्पटी २९८ आनन्द भैरव रस ३७७।

अन्त्रस्थ जन्तु जन्य विकृतिसे तीव्र अफारा—पंचसूत २८४।

२० अनाह-वद्धकोष्ठ कब्ज (Constipation)

नया—शुद्ध गन्धक ६०। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। इच्छाभेदी रस ३७५। धनंजय वटी ६१८। आरग्वधादि कल्क ७१४। त्रिफला चूर्ण ६६४। पंचसम चूर्ण ६६५। नाराच घृत ८१९। विरेचन चूर्ण ६६६। पञ्चसकार चूर्ण ६६६। भृङ्गराजासव ७६१। लवणभास्कर चूर्ण ६५९।

अपानवायु अवरोध—लवणभास्कर चूर्ण ६५९।

जीर्णरोग—अभ्रक भस्म १५०। शंखवटी ३८८। द्राक्षासव ७४७। कुमार्यासव ७३५। अभयारिष्ट ७५१। नाराच घृत ८१९। जातिफलादि वटी ३९१। अग्नितुण्डी वटी ४०५। भृङ्गराजासव ७६१। ताप्यादि लोह ४११। नागभस्म १३०।

धातु क्षीणताके पश्चात्—नागभस्म १३० । ताप्यादिलोह ४११ । वंग भस्म ११३ । सुवर्ण वंग २६८ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ ।

उपदंश—बोलपर्पटी २९९ । गन्धक रसायन ४४८ ।

२१ आमवात (Rheumarism)

नया तीव्र—महावातविध्वंसन रस ४५९ । आमवातप्रमथिनी वटी ४०३ । ज्वरकेशरी वटी ३१५ । जयमंगल रस ३३१ । लक्ष्मीविलास ३४९ ३५७, ४२७ । मृत्युञ्जय ३३७ ।

सामान्य प्रकोप—महारास्नादि क्वाथ ७०५ ।

जीर्ण—लोह भस्म १०५ । मल्लसिंदूर वटी ४७२ । सुवर्णभूपति २७८ ताप्यादि लोह ४११ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । समीरगज केशरी रस ४६३ । महारास्नादि क्वाथ ७०५ । चिंचाभल्लातक वटी ६२८ । धात्री भल्लातक वटी ६३० । अमृतारिष्ट ७४४ ।

हृदय रक्षणार्थ—लक्ष्मीविलास रस ४२७ । पूर्णचन्द्रोदय रस २५६ । खमीराजमुर्रद ८०६ । नागार्जुनाभ्र रस ६१० ।

सूतिकाकोप आमवात—अश्वगन्धारिष्ट ७४३ ।

कोष्ट दोष शोधनार्थ—नाराच घृत ८१९ ।

२२ आमाशय व्रण

पित्तम—कामदुधा रस ४४४ । सूतशेखर ५३४ । खमीराआबरेशम ८०५

वातप्रकोप सह—रौप्य भस्म ९२ ।

वातवाहिनियोंकी विकृति—अभ्रकभस्म १५० और नागभस्म १३० ।

२३ उदर रोग

वातोदर दशमूलाद्य घृत ८२१ । दशमूल क्वाथ ६९५ । हिंगुल रसायन ४७४ । अग्नितुण्डी वटी ४०५ ।

पित्तप्रधान—रौप्य भस्म ९२ ।

अफारासह—प्रवाल पंचामृत ४८० ।

कफोदर - ताम्र भस्म ९८ । अग्नितुण्डी वटी ४०५ । तालसिंदूर२६४

अन्त्रपुच्छ प्रदाह —अग्नितुण्डी वटी ४०५ ।

यकृद्दाल्युदर- आरोग्य वर्द्धिनी ४९७ । नवायस चूर्ण ४१८ ।

यकृद्विकृति—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

यकृत् प्लीहावृद्धि —प्लीहान्तक क्षार चूर्ण ६६३ । प्लीहान्तक चूर्ण ६६३ रोहितारिष्ट ७५९ । नींबूद्राव ७६९ । उदरामृत योग ७७० । लघु शंखद्राव ७७० । शंखद्राव ७७० । शंखभस्म २०१ । ताम्रभस्म ९८ । क्रव्याद रस ४०२ । प्रवाल पंचामृत ४८० । शूलवज्रिणी ४७३ । लोहभस्म १०५ । स्वर्ण माक्षिक भस्म १३८ । मण्डूर भस्म १४५ । प्लीहान्तक वटी ४९७ । सुवर्णमालिनी ३६२ । मधुमालिनी ३६७ । पर्पटाद्यरिष्ट ७६२ । अभ्रकंचुकी

रस । कुमार्यासव ७३५ । पुनर्नवासव ७५९ । अभयारिष्ट ७५० ।

जलोदर—ताम्रभस्म ९८ । तार्लसिंदूर २६४ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ जलोदरारि रस ५०६ । लक्ष्मीविलास अभ्रक ३४९ । दशमूल क्वाथ ६९५ पुनर्नवासव ७५९ ।

तीव्रयकृत्संकोच -पंचसूत २८४ । ताप्यादि लोह ४११ ।

पित्ताशय संकोच – ताम्रभस्म ९८ ।

यकृत्में कंकर जमना—ताम्रभस्म ९८ । अगस्ति सूतराज रस ३८० । क्रव्याद् रस आदि ताम्र घटित औषधियां और कुमार्यासव ७३५ ।

मलशुद्धि अथ —इच्छाभेदी रस ३७५ । अभयारिष्ट ७५१ । नाराच घृत ८२१ ।

पाण्डुसह उदर रोग—त्रिफलारिष्ट ७४३ ।

२४ उदावर्त

सुवर्ण भूपति २७८ । बृहद् योगराज गूगल ४६५ । सूतशेखर ५३४ । अभयारिष्ट ७५१ । फलवर्त्ति ८७६ । शंखभस्म २०१ । गन्धक वटी ६३२ । द्विनिशादि लेप ८५३ ।

२५ उन्माद (पागलपन) (Insanity)

सबपर हितकर—उन्मादगज केसरी ४५५ । भूतभैरव रस ४५६ । अभ्रक भस्म १५० ।

वातप्रधान—रौप्य भस्म ९२ । कस्तूरी भैरव रस ३१३ । अश्वगन्धारिष्ट ७४३ । पंचगव्य घृत ८२२ । वातकुलान्तक रस ४५७ । भूतभैरव रस ४५६ ।

पित्त प्रधान—सुवर्ण भस्म ८७ । प्रवाल भस्म १८६ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । मुक्ताभस्म १८३ । कामदुघा ४४४ । सूतशेखर ५३४ । सारस्वतारिष्ट ७४६ । ब्राह्मी घृत ८२८ ।

वात पित्त प्रधान—योगेन्द्र रस ६०४ ।

कफप्रधान—मल्लसिन्दूर २६१ । समीरपन्नग २७३ । मल्लसिन्दूर वटी ४७२ । पञ्चगव्य घृत ८२५ ।

मानसिक आघात जन्य—स्मृति सागर ५९४ । अभ्रक भस्म १५० । विजयापुष्पाद्यवलेहके साथ ७९८ । रौप्य भस्म ९२ ।

गर्भाशयविकार और मासिकधर्म विकृति—स्मृतिसागर ५९४ । ब्राह्मीवटी ३५८ । लक्ष्मीविलास रस ३५७ । रजोदर्शन बन्द होनेपर सारस्वतारिष्ट ७४६ ।

शुक्रक्षयजन्य उन्माद—पूर्णचन्द्रोदय रस २५६ । (च्यवनप्राशावलेहके साथ) वंगभस्म ११३ ।

भूतोन्माद—पुनः पुनः प्रकुपित होनेवाला जीर्ण—अभ्रक भस्म १५० ।

शिलासिन्दूर वटी ५१८ । सूतराज रस ३१३ । स्मृतिसागर ५९४ । पञ्चगव्य घृत ८२५ । कल्याण घृत ८२८ ।

फिरंग अनुबन्ध सह—अष्टमूर्ति रसायन २८० ; मल्लसिन्दूर २६१ ।

निद्रानाशपर—सर्पगन्धादि वटी ६३९ . विजयापुष्पाद्यवलेह ७९८ । सूतशेखर ५३४ । प्रवालपिष्टी १८८ (ब्राह्मीके क्वाथके साथ) ।

बाह्योपचार—दशांगधूप ८७२ ।

२६ उपदंश-फिरङ्ग-गरमी (Syphillis)

नया रोग—पारद भस्म १३७ । व्याधिहरण रस २८३ । सत्यानाशीका तैल ५२ । अमीर रस ५२६ । उपदंश कुठार ५२४ ।

जीर्ण रोग—उपदंश सूर्य ५२१ । मल्लादि वटी ५२७ । त्रिपुरभैरव रस २८६ । केशरादि वटी ५२१ । रसकर्पूर ५२४ । अमीर रस ५२६ । गंधक रसायन ४४८ ।

सन्धिवात, रक्तविकार, कुष्ठ, गुदशूक, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि उपद्रव—हरताल भस्म २०५ । हरताल पुष्प५७० । मल्लभस्म २११ । मल्लसिन्दूर २६१ । अष्टमूर्ति रसायन २८० । उपदंश सूर्य ५२१ । मल्लादि वटी ५२७ । बृहद् मञ्जिष्ठादि क्वाथ ६९९ । उपदंशहर क्वाथ ७१० । अमृतारिष्ट ७४४ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । रक्तशोधकारिष्ट ७६६ । माजून चोपचीनी ८०१ । माजून उशबा ८०२ । सारिवासव ७६० । सुवर्ण वंग २६८ । पंचतिक्त घृत गुग्गुलु ८८२ ।

मूत्रदाह—प्रवालपिष्टी १८८ । गन्धक रसायन ४४८ ।

लगानेके लिए—उपदंशरिपु मलहम ८६७ । पारदादि मलहम ८७० । कोशातक्यादि तैल ८३९ ।

२७ उरस्तोय-कुक्ष्युदर-फुफ्फुसावरण शोथ

फुफ्फुस आवरणमें प्रदाह (Pleurisy)

थोड़ा जल संचय—रस सिन्दूर २५७ । माणिक्य रस २६७ । लघुमालिनी वसन्त ३७० । श्वासकुठार रस ४३५ ।

फुफ्फुसावरण शोथ—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

फुफ्फुस और हृदयमें वातजन्य व्यथा—महावात विध्वंसन रस ४५९ ।

अधिक जलसञ्चय—पंचसूत २८४ । नीलाञ्जन भस्म २३१ ।

२८ उरुस्तम्भ-आढ्यवात-जङ्घाकी वायु

सुवर्णभूपति २७८ । वातगजांकुश ४६२ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । सारिवासव ७६० ।

कोष्ठदोष शोधनार्थ—नाराच घृत ८१९ । नारायण तैल ८३५ ।

२९ कण्ठमाल, गलगण्ड और अपची

(Scrofula Goitre, Tuberculosis Adenitis)

नूतन रोग—नित्यानन्द रस ५१९ । कांचनारगूगल ६२८ । लोकनाथ ५०७ ।

जीर्ण--जसदभस्म १२७। गण्डमालाकण्डन रस ५१७। नागभस्म १३०। गंधक रसायन ४४८। मल्ल भस्म २११। शिलासिन्दूर वटी ५१८। शिलासिन्दूर २६६।

मन्द ज्वर हो तो--सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२। लोकनाथ रस ५०७।

लगानेके लिए--चक्रमर्दादि तैल ८३१। कटुतुम्बी तैल ८४०। प्रतिसारणीय क्षार ८५५। कण्ठमालका मलहम ८६६।

३० कण्ठरोग [गलेके रोग]

स्वरघ्न, विदारी, गलायु, अधिजिह्विका, उपजिह्विकापर--प्रवालपिष्टी १८८। जसद भस्म १२७। गन्धक रसायन ४४८।

स्वरसाद स्वरभग--जसद भस्म १२७।

उपजिह्वा प्रदाह--शुभ्रा भस्म २२६।

गलौध--(गाँठोंका जीर्ण शोथ) जसद भस्म १२७। सुवर्णमाक्षिक १३८। बीजपूरजटादि लेप ८५३।

३१ कब्ज [आनाहमें देखे]

३२ कर्क स्फोट (Cencer) विधिमें देखें।

३३ कर्ण रोग [कानके रोग]

बाधिर्य--कर्णशूल पूय आदि--कर्पूरधारा अर्क ७७४। बिल्वादि तैल ८३४। वराटिका भस्म १९८। दशमूल क्वाथ ६९५।

कर्णार्श जनित बधिरता--क्षार तैल ८३४।

खानेके लिए--सारिवादि वटी ५४९। श्रृङ्गभस्म २१३। वंगभस्म ११३

कर्णपाकमें दोष निकालना--क्षार तैल ८३४।

३४ कामला-पीलिया (Jandice)

सब प्रकारपर--ताप्यादि लोह ४११। महामृगांक रस ४२५। लोहभस्म १०५। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। मंडूरभस्म १४५। सुवर्ण भूपति २७८। पर्पटाद्यरिष्ट ७६२। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

जीर्ण कामला--मण्डूर भस्म १४५ और शिलाजीत ६३। लक्ष्मी विलास ३५७, ४२७। नवायस चूर्ण ४१८। चन्दनादि चूर्ण ६८०। पुनर्नवामण्डूर ५१३। अमृतारिष्ट ७४४। मेहान्तक रस ५८१।

कुम्भ कामला--मण्डूर भस्म १४५।

यकृद्के मांसार्बुद जन्य--ताम्र भस्म ९८। वंग भस्म ११३। ताप्यादि लोह ४११।

३५ कास-खांसी (Bronchitis)

सब प्रकारका कास--चन्द्रामृत रस ४३२। अभ्रकभस्म १५०। कफकर्त्तन रस ५८५। वासादि चूर्ण ६८५। चित्रकहरीतकी ८८३।

३६ कुष्ठ-कोढ़ (Leprosy& Skin diseases)

पंचतिक्त घृत गुग्गुलु ८८२।

वातप्रधान-वात कफप्रधान और अन्य द्वंद्वज--आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। रसमाणिक्य ५३१। मंजिष्ठादि तालसिंदूर ५३४। हरताल भस्म २०५।

हरताल पुष्प ५७०। पीतल भस्म २१९। पंचतिक्त घृत ८८३।

पित्तप्रधान--लोह भस्म १०५। लोहपर्पटी २९८। गन्धक रसायन ४४८। पञ्चनिम्बादि चूर्ण ५२९।

कफप्रधान--शिलासिंदूर २६६। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७।

उपदंशज कुष्ठ--हरताल भस्म २०५। मल्लभस्म २११। तालसिंदूर २६४। मल्लसिंदूर २६१। मल्लपुष्प ३५९। मल्लादि वटी ५२७। उपदंशसूर्य ५२१। रक्तशोधकारिष्ट ७६६।

आमानुबन्धयुक्त कुष्ठ--बृहद्योगराज गूगल ४६५।

गलत्कुष्ठ--कुष्ठकुठार रस ५९९।

क्षुद्र कुष्ठ--अश्वकंचुकी रस ३१९। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

श्वेत कुष्ठ--रसमाणिक्य ५३१। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

किलास कुष्ठ--लोध्रासव ७३४।

दुषी विषके उपद्रव रूप--आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

लगानेके लिये--कुष्ठहर लेप ८५४। प्रतिसारणीय क्षार ८५५।

शरीर शोधनार्थ--तुत्थभस्म २२१। इच्छाभेदी रस ३७५। अश्वकंचुकी रस ३१९।

ब्यूची--फिटकरी ७४। ब्यूचीहर मलहम ८६४। गन्धक रसायन ४४८ दशांगलेप ८५२।

३७ कृमि (Worms)

उदरकृमि और पुरीषज--कृमिकुठार रस ४०९। कृमिघ्न क्वाथ ७१०

आमाशयस्थ कफज और पुरीषज--कृमिमुद्गर रस ४०८। कृमिघ्न चूर्ण ६७८।

सूक्ष्म पुरीषज कृमिपर-वङ्गभस्म ११३। संजीवनी वटी ६१३। पीतल भस्म २१९। कांस्यभस्म २१९। वर्त्तलोहभस्म २२०। खदिरारिष्ट ७४०।

कृमिजन्य ज्वर--लघुमालनी वसन्त ३७०। वंगभस्म ११३।

६८ गुल्म गोला (Abdominal Tumour)

सब प्रकारके गुल्मोंपर--कांकायन वटी ६२७। लवणभास्कर चूर्ण ६५९। कुमार्यासव ७३५। चविकासव ७५७।

वातज--कासीस भस्म १६२। शूलवज्रिणी ४७३। बृहद्योगराज-गूगल ४६५। गुल्मकालानल रस ४७८। अग्निकुमार ४००। क्रव्याद रस ४०२। हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२। पुनर्नवासव ७५९।

पित्तज--नागभस्म १३०। गुल्मकुठार ४७६। प्रवालपञ्चामृत ४८०।

कुमार्यासव ७३५ । रोहितारिष्ट ७५९ ।

कफज—ताम्र भस्म ९८ । लोह भस्म १०५ । कुमार्यासव ७३५ । लघु-शंखद्राव ७७० । शंखद्राव ७७० । जम्भीरीद्राव ७७५ । पुनर्नवासव ७५९ ।

रक्त गुल्म—नाग भस्म १३० । गुल्म कुठार ४७६ । कुमार्यासव ७३५ । गोक्षुरादि गुग्गुलु ६२७ ।

सूतिका रोगसे उत्पन्न गुल्म—प्रतापलंकेश्वर रस ५५५ ।

कोष्ठदोष शोधनार्थ—नाराचघृत ८१९ ।

३९ ग्रहणी संग्रहणी (Chronic Diarrhoea)

सब प्रकारपर हितकर—जीरकादि मोदक ७८३। जातिफलादि वटी ३९१।

वात प्रधान नया—निराम है, तो अगस्ति सूतराज ३८० । कनक सुन्दर रस ३८३ । हेमगर्भ पोटली ४२६ । दशमूलारिष्ट ७३० । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

पित्त प्रधान—मंडूर माक्षिक भस्म १५० । प्रवाल पंचामृत ४८० । सूतशेखर ५३४ । महावातराज रस ५८२ । लोध्रासव ७३४ ।

पेचिश पाण्डु शोथ सह—दुग्धवटी ३८७ । महावातराज रस ५८२ । कुटजारिष्ट ७४९ ।

शीतज्वर सह संग्रहणी—पञ्चामृत पर्पटी ३०० । अभ्रक भस्म १५० ।

अम्लपित्तसह संग्रहणी—पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

कफ प्रधान नया—निराम है तो अगस्ति सूतराज रस ३८० । जाति-फलादि वटी ३९१ ।

शूलसह—शंखवटी ३८८ ।

आमसंग्रहणी (नया) ग्रहणी कपाट ३८५ । लाही चूर्ण ३८७ । लघु-लाही चूर्ण ३८८ । प्राणदापर्पटी ३०३ । सूतराज ३१३ । आनन्दभैरव ३७७ । क्रव्याद रस ४०२ । रामबाण रस ३९४ । कपित्थादि यवागू ७१३ । दशमूलारिष्ट ७३० । चींचाभल्लातक वटी ६२८ । लवणभास्कर चूर्ण ६५९ ।

आमसंग्रहणी (जीर्ण)—प्राणदा पर्पटी ३०३ । रससिन्दूर २५७ । कुट-जारिष्ट ७४९ । लोकनाथ रस ५०७ ।

आम और रक्तसह (जीर्ण)—महावातराज रस ५८२ । पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

पित्त प्रकोपशमनार्थ—वैडूर्य भस्म १८० । उशीरासव ७३९ । बोल-पर्पटी २९९ ।

पित्तोत्पत्ति वृद्धि अर्थ—ताम्रभस्म ९८ । पीतलभस्म २१९ । हेमगर्भ-पोटली ४२६ । रसपर्पटी २९१ । ताम्र पर्पटी २९६ ।

अन्त्रशोथसह संग्रहणी आँत्रक्षय—सुवर्णभूपति २७८ । सुवर्णपर्पटी २९३ । हेमगर्भपोटली ४२६ ।

पंचतिक्त घृत गुग्गुलु ८८२।

वातप्रधान-वात कफप्रधान और अन्य द्वंद्वज—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। रसमाणिक्य ५३१। मंजिष्ठादि तालसिंदूर ५३४। हरताल भस्म २०५।

हरताल पुष्प ५७०। पीतल भस्म २१९। पंचतिक्त घृत ८८३।

पित्तप्रधान—लोह भस्म १०५। लोहपर्पटी २९८। गन्धक रसायन ४४८। पञ्चनिम्बादि चूर्ण ५२९।

कफप्रधान—शिलासिंदूर २६६। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७।

उपदंशज कुष्ठ—हरताल भस्म २०५। मल्लभस्म २११। तालसिंदूर २६४। मल्लसिंदूर २६१। मल्लपुष्प ३५९। मल्लादि वटी ५२७। उपदंशसूर्य ५२१। रक्तशोधकारिष्ट ७६६।

आमानुबन्धयुक्त कुष्ठ—बृहद्योगराज गूगल ४६५।

गलत्कुष्ठ—कुष्ठकुठार रस ५९९।

क्षुद्र कुष्ठ—अश्वकंचुकी रस ३१९। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

श्वेत कुष्ठ—रसमाणिक्य ५३१। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

किलास कुष्ठ—लोध्रासव ७३४।

दुषी विषके उपद्रव रूप—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

लगानेके लिये—कुष्ठहर लेप ८५४। प्रतिसारणीय क्षार ८५५।

शरीर शोधनार्थ—तुत्थभस्म २२१। इच्छाभेदी रस ३७५। अश्वकंचुकी रस ३१९।

व्यूची—फिटकरी ७४। व्यूचोहर मलहम ८६४। गन्धक रसायन ४४८ दशांगलेप ८५२।

३७ कृमि (Worms)

उदरकृमि और पुरीषज—कृमिकुठार रस ४०९। कृमिघ्न क्वाथ ७१०

आमाशयस्थ कफज और पुरीषज—कृमिमुद्गर रस ४०८। कृमिघ्न चूर्ण ६७८।

सूक्ष्म पुरीषज कृमिपर—वङ्गभस्म ११३। संजीवनी वटी ६१३। पीतल भस्म २१९। कांस्यभस्म २१९। वर्त्तलोहभस्म २२०। खदिरारिष्ट ७४०।

कृमिजन्य ज्वर—लघुमालिनी वसन्त ३७०। वंगभस्म ११३।

६८ गुल्म गोला (Abdominal Tumour)

सब प्रकारके गुल्मोंपर—कांकायन वटी ६२७। लवणभास्कर चूर्ण ६५९। कुमार्यासव ७३५। चविकासव ७५७।

वातज—कासीस भस्म १६२। शूलवज्रिणी ४७३। बृहद्योगराज-गूगल ४६५। गुल्मकालानल रस ४७८। अग्निकुमार ४००। क्रव्याद रस ४०२। हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२। पुनर्नवासव ७५९।

पित्तज—नागभस्म १३०। गुल्मकुठार ४७६। प्रवालपञ्चामृत ४८०।

कुमार्यासव ७३५ । रोहितारिष्ट ७५९ ।

कफज—ताम्र भस्म ९८ । लोह भस्म १०५ । कुमार्यासव ७३५ । लघुशंखद्राव ७७० । शंखद्राव ७७० । जम्भीरीद्राव ७७५ । पुनर्नवासव ७५९ ।

रक्त गुल्म—नाग भस्म १३० । गुल्म कुठार ४७६ । कुमार्यासव ७३५ । गोक्षुरादि गुग्गुलु ६२७ ।

सूतिका रोगसे उत्पन्न गुल्म—प्रतापलंकेश्वर रस ५५५ ।

कोष्ठदोष शोधनार्थ—नाराचघृत ८१९ ।

३९ ग्रहणी संग्रहणी (Chronic Diarrhoea)

सब प्रकारपर हितकर—जीरकादि मोदक ७८३ । जातिफलादि वटी ३९१ ।

वात प्रधान नया—निराम है, तो अगस्ति सूतराज ३८० । कनक सुन्दर रस ३८३ । हेमगर्भ पोटली ४२६ । दशमूलारिष्ट ७३० । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

पित्त प्रधान—मंडूर माक्षिक भस्म १५० । प्रवाल पंचामृत ४८० । सूतशेखर ५३४ । महावातराज रस ५८२ । लोध्रासव ७३४ ।

पेचिश पाण्डु शोथ सह—दुग्धवटी ३८७ । महावातराज रस ५८२ । कुटजारिष्ट ७४९ ।

शीतज्वर सह संग्रहणी—पञ्चामृत पर्पटी ३०० । अभ्रक भस्म १५० ।

अम्लपित्तसह संग्रहणी—पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

कफ प्रधान नया—निराम है तो अगस्ति सूतराज रस ३८० । जातिफलादि वटी ३९१ ।

शूलसह—शंखवटी ३८८ ।

आमसंग्रहणी (नया) ग्रहणी कपाट ३८५ । लाही चूर्ण ३८७ । लघुलाही चूर्ण ३८८ । प्राणदापर्पटी ३०३ । सूतराज २१३ । आनन्दभैरव ३७७ । क्रव्याद रस ४०२ । रामबाण रस ३९४ । कपित्थादि यवागू ७१३ । दशमूलारिष्ट ७३० । चींचाभल्लातक वटी ६२८ । लवणभास्कर चूर्ण ६५९ ।

आमसंग्रहणी (जीर्ण)—प्राणदा पर्पटी ३०३ । रससिन्दूर २५७ । कुटजारिष्ट ७४९ । लोकनाथ रस ५०७ ।

आम और रक्तसह (जीर्ण)—महावातराज रस ५८२ । पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

पित्त प्रकोपशमनार्थ—वैडूर्य भस्म १८० । उशीरासव ७३९ । बोलपर्पटी २९९ ।

पित्तोत्पत्ति वृद्धि अर्थ—ताम्रभस्म ९८ । पीतलभस्म २१९ । हेमगर्भपोटली ४२६ । रसपर्पटी २९१ । ताम्र पर्पटी २९६ ।

अन्त्रशोथसह संग्रहणी आँत्रक्षय—सुवर्णभूपति २७८ । सुवर्णपर्पटी २९३ । हेमगर्भपोटली ४२६ ।

यकृत् प्लीहा विकृति सह (जीर्ण)—ताम्रपर्पटी २९६ । (ज्वर है, तो) विजय पर्पटी २९७ । पंचामृत पर्पटी ३०० ।

प्रसव होनेके पश्चात् ग्रहणी—सर्वाङ्गसुन्दर रस ५६८ ।

आन्त्रिक सन्निपातके पश्चात् ग्रहणी—लक्ष्मीनारायण रस ३४५ । लक्ष्मीविलास रस ४२७ । सूतशेखर ५३४ ।

जीर्णरोगमें शक्ति रक्षणार्थ—लोहभस्म १०५ । अभ्रक भस्म १५० । नागभस्म १३० ।

फिरङ्ग विषज ग्रहणी—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

४० ज्वर-बुखार (Fever)

सामान्य नया ज्वर—ज्वरकेशरी ३१५ । मृत्युञ्जय ३३७ । कासीस-गोदन्ती भस्म १६४ । गोदन्ती भस्म १६६ । महासुदर्शन चूर्ण ६५० ।

दुष्टजलवायु-जनित—दुर्जलजेता रस ३३३ । जयमंगल रस ३३१ । त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७ । गदमुरारी ३४० । अमरसुन्दरी ४५८ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । संजीवनी वटी ६१३ । ज्वरारि वटी ६१५ । किरातादि अर्क ७७३ ।

दोष पाचनार्थ—प्रवाल पिष्टी १८८ । रत्नगिरि रस ३१८ । गदमुरारि रस ३४० । कंटकार्यादि क्वाथ ७०१ । ज्वरहर अर्क ७७४ । किरातादि अर्क ७७३ । अमृत चूर्ण ६५३ ।

वातज्वर—विश्वतापहरण ३०९ । सूतराज रस ३१३ । त्रिभुवनकीर्ति ३२४ । मृत्युञ्जय रस ३३७ । महाज्वरांकुश ३१६ ।

आक्षेपवातसह ज्वर—स्मृतिसागर ५९४ ।

पित्तज्वर—गोदन्ती भस्म १६६ । प्रवाल पिष्टी १८८ । ताप्यादि लोह ४११ । षडंगपानीय क्वाथ ७१४ । शुभ्राभस्म २२६ । अमृताष्टक क्वाथ ७०० ।

कफज्वर—अभ्रक भस्म (काससह ज्वर) १५० । हरताल भस्म २०५ मल्ल भस्म २११ ।

शम्बुक भस्म २४२ । मल्ल पर्पटी ३०५ । शीतभंजी रस ३१० । अश्व कंचुकी रस ३१९ । आनन्द भैरव रस ३७७ । सूतराज रस ३१३ । मृत्युञ्जय रस ३३७ । नाग गुटिका ६१७ । महाज्वरांकुश ३१६ । त्रिभुवन कीर्त्ति ३२४ । सुवर्ण वङ्ग २६८ । अर्कमूल त्वक् । संजीवनी वटी ६१३ ।

वात कफ ज्वर—आरग्वधादि कल्क ७१४ ।

वात पित्त ज्वर—पञ्चमूलादि कषाय ७०२ ।

पित्त श्लेष्म ज्वर—कण्टकार्यादि क्वाथ ७०१ । नागरादि क्वाथ ७०२ ।

द्वन्द्वज—ज्वरकेशरी ३१५ । त्रिभुवनकीर्ति ३२४ । लक्ष्मीविलास ३५७ अश्वकंचुकी ३१९ । महाज्वरांकुश ३१६ । (वातपित्तज पंचमूलादि क्वाथ

७०२। मधुकादि हिम ७१५। पटोलादि क्वाथ ७१३) (वात-कफज आरग्वधादि कल्क ७१४। नागरादि क्वाथ ७०२। त्रिभुवनकीर्ति ३२४। मृत्युञ्जय रस ३३७। पित्त कफज-अमृताष्टक क्वाथ ७००। कण्टकार्यादि क्वाथ ७०१। नागरादि क्वाथ ७०२।

विषमज्वर (Malaria Fever)—शम्बुकभस्म २२४। कासीस गोदन्ती भस्म १६४। त्रिभुवनकीर्ति ३२४। मृत्युञ्जय ३३७। विश्वतापहरण ३०९। महाज्वरांकुश ३१६। लक्ष्मीनारायण ३४५। मलेरिया वटी ३५९। ज्वरमुरारि गुटिका ६४०। अमरसुन्दरी वटी ४५८। अमृत चूर्ण ६५३। अमृतारिष्ट ७४४। किराતादि अर्क ७७३। ज्वरमुरारि अर्क ७७६ नागरादि क्वाथ ७०२।

विषमज्वर शीतसह—हरताल भस्म २०५। मल्ल भस्म २११। शीतभंजी ३१०। नारायण ज्वरांकुश ३१६। मलेरिया वटी ३५९। ज्वरमुरारि गुटिका ६४०। ज्वरमुरारि अर्क ७७६। वातेभकेसरी ५८६। मल्लादि वटी ३६०। भूतभैरव रस ३६१। महाज्वरांकुश ३१६।

जीर्ण वातपित्तात्मक—ताप्यादि लोह ४११। चन्दनादि लोह ३६१। अमृतारिष्ट ७४४। संशमनी वटी ३७४।

जीर्ण रसगत पित्तज्वर—गदमुरारि ३४०। सुवर्णमालिनी वसंत ३६२ लघुमालिनी ३७०। अश्विनीकुमार रस ४८९।

बाह्योपचार—माहेश्वर धूप ८७१। अपराजित धूप ८७१।

कृष्ण ज्वर जीर्ण—अभ्रमूर्त्ति रसायन २८०।

परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever)—हरतालभस्म २०५। हरताल गोदन्ती भस्म २२३। मल्लसिंदूर २६१। अभ्रमूर्ति रसायन २८०। लक्ष्मीनारायण रस ३४५। चन्दनादि लोह ३६१। हरताल पुष्प ५७०। ज्वरमुरारि अर्क ७७६।

पूयजन्य ज्वर—ताप्यादि लोह ४११। शिलाजीत ६३।

शीतला, छोटी माता और अन्य संक्रामक ज्वर—त्रिभुवनकीर्ति रस ३२४। प्रवाल पिष्टी १८८।

कफज सन्निपात—मल्लसिंदूर २६१। त्रिभुवनकीर्ति ३२४।

वात कफ प्रधान सन्निपात (Influenza)—सूतराज ३१३। महावात विध्वंसन ४५९। त्रिभुवनकीर्ति रस ३२४। पञ्चवक्त्र रस ३३६। मृत्युञ्जयरस ३३७। कालकूट ३४२। मल्लसिंदूर २६१। तगरादि कषाय ७१५।

हृदय रक्षणार्थ—लक्ष्मीविलास ४२७। ब्राह्मी वटी ३५८। पूर्णचन्द्रोदय रस २५६। हेमगर्भपोटली रस ४२६।

आंत्रिक सन्निपात—मधुरा (२१ दिनका मुद्दती ताप Typhoid) लक्ष्मीनारायण रस ३४५। कस्तूरीभैरव रस ३१३। सूतशेखर रस ५३४।

(पित्ताधिक्यपर)-संजीवनी वटी ६१३ । पुनः प्रकुपित-महासुदर्शन ७७९ ।

मधुराका विष बाहर निकालना—मधुरान्तक वटी ३४८ । मधुरज्वरान्तक क्वाथ ७०२ । प्रवालपिष्टी १८८ । शुभ्राभस्म २२६ ।

शुष्क कास—प्रवाल पिष्टी १८८ । सूतशेखर ५३४ ।

दुष्ट रक्त-जन्य वातप्रकोप—ताप्यादि लोह ४११ ।

कफ-प्रकोप हो, तो—हरतालगोदन्ती भस्म २२३ ।

वातप्रधान हो, तो—अष्टमूर्ति रसायन २८० ।

हृदय रक्षणार्थ—ब्राह्मीवटी ३५८ । अभ्रक भस्म १५० । प्रवाल १८८ और रससिन्दूर २५७ । लक्ष्मीविलास ४२७ ।

निद्रानाश—सूतशेखर ५३४ ।

अतिसार और बहुमूत्र—रौप्य भस्म ९२ ।

मधुरामें प्रलाप—चन्द्रकला रस ४२० ।

चित्तविभ्रम और भयंकर प्रलाप—महावातविध्वंसन ४५९ । प्रवालपिष्टी १८८ । तगरादि कषाय ७१५ ।

कोष्ठ शूल, संधिवात, मन्दप्रलाप—वृहद्योगराज गूगल ४६५ । सूतशेखर ५३४ ।

श्वसनक सन्निपात—फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia)—अभ्रकभस्म १५० । मल्ल भस्म २११ । हरताल गोदन्ती भस्म २२३ । कफ बाहर निकालनेके लिये-समीरपन्नग २७३ । कफरूपान्तरार्थ-पंचसूत रस २८४ । कफशोषणार्थ-मल्लसिंदूर २६१ । त्रैलोक्यचिन्तामणिं ३२७ । वातेभकेशरी रस ५८६ । महावातविध्वंसन ४५९ । शीतभंजी रस ३१० । सूतराज रस ३१३ । महावातराज रस ५८२ । मल्लपुष्प ३५९ । कालारि रस ५८५ । अचिन्त्यशक्ति रस ५८८ । शुभ्राभस्म २२६ । त्रिभुवनकीर्ति रस + अभ्रक भस्म + शृङ्ग भस्म पञ्चवक्त्र रस ३३६ । कुटजारिष्ट ७४९ ।

फुफ्फुसदाह शमनार्थ—लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त ३४९ ।

लगानेके लिये—पार्श्वशूलनाशक लेप ८५७ ।

हृदय उत्तेजनार्थ—संचेतनी ३४८ । रससिन्दूर २५७ । हेमगर्भपोटली रस ३३४ । लक्ष्मीविलास ३४९, ४२७ ।

विविध सन्निपात—गोदन्ती १६६ । हरतालगोदन्ती २२३ । अमरसुन्दरी ४५८ । संजीवनी ६१३ । महाज्वरांकुश ३१६ । सूतराज ३१३ ।

सन्निपातमें कफप्रकोप—पूर्णचन्द्रोदय २५६ । मल्लसिंदूर २६१ ।

सन्निपातमें वाताक्षेप—पंचसूत २८४ ।

वात कफप्रकोप—समीरपन्नग २७३ । पञ्चवक्त्र ३३६ । अष्टादशांग क्वाथ ६९८ । कालारि रस ५८५ । वातेभकेसरी ५८६ ।

वातपित्त प्रकोप—सुवर्णभूपति रस २७८ । सूतशेखर ५३४ ।

पित्तप्रकोप—चन्द्रकला ४२० । प्रवालपिष्टी १८८ ।

४१ ज्वरातिसार-ज्वर और दस्त

सर्वप्रकारपर हितकर—प्राणदापर्पटी ३०३। सूतराज ३१३। नागरादि क्वाथ ७०२। सिद्धप्राणेश्वर रस ३९५।

अन्त्रशोथज—रसपर्पटी २९१। जसदभस्म १२७।

वातप्रधान—कनकसुन्दर ३८३।

वातपित्तात्मक—सूतशेखर ५३४।

वमन सह—पाठादि चूर्ण ६६३।

सूतिकाको ज्वरातिसार—लक्ष्मीनारायण रस ३४५। जीरकाद्यरिष्ट ७५६। सर्वाङ्गसुन्दर रस ५६८। सूतशेखर ५३४। सिद्धप्राणेश्वररस ३९५

४२ तृषा-प्यास (Therst)

तार्क्ष्य भस्म १७९। रसादि चूर्ण ४४३। कुमुदेश्वर ४४३। पर्पटाद्यरिष्ट ७६२। तृष्णाघ्नि गुटिका ६३८।

आमज तृषा—कुमुदेश्वर रस ४४३।

मधुमेहज तृषा—जातिफलादि वटी ४९४। कुमुदेश्वर रस ४४३।

४३ त्वचारोग-खुजली आदि

वंगभस्म ११३। वर्त्तलोहभस्म २२०। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। ताप्यादि लोह ४११। गन्धक रसायन ४४८। कर्पूरधारा ७७४। विरेचन चूर्ण ६६६। चर्मरोगनाशक तैल ८३४। आरोग्यवर्द्धनी ४९७। समीर पन्नग २७५। अमृतारिष्ट ७४४। खदिरारिष्ट ७४०।

उपदंश जनित—व्याधिहरण रस २८३। अष्टमूर्ति रसायन २८०।

अण्डकोषकी खाज—चर्मरोगनाशक तैल ८३४। कासीसादि लेप ८५८

गुदद्वार कण्डू—गन्धक ६०।

सुजाक जनित—सुवर्ण वङ्ग २६८।

४४ दन्त रोग-दांतके रोग

मसूढ़ेकी निर्बलता—दन्तप्रभाकर मंजन ६७०।

पारदविषज मसूढ़ेकी निर्बलता—शुभ्राभस्म २२६।

दन्तकृमि—बृहत्यादि क्वाथ ७१२। कर्पूरधारा अर्क ७७४। कर्पूरासव ७६४। कृमिघ्न धूम्र ८७३। दन्तदोषहर मंजन ६७०। फिटकरी ७४।

दन्तवेष्ट-(Pyorrhoca) गन्धकरसायन ४४८। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७

४५ दद्रु-दाद (Ringworm)

दद्रुहर लेप ८५८। दद्रुदमन मलहम ८६५। गन्धक रसायन ४४८। कर्पूरधारा अर्क ७७४। नारसिंह चूर्ण ६७२। खदिरारिष्ट ७४०। समीर पन्नग २७३। भृङ्गराजासव ७६१। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

४६ दाह

गन्धकरसायन ४४८। राजावर्त्तभस्म १८१। सितोपलादिचूर्ण ६५४।

बृहत्सितोपलादिचूर्ण ६५८। चन्दनादिचूर्ण ६८०। सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८।

ज्वरमें दाह—जसद भस्म १२७। प्रवालपिष्टी १८८। सूतशेखर ५३४ अमृताष्टक क्वाथ ७००। स्फटिकमणि भस्म २३०।

शराबीकी दाह— सूतशेखर ५३४। राजावर्त्त रस ४४४। मुक्तापिष्टी १८३। राजावर्त्त पिष्टी १८२। दूर्वाद्य घृत ८२८।

सर्वाङ्गदाहमें दाह कण्डूसह—चन्द्रकला रस ४२० उसीरासव ७३९।

सेन्द्रिय विषजन्य दाह और उदरवात—कासीस भस्म १६२।

उष्णकालमें दाह–मुक्तापिष्टी १८३। प्रवालपिष्टी १८८। कामदुघारस ४४४ रसादिचूर्ण ४४३। पर्पटादिक्वाथ ७०८। चन्दनका शर्बत ८१०। गुलाबका शर्बत ८११। आंवलेका मुरब्बा ८०९। चन्दनादिअर्क ७६९। गुलकन्द ७९२।

४७ धातुक्षीणता-निर्बलता-नपुंसकता

शुक्राशयकी निर्बलता—प्रवालपिष्टी १८८ और वंगभस्म ११३। सुवर्ण वंग २६८। त्रिवंगभस्म १२४। नागभस्म १३०। मृगनाभ्यादिवटी ५७६। शुक्रमातृका ५७२। वीर्यशोधन वटी ५७८। वीर्यशोधक चूर्ण ६७२। विजयापुष्पाद्यवलेह ७९८। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २२५। लबूब कबीर ८०७।

सप्तधातुकी क्षीणता और शारीरिक निर्बलता—सुवर्णमालिनी वसंत ३६२। शिलाजीत ६३। नागभस्म १३०। लक्ष्मीविलास ३४९, ३५७, ४२७। रससिन्दूर २५७। अभ्रकभस्म १५०। नारसिंह चूर्ण ६७२। कासीस और लौहभस्म १६२, १०५। च्यवनप्राशावलेह ७८५। बादाम पाक ७९५। ब्राह्मी वटी ३५८। संशमनी वटी ३७४। मधुमालिनी ३६७

लघुमालिनी वसंत ३७०। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। कामधेनु रस ६०१। भृंगराजासव ७६१। अश्वगन्धारिष्ट ७४३। त्रिफलारिष्ट ७४३। लबूब कबीर ८०७।

अण्डकोषकी निर्बलतासे नपुंसकता—सुवर्णभस्म ८७। नागभस्म १३० और शिलाजीत ६३। रौप्यभस्म ९२। वंग भस्म ११३। अभ्रकभस्म १५० लोहभस्म १०५। वज्रभस्म १७३। वैक्रान्तभस्म १८२। लक्ष्मीविलास ४२७। पूर्णचन्द्रोदय २५६। पुष्पधन्वा ५७४। वसन्तकुसुमाकर ४८४। बृहद्वंगेश्वर ४९१। अश्वगन्धारिष्ट ७४३। मल्ल तैल ८२९। अपूर्वतिला ८३२। मल्लसर्पि ८३३। लिङ्ग तैल ८३३। कौंचपाक ७८२। सालमपाक ७९६। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २२५। वृष्य वटी ५८१।

सुजाकजन्य नपुंसकता—सुवर्णवंग २६८।

मधुमेहादिसे कोथ और निर्बलता—नागभस्म १३०। ताप्यादि लोह ४११। शिलाजीत ६३। महावातराज रस ५८२। पूर्णचन्द्रोदय २५६। प्रमेहगजकेशरी ५८९। माणिक्य पिष्टी १७८।

रक्तस्रावसे निर्बलता—लोहभस्म १०५। लबूब कबीर ८०७।

मस्तिष्ककी निर्बलता-पित्तप्रधान—मुक्तापिष्टी १८३। कामदुघा ४४४। वसन्तकुसुमाकर ४८४। खमीरासंदल ८०७। अतरीफल मुलैयन८०८। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८,प्रवालपिष्टी १८८, वृष्यवटी ५८१, लवूबकबीर ८०७।

मष्तिष्ककी निर्बलता वातप्रधान—रौप्य भस्म ९२।

ज्वर आदि रोगके पश्चात्—सुवर्ण मालिनी वसन्त ३६२।

रक्तकी कमीसे हो तो—मण्डूर भस्म १४५। अथवा लोह भस्म १०५ स्फटिकमणि भस्म २३०।

शारीरिक कृशता, धातुक्षय—अभ्रक भस्म १५०। भृंगराजासव ७६१ आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। लक्ष्मीविलास रस स्वर्णयुक्त ४२७। वसन्तकुसुमाकर रस ४८४। सुवर्णमालिनी ३६२। च्यवनप्राशावलेह ७८५। वृष्यवटी ५८१। लवूब कवीर ८०७।

वातवाहिनीकी विकृति और मानसिक निर्बलता—अभ्रक भस्म १५०। बादामपाक ७९५। दवाउलमुश्क ७९८। खमीरे गावजवां अम्बरी ८०४। च्यवन प्राशावलेह ७८५।

स्तम्भनार्थ—कामिनीविद्रावण ५७२। वीर्यस्तम्भन वटी ५८१। शुक्रस्तम्भन गुटिका ६२५। विजयापुष्पाद्यवलेह ७९८। वृष्यवटी ५८१। लबूब कबीर ८०७।

४८ नासारोग-नाकके रोग

रक्त गिरना—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। चन्द्रकला रस ४२०। कामदुघा रस ४४४। सूतशेखर ५३४। मुक्ताभस्म १८३। प्रवालपिष्टी १८८। लघुसूतशेखर ५४६।

नासाव्रण—गन्धक रसायन ४४८।

पीनस—व्याघ्री तैल ८३०। नासाकृमिहर घृत ८२९।

४९ निद्रानाश नींद न आना

राजावर्त भस्म १८१। मुक्तापिष्टी १८३। निद्रोदय रस ४५७। सूतशेखर ५३४। द्राक्षासव ७४७, महाद्राक्षासव ७६८, विजयापुष्पाद्यवलेह ७९८

मानसिक निर्बलतासे—वसन्तकुसुमाकर ४८४। द्राक्षासव ७४७।

वृक्कविकार जनित—सर्पगन्धादि गुटिका ६३९।

क्विनाइनसे निद्रानाश—सर्पगन्धादि गुटिका ६३९।

५० नेत्ररोग-आंखके रोग

नेत्रोंके सब रोगोंपर—अतरीफल कश्नीजी ८०८। त्रिफला चूर्ण ६६४ त्रिफलादि घृत ८१८। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। स्फटिकमणि भस्म २३०।

दृष्टिकी निर्बलता—नेत्रसुदर्शन अर्क ८४९। शुद्धगन्धक ६०। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। स्फटिकमणि भस्म २३०। गन्धक रसायन ४४८। नेत्रप्रभाकर अञ्जन ८४७। अश्वकंचुकी ३१९।

नेत्रशूल—अश्रु दबावज अधिमन्थ (Glaucoma) रौप्यभस्म ९२। शम्बुक भस्म २२४। अश्वकंचुकी ३१९। नेत्रशूलान्तक मोदक ७८६।

रक्तदबाववृद्धिजन्य—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७।

पित्तप्रधान-रोगोंपर—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। जसद भस्म १२७। काँस्यभस्म २१९। वर्त्त लोहभस्म २२०। कासीसभस्म १६२। मुक्तापिष्टी १८३

उपदंशज पूयाभिष्यंद आंखमेंसे पीप आना—गन्धक रसायन ४४८। उपदंश सूर्य ५२१। लगानेके लिये रसांजनादि लेप ८५९।

पूयमेहज दृष्टिनाश—गन्धक रसायन ४४८।

नेत्रदाह लाली और अभिष्यंद (Coniunctivitis)-कासीसभस्म १६२ शुभ्राभस्म २२६। नेत्रबिन्दु ८५०। दार्व्यादिरसक्रिया ८५१। पथ्यादि अञ्जन ८५२। रसांजनादि लेप ८५९। बबूलादि स्वरस ८४९। सुवर्ण-भस्म ८७। मुक्ता पिष्टी १८३। प्रवालपिष्टी १८८। और सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। स्फटिकमणिभस्म २३०।

तिमिर, धुन्ध आदि—कृष्ण नेत्राञ्जन ८४९। चन्दनादिवर्ति ८५२।

नेत्रकी पुतली खिचना—रौप्यभस्म ९२। स्फटिकमणि भस्म २३०।

नेत्रशोथ, लाली, मांसवृद्धि—रक्तनेत्रांजन ८४९।

जीर्णपोथकी (Chronio Trachoma)–लघुमालिनी वसंत ३७०। कृष्णनेत्रांजन ८४९।

पारद विषज नेत्रदाह—गन्धक रसायन ४४८।

पूयशुक्रज अभिष्यंद —गन्धक रसायन ४४८।

कुकूणक (Phlyctenule) रक्तनेत्रांजन ८४९। पुष्पहरअञ्जन ८५२।

शुक्र, फूला, जाला, मांसवृद्धि, अर्बुदक्षत (Corneal ulcer) शंखभस्म २०१। रसकेश्वर गुटिका ८७४। चन्द्रोदयावर्त्ति ८५०। रक्तनेत्रांजन ८४९। कृष्ण नेत्रांजन ८४९। पुष्पहर अञ्जन ८५२।

नूतन काचबिन्दु (Catract)—अतरीफल कश्नीजी ८०९। त्रिफला-घृत ८२०। नेत्रसुदर्शन अर्क ८५१।

नेत्रमें शीतला—मधुकादि लेप ८५५।

५१ पलित (बाल सफेद होजाना)

चाँदीका खिजाब ७७९। चन्दनादि तैल ८३३। नारसिंह चूर्ण ६७२। अश्वगन्धारिष्ट ७४३। पूर्णचन्द्रोदय रस २५६। वसन्तकुसुमाकर ४८४। भृंगराजासव ७६२।

५२ प्रतिश्याय-जुकाम-नजला (Coryza)

नया—अग्निकुमार रस ४००। कज्जली ५०... (नागरबेलके पानमें)। अश्विनीकुमार रस ४८९। नागगुटिका ६१७। आनन्दभैरव रस ३७७। लक्ष्मीविलास अभ्रकयुक्त ३४९।

अजीर्ण जन्य—धनञ्जय वटी ६१८ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

जीर्ण—लक्ष्मीविलास ३५७ । समीरगज केसरी ४६३ ।

बारम्बार प्रतिश्याय—रससिन्दूर २५७ और अभ्रकभस्म १५० ।

सूंघनेके लिये—नजलानाशक नस्य ८७४ । कलिंगादि नस्य ८७४ ।

५३ प्रभापात (लू लगना)

प्रवालपिष्टी १८८ । मुक्तापिष्टी १८३ । मधुकादि हिम ७१५ । चन्दन का शर्बत ८१० ।

५४ प्रमेह

सब प्रकारके प्रमेह—त्रिफला चूर्ण ६६४ । न्यग्रोधादि चूर्ण ६७२ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ । लोध्रासव ७३४ । वसन्तकुसुमाकर ४८४ । बृहद् वङ्गेश्वर ४९१ ।

वात प्रधान—रौप्यभस्म ९२ । शिलाजीत ६३ । ताप्यादि लोह ४११ बृहद् योगराज गूगल ४६५ । अश्वगन्धारिष्ट ७४३ ।

वृद्धावस्थामें हो, तो—वंगभस्म ११३ । कांस्यभस्म २१९ । हेमनाथ रस ४८३ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ ।

शुक्रक्षय जन्य—वंगभस्म ११३ । सुवर्णवङ्ग २६८ । बृहद् वंगेश्वर ४९१ सुवर्ण भूपति २७८ । लक्ष्मीविलास रस ४२७ । शुक्रमातृका वटी ५७२ । पुष्पधन्वा रस ५७४ । पञ्चामृत रस ६०० । लबूब कबीर ८०७ ।

शुक्रमेह—चन्दनासव ७५४ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । शिलाजीत ६३

लालामेह—प्रमेहगज केसरी ५८९ ।

इक्षुमेह—चविकासव ७५७ । जातिफलादि वटी ४९४ । वङ्गभस्म ११३

वातपित्त-प्रकोपसह-जीर्णप्रमेह—योगेन्द्र रस ६०४ ।

आमप्रकोपसह—बृहद् योगराज गूगल ४६५ ।

अपचन जन्य—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

पित्तप्रधान—गन्धक ६० । सुवर्णभस्म ८७ । रौप्य भस्म ९२ । लोह भस्म १०५ । जसदभस्म १२७ । ताप्यादि लोह ४११ । सुवर्णमाक्षिक १३८ राजावर्त भस्म १८१ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । मेहान्तक रस ५९१ । पञ्चामृत रस ६०० । अश्विनीकुमार रस ४८९ । कामधेनु रस ६०१ । चन्द्रकला रस ४२० । प्रवाल पञ्चामृत रस ४८० । उसीरासव ७३९ ।

कफप्रधान—शिलाजीत ६३ । लोहभस्म १०५ । नवायस चूर्ण ४१८ । आनन्द भैरव रस ३७७ । बोलबद्ध रस ३९८ । त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । प्राणदापर्पटी ३०३ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ ।

मांस खाने वालेको—ताम्र भस्म ९८ । पीतल भस्म २१९ । विजय पर्पटी २९७ ।

मधुमेह—शिलाजीत ६३ । नागभस्म १३० । जसदभस्म १२७ । सुवर्ण

वंङ्ग २६८ । अभ्रक भस्म १५० । हेमनाथ रस ४८३ । वसन्तकुसुमाकर ४८४ । जातिफलादि वटी ४९४ । न्यग्रोधादि चूर्ण ६७२ । महावातराज रस ५८२ । प्रमेह गज केसरी ५८९ । चविकासव ७५७ ।

पूयमेह (सुजाक Gonorrhoea) नया—संगजराहत भस्म २१७ । शुभ्राभस्म २२६ । मूत्रकृच्छ्रांतक ४८३ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । उष्ण-वातघ्न चूर्ण ६७१ । अरविन्दासव ७६३ ।

पूयमेह (जीर्ण)—रौप्यभस्म ९२ । नागभस्म १३० । सुवर्ण वंग २६८ गन्धक रसायन ४४८ । हरिशंकर रस ४९० । धात्री भल्लातक वटी ६३० देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । रक्तशोधकारिष्ट ७६६ । सारिवासव ७६० । चन्दनासव ७५४ । अमृतारिष्ट ७४४ । अरविन्दासव ७६३ ।

मूत्रविरेचन—मूत्रशोधक क्वाथ (द्रव) ७११ । मूत्र विरेचन चूर्ण ६७१

पूय प्रमेह जन्य संधिवात, शोथ, पूयाभिष्यंद आदि—सुवर्ण वंग २६८ । धात्री भल्लातक वटी ६३० ।

५५ प्रमेह-पिटिका (Carbuncle)

जातिफलादि ४९४। हेमनाथ ४८३। वसन्तकुसुमाकर ४८४। अदीठका मलहम ८६५ । महावातराज रस ५८३ । मेहान्तक रस ५९१ । सारिवासव ७६० ।

५६ प्रवाहिका-पेचिश (Dysentry)

आमसह—प्राणदापर्पटी ३०३ । जातिफलादिवटी ३९१ । कुटजारिष्ट ७४९ ।

रक्त और आमसह—जातिफलादि वटी ३९१ । कर्पूर रस ३७९ । शंखोदर रस ३९० ।

रक्त पूयसह—जातिफलादि वटी ३९१ । प्रवाहिकारिपु चूर्ण ६६७ ।

जीर्ण ज्वर आम और रक्तसह—पञ्चामृत पर्पटी ३०० ।

निराम प्रवाहिका—अगस्ति सूतराज ३८० । जातिफलादि वटी ३९१ कुटजावलेह ७९१ ।

५७ पाण्डु (Anaemia)

वातज—मानसिक चिन्ताजन्य—रौप्यभस्म ९२ । अभ्रक भस्म १५० । नागभस्म १३० । अभ्रपर्पटी ३०६ । सुवर्णभूपति २७८ । कामधेनुरस ६०१

पित्तज पाण्डु और हलीमक—लोहभस्म १०५ । तार्क्ष्यभस्म १७९ । जसदभस्म १२७ । मण्डूरभस्म १४५ । त्रिफलारिष्ट ७४३ । ताप्यादिलोह ४११ । बोलपर्पटी द्वितीय विधि २९९ ।

कफप्रधान—यकृत्प्लीहावृद्धिजन्य-ताम्रभस्म ९८ । पीतल भस्म २१९। त्रैलोक्य चिन्तामणि रस ३२७ । नवायसचूर्ण ४१८ । दशमूल क्वाथ ६९५। लक्ष्मीविलास ४२७ ।

यकृत्क्षीणताजन्य पाण्डु—लक्ष्मीविलास स्वर्णयुक्त ४२७ । पूर्णचन्द्रोदय रस २५६ ।

निर्बलता या शुक्रक्षय जन्य पाण्डु—वंगभस्म ११३। नागभस्म १३०। और लोहभस्म १०५। वज्रभस्म १७३। वैक्रान्त भस्म १८२। महामृगाङ्क ४२५। लक्ष्मीविलास ४२७। त्रिफलारिष्ट ७४३। द्राक्षासव ७४७।

मृ..भक्षणजन्य—लोहभस्म १०५। ताप्यादिलोह ४११। मण्डूर भस्म १४५ और लघुमालिनीवसन्त ३७०। मृदुविरेचन रस ५६७।

कृमिजपाण्डु—ताप्यादिलोह ४११। मृदुविरेचन रस ५६७।

हारिद्रक (स्त्रियोंके लिए पाण्डु Chlorhsis) मण्डूर भस्म १४५। लोहभस्म १०५। ताप्यादिलोह ४११। अभ्रकभस्म १५०। और लोहभस्म १०५। बोलपर्पटी द्वितीय विधि २९९। लघुमालिनी वसन्त ३७०। मेहान्तकरस ५९१। कुमार्यासव ७३५।

रक्तस्राव रजःस्राव या रक्ताणुकी कमीसे पाण्डु—कासीस १६२। और लोहभस्म १०५। गोमेदमणि १७९। मेहान्तकरस ५९१। त्रिफलारिष्ट ७४३।

गर्भाशय दोषसे पाण्डु—बोलपर्पटी २९९। सुवर्णमालिनीवसन्त ३६२। प्रदरान्तक लोह ५४९। ताप्यादि लोह ४११।

सेन्द्रियविष और विष्टब्धाजीर्ण जन्य—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। चविकासव ७५७। अभयारिष्ट ७५१।

ज्वरके पश्चात् पाण्डु—लघुमालिनीवसन्त ३७०। ताप्यादिलोह ४११। नवायस चूर्ण ४१८। सुवर्णमालिनी ३६२। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८।

शोथसह पाण्डु—तक्रमण्डूर ५११। पुनर्नवा मण्डूर ५१३। दुग्ध वटी ३८७। मेहान्तक रस ५९१।

अतिसारजन्य पाण्डु—लोहपर्पटी २९८। सुवर्णपर्पटी २९३।

पाण्डुरोगमें स्पन्दन वृद्धि—उशीरासव ७३९।

५८ पामा-कच्छू-खुजली (Itch)

लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ ६९१। गन्धकरसायन ४४८। खदिरारिष्ट ७४०। अमृतारिष्ट ७४४।

लगानेके लिये—कंकुष्ठादिलेप ८५६। पामाहरमलहम ८६३। दशांगलेप ८५२।

५९ पित्तवृद्धि

गिलोयसत्व ४८। मुक्तापिष्टी १८१। प्रवालपिष्टी १८८। लोहभस्म १०५। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। मण्डूर भस्म १४५। गुलकन्द ७९३। सूतशेखर ५३४। च्यवनप्राशावलेह ७८६। पर्पटाद्यरिष्ट ७६३।

६० प्लीहावृद्धि [उदर रोगमें देखें]

६१ बद्ध कोष्ठ [आनाहमें देखें]

६२ बहुमूत्र-मूत्रातिसार (Polyuria)

थोड़ा थोड़ा पेशाब अनेक बार होना—जसदभस्म १२७। सुवर्णमाक्षिक

भस्म १३८ । अभ्रक भस्म १५० । हेमनाथ रस ४८३ । पञ्चामृत रस ६०० । बृहद् वंगेश्वर रस ४९१ । अश्विनीकुमार रस ४८९ । बृहद्धात्रीघृत ८२७ । माजूनफिलासफा ८०२ । शिलाजीत ६४ । चन्द्रप्रभावटी ६१९ । प्रमेहान्तक वटी (दूसरी विधि) ४९२ ।

वृद्धावस्थाकी निर्बलतापर—माणिक्य रस २६७ ।

मूत्रोत्पत्ति अधिक होती हो तो—वंगभस्म ११३ । नागभस्म १३० । जातिफलादि वटी (मधुमेह) ४९४ ।

६३ बालरोग. बालकोंके रोग ।

ज्वर ताप—गोदन्ती भस्म १६६ । ज्वरकेसरी ३१५ । रत्नगिरी रस ३१८ । चन्द्रशेखर ५६५ । प्रवालपिष्टी १८८ । बालसंजीवन ५६३ । बालरक्षक सोगठी ६३४ ।

जीर्ण ज्वर—सुवर्णमालिनी ३६२ । लघुमालिनी वसंत ३७० । बालार्कगुटिका ५६५ । बालरक्षक तैल ८४२ ।

दांत आनेपर अतिसार—कनकसुन्दर ३८३ । दन्तोद्भेद गदान्तक ५६६ । प्रवालपिष्टी १८८ ।

अतिसार और प्रवाहिका—पञ्चसूत २८४ । सर्वाङ्गसुन्दर ५६८ । बालार्क गुटिका ५६५ । बालसंजीवन रस ५६३ । माणिक्यरसादि वटी ५७० । बालबन्धु अर्क ७७१ । बालअतिसारहर चूर्ण ६८३ । बालमित्र चूर्ण दूसरी विधि ६८३ ।

रक्तातिसार-बालमित्रचूर्ण (प्रथम विधि) ६८३ । बालअतिसारहरचूर्ण ६८३

ग्रहणी—सर्वाङ्गसुन्दर रस ५६८ । कनकसुन्दर ३८३ । बालमित्र चूर्ण (तीसरी विधि) ६८३ । ग्रहणीकपाट रस (दूसरी विधि) ३८५ ।

मलावरोध और अफारा—बालरक्षक सोगठी ६३४ ।

कास और श्वास—माणिक्यरसादि वटी ५७० । कुमारकल्याण रस ५६० । बालार्क गुटिका ५६५ । कुटजारिष्ट ७४९ । कुमार्यासव ७३५ । कफ प्रकोप—द्राक्षासव ७४७ ।

कालीखाँसी—(Whooping cough) प्रवाल पिष्टी १८८ । शुभ्राभस्म २२६ । शृङ्गभस्म २१३ । हरतालगोदन्तीभस्म २२३ । कामदुघारस ४४४ । बालघोरकासघ्न चूर्ण ६८२ । द्राक्षासव ७४७ ।

यकृत्प्लीहा वृद्धि—अश्वकंचुकी ३१९ । लघुमालिनी वसन्त ३७० । मण्डूर भस्म १४५ । बालमित्र चूर्ण (तीसरी विधि) ६८३ ।

वमन कै—बालसञ्जीवन ५६३ । बालार्क गुटिका ५६५ । चन्द्रशेखर ५६५ । बालबन्धु अर्क ७६९ ।

उदर शूल—माणिक्य रसादि वटी ५७० । चन्द्रशेखर ५६५ ।

उपदंशज त्वग्रोग—अष्टमूर्ति रसायन २८० । व्याधिहरण रस २८३ ।

मल्लसिंदूर २६१।

रोमान्तिका—(Measles) त्रिभुवनकीर्ति रस ३२४।

बार-बार शिशुओंकी १-३ वर्षमें मृत्यु हो जाना—गर्भपाल रस ५५४ बनप्सा शर्बत ८१०।

शारीरिक निर्बलता—प्रवालपिष्टी १८८ और मण्डूर भस्म १४५। कुमारकल्याण ५६०। बालरक्षक गुटिका ६३५। बालार्कगुटिका ५६५। अरविन्दासव ७६३।

उदर कृमि—अग्नितुण्डीवटी ४०५। कृमिकुठार ४०९। ताप्यादिलोह ४११

अपचन, मन्दाग्नि, अरुचि—बालसञ्जीवन ५६३। बालार्कगुटिका ५६५। बालबन्धु अर्क ७६९।

तालुकण्टक—सर्वाङ्गसुन्दर ५६८।

अस्थि मार्दव—(Rickets) प्रवाल पिष्टी १८८। गिलोय सत्व ८४। मण्डूर भस्म १४५। शृंगभस्म २१३। प्रवालपिष्टी १८८। मधुमालिनी वसन्त ३६७। सर्वाङ्गसुन्दर रस ५६८। अरविन्दासव ७६३।

क्षीरालसक बालशोष और पारिगर्भिक—शृंगभस्म २१३ और प्रवाल पिष्टी १८८। लघुमालिनी वसंत ३७०। कुमारकल्याण ५६०। और मण्डूर भस्म १४५। मधुमालिनी वसंत ३६७। सर्वाङ्गसुन्दररस ५६८। गन्धक-रसायन ४४८। बालरक्षक तैल ८४०।

डब्बा पसली—(Broncho Pneumonia) मल्लसिंदूर २६१। चन्द्र-शेखर रस ५६५। माणिक्यरसादि गुटिका ५७०। बालजीवन वटी ६३७। अश्वकंचुकी रस ३१९।

धनुर्वात—(Infantile Convulsions) कालकूट ३४२। लक्ष्मीना-रायण रस ३४५। चन्द्रशेखर ५६५। कृमिकुठार रस ४०९।

पाण्डु—मण्डूरभस्म १४५। लघुमालिनी वसन्त ३७०। ताप्यादि लोह ४११। मृदुविरेचन रस ५६७।

बुद्धिमन्दता—अभ्रकभस्म १५०। ब्राह्मीघृत ८२६। सारस्वतारिष्ट ७४६। प्रवालपिष्टी १८८। कुमारकल्याण रस ५६०।

उपदंश अनुबन्धसे निर्बलता—अभ्रक भस्म १५० और गन्धक रसायन ४४८। अभ्रकभस्म १५० और प्रवाल पञ्चामृत ४८०।

रुक-रुककर बोलना—सारस्वतारिष्ट ७४६। ब्राह्मीघृत ८२६।

बालग्रह—पञ्चसूत २८४। कुमारकल्याण रस ५६०। स्मृतिसागर ५९४ अष्टमंगल घृत ८२५। ब्राह्मीघृत ८२६। कल्याणघृत ८२८।

जीर्ण हो तो—ताप्यादि लोह ४११। सारस्वतारिष्ट ७४६।

रक्तस्रावमय ग्रन्थियाँ—जसद भस्म १२७।

पूयवृक्क—कालकूट रस ३४२।

६४ बुद्धिमान्द्य और स्मृतिनाश

अभ्रकभस्म १५०। वंगभस्म ११३। सुवर्णभस्म ८७। सारिवासव ७६०

सारस्वतारिष्ट ७४६ । च्यवनप्राशावलेह ७८५ । पुष्पधन्वा रस ५७४।

अधिक मानसिक श्रम जन्य—ब्राह्मीघृत ८२६ । मुक्तापिष्टी १८३ । प्रवालपिष्टी १८८ । अभ्रक भस्म १५० ।

६५ भगन्दर (Anal Fistula)

बृहत् योगराज गूगल ४६५ । नारसिंह चूर्ण ६७२ । योगेन्द्र रस ६०४ दशमूलारिष्ट ७३० । त्रिफलारिष्ट ७४३ । कभ्रकभस्म १५० । जसदभस्म १२७ । लक्ष्मीविलास रस अभ्रक ३४९ ।

वाह्योपचारार्थ—निम्बादि तैल ८३५ । करवीर तैल ८३९ । कोशातक्यादि तैल ८३९ । भगन्दरनाशक मलहम ८६६ ।

६६ भस्मक

भस्मकनाशक चूर्ण ६८५ । सुवर्णमाक्षिक १३८ । वराटिकाभस्म १९८ और शंख भस्म २०१ । (गिलोयसत्वके साथ) ।

६७ भ्रमचक्कर (Vertigo)

प्रमेहगजकेसरी ५८९ । लक्ष्मीविलास ३५७, ४२७ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ । अभ्रकभस्म १५० । और लोहभस्म १०५ । सूतशेखर ५३४ । मुक्तापिष्टी १८३ । च्यवनप्राशावलेह ७८५ । सारस्वतारिष्ट ७४६ वसन्तकुसुमाकर ४८४।

६८ मदात्यय शरावजन्य विकार (Alcoholism)

सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । राजावर्त्त भस्म १८१ । राजावर्त्त रस ४४४ । रसादि चूर्ण ४४३ । मुक्तापिष्टी १८३ । कूष्माण्डावलेह ७९३ ।

६९ मसूरिका, शीतला, रोमान्तिका ।

प्रवालपिष्टी १८८ । त्रिभुवनकीर्ति ३२४ । लक्ष्मीनारायण+गोरोचन +प्रवालपिष्टी १८८ । दुरालभादि क्वाथ ७१२ । पटोलादि क्वाथ ७१३ । दशांगलेप ८५२ । निशादि लेप ८६० ।

नेत्रपर बांधनेके लिये—मधुकादि लेप ८५३ ।

७० मुखरोग

कण्ठरोग—(पृथक् लिखे हैं ।)

मुखपाक—मुँहमें छाले—जातिपत्रादि क्वाथ ७०४ ।

मुंह चिकना रहना—लक्ष्मीविलास रस३४९ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

७१ मूत्रकृच्छ् और मूत्राघात

शिलाजीत ६३ । मूत्रकृच्छ्रान्तक ४८३ । सारिवासव ७६० । उशीरासव ७३९ । चन्दनादि अर्क ७६९ । यवक्षार ४४ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ । लोहभस्म १०५ । प्रमेहगज केसरी ५८९ । प्रवालपिष्टी १८८ । न्यूग्रोधादि चूर्ण ६७२ ।

मूत्रावरोध—संगेयहूद भस्म २१८ । शीतल पर्पटी ३०५ । त्रिकण्ट-

कादि क्वाथ ७०४ गोक्षुराद्यवलेह ७८९ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । गोक्षुरादि गूगल ६२७ ।

फिरंगज वातबस्ति—वात-कुण्डली—अष्टमूर्ति रसायन २८० ।

सुजाकजन्य मूत्रवाहिनी शोथ—चन्दनासव ७५४ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । सारिवासव ७६० ।

मूत्राशयकी निर्बलता—अभ्रक भस्म १५० । कांस्य भस्म २१९ । बृहद-वंगेश्वर रस ४९१ । शिलाजीत ६३ ।

मूत्रमें दाह और रक्त जाना—कामदुधा ४४४ । मुक्तापिष्टी १८३ । प्रवालपिष्टी १८८ । चन्द्रकला ४२० । चन्दनादि अर्क ७६९ । उशीरासव ७३९ । सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८ ।

७२ मूत्रवाहिनीमें व्रण

चन्द्रप्रभावटी ६१९ । उष्णवातघ्न चूर्ण ६७१ । प्रमेहान्तक वटी ४९२ । मूत्रकृच्छ्रान्तक रस ४८३ ।

७३ मूर्च्छा और संन्यास (Apoplepxy)

वात प्रधान—कस्तूरीभैरव रस ३१३ ।

पित्तज—कामदुधा रस ४४४ । मुक्तापिष्टी १८३ ।

रक्तदबाववृद्धिसे मूर्च्छा--अश्वकंचुकी ३१९ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ । ताप्यादि लोह ४११ ।

कफाधिक्यसे मूर्च्छा—पञ्चसूतरस २८४ । सुंघानेके लिये-श्वासकुठाररस ४३५

हिस्टीरिया या उन्माद जन्य मूर्च्छा--अश्वगन्धारिष्ट ७४३ ।

जीर्णरक्तज मूर्च्छा—ताप्यादि लोह ४११ । चन्द्रकला ४२० ।

फिरंग अनुबन्धसे हो तो—अष्टमूर्ति रसायन २८० ।

मधुमेहकी अन्तिमावस्थामें—नागभस्म १३० । वसन्तकुसुमाकर रस ४८४ । प्रमेहगज केसरी ५८९ ।

सुंघानेके लिये—मूर्च्छान्तक नस्य ८७५ । श्वासकुठार रस ४३५ ।

सर्पविषजन्य मूर्च्छा—अञ्जन रस ८४९ ।

७४ मेदोवृद्धि (Obesity)

शिलासिन्दूर २६६ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । शिलासिन्दूर वटी ५१८ । शिलाजीत ६३ । चन्द्रप्रभावटी ६१९ । मेदोहर अर्क ७७४ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । लक्ष्मीविलास रस अभ्रक प्रधान ३४९ ।

जीर्णरोग, हृदय और नाड़ियोंमें मेद संचय—लक्ष्मीविलास रस ३४९ । त्र्यूषणाद्य लोह ४९६ ।

७५ यकृद्वृद्धि उदररोगमें देखें

७६ रक्तदबाववृद्धि (High arterial blood pressure)

सर्पगन्धादि गुटिका ६३९ । अश्वकंचुकी रस ३१९ । इच्छाभेदी रस

३७५। चन्द्रप्रभा वटी ६१९। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ सारिवासव ७६१। शुद्ध शिलाजीत ६३। चन्द्रकला रस ४२०। ताप्यादिलोह ४११। जहर-मोहरा पिष्टी २०३।

मासिकधर्मके वदलेमें रक्तदबाव वृद्धि—आरोग्यवर्द्धिनी+चन्द्रप्रभा ६१९

शराबजनित रक्तदबाव वृद्धि—चन्द्रप्रभा वटी ६१९। शिलाजीत ६३।

७७ रक्तपित्त (Haemorrhagic Diseases)

शुद्ध गेरु ६३। चन्द्रकला रस ४२०। सारिवादि वटी ५४९। लोहभस्म १०५। वैडूर्यभस्म १८०। पीतलभस्म २१९। वासावलेह, प्रवाल और स्वर्णमाक्षिक भस्म १३८। पर्पटादि क्वाथ ७०८। वसन्तकुसुमाकर ४८४।

रक्त बन्द करनेके लिए—स्फटिकमणि भस्म २३०। वराटिका भस्म १९८। प्रवालपिष्टी और सुवर्ण गैरिक ६३। कामदुधा ४४४। मुक्तापिष्टी १८३। शुक्तिभस्म १९६ बोलबद्ध ३९८। बोलपर्पटी २९९। तृणकान्त-मणिपिष्टी २०४। उशीरासव ७३९। अशोकारिष्ट ७५३। दूर्वादिघृत ८२८ कुष्माण्डावलेह ७९३। अरविन्दासव ७६३।

रक्तदबाव वृद्धिजन्य—पुनर्नवासव ७५९। इच्छाभेदी ३७५।

जीर्ण रोगमें—अभ्रकभस्म १५०। प्रवालपिष्टी १८८। संगजराहत भस्म २१७। द्राक्षासव ७४७। वसन्तकुसुमाकर ४८४। उशीरासव ७३९ कनकासव ७४१। शक्तिसंरक्षणार्थ—कामधेनु रस ६०१।

७८ रक्तविकार

माजून उशवा ८०३। मंजिष्ठादि चूर्ण ६६९। पीतल भस्म २१९। कांस्यभस्म २१९। लोकनाथ रस ५०७। लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ६९९। बृहद्मंजिष्ठादि क्वाथ ६९९।

दाहसह—गन्धक ६०। गन्धक घृत ८२७। गन्धक रसायन ४४८। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८।

सुजाकजन्य—सारिवासव ७६०। अरविन्दासव ७६३। सुवर्ण वंग २६८। माजून उसवा ८०२।

उपदंशज—वंगभस्म ११३। मल्ल भस्म २११। मल्लसिन्दूर २६१। व्याधिहरण २८३। मंजिष्ठादि तालसिन्दूर ५३४। उपदंश सूर्य ५२१। रक्तशोधकारिष्ट ७६६। तुत्थभस्म २२१।

७९ रक्तस्राव

पित्तप्रकोपज—मुक्तापिष्टी १८३। प्रवालपिष्टी १८८। उशीरासव ७३९

छुरीसे लगनेपर—संगजराहत २१७। घाव तैल ८३८। लाक्षा अर्क ७७५। पारद मलहम ८६९। व्रण शोथमेंसे स्राव—(व्रण शोथमें देखें)

८० वमन-छर्दि-कै (Vomiting)

पित्तप्रकोपजन्य—वान्तिहृद् रस ४४१। कुमुदेश्वर ४४३। शुक्तिभस्म

१९६ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । सूतशेखर ५३४ । पुष्पराग भस्म १८० चन्द्रकला रस ४२० । तृष्णाघ्नि गुटिका ६३८ ।

गर्भपातके पश्चात् वान्ति—सूतशेखर ५३४ ।

अजीर्ण जन्य—संजीवनी वटी ६१३ । कर्पूरासव ७६४ । कर्पूरधारा अर्क ७७४ । द्राक्षासव ७४७ । अग्निकुमार रस ४०० । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । जहरमोहरा पिष्टी २०३ ।

कर्कस्फोटजन्य—वंग भस्म ११३ ।

आक्षेपक वातके पश्चात् वमन–सुवर्णभस्म ८७। सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८

८१ वमन कराना

नीलकण्ठ रस ३७५ । तुत्थ भस्म २२१ ।

८२ वातरोग

अर्धाङ्गवात (Hemiplegia)—महावातविध्वंसन ४५९ । एकांग वीर ४७० । अर्धांगवातारि ५८६ ।

जीर्ण होनेपर—ताप्यादि लोह ४११ ।

वातश्लेष्मात्मक हो तो–वातगजांकुश ४६२ । महारास्नादि क्वाथ ७०५

जीर्ण पक्षवध पञ्चसूत रस २८४ । अभ्रक भस्म १५० । अग्नितुण्डी ४०५ । लक्ष्मीविलास ३४९ । स्मृतिसागर ५९४ । ताप्यादि लोह ४११ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । महारास्नादि क्वाथ ७०५ । मल्लसिंदूर २६१

उपदंशजन्य पक्षाघात—मल्लसिन्दूर २६१ । समीरपन्नग २७३ । अष्ट-मूर्ति रसायन २८० । मल्लसिन्दूर वटी ४७२ । बृहद्मञ्जिष्ठादि क्वाथ ६९९ उपदंशसूर्य ५२१ ।

शिरा विकृति जन्य कम्पवात—त्रिवंग भस्म १२४ । सुवर्णभूपति २७८ ताप्यादि लोह ४११ । एकांगवीर ४७० । अर्धाङ्गवातारि रस ५८६ ।

वातवाहिनी दोष और आमप्रकोप—सूतराज रस ३१३ । मल्ल भस्म २११ । महारास्नादि क्वाथ ७०५ । कुमार्यासव ७३५ ।

शुक्रक्षयसे वात प्रकोप—रोप्यभस्म ९२ । वंग भस्म ११३ ।

अर्दित (Facial paralysis), अवबाहुक, हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वा-स्तम्भ, शिरोग्रह, विश्वाची, खञ्ज, कलायखञ्ज, कटिवात आदि—समीर पन्नग रस २७३ । सुवर्णभूपति २७८ । शुण्ठ्यादिपायस (कषाय) ८१० । वातगजांकुश ४६२ । बृहद्योगराज गूगल ४६५ । एरण्डपाक ७९५ । धात्री भल्लातक वटी ६३० । रौप्य भस्म ९२ । शिलाजीत ६३ । महावात-विध्वंसन ४५९ ।

कम्पवात—सुवर्णभूपति २७८ ।

विश्वाची—लक्ष्मीविलास रस ३४९ । प्रतापलंकेश्वर रस ५५५ ।

सर्वाङ्गवात (Diplegia) और अन्य जीर्णवात—रौप्य भस्म ९२ । वज्रभस्म १७३ । लक्ष्मीविलास रस ३४९, ४२७ । समीरपन्नग २७३ ।

समीर गज केसरी ४६३ । मल्लसिन्दूर २६१ । अश्वगन्धारिष्ट ७४३ । दशमूलारिष्ट ७३० ।

आमाधिक जीर्णवात—बृहद् योगराज गूगन ४६५ ।

पित्तप्रकोप वातसह वात—योगेन्द्र रस ६०४ । सूतशेखर रस ५३४ । धात्रीभल्लातक वटी ६३० ।

कीटाणुप्रकोप आक्षेप—चन्द्रकला ४२० । संचेतनी वटी ३४८ ।

मलावरोधजन्य आक्षेप—समीरपन्नग २७३ ।

तीव्र पीड़ासह आक्षेप—स्मृतिसागर ५९४ ।

आक्षेपक (Convulsions) अपतानक, धनुस्तम्भ आदि–वंगभस्म ११३ अश्वकंचुकीरस ३१९ । समीरपन्नग २७२ । लक्ष्मीनारायण ३४५ । संचेतनी गुटिका ३४८। महावातविध्वंसन ४५९ । सुवर्णभूपति २७८ । कुमर्यासव ७३५ ।

अपतन्त्रक (Hysteria)—मल्लसिन्दूर २६१ । कस्तूरीभैरव ३१३ । पूर्णचन्द्रोदय २५६ । मल्लसिन्दूर वटी ४७२ । सारस्वतारिष्ट ७४६ । हिस्टीरिया नाशक चूर्ण ६७९ । संचेतनी गुटिका ३४८ । वातकुलान्तक रस ४५७ सर्पगन्धादि वटी ६३९ ।

जीर्ण आक्षेपक—अष्टमूर्तिरसायन २८० । मल्लसिन्दूर २६१ । समीरपन्नग २७३ ।

बारम्बार उत्पन्न होनेवाला वात—नागभस्म १३० ।

गर्भपात ओर कष्टार्तवसे वातप्रकोप—सूतशेखर ५३४ ।

कलायखंज—लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२७ । अष्टमूर्ति रसायन २८० । उपदंश सूर्य ५२१ । रौप्यभस्म ९२ ।

खल्ली—प्रतापलंकेश्वर रस ५५५ । लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२७ ।

सूतिकाका वातप्रकोप—हेमगर्भपोटली रस ३३४ ।

पूय और व्रणसे धनुर्वात—एकांगवीर ४७० । ताप्यादि लोह ४११ ।

उपदंशज संधिवात—मल्लभस्म २११ । मल्लसिन्दूर २६१ । अष्टमूर्तिरसायन २८० । तालसिन्दूर २६४ । चिंचाभल्लातक वटी ६३४ । धात्रीभल्लातक वटी ६३० । रक्तशोधकारिष्ट ७६६ । उपदंश सूर्य ५२१ । गन्धक रसायन ४४८ । सारिवासव ७६० ।

वातज और वातकफात्मक गृध्रसी (Sciatica) समीरपन्नग २७३ । दशमूल क्वाथ ६९५ । नाराच घृत ८१९ । शुण्ठयादि पायस (कषाय) ७१० योगराज गूगल ६४२ । महावातविध्वंसन ४५९ ।

मालिशार्थ—मल्ल तैल ८२९ । वातहर तैल ८३२ । चक्रमर्द तैल ८३५ नारायण तैल ८३५ ।

आमसह होनेपर—महाविषगर्भ तैल ८४२ । लघु विषगर्भ तैल ८४२ ।

प्रस्वेद लाकर रोग शमनार्थ—शिरःशूलान्तक मलहम ८६८ ।

शक्ति रक्षणार्थ—त्रैलोक्यचिंतामणि रस ३२७। लक्ष्मीविलास ३४९। ४२७। पूर्णचन्द्रोदय २५६। अश्वगन्धारिष्ट ७४३। नागभस्म १३०।

निर्बलताजनित कुब्जता—त्रिबंगभस्म १२४।

८३ वात रक्त (Gout)

सब प्रकारपर—लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ६९९। बृहदमंजिष्ठादि ६९९।

जीर्ण रोग—लांगल्यादि लोह ४७३। दशमूल ६९५।

वात और कफ प्रधान—हरताल भस्म २०५। तालसिंदूर २६४। माणिक्यरस २६७।

पित्त प्रधान—गन्धक रसायन ४४८। पंचनिम्ब चूर्ण ५२९।

जीर्ण मूत्रविकृति सह—ताप्यादिलोह ४११। सारिवासव ७६०।

आम और कफ प्रधान—बृहद्योगराज गूगल ४६५। चविकासव ७५७

आमप्रधान जीर्ण—बृहद्योगराज गूगल ४६५।

८४ विर्चचिका खर्जू—ब्युची (Eczema)

वंगभस्म ११३। गन्धक रसायन ४४८। माजून उशवा ८०२।

लगानेके लिये—ब्यूचीहर मलहम ८६४। पारद मलहम ८७०।

८५ विद्रधि (Abscess)

कज्जली। त्रैलोक्य चिन्तामणि ३२७। त्रिफला चूर्ण ६६४। नागभस्म १३०। वंगभस्म ११३। जसदभस्म १२७। महामृगांक ४२५।

अन्तर्विद्रधि—लोकनाथरस ५०७। अश्वकंचुकी ३१९। ताम्रभस्म ९८। अग्नितुण्डी वटी ४०५। शृङ्गभस्म २१३। पुनर्नवासव ७५९।

लगानेके लिये—कर्पूरादि मलहम ८६०। व्रणामृत मलहम ८६२। रालका मलहम ८६१। कोशातक्यादि तैल ८३९। धावतैल ८३८।

मांसार्बुद-(Cancer)—वंगभस्म ११३। ताम्रभस्म ९८।

८६ विरेचन-जुलाब देना

इच्छाभेदी ३७५। पंचसमचूर्ण ६६५। विरेचन चूर्ण ६६६। शेष औषधि "आनाह" रोगमें लिखी है।

८७ विष विकार

मूषक (चूहे) का विष—अश्वकँचुकी रस ३१९। बृहद्योगराज गूगल ४६५। आखुविषान्तक रस ५७२।

सर्प विष—तुत्थभस्म २२१। संजीवनी वटी ६१३।

बेहोशी हो गई हो तो—हरताल पुष्प ५७०। अञ्जनार्थ-अञ्जनरस ८४९।

श्वान-विष—अग्नितुण्डी वटी ४०५।

लूता-मकड़ीका विष—त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ३२७। सुवर्णभूपति २७८। गन्धकरसायन ४४८ अश्वकंचुकी रस ३१९।

मधुमक्षिका विष—बृहद् योगराज गूगल ४६५। शोथनाशक अर्क

७७५ । शिर:शूलान्तक मलहम ८६८ ।

दूषी विष–तुत्थभस्म २२१ । कल्याणघृत ८२८ । गन्धकरसायन ४४८ ।

अजीर्ण सेन्द्रिय विष—ताप्यादि लोह ४११ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । रक्तशोधक शर्बत ८१० ।

पारद विष—पर्पटाद्यरिष्ट ७६२ । गन्धक रसायन ४४८ ।

नाग (शीशा) विष—गन्धक ६० । शुभ्राभस्म २२६ ।

जीर्ण विष प्रकोप–सुवर्ण भस्म ८७ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। तार्क्ष्य-भस्म १७९ । पुष्पराग भस्म १८० । प्रवालपिष्टी १८८ । रसादिचूर्ण ४४३ । पिरोजाभस्म २०५ । ताप्यादिलोह ४११ ।

कोष्ठ शोधनार्थ—तुत्थभस्म २२१ । इच्छाभेदी रस ३७५ ।

क्विनाइन जनित विष—सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ । प्रवालपिष्टी १८८। पर्पटाद्यरिष्ट ७६२ ।

८८ विसर्प और विस्फोटक

मुक्तापिष्टी १८३ । प्रवालपिष्टी १८८ । और गिलोयसत्व ४८ । गन्धक-रसायन ४४८ । पिरोजा भस्म २०५ ।

बाह्योपचारार्थ—माँस्यादि लेप ८५८ । निशादिलेप ८६० ।

८९ विसूचिका हैजा (Cholera)

जन्तुजन्य—कर्पूरासव ७६४ । कर्पूरधाराअर्क ७७४ । संजीवनीवटी ६१३ । विसूचिकाहर वटिका ६३९ । लहशुनादि वटी ६३८ । सूतशेखर ५३४ ।

अजीर्णजन्य—पित्ताधिक-जातिफलादि वटी ३९१ । सूतशेखर ५३४ । शंखभस्म २०१ । संजीवनी वटी ६१३ ।

अजीर्णजन्य कफाधिक—अग्निकुमार ४०० । क्रव्याद रस ४०२ । चिंचा-भल्लातकवटी ६२८ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६६२ । शिवाक्षार पाचनचूर्ण ६६२ । लहशुनादि वटी ६३८ ।

नाड़ियोंका खिंचाव शमनार्थ—ताम्रभस्म ९८ । सूतशेखर ५३४ । त्वक्पत्रादि उद्वर्त्तन ८७६ ।

रोगके अन्तमें वमन हो तो—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ ।

शक्तिरक्षणार्थ—मल्लसिंदूर २६१ । लक्ष्मीविलास रस ३४९ ।

हेमगर्भ पोटली रस ३३४ । समीरपन्नग २७३ ।

९० वृक्क विकार

वृक्कशोथ (Bright's Disease)—ताम्रपर्पटी २९६ । चन्द्रप्रभावटी ६१९ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । सर्पगन्धादि गुटिका ६३९ ।

वृक्कव्रण—देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । वंगभस्म ११३ ।

वृक्क विद्रधि—लोकनाथ रस ५०७ ।

वृक्क शूल—त्रिविक्रम ४८७ । पाषाणवज्रक ४८८ । अगस्तिसूतराज

९१ वृषण वृद्धि

९२ व्रणशोथ, अन्तरव्रण, सद्योव्रण, नाड़ीव्रण

९३ शिर:शूल (Headahe)

पित्त प्रधानजीर्ण व्यथा-सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। मण्डूरमाक्षिक १५०

पित्तप्रधान अर्द्धावभेदक—मधुकादि हिम ७१५।

वातपित्तात्मक शूल—सूतशेखर ५३४। सुवर्णभूपति २७८। सुवर्ण-माक्षिक भस्म १३८।

वातकफात्मक सूर्यावर्त्त—श्वासकुठार रस ४३५।

पित्तज—लघुसूतशेखर ५४६।

मलावरोधसे भारीपन—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। अश्वकंचुकी ३१९। सुवर्णभूपति २७८। आंवलोंका मुरब्बा ८०९। भृङ्गराजासव ७६१।

बाह्योपचार—शिर:शूलान्तक मलहम ८६८। षड्बिन्दु तैल ८३९।

सूतिका शिरदर्द-प्रतापलंकेश्वर५५५। दशमूलारिष्ट ७३०। सूतशेखर५३४

९४ शीतपित्त-पित्ती उदर्द-कोठ

जसद भस्म १२७। प्रवाल पिष्टी १८८। सूतशेखर ५३४। आरोग्य-वर्द्धिनी ४९७। अश्वकंचुकी रस ३१९। गन्धक रसायन ४४८। मल्ल-सिन्दूर २६१।

अपचन जनित - सुवर्णभस्म ८७। गन्धक रसायन ४४८।

९५ शूल (Colic)

सब प्रकारके शूलपर—शूलवज्रिणी ४७३। सुवर्णभूपति २७८।

अजीर्णजन्य नया - शंख वटी ३८८। मल्लादि वटी ३६०। हिंगुल वटी ३९२। जातिफलादि वटी ३९१। हिंगुल रसायन ४७४। नींबूद्राव ७६९ उदरामृत योग ७७०। लघुशंखद्राव ७७०। जम्भीरीद्राव ७७२। स्वादिष्ट शर्बत ८११। अदरखका शर्बत ८११। हिंग्वष्टक चूर्ण ६३२। गन्धक वटी ६३२। कुमार्यासव ७३५। शीतल पर्पटी ३०५।

वात प्रधान—नागभस्म १३०।

तीव्र हो तो—महावात विध्वंसन ४५९। दशमूलारिष्ट ७३०।

पित्तप्रधान—ताप्यादि लोह ४११। शंखवटी ३८८। शुक्तिभस्म १९६ शंख भस्म २०१। कनकासव ७४१। जीरकाद्यरिष्ट ७५६। वान्तिहृद्रस ४४१। प्रवालपिष्टी १८८।

वात कोप जन्य—ताम्रभस्म ९८। क्रव्याद रस ४०२। पीतल भस्म २१९। अश्वकंचुकी ३१९। लक्ष्मीविलास ३४९। हिंगुल रसायन ४७४। नागगुटिका ६१७। अश्विनीकुमार ४८९। लक्ष्मीनारायण रस ३४५।

आम शूल—अग्निकुमार ४००। क्रव्याद रस ४०२। बृहद्योगराज गूगल ४६५। कासीस भस्म १६२। आनन्दभैरव ३७७। लोहभस्म १०५ शंखवटी ३८८।

वात पित्तप्रधान—सूतशेखर ५३४। सुवर्णभूपति २७८। नागभस्म १३०। बृहत्यादि क्वाथ ७१२। वराटिका भस्म १९८।

परिणाम शूल—ताम्र भस्म ९८ । मण्डूरमाक्षिक १५० । शंखभस्म २०१ । कनकासव ७४१ । कुमार्यासव ७३५ । लक्ष्मीविलास ४२७ । गंधक वटी ६३२ । वराटिका भस्म १९८ । सुवर्णमाक्षिक १३८ । गुल्मकुठार ४७६ । दशमूलारिष्ट ७३० । सुवर्णपर्पटी२९३ । कामदुघा ४४४ । संगजराहत भस्म २१७ । खमीरा आबरेशम ८०५ ।

नाग विषज जन्य—नागभस्म १३० । शुभ्राभस्म २२६ । शम्बुक भस्म २४२ । शंखवटी ३८८ । शंखद्राव ७७० । जम्भीरी द्राव ७७२ ।

शीतोपचार जन्य शूल—आनन्दभैरव रस ३७७ । कस्तूरीभैरव ३१३ ।

कृमिजन्य शूल—कृमिकुठार रस ४०९ ।

अन्नद्रव शूल—ताम्रभस्म ९८ । सुवर्णभूपति २७८ । शुक्तिभस्म १९६ वान्तिहृद् रस ४४१ । सूतशेखर ५३४ । कनकासव ७४१ ।

अष्ठीलादि ग्रन्थि जन्य—ताम्रभस्म ९८ ।

वातज गुल्म और शूल—कासीस भस्म १६२ ।

वातरक्त जन्य—बृहद् योगराज गूगल ४६५ । दशमूल क्वाथ ६९५ ।

बद्धकोष्ठजन्य शूल—चविकासव ७५८ ।

रक्तवाहिनियोंके संकोचसे—लोहभस्म १०५ ।

संधिगत और अस्थिगत शूल—नागभस्म १३० ।

पार्श्वशूल—नीलाञ्जन भस्म २३१ । लक्ष्मीविलास ३५७ । शुभ्राभस्म २२६ । गुल्मकुठार ४७६ ।

पित्ताशय शूल—कुमार्यासव ७३५। महावातराजरस ५८२ । शृंग भस्म २१३ । पञ्चसूतरस २८४ । दशमूलारिष्ट ७३० । लक्ष्मीनारायणरस ३४५।

रक्तातिसारमें शूल - शंखोदर रस ३९० ।

हृदय शूल—(वातज-नागभस्म १३०) (पित्तज-गुल्मकुठार ४७६), कफज-त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७ । शृङ्गभस्म २१३ । पूर्णचन्द्रोदय २५६ रससिंदूर २५७ । लक्ष्मीविलास रस ४२७ । खमीरा जमुर्रद ८०६ ।

अर्दितशूल—महावात विध्वंसन ४५९ ।

शुष्क कफज शूल—समीरपन्नग २७३ ।

मस्तिष्क शूल--रौप्यभस्म ९२ । गोदन्तीभस्म (कफाधिक्यपर) १६६ ।

लेपार्थ - शिर:शूलान्तक मलहम ८६८ । शोथनाशक ७७५ ।

आमवातज शूल—बृहद् योगराज गूगल ४६५ ।

९६ शोथ-सूजन (Anasarca)

नया शोथ—लोहभस्म १०५ । लोहभस्म और ताम्रभस्म ९८ । तक्र मण्डूर ५११ । पुनर्नवा मण्डूर ५१३ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ । लोहपर्पटी २९८ । ताप्यादि लोह ४११ । त्रिफलारिष्ट ७४३ । अभयारिष्ट ७५१ । उशीरासव ७२९ । पुनर्नवासव और सारिवासव मिश्रण ७६० ।

हृदय विकृति जन्य जीर्ण—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । लक्ष्मीविलास ३४९ । अभ्रकभस्म १५० । वसन्तकुसुमाकर ४८४ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७

यकृद्दाल्युदरसह शोथ—ताप्यादि लोह ४११ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

फुफ्फुसावरणमें शोथ—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

कफप्रधान—तालसिन्दूर २६४ । दुग्ध वटी ३८७ ।

मूत्रपिण्ड-विकृति पित्तप्रधान सर्वाङ्गशोथ—कामदूघा रस ४४४ । आरोग्यवर्द्धिनी ४९७ ।

त्रिदोषज—शिलाजीत ६३ ।

रक्तक्षय, रक्तस्राव या प्लीहावृद्धिजन्य शोथ—ताप्यादि लोह ४११ । लोहभस्म १०५ ।

चिरकारी मन्द शोथ—गदमुरारी रस ३४० ।

दाह, वमन, शिरदर्द हो, तो—कामदुघा रस ४४४ ।

प्रदाह शोथ (Inflammation) पर बाह्योपचार—शिरःशूलान्तक मलहम ८६८ ।

वातज—शोथनाशक अर्क ७७५ । बीजपूरजटादि लेप ८५३ ।

पित्तज—दशांग लेप ८५२ । मधुकादि लेप ८५३ ।

कफज—कृष्णादि लेप ८५३ ।

वातकफज—दोषघ्न लेप ८५२ ।

रक्तज शोथ—दशांग लेप ८५२ ।

९७ श्लीपद-हाथीपगा (Elephantiasis)

गन्धरसायन ४४८ । नित्यानन्द रस ५१९ । लक्ष्मीविलास रस ३५७ । बृहत् योगराज गूगल ४६५ ।

लगानेके लिये—श्लीपदहर लेप ८५९ ।

९८ श्वास-दमा (Dyspnoea)

तमकश्वास (Asthama)—श्वासरोगान्तक वटी ४३७ । मल्लभस्म २११ । अभ्रकभस्म १५० । मल्लसिन्दूर २६१ । शिलासिन्दूर २६६ । मल्लपुष्प ३५९ । शृङ्गभस्म २१३ । रससिन्दूर २५७ । मल्लादि वटी ४३८ । समीरपन्नग २७३ । रसमाणिक्य ५३१ । पञ्चसूत २८४ । मल्लसिन्दूर वटी ४७२ । कनकासव ७४१ । महाद्राक्षासव ७६८ । महावातराज रस ५८२ । आनन्द भैरव रस ३७७ ।

प्रतमक—पितज श्वास—सुवर्णभस्म ८७ । पन्नाभस्म १७९ । मुक्तापिष्टी १८३ । जसदभस्म १२७ । लोहभस्म १०५ और अभ्रकभस्म १५० । नीलमणि भस्म १८१ । वैक्रान्त भस्म १८२ । लक्ष्मीविलास ४२७ । मल्ल भस्म २११ । हरतालगोदन्ती भस्म २२३ । प्रवालपञ्चामृत ४८० ।

जीर्ण रोग—सुवर्णभस्म ८७ । लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२७ ।

कफसह श्वास—शृङ्गभस्म २१३। कनकासव ७४१। नीलाञ्जन भस्म २३१।

वातज श्वास—दशमूलारिष्ट ७३०। प्रतापलंकेश्वर रस ५५५।

अपचन जनित श्वास—क्रव्याद् रस ४०२।

हृदयावरोध दूर करनेके लिये—महावातराज रस ५८२। पूर्णचन्द्रोदय २५६। पञ्चसूत २८४। जात्यादि धूप ८७२। देवदार्व्यादि धूम्र ८७३। मन:शिलादि धूम्रपान ८७३।

क्षुद्रश्वास (Breathlessness)—चिन्तामणि चूर्ण ६८५। लोहभस्म १०५। आनन्दभैरव रस ३७७। अभ्रकभस्म १५०। द्राक्षासव ७४७।

छिन्नश्वास—लक्ष्मीविलास अभ्रकप्रधान ३४९। हेमगर्भपोटली ३३४।

वृद्धावस्था श्वास–रससिंदूर २५७। लक्ष्मीविलास ४२७। वसन्तकुसुमाकर ४८४। पूर्णचन्द्रोदय २५०। अश्वगन्धारिष्ट ७४३। श्वासकुठार ४३५

वातरक्तमें श्वास—हरताल भस्म २०५।

तमाखूके व्यसनियोंकी–श्वासरोगान्तकवटी ४३७। गोमूत्रक्षार चूर्ण ६६८

तीव्र वेग हो तो—रस कर्पूर ५२४। मल्लसिंदूर (नं० २) २६१।

मलावरोध जनित श्वास—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। अभ्रकंचुकी ३१९।

आमवात जन्य श्वास—बृहद् योगराज गूगल ४६५।

कोष्ठगत वातवृद्धिसे—शुक्तिभस्म १९६। प्रवालपञ्चामृत ४८०।

मानसिक आघातजनित श्वास—अभ्रक भस्म १५०। द्राक्षारिष्ट ७४८ लक्ष्मीविलास अभ्रक ३४९।

हृद्रोगमें श्वास—सूतशेखर ५३४। अर्जुनारिष्ट ७४४।

कफप्रकोपमें शमनार्थ—अभ्रकंचुकी रस ३१९। आनन्दभैरव ३७७। अभ्रक १५० ओर शृङ्गभस्म २१३। कफकुठार ४३३। समीरपन्नग २७३ त्रैलोक्य चिन्तामणि ३२७। नागगुटिका ६१७। लोकनाथ रस ५०७। कनकासव ७४१।

अन्तर्दाह शमनार्थ—मुक्तापिष्टी १८३। सूतशेखर ५३४।

पार्श्व शूल—महावातराज रस ५८२। महावातविध्वंसन ४५९। शूलवज्रिणी वटी ४७३। नीलाञ्जन भस्म २३१।

शुक्रक्षयसे श्वास—पूर्णचन्द्रोदय २५०। वसन्तकुसुमाकर ४८४। बृहद् वंगेश्वर ४९१।

मलशुद्धि अर्थ—आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। गोमूत्रक्षार चूर्ण ६६८।

विषकी मूत्रद्वारा निकालनेके लिये—शिलाजीत ६३।

अतिसारमें श्वास—सुवर्ण पर्पटी २९३। पञ्चामृत पर्पटी ३००।

९९ सन्निपात–(ज्वरमें देखें)

१०० संग्रहणी–(ग्रहणीमें देखें)

१०१ सुजाक-प्रमेह-(पूयमेहमें देखें)

१०२ सेन्द्रिय–विषवृद्धि

सूतशेखर ५३४। कामदुघा रस ४४४। आरोग्यवर्द्धिनी ४६७। भृंगराजासव ७६२। सारिवासव ७६१। चन्द्रप्रभा वटी ६१९। शुद्ध शिलाजीत ६३। नागभस्म १३०।

(१०३) स्त्री रोग

श्वेत प्रदर—वंगभस्म ११३। त्रिवंगभस्म १२४। नागभस्म १३०। सुवर्णवंग २६८। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। प्रवाल भस्म १८६। संगजराहत २१७। सुवर्णमालिनीवसंत ३६२। मधुमालिनी ३६७। लघुमालिनी ३७०। बोलबद्ध रस ३९८। प्रदरान्तक लोह ५४९। प्रदरान्तकरस ५५१। प्रदरादि रस ५५२। दार्व्यादि क्वाथ ७०८। स्त्रीगदान्तक अर्क ७७६। मधुयष्ट्याद्यवलेह ७९३।

वातपित्तज श्वेत प्रदर—वंगभस्म ११३।

पित्तज श्वेत प्रदर—गोदन्ती भस्म १६६।

रक्तप्रदर—गोदंतीभस्म १६६। प्रवालपिष्टी १८८। वंगभस्म ११३। शुभ्राभस्म २२६। बोलपर्पटी २९९। बोलबद्ध ३९८। चन्द्रकला ४२०। कामदुघा ४४४। प्रदरांतक लोह ५४९। सर्वाङ्गसुन्दर ५६८। प्रदरांतक वटी ६३४। प्रदरांतक चूर्ण ६७९। चन्दनादि चूर्ण ६८०। दार्व्यादि क्वाथ ७०८। स्त्रीगदाँतक अर्क ७७६। अशोकारिष्ट ७५३। दूर्वादि घृत ८२८। मधुयष्टयाद्यवलेह ७९३। गोक्षुरादि गुग्गुलु+वंगभस्म+प्रवालपिष्टी मिश्रण लोध्रासव+अरविन्दासव+सारस्वतारिष्ट। चन्द्रकलासह अशोकारिष्ट ७५३।

मासिकधर्ममें अति रक्तस्राव—चन्द्रकला ४२०+अशोकारिष्ट ७५३। जहरमोहरा भस्म २०३। आरोग्यवर्द्धिनी और चन्द्रप्रभा (अमलतासके गुदाके साथ ६१९।

मानसिक लालसाजनित प्रदर—प्रदरादि रस ५५२।

सोमरोग—हेमनाथ रस ४८३। बृहद्वंगेश्वर ४९१। जातिफलादिवटी ४९४ महावातराज रस ५८२। बृहद्धात्री घृत ८२५। वङ्गभस्म ११३।

जीर्णप्रदर—प्रदरान्तक लोह ५४९। प्रदरांतक रस ५५२। वसंतकुसुमाकर रस ४८४। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २२५।

निर्बलता—मण्डूर भस्म १४५। वसन्तकुसुमाकर ४८४। सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२। लोहभस्म १०५।

बालकके स्तनपानसे—सुवर्णमालिनी और प्रवालपिष्टी, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २२५।

श्वेतप्रदर जनित—सुवर्णवंग+सुवर्णमाक्षिक+गोदन्तीभस्म मिश्रण।

जीर्ण अपचनसह प्रदर—बोलबद्ध ३९८। प्रदरादि रस ५५२। सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२। लघुमालिनी वसन्त ३७०।

बहुमूत्र, मूत्रदाह और प्रदर—बोलबद्धरस ३९८ । चंद्रप्रभा ६१९ ।

शूलसह प्रदर—प्रदरान्तक लोह ५४९ । प्रदरान्तक रस ५५२ ।

सुजाकजनित दाहयुक्त प्रदर—गन्धक रसायन ४४८ ।

सगर्भाकेगर्भाशयमें वातप्रकोप—ताप्यादिलोह४११। स्मृतिसागर ५६४।

सुजाकजनित गर्भाशय शोथ—प्रवालपिष्टी १८८ । बनफशाशर्बत ८१०। चंद्रांशु रस ५५९ । प्रदरांतक रस ५५२ । चन्द्रप्रभा वटी ६१९ ।

गर्भाशयकी शिथिलता—चन्द्रप्रभा वटी ६१९ । अभ्रकभस्म १५० और नागभस्म १३० । नतादि तैल ८४१ ।

बीजाशयकी वृद्धि न होना—पुष्पधन्वा रस ५७४ । पूर्णचन्द्रोदय २५०। सारस्वतारिष्ट ७४६ । त्रिवंगभस्म १२४ ।

गर्भाशय विकृति—वंगभस्म ११३ । त्रिवंगभस्म १२४ । प्रदरान्तकलोह ५४९ । लघुमालिनीवसन्त ३७० । चन्द्रप्रभावटी (उष्णता हो, तो—बनप्शा के साथ) ६१९ । स्त्रीगदान्तक अर्क ७७६ । माजूनकचूर ८०३ ।

अनार्तव, नष्टार्तव और पीड़ितार्तव—मण्डूरभस्म १३८ । वंगभस्म११३। बोलपर्पटी २९९ । बृहद् योगराज गूगल ४६५ । रजःप्रवर्त्तक क्वाथ ७०९। कुमार्यासव ७३५ । रजःप्रवर्त्तनी वर्त्ति ८७६ । कासीसादि वटी ६३३ । रजःप्रवर्त्तक चूर्ण ६८१ । प्रदरान्तक रस ५५१ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५ । सारस्वतारिष्ट ७४६ ।

अत्यार्तव (मासिकधर्म ज्यादा आना)—मुक्तापिष्टी १८३ । बोलपर्पटी २९९ । तृणकाँतमणि पिष्टी २०४ । उशीरासव ७३९ । बोलबद्ध रस ३९८। अशोकारिष्ट ७५३ ।

अनियमित रजोदर्शन—ताप्यादिलोह ४११ । फलघृत ८२९ ।

गर्भाशय और बस्तिमें शूल—वंगभस्म ११३। प्रदरांतकलोह ५४९। बृहद्-योगराजगूगल४६५।अशोकारिष्ट७५३। देवदार्वाद्यरिष्ट७६५।चन्द्रांशुरस५५९ अशोकघृत ८२४। फलघृत ८२९। मधुयष्ट्याद्यवलेह ७९३ । बोलबद्धरस३९८

वंध्यत्व—वंगभस्म ११३ । त्रिवङ्गभस्म १२४ । फलघृत ८२९ । पुष्प-धन्वारस ५७४ । दशमूलारिष्ट ७३० ।

योनिदाह मैथुनासह—मुक्तापिष्टी १८३ । प्रवालपिष्टी १८८ ।

सूतिका रोग—सामान्य ज्वर धनुर्वात रौप्यभस्म ९२ । ताप्यादिलोह ४११ । हिंगुलरसायन ४७४ । सूतिकाभरण रस ५९२ ।

तीव्रकफात्मक ज्वर—कालकूट रस ३४२ । प्रतापलंकेश्वर ५५५ । दशमूलारिष्ट ७३० ।

कफात्मक सामान्य ज्वर—अमरसुन्दरी ४५८ ।

प्रसव होते समय वेगशमन हो जाना—बृहद्योगराज गूगल ४६५ ।

सन्निपात—हेमगर्भपोटली रस ३३४ ।

हृदय शूल—लक्ष्मीविलास रस अभ्रक ३४९ ।

अतिसारसह मक्कल शूल—जीरकाद्यरिष्ट ७५६। लक्ष्मीनारायण ३४५। सूतशेखर ५३४।

कफवृद्धि—प्रतापलंकेश्वर रस ५५५।

मक्कल शूलसह ज्वर—महावात विध्वंसन ४५९। दशमूलक्वाथ ६९५। देवदार्वाद्यरिष्ट ७६५। वृहदयोगराज गूगल ४६५। प्रतापलंकेश्वर रस ५५५।

धनुर्वात, कम्प, श्वास, कास, दांतभिचजाना—कस्तूरीभैरव ३१३। कालकूट रस ३४२। प्रतापलङ्केश्वर ५५५। देवदार्वादि क्वाथ ७०३।

धनुर्वात आदि लक्षण सौम्य हो, तो—सूतिकाभरण ५९२।

आक्षेप और पित्त प्रधानता हो, तो—ताप्यादि लोह ४११।

वातकफ प्रधान लक्षण हो तो—सूतिकारि रस ५५८।

कफप्रधान जड़ता बेहोशीसह धनुर्वातपर—कालकूट ३४२।

दाह, तृषा, धनुर्वात प्रलाप आदि—लक्ष्मीनारायण रस ३४५। सूतशेखर रस ५३४।

मानस उन्माद—रौप्यभस्म ९२।

जीर्णज्वर, उदरशूल, शोथ तृषा—सूतिकारिरस ५५८। प्रतापलंकेश्वर रस ५५५। लक्ष्मीविलास रस ३५७।

दूषित रक्तका स्राव करना—बोलपर्पटी दूसरी विधि २९९। कुमार्यासव ७३५। प्रतापलंकेश्वर रस ५५५।

शीर्षशूल—प्रतापलंकेश्वर रस ५५५। महावातविध्वंसन ४५९। दशमूलारिष्ट ७३०।

फिरंग अनुबन्धसे बालक मर जाना—अष्टमूर्तिरसायन २८०। गन्धक रसायन ४४८। प्रवालपिष्टी १८८।

वात प्रकोप—सौभाग्य शुण्ठिपाक ७८०। शुंटयादि पाक ७८२। दशमूल क्वाथ ६९५। दशमूलारिष्ट ७३०।

पाण्डुता और शोथपर—मण्डूर भस्म १४५। पुनर्नवामण्डूर ५१३।

आमशूल प्लीहावृद्धि, ज्वरातिसार—लोहपर्पटी २९८। पंचामृत पर्पटी ३०० दशमूलारिष्ट ७३०।

स्तन्यविकृति—स्तन्यशोधक क्वाथ ७०९। सोभाग्यसुण्ठी पाक ७८०।

स्तन्यवृद्धि—जीरकाद्यरिष्ट ७५६।

रुकी हुई जेर गिराना—सिद्धार्थादि तैल ८३९।

जीर्ण अतिसार और ग्रहणी—सर्वाङ्गसुन्दर रस ५६८। पञ्चामृत पर्पटी ३००। जीरकाद्यरिष्ट ७५६।

गर्भस्राव और गर्भपात—गर्भपाल रस ५५४। वंगभस्म और गर्भपाल ५५४ प्रवालपिष्टी १८८। त्रिवंगभस्म १२४।

गर्भपातके पश्चात् पीड़ितार्तव—सूतशेखर ५३४।

योनि रोग (विप्लुता, परिप्लुता, वातुलादि—धातक्यादि तैल ८४०।

नतादि तैल ८४१।

कमल ओर योनिकी शिथिलता—शुभ्राभस्म २२६।

योनिकण्डू—फिटकरी ७४। शुभ्राभस्म २२६।

सगर्भा के रोग—ज्वर—मधुरान्तक वटी ३४८। गिलोयसत्व ४८। गोदन्तीभस्म १६६। प्रवालपिष्टी १८८। किरातादि अर्क ७७३।

जीर्णज्वर—सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२। लघुमालिनी ३७०।

पाण्डु और निर्बलता—मण्डूरमाक्षिक १५०। गर्भचिन्तामणि रस ५५३ सितोपलादि+अभ्रकभस्म+प्रवालपिष्टी मिश्रण। मधुमालिनी ३६७।

अस्थिक्षीणता—प्रवालपिष्टी १८८। गिलोयसत्व ४८ ओर सितोपलादि ६५४। मधुमालिनी ३६७।

गर्भका शोषण-उपविष्टक-नागोदर—मधुमालिनी ३६७।

वमन और कास—प्रवालपिष्टी १८८। गर्भपालरस ५५४। गर्भचिन्तामणि रस ५५३। कामदुघा रस ४४४।

अतिसार—अभ्रपर्पटी ३०६।

बालक जल्दी कमजोर होना या जल्दी मर जाना—गर्भचिन्तामणि रस ५५३। गर्भपाल रस ५५४।

१०४ स्नायुविकृति

स्नायु संकोच-लोहभस्म १०५। ताप्यादिलोह ४११ प्रवालपिष्टी १८८

स्नायुओंकी निर्बलता-मण्डूरमाक्षिक १५०। लोहभस्म १०५। कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २२५। बृहद्योगराजगूगल ४६५। त्रैलोक्यचिन्तामणिरस ३२७।

१०५ स्नायु नारु (Guinea worm)

मल्लभस्म २११। शंखभस्म २०१।

१०६ स्वेदवृद्धि

उष्णपेयादि स्वेदवृद्धि—प्रवालपिष्टी+सितोपलादि चूर्ण मिश्रण।

१०७ हलीमक (पाण्डु रोगमें देखें)

१०८ हारिद्रक (पाण्डु रोगमें देखें)

१०९ हिक्का हिचकी (Hiccup)

हिक्कान्तक रस ४३९। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। ताम्रभस्म ९८। सूतशेखर ५३४। विजयापुष्पाद्यवलेह ७९८। कनकासव ७४१।

१०१ हिस्टीरिया (वातरोगके भीतर अपतन्त्रक में देखें)

१११ हृद्रोग (Diseases of the heart)

हृदयेन्द्रियकी निर्बलता—अभ्रकभस्म १५०। अर्जुनारिष्ट ७४४। माणिक्यभस्म १७७। संगेयसवपिष्टी २१७। लक्ष्मीविलासरस ३४९, ४२७ सुवर्णभस्म ८७। अकीकभस्म २०३। मुक्तपिष्टी १८३। खमीरा मरवारीद

८०६। माजून नुकरा ८००। खमीरा जमुर्रद ८०६। नागार्जुनाभ्र ६१०

रक्तकी निर्बलतासे—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। त्रिफलारिष्ट ७४३। गाजरका अर्क ७७३। लक्ष्मीविलास सुवर्ण ४२७। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। लोहभस्म १०५। मण्डूर भस्म १४५। वसन्तकुसुमाकर रस ४८४।

हृदयावरण शोथ—प्रभाकर वटी ४८२। लक्ष्मीविलास ४२७। आरोग्यवर्द्धिनी ४९७। त्रिनेत्र रस ४८२। खमीरा मरवारीद ८०६।

फुफ्फुस शोथसह—अर्जुनारिष्ट ७४४। शृङ्गभस्म २१३। और स्वर्णमाक्षिकभस्म १३८। नागार्जुनाभ्र ६१०।

पित्तप्रकोपजन्य-घबराहट—संगेयसवपिष्टी २१७। दवाउलमुश्क ७९८ खमीरे गावजवां ८०४। खमीरे गावजवां अम्बरी ८०४। मुक्तापिष्टी १८३ प्रवालपिष्टी १८८। कामदुघा रस ४४४। प्रभाकर वटी ४८२। त्रिनेत्र रस ४८२। खमीरा मरवारीद ८०६।

पाण्डुसे निर्बलता-लोहभस्म १०५। त्रिफलारिष्ट ७४३। ताप्यादिलोह ४११

हृदयका वेग बढ़ना-मधुमेहादिसे हो, तो—महावातराज ५८२। जातिफलादि वटी ३९१। वसन्तकुसुमाकर ४८४। शिलाजीत ६३। नागभस्म १३०। संगेयसवपिष्टी २१७। अकीकपिष्टी २०३। मुक्तापिष्टी १८३। खमीरा मरवारीद ८०६। खमीरा जमुर्रद ८०६। नागार्जुनाभ्र ६१०।

अनेक रोगोंसे वातकफ प्रकोपज निर्बलता—पूर्णचन्द्रोदय २५०। रससिन्दूर २५७। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७। वसन्तकुसुमाकर ४८४।

रक्तवाहिनियोंको विकसित करना—भीमसेनी कपूर ४३।

आमवातज हृद्ग्रह—बृहद् योगराज ४६५।

वातवाहिनियोंकी निर्बलता—अग्नितुण्डी वटी ४०५।

हृदयसे रक्त गिरना—वासावलेह ७९०। तृणकांतमणि पिष्टी २०४।

हृदय शूल—शृङ्गभस्म २१३। महावातविध्वंसन रस ४५९। त्रैलोक्य चिन्तामणि ३२७।

शुक्रक्षयजन्य हृदयसंकोच—वंगभस्म ११३। च्यवनप्राशावलेह ७८५। वसन्तकुसुमाकर ४८४। अश्वगन्धारिष्ट ७४३।

११२ क्षय-राजयक्ष्मा-तपेदिक (Phthisis)

सब समयपर हितकर—सुवर्णभस्म ८७। अभ्रकभस्म १५०। और सुवर्णभस्म ८७। वज्रभस्म १७३। माणिक्यभस्म १७७। गोमेदमणि १७९ पुष्पराग पिष्टी १८०। प्रवालपिष्टी १८८। मुक्तापिष्टी १८३। शृङ्गभस्म २१३। पूर्णचन्द्रोदय २५०। शुद्ध शिलाजीत ६३। वैक्रान्तभस्म १८२। तालसिंदूर २६४। सुवर्णभूपति रस २७८। सुवर्णमालिनी वसन्त ३६२। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२७। रससिंदूर और सुवर्णभस्म ८७।

निर्जन्तुक अनुलोमक्षय और प्रतिलोमक्षय-अभ्रकभस्म, शृङ्ग और प्रवाल

पिष्टी मिश्रण । कासीसभस्म और लोहभस्म १०५। पुष्पराग पिष्टी १८०

अनुलोमरस क्षय–मुक्तापिष्टी १८३ । अभ्रकभस्म १५० । सुवर्णभस्म ८७ । पञ्चामृत पर्पटी ३०० । सुवर्ण पर्पटी २९३ ।

शुक्रक्षय और रजःक्षय–वंगभस्म ११३ । रौप्यभस्म ९२ । वंग और सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । वसन्तकुसुमाकर रस ४८४ । पञ्चामृतरस ६०० सुवर्ण पर्पटी २९३ । वंगभस्म ११३ । शृङ्गभस्म और रससिंदूर मिश्रण । मधुमालिनी वसन्त ३६७ । लक्ष्मीविलास नारदीय ३५७ ।

मज्जाक्षय—मधुमालिनी वसन्त ३६७ ।

ओजक्षय—मधुमालिनी वसंत ३६७ । जीवंत्यादि घृत ८२३ । खमीरे-गावजवाँ अम्बरी ८०४ । च्यवनप्राशावलेह ७८५ ।

सुजाकके हेतुसे मांसक्षय—रौप्यभस्म ९२ ।

फिरंग अनुबन्धसे क्षय—अष्टमूर्ति रसायन २८० ।

उरोग्रह और उरःक्षत पीला दुर्गन्धयुक्त कफ निकलना–रससिंदूर २५७ ताप्यादि लोह ४११ । सुवर्ण ओर प्रवाल मिश्रण । अग्निरस ४३४ । लव-ङ्गादि तालसिंदूर ४३४ ।

प्रसूताकी क्षय —जीरकारिष्ट ७५६ । सूतशेखर ५३४ ।

रक्तगिरना (बन्द करनेके लिये)—संगजराहत भस्म २१७ । शुभ्राभस्म २२६ । बोलपर्पटी २९९ । कनकासव ७४१ । द्राक्षासव ७४७ । महाद्राक्षासव ७६८ । च्यवनप्राशावलेह ७८५ । चन्द्रकलारस ४२० । बालचन्द्र रस ६०३

ज्वर और कफकास—शृंगभस्म २१३ । द्राक्षारिष्ट ७४८ । प्रवाल+शृंग और गिलोयसत्व ८४ ।

सदैव उदरमें गाँठ और अतिसार हो तो—लोकनाथ रस ५०७ ।

तीव्रज्वर–त्रैलोक्यचिन्तामणि ३२७ गदमुरारि ३४० । पञ्चामृतरस ६००

जन्तुओंकी वृद्धि रोकनेके—शृंगभस्म २१३ । सुवर्ण, अभ्रक और शृंगभस्म २१३ । कर्कट भस्म २३१ ।

शुष्ककास—सुवर्णभस्म ८७ । प्रवालपिष्टी १८८ । सुवर्णभूपति २७८ । बालचन्द्र रस ६०३ । सितोपलादि चूर्ण ६५४ ।

तीव्रज्वरसह अतिसार—गदमुरारि रस ३४२ । बालचन्द्र रस ६०३ ।

स्वरभंग—जसदभस्म १२७ । (वमनसह-कर्पूराद्य चूर्ण ६६९) ।

स्वरभेद, पार्श्वशूल, पीनस, शिरदर्दादि उपद्रव—षडंग यूष ७१३ । च्यवनप्राशावलेह ७८५ । सितोपलादि अवलेह ७८९ ।

अग्निमान्द्य—चविकासव ७५७ ।

अधिक प्रस्वेदको घटानेके लिये—कनकासव ७४१ । शिलाजीत-मिश्रित जसदभस्म १७९ । शुभ्राभस्म २२६ ।

वमन—शुभ्राभस्म २२६ । बालचन्द्र रस ६०३ ।

उपद्रवरूप वातप्रकोप, मूर्च्छा या उन्माद—योगेन्द्र रस ६०४ । सूत-

शेखर ५३४ ।

दाह—रौप्यभस्म ९२ । जसदभस्म १७९ । तार्क्ष्यभस्म १७९ । मुक्ता-पिष्टी १८३ । प्रवालपिष्टी १८८ । महामृगांक रस ४२५ ।

स्नायु और मांसकी निर्बलता नागभस्म १३० ।

पेशाबमें पीलापन—चन्दनादि अर्क ७६९ । शिलाजतु ६३ ।

मालिशके लिये—चन्दनबलाक्षादि तैल ८३० ; चन्दनादि तैल ८३१ । नारायण तैल ८३५ । लाक्षादि तैल ८३६ ।

शक्ति संरक्षणार्थ—च्यवनप्राशावलेह ७८५ । वालचन्द्र ६०३ । हेम-गर्भपोटली (दूसरी विधि) ४२६ ।

वातप्रकोप—शिलाजतु ६३ ।

११३ क्षुद्ररोग

वल्मीक—निम्बादि तैल ८३५ । मनःशिलादि तैल ८४० ।

दारुणक, अरुषिका और इन्द्रलु—भृङ्गराज तैल ८३८ । दारुणक-नाशक मलहम ८६३ ।

गुदभ्रंश—चाँगेरी घृत ८२७ । कनकसुन्दर+पञ्चामृत पर्पटी ३०० । शुभ्राभस्म २२६ ।

गुदद्वारकंडू, गुदद्वारविदारण—गन्धक ६० ।

गुदनलिका संकोच—गन्धक ६० ।

माँसग्रन्थिया निकलना—ताम्रभस्म ९८ ।

चर्मकील—सुवर्णवङ्ग २६८ ।

दुष्टग्रन्थि बद आदि—प्रतिसारणीय क्षार ८५५ ।

अंगुली पाक (चिप्य)—अंगुलीपाकहर लेप ८५५ ।

अंजननामिका—अंजननामिकाहर लेप ८५५ ।

तारुण्य पिटिका, मुखदूषिका मुंहासे—तुत्थादि लेप ८५५ । चन्द्रप्रभा उबटन ८७६ । रक्तशोधक शर्बत ८१० । प्रवालपिष्टी १८८ । गन्धक ६० ।

विषादिका हाथपैरकी चमड़ी फटना—गुलाबीमलहम ८६२ । शिरः-शूलान्तक मलहम ८६८ ।

शिशुओंकी रसग्रन्थियां—जसद भस्म १२७ ।

अहिपूतना (Pruritus Ani) बालकोंकी गुदापकना—कासीसादि लेप ८५८ । चर्मरोगनाशक तैल ८३४ । निम्बादि मलहम ८७१ ।

वृषण कच्छू अण्डकोषकी खुजली—चर्मरोगनाशक तैल ८३४ । कासी-सादि लेप ८५८ । पामाहर मलहम ८६३ । व्रणामृत श्वेत मलहम ८६५ ।

उदरकृमिजनित नख विकृति—शृंगभस्म २१३ ।

पादतलमें दाहशोथ—रालका मलहम ८६१ ।

फिरङ्ग जनित नख विकृति—शृंगभस्म २१३ ।

पारिभाषिक शब्दोंकी सूची



अग्निमांद्य	Anorexia
अग्न्याशय	Pancreas
अणुभवन क्रिया	Construction of Elements
अत्यधिक वमन	Hyperemesis
अञ्जननामिका	Stye
अण्डकोष	Testicles
अण्डकोष वृद्धि	Orchitis
अतत्वाभिनिवेश	General paralysis of the insane, dementia paralytica
अजीर्ण	Dyspepsia
अतिसार	Diarrhoea
अधिजिह्वा	Epiglottis
अधिमन्थ	Glaucoma
अधिमांस	Polypus
अनावश्यक तृषा	Dipsosis
अन्तस्त्वचा (श्लैष्मिक कला)	Mucous Membrane
अन्तःप्राचीराधमनीका मध्यावरण	Tunica Intima
अन्तःस्रावी ग्रन्थि	Internal Secretory gland
अन्त्र पुरःसरण	Intestinal peristalsis
अन्त्र क्षय	Intesinal Tuberculosis
अन्त्र क्षोभ	Intestinal Spasm
अन्त्र पुच्छ	Appendix
अन्त्र पुच्छ प्रदाह	Appendicitis
अन्त्र पुच्छ विद्रधि	Suppurative Appendicitis
अन्त्र व्रण (अन्त्रक्षत)	Intestinal Ulcer
अन्त्र विद्रधि	Intestinal Abscess
अन्त्रवृद्धि (अन्त्रावतरण)	Inguinal Hernia
अनुलोम क्षय	Sprue
अनैच्छिक क्रिया	Involuntary action
अपची	Tuberculous adenitis.
अपतन्त्रक	Hysteria
अपतान (धनुर्वात)	Tetanus
अपस्मार	Epilepsy
अब्धातु (लसीका, रसधातु)	Lymph
अभिघात	Trauma

अभिष्यन्द (आंख आना)	Coujunctivitis
अम्लपित्त	Hyperaidity
अरुचि	Loss appetite ror food
अर्दित	Facial paralysis
अर्धावभेदक	Hemicrania
अर्म (नेत्ररोग-बल)	Pteygium
अलसक (उदररोग)	Atonic Dyspepsia
अलसक (कुष्ठ भेद)	Lichen ruber
अवबाहुक	Paralysis of arm
अश्मरी	Calculus
अष्ठीला (पौरुष ग्रन्थि)	Prostate gland
अष्ठीलाप्रदाह	Prostatitis
अस्थिमार्दव (अस्थिशोष)	Rickety
अस्राभिनोदन (रक्त दबाव)	Blood Pressure
अस्थिव्रण	Sinus leading to bone
अहिपूतना	Pruritus ani
आध्मान	Tympanites
आन्तरिक रोग क्षमता	Immunity
आन्त्रिक ज्वर	Typhoid Fever
आमप्रकोपज शूल	Pain in Abdomenbue to Indigestion
आमवात	Rheumatism
आमातिसार	Mucous Colitis
आमाशय	Stomach
आमाशयस्थ पित्त	Gastic Juice
आसन्न दृष्टि	Short sight Myopia
आक्षेप	Convulsions
इक्षुमेह	Glycosuria
उदक मेह	Diabetes lnsipidns
उदर ग्रन्थि	Tumour in Abdomen
उदरगुहा पतन	Visceroptosis
उदावर्त (अन्त्रनिरोधज)	Intestinal Obstruction
,, (वातप्रकोपज)	Colic due to gassing
उन्डुक	Coecum
उन्माद	Mania
उपजिह्वा (काकलक)	Uvula
उष्णता (उत्ताप)	Temperature

उरस्तोय	Pleurisy
उरुस्तम्भ	Paraplegia
एक कुष्ठ	Ichthyosis
कटिग्रह	Lumbago
कण्ठमाला	Scrofula
कण्ठरोहिणी	Diphtheria
कण्ठशालूक	Tonsillitis
कण्डरा	Tendon
कच्छू	Scabies
कदर (कठोर चर्म)	Corn
कनीनिका(नेत्रके द्वितीयपटलकाछिद्र)	Pupil
कर्कटार्बुद (कर्क स्फोट)	Cancer Carcinoma
कर्णस्राव	Otorrhaea
कलायखञ्ज	Locomotor ataxia
कक्षा ग्रन्थि	Herpes zoster
कामला	Jaundice
काली खांसी	Whooping Cough
कास	Bronchitis
किट्टिभ	Dry Eczema
कुकूणक	Phlyctenule
कुम्भ कामला	PassiveCongestionofthe liver
कुक्ष्युदर (उरस्तोय)	Pleurisy
कृमि	Worms
कृष्ण ज्वर	Black Fever
क्लैव्य	Sexual Debility
कोथ	Gangrene
कोष्ठ (उदर गुहा)	Abdomen
क्रोष्टुकशीर्ष	Synovitis of knee joint
खञ्जवात	Spastic paraplegia
गर्भपात	Abortion
गर्भवात	Eclampsia
गलगंड	Goitre
गलत् कुष्ठ	Anesthetsc Leprofy
गलशुण्डिका प्रदाह	Uvulitis
गलौंध	Croup
गवीनी	Ureter
गाद .	Sediment
गुदत्रिवली	Sphinetors
गुद नलिका	Rectum

गुद नलिका पाक	Proctitis
गुद भेदन	Fissure of the Anus
गुद शुक	Condyloma
गृध्रसी	Sciatica
ग्रन्थि ज्वर	Plague
ग्रन्थि पूय	Pus in gland
ग्रन्थिक सन्निपात	Plague
ग्रहणी	Duodenum
घटक	Tissue
घंटिका (काकलक)	Uvula
चक्कर (भ्रम)	Giddiness Vertigo
चयापचय	Metabolism
चर्मदल	Erythema Nodosum
चेतना ह्रास	Apsychia
छोटी माता	Chicken pox
जलसन्त्रास (श्वान विषज उन्माद)	Hydrophobia
जलोदर	Ascites
तमक श्वास	Asthma
तालुव्रण	Ulcer in palate
तीव्र अवस्था	Acute Stage
त्रिदोषज रक्तपित्त	Purpura
दद्रु	Ringworm
दन्त वेष्ट (पूयमय)	Pyorrhoea Alveolaris
दन्त शूल	Tooth-ache
दन्तोद्भेद	Teething
दाह (हृदयका)	Cardialgia. Pyrasis
दूर दृष्टि	Hyperopia. Farsightedness
धमन्यर्बुद	Aneurysm
धातुपरिपोषण क्रम	Metabolism
धारणा (रोग निरोधक) शक्ति	Immunity
नकसीर (नासारक्त)	Epistaxis
नष्टार्तव	Amenorrhea
नाड़ी व्रण	Fistula
निद्रानाश	Insomnia
निद्रामें मूत्रस्राव	Enuresis Nocturena
निर्बलता	General debility
निरिन्द्रिय ओषधि	Inorganic Drugs

निर्जंतुक क्षयं	Simple Atrophy
नृत्यवात	Chorea
नेत्रव्रण	Corneal Ulcer
नेत्रार्बुद	Tumour in Eye
पक्वाशय (लघुअन्त्र)	Small Intestine
पचन संस्थान	Alimentaryor digestive system
परिवर्तित ज्वर	Relapsing Fever
पक्ष्म व्रण	Ulcer in Eyelids
पक्ष्मशात (पलकसे जल गिरना)	Blepharitis
पक्षाघात (अवबाहुक)	Hemiplegia
पाचक रस	Gastric juice
पाण्डु	Anaemia
पाद दाह	Burning sensation of the feet
पामा	Pruritus Intense Itching
पाषाण गर्दभ (कर्णमूल शोथ)	Mumps
पिच्छिल त्वचा (श्लैष्मकला)	Mucous Membrane
पित्ताशय	Gall Bladder
पिष्टमेह	Chyluria
पिंड	Lobe
पीड़ितार्तव	Dysmenorrhea
पीनस	Oxaena
पीनस	Purulent rhinitis Chronic Nasal catarrh
पूयमय रक्त (पूयज ज्वर)	Pyaemia
पूय मेह (पूय शुक्र सुजाक)	Gonorrhoea
पूय वृक्क	Suppurative Nephritis
पूयाभिष्यंद, पूययुक्त चक्षु प्रदाह	Purulant Conjuctivitis
पोथकी (रोहे)	Trachoma
पुरःसरण	Peristalsis
पुरीतती (हृदयावरण)	Pericardium
प्रतिविष	Antidote
प्रतिश्याय	Coryza
प्रदाह (शोथयुक्त)	Inflammation
प्रमेहपिटिका	Carbuncle
प्रलाप	Delirium
प्रलापक सन्निपात	Typhus Fever
प्रवाहिका	Dysentery
प्रस्वेद	Perspiration
प्लीहा	Spleen

प्लीहा वृद्धि	Enlargment of spleen
फलवाहिनी (बीजस्रोत)	Fallopian tube
फिरंग	Syphilis
फुफ्फुस सन्निपात	Pneumonic fevr
फुफ्फुसावरण	Pleura
फुफ्फुसावरण शोथ	Pleurisy
फोड़ा	Boil
बढ़ी हुई तृषा	Polydipsia
बद्धोदर	Intestinal obstructron
बस्ति (मूत्राशय)	Bladder
बस्ति प्रदेश	Pelvic Regsion
बस्ति मूत्रपिंड (अष्ठीला,पौरुष ग्रन्थि)	Prostate gland
बस्तिप्रदाह	Cystitis
बहुमूत्र	Polyuria
बाधिर्य	Deafness
बाल धनुर्वात, बाल आक्षेप	Infantile Convulsions
बालग्रह	Infantile Eclampsia
भगंदर	Anal fistula
भ्रम	Vertigo
मक्कल शूल	After Pains
मज्जा	Bone-marrow
मदात्यय	Alchoholism
मन्यास्तम्भ	Steff neok
मलमें रक्त आना	Melaena
मस्सा (मशक)	Worts
महा कुष्ठ	Leprosy
महाधमनी	Aorta
महाप्रचीरा पेशी	Diaphragm
मानस व्यग्रता	Confusion
मानस विषाद	Melancholia
मानस शास्त्र	Psychology
मुख पाक	Stomatitis
मूकत्व	Aphonia
मूर्च्छा	Fainting
मूत्रकृच्छ्र	Dysuria
मूत्र नलिका	Urethra
मूत्र पिंड (वृक्क)	Kidney
मूत्रावह स्रोत	Ureter

मूत्रविबन्ध	Retention of urine
मूत्रातिसार	Polyuria
मूत्राशय	Bladder
मूत्रोत्सर्ग क्रिया	Micturition
मृद्वस्थि रोग	Rickets
मेदोवृद्धि	Obesity
मोतीझरा	Typhoid fever
मन्दाग्नि (अजीर्ण)	Dyspepsia
माँस ग्रन्थि (मांसार्बुद)	Sarcoma
माँस घटक	Muscular Tissue
यकृत्	Liver
यकृद्दाल्युदर	Cirrhosis of liver
यकृत्पित्त	Bile
यकृत्प्रदाह (शोथ)	Hepatitis
योनिकण्डू	Pruritus-valvae
यौवनपिटिका	Acne
रक्तकण	Red corpuscles
रक्तकणिका	Blood platelets
रक्तपित्त	Hemorrhagic Diseases
रक्त वाहिनियाँ	Arteries and Veins
रक्तमेह (मूत्रमें रक्त जाना)	Haematnria
रक्त वमन	Haematemesis
रक्तमें मूत्रविषवृद्धि	Uraemia
रक्तसंग्रह	Congestion of Blood
रक्ताभिसरण	Blood circulation
रक्तसंग्रह निष्क्रिय	Passive Congeston
रजस्रावाधिक्य	Sprue
रतौंधी	Menorrhagia
रस क्षय (संग्रहणी)	Night Blindness
रसवह ग्रन्थि (रसोत्पादक पिंड)	Lymphatic gland
रसवहन संस्थान	Lymphatic System
रसवह पिंड	Lymphatic node
रसवाहिनी	Lymphatics
रसाँकुरिकाएें	Villi
राजयक्ष्मा	Phthisis T. B.
राजिका	Lichen-planus
रोग निरोधक शक्ति	Immunity
रोमाँतिका	Measles

लघु मस्तिष्क	Cerebellum
लसिका	Lymph
लसीका मेह	Albuminuria
लाला पिंड	Salivary gland
वातकफ ज्वर	Influenza
वातनाड़ी संस्थान	Nervous System
वातबस्ति (मूत्रावरोध)	Retention of urine
वातरक्त	Gout
वातवह नाड़ी केन्द्र	Nerve centre
वातवाहिनी	Nerve
वातश्लेष्मक सन्निपात	Influenza
विचर्चिका	Weeping Eczema
विजातीय द्रव्य	Foreign Substanee
विद्रधि	Abscess
विषम ज्वर	Melarial fever
विसर्प	Erysipelas
विसूचिका (कॉलेरा)	Cholera
वृक्क (गुरदा)	Kidney
वृक्क शूल	Renal colic
नेत्र व्रण शुक्र (फूला)	Cornal Uleer
श्लीपद	Elephantiasis
श्वसनक (श्लैष्मिक) सन्निपात	Pneumonia
श्वासकेन्द्र	Respiratory Centre
श्वासावरोध	Dyspnaea
श्वासरोग'कष्टसे श्वासौच्छ्वासहोना'	Dyspnoea
श्वेत कुष्ठ	Leucoderma
श्वेत प्रदर	Leucorrhoea
शिरःशूल	Sever headache
शीतपित्त	Urticaria
शीतला	Small Pox
शुक्रमेह	Spermaterrhoea
शुक्रवाहिनी	Vas deferons
शेषान्त्रक प्रदाह	Regional Ileits
शूल	Colic
शोफ (श्वयथु)	Dropsy
श्रोणि गुहा	Pelyic Cavity
स्तन शोथ	Mastitis
स्तन्यशिशु (दूध पीने वाला बालक)	Lactation
स्नायुक (नाहरू)	Guinea-worm

स्नायु रज्जु	Ligament
स्मृति विकृति	Psyeholepsy
स्वप्नदोष	Nooturnal emission
स्वरभेद	Hoarseness
स्वेद पिंड	Sweat gland
स्त्रीअण्डकोष (बीजाशय)	Ovary
स्त्री हारिद्रक	Chlaorosis
स्रोत	Dust
सगर्भावस्था	Prognancy
सतत ज्वर	Intermittent fever
सन्यास	Coma Apoplexy
सर्वसर (मुखपाक बालकोंका)	Aphthae Thrush
सर्वाङ्ग शोथ	General Anasarea
सहस्रार	Cerebrum
सहस्रारावरण	Meninges
सिक्तामेह	Uric acid in Urine
सिरा	Vein
सुजाक	Gonorrhoea
सुप्तकुष्ट (कापालकुष्ठ)	Anesthetic leprosy
सूतिका ज्वर	Puerperal fever
सेन्द्रिय औषधि	Organie drug
सेन्द्रिय विष	Toxin
संचालक वातनाड़ी	Motor Nerve
सम्बेदक वातनाड़ी	Sensory Nerve
संग्रहणी	Sprue chronic diarrhoea
संतत ज्वर	Remittent fever
हारिद्रक	Chlorosls
हृत्पटल	Cardiac volve
हृत्स्नायु	Cardiac ligament of bundle of his
हृत्स्पंदन	Palpitation
हृदयाधरिक प्रदेश	Epigastric Region
हृदयकेन्द्र	Cardio inhibitory centre
हृदयशूल	Cardiac pain
हृन्नाड़ी	Cardiac nerves
हस्ति मेह	Enuresis
हिक्का	Hiccup
क्षत, व्रण	Ulcers
क्षतौदर	Ulceration of tne Intestine
क्षारमेह	Phosphaturia

※ सम्पूर्ण ※

